'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की वानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥'

प्रथम संस्करण—१९८४-८५ ई०

आकार— १८×२२÷८

पृष्ठसंख्या—९२०

मूल्य— १२०.०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

मोसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ—२२६०२०

विश्वनागरी लिपि

॥ ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ॥

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता ।

' संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है ', यह कथन बिलकुल ठीक है । परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली लिखी जानेवाला लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। नियमित स्वरों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना । सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना । ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार । सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार ।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि । एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर । स्माल्, कैपिटल्, इटैलिक्स् के समान अनेकरूपी नहीं; बस एक ही रूप में लिखना, बोलना, छापना और प्रत्येक अक्षर का समान वज़न पर

तेलुगु - देवनागरी वर्णमाला

అ अ   ఆ आ   ఇ इ   ఈ ई   ఉ उ
क   का   कि   की   कु

ఊ ऊ   ఋ ऋ   ౠ ॠ   ఌ ऌ   ౡ ॡ
कू   कृ   कॄ

ఎ ऒ   ఏ ए   ఐ ऐ   ఒ ऒ   ఓ ओ
के   के   कै   को   को

ఔ औ   అం अं   అః अः
कौ   कं   कः

క क   ఖ ख   గ ग   ఘ घ   ఙ ङ

చ च   ఛ छ   జ ज   ఝ झ   ఞ ञ

ట ट   ఠ ठ   డ ड   ఢ ढ   ణ ण

త त   థ थ   ద द   ధ ध   న न

ప प   ఫ फ   బ ब   భ भ   మ म

య य   ర र   ల ल   వ व   శ श

ష ष   స स   హ ह   క్ష क्ष   ఱ ऱ,र

ళ ळ

एकाक्षरी नाम। उच्चारण-सस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नही मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद है, अतः वे सब नागरी के समान ही विश्व की अन्य लिपियों की अपेक्षा 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से हिन्दी का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अतः समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता से प्राचुर्य में लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि देशी-विदेशी अन्य सभी लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरक़रार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अतः अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के रह जाने से विश्व की समस्त अ-लिप्यन्तरित ज्ञानराशि उसी प्रकार [illegible]त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली, प्राकृत और अपभ्रंश, सुरयानी आ[illegible] का वाङ्मय रह गया। जगत् तो दूर, राष्ट्र का ही प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनो परम धर्मो की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का [illegible] आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नहीं करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है

अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नहीं होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को भी अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियां भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता, युगों की मानव-श्रृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को रुद्ध कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसनेवाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित हैं। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। अरब का पेट्रोल हम नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना जरूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नहीं है। वे काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नहीं रखती। उनको कहाँ तक और कैसे समाविष्ट

किया जाय ?'' यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अल्बत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं हैं— किन्तु अधिक नही। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आजादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में, ज़रूरी मानकर, उन विशिष्ट भाषाई व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नही। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अरबी' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। "इल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर(स०)का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अरबी-पोशाक— चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरों को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते है, उनको परेशानी क्या है? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र मे प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा मे जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ— उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिफ्थांग)आदि बनते है। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं, प्रयत्न हैं, लहजा हैं। ये सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, "एक ही रूप में", अपने-निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी "पहले" का शुद्ध

उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेजी के उद्भट विद्वान् अंग्रेजी में भाषण देते हैं—उनके लहजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेज़ी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार को वरीयता (तर्जीह)।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस शोध-समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे ज़रूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुक़ामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी वर्णमालाओं में एकार तथा ओकारकी ह्रस्व,दीर्घ —दोनों मात्राएँ हैं; हम बोलते हैं, किन्तु पृथक् लिखते नहीं। पढ़ने दीजिए,बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल पर नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् कर दिये। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है (अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली हिन्दी-उर्दू के ऐ, और औ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नी, ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षड्ज से निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत क़ायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है? क्या कभी वह पूर्ण होगा? पूर्ण

तो 'ब्रह्म' ही है। "बेस्ट् इज् द ग्रेटेस्ट् ऐनिमी ऑफ़् गुड् ।" (Best is the greatest enemy of Good) इसलिए शग़ल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो गुजराती लिपि की भाँति अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नही करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "संस्कृत" को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने पर, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता, संस्कृत का अपार ज्ञान-भण्डार सबको प्रत्यक्ष होता, और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। इसलिए कि प्राय: सभी भारतीय लिपियों में, संस्कृत भाषा उसी प्रकार अबाध गति से लिखी जाती है जिस प्रकार नागरी लिपि में। संस्कृत ही एक भाषा है जिसकी अनेक लिपियाँ अपनी हैं। किन्तु अब वह बात हाथ से बेहाथ है; अब "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोवेश प्रविष्ट है।

आज क्या करना है?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर, नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— ("ही" नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व चरितार्थ होगा।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

ग्रन्थोदय

ललितस्कंधमु, कृष्णमूलमु, शुकालापाभिरामंबु, मंजुलता शोभितमुन्, सुवर्ण सुमन सुज्ञेयमुन्, सुंदरोज्ज्वलवृत्तंबु, महाफलंबु, विमल व्यासालवालंबुन वॅलयुन् भागवताख्य कल्पतरुर्वुविन् सद्विजश्रेयमै

भागवत नामक कल्पतरु जो ललितस्कंध (तना और सर्ग) वाला है, जिसका मूल (जड़ और आधार) श्रीकृष्ण है, जो शुक (तोता और शुक महर्षि) के आलापों से अभिराम (सुंदर) है, जो मंजुलता (मंजु-लता और मंजुलता) से सुशोभित है, जो सुवर्ण वाले सुमन (फूल और सहृदय) से सुज्ञेय है, जो सुंदर उज्ज्वल वृत (वृंत और इतिवृत) वाला है, महाफल (फल और मोक्ष) से युक्त है, विमल व्यास का आलवाल है, [ऐसा यह पुराण] सद्विजों को श्रेय प्रदान करनेवाला होकर, विराजमान होगा।

अनुवादकीय

तॅलुगु भाषा की विशिष्टताएँ

तॅलुगु भाषा, लिपि और उच्चारण की विशेषताओं के बारे में ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'रंगनाथ रामायण' एवं 'मॉल्ल रामायण' की भूमिका भागों में प्रकाश डाला गया है। साथ ही पोतन्न भागवतमु के पृथक् खण्ड के पृष्ठों ६-२७ तथा द्वितीय खण्ड के पृष्ठों ५-७ पर भी ध्यान दिलाते हुए दो बातों को पुनः समझा देना आवश्यक लग रहा है।

तॅलुगु के वाक्य के मध्य में भाषा की प्रकृति के अनुरूप स्वर का कभी प्रयोग नहीं होता। मध्य-स्वर अपने से पूर्व के व्यंजन से जुड़ जाता है। तॅलुगु के शब्दों के अंत में बहुधा 'नकार' (न्) होता है। इसे 'द्रुत' कहते हैं। (द्रुत) के प्रभाव से, उसके पश्चात् का सरल व्यंजन (क, च, ट, त, प) परुष व्यंजन (ग, ज, ड, द, व) में परिवर्तित हो जाता है। तॅलुगु के देवनागरी लिप्यन्तरण को पढ़ते समय उपरोक्त संधि नियमों को ध्यान में रखने से शब्दों के रूप को और अर्थ को समझने में सुविधा हो जाएगी। तॅलुगु में संस्कृत के सभी वर्णवृत्तों का,
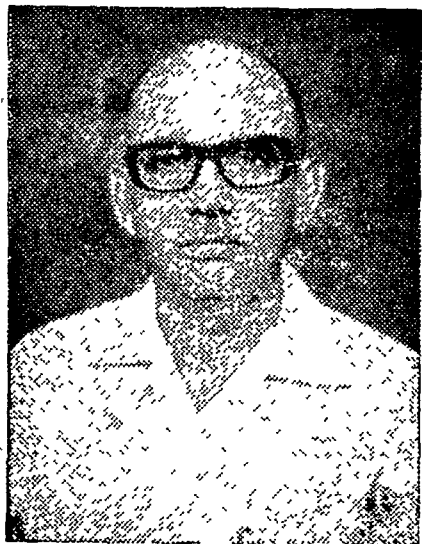
यथानियम प्रयोग होता है। गणों का निर्वाह करने के साथ-साथ तॅलुगु के अपने दो नियमों— प्रास और यति का भी पालन होता है। प्रत्येक चरण के द्वितीय व्यंजन का (उसके साथ कोई भी स्वर क्यों न हो, चारों चरणों में) एक ही रहना 'प्रास' कहलाता है। संस्कृत और हिन्दी यति के समान, तॅलुगु में यति 'विराम' न होकर, 'अक्षरमैत्री' है। यति स्थान पर, चरण के प्रथम अक्षर का मित्राक्षर का होना अनिवार्य है। इसीलिए तॅलुगु पद्य के चरण, चरणान्त में न टूटकर, दूसरे चरण के साथ जुड़कर, धारा-प्रवाह युक्त होते हैं। तॅलुगु का पद्य अपनी गेयता के कारण श्रुतिमधुर है। अजंत भाषा होने के कारण तॅलुगु पद्य के स्वर-माधुर्य तलुगु में प्रयुक्त संस्कृत वर्णवृत्तों के नियमों पर ध्यान रखना चाहिए। तॅलुगु के देशी छन्दों में मात्रा नियम की अपेक्षा गण नियम को ही प्राधान्य है। सस्कृत के आठ गणों के अतिरिक्त तॅलुगु में सूर्यगण, इन्द्रगण और चंद्रगण भी माने गये है।

सूर्यगण—१ गल (हगण)— गुरु और लघु; २ नगण— तीन लघु।

इन्द्रगण—१ नल— नगण और एक लघु; २ नग— नगण और एक गुरु; ३ सल— सगण और लघु; और भगण, रगण, तगण को भी इन्द्रगण माना गया है।

चन्द्रगण—१ नगग— नगण और दो गुरु; २ नह गण— नगण और गुरु लघु; ३ सलल गण—सगण और दो लघु; ४ भल गण— भगण और एक लघु; ५ भगुरु गण— भगण और एक गुरु; ६ मलघु गण— मगण और एक लघु; इनके अतिरिक्त; ७ सव गण— सगण और लघु-गुरु; ८ सह गण— सगण और गुरु लघु; ९ तल गण— तगण और लघु; १० रल गण— रगण और एक लघु; ११ नव गण— नगण और लघु गुरु; १२ नलल गण— नगण और दो लघु; १३ रगुरु— रगण और एक गुरु; १४ तग गण— तगण और एक गुरु भी चन्द्रगण माने गये हैं। तॅलुगु के देशी छन्दों में अधिकतर इन्द्र तथा चन्द्रगणों का ही प्रयोग होता है।

पोतन्ना ने कंदमु, आटवॅलदि, तेटगीति, सीसमु नामक देशी छन्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त तरुवोज, रगड़, तरल आदि छन्दों का प्रयोग किया है। सीस पद्य के चार चरणों के वाद आटवॅलदि अथवा तेटगीति का प्रयोग होना चाहिए। पोतन्ना ने सीसपद्यमु में अधिकतर तेटगीतियों का ही प्रयोग किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में, नागरी लिप्यन्तरण में छन्द का पूरा नाम न देकर संक्षिप्त रूप (एक अक्षर) दिया गया है। उदाहरण:—

उ.— उत्पलमाला; म.— मत्तेभ; ते.— तेटगीति; आ.— आटवॅलदि; कं.— कंदमु; सी.— सीसपद्यमु; च.— चंपकमाला; शा.— शार्दूल आदि।

मत्तकोकिल, भुजंगप्रयात, तोटक, स्रग्धर, महास्रग्धर, उत्साह, लयग्राही, वनमयूर, कविराज विराजित आदि कम प्रयुक्त छन्दों के पूरे नाम दिए गए हैं।

तॆलुगु के प्रबंध काव्य प्रारंभ से ही चंपू काव्य रहे हैं। जिस काव्य में वचन (गद्य) का प्रयोग न हो उन्हें 'निर्वचन' काव्य कहते हैं। चंपू प्रबंध काव्यों में प्रयुक्त वचन (व.) विशेष प्रवाह से युक्त होता है। उन्हें 'पद्यगंधी' गद्य भी कहा जाता है। पोतन्ना ने दार्शनिक विचारों के विवरण के लिए वचन का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं श्लेषालंकारयुक्त वर्णन रमणीय बन पड़े हैं। प्रत्येक स्कंध के अंत में 'गद्य' नामक अंश होता है जिसमें कवि अपना परिचय देने के साथ, उस स्कंध के मुख्य प्रसंगों के शीर्षक देता है। भागवतम् के स्कंधांत गद्यों से पता चलता है कि तॆलुगु भागवतम् के कुछ अंशों को उनके शिष्यों ने लिखा है। (प्रथम खंड की भूमिका में इस पर विशद वर्णन है। विशद रूप से लिखा गया है।)

निवेदन

वेद, पुराण, इतिहास आदि की रचना करके भी असंतुष्ट और व्याकुल चित्तवाले व्यासजी से नारदजी ने यों कहा था:—

अंचितमैन धर्मचयमंतयु जॆप्पितवंदुलोन नि-
श्चितमुग नानि विष्णुकथलेर्पड जॆप्पवु धर्ममुल् प्रपं-
चितमुलु गानि मॆच्चुने गुणविशेषमुलॆन्निन गाक नीकु नी
कॊंचॆमु वच्चुटॆल्ल हरि गोरि नुतिपमि नार्यपूजिता! (१-९३)

नारद जी ने कहा—

हरिनाम स्तुति सेयु काव्यमु सुवर्णाभोज हंसावळी-
सुरुचिभ्राजितमैन मानस सरस्फूर्तिन् वॆलुंगॊंदु श्री-
हरिनाम स्तुति लेनि काव्यमु विचित्रार्थान्वितंबय्यु श्री-
करमैयुंडदयोग्य दुर्मदनदत्काकोल गर्ताकृतिन् (४) *

इस उपदेश के फलस्वरूप श्रीमद्भागवत पुराण की रचना हुई। तॆलुगु के महाभक्त एवं महाकवि पोतन्ना ने 'कैवल्यपद की प्राप्ति' (१-१) एवं पुनर्जन्म-राहित्य के लिए संस्कृत महाभागवत का आंध्रीकरण किया। शिवभक्तिपरायण पोतन्ना ने किया महेश्वर का ध्यान तो दर्शन दिए श्रीरामचंद्र ने और कहा, मेरे नाम पर भागवतम् की रचना करो। पोतन्न ने महानंदांगना

---

* भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥ (१-५-८)
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो, यदुत्तम श्लोकगुणानुवर्णनम्। (१-५-२२)
(श्रीमद्भागवत महापुराण-प्रथम खंड— गीताप्रेस-गोरखपुर)

के ढिभक श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए, रचना का प्रारंभ किया। शिव-केशव की समन्वय-भावना का इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण शायद ही देखने को मिले। यह आंध्रों का अहोभाग्य है कि पोतन्ना की रचना— अनुवाद अथवा अनुसरण— इतनी सर्वांगपूर्ण है कि तॆलुगु में महाभागवतम् ने 'पुनर्जन्म-राहित्य' को प्राप्त किया अर्थात् तलुगु के अन्य किसी कवि ने भागवतम् को फिर से रचने का साहस नहीं किया। यह सर्वमान्य तथ्य है कि पोतन्ना के बाद ही तॆलुगु देश में साहित्य के क्षेत्र में भक्ति-लता पल्लवित एवं पुष्पित हुई है। इसके तीन कारण माने जाते हैं। पहला कारण है, प्रस्थानत्रयी में एक— भागवतम् ही भगवद्भक्ति का प्रामाणिक ग्रंथ है। दूसरा कारण है, भक्ति-भाव में तल्लीन पोतन्ना के भाव-प्रवण हृदय ने विषय को सांगोपांग एवं विशद-विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया। तीसरा कारण है, पोतन्ना की धाराप्रवाह युक्त शैली, भाव के अनुकूल शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों से युक्त वर्णन कौशल। ऐसा लगता है, शब्द-नाद-सौंदर्य की और भाव-गांभीर्य की होड़ लगी हुई है। प्रथम स्कंध में अश्वत्थामा-द्रौपदी-संवाद के अवसर पर भयानक और वीभत्स रस, अर्जुन के श्रीकृष्ण के निर्वाण का समाचार सुनाते समय करुण रस, सप्तम स्कंध में प्रह्लाद-चरित्र के वर्णन में शांत और करुण रस, नृसिंहावतार के वर्णन के प्रसंग में वीर-रौद्र-अद्भुत रस, दशम स्कंध में रुक्मिणी-विवाह के अवसर पर शृंगार और भक्ति रस, नरकासुर-वध के अवसर पर वीर और शृंगार रस —इस प्रकार प्रसंगानुकूल विभिन्न रसों का रसावेश द्वारा पोतन्ना ने तॆलुगु जनता के हृदयों में शाश्वत स्थान बना लिया है*। उदाहरण :—

१ नीकुन् म्रॊक्कॆद त्रुंपवे भवलतल् नित्यानुकंपानिधी (१-१९९)। श्रीकृष्ण की प्रार्थना करती हुई कुंतीदेवी के पद्य।

२ (अ) अंधेंदूयमुल् महावधिर शंखारावमुल् (७-१६८)। (आ) ऎल्ल शरीरधारुलुकु निल्लनु चीकटि नूतिलोपलं (७-१४२)। प्रह्लाद के अपने पिता से कहे गये पद्य।

३ ऒटिवाड नाकु ऒकटि रॆंडडुगलमेर यिम्मु (८-५६६)। बलि चक्रवर्ती से याचना करते हुए वामन के पद्य।

आ. तिरुगन्नेरदु नादु जिह्वविनुमा धीवर्य ! वेयेटिकिन् (८-५९२)। अपने गुरु शुक्र से बलि के पद्य।

४. अम्मा ! मन्नु दिनंग ने शिशुवुनो आकॊटिनो वॆर्रिनो (१० पू-३३७)। मृत्भक्षण के समय बालकृष्ण के पद्य।

---

* तॆलुगु भाषा में पद्य रागयुक्त रूप से पढ़े जाते हैं। यति और प्रास के अनुरूप पद्य में विशिष्ट प्रकार की लय होती है।

५. अन्नमु लेदु कॉन्नि मधुरांबुवुलुन्नवि त्रावुमन्न (९-६४७)। अपने प्राणों की भी परवाह न करते हुए रतिदेव के चंडाल-अतिथि के प्रति पद्य।

६. मन सारथि मन सचिवुडु (१-३५६)। श्रीकृष्ण-निर्वाण पर पद्य।

७. नी पादकमल सेवयु नी पादाचंकुल तोडि नॅय्यमुपु (१०पू-१२६८)। श्रीकृष्ण की प्रार्थना करते हुए सुदाम के पद्य.।

८. घनुडा भूसुरुडेगॅनो नडुम मार्गश्रातुडै चिक्कनो (१० पू-१७२४)। श्रीकृष्ण के पास संदेश ले गए भूसुर की प्रतीक्षा में रुक्मिणी की व्याकुलता।

९. कुप्पिचि यॅगसिन गुडलंबुल कांति, गगनभागंबॅल्ल गप्पिकॉनग (१-२२१)। भीष्म के आक्रमण को न सहकर, भीष्म पर सुदर्शन चक्र लेकर टूट पड़नेवाले श्रीकृष्ण का वर्णन करनेवाला पद्य।

१०. मॅरुगु चॅंगय्नुन्न मेघंबुकैवडि, नुविद चॅंगटनुंड नॉप्पुवाडु (१-१३)। पोतन्ना को दर्शन दिए प्रभु श्रीरामचंद्र का वर्णन करनेवाला पद्य।

११. ओ यम्म ! नी कुमारुडु, मा इंड्लनु बालु पॅरुगु मननीडम्मा (१०पु-३२८)। गोपियों की यशोदा से श्रीकृष्ण की शिकायत।

१२. नल्लनिवाडु, पद्मनयनम्मुल वाडु (१०पू-१०१०)। श्रीकृष्ण के रासकेली के समय अदृश्य हो जाने पर, उसे ढूँढ़ती हुई, जड़-चेतन से उसका पता पूछनेवाली गोपिकाओं के पद्य जो अपढ़ ग्रामीण जनों के मुँह अप्रयास ही सुने जाते हैं। प्रह्लाद-चरित्र, गजेंद्र-मोक्षण, वामनावतार की कथा, रुक्मिणी-कल्याण की कथा —ये तो पडित जनों के कंठहार हैं। पोतन्ना का भागवतम् सच्चे अर्थो में तॅलुगु भाषी जनता के हृदय का दर्पण है।

पोतन्ना ने संस्कृत महाभागवत का अनुवाद नहीं किया है, उसकी पुनः सृष्टि की है। पोतन्ना से पूर्व कवित्रय (नन्नय्य, तिक्कन्ना और एर्रन्ना) ने संस्कृत के महाभारत का अनुवाद प्रस्तुत किया था। वह अनुवाद न रहकर मौलिक रचना के समान लगता है। मूल को कहीं विस्तृत करना, कहीं संक्षिप्त करना, कहीं छोड़ देना तो कहीं परिवर्तित कर देना —इस प्रकार से कवित्रय ने अनुवाद का निर्वाह किया। उनके पश्चात् तथा पोतन्ना से कुछ ही पूर्व या समकालीन कविसार्वभौम श्रीनाथ ने अपने अनुवाद में प्रतिश्लोक के लिए एक पद्य की पद्धति का अनुसरण करते हुए, मूल श्लोक की अपेक्षा अनुवाद को सुंदरतर बनाने का प्रयास किया है। पोतन्ना-कृति में इन दोनों पद्धतियों का समन्वय है। श्लोक की अपेक्षा प्रसंग के भाव को लेकर, तॅलुगु भाषा की प्रकृति के अनुरूप उसे सँवारा है। मूल भागवतम् के व्याख्याकारों के विवरणों को कहीं-कहीं तदनुसार और कहीं-कहीं भावावेश में मूल को छोड़कर अनन्य कल्पनाओं से काम लिया है। इसी भावावेश एवं भक्ति-परवशता के कारण

मूल भागवतम् की अपेक्षा तॅलुगु महाभागवतमु परिमाण में तिगुना हो गया है। इसी को दृष्टि में रखकर, आलोचक-प्रवर डॉ० प्रसादयराय कुलपति ने ठीक ही लिखा है कि 'कवित्रय की रचना के समान पोतन्ना का अनुवाद न कथानुवाद है न श्रीनाथ आदि के समान मूलनिष्ठ भावानुवाद। पोतन्ना का अनुवाद 'हृदयानुवाद' है।" परीक्षित का शाप-वृत्तांत, गजेंद्र-मोक्षण, प्रह्लाद-चरित्र, वामनावतार की कथा, रुक्मिणी-विवाह का उपाख्यान, कुचेलोपाख्यान आदि ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ पोतन्ना के भावावेश एवं भक्तिपारम्य की चरमावधि के दर्शन होते हैं। यहाँ पोतन्ना की लेखनी पाठक को रसप्लावित कर देती है।

राजाश्रय में रहकर, पांडित्य-प्रदर्शन को ही कविकर्म की इतिश्री समझने वाले कवियों के समकालीन होते हुए भी पोतन्ना ने मनुजेश्वराधमों के हाथ काव्यकन्या को न बेचकर, श्रीरामचन्द्र के नाम पर, भागवतम् की रचना कर, पांडित्य की अपेक्षा भावगांभीर्य को और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति को प्रधान माना है। 'भक्त्या भागवत ज्ञेयम्, न व्युत्पत्या न टीकया' वाली उक्ति को हृदयंगम कर, भक्तप्रवर पोतन्ना ने विनय के साथ, भागवतम् के मर्म को रसज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर धन्य किया।

प्रणव मत्र की तीन मात्राओं के समान ही तॅलुगु साहित्य के लिए रामायण, महाभारत और भागवत मूलाधार स्तंभ माने जा सकते है। इत:पूर्व रंगनाथ रामायण और मॉल्ल रामायण के देवनागरी लिप्यन्तरण-सहित हिन्दी अनुवाद सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जा चुके हैं। संप्रति भागवत-पुराण-फल का, रसिक भावविदों को रसास्वादन कराने का सुअवसर प्रदान कर, भुवन वाणी ट्रस्ट के मुख्यन्यासी श्रद्धेय पद्मश्री नंदकुमार अवस्थी जी ने हमारे लेखन-कार्य को सफल एवं सार्थक बनाया है। श्रद्धेय अवस्थी की अनुकंपा के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन करना साहस ही होगा।

पोतन्ना जैसे महत पंडित और महाकवि ने कहा था कि 'वेदव्यासकृत महाभागवतम् को समझकर [दुबारा] कहना ब्रह्मा और शंकर के लिए भी संभव नहीं है। जितना मैं समझ पाया हूँ, उसी को [पाठकों के समक्ष] प्रस्तुत कर रहा हूँ।' तब हम जैसे अल्पज्ञों की बात ही क्या? सुधी पाठकों से सविनय निवेदन है कि पोतन्नाकृत भागवतम् को हम जहाँ तक समझ पाए [कतिपय विद्वानों के सहयोग से], उसी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दोष हमारे और गुण पोतन्ना के।

विद्वज्जन विधेय,

भीमसेन 'निर्मल'

प्रकाशकीय प्रस्तावना

प्रस्तुत (अन्तिम) इस खण्ड पर वक्तव्य

तेलुगु का 'पोतन्न महाभागवतमु' का यह तृतीय खण्ड (स्कंध १०-१२) प्रकाशित होकर तीन वर्षों में महान ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। ऐसा विशालकाय और अलंकार एवं गहन तत्त्व से परिपूर्ण नागरी संस्करण इतनी जल्दी प्रकाश में आ रहा है, इसका प्रमुख श्रेय डॉ० भीमसेन निर्मल एवं उनके सहयोगी पाँच विद्वद्वरों को है। प्रथम खण्ड में जैसा कि मैंने लिखा है, वस्तुतः इतने बड़े काम पर सन्नद्ध साक्षात् षडानन के अमित श्रम और तत्परता से ही यह इतना बड़ा काम इतने अल्प समय में पूर्ण हुआ।

प्रथम खण्ड की प्रकाशकीय प्रस्तावना में देवनागरी अक्षयवट की भूमिका, नागरी लिपि के समान ही सभी भारतीय लिपियों की वैज्ञानिकता, फिर भी नागरी लिपि पर विशेष उत्तरदायित्व, नागरी लिपि में आवश्यकता के अनुसार दूसरी भाषाओं के स्वर-व्यञ्जनों का समावेश, नागरी लिपि से राष्ट्र एवं विश्व के सन्दर्भ में अपेक्षाएँ, तदर्थ आन्ध्र प्रदेश का योगदान आदि पर सम्यक् विचार प्रकट किया जा चुका है।

डॉ० भीमसेन निर्मल की अनुवादकीय प्रस्तावना में सभी विद्वान अनुवादकों का परिचय, अमात्यवर पोतन्न का जीवन-चरित्र, पोतन्न महाभागवतमु का कृति-सौंदर्य, तेलुगु लिपि और भाषा का राष्ट्र के लिए योगदान आदि विषयों पर विस्तार में प्रकाश डाला गया है। परिशिष्ट रूप में, तृतीय (अन्तिम) खण्ड की अनुवादकीय प्रस्तावना में भी पृष्ठ ९-१४ में डॉ० निर्मल ने बचा-खुचा सम्यक् ज्ञान, तेलुगु लिपि, भाषा, काव्य, छन्द, उच्चारण, सन्धि, स्थान-भेद से स्वर-व्यञ्जनों में परिवर्तन देते हुए पोतन्न और उनके महान् काव्य को अर्पित कर आन्ध्र की भक्ति और ज्ञान की अलौकिक छवि नागरी लिपि और राष्ट्रभाषा के माध्यम से समस्त राष्ट्र के सम्मुख मूर्तमान कर दी है।

डॉ० निर्मल तथा उनके अन्य पाँच सहयोगियों— (इस भाँति षडानन विद्वान इस अति गहन कार्य में सन्नद्ध हैं) ऐसा मैंने प्रथम खण्ड में निवेदन किया है। दक्षिण में गणेश और षडानन (कार्तिकेय) की अद्वितीय उपासना है। सर्वदेवों में, उनके प्रति श्रद्धा अनन्य है। अतः यह महत् कार्य भी उनकी छाया में इन विद्वानों की ही लगन और निष्ठा

उनके चित्र और पते भी उसी प्रकाशकीय में दिये गये है। उनमें वयोवृद्ध विद्वत्प्रवर श्री एस० वी० शिवराम शर्मा का पता अब बदल गया है। वह अब इस प्रकार है— श्री एस० वी० शिवराम शर्मा, ३०, एम० सी० मलाकापेट, हैदराबाद—५०००३६

संस्कृत-समन्वित तेलुगु की सामासिक समासबहुला भाषा के अनुवाद में, मूल पाठ का कही अनुकरण न छूट जाय, इस यत्न में अनुवाद में पाठकों को कही-कहीं जटिलता प्रतीत हो तो आश्चर्य नही। किन्तु मेरा विनम्र निवेदन है कि ध्यान से पठन और चिन्तन से वह गहनता पार हो जायगी।

भगवान व्यास का भागवत, ग्रन्थों में शिरमौर है। पोतन्न कृत प्रस्तुत भागवत को भी उतनी ही वरीयता प्राप्त है। सकल राष्ट्र में अब उसका उदय हो रहा है।

आभार-प्रदर्शन

सदाशय विद्वानों, श्रीमानों और उत्तर प्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति भी हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रंथों का प्रकाशन अहर्निश चल रहा है।

सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उसी के फलस्वरूप तेलुगु के लोकप्रख्यात संत-कवि अमात्यवर पोतन्न प्रणीत ग्रथरत्न "आन्ध्रमहाभागवतमु" के इस अंतिम (तृतीय) खण्ड (स्कन्ध १०-१२) का प्रकाशन भी सम्पूर्ण हुआ। हम सबके अनन्त आभारी है।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी पट, सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा।।
अमर भारती सलिल-मञ्जु की "तेलुगु" सुपावन धारा।
पहन नागरी पट, 'सुदेवि' ने भूतल-भ्रमण विचारा ।।

नन्दकुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

विषय-सूची

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध) 25-480।

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(१० से १२ स्कन्ध)

ॐ

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(दशम स्कन्धमु पूर्वभागमु)

अध्यायमु—१

परीक्षिन्महाराजु शुकयोगीन्द्रुनि नडिगेडु प्रश्न

क. श्रीकंठचाप खंडन!, पाकारिप्रमुख विनुतभंडन! विलसत्
काकुत्स्थवंश मंडन!, राकेंदुयशोविशाल! रामनृपाला! ॥ 1 ॥

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगुनम्मुनि श्रेष्ठुलकु, निखिल पुराणव्याख्यान-वैखरी समेतुंडैन सूतुंडिट्लनियें। अट्लु परीक्षिन्नरेंद्रुंडु शुकयोगिगनुंगॊनि ॥2॥

कं. तॆलिपितिवि सोमसूर्युल, कुलविस्तारंबु वारिकुलमु धरित्री-
शुल नडवळ्ळुनु विंटिमि, कल रूपमुलॆल्ल माकु गड्डु वॆरगुलुगन् ॥ 3 ॥

(दशम स्कन्ध—पूर्वभाग)

अध्याय—१

राजा परीक्षित का शुकयोगींद्र से किया गया प्रश्न

[कं.] हे श्रीशिव का धनुष खंडन करनेवाले! पाकारि (इंद्र) आदि [देवताओं] से प्रशंसित युद्धवीर! प्रसिद्ध काकुत्स्थवंश-भूषण! पूर्णचंद्र की [चाँदनी-सी व्याप्त] कीर्तिवाले! हे राजा राम! [तुम्हें नमस्कार है।] १ [व.] महान गुणों से गरिष्ठ [बने] उन मुनीश्वरों से, समस्त पुराणों के चतुर व्याख्याता सूत ने यों कथन किया: परीक्षित नरेंद्र ने उस प्रकार शुकयोगी को देखकर पूछा। २ [कं.] तुमसे हमने [अब तक] सूर्य और चंद्रकुलों के राजाओं का विस्तृत वर्णन, उन भूपालों के समस्त यथार्थ चरित (आचरण) आश्चर्यजनक रीति से श्रवण किया। ३

कं. शीलमु गल यदुकुलमुन, नेला पुट्टॆनु महात्मुडीशुडु विष्णुं-
डेलील मॆलगॆ नॆय्ये, वेळल नेमेमि चेसॆ विवरिंपु तगन् ॥ 4 ॥

कं. भवमुलकु मंदु, चित्त
श्रवणानंदमु, मुमुक्षुजन पदमु, हरि-
स्तवमु पशुघ्नुडु दक्कनु
जॆवुलकु दनिवय्यॆ ननंडि चॆनटिघु गलडे ! ॥ 5 ॥

कं. मा पॆद्दलु मुनु वेल्पुलु, नोपनि भीष्मादि कुरुकुलोत्तम सेना-
कूपारमु ने कोलमु, प्रापुन लंघिंचिरॊक्क बालपदमुगान् ॥ 6 ॥

कं मायम्मकुक्षि गुरुसुत, सायक पीडितुडनैन जडु नन्नुं गौं-
तेय कुरुकुलमु मॊदलुग, नायुत्तमुडात्तचक्रुडै रक्षिंचॆन् ॥ 7 ॥

आ. कलसि पुरुषमूर्ति कालरूपमुलनु
लोकजनुल वॆलिनि लोन नुंडि
जन्म मृत्युवुलनु संसारमुक्तुल-
निच्चु नतनि चरितमॆल्ल जॆपुम ॥ 8 ॥

[कं.] [अब हमे इसका] यथातथा विवरण सुनाओ कि महात्मा [और] ईश विष्णु ने यदुओं के शील-संपन्न कुटुंब में क्योंकर जन्म लिया? कैसी-कैसी लीलाएँ कीं? और कब-कब कौन-कौन से कार्य किये? ४ [कं.] [क्योंकि] हरि का स्तवन (स्तुति) [जन्म-मरण रूपी] संसार के लिए ओषधि है, मुमुक्षुओं (मोक्ष चाहनेवालो) के लिए शरण-स्थान है, उनके चित्त और कानो को आनंद देनेवाला है। पशुघ्न (क़साई) को छोड़कर कहीं ऐसा निकम्मा है जो यह कहे कि हरिस्तवन से हमारे कान अघाये है (तृप्त हुए हैं)। [नही है] ५ [कं.] हमारे बाप-दादाओं ने, पिछले दिनों, देवों के लिए भी अजेय भीष्म आदि वीरों से युक्त कौरव सेना-सागर को, जिस [महात्मा] को तरेदा के रूप में प्राप्त कर, [ऐसा] अनायास ही पार किया था मानो वह (समुद्र) कोई छिछला नाला हो [और], ६ [कं.] जब मैं अपनी माता के पेट में गुरुपुत्र [अश्वत्थामा] के अस्त्र से पीड़ित हो, जड़ बना पड़ा हुआ था, तब जिस उत्तम पुरुष [श्रीकृष्ण] ने चक्र धारण कर मेरी रक्षा की और [इस तरह] कौंतेय-वंश के साथ मूल कुरुकुल को बचाये रखा था— ७ [आ.] उस पुरुषमूर्ति [भगवान] के समग्र चरित्र का वर्णन कीजिए जो काल और रूप बनकर जगत् के प्राणियों के भीतर और बाहर रहते हुए, उन्हें जन्म, मृत्यु और संसार-विमुक्ति दिया करता है। ८ [सी.] हे योगीन्द्र! उस समय तुमने कहा था कि राम रोहिणी का पुत्र है, अलग शरीर न रखते हुए भी वह देवकी की कोख में

सी. ऊहिंचि रामुडु रोहिणिकॊडुकंचु नप्पुडु योगींद्र! चॆप्पितीवु
देवकि कडुपुनने वॆरवुन नातडुंडॆनु देहंबु नॊंडु लेक
तनतंड्रि यिलु वासि वनजाक्षुडेरीति मंदकु बोयॆने मंदिरमुन-
नुंडि यॆय्यदि सेयुचुंडॆनु दन मेनमाम कंसुनि नेल नाममणचॆ

आ. नॆन्नि यॆड्लु मनियॆ निलमीद मनुजुडै
यॆंदरैरि भार्यलॆट्लु मॆलगॆ
मरियु नेमि चेसॆ माधवु चारित्र-
मॆंत गलदु नाकु नेर्परिंपु ॥ 9 ॥

व. अनि मरियुनिट्लनियॆ ॥ 10 ॥

आ. नी मुखांबुजात निर्मुक्त हरिकथा-
मृतमु द्राव द्राव मेनु वॊदलॆ
वंत मानॆ नीरुवट्टु नाकलियुनु
दूरमय्यॆ मनमु लॊगलिच ॥ 11 ॥

व. अनि पलुकुचुन्न राजु माटलु विनि वैयासि यिट्लनियॆ ॥ 12 ॥

कं. विष्णुकथारतुडगु नरु
विष्णुकथल् चॆप्पु मनुचु विनुचुंडु नरुन्
विष्णुकथा संप्रश्नमु
विष्णुपदीजलमु भंगि विमलुल जेयुन् ॥ 13 ॥

किस प्रकार रहा? [मुझे समझाकर कहो।] अपने पिता का घर छोड़ वनजाक्ष (कमलनेत्र) हरि किस कारण व्रज गाँव पहुँचा? कौन से मंदिर (गृह) में रहकर कौन-सा [कार्य] करता रहा? और अपने मामा कंस का नाम क्यों मिटा दिया? [आ.] मनुष्य बनकर पृथ्वी पर कितने वर्ष जीवित रहा? पत्नियाँ कितनी रहीं? [उस] माधव ने क्या किया और उसका व्यवहार कैसा रहा? [उसका] सारा चरित्र मुझे समझाकर कहो। ९ [व.] ऐसा कहकर फिर बोला: १० [कं.] तुम्हारे मुख-कमल से निर्मुक्त (निकला) हरिकथा रूपी अमृत [रस] पी-पीकर [मेरा यह] शरीर पुष्ट हुआ, संताप छूटा, भूख और प्यास दूर हुई और मन [आनंद से] विकसित हुआ। ११ [व.] ऐसा कहनेवाले राजा के वचन सुनकर वैयासी (व्यास-पुत्र = शुक) ने यों कहा: १२ [कं.] विष्णु-कथा के चिंतन में मग्न रहनेवाले नर को, तथा पूछ-पूछकर विष्णुकथा-श्रवण करनेवाले नर को [दोनों को] यह हरि-कथा विष्णु-पदी-जल (गंगा-जल) के समान निर्मल बना देनेवाली है। १३ [सी.] हे राजेंद्र! सुनो। पुराने ज़माने में हजारों राक्षस नेता अपना राजपाट फैलाकर, सारी पृथ्वी पर क़ब्ज़ा कर

सी. राजेंद्र ! विनु तोल्लि राजलांछनमुल वेल संख्यल दैत्यविभुलु तन्नु
नाक्रमिंचिन भारमाग जालक भूमि गोरूपयं ब्रह्म जेर बोयि
कन्नीरु मुन्नीरुगा रोदनमु सेय गरुणतो भाविंचि कमलभवुडु
धरणि नूरड वलिक धात्रेयु वेल्पुलु गदलिरा विष्णुनि गान नेगि

ते. पुरुषसूक्तंबु जदिवि यद्भुतसमाधि
नुंड नोक माट विनि वारिजोद्भवुंडु
विनुडु वेल्पुलु धरयु नेविन्नयट्टि
पलुकु विवरिंतु नंनि प्रीति वलिकें दोलिय ॥ 14 ॥

कं. यादवकुलमुन नमरुलु, मेदिनि पै बुट्ट जनुडु मी यंशमुलन्
श्रीदयितुडु वसुदेवुन, कादरमुन बुट्टि भारमंतयु बापुन् ॥ 15 ॥

कं. हरिपूजार्थमु बुट्टुडु, सुरकन्यलु भूमियंदु सुंदरतनुलै
हरिकग्रजुडै शेषुडु, हरिकळतो बुट्टु वत्प्रियारंभुंडै ॥ 16 ॥

आ. ई प्रपंचमेल्ल ने मायचे मोहि-
तात्म मगुचुनुंडु नट्टि माय
कमलनाभु नाज्ञ गार्यार्थमै निजां-
शंबुतोड बुट्टु जगतियंदु ॥ 17 ॥

व. अनि यिट्लु वेल्पुल निय्यकोलिपि, पुडमिमुद्दिय नोडंबरिचि, तम्मिचूलि

बैठे। उनका भार सहने मे अशक्त होकर भूमि गौ का रूप धारणकर ब्रह्मा [देव] के पास पहुँची और आंसू बहा रोदन करने लगी। तब कमलभव (ब्रह्मा) ने करुणा-भाव से उसे सान्त्वना दी। फिर वे, देवगण और धरणी (भूमि) को साथ ले विष्णु को देखने गये। [ते.] पुरुषसूक्त पढ़कर, जब समाधिस्थ हुए तब वारिजोद्भव (ब्रह्मा) ने एक शब्द सुना और प्रेमपूर्वक कहा— हे देवगण और धरणी ! [तुम लोग] सुनो, मैंने जो बात सुनी तुमसे प्रीति से कह रहा हूँ : १४ [क.] तुम-देवतालोग-भूलोक पहुँचो और अपने-अपने अंशो के अनुसार यादवकुल में जन्म लो। [फिर] श्री दयित (लक्ष्मीपति— विष्णु) आदरपूर्वक वसुदेव के [पुत्र के रूप में] पैदा होंगे और सारा भूभार छुड़ायेंगे। १५ [क.] हरि की पूजा के निमित्त देवकन्याएँ सुंदर शरीरों के साथ भूमि पर जन्म लेंगी और शेष [नाग] हरि का तेज लेकर विष्णु के बड़े भाई के रूप में पैदा होंगे और अभीष्ट (उद्दिष्ट) कार्य करने लग जायेंगे। १६ [आ.] सारा संसार जिससे विमोहित होता रहता है, वह माया कमलनाभ (विष्णु) की आज्ञा मान, कार्यसाधन के लिए अपना अंश लेकर जगत में जन्म लेगी। १७ [व.] ऐसा कह, देवताओ का समाधान करके [साथ ही] भू-सुंदरी को

तन मौदलि नॆलवुनकुं जनियॆ। अंत यदुविभुंडैन शूरसेनुंडनुवाडु मथुरा पुरंबु ,तनकु राजधानिगा माथुरंबुलु, शूरसेनंबु लनियॆडु देशंबु लेलॆ। पूर्वकालंबुन ॥ 18 ॥

कं. ए मथुरयंबु. प्रियमुन, श्रीमन्नारायणुंडु चॆलगुनु नित्यं-
बा मथुर सकल यादव, भूमीशुलकॆल्ल मौदलिपुरि यय्यॆ नृपा ! ॥ 19 ॥

सी. आ शूरसेनुन कात्मजुंडगु वसुदेवुडा पुरि नौक्क दिनमुनंदु
देवकि बॆंड्लियै देवकियुनु दानु गडु वेड्क रथमॆक्कि कदलुवेळ
नुग्रसेनुनि पुत्रुडुल्लासि कंसुंडु चॆल्लॆलु मऱदियु नुल्लसिल्ल
हरुल पग्गमुलु चे नंदि रौप्प दौणंगॆ मुंदर भेरुलु मुरजमुलुनु

आ. शंख पटहमुलुनु जडिगौनि म्रोयंग
गूतुतोडि वेड्क कौनलुसाग
देवकुंडु सुतकु दैवकी देविकि
नरणमी दलंचि यादरिंचि ॥ 20 ॥

व. सार्थंबुलयिन रथंबुल वेयु नॆनमन्नूटिनि, कनकदाम समुत्तुंगंबुलैन मातंगंबुल नन्नूटिनि, बदिवेल तुरंगंबुलनु, विलासवतुलैन दासीजनंबुल निन्नूटि निच्चि, यनिचिनं गदलि, वर वधू युगळंबु तॆरुवुनं जनु समयंबुन ॥ 21 ॥

समझाकर, कमलसंभव (ब्रह्मा) अपना स्वस्थान पहुँचे। अनंतर, शूरसेन नामक यदु [कुल के] राजा ने मथुरापुर को राजधानी बनाकर माथुर और शूरसेन कहलानेवाले देशों पर शासन किया। प्राचीन काल में : १८ [कं.] हे राजा ! जिस मथुरा में श्रीमन्नारायण प्रीति के साथ नित्यनिवास करते रहे, वह मथुरा समस्त यादव राजाओं के लिए प्रधान नगर बन गया है। १९ [आ.] उस नगर में एक दिन शूरसेन के पुत्र वसुदेव देवकी को ब्याह कर, वधू समेत रथारूढ़ हो उत्साह से जब अपने महल में जाने लगा तब उग्रसेन का पुत्र कंस प्रसन्नचित्त हो अपनी बहिन और बहनोई को उल्लसित करने के लिए, घोड़ों के लगाम अपने हाथ में लेकर [रथ] हाँकने लगा। [रथ के] सामने भेरी, मुरज, शंख और पटह [आदि बाजे] ज़ोर-ज़ोर से बजने लगे। [पिता] देवक के हृदय में पुत्री पर का स्नेह उभर उठा। [उसने] देवकी देवी को आदर के साथ दहेज देना चाहा। २० [व.] नाना वस्तु सामग्री से भरे एक हज़ार आठ सौ रथ, सोने की साँकलों से सजे उत्तुंग (ऊँचे) मातंग (हाथी) चार सौ, दस हज़ार तुरंग (घोड़े) और दो सौ विलासिनी दासीजन देकर देवक ने जब बिदा किया और वर-वधू-युगल प्रस्थान कर चलने लगे तो रास्ते में : २१ [कं.] (घोड़ों की) लगाम ढीली छोड़ कंस जब तेज़ी के साथ

कं. पग्गमुलु वदलि वेगिर-
नग्गलमुग रथमु गडपु ना कंसुंडु लो-
बॆग्गिलि यॆग्गनि तलपग
दिग्गन नशरीरवाणि दिवि निट्लनियॆन् ॥ 22 ॥

क. तुष्टयगु भगिनि मच्चग
निष्टुडवै रथमु गडपॆदॆडगवु मीदन्
शिष्टयगु नी तलोदरि
यष्टम गर्भंबु निन्नु हरियिंचु जुमी ॥ 23 ॥

व. अनि यिट्लाकाशवाणि वलिकिन नुलिक्किपडि, भोजकुल नापकुंडैन कंसुंडु संचलदंसुंडै, यडिदंबु वॆडिदंबुग वॆरिकि, झळिपिंचि, दॆप्परंबुगननुज कॊप्पु वट्टि, कप्परपाटुन नॊप्पडं दिगिचि, यॊडिसि पट्टि, तोवुट्टुवनि तलंपक, तॆंपु चेसि तॆगनेय गमकिंचु समयंबुन वसुदेवुंडु डग्गरि ॥ 24 ॥

कं. आ पापचित्तु मत्तुं, गोपाग्नि शिखानुवृत्तु गॊनकॊनि तन स-
ल्लापामृत धारा वि,-क्षेपणमुन गॊत शांतु जेयुचु वलिकॆन् ॥ 25 ॥

उ. अन्नवु नीवु चॆल्लॆलिकि नक्कट ! माडलु चीरॆलिच्चुटो
मन्नन सेयुटो मधुर मंजुल भाषल नादरिंचुटो

रथ दौड़ा रहा था तो एकाएक ऐसी अशरीरवाणी (आकाशवाणी) हुई कि वह (कंस) मन ही मन दहल उठा; उसे लगा कि बुरा हुआ चाहता है। [आकाशवाणी ने यों कहा :] २२ [कं.] तुम्हारी वहिन [तुमसे] संतुष्ट हुई, और तुम्हें वहुत मानती भी है। उसका रथ हाँकना तुम्हें इष्ट हुआ। पर, आगे [होनेवाली बात] तुम नही जानते। तुम्हारी इस शिष्ट (सुशील) तलोदरी (पतली कमरवाली युवती) का आठवाँ गर्भ तुम्हें [अवश्य] हर लेगा (मार डालेगा)। २३ [व] जब ऐसी आकाशवाणी हुई तो भोजकुल-नाशक वह कस सहसा चौंक पड़ा; भुजाएँ फड़क उठीं; झट से तलवार खींच [उसे] चमकाने लगा; तिरस्कारपूर्वक [उसने] अनुजा की झोंटी पकड़ झकझोर कर, नीचे खींच लिया। वहिन होने का भी विचार न कर, दुस्साहस के साथ [उसका सिर] काट डालने पर उतारू हुआ, तब वसुदेव निकट आकर, २४ [कं.] उस पापचित्तवाले, मदमस्त कंस को, जो क्रोध से अग्नि-शिखा की तरह वल रहा था, अपने [सरस] सल्लाप (वचन) [रूपी] अमृत-धारा से सींचकर, शांत करने का यत्न करते हुए वोला : २५ [उ.] आह ! तुम भाई हो, और यह तुम्हारी वहिन है। सुवर्ण-मुद्रा [तथा] वस्त्राभूषण देकर उसका सम्मान करना, अथवा मधुर, मंजुल (कोमल) भाषणों (वचनों) से प्रसन्न रखना [तुम्हें उचित रहता]। भाई ! आकाशवाणी को सत्य और मान्य समझकर इसे मत मारो।

मिन्नुल म्रोतले निजमु मेलनि चंपकु मन्न ! मानि रा-
वन्न ! सहिंपुमन्न ! तगदन्न ! वधिपकुमन्न ! वेडेदन् ॥ 26 ॥

व. आदियुनुं गाक ॥ 27 ॥

म. चॅलियल् कन्निय मुद्दरालबल नी सेमंबॅ चिंतिचु नि-
र्मल दीनिन् बयलाडु माटलकुनॅ मर्यादवो गॉट्टिट स-
त्कुल जातुंडवु पुण्यमूर्ति वकटा ! कोपंबु पापंबु नॅ-
चॅलि नोहो तॅग व्रेय बाडि यगुने चिंतिचु भोजेश्वरा ! ॥ 28 ॥

सी. मेनि तोडनॅ पुट्टु मृत्युवु जनुलकु नॅल्लि नेडैन नूरेंड्लकैन
वॅल्लंबु मृत्युवु देहंबु पंचतनंद गर्मानुगुंडै शरीरि
मारुदेहमु नूदि मरि तॉटि देहंबु वायुनु दन पूर्वभागमॅत्ति
वेरॉटिपै बॅट्टि वॅनुक भागंबॅत्ति गमनिचु तृणजलूकयुनु बोलॅ

आ. वॅट वच्चु कर्मविसरंबु मुनुमेलु, -कन्न वेळ नरुडु गन्न विन्न
तलपबडिन कार्यतंत्रंबु कललोन, बाडि तोड गानबडिनयट्लु ॥ 29 ॥

[यह विचार] छोड़ दो भाई ! धैर्य धरो भाई ! [यह काम] तुम्हारे लिए योग्य नहीं है भाई ! मेरी प्रार्थना सुनो; इसका वध मत करो भाई ! २६ [व.] इसके अतिरिक्त : २७ [म.] [तुम्हारी] यह छोटी बहिन [अभी] कन्या है, मुग्धा और अबला है; तुम्हारी कुशल ही मनाने में निर्मला है। तुम सत्कुल मे जन्मे हो, पुण्यमूर्ति (पुण्यात्मा) हो। ओह ! [तुम्हारा]कोप करना पाप है। आकाश-वार्ता(-वाणी)पर[ऐसी]सखी का वध करना क्या नीति-संगत होगा ? हे भोजेश्वर (भोजराज) ! ज़रा सोचो तो ! २८ [सी.] मनुष्यों के लिए मृत्यु उनके साथ ही उत्पन्न हो पीछे लगी रहती है; आज नहीं तो कल, अथवा सौ साल के बाद भी मौत का होना निश्चित है। देह जब पंचत्व को प्राप्त होने को होती है (भूमि, आकाश आदि पंचभूतों में मिल जाती है), तब शरीरी (जीव) अपने कर्म के अनुसार चलकर, दूसरी देह में प्रवेश करता है और पहले [शरीर] को छोड़ देता है। [जीव की यह गति] उस तृण-जलूका (घास पर रेंगनेवाला एक कीड़े) की गति के समान है, जो अपने शरीर का अग्रभाग ऊपर उठा कर, सामने की चीज पर रखता है, फिर पृष्ठभाग उठाकर नजदीक कर लेता है। [आ.] जागते समय मनुष्य जो-जो कार्यव्यापार (काम-काज) देखता, सुनता और सोचता है, वे ही उसे स्वप्न में एक-एक करके दिखाई देते हैं; इसी प्रकार मनुष्य का कर्मपुंज उसके साथ ही जुड़ा रहता है। २९ [कं.] अपने पूर्व-कर्मों की राशि (ढेर) का अनुसरण करते हुए, मनुष्य का मन अनेक विकार प्राप्त करता है और तेज़ दौड़नेवाली इंद्रियों

कं. तन तोंटि कर्मराशिकि
ननुचरमै बहुविकारमै मनमु वडि
जनु निंद्रियमुल तेरुवुल
दनुवुलु पेक्कयिन जेडवु तन कर्मंबुल् ॥ 30 ॥

आ. जल घटादुलंदु जंद्र सूर्यादुलु, गान वडुचु गालि गदलु भंगि
नात्म कर्मनिर्मितांगंबुलनु ब्राणि, गदलुचुंडु राग कलितुडगुचु ॥ 31 ॥

कं. कर्ममुलु मेलु निच्चुनु, गर्मंबुलु कीडु निच्चु फर्तलु दनकुन्
गर्ममुलु ब्रह्मकैननु, गर्मगुडै परुल दडवगानेमिटिकिन् ॥ 32 ॥

कं. कावुन परुलकु हिंसलु, गाविपग वलदु तनकु गल्याणमुगा
भाविंचि परुल नोंचिन, बोवुनै तत्फलमु पिदप बोंदकयुन्ने ॥ 33 ॥

मत्त. वावि जेल्लेलु गानि कूतुरुवंटिदुत्तमुरालु सं-
भावनीयचरित्र भीरुवु बाल नूत्नविवाह सु-
श्रीविलासिनि दीन कंपितचित्त नी किंदे म्रोक्केदन्
गाववे करुणामयात्मक ! कंस ! मानववल्लभा ! ॥ 34 ॥

व. अनि मरियु, साम भेदंबुलगु पलुकुलु पलिकिन, विनियु, वाडु, वेडिचवुल

का रास्ता पकड़कर चलने लगता है; चाहे कितने ही शरीर धारण करे, पर मनुष्य का अपना कर्म विगड़ता नही है। (नष्ट नही होता।) ३० [आ.] जलघट (पानी के घड़े) आदि में [प्रतिबिंबित] सूर्य और चंद्र, हवा के कारण हिलते-से दिखाई देते है, वैसे ही प्राणी अपने ही कर्म से निर्मित अगों मे (शरीरों में) अनुराग के साथ सचार करता रहता है। ३१ [कं.] कर्म ही [हमे] शुभ (लाभ) पहुँचाते हैं; अशुभ (हानि) भी करनेवाले कर्म ही है। ब्रह्मा का भी भला-बुरा करनेवाला कर्ता उनका कर्म ही है। [ऐसी स्थिति में] कर्मगति से चलनेवाला मनुष्य दूसरों को क्यों कहे? (दूसरों को कर्ता क्यों समझे?) ३२ [कं.] अतः परहिंसा नही करनी चाहिए; अपना भला सोचकर दूसरों को दु:ख देने पर [मनुष्य] उसका फल बाद को पाये बिना नहीं रहता। ३३ [मत्त.] हे मानववल्लभ (नरेश)! रिश्ते में यह तुम्हारी बहिन है, किंतु पुत्री के समान है। उत्तम [स्त्री] है, संभावनीय (सम्माननीय) चरित्र वाली है। [यह] भीरु (डरपोक) है, बाला है, नवविवाहिता सुहागिन है, दीन-दुखी है, इसका चित्त [भय से] काँप रहा है; हे करुणा-भरे-हृदय वाले! कंस! मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, [इसकी] रक्षा करो। ३४ [व.] इस प्रकार [वसुदेव के] सामोपाय से युक्त वचन कहने पर, उन्हें सुनकर भी, वह (कंस) आँखों से क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ उगलने लगा और अनुकंपा (दया) छोड़, ज़िद

रालु निण्पुलु कुप्पलुगॉन, ननुकंप लेक, तॅपु सेसि, चंपकगंधि जंपजूचुट नॅरिगि, मॉरगॅडि तॅरंगु विचारिंचि, तनलो निट्लनियॆ ॥ 35 ॥

कं. अॅदुनु गालमु निजमनि, पंदतनंबुनतु बुद्धि बायक घनुलै
यॅंदाक बुद्धि नॅगडॅडि, नंदाक जरिपवलयु नात्मबलमुनन् ॥ 36 ॥

व. अनि निश्चयिंचि ॥ 37 ॥

सी. आपन्नुरालैन यंगन रक्षिंचि सुतुल निच्चॅद नंट शुभमु नेडु
मीदॅव्वडॅरुगुनु मॅलत प्राणंबुतोड निलिचिन मरुनाडु नेररादॆ?
सुतुलु पुट्टिरयेनि सुतुलकु मृत्युवु वालायमै वॅंट वच्चॅनेनि
ब्रह्मचेतनु वीडु पाटेमियुनु लेक युंडुने? सदुपायमॊकटि लेदॆ?

ते. पॊंत नाकुल गाल्पक पोयि वह्नि
यॅगसि दव्वुलवानि दहिंचु भंगि
गर्मवशमुन भव मृति कारणंबु
दूरगति बॊंदुनिदि येल तॊट्रुपडग ॥ 38 ॥

कं. कॊडुकुल निच्चॅदननि सति
विडिपिंचुट नीति वीडु विडिचिन मीदन्

पकड़कर, उस चपकगंधी (चंपा-सी महकनेवाली) [देवकी] को मार डालने पर उद्यत हुआ। यह देख [वसुदेव ने] बचाव का ढंग सोचकर अपने आप (मन में) कहा: ३५ [कं.] किसी भी विषय मे काल (अंत्यकाल) [का आना] सत्य है (निश्चित है), इसे जानकर मनुष्य को कायरता छोड़, बुद्धिबल तथा आत्मबल के सहारे, जब तक विवेक साथ दे, तब तक [बचाव का] यत्न करते जाना चाहिए। ३६ [व.] इस प्रकार का निश्चय करके [उन्होंने सोचा]— ३७ [सी.] इस आपन्न (संकट में पड़ी) अंगना (स्त्री) की रक्षा के निमित्त यह कह देना इस समय मंगलकारी होगा कि मैं इसके होनेवाले पुत्रों को तुम्हें सौप दूंगा। भविष्य [क्या होगा] कौन जाने? स्त्री यदि सजीव बच गई तो कल की बात देखी जा सकेगी। यदि मेरे पुत्र हुए और यदि साथ ही उनका मरना अनिवार्य हुआ तो क्या यह (कंस) ब्रह्मा के हाथ चोट खाये बिना [निरापद] बचा रह सकेगा? इसके लिए कोई उपाय न होगा क्या? [ते.] जिस प्रकार [जगल की] आग [कभी-कभी] नजदीक के वृक्षों को न जलाकर, ऊपर उड़कर, दूर पर के पेड़ों को जला डालती है, उसी प्रकार जन्म और मृत्यु की कारण-परंपरा कर्मवश दूर की गति भी पा जाती है। इससे घबड़ाना क्यों? ३८ [कं.] यह कहकर कि पुत्रों को [तुम्हारे] हवाले कर दूंगा, पत्नी को छुड़ा लेना [इस समय] व्यावाहारिक

कॊडुकुलु पुट्टिन गार्यमु
दडबडदे ? नाटि कॊक्क दॆवमु लेदे ? ॥ 39 ॥

कं. ऒनिमिदव चूलु वोनिन्
दुनुमाडॆडिननुचु मिट दोरपु वलुकुल्
विनवडियॆ नेल तप्पुनु ?
वनितनु विडिपिचुटॊप्पु वॆळवनुचुन् ॥ 40 ॥

क. तिन्ननि पलुकुलु वलुकुचु
ग्रन्नन दग बूजचेसि कंसु नृशंसुन्
मन्निंचि चित्तमॆरिय न्न-
सन्नाननुडगुचु वलिकॆ शौरि नयमुनन् ॥ 41 ॥

कं. ललनकु बुट्टिन कॊमरुनि
वलनं दॆगॊननुचु गगनवाणि वलिकॆ नं-
चलिगॆदवेनि मृगाक्षिकि
गल कॊडुकुल जंपनित्तु ग्रममुन नीकुन् ॥ 42 ॥

व अनि यिट्लु पलिकिन विनि, कंसुंडु कंपितावतंसुंडॆ, संतसिचि, गुणग्राहित्वंबु गैकॊनि, कॊदलमंदु चॆलियलि मुंदल विडिचि चनियॆ। वसुदेवुंडुनु, व्रतुकुमंदल गंटि ननुचु, सुंदरियुं, दानुनु मंदिरंबुनकुं बोयि, डॆंदंबुन नानंदंबु नॊदियुंडॆ। अंत गॊतकालंबु चनिन समयंबुन ॥ 43 ॥

नीति है। [कंस के] छोड़ देने के बाद [देवकी के] यदि पुत्र हुए तो क्या [उस समय] काम में फ़ेरफार न पड़ेगा ? उस दिन के लिए भगवान [सहायक] नही होंगे ? ३९ [कं.] आकाश की यह गंभीर ध्वनि जो सुनाई दी कि [देवकी की] आठवी संतान इस [कंस] का अंत करनेवाली है, क्या व्यर्थ जायगी ? [अतः] जल्दी से स्त्री को छुडा लेना ही इस समय संगत होगा। ४० [कं.] ऐसे अनुकूल वचनों से [वसुदेव ने] उस नृशंस (क्रूर) कंस के प्रति पूजा और सम्मान का भाव दिखाया; उनका चित्त क्षोभ से दहक रहा था, [फिर भी] मुँह पर प्रसन्नता लाते हुए शौरि (वसुदेव) उससे नय (नीति) पूर्वक यों बोला : ४१ [कं.] गगनवाणी ने जो यह सुनाया कि इस ललना के पुत्र के हाथ तुम्हारी मौत होगी, इससे तुम क्रोधित हुए हो, पर इस मृगाक्षी के जितने पुत्र होंगे, एक-एक करके मैं तुम्हें सौंप दूंगा, और तुम्हे उन्हें मारने दूंगा। ४२ [व.] ऐसा कहने पर सुन कंस ने प्रसन्न हो सिर हिलाया, उसने गुणग्राही बनकर क्षोभ सहती हुई बहिन का सिर छोड़ दिया। इस प्रकार प्राण-रक्षा का उपाय पाकर वसुदेव अपनी सुंदरी (वधू) के साथ महल को चला गया। उन दोनों का हृदय आनंद से भर गया। कुछ दिन बीतने पर : ४३ [कं.] कंस

कं. विडुवक कंसुनि यॆग्गुल
बडि देवकि निखिल देवभावमु तन के-
पॆंड नेट नॊकनि लॆक्कनु
गॊडुकुल नॆनमंड्र नॊक्क कूतुं गनियॆन् ॥ 44 ॥

व. अंदु ॥ 45 ॥

गी. सुदति मुन्नु गन्न सुतु गीर्तिमंतुनि
बुट्टु तडव गंस भूवरुनकु
बॆच्चि यिच्चॆं जाल धृति गलिग वसुदेवु-
डास पडक सत्यमंदु निलिचि ॥ 46 ॥

कं. पलिकिन पलुकुलु तिरुगक
सॊलयक वंचनमु लेक सुतुल रिपुनकुन्
गलगक यिच्चिन धीरुं-
डिल वसुदेवुंडु दक्क नितरुडु गलडे ! ॥ 47 ॥

आ. मानवेंद्र ! सत्यमतिकि दुष्करमॆय्य-
दॆरुग नेर्चु वानि किष्टमॆय्य-
दीशभक्तिरतुन कीरानि दॆय्यदि
यॆरुक लेनिवानि केदि कीडु ? ॥ 48 ॥

व. इट्लु सत्यंबु दप्पक कॊडुकु नॊप्पिचिन वसुदेवुनि पलुकु निलुकडकु मॆच्चि, कंसुं डिट्लनियॆ ॥ 49 ॥

की क्रूरताओं के साथ-साथ देवकी में समस्त देवताओं का दैवत्व बढ़ने लगा। फलतः उसने वर्ष में एक-एक करके आठ पुत्रों को और एक पुत्री को जन्म दिया। ४४ [व.] उनमें। ४५ [गी.] कीर्तिमान नामक पुत्र सब में ज्येष्ठ था, जिसे पैदा होते ही वसुदेव ने ममता छोड़, हिम्मत बाँधकर सत्य [वचन की रक्षा] में स्थिर रहकर कंस के पास ले जाकर सौंप दिया। ४६ [कं.] दिया हुआ वचन तोड़े बिना, छल-कपट छोड़कर, क्षोभ-रहित हो अपने [प्रिय] पुत्र को शत्रु के हाथ धर देनेवाला धीर पुरुष इस जग में वसुदेव को छोड़ दूसरा कोई है ? (नहीं है।) ४७ [आ.] हे मानवेंद्र (नरेश) ! सत्य-बुद्धिवाले के लिए [कौन सा कार्य] दुष्कर है ? ज्ञानी (विद्वान्) के लिए अभीष्ट (अपेक्षित) वस्तु क्या है ? ईश्वर-भक्त के लिए अदेय [पदार्थ] क्या है ? बुद्धिहीन के लिए कौन सा काम अकार्य है ? ४८ [व.] इस प्रकार सत्य से न टलकर, अपने पुत्र को सौंप देनेवाले वसुदेव के वचन-पालन की सराहना करते हुए कंस ने यों कहा : ४९ [आ.] हे वसुदेव ! तुम [अपने] पुत्र को वापस ले जाओ; इसका मुझे

आ. कॊडुकु नीवु मरल गॊनिपॊम्मु वसुदेव !
वॆरपु लेदु नाकु वीनिवलन
नलग वीनिकि भवदष्टम पुत्रुंडु
मृत्युवट वधितु मोद नतनि ॥ 50 ॥

व. अनिन नानकदुंदुभि नंदनुं गॊनि चनियु, नानंदंबु नॊंदक, दुष्टभावुंडगु वाव पलुकुलु विनियु, नुलुकुचुंडॆ। अंत ॥ 51 ॥

सी. ऒकनाडु नारदुंडॊय्यन कंसुनि यिंटिकि जनुदॆंचि येकतमुन
मंदलोपलनुन्न नंदादुलुनु वारि भार्यलु पुत्रुलु बांधवुलुनु
देवकि मॊदलगु तॆरवलु वसुदेवुडादिगा गल सर्व यादवुलुनु
सुरलुगानि निजंबु नरुलु गारनि चॆप्पि कंसुंड ! नीवु रक्कसुडवनियु

आ. देवमयुडु चक्रि देवकी देविकि
पुत्रुडै जनिंच भूतलंबु
चॆरुप बुट्टिनट्टि चॆनटि दैत्युलनॆल्ल
जंपु ननुचु जॆप्पि चनियॆ दिविकि ॥ 52 ॥

कं. नारदु माटलु विनि पॆ-
ल्लाराटमु बॊंदि यदुवुलनिमिषुलनियुन्
नारायणकरखड्ग वि-
दारितुडगु कालनेमि दाननियु मदिन् ॥ 53 ॥

कोई भय नही है। इस पर मुझे क्रोध भी नहीं है। तुम्हारा आठवां पुत्र मेरे लिए मृत्यु [-कारक] बनेगा, अतः उसका वध मैं यथासमय करूंगा। ५० [व.] इस पर आनकदुदुभि (वसुदेव) अपने पुत्र को लेकर चला गया और आनदित न होकर, दुष्ट कस की बातें सुनकर भयभीत होता रहा। तब : ५१ [सी.] एक दिन नारद मुनि ने एकाएक कंस के यहाँ पहुँचकर, एकांत में उसे यों समझाया— नद आदि व्रजवासी लोग, उनके पुत्र-कलत्र (-स्त्री), भाई-बन्धु, और देवकी-वसुदेव-समेत समस्त यादव मानवमात्र नही है, किन्तु वास्तव मे देवता लोग हैं। हे कंस ! तुम राक्षस हो; [आ.] चक्रि (विष्णु भगवान) देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लेने जा रहे हैं जो सभी दुष्ट दैत्यों का वध करेंगे जो भूलोक को त्रस्त करने को उत्पन्न हुए हैं। इतना कहकर नारद मुनि स्वर्गलोक [वापस] चले गये। ५२ [कं.] नारद के वचन सुनकर, कंस बहुत उद्विग्न हुआ, उसने मन में जान लिया कि यदुवंशी लोग अनिमिष (देवता) हैं और वह स्वयं नारायण (विष्णु) के हाथ के खड्ग से कटा हुआ कालनेमि है। ५३ [म.] क्षोभ से भरकर, भयंकर क्रोध के वशीभूत हो [उसने

म. कलगंबारि मरंदि जंल्लेलि नुदग्रक्रोधुडै पट्टि ब-
द्धुल गाविंचि हरि दलंचि वैर दोड्तो वारु गन्नट्टि पु-
त्रुल जंपेन् गुरु नुग्रसेनु यदुदद्भोजांधकाधीशु नि-
र्मलु बट्टेन् गडु वालि येलें जलमारन् शूरसेनंबुलन् ॥ 54 ॥

आ. तल्लि दंड्रिनैन दम्मुल नन्नल, सखुलनैन बंधुजनुलनैन
राज्यकांक्ष जेसि राजुलु चंपुदु, रवनि दरचु जीवितार्थु लगुचु ॥ 55 ॥

अध्यायमु—२

व. मरियु, बाण भौम मागध महाशन केशि धनुक बक प्रलंब तृणावर्त चाणूर मुष्टिकारिष्ट द्विवद पूतनादि सहायसमेतुंडै, कंसुंडु कदनंबैन मदंबु लणंचिन, वदनंबुलु वंचिकोंनि, सदनंबुलु विडिचि, यनदलै यदुवुलु पदुवुलु वदलि, निषध कुरु कोसल विदेह विदर्भ केकय पांचाल साल्व देशंबुलु सोच्चिरि। मच्चरंबुलु विडिचि कोंदरु कंसुनि गोलिचि निलिचिरि। अंत ॥ 56 ॥

कं. तोंडि दोंडि गंसुडु देवकि, कोंडुकुल नार्वुर वधिप गुरु शेषाख्यं-
बोंडवगु हरिरुचि या सति, कडुपुन नेडवदियैन गर्भंबय्येन् ॥ 57 ॥

अपनी] बहिन (देवकी) और बहनोई (वसुदेव) को पकड़कर बंदी बनाया; हरि (विष्णु) का भय मानते हुए उन (देवकी-वसुदेव) के जने सब पुत्रों को साथ-साथ मार डालता गया। [इतना ही नहीं] गुरु [तथा] यदु, भोज और अंधकों के अधिपति, निर्मल [चित्तवाले], अपने पिता उग्रसेन को भी बंधन में डालकर शूरसेन राज्य पर अपना द्वेषपूर्ण शासन चलाने लगा। ५४ [आ.] राजा लोग राज्य की और जीने की कांक्षा (अभिलाषा) करते हुए, अपने माता-पिता, भाई-बंधु और सखी-सखाओं को भी अकसर मार डालते रहते हैं। ५५

अध्याय—२

[व.] और बाण, भौम, मागध, महाशन, केशि, धनुक, बक, प्रलंब, तृणावर्त, चाणूर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना आदि साथियों की सहायता से कंस ने युद्ध में यादवों का मद चूर्ण किया। [हारकर] वदन झुकाकर, सदन छोड़कर, असहाय वन, निषध, कुरु, कोसल, विदेह, विदर्भ, केकय, पांचाल, साल्व आदि देशों में जाकर शरण ली। कुछ लोग वैर-विरोध छोड़ कंस की सेवा करते हुए वहीं रह गये। तब : ५६ [कं.] जब कंस ने लगातार देवकी के छेः पुत्रों का वध कर डाला तब हरि

व. अय्यवसरंबुनं विश्वरूपुंडगु हरि, तन्नु नम्मिन यदुवुलकु गंसुनिवलन
भयंबु गलुगुननि यॅरिंगि, योगमाया देविकिट्लनियॅ ।। 58 ।।

सी. गोपिकाजनमुलु गोपालकुलुनुन्न पशुलमंदकु बॉम्मु भद्र ! नीवु
वसुदेवु भार्यलु वरुस गंसुनिचेत नाकल बडियुंड नंदु जॉरक
तलगि रोहिणियनु तरळाक्षि नंद गोकुलमंदुनुन्नदि गुणगणाढ्य
देवकि कडुपुन दीपिंचु शेषाख्यमैन ना तेजमी वमर वुच्चि

आ. नेर्पु मॅरसि रोहिणी देवि कडुपुन
जॉनुपु देवकिकिनि सुतुडनगुदु-
नंश भागयुतुडनै यशोदकु नंदु
पॉलतिकंतमोद बुट्टॅदीवु ।। 59 ।।

कं. नानाविध संपदलकु
दानकमै सर्वकामदायिनिवगु निन्
मानवुलु भक्ति गॉलुतुरु
कानुकलुनु बलुलु निच्चि कल्याणमयी ! ।। 60 ।।

व. मरियु, निन्नु मानवुलु दुर्ग भद्रकाळि विजय वैष्णवि कुमुद चंडिक कृष्ण
माधवि कन्यक माय नारायणि ईशान शारद अंबिकयनु पदुनालुगु

(विष्णु) के तेज ने, जो महान् शेषनाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ, देवकी के सातवें गर्भ में रूप-धारण किया। ५७ [व.] उस अवसर पर विश्व रूपी हरि ने यह जानकर कि यादव लोग, जो उन्ही पर विश्वास रखे हुए हैं, कंस के हाथ त्रस्त होने जा रहे है, योगमाया-देवी से यों कहा : ५८ [सी.] हे भद्रे ! तुम उस गोकुल में जाओ जहाँ गोप और गोपीजन रहते है। जब वसुदेव की सब पत्नियाँ कंस के द्वारा कारागार में बद की गईं तब उनमें से रोहिणी नामक तरलाक्षि (चचल आँख वाली) बचकर नंद के गोकुल पहुँच गई और वही रह रही है। सद्‌गुण-संपन्ना देवकी की कोख में शेष नामक मेरा जो तेज (वीर्य) दीप्त हो रहा है, [आ.] उसे तुम चतुराई के साथ खींच लो, और ले जाकर रोहिणी के गर्भ में बराबर प्रविष्ट करा दो। मैं जब अपने अंश के साथ देवकी का पुत्र होकर जन्म लूंगा तब तुम नंद की पत्नी यशोदा की [पुत्री होकर] पैदा होना। ५९ [कं.] हे कल्याणमयी ! तुम समस्त संपत्तियों का केंद्र-स्थान हो, अभीष्टदायिनी हो। मनुष्य तुम्हें [तरह-तरह के] उपहार और बलियाँ दे-देकर भक्ति के साथ भजन करेंगे। ६० [व.] [इतना ही नहीं] दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चंडिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशाना, शारदा, अंबिका —ऐसे चौदह नामों से लोग तुम्हारी स्तुति करेंगे, और समुचित स्थानों में [तुम्हारी प्रतिष्ठा करके] पूजा करेंगे। सर्वेश्वर

नामंबुलं गॊनियाड्डुरु आया स्थानंबुलयंदनि यॆंरिंगिचि, सर्वेश्वरुंडगु हरि पॊम्मनि यानतिच्चिन, महाप्रसादंबनि यय्योगनिद्रयिय्यकॊनि, म्रॊक्कि, चय्यन नय्यिलकय्येंड वासि वच्चि ॥ 61 ॥

ते. देवकीदेवि कडुपुलो देजरिल्लु
दीप्तगर्भंबु मॆल्लन दिगिचि योग-
निद्र रोहिणि कडुपुन निलिपि चनियॆ
कडुपु दिगॆनंचु बौरुलु गलग बडग ॥ 62 ॥

व. अंत ॥ 63 ॥

आ. बलमु मिगुल गलुग बलभद्रुडन लोक
रमणुडगुट जेसि रामुडनग
सतिकि बुट्टॆ गर्भसंकर्षणमुन सं-
कर्षणुंडनंग घनुडु सुतुडु ॥ 64 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 65 ॥

कं. आनकदुंदुभि मनमुन, श्रीनाथुंडंशभाग शिष्टत जॊरगन्
भानुरुचि नतडु वॆलिगॆनु, गानग बट्टय्यॆ भूतगणमुलकु नृपा ! ॥ 66 ॥

उ. आ वसुदेवुडंत दनयंदखिलात्मकमात्मभूतमुन्
बावन रेखयुन् भुवनभद्रमुनं वॆलुगॊंदुचुन्न ल-
क्ष्मीविभु तेज मच्चुपड जेर्चिन दाल्चि नवीनकांतितो
देवकि यॊप्पॆ पूर्व यगु दिक्सति चंद्रुनि दाल्चु कैवडिन् ॥ 67 ॥

हरि ने ऐसा कहकर जाने की आज्ञा दी। तब उस योगनिद्रा ने [उस आज्ञा को] 'महाप्रसाद' कहकर सिर आँखों पर लिया; नमस्कार करके वहाँ से शीघ्र प्रस्थान किया। ६१ [ते.] योग-निद्रा (-माया) ने देवकी के गर्भ से दीप्तमान [विष्णु] वह तेज धीरे से उतारा और ले जाकर उसे रोहिणी के गर्भ में रख दिया। [इस परमार्थ को न जानने के कारण] पुर-जनों ने उद्विग्न होकर कहा कि [देवकी का] गर्भस्राव हुआ है। ६२ [आ.] अनंतर। ६३ [आ.] रोहिणी ने जिस शिशु को जन्म दिया वह अत्यन्त वलवान होने के कारण 'वलभद्र', लोकप्रिय होने के कारण से 'राम', गर्भ-संकर्षण द्वारा उत्पन्न होने के कारण 'संकर्षण' [इन तीनों] नामों से जग में प्रसिद्ध हुआ। ६४ [व.] उसके बाद : ६५ [कं.] हे नृप ! आनकदुंदुभि (वसुदेव) के अंतर् में श्रीनाथ (विष्णु) के अपने अंश भाग से प्रविष्ट होने पर वह राजा सूर्य के सदृश कांतिमान् और भूतगणों (समस्त प्राणियों) के लिए दर्शनीय केंद्र बन गया। ६६ [उ.] वसुदेव ने अपने अंदर प्रकाशमान रहे विष्णु-तेज को, जो सर्वात्मक, आत्मभूत, पवित्र और

व. अनिन विनि, तरुवाति वृत्तांतंबॆट्लय्यॆननि राजडिगिन, शुकुं-
डिट्लनियॆ ॥ 68 ॥

कं. गुरुतरमुग दन कडुपुन, सरसिजगर्भांड भांडचयमुलु गल या-
हरि देवकि कड्पुन भू, भरणार्थमु वृद्धि बॊंदॆ बालार्कु क्रियन ॥ 69 ॥

व अंत ॥ 70 ॥

सी. विमतुल मॊगमुलु वॆलवॆलबारॆंग विमलास्य मोमु वॆल्वॆलुक बारॆ
मलयु वरुल कीर्ति मासि नल्लन गाग नाति चूचुकमुलु नल्लनय्यॆ
दुष्टालयंबुल धूमरेखलु वुट्ट लेम यारुन रोमरेख मॆरसॆ
नरिमानसमुल नाहारवांछलु दप्प वनजाक्षिकाहारवांछ दप्पॆ

ते. श्रमसु संधिल्लॆ रिपुलकु श्रमसु गदुर
जडत वाटिल्लॆ शत्रुलु जडनु पडग
मन्नु रुचि यय्यॆ बगतुरु मन्नु चॊरग
वॆलदि युदरंबुलो हरि वृद्धि बॊंद ॥ 71 ॥

व. मरियुनु ॥ 72 ॥

लोककल्याणकारी है, देवकी के शरीर में पहुँचा दिया। उसे धारण कर देवकी चंद्रमा से सुशोभित पूर्वदिगंगना के समान नवीन कांति से चमक उठी। ६७ [व.] [इतना] कहने पर, सुन, राजा ने उसके बाद का वृत्तांत पूछा तो शुकयोगी ने यों बताया: ६८ [कं.] अपने पेट में अनेकों ब्रह्मांड छिपाये हुए हरि (विष्णु भगवान) देवकी के गर्भ में भूलोक की रक्षा के निमित्त [दिन पर दिन] बढ़ने लगे जैसे बालार्क (उदयकालीन सूर्य) [घड़ी-घड़ी] प्रवर्द्धमान होता है। ६९ [व.] उस समय: ७० [सी.] [इधर] निर्मल मुखवाली [देवकी] का मुँह सफ़ेद पड़ने लगा जिससे [उधर] शत्रुओं के मुँह पर सफ़ेदी (विवर्णता) छाने लगी। जब रमणी (देवकी) के चूचुक (स्तनों के अग्रभाग) काले पड़े जिससे दुखी शत्रुओं की कीर्ति मलिन होकर काली पड़ गई। रामा (देवकी) के त्रिवली पर रोमावली चमकने लगी तो दुष्ट शत्रुओं के भवनों से धुएँ की रेखाएँ उठने लगी। [जैसे ही] वनजाक्षी (देवकी) में अन्न की वांछा दूर हुई, [ते.] [वैसे ही] शत्रुओं के मन में आहार [लेने] की अभिलाषा [भय के कारण] छूट गई। [इधर] देवकी को थकावट मालूम हुई तो उधर शत्रु अत्यधिक श्रम अनुभव करने लगे; देवकी में अलसता दिखाई दी तो शत्रुदल स्तब्ध पड़ गया। [देवकी] को मिट्टी रुचिकर होने लगी तो विरोधी वर्ग मिट्टी में लोटने लगा। उस युवती के गर्भ में जैसे-जैसे हरि (विष्णु) बढ़ने लगे वैसे-वैसे [इस तरह के परिणाम दिखाई देने लगे] ७१ [व.] और भी, ७२ [सी.] उस अलबेली [देवकी] के शरीर से पसीना

सी. सलिलमा यॅलनाग जठरार्भकुनि गानजनिन कॅवडि घर्मसलिलं मॊप्पॆ
नॊगि देजमा यिति युदरॅडिभकु गॊल्व गदिसिन क्रिय देहकांति मॆऽरसॆ
बवनुडा कॊम्म गर्भस्थुनि सेविंप नुदयिंचनो यन नूर्पुलमरॆ
गुंभिनि या लेम कुक्षिगु नर्चिप जॊच्चु भंगिनि मंटिचॊरव दनरॆ

आ. गगन मिंदुवदन कडुपुलो बालु से-
वलकु रूपुमॆऽरसि वच्चनट्लु
बयलुवंटि नडुमु बहुळ मय्यॆनु वंच-
भूतमयुडु लोन बॊदल सतिकि ॥ 73 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 74 ॥

सी. अतिव कांचीगुणंबल्लन बिगियंग वैरिवधू गुणव्रजमु वदलॆ
मॆल्लन तन्वंगि मॆयिदीगॆ मॆऽगॆक्क दुष्टांगना तनुद्युतुलणंगॆ
नाति कल्लन भूषणमुलु पल्वलुकगा बरसती भूषणपंक्तुलॆडलॆ
गलकंठिकॊय्यन गर्भंबु दॊड्डुगा बरिपंथि दारगर्भमुलु पगिलॆ

ते. बॊलति कंतंत नॊळ्लाडु प्रॊद्दुलॆडुग
नहितवल्लभलॆडुवलै तनर्चु

यों छूटने लगा मानो [पंचभूतों में से एक] जल उसके गर्भस्थ-शिशु के दर्शनों के लिए चला आया हो। उस रमणी के शरीर की कांति इस प्रकार दीप्त हुई मानो तेज (अग्नि) उसके पेट के अंदर के बालक से मिलने आया हो। उस युवती की साँसे ऐसे निकलने लगी जैसे पवन उस कोख के बच्चे की सेवा के लिए उपस्थित हुआ हो, उस सुन्दरी (देवकी) को मिट्टी [खाने] की चाव ऐसी लगी मानो भूमि गर्भगत छोटे की अर्चना करने आई हो। [आ.] उस चंद्रमुखी (देवकी) के पेट के बच्चे की सेवा के लिए मानों गगन पास आकर चमक रहा हो। [इस प्रकार] जब पंचभूतात्मक भगवान उस सती साध्वी के भीतर उभरने लगा तो उसका आकाश-सम (शून्य) कटिप्रदेश विशाल होता गया। ७३ [व.] उसके बाद : ७४ [सी.] युवती (देवकी) की करधनी जैसे-जैसे कसकर तंग हुई वैसे-वैसे वैरिवधुओं (शत्रु-स्त्रियों) का [मांगल्य] सूत्र ढीला पड़ता गया। तन्वी (कोमलांगी) की तनुलता (शरीर) जैसे-जैसे लहलहाने लगी वैसे-वैसे दुष्ट [राक्षस-] स्त्रियों की शरीर-कांति मंद पड़ने लगी। इधर देवकी के [शरीर पर] आभूषण फीके लगने लगे तो उधर शत्रुस्त्रियों के गहने टूटने लगे। कलकंठी (मधुरस्वर वाली देवकी) का गर्भ जब बढ़ने लगा तो परिपंथियों (दुश्मनों) की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे, [ते.] सती (देवकी) के प्रसव के दिन पूर्ण होने के साथ-साथ शत्रु-वल्लभाओं (पत्नियों) के सुहाग से शोभित रहने के दिन घटते गये, देवकी के गर्भ में

प्रौद्दुलन्नियु ग्रममुन वोव दॊणगॆ
नुविदकड्पुन नसुरारि युंट जेसि ॥ 75 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 76 ॥

आ. ज्ञानखलुनि लोनि शारदयुनु बोलॆ, घटमुलोनि दीपकळिक वोलॆ
भ्रातयिट नाक वडियुंडॆ, देवकीकांत विश्वगर्भ गर्भ यगुचु ॥ 77 ॥

व. अंत नक्कांतातिलकंबु नॆम्मोगंबु तॆलिवियुनु, मेनिमॆरुंगुनु, मॆलंगॊडि सॊनगुनुं जूचि, वॆरगुवडि, तरचु वॆरचुचु गंसुंडु तनलो निट्लनियॆ ॥ 78 ॥

कं. कन्नुलकु जूड वरवे, युन्नदि यॆलनाग गर्भमुल्लमु गलगन्
मुन्नॆन्नडु निट्लुंडडु, वॆन्नुडु चॊरवोलु गर्भ विवरमुलोनन् ॥ 79 ॥

उ. एमि तलंचुवाड निकनॆय्यदि कार्यमु नाडुनाटिकिन्
गामिनि चूलु पॆंपॆसगॆ गर्भिणि चॆल्लॆलि नाडुपेद ने
नेमनि चंपुवाड दगवेलनि चंपिति नेनि श्रीयु नु-
द्दामयशंबु नायुवुनु धर्ममुनुं जॆडिपोवकुंडुने ? ॥ 80 ॥

कं. वावि नॆरुंगनि क्रूरुनि, जीवन्मृतुडनुचु निंद सेयुदुरतडुन्
बोवुनु नरकमुनकु वु, भावमुतो ब्रतुकुटॊक्क ब्रतुके तलपन् ॥ 81 ॥

असुरारि (राक्षसों के शत्रु) के रहने के कारण से ऐसा [परिणाम] हुआ। ७५ [व.] इस प्रकार : ७६ [आ.] ज्ञानखल (दुष्ट स्वभाव वाले ज्ञानी) में वद शारदा (सरस्वती) के समान, घट में [छिपाकर] रखी हुई दीपशिखा की तरह देवकी, जिसके गर्भ में विश्वगर्भ (भगवान विष्णु) विद्यमान है, कस के कारागार में वंद पड़ी हुई थी। ७७ [व.] उस अवसर पर उस कांतातिलक (स्त्री-रत्न) के मुख पर ज्ञान का प्रकाश, देह पर लावण्य, चाल-ढाल में शोभा देखकर कंस ने निश्चेष्ट होकर, रह-रहकर भीत होते हुए अपने आप यों कहा। ७८ [कं.] यह ललना का गर्भ देखने में भारी वनकर है, जिससे [मेरा] मन अधीर वन रहा है। पहले यह इस प्रकार कभी दिखाई न दिया। लगता है, विष्णु ने इसके पेट में प्रवेश किया है। ७९ [उ.] अव मैं क्या सोचूँ और क्या करूँ ? दिन पर दिन इसका गर्भ वढ़ता जा रहा है। गर्भिणी, भगिनी अवला का वध कैसे करूँ ? न्याय को छोड़कर यदि मार डालूँ तो मेरा समस्त ऐश्वर्य, सुकीर्ति, आयु और धर्म क्या विनष्ट न होंगे ? ८० [कं.] वांधव्य भूलनेवाला क्रूरात्मा जीकर भी मृतप्राय समझा जायगा। यहाँ लोग उसकी निंदा करेंगे, और परलोक में नरकभागी होगा। यों दुर्भाव सहकर जीना भी कोई जीना है ! ८१ [व.] इस प्रकार निश्चय कर कंस ने

व. अनि निश्चयिंचि, क्रौर्यंबु विडिचि, धैर्यंबु नोंदि, गांभीर्यंबु वाटिंचि, शौर्यंबु प्रकटिंचुकोनुचु, दिग्गनं जेलियलि जंपु नग्गलिक येग्गनि युग्गडिंचि, मानि, मौनियुंबोले नूरकुंडियु ॥ 82 ॥

आ. पापरानि दोड्ड पग पुट्टे निक नेट्टु-
लिंदुमुखिकि जक्रि येपुडु पुट्टु
बुट्टि नपुडे पुरुटिटिलो वेग-
जूतु ननुचु नेंदुरु चूचुचुंडे ॥ 83 ॥

व. मरियु, वैरानुबंधंबुन नन्यानुसंधानंबुल मऱचि, यतंडु ॥ 84 ॥

कं. तिरुगुचु गुडुचुचु द्रावुचु
नरुगुचु गूर्चुंडि लेचुचनवरतंबुन्
हरि दलचि तलचि जग मा
हरिमयमनि तरचें गंसुडाऱनि यलुकन् ॥ 85 ॥

व. वेंडियु ॥ 86 ॥

सी. श्रवणरंध्रमुल ने शब्दंबु विनबडु नदि हरिपलुकनि यालकिंचु
नक्षिमार्गमुन नेय्यदि चूडबडु नदि हरिमूर्ति गानोपुनंचु जूचु
दिरुगुचो देहंबु दृणमैन सोकिन हरि कराघातमो यनुचु गलगु
गंधंबुलेमैन घ्राणंबु सोकिन हरि मालिकागंधमनुचु नदरु

क्रूरता छोड़, धीरज धारण कर, गंभीरता और शूरता प्रगट की। बहिन को मार डालने में उसे कोई वहादुरी दिखाई न दी। वह वैसा यत्न छोड़ मौनी के समान चुप रहा। ८२ [आ.] उसने अनुभव किया कि यह ऐसा वड़ा वैर है जो काटा नहीं जा सकता। इस इंदुमुखी (चंद्रवदना— देवकी) के चक्रि (विष्णु) पैदा होगा। पैदा होते ही सौरी में पहुँच कर मैं उसका अंत कर दूंगा। [मन में] यह सोचकर [वह प्रसव की] प्रतीक्षा करता रहा। ८३ [व.] वैर के इस अटूट वधन के कारण से उस (कंस) ने और सब कर्तव्य भुला दिये। ८४ [कं.] चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते, अनवरत [आठों पहर] हरि (विष्णु) का ही ख्याल करता रहा। न बुझनेवाले क्रोध के वश समस्त जग को हरिमय (विष्णुमय) ही मान लिया। ८५ [व.] और : ८६ [सी.] कानों को जो शब्द सुनाई दे उसे विष्णु का वचन समझकर [ध्यान से] सुनने लगता; आंखों को जो कुछ दिखाई दे उसे विष्णु की मूर्ति समझकर देखने लगता; चलते-फिरते यदि तिनका भी शरीर को छू जाए तो उसे हरि का कराघात कहकर सिहर उठता। नाक से जो गंध सूंघे उसे विष्णु की मालाओं की सुगंधि मानकर घवड़ा उठता; [आ.] मुँह से जो कुछ बोलता उसे वह भ्रमवश हरि का

आ. बलुकु लॅव्वियैन वलुकुचो हरि पेरु
पलुकवडिर्थे ननुचु ब्रमसि पलुकु
दलपु लॅट्टिदैन दलचि या तलपुलु
हरितलंपुलनुचु नलुग दलचु ॥ 87 ॥

व. अय्यवसरंबुन, ननुचरसमेतलैन देवतलुनु, नारदादि मुनुलुनु गूडि नडव, नलुवयुनु, मुक्कंटियु नक्कडिकि वच्चि, देवकीदेवि गर्भाभकुंडगु पुरुषोत्तमुनिट्लनि स्तुतियिंचिरि ॥ 88 ॥

ब्रह्मादि देवतलु देवकीगर्भस्थुडगु स्वामिनि स्तुतिचुट

सी. सत्यव्रतुनि नित्य संप्राप्तिसाधनु गालत्रयमुनंदु गलुगुवानि
भूतंबुलेंदुनु पुट्टु चोटगुवानि नेंदु भूतंबुलंदमरुवानि
नेंदु भूतंबुलु नणगिन पिम्मट वरगुवानिनि सत्यभाषणंबु
समदर्शनंबुनु जरिपॅडुवानिनि निन्नाश्रयितुमु नी यधीन
आ. मायचेत नॅरुक मालिनवारलु, पॅक्कुगतुल निन्नु बेरुकोंदु-
रॅरुगनेर्चु विबुधु लेक चित्तंबुन, निखिलमूर्तुलॅल्ल नीव यंड्रु ॥ 89 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 90 ॥

नामोच्चारण समझता। जो कोई विचार मन में उठे उसे विष्णु का ख्याल समझकर क्रोधित होता। [उत्कट वैरभाव के कारण कंस की ऐसी स्थिति हो गई] ८७ [व.] उस अवसर पर अपने अनुचर समेत देवता लोग, नारद आदि मुनि, चतुर्मुख (ब्रह्मा) और त्रिनेत्र (शिव) सब के सब वहाँ चले आये और देवकी के गर्भ मे अर्भक (बालक) बने हुए उस पुरुषोत्तम (भगवान् विष्णु) की स्तुति इस प्रकार की : ८८

ब्रह्मा आदि देवताओं का देवकी-गर्भस्थ स्वामी की स्तुति करना

[सी.] सत्यव्रती, नित्यता (मोक्ष) प्राप्त करने के साधन भूत, कालत्रय (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) मे रहनेवाले, [पृथ्वी आदि] पंचभूतों का उद्गम स्थान, पंचभूतो में समाकर रहनेवाले, पंचभूतो के विलयन के बाद भी बने रहनेवाले, सत्यभाषण और सत्यदर्शन करनेवाले [हे भगवान!] ऐसे तुम में हम आश्रय पाते है। तुम्हारे अधीन [आ.] रहनेवाली माया के प्रभाव से जिन लोगों का ज्ञान जाता रहता है, वे तुम्हें अनेक प्रकार के बतलाते है। [परन्तु] जो बुद्धिमान तुम्हें समझ सकते हैं वे एकचित्त होकर यही कहते है कि समस्त मूर्तियाँ तुम्ही में एकाकार हो जाती है। ८९ [व.] इसके अतिरिक्त : ९० [सी.] प्रकृति जिस [वृक्ष] का आलवाल

सी. प्रकृति यॊक्कटि पादु फलमुलु सुखदुःखमुलु रॆंडु गुणमुलु मूडु वेळ्लु
तगु रसंबुलु नाल्गु धर्मार्थ मुखरंबुलॆरिगॆंडि विधमुलॆंदिद्रियंबु
लारु स्वभावंबु लाशोकमोहादुलर्मुलु धातुवुलॊक्क येडु
पै पॊर लॆनिमिदि प्रंगलु भूतंबुलडु बुद्धियु मनोऽहंकृतुलुनु

ते. रंध्रमुलु तॊम्मिदियु गोटरमुलु प्राण
पत्रदशकंबु जीवेश पक्षियुगमु
गलुगु संसारवृक्षंबु गलुग जेय
गाव नणगिप राजवॊक्करुड वीव ॥ 91 ॥

कं. नी दॆस दमचित्तमु लिडि, ये दॆसलं बोक कडतुरॆरुक गलुगु वा-
रा डूड यडगु क्रिय नी, पादंबनु नावकतन भवसागरमुन् ॥ 92 ॥

आ. मंचिवारि कॆल्ल मंगळप्रदमय्यु गल्लरुलकु मेलुगानियट्टि
तनुवुलॆन्नियैन दाल्चि लोकमुलकु, सेमर्मॆल्ल प्रॊद्दु सेयु दीवु ॥ 93 ॥

कं. ऎरिगिनवारल मनुचुनु,
गॊरमालिन यॆरुक लॆरिगि कॊंदरु नी पे-
रॆरिगियु दलपग नॊल्लरु-
परतुरधोगतुल जाड बद्मदळाक्षा ! ॥ 94 ॥

है, सुख और दु ख जिसके दो फल है, त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम) जिसकी जड़ें है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जिससे निकलनेवाले रस हैं, पाँच इंद्रिय [ज्ञानेंद्रिय] जिसे जानने के साधन है, षट् (छः) ऊर्मियाँ (क्षुत्-तृष्णा-शोक-मोह-जरा-मरण) जिसका स्वाभाविक धर्म है, सप्त (सात) धातुएँ (वसा, रक्त, मांस, मेदस, अस्थि, मज्जा, शुक्र) जिसके ऊपरी छिल्का हैं, पंचभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार —ये आठ जिसकी शाखाएँ है, [ते.] [मानव-शरीर के] नवद्वार जिसके कोटर हैं, दस प्राण (नाग, कूर्म, कूकर, देवदत्त, धनजय, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) जिसके पत्ते है, जीवात्मा और परमात्मा जिसकी डाल पर बैठे दो पक्षी है —ऐसे संसार रूपी वृक्ष की सृष्टि करनेवाले, पालनेवाले और नाश करनेवाले अधिपति, हे भगवान् ! एकमात्र तुम्हीं हो । ९१ [कं.] तुम्हें जाननेवाले (ज्ञानी) लोग तुम पर ही चित्त लगाकर, अन्य दिशा में न जाकर तुम्हारे चरण रूपी नाव के सहारे इस संसार-सागर को गोपद के समान पार कर जाते हैं (गोपद-गाय के खुरों से बना हुआ पानी का गड्ढा) । ९२ [आ.] साधुओं के लिए मंगलप्रद और दुष्टों के लिए दुःखप्रद कितने ही तनु (अवतार) धारण कर, तुम सर्वदा लोक-कल्याण करते रहते हो । ९३ [कं.] कुछ लोग निरर्थक ज्ञान पाकर अपने को परमश्रेष्ठ [ज्ञानी] बतलाते है, वे लोग तुम्हारा नाम [-धाम] जानते हुएभी, तुम्हारा स्मरण करना नहीं चाहते । हे

कं. नी वारै नी दॆस दम, भावंबुलु निलिपि घनुलु भयविरहितुलै
ये विघ्नंबुल जेंदक, नी वरयग मेटिचोट नॆगडुदुरीशा ! ॥ 95 ॥

कं. निनु नालुगाश्रमंबुल, जनमुलु सेविंप नखिलजगमुल सत्त्वं-
बुनु शुद्धंबुनु श्रेयं, -बुनु नगु गात्रंबु नीवु पॊंदुदुवु हरी ! ॥ 96 ॥

सी. नळिनाक्ष ! सत्त्वगुणंबु नी गात्रंबु गादेनि विज्ञानकलितमगुचु
नज्ञान भेदकंबगुटॆट्लु गुणमुलयंदुल वॆलुग नीवनुमतिंप-
बडुदुवु सत्त्वरूपंबु सेविंपंग साक्षात्करिंतुवु साक्षिवगुचु
वाङ्मनंबुलकु नव्वलयैन मार्गंबु गलुगु नी गुणजन्म कर्मरहित-

ते. मैन रूपुनु पेरु नत्यनघबुद्धु-
लॆरुगुदुरु निन्नु गॊल्व नूहिंचुचुनुचु
विनुचु दलचुचु बॊगडुचु वॆलयुवाडु
भवमु नॊंदडु नी पादभक्तुडगुचु ॥ 97 ॥

कं. धरणीभारमु वासॆनु, बुरुषोत्तम ! यीश ! नीदु पुट्टुवुन भव-
च्चरणांबुजमुल प्रापुन, धरणियु नाकसमु गांचॆदमु नी करुणन् ॥ 98 ॥

पद्मलोचन ! ऐसे लोग दूसरों को अधोगति में ढकेल देते हैं। ९४ [कं.] परन्तु हे ईश ! महान् (सच्चे भक्त) [सर्वात्मना] तुम्हारे ही बनकर तुम में ही चित्त स्थिर करते हैं; वे निर्भय होकर बिना किसी विघ्न-बाधा के परमपद को प्राप्त होते हैं। ९५ [कं.] हे हरी ! [ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य आदि] चारों आश्रमों के जन [जप-तप आदि धर्माचरण द्वारा] तुम्हारी सेवा करते हैं। [उसे मानकर] तुम समस्त जगत [की स्थिति] के लिए शुद्ध, सत्त्वमय और श्रेयोदायक गात्र (शरीर) धारण करते हो। ९६ [सी.] हे नलिनाक्ष (कमल-लोचन) ! तुम्हारा शरीर यदि शुद्ध सत्त्वगुणवाला न हुआ तो अज्ञान-भेद-नाशक विज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होगा ? गुणों में जब तुम्हारा विलसन होगा तभी उसके सहारे से तुम्हारा (अस्तित्व) अनुमानित हो सकेगा। [तुम्हारे] सत्त्व-रूप की सेवा करने पर [हम लोग] तुम्हारा साक्षात्कार कर सकेंगे। वाक् और मन की गति के परे [रहनेवाले] तुम्हें केवल साक्षी के रूप में अनुमानित किया जा सकता है। तुम्हारा रूप, गुण-जन्म, कर्म-रहित है, [ते.] अत्यन्त निर्मल बुद्धिवाले (महात्मा) ही तुम्हारे नाम-रूप से परिचित होंगे। तुम्हारा भजन चाहते हुए, तुम्हारे [कल्याणकारी] गुणों का श्रवण करते हुए, तुम्हारी स्तुति करनेवाले चरण-सेवक (परमभक्त) पुनर्जन्म नहीं पावेंगे (जीवन-मुक्त बनेंगे)। ९७ [कं.] हे पुरुषोत्तम ! हे ईश ! तुम्हारे जन्म (अवतार) से धरणी का भार दूर होगा। तुम्हारे चरण-कमलों के आश्रय के बल पर तुम्हारी करुणा से हम पृथ्वी और आकाश [में स्थित सब कुछ को]

उ. पुट्टुवुलेनि नीकभव ! पुट्टुट क्रीडयँ काक पुट्टुटे
यॅट्टनुडुन् भवादिदशलॅल्लनु जीवुलयंदविद्य ता
जुट्टुचु नुंडु गानि निनु जुट्टिटनंदि बलॅ बॊंत नुंडियुं
जुट्टगलेमि दत्क्रियल जॊक्कनि यॅक्कटिवौदुवीश्वरा ! ॥ 99 ॥

म. गुरु पाठीनमवै जलग्रहमवै कोलंबवै श्रीनृके-
सरिवै भिक्षुडवै हयाननुडवै क्ष्मादेवता भर्तवै
धरणीनाथुडवै दयागुणगणोदारुंडवै लोकमुल्
परिरक्षिंचिन नीकु म्रॊक्कॆदमिलाभारंबु वारिपवे ! ॥ 100 ॥

कं. मुच्चिरि युन्नदि लोकमु, निच्चलु गंसादि खलुलु निर्दयु लेचन्
मच्चिक गावग वलयुनु, विच्चेयुमु तल्लिकडुपु वॆडलि मुकुंदा ! ॥101॥

व. अनि मरियु देवकी देविं गनुंगॊनि ! ॥ 102 ॥

मत्त. तल्लि ! नी युदरंबुलोन ब्रधानपूरुषुडुन्नवा-
डॆल्लि पुट्टेडि गंसुचे भय मित लेदु निजंबु मा
कॆल्लवारिक भद्रमय्यॆडु निक नी कडुपॆप्पुडुन्
जल्ल गावलॆ यादवाळि संतसंबुनु बॊंदगन् ॥ 103 ॥

देखेंगे । ९८ [उ.] हे अभव (अजन्मा) ! तुम्हें जन्म का बंधन नहीं है (तुम पैदा नहीं होते), किन्तु [अवतार के रूप में] जन्म लेना तुम्हारे लिए क्रीड़ा मात्र है । जन्म-मरण आदि दशाएँ अविद्या के कारण जीवों को घेरे रहती हैं, पर तुम्हारे विषय में ऐसा कुछ भी नहीं होता । जन्म-मरण तुम्हारे साथ-साथ (बाहरी रूप से) घूमते रहते है पर तुम उनके वशवर्ती नहीं होते । हे ईश्वर ! तुम एक ही असहाय-शूर हो । ९९ [म.] [इसके पहले] तुमने महान् मत्स्य होकर, कूर्म (कछुवा) होकर, वराह होकर, नृसिंह होकर, हयग्रीव होकर, भिक्षुक (वामन) होकर, क्ष्मादेवताओं (ब्राह्मणों) में राजा (परशुराम) होकर, दयागुण से उदार धरणीनाथ (राजा राम) होकर लोकों की रक्षा की थी; हम तुम्हें प्रणाम करते हैं, इला (भूमि) भार को दूर करो न ! १०० [कं.] [आज] कंस आदि निर्दयी राक्षसों के उत्पात से यह लोक दुखी हो रहा है, स्नेहपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिए । हे मुकुंद (विष्णु) ! माता के गर्भ से बाहर पधारो । १०१ [व.] अनंतर देवकीदेवी को निहार कर : १०२ [मत्त.] हे माता ! तुम्हारे उदर (पेट) में प्रधान पुरुष (विष्णु भगवान) विराजमान है, कल पैदा होंगे, हम सच कहते हैं : तुम्हें कंस का लवलेश भी भय न होगा, [उनके द्वारा] हम सबका भला होने जा रहा है । तुम्हारी गोद भरी रहे ! संतान की श्रीवृद्धि हो ! यादवकुल फूले फले ! १०३ [व.] इस प्रकार

व. अनि, यिव्विधंबुन हरि बॊगडि, देवकी देविनि दीविंचि, देवत लीशान ब्रह्मल मुंदट निडुकॊनि चनिरि। अंत ॥ 104 ॥

अध्यायमु—३

श्रीकृष्णावतार घट्टमु

कं. पंकजमुखि नीळ्ळाडनु, संकटपडु खलुल मानसंबुल नॆल्लन्
संकटमु दोचॆ मॆल्लन, संकटमुलु लेमि दोचॆ सत्पुरुषुलकुन् ॥ 105 ॥

सी. स्वच्छंबुलै पॊगॆ जलरासुलेड्डुनु गल घोषणमुल मेघंबुलुरिमॆ
ग्रहतारकलतोड गगनंबु राजिल्लॆ दिक्कुलु मिक्किलि तॆलिवि दाल्चॆ
गम्मनि चल्लनि गालि मॆल्लन वीचॆ होमानलंबु चॆन्नॊंदि वॆलिगॆ
गॊलकुलु कमलाळि कुलमुलै सिरि नॊप्पॆ ब्रविमल तोयलै पारॆ नदुलु

ते. वर पुर ग्राम घोषयै वसुध यॊप्पॆ
विहगरव पुष्प फलमुल वॆलसॆ वनमु
ललरु सोनलु गुरिसि रथ्यमरवरुलु
देवदेवनि देवकी देवि कनग ॥ 106 ॥

कं. पाडिरि गंधर्वोत्तमु-
लाडिरि रंभादि कांतलानंदमुनन्

हरि (विष्णु) की सराहना करके, देवकीदेवी को आशीश दे, सब देवता लोग ईशान (शिव) और ब्रह्मा को अगुआ बनाकर चले गये। तब, १०४

अध्याय—३

श्रीकृष्णावतार-प्रसंग

[कं.] पंकजमुखी (कमल-मुख वाली) [देवकी] जब प्रसव-पीड़ा का अनुभव करने लगी तब दुष्टों के मन में पीड़ा की अनुभूति हुई, और सज्जनों के मन को पीड़ा का अभाव अनुभूत हुआ। १०५ [सी.] जब देवकी देवी ने देवदेव (विष्णु) को जन्म दिया उस घड़ी सातों समुद्र स्वच्छ जल से उमड़ पड़े; मेघ मंद्र-ध्वनि से गरज उठे; ग्रह-ताराओं से गगन-मंडल चमक उठा; दिशाओं में प्रकाश छा गया; शीतल-मंद-समीर बहने लगा; होमाग्नि शोभा से प्रज्वलित हुई; तटाक (तालाब) कमल-कुल से युक्त हो शोभित हुए; नदियाँ विमल तोय (जल) से युक्त हो प्रवाहित हुईं, [ते.] पुर-ग्राम-व्रज-समुदाय से वसुंधरा (भूमि) शोभित हुई; पक्षियों के कलरव से, फल-फूलों से लदे वृक्षों से वनस्थली सुसज्जित हुई और देवताओं ने फूलों की झड़ी लगा दी। १०६ [कं.] गंधर्वों ने (गीत) गाये; रंभा आदि

गूडिरि सिद्धुलु भयमुलु
वीडिरि चारणुलु मॊरसॆ बेल्पुल भेरुल् ॥ 107 ॥

कं. सुतु गनॆ देवकि नडुरे, -यति शुभगति दारलुनु ग्रहंबुलु नुंडन्
दितिसुत निराकरिष्णुन्, श्रित वदनालंकरिष्णु जिष्णुन् विष्णुन् ॥108॥

कं. वॆन्नुनि नति प्रसन्नुनि, ग्रन्नन गनि मॆरुगुबोणि कडु नॊप्पारॆन्
बुन्नमनाडु कळानिधि, गन्न महेंद्राश चॆलुवु गलिगि नरेंद्रा ! ॥ 109 ॥

व. अप्पुडु ॥ 110 ॥

सी. जलधरदेहु नाजानु चतुर्बाहु सरसीरुहाक्षु विशालवक्षु
जारु गदा शंख चक्र पद्म विलासु गंठ कौस्तुभमणि कांतिभासु
गमनीय कटिसूत्र कंकण केयूरु श्रीवत्सलांछनांचित विहारु
नुरु कुंडल प्रभायुत कुंतल ललाटु वैडूर्य मणिगण वरकिरीटु

ते. बालु बूर्णेंदु रुचिजालु भक्तलोक-
पालु सुगुणालवालु गृपाविशालु
जूचि तिलकिंचि चोद्यमंदि
युब्बि चॆलरेगि वसुदेवुडुत्सहिंचॆ ॥ 111 ॥

कं. स्नानमु सेयगरामिनि, नानंद रसाब्धि मग्नुडै विप्रुलकुन्
धेनुवुलं बदिवेलनु, मानसमुन धारवोसॆ मरि यिच्चुटकुन् ॥ 112 ॥

सुंदरियों ने आनंद से नृत्य किया; सिद्ध और चारण भय छोड़ [आनंद मनाने के लिए] जमा हो गये, और देवताओं के भेरी वज उठे। १०७ [कं.] देवकी ने आधी रात के समय, जब ग्रह और तारागण अत्यंत शुभ-स्थिति में थे, विष्णु को पुत्र के रूप में जन्म दिया जो दैत्यों (राक्षसों) का निराकरण करनेवाला, आश्रित भक्तों के मुख को [आनंद से] विकसित करनेवाला, और [दुष्टों पर] विजय पानेवाला है। १०८ [कं.] हे नरेंद्र (परीक्षित) ! अत्यंत प्रसन्न विष्णु को जनकर कांतिमती देवकी यों शोभित हुई जैसे पूर्णिमा के दिन पूर्णचंद्र को लिये हुए पूर्व दिशा शोभा-संपन्न होती है। १०९ [व.] उस समय : ११० [सी.] उस बालक को देखकर, जो जलधरदेह वाला, आजानुबाहु वाला, चतुर्भुज वाला, सरसीरुहाक्ष, बिशाल बक्ष वाला, चारु गदा-शंख-चक्र-पद्म से विलसित, कंठ में कौस्तुभ मणि की कान्ति से प्रकाशित, कमनीय कटिसूत्र-कंकण-केयूर-श्रीवत्स-लांछन (चिह्न) से अंचित विहार वाला, उरुकुंडल प्रभायुत कुंतलों से युक्त ललाट वाला, वैडूर्य-मणिगण-वर-किरीट वाला था, और [ते.] जो पूर्णचंद्र-सा प्रकाशमान, भक्तलोकपालक, सुगुणों का आलवाल, और विशाल कृपालु है, वसुदेव पुलकित हुए, फिर चकित हुए और आनंद से फूले न समाये। १११

व. मरियुनु वसुदेवुंडु ॥ 113 ॥

कं. ई पुरुटि यिंटि कुद्य-
द्दीपंबुनु बोलि चाल दीपिंचु निजं-
बी पापडु नलु मोंगमुल
या पापनि गनिन मेटि यगु ननि भक्तिन् ॥ 114 ॥

आ. चागि म्रोक्कि लेचि सरगुन नोसलिपै
गेलुदम्मिदोयि गीलुकोलिपि
पापडनक वेंड्रक पापनि मोदलिटि
पोकलेल्ल दलचि पोगड दोणगें ॥ 115 ॥

कं. ए निन्नु नखिल दर्शनु, ज्ञानानंद स्वरूपु संततु नपरा-
धीनुनि मायादूरुनि, सूनुनिगा गंटि निट्टि चोद्यमु गलदे ! ॥ 116 ॥

कं. अच्चुग नी मायल मुनु, चेच्चेर द्रिगुणात्मकमुग जेसिन जगमुं-
जोच्चिन क्रिय जोरकुंडुवु, चोच्चुटयुनु लेदु लेदु चोरकुंडुटयुन् ॥ 117 ॥

सी. अदियु नेट्लन महदादुल बोलेडिवे वेरु वेरयै यन्निविधमु-
लगु सूक्ष्मभूतंबुलमर षोडश विकारमुलतो गूडि विराट्टनंग
बरमात्मुनकु नोकु बड्डपैन मेनु संपादिंचि यंदुलो बडियु बडक
युंडु सृष्टिकि मुन्न युन्न कारणमुन वानिकि लोनि भवंबु गलुग-

[कं.] स्नान न कर सकने के कारण उन्होंने आनदरस के समुद्र में मग्न होकर, फिर ब्राह्मणों को दस सहस्र धेनु धारादत्त करने का मन ही मन संकल्प किया। ११२ [व.] अनंतर वसुदेव ने [निश्चय किया कि] ११३ [कं.] प्रसूति-गृह को दिव्यज्योति से आलोकित कर देनेवाला यह शिशु वास्तव में चतुर्मुख ब्रह्मा को जननेवाला वह महात्मा (विष्णु) ही है, और कोई नहीं। ऐसा भक्ति के साथ ११४ [आ.] [उन्होंने झटपट] साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया, फिर उठकर माथे पर करकमल जोड़ उस शिशु का सारा पूर्व वृत्तान्त स्मरण करके स्तुति करने लगा : ११५ [कं.] [तुम] सर्वदर्शी, ज्ञानानंदस्वरूप, शाश्वत, अपराधीन (स्वतंत्र) और माया-रहित हो, ऐसे तुम्हें मैंने आज पुत्र के रूप में पाया है; इससे बढ़कर अचरज क्या होगा ! ११६ [कं.] तुमने अपनी माया के बल पर इस त्रिगुणात्मक जग को पहले उत्पन्न किया, और उसमें तुम प्रवेश न करते हुए भी प्रविष्ट के समान स्फुरण कराते हो (जनाते हो); वास्तव में [इस जग में] तुम्हारा प्रवेश करना भी नहीं है और प्रवेश न करना भी नही है। ११७ [सी.] यह [कार्य] ऐसा है : पृथ्वी आदि महत्तत्त्व पृथक्-पृथक् रहकर [विशिष्ट कार्य करने में असमर्थ होते हुए]

आ. दट्लु बुद्धि नॆरुग ननुवैन लागुन, गलुगु निंद्रियमुल कडल नुंडि
वानि पट्टु लेक वरुस जगंबुल, गलसियुंडियैन गलय वॆंपुडु ॥ 118 ॥

कं. सर्वमु नी लोनिदिगा, सर्वात्मुड वादिवस्तु संपन्नुडवै
सर्वमयुडवगु नीकुनु, सर्वेश्वर ! लेवु लोनु संधुलु वॆलियुन् ॥ 119 ॥

आ. आत्मवलन गलिगि यमरु देहादुल, नात्मकंटॆ पेरुलवि यटंचु
वलचुवाडु मूढतमुडु गाबुन नीश ! विश्वमॆल्ल नीव वेरॆ लेदु ॥ 120 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 121 ॥

सी. गुणमु विकारंबु गोरिकयुनु लेनि नीवल्लनु जगमुलु नॆरि जनिंचु
नब्बुले दगुनंचु बलुकुट तप्पुगादीशुंडवै ब्रह्म मीवयैन
निनु गॊल्चु गुणमुलु नी यानतुलु सेय भटुल शौर्यंबुलु पतिकि वच्चु
पगिदि नी गुणमुल बागुलु नीवनि तोचुनु नी मायतोड गूडि

भी एक-दूसरे से मिलकर [पंचविंशति] सूक्ष्म-भूतों का रूप लेते हैं, और षोडश विकारों के संयोग से ब्रह्मांड की रचना करते है जिसमे तुम-परमात्मा अपने लिए विराट् शरीर बनाकर निवास करते-से दिखाई देते हो। [ब्रह्मांड की] सृष्टि के पूर्व ही विद्यमान रहने के कारण उसमें तुम्हारा जन्म होना असंगत है। [क्योंकि कार्य से कारण की उत्पत्ति नहीं होती]। [आ.] तुम्हारे इस लक्षण की हमारी बुद्धि [अनुमान से] समझ सके —ऐसी सुविधा देने के लिए तुम इंद्रिय-ग्राह्य गुणों के रूप में जगत के प्राणियों के साथ मिलकर रहते हो, फिर भी वास्तव में तुम उन इंद्रियो से और उनके गुणों से अछूते (परे) रहते हो। ११८ [कं.] यह समस्त [विश्व] तुम्हारे ही अन्दर है, तुम सबकी आत्मा हो; आदिवस्तु (आत्मा) तुम्हीं हो; सर्वमय (भरे रहनेवाले) हो। अतः हे सर्वेश्वर ! तुमसे बाहर, तुम्हारे भीतर और उनके बीच में कोई दूसरी वस्तु नहीं है। ११९ [आ.] "आत्मा से उत्पन्न होकर, आत्मा से ही बने रहनेवाले देहादि [बाह्य] पदार्थ आत्मा से भिन्न (स्वतंत्र) अस्तित्व रखते हैं" —इस प्रकार माननेवाला महामूढ़ है; अतः हे ईश्वर ! यह सारा विश्व तुम्हीं हो, तुमसे भिन्न कुछ भी नहीं है। १२० [व.] इसके अलावा: १२१ [सी.] तुममें न कोई गुण है, और न कुछ विकार है, न इच्छा है। फिर भी यह कहना ग़लत नहीं कि तुम्हीं से जग उत्पन्न होते हैं, रक्षित होते हैं और फिर विनष्ट भी होते हैं। तुम ईश्वर और ब्रह्म हो। तुम्हारी आज्ञा मानकर तुम्हारी सेवा करनेवाले गुणों की भलाई तुम्हारी ही भलाई मालूम पड़ती है जिस तरह सेवक की बहादुरी स्वामी की ही बहादुरी मानी जाती है। [आ.] तुम अपनी माया के द्वारा जगत

आ. नीवु रक्त धवळ नील वर्णंबुल, जगमु सेय गाव समय जूड-
वनरुदट्लु नेडु दैत्युल दंडिप, बृथिवि गाव नवतरिंचि तीश ! ॥122॥

शा. मिटन् म्रोसिन म्रोत तालिमिनि लो मॆड्डिप मुन्नीवु ना
यिटं बुट्टॆदवंचु गंसुडु दॊडिन् हिंसिचॆ नी यन्नलं
गंटं गूरकु देडु नी युदय मी काराजनुल् सॆप्पगा
बंटिपंडॆदुरेगुवॆंचु वडि नीपै नेडु सन्नद्धुडै ॥ 123 ॥

व. अनुचुंड देवकीदेवि महापुरुष लक्षणंडुनु, विचक्षणंडुनु, सुकुमारुंडुनु नैन कुमारुनि गनि, कंसुनिवलनि वॆरपुन शुचिस्मितयै यिट्लनियॆ ॥ 124 ॥

देवकी देवि स्वामिनि स्तुतिचुट

सी. अट्टिट्टि दनरानिदै मॊदलै निडुकॊन्नदै वॆलुगुचु गुणमु लेनि-
दै यॊक्क चंदंबुदै कलदॆ निर्विशेषमै क्रिय लेक चॆप्परानि-
दी रूपमनि श्रुतुलॆप्पुडु नॊडिवॆडि या रूपमगुचु नध्यात्म दीप-
मै ब्रह्म रॆंडव यर्धंबु तुदि जगंबुलु नशिपग वॆद्द भूतगणमु

की रक्षा के निमित्त सत्त्व-पूर्ण शुक्लवर्ण, सृजन के निमित्त रजोमय रक्तवर्ण, तथा विनाश के लिए तम-पूर्ण नील (कृष्ण) वर्ण ग्रहण करते हो। इस कारण से, हे ईश ! दैत्यों का दमन करके पृथ्वी (जगत) की रक्षा करने के लिए आज तुमने अवतार लिया है। १२२ [शा.] आकाश से जो वाणी निकली उससे कंस का धीरज टूट गया, यह सुनकर कि तुम मेरे घर जन्म लोगे, उसने तुम्हारे सारे अग्रजों का वध किया; [मृत्यु-भय के कारण] वह आँख भर सोता भी नहीं है। कारागृह के रक्षक जैसे ही तुम्हारे उदय की वार्ता उसे पहुँचायेंगे वह शस्त्र-सन्नद्ध होकर तुमसे भिड़ने आ जायगा। देर नहीं करेगा। १२३ [व.] [वसुदेव के] यों कहते समय देवकी ने महापुरुष-लक्षण वाले, विचक्षण और सुकुमार कुमार को देखा। कंस से (के कारण) डरते हुए भी उसने शुचिस्मिता बनकर यों कहा : १२४

देवकीदेवी का भगवान की स्तुति करना

[सी.] श्रुति (वेद) जिस रूप के विषय में कहते हैं कि वह अनिर्वचनीय, मूलभूत, संपूर्ण, तेजोमय, निर्गुण, विकार-रहित, निर्विशेष, निरीह, और अव्यक्त होते हुए है वह रूप तुम्हारा है। ब्रह्म की आयु के दूसरे परार्ध के अन्त में जब जगत का प्रलय होगा तब महत् भूतगण [आ.] सूक्ष्मभूतों में, सूक्ष्मभूत प्रकृति में, प्रकृति जाकर व्यक्त में

आ. सूक्ष्म भूतमंदु जौरग ना भूतंबु
प्रकृति लोन जौरग प्रकृति वोयि
व्यक्तमंदु जौरग व्यक्त मणंगनु
शेषसंज्ञ नीवु चॆलुवमगुदु ॥ 125 ॥

उ. विश्वमु लील द्रिप्पुचु नविद्यकु जुट्टमवैन नीकु ना
शाश्वतमैन कालमिदि सर्वमु वेडबमंदुरट्टि बि-
श्वेश्वर ! मेलुकुप्प ! निनु नॆप्पुडु गोरि भजिचुवाडॆ पो
शाश्वत लक्ष्मि मृत्युजय सौख्ययुतुंडभयुंडु माधवा ! ॥ 126 ॥

मत्त. ऒंटि निल्चि पुराण योगुलु योगमार्ग निरूढुलै
कंटिमंदुरु गानि निक्कमु गानरी भवदाकृतिन्
गंटि भद्रमु गंटि मांसपु गन्नुलं गनबोलदी
तॊंटि रूपु दॊलगं बॆट्टुमु तोयजेक्षण ! त्रोवकॆंदन् ॥ 127 ॥

आ. विलयकालमंदु विश्वंबु नी पॆद्द
कडुपु लोन दाचु कडिमि मेटि
नट्टडवीवु नेडु ना गर्भजुड वौट
परमपुरुष ! बेडबंबु गादॆ ? ॥ 128 ॥

त. नळिनलोचन ! नीवु निक्कमु नाकु बुट्टॆदवंचु नी
खलुडु कंसुडु पॆद्दकालमु कारॆयिट नडंचॆ बु-

विलीन होंगे और जब वह व्यक्त जग विनष्ट हो जायेगा तब तुम अध्यात्म (आत्म)-ज्योति के रूप में शेष रह जाओगे। १२५ [उ.] [प्रलय के पश्चात्] अपनी अविद्या (माया) की लीला से इस जगत्-चक्र को फिर से घुमानेवाले शाश्वत कालस्वरूप हो तुम। अतः इस समस्त सृष्टि को मायाजाल कहा जाता है। हे विश्वेश्वर ! हे माधव ! हे कल्याणमूर्ति ! इच्छापूर्वक तुम्हारा भजन करनेवाला (जीव) शाश्वत-लक्ष्मी (-सौभाग्य), मृत्युजय, सौख्ययुत हो, अभय [बना रहता] है। १२६ [मत्त.] एकाकी होकर युगों तक योगानुष्ठान करनेवाले योगी लोग कहते हैं कि उन्होंने तुम्हारा दर्शन कर लिया है, किन्तु निश्चय ही उन्होंने तुम्हारा यह रूप नहीं देखा। मैं तुम्हारा यह भव्य रूप देख सकी, किन्तु यह दिव्य आकृति चर्मचक्षुओं से देखने योग्य नहीं है। अतः हे कमलनयन ! अपने इस अलौकिक आकार को समेट लो। १२७ [आ.] हे परमपुरुष ! प्रलय के समय इस समूचे विश्व को अपने विशाल उदर में छिपा रखनेवाले अत्यंत कुशल विनोदी (खिलाड़ी) हो तुम; [ऐसी स्थिति में] मेरे गर्भ से आज तुम्हारा उत्पन्न होना केवल विडंबना मात्र है। १२८ [त.] हे कमल-लोचन ! यह मानकर कि तुम अवश्य ही मेरे गर्भ से पैदा होगे, इस

मॆलिन चित्तुनि नाज्ञ सेयुमु मम्मु गावुमु भीतुलन्
तुलुसु लेक फलिचॆ नोचिन नोमुलॆल्लनु नीवयॆ ॥ 129 ॥

व. अनि यिट्लु देवकीदेवि विन्नविचिन, नीश्वरुं डिट्लनियॆ। अव्वा! नीवु तॊल्लि स्वायंभुव मन्वंतरंबुन पृश्निनयनु परमपतिव्रतवु। वसुदेवुंडुनु सुतपुंडनु प्रजापति। मीरिरुवुरुनु सृष्टिकालंबुन ब्रह्मपंपुनं-पॆपुन निद्रियंबुलं जयिंचि, तॆंपुन वान गालि यॆंड मंचुलकु सॆरिचि, येकलंबु लॆ, या कलंबुलु दिनि, ये कलंकंबुनु लेक, वॆंड्रंबुन वंड्रॆंडुवेल दिव्यवर्षंबुलु तपंबुल नॆपंबुल मी रूपंबुलु मॆंड्रयुनोज, ना जपंबुलु सेसि, डासि, पेर्चि, यर्चिप, मीकु नाकु गलरूपु जूपि, येनु तिरंबुलगु वरंबुलु वेडुमनिन, मीरु ना मायंबायनि मोहंबुन, बिड्डलु लेनि दॊड्डु यड्डंबुन, दुर्गमंबगु नपवर्गंबु गोरक, ना योडु कॊडुकु नडिगिन मॆच्चि, यट्ल वरंबिच्चि, मीकेनु पृश्निगर्भुंडनु नर्भकुंडनैति, मरियुनु ॥ 130 ॥

कं. अदितियु गश्यपुडनगा, विदितुलरगु मीकु गुरुचवेषंबुन ने
नुदयिंचिति वामनुडन, द्रिदशेंद्रानुजुडनै द्वितीय भवमुनन् ॥ 131 ॥

दुष्टात्मा कंस ने मुझे बरसों कारागार में रखकर सताया। इस मलिन-चित्त (कंस) को दंड देकर हम भयभीतों को बचाओ। आज तुम्हारे रूप में हमारी सारी व्रत-साधनाओं का फल पूर्ण रूप से हमें मिल गया है। १२९
[व.] देवकीदेवी के द्वारा ऐसी विनती करने पर [सुनकर] ईश्वर ने यों कहा: माता! पुराने समय के स्वायंभुव मन्वंतर में तुम पृश्नि नामक परम पतिव्रता थीं। वसुदेव भी सुतप नामक प्रजापति थे। तुम दोनों सृष्टि के समय, ब्रह्मदेव की आज्ञा से इंद्रियों पर विजय पाकर, साहस से हवा, पानी, शीत और घाम का कष्ट सहकर, साग-पात खाकर, निष्कलंक मन से बारह हज़ार दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या करते रहे। तपस्या के ताप से और मेरे प्रति किये गये, उपासना और अर्चना के तेज से तुम्हारे शरीर दमक उठे। जब मैंने अपना निजरूप दिखाकर स्थिरता से वर माँगने को कहा, तो तुम लोगों ने मेरी माया के मोह में पड़कर दुस्साध्य अपवर्ग (मोक्ष) की इच्छा छोड़, निपूत होने के कारण से मेरे समान पुत्र माँगा। प्रसन्न होकर मैंने वही वर दिया और तदनुसार तुम्हारा [पुत्र] होकर [पैदा हुआ और] पृश्निगर्भ कहलाया। अनंतर: १३०
[कं.] द्वितीय भव [जन्म] में जब तुम दोनो अदिति और कश्यप के नाम से प्रसिद्ध हुए, तब मैं त्रिदशेन्द्र (इन्द्र) का अनुज बन, आकार में नाटा होने के कारण, वामन कहलाया। १३१ [कं.] अब इस तीसरे जन्म में भी [अपने पूर्व-वचन के अनुसार] तुम्हारा पुत्र बन गया हूँ। आगे फिर

कं. इप्पुडु मूडव बामुन, दप्पक मी किरुवुरकुनु दनयुडनैति
जॅप्पिति बूर्वमु मीयं, -दॅप्पटिकिनि लेदु जन्ममिटपै नाकुन् ॥ 132 ॥

कं. नंदनुडनियुं बरमा, -नंदंबगु ब्रह्ममनियु ननु दलचुचु ना
पैंदॅरुवु नॉंदॅदरु ना, यंदुल प्रेममुन भवमु नंदरु मीरुन् ॥ 133 ॥

व. अनि यिट्लु पलिकि, यीश्वरुंडा रूपंबु विडिचि ॥ 134 ॥

कं. रॅप्पलिडक तलि दंड्रुलु
तप्पक दनुजड माय दनरि ललितुडै
यप्पुडट्टु गन्न पापनि
यॉप्पुन वेडुकलु सेसॆ नॊक कौन्नि नृपा ! ॥ 135 ॥

व. अंत वसुदेवुंडु तनकुं जेयवलसिन पनुलीश्वरुंडैन हरिवलन नॆरिंगिनवाडु गावुन ॥ 136 ॥

कं. आ पुरिटि यिल्लु वॆलुवडि
पापनि दर्लिचुकॊनुचु बरचॆद ननुचुन्
रूपिप नंदु भार्यकु
बापयगुचु योगमाय प्रभविंचॆ नृपा ! ॥ 137 ॥

व. भय्यवसरंबुन ॥ 138 ॥

कं. विड्डुनि गरमुल ड्रॉम्मुन
नड्डंबुग बट्टि पदमुलल्लन यिडुचुन्
जड्डुन गावलिवारल
यॉड्डु गडचि पुरिटि साल यॊय्यन वॆडलॆन् ॥ 139 ॥

कभी तुमसे मेरा जन्म न होगा। १३२ [कं.] तुम दोनों मुझ पर पुत्र-भाव तथा परमानंदस्वरूप ब्रह्म-भाव रखकर, प्रीति से मेरा चिंतन करते हुए, अंत में मेरा परमपद (मोक्ष) प्राप्त करोगे। मुझ पर के स्नेह के कारण तुम्हें फिर से जन्म नही लेना पड़ेगा। १३३ [वं.] ऐसा कहकर, ईश्वर ने वह रूप छोड़ दिया, और। १३४ [कं.] हे नृप ! माता-पिता जब टकटकी लगाकर देख रहे थे तब अपनी माया फैलाकर सद्योजात (तभी जन्मे) ललित कोमल शिशु का रूप धर कुछ सहज क्रीड़ाएँ कीं। १३५ [व.] हरि (विष्णु) ने वसुदेव को पहले ही जता दिया कि उन्हें इस अवसर पर क्या करना चाहिए। अतः १३६ [कं.] वसुदेव उस शिशु को हाथों में लेकर प्रसूतिगृह से चटपट निकल बाहर आये। हे राजन् ! उधर योगमाया नंद की घरनी (यशोदा) के गर्भ से कन्या होकर पैदा हुई। १३७ [व.] उस अवसर पर। १३८ [कं.] वसुदेव अपने पुत्र को हाथों के बल छाती पर आड़े थामकर, धीरे-धीरे डग भरते हुए, पहरेदारों के बाजू से

व. अंत नट ॥ 140 ॥

कं. नंदुनि सतिकि यशोदकु, बॊदुग हरियोगमाय पुट्टिन माया
स्पंदमुन नॊक्क यॆरुगमि, ऋंदुकॊनियॆं नूरिवारि गावलिवारिन् ॥ 141 ॥

व. अप्पुडु चप्पुडुकाकुंड दप्पुटडुगुलिडुचु, निनुपगॊलुसुल मॆलुसुलु व.डिन दालंबुलु महोत्तालुंडैन बिड्डनिकि नड्डंबु गाक कीलूडि वीडिपड, यरळंबुलु विरळंबुलै सरळंबुलगु मॊगसाललं गडचि, पापरेडु वाकिळ्ळु मरल मूयुचु, वडगलॆडगलुग विप्पि, कप्पि, येचि, काचिकॊनि वॆंट नंटिराग गडंगि नडचुनॆड ॥ 142 ॥

क. आ शौरिकि दॆरुवॊसगॆ न-
काशोद्धत तुंग भंग कलित धराशा-
काशयगु यमुन मुनु सी-
तेशुनकु बयोधि त्रोव यिच्चिन भंगिन् ॥ 143 ॥

व. इट्लु यमुन दाटि, दूरिचनि, नंदुनि मंदं जेरि, यंदमंदनिद्रं बॊदि, यॊड लॆरुंगनि गॊल्ललं दॆलुप नॊल्लक, नित्य प्रसादयगु यशोद शय्य नॊय्यन चिन्नि नल्लनय्य नुनिचि, चय्यन नय्यव्वकूतु नॆत्तुकॊनि, मरल निंटिकि बॆंटिपक वच्चि, यच्चिरुत पापनु देवकि प्रक्कं जक्कनिडि ॥ 144 ॥

निकल, झट प्रसूति-गृह का अहाता पारकर गये। १३९ [व.] तब उधर, १४० [कं.] नद की पत्नी यशोदा के (गर्भ से) हरि की योगमाया जब कन्या होकर उत्पन्न हुई तब उस माया के स्पंदन से पहरेदारों के साथ सभी गाँव वालों पर बेहोशी छा गई। १४१ [व.] जब वसुदेव [शिशु को लेकर] खामोशी से, डगमगाते हुए आगे बढ़े तो किवाड़ों के अर्गल और लोहे की जंजीरें आप से आप ढीली हुईं, जकड़े हुए ताले खुल कर नीचे गिर पड़े, द्वारों की पटरियाँ चौड़ी खुल गईं, उस अनुपम शिशु के रास्ते में आड़े न हुए। कक्षाओं को एक-एक कर पार करते हुए वसुदेव जब जाने लगे तो शेषनाग पीछे से सब किवाड़ फिर से बंद करते आये। वे अपने (सहस्र) फन फैलाकर शिशु के सिर पर छाया देते हुए उनके साथ-साथ चलने लगे। १४२ [कं.] जिस प्रकार पूर्व काल में समुद्र ने सीतापति (राम) को रास्ता दिया था, उसी प्रकार उत्तुंग तरंगों के साथ भूमि, आकाश और दिशाओं में उमड़कर प्रचंड वेग से प्रवाहित होती हुई यमुना ने उस समय शौरी (वसुदेव) को [पार जाने का] रास्ता दिया। १४३ [व.] इस प्रकार तेजी से यमुना पार कर [वसुदेव] नंद के व्रज में पहुँचे; वहाँ शरीर की सुध भूल गहरी नींद में पड़े हुए ग्वालों को जताये बिना, सदा प्रसन्न रहनेवाली यशोदा की शय्या के पास पहुँचे,

कं. पदमुल संकॅललिडुकोनि
मदि दलकुचु शूरसुतुडु मंदुडु वोलॅन्
बॅदरु गल रीति देहमु
गदलिचु नॉदिगियुंडॅ गरुवतनमुनन् ॥ 145 ॥

कं. वनजाक्षुनि दॅच्चुटयुनु, दनसुत गॊनिपोवुटयुनु दानॆरुगक मू-
गिननिद्र जॊक्कुचुंडॅनु, वनजाक्षि यशोद रेयि वसुधाधीशा ! ॥ 146 ॥

अध्यायमु—४

सी. अंत बालिक यावुरनि येड्चु चिरु चप्पुडालिचि वेकन नार्कियिटि
कावलिवारु मेल्कनि चूचि तलुपुल ताळमुल् तॊटिविधमुन नुंड
दॅलिसि चक्कन वच्चि देवकि नीळ्लाडॆ रम्मु रम्मनि भोजराजुतोड
जॆप्पिन नातडु चिडिमुडिपाटुतो दल्पंबुपै लेचि तत्तरमुन

ते. वॆंड्रुकलु वीडबै चीर व्रेलि याड
तालिम कीलूड रोषाग्नि दर्पमाड

और उसके बग़ल में श्यामल शिशु को धीरे से लिटाया। फिर झटपट उस माई की बिटिया को उठाकर अविलंब अपने आवास पर पहुँचे और उसे देवकी के बाजू में धर दिया। १४४ [कं.] [बाद को] शूरसेन के पुत्र [वसुदेव] ने मन में विचलित होते हुए अपने पैरों को [पहले की तरह] लोहे की ज़ंजीरों से बाँध लिये, और मतिमंद और भयभीत के समान थरथर काँपते हुए कोने में दुबककर बैठ गये। १४५ [कं.] हे वसुधाधीश (परीक्षित राजा)! वनजाक्षी (कमलनयनी) यशोदा अपनी पुत्री को ले जाने और [उसकी जगह] वनजाक्ष (विष्णु) को लाकर लिटा देने की बात जानती ही न थी, वह तो गहरी नींद में रात भर अचेत पड़ी रही। १४६

अध्याय—४

[सी.] सौरी से शिशु-रोदन की हल्की-सी आवाज़ कानों में पड़ते ही पहरेदार लोग झटपट उठ खड़े हुए, देखा तो कक्ष के ताले जैसे के तैसे (जकड़े पड़े) थे। दौड़कर उन्होंने भोजराज (कंस) को खबर दी कि देवकी ने प्रसव किया है और फ़ौरन चले आने को कहा। चिड़चिड़ाकर कंस बिस्तर पर से उठा, झुँझलाहट के साथ [ते.] प्रसूति-कक्ष की तरफ़ बढ़ा। उसके सिर के बाल खुले थे; उपरना अस्त-व्यस्त लटक रहा था; हिम्मत ढीली पड़ गई; बदन रोषाग्नि से जल रहा था, वैर चुकाने के

भूरि　वैरंबुतो　गूड　पुरिटि　यिटि
जाड　जनुदेंचि　या　पाप　जंप　गदिय ॥ 147 ॥

व. अंत देवकि यड्डंबु वच्चि यिट्लनियें ॥ 148 ॥

उ. अन्न ! शर्मिपुमन्न ! तग दल्लुडुगाडिदि ! मेनगोडलो
मन्नन सेयुमन्न ! विनु मानिनि जंपुट राचपाडि गा-
दन्न ! सुकीर्तिवै मनगदन्न ! महात्मुलु वोवु त्रोव वो-
वन्न ! भवत्सहोदरि गदन्न ! निनुन् शरणंबु वेडेंदन् ॥ 149 ॥

कं. कट्टा !　यार्गुरु　कोड्कुल
वट्टि　वधिंचितिवि　याड्डुबड्डुचिदि　कोडल्
नेट्टन　चंपगवलेने
कट्टिडिवि　गदन्न !　यन्न !　करुणिपगदे ॥ 150 ॥

कं. पुत्रुडु नी व्रतुकुनकुनु, शत्रुंडनि विंटि गान समयिप दगुन्
पुत्रुलकु नोमनेतिनि, पुत्रीदानंबु सेसि पुण्यमु गनवे ! ॥ 151 ॥

व. अनि पय्येंद जक्कग सवरिंचुकोनुचु, वलवरिंपुचु, भ्रांति पडि, कूतुं ग्रक्कुन नक्कुनं जक्क हत्तुकोनि, चेक्कु चेक्कुन मोपि, चक्कन नुत्तरीयांचलंबुन संचलतं गप्पि, चप्पुड्डुगा गुट्टियड, नय्येडं ब्रय्यंवडि, वाड्डु पोडिमि चेड, दोबुट्टुवुं दिट्टि, चिट्टिपट्टि यावुरनि वापोव, गावरंबुन नड्डगु लोंडिसि,

आवेश में वह उस शिशु को मसल डालने के लिए झपट पड़ा। १४७ [व.] देवकी ने उसे अटकाते हुए यों कहा: १४८ [उ.] भैया ! शांत हो जाओ, यह तुम्हारा भानजा नहीं, बल्कि भानजी है, मेरी बात मानो, स्त्री की हत्या करना क्षत्रियो की रीति नहीं है; तुम सुकीर्ति कमाकर फूलो-फलो। महात्मा लोग जिस रास्ते जाते हैं, तुम भी उसी रास्ते चलो। मैं तुम्हारी बहिन हूँ, शरण माँगती हूँ। १४९ [कं.] आह ! तुमने मेरे छः पुत्रों को अब तक मार डाला, यह तो कन्या है, तुम्हारी भानजी है, क्या इसका भी वध करोगे ? भैया ! इस पर दया करो [इसे जीने दो]। १५० [कं.] सुना था कि मेरा पुत्र ही तुम्हारा प्राणघातक शत्रु होगा, इसी भय से तुमने मेरे सभी पुत्रों का अंत कर दिया, सो सही है। पुत्र पाने का पुण्य मैंने नहीं किया। [कम से कम] इसका प्राण बचा कर पुत्री-दान करो और पुण्य कमाओ। १५१ [व.] इस प्रकार मिन्नत करके देवकी ने आँचल सँभाल कर, भ्रांति से बलबलाते हुए पुत्री को छाती से दबाकर रख लिया; उसका गाल अपने गाल से सटाकर, उत्तरीय के अंचल से शिशु को ढाँप लिया और ज़ोर-ज़ोर से कंस की दुहाई देने लगी। तब कंस ने मर्यादा तोड़, बहिन का तिरस्कार कर, मस्ती से उछलकर

तिगिचि, वडि वॅडिसिपडं बुडमि पयि बड व्रेसिन, नब्बालयु नेलं बडक, लील नॅगसि, नव्य दिव्यमालिका गंधबंधुर-मणिहाराद्यलंकार मनोहारिणियु, गदा शर शंख चक्र चर्म चापासि शूलंबुलॅनिमिदि करंबुलं गरंबॉप्प नॉप्पुचु, सिद्ध चारण किन्नर गरुड गंधर्वादि वैमानिकुलु कानुक-लिच्चि पॉगड, नॅगडुचु, नच्चरल याटपाटलकु मॅच्चुचु, मिट नुंडि कंटबडि, कंटुपड, गंसुनिकिट्लनियॆ ॥ 152 ॥

उ. तॅंपरिवै पॉरिबॉदिनि देवकिबिड्डल जन्निकुर्रलं
जंपिति विकनैन नुपशांति वहिपक रालमीद न-
न्नॉंपिति विस्सिरो यिदियु वीरमॆ ना सरसन् जनिंचि निन्
जंपॆडु वीरुडॉक्कचॆंस सत्कृति नॉंदॆडुवाडु दुर्मती ! ॥ 153 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 154 ॥

कं. महनीय गुणास्पदयै, महिलो ना देवि जनमु मन्निपंगा
बहु नाम निवासंबुल, बहु साममुलं जरिचॆ भद्रात्मिकयै ॥ 155 ॥

व. अंत ना बोटि पलिकिन कलिकिपलुकुलु मुलुकुलै, चॆवुल जिलिकिन नुलिकिपडि, जळकु गदिरिन मनंबुन घनंबुग वॆरगंदि, कंदि, कुंदॆडु देवकी

उस नन्ही-सी बच्ची को, जो रुदन कर रही थी, झटके से खीच लिया और ज़मीन पर ज़ोर से दे मारा। किंतु वह शिशु नीचे नहीं गिरी; लीला से अधर (आकाश) में उड़कर [अपना निजरूप दिखाया] नव्य-दिव्य-मालिका गंध से सुवासित, मणिहार, वस्त्र आदि अलंकारों से मनोहर, शंख, चक्र, गदा, शर, चर्म, चाप (धनु), खड्ग, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रधारिणी, अष्ट भुजाओं से दीप्तिमती, सिद्ध, चारण, किन्नर, गरुड़, गंधर्व आदि वैमानिकों के अर्पित उपहार स्वीकार करती हुई, उनके किये स्तोत्रपाठ सुनकर प्रसन्न होती हुई, अप्सराओं के नृत्य की सराहना करती हुई [विष्णु-मायादेवी ने] अंतरिक्ष में प्रत्यक्ष होकर कंस को इस प्रकार संबोधित किया : १५२ [उ.] हे दुर्मति कंस ! तुमने धृष्टता से देवकी के निरीह शिशुओं को बारी-बारी से मार डाला, तब भी तुम्हें तृप्ति न हुई, पत्थरों पर पटककर मुझे भी तुमने दुखाया। छिः ! यह [हिंसा] भी कोई बहादुरी है ? तुम्हारा वध करनेवाला एक वीर पुरुष मेरे साथ ही पैदा होकर एक जगह पाला-पोसा जा रहा है। १५३ [व.] ऐसा कहकर : १५४ [कं.] वह महान् गुण-संपन्न देवी [अदृश्य हुई, फिर] भू पर अनेक स्थानों में अनेक नामों से विलसित होकर भक्तों का कल्याण करती हुई पूजी जाने लगी। १५५ [व.] उस रमणी के मनोहर वचन कंस के कानों में लोहे की कीलों के समान चुभ गये, वह चौंक उठा, मन काँपने लगा; अत्यंत भयभीत हुआ। दुःख से तपकर व्याकुल पड़े हुए देवकी और

वसुदेवुल राविंचि, यादरंबुन गारविंचि, चेरि, वारितो निट्लनियें ॥ 156 ॥

उ. पापुड बालघातकुड बंधुविरक्तुड दुष्टचित्तुडन्
गोपनुडं जरन्मृतुड ग्रूरुड ब्राह्मणहंत भंगि मी
पापल जंपितिन् बयलिपल्कुल नम्मिति साधुलार ! ना
पापमुलुग्गडिपक कृपापरुलै कनरे शमिंपरे ! ॥ 157 ॥

उ. ऑक्कॅड ब्राणुलंदरु निजोचितकर्ममु लोलि द्रिप्पगा
नॉक्कॉक मेनितो वॉडमि यॉक्कॉक त्रोवनु राकपोकलं
जिक्कुल बॉदुचुं दुदलु चेररु संसृतितोड वायरे
नॅक्कडि हंत मी शिशुवुलॅक्कडि हन्युलु दूरनेटिकिन् ॥ 158 ॥

कं. पगतुर जॅरिचितिति ननियुनु
बगतुरचेजॅडिति ननियु बालुडु दलचुन्
बग चॅलुमुलु लेवात्मकु
बग चॅलुमुल कोलु कर्मबंधमु सुंडी ॥ 159 ॥

व. अनि पलिकि, कन्नीरु निंचि, वगचि, वॅगचुचु, देवकी वसुदेवुल पादंबुल

वसुदेव को नजदीक बुलाकर आदर-भाव से उन्हें शांत किया और कहा : १५६ [उ.] मैं पापी, बालघातक [बच्चों का वध करनेवाला], बन्धुद्वेषी, दुष्टचित्त, क्रोधी, क्रूर और जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हूँ। आकाशवाणी पर विश्वास रखकर मैने ब्राह्मण-हंतक की तरह तुम्हारे शिशुओं का वध किया था। हे साधु पुरुष ! मेरे किये पाप अनेक हैं। उन्हें मत गिनाइए, कृपालु होकर शांत हो जाइए। १५७ [उ.] समस्त प्राणी एक जगह स्थिरता से नही रहते। उनका किया उचित और अनुचित कर्म ही उन्हें एक-एक शरीर देकर एक-एक जगह उत्पन्न करता है, क्रमशः उन्हें एक-एक रास्ते पर चलाता रहता है, वे लोग आवागमन के उलझन मे पड़कर गम्यस्थान नही पहुँच सकते। संसार से उनका संबंध टूटता नही है। [यथार्थ में] मै कहाँ का हंता (हत्यारा) हूँ और तुम्हारे बच्चे कहाँ के हन्य (मारे जानेवाले) है ? [न मैं मारनेवाला हूँ और न तुम्हारे बच्चे मरनेवाले है। कर्म की गति देखकर] मेरी निंदा करना व्यर्थ है। १५८ [कं.] बालक (अज्ञानी) यह सोचता है कि मैंने [अमुक] शत्रुओं का नाश किया है और मैं [अमुक] शत्रु के हाथ विनष्ट हो गया हूँ। [वास्तव में] शत्रुता और मित्रता आत्मा को नहीं है (आत्मा से संबंधित नही हैं) शत्रुता और मित्रता का मर्म कर्मबंध में है [इसे आप जानिए]। १५९ [व.] इस प्रकार कहकर कंस ने फूट-फूटकर रोते हुए आँसू बहाये। फिर देवकी और वसुदेव के पाँव पड़े

बट्टुकोनि, संकॅललु विप्पिंचि, मिक्किलि यक्करगल वाक्यंबुल नैक्यंबुलु नॅरपिन, वारुनु, बरितप्तुंडैन कंसुनि जूचि, रोषंबुनु बासिरि। अंत ना वासुदेवुंडु बाब किट्लनियॆ ॥ 160 ॥

शा. बावा! नी वचनंबु निक्कमु सुमी प्राणुल् गतज्ञानुलै
नी वेनंचुनु लोभ मोह मद भी निर्मित्रता मोद शो-
कावेशंबुल नॊंडॊरुंबॊडुतुरेकाकारुडै सर्व रू-
पाविष्टुंडगु नीश्वरुंडॊलयलेरन्योन्य विभ्रांतुलै ॥ 161 ॥

व. अनि यिट्लु प्रसन्नुलैन देवकीवसुदेवुल यनुज्ञ वडसि, कंसुंडिटिकि जनि, या रेयि गडपि, मरुनाडु प्रव्दनं ब्रॊद्दुनं दनकुं बरतंत्रुलगु मंत्रुल राविंचि, योगनिद्रवलनं दा विनिन वृत्तांतंबंतयु मंतनंबुन नॅरिंगिचिन, नपुडु वार-लतनि किट्लनिरि ॥ 162 ॥

कं. इट्टैन दडय नेटिकि
पट्टणमुल मंदलंदु बल्लॆल नॆल्लन्
बुट्टॆडि पॆरिगॊडि शिशुवुल
बट्टि वधियॆंदमु मम्मु बंपुमधीशा! ॥ 163 ॥

म. भवदीयोज्वल बाहु चाप विलसद् बाणावळी भग्नुलै
दिविजाधीश्वरुलेक्रियं बडिरॊ ये देशंबुलं डागिरो

(क्षमा माँगी)। उनकी बेड़ियाँ खुलवा दीं, अत्यंत आत्मीयता के वचन कह स्नेह प्रगट किया। इस पर उन दोनों (देवकी और वसुदेव) ने कंस का पछतावा देख अपना रोष त्याग दिया। तब वसुदेव ने अपने श्यालक (कंस) से यों कहा : १६० [शा.] हे श्यालक! तुम्हारा कथन एकदम सच है। लोग ज्ञानहीन होकर "तू तू, मैं मैं" कहते हुए लोभ, मोह, मद, भय, शत्रुता, संतोष और शोक आदि के वशीभूत हो जाते है। वे लोग भ्रांतिपूर्ण विचार रखकर एक-दूसरे का वध करते रहते है। समस्त प्राणियों में पैठकर एकाकार में रहनेवाले ईश्वर को वे लोग पहचान नहीं सकते। १६१ [व.] इस प्रकार देवकी और वसुदेव जब प्रसन्नचित्त हुए, तब उनसे विदा लेकर कंस अपने घर पहुँचा। वह रात बिताकर अगले दिन बड़े सबेरे ही उसने अपने अधीन मंत्रियों को बुला भेजा और योग-निद्रा (मायादेवी) से उसने जो सुना वह सारा वृत्तान्त सुनाकर उनसे मंत्रणा की। तब उन सचिवों ने उससे यों कहा : १६२ [कं.] यदि ऐसा है तो अब विलंब क्यों करना? नगरों में, ग्रामों में और ग्वालों की सारी बस्तियों में पैदा होनेवाले और पाले जानेवाले समस्त शिशुओं को पकड़कर वध कर डालेगे। हे राजन्! हमें (इस कार्य के लिए) भेज दीजिए। १६३ [म.] तुम्हारे वलिष्ठ हाथों के धनुष से छूटे बाणों की

शिवुनि जॊच्चिरो ब्रह्म जॆंदिरो हरि सेविंचिरो मौनि वृ-
त्ति बनांतंबुल निल्चिरो मनकु शोधिपंदगुन् वल्लभा ! ॥ 164 ॥

कं. नॊच्चिचरि शात्रवुलनुचुन्नु
विच्चलविडि दिरुग बलदु विविधाकृतुलन्
ज्रुच्चिलि वत्तुरु वारलु
सच्चिनयंदाक मरव जनदधिपुनकुन् ॥ 165 ॥

कं. ऒत्तिकॊनुचु रानी जन
दॆत्तिन रोगमुल रिपुल निंद्रिययमुल नु-
त्पत्ति समयमुल जॆरुपक
मॆत्तन गारादु रादु मीद जयिपन् ॥ 166 ॥

म. अमरश्रेणिकि नॆल्ल जक्रि मुखरुंडा चक्रि धर्मंबुनं
दमरुन् गोवुलु भूमिदेवुलु दिति क्षाम्नाय कारुण्य स-
त्यमुलुन् याग तपो दमंबुलुनु श्रद्धा शांतुलुन् विष्णु दे-
हमुलिन्निटिनि संहरिंचिन नतंडंतंबुनुं बॊंदंडिन् ॥ 167 ॥

व. कावुन ॥ 168 ॥

चोट खाकर कितने ही देवता लोग अब तब क्षत-विक्षत हो चुके हैं। [बचकर निकल भागे हुए] कुछ (देवता) लोग मालूम नहीं किन देशों में जाकर छिप गये है। हो सकता है, शिव की शरण में गये हों, या ब्रह्मदेव के पास पहुँचे हों, अथवा हरि (विष्णु) की सेवा में लगे हुए हों, [नहीं तो] मुनिवृत्ति धारण कर वनांतरों मे रहते हों— हे स्वामी ! हमें ढूंढ़कर उन सबका पता लगाना चाहिए। १६४ [कं.] यह समझकर कि शत्रु समूह हार खा चुका है, तुम्हें निस्संकोच (मनमाने तौर पर) घूमना नही चाहिए; वे लोग अनेक वेष धरकर चोरी-छिपे आक्रमण करेंगे। राजा को तब तक भूले रहना नहीं चाहिए, जब तक शत्रुओं का अंत न हो गया हो। १६५ [कं.] रोग, रिपु (शत्रु) और इंद्रियों को सिर उठाकर प्रबल न होने देना चाहिए, आरंभ में ही उन्हें बिना दबाये नरमी से काम न लेना, यदि नरम पड़ गये तो बाद को उन्हें जीत नही सकेंगे। १६६ [म.] चक्रि (विष्णु) ही देवगण का मुखिया है, और वह विष्णु धर्म में निवास करता है। गौएँ, ब्राह्मण, तितिक्षा (क्षमा), वेद, कारुण्य, सत्य, याग, तप, दम (इंद्रिय-निग्रह), श्रद्धा और शांति —इन सबसे विष्णु का शरीर बनता है। [अतः] इन सबका नाश करने पर विष्णु का संहार हो जाता है। १६७ [व.] इसलिए : १६८ [उ.] हे जननाथ (राजा) ! हमें [आज्ञा देकर] भेज दो। हम लोग चलकर देवताओं को मार

उ. चंपुदुमे निर्लिपुलनु जंकॅल ड्रंकॅल दापसार्वलि
बंपुदुमे कृतांतकुनिपालिकि ग्रेपुलतोड गोवुलन्
द्रंपुदुमे धरामरुल वोलुदुमे निगमंबुलन् विदा-
रिंपुदुमे वसुंधर हरिंपुदुमे जननाथ! पंपुमा ॥ 169 ॥

व. अनि पलुकु मंत्रुल मंत्रंबुल निर्मंत्रितुंडै, ब्राह्मण निरोधंबु निषेधंबनि तलंपक, कालपाशबद्धुंडै, विप्रादि साधुमानवुल जंपन् दानवुलं बंपि, यंतिपुरंबुनकुं जनियॆ। अनंतरंब या रक्कसुलु वॆक्कसंबुलगु मॊक्कलंबुल सज्जनुल पज्जलंबडि, तर्जन गर्जन भर्जनादि दुर्जनत्वंबुल निर्जिंचि, पापंबु लार्जिंचिरि ॥ 170 ॥

आ. वॆदकि वॆदकि दैत्यवीरुलु साधुल, नणप वारिबलमु लणगिपोयॆ
यशमु सिरियु धर्ममायुवु भद्रंबु, नार्यहिंस सेय नणगु गादॆ! ॥ 171 ॥

अध्यायमु—५

व. अंत मंदलो नंदुंडु, नंदनुंडु पुट्टुट यॆरिंगि, महानंदंबुन नॆऱवादुलगु वेदविदुलं बिलिपिंचि, जलंबुलाडि, शुचियॆ, श्रृंगारिंचुकॊनि, स्वस्ति-पुण्याहवाचनंबुलु चदिविंचि, जातकर्मंबुलु सेयिंचि, पितृदेवतल नर्चिंचि,

---

डालेंगे; धमकियों और घुड़कियों से तपस्वियों को यम के घर पहुँचायेंगे; बछड़ों के साथ गौओं का वध कर डालेंगे; ब्राह्मणों को भगा देंगे, वेदों को तहस-नहस कर देंगे, भूमंडल को अपनी मुट्ठी में कर लेंगे। १६९
[व.] इस प्रकार कहनेवाले मंत्रियों की मंत्रणा मानकर, ब्राह्मणों को हानि पहुँचाना निषिद्ध न मानते हुए, कंस स्वयं यमपाश में बँधकर, विप्र (ब्राह्मण) आदि साधुजनों का अंत करने के निमित्त दानवों (राक्षसों) को [आज्ञा देकर] रवाना कर अंतःपुर में चला गया। अनंतर वे राक्षस दुस्सह यातनाएँ देते हुए सज्जनों के पीछे पड़े, तथा तर्जन, गर्जन और भर्जनों(दुष्टता) से उन्हें पीड़ित कर बहुत-सा पाप कमाया। १७०
[आ.] दैत्यवीरों ने ढूँढ़-ढूँढ़कर साधुओं को घर पकड़कर दबा दिया, इस काम में उनका बल क्षीण हो गया। आर्यो (भद्र लोगों) की हिंसा करने से (किसी का भी) यश, धन-दौलत, धर्म, आयु और क्षेम अवश्य ही विनष्ट हो जाते है। १७१

अध्याय— ५

[व.] उधर व्रज (गोकुल) में नंद ने यह जानकर कि उनका नंदन (पुत्र) हुआ है, महान आनंद के साथ स्नान आदि से शुचि (परिशुद्ध) हो

क्रेपुलतोडगूड गंसेसिन पाडि मोदवुल रेंडु लक्षलनु, गनककलश मणि-
वसन विशालंबुलैन तिलशैलंबुलेडिटिनि भूदेवतल किच्चिन ॥ 172 ॥

कं. ई याभीरकुमारुडु, श्रीयुतुडै वीरवैरि जेतयुनै दी-
र्घायुष्मंतुंडगु ननि, पायक दीविंचिरपुडु ब्राह्मणजनमुल् ॥ 173 ॥

कं. दुंदुभुलु मोरसे गायक, संदोहमु वाडे सूतसमुदायमुतो
वंदिजनुलु कीर्ति चिरि, क्रंदुग वीतेंच मद्रकाहळ रवमुल् ॥ 174 ॥

कं पल्लव तोरण राजित
वल्ली ध्वजराज धूप वासनमुलतो
सल्ललितमुले याप्पेनु
वल्लववल्लभुल यिड्ल वाकिड्लेल्लन् ॥ 175 ॥

कं. पसुपुलु नूनेलु नलदिन, पस दनरि सुवर्ण बर्हिवर्ह प्रभतो
बसिमि गलिगि वेलुगोंदुचु, वसुलन्नियु मंदलंदु ग्रसरिंचे नृपा ! ॥ 176 ॥

कं. क्रेळ्ळुरिकि मसले लेगलु
मल्लडि गोनि रंके लिडियें मदवृषभंबुल्
पेल्लुग मोदवुल पोंदुगुल
जल्लिचें वालु वालु संभववेळन् ॥ 177 ॥

[वस्त्र-आभूषणों से] अलंकृत हुआ। वेदज्ञ और कुशल ब्राह्मणों को बुलवाकर स्वस्ति-पुण्याहवाचन पढ़वाया और शिशु का जातकर्म करवाया। पितृ-देवताओं का अर्चन (पूजन) किया। [उसके बाद] ब्राह्मणों को दो लाख अलंकृत दुधारू सवत्स (बछड़ों-सहित) गायों का और सुवर्ण-कलश, मणि, वसनों के साथ सात तिलकूटों का दान दिया। १७२ [कं.] ब्राह्मणों ने निश्चय-पूर्वक ऐसा आशीर्वाद दिया कि यह आभीर-कुमार (अहीर-बालक) वीर वैरि-विजेता (शत्रुवीरों को जीतनेवाला), श्री (भाग्य) संपन्न और दीर्घायुष्मान हो जाय ! १७३ [कं.] [नंद के मंदिर मे] दुंदुभियाँ बजी; गायक-समूह ने [गीत] गाये; सूत और बदीजनों ने यश का कीर्तन किया; काहलों की मंगल ध्वनि [सर्वत्र] व्याप्त हुई। १७४ [कं.] बल्लव (अहीर) सरदारों के गृहद्वार तोरणों से सज गये, बेल-बूटों और ध्वजाओं से अलंकृत हुए, और धूपों की सुगंधों से सुवासित हुए। १७५ [कं.] हे राजन् ! ग्वालों ने अपनी धेनुओं को हल्दी और तेल मल-मलकर उनकी शोभा बढ़ाई; उनके बदन सुवर्ण की छाया से चमक उठे; सिरों पर बँधे बर्हि-बर्ह (मोर के पंखों के मुकुट) की प्रभा छिटकाती हुई वे गायें चारों तरफ़ विहार करने लगीं। १७६ [कं.] [बालक के जन्म के समय गोकुल में] बछड़े उछल-कूद करते, वृषभराज मस्ती से दहाड़ते, गौएँ थनों से

कं. आरग जदिवॅडि पॉगडॅडि
वारिकि विद्यलनु ब्रतुकुवारिकि लेमि
जेरिनवारिकि नॅल्लनु
गोरक मुनु नंदुडिच्चॅ गो धनचयमुल् ॥ 178 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 179 ॥

कं. कंचुकमुलु तल चुट्लुनु, गांचन भूषांबरमुलु गड्ु मॅरयग ने-
तॅंचिरि गोपकुलंदरु, मंचिपदार्थमुलु गॉनुचु माधवु जूडन् ॥ 180 ॥

कं. एतॅंचि चूचि चॅलगुचु, नेतुल बॅरुगुलनु वाल नीळ्ळनु वॅन्नं
ब्रीति वसंतमु लाडिरि, यातुरलै सरसभाषलाडुचु गॉल्लल् ॥ 181 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 182 ॥

आ. एमि नोमुफलमॉ यित प्रॉद्दॉक वार्त
विंटि मबललार ! वीनुललर
मन यशोद चिन्नि मगवानि गर्नॅनट
चूचिवत्तमम्म ! सुदतुलार ! ॥ 183 ॥

व. अनि यॉंडुरुल लेपि, गोपिक लोपिकलु लेनि चित्तंबुल नॅत्तिन तत्तरंबु-
लौत्तुकोन, नुदारंबुलगु शृंगारंबुल निड्लु वॅलुवडि ॥ 184 ॥

कं. जडगतुलुनु वलु पिरुदुलु,
बिडिकॅडु नडुमुलुनु वलुद बिगि चनुगवलुन्

दूध चुवाते दिखाई दिये। १७७ [च.] नंद ने विद्वानों, स्तोत्रपाठकों, विद्या से जीविका कमानेवालों और याचकों को उनके माँगने के पहले ही गौएँ और धन-दौलत देकर तृप्त किया। १७८ [क.] उस अवसर पर : १७९ [व.] व्रज के समस्त गोपालक, कुरते, पगड़ियाँ, सुवर्ण-आभूषण और वस्त्र आदि से लैस होकर उत्तम पदार्थों के उपहार लेकर माधव (विष्णु) को देखने चले आये। १८० [कं.] वे अहीर लोग उस बालक को देखकर हर्ष से फूल उठे, घी, दूध, दही, माखन, अबीर और रंग घुला हुआ पानी एक-दूसरे पर फेंकते हुए वसंत (फाग) खेलने लगे और सरस भाषणों से हँसी-चुहल करने लगे। १८१ [व.] तदनंतर : १८२ [आ.] "न मालूम किस व्रत का फल है, इतने समय के बाद हमने एक कर्ण-मधुर वार्ता (समाचार) सुनी, हे ललनाओ ! हमारी यशोदा ने आज एक छोटा छोटा जना है; रमणियो ! चलो, उसे देख आवेगी।" १८३ [व.] इस प्रकार कहती हुई गोपिकाएँ एक-दूसरे को बुला-बुलाकर, उतावली हो, संभ्रम के साथ सज-धजकर घरों से निकल पड़ीं। १८४ [कं.] मंद-गमन, विशाल नितंब (चूतड़), मुट्ठी भर कमर (पतली कमर), घन-कुच-द्वंद्व,

वॆडद नयनमुलु सिरि दड
वडु मोमुलु भ्रमरचिकुर भरमुलु नमरन् ॥ 185 ॥

उ. वेडुकतोड ग्रॊम्मुडुलु वीड गुचोपरि हार रेख ल-
लूलाड गपोलपालिकल हाटकपत्र रुचुल् विनोदनं
बाड बटांचलंबुलसियाडग जेरि यशोदयिंटिकिन्
जेडिय लेगि चूचिरॊगि जिष्णुनि विष्णुनि जिन्नि कृष्णुनिन् ॥ 186 ॥

व. चूचि संतसिचि तॆच्चिन कानुकलिच्चि ॥ 187 ॥

ते. पापनिकि नूनॆ दलयंटि पसुपु वूसि
बोरुकाडिच्चि हरिरक्ष पॊम्मटंचु
जलमुलॊककोन्नि चुट्टि राजल्लि तॊट्ल
नुनिचि दीविंचि पाडिरय्युविदलॆलूल ॥ 188 ॥

कं. जो जो कमलदळेक्षण !
जो जो मृगराजमध्य ! जो जो कृष्णा !
जो जो पल्लवकरपद !
जो जो पूर्णेंदुवदन जो जो यनुचुन् ॥ 189 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 190 ॥

कं. पलु तोयंबुल जगमुल, बलु तोयमुलंदु मुंचि भासिल्लॆडि या
पलुतोयगाडु वल्लव, ललना करतोयमुल जॆलंगुचु दडियुन् ॥ 191 ॥

विशाल नयन, श्री (लक्ष्मी) को विचलित करनेवाले मुख [-मंडल], भौंरों से [काले] चिकुरभार (बालों के खोंपे) [इनसे सुशोभित अहीर रमणियाँ] १८५ [उ.] [जब नंद की ड्योढ़ी पर चाव से जा रही थीं, तब] उनके जूड़े (केशबध) खुल गये, स्तनों पर हार झूलने लगे, सोने के कर्णफूलों की छवि कपोलों पर क्रीड़ा करने लगी, साड़ियों के आँचल खिसकने लगे। इस प्रकार चलकर उन युवतियों ने यशोदा के कक्ष में विजयी, विष्णु-स्वरूप नन्हें कृष्ण के दर्शन किये। १८६ [व.] संतोष पाकर उन्होंने [अपने-अपने लाये] उपहार भेंट किये। १८७ [ते.] उन स्त्रियों ने उस शिशु को तेल और हल्दी लगाकर [अभ्यंगन] स्नान कराया, और "हरिरक्षा" कहते हुए पानी को बच्चे के चारों तरफ़ फेर दिया! आशीश देकर उन्होंने बच्चे को पालने में लिटाया और [इस प्रकार] लोरी गाने लगीं : १८८ [कं.] जो-जो (लोरी में संबोधन) कमलदल-लोचन; मृगराज (सिंह) की जैसी कमरवाले ज़ो-ज़ो; हे कृष्ण जो-जो; पत्तों जैसे [कोमल] हाथ-पैरवाले जो-जो; पूर्णचन्द्र-सा मुखवाले जो-जो। १८९ [व.] इस प्रकार : १९० [कं.] अनेक जलराशियों से भरे जग को अनेक

कं. लोकमुलु निदुर वोवनु
जोकोट्टुचु निदुरवोनि सुभगुडु रमणुल्
जोकोट्टि पाड निदुरं
गेकोनु क्रिय नूरकुंडे गनु वेंदुवकयुन् ॥ 192 ॥

सी. एवामुलेंरुगक येपारु गट्टिटकि बसुल कापरि यिंट वामु गलिगे
ने कर्ममुलु लेक येनयु नेंक्कटिकिनि जातकर्मंबुलु संभविंचे
ने तल्लि चनुबालु नेरुगनि प्रोड यशोद चन्नुल पाल चौरव येरिगे
ने हानि वृद्धुलु नेरुगनि ब्रह्मबु पोदिगिटिलो वृद्धि बोंद जोच्चे

आ. ने तपमुलनैन नेलमि बंडनि पंट, वल्लवी जनमुल वाड वंडे
ने चदुवुलनैन निट्टिट्टि दनरानि, यर्थ मवयवमुल नंद मोंवे ॥ 193 ॥

म. चेंयुवुल् सेयुतरिन् विधातकरणि जेन्नोंदु संतोष दृ-
ष्टियुतुंडै नगुचुन् जनार्दनुनि माड्किन् बोल्चु रोषिंचि यु-
न्न येडन् रुद्रुनि भंगि नोप्पुनु सुखानंदंबुनं बोंदि त-
न्मयुड ब्रह्ममु भाति बालुडमरुन् बाहुळ्य बाल्यंबुनन् ॥ 194 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 195 ॥

[प्रलयकाल के] जल-प्रवाहों में डुबोकर प्रकाशमान रहनेवाला वह बहुरूपी (सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता विष्णु) बल्लव-ललनाओं (अहीर-स्त्रियों) के हाथों से (डाले) जल में भीगकर शोभित हुआ १९१ [कं.] लोकों (जगत) को थपकी देकर सुलाकर [स्वयं] न सोनेवाला वह सुभग (सुंदर पुरुष विष्णु) रमणियों की थपकियों और लोरियों से नींद का बहाना करते हुए आँख मूंदे चुपचाप पड़ा रहा। १९२ [सी.] उस वीर बहादुर ने जिसने कभी जन्म का बन्धन नहीं जाना, [आज] चरवाहों के घर जन्म पाया। उस असहाय-शूर को जो बिना किसी कर्म (संस्कार) के बढ़ चला, आज जातकर्म [करा लेने] का संयोग हुआ। किसी माता का स्तन्य (दूध) न जाननेवाले उस प्रौढ़ ने आज यशोदा के स्तन्य की रुचि जानी। वह ब्रह्म जिसकी हानि और वृद्धि नही देखी गई, आज अंक में पाला जाने लगा। [आ,] किसी भी तपस्या से न उगनेवाली फ़सल [आज] ग्वालिनों के यहाँ उपजी। किसी भी विद्या के द्वारा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह सौंदर्य अब [उस बालक के] अवयवों में विलसने लगा। १९३ [म.] वह बालक [विविध] चेष्टा करते समय ब्रह्मदेव के समान भासित होता; दृष्टियों में संतोष और मुख पर हँसी व्यक्त करते समय जनार्दन (विष्णु) की तरह शोभित होता, और रोष बतलाते समय रुद्र (शिव) की भाँति दिखाई देता, सुखानंद तन्मयता में परब्रह्म के समान [अपने बचपन में] दिखाई देता था। १९४ [व.] उस समय : १९५

आ. कौडुकु गन्न वेड्क कॉनसाग रोहिणि
जीर वंचि चित्र चेलमुलनु
मंडनमुल निच्चि मन्निचें नंदुडा-
यंबुजाक्षि प्रीतयै चरिप ॥ 196 ॥

व. अदि मॉदलु मॉदवुल कदुपुलु पॉदुवुलु गलिगि युंडें। अंत नंदुंडु गोप-
कुल ननेकुल गोकुल रक्षकुं दक्षुलेन वारिनि नियमिंचि, मथुरकुं जनि,
कंसुनिकि नेटेटं वॅट्टॅडि यरि बॅट्टि, वीड्कॉनि, वसुदेवुनि कडकुं जनि,
यथोचितंबुग दर्शिंचिन ॥ 197 ॥

कं. नंदुनि बॉडगनि प्राणमु, बॉदिन वॉदियुनु वोलॅ बॉलुपारुचु ना-
नंदाश्रुलु गडकन्नुल, ग्रंदुकॉनं गेलुसाचि कौंगिट जेर्चॅन् ॥ 198 ॥

व. मरियु गौगलिंचुकॉनि, सुखासीनुनि जेसि, वसुदेवुंडु तन कॉडुकु वलनि
मोहंबु दीपिप नंदुनकिट्लनियॅ ॥ 199 ॥

कं. संतति लेदनियॅडि घन
चिंतनमुल मुनिगि मुदिसि चिक्किन नीकुन्
संतति गलिगॅनु भाग्यमु
संततिहीनुनिकि सौख्य संतति गलदॅ ॥ 200 ॥

कं. पॉडगंटि निन्नु ब्रतिकिति, गडचिति नापदल निक गार्यमुलं दे
यॅडमडुगु लेनि नॅच्चॅलि, वॉडगांचुट चच्चि मरल बुट्टुटगादे ! ॥ 201 ॥

[आ.] पुत्र जन्म के आनंद से भरकर नंद ने रोहिणी को बुलवाया, और वस्त्राभूषणों से उसका सम्मान किया। उस कमलाक्षी (रोहिणी) को इससे बड़ा संतोष हुआ। १९६ [व.] उस समय से लेकर नंद के घर दुधारू गायों की समृद्धि रहने लगी। अनंतर नंद गोकुल की रक्षा में अनेक समर्थ गोपालों को नियुक्त कर [आप] मथुरा चले गये। कंस को प्रतिवर्ष जो कर देना था वह चुकाकर, बिदा हो वसुदेव के यहाँ जाकर समुचित रीति से उनसे भेंट की। १९७ [कं.] नंद को देखकर वसुदेव को ऐसा लगा कि शरीर में फिर से प्राणों का संचार हुआ हो, नेत्रों में आनंद के आँसू भर गये, उन्होंने हाथ फैलाकर नंद को गले से लगा लिया। १९८ [व.] नंद को सुखपूर्वक विठाकर अपने पुत्र पर का मोह [हृदय में] उमड़ आने के कारण वसुदेव ने उनसे यों कहा : १९९ [कं.] संतान न होने की गहरी चिंता में मग्न हो बूढ़े और दुर्बल होने के बाद [एकाएक] तुम्हें संतान का भाग्य प्राप्त हुआ। सच है, संतानहीन को सौख्य-पुंज कहाँ से प्राप्त होंगे ? २०० [कं.] तुम्हें देखकर मैं [पुनः] जीवित हुआ हूँ; मैं अब सारे संकटों को पार कर गया, किसी भी कार्य में अलगाव (दुराव) न

कं. पलु पाटुल बड़ु जनुलकु, निल नोंकचो नुंड गलदे येरुल वेंटन्
गलसि चनु त्राकुलन्नियु, बलु वेंटल बोवुगाक पायकयुन्ने ? ॥ 202 ॥

म. बलुरोगंबुल नोंदकुन्नवे पसुल् पालिच्चुने धेनुवुल्
कोलकुल् वागुलु वारिपूरितमुले गोष्ठप्रदेशंबुलं-
बुलुल् दुव्वुलु संचरिपवु गदा पोल्पावने घोषमुल्
कलवे पच्चनि पूरिजोंपमुलु तत्कांतार भागंबुलन् ॥ 203 ॥

कं. तन पुत्र मित्र मुखरुल, दनुपक चूडकयु वारु दरिगि नशिपन्
मनुचु गृहमेधियाश्रम, -मुन नुंडेडवानि कोक्क मोदमु गलदे ! ॥ 204 ॥

कं. नी कांतयोव्द नीवुनु, नीकांतयु गारविप निनु वंड्रिग ना-
लोकिपुचु नी मंदनु, ना कोडुकुन्नाडे नंद ! नंदान्वितुडे ? ॥ 205 ॥

व. अनिन नंदुंडिट्लनियें ॥ 206 ॥

शा. नीकुं देवकिकि जनिचिन सुतानीकंबु दोड्तोड मु-
न्नी कंसुंडु वधिचें मी सुत दुदिन् हिंसिप जेतप्पि ता-
नाकाशंबुन केगें बाल यिदि दैवाधीन मापद्दशन्
शोकंबंदुनें तक्ज्ञुडूरडिलु ना सूनुंडु नी सूनुडे ॥ 207 ॥

रखनेवाले हार्दिक मित्र को पाना मरकर फिर से प्राणवान होने के बराबर है, इसमें संदेह नही २०१ [कं.] अनेक कष्टों के पाले पड़नेवाले जनों को भू पर कहीं स्थिरता नहीं मिल सकेगी, नदी में गिरकर प्रवाह के साथ [खिचे] जानेवाले पेड़-पौधे एक-दूसरे से बिलग हो अलग-अलग रास्ते बह जाते हैं ।२०२ [म.] [तुम्हारे यहाँ] क्या चौपाये सभी बिना किसी व्याधि के स्वस्थ तो है ? क्या धेनुएँ दूध दे रही है ? नदी-नाले और पोखरे जलपूर्ण हैं या नहीं ? गाय-गोठों के आसपास बाघ-चीतों का संचार तो नही हो रहा ? अहीर बस्तियाँ निरापद पनप रही हैं न ? वनस्थली हरी-भरी लताकुंजों से शोभायमान तो है ? २०३ [कं.] अपने पुत्र, मित्र और बड़े लोग जब छीजते और नष्ट होते रहते है, तब उन पर ध्यान दिये बिना उन्हें [त्राण देकर] संतुष्ट किये बिना जो गृहस्थ जन [स्वार्थपूर्ण] जीवन बिताता रहता है, उसे संतोष कैसे मिलेगा ? २०४ [कं.] हे नंद ! तुम्हारी बस्ती में, तुम्हारी स्त्री के साथ तुम दोनों का लाड़-प्यार पाते हुए, तुम्हें पिता मानते हुए मेरा जो पुत्र रह रहा है, वह क्या आनंद से है ? २०५ [व.] यह सुनकर नंद ने कहा : २०६ [शा.] तुम्हारे और देवकी के जने सभी पुत्रों को जनमते ही इस कंस ने वध कर डाला, और अंतिम संतान —पुत्री को भी जब कुचलने लगा तो वह बाला हाथ से बचकर आकाश में उड़ गई; यह सब दैवाधीन है । इसे जाननेवाला शोक नहीं करता, आश्वस्त होता है, [यह समझ लो] तुम्हारा पुत्र ही मेरा पुत्र है । २०७ [व.] नंद के यह

व. अनि वसुदेवुंडु नंदुनकु मरियु निट्लनियॆ ॥ 208 ॥

कं. जनपति करि यिडितिवि ममु
गनु गॊंटिवि मेमु निन्नु गंटिमि मेल-
य्यॆनु बॊम्मिकनु गोकुल-
मुन नुत्पातमुलु दोचु मुनुकॊनवलयुन् ॥ 209 ॥

अध्यायमु—६

व. अनि पलिकि, वसुदेवुंडु नंदादुलैन वल्लवुलनु वीड्कॊलिपिन, वारलु गॊब्बुन वडिगल गिब्बलं बून्चिन शकटंबुलु प्रकटंबुलुग नॆक्कि, तमतम पल्लॆल त्रोवलं बट्टि चनिरि। आ नंदुंडु प्रतीतंबुलैन युत्पातंबुलु मुंदर बॊडगनि, शौरि तनतो बलिकिन पलुकुलु दप्पवनुचु दलंचुचुंडॆ। अंत ॥ 210 ॥

सी. कसु पंपुन बालघातिनि पूतन पल्लॆल मंदल बट्टणमुल
निल नॆल्लचो बालहिंस गाविंचुचु जनुचु नॆव्वनि पेरु श्रवणवीथि
बडिनयंतन सर्वभयनिवारणमगु नट्टि दैत्यांतकुंडवतरिंचि
युन्न नंदुनि पल्लॆ कॊकनाडु खेचरियै वच्चि यंदु माया प्रयुक्ति

ते. गामरूपिणियै चॊच्चि कानकुंड
नरिगि यिल्लिल्लु दप्पक यरसिकॊनुचु

कहने पर वसुदेव फिर से यों बोले : २०८ [कं.] तुमने राजा को राजस्व चुकाया, हमे देखा, हमने भी तुमको देखा, अच्छा हुआ। अब तुम्हें शीघ्र गोकुल जाना होगा, लगता है, वहाँ उत्पात होने जा रहा है । २०९

अध्याय—६

[व.] यों कहकर वसुदेव ने नंद आदि गोपों को बिदा किया तो वे लोग ऐसे रथों पर चढ़कर, जिनमें तेज़ बैल जुते हुए थे, अपने गाँवों को रवाना हो गये। नंद ने अपने आगे उत्पातों के लक्षण देखकर सोचा कि वसुदेव का कथन अन्यथा नही हो सकता। तब : २१० [सी.] कंस की आज्ञा से बालघातिनी (बच्चों का वध करनेवाली) पूतना शहरों, गाँवों और देहातों के सभी बच्चों को मार डालती हुई, चलते-चलते एक दिन आकाशमार्ग से आकर नंदगाँव में उतरी जहाँ उस दैत्यांतक (राक्षसों का अंत करनेवाले) विष्णु ने अवतार लिया और जिनका नाम कानों में पड़ते ही समस्त भयों का निवारण हो जाता है। [ते.] उसने अपनी माया रचकर कामरूप ग्रहण किया और अलक्षित रूप से घर-घर

नंद गृहमुन बालुनि नाद मॆकटि
विनि प्रमोदिंचि सुंदरीवेष यगुचु ॥ 211 ॥

मत्त. क्रालु कन्नुलु गुब्ब चन्नुलु गंडु वॊदनि चंदुरं
बोलु मोमुनु कल्दु लेदन बुद्धिदूऱनि कौनु हे-
राळमैन पिरुंदु पल्लवराग पाद करंबुलुन्
जाल दॊड्डगु कॊप्पु नॊप्पग सर्व मोहनमूर्तितोन् ॥ 212 ॥

म. कांचनकुंडल कांतुलु गंडयुगंबुन ग्रेळ्ळुरुकन् जडपै
मिंचिन मल्लॆल मेलिमि तावुलु मॆच्चि मदाळुलु मिन्नुन रा
नंचित कंकणहार रुचुल् चॆलुबारग बेवलुवंचल मिं-
चिचुक जारग निंदुनिभानन येगॆ गुमारुनि यिंटिकिनै ॥ 213 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 214 ॥

म. सिरि; मम्मुं ब्रतुकंग जूचुटकु नै श्रृंगार वेषंबुतो
नरुदे नोपु नटंचु गोपिकलु जिह्वल राक मोहिंचि त-
त्पर लै चूड लतांगि पोयि कनियॆं बर्यंकमध्यंबुनन्
बरु भस्मानलतेजु दुर्जनवधप्रारंभकुन् डिंभकुन् ॥ 215 ॥

व. कनि कदियवच्चु समयंबुन ॥ 216 ॥

जाकर पता लगाया [कि बालक कहाँ पर हैं।] नंद के गृह में शिशु का कंठस्वर सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई और [झट से] सुंदरी का वेष धारण किया। २११ [मत्त.] चंचल नेत्र, गोल और घने स्तन, अमलिन चन्द्रबिंब-जैसा मुख, ऐसी कमर जिसके अस्तित्व में बुद्धि को निश्चय नहीं हो रहा (पतली कमर), विशाल पृष्ठ भाग, नवपल्लव की ललाई लिये हुए हाथ-पैर, बड़ा-सा केशबन्ध (जूड़ा), सबको मोह लेनेवाली मधुर मूर्ति; २१२ [म.] सोने के कर्णकुंडलों की छवि कपोलों पर नृत्य कर रही थी; वेणी (चोटी) की चमेलियों की सुगंधि से आकर्षित होकर भौंरे जुट गये; [हाथ के] कंगनों और [गले के] हारों की चमक-दमक अत्यंत शोभायमान रही; ओढ़नी का अंचल जरा खिसक रहा था —[इस वेष में] वह चद्रमुखी [नंद-] कुमार के घर पर पहुँची। २१३ [व.] उस समय : २१४ [म.] गोपिकाएँ [उसके तेज को देख] अवाक् रह गईं, मोह और तत्परता से उसकी तरफ़ देखती रहीं, उन्होंने मन में समझा शायद लक्ष्मीदेवी हमारा अभ्युदय चाहती हुई इस सुंदर वेष में पधारी है। उस लतांगी (पूतना) ने बिछौने के मध्य में सो रहे उस बालक को देखा जो राख से ढकी अग्नि के समान था, और दुर्जनों के वध में प्रवृत्त हुआ था। २१५ [व.] जब वह (पूतना) पास पहुँच गई, तब : २१६

शा. आ लोकेश्वरुडा चराचरविभुंडा बालगोपालुडा
बालघ्वंसिनि गोंटि गंटिडि वेसन् बालेंत चंदंबुनन्
बालिङ्लन् विषमूनि वच्चुट मदिन् भाविंचि लो नव्वुचुन्
कालुं गेलु नेरंगकुन्न करणिन् गन्मोड्चि गुर्वेट्टगन् ॥ 217 ॥

कं. आ पापजाति सुंदरि
या पापनिपान्पु जेर नरिगि करमुलन्
लेपि चनुंगव शिशुवुन्
मोपुचु मुद्दाडिशिरमु मूर्कॊनि पलिकॆन् ॥ 218 ॥

कं. चनु नीकु गुडुपजालॆडि
चनुवारलु लेरु नीवु चनवलॆ ननुचुन्
चनुगुडिपि मीद निलुकड
जनुदान ननंग वेड्क जनु जनु गुडुपन् ॥ 219 ॥

कं. ना चनुबालोक ग्रुक्कॆडु
नो चिन्निकुमार ! त्रावुमोय्यन पिदपन्
नी चॆलुव मॆरुगवच्चुनु
ना चॆलुवमु सफल मगुनु नळिनदळाक्षा ! ॥ 220 ॥

व. अनि बालुनुद्दॆशिंचि मुद्दाडॆडि भंगि माटलाडॆडि चेडियं जूचि ॥ 221 ॥

म. वनिता ! मुट्टकु मम्म चन्नु गुडुपन् वल्दम्म ! नी चन्नु मा
तनयुंडोल्लडु वासि पॊम्मनि यशोदारोहिणुल् सीर ग-

[शा.] उस लोकेश्वर, चराचर (विश्व) के अधिपति, बालगोपाल ने मन में समझ लिया कि यह बालघातिनी, दुष्टा और क्रूर पूतना जच्चा (प्रसूता) स्त्री की भाँति (वेष धरकर) स्तनों पर विष को धारण कर आई है। वह (बालकृष्ण) अंदर ही अंदर हँसकर मानो हाथ-पैर का होश ही नहीं, आँखें मूंद खुर्राटे लेने लगा। २१७ [कं.] उस पापजाति सुंदरी ने विस्तर पर से उस शिशु को हाथों मे उठा लिया, स्तनों से लगाकर मुँह चूम लिया और फिर सिर सूंघकर यों बोली : २१८ [कं.] तुम्हें स्तन्य (दूध) देने में समर्थ नामी [महिला] यहाँ कोई नही है; तुम्हें वह दूध पीना चाहिए, [अतः] तुम्हें दूध पिलाकर मैं अपने यहाँ चली जाऊँगी।" यों कहती हुई वह उसे स्तन्य देने गयी। २१९ [कं.] अरे मुन्ना ! मेरा दूध धीरे-धीरे एक घूंट पी ले; हे कमल-लोचन ! [दूध पिलाने के] बाद तुम्हारी शोभा देख लूंगी, मेरी सुंदरता भी सफल होगी। २२० [व.] बालक से इस प्रकार लाड़-प्यार जतानेवाली उस ललना को देखकर ; २२१ [म.] यशोदा और रोहिणी यों बरजने लगीं— "हे

कॊडकॊक्षिपुचु मायबन्नि पॅलुचन् कोशंबुलो वालु मॅ-
ल्पुन राजिल्लुचु माट मॅत्तदनमुन् लो वाडियुन्नॆर्पडन् ॥ 222 ॥

व. कदिसि कलिकि पलुकुलु वलुकुचु, तुलुकु चॆंडि, जळ्कु सॊरक, यॆदुर निदुरं गदिरिन फणि यनि यॆरुंगक, गुणमति दिगुचु जडमतितॆरंगुन नरिदि जरभितॆरव (नॆरपुनं जनुदॆंचि) पऱपु नडुम नॊरपुगलिगि मॆऱयुचु, कनुंगवं दॆरवक, वॆऱपु मऱपु नॆरुंगक, कॊमरु मिगुलु चिऱुत कॊमरुनि दिगिचि, तॊडलनडुम निडुकॊनि, यॊडलु निवुरुचु, नॆडनॆड ममतं गडलु कॊलुपुचु, "नाकॊन्न चिन्नयन्न ! चन्नुगुडुवु" मनि चन्निच्चु समयंबुन ॥ 223 ॥

सी. मॆल्कॊन्न तॆरगुन मॆल्लन गनुविच्चि ऋगंट जूचुचु गिदिाक नीलिग
यावुलिपुचु जेतुलाकसंबुन जाचि यॊदिगिलि याकॊन्न योजनूदि
विगि चन्नुगव गॆल बीडिच्चि कबळिचि ग्रुक्क ग्रुक्ककु गुटुगुटुकुमनुचु
नीकरॆडु ग्रुक्कल नुविद प्राणंबुलु सयितमु मेनिलो सत्वमॆल्ल

ते. द्रावॆ नदियुनु गुंडॆलु दल्लडिल्ल
जिम्म दिरुगुचु निलुवक शिरमु व्राल
नितर बालुर क्रियवाड वीवु गावु
चन्नु विडुबमु विडुबुमु चालु ननुचु ॥ 224 ॥

रमणी ! बच्चे को छुओ मत, उसे स्तन्य मत दो, तुम्हारा दूध उसे नहीं भाता, उसे छोड़ जाओ"। परंतु उनकी इस पुकार को अनसुनी कर, कोप-दृष्टि का अभिनय करती हुई [उस राक्षसी ने] तलवार की तेज़ धार को म्यान जिस प्रकार छिपा रखता है, उसी प्रकार मन की क्रूरता को ऊपर के मृदु-वचनों से ढक रखा। और २२२ [व.] मीठी बातें बोलती हुई पूतना ने निर्भय और निस्संकोच भाव से आगे बढ़कर उस बुद्धिहीन [व्यक्ति] की तरह, जो सोते हुए साँप को रस्सी समझकर हाथ लगाता है, बिस्तर पर स्थिरता से आँख मूँदे, भय और विस्मृति-रहित शोभायुक्त लेटे हुए उस नन्हें सजग बालक को नीचे उतार लिया। उस वंचक स्त्री ने उस शिशु को जाँघों पर रखकर, बदन पर हाथ फेरती हुई, बीच-बीच में पुचकारती हुई— "मेरा भूखा मुन्ना ! दूध पी ले" —कहकर उसके मुँह में अपना स्तन रख दिया। तब : २२३ [सी.] [नंदकुमार ने] धीरे-धीरे आँखें खोलकर, मानो अभी जाग रहे हों— कनखियों से देखते हुए, [पहले] अँगड़ाई लेकर, फिर हाथ ऊपर फेंक जम्हाई ली, क्षुधातुर शिशु के समान उन्होंने उसका सघन स्तन हाथ के कसकर पकड़ लिया और गुटक-गुटक दो घूंट पी लिये। उन दो घूंटों में उन्होंने उस स्त्री के प्राणों के साथ शरीर का सारा सत्त्व चूस लिया। [ते.] पूतना का कलेजा दहल उठा, छटपटाकर सिर नीचे गिराती हुई बोली— तू और

कं. निब्बरपु दप्पि मंटलु, प्रब्बिन धृति लेक नेत्र पद हस्तंबुल्
गॉब्बुन विवृतमुलुग ना, गुब्बगुचुन्नट्टि कूत गूलॅन् नेलन् ॥ 225 ॥

म. अदरॅन् गॉडलतोड भूमि ग्रह तारानीकमुल् मिटिपं
बॅदरॅन् दिक्कुल मारुम्रोतलॅसगॅन् भीतिल्लि लोकंबुलुन्
गवलं बारॅनु वज्रभिन्न गिरि रेखं बूबदेहंबुतो
द्रिदशध्वंसिनि गूलि कुय्यिडग दद्दीर्घोरु घोषंबुनन् ॥ 226 ॥

कं. अप्पुडु ऍप्परमगु ना
चप्पुडु हृदयमुल जॉच्चि संदडि वॅट्टन्
मुप्पिरिगॉनि पडिरॅरुकलु
दप्पि धरं गॉल्ललेल्ल दल्लडपडुचुन् ॥ 227 ॥

कं. आ जरभिरंड रक्कसि, नैज शरीरंबु नेल नलियं बडिनन्
योजनमुन्नर मेर ध, -राजंबुलु नुग्गुलय्यॅ राजवरेण्या ! ॥ 228 ॥

सी. दारुण लांगूल दंडबंतंबुलु, नगगह्वरमु बोलु नासिकयुनु
गंड शैलाकृति गल कुचयुगमुनु, चिरिसि तूलॅडु नल्ल वॅड्रुकलुनु
जीकटि नूतुल जॅनयु नेत्रंबुलु, बॅनु दिब्ब बोलॅडि पॅद्द पिरुदु
जागुकट्टल बोलु चरणोरुहस्तंबु लिकिन चॅरुवुतो नॅनयु कडुपु

(साधारण) बच्चों के समान नहीं है, स्तन छोड़ दे, बस है, बस है। २२४ [कं.] दाह की लपटों के फैलने, और हाथ, पैर, नेत्र आदि अंगों के नीरस पड़ जाने के कारण वह पूतना धृति खोकर ज़ोर से चीख मारकर [नीचे गिर] ढेर हो गई। २२५ [म.] उसके चीत्कार के गंभीर घोष के कारण पर्वतों के साथ भूमि कंपित हुई; आकाश पर का ग्रह-तारा-समूह हिल गया; दिशाएँ प्रतिध्वनित हुईं; लोक भयभीत हो विचलित हुए; वज्रायुध से टूटे हुए पहाड़ की भाँति देवताओं को ध्वंस (नष्ट) करनेवाली उस पूतना का निज शरीर धड़ाके से गिर पड़ा। २२६ [कं.] उस दुस्सह ध्वनि ने ग्वालों के अंतर् में धँसकर बेहद विकल कर दिया तो सबके होश उड़ गये और वे सुध-बुध भूल ज़मीन पर लुढ़क गये। २२७ [कं.] हे राजेश्वर ! उस ठगिनी राक्षसी का स्वाभाविक शरीर जब नीचे गिरा तो [उसके आघात से] डेढ़ योजन तक भूमि पर के वृक्ष चकनाचूर हो गये। २२८ [सी.] हल में लगाने के डंडे के समान [लंबे] दाँत, पहाड़ी गुफा-जैसी नाक, गोल चट्टानों की आकृति के कुचयुग, फैले हुए लाल-लाल बाल, अंध-कूप सदृश नेत्र, टीलों से नितंब, सेतुबंध (बाँध) के बराबर हाथ-पाँव और जाँघें, सूखा तालाब-जैसा दीखनेवाला पेट, [ते.] इस प्रकार के अंगों के साथ उसका भयंकर बृहत् कलेवर देखने के लिए गोप-

ते. गलिगि षट्क्रोशदीर्घमै कदिसि चूड
भयदमगु दानि घनकळेबरमु जूचि
गोप गोपीजनंबुलु गुंपु गूडि
बेगडुचुंडिरि मनमुन बेंदर गदिरि ॥ 229 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 230 ॥

कं. आ तरि गुडुवग नडचेंनु, नूतन फुल्लाब्जलोचनुडु हरि मृत्यु-
द्योतन गतमुनिसमुदय, -यातन बूतन नेर्रिगि यातनलीलन् ॥ 231 ॥

कं. विषधररिपु गमनुनिकि
विषगळ सखुनिकि विमल विष-शयनुनिकिन्
विषभवभव जनकुनिकिनि
विषकुच चनुविषमु गोनुट विषमे तलपन् ॥ 232 ॥

व. अंत ना गोप गोपीजनंबुलु देलिसि, रोहिणी यशोदलं गूडुकोनि, बेग्गडिलक डग्गरि ॥ 233 ॥

शा. नेलं गूलिन मेटि पेन्नुरमुपै निर्भीति ग्रीडिप नो
बाला! रम्मनि मूपु जेर्चुकोनि संस्पर्शिचि यूरार्चचुन्
गोलांगूलमु द्रिप्पि गोवुरजमुन् गोमूत्रमुन् जल्लि त-
द्बालांगंबुल गोमयंबलदिरा पंड्रेंडु नामंबुलन् ॥ 234 ॥

गोपियों की भीड लग गई। उसे देखकर वे लोग भयभीत हो थरथराने लगे। २२९ [व.] इस रीति से : २३० [कं.] नवविकसित कमल-समान लोचन वाले हरि ने समझ-बूझकर दूध पीते-पीते अपनी लीला से उस पूतना का अंत कर दिया जो [लोकजनों के लिए] मृत्युस्वरूपिणी और मुनिसंघ के लिए उपद्रवकारिणी थी। २३१ [कं.] गरुड़गमन, शिवसखा, शेषशयन तथा ब्रह्मजनक— विष्णु भगवान के लिए विषकुचवाली पूतना का स्तन-विष [पचा] लेना कुछ कठिन नही था। [विषधर = साँप। विषधररिपु = सर्पशत्रु—गरुड़। विपगळ = शिव। विषशयन = शेषशयन। विषभव = जलज। विषभवभव = कमलभव— ब्रह्मा]। २३२ [व.] जब गोपों और गोपियों को यह [कांड] मालूम हुआ तो वे लोग रोहिणी और यशोदा को साथ लेकर, भय छोड़ उस [कलेवर] के पास पहुँचे। २३३ [शा.] [देखा, तो] नीचे पड़ी हुई उस विशाल काया के वक्ष पर बालक निडर होकर क्रीडा कर रहा था। "आ जाओ मेरे लाल!" कहकर उन्होंने उसे उठाकर कंधे पर डाल लिया, हाथ फेरकर बहलाया। फिर गोपुच्छ (गाय की पूंछ) [सिर के चारों ओर] फेर कर, गोरज और गोमूत्र छिड़ककर, विष्णु के द्वादश (बारह) नामों के

रक्षा· मरियु नंतटं दनियक, गोपिकलाचमनंबुलु चेसि, दक्षलै, मुनु तमकु रक्षाकरंबगु बीजन्यासंबु चेसिकोनि, चिन्नियन्न! नी यड्डुगुलजुंड्डुनु, जानुवुलणिमयुनु, दोडल यज्ञुंड्डुनु, गटितलंबच्युतुंड्डुनु, गड्डुपु हयास्युंड्डुनु, हृदयंबु केशवुंड्डुनु, नुरमीशुंड्डुनु, गंठंबिनुंड्डुनु, भुजंबुलु चतुर्भुजुंड्डुनु, मुखंबुरुक्रमुंड्डुनु, शिरंबीश्वरुंड्डुनु, रक्षितुरु। मुंदु चक्रियु, वॅनुक गदाधरुंडैन हरियु, वाश्वंबुल धनुर्धरुंडैन मधुवैरियु, नसिधरुंडगु नजनुंड्डुनु, गोणंबुल शंख चक्र धरुंडैन युरगशयनुंड्डुनु, मीदु नुपेंद्रुंड्डुनु, ग्रिंदु ताक्ष्युंड्डुनु, नंतटनु हलधरुंडगु पुरुषुंड्डुनु गातुरु। इंद्रियंबुल हृषीकेशुंड्डुनु, व्राणंबुल नारायणुंड्डुनु, जित्तंबुनु श्वेतद्वीपपतियुनु, मनबुनु योगेश्वरुंड्डुनु, बुद्धिनि वृश्निगर्भुंड्डुनु, नहंकारंबुनु भगवंतुंडैन परुंड्डुनु, बालनंबुसेयुदुरु। नीवु क्रीडिंचुनेड गोविंदुंड्डुनु, शयनिंचुतरिनि माधवुंड्डुनु, नडचुवेळ वैकुंठुंड्डुनु, गूर्चुन्नसमयंबुन श्रीपतियुनु, गुड्डुचुकालंबुन सर्वभक्षकुंडैन यज्ञभुजुंड्डुनु, नेमरकुंड्डुदुरु। निन्नु बेर्कोनिन, दुस्स्वप्न वृद्धबाल ग्रहंबुलुनु. गूष्मांड डाकिनी यातुधानुलुनु, भूत प्रेत यक्ष राक्षस पिशाच विनायकुलुनु, गोटरा रेवती ज्येष्ठलुनु, बूतना मातृकादि गणंबुलुनु नशियिंचुदुरु। नीयंदु व्राणेंद्रिय शरीर निरोधंबु-

---

उच्चारण के साथ बालक के अंगों पर गोमय (गोबर) लीपते हुए रक्षा दी (बला दूर करने की क्रिया—टोटका)। २३४ [रक्षा.] रक्षाकवच :(टोटके) से तृप्ति न हुई तो गोपिकाएँ आचमन से शुचीभूत हो, बीजन्यास करके [बालक की तरफ़ फिरकर] यों रक्षावचन कहने लगीं; "प्यारे लला! तेरे पाँवों को ब्रह्मा, घुटनों को अनिल, जांघो को यज्ञ, कमर को अच्युत, पेट को हयग्रीव, हृदय को केशव, छाती को ईश, कंठ को सूर्य, भुजाओं को चतुर्भुज, मुख को त्रिविक्रम, सिर को ईश्वर सुरक्षित रखेंगे। तेरे आगे चक्रि (विष्णु), पीछे गदा लिये हरि, बाजुओं में धनुर्धारी मधुवैरि और खड्गधारी अजन, कोणों में शंख-चक्र-धारी उरगशयन (शेषशायी), ऊपर उपेंद्र, नीचे तार्क्ष्य (गरुड़), चारों तरफ़ हलधर रखवाली करेंगे। तेरी इंद्रियों का हृषीकेश, प्राणों का नारायण, चित्त का श्वेतद्वीपपति, मन का योगेश्वर, बुद्धि का पृश्निगर्भ, अहंकार का भगवान् पालन करेंगे। खेलते समय गोविंद, सोते में माधव, चलते हुए वैकुंठ, बैठते वक़्त श्रीपति, खाते समय सर्वभक्षक यज्ञभोजन (अग्नि) तेरी रक्षा में सजग रहेंगे। तेरा नाम लेने पर दुस्स्वप्न वृद्ध-बाल ग्रह; कूष्मांड-डाकिनी-राक्षस; भूत-प्रेत-यक्ष-राक्षस-पिशाच-विनायक; कोटरा-रेवती-ज्येष्ठा; पूतना-मातृका आदि गण विनष्ट हो जायेंगे। तेरे अंतर् में प्राण-इंद्रिय और शरीर का निरोध

लैन युन्मादंबुलुनु, नपस्मारंबु, महोत्पातंबुलुनु वोंदकुंडुंगाबुत-
ननि रक्ष चेसि दीविंचिरि। अंत ॥ 235 ॥

आ. आ पॅद्दवेडबंबुल, पापनिकिनि जन्नु गुडिपि पानुपुपै सं-
स्थापिंचि कप्पि कूरुकु, मो पापड, यनि यशोद योय्यन पाडॅन् ॥ 236 ॥

व. अंत नंदुंडु मोदलैन गोपकुलु मधुरनुंडि वच्चि, रक्कसि मेनु गनि वॅर-
गुपडि, मुन्नु वसुदेवुंडुत्पातंबु लॅरिंगि चप्पॅ; अतंडु महायोगियनि पोगडि,
कठोरंबगु पूतन योडलु कुठारंबुल नरिकि, तम कुटीरंबुलकुं दव्वगु
प्रदेशंबुन पटीरंबुल दहनंबु संग्रहिंचि दहिंचिरि ॥ 237 ॥

आ. पोगिलि पोगिलि कालु मगुव देहंबुन
नगरु परिमळमुल पोगलु वॅडलॅ
देहकलमषमुलु श्रीहरिमुखमुन
द्रावबडुट जेसि भूवरेण्य ! ॥ 238 ॥

कं. हरि दनमोदं बदमुलु
गरमुलु निडि चन्नु गुडिचि कदिसिन मात्रन्
हरिजननि पगिदि बरगनि
करिगॅनु दुरितमुलु वासि यसुरांगनयुन् ॥ 239 ॥

करनेवाले उन्माद, अपस्मार महोत्पात प्रवेश न करें।" इस प्रकार रक्षा करके उन्होंने उस बालक को आशीर्वाद दिया। २३५ [आ.] [अनंतर] उस बहुत बड़े मायावी शिशु को स्तन्य देकर यशोदा ने बिस्तर पर लिटा दिया। फिर [कपड़ा] ओढ़कर— "मेरे मुन्ना, सो जा, सो जा" कहकर लोरी गाने लगी। २३६ [व.] तब नंद आदि ग्वाले मथुरा से लौटकर रास्ते में उस राक्षसी का कलेवर देख डर गये; "वसुदेव ने इन उत्पातों का हाल पहले ही जानकर हमें सचेत किया, वे महायोगी हैं" —ऐसा कहकर नंद ने वसुदेव की प्रशंसा की। उन लोगों ने पूतना के कठोर कलेवर को कुठारों से काट-काटकर टुकड़े कर दिये, फिर अपने आवास-स्थान से दूर के प्रदेश में चंदन की चिता रचकर दहन कर दिया। २३७ [आ.] उस स्त्री का शरीर जब धधक-धधककर जलने लगा तो उसमें से अगर-परिमल (सुगंध) युक्त धुआँ निकलने लगा। हे राजन ! उस देह में जो कुछ कल्मष (मैल) था हरि ने पी लिया था [इसी कारण सुगंध निकलने लगी थी]। २३८ [कं.] हरि (विष्णु) ने पूतना के शरीर पर अपने हाथ-पैर रखकर, उसका दूध पीकर उसका स्पर्श किया था। इसके प्रभाव से वह असुर स्त्री पाप-रहित होकर हरि की माता के योग्य सद्गति (मोक्ष) पा गई। २३९ [कं.] जब कि वह शिशुघातिनी विषाक्त स्तन्य एक बार हरि

कं. वॆन्नुनि कौकमरि विपमगु
चन्निच्चिन वालहंत्रि चनॆनट दिविकिन्
वॆन्नुनि गनि पॆंचुचु दन
चन्निच्चिन सतिकि मरियु जन्ममु गलदे ! ॥ 240 ॥

कं. हरि गनि चन्नुलु गुडिपॆडु
तरुणुलु प्रापिंचु पदमु दलपन् वशमे
हरि यारगिंचुटकु वा-
लगुरिसिन धेनुवुलु मुक्ति कौनल जरिचुन् ॥ 241 ॥

कं. आ पूतन मॆयिगंधमु, गोपालुरॆरिगि यिट्टि कुवनित यॊडलं
दीपाटि स्वादुगंधमु, प्रापिंचुनॆ यनुचु जनिरि पल्लॆलकधिपा ! ॥ 242 ॥

व. अंत नंदुंडुनु, बरमानंदंबुन निटिकि जनि, व्रेतल चेत रक्कसि सेतलन्नियु नॆरिगि, वॆरगुपडि, पापनि लेपि, शिरंबु मूर्कॊनि, मुद्दाडि, मुदंबुन नुंडॆ। अनि चॆप्पिन, परीक्षिन्नरेंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 243 ॥

कं. ए ये यवतारंबुल, ने ये कर्ममुलु सेसॆ नीशुडु हरि म-
द्रायतनमुलन्नियु विन, बायदु चित्तंबु सॆवुल पंडुवुलय्यॆन् ॥ 244 ॥

को देने मात्र से स्वर्ग प्राप्त कर सकी, तो हरि को जन्म देकर अपना दूध पिला-पिलाकर पालनेवाली माता को पुनर्जन्म क्यों होगा। (नहीं होगा) २४० [कं.] हरि को जनकर स्तन्य देनेवाली युवतियों को जो उत्तम पद प्राप्त होता है उसका अनुमान [भी] नहीं किया जा सकता। [इतना ही नहीं] हरि के पीने के लिए दूध देनेवाली गायों को भी मुक्ति-स्थान प्राप्त हो सकेगा। २४१ [कं.] जब ग्वालों ने देखा कि पूतना के [मृत] शरीर से सुगंध निकल रही है तो [उन्हें अचरज हुआ और] यह कहते हुए वे अपनी बस्ती में चले गये कि इस दुष्ट वनिता के शरीर से ऐसी मीठी गंध कैसे निकली ? २४२ [व.] तब नंद भी परम आनंद पाकर घर पहुँचे। ग्वालों के मुँह उन्होंने उस राक्षसी की सारी करतूत सुनी तो घबड़ा गये, कुमार को जगाकर उठा लिया, सिर सूंघकर चूम लिया। उनका चित्त मोद से भर गया। यह सारा कथन [शुकयोगी से] सुनकर राजा परीक्षित ने यों कहा : २४३ [कं.] ईश्वर ने जिन-जिन अवतारों में, जिन-जिन शुभ स्थानों में, जो-जो कृत्य किये— उन सबका वृत्तान्त सुने बिना [मेरा] चित्त [चैन से] रहता नहीं; उनकी कथा कानों को दावत देती है (श्रवण-सुखद है)। २४४ [कं.] बालकृष्ण के संस्मरण संसार रूपी महासमुद्र को

कं. उरु संसार पयोनिधि, तरणंबुलु पापपुंज दळनंबुलु श्री-
करणंबुलु मुक्ति समा, -चरणंबुलु बालकृष्णु संस्मरणंबुल् ।। 245 ।।

अध्यायमु—७

व. अनि तरुवात बालकृष्णुंडेमिचेसें। नायंदु गृप गलदेनि जॅप्पवे यनि यडिगिन राजुनकु शुकुंडिट्लनियें ।। 246 ।।

बालुंडगु कृष्णुंडु चॅंतनुन्न शकटमुनु गूलदन्नुट

सी. बालकुंडोदिगिल बड नेर्चें ननि जन्म-नक्षत्रमंदोकनाडु नंदु
पॉलति वेडुक बोर्कुवोय व्रेतल जीरि वादित्र गीतारवंबु चॅलग
विप्रुलतोगूड वेदमंत्रंबुल नभिषेचनादिक मार्चरिचि
वारि दीवॅनलोंदि वारिकि मोदवुलु नन्नंबु चीरलु नडिगिनट्टु-

आ. लिच्चि बालु दिय्य मॅसग बानुपु सेंचि
निदुर पुच्चि गोपनिवहमुनकु
गोपिकलकु बूज गॉमरार जेयुचु
जननि कॊडुकु मरचें संभ्रममुन ।। 247 ।।

व. आ समयंबुन ।। 248 ।।

पार करानेवाले हैं; पापों के समूह को दलनेवाले हैं; शुभप्रद है; मुक्तिदायक हैं। २४५

अध्याय—७

[व.] फिर राजा ने कहा— "यदि आप मुझ पर कृपा रखते हों तो यह बताइए कि अनंतर बालक (कृष्ण) ने क्या किया।" [उत्तर में] शुक ने यों कहा : २४६

बालक कृष्ण का समीपवर्ती शकट (गाड़ी) को लात मार गिराना

[सी.] नंदपत्नी ने जब जाना कि बालक पलहना सीख गया है, तब जन्म-नक्षत्र के दिन गोपिकाओं को निमन्त्रित कर बालक को मंगल-स्नान कराया। गाजे-बाजे और संगीत के साथ-साथ ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्र-सहित अभिषेचन आदि कराया। उनके आशीर्वाद पाकर उन्हें मुँह-माँगे गो, धन, अन्न, वस्त्रादि के दान देकर [संतृप्त किया]। [आ.] फिर बालक को मीठा खिलाकर बिस्तर पर सुला दिया। गोपिकाओं का आदर-सत्कार करने के उत्साह-संभ्रम में माता को अपने पुत्र की याद न

कं. निद्दुरिचिन शिशु वाकौनि
किदुकुचु जनुगोरि कॆरलि किसलय विलस-
न्मृदु चक्र चाप रेखा-
स्पद पदमुन दन्नॆ नौक्क बंडिन् दंडिन् ॥ 249 ॥

कं. शकटमु हरि तन्निन दिवि
शकटंबे यॆगसि यिरुसु भरमुन गंड्लुन्
विकटंबुग नेलंबडॆ
नकटा ! यनि गोपबृंदमाश्चर्यपडन् ॥ 250 ॥

व. अप्पुडंदुन्न सरसपदार्थंबुलु व्यर्थंबुलै नेलं गूलुटं जूचि, यशोदा नंदमुख्युलैन गोप गोपिका जनंबुलु पनुलु मरचि, पर्वंबुलु मानि, युब्बु चॆडि, वॆरपुलु घनंबुलुग मनंबुलंदु गदुर ॥ 251 ॥

कं. मिन्नुन कूरक यॆगयदु, दन्न समर्थुंडु गाडु तल्पगतुंडी
चिन्नि कुमारुडु तेरे, विन्ननुवुग नॆगसॆ दीनि विधमॆट्टिदियो ! ॥ 252 ॥

व. अनि वितर्किंचु समयंबुन ॥ 253 ॥

कं. वालकुडाकौनि येड्चुचु
गालॆत्तिन दाकि यॆगसॆ गानि शकटमे
मूलमुन नॆगयदनि त-
द्बालुनिकड नाडुचुंडि पलिकिरि शिशुवुल् ॥ 254 ॥

रही। २४७ [व.] उस अवसर पर : २४८ [कं.] निद्रासक्त वह बालक [एकाएक] जागकर भूखे की तरह अँगड़ाई लेता हुआ दूध के लिए रोने लगा। फिर चक्र और चाप (धनुष) की रेखाओं से अंकित अपने पल्लव-कोमल चरण से [पास की] गाड़ी पर ज़ोर से लात मारी। २४९ [कं.] लात मारते ही वह शकट ऊपर अधर (आकाश) में उड़ गया, फिर पहिये के पत्ते और धुरा आदि के टूटने के कारण वह ज़मीन पर आ गिरा। यह [दृश्य] देख वहाँ के ग्वाले आश्चर्य-चकित हुए। २५० [व.] गाड़ी में के सरस पदार्थ सब मिट्टी में बिखर गये। यशोदा, नंद आदि गोप-गोपी जन काम-धाम छोड़, उत्सव-समारंभ बंद करके दौड़ पड़े, उनका उत्साह भंग हुआ, मन आशंका से घबड़ा उठा। २५१ [कं.] "गाड़ी यों ही (अपने-आप) कैसे उड़ी होगी ? यह छोटा कुमार लात मारने में समर्थ नहीं है। वह तो बिस्तर पर सोया हुआ है। फिर यह किस यत्न से ऊपर उड़कर गिरी होगी ? इसका तौर-तरीक़ा समझ नही पड़ता।" २५२ [व.] इस प्रकार वितर्क करते समय : २५३ [कं.] ग्वालों के बच्चे जो वहाँ खेल रहे थे, बोले कि यह गाड़ी अपने-आप नहीं उड़ी, [हमने देखा] इस कुमार

व. इट्लु शिशुवुलु पलिकिन पलुकुलु विनि ॥ 255 ॥

शा. बालुंडॆक्कड बंडि यॆक्कड नभोभागंबु पै जेड्पडन्
गालं दन्नुट यॆक्कडाटपडुचुल् गल्लाडिरी जड्डु ब-
ल्के लोकंबुननॆन जॆप्पवडुने ये चंदमो काक यं-
चालापिंचुचु व्रेलु व्रेतलु प्रभूताश्चर्यलैरंतटन् ॥ 256 ॥

व. अप्पुडा बालुनि रोदनंबु विनि, यशोद परतेंचि ॥ 257 ॥

आ. अलसितिवि गदन्न ! याकॊंटिवि गदन्न !
मंचि यन्न ! येड्पु मानुमन्न !
चन्नु गुडुवुमन्न ! संतसपडुमन्न !
यनुचु जन्नु गुडिपॆ नर्भकुनकु ॥ 258 ॥

व. अंत नब्बालुनि मेन बालग्रहंबु सोकुनु गदा यनि शंकिंचि, गोपकुलनेकु-लनेक बलिबिधानंबुलु चेसिरि। ब्राह्मणुलु दधि कुशाक्षतंबुल होमंबु-लाचरिंचिरि। ऋग्यजुस्साम मंत्रंबुल नभिषेचनंबुलु सेयिंचि, स्वस्तिपुण्याहवाचनंबुलु चदिविंचि, कॊडुकुनकभ्युदयार्थंबु नंदुंडलंक-रिंचिन पाडिमॊदवुल विद्वज्जनंबुल किच्चि, वारल याशीर्वादंबुलु गैकॊनि, प्रमोदिंचॆ। अनि चॆप्पि शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 259 ॥

ने भूख से रोते-रोते अपना पैर उठाकर दे मारा, उस [लात] के लगते ही शकट (गाड़ी) ऊपर उड़ा। २५४ [व.] बालकों का यह कथन सुनकर : २५५ [शा.] उन गोपों और गोपियों को महान् विस्मय हुआ। वे लोग कहने लगे : यह गाड़ी कहाँ ! बालक कहाँ! उसे लात मारकर नभोपभाग (आसमान) में उड़ाना कहाँ ! ये खिलाड़ी बालक झूठ कह रहे हैं; ऐसे निरर्थक बकवादी दुनिया में कहीं नहीं होंगे। २५६ [व.] उस समय कुमार का रोदन सुनकर यशोदा दौड़ आई। २५७ [आ.] "प्यारे ! तुम थक गये हो; हाय, मेरे लाल ! तुम्हें भूख लगी है, लो, दूध पिओ; मेरे अच्छे मुन्ना ! रोओ मत; शांत हो जाओ।" —यों कहते पुचकारती हुई उसने कुमार को स्तन्य दिया। २५८ [व.] नंद आदि गोपों को यह शंका हुई कि बालक को कहीं बालग्रह छू तो नहीं गया हो ? उन्होंने उसके निवारण के लिए अनेकानेक बलि-विधान किये। ब्राह्मणों ने होमाग्नि रचकर दधि, कुश और अक्षतों की आहुतियाँ दीं; ऋग्यजुस्साम (वेदों के) मंत्रों से अभिषेचन किये। स्वस्तिपुण्याहवाचन पढ़वाये गये। पुत्र के अभ्युदय के निमित्त नंद ने सुसज्जित दुधारू गायों का विद्वज्जनों को दान दिया। उनका आशीर्वाद पाकर प्रमुदित हुए। यह (कथा) सुनाकर शुकदेव और भी इस प्रकार बोले : २५९

तृणावर्त संहारमु

कं. कॊडुकु नॊक नाडु तॊड पै
निडुकॊनि मुद्दाडि तल्लि यॆलमि निवुरुचो
गडु दॊड्ड कॊंड शिखरमु
वडुवुन वॆगय्यॆ नतडु वसुधाधीशा ! ॥ 260 ॥

कं. वरुवॆन कॊडुकु मोतनु
वॆरविडि यिलमीद बॆट्टि वॆऱचि जननि दा
धरगाव बुट्टिन महा
पुरुषुडु गावोलु ननुचु बुद्धि दलंचॆन् ॥ 261 ॥

व. अप्पुडु ॥ 262 ॥

कं. खरुडगु कंसुनि पंपुन
नरिगि तृणावर्तुडवनि कबचाटमुगा
सुरकरुवलियै बिसबिस
नरुदरुदन मुसरि विसरि हरि गॊनिपोयॆन् ॥ 263 ॥

कं. सुडि यॆऱुगनि हरि सुडिपड
सुडिगालि तॆऱंगु रक्कसुडु विसरॆडि या
सुडिगालि धूळि कन्नुल,
सुडिसिन गोपकुलु वॆगडि सुडिवडिरधिपा ! ॥ 264 ॥

व. मरियु नव्वलय पवनदनुजुंडु विलयपवनुनि तॆऱंगुन गसिमसंगि, मुसरिन

तृणावर्त का संहार

[कं.] हे भूपाल ! एक दिन यशोदा कुमार को जाँघ पर बिठाकर, मुँह चूम दुलराती रही, तो एकाएक वह बालक पर्वत जैसा भारी लगने लगा। २६० [कं.] उसका भार न सह सकने के कारण माता ने कुमार को नीचे उतारकर ज़मीन पर बिठा दिया; वह विचलित हुई और बुद्धि से अनुमान किया कि हो न हो, यह बालक जगत् की रक्षा के लिए उत्पन्न महापुरुष है। २६१ [व.] तब : २६२ [कं.] राक्षस (प्रवृत्तिवाले) कंस का भेजा तृणावर्त नामक दैत्य बवंडर बनकर अकस्मात् गोकुल की भूमि पर उतर आया। वह आश्चर्यजनक तेज़ी से सारी जगह घेरकर झकझोरते हुए हरि (नंदनंदन) को ऊपर उड़ा ले गया। २६३ [कं.] चक्र(चक्कर) न जाननेवाले हरि (विष्णु) त्रस्त हुए; अंधड़ बने उस राक्षस ने सबकी आँखों में धूल झोंक दी। हे राजन् ! इससे ग्वाले सब भयभीत हो गये। २६४ [व.] उस वात्याचक्र रूपी राक्षस ने प्रलयकाल के

मसरु कविसि विसरॅडि सुरगरुवलि बॉडमिन पुडमिरजंबु वडि नॅगसि, गगनमुन मॅट्रसि, तरणिकिरणमुलु मरुगुवडिन, निबिडमगु बॅंडिदंपु दिमिरमुन दशदिशलॅरुंगनडक, गोकुलं बाकुलंबु नौद, नॉंडॉरुल नॅरुंगक, बॅंडुवडुचुन्न जनंबुल मनंबुल घनंबगु भयंबु रयंबुनं जॅद, नदभ्र परिभ्रमण शब्दंबुन दिगंतंबुलु चॅवुडु पडि, परिभ्रांतंबुलुग नॉक्कमुहूर्त मात्रंबुन भुवनभयंकरत्वंबु दोचॅ। आ समयंबुन ॥ 265 ॥

उ. पापनि जूडगानक विपद्दश नॉंदि फलंगि तल्लि यो
पापड! बालसूर्यनिभ! बालशिरोमणि! नेडु गालिकिन्
जेपडि पोयिते यनुचु जीरुचु दैवमु जाल दूरुचुन्
दापमु नॉंदि नॅव्वगलदय्युचु गुंदुचु विह्वलयुचुन्॥ 266 ॥

कं. सुडिगालि वच्चि निन्नुन्
सुडिगॉनि कॉनिपोव मिट सुडि सुडि गॉनुचुन्
बॅंड गडरॅडि ना मुद्दुल
कॉडुका! येमंटिवनुचु घोरंबनुचुन् ॥ 267 ॥

उ. इक्कड बॅट्टितिं दनयुडिक्कड नाडुचुनुंडॅ गालि दा
नॅक्कडि नुंडि वच्च शिशु वॅक्कडिमार्गमु बट्टि पोयॅ नॅ
नॅक्कड जॉत्तु नंचु गमलेक्षण ग्रेपु दौरंगि खिन्नयै
पॉक्कुचु व्रालु गोवु क्रिय भूस्थलि व्रालॅ दुरंतचिंतयै ॥ 268 ॥

पर्वत के समान चारों तरफ़ धूल झोंक भूमि और आकाश को पाट दिया। रजकणों ने सूर्य की रश्मि को ढक दिया, इससे भयंकर अंधकार छा गया, दिशाएँ सूझ नहीं पड़ती थीं। गोकुल आकुल हुआ, उस घने अँधेरे में एक को दूसरा दिखाई नहीं दिया। लोगों के मन भयाक्रांत हुए और वे निष्प्राण जैसे होने लगे। घनघोर ध्वनि दिगंतों में गूँजती हुई सबको बधिर बना रही थी। इस प्रकार एक मूहूर्त मात्र के लिए सर्वत्र भयंकरता व्याप्त हुई। २६५ [उ.] अपने बच्चे को न पाकर माता यशोदा विपत्ति में फँसकर विकल हो यों जोर-ज़ोर से पुकारने लगी— "हे मेरे लाल! हे बालशिरोमणि! बालसूर्य-सा प्रकाशमान! तू कहाँ है? आज बवंडर के हाथ फँस गया है क्या?" यों गुहराकर संताप के कारण वह दैव को और अपने दैन्य को कोसने लगी। २६६ [कं.] "हे मेरे लाड़ले बेटे! यह कहाँ की आँधी आई [जो] तुझे घेरकर उड़ा ले गई, हाय! अधर (आकाश) में तुझे कितनी पीड़ा हो रही होगी! यह घोर संकट है। २६७ [उ.] अब मैं क्या करूँ? बच्चे को यहाँ बिठाकर गई थी, इसी जगह वह खेल रहा था, [एकाएक] यह हवा का चक्कर कैसे आया? मालूम नहीं मेरा बच्चा किस रास्ते गया!" —इस प्रकार वह कमललोचनी (यशोदा) दुख और

कं. पापनिकै यिट्टु पौगिलॆडि
या पापनि तल्लि जूचि यारट पुड्चुन्
गोपाल सतुलु वाष्पज-
लापूरित नयनलॆरि यार्ति वड्चुन् ॥ 269 ॥

शा. आलो जक्रसमीर दैत्युडु महाहंकारुडै मिटिकिन्
वालुं दोकोनि पोयि, पोयि तुदि दद्भारंबु मोवं बल
श्री लेमिन् वरिशांतवेगुडगुचुन जेष्टिपगा लेक मु-
न्नीला गर्भकु जूड नंचु निटमीदॆट्लंचु र्जितिपुचुन् ॥ 270 ॥

व. अट्लु दनुजुंडु चिंतिपुचुन्न समयंबुन ॥ 271 ॥

कं. वाल द्विरद करंबुल, वोलॆडि करमुलनु दनुजु वौडुग विगियं
गौलिचि ब्रेलवडियॆनु, बालकु डौक कौड भंगि वरुवं यधिपा ! ॥ 272 ॥

कं. मॆड विगिय वट्टुकौनि डिग
वडियॆडि बालकुनि चेत वर्वतनिभुचे
विडिवड जालक वाडुरि
वडि वॆगरॆडु खगमुभंगि भयमुं वौदंन् ॥ 273 ॥

कं. हरि करतल पीडनमुन, वरवशुडै रालमीद भग्नांगकुडै
सुरवैरि मट्टुडु गूलॆनु, पुरभंजन कौल गूलु पुरमुं वोलॆन् ॥ 274 ॥

घोर-चिंता में आक्रांत हो जमीन पर ऐसे गिरी जैसे वछड़े से विछुड़ी गो-माता दुखी हो गिर जाती है। २६८ [कं.] वच्चे के लिए इस तरह दुखित होनेवाली उस वच्चे की माता को देख कर संताप करती हुई ग्वालों की स्त्रियों के नयन वाष्पजल (आँसुओं) से भर गये। २६९ [शा.] इतने में वह चक्रवात (ववंडर) रूपी राक्षस वड़ा घमंडी होकर कुमार को अंतरिक्ष में सुदुर उड़ा ले गया, किंतु अंत में उसका भार सहने की शक्ति न होने के कारण उसकी चाल धीमी पड़ गई, वह और जोर नहीं लगा सका। उसे चिंता हुई कि अव मैं क्या करूँ ? ऐसा वच्चा अव तक नहीं देखा। २७० [व.] जब वह दैत्य इस प्रकार चिंता कर रहा था : २७१ [कं.] हे राजन् ! कुमार ने हाथी के वच्चे की सूँड़ जैसे अपने दोनों हाथों से उस राक्षस के गले को कसकर पकड़ लिया और पहाड़ के समान भारी वनकर लटकने लगे। २७२ [कं.] कसकर गला पकड़कर लटकनेवाले, पर्वत-समान (भारी) वालक के हाथ से छूटने में असमर्थ होकर वह दानव ऐसा छटपटाया जैसा फंदे में फँसा पक्षी तड़प उठता है। २७३ [कं.] हरि (विष्णु) के हाथ [इस प्रकार] पीड़ित होकर वह असुर वीर अशक्त होकर नीचे की चट्टान पर गिर गया, [जिससे] उसका अग-अंग चूर हो

व. अंत गोपकांतलंतयुं गनि, रोदनंबुलु मानि, सम्मोदंबुन विकवकिरिसि, रक्कसुनि युरमुन मुरवु गलिगि, बरुवुलेक व्रेलु बालुं गौंनिवच्चि, मुच्चिरुचुन्न तल्लिकिच्चिरि। अप्पुडु गोपगोपिकाजनंबुलंदरु दमलो निट्लनिरि ॥ 275 ॥

कं. रक्षणमु लेक साधुडु
रक्षितुडगु समत जेसि रायिडुलंदुन्
रक्षणमुलु वेयि गलिगिन
शिक्षितुडगु खलुडु पाप चित्तुंडगुटन् ॥ 276 ॥

म. गतजन्मंबुल नेमि नोचितिमो यागश्रेणु लेमेमि ; से-
सितिमो यव्वरि केमि वेट्टितिमो ये चिंतारति ब्रोद्दु बु-
च्चितिमो सत्यमु लेमि वलिकितिमो ये सिद्धप्रदेशंबु द्रो-
क्किंतिमो यिप्पुडु चूडगंटिमिचटं गृष्णार्भकुन् निर्भयुन् ॥ 277 ॥

व. अनि पलिकिरि। अंत नंदुंडु मुन्नु दनकु वसुदेवुंडु सेप्पिन माटलकु वेरगु पडुचुंडे। मरियुनु ॥ 278 ॥

सी. जननाथ ! यौकनाडु चन्नुचेपिन दल्लि चिन्नि मुद्दुल कृष्णु जेर दिगिचि
येत्ति पैंडीडलपै निडिकोनि मुद्दाडि चन्निच्चि नेम्मोमु चक्क निविरि
यल्लनि नगवुतो नार्वुलिचिन बालु वदन गह्वरमुन वारिनिधुलु
दिशलु भूमियु नवद्वीप शैलंबुलु नेरुलु गालियु निनुडु शशियु

गया। उसका गिरना त्रिपुरांतक (शिव) के बाणों से आहत होकर गिरे हुए पुरों के समान था। २७४ [व.] जब ग्वालिनों ने उसे देखा तो रोना-बिलखना बंद किया, आनंद से फूले न समाये; वे दानव की छाती से लटकते हुए उस हल्के से बालक को उठा लाईं और शोकातुर यशोदा को दे दिया। तब समस्त गोप-गोपी जन अपने मन में कहने लगे : २७५ [कं.] साधु पुरुष अरक्षित (निस्सहाय) होने पर भी अपनी समता बुद्धि के प्रभाव से संकटों को पार कर [अत में] सुरक्षित रह जाता है। कितु दुर्जन हज़ारों रक्षणोपायों के रहते हुए भी पापचित्त होने के कारण अंत में [अपने किये का] दंड भोगता है। २७६ [म.] हम लोगों ने पिछले जन्मों में, मालूम नहीं, कौन से व्रत-साधन किये है ! कौन-कौन से यज्ञ रचे हैं, किसे कौन-कौन से दान दिये हैं, किस दैवचिंतन में रात-दिन बिताये हैं, क्या-क्या सत्य (वचनों का) पालन किया है। कौन से पुण्य प्रदेशों पर पैर धरे हैं— [उन सबके फलस्वरूप] इस जन्म में आज इस कृष्ण-कुमार को जो निर्भीक है, देख सके हैं। २७७ [व.] अनंतर, यह देखकर कि वसुदेव ने पहले जो कुछ कहा था, वह सब सच हो रहा है। नंद को बड़ा विस्मय और भय हुआ। २७८ [सी.] हे नरेश ! एक दिन जब स्तनों में दूध भर आया

आ. दह्नुडाकसंबु दारलु ग्रहमुलु, नखिल लोकमुलु जराचरंबु-
लैन भूतगणमुलन्नियु नुंडुट, जूचि कन्नु मोड्चि चोद्यपडियॆ ॥ 279 ॥

अध्यायमु—८

व. अंत नोक्कनाडु वसुदेवु पंपुन यादव पुरोहितुंडैन गर्गुंडु मंदकुं जनुदेंचिन,
नंदुंडतनि गनुंगोनि, लेचि निलिचि, कृतांजलियै ॥ 280 ॥

कं. कोरि भजिचॆनु नंदुडु, सार गुणाचारमार्गु सत्संसर्गु-
न्नाराधित भर्गुन् मति, -दूरित षड्वर्गु गुजनदुर्गुन् गर्गुन् ॥ 281 ॥

व. मरियु दगिन सत्कारंबुलु सेसि, यिट्लनियॆ ॥ 282 ॥

कं. ऊरक राउ महात्मुलु
वारधमुल यिड्ल कडकु वच्चुटलॆल्लन्
गारणमु मंगळमुलकु
नी राक शुभंबु माकु निजमु महात्मा ! ॥ 283 ॥

तो माता यशोदा ने अपने लाड़के वेटे (कृष्ण) को जांघों पर विठाया, फिर मुँह चूम कर दूध पिलाया। वच्चे के माथे पर हाथ फेरते समय हँसकर कुमार ने जम्हाई ली। तव माता ने वालक के मुँह के अंदर दृष्टि डाली तो उस गह्वर (गुफ़ा) में— समुद्र, दिशाएँ, भूमि, नवदीप, पर्वत, नदियाँ, पवन, सूर्य, [आ.] चंद्र, अग्नि, आकाश, तारा, ग्रह चर और अचर भूतगण, और समस्त लोक दिखाई दिये। यशोदा ने आश्चर्य-चकित होकर आंखें मूंद ली। २७९

अध्याय—८

[व.] एक दिन वसुदेव के भेजने पर यादवों के पुरोहित गर्ग मुनि व्रजगांव में पधारे, नंद ने उठकर उनका स्वागत किया और अंजलिवद्ध होकर : २८० [कं.] उत्तम गुण और आचार के मार्ग पर चलनेवाले, सत्संगति रखनेवाले, शिव की आराधना करनेवाले, काम-क्रोध आदि अरिषड्वर्ग को अपने मन से जीतनेवाले, दुर्जनों के लिए अगम्य —ऐसे गर्ग मुनि का नंद ने चाव के साथ पूजन (भजन) किया। २८१ [व.] उस मुनि का उचित रीति से आदर-सत्कार करके उनसे यों विनती की : २८२ [कं.] महात्मा लोग विना किसी प्रयोजन के नहीं आते; अधम (दीन) लोगों के यहाँ उनका आगमन मंगलकारी (शुभफल-दायक) होता है। हे महात्मा ! आपका आगमन सचमुच हमारे लिए शुभप्रद है। २८३

शा. ज्योतिश्शास्त्रमु कॅल्ल मेटरिवि तेजोमूर्तिवाशांत वि-
ख्यातस्फूर्तिवि ब्रह्मबोधनुडवाकर्णिपु ना पल्कु नि-
र्णीतुंडैन गुरुंडु मानवुलकुन् विप्रोत्तमुंडंड्रु नी
चातुर्यंबुन नी कुमारुलकु संस्कारंबु गाविंपवे ॥ 284 ॥

व. अनि रामकृष्णुलं जूपिन, गर्गुंडु मुन्नु कंसुनिचेत व्रेटुवडि, दिवि कॅगसि पोयिन तॅऱव चॅप्पिन तॅरंगु तेटपड़िच्चि, देवकीदेवि कॉडुकनि कृष्णुनि गंसुंडु दलंचु गावुन रहस्यंबुन संस्कारंबु सेयुट कार्यंबनि नंदानुमतंबुन रोहिणीकुमारुनुद्देशिंचि ॥ 285 ॥

कं. जनुलु रमिंयिप दिरिगॅडि
यनुव कलिमि रामुडनियु यदुसंकर्ष-
बुन संकर्षणुडनियुनु
घन बलमुन बलुडु ननियु गणुतिंचे नृपा ! ॥ 286 ॥

व. मरियु गृष्णुनुद्देशिंचि, तॉलिल यी शिशुवु धवळारुण पीतवर्णुंडै, यिप्पुडु नल्लनैन कतंबुन गृष्णुंडय्यें। वसुदेवुनकु नॉक्कॅड जन्मिंचिन कारणंबुन वासुदेवुंडय्यें। ई पापनिकि गुण रूप कर्मंबुलनेकंबुलु गलुगुटं जेसि, नामंबुलनेकंबुलु गलवु। ई शाबकुनिवलन मीरु दु:खंबुल दरियिंचुदुरु।

[शा.] ज्योतिश्शास्त्र के आप पारंगत हैं; तेजोमूर्ति हैं; आपके ज्ञान की कीर्ति दिगंतों तक व्याप्त हुई है; आप परम ब्रह्मज्ञानी है। अतः मेरी प्रार्थना सुनिये, [आप जैसे] उत्तम विप्र (ब्राह्मण) मानवों के लिए निर्धारित गुरु कहे गये हैं; आप अपनी प्रतिभा से मेरे इन बालकों का [नामकरण आदि] संस्कार संपन्न लीजिए। २८४ [व.] ऐसा कहकर [नंद ने] दोनों बालकों को प्रस्तुत किया तो गर्ग ने कहा कि कंस समझ जायगा कि यह कृष्ण वही कुमार है जिसका उल्लेख (चर्चा) उस योगमाया ने किया था जो कंस के हाथ आहत होकर आसमान पर चढ़ गयी थी। इसलिए इन बालकों का संस्कार गुप्त रीति से करना ही उचित होगा। नंद की सम्मति पाकर रोहिणी के कुमार के विषय में [गर्ग ने] कहा : २८५ [कं.] लोगों के प्रेम करने योग्य सौंदर्य होने के कारण राम, यदु (वंश के) सकर्ष (खीचने) के कारण संकर्षण, बहुत बड़े बल (रखने) के कारण बल (राम) —इन तीनों नामों से हे राजन्! यह बालक प्रसिद्ध होगा। २८६ [व.] कृष्ण के विषय में गर्ग ने कहा कि इस बालक ने पहले (पूर्व में) सफ़ेद, लाल और पीले वर्ण धारण किये थे, और इस समय काला रंग लेने के कारण 'कृष्ण' कहलायेगा। वसुदेव से जन्म पाने के कारण 'वासुदेव' भी कहा जाएगा। इस बालक के गुण, रूप और

ई यर्भकुनिचेत दुर्जन शिक्षणंबुनगु। ई कुमारुंडु नारायण समानुंडनि चॆप्पि, तन गृहंबुन कम्मुनीश्वरुंडु सनियॆं। नंदुंडुनु परमानंदंबुन नुंडॆ। अंत ॥ 287 ॥

श्रीकृष्ण-बलरामुल बालक्रीडाभिवर्णनमु

सी. जानुभागमुल हस्तम्मुलु वीड्वड निडुचु दिग्गन बोर्दुरित नंत
नव्वल पर्यॆदलंदि जव्वाड्डुराल श्रेपुल तोक ललमि पट्टि
विडुव नेरक वानि वॆंनुवॆंट जरुगुचु ,सौरिदि पंकमुलंदु जौत्तुरॆलमि
नॆत्ति चन्निच्चुचो निरुदॆस वालिड्लु चेतुल बुणुकुचु जेपु गलुग

ते. द्रुट्टुरु ग्रुक्क ग्रुक्ककु दोरमगुचु
नाड्डुरु मुद्दुपलुकुलव्यक्तमुगनु
गरमुलल्लार्चि कोरिक गडलुकौलुप
रामकृष्णुलु शैशवरतुल दगिलि ॥ 288 ॥

कं. तडवाडिरि बलकृष्णुलु
दडवाडिरि वारिजूचि तग रंभादुल्
दडवाडिररुलु भयमुन
दडवाडिरि मंतनमुल दपसुलु वेड्कन् ॥ 289 ॥

कर्म अनेको है, अतः यह अनेक नामों से पुकारा जायगा। इस कुमार के प्रताप से तुम लोग अनेक सकटों को पार कर सकोगे, इसके हाथ दुर्जन दंडित होंगे। यह कुमार [साक्षात्] नारायण है। ऐसा कहकर वह मुनीश्वर अपने घर चले गये। नद परम आनद से रहने लगे। तब : २८७

श्रीकृष्ण-बलराम की बाल्य-क्रीडाओं का वर्णन

[सी.] घुटने टेककर हाथ आगे बढ़ाते हुए ये दोनों बालक इधर-उधर झूम-झूमकर खिसकते, कभी स्त्रियो के पलड़े पकड़कर लटकते; बछडों की पूँछ पकड़कर चलते, फिर उन्हें छोड़कर चलना न जानने के कारण साथ-साथ खिचे जाकर कीचड़ में गिरते थे। माताएँ जब स्तन्य देती तो दोनों हाथों से, दोनों तरफ़ के स्तन पकड़ लेते; [ते.] एक-एक घूंट चूसकर खेलने लगते, शैशव के विनोद में मगन हो राम और कृष्ण अव्यक्त-मधुर शब्द मुँह से निकालते हुए हाथ हिलाते हुए दर्शकों के मन के कुतूहल बढ़ाते थे। २८८ [कं.] बलराम और कृष्ण जब घुटनों के बल चलने लगे तो उन्हें देख रंभा आदि (अप्सराएँ) [हर्ष से] देर तक नाचती रहीं; और शत्रु लोग भय से सोच (चिंता) में पड़ गये; तथा तपस्वी

सी. तललॅत्ति मॅल्लन दडवि याडॅडु वेळ पन्नगाधीशुल पगिदि दाल्तु-
रंग संमृष्ट पंकांगरागंबुल नेनुगु गुन्नल यॅत्तु वत्तु-
रसमंबुलंन जवातिरेकंबुल सिगंपु गॉदमल सिरि वहितु-
राननंबुल कांतुलंतंत कॅक्कंग बालार्क चंद्रुल पगिदि दोतु-

ते. रॅलमि तल्लुल चन्नुवालॅल्ल द्रावि
परम योगोद्भवामृत पानलोल
सोलि योगुल विधमुन सॉंपुगंडु-
राकुमारुलु जनमनोहारुलगुचु ॥ 290 ॥

कं. चूडनिवारल नॅप्पुडु, जूडक लोकमुलु मूडु चूपुल दिरुगं
जूडग नेर्चिन बालक, चूडामणि जनुल नॅरिंगि चूडग नेर्चॅन् ॥ 291 ॥

कं. नगवुल विद्यल पोडिमि
नगुबाटुग जेयनेर्चु नगवरि यंतन्
नगुमॉगमुतोड मॅल्लन
नगु मॉगमुल सतुल जूचि नग नेर्चॅ नृपा ! ॥ 292 ॥

कं. अव्वल नॅरुगक मुव्वुरि, कव्वल वॅलुगॉंदु बरमुडर्भकुडै या
यव्वलकु संतसंबुग, नव्वा ! यव्वा ! यनंग नल्लन नेर्चॅन् ॥ 293 ॥

लोग प्रसन्न हो [आपस में] सलाह-मशविरा करने लगे। २८९ [सी.] जब वे [दोनों बालक] सिर उठाकर धीरे-धीरे टटोलते तो शेषनागों के समान दिखाई देते; [हाथ-पैर आदि] अंगों मे लगी मिट्टी और कीचड़ के साथ चलते समय वे (बालक) हाथी के बच्चों की बराबरी करते; कभी धीमी और कभी तेज़ गति से आगे कूदते वक़्त वे सिंह-किशोरों की शोभा पाते; मुख पर की कांति जैसे-जैसे अधिक होती जाती वैसे-वैसे वे उदय-कालीन सूर्य और चद्र के समान प्रकाशमान दिखाई देते। [ते.] लोगों के मन हर लेनेवाले वे बालक मातृस्तन्य पी-पीकर ऐसे झुक-झुक पड़ते जैसे ध्यान-मग्न परम योगीजन ब्रह्मानदामृत का पान कर मस्त हो जाते है। २९० [कं.] वह बालक-चूड़ामणि (-श्रेष्ठ) कृष्ण, जो उन मनुष्यों को नहीं देखते जो उन्हें नहीं देखते (भजन नही करते), और जो इस विश्व को पैदा होते, बढ़ते और नष्ट होते (तीनों दशाओं में घूमते) देखना जानते है, अब ज़रा बड़े होकर [घर के] लोगों को देख-देखकर उन्हें पहचानना सीख गये। २९१ [कं.] हे राजन् ! उस हँसोड़ (बालक कृष्ण) ने, जो अपनी हँसी से समस्त विद्याओं को हास्यास्पद (नाचीज़) बना सकते हैं, [स्वयं] हँसमुख होकर हास्यमुखी वनिताओं को देखकर हँस देना सीख लिया है। २९२ [कं.] जिनकी कोई [जन्मदात्री] माता नहीं है, और जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर —इन त्रिमूर्तियों से परे प्रकाशमान हो रहते हैं

कं. अडुगुलु वेयु गलिगि ई-
इडुगुलने यन्नु मिन्नु नलमिन वालुं-
डडुगिड दौडगेनु शात्रवु-
लडुगुलु सडुगुलुनु वदलि यडु गवनि वडन् ॥ 294 ॥

व. मरियुनु ॥ 295 ॥

सी. तनुवुन नंटिन धरणीपरागंबु पूसिन नैद्रि भूतिपूत गाग
मुंदट वेलुगोंदु मुक्ताललामंबु तोंगलसंगडिकानि तुनुक गाग
फालभागंबुपै बरगु गाविरि बोट्टु कामुनि गेलिचन कन्नु गाग
कंठमालिफलोनि घन नीलरत्नंबु कमनीयमगु मेडकप्पु गाग

आ. हारवल्लुलुरगहारवल्लुलु गाग
बालुलील प्रौढ बालकुंडु
शिवुनिपगिदि नोप्पे शिवुनिकि वनकुनु
वेरुलेमि वेलुप वेलयुनट्लु ॥ 296 ॥

कं. आ पापल विहरणमुलु, तीपुलु वुट्टिंप मरगि तेकुवले का
गोपाल सतुलु मक्कुव, ने पनुलुनु मऱचियुंडिरीक्षणपरलै ॥ 297 ॥

व. आ समयंबुन बालकुल तल्लुलु गोर गोर कोम्मुलु गल जंतुवुलवलन

—ऐसे परमपुरुष [मानवी के] पुत्र बनकर माता (यशोदा) के संतोष के लिए 'माँ', 'माँ' कहकर पुकारना सीख गये। २९३ [क.] यह बालक (कृष्ण) जो [असल में] हज़ारों पैर रखनेवाले (सहस्रपाद) है, और जो दो ही पैरों (क़दमों) में सारा आकाश और भूमि नाप लेनेवाले (वामन) हैं, [अब बड़े होकर] डग बढ़ाकर चलने लगे है। उन्हें देखकर शत्रुओं (राक्षसों) के पैर शिथिल होकर उखड़ते गये। २९४ [व.] और भी। २९५ [सी.] [बालक कृष्ण के] शरीर पर लगी मिट्टी और धूल ही भस्मलेपन बन गया, मस्तक पर चमकनेवाला मोतियों का गहना ही भालचंद्र हुआ, माथे पर दिया हुआ डिठौना (कस्तूरी-तिलक) ही कामदेव को जलानेवाला तीसरा नेत्र हुआ, कठुला में गुँथा हुआ नीलरत्न ही सुंदर कंठ का गरल (विष) बना, [आ.] हारावली ही उरग [सर्प] हार बन गई, इस प्रकार उस प्रौढ़ बालक (विष्णु) ने अपनी बाल-लीला के समय शिव जैसा रूप धारण किया मानो यह दिखाने के लिए कि उनमें और शिव में कोई भेद नहीं है। २९६ [कं.] उन बालकों की क्रीडाएँ जी में जो मिठास पैदा करतीं, उससे छककर ग्वालों की स्त्रियाँ सारा काम-धाम छोड़ लगन से देखती ही रह जाती थी। २९७ [व.] माता यशोदा और रोहिणी सदा सजग रहकर तेज नाखून, दाढ़ें और सींगोंवाले जीव-जंतुओं

नेमरक, जल दहन कंटकादुलयेड मोसपोक, बाल संरक्षणंबु सेयुचु
नुल्लंबुल मोल्लंबुलैन प्रेमंबुलभिरामंबुलुगा विहरिंपुचुंडिरि ॥ 298 ॥

क. तनयीडु गोपबालुरु, तनु गोलुवग रामु गूडि तनुपु गलुगुचुन्
दनु गमनंबुल गृष्णुडु, तनुमध्यलु मेच्च नीलतनुरुचि नमरेन् ॥ 299 ॥

व. मरियु ना कुमारुंडु दिनदिनंबुनकु संचार संभाषण दक्षुंडै ॥ 300 ॥

उ. चप्पुडु सेयकुंडुमनि जंकें योनर्चिन नलिग पोवगा-
नप्पुडु बारसाचि तन नव्वुल विंदुलु वच्चिरंचु न-
व्वोप्पग जीरु तल्लि दॆस कौत्तिलि कृष्णुडु रंतु सेयुचु-
न्नप्पुडु वच्चि चन्गुडुचु नव्वोलयन् मोलगंट नोयगन ॥ 301 ॥

कं. वल्लव गृह नवनीतमु-
लेल्लनु भक्षिंचि वच्चि येरुगनि भंगिन्
दल्लि गदिसि चिट्टाडुचु
नल्लन चनु बुव्वबेट्टुमव्वा! यनुचुन् ॥ 302 ॥

व. मरियु गोपकुमारुलं गूडिकोनि कृष्णुंडु ॥ 303 ॥

सी. गोवल्लभुड नेनु गोवुलु मीरनि वडि ट्रंकें वेचुचु वंगि याडु
राजु ने भटुलु मीरलु रंडु रंडनि प्राभवंबुन बेंकु पनुलु वनुचु
ने दस्करुंड मी रिंटिवारनि निद्र पुच्चि सोम्मुलु गोनिपोयि डागु
ने सूत्रधारि मीरिंदरु बहुरूपुलनि चेलंगुचु नाटलाड बेट्टु

से, तथा पानी, आग, काँटे आदि से अपने बच्चों को सुरक्षित रखते हुए, हृदय में प्रेम बढ़ाकर आनंदपूर्वक दिन बिताती रहीं। २९८ [कं.] अब बालक कृष्ण, बलराम को साथ लिये, समवयस्क ग्वालों के छोकरों से घिरे रहकर धीरे-धीरे टहलने लगे, उनके ये भ्रमण देख सब अघाते थे, [विशेष रूप से] उनकी नील-तनु-द्युति (नील वर्ण की शरीर शोभा) पतली कमरवालियों (गोपियों) का मन मोह लेती रही। २९९ [व.] वह कुमार (कृष्ण) सैर-सपाटे में और सरस संभाषण में दिन पर दिन दक्ष (चतुर) बनते गये। ३०० [उ.] [एक बार] 'चुप रहो' —कहकर जब माता ने डाँट बतायी तो कृष्णकुमार रूठकर दूर हट गये, तब माता ने हँसते हुए [दोनों] हाथ फैलाकर कहा कि 'ले, तेरे प्यारे दोस्त आ गये'; यह सुन कृष्ण माता की ओर झुककर नाचने लगे तो करधनी के घुँघरू बज उठे, फिर पहले की तरह हँसकर माता के ऊपर गिरे और स्तन्य पीने लगे। ३०१ [कं.] ग्वालों के यहाँ का सारा मक्खन खाकर चुपचाप जैसे कुछ जानते न हों —माता के समीप आ टहलते हुए कहते— माँ! चलो, मुझे भात खिलाओ। ३०२ [व.] कभी ग्वाल-बालों को संग लेकर : ३०३ [सी.] उनसे यह कहकर

ते. मूल लुरुकुनु डागिलिमूत लाडु
नुय्यलल नूगु जेबंतु लोनर वंचू
जार चोरुल जाडल जाल निगुडु
शौरि वालुरतो नाडु समयमंदु ॥ 304 ॥

व. मरियु ना कुमारशेखरुंडु कपट शैशवंबुन दोंगजाडलं ग्रीडिंप गोपिक-
लोपिकलु लेक यशोदकडकु वच्चि यिट्लनिरि ॥ 305 ॥

गोपिकलु श्रीकृष्णुनि दुडुकु जेतलु यशोदादेविकि वॅल्पुट

कं. वालुरकु वालु लेवनि, वालितलु मोरलु वॅट्ट बकपक नगि यी
वालुंडालमु सेयुचु, नालकु ग्रेपुलनु विडिचॅ नंभोजाक्षी ! ॥ 306 ॥

कं. पडती ! नी बिड्डडु मा
कडवललोनुन्न मंचि कागिन पाला-
पडुचुलकु वोसि चिक्किन
कडवल वोनडिचॅ नाज्ञ फलदो लेदो ! ॥ 307 ॥

कि "मैं वृषभराज (साँड़) हूँ और तुम लोग गो-गण हो", दहाड़ते हुए इधर-उधर छलांग मारते; "मैं राजा हूँ, तुम लोग मेरे सिपाही हो, आओ" —ऐसा कहकर रौब दिखाते हुए उन्हें कई काम बताते; "मैं चोर हूँ, और तुम लोग घरवाले हो" —यह कहकर उन्हें सुलाकर उनके भूषण-वस्त्र आदि चुराकर छिप जाते; "मैं सूत्रधारी हूँ और तुम लोग बहुरूपिये (भाँड़) हो" —कहकर उन्हें तरह-तरह से नचाते; [ते.] कभी कोने-कोने में जाकर छिप जाते और आँखमिचौनी खेलते; कभी पेंग मारकर झूला झूलते; लक्ष्य (निशाना) देखकर गेंद फेकते; चोरों को पकड़ने का खेल खेलते। ३०४ [व.] [होते-होते] जब वह कुमार-शेखर (कृष्ण) बनावटी शैशव (चपलता) में ग्वालिनों के साथ छिप-छिप क्रीडा करते रहे तो गोपिकाएँ अधीर होकर यशोदा के पास आकर यों शिकायतें करने लगतीं। ३०५

गोपिकाओं का यशोदा से श्रीकृष्ण के ऊधमों का बखान करना

[कं.] हे कमलाक्षी (यशोदा)! माताएँ जब चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थीं कि बच्चों के लिए दूध नहीं है, उसे अनसुनी करके तुम्हारा यह ढोटा बछड़ों को खोलकर ठठा मारने लगा। ३०६ [कं.] हे ललना! तुम्हारे सपूत ने हमारी हँड़ियों में रखा औटाया दूध छोकरों को पिलाकर खाली हँडियों को फोड़ डाला; उस पर कोई डाँट है या नहीं? ३०७ [कं.] हे भाई, तुम्हारा बच्चा हमारे यहाँ भफरकर दूध पीने आया, किंतु

कं. मी पापडु मा गृहमुन, नापोवग बालु द्राव नगपडकुन्नन्
गोर्पिच्चि पिन्न पडुचुल, वापोवग जिम्मुकोनुचु वच्चें दल्ली ! ॥ 308 ॥

मत्त. पुट्टि पुट्टडु यडु दोंगिल बोयि मा यिलु सोंच्चि ता-
नुट्टि यंदक ऱोलु बीटलु नोक्क प्रोविडि यंक्कि चे-
वेंट्ट जालक कुंड क्रिंदीक पेंद्दतूटोनरिंचि मी-
पट्टि मीगड पालु चेरल बट्टि त्रावें दलोदरी ! ॥ 309 ॥

कं. आडं जनि मीगड पेरु-
गोडक नी सुतुडु त्रावि योंक यिचुक ता
गोडलि मूर्ति जरिमिन
गोडलु म्रुच्चनुचु नत्त कोट्टें लतांगी ! ॥ 310 ॥

कं. वारिल्लु सोंच्चि कडवल
दोरंबुग नेंय्यि त्रावि तुदि ना कडवल्
वोरिटनु नो सुतुडिड
वारिकि वोरिकिनि दोड्ड वादय्यें सती ! ॥ 311 ॥

कं. वेलुपुलटॆ नाकंटॆनु, वेलुपु मरि यॆव्वडनुचु विकविक नगि मा
वेलुपुल गोडपै नो, हेलावति ! नी तनूजुडॆंगिलि चेसॆन् ॥ 312 ॥

[हांड़ी] न पाकर खिसिया गया, इस पर बच्चों को खुरचकर रुला दिया और भाग आया। ३०८ [मत्त.] हे नत्रेली ! आज तुम्हारा पुत्र मेरे घर [दूध-मलाई] चुराने आया, छीका [ऊँचा होने से] हाथ को लगता न था तो ओखली, पीढ़ा [एक पर एक] जमाकर चढ़ गया, फिर भी हाँड़ी में हाथ नहीं डाल सका; तब उसने भांड़े में छेद बनाया और दूध-मलाई चुल्लू भर-भर पी गया। ऐसा बालक न कभी हुआ और न [आगे] होगा। ३०९ [कं.] हे लतांगी ! तुम्हारा पुत्र [एक के यहाँ] खेलने गया, फिर संकोच छोड़ दही-मही खा गया; [इतना ही नहीं] थोड़ी सी मलाई घर की बहू के मुख पर लीप दी, उसी को चोर ठहराकर सास ने उसे खूब पीटा। ३१० [कं.] हे साध्वी ! तुम्हारे कुँवर ने उनके घर में घुसकर घड़ों घी पी लिया, फिर खाली घड़े लाकर इनके घर में रख दिये; इस पर उनके और इनके बीच झगड़ा खड़ा हो गया। ३११ [कं.] हे सखी ! तुम्हारे पुत्र ने ठठा मारकर यह कहते हुए कि देवता कौन है ? मेरे सिवा देवता और कोई नहीं है" देवभित्ति पर थूक दिया। (देवभित्ति = ग्वालों के यहाँ की वह दीवार जिस पर हल्दी-कुंकुम आदि से देवी-देवताओं की रेखाएँ चित्रित कर पूजी जाती हैं।) ३१२ [कं.] जब तुम्हारा पुत्र मेरे यहाँ (चोरी से) माखन खा रहा था तो मेरी कुँवरी ने देखकर हाँड़ी [उसके हाथ से] खींच पीछे

कं. वॆन्न दिनग बोड गनि मा
पिन्ननि यड्डंबु वच्चि यिरिदिकि दीयन्
जन्नॊडिसि पट्टि चोरॆनु
जिन्नि कुमारुंडॆ यितडु शीतांशुमुखी ! ॥ 313 ॥

कं. इम्मगुव तन्नु वाकिट, ग्रुम्मरुचो जेरि निलुपुकॊनि पेरडुगन्
गॊम्मोवि गऱचि वडि जनॆ, नम्मा ! यी मुद्दुगुर्रडल्पुडॆ चॆपुमा ! ॥ 314 ॥

कं. चेवंति तप्पि पडॆ नननि
प्रावल्यपुतोड वच्चि भवनमु वॆनुकन्
मा बिड्ड जलकमाडग
नी बिड्डडु वलुव दॆच्चॆ नॆलतुक ! तगुने ? ॥ 315 ॥

कं. इच्चॆलुव जूचि म्रुच्चिलि
यच्चुग नुरिकिचुकॊनुचु नरिगॆद नातो
वच्चॆदवा यनि यन्ना-
डिच्चिरुतडु सुदति ! चित्रमिट्टिदि नलघे ! ॥ 316 ॥

कं. कॊडुकुलु लेरनि यॊक सति
कडु वगवग दन्नु मगनिगा गॊनिनन्
गॊडुकुलु गलिगॆदरनि पॆ
बडिनाडिदि विनुमु शिशुवु पनुले तल्ली ! ॥ 317 ॥

रख ली, इस पर उसने [कुमारी का] स्तन कसकर पकड़ा और नाखून चुभो दिया। हे चन्द्रमुखी ! ऐसा करनेवाला तुम्हारा कुमार क्या छोटा बच्चा है ! ३१३ [क.] इस घरनी ने उस (कृष्ण) को घर के द्वार के पास टहलते देखकर उसे पास बुलाया और नाम पूछा, [इस, इन पर] वह [धूर्त] उसका अधर दाँतों से काटकर चलता [illegible]। माई री ! तुम्हीं बताओ, यह तुम्हारा लाड़ला छोकरा क्या अभी नादान बच्चा है ! ३१४ [कं.] "[खेल में] हाथ का गेंद आकर गिरा" —[illegible] कहते हुए तुम्हारा लड़का निधड़क घर के पिछवाड़े में घुस [illegible], वहाँ मरी कुँवरी नहा रही थी, तो उसकी साड़ी उठाकर ले आया। [illegible] ! इसकी करतूत ! ३१५ [कं.] इस सुंदरी को देख तुम्हारे छोटे बा[illegible] ने कहा, "मैं तुम्हें छिपाकर अपने साथ उड़ा ले जाऊँगा, चलोगी मेरे साथ ?" —हे सुदंती (अच्छे दाँत वाली)! यह कैसी विचित्रता है ? ३१६ [कं.] एक स्त्री अपने अपूत रह जाने का जब दुख कर रही थी तो तुम्हारे लाड़ले ने यह कहते हुए कि मुझे अपना पति बना लो तो तुम्हारे पुत्र होगा, उसके ऊपर लपक पड़ा। सुनो तो, भाई, [illegible] यह बच्चों का काम है ? ३१७ [कं.] हे मृगनयनी ! मैंने [कृष्ण से] कहा— मैं "हटी हुई" (रजवती, ऋतुमती) हूँ,

कं. तलगिनदानं दलगन
दलगक ने दलगनंचु दग बल्कुचु नी
तलगिन चोटॅय्यदि यनि
तल यूचॅन् नी सुतुंडु तगवॅ मृगाक्षी ! ॥ 318 ॥

कं. व्रालग वच्चिन नी सति, चूलालं दलगु मनिन जूलगुटकु
मूलंबु चॅप्पुमनॅ नी, बालुडु चॅप्पुदुरॅ सतुलु पर्वेइन्दु मुखी ! ॥ 319 ॥

कं. मगुवा ! नी कॉमरुडु मा
मगवारट्टु वोव जूचि मंतनमुनकुन्
दग जीरि पॉंदु नडिगॅनु
जगमुल मुन्निट्टि शिशुवु चदुवंबडॅनॅ ? ॥ 320 ॥

आ. नम्मि निदुर वोव ना पट्टिचुंचु मा
लेग तोक तोड लील गट्टि
वीथुलंदु दोलॅ वॅलदि ! नी कॉमरुंडु
राचबिड्डयिन दुव्व मेलॅ ? ॥ 321 ॥

कं. ना पट्टि पॉट्ट निंडग, बै पडि नो पट्टि वॅन्न बानॅ डिडिना-
डूपिरि वॅडलदु वानि, जूपॅद नेसैन नीव सुम्मु लतांगी ! ॥ 322 ॥

तुम हट जाओ, पर उसने हटने से इन्कार किया, [ऊपर से] मुझसे पूछा— वह कौन सा स्थान है जहाँ तुम्हारा "हटना" (मासिक रज) हुआ ? यह कहते हुए तुम्हारे पुत्र ने सिर हिलाया (इशारा किया) । तुम्हीं बताओ, माई ! ऐसा करना उसके लिए क्या उचित है ? ३१८ [कं.] कृष्ण को अपने ऊपर झुकते देखकर इस रमणी ने यह कहकर बरज दिया कि मैं गर्भवती हूँ, हट जाओ; तब तुम्हारे पुत्र ने पूछा कि गर्भवती होने का मूल क्या है ? बताओ। हे पूर्णचन्द्रसमान मुखवाली ! तुम्हीं सोचो, स्त्रियाँ [ऐसे प्रश्न का] उत्तर क्या दे सकती है ? ३१९ [कं.] हे सुंदरी ! घर के मर्दों को बाहर गये देखकर तुम्हारे लड़के ने मुझे अकेले मे बुलाकर सभोग का प्रस्ताव किया। जग में अब तक ऐसा बालक देखा नहीं गया। ३२० [आ.] हे रूपवती ! मेरा लड़का जब निश्चित होकर सो रहा था, तो तुम्हारे पुत्र ने उसकी चोटी बछड़े की पूँछ से जोड़कर बाँध दी और फिर उसे सड़कों पर दौड़ाया। राजा के पुत्र को भी लोकापवाद सोहता नहीं है। ३२१ [कं.] तुम्हारे लड़के ने मेरे छोटे को पकड़कर [जबरन] घड़ा भर मक्खन पेट भरकर खिला दिया। अब उसकी साँस नहीं निकल रही है। हे लतांगी ! उसे तुम्हारे पास ला देती हूँ [स्वयं देख लो], उसका कुछ [बुरा] हो गया तो तुम्हीं जानो। ३२२ [कं.] एक विलासिनी जब सो रही थी, तब तुम्हारे

कं. तॆऱव यॊकतॆ निद्रिपग
नॆऱ गट्टिन वलुव वीड्चि नेटगु तेलुं
गऱपिचॆ नी कुमारुडु
वॆऱचृचु नदि पऱव नगियॆ विहितमॆ साध्वी ! ॥ 323 ॥

कं. ना कॊडुकुनु ना कोडलु, नेकतमुन बॆनग वामु नीतडु वैवं
गॊकलॆरुंगक पारिन, गूकलिडॆन्नी सुतुंडु गुणमॆ गुणाढ्या ! ॥ 324 ॥

आ. तरुणि यॊकतॆ पॆरुगु दरचुचु दुदि वंगि
वॆन्नदिय्य नॊदिगि वॆनुक गदिसि
मगुव ! नी सुतुंडु मगपोडुमुलु सेय
सागिनाडु तगदॆ चक्कजेय ! ॥ 325 ॥

सी. कलकंठि ! मा वाड गरितल मॆल्ल नी पट्टि रागलडनि पालु पॆरुगु-
लिड्ल लोपल निडि ये मॆल्ल दन त्रोव चूचुचो नॆप्पुडु चॊच्चिनाडॊ
तलुपुलु मुद्रलु ताळंबुलुनु पॆट्टियुन्न चंदंबुननुन्न वरय
नॊक यिंटिलो बाडु नॊक यिंटिलो नाडु नॊक यिंटिलो नव्वु नॊकट विट्टु

कुमार ने [उसके पास पहुँचकर] चुनन डालकर पहनी हुई उसकी साड़ी खोलकर एक बड़ा सा विच्छू छोड़ा। डंक के दर्द से चीखती दौड़ती हुई उस रमणी को देखकर तुम्हारा पुत्र हँसता रहा। हे साध्वी ! यह कितना अनुचित हुआ, तुम्ही देखो। ३२३ [कं.] मेरा पुत्र और पतोहू जब एकांत मे लिपटे हुए थे तो कृष्ण ने [उन पर] एक साँप फेंका। [बेचारे] वे दोनों विवस्त्र ही दौड़ पड़े तो तुम्हारे पुत्र ने कूक मचाई। हे गुणवती ! देखो, तुम्हारा पुत्र कैसा अगुणी निकला। ३२४ [आ.] एक युवती दही मथते-मथते [हाँडी पर] जब झुककर माखन निकाल रही थी, तुम्हारा लड़का पीछे से आकर लग गया और सुरत-क्रीड़ा करने लगा। क्या उसे तुम्हें सुधारना नही है ? ३२५ [सी.] हे मधुरवाणी ! हम अपने मुहल्ले की सब गृहणियाँ यह जानकर कि तुम्हारा कुमार दूध-दही चुराकर खाने के लिए हमारे घरों में अवश्य आयेगा, सारा गोरस भीतर [सुरक्षित] रखकर उसके आने की ताक में बैठी रही; किंतु मालूम नही, लला कब अंदर घुस आया, किवाड़ बद ही थे, उनमे लगे ताले भी ज्यों के त्यों पड़े थे। [अचरज तो यह है कि] यह बालक एक के यहाँ गाते हुए, दूसरी के यहाँ नाचते हुए, तीसरी के घर मे हँसते हुए और चौथी के यहाँ गालियाँ बकते हुए [ते.] एक जगह मुँह चिढ़ाते हुए, और अन्यत्र जानवरों की और पक्षियो की बोलियाँ बोलते हुए [इस प्रकार तरह-तरह से] पाया गया है। बाद को देखा तो कही पर दिखाई न दिया, न जाने कहाँ और कैसे चला गया, सबके घरों के दूध और दही की हाँड़ियाँ खाली पड़ी हुई थीं। ३२६

ते. नीकट वॅविकरिंचु नीक्कोकचो मृग, -पक्षि घोषणमुलु परग जेयु-
निट्लु चेसि वॅनुक नॅक्कड बोवुनो, कानराडु रित्त कडवलुंडु ॥ 326 ॥

कं. कडु लच्चिच गलिगॅनेनियु
गुड्डुतुरु गट्टुदुरु गाक कॉडुकुल नगुचुन्
बडुगुल वाडलपै बड
विडुतुरॅ राकांतलॅंदु विमलेंदुमुखी ! ॥ 327 ॥

कं. ओ यम्म ! नी कुमारुडु
मा यिड्लनु बालु पॅरुगु मननीडम्मा !
पोयॅद मॅक्कडिकैननु
मा यन्नल सुरभुलान मंजुलवाणी ! ॥ 328 ॥

व. अनि मरियु ननेक विधंबुलैन बालकृष्णुडु सेयु विनोदंबुल दमयंदु जेयु महाप्रसादंबुलनि यॅरुंगक, दूरुचुन्नयट्टि गोपिकलकु यशोद यिट्लनियॅ ॥ 329 ॥

कं. चन्नु विडिचि चनडिट्टटु, नॅन्नडु बॊरुगिड्ल त्रोवलॅरुगडु नेडुं
गन्नुलु तॅरवनि मा यी, चिन्नि कुमारकुनि रुव्व सेयं दगुने ? ॥ 330 ॥

ते. अन्य मॅरुगडु तनयंत नाडुचुंडु
मंचिवाडितडॅग्गुलु मानरम्म !
रामलार ! त्रिलोकाभिरामलार !
तल्लुलार ! गुणवती मतल्लुलार ! ॥ 331 ॥

[कं.] हे विमलेन्दुमुखी (निर्मल चंद्र-सा मुखवाली) ! यदि पुष्ककल धन-संपत्ति रही तो स्वयं खाती और पीती हैं, परंतु रानियाँ अपने पुत्रों को अशक्त जनों की बस्तियों पर बेरोक छोड़कर आनंद नहीं करतीं (ऐसा करना अनुचित है)। ३२७ [कं.] माई री ! तुम्हारा पुत्र हमारे यहाँ का दूध-दही बचने नही देता, हे मजुभाषिणी ! हम अपने भाइयों और गौओं की क़सम खाकर कहती है— हम [यह गाँव छोड़कर] कही दूसरी जगह जा बसेंगी। ३२८ [व.] बालकृष्ण के किये इस प्रकार के अनेक ऊधमों की शिकायत गोपिकाओं ने की, वे यह नहीं जान सकीं कि कृष्ण की ये करतूतें उनके प्रति किये वरदान है। [सुनकर] यशोदा ने उनसे यों कहा : ३२९ [कं.] मेरा मुन्ना स्तन्य पीना छोड़ इधर-उधर टलता ही नही, अड़ोस-पड़ोस में जाने का रास्ता भी नही जानता। उसने आज तक पूरी तरह से आँख भी नहीं खोली है, ऐसे नन्हें बच्चे की निंदा करना तुम्हें सोहता नहीं है। ३३० [ते.] मेरा बच्चा अपने आप खेलता रहता है, उसे किसी और का ख्याल नहीं रहता। वह अच्छा लड़का है, हे वनिताओ ! उसकी

व. अनि यशोद वारल नॊडंबरिचि पंपि, कॊडुकुं गोपिप जालक युंडॆ। इट्लु ॥ 332 ॥

उ. कांतलु तल्लितो दनविकारमुलॆल्ल गणिप भीतुडै
शांतुनि सॊंपुनन् बरमसाधुनि पॆंपुन गोल माड्कि वि-
भ्रांतुनि कॆवडिन् जडुनि भंगि गुमारकुडूरकुंडॆ ने
वितयु लेक तल्लिकुचवेदिक नौदल मोपि याडुचुन् ॥ 333 ॥

व. अंत नॊक्कनाडु बलभद्र प्रमुखुलयिन गोपकुमारुलु वॆन्नुंडु मन्नु दिनॆननि चॆप्पिन, यशोद बालुनि केलु वट्टिकॊनि, यिट्लनियॆ ॥ 334 ॥

मृद्भक्षण विश्वरूप-प्रदर्शनाद्यभिवर्णनमु

कं. मन्नेटिकि भक्षिचॆंदु, मन्नियममु लेल नीवु मन्निपवु नी
यन्नयु सखुलुनु जॆप्पॆद, -रन्ना ! मन्नेल मरि पदार्थमु लेदे ? ॥ 335 ॥

व. अनि पलिकिन मुगुद तल्लिकि नॆरदंटयैन कॊडुकिट्लनियॆ ॥ 336 ॥

शा. अम्मा ! मन्नु दिनंग ने शिशुवुनो याकॊंटिनो वॆरिनो-
नम्मंजूडकु वीरि माटलु मदिन्नन्नीवु कॊट्टंग वी-

निंदा मत करो। तुम लोग त्रिलोकसुंदरियाँ हो, श्रेष्ठ गुणों वाली माताएँ हो। ३३१ [व.] इस प्रकार कहकर यशोदा ने उन रमणियों को राज़ी कर भेज दिया; वह अपने पुत्र पर कोप नहीं कर सकी। ३३२ [उ.] कृष्ण ने जब देखा कि गोपिकाएँ माता [यशोदा] को अपने विचारों का ब्योरा सुना रही है, तब वे भयभीत हुए। शांत व्यक्ति का सौंदर्य, और परमसाधु का महत्त्व लिये, मुग्ध, भ्रांत और जड़ की भंगिमा व्यक्त करते हुए वे चुपचाप माता के स्तनों पर सिर टेक खेलते रहे मानो कुछ हुआ ही नही। ३३३ [व.] पश्चात् एक दिन बलभद्र को साथ लिये अन्य गोपकुमारों ने यशोदा के पास आकर कहा कि कृष्ण ने मिट्टी खायी। तब माता ने बालक का हाथ पकड़कर उनसे पूछा : ३३४

मृद्-भक्षण और विश्वरूप-प्रदर्शन आदि का वर्णन

[कं.] मिट्टी क्यों खा रहे हो ? तुम मेरा बताया नियम क्यों नही मानते ? तुम्हारा बड़ा भाई और दूसरे बालक भी कह रहे है [कि तुम मिट्टी खा रहे हो]। भाई ! खाने के लिए मिट्टी क्यों ? दूसरे पदार्थ नहीं है क्या ? ३३५ [व.] अत्यंत चतुर कुमार ने अपनी माता से यों कहा : ३३६ [शा.] माई री ! मिट्टी खाने के लिए क्या मैं नन्हा बच्चा हूँ ! या भूखा हूँ ? अथवा पागल हूँ क्या ? इन लोगों की बातों पर तुम

रिम्मार्गम्मु घटिंचि चॅप्पॅदरु कादेनिन् मदीयास्य गं-
धम्माघ्राणमु सेसि ना वचनमुल् दप्पैन दंडिपवे ॥ 337 ॥

व. अनि पलिकि नॅय्यंबुन नय्यव्वनियय्य कौलिपि, क्रीडामनुजबालकुंडैन यीश्वरुंडु तन नोरु दॅरचि, मुखंबु जूपिन ॥ 338 ॥

कं. आ ललितांगि कनुंगॊनॆ, बालुनि मुखमंदु जलधि पर्वत वन भू-
गोळ शिखि तरणि शशि दि, -क्पालादि करंडमैन ब्रह्मांडंबुन् ॥ 339 ॥

व. कनुंगॊनि ॥ 340 ॥

म. कलयो वैष्णव माययो यितर संकल्पार्थमो सत्यमो-
तलपन्नेरकयुन्न दाननॊ यशोदादेवि गानो पर-
स्थलमो बालकुडैत यीतनि मुखस्थंबै यजांडंबु प्र-
ज्वलमै युंडुटकेमि हेतुवॊ महाश्चर्यंबु चिंतिपगन् ॥ 341 ॥

आ. बालमात्रुडगु सलीलुनि मुखमंदु
विश्वमॆल्ल नॆट्लु वॆलसि युंडु ?
बालु भंगि नितडु भासिल्लु गानि स-
र्वात्मुडादिविष्णुडगुट निजमु ॥ 342 ॥

व. अनि निश्चयिंचि ॥ 343 ॥

विश्वास मत करो। ये लोग ऐसी बातें बना-बनाकर तुमसे इसी मतलब से कहते हैं कि तुम मुझे मारो। तुम्हीं मेरे मुँह की गंध सूँघकर देख लो, यदि मेरी बात ग़लत निकली तो दंड दो। ३३७ [व.] यों कहकर बड़े प्रेम से अपनी माता को राज़ी किया, और विलासार्थ मानव-शिशु बने हुए उस परमेश्वर ने यशोदा को अपना मुँह खोलकर दिखाया। ३३८ [कं.] तब उस ललितांगी (यशोदा) को उस मुँह में— समुद्र, पर्वत, वन, भूगोल, सूर्य, चंद्र, दिक्पाल आदि से भरे भांडाकार ब्रह्मांड गोचर हुआ। ३३९ [व.] उसे देखकर : ३४० [म.] [यशोदा तरह-तरह से सोचने लगी] यह क्या स्वप्न है ? वैष्णव-माया है ? या मेरे संकल्प (कल्पना) का फल है ? क्या यह सब सत्य है ? अथवा इसे समझने की शक्ति मुझमें नहीं है ? क्या मैं यशोदा नहीं हूँ ? क्या यह वही स्थल है, जहाँ मैं पहले थी ? यह तो इतना सा बालक है, पर इसके मुँह में सारा ब्रह्मांड प्रज्वलित हो रहा है ! इसका क्या कारण है ? सोचने पर महान् आश्चर्य हो रहा है। ३४१ [आ.] इस क्रीडाशील बालक के मुँह में सारा विश्व कैसे विलसित हो रहा है ? यह बालक की भाँति दिखाई दे रहा है, परंतु सच तो यह है कि यह सर्वात्मस्वरूप आदिविष्णु है। ३४२ [व.] इस प्रकार निश्चय करके : ३४३ [आ.] [उन्होंने मन ही मन कहा] जिस महात्मा के द्वारा

आ. ए महात्मुवलन नी विश्वरूपंबु
गानबडिन बुद्धि कंपमय्ये
ना महात्मु विष्णु नखिल लोकाधारु
नार्तुलॅल्ल बाय नाश्रयितु ॥ 344 ॥

कं. ना मगडु नेनु गोवुलु, नी मंदलु गोपजनुलु निव्धालुनि नॅ-
म्मोमं दुन्नविधमु गनि, येमरितिमि गानि योशु डितडे माकुन् ॥ 345 ॥

व. अनि तन्नु परमेश्वरुंडनि तलंपुचुन्न यशोदयंदु ना कृष्णुंडु वैष्णवमायं बॉदिचिन ॥ 346 ॥

कं. जडनु वडि मोहमुन ना
पडतुक सर्वात्मुडनुचु बलुकक यतॅनि
गोडुकनि तॉडपै निडुकॉनि
कडु वेडुकलोड ममत गाविंचॅ नृपा ! ॥ 347 ॥

व. अनिन विनि राजिट्लनियॅ ॥ 348 ॥

आ. जगदधीश्वरुनकु जन्निच्चु तल्लिगा, नेमि नोमु नोचॅ नी यशोद
पुत्रुडनुचु ननलि बोषिचु तंड्रिगा, नंदुडेमि चेसॅ नंदितात्म ! ॥ 349 ॥

कं. प्रब्बिन भक्तिनि हरिपै
गव्वंबुलु सॅप्पि कवुलु कैवल्य श्री

मुझे यह विश्वरूप दिखाई दिया, बुद्धि काँप गई, उस महात्मा, अखिल-लोकाधार, विष्णु का मैं समस्त बाधा-निवारण के निमित्त आश्रय लेती हूँ। ३४४ [कं.] मेरा पति, यह गोगण, और गोप-गोपीजन, [हम सबकी] इस बालक के मुँह में उपस्थिति देखकर हम विभ्रांत हुए। यह बालक ही हमारे लिए ईश्वर है। ३४५ [व.] इस प्रकार अपने को (कृष्ण को) परमात्मा कहकर मानती हुई यशोदा के मन में कृष्ण ने वैष्णव-माया उत्पन्न कर दी। ३४६ [कं.] [इससे वह जननी] हे राजन् ! जड़वत् बनकर मोह के कारण कृष्ण को सर्वात्म कहना छोड़कर, पुत्रभाव से ही गोदी में बिठाकर वात्सल्य के साथ दुलारने लगी। ३४७ [व.] यह सुनकर राजा (परीक्षित) ने यों कहा : ३४८ [आ.] हे ब्रह्मानद पानेवाले (शुकयोगी) ! इस यशोदा ने ऐसा कौन-सा व्रत-साधन किया जिससे वह जगदीश्वर की माता बनकर उन्हें स्तन्य पिला सकी ? इस नंद ने कौन सा कार्य किया जिससे वह उन्हें पुत्र के रूप में पालने-पोसने लगे ? ३४९ [कं.] सुनते हैं कि ऐसे कवि [भी] जो अतिशय भक्ति से भरकर उस हरि पर कविताएँ रचते हैं, कैवल्य रूपी भाग्य के पात्र बन जाते हैं; तब ये माता-पिता, जिन्हें हरिपोषण [का सौभाग्य] प्राप्त है, अंत मे किस स्थिति को प्राप्त करते हैं,

कब्बुदुरट हरि पोषण
मब्बिन तलिदंड्रुलेचटि कब्बुदुरों तुदिन् ॥ 350 ॥

व. अनिन विनि राजयोगिकि शुकयोगींद्रुडिट्लनियें ॥ 351 ॥

यशोदानंदुल पूर्वजन्म वृत्तांतमु

सी. अवनीश! विनु द्रोणुडनुवाडु वसुवुलयंदु मुख्युडु धर यतनिभार्य
वारि निद्दरि ब्रह्म वसुधपै जन्मिचुडंचुबंपिन वारलतनि जूचि
विश्वेश्वरुंडैन विष्णुसेवारति मा किच्चितेनियु महि जनितु
मनवुडु नट्लकाकनियें वेल्पुल पेद्द या द्रोणुडो नंदुडै जनिचें

आ. "धर" यशोद यय्यें दनुजेंद्र वैरियु
गमलगर्भु माट गारविचि
तल्लिदंड्रुलनुचु दग वारि मन्निचें
नधिक भक्तितोड नलरिरिट्लु ॥ 352 ॥

अध्यायमु—९

कृष्णुडु दधिभांड विफलनादुलु चेसिन यशोद यतनि वेंट दिरिगि पट्टुकोनुट

व. अंत नोक्कनाडु दन यिंटि पापलंदरुनय्यै पनुलंदु बंपुवडि पोयिन,

---

मालूम नहीं। ३५० [व.] उस राजयोगी (परीक्षित) का कथन सुनकर योगींद्र शुकजी यों बोले। ३५१

यशोदा और नंद का पूर्वजन्म-वृत्तान्त

[सी.] हे भूपाल ! सुनो। द्रोण नामक [व्यक्ति] वसुवों का मुखिया था, धरा उसकी पत्नी थी। उन दोनों को ब्रह्मा ने भूलोक में जन्म लेने को भेजा तो उन्होंने उनसे कहा कि यदि आप हमें विश्वेश्वर विष्णु की सेवा करने का प्रेम प्रदान करेंगे तो हम भूतल पर जन्म लेंगे। तब देवताओं का प्रमुख ब्रह्मा ने "तथास्तु" कह उनकी प्रार्थना मान ली। वही द्रोण नंद होकर पैदा हुआ, [आ.] और [उसकी पत्नी] धरा ही यशोदा हुई। राक्षसवैरि—विष्णु ने ब्रह्मा का वचन सादर मान यशोदा-नंद को निज माता-पिता बनाकर उनके प्रति उचित सम्मान प्रगट किया। इस प्रकार वे [नंद और यशोदा] अधिक भक्ति से शोभित हुए। ३५२

अध्याय—९

कृष्ण के दधिभांड को फोड़ने पर उसका पीछा करते हुए यशोदा का उसे पकड़ लेना

[व.] तब एक दिन, जब घर के सब अनुचर लोग अपने-अपने काम

नंदसुंदरि, संरंभंबुनं दरिगंबंबुकड गुदुरुन नॉदक कुंभंबु वॅट्टि, मिसिमि गल मीगड पॅरुगुलु कूडंबोसि, वीक नाकत्राडु कव्वंबुन नलर्बरिचि ॥ 353 ॥

सी. करकमलारुणकांति गव्वपु द्राडु पवडंबु तुनुदीगॅ पगिदि मॅऱय
क्रममुतो रज्जुवाकर्षिप बालिड्लु वीड्वडि यॉरॉटि वीक नॉत्त
गुचकुंभमुलमीदि कॉगु जाऱग जिक्कुवडुचु हाराबळुल् बयलु पडग
बॉडमिन चॅमटतो बॉल्पारु नॅम्मोमु मंचुपै बडिन पद्मंबु दॅगड

ते. कौनु नुलियंग गंकणक्वणन मॅसग
दुरुमु बिगिवीड गर्णिकाद्युतुलु मॅऱय
बालु नंकिचि पाडॅडु पाटवलन
दरुवुलिगुरॅत्त बरुगिति दरुवजॉच्चॅ ॥ 354 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 355 ॥

कं. सुडियुचु व्रालुचु गिडुकुचु
सड्डिगॉट्टुचु "नम्म ! रम्मु" चन्निम्मनुचुन्
वॅडवॅड गंतुलु वेचुचु
गडव गदिसि बालकुंडु कव्वमु बट्टॅन् ॥ 356 ॥

पर नियुक्त हो बाहर चले गये, तब यशोदा [स्वयं] तैयारी के साथ दही बिलोने लगी। उसने मथने के खंभे के पास की गडेरी पर हाँड़ी बिठा दी, उससे झागवाला मक्खन और दही उँड़ेल, मथानी को डोरी में बाँध ठीक कर लिया, [और दही मथने लगी] ३५३ [सी.] [दधिमंथन के समय] उसके करकमलों की अरुण-कांति से मथानी की डोरी कोमल प्रवाल-लता के समान चमक उठी; [दायें-बायें के] क्रम से डोरी खींच लेते समय उसके पयोधर एक-दूसरे से रगड़ खाने लगे; कुचकुंभ के ऊपर का अंचल खिसक पड़ा, और गले के हार की लड़ियाँ उलझकर बाहर प्रगट हुईं; श्रमबिंदुओं से (पसीने की बूँदों से) सुंदर बना हुआ मुखड़ा हिम-कणाच्छादित कमल-पुष्प को तिरस्कृत करता दीख पड़ा; [ते.] लचकती कमर से करधनी की किंकिणी ध्वनित हुई; केशों का खोंपा ढीला हुआ; कर्णिका (कर्णफूल) की जोत चौंधने लगी, बालक को बहलाते हुए गाये जानेवाले गीतों से तरु (पेड़) भी पल्लवित हुए, इस प्रकार वह नंद-सुंदरी (यशोदा) दधिमंथन करती रही। ३५४ [व.] उस समय। ३५५ [कं.] बालकृष्ण यशोदा को घेरता आया, कुछ गुनगुनाते, कराहते, सीटी-सी आवाज़ निकालते हुए कहने लगा— माँ! आओ, स्तन्य दो। उसने हौले-हौले फुदकते हुए हाँड़ी के पास पहुँच मथानी को पकड़ लिया। ३५६

कं. कव्वमु बट्टिन प्रियसुतु
नव्वनरुहनेत्रि दिगिचि यंकतलमुनन्
नव्वुचु निडुकोनि कूकटि
दुव्वुचु जन्निच्चें नतडु द्रुटुचु गुडिचेंन् ॥ 357 ॥

म. कडुपारं जंनुबालु द्रावनि सुतुन् गंजाक्षि पीठंबुपै
निडि पोंगारेडु पालुडिंचुटकुनै येगंग दद्बालुडे-
वकुडु कोपंबुन वाडिरात दधिमत्कुंभंबु वोगट्टि तें-
पडरं गुंभमुलोनि वेन्न दिनें मिथ्या संकुलद्भाष्पुडै ॥ 358 ॥

व. अंत ना लोललोचन, पालु डिंचिवच्चि, विकलंबुलैन दधिकुंभ शाकलंबुलं बोडगनि, तुंटकोडुकु वेन्न दिट येंरिगि, नगुचु, ना कलभगामिनि यतनि गानक, चनिचनि ॥ 359 ॥

आ. विकच कमलनयन वेरोक यिंटिलो
वेलय द्रोलु दिरुगवेसि येकिक
युट्टिमीदि वेन्न नुलुकुचु नोक्कोति
पालु सेयुचुन्न बालु गनियें ॥ 360 ॥

म. कनि चेतन् सेलगोल वट्टिटकोनुचुन् गानिम्मु कानिम्मु रा
तनया ! येव्वरियंदु जिक्कुवड ने दंडंबुनं गान ने

[कं.] मथानी को पकड़कर खड़े हुए अपने प्यारे पुत्र को उस कमलनेत्री [यशोदा] ने गोदी में उठा लिया और [बैठकर उसके मुँह में] स्तन दिया। बालक सिर हिला-हिलाकर पीने लगा और माता हँस-हँसकर बालक के [घुँघुराले] केश सहलाने लगी। ३५७ [म.] बालक ने पेट भरकर स्तन्य अभी पीने नहीं पाया कि कंजाक्षी (कमलनयनी) उसे पीढ़े पर बिठा कर उफनानेवाला दूध [सिगड़ी पर से] उतारने दौड़ पड़ी; गुस्से में आकर बालक ने बटिया उठाकर दही की हाँड़ी पर दे मारा, फिर बड़े साहस के साथ हाँड़ी से मक्खन निकाल-निकाल कर खाया। [मक्खन खाने के साथ-साथ] उसने झूठे आँसू बहाये। ३५८ [व.] इतने में वह चंचलनयनी [यशोदा] दूध उतार कर लौटी तो क्या देखती हैं कि हाँड़ी टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ी हुई है। वह समझ गई कि उसी का नटखट लड़का ही माखन खा गया है; उसे वहाँ न पाकर वह कलभ-गाभिनी (हाथी की चाल चलनेवाली यशोदा) हँसती हुई बालक की खोज में निकली। ३५९ [आ.] उस विकसित-कमल-नेत्र वाली [यशोदा] ने दूसरे घर में जाकर देखा तो बालक ऊखल उलटकर उस पर चढ़ा, और छींके पर से मक्खन उतार भयभीत सा-हो एक बंदर को खिला रहा था। [उसे यों देख—]। ३६०

विनिवारंबुनु वॊंद ने वरवु नेविश्रांतियुं जॆव मु-
न्ननियो नी विट्टु नन्नु गंकॊनवु नेडारिति सिद्धिंचुने ? ॥ 361 ॥

व. अनि यदलिंचुचु, गॊडुकु नडवडि दलंचि तनुमध्य तन मनंबुन ॥ 362 ॥

सी. वालुडीतंडनि भाविंतु नंदुना ये पॆद्दलुनु द्रॆररी क्रमंबु
वॆरपॆरुंगुटकुनै वॆरपितु नंदुना कलिगि लेक्कॊक्कडु गानि लेडु
वॆरपुतो नाबुद्धि विनिपिंतु नंदुना तनुदानयॆ बुद्धि तप्पकुंडु
नॊडॆरुंगक यिंट नुंडॆडि नंदुना चॊच्चिच चूडनि चोकचोट्टु लेदु

आ. तन्नु नॆव्वरैन वलपोय वारॆडु
नोज लेडु भीति यॊकटॆरुंग
डॆलमि नूरकुंडडॆकसक्कॆमुल नाडु
वट्टि शास्ति चेयु भंगि इट्लु ? ॥ 363 ॥

व. अनि वितर्किंचि ॥ 364 ।

कं. लालनमुन बहुदोषमु, लॊलि ब्रापिंचु दाडनोपायमु भू
जाल गुणंबुलु गलुगुनु, बालुरकुनु दाडनंब पथ्यंबरयन् ॥ 365 ॥

[म.] [यशोदा] हाथ में छड़ी लेकर कहने लगी— "बेटा, चलने दे; शायद तूने यह समझ रखा— 'मैं अब तक किसी के हाथ नहीं फँसा; न किसी का दंड सहा; न किसी के रोके मैं रुका; न किसी से डरा, न घबड़ाया।' इसी कारण से तू अब मेरी बात मान न रहा है; किंतु [समझ लो] तेरी वह चाल आज [मेरे सामने] नहीं चलेगी"। ३६१ [व.] यों उसे धमका कर अपने पुत्र की चाल-चलन के बारे में वह तनुमध्या (पतली कमरवाली) यशोदा अपने आप कहने लगी। ३६२ [सी.] यदि इसे मैं बालक कहकर भावना करूँ ? [तो ठीक न होगा, क्योंकि] बड़े-बड़े लोगों में भी इसका जैसा क्रम नही है: भीति जताने के लिए यदि मैं इसे डरा दूँ ? [तो यह भी न हो सकेगा, क्योंकि] ऐसा एक [व्यक्ति] न कभी हुआ, न होगा और न है ! नर्मी से यदि सूझ-बूझ सिखाना चाहूँ [तो भी संभव न होगा, क्योंकि] यह स्वयं अपनी सूझ-बूझ छोड़कर किसी की नही सुनता ! यदि यह चाहूँ कि यह [बालक] बाहर का ख्याल छोड़ घर ही में [बंद] रहे, [तो भी संभव नहीं दीखता, क्योंकि] ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ घुसकर इसने नहीं देखा हो ! [आ.] ख्याल करते ही भाग जाने का इसका स्वभाव है ! यह भय का नाम नही जानता ! हर्ष पाकर चुप नहीं रहता, पर दिल्लगी उड़ाता है। [समझ में नहीं आता] ऐसे बालक को किस तरह से पकड़ूँ और किस ढंग से दंड दूँ ? ३६३ [व.] इस प्रकार वितर्क करके [उसने सोचा]। ३६४ [कं.] लाड़-प्यार करने से बहुत से

व. अनि निश्चयिंचि, केल नुन्न कोल जळिरिंचि, बाला ! निलु निलुमनि
बग्गुबग्गुन नदलुचि, तल्लि डग्गरिन, बेंगडिलिन चंदंबुन नग्गलिक
चेंडि, ड्रोलु डिग्ग नुरिकि ॥ 366 ॥

कं. गज्जेलु घल्लनि म्रोयग-
नज्जलु द्रोक्कुटलु मानि यतिजवमुन यो-
षिज्जनमुलु नग दल्लियु
पज्जं जनुदेर नतडु परुविडें नधिपा ! ॥ 367 ॥

व. अप्पुडु ॥ 368 ॥

म. स्तनभारंबुन डस्सि क्रुस्सि यसदै जव्वाडु मध्यंबुतो
जनित स्वेदमुतो जलत् कबरितो स्रस्तोत्तरीयंबुतो
वनजातेक्षण कूडबारि तिरिगेन् वारिंचुचुन् वाकिटन्
घन योगींद्र मनंबुलुन् बेनकोनंगा लेनि लीलारतुन् ॥ 369 ॥

व. इट्लु गूडंजनि ॥ 370 ॥

सी. स्तंभादिकंबुलु दनकु नड्डंबैन निट्टट्ट चनि पट्टनीनि वानि
नी तप्पु सैरिपु मिक दोंगिलबोव नेननि मुनुमुट्ट नेड्चुवानि
गाटुक नेरयंग गन्नुलु नुलुमुचु वेंडलु कन्नीटितो वेंगचुवानि
ने वेंस वच्चुनो यिदि यनि पलुमारु सुरुगुचु ग्रेगंट जूचुवानि

दोष उत्पन्न होते हैं, [किंतु] ताडन (दंडोपाय) से अच्छा परिणाम निकलता है। [अत:] बालकों के लिए ताडन ही पथ्य [गुणकारी] मालूम होता है। ३६५ [व.] यों मन में ठानकर, हाथ का डंडा फटफटाते हुए "ठहरो, लला" कहती हुई माता [समीप] पहुँची। घुड़कती यशोदा को नज़दीक देख कृष्ण मानो भय से विकल हुआ हो, ऊखल से नीचे कूद पड़ा और। ३६६ [कं.] चहलक़दमी छोड़ बड़ी तेज़ी से ऐसा भागा कि घुंघुरू छम-छम बजने लगे। [यह देख] ललनाएँ हंसने लगीं। हे राजन्! माता [ऊखल के] पास पहुँचकर रह गई। ३६७ [व.] तब। ३६८ [म.] स्तनों के भार के कारण दुबली हो लचकती हुई कमर, पसीने से तर-बतर बदन, खुली हुई कबरी (जूडा), खिसकता हुआ आँचल लेकर वह कमलनयनी [यशोदा] उसे रोककर पकड़ने के लिए देहली तक पीछे-पीछे दौड़ी। बड़े-बड़े योगीश्वरों का मन जिसका पीछा नहीं कर सकता उस खिलाड़ी [कृष्ण] का यशोदा ने पीछा किया। ३६९ [व.] इस प्रकार पीछा करके। ३७० [सी.] खंभों की आड़ में छिपकर इधर-उधर टलते हुए जो पकड़ाई में न आ रहा हो, जो यह कहते हुए कि यह अपराध क्षमा करो, आगे कभी चोरी नहीं करूँगा, [मार पड़ने के] पहले ही रोने लगा

आ. गूडवारि पट्टुकोनि वॆरपिंचुचु, जिन्नि वॆन्नदॊंग चिनक्कॊननुचु
नलिगि कॊट्टट जेतुलाडक पूवोणि, करुणतोड वालु गट्ट दलचि ॥ 371 ॥

कं. वीरॆव्वरु श्रीकृष्णुलु, गारा ! यॆन्नडुनु वॆन्न गानरट कदा !
चोरत्वंबिचुकयुनु नेररट, धरित्रि निट्टि नियुतुलु गलरे ? ॥ 372 ॥

कं. पट्टिन बट्टुवडनि निनु
वट्टॆदमनि चलमु कॊनिन बट्टुट वॆट्टि
पट्टुवडवंड्रु पट्टी !
पट्टुकॊनन् नाकु गाक परुलकु वशमे ! ॥ 373 ॥

कं. ऒक्कडनॆननु दिरिगॆद
वॊक्कयॆडन् गुणमु गलिगि युंडवु नियमं-
बॆक्काडदि नीकु मरचिन
जक्कन बोयॆदवु पॆक्कुजाडल बुत्रा ! ॥ 374 ॥

सी. तोयंबुलिवि यनि तॊलगक चॊच्चॆदु तलचॆदु गट्टॆन दरल नॆत्त
मंटितो नाटलु मानवु कॊराडॆदुन्नत स्तंभंबुलूप बोयॆ-
दन्युल नल्पंबुलडुगंग बारॆदु राचवेटल जाल द्रव्व दॆच्चॆ
दलयवु नीळ्ळकु नड्डंबु गट्टॆदु मुसलिवै हरिवृत्ति मॊनय जूॆ

हो, आँखे मल-मलकर काजल-विखरे नेत्रों से आँसू गिराते हुए जो फूट-फूटकर रुदन कर रहा हो, माँ किस राह आ रही —यह जानने के लिए वार-वार छिपते-झांकते जो कनखियों से देख रहा हो, ऐसे वालक [कृष्ण] को यशोदा ने दौड़-दौड़कर पकड़ लिया। [आ.] "पकड़ लिया नन्हे माखनचोर को"— कहकर उसने वालक को भयभीत कर दिया, किंतु उसे मारने को उसके हाथ उठे नहीं, पसीजकर उस ललना ने उसे वाँध देना चाहा। [वालक की करतूतों पर यों उलाहना देने लगी]। ३७१ [कं.] ये कौन हैं ? क्या ये श्रीकृष्ण नहीं ? जिन्होंने मक्खन कभी देखा ही नहीं हैं। चोरी करना तो विलकुल जानते ही नहीं। ओहो, धरित्री (भूमंडल) पर ऐसे शीलवान भी हैं क्या ! ३७२ [कं.] पकड़ने पर तू पकड़ा नहीं जाता, शर्त वाँधकर तुझे पकड़ना [मानो] वहुत बड़ी साधना है ! कहते हैं तू पकड़ाई में आनेवाला नहीं है; पर तुझे पकड़ना मुझे छोड़ और किसी के वश की वात नहीं। ३७३ [कं.] तू जहाँ चाहे फिरता रहता है। किसी एक जगह रहने का गुण तुझमें है ही नहीं; तेरा कोई तौर-तरीक़ा नहीं। जरा भूल बैठूँ तो, वेटा, मालूम नहीं, तू कहाँ-कहाँ संचार करता है। ३७४ [सी.] जल देखकर उससे वचे रहने के वजाय कूद पड़ता है; पहाड़ भी उठाने पर उतारू होता है, मिट्टी से खेलना नहीं छोड़ता, कुरेदता रहता है; ऊँचे स्तंभों को भी [पकडकर] हिलाने जाता है; पराये

आ. वंबरंबु मीलकु नडुगनु तिरिगॆद-
विक गलिकिसेतलेल पुत्र !
निन्नु वंप ब्रालप ने नेर ननियॊ नी
विट्टु क्रिटु मोडु नॆरुगकुनिकि ॥ 375 ॥

व. अनि मर्मंबु लॊत्ति पलिकि ॥ 376 ॥

उलूखल-बंधन यमळार्जुन भंजनाद्यभिवर्णनमु

कं. आ ललन गट्ट रोलन्
लीलन् नवनोत चौर्यलीलु प्रिय वा-
ग्जालुन् बरिविस्मित गो-
पालुन् मुक्ताललाम फालुन् बालुन् ॥ 377 ॥

कं. रोलनु गट्टबडियु न, ब्बालुडु विलसिल्लॆ भक्तपरतंत्रुंडै
यालान सन्निबद्ध वि, -शाल मदेभेंद्रकलभ समरुचि नधिपा ! ॥ 378 ॥

कं. वॆलि लोनु मॊदलु तुद नडु-
मुलु लेक जगंबु तुदियु मॊदलुन् नडुमुन्
वॆलियुन् लोनगु नीश्वरु
नलवडुने कट्ट ब्रणतुराल् गाकुन्नन् ॥ 379 ॥

लोगों से अल्प वस्तुओं की याचना करता है; राजाओं के समान शिकार करके निंदा (अपयश) मोल लाता है; पानी को बाँध-बाँधकर रोकने से थकता नहीं [आ.] अंबर (वस्त्र) पहनना छोड़ (नंगा) घूमता फिरता है, लला ! तू ऐसा ऊधमीकृत्य क्यों करता है ? शायद यह समझकर कि मैं तुझे झुका नहीं सकती, उच्च-नीच जाने बिना ऐसा उपद्रव मचा रहा है। (इस पद्य में भगवान विष्णु के दशावतारों की चर्चा दृष्टि में रखकर कृष्ण की निंदा-स्तुति की गई है। ३७५ [व.] इस प्रकार [निंदासूचक] मर्मवचन कहकर। ३७६

उलूखल-बंधन तथा यमळार्जुन का भंजन आदि का वर्णन

[कं.] उस ललना (यशोदा) ने, नवनीत (माखन) की चोरी में लगनेवाले, मीठी बातें करनेवाले, मोतियों से सजे फाल (माँग) वाले, अत्यंत विस्मित उस बाल-गोपाल को अनायास ही ऊखल से बाँध दिया। ३७७ [कं.] हे राजन ! भक्तपरतंत्र होने के कारण, वह बालक, ऊखल में बँधे जाकर आलान (खूंटे) से बँधे हुए मस्त गजेंद्र के बच्चे के समान शोभायमान हुआ। ३७८ [कं.] वह यशोदा यदि प्रणत-भक्त न

आ. पट्टि यलरुबोडि पट्टि यीतंडनि
गट्टि तलपुतोड गट्टॆ गाक
पट्टि कडुपु पॆक्कु ब्रह्मांडमुलु पट्टु-
टॆरिगॆनेनि तल्लि येल कट्टु ? ॥ 380 ॥

कं. चिक्कडु सिरि कौगिटिलो
जिक्कडु सनकादि योगि चित्ताब्जमुलन्
जिक्कडु श्रुतिलतिकावळि
जिक्कॆ नतडु लील दल्लिचेतन् ड्रोलन् ॥ 381 ॥

व. इट्लु प्रवृद्ध ना मुद्दिय मुद्दुल कौडुकनि युदरंबु गट्ट नडरुचु, जदरंबुग जक्क नॊक्क त्राडु जुट्टिन, नदि रॆंडंगुळंबुलु गडम पडियॆ। मरियु नॊक्क बंधंबु संधिंचि वलगॊनिन, नंतिय कॊरंतयय्यॆ। वेंडियु नॊक्क पाशंबु गूर्चि परिवेष्टिंचिन, वॆल्ति सूपॆ। इट्लु ॥ 382 ॥

कं. तज्जननि लोगिटं गल
रज्जुपरंपरल ग्रम्मरन् सुतु गट्टन्
वॊज्ज दिरिगि रादय्यॆ ज-
गज्जालमुलुन्न वॊज्ज गट्टन् वशमे ? ॥ 383 ॥

होती तो उस आदिमध्यान्त-रहित ईश्वर को बाँधना कैसे साध्य होता जो समस्त जग में आदि, मध्य, अंत, ऊपर, नीचे, अंदर और बाहर से व्याप्त होकर भरा हुआ है। ३७९ [आ.] उस रमणी को यह दृढ़ विश्वास रहा कि कृष्ण बालक मात्र ही है, इसीलिए उसे पकड़कर बाँध दिया था, यदि वह जानती कि इस बालक के पेट मे कितने ही ब्रह्मांड समाये हुए हैं तो वह उसे काहे को बाँधती ? ३८० [कं.] जो लक्ष्मी के आलिंगन में नही फँसता, जो सनक आदि योगियों के हृदय-कमल में बंद नहीं होता, और जो श्रुति (वेद) रूपी लताओं में नही उलझता वही [भगवान विष्णु] बिलखते बालक के रूप में [यशोदा] के हाथ में पकड़ा गया। ३८१ [व.] जब वह सुंदरी झटपट अपने लाड़ले को रस्सी से लपेटकर बाँधने लगी तो रस्सी दो अंगुल कम पड़ गई, एक दूसरी रस्सी जोड़कर फेरने लगी तो उतनी ही कमी फिर से दिखाई दी, उसमें एक और जोड़ लगा दी तो वह भी पर्याप्त न हुई, हर बार रस्सी दो अंगुल कम पड़ती गई। तब। ३८२ [कं.] माता उस पुत्र को बाँधने के निमित्त घर में रखी सभी रस्सियों को बराबर काम में लाती गई, इतने पर भी तोंद का घेरा भरता नहीं था। जिस तोंद में जगज्जाल (लोक-समूह) भरा हुआ है उसे घेरना वश की बात नहीं। ३८३ [व.] तब वह माता और गोपिकाएँ सभी निश्चेष्ट

व. अप्पुडा यव्वयु, गोपिकलुन् वॆरुगु पडिरि। तदनंतरंब ॥ 384 ॥

आ. ऑडल जॆमटलॆगयनुत्तरीयमु जार
बीडियुन्न तुरुमुविरुलु राल
गट्टरानि तन्नु गट्टंदननि चिंत
गट्टु कॊन्न तल्लि गरुण जूचि ॥ 385 ॥

कं. बंधविमोचनुडीशुडु, बंधिप बॆनंगु जननि पाटॉर्चि सुहृ-
द्बंधुडु गावुन जननी, बंधंबुन गट्टुवडियॆ बाटिंचि नृपा ! ॥ 386 ॥

कं. संगडि दिरिगॆडु शंभुडु, -नंगाश्रययैन सिरियु नात्मजुडै यु-
प्पॊंगॆडु पद्मजुडुनु, गोपांगन क्रिय गरुण वडयरखिलेश्वरुचेन् ॥ 387 ॥

कं. ज्ञानुलचे मौनुलचे, दानुलचे योग संविधानुलचेतन्
बूनि निबद्धुंडगुने, श्रीनाथुडु भक्तियुतुलचेतं बोलॆन् ॥ 388 ॥

व. अंत नय्यशोद यिंटिकडं बनुल वॆंटं दिरुग, गृष्णुंडु, तॊल्लि नारदु शापंबुन निरुमद्दुलै युन्न नलकूबर मणिग्रीवुलनु गुह्यकुल निद्दरं गनि, रो लीड्चुकॊनि चनियॆ। अनि चॆप्पिन शुकयोगिवरुनकु भूवरुं- डिट्लनियॆ ॥ 389 ॥

(दंग) रह गईं। अनंतर। ३८४ [आ.] [यशोदा के] बदन से पसीना छूटने लगा, उपरना खिसक पड़ा, और शिथिल केशबंध से फूल टपकने लगे; जो किसी तरह बंधन में न आनेवाले को बाँधने की चिंता में विकल होती हुई माता पर तरस खाकर ३८५ [क.] [जीवों का] बंधन तोड़नेवाले ईश्वर (कृष्ण) ने उसे बाँधने के यत्न में क्लेश उठानेवाली माता का मान रखा। हे राजन् ! सुहृद्बंधु (भक्तवत्सल) होने के कारण वह माता के बंधन में [स्वेच्छा से] बँध गया। ३८६ [कं.] साथ चलनेवाला (सहचर) शंभु (शिव), अंक में बैठनेवाली लक्ष्मी, आत्मज (पुत्र) होकर प्रफुल्लित होनेवाला ब्रह्मा [इस] गोपांगना (यशोदा) के समान अखिलेश्वर की करुणा प्राप्त नहीं करते। ३८७ [कं.] श्रीनाथ (विष्णु भगवान) जिस प्रकार भक्तों के हाथ बँध जाता है उस प्रकार ज्ञानी, मौनी, दानी [अथवा] योगी जनों से निबद्ध नहीं होता। ३८८ [व.] अनंतर, यशोदा जब घर का कामकाज सँभालने में मग्न हुई तब कृष्ण ने पूर्व में नारद के शाप से अर्जुन वृक्ष के रूप में पड़े हुए नलकूबर और मणिग्रीव नामक गुह्यक जोड़े को देखा और ऊखल को घसीटते हुए उनके पास पहुँचा। इतना सुनकर शुकयोगींद्र से भूवर (राजा परीक्षित) ने यों कहा। ३८९

अध्यायमु—१०

कं. नारदुडेल शपिंचेनु, वा रा वृक्षत्वमुनकु वच्चिन पनिकि
गारण मेय्यदि योगिकु,-लाराध्य ! येरुंग जेप्पुमय्य ! विनियेदन् ।।390।।

व. अनिन शुकुंडिट्लनियें। मुन्नु कुबेरुनि कोडुकुलिरुवुरु शंकरकिंकरुलै, यहंकरिंचि, वेंडि कोंडमीद विरुल तोटलं वाडेंडि चेडियलं गूडुकोनि करेणुसंगतंबुलैन येनुंगुल भंगि सुरंगंबुलैन मंदाकिनी तरंगंबुल ग्रीडिंप, नारदुंडु वच्चिन, नच्चेलुवलु वेंच्चेर वलुवलु धरियिंचिरि मदिरापान परवशुलु गावुन वारलिरुवुरु विवस्त्रुलै मेलंगुचुन्न, ना मुनीश्वरुंडु चूचि, शपियिंचुवाडै, प्रतीतंबगु गीतंबु वाडे। विनुमु ।। 391 ।।

शा. संपन्नुंडोरु गानलेडु तनुवुन् संसारमुन् नम्मि हिं-
सिंप जूचु दरिद्रुडेत्तुवडि शुष्कीभूतुडै चिक्कि हिं-
सिंपं डन्युल नात्मकुन् समुलुगा जिंतिचु नट्लौट द-
त्संपन्नांधुनकंजनंबु विनुमी दारिद्र्यमूहिंपगन् ।। 392 ।।

व. अनि गीतंबु वाडि तन मनंबुन ।। 393 ।।

अध्याय—१०

[कं.] हे योगियों के कुलश्रेष्ठ ! मुझे यह समझाकर कहिए, मैं सुनूंगा, कि नारद ने उन्हें क्यों शाप दिया ? वृक्ष का जन्म उन दोनों ने किस कारण से प्राप्त किया ? ३९० [व.] शुक ने (उत्तर में) यों कहा। पुराने समय में कुबेर के दो पुत्र, जो शंकर के भक्त थे, घमंडी बन गये; वे एक समय रजतगिरि (कैलास) पर के पुष्पोद्यानों में गायन करती विहार करनेवाली विलासिनियों के संग, हथिनी के संग हस्तियों (हाथियों) के समान मंदाकिनी-तरगों मे क्रीडा कर रहे थे। एकाएक जब नारद वहाँ पहुँचे तो उन युवतियों ने (झटपट) वस्त्र पहन लिये। किंतु मद्यपान के कारण होश-हवास भूले वे दोनों भाई नंगे ही रह गये; मुनीश्वर ने उन्हें देख, शाप देने को [तत्पर] होकर, एक गीत ऐसा गाकर सुनाया। सुनो। ३९१ [शा.] संपन्न (धनी) व्यक्ति दूसरों को देख नहीं सकता, अपने तन और संसार पर भरोसा रख, हिंसा करने को उद्यत होता है। [किंतु] निर्धन मनुष्य अशक्त हो, सूख जाता है और परहिंसा नहीं करता, वह दूसरों को आत्मवत् समझता है। अत: विदित होता है कि धनमदांध के लिए दरिद्रता ही अंजन का काम देगी [जिससे वह सही देख सके]। ३९२ [व.] ऐसा गीत गाकर उन्होंने अपने मन में (विचारा) ३९३ [कं.] ये

कं. कलवानि सुतुलमनुचुनु
गलकंठुल तोड गूडि कानरु परुलन्
गललोनैननु वीरिकि
गल क्रोव्वडगिंचि बुधुल गलुपुट योप्पुन् ॥ 394 ॥

व. अनि चिंतिंचि, विज्ञानविशारदुंडगु नारदुंडु, नळकूबर मणिग्रीवुलं जूचि, मीरलु स्त्री मदांधुलरु गावुन, भूलोकंबुन नर्जुन तरुवुलै नूरु दिव्यवर्षंबुलुंडुंडु, अदमीद गोविंद चरणारविंद परिस्पंदंबुन ॥ 395 ॥

कं. मुक्तुलरै नारायण, भक्तुलरै परम साधुभाव श्री सं-
सक्तुलरै सुरलोक, व्यक्तुलरय्येदरु नादु वाक्यमु कतनन् ॥ 396 ॥

व. अनि यिट्लु पलिकि, नारदुंडु नारायणाश्रमंबुनकुं जनियें। वारिरुवुरु संगडि मद्दुलैरि। परम भागवतुंडैन नारदु माटलु वोटिबुच्चक, पाटिंचि ॥ 397 ॥

कं. मुद्दुल तक्करि विड्डडु
मद्दुल गूल्पंग दलचि मसलक दा ना
मद्दिदकवयुन्न चोटिकि
ग्रद्दन रोलीड्चुकोनुचु गडकन् जनियेन् ॥ 398 ॥

व. चनि या यूर्जित महाबलुंडु, निजोदरदाम समाकृष्यमाण तिर्यग्भवदुलूखलुंडै, या रेंडु म्राकुल नडुमं जोच्चि, मुंदटिकि निगुड्चु ॥ 399 ॥

दोनों भाई अपने को अमीरों की संतान मान, कलकंठियों (कामिनियों) के संग [मौज उड़ाते हुए] दूसरों पर स्वप्न में भी नज़र नहीं डालते; इनका मद चूर-चूरकर बुद्धिमानों में मिलाना (बुद्धिमान बनाना) ही उचित होगा। ३९४ [व.] ऐसा विचार कर उस विज्ञानविशारद नारद ने नलकूबर और मणिग्रीव को यों संबोधित किया। तुम लोग स्त्री के मद में अंधे बने हो, अतः अर्जुन वृक्ष बन, भूलोक में सौ दिव्यवर्ष पड़े रहो। अनंतर गोविंद के चरणारविंद के परिस्पदन (स्पर्श) से। ३९५ [कं.] मुक्त होकर नारायण के भक्त बनोगे, और मेरे वचन के प्रभाव के कारण परम-साधुभाव-संपन्न होकर सुरलोक (स्वर्ग)-निवासी बन जाओगे। ३९६ [व.] इस प्रकार कहकर नारद नारायणाश्रम चले गये। दोनों (गुह्यक भ्राता) यमल अर्जुन वृक्ष बन गये। [कृष्ण ने] परमभागवत नारद का वचन व्यर्थ होने नहीं दिया, उसे मानकर ३९७ [कं.] उस प्रिय धूर्त बालक ने उन वृक्षों को अविलंब गिरा देना चाहा; और ऊखल को घसीटता हुआ वह उनके समीप पहुँचा। ३९८ [व.] वह महाबली, वीर बालक जब उन वृक्षों के मध्य से दौड़ गया तो

कं. वालुडु ड्रोलड्डमु दिव
मूलंबुलु पॆकलि विटपमुलु विरिगि महा-
भीलध्वनि गूलॆनु शा-
पालस्थ विवर्जनमुलु यमळार्जुनमुल् ॥ 400 ॥

व. इट्लु निर्मूलंबुलै पडिन सालंबुललोनुंडि, कीलिकीललु वॆल्वडु पॊलिकॆ, नॆक्कुडु तेजंबुन दिक्कुलु पिक्कटिल्लं, ब्रसिद्धुलैन सिद्धलिद्दरु वॆडलि वच्चि, प्रबुद्धुलै, भक्तलोकपालकुंडैन बालकुनकु म्रॊक्कि, लेचि, कर-कमलंबुलु मोगिचि, यिट्लनिरि ॥ 401 ॥

कं. वालुडवै नीवु परुडव, नालंबुड वधिक योगि वाद्युडवु तनु-
स्थूलाकृति यगु विश्वमु, नी लीलारूपमंड्रु निपुणुलु कृष्णा ! ॥ 402 ॥

सी. ऎल्ल भूतंबुलर्किदियाहंकृति प्राणंबुलकु नधिपतिवि नीव
प्रकृतियु ब्रकृतिसंभव महत्तुनु नीव वीनि कन्निटिकिनि विभुड वीव
प्राकृत गुणविकारमुल बॊदक पूर्वसिद्धुडवगु निन्नु जितसेय
गुणवृतुंडोपुने गुणहीन ! नोयंद कल गुणंबुल नीव कप्पबडुदु

ते. मॊदल नॆव्वनि यवतारमुलु शरीरु-
लंदु सरि दोड्डु लेनि वीर्यमुल दनुवु

उसकी कमर के रस्से से बँधा हुआ ऊखल आड़े उलट पड़ा [और ज़ोर से खींचा गया]। ३९९ [कं.] [इस कारण] वे दोनों यमल वृक्ष, शाप-विमुक्त हो, भयकर ध्वनि करते हुए जड़ से उखड़ गिर पड़े। ४०० [व.] यों गिरे वृक्षों के भीतर से, जैसे अग्नि की लपटें निकलती हों, तीव्र प्रकाश से दिशाओं में चकाचौंध उत्पन्न करते हुए दो सिद्ध पुरुष निकल आये और भक्तपालक, बालक (कृष्ण) को दंडवत् करके उठकर करकमल जोड़ यों कहने लगे। ४०१ [कं.] हे कृष्ण ! तुम बालक तो नहीं हो, सबके परे हो; अनालंब (बिना किसी सहारे के) हो; महायोगी और आद्य (सृष्टि के मूलमत तत्त्व) हो, ज्ञानी लोग कहते हैं कि यह महान् स्थूलाकार का विश्व तुम्हारा लीलारूप (खेल) ही है। ४०२ [सी.] समस्त भूतों की देह, इन्द्रिय, अहंकार और प्राणों के तुम्हीं अधिपति हो; प्रकृति और उससे उत्पन्न महत्तत्त्व भी तुम्ही हो; प्रकृति में गुण-विकार पैदा होने के पूर्व ही तुम स्वतः सिद्ध रूप में रहनेवाले हो, तुम गुण-रहित हो, गुण-युक्त [जीवों] को तुम्हें जान पाना साध्य नहीं है। तुममें जो कुछ गुण हैं उन्हीं से तुम आवृत (ढके) रहते हो। [ते.] [अशरीरी होकर भी] तुम मूलतः अपना असामान्य और आधिक्य-रहित वीर्य (तेज) लेकर प्राणियों में अवतरित हो, नाना प्रकार के शरीरों का सृजन करते हो, फिर

लडर जन्मिचि वारलयंदु जिक्क-
वट्टि परमेश ! म्रोक्कॆदमय्य ! नीकु ॥ 403 ॥

कं. भुवनमुलु सेय गावग
नवतीर्णुडवैति गावॆ यखिलेश्वर ! यो-
गिवरेण्य ! विश्वमंगळ !
कविसन्नुत ! वासुदेव ! कल्याणनिधी ! ॥ 404 ॥

उपेन्द्र. तपस्वि वाक्यंबुलु दप्पवय्यॆन् नॆपंबुनं गंटिमि निन्नु जूडन्
दपंबुलॊप्पॆन् ममु दावकीय प्रपन्नुलं जेयुमु भक्तमित्रा ! ॥ 405 ॥

शा. नी पद्मावळुलालकिंचु चॆवुलुन् निन्नाडु वाक्यंबुलुन्
नी पेरंबनिसेयु हस्तयुगमुन् नी मूर्ति पै जूपुलुन्
नी पादंबुल पोंत म्रोक्कु शिरमुल् नी सेवपै जित्तमुल्
नी पै बुद्धुलु माकु निम्मु करुणन् नीरेजपत्रेक्षणा ! ॥ 406 ॥

व. अनि यिट्लु कीर्तिचिन, गुह्यकुलं जूचि, नगुचु नुलूखलबद्धुंडैन हरि यिट्लनियॆ ॥ 407 ॥

कं. तम तम धर्ममु तप्पक
समुलैननु नन्मि तिरुगु सभ्युलकुनु बं-
धमु ननु जूचिन विरियुनु
गमलाप्तुडु वॊडम विरियु घन तममु क्रियन् ॥ 408 ॥

भी तुम उन शरीरियों के हाथ नहीं लगते। ऐसे, हे परमेश्वर ! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। ४०३ [कं.] हे अखिलेश्वर ! योगिवर ! विश्वमगल (कारी) ! कविसन्नुत (संस्तुत्य) ! वासुदेव ! हे कल्याणनिधी ! इन लोकों को बनाने और रखने के निमित्त ही तो तुमने अवतार लिया है। ४०४ [उपेन्द्र.] तपस्वी (नारद) के वचन बेकार नहीं हुए, उनके शाप के बहाने हमें तुम्हारे दर्शन प्राप्त हुए; हमारा तप सार्थक हुआ; हे भक्तों के मित्र ! हमें अपने प्रपन्न (शरणागत) बना रखो। ४०५ [शा.] हे कमलदल-लोचन ! तुम्हारे गीत सुननेवाले श्रवण (कान), तुम्हें बखाननेवाली वाणी, तुम्हारा कर्म करनेवाले हाथ, तुम्हारी मूर्ति निरखनेवाले नेत्र, तुम्हारे चरणों में नत-मस्तक, तुम्हारी सेवा मे (आसक्त) चित्त, तुम्हें सोचने की बुद्धि कृपापूर्वक हमें प्रदान करो। ४०६ [व.] इस प्रकार कीर्तन करनेवाले गुह्यकों (यक्षों) को देखकर, हँसते हुए, उलूखलबद्ध हरि (कृष्ण) ने यों कहा। ४०७ [कं.] अपने-अपने धर्म से न हटकर, समबुद्धि से मुझ पर भरोसा रखकर चलनेवाले सभ्य [व्यक्तियों] के बंधन [ठीक] उसी प्रकार कट जाते हैं, जिस प्रकार कमलाप्त (सूर्य) के उदित होने पर तम-पुंज तितर-बितर हो जाता

कं. कारुण्य मानसुंडगु, नारदु वचनमुन जेसि ननु बॊडगनुटन्
मीरु प्रबुद्धुलरैतिरि, चेरॆन् ना मीद दलपु सिद्धमु मीकुन् ॥ 409 ॥

व. अनि यीश्वरुंडु मीरु मी नॆलवुलकुं बॊडु अनि यानतिच्चिन, महाप्रसादंबनि, वलगॊनि, पॆक्कु म्रॊक्कुलिडि, नलकूबर मणिग्रीवुलुत्तर भागंबुन करिगिरि ।

अध्यायमु—११

व. अंत नंदादुलेन गोपालकुलु निर्मूलंबुलै पडिन सालंबुल चप्पुडु पिडुगु चप्पुडनि शंकिंचि, वच्चि चूचि ॥ 410 ॥

कं. ई पादपमुलु गूलग, नो पापडुलूखलमुन निट्टु बद्धुंडै
ये पगिदि ब्रतिकॆ गंटिरॆ, वापोवडु वॆरवडॆट्टिवाडो यितडुन् ॥ 411 ॥

आ. पिडुगु वडदुगाक पॆनुगालि विसरदु, खंडितंबुलगुट गानरादु
बालुडतडु पट्टि वडद्रोय जालडु, तरुवुलेल गूलॆ धरणिमीद ॥ 412 ॥

व. अनि पॆक्कंड्रु पॆक्कुविधंबुल नुत्पातंबुलु गावलयु ननि शंकिंचिन, नक्कडनुन्न बालकुलिट्लनिरि ॥ 413 ॥

है। ४०८ [कं.] करुण-मानस [वाले] नारद के वचनों के प्रभाव से तुम लोगमुझे देख सके हो, इससे तुम प्रबुद्ध (जाग्रत्) हुए, और मुझ पर तुम्हारा चित्त आपसे आप लग्न हुआ। ४०९ [व.] अब तुम लोग अपने-अपने ठिकाने पहुँच जाओ। ऐसा कहकर ईश्वर (कृष्ण) ने उन्हें विदा किया, तो उन दोनों ने 'महाप्रसाद' कहकर प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार किया और उत्तर दिशा को रवाना हुए।

अध्याय—११

[व.] जब नंद आदि गोपालकों ने जड़ से उखड़कर गिरे हुए उन अर्जुन वृक्षों का कड़ाका सुना तो उन्हें बिजली के टूटने की शंका हुई; वहाँ आकर उन्होंने देखा। ४१० [कं.] इन वृक्षों के गिरते समय यह बच्चा इसी तरह ऊखल से बँधा [पड़ा] रहा, न जाने यह कैसे जीवित रहा। देखिए, यहन रोया, न भयभीत हुआ है, मालूम नहीं पड़ता यह किस तरह का शिशु है! ४११ [आ.] बिजली तो नहीं गिरी, न अंधड़ चला; इन [वृक्षों] का काटा जाना भी नज़र नहीं आता; यह तो बालक ठहरा, किस तरह से पकड़कर गिरा सकता है? [आखिर] ये वृक्ष धराशायी किस प्रकार हुए? ४१२ [व.] इस प्रकार तरह-तरह की बातें करके लोगों ने जब उत्पातों की आशंका प्रकट की तब वहाँ पर उपस्थित बालकों ने यों बतलाया। ४१३

कं. नंदुनि कॊमरुडु विनुडी, संदुन मुनु दूरि ड्रोलु सरि नड्डमुगा
मुंदटि कीड्चिन मद्दुलु, ग्रंदुकोनं गूलॆ जनुल गंटिमिरुवुरन् ॥ 414 ॥

व. अनि युट्लु पलिकिन बालकालापंबुलु विनि, मिथ्यारूपंबुलनि कॊंदरनिरि। कॊंदरु नानाविधंबुल संदेहिंचिरि। अंत नंदुडु विकसित वदनारविंदु-डगुचु, बद्दि कट्टु विडिचॆं। अट्टि यॆड दन तॆरंगॆव्वरु नॆरुंग कुंडवलॆ-ननि कपटकुमारुंडु ॥ 415 ॥

शा. पाडुन् मंदुनि भंगि गोपवनितल् पाणिध्वनुल् सेयगा
नाडुन् जंत्रमु कैवडिन् बरवशुंडै हस्तमुल् द्रिप्पुचुन्
जूडन् नेरनि वानि भंगि जनुलं जूचुन् नगुन् बालुरन्
गूडुन् बॆद्दल पंपु सेय जनुडागुन् द्रुगु जिट्टाडुचुन् ॥ 416 ॥

कं. चुंचॆंदुगु बालु द्रावुमु, दंचितमुग ननुडु पालु द्राबि जननि तो
जुंचॆंदुगदंचु लीला, चुंचुंडै यतडु चुंचु जूपॆं नरेंद्रा ! ॥ 417 ॥

कं. सॆलगोल पट्टुकॊनि जल
कलशमुलो नीड जूचि कलशगतुंडै
सॆलगोलबाप डॊकडिदॆ
तलचॆंन् ननु गॊट्टॆ ननुचु दल्लिकि जॆप्पॆंन् ॥ 418 ॥

[कं.] सुनिए, नंदनंदन ने इन वृक्षों के बीच में घुसकर आड़े अटके हुए ऊखल को ज़ोर से जब खींचा तो ये धड़ाम से गिर पड़े और दो पुरुष निकल आये, हम लोगों ने देखा। ४१४ [व.] बालकों की ये बातें सुनकर कुछ लोगों ने कहा कि यह सब झूठी गप-शप है। और कुछ लोगों ने अनेक संदेह प्रकट किये। नंद का मुख कमल-सा विकसित हुआ, उसने बच्चे के बंधन खोल दिये। तब वह कपटकुमार अपना निज-भाव लोगों से छिपा रखने के उद्देश्य से। ४१५ [शा.] मंदबुद्धिवाले (झक्की) की तरह गाने लगता, जिसे देख ग्वालिनें तालियाँ बजातीं; कठपुतली के समान उछल-उछलकर नाचता; परवशता से हाथ ऊपर उछाल चक्कर मारता; लोगों को देख, अनजान की तरह हँस देता; कभी बालकों के झुंड में मिल जाता, और कभी बड़ों की बातों पर ध्यान देता। कभी मिट्टी से खेलता [इस तरह कृष्ण ने लोगों को भुलावे में डाला]। ४१६ [कं.] हे नरेन्द्र ! माता के यह कहने पर कि दूध पिओगे तो तुम्हारी चोटी बढ़ेगी, बालक ने दूध पी लिया, और [तुरंत ही] माता को अपनी चोटी दिखाकर कहने लगा, "माई—कहाँ ? मेरी चोटी बड़ी नहीं हुई [देखो न ?]" ४१७ [कं.] हाथ में छड़ी लिये उस बालक (कृष्ण) ने जल-भरे कलश में अपनी परछाईं देखी, और माता से शिकायत करने लगा— देखो माँ ! यह छोटा छड़ी से मुझे मारने चला है। ४१८ [कं.] हे राजन् ! माता (यशोदा) ने एक दफ़ा

कं. भिक्षुलु वच्चेंदरेड्चिन
भिक्षापात्रमुन वेसि वेंगडिचि निनुन्
शिक्षिचेंदरनि चेंप्पिन
भिक्षुल गनि तल्लि नोंदिगि भीतिल्लु नृपा ! ॥ 419 ॥

नंदादुलु वृंदावनंबुनकु नरुगुट

व. इट्लु कृष्णुंडु बहुविधंबुल गपट बाललीलल विनोदिंप, बृहद्वनंबुन नंदादुलेन गोपवृद्धुलु महोत्पातंबुलगुट्यु, वानिवलन बालुंडुत्तरिंचुटयुं जूचि, येकांतंबुन नोक्कनाडु विचारिंप, नुपनंदुंडनु वृद्धगोपकुंडु तन येरुक मेंडसि यिट्लनियें ॥ 420 ॥

उ. इक्कड नुंडुरे मनुजुलो मन कृष्णुनकोंगु सेयगा
रक्कसुरालु चन्नोसगे राल पयिन् सुडिगालि वेंचें बे
ग्रिक्किरियं दरुल् वडियें गेशवु सत्कृप दप्पें जालु ने-
डेक्कडिकेन बोवलयु निक्किट गोपकुलार ! विंटिरे ! ॥ 421 ॥

कं. कसवु गल दिरवु पसुलकु
लसदद्रि नदी महीज लतिकावळि बें-
पेंसगुनु गापुरमुनकुनु
बोसगुनु बृंदावनंबु पोंदडच्चटिकिन् ॥ 422 ॥

पुत्र से कहा— तुम यदि रोओगे तो भिखारी तुम्हें उठाकर अपनी झोली में डाल ले जायेगे, और डर दिखाकर तुम्हें पीटेंगे —तब से कृष्ण भिखारियों को देख भयभीत हो, माता की ओट में जा छिपता था। ४१९

नंद आदि का बृन्दाबन को प्रस्थान

[व.] इस प्रकार कृष्ण तरह-तरह की कपट-लीलाओं से विनोद करता था। एक दिन वृद्ध गोपों ने मिलकर विचार किया कि इस गहन वनभूमि में आये दिन उत्पात हो रहे हैं। बालक [किसी तरह] उनसे बचता आ रहा है। उपनंद नामक एक बूढ़े ग्वाले ने अपनी चिंता यों व्यक्त की : ४२० [उ.] भाई ! हम लोग यहाँ कैसे रह सकते हैं ? हमारे कृष्ण को मार डालने के लिए राक्षसी ने [विषैला] दूध पिलाया, अधड़ ने पत्थर पर पटक दिया। सालवृक्ष ऊपर गिरकर दबोच रहे थे, वह तो केशव (भगवान) की कृपा थी कि बालक (बालबाल) बच गया। सुनो गोपो ! हम लोगों ने यहाँ इतने दिन काटे, बस, अब नहीं रहेंगे; यहाँ से किसी दूसरी जगह चले जायेगे। ४२१ [कं.] अपने गाय-बैलों के लिए तृण-

व. अनु नपनंदुनि पलुकुल कार्युलैन गोपकुलिदिय कायंबु मंदल अनि कोंदल-मंदक, यालमंदल नमंदगमनबुन मुंदर नडवं बंचि, पिरुंदं ग्रंदुकोन (कुंड) बाल वृद्ध नारुलेक्किन तेरुलु सागिंचि, तनुत्राण तुणीर बाणधरुलै, विड्लु पट्टुकोनि नडव, बंड्ल वेनुकं गोम्मुलिम्मुल बूरिपुचु, नवायंबु-लगु तूर्यरवंबुल नार्य पुरोहित समेतुलै, वेडुकलु कोननु निगुड मोन-लेर्पडुचुकोनि पावनबगु बृंदावनंबुनकु जनिरि। अप्पुडु ॥ 423 ॥

त. पलुपु लाडि युरोज कुंकुम पंक शोभितलै लस-
द्वसनलै कचभार चंपकदामलै सुललामलै
पसिडि माडल कांतुलर्रल वर्व देरुलमीद बें-
पेसग बाडिरि व्रेतला हरि हेलर्लिपगु नेललन् ॥ 424 ॥

व. अप्पुडु रोहिणी यशोद लेकरथंबुन बरिपूर्ण मनोरथलै, रामकृष्णुल मुंदट निडुकोनि, वारल विनोदंबुलकु ब्रमोदंबु नोंदुचुंडिरि। इट्लु गोपकुलु बृंदावनंबु सोच्चि, यंदर्धचंद्राकारंबुग शकटसंदोहंबु निलिपि, मंदलु विडियिचि, वसियिचिरि ॥ 425 ॥

कं. चेंदिरि बलमाधवुलभि, नंदिचुचु बरमपावनमु नंचित का-
ळिंदी संजीवनमुन्, बृंदावनमुन् मुनींद्र बृंदावनमुन् ॥ 426 ॥

घास से समृद्ध, नदी-नग और वृक्ष-लतिकाओं से संपन्न, सुखद-निवास के योग्य बृंदावन में जाकर बस जायेंगे। चलो। ४२२ [व.] उपनंद के इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करना आर्य गोपकों ने अपना प्रथम कर्तव्य माना। उन्होंने निश्चित होकर गो-गण को आगे रवाना किया, स्त्री, बाल और वृद्धों से भरे रथों को गोगण के पीछे चलाया; कवच, तूणीर-धनुर्धारी गोप-समूह रथों के पीछे-पीछे चला; सींग, तुरही आदि बाजे बजाकर, आनंद कोलाहल करता हुआ सारा गोप-परिवार आर्य (श्रेष्ठ)-पुरोहित-संघ को साथ लिये दलों में बँटकर पावन बृंदावन जा पहुँचा। उस समय : ४२३ [त.] गोप-वधुएँ, जिनके पयोज (कुचकुंभ) हल्दी-कुंकुम के पंक से शोभित थे, जिनके कचभार चंपकमालाओं से अलंकृत थे, जिनके कंठभाग में सुवर्णहारावली कांतिपुंज फेंक रही थी, और जो सुंदर वस्त्राभूषणों से लैस थीं, रथों पर बैठकर हरि (कृष्ण) के लीला-गीत मधुर कंठ से गाती चलीं। ४२४ [व.] उस समय रोहिणी और यशोदा एक ही रथ पर बैठ, पूर्ण-मनोरथ हो, राम और कृष्ण को गोद में बिठाकर उनके विनोद देख हर्षित हो रही थीं। इस प्रकार गोपवृंद बृंदावन पहुँच गया। अपने रथों को अर्धचंद्राकार में खड़ा कर गोगण के साथ डेरा डाल दिया। ४२५ [कं.] बलराम और कृष्ण उस बृंदावन को देखकर हर्षित हुए जो परमपावन था, यमुना नदी के जल से परिपूर्ण था और मुनींद्रों का आवासस्थान बना हुआ था। ४२६ [व.] यों

व. इट्लु बृंदावनंबु चेरि, कॊंतकालंबुनकु रामकृष्णुलु समानवयस्कुलैन गोपबालकुलं गूडुकॊनि, वेडुकलूडुकॊन दूडल गाचुचु ॥ 427 ॥

सी. वेणुवुलूदुचु विविध रूपमुलतो गंतुलु वेतुरु कौतुकमुन
गुरु कंबळादुल गोवृषंबुल बन्नि परवृषभमुलनि प्रतिघटिंतु-
रल्लुलु धट्टिंचि यंघ्रुल गज्जेलु मोरय दन्नुदुरोलि मुम्मरमुग
बन्निबंबुलु वंचि फलमंजरुल गूलिच व्रेटुलाडुदुरु प्रावीण्य मॊप्प

ते. वन्य जंतुचयंबुल वानि वानि
पदुरु पदुरुचु वंचिचि पट्टबोदु-
रंबुजाकरमुल जल्लुलाड जनुदु-
रा कुमारुलु बाल्यविहारु लगुचु ॥ 428 ॥

कं. पॊरुदुरु गिकुरु वॊडुचुचु, दूरुदुरु भयंबुलेक तोरपुटिरुवुल्
जारुदुरु घन शिलातटि, मीरुदुरॆंसंगरानि मॆलकुवल नृपा ! ॥ 429 ॥

वत्सासुर बकासुरुल वध

व. अंत नॊक्कनाडु यमुनातीरंबुन ना कुमारुलु, गोपकुमारुलुं, वारुनु ग्रेपुल मेप, नॊक्क रक्कसुंडु क्रेपुरूपंबुन वच्चि, वारल हिंसिपं दलंचि ॥ 430 ॥

बृंदावन में बस जाने के कुछ काल के अनंतर, बलराम और कृष्ण समवयस्क गोपबालकों के साथ गाय चराने जाकर उनके संग [तरह-तरह से] मनोविनोद करने लगे। ४२७ [सी.] बाँसुरी बजाते, विविध वेष बनाकर कौतुक से खेलते-कूदते; बड़े-बड़े कंबल ओढ़कर गो (गाय), वृषभों (साँड़) का खेल खेलते; कुछ को पराया साँड़ बताकर घेर लेते; भुजाओं को ठोंककर [सामनेवाले बालकों को] उछलकर लात मारते, तब उनके पायल बज उठते थे। होड़ लगाकर फल-फूल तोड़ते और उन्हें एक-दूसरे पर दे मारते थे; [ते.] वन्य पशुओं को उनकी अपनी-अपनी बोली में हुँकार कर धोखे से पकड़ने जाते; पोखरों में उतरकर एक-दूसरे पर [पानी के] छींटें मारते, इस प्रकार वे कुमार बाल्य-विहार में मग्न हुए। ४२८ [कं.] एक-दूसरे पर गिन-गिनकर [घूंसे आदि का] प्रहार करते; निडर होकर घनी झाड़ियों में घुस जाते; बड़ी चट्टानों पर चढ़कर शिलाओ पर से नीचे खिसकते। हे राजन् ! [वे बालक] ऐसे साहसपूर्ण खेल अनगिनत खेला करते थे। ४२९

वत्सासुर और बकासुरों का वध

[व.] तब एक दिन जब ये दोनों कुमार ग्वाल-बालकों के साथ यमुना-तट पर बछड़ो को चरा रहे थे, एक राक्षस इन्हें पीड़ा पहुँचाने के इरादे से

कं. क्रेपुल यर्रुल नाकुचु, ग्रेपुलतो निदियु मंचि क्रेपनग गड्डन्
जूपट्टं भक्तिसंगति, ग्रेपं चनुवानि स्रोल ग्रेपं तिरिगेन् ॥ 431 ॥

व. वानि नॅरिगि, कृष्णुंडु रामुनकुं जॅप्पि ॥ 432 ॥

चं. इदि यॅक मंचि लेग विनुडॅतयु नॉप्पडि नंचु डासि त-
त्पदमुलु दोकयुन् बिगिय बट्टि चॅलंगि वॅलंग स्रानितो
जदियग नॅक्क पॅट्टु गोनि चंपॅ गुमारुडु लेगरक्कसुन्
गवुलुकॉनंग बालकुलु को यनि यार्व नखर्वलीलतोन् ॥ 433 ॥

व. इट्लु रक्कसुंडु व्रेटुवडि, विशालंबगु सालंबुतो नेलं गूलॅ। अप्पुडु ॥ 434 ॥

कं. गॉंगडुलॅगुरग वैचुचु
जंगुन दाचुचुनु जॅलगि चप्पटुलिडुचुन्
बॉंगुचु गृष्णुनि बॉगडुचु
द्रुंगिन रक्कसुनि जूचि त्रुळ्ळिरि कॉमरुल् ॥ 435 ॥

व. आ समयंबुन वेलुपुलु विरुलवानलु गुरियिंचिरि। अप्पुडु ॥ 436 ॥

कं. वत्समुल पगिदि जगमुल, वत्सलतन् मनुप जूचुवाडै युंटन्
वत्समुल मेपुचुंडियु, वत्सासुरु जंपॅ भक्तवत्सलुडधिपा! ॥ 437 ॥

बछड़े का रूप धर वहाँ आया। ४३० [कं.] वह [राक्षस] बछड़ों में मिलकर दूसरे बछड़ों के गले चाटते हुए, उत्तम बछड़े के समान चतुरता से [राम और कृष्ण के सम्मुख] घूमने लगा। ४३१ [व.] [पर] कृष्ण उसे पहचान गया और बलराम को [उसका भेद] बता दिया : ४३२ [चं.] "देखो भाई, यह बड़ा ही सुंदर बछड़ा है" —यों कहते हुए भक्तों के निमित्त बने हुए उस वत्स (बालक) कृष्ण ने वत्सासुर की टाँगों को पूँछ के साथ लपेटकर पकड़ लिया और बलपूर्वक एक कपित्थ (कैथ) वृक्ष पर अनायास ही दे मारा। यह देख गोपबालक सब ज़ोर से चीखने लगे। ४३३ [व.] मार खाया हुआ वह राक्षस उस विशाल साल-वृक्ष-समेत भूमि पर आ गिरा। ४३४ [कं.] उस समय ग्वालों के लड़के अपने-अपने कंबल को उछाल-उछाल, नाच-कूदकर, तालियाँ बजाकर आनंदित हो कृष्ण की तारीफ़ करने लगे और उस कुचलकर मरे हुए राक्षस को देखकर विचलित हो उठे। ४३५ [व.] देवता लोगों ने उस अवसर पर फूल बरसाये। ४३६ [कं.] हे राजन्! वह भक्तवत्सल [भगवान] जगत् के प्राणियों को बछड़े मानकर पालन करते हैं, अतः उन्होंने ग्वालों के बछड़े चराते-चराते उस वत्सासुर का संहार कर दिया। ४३७ [व.] एक दिन गोप-बालक

व. मरियु नोक्कनाडु, रेपकड गोपकुमारुलु ग्रेपुलं गोनुचु, नडविकि जनि, यडं बडि, मॅंडुनोलिनि दप्पि बॅंडुवडिन, तम तम लेगकदुपुल नेर्परिचि, निलुवरिच्चु कोनि, कलंकंबु लेनि योक्क कोलंकुन नीरं द्राविचि, तारुनु मीरु पानंबु चेसि, वच्चुनेड नंदु ॥ 438 ॥

कं. अकलंकुलु वालुरु गनि-
रकुटिल दंभोळिहत सिताद्रिशिखर रू-
पकमुन् हरि हिंसारं-
भकमुन् बकमुन् विशाल भयदांबकमुन् ॥ 439 ॥

व. कनि दानि योडलि पोडवुनकु बॅंडुगुपडि चूचुचुंड ॥ 440 ॥

आ. ऍल्ल पनुलु मानि येकाग्रचित्तुडै
मोनिवृत्ति नितर ममत विडिचि
वनमुलोन निलिचि वनजाक्षुपै दृष्टि
जेर्चि बकुडु तपसि चॅलुवु दाल्चॅ ॥ 441 ॥

व. इव्विधंबुन नोडुगु वेट्टुकोनि युंडि ॥ 442 ॥

उ. चंचुवु दीटि पक्षमुलु जल्लुन विच्चि पदंबुलॅत्ति कु-
प्पिंचि नभंबुपैकॅगसि भीषण घोषण वक्त्रुडै विजृं-
भिंचि गरुत्समीरमुन भिन्नमुलै तरु लोलि गूलगा
मिंचि बकासुरुंडोडिसि मिंगॅ सहिष्णुनि जिष्णुकृष्णुनिन् ॥ 443 ॥

प्रातःकाल उठकर अपने बछड़ों के साथ जंगल मे चले गये। दोपहर तक उन्हे चराकर कड़ी धूप के कारण थक गये। प्यास के मारे हैरान बछड़ों को एक निर्मल जलवाले पोखरे में पानी पिलाया और स्वयं भी जल पीकर स्वस्थ हुए। जलाशय से वापस होते समय: ४३८ [कं.] उन भोले-भाले बालकों ने एक विशालकाय और वज्रायुध से कटे हुए हिमगिरिशिखर के सदृश भयंकर बगुले को देखा जो हरि (कृष्ण) को मार डालने की इच्छा से रास्ते में खड़ा था। ४३९ [व.] उसका डीलडौल देख वे भयभीत हो रहे थे। ४४० [आ.] वह बगुला ऐसा दीख पड़ा मानों एक तपस्वी हो, जो सारा व्यापार छोड़, एकाग्रचित्त हो, मुनिवृत्ति में सारी ममता त्यागकर, कमललोचन (कृष्ण) पर ही दृष्टि स्थिर किये वनमध्य खड़ा हुआ हो। ४४१ [व.] इस प्रकार ताक में रहकर: ४४२ [उ.] चोंच ठीक करके, सहसा पंख फड़फड़ाकर, टाँगें उठाकर वह बगुला ऊपर उछला और आसमान पर जाकर [मुँह से] भयंकर गर्जन किया; उसके पंखों के झकझोर पवन से [पास के] वृक्ष नीचे गिरे, इस तरह वह बकासुर सहिष्णु (सहनशील) विष्णु को झपटकर [समूचा] निगल गया। ४४३ [कं.] हे

कं. संगडि लोकमुलन्नियु
म्रिगुचु ग्रक्कुचुनु बयल मॅलगिंचुचु नु-
प्पोंगॅडु वेडुक काडटु
म्रिगुडुवडॅ बकुनि चेत मी दॅरिगि नृपा ! ॥ 444 ॥

कं. दनुजुडु म्रिंगिन कृष्णुनि, गनलेक बलादि बालक प्रमुखुल चे-
तनुलॅ बॅरुगंदिरि च, ग्यन प्राणमुलेनि यिंद्रियंबुल भंगिन् ॥ 445 ॥

व. इट्लु म्रिंगुडुवडि लोनिकि जनक ॥ 446 ॥

शा. कंठोपांतमु दौडलुन् मॅरमुचुन् गालाग्नि चंदंबुनन्
गुंठीभूतुडु गाक वॅड्रमगु ना गोपालबालुन् जयो-
त्कंठुन् ब्रह्मगुरुन् महामहिमु जक्कन् म्रिंगरादंचु सो-
ल्लुंठं बाडुचु वाडु ग्रक्कॅ वॅडलन् लोकंबशोकंबुगन् ॥ 447 ॥

कं. क्रक्कि महाघोषमुतो
जक्कग दनु बौडवराग जंचुलु रॅंडुन्
स्रुक्कग वट्टि तृणमु क्रिय
ग्रक्कुन हरि चीरॅ बकुनि गलहोत्सुकुनिन् ॥ 448 ॥

व. अप्पुडा नंदनंदनु मीद वेलुपुलु चालुपुलुगा नंदन मल्लिकादि कुसुम वर्षंबुलु हर्षंबुन गुरिसिरि। देववाद्यंबुलु मोॅरसॅ। रामादि गोपकुमारुलु,

---

राजन् ! समस्त लोक-समुदाय को निगलते, फिर उगलते और अंतरिक्ष में घुमाते हुए आनंदित होनेवाले उस विनोदी [भगवान कृष्ण] ने परिणाम जानकर उस बकासुर को निगलने दिया। ४४४ [कं.] अपने कृष्ण को न पाकर, जिसे दनुज (राक्षस) निगल गया, बलराम आदि गोपबालक डर के मारे ऐसे विकल हुए जैसे प्राण के छूट जाने पर इंद्रियाँ अचेत पड़ जाती है। ४४५ [व.] निगले जाने पर भी [कृष्ण बक के उदर के] भीतर न जाकर, ४४६ [शा.] तालू और जबड़ों को अंदर ही अंदर कुरेदकर प्रलयकाल की अग्नि के समान तीव्र ज्वलन पैदा किया। [राक्षस ने जब देखा कि यह] गोपाल बालक, जो विजय की उत्कंठा लिये, महामहिम ब्रह्मगुरु बने हुए थे, निगला नहीं जा सकता, तब उसकी निंदा करते हुए उसे बाहर उगल दिया। इससे लोगों का शोक दूर हुआ। ४४७ [कं.] यों उगलकर वह [असुर] घोर गर्जन करता हुआ [कृष्ण को] चोंच से चुभोने दौड़ा; तब उसकी दोनों चंचुओं को मज़बूती से थामकर उस लड़ाकू बकासुर को [कृष्ण ने] झटपट घास की तरह चीर डाला। ४४८ [व.] तब देवता लोगों ने हर्ष से नंदनंदन पर चंदन और मल्लिका-पुष्प बरसाये। देवदुंदुभी बज उठी। अपने कृष्ण को फिर पाकर बलराम आदि

प्राणमुलतो गूडिन यिद्रियंबुलुं बोलॅ ग्रम्मरु गृष्णुनि गनि, रम्मनि, कौग-
लिचुकोनि, कृष्णसहितुडै, लेगदाटुल मरल दाटिचुकोनि, मंदगमनंबुन
मंद करिगिन, वारलचेत वृत्तांतंबंतयु विनि, वेॅर्रगुपडि, गोप
गोपिकाजनंबुलु ॥ 449 ॥

कं. आपदल मीद नापद-
लो पापनि ए जेँदि तलगॅ नी यर्भकुनि
वै पडिन खलुलु, वह्नुनि
पै पडु शलभमुल पगिदि बडिरि धरित्रिन् ॥ 450 ॥

व. अनि पलिकिरि। मरियु, ना रामकृष्णुलु क्रेपुलं गाचुतरिनि ॥ 451 ॥

सी. कपुलमै जलराशि कट्टुदमा यनि कट्टुदुरड्डंबु कालुवलकु
मुनुलमै तपमुलु मौनयुदमा यनि मौनुलै युंदुरु माट लेक
गंधर्ववरुलमै गानविद्यलु मीर बाडुदमा यनि पाडजोत्तु-
रप्सरोजनुलमै याडुदमा यनि याडुरूपुलु दाल्चि याड जनुदु-

आ. रमर दैत्यवरुलमै यब्धि द्रत्तुमा
यनि सरोवरमुलयंदु हस्त-
दंडचयमु द्रिप्पि तरुतुरु तम यीडु
कौमरुलनुसरिप गौमरु मिगुल ॥ 452 ॥

गोपकुमार ऐसे आनंद से भर गये जैसे इंद्रियाँ प्राण-शक्ति से भर जाती हैं। वे लोग कृष्ण को गले से लगाकर, उसे साथ ले धीरे-धीरे बछड़ों को अड्डे पर हाँक चले। उनके मुँह से वह सारा वृत्तान्त सुनकर गोप-गोपीजन आश्चर्यचकित हुए। ४४९ [कं.] [लोगों ने कहा] इस निरोह बालक पर आफ़त पर आफ़त गिरती रही है, पर सारी यातनाएँ टलती गईं; इस पर आक्रमण करनेवाले दुष्ट (राक्षस सभी) आग में गिरे पतिंगों की तरह जल मरे। ४५० [व.] इस प्रकार लोगों ने [आपस में] कह लिया। राम और कृष्ण के बछड़ों को चराते समय, ४५१ [सी.] यह कहकर कि वानर बनकर समुद्र पर पुल बाँध लेंगे, नालों को रोक बाँध बनाते; यह कहकर कि मुनि बनकर तप करेंगे, [कुछ देर] चुप्पी साथ मौन बैठ जाते; यह कहकर कि गंधर्व बन गान-विद्या का प्रदर्शन करेंगे, गाने लग जाते; यह कहकर कि अप्सरा बन नृत्य करेंगे, स्त्री-वेष बनाकर नाचने लगते; [आ.]और यह कहकर कि देव-दानव बनकर समुद्र का मंथन करेंगे, सरोवर के जल में हाथ की लकुटियाँ डालकर जल विलोड़ने लग जाते। समवयस्क ग्वाल-बालक सभी उनका अनुकरण करते थे। ४५२

अध्यायमु—१२

श्रीकृष्णुंडु गोपकुलतो वॅतिचल्दुलु कुडुव नेगुट

व. अंत नॉक्कनाडु कृष्णुंडु कांतारंबुन बंति चल्दुलु गुडुव नुद्योगिंचि, प्रॉद्दुन लेचि, ग्रद्दन तनयिंटि लेगकदुपुलं गदलिचि, सुरंगंबगु शृंगंबु पूरिंचिन, विनि, मेलुकॉनि, संरंभंबुन गोपडिंभकुलु चल्दि कावळ्ळु मूपुल वहिंचि, सज्जंबुलगु कज्जंबुलु गट्टुकॉनि, पदत्राण वेत्रदंडधरुलै, लॅक्कलकु वॅक्कसंबैन तमतम क्रेपुकदुपुलं जप्पुडिंचि रॉप्पुकॉनुचु, गाननंबुलु सॉच्चि, कांचन मणिपुंज गुंजादि भूषणभूषितुलय्युनु, फल कुसुम कोरक पल्लव वल्लरुलु तॉडवुलुगा निडुकॉनि, कॉम्मु लिम्मुग बूरिंपुचु, वेणुवुलूदुचु, तुम्मॅदलं गूडि पाडुचु, मयूरंबुलतोडं गूडि याडुचु, पिकंबुलं गलसि कूयुचु, शुकंबुल जेरि रॉदलु सेयुचु, बुलुगुल नीडलं बरुचु, बॉदरिड्लु दूरुचु, सराळंबुलगु वागुलु गडचुचु, मराळंबुल चॅंत नडचुचु, बकम्मुलं गनि निलुचुचु सारसंबुलं जोपि यलंचुचु,नदीजलंबुलं दोगुचु, तीगे युय्याललूगुचु, बल्लंबुलं डागुचु, गपुल संगडि दरुवु लॅक्कुचु, फलंबुलु मॅक्कुचु, रसंबुलकुं जॉक्कुचु, निगिकिन्निक्कुचु, नीडलु चूचि

अध्याय—१२

श्रीकृष्ण का ग्वालों के संग पंक्तिभोज में कलेवा खाने के लिए वन जाना

[व.] तब एक दिन कृष्ण ने वन में जाकर पक्तिभोज में कलेवा करने का निश्चय कर, तड़के ही उठ, घर के बछड़ों को खोल निकाला; फिर सुंदर सींग बजाकर सबको जगाया। उसे सुन गोप-बालक सब रुचिकर खाद्यान्न और दध्योदन से भरी काँवरियाँ कंधों पर लिये, पनहियाँ पहने, हाथ में डंडा लिये अपने अनगिनत बछड़ों को हाँककर समारोह के साथ वनस्थली जा पहुँचे। वे लोग यद्यपि सोने, हीरे, और गुंजा के विविध आभूषणों से लैस होकर निकले थे, फिर भी उन लोगों ने वन के फल, फूल, कोंपल और लताओं से अपना श्रृंगार कर लिया। वे लोग सींग और बाँसुरी बजाते, भौरों के साथ गुंजार करते; मोरों से मिलकर नाचते; कोयलों के संग कूकते; तोतों के पास पहुँच मीठे बोल बोलते; पक्षियों की छाया के साथ-साथ दौड़ते; झाड़ियों में घुसते; नहरों को लाँघते; हंसों के साथ चहलकदमी करते; बगुलों को देख ठिठक जाते; सारसों को उड़ाकर तंग करते; नदीजल में डुबकी लगाते; लताओं के हिंडोले झूलते; गड्ढों में लुका-छिपी करते; दूर की दौड़ लगाते; बंदरों के साथ पेड़ों पर चढ़ जाते; फल तोड़ भख जाते; रस चूस-चूस छक जाते; अधर में उछलते; परछाइयाँ देख हँसते; लड़ने

नव्वुचु, गय्यंबुलकुं गालु द्रव्वुचु, जॆलंगुचु, मॆलंगुचु, व्रालुचु, सोलुचु, बहुप्रकारंबुल शरीरविकारंबुलु सेयुचु, मरियुनु ॥ 453 ॥

कं. ऒक नॊकनि चलिद कावडि
नॊकडॊक डडकिंचि दाचु नॊकडॊकडनि वे-
ड्रॊकरॊकरि मॊड्गिकॊनि चन
नॊकडॊकडदि तॆच्चि यिच्चु नुर्वीनाथा ! ॥ 454 ॥

कं. ऒक्कडु मुन्नेमड्चिन
नॊक्कडु बलु बॊब्बवॆट्टु नुलिकि पडन् वे-
रॊक्कडु मोड्चि तटालुन
नॊक्कनि कनुदोयि मूयु नॊक्कडु नगगन् ॥ 455 ॥

कं. तीपि गल कज्ज मन्युडु
कोपिपग नॊडिसि पुच्चुकॊनि पो वाडुन्
वेपडि यडुगग नॊक्कडु
क्रेपुललो नट्लु निट्लु गिकुरिचॆं नृपा ! ॥ 456 ॥

कं. वनजाक्षुडु मुन्नरिगिन
मुनुपडगा नतनि मेमु मुट्टॆदमनुचुन्
जनि मुनु मुट्टनि वानिन्
मुनु मुट्टिनवाडु नव्वु मॊनसि नरेंद्रा ! ॥ 457 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 458 ॥

को ललकारते; घूमते-फिरते; झुकते-झूमते [इस तरह] अनेक प्रकार खेल-कूद और शारीरिक चेष्टाओं में मगन हुए। इतना ही नहीं। ४५३ [कं.] हे राजन् ! एक की काँवरी [जिसमें पक्वान्न थे] दूसरा चुराकर छिपाता, तब तीसरा [छोकरा] उसकी आँख बचाकर उसे उठा लाता है और चौथे को दे देता। ४५४ [कं.] जब एक बालक भूला-भूला चलता रहता, तब दूसरा उसके पीछे आकर ज़ोर से चीख मारकर चौंका देता है। एक [बालक] अचानक आकर एक की आँखें मूंद देता तो दूसरा ठठा मारकर हँस देता। ४५५ [कं.] एक का मीठा खाजा दूसरा जबरन छीन लेता और उसे खिलाता, तब एक और बालक उसे ढकेलकर वह मिठाई ले भागता और गोसमूह में घुस जाता। ४५६ [कं.] हे नरेंद्र ! वनजाक्ष [कृष्ण] जब [कुछ दूर] आगे निकल गया तो उसे पहले छू लेने की होड़ लगाकर दो बालक दौड़ पड़ते, जो सर्वप्रथम पहुँच पाया वह दूसरे की [हार पर] खिल्ली उड़ाता। ४५७ [व.] इस प्रकार, ४५८

उ. अन्नडुनैन योगिविभुलॅव्वनि पादपरागमितयुन्
गन्नुल गानरट्टि हरि गौगिट जेर्चुचु जॆट्ट बट्टुचुन्
दन्नुचु गुद्दुचुन्नगुचु दट्टयु वैपडि कूडि याडुचुन्
मन्नन सेयु वल्लवकुमारुल भाग्यमुलित यॊप्पुने ॥ 459 ॥

कं. विदुलकुन् ब्रह्मसुखा-
नंदंबै भक्तगणमुनकु दैवतमै
नंदुनिकि बालुडगु हरि
पॊंदु गनिरि गॊल्ललिट्टि पुण्युलु गलरे ! ॥ 460 ॥

अघासुर वृत्तांतमु

व. अनि पलिकि शुकयोगींद्रुडु मरियु निट्लनियॆ ॥ 461 ॥

कं. अमरुलमृतपानंबुन, नमरिनवारय्यु नेनिशाटुनि पंच-
त्वमुनकु नॆदुळ्ळु सूतुरु, तमु नम्मक यट्टि यघुडु दर्पोद्धतुडै ॥ 462 ॥

कं. बकुनिकि दम्मुडु गावुन, बकमरणमु तॆलिसि कंसुपंपुन गोपा-
लक बालुरंतो गूडन्, बकवैरिनि द्रुंतुननुचु बट्टुरोषमुनन् ॥ 463 ॥

कं. वालुरु प्राणंबुलु गो,-पालुरकु मदग्रजातु प्राणमु मारी
बालुर जंपिन नंतिय, चालुनु गोपालुरॆल्ल समसिन वारल् ॥ 464 ॥

[उ.] महान् योगीश्वर लोग भी जिसका पादपराग (पैरों की धूल) भी कभी आँखों से देख नहीं पाते, उस हरि को गले लगानेवाले, बाँह पकड़नेवाले, लात और मुक्का मारकर हँसनेवाले, ऊपर गिरकर खेलवाड़ करनेवाले, [इस तरह] आदर देनेवाले इन ग्वालबालकों का भाग्य बखाना नहीं जा सकता। ४५९ [कं.] ज्ञानियों के लिए ब्रह्मानंद [-स्वरूप] होकर, भक्तगण के लिए दैव होकर, नंद के लिए बालक बने हुए उस हरि की संगति ये ग्वाले पा गये, इनके समान पुण्यात्मा कहाँ होंगे ? ४६०

अघासुर का वृत्तान्त

[व.] ऐसा कहने के उपरान्त शुकयोगीन्द्र यों बोले : ४६१ [कं] अमृत पीकर यद्यपि देवता लोग अमर हो गये थे फिर भी अपने-आप में विश्वास न रहने के कारण वे लोग [भयभीत होकर] जिस निशाचर का अंत चाहते थे, वह अघासुर मदमस्त हो उठा। ४६२ [कं.] वह बकासुर का छोटा भाई था, बक का मरण [वृत्तान्त] जानकर कंस द्वारा नियुक्त हो उसने अत्यंत रोष के साथ ठान लिया कि मैं गोप-बालकों समेत बकवैरी (कृष्ण) का अंत कर दूँगा। ४६३ [कं.] ये बालक ग्वालों के लिए प्राण [तुल्य] हैं, मेरे भाई के प्राणों के बदले में इनका प्राण हर लेना

व. अनि निश्चयिंचि, योजनंबु निडुवुनु, महापर्वतंबु पॉडवुनु, गॉङतुदल मीऱ्रिन कोऱलुनु, मिन्नु दन्नि पन्निन नल्ल मॊगुळ्ळ पॅल्लुगल पंदवुलुनु, बिलंबुलकु नग्गलंबैन यिगुळ्ळ संदुलुनु, अंधकारबंधुरंबैन वदनांतराळंबुनु, दावानल ज्वालाभीलंबैन दृष्टिजालंबुनु, वेडिमिकि निवासंबुलैन युच्छ्वास विश्वासंबुलुनु मॆऱय, नेल नालुकलु पऱचुकॊनि, घोरंबगु नजगराकारंबुन ॥ 465 ॥

कं. जापिरमु लेक यिप्पुडु, ग्रेपुल गोपाल सुतुल गृण्णुनि तोडन्
गी पॅट्टग म्रिगॅदननि, पापपु रक्कसुडु त्रोव वडियुंडॆ नृपा ! ॥ 466 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 467 ॥

म. ऒक वन्याजगरेंद्र मल्लदॆ गिरींद्रोत्सेधमै वावपा-
वक कीला परुष प्रचंडतर निश्श्वासंबुतो घोर व-
ह्निकराशातत जिह्वतोड मनलन् हिंसिप नीक्षिपुचुन्
विकटंबै पडि सागियुन्नदि पुरोवीधिन् गनुंगॊंटिरे ! ॥ 468 ॥

व. अनि यॊंडॊरुलकुं जूपुचु ॥ 469 ॥

म. बकुनि जंपिन कृष्णुडुंड मनकुं वामंचु जिंतिप ने-
टिकि रा पोदमु दाटि काक यिदि कौटिल्यंबुतो म्रिगुडुन्

काफ़ी होगा, इससे ग्वाले सब मर मिट जायेंगे । ४६४ [व.] इस प्रकार का निश्चय करके वह राक्षस एक घोर अजगर बनकर रास्ता रोके पड़ा रहा। उसका आकार एक योजन लंबा, और महापर्वत के समान ऊँचा था। दाढ़ें उसकी पहाड़ की चोटियों से बड़ी थीं; ओंठ उसके आकाश में तनकर फैले हुए बादलों से अधिक काले थे। दाँतों के बीच में बिलों के समान [गहरे] गड्ढे पड़े थे। मुँह का अंतर्भाग अंधकार-बंधुर था। तेवर दावाग्नि की ज्वाला से भयंकर और उच्छ्वास निःश्वास गरमी के निधान थे। लपलपाती जीभें ज़मीन पर बिछाकर वह घोर आकार में लेटा हुआ था। ४६५ [कं.] हे राजन्! वह पापी राक्षस चाहता था कि मैं अविलंब इन गौओं और गोपबालकों को कृष्ण-समेत उनके चीखते-चिल्लाते रहने पर भी समूचा निगल जाऊँगा। ४६६ [व.] उस समय, ४६७ [म.] "वह देखो! एक वन्य अजगर जो हिमालय जितना लंबा, दावानल की ज्वाला जैसे प्रचंड निःश्वासों के साथ, भयंकर आग उगलता हुआ लंबी जीभ काढ़कर हमें निगलने को तैयार रास्ते में लेटा हुआ है, तुम लोगों ने देखा नहीं? [कितना] भयंकर है!" ४६८ [व.] यों कहते हुए [गोपबालक] एक-दूसरे को दिखाने लगे। ४६९ [म.] [कुछ ने कहा—] "बक-हंतक कृष्ण के रहते हुए हमें साँप की

बकु वटं जनु गृष्णुचेतननुचुन् बद्माक्षुनीक्षिचि यु-
त्सुकुलै चेतुलु व्रेसिकोंचु नगुचुन् दुर्वारुलै पोवगन् ॥ 470 ॥

व. वारलं जूचि हरि तन मनंबुन ॥ 471 ॥

उ. अर्भकुलेल्ल बामु दिविजांतकुडौट यॆरुंगरक्कटा !
निर्भयुलै यॆदुर्कों निरि ने गलनंचु विमूढुलंचु ना-
विर्भवदाग्रहत्वमुन वॆंदगुलं दम लेग पिडुतो
दुर्भर घोर सर्प घन तुंडबिलांतमु जॊच्चिरंदरुन् ॥ 472 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 473 ॥

शा. वेल्पुल् चूचि भयंबु नोंद ग्रसनावेशंबुतो नुज्ज्वल-
त्कल्पांतोज्ज्वलमान जिह्व दहनाकारंबुतो म्रिंगॆ न-
स्वल्पाहींद्रमु माधवार्पित मनोव्यापार संचारुल-
न्नल्पाकारुल शिक्यभारुल गुमाराभीरुलन् धीरुलन् ॥ 474 ॥

व. इट्लु पॆनुबामुचेत म्रिंगुडुपडु संगडिकांड्र गमि जूचि, कृष्णुंडु ॥ 475 ॥

चं. पड्चुलु लेगलुं गलसि पैकोनि वत्तुरु तॊल्लि कृष्ण ! मा
कॊड्कु लदेल रा रनुचु गोपिक लॆल्लनु बल्क नेक्रियन्

चिंता क्यों करनी है ? चलो, लाँघकर आगे बढ़ेंगे; यदि वह कुटिलता के कारण हमें निगल ही गया तो फिर [निश्चय ही] कृष्ण के हाथ [ठीक] उसी राह जायगा जिस राह बक गया है।" यों कह उन बालकों ने पद्माक्ष (कृष्ण) की तरफ़ निहारा। फिर उत्साहपूर्वक ताली पीटते हुए निर्भय आगे बढ़ चले। ४७० [व.] उन्हें देखकर हरि (कृष्ण) ने अपने मन में [विचारा], ४७१ [उ.] "ये छोकरे बेचारे नहीं जानते कि यह साँप नहीं बल्कि दानव है। हाय ! ये लोग मेरे रहने का ख्याल रख (भरोसा रख) कर बिना भय खाये [साँप के] सामने जा रहे हैं।" इन गोपबालकों की मूढ़ता पर खीजते हुए [कृष्ण ने] उनका पीछा किया। [इस प्रकार] सारे के सारे लोग अपने बछड़ों के साथ उस दुर्भर और घोर सर्प के मुखगह्वर में घुस पड़े। ४७२ [व.] उस अवसर पर ४७३ [शा.] [यह दृश्य देख] देवगण भयभीत हुए। निगल जाने के आवेश में प्रलयकाल की अग्निशिखा के समान भभकनेवाली अपनी जीभ फैला कर वह स्थूलकाय अजगर उन सब आभीर-कुमारों (अहीर-बच्चों) को गुटक गया जो छोटे-छोटे [किंतु] धीर थे, खाद्यान्न की काँवरियाँ लिये हुए थे और माधव (कृष्ण) पर मन लगाये चल रहे थे। ४७४ [व.] इस प्रकार उस भारी सर्प से निगले जानेवाले हमजोलियों का झुंड देखकर कृष्ण [सोचने लगा] ४७५ [चं.] [जब मैं घर वापस जाऊँगा] तब

नॊडिवॆंद नॆड्डु पन्नगमुनोरिकि वोरिकि नॊक्क लंकॆगा
नॊडबड नॆल चेसॆ विधि योडक सेयु गदय्य ! क्रौर्यमुल् ॥ 476 ॥

व. अनि तलपोसि, निखिल लोचनुंडुनु, निजाश्रित निग्रह मोचनुंडुनैन तम्मिकंटि, मिंटि तॆरुवरुलु मॊऱलिड, रक्कसुलुक्कुमिगुल, वॆक्कसंबगु नजगरंबु कुत्तुककुं बॊत्तुगानि मॊत्तंबु वॆंटनंटं जनि, तम्मु नंदऱ चिदऱवंदऱ जेसि, म्रिग नर्गालिचु नजगरंबु कंठद्वारंबुन समीरंबु वॆडलकुंड तनशरीरंबु पॆंचि, ग्रद्दन मिन्नॆ सऱचि नट्लुंड ॥ 477 ॥

कं. ऊपिरि वॆडलक कड्डुपुन
वापॊंदविन बामु प्राणवातंबुलु सं-
तापिंचि शिरमु व्रक्कलु
वापिकॊनुचु वॆडलि चनियॆ बट्टु घोषमुतोन् ॥ 478 ॥

शा. क्रूरव्याळ विशाल कुक्षिगतुलन् गोवत्स संघंबुतो
गारुण्यामृत वृष्टितोड ब्रतुकंगा जूचि वत्संबुलुन्
वार दानु दवास्यवीथि मगुडन् वच्चॆन् घनोन्मुक्तुडै
तारानीकमुतोड नॊप्पॆसगु ना तारेशु चंदंबुनन् ॥ 479 ॥

गोपिकाएँ मुझसे पूछेंगी— "हे कृष्ण ! तुम अब तक बालकों और बछड़ों को साथ लेकर घर आते रहे, किन्तु आज हमारे बालक नहीं आये, क्या कारण है ? इस [प्रश्न] का मैं क्या उत्तर दूँ ? ब्रह्मा ने आज मुझे इन बालकों के और अजगर के मुँह के बीच में जोड़ बनाके रख दिया। अब बिना पीछे हटे मुझे कठोरता करनी ही होगी। ४७६ [व.] इस प्रकार सोचने के बाद सर्वद्रष्टा, अपने आश्रित जनों का कष्ट निवारण करनेवाले, पद्मलोचन [कृष्ण] ने देवताओं की गुहार सुन ली। राक्षसों की मदमस्ती बढ़ाते हुए अजगर बने उस नरभक्षक के कंठभाग में लगकर वह सारा समूह अंदर पहुँच गया। उन लोगों को तितर-बितर कर सबको पेट में डालने को उद्यत उस अजगर के गलद्वार में [रहकर] कृष्ण ने अपना शरीर इतना फैलाया कि साँप का वायु संचार रोकनेवाला पक्का बाँध तैयार हो गया। ४७७ [कं.] हवा का चलना जब बंद हो गया तो [अजगर का] पेट फूलने लगा उसकी प्राणवायु संतप्त होकर निकलने का दूसरा मार्ग न पाकर धमाके के साथ सिर फोड़कर निकल गई। ४७८ [शा.] उस क्रूर सर्प के विशाल उदर में बंद रहे उन गो-गोपालों को कृष्ण ने करुणामृत सनी दृष्टि से देखकर फिर से सजीव किया; और उन गौओं और बछड़ों के साथ स्वयं अजगर के मुँह से निकल यों बाहर चला आया जिस प्रकार तारागण के साथ चंद्रमा मेघमंडल से मुक्त होकर बाहर निकलता है। ४७९

आ. अमरवरुल कौरकु गमलजांडंबॆल्ल
बलि दिरस्करिंचि बलियु वडुगु
गोपसुतुल कौरकु बापपु पॆनुबामु
गळमु द्रुट्टुगट्ट वलियकुन्नॆ ॥ 480 ॥

उ. आ पॆनुबामु मेन नौक यद्भुतमैन वॆलुगु दिक्तटो-
द्दीपकमै वडिन् वॆडलि देवपथंबुन देजरिल्लुचुन्
ग्रेपुलु बालुरुन् वॆंदर गृष्णुनि देहमु वच्चि चौच्चॆ ना
पापडु चौच्चि प्राणमुल बापिन यंतनॆ शुद्धसत्वमै ॥ 481 ॥

कं. तन रूपॊकमारैननु
मनमुन निडिकॊनिन बापमंतयु दनलो-
गौनि चनु हरि तनु म्रिंगिन
दनुजुनि गौनिपोवकुन्नॆ तन लोपलिकिन् ॥ 482 ॥

व. तदवसरंबुन, सुरलु कुसुमवर्षंबुलु गुरियिंचिरि। रंभादुलाडिरि। मेघंबुलु मृदंगंबुल भंगि घोषिंचॆ। सिद्ध गंधर्वुलु 'जय, जय' भाषणंबुल भाषिंचिरि। अंत ॥ 483 ॥

शा. आ वाद्यंबुलु ना महा जयरवंबा पाटला याटलुन्
देव ज्येष्ठुडु पद्मजुंडु विनि प्रीति भूमिकेतॆंचि ने-

[आ.] देवताओं के निमित्त बलि [दानव] को तिरस्कृत कर सारे ब्रह्मांड में व्याप्त होनेवाला वामन (भगवान विष्णु) आज गोप-वालकों के (रक्षण के) लिए पापी अजगर का गला फाड़ डालने को क्यों नहीं फैलता ? ४८०
[उ.] [उस समय] बृहदाकार सर्प के शरीर से एक अनोखा तेज-पुंज निकला जो दिक्तटों को उद्दीप्त कर आकाश में चमकता रहा। जैसे ही बालक (कृष्ण) ने पेट के भीतर घुसकर प्राण हर लिये वैसे ही वह अजगर शुद्ध सत्त्ववान बन गया। फिर वह तेजपुंज कृष्ण की देह में प्रविष्ट हुआ जिसे देखकर बछड़े और बालक विचलित हो गये। ४८१
[कं.] अपने स्वरूप को, केवल एक बार ही सही, मन में रख ध्यान करने वाले [जीव मात्र] का समस्त पाप अपने अंदर [खीच] लेनेवाला हरि (भगवान विष्णु) उस राक्षस को, जिसने उसे निगल लिया कैसे अपने में विलीन नहीं करता ? ४८२ [व.] उस अवसर पर देवताओं ने फूल बरसाये; रंभा आदि [अप्सराओं] ने नृत्य किया; मेघ मृदंग के समान बज उठे; सिद्ध और गंधर्वों ने 'जय', 'जय' के नारे लगाये। फिर, ४८३
[शा.] वह बाजे-गाजे, वह जय-जयकार और वह नृत्य-गायन देवज्येष्ठ और पद्मज ब्रह्मदेव ने सुन लिया, और खुश होकर भूमि पर उतर आया।

डी वत्सार्भकुलन् भुजंगपति हिंसिपंग नी बालकुं-
डे वेंटन् ब्रतिकिंचें मेलनुचु नूहिंचेन् गडुन् निव्वेरन् ॥ 484 ॥

व. अंतन य्यजगर चमंबु कोन्नि दिवसंबुल कोंडि, पेंद्द गालंबु गोपालुरकु गेळिबिलंबै युंडे। इट्लु कौमारविहारंबुन नेंदव येट गृष्णुंडघासुरुनि देंगजूचुटयु, वम्मुं गाचुटयु, नड्रवयेटिवेंन पौगंड वृत्तांतंबनि चित्तंबुलं गोपकुमारुलु दलंपुचुंडुरु। अनि चेंप्पिन, नप्पुडमिरेडप्परम योगींद्रुन-किट्लनियें ॥ 485 ॥

सी. ऐवेंड्लु कौमार मटमीद नेंदेंड्लु पौगंड मनियेंडु प्रायमंडु
नेदेंड्लवाडेन यब्जाक्षु चरितंबु "पौगंडमनि" गोपबालुरेंल्ल
दलतुरंटिवि येंट्लु तलतुरु वारलु निरुडु चेसिन पनि नेटिदनग
वच्चुने यिदि नाकु वरुसतो नेंरिगिपु मनवुडु यतिचंद्रुडेन शुकुडु

आ. योगदृष्टि जूचि योंविकत भाविंचि
विनुमु राजवर्य ! विनयधुर्य !
परमगुमनुचु बल्कुदुरार्युलु
शिष्यजनुलकीवु सेयु तलपु ॥ 486 ॥

[उसने अपने आप कहा] इन बालकों और बछड़ों को सर्पराज के उपद्रव से इस बच्चे [कृष्ण] ने किस प्रकार बचाया होगा, यह बड़े अचरज की बात हुई। ४८४ [व.] उस अजगर का चमड़ा कुछ दिनो बाद सूख गया, तब वह बहुत काल तक गोप-बालकों के खेलने के अनुकूल खोखला (बिल-सा) बना रहा। इस प्रकार कृष्ण ने बचपन के खेलों [के सिलसिले] में अपने पाँचवें वर्ष में अघासुर का वध करके गोपबालकों को [मृत्यु से] बचाया। परंतु उन गोपबालकों ने इस घटना को कृष्ण के पौगड के आरंभ में (छठे वर्ष में) घटित जाना। परमयोगीन्द्र शुक का ऐसा कथन सुनकर भूपाल (परीक्षित) ने उनसे यों प्रश्न किया— ४८५ [सी.] "पाँच वर्ष तक कौमार और बाद के पाँच वर्ष तक (अर्थात् दस तक) पौगंड दशा मानी जाती है। आपने कहा कि पंचवर्षीय कमल-नयन (कृष्ण) के चरित को गोप-बालकों ने पौगंड-चरित माना, यह कैसे होगा? पिछले वर्ष का कार्य प्रस्तुत वर्ष में घटित क्योंकर माना जा सकता है? यह कैसे हुआ— मुझे समझाकर कहिए।" —यह सुन यतिचंद्र शुक ने [आ.] योग-दृष्टि से देखकर विचार किया, फिर उत्तर दिया— हे विनयशील राजश्रेष्ठ ! सुनो, इसे आर्य लोगों ने अपने शिष्यों को परम रहस्य मानकर समझाया है। ४८६

अध्यायमु—१३

कं. प्रियुरालि वलनि वार्तलु
प्रियजनुलकु नॅल्लप्रोद्दु ब्रियमगु भंगिन्
ब्रियुडगु हरिचरितंबुलु
प्रिय भक्तुल कॅल्लयॅडल ब्रियमुलु गावे ॥ 487 ॥

व. अनि पलिकि, यय्योगींद्रुडु राजेंद्रुनकिट्लनियॆ। अट्लघासुरु मोंगंबु वलनं गडचि, लेगलन् गोपकुमारुलं ब्रतिकिंचि, वारुनुं दानुनुं जनि चनि ॥ 488 ॥

म. कनियॆं गृष्णुडु साधुनीरमु महागंभीरमुं बद्म को-
कनद स्वादु विनोद मोद मद भृंग द्वंद्व झंकारमुन्
घन कल्लोल लतावितान विहरत्कादंब कोलाहल-
स्वन विस्फारमु मंदवायुज कणासारंबु गासारमुन् ॥ 489 ॥

गोपालबालुरु कृष्णुनितो गूडि चल्दुलारगिंचुट

व. कनि तम्मिकंटि तम्मुलयिंटि सोबगुनकु निच्च मॆच्चुचु, जॆच्चॆर गालि गदलॆडु करळ्ळ तुंपुरुल जल्लु पल्लुन नोडळ्ळु गगुरुपोडुव, गोसंकु कॊलंकुल गाय पंडुल गॊलल व्रेगुन वोगि, पट्टुगल चॆट्टुतुट्मु नीडल

अध्याय—१३

[कं.] जिस प्रकार प्रेयसी की वार्ता (समाचार) सर्वदा प्रेमी को प्रिय ही लगती रहती है उसी प्रकार प्रिय भगवान् (हरि) के चरित प्रेमी भक्तों को हर दशा में प्रिय ही लगते हैं न। (इसमें आश्चर्य नहीं है।) ४८७ [व.] यों कहकर वह योगींद्र (शुक) राजेंद्र से बखान करने लगे। उस अघासुर के मुंह से वछड़ों और ग्वाल-बालकों को बचाकर कृष्ण उनके संग आप भी बाहर निकल आया। सबको लेकर चलते-चलते। ४८८ [म.] कृष्ण ने एक ऐसा पोखरा देखा जो गहरा और स्वच्छ जल से भरा था, जहाँ कमल और कुमुदों के मधुपान से मस्त भँवरों का झुंड झंकार ध्वनि कर रहा था, जो उत्तुंग तरंग रूपी लताओं पर झूलते हुए कलहंसों के कोलाहल से भरा हुआ था, और जिसमें मन्द मारुत से संचालित जलकणों का फुहारा छूट रहा था। ४८९

कृष्ण के संग ग्वालों के लड़कों का कलेवा खाना

[व.] कमलनयन (कृष्ण) उस कमलालय (सरोवर) की शोभा से प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा करने लगा। तेज हवा से संचालित लहरों के

नॊप्पुचुन्न यिसुकतिप्पल विप्पु चूचि, वेडुक पिच्चलिप, नॆच्चॆलुल- किट्लनियॆ ॥ 490 ॥

शा. अॆंडन् ग्रगिति राकटं वडितिरिकेला विलंबिपगा-
रंडो बालकुलार ! चल्दिगुडुवन् रम्यस्थलंबिक्कडो
दंडन् लेगलु नीरु द्रावि यिरवंद वच्चिकल् मेयुचं
दंडंबे विहरिंचुचुंडग नमंद प्रीति भक्षितमे ॥ 491 ॥

व. अनिन नगुगाक यनि, वत्संबुल नुत्साहंबुल निर्मलंबुलगु जलंबुलु द्राविंचि, पच्चिकल मॊल्लंबुलु गल पल्लंबुल निलिपि, सॊक्कंबुलगु चल्दुल चिक्कंबुलु सवरिंचि ॥ 492 ॥

म. जलजांतस्स्थित कर्णिकं दिरिगिरा संघंबुलै युन्न रे-
कुल चंदंबुन गृष्णुनि दिरिगिरा गूर्चुडि वीक्षिपुचुन्
शिललं बल्लवमुल् दृणंबुलु लतल् चिक्कंबुलन् बुव्वुला-
कुलु कंचंबुलुगा भुजिंचिरचटन् गोपार्भकुल् भूवरा ! ॥ 493 ॥

सी. माटिमाटिकि व्रेलु मडिचि यूरिंचुचु नूरुगायलु दिनुचुंडु नॊक्क-
डॊकनि कंचमुलोनि दोडिसि चय्यन म्रिगि चूड लेदनि नोरु सूपु नॊक्क-
डेगुरार्गुर ब्रुचल्दु लंलमि बन्निदमाडि कूर्कॊनि कूर्कॊनि कुडुचु नॊक्क-
डिन्नियु दग बंचिविड्ट नॆच्चॆलितनमनुचु वंतॆनगुंडुलाडु नॊकडु

छींटों की बौछारें आकर सबके शरीरों को पुलकित करने लगीं। पोखरे के इर्द-गिर्द रेतीले टीले फैले हुए थे जिन पर फल-भार से झूमते वृक्षों की घनी छाया पड़ रही थी। यह सब देख कृष्ण का मन उमंग से भर गया, उसने अपने हमजोलियों से कहा। ४९० [शा.] आओ बालको! तुम लोग धूप में मुरझाकर भूख से तड़प रहे हो, अब विलमना क्यों? चलो कलेवा खा लेंगे। यह बड़ी सुहावनी जगह है। हमारे बछड़े इस जगह पानी पी लेंगे और इधर ही पार्श्व में हरी घास चरते रहेंगे। हम लोग आनंद से खा लें चलो। ४९१ [व.] "ठीक है" कहते हुए [उन गोप-कुमारों ने] बछड़ों को निर्मल जल पिलाकर, घनी उगी हुई दूब वाले मैदानों में उन्हें चरने छोड़कर अपने-अपने कलेवा के सींके उतार लिये। ४९२ [म.] [वे लोग] कृष्ण को बीच में रख, चारों तरफ़ यों घेर कर बैठ गये जैसे कमल-पुष्प के बीच वाली कर्णिका के चारों तरह उसके दल फैले हुए होते हैं। हे भूपाल! उन ग्वालों के बच्चों ने, साफ़ पत्थरों, पत्तों, फूलों आदि को थाली बनाकर [उन पर खाद्यान्न रखकर] भोजन कर लिया। ४९३ [सी.] उनमें से कोई बालक अचार खाते हुए उँगली मोड़ दूसरों को ललचाता, दूसरा बग़ल वाले की थाली का भात झड़पकर

आ. कृष्णु जूडु मनुचु गिकुरिंचि पर श्रोलि
मेलि भक्ष्यराशि मॅसगु नॊकडु
नव्वु नॊकडु सखुल नव्विंचु नॊक्कडु
मुच्चटाडु नॊकडु मुरियु नॊकडु ॥ 494 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 495 ॥

सी. कडुपुन दिंडुगा गट्टिन वलुवलो लालित वंशनाळंबु जॊनिपि
विमल श्रृंगंबुनु वेत्रदंडंबुनु जारि रानीक डाचंक निडिकि
मीगड पॆरुगुतो मेळविंचिन चल्दिमुद्द डापलिचेत मॊनयनुनिचि
चॆलरेगि कॊसरि तॆच्चिन यूरुगायलु व्रेळ्ळसंदुलनु दा वॆलय निडिकि

आ. संगडील नडुम जक्कन गूर्चुंडि
नर्म भाषणमुल नगवु नॆरपि
यागभोक्त कृष्णुडमरुलु वॆरगंद
शैशवंबु मॆरसि चल्दि गुडिचॆ ॥ 496 ॥

व. इट्लु कृष्णसहितुलैन गोपकुमारुलु चल्दुलु गुडुचुनॆड ग्रेपुलु मेपुलकुं जॊच्चि
पच्चनि गडिकि जॊपंबुल गुंपुल कुडिकि, लंपुल मेयुचु, घोरंबगु वनंबुनडुम

निगल जाता और खाली मुँह दिखाकर कहता, "कहाँ, मैंने तो नहीं लिया"; एक तो चार-पाँच लड़कों का [कलेवा] होड़ लगाकर ताबड़तोड़ पक्वान्न पेट में ठूँस लेता; कोई तो यह कहते हुए कि— "दोस्ती तो बाँटकर लेने में है"— बग़ल वाले की चीज़ें उठा-उठाकर औरों की थाली में फेंक देता; [आ.] अन्य कोई कृष्ण को देखो, यह कहते हुए धोखा देकर, दूसरों के सामने [थाली में] से श्रेष्ठ भक्ष्यराशिखा लेता, एक हँसता, दूसरा औरों को हँसाता; एक बतियाता तो दूसरा मौज उड़ाता । ४९४ [व.] उस अवसर पर : ४९५ [सी.] कमर में बँधी काछनी में प्यारी बंसी खोंसकर, सींग और बेंत का डंडा बायी काँख में दबाकर (जिससे वे खिसक न पड़ें) मलाई और दही में सना हुआ भात का कौर बायीं हथेली पर लेकर, [माता से] माँग-माँग कर लाये गये अचारों को उँगुलियों के बीच में दबाकर, [आ.] साथियों के मध्य बैठ, हास-परिहास में लगे हुए उस बालक कृष्ण ने कलेवा किया जो [असल में] यागभोक्ता (विष्णु भगवान ही) था। यह [दृश्य] देख देवता लोग चकित रह गये। ४९६ [व.] इस प्रकार गोपबालक कृष्ण के संग जब कलेवा खाने में लगे हुए थे, तो उनके बछड़े चारा खोजते हरी दूबवाली झाड़ियों में घुसकर चरते-चरते उस घोर वन [स्थली] के बीच बहुत दूर तक निकल गये। उन्हें न

दोरंवगु दूरंवु सनिन, वानि गानक, वॆऱचुचुन्न गोपडिंभकुलकु नंभोजनयनुं-
डिट्लनियॆं ॥ 497 ॥

ब्रह्म गोवत्समुलनु गोपालकुलतोड नंतर्धानमु चेयुट

म. विनुडो वालकुलार ! कोमुलटवी वीथिन् महादूरमुं
जनियॆं गोमल घासखादन रतोत्साहंवुतो नॆंदु वो-
यॆनो येमय्यॆनो क्रूरजंतुवुलचे ने यापदं बॊंदॆनो
कनि तॆत्तुं गुड्वंडु चलिद गॊऽरतल् गाकुंड मीरंदऱुन् ॥ 498 ॥

व. अनि चॆप्पि ॥ 499 ॥

शा. कर्णालंबित काकपक्षमुलतो ग्रैवेय हाराळितो
स्वर्णभ्राजित वेत्रदंडकमुतो सत्पिंछ दामंवुतो
वूर्णोत्साहमुतो धृतान्न कवळोत्फुल्लाब्ज हस्तंवुतो
दूर्णत्वंवुन नेगॆ लेगलकुनॆ दूराटवीवीथिकिन् ॥ 500 ॥

व. इट्लेगुचु ॥ 501 ॥

कं. इच्चो वच्चिक मेसिन, विच्चो द्राविनवि तोयमेगिन विच्चो
निच्चोट मंदगॊन्नवि, यिच्चो वासिनवि जाड यिदॆ यनुचुन् ॥ 502 ॥

पाकर गोपवालक हैरान हो रहे थे, तव अंभोजनयन (कमलनयन) कृष्ण उनसे यों कहने लगा । ४९७

बछड़ों-सहित गोपबालकों का ब्रह्म के द्वारा छिपाया जाना

[म.] सुनो वालको ! नरम-नरम घास चरने का आनंद लेते हुए हमारे वछड़े जंगल में वहुत दूर निकल गये होंगे । न मालूम वे अव किस जगह हैं, जंगली जानवरो के कारण उन पर क्या वीतती होगी, मैं जाकर पता लगाऊँगा और उन्हे हाँक लाऊँगा । तव तक तुम लोग यहीं बैठ अघा कर कलेवा खाओ । ४९८ [व.] यों कहकर ४९९ [शा.] वह कृष्ण, जिसके कानों तक लट लटक रहे थे, गले में रत्नहार झूल रहे थे हाथ में सोने से मढ़ी वेंत [शोभित] थी, [सिर पर] मोरपंख लगा हुआ था और जो खुले कमल जैसी हथेली में अन्न का कौर लिये हुए था, वछड़ों की खोज में उत्साह के साथ वनपथ में दूर तक निकल गया । ५०० [व.] यों चलते-चलते : ५०१ [कं.] [अपने-आप] कहने लगा कि वछड़े इस जगह की घास चर गये; यहाँ पर पानी पिया; इस स्थान पर झुंड लगाया; फिर इस रास्ते से सव निकल गये; उनके पदचिह्न यहीं दिखाई दे रहे हैं । ५०२ [कं.] [इस प्रकार] उस कंजदलाक्ष

कं. कंजदळाक्षुडु वेदकेनु, गोंजक लेगल नपार गुरु तृणवनिका
पुंजंबुल भीकर मृग, कुंजंबुल दरुल गिरुल गोलकुल नदुलन् ॥ 503 ॥

व. अंत ॥ 504 ॥

शा. बालुंडग्यु बकासुरानुजुडु द्रुंपन् बालुरन् ग्रेपुल-
न्नेलोलन् ब्रतिकिंचेनोक्को भुवि नूहिंप गडुन् जोद्य मं-
चालो नंबुजसंभवुंडु चनि मायाबालु शुंभद्बलं
बालोकिंप दलंचि डाचे नोकचो ना लेगलन् बालुरन् ॥ 505 ॥

व. आ समयंबुन, दूडलु पोयिन जाडलेरुंगक तप्पि, यप्पद्मलोचनुंडेप्पटि कोलंकु कडकु वच्चि, यच्चोट नेच्चेलुलं गानक, वारि जोरि, लेकुंडुट निश्चयिंचि, गोविंदुंडु विश्वविदुंडु गावुन, निदि विरिंचि मोरंगनि येरिंगि, तिरिगि पोवुचु ॥ 506 ॥

शा. वंचिपं बनि लेदु ब्रह्म किचटन् वत्संबुलन् बालुरन्
वंचिंचेन् गनुब्रामि तन्नु मरलन् वंचिंचुटाश्चर्यमे
वंचिपन् दन केल तेच्चुटकुनै वल्दंचु ब्रह्मांडमुल्
वंचिपन् मरलिप नेर्चु हरि लीलन् मंदहासास्युडै ॥ 507 ॥

(कमलनयन) कृष्ण ने बिना थके, तृणाच्छादित वनपुंजों को, भयंकर वन्यमृगों वाले झाड़खंडों को, पहाड़ी चोटियों को, तराइयों, नदी, तालाबों को वछड़ों के निमित्त छान डाला। ५०३ [व.] तब। ५०४ [शा.] इस बीच पद्मसंभव (ब्रह्मा) को यह सोचकर बड़ा अचरज हुआ कि जिन गोप-बालकों और उनके बछड़ों को बकासुर के भाई अघासुर ने निगल लिया था उन सबको बालक होकर [कृष्ण ने] किस प्रकार जीवित किया होगा ! इस मायावी बालक का बृहद्बल परखने के इरादे से ब्रह्मा ने उन बालकों तथा उनके सारे बछड़ों को एक जगह छिपा रखा। ५०५ [व.] उस समय, बछड़ों की टोह न लगने के कारण वह पद्मलोचन (कृष्ण) पिछले पोखरे के पास वापस चला आया; वहाँ साथियों को न पाकर उन्हें टेरकर देखा; फिर निश्चय किया कि वे लोग वहाँ उपस्थित नहीं है। सर्वज्ञ होने के कारण गोविन्द जान गया कि यह ब्रह्मदेव का ही दिया हुआ चकमा है। मुड़कर [घर] वापस जाते हुए [सोचा कि]। ५०६ [शा.] ब्रह्मा को इस प्रकार हमें भुलावा देने की क्या ज़रूरत थी ? उसने मेरी आँख बचाकर बछड़ों और बालकों को ठग लिया है। बदले में यदि मैं उसे ठग लूं तो अचरज न होगा। पर, मैं वैसा ठगर कर उन बछड़ों को वापस नहीं लाऊँगा। [इस तरह सोचकर] अपनी माया से ब्रह्मांडों को छिपाने और फिर उन्हें प्रकट करने में समर्थ वह हरि (भगवान् विष्णु) मुस्कुरा उठा। ५०७ [कं.] [कृष्ण ने मन में कहा] मैं गोपों और

कं. गोपालसुतुलु लेरनि, गोपिकलकु जॅप्पनेल गोपालकुलुन्
गोपिकलु नलर बालुर, क्रेपुल रूपमुल ने जरिचॅद ननुचुन् ॥ 508 ॥

म. करमुल् पादमुलुन् शिरंबु लवलग्नंबुल् मुखंबुल् भुजां-
तरमुल् मुक्कुलु गन्नुलुन् श्रवणमुल् दंताडुलुन् दंडकां-
बर स्रग्वेणु विषाण भूषण वयो भाषा गुणाख्यान त-
त्परतल् वीड्वडकुंड दाल्चॅ विभु डा वत्सार्भकाकारमुल् ॥ 509 ॥

कं. रूपंबुलॅल्लनगु वहु, रूपकुडिट बाल वत्स रूपंबुलतो
नेपारुटेमि चोद्यमु, रूपिपग नतनि कितर रूपमु गलदे ॥ 510 ॥

कं. मरलुपु मनियॅडु कर्तयु, मरलिचु कुमारकुलुनु मरलॅडि क्रेपुल्
परिकिंप दानयै हरि, मरलं जनॅं लीलतोड मंदकुनधिपा ! ॥ 511 ॥

व. इट्लु बाल वत्स रूपंबुलतो विहरिंचुचु, मंदकु वच्चि, वारि वारि दॉड्ल नय्यै वत्संबुल मुंदटि कंदुवल निलिपि, तत्तद्बाल रूपंबुल नंदरि गृहंबुल न्रवेशिंचि, वेणुनादंबुलु चेसिन ॥ 512 ॥

चं. कॉडुकुल वेणुनादमुल गॉब्बुन वीनुलकुं ब्रियंबुलै
मुडिवड लेचि यॅत्तुकॉनि मूर्कॉनि तल्लुलु गौगिलिचुचुं

गोपियों को यह क्यों बताऊँ कि उनके बालक और बछड़े गुम हो गये हैं; मैं ही उन बालकों और बछड़ों का रूप धरकर उन लोगों को प्रसन्न रखूंगा। ५०८ [म.] [ऐसा कहकर] विभु (कृष्ण) ने गोप-बालकों और बछड़ों का रूप [इस प्रकार] धारण कर लिया कि उन सबके [निजी] हाथ, पाँव, सिर, कमर, मुँह, भुजाएँ, नाक, आँखे, कान, दाँत आदि, हाथ के डडे, पहने हुए कपड़े, मालाएँ, बाँसुरी, सीग, आभूषण, वय, बोली, गुण, नाम, चाल-ढाल, खेलकूद [आदि] में कोई अंतर न पड़ा। ५०९ [कं.] [कृष्ण के इस प्रकार] बालकों और बछड़ों के रूप धारण करने में कोई आश्चर्य नही है, [क्योकि] सभी रूप उसी के है, वह बहु-रूपिया है, यथार्थ में उसका कोई [अपना] रूप है ही नही। ५१० [कं.] हे राजन् ! [बछड़ों को] हाँक ले चलने की आज्ञा देनेवाले, हाँकनेवाले गोपवालक, हँकाये जानेवाले बछड़े —सभी स्वयं हरि ही बन गया, ऐसी लीला करता हुआ [कृष्ण] व्रज में वापस चला आया। ५११ [व.] इस भाँति बालकों और बछड़ो के रूप में विहार करते हुए [कृष्ण ने] व्रज में प्रवेश किया; ग्वालों के बछड़ों को उनके खिरकों में हाँककर उन्हें यथास्थान ठहराया; फिर उनके बालकों के रूप में सबके घरों में घुसकर वेणुनाद किया। ५१२ [चं.] पुत्रों का वेणुनाद जब माताओं के कानों को मधुर होकर सुनाई दिया, उठकर उन्होंने बच्चों को गोद में ले, माथा

जडिगोन जेपु वच्चि तम चन्नुलयंदु सुधासमंबुलै
वॆडलॆडु पालु निडुकोनु वेडुक निच्चरि तत्सुताळिकिन् ॥ 513 ॥

व. मऱियु दल्लुलुल्लंबुल वॆल्लुग वॆल्लिगोनु वेडुकलं दम नंदनुलकु नलुंगुलिडि, मज्जनंबुलु गाविंचि, गंधंबुललंदि, तोडवुलु दॊडिगि, निटल तटंबुल रक्षा तिलकंबुलु वॆट्टि, सकल पदार्थ संपन्नंबुलैन यन्नंबु लोसंगि, सन्नमुलु गानि मन्ननलु सेसिरि ॥ 514 ॥

कं. ए तल्लुलके बालकु, -ले तॆऱगुन दिरिगि प्रीति यॆसगितुरु मु-
न्ना तल्लुलका बालकु, -ला तॆऱगुन ब्रीति सेसिरवनीनाथा ! ॥ 515 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 516 ॥

उ. पायनि वेड्कतो नुनिकि पट्टुलकुं जनि गोवुलॆल्ल नं-
भा यनि चीरि हुम्मनुचु बैपडि मूर्कॊनि बंचितिल्लि पॆ-
ल्लं यतिरेकमै पॊदुबुलंदॆड लेक स्रविंचुचुन्न पा-
लायॆड नाकुचुन् सुमुखलै यॊसगॆन् निज वत्सकोटिकिन् ॥ 517 ॥

कं. व्रेतलकुनु गोवुलकुनु
मातृत्वमु चाल गलिगॆ माऱ माधवुपै
मातलनि हरियु निर्मल
कौतूहल मॊप्प दिरिगॆ गडु बाल्यमुनन् ॥ 518 ॥

सूँघकर, छाती से लगा लिया। स्तनों में अमृत जैसा दूध उतर आया तो उन माताओं ने अतिशय आनंद के साथ अपने पुत्रों को पिलाया। ५१३ [व.] उन माताओं ने हृदयों में उमड़ती हुई उमंगों के साथ अपने-अपने पुत्रों को उबटन लगाकर नहलाया; चंदन लेपकर वस्त्राभरण पहनाये; भाल पर रक्षातिलक लगाकर समस्त पदार्थों से संपन्न आहार खिलाया और सब तरह से उनका मान रखा। ५१४ [कं.] हे अवनीनाथ (भूपाल)! पहले जो बालक जिस ढंग से चलकर अपनी माताओं को संतोष दिया करते थे, इस समय भी वे बालक उन माताओं को उसी प्रकार से संतोष (आनंद) देने लगे थे। ५१५ [व.] उस अवसर पर : ५१६ [उ.] उमंग से भरकर गौओं ने अपनी-अपनी ठाँव पर पहुँच रँभाकर अपने बछड़ों को घेर लिया, हुँकार कर उन्हें सूँघ लिया, और मूतकर भरे हुए थनों से लगातार चूनेवाला दूध पिलाया। दूध पिलाते समय गायें अपने बछड़ों का बदन चाटते चलीं। ५१७ [कं.] गोपिकाओं और गौओं को [वत्सों का रूप धरे] माधव (कृष्ण) पर मातृस्नेह [पहले से] अधिक बढ़ चला; कृष्ण भी [बछड़े और बालकों के रूप में] मातृभाव रखकर पहले से अधिक अनुराग दिखाया। ५१८ [आ.] समस्त घोषवासियों

आ. घोष जनुलकॆल्ल गुर्रलपै वेड्क
पूट पूट कॆलमि बॊटमरिचॆ
निच्च क्रॊत्तलगुचु नीरजाक्षुनि मीद
वेड्क दमकु दॊलिलि वॆलसिनट्लु ॥ 519 ॥

व. इट्लु कृष्णुंडु बालवत्सरूपंबुलु दाल्चि, तन्नु दान रक्षिचु कॊनुचु नुंडि मंदनु वनंबुल नमंद महिमंबुन नॊक्क येडु क्रीडिचॆ। आ येटिकि नयिदारु दिनंबुलु कडम वडियुंड, नंदॊक्कनाडु बलभद्रुंडुनुं, दानुनु वनंबुनकुं जनि, मंद चेरुव लेगल मेप, नति दूरंबुनं गोवर्धन शैल शिखरंबुन घासंबुलु ग्रासंबुलु गॊनुचुन्न गोवु ला लेगलं गनि ॥ 520 ॥

चं. मुदमुन हुंकरिपुचुनु मूपुलपै मॆडलॆत्ति चापुचुन्
बदमुलु नाल्गु रॆंडयिन बागुन गूडग वॆट्टि दाटुचुन्
वदनमुलन् विशालतर वालमुलन् वडि नॆत्ति पारि या
मॊदवुलु चन्नुलं गुडिपॆ मूतुल म्रिंगॆडि भंगि नाकुचुन् ॥ 521 ॥

व. अंत गोपकुलु गोवुल निवारिप नलविगाक, दिग्गन नलुकतोडि सिग्गु लग्गलंबुग दुर्गम मार्गंबुन वानि-वॆंट नंटि वच्चि, लेगल मेपुचुन्न कॊडुकुलं गनि ॥ 522 ॥

को अपने-अपने [माया] बालकों पर वात्सल्य दिन पर दिन बढ़ने लगा; तथा कमललोचन (बालकृष्ण) पर उनका प्रमोद नित्य नूतन होकर विलसित हुआ। ५१९ [व.] इस प्रकार कृष्ण बालक और बछड़ों का रूप धरकर, अपने आपको बचाता हुआ, खिरकों मे और वन में अमंद (बड़ी) महिमा के साथ एक साल तक क्रीडा करता रहा। जब वर्ष के पूरा होने में पाँच-छ. दिन बाकी थे, तब एक दिन बलभद्र को साथ लेकर वन मे गया और समीप-भूमि में बछड़ों को चराने लगा, इतने मे दूर पर के गोवर्धन शैल-शिखरों पर घास चरनेवाली गायों ने उन बछड़ों को देखा, [तब वे]। ५२० [चं.] हर्ष से हुँकारकर, मुँह कंधे के ऊपर उठाए, छलाँग भरती यों हुमक पड़ी कि अगली दो टाँगें और पिछली दो टाँगें [एक-दूसरी से] सटकर चार के बदले कुल दो ही टाँगे जैसी दिखाई देने लगी। वे गायें मुँह बाये, लंबी पूँछे ऊपर को उठाये रँभाती सरपट भाग आईं और अपने बछड़ों को दूध पिलाकर उनके मुँह इस प्रकार चाटने लगीं मानो निगलना ही चाहती हों। ५२१ [व.] चरानेवाले ग्वाले उन्हें रोक न सकने के कारण खीजते लजाते, दुर्गम मार्ग तय करते हुए उन गायों के पीछे-पीछे चले आये। उन लोगों ने अपने-अपने बालकों को देखा जो बछड़े चरा रहे थे। ५२२ [उ.] प्रिय पुत्रों के नज़र आते ही वे लोग पुलकित

उ. अय्यल गंटि मंचु बुलकांकुरमुल् वॅलयंग गुर्रलन्
जय्यन डासि यॅत्तुकॊनि संतसमंदुचु गौगिलिंचि ता-
रय्यॅड नौदल् मनमुलारग मूर्कॊनि मुद्दुसेयुचुन्
दय्यमॆरुंगु गोपकुलु तद्दयु नुब्बिरि निब्बरंबुगन् ॥ 523 ॥

व. इट्लु बालकालिगनंबुल नानंदबाष्प पूरितनयनुलै, गोपकुलु गोवुल मरलिचुकॊनि, तलगि चन, वारलं जूचि, बलभद्रुंडिट्लनि तनलो दलंचॆ ॥ 524 ॥

सी. चन्नु मानिन यट्टि शावक श्रेणिपै गोगणंबुलकुनु गोपकुलकु
निब्भंगि वात्सल्यमॆट्टवलॆ नुदयिंचॆ हरि दॊलिलि मन्निंचुनट्लु वीरु
मन्निंचुचुन्नारु ममत सेयुचु ब्रीति नंबुजाक्षुनि गन्न यट्ल नाकु
ब्रेममय्यॆडि डिम्भबृंदंबु गनुगॊन्न निदि महाद्भुतमॆंदुनॆरुंगरादु

ते. मनुज दैवत दानव माय यॊक्कॊ
काक ना भर्त यगुचुन्न कमलनयनु
माययो गाक यितरुल माय नन्नु
गलप नोपदु विभुमाय गाग नोपु ॥ 525 ॥

कं. अनि मुन्न मुग्धुडय्युनु, दनयंदुल दिव्यदृष्टि दप्पक बुद्धिन्
दन चॆलिकाड्रनु ग्रेपुल, वनजाक्षुंडनुचु जूचॆ वसुधाधीशा ! ॥ 526 ॥

हुए, दौड़कर उन्हें उठाया और संतोषपूर्वक गले लगा लिया; माथा सूँघ-सूँघकर मन भर चूमा चाटा। [इस तरह] दैवभक्त ग्वाले लोग अत्यंत आनंद से फूल उठे। ५२३ [व.] यों बालकों के आलिंगन से उनके नयन आनंद के आँसुओं से भर गये; वे लोग अपनी गायों को वापस हाँक ले गये। उन्हें देख बलराम अपने-आप में सोचने लगा। ५२४ [सी.] दूध पीना छोड़ [तृणांकुर चावनेवाले] बछड़ों पर गोगण को, और ग्वाल-बालकों पर गोपों को इतना अधिक वात्सल्य किस प्रकार उपजा ? इनके मन में श्रीहरि (कृष्ण) पर जैसा प्रेम रहता था वैसा ही प्रेम अब इन बालकों और इन बछड़ों पर दिखा रहे है। [क्या कारण है ?] इन बालकों पर मुझे भी [ठीक] वैसी ही ममता, प्रीति और स्नेह का अनुभव हो रहा है जैसा कृष्ण को देखने पर होता है। यह अद्भुत [परिणाम] मेरी समझ में नहीं आ रहा है। [ते.] क्या यह मनुजों की माया है ? या दैवों की अथवा दानवों की ? या मेरे स्वामी कमलनयन (कृष्ण) की ही यह माया है ? प्रभु-माया को छोड़ अन्य कोई भी माया मेरे मन को प्रभावित नही कर सकती। ५२५ [क.] हे राजन् ! ऐसा सोचकर पहले तो वह (बलभद्र) विमुग्ध हुआ, [परन्तु पीछे से] अपनी दिव्य-दृष्टि तथा बुद्धि के बल से जान लिया कि वे साथी बालक और उनके बछड़े [असल मे] और कोई नही, वनजाक्ष

व. इट्लु विज्ञानदृष्टि जूचि, यॆट्टिगियु नम्मक कृष्णु जूचि महात्मा ! तॊल्लि यॆल्ल क्रेपुलुनु ऋषुल यंशं बनियुनु, गोपालकुलु वेल्पुल यंशंबनियुनु, दोचुचुंडु । इप्पुडु वत्स वालक संदोहंबु संदेहंबु लेक नीवे यनि तोचुचुन्नदि । इदि येमि यनि यडिगिन, नन्नकुनुन्नरूपंबु वॆन्नुंडु मन्नन सेसि, कन्नन यॆट्टिगिंचॆ । अतंडुनु नॆट्टिगॆ । इव्विधंबुन हरि वालवत्संबुलु दान-यै संचरिंचिन येडु विरिंचिकि तसमानमुन नॊक्क त्रुटिमात्रंबन, विरिंचि चनुदॆंचि, वत्सबालकुंडैन कृष्णवालकुं जूचि, वॆऱगु पडि, यिट्लनि बितर्किंचॆ ॥ 527 ॥

शा. मंदं गल्गिन वत्स वालकुलु ना माया गुहा सुप्तुलै
यॆंदुं बोवरु लेवारिप्पुडुनु लेरे चेय ना कन्यु लॊ
डॆंदुन् लेरु विधातलुं वरुलु वीरॆव्वारलॆट्लैरॊको
यॆंदॆतॆंचिरॊ कृष्णुतो मॆलगुवारेड्यॆडिन् नेटिकिन् ॥ 528 ॥

मत्त. ब्रह्मपंपुन गानि पुट्टदु प्राणिसंतति यॆप्पुडुन्
ब्रह्म नॊक्कड गानि वेऱॊक ब्रह्मलेडु सृजिपगा
ब्रह्म नेनु सृजिप नॊंडॊक वाल वत्स कदंब मे-
ब्रह्मचेंदु जनिंचॆ नॊक्कट ब्रह्ममैनदि चूडगन् ॥ 529 ॥

(कमलनयन) कृष्ण के ही रूप हैं । ५२६ [व.] यों विज्ञान की दृष्टि से देख [सचाई] जान लेने पर भी बलराम को पूर्ण विश्वास न हुआ; तब उसने कृष्ण से प्रश्न किया— हे महात्मन् ! प्रथम तो यह जान पड़ा था कि गायें सब ऋषियों के अंश से हुई हैं, तथा गोपालक सब देवों के अंश से उत्पन्न हैं; परन्तु अब तो ऐसा लगता है कि बछड़ों और बालकों का झुंड निस्संदेह तुम ही हो । यह क्या बात है ? समझाओ । बड़े भाई का यह प्रश्न सुन विष्णु [कृष्ण] ने आदर के साथ निज रूप-धारण का वृत्तांत सुनाया । बलराम ने सब कुछ समझ लिया । इस प्रकार हरि (कृष्ण) ने स्वयं ही गोपबालक और गोवत्स बनकर साल भर जो संचार किया वह समय ब्रह्मदेव के मान में एक त्रुटि (क्षण) मात्र हुआ । अतः वह देव बालकों और बछड़ों के आकार में स्थित कृष्ण के पास चला आया । [कृष्ण को उस रूप में देख] चकित होकर ब्रह्मदेव मन में यों वितर्क करने लगा : ५२७ [शा.] घोष के बालक और बछड़े तो मेरी माया के वश होकर गुफा में सो रहे हैं, वे उधर से कहीं नहीं गये, अब तक जागे भी नहीं, सृष्टि करनेवाला विधाता मुझे छोड़ अन्य कोई है भी नहीं, फिर ये सब कैसे उत्पन्न हुए ? कहाँ से आकर कृष्ण के साथ हो लिये ? इनको अब तक तो एक साल बीत गया ! ५२८ [मत्त.] प्राणिलोक ब्रह्मदेव की आज्ञा के बिना कभी उत्पन्न नहीं होता, सृजन करनेवाला ब्रह्मा मैं एक ही हूँ, दूसरा

व. अनि यिट्लु सकलंबुनु सुकरंबुग वॅऱ वॅऱ्ऱिगॅंडि नॆऱवादि मुदुक यॆरुकगल प्रोड वॅऱंगुपडि, प्रद्दन पॆद्दप्रॊद्दु तद्दयं दलपोसि, कर्जंबु मंदल यॆरुंगक, कॊंदलपड्चु, नांदोळनंबुन ॥ 530 ॥

कं. मोहमुलेक जगंबुल, मोहिंपग जेय नेर्पु मॊनसिन विष्णुन्
मोहिंचॆद नेननियॆडि, मोहमुन विधात तानॆ मोहितुडय्यॆन् ॥ 531 ॥

ते. पगलु खद्योतरुचि चॆड्पगिदि रात्रि
मंचु चीकटि लीनमै मायुमाड्कि
विष्णुपै नन्यमायलु विशदभगुनॆ
चॆडि निजेशुल गरिमंबु चॆरुचु गाक ॥ 532 ॥

व. मरियुनु ॥ 533 ॥

कं. पुट्टिति बुद्धि यॆऱ्ऱिगिति, बुट्टिंचिति जगमु सगमु पोयॆनु प्रायं-
बिट्टिवि नूतन सृष्टुलु, पुट्टुटलेदौर यिट्टि बूमॆलु भूमिन् ॥ 534 ॥

व. अनि यिट्लु तलवाकिट वाडिमगल वाणि पोडिमिचे वाडिकॆक्किन नलु मॊगंबुल तक्करिगॊंटु पॆनुदंट पल्लुवॆंटल दन मनंबुन वितर्किंचि, विचारिंचुनॆड, नतंडु गनुगॊनुचुंड, नब्बालकुलु मेघश्यामुलुनु, हारकुंडलकिरीट

नहीं; जब मैंने उत्पन्न नहीं किया तो ये बछड़े और बालक किस ब्रह्मा से उत्पन्न हुए है ? देखना है कि वह कौन सा ब्रह्मा है। ५२९ [व.] वह चतुर, प्रौढ़ज्ञानी, बृद्ध (ब्रह्म) जो आसानी से सब कुछ जान सकता था, चकित रह गया, बड़ी देर तक सोचता रहा; आगे क्या किया जाय, यह न जानकर भारी चिंता और संकट में पड़ गया। ५३० [कं.] मोह-रहित होकर समस्त लोकों को विमोहित करने की सामर्थ्य रखनेवाले विष्णु [भगवान्] को विमोह में डालने के मोह (भ्रम) में पड़कर विधाता आप ही धोखा खा गया। ५३१ [ते.] दिन के प्रकाश में जुगनू की चमक मिट जाती है तथा रात की अँधेरी में कुहरा लीन होकर अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार विष्णु के ऊपर अन्यों की माया काम नहीं कर सकती, वह स्वय नष्ट होकर अपने स्वामी का गौरव भी बिगाड़ देती है। ५३२ [व.] और भी ५३३ [कं.] जन्म के समय से मैंने होश सँभाला, जगत की सृष्टि रची, मेरी उमर आधी गुज़र गयी, किंतु ऐसी नूतन सृष्टि [अब तक] कभी न हुई; ओह ! भूमि पर इस प्रकार का मायावेश कभी नहीं देखा। ५३४ [व.] इस प्रकार जब वह प्रखर वाक्चातुरी से निखरा, सयाना, और चौमुँखा ठगिया ब्रह्मा भाँति-भाँति से मन में वितर्क करता हुआ देख रहा था, तब उन सब गोपबालकों का स्वरूप सहसा बदल गया। ब्रह्मा ने देखा कि वे मेघश्याम शरीरवाले, हार-कुंडल-

वनमालिकाभिरामुलुनु, श्रीवत्स मंगळांगद नूपुर कनककटक कंकण कटिघटित कांचीगुणोद्दामुलुनु, नापादमस्तक तुलसी नवदामुलुनु, विलस· दंगुळीयक स्तोमुलुनु, शंख चक्र गदा कमलहस्तुलुनु, जतुर्भुज प्रशस्तुलुनु बीत कौशेयवासुलुनु, जंद्रिका धवळहासुलुनु, नरुणकरुणा कटाक्षवीक्ष· विलासुलुनु, ननंत सच्चिदानंदरूप महितुलुनु, विजातीय भेदरहितुलुनगि तमकु वरतंत्रंबुलगुचु नृत्तगीतादि सेवा विशेषंबुलकु जोच्चि मॆलंगुचु मूर्तिमंतंबुलैन ब्रह्मादि चराचरंबुलुनु, नणिम महिमादि सिद्धुलुनु, माय प्रमुखंबुलैन शक्तुलुनु, महदादि चतुर्विंशति तत्वंबुलुनु, गुणक्षोभ काल परिमाण हेतु संस्कार काम कर्म गुणंबुलुनु सेविंप, वेदांतविदुलकैन नॆरुंग रानि तॆरंगुन मॆरयुचु, गानंबडिन वारलं गनुंगॊनि ॥ 535 ॥

उ. बालुर गंटि ना मदिकि बासिन वारिनि मुन्नु वारि ने
बोलग जूचुनंतटन भूरि निरर्गळ दुर्गम प्रभा-
जालमुतोड जूपुलकु जालमि वॆच्चचुनुन्नवारले-
मूलमॊ मार्गमॆय्यदियॊ मोसमुवच्चॆ गदे विधातकुन् ॥ 536 ॥

व. अनि सकलेंद्रियंबुलकु वॆक्कसंबुलैन स्रुक्कि ॥ 537 ॥

वनमालिका से अभिराम (सुंदर) वने थे; श्रीवत्सलांछन, अंगद, नूपुर, कनक-कटककंकण से लसे थे; कांची-गुण से घटित कटिवाले थे; आपादमस्तक (सिर से पैर तक) तुलसी-मालाओं से विभूषित थे; अँगूठियाँ पहने थे; शंख-चक्र-गदा-पद्म लिये चतुर्भुज वाले थे; पीत-कौशेय वसन (पीतांबर) ओढ़े थे; चंद्रिका-समान धवल-हास (हँसी) वाले थे, अरुण करुणा-कटाक्ष-वीक्षणों से विलसते हुए थे; अनंत सच्चिदानद रूप से महिमान्वित थे; विजातीय-भेद-रहित होकर नृत्तगीतादि विशेष सेवाएँ ले रहे थे; मूर्तिमान ब्रह्मादि चराचर संसार, अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ, माया आदि प्रमुख शक्तियाँ, महत् आदि चौबीस तत्त्व, गुणक्षोभ, काल-परिणाम, हेतु संस्कार, कामकर्म, गुण —ये सब उनकी सेवा कर रहे थे; उनके स्वरूप ऐसे प्रकाशमान थे कि वेदांतविद् (दर्शन-कोविद) भी उन्हें जान नहीं सकते थे। ब्रह्मदेव ने उन्हें [इस रूप में] देखा [और कहा]: ५३५ [उ.] मैंने [कुछ देर पहले] इन बालकों को देखा, ये मेरी माया के वश में नहीं आये थे, जब उन्हें पहचानना चाहा तो इनका अनिवार्य दुस्सह प्रभापुंज मेरी दृष्टि को बेकार बना दिया; इसका क्या कारण है ? कैसे जानूँ ? क्या उपाय है ? समझ में नहीं आ रहा। [मुझ] विधाता पर संकट आ गिरा है। ५३६ [व.] यह कहकर [विधाता ने अनुभव किया कि] उसकी सभी इंद्रियाँ विवश हो गई हैं। ५३७ [उ.] जिस

उ. ए परमेशु तेजमुन नी सचराचरमैन लोक मु-
द्दोपितमय्यें नट्टि विभु तेजमु गन्नुल जक्क जूडगा
नोपक पारवश्यमुनु नोंदुचु संस्तिमिताखिलेंद्रियुं-
डै परमेष्ठि मैमरचें नप्पुडु चित्रपु रूपु कैवडिन् ॥ 538 ॥

व. इट्लु मायातीतुंडुनु, वेदांतविज्ञान दुर्लभुंडुनु, स्वप्रकाशानंदुंडुनुनैन तन बाहुळ्यंबु जूचि नव्वेंरपडिन ब्रह्मंगनि, यीश्वरुंडु ॥ 539 ॥

शा. बालुंडै चतुराननुंडु तन या ब्रह्माभिमानंबुनन्
लोलुंडै मति दप्पि ना महिममालोकिंप नेतेंचें दा
नालोकिंपग नंतवाडनुचु मायाजालमुन् विप्पि त-
ल्लीला रूपमुलेल्ल दाचें नट गेळीचातुरीधुर्युडै ॥ 540 ॥

व. अंतलोन निर्जीवुंडु सजीवुंडयिन तेरंगुन, नेनिमिदि कन्नुलुगल वेल्पुगमिकाडु तेडि, तेप्पिरिलि, कालु गेलु गदलिचि, चेच्चेर गन्नु देरचि जड समर्थुंडै, मुंदर गनि, वेनुक जूचि, दिवि विलोकिचि, दिक्कुलु वीक्षिचि, येल्ल येडलन् गलय दर्शिचि, तन पुरोभागंबुन हरि संचरिचुट जेसि जाति वैरंबु लेनि नर पक्षि मृगादुलकु नाटपट्टयि, सिरिगलिगि, कामक्रोधादि रहितुलकु जीवनंबैन बृंदावनंबु पोडगांचि यदु ॥ 541 ॥

परमेश्वर के तेज से यह चराचर संसार उद्दीप्त होता है उस विभु के तेज को [विधाता] आँखों से देख नहीं सका, उसकी समस्त इंद्रियाँ परवश हो व्यापार-शून्य हो गईं, उसका होश जाता रहा; [ब्रह्मा] चित्र में लिखे से स्तब्ध हो गया। ५३८ [व.] मायातीत, वेदांत-विज्ञान-दुर्लभ, स्वप्रकाशानन्द ईश्वर ने यह देखकर कि अपने रूप-विस्तार को देख ब्रह्मदेव निश्चेष्ट हो गया है, [मन में कहा :] ५३९ [शा.] चतुरानन (ब्रह्मदेव) बालक बनकर अपने ब्रह्मत्व के घमंड में मति खोकर मेरी महिमा परखने आया था, वह कितना बड़ा कि उसे परख सके ! ऐसा सोचकर ईश्वर ने अपना मायाजाल उघाड़ दिया, क्रीडा-चातुर्य के धुरीण होकर उसने अपने मायारूपों का उपसंहार किया (हटा लिया)। ५४० [व.] इतने में आठ आँखों का देवाधिदेव (ब्रह्मा), जैसे मृत व्यक्ति सजीव हो उठता है, होश में आकर, हाथ-पैर हिलाता हुआ नेत्र खोल देखने लगा। उसने सामने देखा, पीछे देखा, आसमान की तरफ़ देखा, चारों ओर नजर फेरकर, सब जगह परिलक्षित किया। फिर आगे की तरफ़ बृंदावन को स्थित देखा जो हरि के संचार के कारण जाति-वैर भूले हुए पशु-पक्षियों का अड्डा, और काम-क्रोध आदि से रहित लक्ष्मीसपन्न नर-नारियों के लिए जीवन-स्थान बना हुआ था। ५४१ [सी.] वहाँ पर वाणीपति (ब्रह्मा) ने ऐसे बालक को देखा

सी. तन कन्यमुलु लेक तनरारि मुम्मूल विभुडय्यु ग्रेपुल वेंदकुवानि
नखिलज्ञुंडे यॉक्कडय्यु नज्ञाकृति जेलिकांड्र वेषकंड्र जीरुवानि
बहिरंतराद्यंत भावशून्युंडय्यु नंतंत नड्गुचॅप्परयुवानि
गुरु गंभीरुंडय्यु गुरुवुलु वारुचु नट्टिट्टट्टु पातरलाडुवानि

आ. जाति रहितुडय्यु जतुर गोपार्भक
भावमेल्ल नच्चुपडिन मेनि
चॅलुवुवानि हस्त शीतान्न कबळंबु
वानि गांचॅ नपुडु वाणिमगडु ॥ 542 ॥

व. कनि, संभ्रमिंचि, विरिंचि रायंच डिग्गनुरिकि, कनकदंड सुकुमारंबयिन शरीरंबुतोड नेलं जागिलं बडि, मणिगण सुप्रकाशंबुलयिन तन किरीट शिखर प्रदेशंबुला कुमारुनि पादंबुलु मोव म्रॉक्कि, तोरंबुलगु नानंद बाष्प जलपूरंबुल नड्गुलु गडिगि, मरियुनु ॥ 543 ॥

कं. अड्गुल पै बडु लेचुन्
बडु ग्रम्मर लेचु निट्लु भक्तिन् मुनु दा
बॉडगनिन पॅंपु दलपुचु
डुडुकनि महिमाब्धि नजुडु डुडुकडिचॅ नृपा ! ॥ 544 ॥

व. अंत नल्लनल्लन लेचि, निलुवंडि, नयनारविंदंबुलु दॅरचि, गोविंदुनि

जो अनन्य होकर, त्रिमूर्तियों (सृष्टि, स्थिति, लयकर्ताओं) का प्रभु बनकर भी बछड़ों को ढूंढ रहा था; अखिलज्ञ (सर्वज्ञ) और एक ही एक होकर भी अनजान व्यक्ति के समान अपने सब साथियों को पुकार रहा था; बाहर, अंदर, आदि, अंत से शून्य होकर भी इधर-उधर [साथियों के] पद चिह्न खोज रहा था; महान् गंभीर होकर भी दौड़-दौड़कर नर्तन कर रहा था; [आ.] जाति-रहित होकर भी चतुर गोपबालक बन सुंदर हाव-भाव दिखा रहा था; और हथेली में शीतान्न (कलेवा) का कौर लिये शोभित हो रहा था। ५४२ [व.] देखकर, विरिंचि (ब्रह्मदेव) सकपकाकर हंसवाहन से उतर पड़ा; और सोने की छड़ी के सदृश अपना सलोना शरीर भूमि पर दंडवत् डाल, मणिगण से प्रकाशमान किरीट और मस्तक को उस कुमार (कृष्ण) के चरणों पर रखकर प्रणाम किया; और आनंद के बाष्पपूरों से उसके चरण धोये; फिर: ५४३ [क.] पाँवों पर गिरता, फिर उठता और फिर गिरता था। उसने पूर्व में [भगवान की] महानता जो देखी थी उसे भक्ति-पूर्वक याद किया। उस अनिर्वचनीय (अकथ) महिमा रूपी समुद्र में अज (ब्रह्मा) ने अपना औद्धत्य (गर्व) डुबा दिया। ५४४ [व.] अनंतर धीरे-धीरे उठ खड़ा हुआ, नयनारविंद (कमल जैसे नेत्र) खोल गोविंद का संदर्शन

संदर्शिचि, चतुर्मुखंडु मुखंबु वंचि, कृतांजलियै, दिग्गन डग्गुत्तिक यिडुकोनुचु, नेकचित्तंबुन जतुर्मुखंबुल निट्लनि स्तुतियिंचे ॥ 545 ॥

अध्यायमु—१४

सी. शंपालतिक तोडि जलदंबु कैवडि मॅरुगुटॊलिलियतोडि मेनिवानि
गमनीय मृदुलान्न कबळ वेत्र विषाण वेणु चिह्नंबुल वॅलयुवानि
गुंजाविनि मत कुंडलंबुल वानि शिखिपिंछ वेष्टित शिरमुवानि
वनपुष्प मालिकाव्रात कंठमुवानि नळिन कोमल चरणमुलवानि

आ. गरुण गडलुकॊनिन कडकंटि वानि गो-
पाल बालु भंगि बरगुवानि
नगु मॊगंबुवानि ननु गन्न तंड्रिनि
निनु भजितु म्रॊक्कि नीरजाक्ष ! ॥ 546 ॥

म. ननु मन्निंचि भवज्जनंबुलकु नानंदंबु निंडिचि नी-
तनु रूपंबिदे ना मनंबुन कचित्यंबय्यॆ नी युल्लस-
द्घन विश्वाकृति नॆव्वडॊपु नॆरुगन् गैवल्यमै यॊप्पु ना-
त्म निवेद्यंबगु नीदु वैभवमु चंदंबॆट्टि दो यीश्वरा ! ॥ 547 ॥

किया। उस चतुर्भुज (ब्रह्मा) ने सिर झुकाकर अंजलिबद्ध हो, गद्गद स्वर और एकचित्त से चारों मुखों द्वारा [भगवान की] स्तुति इस प्रकार की : ५४५

अध्याय—१४

[सी.] हे नीरजाक्ष (कमलनयन) ! पाँव लगकर मैं तुम्हारा भजन करता हूँ; विद्युल्लता के साथ चमकनेवाले मेघ के समान तुम्हारा शरीर कनकांबर के साथ सुंदर लग रहा है। बेंत, सींग और बाँसुरी के साथ हाथ में मृदुल दध्योदन लिया हुआ तुम्हारा विलास (लीला) मनोहर है। तुम्हारे कानों में गुंजाओं के कुंडल, सिर पर मोरपंखों का वेष्टन (मुकुट) शोभित हो रहे हैं। गले में वनपुष्पों की मालाएँ पड़ी हैं; तुम्हारे चरण कमलों जैसे कोमल लग रहे हैं। [आ.] तुम्हारे कटाक्षों में करुणा भरी हुई है; तुम्हारे मुख पर हास का विलास है, गोपबालक बनकर वर्तन (व्यवहार) करनेवाले तुम, [वास्तव में] मुझे जन्म देनेवाले [परम] पिता हो। ५४६ [म.] भक्तजनों को आनद देनेवाला, अपना वह दिव्य रूप, मुझ पर कृपा करके तुमने दिखाया, वह मेरे मन को अचिंत्य (समझ के बाहर) हो गया है। तुम्हारा वह प्रकाशमान महान् विश्वरूप कौन देख सकता है। तुम्हारा

कं. विज्ञान विधमुलॆऱुगक, तज्ज्ञुलु नी वार्त जॆप्प दनु वाङ्मनमुल्
यज्ञेश ! नीकु निच्चिन, यज्ञुलु निनु बट्टि गॆलुतुरजितुडवैनन् ॥ 548 ॥

कं. श्रेयमुलु गुरियु भक्तिनि, जेयक केवलमु बोधिसिद्धिकि दपमुं
जेयुट विफलमु पॊल्लं, दायमु चेकुऱुनॆ तलप नधिकंबैनन् ॥ 549 ॥

कं. निजमुग निन्नॆऱुगरु मुनु
निजवांछलु निन्नु जेर्चि नी कथ विनुचुन्
निज कर्मलब्ध भक्तिन्
सुजनुलु नी मीदलिर्टेकि जॊच्चिरधीशा ! ॥ 550 ॥

सी. विक्रिया शून्यमै विषयत्वमुनु लेनिदगुचु नात्माकारमै तनर्चु
नंतःकरण मॊक्क यधिक साक्षात्कार विज्ञानमुन बट्टि वेऱॊरुलकु
नॆऱुगंगरानिदै येपारि युंड्ट जेसि नी निर्गुण श्री विभूति
बहिरंग वीथुल वाऱक तिरमुलै यमलंबुलगु निंद्रियमुलचेत

आ. नॆट्टकेलकैन नॆऱुगंगनगु गानि, गुणविलासि वगुचु गॊमरुमिगुलु
नी गुणव्रजंबु नेररादॆऱुगंग, नॊक्क मितमु लेक युंट नीश ! ॥ 551 ॥

वैभव केवल एक ही एक है [दूसरा नहीं है] और आत्मवेद्य है [इंद्रिय-गोचर नहीं है]। हे ईश्वर ! वह किस तरह का है, कौन जाने ! ५४७ [क.] वे अनाड़ी लोग जो विज्ञान की विधियाँ न जानने पर भी ज्ञानी पुरुषों द्वारा तुम्हारे वैभव की वार्ता (समाचार) सुनकर तुममें शरण लेते हैं और तन-मन-वचनसे भजन करते है वे लोग— हे यज्ञेश्वर ! तुम्हें [अनायास] जीत लेते हैं यद्यपि तुम अजित [कहलाते] हो। ५४८ [कं.] श्रेयोदायक [ईश्वर की] भक्ति न करके केवल ज्ञानसिद्धि के लिए जो तप किया जाता है— वह अधिक मात्रा में होने पर भी निष्फल हो जाता है; भूसा पाने से कोई लाभ होगा क्या ? [उससे पेट नहीं भरता] ५४९ [कं.] हे ईश्वर ! तुम्हारा वास्तविक ज्ञान न होने पर भी साधु-सज्जन अपनी सारी कामनाओं को तुम्हें अर्पण कर तुम्हारी कथाएँ श्रवण करते हुए अपने पूर्वकर्म फल से प्राप्त भक्ति पा गये और [उसके प्रभाव से] [उन्होने] तुम्हारे परमपद को प्राप्त किया। ५५० [सी] तुम्हारे निर्गुण ऐश्वर्य की महिमा [संकोच, विकास आदि] विकार से रहित है; उसमें विषयत्व (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंधादि का अनुभव) भी नही होता। आत्माकार में विलसनेवाली अंतःकरण-वृत्ति के साक्षात्कार से तुम्हारा वह निर्गुण रूप आत्मप्रकार के रूप में ज्ञात हो जाता है, अन्य किसी भी प्रकार से जाना नही जा सकता। बाह्य संचार छोड़, सुस्थिर हुई निर्मल (राग-द्वेषादि से मुक्त) इंद्रियों को [आ.] उसे जानना अतिप्रयासपूर्वक सम्भव हो सके, परंतु हे ईश ! तुम्हारी

कं. तारा तुषार शीकर, भूरजमुलकैन लॅक्क बुधुलिड्डुरु भू-
भारावतीर्ण ! वारुनु, नो रम्य गुणंबुलॅन्ननेररगण्या ! ॥ 552 ॥

शा. एवेळं गृप जूचु नॅन्नडु हरिन् वीक्षितु नंचाढ्युडै-
नी वॅंटंबडि तॉटि कर्मचयमुन् निर्मूलमुन जेयुचुन्
नी वाडै तनु वाङ्मनोगतुल निन् सेविंचु विन्नाणिवो
कैवल्याधिप लक्ष्मिनुद्दवडि दा गैकॉन्नवाडोश्वरा ! ॥ 553 ॥

उ. मायलु गल्गुवारलनु मायल बॅट्टॅडि प्रोड ! निन्नु ना-
माय गलंचि नो महिममानमु जूचॅदनंचु नेरमिन्
जेयग बूनितिन् गरुण सेयुमु कावुमु योगिराज वा-
ग्गेय ! दवाग्नि दज्जनितकीलमु गॅल्चि वॅलुंग नेर्चुने ॥ 554 ॥

सी. सर्वेश ! ने रजोजनितुंड मूढुंड प्रभुड नेननि वॅर्रि प्रल्लदमुन
गर्वंचिनाडनु गर्वांधकारांध नयनुंड गृप जूडु ननु प्रधान
महदहंकृति नभो मरुदग्नि जल भूमि परिवेष्टितांड कुंभंबुलोन
नेडु जेनल मेन नॅनय ने नॅक्कड नी दृग्विधांडंबुलेरिकॅन

ते. संख्य सेयंगरानिवि संततंबु
नोलि बरमाणुवुल भंगि नॉडलि रोम

मनोज्ञ सगुण मूर्ति का गुण-समूह [किसी प्रकार] जाना नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी कोई परिमिति (हद) नहीं है। ५५१ [कं.] भूमि का भार उतारने के निमित्त अवतीर्ण हे भगवन् ! बुद्धिमान (ज्ञानी) लोग ताराओं, हिमबिंदुओं और धूलकणों का भी हिसाब लगा लेते है, परंतु वे लोग तुम्हारे रम्य गुणों को गिन नहीं सकते। तुम अगण्य हो (गिने नहीं जा सकते)। ५५२ [शा.] "मुझ पर श्रीहरि कब अपनी कृपादृष्टि फेरेंगे ? मैं उनका दर्शन कब कर सकूँगा" —यों सोचता हुआ आसक्त ज्ञानवान पुरुष जो तुम्हारे पीछे पड़कर पूर्वकर्मो का निर्मूलन करता हुआ, तुम्हारा ही जन होकर, तन-मन-वचनों से तुम्हारी सेवा करता है वही तो, हे ईश्वर ! कैवल्य (मोक्ष) लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है। ५५३ [उ.] मायावी लोगों को माया से वशीभूत कर लेनेवाले चतुर हो तुम। मैं अपनी माया से तुम्हें हैरान कर तुम्हारी महिमा परखने चला था; मैंने अपराध किया; हे योगिराज ! दया कर मेरी रक्षा करो। दवाग्नि से निकली [छोटी सी] लपट कहीं उसे मात कर रह सकती है ? हे वाग्गेय ! ५५४ [सी.] हे सर्वेश ! मैं रजोगुण में पैदा हुआ हूँ; मूढ़ हूँ; अपने को प्रभु (ईश्वर) समझकर मूर्खता से घमंड कर बैठा। गर्वान्धकार से मैं अंधा बन गया। मुझ पर कृपा करो। महदहंकार और नभोमरु-

विवरमुलयंदु वर्तिचु विपुल भाति
नंनयुचुन्न नी वॅक्कड नैंतकॅत ॥ 555 ॥

त. कडुपु लोपलनुन्न पापडु काल दन्निन गिन्कतो
नडुव बोलुनॅ कागि तल्लिकि नाथ ! सन्नमु दोड्डुनै
यडगि कारण कार्य रूपमुनैन यी सकलंबु नी-
कडुपु लोनिदि गादॆ पापड गाक ने मरि यॅव्वडन् ॥ 556 ॥

कं. भूरि लयजलधि निद्रित, नारायण नाभिकमल नाळमुन नजुं-
डारय बुट्टॅ ननुट निज, -मो राजीवाक्ष ! पुट्टनोट्टु तलंपन् ॥ 557 ॥

सी. नळिनाक्ष ! नी वादि नारायणुंडवु जलमु नारमु जीवचयमु नार
मंदु नीवुंट नीयंददि युंटनु नारायणुंडनु नाममय्यॅ
सकल भूतमुलकु साक्षि वधीशुंडवद्धि निद्रिंचु नारायणुडवु
नी मूर्ति यिदि नीकु निज मूर्ति यनरादु नळिननाळमु त्रोव नडचि मुन्नु

ते. कडगि नूरेंड्लु वॅदकि ने गाननैति
नेक देशस्थुडवु गाव नेक रुचिवि
जगमुलो नुंडु नीलोन जगमुलुंडु
नरुडु नी माय नॅट्लैन नगुचु नुंडु ॥ 558 ॥

दग्निजलभूमि (पंचभूतों) से घिरे हुए इस ब्रह्मांडभांड के अंदर केवल सात वित्तों का शरीरवाला मैं कहाँ ? [ते.] और ऐसे अनगिनत ब्रह्मांडों को अपने रोमकूपों में परमाणु बनाकर रखनेवाले महान् विराट् तुम कहाँ ? दोनों में साम्य कहाँ ? ५५५ [त.] गर्भस्थ शिशु यदि लात मारे तो क्या माता को गुस्से में आकर उसे मारना उचित होगा ? हे नाथ ! यह समस्त [वस्तुजाल] स्थूल सूक्ष्म भेद से कारण-कार्य रूप में तुम्हारी ही कुक्षि में समाया हुआ है अतः मैं तुम्हारा ही बच्चा हूँ न ? नही तो और कौन हूँ ? ५५६ [कं.] यह कथन कि प्रलयकाल के समुद्र-जल में सोए नारायण के नाभि-कमल-नाल से ब्रह्मा का जन्म हुआ है, यथार्थ ही है, हे राजीवनेत्र ! यह [कथन] असत्य क्यों होगा ? ५५७ [सी.] हे कमलनेत्र ! तुम आदिनारायण हो। जल नार कहलाता है, जीवसमूह भी नार है, उनमें तुम्हारे रहने के कारण और तुममें उनके रहने के कारण तुम्हारा नाम नारायण पड़ गया है; तुम समस्त भूतों का साक्षी हो; सबके अधीश हो; [क्षीर] सागर में सोनेवाले नारायण की मूर्ति तुम्हारी ही है। किंतु वह तुम्हारा निज स्वरूप नहीं कहा जा सकता। कमलनाल के रास्ते चलकर पहले [ते.] मैं सौ साल तक तुम्हारी मूर्ति देखने का यत्न करता रहा, पर उसका पता नहीं चला। तुम किसी एक स्थल पर नहीं रहते, सर्वत्र व्याप्त रहते हो। तुम जग में

म. विनुमा यीश्वर ! वॅल्पलन् वॅलुगु नी विश्वंबु नी माय गा-
क निजंबैन यशोद यॅट्लु कनियॅन् गन्नार नी कुक्षि लो-
गनॅ बो क्रम्मरॅ गांचॅने भवदपांग श्री ब्रपंचंबु च-
क्कन लोनौ वॅलि यौनु लोनु वॅलियुं गादे ददन्यंबगुन् ॥ 559 ॥

म. ऑकडै युंटिवि बालवत्समुलतो नॉप्पारि नी वंतटन्
सकलोपासितुलौ चतुर्भुजुलुनै संप्रीति नै गॉल्वगा
ब्रकट श्री गलवाडवैति विपुडन् ब्रह्मांडमुल् सूपि यॉ-
ल्लक यिट्लॉक्कडवैति नी विविध लीलत्वंबु गंटि गदे ॥ 560 ॥

कं. ऑरुगनिवारिकि दोतुवु, नॅरिब्रकृतिन् जेरि जगमु निर्मिपग ना
तॅरगुन रक्षिपग नो, तॅरगुन ब्रहरिप रुद्रु तॅरगुन नीशा ! ॥ 561 ॥

कं. जलचर मृग सुर मुनिवर
कुलमुल जन्मिचितीवु कुजनुल जॅरुपन्
जॅलिमिनि सुजनुल मनुपनु
दलपोयगरादु नी विधंबुलनंता ! ॥ 562 ॥

और जग तुममें निवास करता है। नर सब तरह से तुम्हारी माया के वशवर्ती हैं। ५५८ [म.] सुनो, हे ईश्वर ! यह विश्व जो बाहर प्रकाशित हो रहा है, वह तुम्हारी ही माया है, सत्य नहीं है। यदि सत्य होता तो यशोदा ने तुम्हारी कुक्षि में उसे कैसे मौजूद देखा ? एक बार देखा सही, पर दुबारा तो देख नहीं सकी। तुम्हारे कटाक्ष की प्रभा से यह सारा जग कभी [तुम्हारी कुक्षि के] अंतर्भूत होता, फिर उससे भिन्न बहिर्भूत भी हो जाता। ५५९ [म.] तुम अहीर-बालकों और उनके बछड़ों के साथ पहले अकेले ही विचर रहे थे, फिर उन बच्चों में सर्वपूजित चतुर्भुज विष्णु बनकर तुम प्रकट हुए, और मुझे ब्रह्मांड मे व्याप्त अपना विराट्रूप दिखाया। मैंने प्रीतिपूर्वक तुम्हारा भजन किया तो अपने उस रूप का उपसंहार कर फिर [गोपबालक वाला] रूप धारण किया। इस तरह मैंने तुम्हारे विविध लीला-रूपों का दर्शन किया। ५६० [कं.] हे ईश ! प्रकृति में स्थित होकर [अपनी माया के प्रसार से] तुम उन लोगों को, जिन्हें तुम्हारे सत्यस्वरूप का ज्ञान नहीं रहता, जताते हो कि जग के निर्माण के लिए मैं (ब्रह्मा) हूँ, रक्षण के लिए तुम हो और संहार के लिए रुद्र है। (अर्थात् मूर्तिभेद सुझाते हो)। ५६१ [कं.] दुष्टों का दमन करने के लिए तथा स्नेहपूर्वक सुजनों की रक्षा करने के लिए तुमने जलचर, मृग, सुर, नर, मुनियों के कुलों में जन्म लिया था; हे अनंत ! तुम्हारे तौर-तरीक़े समझ में नही आते। ५६२ [आ.] [जगत को]

आ. मंपु गॊलिपि योगमाय निर्द्रिंचिन
यो परमात्म भूम ! योगिराज !
ये तॆरंगुलॆन्नि यॆप्पुडॆच्चोट नी
हेल लॆव्वडॆरुगु नीश्वरेश ! ॥ 563 ॥

सी. अदिगान निजरूप मनराडु फलवंटिदै बहुविध दुःखमै विहीन
संज्ञानमै युन्न जगमु सत्सुख बोधतनुडवै तुदि लेक तनरु नीदु
मायचे बुट्टुचु मनुचु लेकुंडुचुनुन्न चंदंबुन नुंडुचुंडु
वॊकड वात्मुड वितरोपाधि शून्युंड वाद्युंडवमृतुंड वक्षरुंड

आ. वद्वयुंडवुनु स्वयंज्योति वापूर्णु-
डवु पुराणपुरुषुडवु नितांत
सौख्यनिधिवि नित्य सत्यमूर्तिवि निरं-
जनुड वीवु तलप जनुनॆ निन्न ॥ 564 ॥

व. देवा ! यिट्टुवंटि नीवु जीवात्म स्वरूपकुंडवुनु, सकलात्मलकु नात्मयैन परमात्म स्वरूपकुंडवुनु ननि यॆव्वरॆरुंगुदुरु, वारुगदा गुरुवनियॆडु दिन-करुनि वलन ब्राप्तंबैन युपनिषदर्थज्ञानंबनु सुनेत्रंबुनंजेसि, संसार मिथ्यासागरंबु दरियिंचिन चंदंबुन नुंडुदुरु। रज्जुवंदु रज्जुवनि यॆरिगॆडि यॆरुक लेकुंड नय्यॆरुंगमि नदि सर्परूपंबै तोचिन पिदप नॆरिंगिनवारि वलन रज्जुवनि तॆलियुचुंड, सर्परूपंबु लेकुंडु कैवडि, नात्म यप्परमात्मयनि

प्रज्ञाशून्य (बेहोश) बनाकर स्वयं योगनिद्रा में रहनेवाले परात्मा ! हे [षड्गुण] ऐश्वर्य-संपन्न ! हे योगिराज ! हे ईश्वर ! हे ईश ! तुम्हारी लीलाएँ कब, कहाँ और किस ढंग से होती रहती हैं ? कौन जान सकता है ? ५६३ [सी.] वे सब (लीलारूप) तुम्हारे अपने निजी नहीं कहे जा सकते। यह जग स्वप्नवत् (असत्) है, बहुत प्रकार से दुःखपूर्ण है, और संज्ञाविहीन है, तुम सुखबोधात्मक और अनत हो; तुम्हारी माया से यह जग उत्पन्न होता, जीवित रहता, नाश होता हुआ भी वास्तव-सा भासित होता है। तुम एकाकी हो, सबकी आत्मा हो, इतर उपाधियों से रहित हो, आद्य हो, अमृत हो, अक्षर हो, [आ.] अद्वयी हो, स्वयंज्योति हो, परिपूर्ण हो, पुराणपुरुष हो, नितांत सुख के निधान हो, नित्य हो, सत्यमूर्ति हो, निरंजन हो, तुम्हें कोई जान नही सकता। ५६४ [व.] हे देब ! जो यह जान जाते है कि तुम्हीं जीवात्मा हो और सब आत्माओं की आत्मा-परमात्मा हो, वे लोग ही तो गुरु रूपी दिनकर (सूर्य) से प्राप्त उपनिषदर्थ रूपी सुनेत्र (प्रकाश) के प्रभाव से संसार रूपी मिथ्या सागर तरनेवाले होते हैं। रस्सी को रस्सी ही कहकर जानने की समझ बुद्धि न होने पर वह सर्प के रूप में ही दिखाई देती है, किंतु ज्ञानियों द्वारा जानकारी

यॆव्वरॆरुंगरु, वारि कय्यॆरुगमिवलन सकल प्रपंचंबु गलिगि तोचु। आत्म यप्परमात्म, यनि यॆव्वरॆरुंगुदुरु वारिकय्यॆरुक वलन प्रपंचंबु लेकुंडु। अज्ञान संभावित नायकंबुलैन संसार बंधमोक्षंबुलु, ज्ञान विज्ञानंबुल लोनिवि गावु। कावुन गमलमित्त्रुनकहोरात्रंबुलु लेनि तॆरंगुन, बरिपूर्ण ज्ञानमूर्तियगु नात्मयंदु नज्ञानंबु लेमिनि बंधंबुनु, ज्ञानंबु लेमिनि मोक्षंबुनु लेदु। आत्मवन निन्नु देहादिकंबनि तलंचियु, देहादिकंबु निन्नुगा दलंचियु, नात्म वॆलिनुंडुनंचु मूढुलु मूढत्वंबुन वॆदकुचुंदुरु। वारि मूढत्वंबु चॆप्पनेल? बुद्धिमंतुलै परतत्वंबुगानि जडंबुनु निषेधिंपुचुन्न सत्पुरुषुलु तमतम शरीरंबुलयंद निन्नरयुचुंदुरु। अदि गावुन ॥ 565 ॥

शा. देवा! नीचरणप्रसाद कणलब्धि गाक लेकुन्न नीं-
डे वॆंटन् जनु नी महामहिम नॆव्वंडु नॆव्वारिकिन्
नी वारै चनुवारिलोनौकडनै निन् गॊल्चु भाग्यंबु ना-
कीवे यिप्पटि जन्म मंदयिन नौंडॆंदैन नो यीश्वरा! ॥ 566 ॥

त. क्रतुशतंबुन बूर्णकुक्षिनि गानि नी विटु क्रेपुलुन्
सुतुलुनै चनुबालु द्रावुचु जौक्कि याडुचु गौतुक-

पाने पर वह रस्सी ही जान पड़ती है, सर्प के रूप में नहीं। उसी भांति जो यह नहीं जानते कि [अपनी] आत्मा ही परमात्मा है उन्हें उस अज्ञान के कारण समस्त प्रपच (संसार) सत्य (यथार्थ) ही भासित होता है। [इसके विपरीत] जो लोग यह जान लेते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है उनके लिए उस जानकारी के बल पर प्रपंच (संसार) नहीं रह जाता। अज्ञान के कारण उत्पन्न समझे जानेवाले भव-बंधन और मोक्ष ज्ञान-विज्ञान की परिधि में नहीं होते (लोकदृष्टि में मान्य हैं)। कमलमित्र (सूर्य) के लिए न रात होती है, न दिन, उसी प्रकार परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा में अज्ञान नही रहता; अतः उसे बंधन नहीं रहता, तथा ज्ञान भी नहीं रहता अतः उसे मोक्ष भी नहीं होता। मूढ़ लोग आत्मास्व रूप तुममें देह की कल्पना करते हैं, और देहादि में आत्मा की भावना करते है। मूढता से वे लोग आत्मा को कहीं बाहर रहनेवाला समझकर उसे खोजते रहते है। उनकी मूर्खता को क्या कहा जाय? सत्पुरुष बुद्धिमान होकर परतत्त्व से भिन्न जड़ का निषेध (तिरस्कार) करते हैं और अपने शरीर के अंदर ही तुम्हें खोज निकालते हैं। अतः ५६५ [शा.] हे देव! तुम्हारे चरण-प्रसाद का लवलेश भी प्राप्त किये विना तुम्हारी महिमा का अंदाज़ कोई नहीं लगा सकता। हे ईश्वर! तुम्हारे जनों (भक्तों) में एक होकर तुम्हारी सेवा करने का सौभाग्य मुझे चाहे इस जन्म में हो, या अन्य किसी जन्म में हो, प्रदान करो। ५६६ [त.] सौ यज्ञों से भी तुम्हारा पेट भरता नही

स्थिति जरिपग दल्लुलै विलसिल्लु गोवुल गोपिका
सुतुल धन्यतलॅट्लु चॅप्पग जालुवाड गृपानिधी ! ॥ 567 ॥

कं. परिपूर्णंवु बुराणमु, बरमानंदंबुनैन ब्रह्ममॅ चॅलिका-
डरुदरुदु नंदघोष, स्थिर जनमुल भाग्यरेख चिंतिपंगन् ॥ 568 ॥

सी. एकादशेंद्रियाधीशुलु चंद्रादुलेनु फालाक्षुंडु निट्टु गूड
वदुमुव्वुरमु नॅडपडक यिंद्रियपात्रमुल नी पदांभोजमुल मरंद-
ममृतंबुगा द्रावि यमर नेकैकेंद्रियाभिमानुलमय्यु नतिकृतार्थ
भावुलमैतिमि परग सर्वेंद्रिय व्याप्तुलु नीमीद व्रालिच तिरुगु

ते. गोप गोपिका जनमुल गुरु विशिष्ट
भाग्य संपद दलपोसि प्रस्तुतिप
नलविकादॆव्वरिकिनैन नंबुजाक्ष !
भक्तवत्सल ! सर्वेश ! परमपुरुष ! ॥ 569 ॥

शा. एला ब्रह्मपदंबु वेदमुलकुन् वीक्षिपगारानि नि-
न्नी लोकंबुन नी वनांतरमुनंदी मंदलो गृष्ण यं-

है (तुम तृप्त नही होते), तो भी इस तरह तुम बछड़ों और गोपबालकों के रूप में गायों और गोपिकाओं का स्तन्य (दूध) पीकर, छककर कौतुक से नाचते रहे हो, हे कृपानिधि ! [तुम्हारे लिए] माता बनी उन गायों और गोपस्त्रियों की धन्यता (पुण्य) मुझसे बखानी नहीं जा सकती। ५६७ [क.] जिन्होंने परिपूर्ण पुरातन, पुराण, और परमानंद-रूपी परब्रह्म से स्नेह किया, उन नंदघोपवासी जनो का भाग्य कृता नहीं जा सकता। ५६८ [ते.] [ज्ञान और कर्म की] दसों इन्द्रियों के अधिपति, [मन के अधिपति] चद्र, [बुद्धि के अधिपति] मैं, तथा [अहंकार के अधिपति] शंकर—इस प्रकार हम तेरहों देवता (एकादश इंद्रियों के अधिपति) अपनी-अपनी इंद्रिय रूपी पात्र मे [भरकर] तुम्हारे चरण-कमल का मकरंद रूपी अमृत का निरंतर पान कर शोभायमान हो रहे है; यद्यपि हम एक ही एक इंद्रिय से आसक्त हुए हैं तो भी कृतार्थ हुए। परन्तु ये गोप और गोपिकाजन तो सर्वेंद्रियों के प्रसार से तुममें आसक्त हुए। हे अंबुजाक्ष (कमल-लोचन)! हे भक्तवासल ! हे सर्वेश ! हे परमपुरुष ! इन [अहीर] लोगों की विशिष्ट भाग्य-संपत्ति देखकर उसकी प्रशसा करना किसी के वश की बात नहीं है। ५६९ [शा.] मेरा यह ब्रह्मपद किस काम का ? (व्यर्थ है) वेदों के लिए भी अगोचर (जो दिखाई नहीं देता) तुम्हें इस भूलोक में, इस [वृंदा] वन में, इस व्रज के अंदर 'हे कृष्ण, हे कृष्ण' कहकर पुकारनेवाले, साथ गपशप करनेवाले समस्त मनोभाव तुम्ही में अर्पण करनेवाले इन अहीर लोगों मे से किसी एक का भी चरण-रज [मैं] अपने

चालापादि समस्त भावमुलु नीयंदे समर्पिचु नी-
वेलंदोक्कनि पादरेणुवुलु पैवेष्टिंचिनं जालदे ॥ 570 ॥

म. निनु हिंसिंचिन पूतनादुलकु मुन्नी मेटि संकेत मि-
च्चिन नीकुन् बुर दार पुत्र गृह गो स्त्री प्राण देहावुलें-
ल्लनु वंचिपक यिच्चु गोपकुलकुन् लक्षिप नेमिच्चेंदो
यनि संदेहमु दोचुचुन्नदि प्रपन्नानीक-रक्षामणी ! ॥ 571 ॥

कं. देहमु कारागेहमु, मोहमु निगळंबु राग मुखरमुलु रिपु-
व्यूहमुलु भक्तितो नि, -न्नूंहिपनि यंत तडवु नो कमलाक्षा ! ॥ 572 ॥

आ. आश्रयिंचु जनुल कानंदसंदोह, -मी दलंचि विविध हेलतोड-
नप्रपंचकुंडवय्यु न्रपंचंबु, वॅलय जेयुदीवु विश्वमूर्ति ! ॥ 573 ॥

कं. ऎरिगिनवारलॆरुंगुदु, -रॆरुगन् बहुभाषलेल यीश्वर ! नी पॆं-
पॆरुग मनोवाक्कुलकुन्, गुरिसेयं गॊलदि गादु गुणरत्ननिधी ! ॥ 574 ॥

कं. सर्वमु नीव यॆरुंगुदु, सर्वविलोकनुडवीव जगदधिपतिविन्
सर्वापराधु नन्नुन्, सर्वेश यनुग्रहिंचु चनियॆदनिकन् ॥ 575 ॥

सिर पर धारण कर लूं तो वही मेरे लिए पर्याप्त [महाभाग्य] होगा। ५७० [म.] तुम्हें हिंसा पहुँचानेवाले पूतना आदि [दानवों] को तो तुमने अपने परम-धाम में स्थान दिया; अपना ग्राम, गृह, गौ, दारा (पत्नी) पुत्र, देह, प्राण तथा सर्वस्व, बिना कपट किये तुम्हें समर्पण करनेवाले इन ग्वालों को तुम क्या दोगे, मालूम नहीं। हे शरणागतों के रक्षक ! मुझे इसका संशय हो रहा है (सूझ नही रहा है)। ५७१ [कं.] हे कमलाक्ष! जब तक मनुष्य भक्तिपूर्वक तुम्हारा चिंतन नही करेगा तब तक उसके लिए शरीर कारागार, मोह पैरों की वेडी, राग-द्वेष शत्रुसमूह बनकर [पीड़ित करते] रहेंगे। ५७२ [आ.] हे विश्वमूर्ति (विश्वरूप) ! आश्रित जनों को आनन्द की परंपराएँ पहुँचाने के इरादे से तुम स्वयं संसार [बंधन] हीन होते हुए भी नाना प्रकार की क्रीडाएँ रचकर संसार को चमकाते रहते हो। ५७३ [कं.] हे ईश्वर ! तुम्हारी महिमा जानकार लोग ही जानते है; उसे जानने के लिए बहुत सी भाषाओं (शास्त्रों) की आवश्यकता नहीं होती। हे गुण-रत्नों की खान ! तुम्हारी महिमा मन और वचन का लक्ष्य नहीं बनायी जा सकती। ५७४ [कं.] तुम सब कुछ जानते हो; सब कुछ देखते हो; तुम्हीं जग के अधिपति हो; हे सर्वेश ! मैं सर्वापराधी हूँ, मुझ पर कृपा करो, अब मैं विदा होता हूँ। ५७५ [कं.] हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो ! तुम दानव-

कं. जिष्णु ! निशाट विपाटन ! वृष्णिकुलांभोज सूर्य ! विप्रामर गो-
वैष्णवसागर हिमकर ! कृष्णा ! पाखंड धर्म गृह दावाग्नी ! ॥ 576 ॥

व. देवा ! नीकु गल्पपर्यंतंबु नमस्करिंचॆद। अनि यिव्विधंबुन संस्तुतिंचि, मुम्मारु वलगॊनि, पादंबुल पै बडि वीड्कॊनि, ब्रह्म तन नॆलवुनकुं जनियॆ। अंतनि मन्निंचि, भगवंतुंडैन हरि, तॊल्लि चॆंडि तिरिगि बच्चिन वत्स-बालकुल ग्रम्मरं गॊनि, पुलिनंबुकड जेर्चॆ। इट्लु ॥ 577 ॥

कं. क्रिचुदनंबुन विधि दमु, वंचिचिन येडु गोपवर-नंदनुलॊ-
क्किकचक कालंबुग नी, -क्षिंचिरि राजेंद्र ! बालकृष्णुनि मायन् ॥ 578 ॥

आ. ए महात्मु माय नी विश्वमंतयु, मोहितात्मकमयि मुनिगियुंडु
नट्टि विष्णुमाय नर्भकु लॊक्क ये, -ड्रुगकुंडिरनुट येमि दॊड्डु? ॥579॥

व. अप्पुडु ॥ 580 ॥

म. चॆलिकाडा ! यरुदॆंचिते यिचटिकिम् सेमंबुनन् ग्रेपुलुन्
नॆलवुल् सेरॆ नरण्यभूमिवलनन् नी वच्चुनंदाक ज-
ल्दुलु धीरिंचुक यॆव्वरुन् गुडुबरालॊक्कपु रम्मंघु ना-
जलजाक्षुंडु नगन् भुजिंचिरचटन् संभाषलन् डिंभकुल् ॥ 581 ॥

विनाशक हो। वृष्णि-कुल-कमल को विकसित करनेवाले सूर्य हो। देव, गोब्राह्मण, वैष्णवजन रूपी सागर को उल्लसित करनेवाले हिमकर (चंद्रमा) हो। पाखंड धर्म रूपी घरों को जला डालनेवाली दावाग्नि हो तुम। ५७६ [व.] हे देव ! कल्पांत तक मैं तुम्हें नमस्कार करता रहूँगा।" —इस प्रकार स्तुति करने के बाद, ब्रह्मदेव ने तीन वार [कृष्ण के चारों तरफ़] फेरी लगायी और पाँव लगकर, बिदा ले, अपने वासस्थान जा पहुँचा। उसे क्षमा करके भगवान हरि (कृष्ण) ने पहले के उन बछड़ों और गोपबालकों को [जिन्हें ब्रह्मा ने छिपा रखा था] लेकर पोखर के तट पर पहुँचा दिया। यों ५७७ [कं.] हे राजेंद्र ! ब्रह्मा ने धोखा देकर जब तक उन्हें छिपा रखा था, उस एक वर्ष की अवधि को, कृष्ण की माया के प्रभाव से उन गोपों ने केवल अल्पकाल ही गिन लिया था। ५७८ [आ.] जिस महात्मा की माया से यह सारा विश्व विमोह मे डूबा रहता है, उस विष्णुमाया के वश होकर गोपबालक यदि एक वर्ष का बीत जाना जान न सके तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नही है। ५७९ [व.] उस समय। ५८० [म.] [कृष्ण को देख माया से जगे हुए उन बालकों ने कहा] "हे सखा ! तुम क्षेम (कुशलता) से वापस आये ? बछड़े भी वन-भूमि से सकुशल पहुँच गये हैं। देखो, तुम्हारे आने तक [हममें से] किसी ने भी कलेवा नही किया, आओ, सब मिलकर खायेंगे।" [यह सुन] जलजाक्ष (कमलनयन) कृष्ण मुस्कुराया; सब बालकों ने मिलकर

व. इट्लु बालकुलतोड जल्दि गुडिचि, वारलकु नजगर-चर्मंबु जूपुचु वनंबुन नुंडि तिरिगि ॥ 582 ॥

पंच. प्रसन्न पिंछमालिका प्रभाविभासितांगुडुन्
प्रसिद्ध शृंग वेणुनाद पाशबद्ध लोकुडुन्
प्रसन्न गोपबाल गीत बाहुवीर्युडय्यु नु-
ल्लसिंचि येगॆ गोपकुल् सॆलंगि मूड मंदकुन् ॥ 583 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 584 ॥

कं. पॆनु बामु दम्मु मिंगिन, मन नंदसुतुंडु पामु मर्दिंचि ममुन्
मनिचॆ नरण्यमु लोपल, ननि घोषिंचिरि कुमारुला घोषमुलोन् ॥585॥

व. अनिन विनि नरेंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 586 ॥

कं. कनि मनिचि यॆत्ति पॆंचिन, तनुजन्मुलकंटॆ नंदतनयुंडा घो-
ष निवासुलकु मनोरं-जनुडॆट्लय्यॆनु बुधेंद्र ! चनु नॆरिंगिपन् ॥ 587 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 588 ॥

सी. अखिल जंतुवुलकु नात्म वल्लभमैन, भंगि बिड्डलु निड्लु पसिडि मॊदलु
वस्तुवुलॆव्वियु वल्लभंबुलु गावु सकलात्मकुंडन जलजनेत्रु-
डखिल जंतुवुलकु नात्मगावुन घोषवासुल कॆल्लनु वल्लभत्व-
मुन मिक्किलॊप्पॆनु मूडु लोकमुलकु हितमु सेयग जलजेक्षणुंडु

एक साथ बातें करते हुए कलेवा किया। ५८१ [व.] इस प्रकार बालकों के साथ मिलकर शीतान्न खाने के बाद उन्हें अजगर का चमड़ा (कलेवर) दिखाता हुआ [कृष्ण] वनस्थली से वापस हुआ। ५८२ [पंच.] मनोहर मोरपंख तथा पुष्पमालाओं की शोभा से झलकता हुआ शरीरवाला, प्रसिद्ध सिंगी और वेणु के नाद रूपी पाश (रस्सी) से लोगों को बाँध रखनेवाला, प्रसन्न गोपबालकों द्वारा गाये जानेवाला बाहुबलशाली कृष्ण उल्लसित गोपबालकों के संग व्रज के भीतर पहुँचा। ५८३ [व.] उस समय। ५८४ [कं.] बालकों ने बस्ती में घोषित कर कहा कि अरण्य में अजगर हमें निगल गया तो हमारे नंदनंदन ने उसे मारकर हमें बचाया है। ५८५ [व.] यह कथन सुनकर नरेन्द्र (परीक्षित) ने यों कहा : ५८६ [कं.] हे बुधेंद्र (महान् बुद्धिमान) ! यह बताइये कि यह नंदनंदन [कृष्ण] उन व्रजवासियों को अपने निजी पुत्रों से बढ़कर किस तरह मनोरंजक बन गया, जिन्हें उन लोगों ने जनकर पाल-पोसकर बड़ा किया था ? ५८७ [व.] तब शुकदेव यों बोले : ५८८ [सी.] समस्त जंतुओं (प्राणियों) को अपनी आत्मा जितनी प्रिय होती है उतनी प्रिय उनकी संतान, घर द्वार

आ. मायतोड मूर्तिमंतुडै यॆप्पारु, गलडतंडु निखिल गणमुलंदु
भवतिधातु वॆंट्लु भावार्थमै सर्व, धातु गणमुनंदु दनरु नट्लु ॥589॥

कं. श्रीपति पदमनु नावनु, ब्रापिंचि भवाब्धि वत्सपदमुग धीरुल्
रूपिंचि दाटि चेरुदु,-रापत् पद रहितुलगुचु नमृतपदंबुन् ॥ 590 ॥

आ. अघुनि जंपि कृष्णुडाप्तुलु दानुनु
चल्दि गुडिचि जलजसंभवुनकु
जिद्विलासमैन चॆलुवु जूपिन कथ
जदुव विनिन गोर्कॆ सफलमगुनु ॥ 591 ॥

व. अनि चॆप्पि मरियु, व्यासनंदनुंडिट्लनियॆ ॥ 592 ॥

अध्यायमु—१५

कं. रागंबुल बलकृष्णुलु, पौगंड वयस्कुलगुचु बशुपाल कळा-
योगंबुन बृंदावन, भागंबुन गाचिरंत बशुवुल नधिपा ! ॥ 593 ॥

अथवा धन-दौलत नहीं होती; जलजनेत्र (कमलनयन कृष्ण) ही समस्त जंतुओं की आत्मा है, अतः सब घोषवासियों को कृष्ण ही प्रियतम बन गया है। तीनों लोकों का हित करने के लिए जलजेक्षण (भगवान) ही [आ.] माया के साथ मूर्तिमान होकर अवतरित हुआ है। समस्त धातु-गणों में जिस प्रकार भू (भवति) धातु भावार्थ में (अस्तित्व के अर्थ में) अंतर्निहित रहता है, उसी प्रकार सब भूतगणों में [आत्मा के रूप में] यही भगवान विद्यमान रहता है। ५८९ [कं.] धीर पुरुष श्रीपति (विष्णु) के चरण रूपी नाव पाकर [उसके सहारे] इस भव (संसार)-सागर को [इतनी आसानी से] पार कर जाते है मानों वह उथले पानी का पगार हो। वे लोग इस प्रकार उस अमृतपद को पहुँच जाते है जो निरापद है। ५९० [आ.] कृष्ण ने अघासुर का जो वध किया, आप्त मित्रों के साथ बैठकर कलेवा जो खाया, और जलजसंभव-ब्रह्मदेव को अपना चिद्विलास रूप जो दिखाया, इस सारी कथा का श्रवण करने पर [भक्तों का] मनोरथ सफल होगा। ५९१ [व.] यों समझाकर व्यासनंदन शुकयोगी ने [आगे] इस प्रकार कहा : ५९२

अध्याय—१५

[कं.] हे राजन् ! बलराम और कृष्ण जब पौगंड (६ से १० वर्ष तक की) अवस्था वाले हुए तो वे पशुपालन में अनुरक्ति रख बृंदावन के भागों में ले जाकर गौओं को चराने लगे थे। ५९३ [व.] एक-दिन

व. अट्येंड गृष्णुंडोक्कनाड् रेपकड लेचि, वेणुवु पूरिंचि, बलभद्र सहितुंडै, गोपकुमारुलु दन्नु बहुवारंबुलु कैवारंबुलु सेय, म्रोल नालकदुपुल निडिकोनि, निरंतर फल किसलय कुसुमंबुनु, गुसुम मकरंद निष्यंद पानानंदविदिदिर कदंबंबुनु, गदंबादि नाना तरु लता गुल्म संकुलंबुनु, गुलविरोध रहित मृग पक्षि भरितंबुनु, भरितरससरोरुह परिमळ मिळित पवनंबुनुनैन वनंबु गनि, यंदु वेडुकं ग्रीडिंप निच्छयिंचि, वेन्नुंडन्न किट्लनियें ।। 594 ।।

शा. शाखा पुष्प फल प्रभार नतलै चर्चिंचि यो देव ! मा-
शाखित्वंबु हरिंपुमंचु शुकभाषन् नी कोरिंगिपुचुन्
शाखा हस्तमुल ब्रसून फलमुल् सवकन् समर्पिचुचुन्
शाखि श्रेणुलु नी पदाब्जमुल कोजन् म्रोक्केंडिन् जूचिते ।। 595 ।।

सी. निखिलपावनमैन नो कीर्ति बाडुचु नी तुम्मेंदलु वेंट नेगुदेंचॆ
नडविलो गूढुंडवैन योशुडवनि मुसरि कोल्वग वच्चॆ मुनिगणंबु
नीलांबरमुतोड नीवु जीमूतमवनि नीलकंठंबुलाड दोणगॆ
ब्रियमुतो जूचु गोपिकल चंदंबुन निनु जूचॆ नदॆ हरिणीचयंबु

कृष्ण ने तड़के ही जागकर बाँसुरी बजायी, फिर बलराम को साथ लेकर निकला। गोपबालक भी बार-बार कृष्ण की स्तुति करते हुए साथ चले। गोवृन्द को आगे करके उन लोगों ने वनस्थली को प्रस्थान किया। चलते-चलते उन्हें एक ऐसा वन दिखाई दिया जो सदा फल-किसलय-कुसुमों (फूलों) से भरा रहता, कुसुमों से टपकते मकरंद के पान से आनंदित भँवरों का झुंड जहाँ झंकार करता, कदब आदि नाना-तरु-लता-गुल्मों से जो संकुल (घना) बना रहता, परस्पर का जाति-विरोध भूले हुए पशु-पक्षियों से जो भरा रहता, और मकरंद से भरे कमलों के परिमल (सुगंध) से सना हुआ पवन जहाँ बहता रहता था। ऐसा वन देखने पर उसमें मन बहलाते हुए क्रीडा करने की इच्छा हुई तो विष्णु (कृष्ण) ने अपने बड़े भाई से यों कहा। ५९४ [शा.] भाई ! इन वृक्षों की कतारें देखो ! ये पेड़ शाखा-फल-पुष्प-भार से झुककर तुम्हारे चरण-कमलों पर सिर नवा रहे हैं, तोतों की बोली में तुमसे विनती कर रहे है कि हे देव ! हमारा वृक्षत्व (वृक्ष-जन्म) छुड़ा दो। वे अपने शाखा रूपी हस्तों से फल-फूल तुम्हें समर्पण कर रहे हैं। ५९५ [सी.] तुम्हारी पावन (पवित्र करनेवाली) कीर्ति गाते हुए ये भ्रमर तुम्हारा पीछा कर रहे हैं मानों ये मुनिगण हैं जो यह जानकर कि तुम गूढ़ (गुप्त) वेष में वन-संचार करनेवाले ईश हो, तुम्हारा भजन करते हुए झूम रहे हैं। नीलांबर पहने

आ. नीवु विदवनुचु निर्मल सूक्तुलु, बलुकुचुन्नविचट वरभृतमुलु
नेडु विपिनचरुलु नीवु विच्चेसिन, धन्युलैरि गादे तलचि चूड ॥596॥

सी. नी पादमुलु सोकि नेडु वीरु तृणपुंजंबुतो भूमि पुण्ययय्ये
नी नखंबुलु ताकि नेडु नानालता तरुसंघमुलु कृतार्थंबुलय्ये
नी कृपादृष्टि से नेडु नदी शैल खग मृगंबुलु दिव्य कांति जेंदे
नी पेद्दुरमु मोव नेडु गोपांगना जनमुल पुट्टुवु सफलमय्ये

आ. ननि यरण्यभूमि नंकिचु पसुलनु, मित्रजनुलु दानु मेपुचुंडि
नलिननलोचनुंडु नदुलंदु गिरुलंदु संतसंबु मेरय संचरिंचे ॥ 597 ॥

व. मरियु, नय्यीश्वरुंडु ॥ 598 ॥

सी. ऑकचोट मत्ताळि यूथंबु जुम्मनि म्रोयंग जुम्मनि म्रोयुचुंडु
नोकचोट गलहंस यूथंबु गूडि कॅक्कुलु सेयंग गेक्कुलु सेयु
नोकचोट मदकेकियूथंबु लाडंग हस्ताब्जमुलु त्रिप्पि याड दोणगु
नोकचोट वनगजयूथंबु नडवंग नयमुतो मेल्लन नडव जोच्चु

आ. क्रौंच चक्र मुखर खगमुलोक्कोक चोट
बलुक वानियट्ल पलुकु गदिसि

तुम्हें देख, मेघ समझकर, नीलकंठ (मोर) नृत्य करने लगे हैं। हिरनियों के झुंड गोपिकाओं के समान प्रीतिपूर्वक तुम्हे निहार रहे हैं। [आ.] तुम्हें अतिथि मानकर यहाँ पर की कोकिलाएँ निर्मल [स्वागत] सूक्तियाँ बोल रही हैं। तुम्हारे शुभागमन के कारण, जान पड़ता है, वनचर सब आज धन्य हुए हैं। ५९६ [सी.] तुम्हारे चरणों के स्पर्श से पेड़-पौधों के साथ यह [वन] भूमि पवित्र हो गई है; तुम्हारे नाखूनों को छूकर आज यह लता-तरु-पुंज कृतार्थ हुआ; तुम्हारी कृपादृष्टि के पड़ने से यहाँ की नदियाँ, पर्वत, खग (पक्षी) और मृग दिव्य कांति से चमक उठे हैं; तुम्हारे विशाल वक्षस्थल पर टेकने के कारण गोपस्त्रियों का जन्म सफल हुआ है। [आ.] इस तरह कहकर अरण्यभूमियों में पशुओं (गायों) को चराते हुए अपने मित्र-बालकों को साथ लेकर कमललोचन-कृष्ण ने नदी और पर्वत प्रदेशों में उल्लासपूर्वक संचार किया। ५९७ [व.] और वह ईश्वर (कृष्ण) ५९८ [सी.] मस्त भँवरों के झुंड को एक जगह झंकार करते देखकर वह भी झकार करता; कलहंसों का समूह जब एक स्थान पर क्रेंकार करता रहता तो [उसे देख] स्वयं क्रेंकार करने लगता; कहीं मयूर-वृंद को नृत्य करते देखता तो स्वयं भी हस्ताब्ज (कमल-समान हाथ) घुमा-फिराकर नाच उठता; अन्यत्र जंगली हाथियों का समूह जब चलता रहता तो वह भी [उसके समान] मंदगमन करने लगता; [आ.] क्रौंच,

पुलुल सिंहमुलनु बॉडगनि यॉकचोट
बरुचु मृगमुलंदु दरुचु गूडि ॥ 599 ॥

व. मरियुनु ॥ 600 ॥

सी. रा पूर्णचंद्रिक ! रा गौतमीगंग ! रम्मु भगीरथराज तनय !
रा सुधाजलराशि ! रा मेघमालिक ! रम्मु चिंतामणी ! रम्मु सुरभि !
रा मनोहारिणि ! रा सर्वमंगळ ! रा भारती देवि ! रा धरित्रि !
रा श्रीमहालक्ष्मि ! रा मंदमारुति ! रम्मु मंदाकिनि ! रा शुभांगि !

आ. यनुचु मरियु गलुगु नाख्यलु गल गोवु-
लडविलोन दूरमंदु मेय
घन गभीर भाष गडु नॉप्प जीरु ना-
भीरजनुलु बॉगड बॅंपु नॅगड ॥ 601 ॥

कं. कांतार विहरणम्मुल, श्रांतुंडै गोपकांकशयुडगु नन्नन्
संतुष्टि बॉद जेयु नि,-रंतर कर चरण मर्शनादुलनधिपा ! ॥ 602 ॥

कं. पाडुचु नाडुचु मुच्चट,-लाडुचु नॉंडॉरुल दाकु नाप्तुल गनि बि-
ट्टाडुचु जेतुलु व्रेयुचु, ग्रीडितुरु नगुचु बलुडु गृष्णुडु नॉकचोन् ॥603॥

व. इव्विधंबुन ॥ 604 ॥

चक्रवाक आदि पक्षियों का कलकूजन कहीं सुनता तो उसी के समान चहकने लगता; व्याघ्र और सिंह को देखकर भागनेवाले जानवरों के साथ वह भी भागने लगता। ५९९ [व.] और ६०० [सी.] "आओ, पूर्णचंद्रिका ! आओ गौतमी, गंगा ! आ जाओ भगीरथ-राज-कुमारी ! आओ सुधाजलराशि ! आओ हे मेघमालिका ! आओ चिंतामणि ! आओ सुरभी ! आओ मनोहारिणी ! आओ सर्वमंगला ! आओ भारती देवी ! आओ धरित्री ! आओ श्रीमहालक्ष्मी ! आओ मंदमारुती ! आओ मंदाकिनी ! आओ शुभांगी ! [आ.] यदि वन में गायें दूर प्रदेशों में चरने जातीं तो कृष्ण उन गायों को एक-एक का नाम लेकर मेघ-गंभीर-स्वर में पुकारता जिसे सुनकर अहीर लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते। वह उपरोक्त ऐसे-ऐसे नामों से पुकार कर गायों को वापस बुला लेता था : ६०१ [कं.] हे राजन् ! वन-संचार में थका-माँदा बड़ा भाई (बलराम) जब कभी गोपों की गोद में [सिर रख] सोया रहता तो [कृष्ण] उसके हाथ-पैर सहलाकर श्रम निवारण करता था। ६०२ [कं.] श्रीकृष्ण और बलराम साथ-साथ उन गोप-बालकों के संग गाते, नाचते, बतकही करते, छू-छूकर एक-दूसरे पर गिरते, आप्त बालकों को देखकर [घंटों] बतियाते, हाथ में हाथ मिलाते, और हँस-हँसकर खिलवाड़

सी. वेदांतवीथुल विहरिंचु विज्ञाणि विहरिंचु गांतार वीथुलंदु
फणिराज शय्यपं बवळिंचु सुखभोगि पलुलवशय्यल बव्वळिंचु
गुरुयोगि मानसगुहल ग्रुम्मरु मेटि ग्रुम्मरु नगेंद्र गुहललोन
गमलतोड बेंनंगि कडु डय्यु चतुरुडाभीर जनुलतोड बॅनगिडय्यु

आ. नखिल लोकमुनकु नाश्रयुंडगु धीरु, -डलसि तरुलनीड नाश्रयिंचु
यागभागचयमुलाहरिंचु महात्मु, -डडविलोनि फलमुलाहरिंचु ॥605॥

व. आ समयंबुन ॥ 606 ॥

सी. अलसिनचो गोंदरतिमोदमुन वीपुलॅक्किचुकोनि पोदुरेपु मॅरसि
सोलसि निद्रिंचिनचो नूरु तल्पंबुलिडुदुरु कोंदरु हितवु गलिगि
चॅमरिंचि युन्नचो जिगुरुटाकुल गोंदरॊय्यन विसरुदुरुत्सहिंचि
दव्वेगि निलुचुचो दडयक गोंदरु पदमु लोत्तुदुरतिबांधवमुन

आ. गोपवरुलु मरियु गोंदरु प्रियमुन, माधवुनकु बॅक्कु मार्गमुलनु
बनुलु सेसिरॅल्ल भवमुल जेसिन पाप संचयमुलु भस्ममुलुग ॥ 607 ॥

करते। ६०३ [व.] इस रीति से ६०४ [सी.] वेदांत (दर्शन) की वीथियों मे विहार करनेवाला वह विज्ञानी (भगवान) गहन वनपथों में संचार करने लगा; फणिराज (शेषनाग) की सेज पर लेटनेवाला सुख-भोगी पत्तों की शय्या पर लेट रहता; महान् योगियों की मानस-गुफ़ाओं में फिरनेवाला श्रेष्ठ पर्वतों की गुफ़ाओं में विचरता; कमला (लक्ष्मी देवी) के साथ लगा-लगी कर श्रांत रहनेवाला चतुर (विष्णु) अहीर लोगों से लगकर थका रहता; [आ.] समस्त लोकों को आश्रय देनेवाला वह धीर थकावट के कारण वृक्षों की छाया में आश्रय लेता; यज्ञ-भाग खानेवाला महात्मा जंगल के फल खाया करता। ६०५ [व.] उस समय ६०६ [सी.] [कृष्ण] यदि थका-माँदा रहता तो कुछ बालक उसे खुशी-खुशी पीठ पर ढोकर ले जाते और गौरव दिखाते; जब शिथिल होकर सो जाता तो कुछ लोग स्नेहपूर्वक अपनी जाँघ [की सेज] पर उसे लिटाते; [श्रम के कारण] जब [कृष्ण] पसीने से तर रहता तो कुछ बालक उत्साह के साथ कोमल पत्तों का पंखा बनाकर धीरे-धीरे हवा करते; दूर-दूर तक पैदल चलकर [आगे पैर बढ़ाने में असमर्थ हो] जब खड़ा रहता तो कुछ लोग झटपट उसके पैर सहलाकर बन्धुत्व बताते; [आ.] ये ग्वाले लोग प्रीतिपूर्वक तरह-तरह से माधव की सेवा करते और [इस प्रकार] अनेक जन्मों में किया हुआ अपना पापपुंज भस्मसात् कर लेते थे। ६०७

गर्दभाकारुंडैन धेनुकासुरुनि वध

व. अट्यवसरंबुन श्रीदाम नामधेयुंडैन गोपालुंडु रामकेशवुलं जूचि यिट्लनियॆ ॥ 608 ॥

कं. दूरंबुन दालतरु, स्फारंबगु वनमु गलदु पतितानुपत-
द्भूरि फल सहित मदि ये, धीरुलुजॊर वॆरतुरंदुधेनुकुडुंटन् ॥ 609 ॥

व. आ धेनुकासुरुंडु महाशूरुंडुनु, खराकारुंडुनुनै, समान सत्व समेतुलैन ज्ञातुलं, दानुनु, मनुष्युलं बट्टि भक्षिपुचुंडु। अय्यॆड बरिमळोपेतंबुलैन फलव्रातंबुलसंख्याकंबुलुग गलवु। विनुंडु ॥ 610 ॥

कं. फलगंधमु नासापुट, -मुल वॆंटन् जॊच्चि चित्तमुल गॊनिपोयॆन्
फलमुलु नमलिपुडु ममु, बलियुरकुनु मीकु दैत्यबलमड्डंबे ॥ 611 ॥

व. अनि पलिकिन चॆलिकांड्र पलुकुलादरिंचि, नगि, वारुनुं, दानु नुत्तालंबगु तालवनंबुनकुं जनि यंदु ॥ 612 ॥

कं. तत्तरमुन बलभद्रुडु, तत्तालानोकहमुल दन भुजबल सं-
पत्ति गदल्चुचु ग्रक्कुन, मत्तेभमुभंगि बंड्लु महिपं राल्चॆन् ॥ 613 ॥

गधे के आकार में आये धेनुकासुर का वध

[व.] उस अवसर पर श्रीदाम नामक एक ग्वाले ने बलराम और कृष्ण को देखकर यों कहा : ६०८ [कं] [यहाँ से] दूर पर ताड़ के पेड़ों वाला एक विशाल वन विद्यमान है, उसमें लगातार ताड़ के बड़े-बड़े फल गिरते रहते हैं। परंतु धेनुक के निवास के कारण धीरवान् भी उसमें प्रवेश करने से डरते हैं। ६०९ [व.] वह धेनुकासुर महान् शूर है, और खराकार (गधे के आकार) में रहता है, उसी के समान बलवान् बिरादरी वालों के साथ वह मनुष्यों को पकड़कर खाता रहता है। वहाँ पर सुगंध से महकते फलों के ढेर के ढेर पड़े हुए हैं। [और भी] सुनिये : ६१० [कं.] उन फलों का सुवास हमारे नासापुटों की राह पैठकर हमारे चित्त को हर रहा है। हमें वे फल खिलाइये। आप बलवान हैं, दानवों का बल आपको थोड़े ही रोक सकता है ? ६११ [व.] सखा के ये वचन आदर से सुनकर कृष्ण हँस पड़े, फिर उन ग्वालों को साथ लेकर उस उत्तुंग तालवन में पहुँचा : ६१२ [कं.] बलभद्र ने फुरती से उन ताल वृक्षों को पकड़कर अपने भुजबल से यों हिला दिया जैसे मस्त हाथी करता है; इस तरह उन ताड़फलों को धरती पर गिरा दिया। ६१३ [व.] फलों के गिरने की आवाज़ जब कानों में खटकी तो

व. अप्पुडु पंड्लु रालिन चप्पुडु चॆवुलकु दॆप्परमैन, नदरिपडि, रिपुमर्दन कुतुकंबुन गर्दभासुरुंडु ॥ 614 ॥

म. पदविक्षेपमुलन् सवृक्ष धरणीभागंबु गंपिंपगा
रदमुल् दीटुचु गतिरिंचिन चॆवुल् राजिल्ल वालंबु भी-
तिदमै तूलग गावरंबुन समुद्दीपिंचि गोपालकुल्
बॆदरन् रामुनि ऱॊम्मु दन्नॆ वॆनुकन् बीरंबु तोरंबुगन् ॥ 615 ॥

कं. मऱियुनु दनुजुडु रामुनि
गऱवन् गमकिंचि तॆऱपि गानक यतनिन्
जुऱचुऱ जूचुचु शौर्यमु
पऱिवोवग नंत नित वदमुल दन्नॆन् ॥ 616 ॥

व. अंत बलभद्रुंडु रौद्राकारंबुन गर्दभासुरु पदंबुलु नालुगु नॊक्क केल नंदं बट्टि, बॆट्टु दट्टिंचि, त्रिप्पि, विगतजीवु जेसि ॥ 617 ॥

म. ऒक तालाग्रमु ताकवैव नदि कंपोद्रिक्तमै त्रॆळ्ळि वे-
ऱॊक तालाग्रमुपै बडन्नदियु नत्युग्राहतिन् निलव कॊं-
डॊक तालाग्रमुपै बडन् विऱिगि यिट्लॊंडॊंडिपै दाळ वृ-
क्षकमुल् गूलॆ ब्रचंडमारुतमु ताकन् गूलु चंदंबुनन् ॥ 618 ॥

गर्दभासुर विचलित हो शत्रु-दमन की लालसा से [चल पड़ा] ६१४ [म.] उसके पैरों के आघात से वृक्षों-सहित भूमि काँपने लगी, दाँत पीसकर, कान खड़ा कर, पूँछ भयंकर रूप से घुमाकर, मदमस्त हो, अत्यंत पराक्रम से उसने बलराम की छाती पर दुलत्तियाँ ऐसी जमा दीं जिसे देखकर गोपबालक दहल उठे। ६१५ [कं.] वह दनुज बलभद्र को काट खाने को झपट पड़ा, किंतु अवकाश न पाया। आँखों से चिनगारियाँ बरसाते हुए सारी शूरता व्यय करके वह लात पर लात मारता गया। ६१६ [व.] तब बलराम ने रौद्रमूर्ति बन, उस गर्दभ की चारों टाँगें एक हाथ में कस कर पकड़ लीं; हुंकार करते हुए उसे ऊपर उठाया और घमा-घुमाकर निष्प्राण कर दिया। ६१७ [म.] बलराम ने जब उसे जोर के साथ फेंक मारा तो वह एक ताड़ के अग्रभाग से टकराया, इससे वह ताड़ दूसरे ताड़ को लगकर गिर पड़ा; उस गिरनेवाले ताड़ के धक्के से एक और ताड़ गिर गया; इस प्रकार एक पर एक गिरकर सारे के सारे पेड़ इस तरह धराशायी हुए जैसे प्रचंड मारुत का आघात खाकर गिरते हैं। ६१८ [उ.] जैसे सूत के धागों में कपड़ा, वैसे ही जिस परमेश्वर की मूर्ति में सारा विश्व ओतप्रोत (भरा) रहता है, उस अनंत जगदीश्वर के

उ. तंतुवुलंडु जेलमु विधंबुन ने परमेशु मूर्ति यं-
दितयु बुट्टु नट्टि जगदीशुडनंतुडु दैत्यमात्रु नि-
ट्लंतमु सेयुटेंतपनि यद्भुतमे विनु मंतलोन वा-
डंतमु बोंदुटेल्ल गनि यातनि बंधुलु गर्दभंबुल ॥ 619 ॥

कं. बलकृष्णुलपै गदिसिन
बलियुर खर दैत्य भटुल पश्चिम पादं-
बुलु वट्टि ताळशिखरं-
बुल नेंगुरग वैचि वारु पोरिगोनिरधिपा ॥ 620 ॥

व. अप्पुडु ॥ 621 ॥

कं. आलमुन नोलि गूलिन, तालद्रुमखंड दैत्य तनुखंडमुलन्
गोलितयै धर जलधर, मालावृतमैन मिटि माड्किनि वेलिगेन् ॥622॥

कं. धेनुक वनमुन नमलिरि, मानवुला वेळ दाटि मानुल फलमुल्
धेनुवुलु मेसगॅ गसवुलु, धेनुकहर भक्त कामधेनुवु गलुगन् ॥ 623 ॥

व. आ समयंबुन सुरलु विरुलवानलु गुरियिचि, दुंदुभुलु मोरयिचिरि। अंत गमललोचनुंडु, गोपजन जेगीयमान वर्तनुंडै, यन्नयु दानुनु गोपगणंबुलं बिल्चुकोनि मंदकुं जनियं। अय्येड ॥ 624 ॥

उ. गोपद रेणु संकलित कुंतलबद्ध मयूर पिंछु नु-
द्दीपित मंदहास शुभदृष्टिलसन्मुखु वन्य पुष्प मा-

लिए दैत्य का अंत कर देना कोई बड़ा काम नहीं है। इसमें अचंभे की कोई बात नहीं है। हे राजन्! सुनो; गर्दभासुर को मरा देखकर उसके भाई-बन्धु सबने गर्दभों का रूप लेकर ६१९ [कं.] बलराम और कृष्ण पर आक्रमण किया। उन्होंने उन दानव-भटों की पिछली टाँगें पकड़कर ताड़ की चोटी तक फेंक दिया, हे राजन्! इस तरह उन सबको एक-एक करके मार डाला। ६२० [व.] उस समय ६२१ [कं.] इस समर में गिरे हुए तालवृक्षों के तनों और दानवों के शरीरों के कटे हुए खंडों से धरती पट गई, और ऐसी लगी मानों मेघमालाओं से घिरा हुआ आकाश हो। ६२२ [कं.] धेनुकासुर-संहारक और भक्तों के लिए कामधेनु-[कृष्ण] की उपस्थिति के कारण उस दिन धेनुकवन के ताड़ फलों को मनुष्य चबा सके; और धेनुएँ (गायें) घास चर सकीं। ६२३ [व.] उस अवसर पर देवताओं ने फूल बरसाकर दुंदुभि (बाजे) बजाई; अनंतर कमललोचन— कृष्ण अपने भाई और गोपों को साथ लेकर, गोपजनों के किये जय-जयकारों के बीच व्रज में वापस पहुँचा। ६२४ [उ.] गोधूलि के कण लगे हुए उसके जूड़े में मोरपंख बँधा हुआ था, मुख पर मंदहास, और

ला परिपूर्णु गोपजनलालित वेणुरवाभिरामु ना
गोपकुमारुनि गनिरि गोपसतुल् नयनोत्सवंबुगन् ।। 625 ।

आ. कमलनयनु वदनकमल मरंदंबु, दविलि नयन षट्पदमुल वलन
द्रागि दिन वियोगतापंबु मानिरि, गोपकांतलॅल्ल गोर्कुललर ।।626।

गोपाल कृष्णुंडु काळिय मर्दनमु गाविंचुट

व. इट्लु गोपिकलादरंबुनं जूड, व्रीडा हास विनयंबुलं जूचुचुं, ग्रीडागरिष्ठुं
डैन प्रौड गोष्ठंबु प्रवेशिंचॅ । अंत रोहिणी यशोदलु कुर्रल वलनि
मच्चिकलु पिच्चलिप, निच्चकु वच्चिनट्लय्यॅ वेळल दीविंचिरि ।
वारुनु मज्जनोन्मर्दनादुलंगोर्करिचि, सुरभिकुसुमगंधंबुलु गैकॉनि, रुचिर
चेलंबुलु गट्टिकॉनि, रसोपपन्नंबुलैन यन्नंबुलु गुडिचि, तृप्तुलै, मंजुल
शय्यल सुप्तुलै युंडिरि । अंदु ।। 627 ।।

सी. ऒकनाडु वलभद्रुडोक्कडु राकुंड गोपालकुलु दानु गूडि कृष्णु-
डडविकि जनि यॆंड ना गोवुलुनु गोपकुलु नीरुवट्टुन गुंदि डस्सि
काळिंदिलो विषकलित तोयमु द्रावि प्राणानिलंबुलु वासि पडिन
योगीश्वरुंडुनु योगिवंद्युडु गृष्णुडीक्षणामृतधारलॅलमि गुरिसि

[नेत्रों में] शुभ दृष्टि झलक रही थी, वनपुष्पों की मालाओं से [वक्षस्थल] परिपूर्ण था, गोपों को हर्षित करनेवाले मधुर वेणुगान के साथ आये हुए उस गोपकुमार (कृष्ण) को गोपवधुओं ने जब देखा तो उन्हें नयनोत्सव हुआ (आँखों को दावत मिल गई) । ६२५ [आ.] कमलनयन (कृष्ण) के मुखकमल का मकरंद अपने नयन-भृंगों (भँवरों) द्वारा पीकर गोपकांताओं (वधुओं) ने दिन भर का वियोग ताप भुला दिया; उनकी मनःकामनाएँ चटक उठी । ६२६

गोपालकृष्ण का कालिय नाग का मर्दन करना

[व.] इस प्रकार प्रीति-सहित निहारनेवाली गोपिकाओं को व्रीडा (लज्जा) हास और विनय की दृष्टियों से देखकर क्रीडा-गरिष्ठ वह प्रौढ़ बालक कृष्ण गोष्ठ में प्रविष्ट हुआ । तब, बच्चों पर का मोह जब अतिशय हुआ, तो रोहिणी और यशोदा ने उन्हें छाती से लगाकर बार-बार मनचाहा आशीर्वाद दिया । वे बालक भी स्नान-मर्दन-उबटन आदि से निवृत्त हो, सुगंध, पुष्प और चंदनादि से अलंकृत हो, सुंदर पहनावे पहन, षड्रसयुक्त अन्न खा, तृप्त हो कोमल शय्याओ पर सो गये थे । तब ६२७ [सी.] एक दिन बलराम को [घर पर ही] छोड़कर कृष्ण अकेले ही ग्वालों के साथ वन में चला गया । धूप के कारण जब गौओं

आ. पसुल गोपकुलनु ब्रतिकिंचें मरलंग, वारु दमकु गृष्णुवलन मरल
ब्रतुकु गलिगॆनंचु भाविंचि संतुष्ट, मानसमुल जनिरि मानवेंद्र !॥628॥

अध्यायमु—१६

कं. काळिय फणिदूषित यगु, काळिंदि बवित्र जेयगा नुत्सुकुडै
काळिंदी जलवर्णुडु, काळियु वॆडलंग नडिचॆं गौरवमुख्या ! ॥ 629 ॥

व. अनिन नय्यगाधजलंबुवलन माधवुंडॆट्टि नेर्पुन, सर्पंबु दर्पंबु मापि वॆडलिचें ? अंदु वॆंद्दकालंबा व्याळंबेल युंडॆ ? ऎरिंगिपुमु ॥ 630 ॥

कं. तॊरुल गाचॆंडि नंदुनि कुर्रनि चरितामृतंबु गॊनकॊनि चॆवुलन्
जुर्रंग दनिवि गलुगुनॆ, वॆर्रुलकैननु दलंप विप्रवरेण्या ! ॥ 631 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 632 ॥

सी. मानवेश्वर ! यॊक्क मडुगु काळिंदिलो गलददि यॆप्पुडु काळियाहि
विषवह्नि शिखलचे वेगुचुंडुनु मीद बरतॆंचु नंतन पक्षुलैन
बडि स्रग्गु नंदु दद्भंग शीकरयुक्त पवनंबु सोकिन ब्राणुलॆव्वि-
यैन नप्पुडॆ चच्चु नट्टि या मडुगुलो नुदकंबु पॊंगुच नुडुकुचुंड

और गोपों को प्यास लगी तो थकावट के मारे उन्होंने कालिंदी (यमुना) का विषाक्त जल पिया और [फलतः] वे निष्प्राण हो गिर पड़े। उस समय योगिजनवंद्य योगीश्वर कृष्ण ने अमृतमय वीक्षणों की धाराएँ उन पर बरसाकर [आ.] उन गो-गोपों को पुनः जीवित कर दिया। हे राजन् ! वे लोग यह जानकर कि कृष्ण ने फिर एक बार उन्हें जीवन-दान दिया, संतुष्ट-मानस हो अपने-अपने ठाँव वापस चले गये। ६२८

अध्याय—१६

[कं.] हे कौरवों में प्रमुख (राजन्) ! कालिय सर्प के कारण दूषित (कलुषित) कालिंदी (यमुना) को पवित्र बनाने में उत्सुक हो, कालिंदी जल (नील) वर्ण वाले कृष्ण ने उस कालिय (नाग) को निकाल बाहर कर दिया। ६२९ [व.] यह सुन राजा ने कहा: "हे विप्रवर ! मुझे यह बताइए कि माधव (कृष्ण) ने उस सर्प का दर्प मिटाकर उस अगाध जल से किस उपाय से उसे बाहर खदेड़ दिया ? उस जल में वह व्याल (सर्प) बहुत काल तक क्यों रहा ? ६३० [कं.] पशुपालक नंद के नंदन (पुत्र) का चरितामृत यत्नपूर्वक कानों द्वारा पान करके एक अनाड़ी भी तृप्ति कभी नहीं पा सकेगा।" ६३१ [व.] इस पर शुक मुनि ने यों कहा: ६३२ [सी.] हे मानवेश्वर ! कालिंदी (यमुना) में एक ऐसा

ते. जूचि वॆऱ्ऱगंदि कुजनुल स्रुक्क जेय
नवतरिंचिन बलुवीरुडाग्रहिंचि
भुजग विषवह्नि दोषंबु पॊलिय जेसि
सुजल गाविंचि या नदि जूतुननुचु ॥ 633 ॥

व. कृतनिश्चयुंडै, पूर्वजन्म भाग्यंबुनं दन चरण संस्पर्शनंबुनकु योग्यंबै, तत्सोपंबुन विशाल विटपिशाखा कदंबंबुलोनुन्न कदंब भूजंबु नॆक्कि ॥634॥

म. कटिचेलंबु बिगिंचि पिंछमुन जक्कं गॊप्पु बंधिंचि दो-
स्तट संस्फालन मार्चरिंचि चरण द्वंद्वंबु गीलिंचि त-
त्कुटशाखाग्रमुमोद नुंडि युट्रिकॆन् गोपालसिंहंबु दि-
क्तटमुल् म्रोय ह्रदंबुलो गुभगुभ ध्वानंबनूनंबुगन् ॥ 635 ॥

उ. भूरि महाप्रताप परिपूर्ण भयंकर गोपबाल कं-
ठीरव पात वेग विकटीकृत दुर्विष भीषणोर्मि सं-
पूरितमै वडि गलगि पॊंगि धनुश्शतमात्र भाग वि-
स्तारमु वॊंगॆ नम्मडुगु तप्त पयःकण बुद्बुदोग्रमै ॥ 636 ॥

शा. पाठीनाकृति दोयराशि नडुमन् भासिल्लि मुन्नाढ्युडै-
काठिन्य क्रिय नीदु नेर्पु दनकुं गलिमन् भुजंगेंद्र ह्र-

दह (कुंड) था जो कालिय सर्प की विषाग्नि की लपटों से हमेशा खौलता रहता, आसमान में उस दह के ऊपर से उड़नेवाले पक्षी भी उसमें गिरकर मर जाते थे; उस जल की छींटे लिये चलनेवाले पवन का स्पर्श लगते ही कोई भी प्राणी तत्काल ही नष्ट हो जाता; उस कुंड के जल को खौलता और उबलता देखकर कृष्ण चकित हुआ, [ते.] दुष्टों का दमन करने के निमित्त अवतार लिया हुआ कृष्ण [यह दृश्य देख] क्रुद्ध हो उठा। उसने ठान लिया कि इसमें से सर्प-विष का दोष दूर कर इस नदी को सुजला बनाकर छोड़ूंगा। ६३३ [व.] इस प्रकार निश्चय करके वह एक विशाल कदंब वृक्ष पर चढ़ गया जो अनेक शाखा-प्रशाखाओं-सहित [नदी के] किनारे खड़ा था और अपने पूर्वजन्म में किये सुकृत के कारण [कृष्ण के] चरण-स्पर्श के लिए योग्य बना हुआ था। फिर ६३४ [म.] कटिवस्त्र कस कर, पिंछ को जूड़े में बाँधकर, दोनों बाहुओं को फैलाकर, पैरों को एक साथ जोड़कर, वह गोपाल-सिंह (कृष्ण) उस वृक्ष की शाखा के अग्रभाग से दह के जल में धड़ाम से कूद पड़ा; उस धड़ाके से चारों दिशाएँ गूंज उठीं। ६३५ [उ.] महाप्रताप से परिपूर्ण भयंकर सिंह-रूप उस गोप-बालक (कृष्ण) के कूद गिरने के वेग से विकट बने हुए दह में विषैले जल की भीषण लहरें उठकर सौ धनुओं के विस्तार में फैल गईं, और खौलते जल के बबूलों से वह दह भयंकर बन गया था। ६३६ [शा.] माहामत्स्य

त्पीठाग्रंबुन शैशवव्हनुलँगयन् भीमंबुगा नीर्दें नु-
ल्लोठोत्तुंग तरंगमै मडुगु दुर्लोक्यंबुगा बाहुलन् ॥ 637 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 638 ॥

शा. बालुंडीकुकडु वोडु नामडुगु विभ्रांतोच्चलत्कोर्ण क-
ल्लोलंबै कलगं जरिंचें निट ने लोनुंट जूडंडु मत्
कीलाभोल॥ विशाल दुस्सह विषाग्नि ज्वाललन् भस्ममै
कूलं जेसॅद नेडु लोकुलकु ना कोपंबु दीपिंपगन् ॥ 639 ॥

व. अनि तलंचि विजृंभिंचि ॥ 640 ॥

उ. घोर विषानल प्रभलु गॉब्बुन प्रम्मग सर्पसैन्य वि-
स्फारुडु काळियोरगुडु पारि वडिन् गरचॅन् ॥ बयोधरा-
कारु बयोविहारु भयकंप विदूरु गहागभीरु ना-
भीरकुमारु वीरु नव पीत शुभांबरधारु धीरुनिन् ॥ 641 ॥

कं. करचि पिरुतिवक मरियुनु
बॅरवक निज वदनजनित विषदहन शिखल्
मॅरय तन निडुद यॉडलनु
नॅरि हरि बॅनगॉनियॅ भुजग-निवहपति वडिन् ॥ 642 ॥

की आकृति में जलराशि (समुद्र) के मध्य समर्थता से तैरने का चातुर्य पहले ही से उसे (कृष्ण को) प्राप्त था; अतः उस भुजगेंद्र (सर्पराज) की छाती के ऊपर कृष्ण ऐसे भयंकर रूप से हाथ चलाकर तैरने लगा कि पानी में से रोष की ज्वाला उठने लगी, और ऊँचे उठनेवाली तरंगों के कारण उस दह में खलबली मच गई। ७३७ [व.] उस समय ६३८ [शा.] [कालिय ने अपने आप कहा कि] यह कोई अकेला बालक मेरे दह में पैठकर उसे विक्षुब्ध कर रहा है, जलराशि उच्चल तरंगों से कल्लोलित हो रही है; जल के भीतर मेरे रहने का इस बालक ने ख्याल तक नहीं किया; अब मैं अपने दुस्सह विषाग्नि की ज्वालाओं से इस छोकरे को भस्मीभूत कर, लोगों को अपना कोप उद्दीप्त कर दिखा दूँगा। ६३९ [व.] यों सोचकर (उसने) हमला किया। ६४० [उ.] अपनी सर्पसेना के साथ चारों तरफ़ फैलकर, घोर विषाग्नि की लपटें उभाड़ता हुआ उस कालिय नाग ने सहसा आक्रमण कर उस आभीर कुमार (कृष्ण) को डस लिया जो जलद-समान श्यामल, जलराशि (समुद्र) में विहार करनेवाला, भय-कंपन से रहित, महागंभीर, धीर वीर और नव पीतांबरधारी (विष्णु ही) था। ६४१ [कं.] डसकर वह वापस नहीं मुड़ा; निर्भयता से मुँह से विषाग्नि की ज्वालाएँ उगलता हुआ उस सर्पकुल-पति ने अपनी विशाल काया में हरि (कृष्ण) को लपेट लिया। ६४२ [व.] इस प्रकार सर्पराज

व. इट्लु भोगिभोग परिवेष्टितुंडै, चेष्टलु लेनिवानि तॆऱंगुन गानंबडुचुन्न प्राणसखुनि गनुंगॊनि, तत्प्रभावंबु लॆऱुंगक, तत्समर्पित धन दार मनोरथ मानसुलु गावुन ॥ 643 ॥

चं. अदॆ मन कृष्णुनि गऱचॆ नंतट बोक भुजंगमंबु दु-
र्मदमुन मेन जुट्टुकॊनि मानक युन्नदि यिक नेमि से-
युदमॆट सॊत्तमे पुरुषुलोपुडु री यहि नड्डपॆट्ट नॆ-
य्यदि सदुपायमंचु वडिरार्तरवंबुल दूलि गोपकुल् ॥ 644 ॥

कं. गोपकुमारक शेखरु, नेपुन सर्पंबु गऱचु टीक्षिचि वगन्
मेपुलकु दॊलगि गोवुलु, वापोवुचु नुंडॆ वृषभ वत्संबुलतोन् ॥ 645 ॥

कं. भूतमुलु वणकॆ नुल्का, -पातंबुलु मिट गानबडॆ घोषमुलो
व्रेतलकुनु गोपक सं, -घातमुलकु नदरॆ गोडु कन्नुलिलेशा ! ॥ 646 ॥

व. अंत ना दुर्निमित्तंबुलु पॊडगनि, वॆगडु गदिरिन चित्तंबुल नुत्तल पडुचु, मंद नुन्न नंदयशोदादुलयिन गोप गोपिकाजनंबुलु हरि दळसरि यॆऱुंगक, गोपालगोगण परिवृतुंडैन कृष्णुंडॆक्कडनेनं जिक्कु नोपु ननि पॊक्कुचुं, बॆक्कुवलॆन मक्कुवलु चॆक्कु लॊत्त, नॊक्क तॆट्ट बाल वृद्ध समेतुलै, महाघोषंबुन ना घोषंबु वॆलुवडि ॥ 647 ॥

के फणों से लिपटे जाकर, बेहोश से दीखनेवाले अपने प्राणसखा (कृष्ण) को देखकर, उसके प्रभाव को न जानने के और अपना तन-मन-धन सर्वस्व उसी को अर्पित किये हुए होने के कारण [वे गोपालक आर्तरव कर उठे] ६४३ [चं.] "लो, वह देखो, सर्प हमारे कृष्ण को काटकर दूर नहीं गया, बल्कि मस्त होकर उसके बदन से लिपट गया, बालक को छोड़ नहीं रहा है। अब हम क्या करें? कहाँ जायँ? कौन ऐसा मानुष है जो इस सर्प को रोक सके? हाय! अब क्या उपाय है?" ६४४ [कं.] गोपकुमार-शेखर (कृष्ण) का सर्प के द्वारा डसा जाना देख संताप से, गो, वृषभ और वत्स भी अपना चारा छोड़ रोदन करने लगे। ६४५ [कं.] हे राजन्! [पंच] भूत काँप उठे; आसमान से उल्कापात हुआ; अहीरों के घोष में गोप-गोपीसमूह के विपत्तिसूचक नेत्र फड़कने लगे। ६४६ [व.] ऐसे दुश्शकुन देख, चित्त में भयभीत हो, नंद-यशोदा आदि गोप-गोपीजन हरि का प्रताप न जानकर शंका करने लगे कि कृष्ण गोप-गोगण-सहित कहीं किसी सकट में फँस गया होगा; उनके हृदय ममता से विह्वल हो उठे। वे चीखते-चिल्लाते बाल-बच्चों के साथ एकाएक घोष से निकल पड़े। ६४७ [कं.] इस भाँति वे लोग अजान बनकर जब हरि की खोज

कं. वारिवभंगि नॆरुंगनि, वारै हरि जूडबोव वडिगॊनि नगुचुन्
वारिपडय्यॆ रामुडु, वारिनि हरि लावॆरुंगु वाडय्यु नृपा ! ॥ 648 ॥

व. अंतलोन वारुनुं गांतारमार्गंबु वट्टि पोवुचु, नॆड नॆड गोप गोष्पदंबुल संदुल नित नंत नक्कडक्कड यवांकुश हल कमल कुलिश चक्र चाप केतनादि रेखालंकृतंबुलयि, मार्गाभरणंबुलैन हरि चरणंबुल जाड गनि, चॊप्पु दप्पक चनि, दुर्घटंबैन यमुनातटंबु चेरि, वारिमध्यंबुन नितरुल कसाध्यंबैन सर्पंबुचेत गाटुपडि, दर्पंबु चूपक, भोगिभोग परिवृतुंडैन श्रीकृष्णुनि गनि, कृष्ण कृष्णेति विलापंबुल दापंबुल बॊंदुचु, दत्कालंबुनं ब्रतिकूलंबय्यॆ ननुचु दैवंबु दिट्टु गोपिकलुं, गोपकुलं गलसि, मेतलडिगि, रॆप्पलिडक, कृष्णुनि दप्पक चूचुचु, नोरलुचुन्न गोवुलं गनिरि। अंदु गॊंदरु यशोदं बट्टुकॊनि विलपिंपुचु गृष्णु नद्देशिंचि यिट्लनिरि ॥649॥

सी. ऎंदुरु वच्चिन जाल नॆवुरुगा जनुदॆंतु वॆंदुरु वच्चिन नेडदेल रावु
चूचिन गृपतोड जूचुचुंदुवु नीवु चूचिन गनु विच्चि चूडवेल
डासिन नरलेक डायंग वत्तुवु डासिन नेटिकि डाय विचट
जीरिन "नो" यनि चॆलरेगि; पलुकुदुविदि येमि चीरिन नॆरुगकुंट

मैं निकले तो बलराम हँसता रहा; हे राजन् ! कृष्ण की बहादुरी जानकर भी बलराम ने उन लोगों को रोका नहीं। ६४८ [व.] यों वनमार्ग से जाते हुए उन लोगों ने जहाँ-तहाँ ग्वालों और गायों के पदचिह्न पाकर उनके बीच में हरि के उन चरण-चिह्न भी देख लिये जो यव, अंकुश, हल, कमल, कुलिश, चक्र, चाप और केतन आदि दिव्य रेखाओं से अलकृत थे और मार्ग की शोभा बढ़ानेवाले आभूषण-सदृश थे। उसी रास्ते चलकर वे लोग दुर्गम यमुनातट पर पहुँचे। उन्होंने जल-मध्य में देखा कि अनितर साध्य सर्प से दष्ट हो, उसके फणों के घेरे में बँधे, बिना दर्प दिखाये कृष्ण [चुपचाप] खड़े हैं। उसे देख "हे कृष्ण, हे कृष्ण" कहकर विलाप कर संताप सहते हुए गोप और गोपिकाएँ यह कह दैवनिंदा करने लगे कि तत्काल दैव उनकें प्रतिकूल हो गया है। लोगों ने उन गायों को देखा जो घास चरना छोड़, अपलक दृष्टि से कृष्णकुमार को निहार रही थीं। कुछ गोपिकाएँ यशोदा को घेर विलपते हुए, कृष्ण को संभावित कर यों कहने लगीं। ६४९ [सी.] "सामना होने पर तुम सीधे पास आ जाते थे, पर आज हमारे सामने क्यों नहीं आ रहे हो ? जब हम तुम्हें देखतीं तो तुम हम पर कृपादृष्टि फेरते थे, किंतु आज हमें आँख खोलकर भी नहीं देखते हो ! जब हम मिलती थी तो तुम संकोच छोड़ हमें भेंटते थे; पर आज तुम पास नहीं फटकते हो ! पुकारने पर तुम [हमेशा] 'ओ' कहकर उत्तर देते थे, [आ.] लेकिन आज यह क्या ! हमारा पुकारना भी तुम

आ. तलपु सेयु नंत दलपोयुचुंदुवु
तलपु सेय नेडु तलप वकट !
यनुचु भक्ति विवशुलाउंडि कैवडि
व्रेतलॆल्ल नाडि विवशलैरि ॥ 650 ॥

व. आ समयंबुन नंदयशोदादुलु हरि जूचि, यधिकंबैन शोकंबुन निट्लनिरि ॥ 651 ॥

कं. विषकुचयुग यगु रक्कसि
विषकुच दुग्धंबु द्रावि विषविजयुड वै
विषरुहलोचन ! यद्भुत
विषयुंडगु नीकु सर्पविषमॆक्कॆ गदा ॥ 652 ॥

कं. कट्टा ! क्रूर भुजंगमु
कट्लुकन् निन्नु गऱव गंपिचितिवो
तिट्टितिवो पापपु विधि
वट्टी ! ममु दलचि काक वलविचितिवो ॥ 653 ॥

कं. पन्नगमु मम्मु गऱवक, निन्नेटिकि गऱचॆ गुर्रॆ ! नॆम्मि गलिगि नी
वुन्ननु ममु रक्षितुवु, निन्नु रक्षिप नेमु नेरमु तंड्री ! ॥ 654 ॥

उ. चूडवदेमि गारवपु जूपुल मम्मु सखाळितोड मा-
टाडवदेमि नर्ममुग नंदॆलु पादमुलंदु म्रोय ने-

सुन नहीं रहे ! जैसे ही हम तुम्हारा ख्याल करती थीं तुम [बदले में] हमारी चिंता करते थे; पर आज भावना करने पर भी हाय ! तुम हमारा ख्याल नहीं करते" इस प्रकार कहती हुई वे ग्वालिनें सब [कृष्ण की] भक्ति में विवश हो गईं। ६५० [व.] उस अवसर पर नंद और यशोदा हरि को देख अत्यंत शोक में यों कहने लगीं। ६५१ [कं.] "विष-स्तनी राक्षसी का विषैला दूध पीकर तुम विष-विजयी (विष को वेकार करनेवाले) वने हो; हे विषरुहलोचन (जलजलोचन = कमलनयन) ! अद्भुत विषय (वृत्त) वाले तुम्हे [भी आज] विष चढ़ गया; [आश्चर्य !] ६५२ [कं.] हाय ! इस क्रूर भुजंग (साँप) ने तीव्र रोष के साथ तुम्हें जो काट खाया, इससे तुम काँप उठे होगे; पापी विधि को कोसा होगा; अथवा, हे वच्चे ! हमें याद कर तुम विह्वल हो गये होगे। ६५३ [कं.] इस दुष्ट सर्प ने हमें न काट कर तुम्हें क्यों काटा ? हे लाल ! यदि तुम सुरक्षित रहते तो हमें वचाते; परंतु हम तुम्हें वचाने में समर्थ नहीं हैं। ६५४ [उ.] हमें स्नेह की दृष्टि से देखते क्यों नहीं हो ? अपने साथियों से वोलते क्यों नहीं हो ? पायल रुन-झुन वजाते हुए आज नृत्य

डाडवदेमि नर्तनमुलव्वल स्रोलनु गोपिकावळिन्
गूडवदेमि नव्वुलकु गोपकुमारवरेण्य ! चॅप्पुमा ॥ 655 ॥

सी. श्रवण रंध्रंबुलु सफलत बॉदंग नॅलमि भाषिचुवारॅव्वरिक
गरचरणादुल कलिमि धन्यत नॊंद नॅगिरि पै ब्राकुवारॅव्वरिक
नयनयुग्मंबुलुन्नति गृतार्थमुलुगा नव्वुलु चूपुवारॅव्वरिक
जिह्वलु गौरव श्री जेर बाटल यॅड बरिकिंचु वारॅव्वरिक

आ. दंड्रि ! नीवु सर्पदष्टुंडवै युन्न, निचट माकु ब्रभुवु लॅव्वरिक
मरगि पायलेमु माकु नी तोडिद, लोकमीवु लेनि लोकमेल ? ॥656॥

व. अनि यॊंडॊरुलं बट्टुकॊनि विलपिंचुचुं, गृष्णुनि तोडन मडुगु जॊत्तमु, चत्तमनुचु, गृष्णविरह वेदनानलभारतप्तुलै, मडुगु जॊरबाऱचुन्नवारलं गनुंगॊनि, भगवंतुंडैन बलभद्रुंडु, मीरु मीॅरुंगरु। धैर्यंबु विडुचुट कार्यंबु गादु। सहिंचि चूडुडु। अनुचु वारिनि वारिंचॅ ॥ 657 ॥

कं. तनु गूर्चि यिव्विधंबुन
वनितलु बिड्डलुनु दारु वापोयॅडि घो-
षनिवासुल गनि कृष्णुडु
मनुजुनि क्रिय नॊक मुहूर्तमात्रमु जरिपॆन् ॥ 658 ॥

क्यों नहीं करते ? इधर गोपिकाओं को हास्य-विनोद में भेंटते क्यों नहीं ? हे गोपकुमार ! बोलो तो। ६५५ [सी.] अब हमसे बतियावेगा कौन जिससे हमारे कर्णपुटों को सफलता मिले ? हम पर उछल-उछलकर अब कौन बैठेगा जिससे हमारे करचरणों को धन्यता प्राप्त हो ? अब हमें मंद-मंद मुस्कान कौन दिखावेगा, जिससे हमारे नयन कृतार्थ बनें ? अब कौन हमसे गीत गवाकर हमारी जिह्वा को गौरव-भाग्य प्राप्त करावेगा ? [आ.] हे लाल ! जब तुम सर्प-दष्ट हो पड़े हुए हो तो यहाँ हमारी रक्षा करनेवाला प्रभु कौन है ? परच जाने के बाद [तुम्हारा संग] छोड़ नहीं सकते; तुम्हारे साथ ही हमारा जीवन [जुड़ा हुआ] है, तुम्हारे बिना हमारे लिए जग (जीवन) ही नहीं रहेगा।" ६५६ [व.] इस तरह एक-दूसरे को पकड़कर विलाप करने लगे। कृष्ण के विरह की वेदना में तप्त हुए गोप-गोपीजन, यह कहकर कि हम भी कृष्ण के साथ ही कालिय दह में डूब मरेंगे, विषैले जल में एक साथ उतरने लगे। यह देख भगवान बलभद्र ने उन्हें यह कहकर रोका कि तुम लोग नहीं जानते कि आगे क्या होनेवाला है; धैर्य छोड़ने से काम नहीं बनता; सहन करके देखो। ६५७ [कं.] अपने ऊपर मन रखकर बाल-बच्चों सहित संतप्त हो रहे व्रजवासियों को देखकर कृष्ण एक मुहूर्तमात्र मनुजभाव से चुप रहा। ६५८

शा. अंतन् गृष्णुडु मेनु वॅप भुजगुंडावृत्तुलं वासि ता
संतप्तायत भोगुडै कर्चुटल् चालिचि निट्टूर्पुतो
श्रांतुडै तललॅत्ति दुर्विषमु नासावीथुलं ग्रम्म बु-
श्चितन् दिक्कुलु सूचुचुन् दलगि निल्चॅन् धूमकाष्ठाकृतिन् ॥ 659 ॥

चं. वॅरमरलेनि मेटि वलुवीरुडु कृष्णकुमारुडोक्क चे-
जरचि खगेंद्रु चंदमुन जक्कन दौडलु वट्टि कन्नुलन्
जोरचोर दुर्विषानलमु जोव्विलुचुंडग नॅत्ति लोलतो
जिरजिर द्रिप्पि वैचॅ बरिशोषित दर्पमु ग्रूरसर्पमुन् ॥ 660 ॥

व. इट्लु वेगंबुन नागंबु वीचि वचि, जगजॅट्टियैन नंदुनिपट्टि रॅट्टिंचिन संभ्रमंबुन ॥ 661 ॥

सी. घन यमुनानदी कल्लोल घोषंबु सरस मृदंग घोषंबु गाग
साधु वृंदावन चर चंचरीक गानंबु गायक सुगानंबु गाग
गलहंस सारस कमनीय मंजु शब्दंबुलु ताळशब्दंबुलु गाग
दिविनुंडि वीक्षिचु दिविज गंधर्वादि जनुलु सभासीन जनुलु गाग

ते. पद्मरागादि रत्न प्रभासमान
महित काळियफणि फणामंटपमुन
नळिनलोचन विख्यात नर्तकुंडु
नित्य नैपुण्यमुन वेचि नृत्यमाडॅ ॥ 662 ॥

[शा.] तदनंतर कृष्ण ने अपना शरीर बढ़ाया तो साँप अपनी कुंडलियाँ छोड़, कुचले हुए अपने फनों को फैलाकर खड़ा हो गया; संतप्त होकर डसना छोड़ पीड़ा के कारण वह उसासें लेने लगा। उसके नासापुटों से विष छूटकर फैल गया। वह हताश हो चारों ओर दृष्टिपात करता हुआ इस तरह दूर जा खड़ा हुआ मानों धुआँधार काठ हो। ६५९ [चं.] कृष्ण कुमार ने, जो निर्भीक और निस्संकोच बाँका वीर था, एक हाथ से थपेड़ा मारकर, गरुड़ के समान साँप के जबड़ों को पकड़ निचोड़ डाला। साँप के नेत्रों से विषानल बह निकला। [तब कृष्ण ने] उसे उठाकर [अधर में] घुमा-घुमाकर फेंक मारा। अब उस सर्प में दर्प परिशोषित (समाप्त) हो गया था। ६६० [व.] इस प्रकार उस नाग को ज़ोर से पटकने के बाद वह विश्वविश्रुत मल्ल नंदकुमार (कृष्ण) दुगुनी उत्कंठा से, ६६१ [सी.] पद्मराग आदि रत्नों से प्रकाशमान उस कालिय नाग के महान फणों के मंडप (रंगमंच) पर निपुणता से नृत्य करने लगा। उस विख्यात नर्तक—कमलनयन—कृष्ण के नृत्य में यमुना नदी का कल्लोल-घोष सरस मृदंग वादन बन गया; सुंदर वृंदावन में संचार करनेवाले भौंरों का

शा. कुक्षिन् लोकमु लुन्न गौरवमुतो गोपाकृतिन्नुस्न या
रक्षोहंत वडिन् महाफणिफणारंग प्रदेशंबु· पै
नक्षीणोद्धति नाडु बाडु जलगुन् हासंबु तोडं बद
प्रक्षेपंबुलु सेयु गेळिगतुलन् बाणंक शेषंबुगन् ॥ 663 ॥

कं. घनतर सुषिरानंद-
स्वनमुलतो सिद्ध साध्य चारण गंध-
र्व निर्लिप मुनि सतुलु च-
य्यन गुरिसिरि विरुलवानलाडुचु हरि पै ॥ 664 ॥

व. इट्लु दुष्टजन दंडधरावतारुंडयिन हरि, वडि गलिगिन पडगल मीद दांडवंबु सलुप, बेडुवडि, योंडोड मुखंबुल रक्त मांसंबुलुमियुचु, गन्नुल विषंबु ग्रक्कुचु, नुक्कु चेडि, चिक्कि, दिक्कुलु चूचुचु, गंठगत प्राणुंडै, फणींद्रुंडु दन मनंबुन ॥ 665 ॥

उ. वेलुपुलैन लावुचेडि वेदन बोंदुचु ना विषानल
ज्वाललु सोकि नंतटने चत्तुरु नेडिदियेमि चोद्य मा-
भील विषाग्नि हेति चय पीडकु नोर्चियु ग्रम्मरंग नी
बालुडु मत् फणाशतमु भग्नमुगा वेस द्रोक्कि याडेडिन् ॥ 666 ॥

झंकार गायकवृंद का मधुर गायन बना; सारस और कलहंसों के मंजुल शब्द (बोल) ताल-शब्द बन गये; आसमान में रहकर देखनेवाले देव-गंधर्व जन सभासीन प्रेक्षक महाशय बन गये। ६६२ [शा.] समस्त लोकों को पेट में रख लेने का भारीपन लिये हुए गोपाकृति वाला वह राक्षसांतक (कृष्ण) उस महासर्प के फनों (के मंच) पर धमाधम नाचने लगा। कृष्ण ने हँसते-गाते जो धमा-चौकड़ी मचायी उसके आघात से कालिय में केवल प्राण मात्र शेष रह गये। ६६३ [कं.] [उस घड़ी] सिद्ध, साध्य, चारण, गंधर्व, देव, और मुनियों की स्त्रियों ने हर्ष से बाजे बजाते, नाचते, गाते कृष्ण पर फूल बरसाये। ६६४ [व.] दुष्ट जनों के लिए यमस्वरूप हरि ने फनों पर जो तांडव नृत्य किया उसके कारण वह सर्प निस्तेज पड़ गया, उसने अपने सभी मुखों से रक्त और मांस उगल दिया; आँखों से विष बरसाया, इस तरह सारा सत्त्व खोकर कंठगत-प्राण हो चारों तरफ़ दृष्टि फैलाते हुए उसने अपने मन में सोचा। ६६५ [उ.] "मेरे विष की ज्वालाओं के लगते ही देवता लोग भी संतप्त होकर मर जाते हैं, किंतु आज यह बड़े अचरज की बात हो रही है; यह बालक तो भंयकर विष की लपटों का ताप सहकर मेरे सौ-सौ फणों को चूर-चूर करते नाच रहा है! ६६६ [कं.] यह (बालक) तो चराचर विश्व का अधिपति,

कं. ईतडु सर्व चराचर, भूतेशुंडैन परमपुरुषुडु सेवा
प्रीतुडु श्रीहरियगु ननि, भीतिन् शरणंबु नोंदॆ विट्टलसि नृपा ! ॥667॥

व. इट्लु क्रूरंबुलयिन हरि चरण प्रहारंबुलं बडग विडिसि, नोच्चि, चच्चिन क्रियं बडियुन्न पति जूचि, नाग कांतलु दुरंतंबयिन चिंताभरंबुन निब्बटि-ल्लॆडु नॆव्वगल नोल्लंबोयि, पल्लटिल्लिन युल्लंबुल ॥ 668 ॥

काळियुनि भार्यलैन नागकांतलु स्वामिनि स्तोत्रमु चेयुट

मं. कचबंधंबुलु वीड भूषणमुलाकंपिंप गौ दीवियल्
कुचयुग्मंबुल व्रेगुनं गदल वै कोंगुल् वडिन् जारगा
बचुर भ्रांति गलंगि मुंदट रुदद् बालावलिं गोंचु स्रु-
क्कुचु भक्ति जनि कांचिरा गुणमणिन् गोपाल चूडामणिन् ॥ 669 ॥

व. कनि दंड प्रणामंबुलाचरिंचि, निटलतट घटित करकमललै यिट्लनिरि ॥ 670 ॥

कं. क्रूरात्मुल दंडिपग, धारुणिपै नवतरिंचि तनरॆडि नी की
क्रूरात्मुनि दंडिचुट, क्रूरत्वमु गादु साधुगुणमु गुणाढ्या ! ॥ 671 ॥

परमपुरुष, सेवा से प्रसन्न होनेवाला श्रीहरि ही होगा [अन्य नहीं है]।" हे राजन् ! वह सर्प यों सोचकर भयभीत हुआ और निस्सहाय होकर [कृष्ण की] शरण में गया। ६६७ [कं.] इस प्रकार हरि (कृष्ण) के भीषण पदप्रहार (लात) खाकर अपने दुखते हुए फन समेट, मरे से पड़े हुए अपने पति (कालिय) को देखकर, नागकान्ताएँ (उसकी प्रिय पत्नियाँ) असह्य चिंता के भार से मूच्छित-सी हो, भयकंपित हृदयों से [कृष्ण की स्तुति करने लगीं।] ६६८

कालिय की स्त्रियों का भगवान की स्तुति करना

[म.] [उन स्त्रियों के] केशबंध खुल पड़े; आभूषण हिलने लगे; कुचों के भार से तनुलताएँ (शरीर) हिलने लगीं; वस्त्रों के अंचल खिसक पड़े; अपने रोते बाल-बच्चों को आगे कर, संभ्रम और भक्ति से विह्वल हो उन नागपत्नियों ने जाकर उस गोपाल-चूडामणि और गुणमणि कृष्ण का दर्शन किया। ६६९ [व.] [कृष्ण को] देखकर दंडवत प्रणाम किया, फिर फाल-प्रदेश में करकमल जोड़कर यों निवेदन किया : ६७० [कं.] क्रूरात्माओं को दंड देने के निमित्त भूतल पर अवतार लेकर शोभित होनेवाले तुम्हारे लिए इस क्रूरात्मा [कालिय] को दंडित करना क्रूरकर्म नहीं हो सकता; हे गुणाढ्य ! (कृष्ण !) यह तो साधुकर्म ही है। ६७१

कं. पगवारि सुतुलयंबुनु
बग यिचुक लेक समत बरगॅडि नीकुन्
बग गलदॅ खलुल नडचुट
जगदवनमु कोऱकु गाक जगदाधारा ! ॥ 672 ॥

कं. निग्रहमॅ ममु विषास्युल, नुग्रुल शिक्षिचुटॅल्ल नूहिंप महा-
नुग्रहमु गाक मा को, निग्रहमु विषास्यभाव निर्गति जेसॅन् ॥ 673 ॥

ऊ. अॅट्टितपंबु चेसॅ नीकी यॅट्टि सुकर्ममुलाचरिचॅनो
यॅट्टि निजंबु बल्कॅनोको यी फणि पूर्वभवंबुनंदु मु-
न्नॅट्टि महानुभावुलकुनॅन्नडु चेरुव गानि नीवु ने-
डिट्टि विनोदलील दललॅक्कि नर्टिचॅदवी फणींद्र पै ॥ 674 ॥

म. बहुकालंबु तपंबु सेसि व्रतमुल् पाटिचि कामिचि नी
महनीयोज्ज्वल पादरेणुकण संस्पर्शाधिकारंबु श्री
महिळारत्नमु तॉल्लि कांचॅ निदॅ नेमंबेमियुन् लेक यी
यहि नी पादयुगाहतिन् बडसॅ नेडत्यद्भुतंबीश्वरा ! ॥ 675 ॥

उ. ऑल्लरु निर्जरेंद्रपदमॉल्लरु ब्रह्मपदंबु नॉंदगा
नॉल्लरु चक्रवर्तिपदमॉल्लरु सर्वरसाधिपत्यमु-

[कं.] शत्रुओं पर और अपने पुत्रों पर तुम समभाव रखते हो। शत्रुभाव लेश भी न दिखाते। अतः दुष्टों का दमन तुम शत्रुभाव से नहीं करते हो, जगत की रक्षा के लिए करते हो। [तुम] जगत् के आधारभूत स्वामी हो। ६७२ [कं.] हम जैसे उग्र विषमुखवालों को सज़ा देना, सोचने पर, निग्रह (दंड) नहीं [कहलाता]; यह तो हमारे लिए अनुग्रह (कृपा) है। इस रोकथाम ने हमारे विष-स्वभाव को दूर कर दिया है। ६७३ [उ.] इस सर्प ने पूर्वजन्म में —पता नहीं— कौन सा तप किया था ? क़िस प्रकार के सुकृत्य (पुण्य कर्म) किये थे ? कौन सा सत्य-भाषण किया था ? नही तो, तुम— जो अब तक किसी भी महानुभाव तक फटक तक नहीं सके (समीपवर्ती नहीं हुए), आज इस फणींद्र के सिर चढ़कर खेल-खेलकर नृत्य क्यों करते ? ६७४ [म.] श्रीदेवी (लक्ष्मी) ने बहुकाल तक तप कर, व्रतों का पालन कर, [तुम्हारी] कामना करके तुम्हारे महनीय (श्रेष्ठ) उज्ज्वल चरणरेणु के एक कण को स्पर्श करने का अधिकार प्राप्त किया था। परन्तु, हे ईश्वर ! इस साँप ने बिना किसी नेम-व्रत रखे तुम्हारे पैरों का प्रहार (मार) प्राप्त किया। आज यह अत्यन्त अद्भुत [घटना] हुई है। ६७५ [उ.] तुम्हारे चरण-रज के स्पर्श से जो लोग धन्य हो जाते हैं, वे कभी देवेंद्र का पद, ब्रह्मपद, चक्रवर्ती का पद, समस्त भूमंडल का

न्नोल्लरु योगसिद्धि मरियोंडु भवंबुल नोंदनोनि नी
सल्ललितांघ्रिरेणुवुल संगति नोंदिन धन्युलेप्पुडुन् ॥ 676 ॥

कं. घन संसाराहतुलगु, जनुलाकांक्षिप गड्डु नशक्यंबगु शो-
भनमु समक्षंबुन नहि, गनियें दामसुड्डु दोषकलितुंडय्युन् ॥ 677 ॥

व. देवा ! सकल पुरुषांतर्यामि रूपत्वंबुवलन बरमपुरुषुंडवय्यु, नपरिच्छिन्न-त्वंबुवलन महात्मुंडवय्यु, नाकाशादि भूत समाश्रयत्वंबु वलन भूतवासुंडवय्यु, भूतमयत्वंबुवलन भूतशब्द वाच्युंडवय्यु, गारणातीतत्वं-बुवलन बरमात्मुंडवय्यु, ज्ञानविज्ञान परिपूर्णत्वंबु गलिगि, निर्गुणत्व निर्विकारत्वंबुलवलन ब्रह्मंबवय्यु, प्रकृति प्रवर्तकत्वंबुवलन ननंतशक्तिवै, यप्राकृतुंडवय्युनु, गालचक्र प्रवर्तकत्वंबुन गालुडवय्यु, गालशक्ति समाश्रयत्वंबुवलनं गालनाभुंडवय्यु, जिन्मयत्वंबुवलन महात्मकुंडवय्यु, सृष्टि जीवन संहारादि दर्शित्वंबुवलनं गालावयवसाक्षिवय्यु, नोप्पु नीकु नमस्करिंचेदमु । मद्रियुनु ॥ 678 ॥

स्वामित्व अथवा योगसिद्धि [इनमें से एक भी] प्राप्त करना स्वीकार नहीं करेंगे; न उन्हें दूसरा जन्म ही लेना पड़ेगा । ६७६ [कं.] संसार में फँसे हुए लोग जिस सौभाग्य को पाने की आकांक्षा नहीं कर सकते, उस [तुम्हारे सान्निध्य] को तामसी और दोषी होते हुए भी इस सर्प ने प्राप्त कर लिया है । ६७७ [व.] हे देव ! समस्त पुरुषों में अंतर्यामी के रूप में रहने के कारण तुम परमपुरुष [कहलाते] हो; अपरिच्छिन्न (अखंड) होने के कारण तुम महात्मा बने हुए हो; आकाश आदि [पंच] भूतों को अपने में आश्रय देने के कारण तुम भूतावास [कहे जाते] हो; पंच भूतों के रूप में रहने के कारण तुम स्वयं "भूत" शब्द से पुकारे जाते हो; कारण के अतीत (परे) होने से तुम परमात्मा [समझे जाते] हो; ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण होकर भी निर्गुण और निर्विकार रहने के कारण तुम ब्रह्म बने हुए हो (निर्गुण = हेय गुणों का न होना अथवा सत्व, रजो, तमो गुणों का न होना । निर्विकार = गर्भस्थ होना, जन्म लेना, बढ़ना, वृद्ध होना, क्षीण होना, मरना — इन प्रकार के विकारों का न होना) प्रकृति को प्रवृत्त करने के कारण से तुम अनंत शक्तिवान् और असाधारण बने हुए हो । निमेष, घटिका, दिन, मास, वर्ष आदि भेदों से काल-चक्र को निरंतर घुमाते रहने के कारण तुम कालस्वरूप हो । काल रूपी शक्ति के लिए आश्रयस्थान होने के कारण तुम कालनाभ (काल को वश में रखनेवाले) बने हुए हो । चिन्मयता के कारण महात्मा हो । सृष्टि, स्थिति, संहार को देखते रहने के कारण तुम मास-वर्षादि काल भेदों के लिए साक्षी बने हुए हो । इस प्रकार विलसित होनेवाले तुमको हम प्रणाम करती है ।६७८ [सी.] तुम्हीं विश्व होकर,

सी. विश्वंबु नीवयै विश्वंबु जूचुचु विश्वंबु जेयुचु विश्वमुनकु
हेतुवव पंचभूतमात्रेंद्रियमुलकु मनःप्राण बुद्धि चित्त-
मुल कॅल्ल नात्मवै मॊनसि गुणंबुल नावृतमगुचु निजांशभूत-
मगु नात्मचयमुनकनुभूति सेयुचु मूडहंकृतुलचे मुसुगुवडक

ते. नॅरि ननंतुंडव दर्शनीय रुचिवि
काक सूक्ष्मुडवै निर्विकार महिम
दनरि कूटस्थुडन समस्तंबु नॅरुगु
नीकु म्रॊक्कॆद मालिपु निर्मलात्म ! ॥ 679 ॥

व. मरियु गलंडु, लेडु, सर्वंबु नॅरुंगु, निंचुक यॆरुंगु, निंचुक बद्धुंडु, विमुक्तुंडौकं, डनेकुडु ननु निवि मॊदलुगा गल वादंबुलु मायवलन ननुरोधिपुदुरु। कावुन नाना वादानुरोधकुंड वय्यु, नभिधानाभिधेय शक्तिभेदंबु वलन बहुप्रभाव प्रतीतुंड वय्यु, जक्षुरादि रूपंबुल वलन प्रमाणरूपकुंड वय्यु, निरपेक्ष ज्ञानंबु कलिमि गवि वय्यु, वेदमय विश्वासत्वंबु वलन शास्त्रयोनि वय्यु, संकर्षण वासुदेव प्रद्युम्नानिरुद्ध रूपंबलवलन जतुर्मूर्ति वय्यु, भक्तजनपालकुंडवय्यु, नंतःकरण प्रकाशत्वंबु गलिगि, नीव सेवकजन

विश्व को देखते हुए, विश्व बनाते हुए, विश्व का हेतु (कारण) होकर, पंचभूतों, मात्राओं, इंद्रियों और मनस्-प्राण-बुद्धि-चित्तों के लिए स्वयं आत्मा होकर, गुणों से घिरे रहकर, अपने ही अंश से उत्पन्न देव-तिर्यङ्-मनुष्य आदि प्राणिसमूह को अनुभूति कराते हुए, राजस-सात्त्विक-तामसादि तीनों अहंकारों से ढके न रहकर, [ते.] अनंत बन, दिखाई देनेवाली कांति न होकर सूक्ष्म बने हुए हो; अपनी विकार-रहित महिमा के बल भूतसमूहों में (कूटस्थ) लीन रहकर समस्त जान लेते रहनेवाले तुम्हारे समक्ष हम सिर झुकाती हैं। हे निर्मल (विशुद्ध) आत्मा! हमारी [विनती] सुन लो। ६७९ [व.] [ईश्वर] है; नहीं है; सब कुछ जानता है; थोड़ा ही जानता है; कुछ-कुछ बँधा हुआ है; [पूरी तरह] विमुक्त है; एक ही एक है; अनेक (रूपी) है— इत्यादि जितने वाद है, सबको [मनुष्य] माया के प्रभाव से [यथार्थ] मानकर उनका अनुसरण करता है। इस प्रकार के अनेक वादों का तुम्हीं प्रेरक हो। अभिधान (वाचक), अभिधेय (वाच्य) और शक्ति-भेद के कारण बहु-प्रभावी दिखाई देते हो। चक्षु (नेत्र) आदि से प्रमाणित रूपवाले हो। निरपेक्ष ज्ञान रखने के कारण तुम कवि हो। वेद में भरे विश्वास के कारण तुम 'शास्त्रयोनि' कहलाते हो। संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूपों में तुम चतुर्मूर्ति हो। तुम भक्तजनों के पालक हो। अंतःकरण का प्रकाश रखते हो। सेवकजनों को फल प्रदान करने के निमित्त गुणों से आच्छादित [त्रिमूर्ति

फलप्रदानंबु कोंडकु गुणाच्छादकुंडवय्यु, जित्तादि वर्तनंबुलं गानंदगिन गुणंबुलकु साक्षिवै योरुलकॆरुंगरामि नगोचरुंडवय्यु, दकिपरानि पॆंपु-वलन नव्याहत विहारुंडवय्यु, सकल कार्यहेतुववय्यु, नंतःकरण प्रवर्तकत्वंबुवलन हृषीकेशुंडवय्युनु, साधन वशंबुगानि यात्मारामत्वंबुबलन मुनिवय्यु, नधिक सूक्ष्ममतुल नॆरुंगुचु, नॆंदु जॆंदक, नीवु विश्वंबु काकयु, विश्वंबु नीवयय्युनु, विश्व भावाभाव संदर्शनंबु सेयुचु, बिद्याविद्यलकु हेतु-वैन नीकुं ब्रणामंबुलाचरिंचॆदमु । अवधरिंपुमु ॥ 680 ॥

कं. लोक जनि स्थिति लयमुलु
गॆकॊनि चेयुदुवु त्रिगुण कलितुडवै का-
लाकारमुन नमोघ
श्रीकलितुडवगुचु निच्च सॆंदक यीशा ! ॥ 681 ॥

कं. नी शांतलु गानि तनुवु, -लीशा ! यी मूढजातु लो सज्जातुल्
नी शांततनुवुलंदु, ब्रकाशितुव धर्महितम्मुगा सुजनुललोन् ॥ 682 ॥

उ. नेरमुलॆन्न नॆक्कडिवि नेमु दलंतु तलंपुलंद लो-
नेरुपुलुन्नवे सुतुल नेरमि वंड्रुलु द्रोचिपुच्चरे

रूप में] रहते हो । चित्त के वर्तनों से गोचर होनेवाले गुणों के तुम साक्षी बनते हो । अन्यों के लिए तुम अगोचर हो, जाने नहीं जा सकते हो । अतवर्य महिमा को लेकर स्वच्छंद विहार करते हो । समस्त कार्यों के तुम्हीं हेतुभूत हो । [लोगों के] अंतःकरण को प्रवृत्त करनेवाले हृषीकेश (इंद्रिय-नियामक) हो तुम । साधना के वश में न होनेवाले आत्माराम (अपने में रमनेवाले) मुनि हो तुम । स्थूल-सूक्ष्म गतियों को जानते हुए भी तुम किसी के भागी नहीं बनते हो । तुम विश्व नहीं बनते हो, किंतु विश्व ही 'तुम' होकर रहता है । विश्व के भाव और अभाव (अस्तित्व और अनस्तित्व) को तुम देखते रहते हो । विद्या और अविद्या के तुम्ही हेतु हो । ऐसे तुमको हमारा प्रणाम है । हम पर ध्यान दो । ६८० [कं.] सत्त्व, रज और तम —इन तीन गुणों से युक्त होकर तुम [ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के आकार में] जग का सृजन, पालन और संहार करते हो । हे ईश ! तुम निरीह होते हुए भी काल रूपी अमोघ शक्ति और अणिमादि महिमाओं को लेकर क्रीडा करते रहते हो । ६८१ [कं.] हे ईश ! ये मूढ़ लोग तुम्हारे अशांत शरीर के आकार (स्वरूप) हैं, और ये ज्ञानी लोग तुम्हारे शांत शरीर के आकार हैं । धर्म की रक्षा के लिए तुम सज्जनों के शरीरों में प्रकाशित होते हो । ६८२ [उ.] हमारे अपराध अनगिनत है; हमारे भावों में चतुरता नहीं है । पुत्रों के अपराध क्या उनके पिता क्षमा नहीं करते ? राजा लोग भी गुनहगारों की कभी-

नेरमु सेयुवारि धरणीपतुलोक्कोकमाट्ट गावरे
नेरमि गल्गु मद्विभुनि नेड्डिट्टु गावगदे कृपानिधी ! ॥ 683 ॥

शा. बालुंडोतडु मंचिवाडनुचु चेप्पन् रामु क्रूरुंडु दु-
श्शीलुंडौ नबुनैन नेमु सुभगश्री बासि वैधव्य दु-
ष्टालंकारमु बोंद नोल्लदमनाथालापमालिंपवे
चालुन् नी पदताडनंबु पतिभिक्षन् बेट्टि रक्षिपवे ॥ 684 ॥

उ. आकुलमय्ये भोगमिदे यौदललन्नियु त्रस्से; प्राणमुल्
राकल बोकलं बोलिसे रायिडि पेट्टक मा निजेशुपै
नी करुणाकटाक्षमुलु निल्पगदे तग नो समस्त लो-
कैकशरण्य ! यो यभयकारण ! यो कमलामनोहरा ! ॥ 685 ॥

आ. मम्मु बेंड्लिसेयु मा प्राणवल्लभु
प्राणमिच्चि कावु भक्तवरद !
नीवु सेयु पेंड्लि नित्यंबु भद्रंबु
पिन्ननाटि पेंड्लि पेंड्लि गादु ॥ 686 ॥

इंद्र. नी यान ! येव्वारिनि निग्रहिंपं, -डा युग्र पापाकृति नंदडिकन्
नी याज्ञलो नुंडेडु नेटिनुंडिन्, मा योशु प्राणंबुलु माकु नीवे ॥ 687 ॥

कभी रक्षा करते हैं न ? हे कृपानिधि ! हमारा पति अपराधी है, आज तुम उसकी रक्षा करो। ६८३ [शा.] हम यह नहीं कहतीं कि यह नाग निरपराध है। यह क्रूर और दुश्शील है। फिर भी हम अपना सुहाग खोकर वैधव्य की दुस्थिति में पड़ना नहीं चाहतीं। हम अनाथ हैं, हमारी गुहार सुनो; इस दुष्ट को तुम्हारे पैरों का जो ताडन मिला, वह पर्याप्त [दंड] है। हमें पतिभिक्षा दो, हमें बचाओ। ६८४ [उ.] यह सर्प दुखी हो गया है; उसके फन सब लस्त-पस्त हो गये हैं; उसके प्राणों की अब-तब हो रही है। हमारे पति को अब पीड़ा पहुँचाना छोड़कर उस पर अपनी करुणा-दृष्टि डालो। समस्त लोक को तुम एक ही एक शरण-दाता हो। अभय देनेवाले हे कमलापति ! ६८५ [आ.] हमारे प्राणवल्लभ (पति) को प्राण [दान] देकर उसके साथ हमें ब्याह दो। हे भक्तों को वर देनेवाले [कृष्ण] ! बचपन में इस नाग से हमारा जो ब्याह हुआ वह ब्याह नही, अब तुम जो करोगे वही [वास्तविक] विवाह है, वही नित्य (स्थिर) और भद्र (सुरक्षित) ब्याह होगा। ६८६ [इन्द्र.] यह दुष्ट और पापी सर्प अब किसी को सतावेगा नहीं। तुम्हारी क़सम, आज से वह तुम्हारी आज्ञानुवर्ती रहेगा। हमें अपने स्वामी के प्राण लौटा दो।" ६८७ [व.] इस प्रकार अपने पति का जीवन-दान माँगनेवाली

व. अनि यिट्लु तम पॅनिमिटि ब्रतुकु गोरॅडि भुजगसतुलयंदु शरणागतवत्सलुं-
डैन पुंडरीकाक्षुंडु करुणिंचि, चरणघट्टनंबु चालिंचि, तलंगिन नॅट्टकेलकु
ब्राणेंद्रियंबुल मरलं बडसि, चदिसि नलगिन तललु सवरिंचुकोनि, वगपु
गदुर भुजगपति जलजनयनुनिकि नंजलि चेसि, मॅल्लन
निट्लनियॅ ॥ 688 ॥

चं. मलकलु मा प्रचारमुलु मा मुखमुल् विषवह्नि घोरमुल्
खलुलमु रोषजातुलमु गर्वुल मेमॅक मंचिवारमे
नळिनदळाक्ष ! प्राणुलकु नैजगुणंबुलु मानवच्चुने
वॅलयवॅ मा विकारमुलु विंतलॅ मेलॊनर्चितीश्वरा ! ॥ 689 ॥

सी. विविधभावाकार वीर्य बीजाशय जन योनियुतमुगा जगमुलॅल्ल
नीव चेसिति मुन्नुने मा जगंबलो सहज कोपनुलमु सर्पमुलमु
दुर्वारमैन नी तोरंपु माय नेमॅरिगि दाटॅडु पनि कॅतवार-
मंतकु गारण मखिलेश्वरुंडवु सर्वज्ञुडवु नीवु जलजनयन !

ते. मनिचॅदेनियु मन्निंचि मनुपु नन्नु
निग्रहिंचॅदवेनियु निग्रहिंपु
इंक सर्वेश ! मा यिम्मुलॅंदु गलवु
चित्तमंदुन्न क्रममुन जेयदगुनु ॥ 690 ॥

सर्प की पत्नियों पर शरणागतवत्सल पुंडरीकाक्ष (कृष्ण) ने करुणा प्रकट की। उसने पैरों के आघात छोड़ दिये। भुजगपति (सर्पराज) ने आखिर को अपने प्राण और इंद्रिय-व्यापार को फिर से पा लिया [जो प्रायः विनष्ट हो रहा था], अपने कुचले गये फनों को किसी तरह समेटकर संताप के साथ उसने कमलनयन (कृष्ण) के सामने अंजलिबद्ध हो धीरे-धीरे यों विनती की : ६८८ [चं.] हे ईश्वर ! हम वक्र-गति वाले है; हमारे मुखों से विष की भयकर ज्वाला निकलती रहती है; हम दुष्ट, गर्वीले, रोष जाति के प्राणी हैं। हम अच्छे गुणवाले नही है। हे नलिनदलाक्ष (कमलनयन) ! प्राणी कभी अपना सहज-गुण छोड़ सकता है ? हमारा मनोविकार प्रसिद्ध है। इसमें अचरज नही। तुमने (आज) हमारा भला किया। ६८९ [सी.] इस चराचर जगत को अलग-अलग भाव, आकार, वीर्य, बीज, सत्त्व और योनियों के साथ तुम्हीं ने उत्पन्न किया; हम उस सृष्टि में सहज कोपी सर्प के रूप में उत्पन्न हुए हैं। तुम्हारी माया अत्यंत बलवती और अनुल्लंघनीय है; उसे जानना अथवा टालना हमारे वश में नहीं है। तुम अखिलेश्वर हो। सबका कारण तुम्हीं हो। तुम सर्वज्ञ हो। [ते.] हे कमललोचन ! तुम यदि मुझे जीवित रखना चाहते हो तो [मेरा अपराध] क्षमा कर बचाये रखो, नहीं तो दंड देकर मार डालो।

कं. ना पुण्यमेमि चेप्पनु, नी पादरजंबु गंटि ने सनकादुल्
नी पादरजमु गोरुदु, -रे पदमंदुन्ननन निक मेलु हरी ! ॥ 691 ॥

व. अनि विन्नविंचिन, गाळियु पलुकुल विन नवधरिंचि, कारुण्यमानसुंडैन सर्वेश्वरुंडतनि किट्लनियें ॥ 692 ॥

कं. गोवर्गमुतो मनुजुलु, द्रावुदुरी मडुगु नीरु तगदिंदुंडन्
नीवुनु नी बांधवुलुनु, नी वनितलु सुतुल् जनुडु नेडंबुधिकिन् ॥ 693 ॥

कं. निनु ने शासिंचिन कथ
मनमुन जिंतिंचि रेपु मापुनु गीति-
चिन मनुजुलु मी भयमुनु
विनुमेन्नडु बोंदरेंदु विषविजयमुतोन् ॥ 694 ॥

चं. इदि मोदलेव्वरैन नरु ली यमुना नळिनी ह्रदंबुलो
वदलक तोगि नन्नु नुपवासमुतोड दलंचि कोल्चुचु
गदलक देवतादुलकुगा जलतर्पणमाचरिंचिनन्
सदमलचित्तुलै दुरितसंघमु बायुदुरा क्षणंबुनन् ॥ 695 ॥

आ. गरुड भीति रमणक द्वीपमोल्लकी
मडुवु जोच्चितीवु मत्पदाज्ञ

हे सर्वज्ञ! हमारा क्षेम (कुशल) कहाँ है— तुम्हीं जानते हो। तुम्हारी इच्छा जैसी हो वैसा ही करो। ६९० [कं.] मैं अपने पुण्य को क्या कहकर बखानूं ? सनक [सनंदन] आदि महामुनि तुम्हारा चरण-रज चाहते रहते है, मैं उसे [अनायास ही] पा गया। हे हरि ! अब मुझे जो भी दशा प्राप्त होगी सब मेरे क्षेम के लिए ही होगी।" ६९१ [व.] जब कालिय ने यह विनती की, कारुण्यमनस्क हो कृष्ण ने उसे सुन लिया, फिर उस सर्वेश्वर ने उससे यों कहा: ६९२ [कं.] "मनुष्य अपने गाय-बैलों के साथ इस दह का पानी पीते रहते हैं, इसमें तुम्हारा रहना उचित नहीं है। अपने बंधु-बांधव, सती-सुतों को लेकर आज ही तुम इसे छोड़ जाओ और समुद्र में निवास करो। ६९३ [कं.] मैंने तुम्हें जो शासित किया उसकी कथा मनन करते हुए जो मनुष्य सुबह-शाम [मेरी] कीर्ति गाते हैं उन्हें तुम्हारा भय कभी नहीं रहेगा, वे लोग विष पर विजय पा लेंगे। ६९४ [चं.] अब से लेकर जो नर यमुना के इस ह्रद में नहाकर उपवास के साथ मेरा चिंतन करते हुए मेरी पूजा करते और देवता आदि को जल-तर्पण करते हैं उनका चित्त शीघ्र ही निर्मल हो जायगा और वे पाप-संघ से मुक्त हो जायेंगे। ६९५ [आ.] गरुड़ के भय से तुमने रमणक द्वीप छोड़ इस ह्रद में शरण ली थी। अब तुम्हारे सिर पर मेरे पद-चिह्न अंकित हो गये हैं, उन्हें देखकर वह

लांछनमुलु नी तलनु नंट जूचि या
पक्षिराजु निन्नु वट्टडिक ॥ 696 ॥

व. अनि यिट्लु विचित्र विहारुंडैन गोपाल कृष्णकुमारुंडानतिच्चिन निय्यकोनि, चय्यन नय्यहींद्रुंडु, तोय्यलुलुं, दानुनु नेय्यंबुन नय्यीश्वरुनकु नव्य दिव्यांबराभरण रत्न मालिकानुलेपनंबुलु समर्पिचि, तेटि तंडंबुलकु दंडयगु नीलोत्पलंबुल दंड यिच्चि, पुत्र मित्र कळत्र समेतुंडै, बहुवारंबुल फेवारंबुलु चेसि, वलगोनि, म्रोक्कि, लेचि, वीड्कोनि, रत्नाकरद्वीपंबुनकु जनियें। इट्लु ॥ 697 ॥

कं. वारिजलोचनुडेव्वरु, वारिंपग लेनि फणि निवासत्वंबुन्
वारिंचिन यमुन सुधा, -वारि बोलुपारें नेल्लवारिकि प्रियमै ॥ 698 ॥

अध्यायमु—१७

व. अनिन विनि, मुनींद्रा ! येमि कारणंबुन गाळियुंडु भुजगनिवासंबैन रमणक द्वीपंबु विडिचें ? अतंडोक्करुंडुनु गरुडुनकेमि येग्गु दलंचें ? अनि नरवरुं-डडिगिन, मुनिवरुंडिट्लनियें ॥ 699 ॥

पक्षिराज (गरुड़) आगे से तुम्हें स्पर्श नहीं करेगा।" ६९६ [व.] इस प्रकार जब उस विचित्रविहारी (मनमौजी) गोपाल कृष्ण ने आज्ञा दी, उसे मानकर तुरंत ही उस अहींद्र (सर्पराज) ने अपनी स्त्रियों समेत बड़ी प्रीति के साथ उस ईश्वर (कृष्ण) को नव्य, दिव्य, आभरण, रत्न-मालिकाएँ, अनुलेपन आदि लाकर समर्पित किया। भृंग-माला (भौंहों की कतार) लगी हुई नीलोत्पलमाला (नीलकमल) से उसे अलंकृत कर, पुत्र-मित्र-कलत्र (पत्नी) समेत कृष्ण के चारों तरफ़ फेरी लगाई, बार-बार पाँव लगकर विदा माँग ली और तुरंत रत्नाकर द्वीप को रवाना हो गया। ६९७ [कं.] इस रीति से जब वारिजलोचन (कमल-नयन) ने औरों के लिए अनिवार्य उस फणि-निवास (साँप का निवास) का निवारण किया तब से यमुना-जल सुधा-समान सबके लिए सुखदायक बन गया। ६९८

अध्याय—१७

[व.] इस प्रसंग को सुनकर [परीक्षित] नरेश ने पूछा— हे मुनींद्र ! किस कारण से कालिय ने सर्पों का आवास स्थान रमणक द्वीप छोड़ा था ? अकेले उसने गरुड़ का क्या बिगाड़ा था ? मुनिवर ने राजा को यों उत्तर दिया : ६९९ [सी.] लोग साँपों से डरकर [उन्हें संतुष्ट रखने

सी. सर्प भीरवुलैन जनुलॆल्ल नॆल नॆल सरस भक्ष्यमुलु वृक्षमुल मॊदल
सर्पंबुलकु बॆट्ट सर्पंबुलुनु मुन्नु सर्पांतकुडु दम्मु जंपकुंड
व्रतिमासमुनु दम भाग भक्ष्यंबुला पक्षिराजुनकिच्चि व्रतुकुचुंड
विषवीर्य दुर्मदाविष्टुडै काळियुंडहिकुलांतकुनि पालपहरिंचि

ते. यीक तन पालि भागंबुलॆल्ल दिनिन
विनि खगेंद्रुडु कोपिंचि वीनि तललु
चीरि चॆंडाडि भोगंबु चिंचि वैचि
प्राणमुल बापि वच्चॆद बट्टि यनुचु ॥ 700 ॥

कं. अक्षीण कनकसन्निभ, पक्ष युगोद्भूत घोरपवमान महा-
विक्षेप कंपिताने, -कक्षोणिधरेंद्रुडगुचु गरुडुडु वच्चॆन् ॥ 701 ॥

उ. वच्चिन सर्पवैरि गनि व्रालक लेचि महाफणावळुल्
विच्चि दृगंचलंबुल नवीन विषाग्निकणंबुलॊल्कगा
नुच्चलदुग्रजिह्वलु महोद्धति द्रिप्पुचु नूर्पुलंदु गा-
चिच्चॆगयंग बार गरचॆन् विहगेंद्रु नहींद्रुडुग्रतन् ॥ 702 ॥

कं. करचिन भुजगमु रदमुल्
विरुगग वदनमुल विषमुलुडलग शिरमुल्
परियलग नडिचॆ गरुडुडु
तरिमि कनकरुचुलु गलुगु तन वलरॆक्कन् ॥ 703 ॥

और अपने को बचाने के लिए] हर महीने सरस खाद्यपदार्थ वृक्षों के तले रखकर उन्हें खिलाते थे; सर्प भी अपने संहारक गरुड़ से बचने के लिए अपना (खाद्य) भाग प्रतिमास उस पक्षिराज को देते थे। [ऐसी दशा में] यह विषवीर्य दुर्मद कालिय नाग गरुड़ का भाग उसे [ते.] न देकर, उसे चुराकर स्वयं खाने लग गया था। यह देख खगेंद्र कुपित हुआ और कहा कि इस कालिय के सिर चीरकर, फनों को फाड़कर उसके प्राण निकाल लूंगा। ७०० [कं.] [ऐसा कह] वह गरुड़ जब चला आया तो उसके प्रकाशमान सुनहले पंखों से उद्भूत (उत्पन्न) घोर झंझा के धक्कों ने अनेक बड़े-बड़े पर्वतों को झकझोर डाला। ७०१ [उ.] आये हुए उस सर्पवैरी (गरुड़) को देख अहींद्र (सर्पराज) उग्र हो उठा। उसने अपने महान फणों को फैलाये, नेत्रांचलों से विष के स्फुलिंग छोड़ते हुए, चंचल जीभों को भयंकर रूप से लपलपाकर, निःश्वासों द्वारा दाव की लपटें फेंकता हुआ उस खगेंद्र (गरुड़) को डस लिया। ७०२ [कं.] तब गरुड़ ने पीछा करते हुए अपने सुवर्ण वर्ण के दाहिने पंख से साँप के सिर पर ऐसा धक्का मारा कि उसके दाँत टूट गये, मुखों से विष

व. इट्लहिकुलारातिचेत नॆट्टुवडि, वॆरच्चि, परतॆंचि, काळियुंडी गभीरंबैन मडुगु जॊच्चॆं। मऱियु नॊक्क विशेषंबु गलदु ॥ 704 ॥

सी. मुन्नु सौभरियनु मुनि या ह्रदंबुन दपमु सेयुचु नुंड धरणिलोन
नाकलि गॊनि पन्नगांतकुडॊकनाडु चनुदॆंचि यंदलि जलचरमुल
नॊडिसि भक्षिंचिन नुन्न मीनमुलॆल्ल खिन्नंबुलै वग ग्रिस्सि युन्न
जूचि या मुनिराजु शोकिंचि कोपिंचि गरुडुडु नेडादिगाग निडु

ते. जॊच्चि मीनंबुलनु म्रिंग जूचॆनेनि
जच्चु गावुतमनि युग्रशाप मिच्चॆं
गाळियुंडॊक्कडा शापकथ नॆऱुंगु
नितर भुजगंबुलॆव्वियु नॆरुगवधिप ! ॥ 705 ॥

व. अदि कारणंबुन गाळियुंडा मडुगु जॊच्चिचन, गो मनुज रक्षणार्थंबु कृष्णुं-डतनि वॆडलिचॆं। इट्लु दिव्य गंधांबर सुवर्ण मणिगण मालिकालंकृतुंडै, मडुगु वॆडलि वच्चिन माधवुंगनि, प्राणलाभंबुलं बॊंदिन यिंद्रियंबुलं बोलॆ, यशोदा रोहिणी समेतलैन गोपिकलुनु, नंद सुनंदादुलैन गोपकुलुनु मूर्छलंबासि, तेऱि, तॆप्पिऱिलि, लेचि, परमानंदंबुलं बॊंदिरि। बलभद्रुंडु तन्मुनि नालिंगनंबु चेसॆं। अप्पुडु ॥ 706 ॥

वह निकला, और फन विदीर्ण हुए। ७०३ [व.] इस प्रकार सर्पकुल-शत्रु (गरुड़) द्वारा मार खाया नाग, भयभीत हो भाग आया और (यमुना के) इस गहरे दह में छिप गया। एक और विशेषता है। ७०४ [सी.] पूर्व काल में सौभरी नामक एक मुनि उस ह्रद मे तपस्या कर रहा था; तब एक बार गरुड क्षुधातुर होकर आहार की खोज में वहाँ पहुँचा और जलचरों को पकड़-पकड़ खा गया। इससे बाकी बची मछलियाँ खिन्न होकर दुःख करने लगी। यह देख मुनिराज को शोक हुआ। क्रोध में आकर उसने शाप दिया कि उस दिन से यदि गरुड ने [ते.] वहाँ आकर मीनों को खाने का यत्न किया तो उसके प्राण निकल जायेगे। हे राजन ! एक कालिय नाग को छोड़ अन्य कोई सर्प यह शाप-कथा नहीं जानता था। ७०५ [व.] अतः कालिय उस दह में आकर रहने लगा। इस कारण से गो-मनुज-रक्षा के लिए कृष्ण ने उस सर्प को वहाँ से निकलवा दिया। इस प्रकार दिव्य गंधांबर-सुवर्ण-मणिगण-मालिकाओं से अलंकृत हो उस ह्रद से निकल आये हुए माधव (कृष्ण) को देखकर सबकी जान में जान आ गई मानों अचेत पड़ी हुई इन्द्रियों में फिर से प्राण-संचार हुआ हो। यशोदा रोहिणी समेत सभी गोपिकाएँ और नंद-सुनद आदि गोपवर मूर्च्छा छोड़, सज्ञा पा (देश में आकर) उठ खड़े हुए और परम आनंद का अनुभव

कं. ऱंकेलु वैचें वृषभमुल, -हुंकारमुतोड लेग लट्टि दृट्टिकें
बीकमुल नोप्पें धेनुवु, -लंकुरितमुलय्यें दरुवुला हरिराकन् ॥ 707 ॥

कं. नो सुतुडहिचे विडिवडें,
नी सुरुचिर भाग्यमहिम निश्चलमनुचुन्
भूसुरुलु सतुलु दारुनु
भासुर वचनमुल नंदु बलिकिरिलेशा ! ॥ 708 ॥

शा. निन्नायुग्र भुजंगमंबु गइवन् नी वापदं बोंदुचु-
न्नन्नेमंटि तनूज ! योडवु गदा ना कून ! ना तंड्रि ! रा
वन्ना ! यंचु शिरंबु मूर्कोनि निजांकाग्रंबु प निल्पुचुन्
गन्नोरोलक गवुंगिलिचें दनयुन् गारामुतो दल्लि दान् ॥ 709 ॥

व. इट्लु परम संतोषुलै, घोषजनुला रेयि गाळिदीतटंबुन नाकलि नीरु
वट्टुल डस्सि, क्रुस्सि, गोवुलुं दारु नुंड, नगण्यंबगु नट्यरण्यंबुन नोक्क
दवानलंबु पुट्टि, चुट्टुकोनि, नडुरेयि निद्रितंबैन व्रजंबुमीद गदिसिन,
नदिरिपडि, लेचि, दंदह्यमान देहुलैन सकल जनुलुनु माया मनुज बालकुं-
डैन हरिकि शरणागतुलै यिट्लनिरि ॥ 710 ॥

किया। बलभद्र ने अपने छोटे भाई को गले से लगा लिया। ७०६ [कं.] [उस घड़ी] हरि (कृष्ण) के आगमन के कारण से वृषभवृंद हुंकार कर उठा। बछड़े उमंग में आ छलाँग मारने लगे; धेनुएँ मनोहर दिखाई दीं, तरु-लताएँ अंकुरित हुईं। ७०७ [कं.] हे राजन ! ब्राह्मण और उनकी पत्नियों ने सुंदर वचनों में कहा— "तुम्हारा पुत्र सर्पराज के चंगुल से छूट आया, तुम्हारे भाग्य की महिमा अटल है।" ७०८ [शा.] "हे मेरे पुत्र ! उस क्रूर सर्प ने जब तुम्हें डसकर दुखाया तो मेरे लाल ! तुमने मुझे क्या कहा होगा ? कितनी बाधा सही होगी तुमने ! आओ मेरे बच्चे !" —इस प्रकार कहती हुई माता (यशोदा) ने [कृष्ण-कुमार का] सिर सूँघा, गोद में उठाया; प्रेम के आँसू गिराते हुए गले से लगा लिया। ७०९ [व.] इस तरह अत्यंत संतोष पाकर गो-घोषजान (गोप-गोपीजन) भूख और प्यास से थककर, यमुना तट पर ही वह रत बिताने लगे। आधी रात के समय उस घने जंगल के बीच दावानल उत्पन्न हुआ और उस सोये हुए जनसमूह को घेर लिया। हड़बड़ाकर लोग जाग पड़े, झुलसते बदनो से सब लोग उस माया मानुष-बालक-हरि में शरण लेकर यों विनय करने लगे : ७१०

गो गोप गोपिका संघमुनु गार्चिच्चु चुट्टुकोनुट

म. अवॅ वच्चॅन् दववह्नि धूमकण कीलाभील दुर्वारमै
यिदॅ कप्पॅन् ममु नॅल्लवारि निटमीदेलागु रक्षिपु नी
पदपद्मंबुलु गानि यॉडॅरुग मो पद्माक्ष ! यो कृष्ण ! स्रॉ-
वर्कॅदमो राम ! महापराक्रम ! दवाग्निन् वेग वारिपवे ॥ 711 ॥

कं. नी पादंबुलु नम्मिन, नापदलॅक्कडिवि जनुलकत्युग्र महा-
दीपित तापज्वलनमु, पॅ पडकुंडॅडु विधंबु भाविपगदे ॥ 712 ॥

व. अनि घोषिचु घोषजनुलं गरुणिंचि, यप्पद्मलोचनुंडगु ननंतुंडनंत शक्तियुतुंडै, गहनंबु निंडिन दावदहनंबु पानंबु चेसिन, विजयगानंबु दशदिशल निगिडॅ ।

अध्यायमु—१८

व. अंत गृष्णुंडु गोगण ज्ञातिसमेतुंडै, मंदयानंबुन मंदकुं जनियॅ। इट्लु राम केशवुलु गोपाल वेषंबुल ग्रीडिचु समयंबुन ॥ 713 ॥

गो-गोप-गोपी जनों को दावानल का घेर लेना

[म.] "वह देखो दावाग्नि [पास] आ गई; धुआँ, धुंधुरि और आग की भयंकर लपटें, जो रोकी नहीं जा सकती, चारो तरफ़ फैल गईं, हम सबको यह अनल ढाँप रही है। अब क्या किया जाय? तुम्ही हमारी रक्षा करो। हे पद्माक्ष ! तुम्हारे पद-पद्मों को छोड़कर हम अन्य कुछ भी नहीं जानते। हे कृष्ण ! हम तुम्हारे पैर पड़ते हैं। हमें बचाओ। हे महापराक्रमी ! झटपट इस दावानल को रोको। ७११ [कं.] हमें तुम्हारे चरणों का ही भरोसा है। तुम्हारे भक्तों पर आफ़त कैसे आ सकती है? अतः ऐसा विधान सोच निकालो जिससे यह उग्र महाताप का ज्वलन हम पर आक्रमण न करें।" ७१२ [व.] इस प्रकार दुहाई देनेवाले घोष-जनों पर दया करके उस पद्मलोचन-अनंत-शक्ति-युक्त कृष्ण ने जंगल भर में फैले हुए दावानल का पान किया (पी लिया)। उस अवसर पर दसों दिशाओं में विजय-गायन भर गया।

अध्याय—१८

[व.] अनंतर कृष्ण ने गोगण और बांधवों के साथ, मंद गमन से, घोष को प्रस्थान किया। इस प्रकार राम और केशव (बलराम और कृष्ण) के गोपालकों के वेश में क्रीडा करते समय। ७१३

ग्रीष्मर्तु वर्णनमु

सी. दिनमुलंतंतकु दीर्घंबु -लै तोचॅ दिननाथुडुत्तरदिश जरिगॅ
नाडु नाटिकि नॅंड नव्यमै घनमय्यॅ वॅच्चनि गाड्पुलु विसर जॊच्चॅ
मेदिनी रेणुवुल् मिट संकुलमय्यॅ नेरुलु गॊलकुलु निगिरि पोयॅ
बानीयशालल बधिकसंघमुनिल्चॅ जप्परंबुल भोगिचयमुडागॅ

आ. दरुलु लतलु गुसुम वळमुलतो वाडॅ
मिथुन कोटिकि रति मॆंडु दोचॅ
नखिलजंतु भीष्ममैन ग्रीष्ममु राक
गीलि यडवुलंदु गेलि सलिपॅ ॥ 714 ॥

आ. वाडि रुचुलु गलुगुवानि वेडिमि ग्रीष्म
कालमंदु जगमु गलय बडियॅ
ब्रह्म जनुलकॊऱकु ब्रह्मांडघटमुन
नुष्णरसमु वॅच्चि युनिचॅ ननग ॥ 715 ॥

व. इट्लाभीलंबैन निदाघकालंबु वर्तिप, बृंदावनंबु रामगोविंद मंदिरंबैन कतंबुन, निदाघकाल लक्षणंबुलं बासि, निरंतर गिरिनिपतित निर्झरा-शीकरपरंपराभासित पल्लवित कुसुमित तरु लतंबय्युनु, दरुलता

ग्रीष्मर्तु का वर्णन

[सी.] दिन क्रमशः दीर्घ होते चले; दिनपति-सूर्य उत्तरदिशा-गामी हुआ। दिन पर दिन धूप कड़ी पड़ने लगी। गरम हवाएँ बहने लगीं। धूल के कण [उड़कर] आकाश में जम गये, नदियाँ और तालाब सूख चले। पौसरे पर बटोहियों की भीड़ लगने लगी। मंचों के नीचे सर्पकुल आ छिपा। [आ.] तरु-लताएँ कुसुमदलों के साथ मुरझा गईं, प्रेमी-प्रेमिकाओं में कामेच्छा बढ़ गई। ग्रीष्म के आने पर, जो समस्त जंतुओं के लिए भयंकर था, जंगलों में दावाग्नि [खुलकर] खेलने लगी। ७१४ [आ.] तेज किरणवाले (सूर्य) की गरमी ग्रीष्म काल में सारे जग में व्याप्त हुई मानों ब्रह्मा ने मनुष्यों के लिए ब्रह्मांड रूपी घड़े में उष्ण जल भरकर रख दिया हो। ७१५ [व.] इस प्रकार जब निदाघकाल (गरमी का मौसम) चल रहा था, राम (बलराम) और गोविन्द (कृष्ण) का आवास स्थान होने के कारण वृन्दावन में ग्रीष्म ऋतु के लक्षण दिखाई नहीं दिये। वहाँ पर पहाड़ों पर से निरंतर गिरनेवाले झरनों के जलकणों से तरु-लताएँ पल्लवित और कुसुमित रहतीं; तरुलताओं के पुष्प सौरभ से पवन मृदुल (मंद) हो जाता था। सरोवरों और गम्भीर नदी-ह्रदों में

कुसुमपरिमळमिळित मृदुलपवनंबय्युनु, पवनचलित कमल कल्हारसरोवर महागभीर नदीह्लदंबय्युनु, नदीह्लद कल्लोल कंकण प्रभूतपंकंबय्युनु, बंकसंजनित हरितायमान तृणनिकुंजंबय्युनु, जन मनोरंजनंबैन वसंतकाल लक्षणंबुलु गलिगि, ललित मृग पक्षि शोभितंबै, यॊप्पुचुंडॆ। मरियु नंदु ॥716॥

कं. पिकमुल कोलाहलमुनु
शुकसंघमु कलकलंबु सुभग मयूर
प्रकरमु केकारव मळि
निकरमु रॊदयुनु जॆलंगॆ नॆरि नय्यडविन् ॥717॥

कं. आतत यमुनासरसी, जात तरंगाभिषिक्त जलरुह गंधो-
पेतानिलमडचॆं निदा, -घातत दावाग्नि पीड नव्वनमलरन् ॥ 718 ॥

व. इट्लामनि कंदुवतॆरंगु गलिग, सुंदरंबैन बृंदावनंबुनकु बलकृष्णुलु गोवुल रॊप्पिकॊनि चनि गोवुलं दारुनु नॊंडॊरुलतो नगुचु, वॆगडुचु, जॆलंगुचु, दलंगुचु, जिरजिरं दिरुगुचु, दरुलसंदुल नुरुकुचु, दागुडु-मूतलाडुचु, गीतंबुलु बाडुचु, वेणुनादंबुलु घटियिंपुचु, नटियिंपुचु, गतुलु दप्पिनक्रिय नॊरगुचु गुप्पलुरुकुचु, जप्पट्लु वॆट्टुचु, गंदुकंबुल दट्टुचु, -नुप्परंबॆगसि, दुर्दुरंबुल चंदंबुन दाटुचु, नामलक बिल्वादि फलंबुलं मीटुचु, गुट विटपंबुलु गदल्चुचु, मृगंबुल नदल्चुचु बॆरल रेपुचु, मधुमक्षिकल जोपुचु, देनियलु

खिले कमल और कल्हार पवन के झोंकों से झूलते रहते; सरिता-सरोवर चंचल लहरों और ऊपर उठनेवाली छीटों से कल्लोलित रहते। जलप्रदेशों में कीचड़ जमा रहता और उसमें उगे तृणजाल से सारी जगह हरी-भरी दिखाई देती। लोगों का मनोरंजन करनेवाली वसंतऋतु के लक्षणों और पशु-पक्षियों से वह बृंदावन हमेशा शोभायमान रहता था। और भी ७१६ [कं.] उस वन मे शुक-संघ का कलरव, पिकों का कोलाहल, सुंदर मयूरवृंद का केकारव, और भृंगावली का झंकार सदा मचा रहता। ७१७ [क.] विशाल यमुना नदी की तरंगों से भी भीगा और कमलों की गंध से सुवासित पवन उस बृंदावन में व्याप्त निदाघ-पीड़ा को दबाये रखता था। ७१८ [व.] इस प्रकार वसतऋतु के लक्षणों के साथ सुंदर लगनेवाले उस बृंदावन में बलराम और कृष्ण अन्य गोपों के साथ अपनी गायें चराने के लिए गये। वे लोग आपस में एक-दूसरे की हँसी उड़ाते; गाली-गलौज करते; चक्राकार में दौड़ते; वृक्षों के बीच में से घुस जाते; आँखमिचौनी खेलते; गीत गाते; बाँसुरी बजाकर नृत्य करते; बेहोशों की तरह गिरते; तालियाँ बजाते हुए उछलते; गेंद फेंकते; मेढकों के समान फाँदते; आँवला, बेला आदि जगली फल तोड़ते; पेड़-पौधों को

द्रावुचु, सॊम्मसिलं बोवुचु, गुरु शिष्य कल्पनंबुलं बनुलु सेयुचु, गाकपक्षधरुलै, मुष्टियुद्धबुल डायुचु बन्निदंबुलु चरचुचु, बुलुगुल भंगि नरचुचु, बहुरूपंबुल बन्नुचु, नॆगिरि तन्नुचु, सेव्यसेवक मित्रामित्र भावंबुलु वहिंचुचु, नुत्सहिंचुचु, मरियु ननेकविधंबुल ग्रीडिंचिरि। अंदु ॥ 719 ॥

कं. मा पालिकि बलकृष्णुलु
भूपालकुलंचु नॆगिरि बॊव्वलिडुचु ना
गोपालुरु मोतुरु प्रम-
दापादकुलगुचु पल्लिकांदोळिकलन् ॥ 720 ॥

कं. गोपकुलंदरु नाडुचु, दीपिंपग राम वासुदेवुल वॆनुकन्
वैपडि पाठक गायक, रूपंबुल बॊगडुदुरु निरूढात्मकुलै ॥ 721 ॥

कं. प्रीतिन् गोपकुलंदरु, गीतंबुलु वाड दरुल क्रिंदनु नगुचुन्
जेतुलु त्रिप्पुचु वॆड वॆड, बातरलाडुनु यशोद पापंडडविन् ॥ 722 ॥

म. जलजाक्षुंडुनु रामुडुन् नटनमुल् सल्पंग गोपालमू-
र्तलतो वारल गॊल्चु निर्जरुलु संतोषिंचि वेणुस्वनं-
बुलु गाविंचुचु गॊम्मुलूदुचु शिरंबुल् द्रिप्पुचुन् बाडुचुन्
वलनॊप्पन् विनुतिंचिरप्पुडु नटुल् वर्णिंचु चंदंबुनन् ॥ 723 ॥

व. इट्लु रामकृष्णुलु नदनदी तीरंबुल, गॊलंकुल समीपंबुल, गिरुल चेरुवल,

---

हिलाते; जानवरों को खदेड़ते; मधुमक्खियों को भगाकर छत्तों का शहद पी लेते; गुरु-शिष्य संबंध की कल्पना करके काम करते; ज़ुल्फ़ रखे हुए बालक आपस में मुष्टियुद्ध करते; होड़ लगाते; पक्षियों की बोलियों का अनुकरण करते; तरह-तरह के वेष बनाते; उछल-उछलकर लात मारते; मालिक-नौकर, और मित्र-शत्रु के बनावटी भाव दिखाकर अनेक प्रकार के खेल-खेलकर मनोरंजन कर लेते थे। ७१९ [कं.] "बलराम और कृष्ण हमारे राजा हैं" —यह कहकर गोपबालक लताओं से पालकी बनाते और दोनों भाइयों को उसमें बिठाकर आनंद और उमंग के बोल बोलते हुए, हर्ष से चिल्लाते हुए उन्हें ढोकर ले जाते। ७२० [कं.] कृष्ण-बलराम के पीछे-पीछे गोपवृंद, पाठक (वंदी) और गायक के रूप में उनकी प्रशंसा के गीत गाते और नाचते हुए चलते थे। ७२१ [कं.] गोपबालक जब प्रीति के गीत गाते रहते तो वह यशोदानंदन (कृष्ण) वृक्ष के नीचे हस्तचालन करते और हँसते हुए नृत्य करने लगता था। ७२२ [म.] कमलनयन (कृष्ण) और बलराम के नृत्य करते समय गोपों के रूप में उनकी आराधना करने आये हुए देवता लोग हर्ष से वेणु और सींग बजाते, सिर हिला-हिलाकर आनंद प्रकट करते और स्तोत्र गाते थे। ७२३ [व.] इस प्रकार जब बलराम और कृष्ण [गोपों के संग] नदी-तटों पर,

सॆलयेरुल चॆंतल, मडुवुल कडल, ब्रौदरु नीडल, बसिमिगल कसवु जीपंबुल
बसुलनु मेपुचुंडं बलंबुडनु रक्कसुंडुक्कु मिगिलि, गोपालरूपंबुन वच्चि,
वारल हिस सेयं दलंचुचुंड, नय्यखिल दर्शनुंडगु सुदर्शनधरुंडॆंड्रिगियु
नॆरुगनि तॆरंगुन ॥ 724 ॥

बलभद्रुंडु प्रलंबासुरुनि वधियुट

कं. आ रामुनि सहजन्मुडु
रा रम्मनि वानि जीरि राकन् बोकन्
गारामु चेसि मॆल्लन
बोरामि यॊनर्चॆं विदप बौरिगॊनु कोर्कुन् ॥ 725 ॥

व. इट्लु प्रलंबुनितो जॆलिमि सेयुचु, गृष्णुंडु गोपालकुलकु
निट्लनियॆ ॥ 726 ॥

आ. मनकु ब्रोद्दुवोडु मन मिदरमु रॆंडु, गमुलवारमगुचु गंदुकमुल
शिलल गुरुलु चेसि चेरि क्रीडितमु, रंडु वलयु जयपराजयमुलु ॥ 727 ॥

व. अनि यिट्लु पलिकि, तानुनु बलभद्रुंडुनु, बॆन्नवद्दुलै, यितर वल्लवुलॆल्ल
नुर्विदचुकॊनि चिरुंद्दुलै वच्चिन समर्पंचुन विभाजिचिकॊनि, रॆंडु
गमुलवारै, मार्गंबुलंदु दृण वारु शिला कल्पितंबगु गुरुलॊड्डि, कंदुक

नालों के समीप, पहाड़ों के अंचल में, झरनों के किनारे और ताल-तलैयों के पास, और तृण-संकुल झाड़ी-निकुंजों में अपनी गायें चरा रहे थे तब प्रलंब नामक राक्षस प्रबल होकर चरवाहे के रूप में आकर उनमें मिल गया। अखिल-दर्शन, सुदर्शनधर (कृष्ण) यह जान गया कि वह राक्षस उन्हें बाधा पहुँचाने आया है, फिर भी अनजान की तरह। ७२४

बलराम का प्रलंबासुर को मार डालना

[कं.] राम का भाई कृष्ण ने उसे अपने पास बुला लिया। उसने मन में कपट रचकर पहले तो बड़ा प्रेम और आदर दिखाया, और बाद को उसका वध करना चाहा। ७२५ [व.] प्रलंब से दोस्ती करके कृष्ण ने गोपालकों से यों कहा : ७२६ [आ.] चलो मित्रो ! कालयापन (समय गुजारने) के लिए हम लोग खेल खेल लेंगे; दो दलों में बँट जायेंगे, और [दूर की] शिलाओं को निशाना बनाकर उसे गेंद से मार हार-जीत जान लेंगे। ७२७ [व.] यों कहकर आप और बलराम दो दलपति बने; उन दोनों ने अपने-अपने दल के खिलाड़ियों को गोपों में से चुन लिया। इस तरह सब लोग दो झुंडों में जमा हो गये। उन लोगों ने रास्ते पर के पत्थरों, लट्ठों और

शिलादि प्रक्षेपणंबुल, लक्ष्यंबुलु दाक वैचि, जय-पराजय निर्णयंबुलु गैकोनि, वाह्य वाहक लक्षणंबुल जेतलनु निर्जितुलु चेतुल वहिंचि, क्रीडिचुचु, बलरामुनिकि वानि चंदंबु रहस्यंबुन नेर्द्रिंगिचि, पसुल वंल्चुचु, भांडीरकंबनु वटंबु चेरिरि। आ क्रीडयंदु बिदप गृष्णुनि श्रीनामनामधेयुंडन गोपकुडु बहिंचे। भद्रसेनुंडु वृषभुनेक्किचुकोनिये। बलभद्रुंडु प्रलंबु नारोहिंचे। अपुडु ॥ 728 ॥

म. वनजाक्षुन् बलिमिन् बलाढ्युडु तृणावर्तुंडु मुन् मिटिकिन्
गोनिपो जालक चिक्कि वाडतनि नाकुन् मोवरादंचु ना
दनुजारि गोनिपो दलंपक वडिन् दैत्येशुडय्याटलो
गोनिपोयेन् गुरि दाटि रामु नखिलक्रूरक्षयोद्दामुनिन् ॥ 729 ॥

व. इट्लु क्रीडाकल्पित वाहनुंडयिन प्रलंबुंडु बलभद्रुनि गोनिपोवुचु ॥ 730 ॥

म. गुरु शैलेंद्रसमान भारुडगु ना गोपालकुन् मोवले-
क रयोद्रेकमु मानि दैत्युडु नराकारंबु सालिचि भी-
कर दैत्याकृति नेगं हेम कटकाकल्पंबुतो रामुतो
मुरुवोप्पंग दटिल्लतेंदुयुत जीमूतंबु चंदंबुनन् ॥ 731 ॥

वृक्षों को लक्ष्य बनाकर उन्हें गेंद और कंकड़ों से भेदकर जय-पराजय का निर्णय करते हुए यह शर्त लगा ली कि जीते हुए लोगों को हारे हुए अपने हाथों में ढोकर निर्णीत सीमा तक ले जायेंगे। इस प्रकार खेलते हुए वे लोग अपने ढोरों के साथ भांडीरक नामक बरगद के नीचे पहुँचे। कृष्ण ने बलराम को रहस्य में उस राक्षस का हुलिया बता दिया। उस क्रीड़ा में कृष्ण को श्रीनाम नामक ग्वाले ने, वृषभ को भद्रसेन ने और बलराम को प्रलंब ने वहन किया (ढो लिया)। तब ७२८ [म.] [उस प्रलंब ने सोचा कि] "पहले महाबली तृणावर्त कृष्ण को आसमान में उड़ा ले जाने के यत्न में, अशक्त हो विनष्ट हो चुका, अत: मैं उसे (कृष्ण को) ढो न सकूंगा।" इसलिए [उस खेल में हारने के कारण] वह राक्षस बलराम को, जो क्रूरों का प्रबल हंतक था, ढोकर तेज़ी के साथ सीमा लाँघ बाहर ले चला। ७२९ [व.] इस तरह खल में वाहन बना प्रलंब बलभद्र को ढोकर ले जाते समय। ७३० [म.] बहुत बड़े पर्वत के समान भारी उस गोपालक (बलराम) को वहन करने में अशक्त होकर उस दैत्य ने [गमन] वेग छोड़ नराकार त्याग दिया और भयंकर राक्षस का निज आकार धारण कर लिया; हेममय (सोने के) आभूषणों से चमकनेवाले अपने बदन पर बलराम को बिठाकर उड़ जानेवाला वह राक्षस तड़कनेवाली विद्युल्लता और चंद्रमा समेत उड़नेवाले मेघमंडल के समान

उ. मोसमु लेक वानि पॅनुमूपुन नुंडुचु ना हलायुधुं-
डा समयंबुनं गनियॅ हाटकरत्न किरीट कुंडलो-
द्भासित मस्तकुन् भ्रुकुटि भासुर दारुणनेत्रु नुग्रदं-
ष्ट्रा सहितुं ब्रलंबु नुरुशौर्यविलंबु मदावलंबुनिन् ॥ 732 ॥

व. कनि नक्तंचरुंडनि यिचुक शंकिचि वॅरवक ॥ 733 ॥

कं. कडुवडि दनु बॅनगॊनि
वडि जनियॆडु दनुजु शिरमु व्रय्य हलधरुं-
डडरि पटु चटुलतरमगु
पिडिकिट वॅस विसरि पॊडिचॆ विरुसुन नलुकन् ॥ 734 ॥

कं. हलधरु बलु पिडिकिटि हति
दल पगिलिन रुधिरजलमु तनुविवरमुलं
दॊलक मॊरयिडुचु दनुजुडु
बलरिपु पविनिहत नगमु पगिदि वडियॆन् ॥ 735 ॥

मत्त. मेलु मेलु गदय्य ! रामुडु मेटि रक्कसु नॊक्कनिन्
नेल गूलिचॆ नॊक्कपोटुन नेडु विस्मयमंचु गो-
पालकुल् कनि चच्चि वच्चिन भ्रात गन्न विधंबुनन्
जाल दीवॆनलिच्चि रामुनि संस्तुतिंचिरि वेडुकन् ॥ 736 ॥

भासित हुआ । ७३१ [उ.] प्रत्यक्ष रूप में [दिखाई दिये] उस राक्षस के वृहत् पृष्ठ पर बैठकर हलायुध (बलराम) ने उस प्रलब को देखा जिसका मस्तक सुवर्ण-रत्न-मय किरीट से शोभित था; जो भयंकर भौंहों, दारुण नेत्रों और उग्र दाढों से विकृत दीख रहा था, और जो शौर्य और महामद का अवलंब (आश्रयस्थान) बना हुआ था । ७३२ [व.] बलराम उसे राक्षस जान ज़रा हिचका, किंतु डरा नहीं । ७३३ [कं.] बलराम ने अपने को लेकर तेज़ी से उड़नेवाले उस दनुज के सिर पर बलिष्ठ मुट्ठी से ऐसे घूंसे मारे कि उसका सिर फूट गया । ७३४ [कं.] बलराम के जमाये मुक्कों से जब उसका सिर फट गया तो नाक, कान, मुँह आदि शरीर के छेदों से रक्त बह निकला, और वह चीख मारकर ऐसा गिरा जैसा इंद्र के वज्राघात से पर्वत गिर पड़ा था । ७३५ [मत्त.] "भला हुआ ! भला हुआ ! अकेले राम ने एक ही एक घूंसे में बलिष्ठ राक्षस को धराशायी कर दिया; वाह ?" —ऐसा कहकर गोपों ने अपना विस्मय प्रकट किया । [बलराम को देख] उन्हें ऐसा हर्ष हुआ जैसा मरे हुए भाई को पुनः जीवित पाने से होता है । उन लोगों ने उसे भूरि-भूरि आशिषें दे उमंग से बड़ाई गायी । ७३६ [कं.] बलवान प्रलब जब मुक्कों से इस

कं. बलवंतुडगु प्रलंबुडु
बलु मुष्टिन् निहतुडैन ब्रतिकिति मनुचुन्
बलसूदनादि दिविजुलु
वलुपं गुसुममुलवान बरगिचिरौगिन् ॥ 737 ॥

अध्यायमु—१९

श्रीकृष्णुंडु दावाग्नि म्रिगि गोपक गोसंघमुनु गापाडुट

व. इट्लु गोपकुलु क्रीडिप, गोवुलंतंत गांतारंबुन वितकसवुलु मेसवुचु, मेतवडि नोंडडविकि दूरंबु चनि, यंदु ववदहन पवन संस्पर्शंबु सैरिपक, कंपिचि दप्पि नोप्पु सेडि घोषिचिन ॥ 738 ॥

शा. आ गोपालकुलंदरुं बसुलकुय्यालिचि कौमार के-
ळी गाढत्वमु मानि गोखुर रदाळिच्छिन्न घासंबुतो
बागैयुन्न पथंपुनं जनि दवापन्नंबु गाकुंड वे
,वेगन् गोगणमुन् मरलिचरटवी वीथिन् जवंबोप्पगन् ॥ 739 ॥

कं. जलधर गभीर रवमुन
नळिनदळाक्षुंडु दम्मु नामांकमुलन्

प्रकार निहत हुआ तो इंद्र आदि देवताओं को लगा कि उनकी जान में जान आ गयी है। उन लोगों ने बलराम पर कुसुम-वृष्टि कर दीं। ७३७

अध्याय—१९

श्रीकृष्ण का दावानल निगल गो-गोप-संघ को बचाना

[व.] इस प्रकार जब गोपकवृंद क्रीडा में लगा हुआ था, तो उनके ढोर अच्छा चारा चरते-चरते दूर पर के एक गहन वन में पहुँचे। वहाँ पर दावाग्नि से निकली गरम हवाएँ बहने लगीं, उनके स्पर्श से गायें काँप उठीं, आँच असह्य हुई तो वे भीति से रँभाने लगीं। ७३८ [शा.] उनकी पुकार सुन अहीर-बालकों ने अपने-अपने खेल बंद किये और [गायों की खोज में] उस रास्ते से चल पड़े जो गायों के खुरों के आघात से और उनके दाँतों से कटे घास के तिनकों से चलने योग्य (सुपथ) बन गया था। तेजी से चलकर वे लोग अपने गोगण को दावाग्नि का शिकार होने से बचाकर जंगल की राह वापस हाँक लाये। ७३९ [कं.] हे राजन्! जब नलिनदलाक्ष (कमललोचन— कृष्ण) ने मेघ-गंभीर-स्वर में उनके नाम ले-लेकर पुकारा तो सुनकर वे गायें जवाब में प्रतिघोष करते हुए

बिलिचिन विनि प्रतिघोषण-
मुलु चेयुचु पलुलु दिरिगँ मुवमुन नधिपा ! ॥ 740 ॥

व. अंत नव्वनंबुन दैवयोगंबुन गार्चिच्चु पुट्टि, बिट्टु विसरेंडि करुवलि वलन मिन्नु मुट्ट मिट्टि पडि गट्टु चॅट्टनक दरिकॉनि पट्टि कालुचु जुट्टुकॉनि परवंगनि, पल्लटिल्लिन युल्लंबुल वल्लपुलॅल्ल दल्लडिल्लि, सबलुंडैन हरिकि मृत्युभीतुल रीति जवक स्रोक्कि यिट्लनिरि ॥ 741 ॥

कं. अभ्रंकष धूमायित, विभ्रांत महास्फुलिंग विसरोग्र शिखा-
विभ्रष्ट दग्धलोका, -दभ्रंबै वच्चॅं जूडु दवशिखि कृष्णा ! ॥ 742 ॥

शा. नीचुट्टालकु नापदल् गलुगुने नेमॅल्ल नीवार म-
न्याचारंबुलॅरुंगमीशुडवु माकाभील दावाग्नि नें-
डे चंदंबुन निक दाटुवुमु मम्मीक्षिचि रक्षिप व-
न्ना ! चंद्राभ ! विपन्नुलन् शिखिवितानच्छन्नुलन् खिन्नुलन् ॥ 743 ॥

व. अनि मरियुनु ॥ 744 ॥

उ. बंधुजनंबुचेत निटु प्रार्थितुडै हरि विश्वरूपु डो-
बंधुवुलार ! मी नयनपंकजमुल् मुकुळिपुडग्नि नी
संधि नडंतुने ननिन जक्कन वारलु नट्ल सेयुडुन्
बंधुर दावपावकमु वट्टि मुखंबुन द्रावॅ लीलतोन् ॥ 745 ॥

संतोष से वापस दौड़ आईं। ७४० [व.] उस अवसर पर, उस वन में दैवयोग से दावाग्नि उत्पन्न हुई, जो तेज पवन के सहारे आकाश तक फैल गई, पेड़-पौधे, कगार, कछार सारी जगह उसकी लपेट में आ गयी; घेरकर आगे बढ़ती हुई उस आग को देखकर अहीरों का दिल दहल उठा, मृत्युभय से आक्रांत हो वे लोग बिलबिलाते हुए बलवान हरि (कृष्ण) के पैरों पड़कर यों विनती करने लगे : ७४१ [कं.] "हे कृष्ण ! देखो, वह दावाग्नि की लपटें कैसी आ रही हैं ! उसका धुआँ सारे आकाश में छा गया है, भयंकर स्फुलिंग उड़-उड़कर चारों दिशाओं को दहकाते चले आ रहे हैं। ७४२ [शा.] हे भाई ! तुम्हारे बन्धुजन कहीं आपदा में पड़ सकते हैं ? हम सभी तुम्हारे ही जन है। तुम हमारे स्वामी हो; हम अन्यभाव नहीं जानते। इस भयानक दाव से आज हम कैसे बच सकते है ? हमारी दशा देख हमारी रक्षा करो। हे चंद्र-समान शोभा वाले कृष्ण ! हम विपन्न (विपत्ति में पड़े हुए) है; अग्निमय वितान (मंडप) से ढके हुए हैं। खिन्न हैं।" ७४३ [व.] और फिर ७४४ [उ.] इस प्रकार जब बन्धुजनों ने प्रार्थना की तो उस विश्वरूप हरि ने उनसे

व. इट्लु निज योगवैभवंबुन दावदहनंबु पानंबु चेसि, निमिषमात्रंबुन गोपकुल नंदरनु भांडीरक वटसमीपंबुनकुं दॆच्चि विडिचिन, वारुनु विकसित नयनकमलुलै, कृष्णुनि योगमाया प्रभावंबुन नॆरगलिचिच्चु म्रग्गॆननि, यग्गिचुचु दम मनंबुलंदु ॥ 746 ॥

कं. कार्चिच्चार्चु पटुत्वमु, नेर्चुनॆ नरुडीकडु शौरि नेडिदॆ कार्चि-
च्चार्चि मनल रक्षिपग, नेर्चॆ नितडजुडो हरियो निटलाक्षुंडो ॥ 747 ॥

व. अनि वितर्किचिरि। अंत गृष्णुंडु सायाह्नसमयंबुन रामसहितुंडै वंशनाळंबु पूरिंचुचु, गोप जेगीयमानुंडै, गोष्ठंबु ब्रवेशिचॆ। अप्पुडु ॥ 748 ॥

कं. कमलाक्षु नॊद्द नुंडनि
निमिषमु युगशतमु गाग नॆगडिन गोप
प्रमदलु संभ्रममुन ना
कमलाक्षुनि जूचि मुदमु गनिरि महीशा ! ॥ 749 ॥

व. आ समयंबुन गोपकुलिडुलकडनुन्न वृद्ध कांताजनंबुलकु रामकृष्णुल चित्र चरित्रंबुलु चॆप्पिन विनि, वारु वारिनि गार्यार्थुलै वच्चिन वियच्चर-वरुलनि तलंचिरि। अंत ॥ 750 ॥

कहा— "हे बंधुओ ! तुम लोग अपने नेत्र-कमलों को मूंद लो, इतने में मैं यह आग बुझा दूंगा।" जब गोपों ने वैसा ही किया तो कृष्ण ने लीला से दावानल को पकड़कर पी लिया। ७४५ [व.] यों अपनी योग-महिमा से [कृष्ण ने] दावाग्नि का पान कर एक निमेषमात्र में सभी गोपों को भांडीरक वट के समीप लाकर छोड़ दिया। इस पर गोपों के मुख-कमल [हर्ष से] विकसित हुए; कृष्ण ने अपनी योगमाया के प्रभाव से दावाग्नि को जो मिटा दिया उसकी प्रशंसा करते हुए अपने मन में यों [तर्क किया।] ७४६ [कं] "जंगल की आग बुझा देने की सामर्थ्य एक मनुष्य मात्र कैसे प्राप्त कर सकता है ? [परंतु] कृष्ण आज वह दाव बुझा कर हमारी रक्षा कर सका। यह [बालक] संभवत: ब्रह्म होगा या विष्णु होगा अथवा शिव होगा !" ७४७ [व.] अनंतर कृष्ण ने संध्या समय बलराम-सहित चलकर, बाँसुरी बजाते हुए, गोपों के जय-जयकारों के मध्य गोष्ठ (व्रज) में प्रवेश किया तब ··· ७४८ [कं.] हे भूपाल ! वे गोप-प्रमदाएँ (-युवतियाँ), जो कृष्ण के समीप न रहने के कारण निमेष को सौ युगों के समान अनुभव कर रही थीं, कमलाक्ष (कृष्ण) को संभ्रम के साथ देखकर हर्षित हुईं। ७४९ [व.] उन अहीरों ने घर-घर की वृद्ध कांताओं (स्त्रियों) को राम-कृष्ण के विचित्र चरित्र कह सुनाये; सुनकर उन्होंने सोचा कि ये राम और कृष्ण किसी कार्य के निमित्त [भूतल पर] आये हुए देवता होंगे। होते-होते ··· ७५०

अध्यायमु—२०

वर्षर्तु वर्णनमु

सी. पूर्ववायुवुलु प्रभूतंबुलै वीचॅ वडमट निंद्रचापंबु दोचॅ
परिवेषयुक्तमै भानुमंडलमोप्पॅ मॅरुपुलुत्तर दिश मॅरय वॊडगॅ
दक्षिणगामुलै तनरॅ मेघंबुलु जलचरानीकंबु संतसिंचॅ
जातकंबुल पिपासलु कडपल जेरॅ गांतारवह्नुल गर्व मडगॅ

आ. निज कराळियलन नीरजबंधुंडु
दोलिलि पुच्चुकोन्न तोयमॅल्ल
मरल निच्चुचुंडॅ महि कर्षकानंद-
कंबमैन वान कंबुवंबु ॥ 751 ॥

कं. वर्षाकाल भुजंगुडु, हर्षमुतो निडिन नव नखांकमुलनि पु-
टकॉबिप भूमि सति पं, कर्षक हल रेखलमरॅ गहनांतमुलन् ॥ 752 ॥

कं. चॅलुवुडु प्रावृट्कालुडु
पोलसिन बुलकिंचु भूमि पुलकमुलनगा
मोलचि तललॅत्ति निक्कुचु
सललितगति जालुवारॅ सस्यमु लधिपा ! ॥ 753 ॥

व. मरियुं, जटुल पवनचलितंबु लै पन्नि, मिन्नु दन्नि, लॅक्कलकु मिक्किलियै,

---

अध्याय—२०

वर्षाऋतु का वर्णन

[सी.] पूरब की हवा जोरों से चलने लगी; पश्चिम में इंद्रधनुष दिखाई दिया। सूरज परिवेष (घेरा) के साथ निकला। उत्तर दिशा में बिजलियाँ चमकने लगीं। मेघ दक्षिण की तरफ़ रवाना हुए। जलचर प्राणी स्वस्थ हुए। चातकों की प्यास बुझ गई। जंगली आग का गर्व (जोर) चूर हुआ। [आ.] अपनी किरणों द्वारा सूर्य ने पहले जो जल संग्रहीत किया वह सब पावस में वापस देने लगा जो खेतों और कर्षकों के लिए आनंददायक है। ७५१ [कं.] किसानों के हलों द्वारा बनी रेखाएँ खेतों में ऐसी दिखाई दीं मानों वर्षाकाल रूपी विट पुरुष ने अपनी प्रेमिका वसुंधरा के शरीर पर हर्ष के साथ नखक्षत बना दिये हों। ७५२ [कं.] हे राजन् ! खेतों में उगे धान के अंकुर ऐंठकर सिर उठाये ऐसे शोभित हुए मानों पावस-प्रिय के आगमन से प्रफुल्लित धरा-प्रेयसी के पुलकांकुर हों। ७५३ [व.] चंचल-पवन-चालित, आकाश तक तने हुए, अनगिनत पंखवाले नीले

रुवकलुगल नीलगिरुल सिरुल मीरि, कारुकोनि तॆऽपि पडक, निबिडंबुलै, शिशिरकिरण तरणिमंडलंबुल चॊप्पु दप्पिचि, विप्पु गलिगि, चदलु गप्पिन नील मेघंबुलुनु: मेघविमुक्तंबुलै जलदसमय विटुंडु सरस गति धरणिसति युरम्मुन दर्पिचि, नेर्पुन समर्पिचु कर्पूर खंडंबुल वड्वुन बुड्मि बडु करकलुनु, गरकानुगतंबुलै यसित भोगिभोगंबुल बागुन, नीलमणि मालिकाविशेषंबुल विधंबुन नॆडपडक पडु सलिल धारलुनु, धाराधर विगळित विमल सलिलंबुलं दोगु मदजलाभिषिक्त मातंगंबुल सॊबगुन नुंडु कॊंडलुनु, गॊंडल तुदलनुंडि गंडशैलंबुलपै बडि विकीर्यमाणंबुलगु गिरिनिर्झरंबुल शीकरंबुलुनु, शीकरपरंपरल जॊड्गुलु मडुगुलु गॊन बिदपिद नगुचु जिदुकु चिदुकु मनु रॊंपुलुनु, रॊंपुलु ग्रॊच्चि क्रच्चर नुच्चलितंबुलै पड्चु वड्दलुनु, वड्दलवलन मॆंदलि कदलि पार्ॆडि येरुलुनु, नेरुलवॆंट गरुलु द्रिप्पुचु गमुलु गॊनि क्रॊन्नीटि कॆदुरुनडचु मीनंबुलुनु, मीननयनल मेनुल मॆरुंगु सॊंपु पॆंपु सैरिपक कंपिचि, सुरिगि तिरिगि चनियॆडि करणि मेघमध्यंबुलो बॊलसि, मलसि, निलुवक मरलिचनु

पर्वतों की शोभा मात करनेवाले, बिना [ज़रा भी] छँटे गाढ़े जमकर, शीतल किरण वाले सूरज के मंडल को ढाँपकर, अंतरिक्ष में छाये हुए नीले बादलों को लेकर वर्षाऋतु का आगमन हुआ। उन मेघों से छूटकर धरती पर गिरे ओले ऐसे लगते थे मानों वे वर्षाऋतु रूपी कामुक प्रेमी (लंपट) द्वारा सरस-चतुरता से अपनी धरणी-प्रिया के वक्ष पर समर्पित कर्पूर-खंड हों उन ओलों के साथ-साथ जलधाराएँ ताबड़तोड़ गिरकर काले नागों और नीलमणि की मालाओं के समान दिख जाती थीं। वर्षा की सलिलधाराओं में डूबकर पहाड़ मदजलाभिषिक्त मातंगों (मदजल में भीगे हाथियों) के समान सुंदर लगते थे। गिरि-शिखरों पर से चट्टानों पर गिरकर बँट जानेवाले झरनों से फुहारे छूटते थे। लगातार पड़नेवाली बूँदों में घुलकर, नरम बना हुआ पिचपिचा कीचड़ सर्वत्र छिटक गया। कीचड़ को कुरेद कर उसे ऊपर उछालते हुए जल के प्रवाह तेज़ी से बह निकले। बाढ़ के आने से नदी-नाले फैलकर बह चले; नदियों की राह मीन अपने पंख हिलाते हुए, जत्था बाँध, नये पानी में उलटे चलने लगीं। चपला (बिजली) बादलों के बीच फैलकर, घूम-घूमकर चंचल हो ऐसी चमकने लगी मानों वह मीनाक्षियों (स्त्रियों) की शारीरिक शोभा देख असहन हो, काँप उठी और घूम-फिरकर वापस मुड़ गई हो। मेघ [रह-रहकर] गर्जन करने लगे मानों उसके द्वारा ब्रह्मदेव लोगों को घोषित कर कह रहे हों कि रमणियाँ (स्त्रियाँ) पुरुषों में अनुरक्त होकर स्थिर नहीं रहतीं। मेघ-गर्जनों के कारण से घबड़ाये बिना मोर गर्दन घुमाते हुए, पंख पूरी तरह फैलाकर, कूक-कूक कर

ग्रीष्मंबु जनुंगुलनु, मॆरुंगुल पगिदि मगुवलु पुरुषुलं दगिलि निलुवरनि जनुल कॆरुंग नलुव मीरयिडिन तॆरंगुन मॆरयु नुरुमुलनु, नुरुमुलकुलिकि पडक किकुरुपीडुचुचु बिचॆंबुलु कीचॆंबुलु सेयक, विप्पि दॆप्परंबुग रॊप्पुचु नर्तनंबुलु सेयु मयूरंबुलुनु, मयूरघोषंबुलु भीषणंबुलै चॆवुलकु सोक ननूनंबु-लैन मानंबुल नासलुचॆडि,, यॊंडोरुलकुं ग्रिदुपडि क्रंदुकॊनु विरहिजनुलुनु, जनुलकु रेपु मापु निरूपिंप राक मालतीकुसुमविसर विकसन विदितावसानंबुलगु दुर्दिनंबुलुनु, दिनावसान समयंबुन मिनुकु मिनुकु मनि मॆरयुचुं दिरुगु खद्योतंबुलुनु, खद्योत संदर्शनंबु गोरुचु नुडुगक विडुवक कुरियु जडि वडि, वलिगीनि वडंकुचु नशनयत्नंबुल वर्जिंचि, खर्जूर जंबूफल भक्षणंबुल देहसंरक्षणंबुलाचरिंचु वनचरुलुनु, वनचरानंदकारिणुलयि वाररमणुल रुचि ननवरत भुजगसमेतलगु केतकुलुनु, गेतकी कदंबयूथिका कुटज कुसुम परिमळ मिळितंबुलगु विपिनमार्गंबुलुनु, मार्गनिरोधंबुलगुचुं बॆरिगि रसिकंबुलै पसरुडालु

नाच रहे थे। कर्ण-कठोर मयूर-घोष (मोर की कूक) सुन जिन विरही जनों को प्रियागमन की आशा जाती रही, वे लोग एक-दूसरे से अपना अपमान और हीनता प्रकट कर विलाप करने लगे। आकाश सदा मेघों से ढके रहने के कारण सुबह-शाम का पता न लगता था, मालती-पुष्पों का खिलना देखकर ही लोग समझ सकते थे कि अब सूर्यास्त हो रहा है। संध्या होने पर चमक-चमक कर जुगनू सब जगह घूमने लगे। निरंतर (लगातार) होनेवाली वर्षा की झड़ी में फँसकर वनचर लोग, ठंड से ठिठुरते हुए, भोजन का यत्न छोड़, सूरज की चाह रखे, खजूर-जामुन आदि फल खाकर देह-संरक्षण करते थे। वनचरों को आनंद देते हुए केवड़े की झाड़ियाँ इस प्रकार भुजगों (साँपों) के संग निखरी दिखाई देती थीं जैसे वाररमणियाँ (वेश्याएँ) सदा भुजगों (विट-पुरुषों) के संग रहा करती हैं। विपिनमार्ग (जंगल के रास्ते) केतकी (केवड़ा), कदंब, जुही, और कुटज (कुरैया) की कुसुम-सुगंध से महकते रहते थे। मरकतमणि की कांति-किरणों के सदृश हरितवर्ण से प्रकाशमान, रसदार, तृणपुंजों के झुरमुट जहाँ-तहाँ मार्गों को रोके बढ़े हुए थे। हरी-हरी दूब खाकर छरहरे वदनों से झलकता हुआ गो-गण भारी खीरी (थन) के बोझ के कारण स्थिर खड़े होकर जुगाली करता रहता था। गो-समूह जैसा दुग्धपूर्ण हुआ है वैसा ही धरती जलपूर्ण हो मनोहर लगती थी। हर (शिवजी) का हाथ जिस प्रकार सारंग (हिरण, मृग) से शोभायमान रहता है, उसी प्रकार (वर्षारंभ) सारंगों (चातकों) से परिपूर्ण हो सुंदर दिखाई दिया। हरिशरासन (वज्रायुध) से सुरगिरि जैसा भीषण लगा वैसा ही वर्षारंभ कड़कनेवाली बिजलियों से

गलुगुचु हरिन्मणिपुंजंबुल भंगि रंजिलिल तोंगलिचुचु, जोंपंबुलु गोनिन कसवुलुनु, गसवुलु मेसवि भिसमिस तनुवुलु मेरय, वलुद पोदुगुल बरवुन गदलक निलिचि, नेमरमरनिडु धेनुवुलुनु गलिगि, धेनुव्रजंबु केवडि पय:कण मनोहरंबै, हरकरंबु भंगि परिपूर्ण सारंग भासुरंबै, सुरगिरि चेलुवुन हरिशरासन विभीषणंबै, विभीषण हृदयंबु पोलिकं ब्रकटित हरिशब्द वैभवंबै, भवपूजनंबु चंदंबुन निंद्रगोपादि विभवजनकंबै, जनकयागंबु भावि सीताप्रकरणालंकृतंबै, कृतयुगंबु सोंपुन बहु वर्षंबुनै वर्षागमंबु वच्चें। अंदु ॥ 754 ॥

कं. वाडक व्रालक तेवुलुल
गूडक तग नलल गेरलुकोनि नवकमुलै
चडग भद्रमुलगुचुन्
वोडिन् सस्यंबुलिडुम वोडें व्रजकुन् ॥ 755 ॥

कं. जीवनमु चाल 'गलिगियु
गावरमुन मिट्टिपडनि घनुनिक्रिय नदी-
जीवनमुलु सोर जलनिधि
प्रावृट्कालमुन डिंद पडियुंडें नृपा ! ॥ 756 ॥

शा. आ वर्षागममंदु गोवुल नरण्यांतंबुलन् मेपुचुन्
गोविंदुंडु प्रलंब वैरियुतुडै गोपाल वर्गंबुतो

डरावना लगा। विभीषण का हृदय जिस प्रकार हरिशब्द (हरिनाम-स्मरण) से भरा रहता, उसी प्रकार (वर्षाऋतु में) गगनमंडल हरिशब्द (मेंढकों के टर-टर शब्द) से भर गया। भवपूजन (ईश्वर का पूजन) जिस तरह इंद्र-पद का वैभव देनेवाला है, उसी प्रकार पावस ने इंद्रगोपों (वीरवहूटियों) का वैभव प्रदान किया। जनक का (किया) धनुर्यज्ञ जैसे सीता के विवाह से समलंकृत हुआ, उसी प्रकार वर्षागमन सीता-प्रकरण (हल की जुताई) से शोभित हुआ। कृतयुग जिस भाँति बहु-वर्षों (कई सालों) का हुआ, उसी भाँति वर्षाऋतु बहुवर्षों का समय रहा। उसमें ७५४ [कं.] फ़सलें सूखकर नष्ट हुए विना [अथवा] विना किसी बीमारी के, खूब बढ़कर लहलहा कर पुष्ट हुईं और सुंदर और मंगलकारी दिखाई दीं। इससे लोगों का सारा [अन्न] संकट दूर हो गया। ७५५ [कं.] हे राजन्! उस भद्र पुरुष के समान जो बड़ा जीवन (संपत्ति) पाकर भी घमंड से ऐंठता नहीं— उस बरसात में नदी-नालों की जलराशि के आ गिरने पर भी समुद्र [बाँध तोड़े विना] विनीत भाव से पड़ा रहा। ७५६ [शा.] उस वर्षाकाल में गोविंद (कृष्ण) प्रलंब-वैरी बलराम को साथ लिये, अहीरों से मिलकर

ग्रावीण्यंबुन गंदमूल फलमुल् भक्षिपुचुन् मंजुल
ग्रावाग्रंबुल प्रीति जल्दि गुडिचेंन् गासारतीरंबुलन् ॥ 757 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 758 ॥

सी. विश्वमोहनमैन वेणुनिनादंबु सरस गंभीर गर्जनमु गाग
महनीय निर्मल मंदहास द्युति ललित सौदामिनी लतिक गाग
दलचुट्टु वागुन दनरु पिंछपु दंड शैलभेदनु शरासनमु गाग
गरुणाकटाक्षवीक्षण सुधावर्षंबु सलिलधारा प्रवर्षंबु गाग

ते. जाड नेतेंचु गोपालजन मुनींद्र
चातकंबुल दुरवस्थ जवक जेसि
कृष्णमेघंबु वहुतर कीर्ति नीर्प
विमल बृंदावनाकाश वीथियंबु ॥ 759 ॥

कं. गोवुल वृषवत्संबुल, वाविरि बूजिंचि पिदप वर्षाकाल
श्रीवनितनु बूजिचेंनु, श्रीवल्लभुडय्यु गोपशेखरुडधिपा ! ॥ 760 ॥

व. इट्लु कृष्णुंडु विहित विहारंबुल वर्षाकालंबु वुच्चें । अंत ॥ 761 ॥

शरदृतु वर्णनमु

कं. जोंपमुलु गौनियें वनमुलु
रौंपुलिगिरें नेंमलिगमुल रौंदलुडिगें नवुल्

वन-प्रान्तों में गाय चराते हुए, कंद-मूल-फल खाते हुए, झीलों के तटों पर की सुंदर शिलाओं पर [बैठकर] दध्योदन खाया करता था। ७५७ [व.] उस समय ७५८ [सी.] विमल बृन्दावन के आकाश-मंडल में कृष्ण रूपी मेघ प्रशस्त होकर दिखाई दिया। उसका विश्व-मोहन वेणुनाद ही गंभीर गर्जन बन गया, उसके निर्मल मंदहास की कांति ही बिजली होकर चमकी। सिर में लपेटकर बँधी हुई मोरपंखों की माला ही इंद्रधनुष होकर दमक उठी। उसके करुणा-कटाक्ष-वीक्षणामृत ही सलिल-धारा होकर बरस पड़ा। [ते.] उसे देखने आये हुए ग्वाले और मुनींद्र चातक हुए। उनकी दुर्दशा कृष्ण-मेघ ने दूर कर दी। ७५९ [कं.] हे राजन्! उस गोपशेखर-कृष्ण ने [वास्तव में] लक्ष्मीपति होते हुए भी, यथारीति गौओं, बैलों और बछड़ों की पूजा करके, फिर वर्षाकालीन [संपद्-] लक्ष्मी की भी आराधना की। ७६० [व.] इस प्रकार कृष्ण ने यथोचित विहारों में वर्षाऋतु के दिन व्यतीत किये। अनंतर··· ७६१

शरद् ऋतु का वर्णन

[कं.] वनों में घनी झाड़ियाँ और बढ़े हुए झुरमुट दिखाई दिये। कीचड़

पॆंपुलकु बासॆ नुरुमुल
शंपल संपदलु मानॆ शारदवेळन् ॥ 762 ॥

व. मरियु, जीवनंबुल विडिचि, विमल ज्ञानवशंबुन मुक्तुलगु पुरुषरत्नंबुल चॆन्नुन जन्नु वदलि, मिन्नु विडिचि, वायुवशंबुलै, वॆलि विरिसि चनु मेघंबुलुनु, मेघपटल रहितंबुनु, गलशभवमुनि सहितंबुनुनै, विज्ञानदीप-विलसितंबगु योगि हृदयंबु चंदबुन शुभ्रंबैन यभ्रंबुनु, नभ्रंबुन नीलदुकूल-वितान संयुक्त मुक्ताफलंबुल वडुवुन नॆगडु नुडुगणंबुनु, नुडुगणमयूखंबु लॊव्वु लुव्वॆत्तुगोनि निव्वटिल्लुचु, ब्रह्मांडकरंड कर्पूर खंडायमानंबुलगु चंद्रकिरणंबुलुनु, जंद्रकिरण संस्पर्शनंबुन सगर्भंबुलै भूमिकि दुर्भरंबु लगुचु निंडि पंडि हलिक कर निशित लवित्र धारा संरंभंबु दलंचि, तल्लडिल्लि, वॆकवॆलं बारुचु वल्लियगु विश्वंभरकु मुनुकॊनि, प्रणतंबुलै वणंकुचु, नॆरुग मोरयिडुचुन्न पॆंपुन संपन्नंबुलयिन यॆन्नुल व्रेगुन व्रालि, गालि दूलुचु, मर्मरध्वनुल सारस्यंबुलगु कलमादि सस्यंबुलुनु, सस्यमंजरी पुंजंबुलु गॊंचक चंचुवुल द्रुंचि, कबळिंचि, पिल्ल पॆंटि तंडंबुलं गूडि, कडुपुलनिंड मॆक्कि, विक्कविरिसि, चॊक्कुचु, द्रिक्कलुकॊनि, महोत्तुंग समंचित मंचप्रदेशंबुलॆक्कि संचरिंचुचु, वॆन्नल कावलियुन्न यन्नुल कॆम्मोवुलु बिंबफलंबुलनि करचि, तत्करस्फालनंबुल नुलिकिपडि, यॆगसि चनु

सूख गया; मोरों के केकारव बंद हुए; नदियों में जल घटने लगा, मेघो का लर्जन-गर्जन तथा बिजलियों का कौंधना समाप्त हो गया। ७६२ [व.] जीवन छोड़, विमल ज्ञान के बल से मुक्त हुए पुरुष-रत्नों के समान बादल आकाश में अपना स्थान छोड़, वायु के वश होकर इधर-उधर घूमते चले। ब्रह्मज्ञान रूपी दीपक से प्रकाशित योगियों के हृदय के समान आकाश मेघपटल-रहित हो, अगस्त्यमुनि सहित शुभ्र और स्वच्छ हो गया। नीले रंग के वितान (चँदोवे) में लगे मोतियों के गुच्छों के समान आकाश में नक्षत्रपुंज चमकने लगा। तारों की झलमल को मात करके (मद चूर करके) चंद्रमा की किरणें यों प्रकाशित हुईं मानों ब्रह्मांड रूपी करंड (कड़ाह) में कर्पूर-खंड जल रहे हों। धान आदि सस्य (फ़सलें) चंद्रकिरणों के स्पर्श से सगर्भ हो (पककर) ऐसी अधिक उपजीं कि भूमि के लिए भार सी हो गईं; उनकी बालियाँ धान के भार से सिर झुकाकर हवा में हिलते हुए जमीन को छूने लगीं मानों यह सोचकर कि किसान के हाथ के तेज़ हँसिये से वे कट जाने वाली हैं— भयभीत हो, पियरा गयी हों, और भूमाता को अपना दुखड़ा जताने के निमित्त उसके पैरों पर पड़कर सरस मर्मर ध्वनियों से दुहाई दे रही हों। धान के डंठलों को निस्संकोच चोंचों से कुतर कर तोते अपने बच्चे और तोती के संग पेट भर खाकर छक जाते थे; ऊँची मचान पर बैठ

शुकनिकर कलकलंबुलुनु, कलहंस कोक सारस कोलाहल मंडितंबुलै, निंडि निर्मल जलंबुलु गल जलाशयंबुलुनु, जलाशयंबुल जलमुलनुदिनमु निगुर गृहमुल व्रतुकु दिनमुलु सनुट येरुंगनि मनुजुल गमनिकं दिरुगु जलचरमुलुनु, जलचर हृदयमुल बेगडुगदुर डोंकि यिंकिन नदुलुनु, नदुलंदु गर्पूरमंडपंबुल तेरंगुन, मणिकुट्टिमंबुल साड्किनि, सौध सौपान मार्गंबुल जाडनु विलोकितंबुलगु नूतन सैकतंबुलुनु, सैकत-प्रदेशंबुल नुदयवेळ नित्यकर्मानुष्ठान निरतुलगु मुनुलुनु, मुनिकन्यका करकलश सलिलाभिषिक्त मूलंबुलगु तपोवन वालरसाल सालंबुलुनु, सालविटपि वासंतिका कुंजपुंजंबुल तरुचुन निमुडुकोनि, दिनकर किरणंबुलकुं गरुवलिकि जोर वेरवुपडनि वनमुलुनु, वनमुल दरुल कोम्मलु नाकलंबुलु नेकलंबुलै मेसंगि, मसरु कविसि, क्रोव्वि, कोम्मुल कोनल नूदि, येटि दरुलु त्रव्वि, चिम्मि, क्रुम्मि, कोराडेडि वनगजंबुलुनु, गजकुंभ कनककुंभ रुचिर कुचभार भीरुमध्य समचितलगु चेंचितलुनु, चेंचितल क्रूरम्मुलगु वालम्मुल सारम्मुलु चेंडि खेदंबुन बावंबुलु दोट्रुपड वेनुगादंबुलं बडु

फ़सल की रखवाली करनेवाली युवतियों के अधरों को बिंबाफल समझ काटने जानेवाले वे तोते उन युवतियों की करतल ध्वनि (ताली) से चौंककर कोलाहल के साथ उड़ जाते थे। निर्मल जलपूर्ण कासार (पोखरे) कलहंस, कोक और सरसों के कलकूजन से रमणीय लगते थे। जलाशयों में जल के सूखते जाने पर भी अंदर के जलचरों का घूम-घूमकर फिरना वैसा ही जारी रहा जैसा घरों मे निवास करने के दिन यद्यपि बीत जाते है, तब भी मनुष्य का मोह पूर्ववत् जारी ही रहता है। जलचरों के हृदयों में भीति बढ़ाते हुए नदियाँ [धीरे-धीरे] सूखती चलीं। नदियों में मंडपों के समान, मणियों से निर्मित कुट्टिम (पथरीला फ़र्श, गच) की भाँति, भवनों की सीढ़ियों के सदृश रेत के बने टीले दिखाई देने लगे। सैकत प्रदेशों में बैठ कर मुनिगण प्रातः समय नित्यकर्मानुष्ठान में लगे रहते थे। तपोवन में मुनिकन्याएँ अपने हाथो से पानी के कलसे ला-लाकर रसाल (आम्र) वृक्षों को सींच देती थीं। तरु-लता-कुंज-पुंजों वाले गहन वनों में पवन को अथवा सूर्य-किरणों को भी प्रवेश मिलना कठिन हो गया था। जंगली हाथी वन-वृक्षों की शाखाओं और घास-पातो को अफ़रत से खाकर बलिष्ठ हो, मदमस्ती से नदी के कछारो को दाँतो से कुरेद कर, मिट्टी उछालकर क्रीड़ा करते दिखाई देते थे। वनस्थली में शबर-वनिताएँ गजकुंभ और सुवर्णकुंभ-सदृश भारी कुचों को तथा पतली कमरों को लिये विलासपूर्वक विचर रही थीं। शाबर स्त्रियो के चलाये तीक्ष्ण बाणों से घायल होकर, बल खोकर लड़खड़ाते हुए जंगली सुवर और बाघ आदि वन्यमृग झाड़ियों

वराह पुंडरीकंबुलुनु, बुंडरीक कुमुद कुरंटकादि कुसुम मकरंदंबु ग्रोलि, तेलि, सोलि, व्रालि, महाहंकृतुल झंकृतुलु सेयु तेटि कदुपुलुनु, गदुपुलं गलयक यँड गलिगि, मदमुन नदनु पदनेँरिगि, मदनमार्गण प्रेरितंबुलै, पँटि तुट्टुमुल वेंटं जनि, योँडोँटि गेँदिचुचु दगुल नेँक्कि गर्भंबुलु नेँक्कोलपु मृग वृषभराजंबुलुनु गलिगि, राजराज गृहंबु पगिदि विलसित कुंद पद्म सौभाग्यंबै, भाग्यहीनु कर्णंबु रेख नश्रुत नीलकंठ शब्दंबै, शब्दशास्त्रवेदि हृदयंबु बागुन विशद प्रकाशाभिरामंबै, रामसंग्रामंबु कैवडि बाणासना-लंकृतंबै, कृतांत हृदयंबु करणि नपंकंबै, पंकजासनु गेहंबु सोँपुन राजहंस विराजमानंबै, मानधनुनि चरित्रंबु सोँबगुन नकल्मष जीवनंबै, वननिधि पोँलुपुन सम्मिळित भूभृद्वाहिनी संकुलंबै, कुलवधूरत्नंबु चेँलुवुन नदृष्ट पयोधरंबै, धरणिकि दोँडवगुचु शरत्कालंबु वच्चे। अंदु ॥ 763 ॥

और कंदराओं में जा छिपते थे। पुंडरीक (कमल), कुमुद, कुरंटक आदि कुसुमों का मकरंद पान कर, छके, झुक-झुक पड़ते हुए भौंरों के झुंड झंकार करते दिखाई देते थे। मृगराज (सिंह) और वृषभराज (साँड़) अपने झुंड से अलग हो मन्मथ के मार्गणों (बाणों) से प्रेरित हो संयोग का मौक़ा देख, मादा जंतुओं के पीछे लगकर, एक-एक पर चढ़ गर्भधारण कराते फिरते थे। [राजराज अर्थात्] कुबेर का घर जिस प्रकार कुंद और पद्म नामक निधियों से भरा रहता है, उसी प्रकार वह बृन्दावन कुंद और पद्म नामक पुष्पों से शरत्काल में शोभित रहा। भाग्यहीन मनुष्य के कान में कभी भी नीलकंठ अर्थात् महादेव शिव का नाम (शब्द) सुन नहीं पड़ता, उसी भाँति बृन्दावन में [शरद् ऋतु के समय] नीलकंठ अर्थात् मोर का शब्द (कूक) सुनाई नहीं दिया। शब्दशास्त्रवेदी अर्थात् व्याकरण-शास्त्र के विद्वान् का हृदय जिस प्रकार विश्व को (स्पष्ट) करनेवाले प्रकाश से सुंदर बना रहता है, उसी प्रकार बृन्दावन स्वच्छ प्रकाश से सुंदर लगता था। राम का संग्राम (युद्धक्षेत्र) जैसा धनुष और बाणों से अलंकृत रहा उसी प्रकार शरत्काल में भूमि फैले हुए बाण और असन (भिलावाँ) नामक वृक्षों से शोभित रही। कृतांत (यम) का हृदय जैसा पंक-(पाप-) रहित रहता है, वैसा ही [शरद् में] बृन्दावन पंक-रहित (बग़ैर कीचड़ का) हो गया। ब्रह्मदेव के निवासस्थान के समान बृन्दावन शरत्काल में राज हंसों से विराजमान हो गया। मानधन (प्रतिष्ठित) व्यक्ति का जीवन (चरित्र) जैसा निर्मल (अकल्मष) रहता है वैसा ही बृन्दावन निर्मल जलवाला (अकल्मष जीवन) बन गया। जिस रीति से वननिधि (समुद्र) पहाड़ी झरनों के आ मिलने से संकुल (परिपूर्ण) रहता है उसी रीति से शरत्काल राजाओं की सेनाओं के (भूभृत् = पहाड़, राजा; वाहिनी = नदी, सेना) सम्मेलन से संकुल रह गया। कुलस्त्रियों के पयोधर (स्तन) अदृष्ट (गुप्त) रहते हैं; उसी

कं. वाजुल नीराजनमुलु, राजुल जयगमनमुलुनु राजित लक्ष्मी-
पूजलु देवोत्सवमुलु, राजिल्लॆनु जगतियंदु राजकुलेंद्रा ! ॥ 764 ॥

कं. चॆग गल चॆऱकुविंटनु, वागुग नीलोत्पलंबु बाणंबुग सं-
योगंबु चेसि मदनुडु, बेगिरमुन विरहिजनुल वेंटाडॆ नॊगिन् ॥ 765 ॥

अध्यायमु—२१

व. इट्लु भासुरंबुलैन शरद्वासरंबुल गोविंदुंडु गोपवृंदसमेतुंडै, बृंदावनंबुनं बसुल बॊसंग मेपुचु ॥ 766 ॥

सी. कर्णावतंसित कर्णिकारप्रभ गंडभागद्युति गडलुकॊलुप
भ्रूवन मोहनमैन भ्रूविलासंबुतो वामभागानत वदनमॊप्प
नपसव्यकर मृदुलांगुळी चातुरि षड्जध्वनिकि मर्म सरणि जूप
डाकालिमीद नड्डमु साचि निलिपन पद नखद्युति भूमि ब्रबिकॊनग

ते. मौळिपिछमु कंठदाममुनु मॆऱय
विलसित ग्राममुग नॊक्क वेणुवंदु

प्रकार शरत्काल के आकाश में मेघ (पयोधर-मेघ) दिखाई नहीं देते थे। इस प्रकार भूमि के लिए अलंकार के रूप में शरदृतु का आगमन हुआ। ७६३ [कं.] हे राजेंद्र ! [उस शरत्काल में] जगत् वाजि-नीराजनों (घोड़ों के पूजन), राजाओं की विजययात्राओं, लक्ष्मीदेवी की पूजाओं, देवताओं के उत्सवों से शोभित हो गया था। ७६४ [कं.] सरस ईख के धनुष में मदन (कामदेव) ने नीलोत्पलों (नीले कमलों) को बाण बनाकर संधान किया और विरही (विछुड़े) जनों को मारकर शिकार किया। ७६५

अध्याय—२१

[व.] इस प्रकार भासुर (प्रकाशमान) शरद्-वासरों (दिनों) में गोविन्द (कृष्ण) गोपवृन्द-समेत वृन्दावन में गौओं को चराते हुए, ७६६ [सी.] चतुर नटवर, गोपाल-चक्रवर्ती, कृष्ण ने बाँसुरी पर वैदिक गांधर्व संगीत की एक मनोहर तान बजाकर सरस स्वर सरसाया। उसके कानों में अलंकृत कर्णिकार पुष्प की कांति गंडस्थल पर झलक उठी। भौंहों पर का विलास [तीनों] भुवनों को मोहित कर रहा था। बाईं ओर झुका हुआ वदन (मुँह) शोभा से फब रहा था। दाहिने हाथ की कोमल उँगुलियाँ चतुरता के साथ षड्जस्वर की रीति (शैली) जता रही थीं। बायें पैर पर आड़े टिके हुए चरण की नखद्युति (नाखून की ज्योति) भूमि पर फैल

ब्रह्म गांधर्व गीतंबु परग जेसॆ
जतुर नटमूर्ति गोपाल चक्रवर्ति ॥ 767 ॥

व. इट्लु हरि वेणुनादंबु पूरिंचिन, मारविकार हेतुवगु तद्गीतंबालिंचि, सिग्गुलु सालिंचि, मक्कुवलु चॆक्कुलॊत्त, नोपिक लोपिकलु लेक, तमतम पॊत्तुकत्तॆलं दारुनु, दत्तरंबुन बदुगुरु, नेगुरं बुट्मुलुगॊनि, जिलिबिलि मुच्चटलकुं जॊच्चि, तमलोन ॥ 768 ॥

म. श्रवणोदंचित कर्णिकारमुलतो स्वर्णाभ - चेलंबुतो-
नवतंसायित केकि पिंछकमुतो नंभोजदामंबुतो
स्ववशुंडै मधुराधरामृतमुचे वंशंबु बूरिंपुचु-
न्नुविदा! माधवु डालवॆंट वनमं दॊप्पारॆडि जूचिते ॥ 769 ॥

शा. रावे सुंदरि! येमें बोटि! विनवे राजीवनेत्रुंडु बृं-
दावीथिन् दग वेणुवूदुचु लसत्सव्यानतास्यंबुतो
भ्रूविन्यासमुलंगुळीक्रममुलं बॊल्पार षड्जंबुगा
गाविंचॆन् नटुभंगि ब्रह्ममगु तद्गांधर्व संगीतमुन् ॥ 770 ॥

कं. तलकॊनु गॊब्बुन जित्तमु
नळिनाक्षुनि मधुर वेणुनादमु ना वी-
नुलु सोकि नंत मात्रन
चॆलिया! यिक नॆट्लु वॆरवु चिंतिप गदे ॥ 771 ॥

गई। सिर पर का मोरमुकुट और गले का कंठहार अत्यंत सुंदर लग रहे थे। ७६७ [व.] हरि के वेणु बजाने पर, काम-विकार का कारण बना हुआ वह गायन सुनकर गोपिकाएँ लाज छोड़, बढ़े हुए मोह से विवश हो, अपनी सहचरियों के साथ दस-दस या पाँच-पाँच की टोलियाँ बाँधकर अपने आपस में बहककर मधुरालाप करने लगी। ७६८ [म.] "हे सखी! वह देखो, माधव (कृष्ण) गौओं के साथ वन में खड़ा है; कर्णिकार कानों में खोंसे, सोने के रंग की धोती पहने, शिखा में मोरपंख बाँधे, गले में कमलों की माला लटकाये, अपने-आप मस्त हो, बाँसुरी में मधुर अधरामृत भरते हुए कितना सुंदर लग रहा है! देखा नहीं क्या तुमने? ७६९ [शा.] अरी सुंदरी! आओ! ऐ आली! सुनो न? कमलनयन (कृष्ण) बृन्दावन में वेणु बजा रहा है। बायीं ओर हँसता मुखड़ा झुकाया, भौंहें मटकाता हुआ उँगुलियाँ बाँसुरी पर नचा रहा है; नट की तरह गंधर्ववेद का संगीत षड्जस्वर में गा रहा है, सुनो न! ७७० [कं.] नलिनाक्ष (कमललोचन) कृष्ण का मधुर वेणुरव कानों में पड़ते ही मेरा चित्त चल-विचल हो उठा; ऐ सहेली! अब क्या उपाय है? सोचो न? ७७१

कं. नातोड वॆरव वलदे, नातोडनॆ कॊनुचु वोयि नळिनदळाक्षुन्
नी तोडुत वलिकिचॆद, नी तोडि जनंबु मॆच्च नीतोडु सुमी ॥ 772 ॥

व. अनि पॆक्कुभंगुल नोर्तोर्तॆ नुद्देशिंचि पलुकुचु, गोपसुंदरुलु वृंदावनंबुनकु गोविंदुनि कॊंडुरु चनि, परमानंदंबुन नर्तनि दम मनंबुल ब्रतिपर्वंबुनु नालिगनंबु चेसिनवारलगुचु, रामकृष्णुलनुद्देशिंचि ॥ 773 ॥

म. नव गोस्थानक रंगमंदु वरमानंबुतो जूड व-
ल्लव नीलोत्पल पिंछ पद्मदळ मालावस्त्रसंपन्नुलै
कवयै वेणुवुलूदुचुन् वहु नटाकारंबुलन् गेळितां-
डवमुल् चेसॆदरी कुमारकुलु वेड्कन् गामिनुल् गंटिरे ! ॥ 774 ॥

कं. ओ चॆलुवलार ! विनुडी
वाचाशतकंबु लेल वणिपंगा
लोचनमुल कलिमिकि फल-
मी चॆलुवुर जूडगलुगुटितिय सुंडी ॥ 775 ॥

व. अनि पलिकिरि। अंदु गॊंदरु गोविंदुनुद्देशिंचि ॥ 776 ॥

म. ऒनरन् व्रेतल किंचुकेनियुनु लेकुंडंग गोपाल कृ-
ष्णुनि कॆम्मोवि सुधारसंबु गॊनुचुन् जोद्यंबुगा म्रोयुचुन्

[कं.] "मुझसे डरो मत, तुम्हारी क़सम, तुम्हें साथ ले चलकर उस कमलाक्ष (कृष्ण) को तुम्हारे साथ बात कराऊँगी। तुम्हारी सखियाँ सब सराहेंगी, देखो न !" ७७२ [व.] यों अनेक प्रकार से एक-दूसरी को समझाते हुए वे गोप-सुंदरियाँ वृन्दावन में कृष्ण के समीप पहुँच गईं; उन्होंने बार-बार परम आनद से मन ही मन उसका आलिगन किया। फिर बलराम और कृष्ण को लक्ष्य बनाकर यों कहा। ७७३ [म.] हे कामिनियो ! इन कुमारों को तो देखो ! इन्हें इस नये गोष्ठ-स्थानक मे देखकर बड़ा आनंद होता है; ये पल्लव, नील-कमल, मोर-पंख, पद्मदल-माला और [विविध] वस्त्रों से सुसज्जित होकर, जोड़ी बाँध वेणुगान कर रहे हैं, और नटों के समान अनेक आकारो में खेलकूद कर नृत्य कर रहे हैं। ७७४ [कं.] हे [सखियो ! सुनो, इन कुमारों का सौंदर्य] वर्णन करने के लिए सौ बातों की आवश्यकता नही है। इन्हें निहारने भर से हमें अपने लोचनों का फल मिल जाता है। बस इतना ही।" ७७५ [व.] उन गोपियों में से कुछ ने गोविन्द [कृष्ण] को लक्ष्य कर यों कहा: ७७६ [म.] "ऐ आली ! यह बंसी देखो, गोपाल कृष्ण का अरुणाधर-सुधारस हम गोपियों के लिए किंचित् भी बचाकर रखे बिना [पूरा] स्वयं ही पान कर विचित्र रीति से बज रही है, और ऐसा उत्सव मना रही है जो दर्शनीय (नेत्रपर्व)

दन पर्वंबुलु नेत्रपर्वमुलुगा दर्पिचें बूर्वंबुनन्
वनिता ! यॆट्टि तपंबु चेसॆनॊकॊ यी वंशंबु वंशंबुलोन् ॥ 777 ॥

म. मुदिता ! यॆ तटिनी पयःकणमुलन् मुन् वेणुवितर्य्यं ना
नदि सत्पुत्रुनि गन्न तल्लि पगिदिन् नंदंबुतो नेडु स-
म्मद हंसध्वनि पाटगा विकच पद्मश्रेणि रोमांचमै
यॊंदवन् तुंग तरंगहस्त नटनोद्योगंबु गाविपदे ॥ 778 ॥

कं. नलिनोदरु भक्तुनि गनि
कुलजुलु नंदाश्रुजलमु गुरियु पगिदि स्रा-
कुलु पूदेनिय लॊलिकॆंडु
नलिनाक्षुनि चेति वंशनाळमु स्रोतन् ॥ 779 ॥

शा. ना मोसंबुन कॊंदि्द मेर विनवे ना पूर्वजन्मंबुलन्
लेमा ! नोमुलु नोचुनो नकट ! काळिंदी तटिन् वेणुवै
भूमिन् बुट्टॆदनंचु गोर दगदे बोधिलिल यट्लैन नी
बामंदिप्पुडु माधवाधर सुधापानंबु गल्गुं गदे ॥ 780 ॥

कं. काळिंदी कूलंबुन, नाळी ! यी नंदतनयु नधरामृतमुन्
ग्रोलॆंडि वेणुव नगु नो, मेलागुन नोमवच्चु नॆरिंगिप गदे ॥ 781 ॥

कं. वनिता ! कृष्णुडु नल्लनि
घनमनियुन् वेणुरवमु गर्जनमनियुन्

है। सखी ! बाँसों में [उत्पन्न होकर] इस वंश (बाँसुरी) ने अपने वंश में पता नहीं कौन सा तप किया होगा ? ७७७ [म.] हे ललना ! जिस नदी के जलकणों से यह बाँस इतना बड़ा हुआ है, वह नदी (यमुना) सत्पुत्र को जननेवाली माता के सदृश आज इस वेणु से परम आनंद पाकर अपना हर्ष हंस-ध्वनि (कूजन) रूपी गायन के द्वारा, विकसित पद्म रूपी पुलकों द्वारा प्रकट करती हुई उत्तुंग तरंग रूपी हस्तविन्यास से नाचने का यत्न कर रही है। देखो तो। ७७८ [कं.] विष्णुभक्त को देख सत्पुरुष जिस प्रकार आनंद के आँसू बरसाते हैं, उसी प्रकार कमल-नयन कृष्ण के वेणुगान से प्रभावित हो वृक्ष मकरंद बरसा रहे हैं। ७७९ [शा.] हे तरुणी ! मुझे जो धोखा हुआ (भ्रम हुआ) उसकी हद नहीं है; पूर्वजन्मों में व्रत-साधन करते समय समझ के साथ यदि मैं यमुना तट पर का वेणु होकर जन्म लेने की कामना करती तो इस जन्म से माधव (कृष्ण) की अधर-सुधा का सेवन प्राप्त करती। ७८० [कं.] हे सखी ! मुझे ऐसा व्रत रखने का ढंग बता दो जिससे मैं यमुना-तट पर का वेणु बनूं और इस नंदकुमार का अधरामृत पान कर सकूं। ७८१ [कं.] हे रमणी ! कृष्ण

मनमुन दलंचि रोंप्पुचु
ननवरतमु नेमलितुट्टमुलाडेंडि गंटे ॥ 782 ॥

कं. गिरिचर मिथुनमुलोलिन्, वरिकिपग गृष्णपाद पद्मांकितमै
सुरराजु नगरिकंटेनु, दरुणी ! बृंदावनंबु तद्दयु नोप्पन् ॥ 783 ॥

म. अमरेंद्रांगनलाकसंबुन विमानारूढलै पोवुचुन्
गमलाक्षुन् शुभमूर्ति गांचि मुरळीगानंबुलंबंद क-
र्णमुलन् निल्पुचु मेखलल् वदलगा नाथांक मध्यंबुलन्
ब्रमदा ! व्रालिरि चूचिते विवशलै पंचाशुग भ्रांतलै ॥ 784 ॥

उ. कानल नुंडुचुन् सरस गान विवेक विहीन जातलै
वीनुल नेडु कृष्णमुख वेणु रवामृतधार सोकिनन्
मेनुलु मेतलुन् मऱचि मेंत्तनि चूड्कि मृगी मृगावळुल्
माननि ! चूडवम्म वहुमानमु चेसॅ गृतार्थचित्तलै ॥ 785 ॥

उ. तल्लुल चनुवालु मुनु द्रावु तऱिन् दम कर्णवीथुलन्
वल्लभमैन माधवुनि वंश रवामृतधार चोच्चिनन्
द्रुळ्ळक पालुरा दिवक दूटक मानक कृष्णुमीद द्रु-
ग्वल्लुलु चेर्चि निल्चॅ नवे वत्समुलंगनलार ! कंटिरे ॥ 786 ॥

को काला बादल, वेणु-ध्वनि को गर्जन, समझकर मोरों का झुंड केकारव करते हुए अविराम नृत्य कर रहा है, तुमने देखा नहीं क्या ? ७८२ [कं.] वनचरों की जोड़ी वृन्दावन में कृष्ण के पद-पद्मों के चिह्न अंकित देखकर इसे इंद्र-नगरी-(अमरावती) से अधिक मनोहर समझ रही है। ७८३ [म.] देवताओं की स्त्रियों ने विमानों मे बैठ आकाश-मार्ग से जाते हुए कमलाक्ष (कृष्ण) की सुंदर मूर्ति देखी; उनका वेणु-गान कानों में भर लिया। इससे वे काम-विमोहित हुईं, उनके नीवी-बंध खुल गये, विवश होकर वे प्रमदाएँ (स्त्रियाँ) अपने पतियों की गोद में झुक पड़ीं, सखी ! उन्हें देख तो लो। ७८४ [उ.] वनों में रहनेवाले इन हिरन और हिरनियों को सरस संगीत का ज्ञान लेश भी नहीं रहता, किंतु आज इनके कानों को कृष्ण के वेणुगानामृत का स्पर्श हुआ है, बस, उन्हे न अपने बदन का होश रहा न चारे का ख्याल; हे मानिनी ! उनकी दशा देखो ! वे अपने को कृतार्थ मान किस तरह कोमल दृष्टियों से निहारते हुए कृष्ण का सम्मान कर रहे हैं। ७८५ [उ.] हे अंगनाओ ! तुमने देखा नहीं इन बछड़ों को, जो दूध पीते समय माधव (कृष्ण) के वंशीरव की अमृतधारा कानों में पैठी तो, ठिठक गये, थन में माथा मारना और दूध पीना छोड़ कृष्ण पर अपलक दृष्टियों की वल्लरी (लता) डालकर स्थिर खड़े हो गये हैं। ७८६

म. ममतन् मोमुलु मीविकॅत्तुकोनि रोमंथंबु सालिचि हृ-
त्कमलाग्रंबुल गृष्णु निलिप मुरळी गानामृत श्रेणि क-
र्णमुलन् ग्रोलुचु मेत मानि गळितानंदाश्रुले चित्रितो-
पमलै गोवुलु चूचुचुन्न वदिगो पद्माक्षि ! वीक्षिचिते ॥ 787 ॥

म. जगतीजंबुल शाख लॅक्कि मुरळीशब्दामृत स्यंदमुल्
मिगुलन् वीनुल द्रावि व्रेगुपडि नॅम्मि गृष्णरूपंबु चि-
त्रगमै युंडग नड्डपॅट्टु क्रिय नेत्रंबुल् दगन् मूसि यी
खगमुल् सॉक्कॅडि जूचिते मुनिजनाकारंबुलं गामिनी ! ॥ 788 ॥

म. क्रममॉप्पन् नदुलॅल्ल वंशरवमाकर्णिचि संजात मो-
हमुलन् मन्मथसायक क्षत विशालावर्तलै हंसवा-
क्यमुलं जोरि तरंगहस्तमुल नाकर्षिचि दब्जोपहा-
रमुलन् गृष्णु पदार्चनंबु सलिपॅन् रामा ! विलोकिंचिते ॥ 789 ॥

आ. वनित ! नेडु कृष्णु वंश निनादंबु
विनि पयोधरंबु विरुलु गुरिसि
तन शरीरमॅल्ल धवळातपत्रंबु
जेसि मिट नोड जेसॅ गंटॅ ॥ 790 ॥

[म.] हे कमलाक्षी ! तुमने देखा नहीं इन गौओं को ? ये तो ममता से अपने हृदय-कमल में कृष्ण का रूप रखकर, मुरली का गानामृत कर्णपुटों द्वारा पीते हुए चारा और जुगाली छोड़कर, थूथरा (वदन) ऊपर को उठाये, आनंद के आँसू गिरा रही हैं; और चित्र में लिखी-सी स्थिर खड़े होकर [कृष्ण को] देख रही हैं। ७८७ [म.] हे कामिनी ! इन पक्षियों को तुमने देखा ही होगा ! वृक्ष की शाखाओं पर बैठ, मुरली-रव का अमृत-रस कानों द्वारा पान कर, तृप्त हो, ये पक्षी मुनिजनो के समान यों नेत्र मूँदकर बैठे हुए हैं मानों हृदय में प्रतिष्ठित कृष्ण की प्रियमूर्ति को [बाहर निकल जाने से] रोकने के लिए आँखें बंद कर ली हों। ७८८ [म.] हे सुंदरी ! कृष्ण की बाँसुरी का राग सुनकर ये नदी-नाले विमोहित हो गये, कामदेव के बाणों से इनका हृदय क्षत-विक्षत हुआ है, इस कारण उनमें आवर्त (भँवर) पड़ गये हैं। ये हंसों की बोलियों द्वारा प्रिय कृष्ण का संबोधन कर तरंग रूपी हाथों से कमलों का उपहार देकर कृष्ण की चरण-पूजा कर रहे हैं। हे रामा ! इनका अवलोकन करो। ७८९ [आ.] हे वनिता (स्त्री) ! देखो ! कृष्ण का वंशी-निनाद (-ध्वनि = संगीत) सुनकर इस मेघ ने [हर्ष से] फूल बरसाए, और अपने शरीर को श्वेतछत्र (सफ़ेद-छत्र) बनाकर [कुमार कृष्ण के लिए] आकाश में छाया का प्रबंध किया। ७९० [कं.] हे अंगना (महिला) ! मोरपंखों को वस्त्रवत् धारण किये इन शावर (शबर

मंचि फलंबुलु हरि चे, निंचि करालंबनमुल नॆगडुचु निर्दे श्री-
डिचॆंदरंगन ! चूडुमु, चॆंचितलं विछपत्र चेलांचितलन् ॥ 791 ॥

कं. उल्लसित कुचभरंबुल
नल्लाडॆडि नडुमुतोड नलरुलदंडल्
भिल्लि यीकतॆ हरि किच्चॆनु
हल्लोहल कलित यगुचु नंगन ! कंटे ॥ 792 ॥

कं. गिरुलॆल्ल जलमुलय्यॆं-
दरुलॆल्लनु बल्लविचॆ धरणि गगन भू-
चरुलॆल्लनु जॊक्किरि हरि-
मुरळि रवामृतमु सोकि मुद्दिय ! कंटे ॥ 793 ॥

म. बल कृष्णांघ्रि सरोज संगममुचे भासिल्लुचुन् धन्यमै
फल पुष्पंबुल गानुकल् गुरिसि संभाविंचि मिन्नंदुचुन्
जलघासंबुल गोवुलं दनिपि चंचत् भूजरोमांचमै
वॆलसॆन् जूडगदम्म ! यी गिरि पुरोवीथिन् सरोजानना ! ॥ 794 ॥

व. अनि यिट्लु बृंदावन विहारियैन गोविंदुनि संदर्शिचि, पंचबाण भल्लभग्न हृदयलै, वल्लवकांतलेकांतंबुल जिंतिचुचु, दत्परतंत्रलयि युंडिरि। अंत ॥ 795 ॥

जाति की) युवतियों को देखो, जो उमदा फल लाकर कृष्ण के हाथ में रखती हैं और उसका हाथ पकड़कर हर्ष से नृत्य करती हैं। ७९१ [कं.] हे अंगना ! तुमने देखा नहीं इस एक भिल्लिनी को ? तने हुए कुचभार से हिलती कमर से इसने मोह में आकर एक पुष्पमाला लाकर हरि (कृष्ण) को समर्पित किया। ७९२ [कं.] हे मुग्धा ! देखो तो ! कृष्ण के वेणुगान के स्पर्श से पहाड़ सब पिघलकर पानी हो गये; धरती पर के वृक्ष सब पल्लवित हुए (कोंपल निकल आये), सभी भूचर और गगनचर प्राणी [आनंदातिरेक से] बेहोश-से हो गये। ७९३ [म.] हे कमलवदना ! सामने के इस पहाड़ को तो देखो ! बलराम और कृष्ण के चरण-कमलों के संसर्ग से यह चमक उठा है। फल और पुष्पों के उपहार बरसाकर इसने गोपाल को संभावित किया, और आकाश तक फैलकर धन्य हुआ। इसने घास और जल देकर गौओं को तृप्त किया और हिलते हुए वृक्षों के रूप में अपने पुलक प्रकट कर रहा है। यों यह पर्वत शोभायमान दीख रहा है। ७९४ [व.] इस भाँति आलाप करती हुई उन अहीर-युवतियों ने बृन्दावन-विहारी कृष्ण का संदर्शन किया; उनका हृदय मन्मथ के बाणों से विध गया; वे एकांत में [गोपीवल्लभ का] चिंतन करते हुए उसी में तत्पर होकर रह गईं। तब ·· ७९५

अध्यायमु—२२

हेमंत ऋतु वर्णनमु

कं. शामंतिका स्रगंचित, सीमंतवती कुचोष्ण जित शीतभय
श्रीमंतंबै गॊब्बुन, हेमंतमु दीर्चें मदनुडेचें विरहुलन् ॥ 796 ॥

कं. उत्तरपुगालि विसरॆं वि-
यत्तलमुन तुहिनकिरणुडहितुंडय्यॆं
वॊत्तुं जरिगॆं मिथुनमुलकु
नॆत्तम्मुलु दग्गिरॆं हिममु नॆलकॊनियॆं नृपा ! ॥ 797 ॥

कं. अहमुलु सन्नमुलय्यॆनु, दहनमु हितमय्यॆं दीर्घ दशलय्यॆ निशल्
बहु शीतोपेतंबै, युहुहू यनि वणकॆं लोकमुर्वीनाथा ! ॥ 798 ॥

कं. अन्नुल चन्नुल दंड वि, पन्नुलुगा कॆल्लवारु व्रतिकिरिगाकी
चन्नुल मीरिन चलि ना, पन्नुलु गाकुंड दरमॆ ब्रह्मादुलकुन् ॥ 799 ॥

आ. पॊडुपु गॊंडमीद बॊडुचुट मॊदलुगा
बरुवु वॆट्टि यिनुडु पश्चिमाद्रि
मरुगु जॊच्चॆं गाक मसलिन जलिचेत
जिवकॆ जिवकॆ ननग जिवककुन्नॆ ॥ 800 ॥

अध्याय—२२

हेमंत ऋतु का वर्णन

[कं.] तब तेजी से उस हेमंत का उदय हुआ जिसमें होनेवाले शीतभय को सेवंती [एक पुष्प]मालाओं से अलंकृत माँगवाली युवतियों के कुचों की उष्णता दूर कर देती है, और जब कामदेव विरहियों को पीड़ा पहुँचाता रहता है। ७९६ [कं.] हे राजन् ! [उस ऋतु में] उत्तर का पवन बहने लगा; आकाश में शीतकिरण वाला चंद्रमा लोगों को अखरने लगा; मिथुनों (पति-पत्नियों) में समागम बन पड़ा; हिमपात से [सरोवरों में] कमल क्षीण हुए। ७९७ [कं.] दिन छोटे हुए; धूप और गरमी (लोगों को) भली लगने लगी; रातें लंबी हुईं। हे भूपाल ! शीत के बढ़ने से लोग 'सी-सी' करते हुए काँपने लगे। ७९८ [कं.] अपनी स्त्रियों के स्तनों का सहारा लेकर (उष्णता पाकर) लोग विपत्ति-ग्रस्त हुए बिना [इस शीतकाल में] जीवित रह सके; यदि ऐसा न होता [अर्थात् स्तनों का आश्रय न लेते] तो उस सर्दी से बच जाना ब्रह्मा आदि देवों के लिए भी साध्य न होता। ७९९ [आ.] उदयाचल पर उदित होने के समय से सूर्य भाग-

कं. चेंगलव विरुलगंधमु, मंगळमुग ग्रोलुचुन्न मनुपमुलॉप्पें-
न्नंगज वह्नुलपै नु, प्पॉगि विजृंभिचु पॉगल पोलिक नधिपा ! ॥ 801 ॥

आ. शंभुकंट नॉकटि जलराशि नॉक्कटि
मद्रियु नॉकटि मनुज मंदिरमुल
नॉदिगॅ गाक मॅड्रसियुन्न मूडग्नुलु
जलिकि नोडि भक्ति सलुपकुन्नॆ ॥ 802 ॥

शा. ई हेमंतमु राक जूचि रमणीहेलापरीरंभ स-
त्साहाय्यंबुन गानि वीनि गॅलुवन् शक्यंबु गादंचु दा-
रूहापोहविधि त्रिमूर्तुलु सतीयुक्तांगुलै नारु गा-
को हो ! वारलदेमि संतत वधूयोगंबु रा गंदुरे ॥ 803 ॥

कं. ई हेमंतमु राककु
श्रीहरि यॉक्किंत वणकि चिंतिपंगा
नो हो ! वॅड्रवकुमनुचु-
न्ना हरिकिनि श्रीकुचंबुलभयं बिच्चॆन् ॥ 804 ॥

भागकर पश्चिमाचल के पीछे छिप गया, और शीत से बच गया, ऐसा नहीं होता तो कड़ाके की सर्दी के हाथ फँसकर ठंडा हो जाता। ८०० [कं.] हे राजन् ! लालकमल-पुष्पों की सुगंध शोभा के साथ पान कर रहे मधुप (भौंरे) ऐसे दीख रहे मानों कामाग्नि के ऊपर झपटकर फैलनेवाले धूम्रमंडल (धुआँ) हों। ८०१ [आ.) शीत से भयभीत हो, हारकर त्रेताग्नियों में से एक शिवजी के तृतीय नेत्र में, दूसरी समुद्र के गर्भ में, और तीसरी मनुष्यों के मंदिरों (घरों) में जाकर छिप गईं। यदि वे ऐसा नहीं करतीं तो उन्हें शीत की दासता करनी पड़ती। ८०२ [शा.] इस हेमंत का आगमन देखकर त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) ने कहा कि रमणी के विलासों और आलिंगनों के विना इस शीत को जीतना शक्य नहीं है, [अत:] सोच-विचार कर उन तीनों ने अपने शरीरों के साथ पत्नियों को भी लगा लिया। यदि ऐसा न होता, तो, ओहो— उन्हें कभी ब्याह कर लेने का भी योग प्राप्त होता ? ८०३ [कं.] इस हेमंत के आने पर श्रीहरि (विष्णु भगवान) थोड़ा काँप उठे, जब उन्हें चिंता हुई तो लक्ष्मी देवी ने यह कहकर कि "ओह ! डरो मत"— अपने कुचों द्वारा हरि को अभयदान दिया। ८०४

गोपिका वस्त्रापहरण कथ

व. इट्लु नितांतंबगु हेमंतंबुन मॊदलिनॆल तॊलिदिनंबुनंदु, नंदुनि मंदलो गल गोपकुमारिकलु रेपकड लेच्चि चनि काळिंदी जलंबुलं दोगि, जलतीरंबुन निसुकं गात्यायनी रूपंबु चेसि, सुरभि कुसुम गंधंबुलिडि, धूप दीपंबु लिच्चि, बहुविधोपहारंबुलु समर्पिचि ॥ 805 ॥

कं. ओ कात्यायनि ! भगवति !, नीकुनु म्रॊक्केंदमु मेमु नेडनुकंपन्
माकिंदरकुनु वेळम, श्रीकृष्णुडु मगडु गाग जेयुमु तल्ली ! ॥ 806 ॥

कं. ओ तल्लि ! माकु गृष्णुडु
चेतोविभुडेन नाडु चॆलुवल मॆल्लन्
नेति वसंतमु लाडुचु
जातर चेसॆदमु भक्ति चातुरितोडन् ॥ 807 ॥

व. अनि नमस्करिंचि; हविष्यंबुलु गुडुचुचु, निव्विधंबुन मासव्रतंबु सलिपिरि। अंदीक्कनाडु ॥ 808 ॥

म. रमणुल् प्रॊद्दुन मेलुकांचि सखुलन् रंडंचु नात्मीय ना-
ममुलं जीरि कुचद्वयी भरमुलन् मध्यंबुलल्लाडगा
ब्रमदोद्दाम गजेंद्रयानलगुचुन् बद्धाक्षुनि बाडुचुन्
यमुनातीरमु जेरबोयिरि गृहीतान्योन्य हस्ताब्जलै ॥ 809 ॥

गोपिका-वस्त्रापहरण की कथा

[व.] इस नितांत शीतवाले हेमंत के प्रथम मास के प्रथम दिन नंद-व्रज की गोप-कुमारिकाएँ तड़के ही उठ चलीं, और यमुना के जल में नहाकर, तट पर की रेत में कात्यायनी की प्रतिमा बनायी। सुगंधित पुष्प और चंदन चढ़ाकर उन्होंने धूप-दीप और विविध उपायन देवी को समर्पित किये। ८०५ [कं.] [अनंतर उन कुमारियों ने यों प्रार्थना की] "हे कात्यायनी ! हे भगवती ! हे माता ! हम तुम्हारे चरणों में सिर नवाती हैं; दया करके, जल्दी से जल्दी श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दो। ८०६ [कं.] हे माता ! जिस दिन कृष्ण हमारा मनोनाथ (पति) बन जायगा उस दिन हम सब सखियाँ भक्ति-चातुर्य के साथ घी का वसंत (होलिका) खेलकर उत्सव मनायेंगी।" ८०७ [व.] इस प्रकार मनौती कर, [प्रतिदिन] हविष्य (निवेदित पदार्थ) खाते हुए उन्होंने मास भर का व्रत पूरा किया। [व्रत रखते समय के] एक दिन··· ८०८ [म.] उन रमणियों ने सवेरे ही जागकर सखियों को उनके नाम ले-लेकर पुकार लिया, और एक-दूसरे के कर-कमलों को पकड़कर सब की सब यमुना तट पर पहुँचीं। कुचों

व. इट्ला नदीतीरंबु जेरंजनि, गजगमनलु विजन प्रदेशंबुन वलुवलु विडिचि यिडि, मदि शंक लेक, यकलंकलै, क्रुंकुलिड जलंबुन जलंबु सॊच्चि ॥ 810 ॥

कं. वारिजलोचनु बाडुचु
वारिजलोचनुलु वारिवारिकि वेड्कन्
वारि - विहारमु सलिपिरि
वारि विहारमुलु जगतिवारिकि गलवे ॥ 811 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 812 ॥

कं. तोयजनयनलु यमुना, तोयमुलंदुंडुटॆरिगि दूरगुडय्युन्
दोयजनयनुडु हरि तन, तोयमु गोपकुलु दानु दोतेंचॆ नृपा ! ॥ 813 ॥

त. कदलकुंडनि तोडिवारल गन्नु सन्नल निल्पुचुन्
बदमुलॊय्यन नेल बॆट्टुचु बद्मनेत्रुडु मौनियै
पॊदलमाटुन नल्ल नल्लन पॊंचि पॊंचि नतांगुडै
यदनु गोरुचु डासि व्रेतल यंबरंबुलु दॊंगिलॆन् ॥ 814 ॥

व. इट्लु दॊंगिलि ॥ 815 ॥

शा. उद्यद्गंधगजेंद्र गौरवमुतो योषांवरंबुल् विभुं-
डाद्युंडर्भकु भंगि नर्मकुलतो हासार्थियै कॊंचु द-

के भार से चलते समय उनकी कमर हिलने लगी; मत्त गजेंद्र की चाल से, पद्माक्ष (कृष्ण) की स्तुति गाते हुए वे सब नदी के किनारे जा लगीं। ८०९ [व.] वहाँ पर उन गजगामिनियों (हाथी की चाल चलनेवालियों) ने एक निर्जन प्रदेश में अपने वस्त्र उतार कर रख दिये, और निर्दोष और निश्शंक भाव से डुबकी लगाने के निमित्त [ठंड से] काँपते हुए नदीजल में उतरीं। ८१० [कं.] वारिज-लोचनी (कमलनयनी) गोप-युवतियों ने वारिजलोचन— (कमलनयन) कृष्ण की [स्तुति] गाते हुए, अपनी-अपनी उमंग के अनुकूल वारिविहार (जलक्रीडा) किया। उनके जैसे विहार (क्रीडाएँ) जगत् के [अन्य] व्यक्तियों को [प्राप्त] नही होते। ८११ [व.] उस समय··· ८१२ [कं.] हे राजन्! उन कमलनयनी-गोपियों को यमुनाजल में स्थित जानकर कमलनयन— कृष्ण, यद्यपि दूर पर था, अपने साथी गोपों को लेकर वहाँ पर पहुँच गया। ८१३ [त.] अपने हमजोलियों को एक जगह खड़ाकर, इशारा किया कि यहाँ से टलना नहीं; और आप —पद्मनयन— मौनधर, धीरे-धीरे क़दम रखते हुए झाड़ियों के पीछे छिप-छिपकर, झुक-झुककर मौका पा समीप पहुँचा और उन गोपियों के वस्त्र चुराये। ८१४ [व.] इस प्रकार चुराकर ८१५ [शा.] मस्त हाथी की तरह गौरवान्वित

न्नद्यंभःकण शीतवात जनितानंदंबुतो नवकं दा-
सद्योमुक्त दुरंत पादप जनुस्संतापमुन् नीपमुन् ॥ 816 ॥

व. अप्पुडय्यितुलिट्लनिरि ॥ 817 ॥

कं. मा मा वलुवलु मुट्टकु, मामा कौनिपोकु पोकु मन्निपु तगन्
मा मानमेल कौनियेंदु, मा मानसहरणमेल मानुमु कृष्णा ! ॥ 818 ॥

सी. बहु जीवनमुतोड भासिलिलि युंडुटो गोत्रंबु निल्पुटो कूमितोड
महि तुद्धरिंचुटो मनुजसिहंबवै प्रजल गाचुटो काक बलि देरलिच
पिन्नवै युंडियु बेंपु वहिचुटो राजुल गेल्चुटो रणमुलोन
गुरु नाज्ञ सेयुटो गुणनिधिवै बल प्रख्याति जूपुटो भव्रलील

आ. बुधुलु मेच्च भुवि प्रबुद्धत मेंड्रयुटो
कलिकितनमु सेय घनत गलदे

चाल से चलकर कृष्ण उन स्त्रियों के वस्त्र चुरा लाया था। संसार की उत्पत्ति-स्थिति-लय का मूल कारण होते हुए भी भगवान विष्णु ने बालक की भाँति अहीर बालिकाओं से हास्य-विनोद करना चाहा। [अतः] यमुना के जलकणों से युक्त शीतल-पवन से आनंद पाकर कृष्ण [उन वस्त्रों के साथ] किनारे पर के एक कदंब-वृक्ष पर चढ़ गया जो [कृष्ण के संस्पर्श के कारण] अपने वृक्ष-जन्म के अपार संताप से तत्काल ही विमुक्ति पा गया था। ८१६ [व.] तब उन युवतियों ने यों कहा··· ८१७ [कं.] हे कृष्ण ! हमारे चीर छूना नहीं; इन्हें छोड़ दो, ले जाना मत। हमारा मानहरण क्यों करते हो, हमें क्षमा कर चीर वापस देना तुम्हें उचित है। हमारा चित्त क्यों चुराते हो, ऐसा मत करो। ८१८ [सी.] तुम्हारा यह [चीरहरण] कार्य अनेक जीवनों से संपन्न होकर रहना या स्नेह-पूर्वक वंशों (गोत्रों) को [सुरक्षित] बनाये रखना; भूमि (भूलोक) का उद्धार करना; मनुज सिंह (श्रेष्ठ) होकर प्रजा की रक्षा करना; अथवा छोटे होकर भी बलवान को दबाकर महत्त्व प्राप्त करना; रण में राजाओं पर विजय पाना; गुरु (पिता) का आज्ञापालन करना; गुणनिधि (सद्गुणी) बनकर बलवान् होने की कीर्ति पाना; [आ.] बुद्धिमानों की प्रशंसा पाते हुए प्रबुद्धता (ज्ञान) से लोक में प्रसिद्ध होना —ऐसे कार्यों के समान नहीं है। ऐसे काम तुम्हें शोभादेते परंतु तुम तो शरारत करते हो। ऐसी दुष्टता (कलंकी नीयत) से तुम्हें गौरव नहीं मिलता। तुम्हें अपने-पराये का बोध नहीं है। हम तुम्हारे स्वजन हैं। हे कृष्ण ! हमें अपने कपड़े वापस कर कृतार्थ करो। [इस पद्य में श्लेषार्थ से विष्णु के दशावतारों का उल्लेख किया गया है; जैसे :) तुम्हारा यह वस्त्रापहरण बहुत से जीवनों (जलराशि) में भासित होना नहीं है (मत्स्यावतार का संबंध

वाविलेदु वारि वारु ना वारनि
यॅरुग वलदे वलुवलिम्मु कृष्ण ! ॥ 819 ॥

कं. कॊटिवि मा हृदयंबुलु
कॊटिवि मा मनमु लज्ज गॊटिवि वलुवल्
गॊटिविक नॆट्लु चेसॆदॊ
कॊटॆवु गद निन्नु नॆरिगिकॊटिमि कृष्णा ! ॥ 820 ॥

सी. राजसंबुन नीवु रंजिल्लुटॆरुगमे, चॆलरेगि वितलु चेयुचुंड
सत्वसंपद गलिग जरुगुट दलपमे, सिरिगलिग यन्युल जॆनकुचुंड
गुरुतर शक्तियुक्तुडवौट जूडमे, तामसंबुन नॆग्गु वलचुचुंड
नीक भंगितो नुंडकुंट जितिपमे, मायाविवै माय मलयुचुंड

सूचित है); स्नेह-पूर्वक गोत्रों (पर्वतों) को स्थिर करना नहीं (कूर्मावतार में मंदराचल को उठाये रखना); भूमि का उद्धार करना नहीं (वराहावतार में पृथ्वी को डूबने से बचाना); मनुजसिंह (नृसिंह) होकर भक्त प्रजा की रक्षा करना नहीं है (नृसिंह के रूप में हिरण्यकशिपु का वध करना); छोटे (वामन) होकर भी बलवान (बलि चक्रवर्ती) को दबाकर महान् बनना नहीं है (वामन बनकर बलि चक्रवर्ती को पाताल में दबा देना और ब्रह्मांड में फैल जाना); रण में राजाओं पर विजय पाना नहीं है (परशुराम बनकर समस्त क्षत्रियों का वध कर डालना); गुरु (पिता) की आज्ञा का पालन करना नहीं है (रामावतार में पितृवाक्य [वचन] पालन करना); गुणनिधि (समस्त कल्याणगुणों से युक्त) होकर बलवान् कहलाकर कीर्ति पाना नहीं है (कृष्ण और बलराम के अवतारों का कार्य); बुद्धिमानों से प्रशंसा पाकर प्रबुद्धता (बोधिसत्व के ज्ञान) से लोक-प्रसिद्ध होना नहीं है (बुद्ध होकर संबुद्धि का प्रचार करना); कल्कि की चेष्टा तुम्हें शोभा नहीं देती (दुष्टता अनुचित है)— कल्कि अवतार में होनेवाला कार्य। इस प्रकार कवि ने श्लेषात्मक रचना की है] ८१९ [कं.] हे कृष्ण ! तुमने हमारा हृदय ले लिया, हमारा मन और लाज भी लूट लिया; [आखिर] हमारी साड़ियाँ भी चुरा ली; अब आगे क्या करोगे, पता नहीं। हमने जान लिया कि तुम नटखट हो। ८२० [सी.] तुम्हें खुलकर (बेरोक-टोक) अजीब-अजीब काम करते देखकर भी हम जानती हैं कि तुम राजसी गुण से विभूषित हो; लक्ष्मीवान् होकर भी तुम दूसरों को सताते रहते हो, तो भी हम समझती हैं कि तुम सत्वगुण-संपन्न होकर वर्तन (आचरण) करते हो; यद्यपि तामस के वश हो तुम [दूसरों की] बुराई सोचते हो तो भी हम देखती हैं कि तुम महान् शक्तिशाली हो; तुम्हें मायावी होकर विविध वेषों में फिरते देखकर हम समझती है कि तुम कभी एकरीति से नहीं रहते हो; [आ.] [वास्तव

आ. नेमि जाडवाड वेपाटि गलवाड, वे गुणंबु नेरुग वेल्ल यॆडल
नॊंदिगि युंडनेर वोरंत प्रोद्दुतु, बटमु लीगवय्य ! पद्मनयन ! ॥ 821 ॥

कं. राजु नेरुंगवु बलिम्निनि, राजिल्लॆदु चीर लीवु रमणुल मिकन्
राजुन केरिगिचॆद मो, राजीवदळाक्ष ! नीवु राजवॆ धरकुन् ॥ 822 ॥

व. अनि पलिकिन कन्नियल पलुकुलालिंचि, मंदहास सुंदर वदनारविंदुडै, गोपाल बालकुल करंबुलं गरंबुलु वेसि, यम्मुद्दियलनुद्देशिंचि नेरवादि चतुरुंडिट्लनियॆ ॥ 823 ॥

शा. रामल् राजुलतोड नी पनिकि नारंभितुरे मीकियन्
मोमाटेमियु लेक दूरॆदरु मी मोसंबु चिंतिप रं-
भो मध्यंबुन नुंडि वॆल्वडि वॆसन् बूर्णेंदु बिंबाननल्
मी मी चीरलु वच्चि पुच्चुकोनुडी मोकिच्चॆदं जॆच्चेरन् ॥ 824 ॥

व. अनिन नम्मानवतुलॊंडोरुल मोगंबुलु सूचि नगुचु, मर्मंबुल नाटिन माटलकु मगुडं बलुक सिग्गुपडुचु, नग्गलंबैन चलिनि वलिगोनि, कंठप्रमाण जलंबुलंदुंडि, डोलायमान मानसलै, यिट्लनिरि ॥ 825 ॥

कं. मा वलुवलु लाघवमुन, नी वेटिकि बुच्चुकोंटि वी वल्पुडवे
नी वॆरुगनि देमुन्नदि, नी वंदरिलोन धर्मनिरतुडवु गदे ॥ 826 ॥

में] तुम किस चाल-ढाल के हो? तुम कितनी संपत्ति रखते हो? तुममें कोई गुण नहीं है; तुम किसी स्थान में, किसी समय में बचकर (अलग होकर) रहना नहीं जानते (सर्वव्यापी हो)। हे कमलनयन कृष्ण! हमें अपने वस्त्र दे डालो न? ८२१ [कं.] तुम राजा को नहीं मानते हो, अपने बल से चमकते हो; [माँगने पर भी] तुम हमारे कपड़े दे नहीं रहे हो; हम स्त्रियाँ हैं [अब चुप नहीं रहतीं] राजा को बता देंगी। हे राजीवदलाक्ष (कमल-लोचन)! इस धरती का मानों तुम्हीं राजा हो।" ८२२ [व.] उन कन्याओं की ये बातें सुनकर सुंदर मुखारविंद से मुस्कुराते हुए, अपने गोपाल बालकों के हाथ में हाथ डालकर, उन सुंदरियों को लक्ष्य करके चतुरों में चतुर, कृष्ण ने यों कहा: ८२३ [शा.] "रमणियाँ तुम लोगों की तरह कहीं राजाओं से ऐसे काम के निमित्त व्यवहार करती हैं? तुम लोग निस्संकोच मेरी निंदा कर रही हो, अपनी भूल का विचार नहीं करतीं। पूर्णचंद्र-सदृश मुखवाली हे ललनाओ! जल से बाहर निकलकर अपने-अपने वस्त्र ले लो; उन्हें मैं तुरंत दे दूँगा।" ८२४ [व.] यह सुन वे मानवती स्त्रियाँ एक-दूसरी का मुँह देख हँसते हुए [कृष्ण के] हृदय-वेधक वचनों का उत्तर देते लजाने लगीं। अत्यधिक शीत से ठिठुरती हुई गले तक के जल में रहकर उन्होंने डोलायमान मन से यों कहा: ८२५

म. इंतुल् तोयमुलाडुचुंड मगवारेतॅंतुरे वच्चिरा
यितल् सेयुदुरे कृपारहितुलै ये लोकमंदैन नी
वितल् नी तल वुट्टॅ गाक मरि येवी कृष्ण ! यो चॅल्ल ! नी
चॅंतन् दासुलमै चरिचॅंदमु मा चेलंबुलिप्पिपवे ॥ 827 ॥

कं. वच्चॅंदमु नीवु पिल्चिन,
निच्चॅद मेमैन गानि यट्टु चॊरुमनिनं
जॊच्चॅंदमु नेडु वस्त्रमु-
लिच्चि ममुं गरुणतोड नेलुमु कृष्णा ! ॥ 828 ॥

व. अनिन दरहसितवदनुंडै हरि यिट्लनियॅ ॥ 829 ॥

कं. ए तरुणुडु मगडौटकु, मी तपमुलु चॅप्पुडिक मी यानलु सुं-
डी तप्पिन नी कूरिमि, मी तललनॅ पुट्टॅ नोट्ट मेविनि लेदे ॥ 830 ॥

कं. ऎव्वनि गनि मोहिचिति, -रॅव्वडु मी मानधनमुलॅल्ल हरिचॅन्
निव्वटिलॅनु मी कूरिमि, यॅव्वनि पै वलुकरावॅ ये नन्युडने ॥ 831 ॥

व. अनिन विनि, सुंदरुलन्योन्य संदर्शनंबुलु सेयुचु, हृदयारविंदंबुल गंदपुॅडु
संदडिप नगुचु, निरुत्तरलै युन्न लोकोत्तरुंडिट्लनियॅ ॥ 832 ॥

[कं.] तुमने धृष्टता से हमारे कपड़े क्यों लिये ? तुम अल्प (छिछोरे) नहीं हो। [सदाचार के विषय में] ऐसा क्या है जो तुम नहीं जानते ? सब लोगों में तुम धर्मशील हो, संदेह नहीं है। ८२६ [म.] स्त्रियों के स्नान करते समय [उस स्थान पर] क्या पुरुषों का आना उचित है ? अथवा आये हों तो भी निर्दयता से क्या ऐसा कर सकते ? लोक में कहीं ऐसा होता है ? ऐसी विचित्रता क्या तुम्हारे ही मस्तिष्क में पैदा हुई ? [या कहीं अन्यत्र भी है ?] हाय रे ! हे कृष्ण ! हम तुम्हारी दासियाँ होकर रहेंगी, हमारे कपड़े दिला दो न ! ८२७ [कं.] जब-जब तुम बुलाओगे, हम चली आयेंगी; जो भी माँगो, दे देंगी; जिस जगह जाने को कहोगे, जायेंगी; हे कृष्ण ! आज हमारे कपड़े देकर, दयापूर्वक हमारा पालन करो।" ८२८ [व.] [गोपियों के] ऐसा कहने पर दरहसितवदन होकर (मुस्कुराते हुए) हरि ने यों कहा— ८२९ [कं.] किस तरुण-युवक को पति बनाने के निमित्त तुम लोग यह तप (व्रत) कर रही हो ? अब मुझे बताओ। नहीं बताओगी तो तुम पर मेरी आन (सौगन्द)। यह अनुराग [संभवतः] तुम्हारे ही मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ है। क्यों ? लोक में अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता। ८३० [कं.] किस को देखकर तुम लोग मोहित हो गई हो ? तुम्हारा मान-धन किसने हर लिया ? किस पर तुम्हारा प्रेम बढ़ गया है ? मुझसे कहो न ? मैं कोई पराया (व्यक्ति) थोड़े ही हूँ ?" ८३१ [व.] यह सुनकर सुंदरियाँ एक-दूसरी को निहारती रहीं, जब उनके

कं. ना यिंटिकि दासुलरै, ना याज्ञ वहिंचि मीरु नडचेंदरेनिन्
मी यंबरंबुलिच्चेंद, दोयंबुलु वेडलि रंडु तोय्यलुलारा ! ॥ 833 ॥

व. अनिनि विनि, हरि-मध्यलु चलिकि वेरचि, सलिल मध्यंबुन निलुव नोपक ॥ 834 ॥

कं. कोंदरु वेडलुदमंदुरु, कोंदरु वेडलुटयु सिग्गु गोनु गोविंदुं-
डंदुरु कोंदरु दमलो, गोंदल मंदुदुरु वणकु गोनि मनुजेंद्रा ! ॥ 835 ॥

व. मरियु नेट्टकेलकु जित्तंबुलु गट्टि परचुकोनि, तनुमध्यलु तोयमध्यंबु वेलुवडि ॥ 836 ॥

कं. चंचत्पल्लवकोमल, कांचन नवरत्नघटित कंकण रुचिरो-
वंचित कर संछादित, पंचायुधगेहलगुचु बडतुलु वरुसन् ॥ 837 ॥

व. चनि प्रौढलयिन सुंदरुल मुंदरु निडुकोनि, मंदगमनलु मंदहासंबुतोड नेदुर निलिचिन, नरविंदनयनुंडिट्लनिये ॥ 838 ॥

सी. शृंगारवतुलार ! सिग्गेल मिमु गूडि, पिन्न नाटनु गोले बेरिगिनाड
नेरुगने मीलोन नेप्पुडुनुन्नाड, नेनु जूडनि मर्ममेद्दि गलदु
व्रतनिष्ठलेयुंडि वलुवलु गट्टक, नीरु सोत्तुरे मीरु नियति दप्पि
कात्यायनी देवि गल्ल सेयुट गाक, नीरीति नोमु वारेंदु गलरु

मनों में कंदर्प (मन्मथ) हलचल मचाने लगा तो वे हँसती हुई चुप रह गयीं। उत्तर देते नहीं बना। तब उस लोकोत्तर [पुरुष] कृष्ण ने [इस प्रकार] कहा''' ८३२ [कं.] "यदि तुम मेरे घर की दासियाँ बनकर, मेरी आज्ञा का पालन करती रहोगी तो तुम्हारी साड़ियाँ वापस दे दूँगा। हे वनिताओ! जल छोड़ बाहर आ जाओ।" ८३३ [व.] सिंहोदरियों ने (पतली कमरवालियों ने) यह वचन सुना। वे शीत से त्रस्त हो गयीं; जल में खड़ा रहना कठिन हो गया। ८३४ [कं.] [उनमें से] कुछ ने कहा कि हम बाहर निकलेंगी; और कुछ ने कहा— बाहर निकलने पर गोविंद (कृष्ण) हमें लज्जित करेगा। हे मनुजेंद्र (राजा परीक्षित) ! अन्य स्त्रियाँ काँपती हुई मन ही मन व्याकुल हो उठीं। ८३५ [व.] फिर भी अंततोगत्वा (अखिरकार) मन को मज़बूत बनाकर वे तनुमध्याएँ (पतली कमर की स्त्रियाँ) तोयमध्य (जल के बीच में) से बाहर निकल आयीं। ८३६ [कं.] सुंदर पल्लवों के समान कोमल और नवरत्नों से मढ़े हुए सुवर्ण-कंकणों से विभूषित हाथों से अपने मर्मस्थल को छिपाकर वे युवतियाँ एक-एक करके ८३७ [व.] चली आयीं। प्रौढ़ा (अधिक वयवाली) स्त्रियों को आगे करके वे सब धीरे-धीरे चलकर मंदहास करती हुई [कृष्ण के] सामने जा खड़ी हो गयीं। तब अरविंदनयन (कमलनयन) कृष्ण ने उनसे

आ. व्रतमु फलमु मीकु वलसिन जवकग
नितुलॅल्ल जेतुलॅत्ति म्रॊक्कि
चेरि पुच्चुकॊनुडु चीरलु सिग्गु वो-
नाड नेल यॅग्गुलाडनेल ॥ 839 ॥

व. अनिन विनि, मानवतुलु दमलोन ॥ 840 ॥

म. व्रतमुल् सेयुचु नॊक्क माटयिन नॆव्वानिन् विचारिंचिनन्
व्रतभंगंबुलु मानु नट्टि वरवुन् वामाक्षुलीक्षिंचियुन्
गत चेलाप्लवनंबु नेडु व्रतभंगंबंचु शंकिंचि फा-
लतट न्यस्त कराब्जलै सरस लीलन् म्रॊक्किरद्दलंदरुन् ॥ 841 ॥

क. बाललकु हस्तकीलित
फाललकु नितांत शीत पवनागम ना-
लोललकु नंबरमुलु कृ-
पालुडु हरि यिच्चॆ भक्त पालकुडगुटन् ॥ 842 ॥

आ. चोरलपहरिंचि सिग्गुलु विडिपिंचि
परिहसिंचियैन वरग मनकु

यों कहा— ८३८ [सी.] "हे सुंदरियो ! तुम [मेरे सामने] लज्जा क्यों करती हो ? बचपन से मैं तुम लोगों के साथ रहकर पला हूँ; क्या मैं तुम लोगों को जानता नही हूँ ? मैं सदा तुम लोगों में ही रहा। तुम्हारा ऐसा कौन सा मर्म (रहस्य) है जो मैं नही जानता ? व्रत की निष्ठा बरतते हुए तुम लोगों ने नियम तोड़ विवस्त्र होकर जल में प्रवेश किया। क्या ऐसा करना उचित था ? यह तो कात्यायनी देवी का अपमान करना है। इस रीति व्रत रखनेवाले कहाँ होगे ? [आ.] यदि तुम व्रत का फल पाना चाहती हो तो सभी हाथ जोड़ नमस्कार करके अपने वस्त्र ले लो। लज्जा छोड़ चलना क्यों, और मुझे बुरा-भला कहना क्यों ?" ८३९ [व.] यह सुनकर उन मानवतियों ने [मन में विचार किया] ८४० [म.] व्रत पालते समय जिसका एक बार ही सही, स्मरण करने पर व्रत भंग नही होता (दोष का निवारण होता) उस वरदायक [भगवान कृष्ण] को सामने पाकर भी उन वामाक्षियों (सुंदर नेत्रवालियों] को यह शंका हुई कि सचमुच नंगे होकर नहाने से आज उनका व्रत भंग हुआ है, अतः उसके निवारण के लिए उन सब ने [कृष्ण के कहे अनुसार] अपने कर-कमल ललाट से लगाकर विलास के साथ नमस्कार किया। ८४१ [कं.] उन बालाओं को, जिनका हस्त-संपुट फाल भाग को छू रहा था, और जो अत्यंत शीतवात के लगने से काँप रही थी, कृपालु हरि ने भक्त-पालक होने के कारण वस्त्र दे दिये। ८४२ [आ.] उन अबलाओं ने यह कहकर हरि

घनुडु नोमु कोरत गाकुंड नोंविकचे
ननुचु हरि नुतिंचिरबललेल्ल ॥ 843 ॥

कं. उल्लमुलु नोव्व नाडिन
गल्ललु चेसिननु नगिन गलचिननैनन्
वल्लभुलु सेयुकृत्यमु
वल्लभलकु नेग्गु गादु वल्लभमधिपा ॥ 844 ॥

व. इट्लु हरि वलुवलिच्चिनं गट्टुकोनि, सतुलतनियंदु बद्धानुरागलै, युच्चरिपक, रेप्पलिडक, तप्पक चूड, नाप्रोड येरिगि, चेरि, वारि-किट्लनिये ॥ 845 ॥

सी. लक्षणवतुलार ! लज्जिचि चेप्परु गानि मी मर्ममुल् गानबडिये
ननु गोल्व जिंतिंचिनारु ना चेतनु सत्यंबु मी नोमु सफलमगुनु
गामितार्थंबुल कलिमि चेप्पग नेल ननु गोल्व मुक्तिकि नडववच्चु
गडम गूडग नंबिकादेवि नोमंग नटमीद रात्रुलयंदु मीकु

आ. नन्नु वोंद गलुगु नम्मि पोंडनि हरि
पलक नितुलेल्ल भ्रांति जनिरि
तपमु पंडननुचु दत्पदांभोजमुल्
मानसिचुकोनुचु मंदकडकु ॥ 846 ॥

की स्तुति की कि, इस महान् [पुरुष] ने हमारे कपड़े चुराकर, लज्जा छुड़ायी, परिहास करके अंत में हमसे हाथ जुड़वाये और व्रत भंग होने से बचाया। ८४३ [कं.] हे राजन् ! हृदयविदारक वचन कहने, धोखा देने, हंसी उड़ाने, और दुख देने के कृत्य प्रियतम जो करते हैं वह सब प्रियाओं को बुरे नहीं लगते, प्रीतिकर ही लगते हैं। ८४४ [व.] यों हरि (कृष्ण) के दिये वस्त्र पहनकर, गोप-बालाएँ कृष्ण में अनुरक्त हुईं; मुँह खोल कुछ बोलीं नहीं, विना पलक मारे एकटक निहारती रहीं। उस प्रौढ़ [कृष्ण] ने उनका मन जानकर, समीप जाकर उनसे इस प्रकार कहा— ८४५ [सी.] हे सुलक्षणवाली ललनाओ ! लज्जा के वश हो तुम कहती नहीं हो, किंतु तुम्हारा मर्म (रहस्य) मुझे स्पष्ट हुआ (मैं जान गया); तुमने मेरी सेवा करने की कामना की है; मेरे द्वारा तुम्हारा यह व्रत अवश्य सफल हो जायगा। मेरी सेवा करने पर कामितार्थ-प्राप्ति (चाही वस्तु पाने) की बात का क्या कहना— मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है। अंबिका-देवी (कात्यायनी) का यह व्रत समाप्त करने के बाद तुम लोग रात के समय आकर [आ.] मुझसे मिल सकोगी। मुझ पर विश्वास रखकर तुम अब घर चली जाओ।" कृष्ण का यह वचन सुनकर उन युवतियों ने समझा

व. इट्लु गोपकन्यलंदु प्रसन्नुडै, गोविंदुडु बृंदावनंबु दाटि, दूरंबुन धेनुवुल मेपुचुंड, जंडकिरणुनि यॆंड वडि, दंडि जॆंडि, तरलबंड नंडगोनुचु, मातपत्राकारुलै नीडलु सेयुचुन्न वृक्षंबुल नीक्षिंचि, कृष्ण बल श्रीदाम देवप्रस्थ विशालार्जुन प्रमुखुलकुं दक्किन गोपकुलिट्लनिरि ॥ 847 ॥

मुनिभार्यलन्नमु तीसिकॊनि वच्चि स्वामि कारगिंपु चेयुट

म. अपकारंबुलु सेय वॆव्वरिकि नेकांतंबुलंदुंडु ना-
तप शीतानिल वर्ष वारकमुलै त्वग्गंध निर्यास भ-
स्म पलाशाग्र मरंदमूल कुसुमच्छाया फलश्रेणिचे
नुपकारंबुलु सेयु नर्थुलकु नी युर्वीजनुल् गंटिरे ॥ 848 ॥

व. अनि चिगुराकु पुव्वु काय पंडु तंडंबुल व्रेगुन वीगिन तरुवुल नडिमि तॆरुवुल वसुलदाट्ल दाटिंचि, यमुनकुं जनि, वॆडद मडुगुल मॆल्लन चल्लनि नीरु द्राविंचि, तत्समीपंबुन मेपुचु ।

कि उनका तप सफल हुआ है। वे अपने मन में कृष्ण के चरण-कमलों का ध्यान करती हुई व्रज में जा पहुँचीं। ८४६ [व.] इस प्रकार गोप-कन्याओं से प्रसन्न हो [उन्हें विदा करने के बाद] गोविंद (कृष्ण) बृन्दावन पार कर दूर जा धेनुओं को चरा रहा था। सूरज की कड़ी धूप में थक कर वृक्षों की छाया में आश्रय लिया। विशाल छत्रों के समान फैलकर छाया देनेवाले उन वृक्षों को देखकर अन्य गोप-कुमारों ने कृष्ण, बलराम, श्रीदाम, देवप्रस्थ, विशालार्जुन आदि मुखिया लोगों से यों कहा : ८४७

मुनिपत्नियों का अन्न-आहार लाकर स्वामी को अर्पित करना

[म.] "इन वृक्षों को तो देखिये जो एकांत में रहते और किसी का अपकार नहीं करते। सर्दी, गरमी, हवा और पानी को रोककर [लोगों को सुख पहुँचाते हैं।] इतना ही नहीं अपनी छाल, गंध, गोंद, राख, कोंपल, मकरंद, जड़, कुसुम (फूल), छाया और फल आदि आश्रितों को समर्पित कर उनका उपकार करते हैं।" ८४८ [व.] यों कहकर वे लोग पत्र-पुष्प-फल-भार से झुके हुए वृक्षों के बीच के मार्गों से अपने गाय-बैलों को यमुना नदी पर हाँक ले चले; वहाँ के विशाल ह्रदों में ठंडा पानी पिलाकर तट पर के मैदान में घास चराने लगे।

अध्यायमु—२३

व. वल्लवुलॅल्ल मूकलु गोनि, याकलि गॉटिमनि विन्नविंचिन, दनकु भक्तुरांड्रगु विप्र भार्यल वलनं ब्रसन्नुंडयि, वारल जूचि, राम सहितुं-डयिन हरि यिट्लनियें ॥ 849 ॥

सी. वल्लवुलार! यी वनमुन विप्रुलु ब्रह्मवादुलु देव भवनमुनकु नरुगुट गोरि यांगिरसाह्वं सत्रंबु सलुपुचुन्नारु सनुडु मीरु मा नाममुलु सॅप्पि मंत्रितो नडिगिन नन्नंबु वॅट्टुदुरनुचु वलुक वारलु चनि विप्र वरुल कॅल्लनु म्रॉक्कि पलुल मेपुचु बलभद्र कृष्णु

ते. ललसि पुत्तॅंचिरिट ममु नन्नमडुग
धर्म विदुलार! यर्थि प्रदातलार!
पॅट्टुडन्नंबु; श्रांतुल बिलिचि तॅच्चि
पॅट्टुदुरु गादॅ मिमु बोटि पॅद्दलॅल्ल ॥ 850 ॥

कं. घन दीक्षितुनकुनॅनं
जनु गुडुवग पशुवधंबु सौत्रामणियुं
जनिन वॅनुक दोषमु ले-
दनघात्मकुलार! पॅट्टुडन्नमु माकुन् ॥ 851 ॥

व. अनि गोपकुलु वलिकिन ॥ 852 ॥

अध्याय—२३

[व.] सब ग्वालों ने इकट्ठे होकर राम और कृष्ण से विनती की कि हमें भूख लगी है; तब हरि ने, जो विप्र-पत्नियों की भक्ति से प्रसन्न हो गये थे, गोपों से यों कहा: ८४९ [सी.] हे गोपालको! इस वन में ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण स्वर्ग की अभिलाषा से आंगिरस नामक सत्रयाग कर रहे हैं; तुम लोग वहाँ जाकर हमारा नाम लो और स्नेहपूर्वक अन्न माँगो तो वे तुम सबको खिलायेंगे।" कृष्ण का कहना सुन वे चरवाहे याग की जगह पहुँचे और विप्रों की वंदना करके कहा— 'हे धर्मज्ञ विप्रो! वलभद्र और कृष्ण गाय चराते-चराते थक गये है, [आ.] आपसे अन्न माँगने के लिए उन्होंने हमें यहाँ पर भेजा; याचकों के आप प्रदाता हैं; अब हमें अन्न दीजिए। आप जैसे पूज्य व्यक्ति भूख से थके-माँदे लोगों को बुला-बुलाकर अन्न दान करते हैं न? ८५० [कं.] यज्ञ-पशु का वध और इंद्र-देवता का होम-कर्म समाप्त होने के बाद व्रतदीक्षा रखनेवाला भी यदि भोजन करे तो कोई दोष न होगा; अतः हे पापरहित-हृदयवाले ब्राह्मण! हमें अन्न दिला दीजिए। ८५१

म. क्रतुवुन् मंत्रमु तंत्रमुन् धनमुलं गालंबु देशंबु दे-
वतयुन् धर्ममु नन्यमुल् दलपनॆव्वाडट्टि सर्वेश्वरुन्
मति नूहिंपक गोपबालुडनुचुन् मंदस्थिति जूचि दु-
र्मतुलै यन्नमु लेदु लेदनिरि सन्मान-क्रिया-शून्युलै ॥ 853 ॥

व. अंत गोपकुलु निराशुलै वच्चि, यॆरिंगिंचिन, हरि लौकिकानुसारि यगुचु, मीरय्यार्युल नडुगक, वारि भार्यलकु मा राक चॆप्पुंडु। अन्नंबु वॆट्टॆदरु। अनि पंचिन वारु चनि, ब्राह्मण सतुल दर्शिंचि, नमस्करिंचि, संपूजितुलै, यिट्लनिरि ॥ 854 ॥

कं. गोवुल मेपुचु नाकॊनि, गोविंदुडन्न मडिगिकॊनि रंडनि म-
म्मी वेळनु बुत्तॆंचॆनु, धीविलसितलार! रंडु तॆंडन्नंबुल् ॥ 855 ॥

व. अनिन विनि, गोविंद संदर्शन कुतूहललै, धरणीसुर सुंदरलु, संभ्रमानंदंबुलु डॆंदंबुल संदडिप, भक्ष्यभोज्य लेह्य चोष्य पानीय भेदंबुलं गलिगि, संस्कार संपन्नंबुलयिन यन्नंबुलु कुंभंबुल निडुकॊनि, संरंभंबुल समुद्रंबुलकु नडचु नदुल तॆरंगुन ॥ 856 ॥

[व.] गोपों के इस तरह कहने पर ८५२ [म.] याग-यज्ञ, मंत्र-तंत्र, धन-दौलत, देश-काल, धर्म-देवता और अन्य सब कुछ यही [कृष्ण] है और यही सर्वेश्वर है—इस सत्य को न जानकर उन ब्राह्मणों ने उसे (कृष्ण को) केवल गोपबालक कहकर हीनभाव से देखा। उन्होंने आदर-सत्कार करना छोड़कर दुर्बुद्धि से [गोपों को] अन्न देने से इनकार किया। ८५३ [व.] तब उन ग्वालों ने निराशा से वापस आकर कृष्ण को सब हाल बता दिया; उन्होंने व्यावहारिक रीति का अवलंबन कर उन लोगों को यह कहकर वापस भेज दिया कि तुम लोग उन ब्राह्मणों से मत माँगो, उनकी पत्नियों को हमारा आगमन सूचित करो, तब वे तुम्हें अन्न दे देंगी। वे ग्वाले वैसे ही ब्राह्मण-पत्नियों के समीप जा नमस्कार कर सम्मानित हुए। उन्होंने कहा: ८५४ [कं.] "हे बुद्धिमती महिलाओ! गाय चराते-चराते गोविंद (कृष्ण) क्षुत्पीड़ित हुआ है, अतः हमें आपसे अन्न माँग लाने को भेजा; हमें अन्न दिलवा दीजिए।" ८५५ [व.] ये वचन सुनकर उन ब्राह्मण-सुंदरियों के मन में गोविंद के दर्शन का कुतूहल पैदा हुआ; उनके हृदयों में संभ्रम और आनंद हिलोरें लेने लगा; तब वे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य, और पानीय भेदों से सुसंस्कृत अन्नाहार घड़ों में भर-भरकर समुद्र से मिलने जानेवाली नदियों के समान [कृष्ण के पास चल पड़ीं।] ८५६ [कं.] उन महिलाओं के पति, पुत्र, भाई—सबने उन्हें जाने

कं. विड्डुलु मगलुनु भ्रातलु,
नड्डमु चनि वलदनंग नट्टु दलडनि मा-
ट्टोड्डुचु जगदीश्वरुनकु
जड्डन नन्नंबु गोनुचु जनिरा सुदतुल् ॥ 857 ॥

व. चनि यमुना समीपंबुन नव पल्लवातिरेकंबुनु, विगत वनचर शोकंबुनु नयिन यशोकंबु क्रिंद निर्मल स्थलंबुन ॥ 858 ॥

सी. ऒक चॆलिकानिपै नॊक चॆय्यि चाचि वेरॊक्कचेत लीलाब्जमूचुवानि
गॊप्पुन कंदनि कॊन्नि कुंतलमुलु चॆक्कुल नृत्यंबु लेयुवानि
गुरुच चुंगुलु पुच्चि कॊमरार गट्टिन पसिडि वन्नॆलु गल पटमुवानि
नोदल दिरिगिरा नलवड जुट्टिन दट्टंपु विछपु वंडवानि

ते. राजितोत्पल कर्णपूरमुलवानि
महित पल्लव पुष्पदाममुलवानि
भुवन मोहन नटवेष भूतिवानि
गनिरि कांतलु कन्नुल करवु दीर ॥ 859 ॥

कं. कनि लोचनरंध्रंबुल
मुनुमिडि हरि ललितरूपु मुनु लोगोनि लॆं-
स्मनमुल बरिरंभिंचिरि
तनुमध्यलु हृदयजनित तापमु वायन् ॥ 860 ॥

से रोका, फिर भी उन्हें हटाते हुए वे लोग जगदीश्वर [कृष्ण] को [देने के लिए] अन्न लेकर गईं। ८५७ [व.] चलकर वे यमुना के समीप ऐसे एक अशोक वृक्ष के नीचे निर्मल स्थल पर पहुँचीं जो नये-नये पत्तों से शोभायमान था, और प्रसन्न खग-मृगों के साथ सुंदर लगता था। ८५८ [सी.] वहाँ पर उन रमणियों ने जब कृष्ण को देखा तो उनके भूखे नेत्रों को दावत मिल गई। [तब कृष्ण] एक हाथ अपने एक सखा पर डाल, दूसरे में लीला-कमल लेकर हिला रहा था; उसके घुँघुराले वाल, जो शिखा तक पहुँच नहीं पाते थे, कपोलों पर नाच रहे थे। चुनन डालकर घुटनों तक पहना हुआ उसका पीतांबर अत्यंत सुंदर लग रहा था। मोरपंखों की घनी माला उसके सिर को घेरकर मनोहर दिखाई देती थी। [ते.] कानों में कमल के फूल खोंसे हुए थे। रंग-बिरंगे पत्तों और पुष्पो के गजरों के साथ कृष्ण ने, जो नट (नर्तक) का मनोहर वेष बना रखा था, वह सारे संसार को मोहित करनेवाला था। ८५९ [कं.] [कृष्ण को देख] उन पतली कमरवाली सुंदरियों ने, अपने नेत्र-रंध्रों के द्वारा हरि के सुंदर रूप को ज़रा-ज़रा करके पी लिया था। उसे अपने हृदयों में भरकर आलिंगन कर लिया जिससे उनके हृदयों का [विरह] ताप दूर हुआ। ८६० [व.] इस

व. इट्लिवधंबुन ॥ 861 ॥

कं. वारित सर्व स्पृहलै
वारंदरु वन्नुजूड वच्चुट मदिलो
वारिजनयनुडु पोडगनि
वारिकि निट्लनियं नगि यवारित दृष्टिन् ॥ 862 ॥

शा. कांतारत्नमुलार! मी गृहमुलं गल्याणमे येमि गा-
वितुन् मीकिट्टु रंडु मम्मु निचटन् वीक्षिप नेतिचिना-
रैंतो वेडुकतो नेरुंगुदुमु निर्हेतुस्थितिन् नन्नु धी-
मंतुल् मीक्रिय जेरि कंदुरु गदा मत्सेवलन् सर्वमुन् ॥ 863 ॥

व. कावुन गृहस्थुलैन मी पतुलु मिम्मुं गूडि क्रतुवु समाप्ति चेसेंदरु। मीरु यागवाटंबुनकुं जनुंडु। अनिन, विप्रभार्यलिट्लनिरि ॥ 864 ॥

म. तगुने माधव! यिट्टि वाडि पलुकुल् धर्मंबुले यिट्टयेडन्
मगलुन् बिड्डलु सोदरुल् जनकुलुन् मम्मुन् निवारिप म-
च्चिग नी यंघ्रुलु चेरिनारमट वोजेकोंदुरे वार ला-
पगिदे मोल्लमु किंकरीजनुलगा भाविंचि रक्षिपवे ॥ 865 ॥

व. अनिन जगदीश्वरुडु ॥ 866 ॥

प्रकार ८६१ [कं.] कमलनयन कृष्ण ने मन में यह विचार कर कि ये ललनाएँ सभी अभिलाषाओं को छोड़ केवल मुझे देखने आयी हैं, स्थिर दृष्टि से हँसकर उनसे यों कहा : ८६२ [शा.] "हे स्त्रीरत्न ! तुम्हारे घरों में सबका कल्याण है न ? इधर आओ, मैं तुम्हारा किस तरह से भला करूँ ? हमें देखने के लिए तुम लोग चाव से यहाँ आयी हो; हम इस बात को [अच्छी तरह] जानते हैं। बुद्धिमान लोग तुम्हारे ही समान बिना किसी हेतु के मेरे यहाँ आते हैं और मेरी सेवा करके समस्त [शुभ] फल प्राप्त करते हैं। ८६३ [व.] अतः तुम्हारे पति, जो गृहस्थ-धर्म पालते हैं, तुम्हें साथ रखकर यज्ञक्रतु समाप्त करेंगे। अतः तुम लोग अब यज्ञशाला पहुँच जाओ।" —यह सुन उन विप्रपत्नियों ने कहा। ८६४ [म.] "हे माधव ! ऐसे कठोर वचन कहना क्या तुम्हें उचित है ? हमारे विषय में यही धर्म है ? पति, पुत्र, पिता, भ्राता लोग हमें रोक रहे थे, फिर भी स्नेहवश हम तुम्हारे चरणों के पास चली आयी हैं; अब हम वहाँ जायेंगी तो क्या वे हमें स्वीकार करेंगे ? वैसा जाना हमें पसंद नहीं है। हमें अपनी सेविकाएँ समझकर हमारी रक्षा करो।" ८६५ [व.] तब जगदीश्वर (कृष्ण) ने [उन्हें इस प्रकार आश्वासन दिया]... ८६६ [सी.] मेरे पास रहने के

सी. ना समीपमुननुन्नारंचु नलुगरु, बंधुलु भ्रातलु बतुलु सुतुलु
मिम्मु देवतलैन मॅत्तुरंगनलार ! ना देह संगबु नरुल कॅल्ल
सौख्यानुराग संजनकंबु गादु मुक्ति प्रदायकमु ना कीर्तनमुन
दर्शनाकर्णन ध्यानंबुलत्तु गर्मबंध देहंबुल बासि मीरु

ते. मानसंबुलु नायंदु मरग जेसि
नन्नु जेरॅदरिटमीद नम्मुडनुचु
बलिकि वारलु दॅच्चिन भक्षणादु-
लाप्त वर्गंबुतो हरि यारगिंचॅ ॥ 867 ॥

कं. परमेश्वरार्पणंबुग, बरजनुलकु भिक्षमिडिन बरम पदमुनन्
बरगॅदरट तुदि साक्षात्परमेश्वरु भिक्ष सेयु फल मॅट्टिदियो ॥ 868 ॥

व. इट्लु सर्वेश्वरुंडैन हरिकि भिक्ष यिडि, तम तम भार्यलतनि बलनं
गृतार्थलौट यॅरिगि, भूसुरुलु तमलो निट्लनिरि ॥ 869 ॥

चं. कटकट ! मोसपोयितिमि कांतलपाटियु बुद्धि लेदु ने-
डिट हरि गानबो नॅरुग मेमु दुरात्मुल मेमु कल्मषो-

कारण तुम्हारे भाई-बंधु, पति और पुत्र तुम्हारी निंदा नहीं करेंगे; हे अंगनाओ ! (स्त्रियो !) देवता भी तुम लोगों की प्रशंसा करेंगे; मेरा देह-संगम (शारीरिक संयोग) नरों को सुख और अनुराग उत्पन्न करानेवाला नहीं है, बल्कि वह मुक्ति (मोक्ष) प्रदायक है। मेरा संकीर्तन, दर्शन, आकर्णन (कथा-श्रवण) और ध्यान करने पर कर्मवशात् प्राप्त देह से तुम लोग छुटकारा पाओगी; बाद को अपने [ते.] मनों को मुझमें अनुरक्त करके मेरे पास पहुँच जाओगी। तुम [मेरे वचन पर] विश्वास रखो।" कृष्ण ने यों समझाकर उन [स्त्रियों] के लाये भक्षण आदि अन्न अपने आप्त जनों (गोपों) के साथ मिलकर खा लिया। ८६७ [कं.] कहा जाता है कि जो लोग अन्यों (अतिथियों) को परमेश्वरार्पण की भावना से भीख देंगे (अन्नदान करेंगे), वे लोग अंत में परमपद पायेंगे; किंतु साक्षात् परमेश्वर को ही अन्न खिलाने पर कौन सा फल प्राप्त होगा ? कौन जाने ? ८६८ [व.] जब ब्राह्मणों को मालूम हुआ कि उनकी पत्नियाँ सर्वेश्वर हरि (कृष्ण) को भिक्षा देकर उनसे कृतार्थ हुई हैं, तब वे अपने में यों कहने लगे : ८६९ [चं.] "हाय ! हाय ! हम लोगों ने धोखा खाया है; स्त्रियों के बराबर विवेक भी हमें न रहा; [समीपवर्ती होकर भी] हम लोगों ने हरि के पास जाना नहीं जाना; हम लोग दुरात्मा (दुश्शील) और महान् पापी हैं। विष्णु से दूर जानेवालों को तप, तीर्थाटन, व्रत और याग-यज्ञ और ज्ञान-विज्ञान से क्या [लाभ] होगा? ये सब जलाकर खाक करने योग्य

दृभटुलमु विष्णुदूरगुल प्राज्ञतलेल तपंबुलेल ? प-
र्यटनमु लेल ? शीलमुलु यागमुलुन् मरि येल ? कालपने ! ॥ 870 ॥

कं. जय होमाध्ययनंबुलु
तपमुलु व्रतमुलुनु लेनि तरुणुलु हरि स-
त्कृप वडसिरन्नि गलिगियु
जपलत बॊंदितिमि भक्ति सलुपमि नकटा ! ॥ 871 ॥

कं. सुरगुरुलगु योगींद्रुल, नरुदुग मोहितुल जेयु हरिमाय ममुन्
नरगुरुल मूढविप्रुल, नुरुवडि मोहितुल जेय नोपक युन्ने ॥ 872 ॥

म. क्रतुवुल् धर्ममु मंत्र तंत्र धनमुल् कालंबु देशंबु दे-
वतयुन् वह्नुलु, मेदिनीसुरलु नॆव्वाडट्टि सर्वेशु डी-
क्षिति रक्षिप जनिंचिना डॆरुगमा श्री भर्तकुं गर्तकुं
गुतलोद्धर्तकु मेमु म्रॊक्कॆदमु रक्षोनाथ संहर्तकुन् ॥ 873 ॥

नंदादु लिंद्रयागमु सेय श्रीकृष्णुनितो नालोचिंचुट

व. अनि मरियु ननेक विधंबुल बश्चात्तापंबुलं बॊंदि, हरि दलंचि, शमिंपुमनि म्रॊक्कि, ब्राह्मणुलु कंसभीतुलै कृष्णसंदर्शनंबु सेयंजनरैरि ।

हैं। ८७० [कं.] जप-तप, स्वाध्याय, व्रत-होम आदि से रहित युवतियाँ हरि की कृपा प्राप्त कर सकी, सब कुछ रखते हुए भी हम लोगों ने चपलता ही पायी, हाय ! भक्ति नही कर सके ! ८७१ [कं.] सुर-गुरु (देवों के गुरु) बने हुए योगीद्रों को भी अकसर मोहित करनेवाली हरिमाया (विष्णु-माया) हम-नर-गुरु- (मनुष्यों के गुरु) बने मूढ़-विप्रों को क्यों न अत्यधिक रूप से विमोहित कर सकेगी ? अवश्य करेगी। इसमें आश्चर्य नही है। ८७२ [म.] यज्ञ, धर्म, मंत्र-तंत्र, धन-दौलत, देश-काल, देवता और ब्राह्मण, त्रेताग्नि आदि सब कुछ स्वयं ही होकर उस सर्वेश्वर ने ही इस जगत् की रक्षा करने के निमित्त [कृष्ण के रूप में] अवतार लिया है, इस सत्य को हम जान नहीं सके। अतः क्षमा-याचना करते हुए] हम उस लक्ष्मीपति, कर्ता-धर्ता जगत् के उद्धारक, और राक्षस-राजाओं का संहारक हरि (कृष्ण) को सिर नवाकर उनकी शरण लेगे। ८७३

इंद्र-याग करने के निमित्त नंद आदि गोपों का श्रीकृष्ण से मंत्रणा करना

[व.] इस तरह पश्चात्ताप करके हरि को स्मरण कर (मन ही मन) क्षमा माँग, वे ब्राह्मण, कंस के भय से कृष्ण का संदर्शन करने जाने से रह गये।

अध्यायमु—२४

व. अंत नक्कड नखिल दर्शनुंडैन हरि, यिंद्रयागंबु सेयं दलंचि, तन कडकु वच्चिन नंदादि गोपवृद्धुलंगनि, नमस्करिंचि, नंदुनकिट्लनियें ॥ 874 ॥

सी. यागंबु सेयंग नर्थिचि वच्चितिरी यागमुन फलमेमि गलुगु
नेव्वाडु दीनिकि नीश्वरुंडधिकारि येव्वडु साधनमेंत वलयु
शास्त्रीयमो जनाचारमो कार्यंबु वैरुल कॅरिंगिप वलदु गानि
येरिगेंडि मित्रुल कॅरिंगिप दगु जेरि येरिगि चेसिन गोर्कुलेल्ल गलुगु

आ. वगयु चॅलिमि लेक वरगिन मिमुबोटि
मंचिवारिकेल मंतनंबु
तलपुलेल्ल माकु दग नेरिंगिपवे
तात ! वाक्सुधा प्रवातवगुचु ॥ 875 ॥

व. अनि पलिकिन, प्रौढकुमारुनिकि दंड्रि यिट्लनियें ॥ 876 ॥

सी. पर्जन्युडधिकुंडु भगवंतुडमरंद्रुडतनिकि ब्रियमूर्तुलगुचुनुन्न
मेघबृंदंबुलु मेदिनी तलमुपै नतनि पंपुन भूतहर्षणमुग
जलमुलु गुरियु दज्जल पूरमुल दोगि पंडु सस्यंबुला पंट दमकु
धर्मार्थकाम प्रदायकमुग लोकुलेल्लनु ब्रतुकुदुरित येरिगि

अध्याय—२४

[व.] पश्चात् नंद आदि गोपवृद्ध इंद्रयाग करने का विचार करके जब कृष्ण के पास आये तो उन्हें प्रणाम कर अखिल-दर्शन (सब कुछ देख सकनेवाले) कृष्ण ने नंद से यों कहा : ८७४ [सी.] "यज्ञ करने की इच्छा लेकर आप आये हैं। [किन्तु मुझे बताइये कि] इस यज्ञ का फल क्या होगा ? इसका ईश्वर (अधिष्ठाता) कौन है ? इसे करने का अधिकारी कौन है ? इसके लिए कितनी साधन-सामग्री आवश्यक होगी ? यह यज्ञ क्या शास्त्र-विहित है ? अथवा केवल लोक-प्रचलित आचार है ? [इन प्रश्नों का समाधान] चाहे विरोधियों को आप न बतावें किंतु जिज्ञासू मित्रों को तो बताना उचित होगा। [किसी भी कर्म का विवरण] जानकर करने पर ही उसका मनचाहा फल मिलेगा। [आ.] शत्रु-मित्र की भावना छोड़ समभाव बरतनेवाले आप जैसे सज्जनों को मंत्रणा की क्या आवश्यकता है ? हे तात ! अपनी मधुर वाणी से आप मुझे अपना उद्देश्य समझाकर कहिये।" ८७५ [व.] इसे सुन अपने सुजान पुत्र (कृष्ण) से पिता (नंद) ने यों कहा— ८७६ [सी.] पर्जन्य (वर्षाधिदेवता) इंद्र इस यज्ञ का ईश्वर है। उनके प्रिय अनुचर मेघवृन्द उनकी आज्ञा पाकर भूतल पर

ते. मेघ विभुडैन यिद्रुंडु मॅच्चु कॊऱकु
निद्र मखमुलु सेयुदु रॆल्ल नृपुलु
काम लोभ भय द्वेष कलितुलगुचु
जेयकुंडिन नशुभंबु चॆंदु बुत्र ! ॥ 877 ॥

व. अदियुनं गाक ॥ 878 ॥

आ. मखमु सेय वज्रि मदि संतसिचुनु
वज्रि संतसिप वान गुरियु
वान गुरिय गसवु वसुमति बॆरुगुनु
गसवु मेसि धेनुगणमु ब्रतुकु ॥ 879 ॥

कं. धेनुवुलु ब्रतिकॆनेनियु
मानदु घनमैन पाडि मंदल गलुगुन्
मानुगनु वाडि गलिगिन
मानवुलुनु सुरलु दनिसि मनुदुरु पुत्रा ! ॥ 880 ॥

व. अनि यिट्लु नॊडिविन नंदुनि वचनंबुलु विनि, यिंद्रुनिकि गोपंबु दीपिप दनुजदमनुंडु तंड्रि किट्लनियॆ ॥ 881 ॥

कं. कर्ममुन बुट्टु जंतुवु, कर्ममुनन् वृद्धि बॊंदु गर्ममुन जॆडुन्
गर्ममॆ जनुलकु देवत, कर्ममु सुखदुःखमुलकु गारणमधिपा ! ॥ 88

वर्षा करते है और जीव-जंतुओं को संतोष देते हैं। उस जल के प्रवाहों में भीगकर सस्य फलते है; उस फ़सल से लोग जीते हैं और धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति कर लेते हैं। यह सब जानकर लोग [ते.] मेघों के राजा इंद्र को प्रसन्न रखने के लिए इंद्रयाग करते हैं; हे पुत्र ! यदि राजा और प्रजा काम, लोभ और भय के वश होकर यह यज्ञ करना छोड़ दें तो उनका अशुभ होगा। ८७७ [व.] इसके अतिरिक्त··· ८७८ [आ.] [लोगों के] यज्ञ करने पर इंद्र मन में प्रसन्न होगा; उसके प्रसन्न होने पर वर्षा होगी; वर्षा हुई तो भूमि पर घास-फूस बढ़ेगी, और वह घास चरकर हमारे गाय-बैल जीवित रहेंगे। ८७९ [कं.] हे पुत्र ! धेनुओं के जीवित रहने पर हमारे व्रज में दूध-दही की अविरत समृद्धि रहेगी, उसके कारण से मनुष्य और देवता तृप्ति के साथ जीवन निर्वाह कर सकेंगे।" ८८० [व.] नंद के ऐसे वचन सुनकर इंद्र का कोप उद्दीपित करने के विचार से राक्षसों का दमन करनेवाले (कृष्ण) ने अपने पिता से यों कहा— ८८१ [कं.] हे गोपनायक ! जीव-जंतु [अपने-अपने] कर्म के वश होकर जन्म लेते हैं, उसी कर्म के बल वृद्धि (प्रगति) पाते है, और कर्म के कारण ही विनष्ट भी होते है। अतः कर्म ही मनुष्यों का, देवता है, वही उनके सुखों और दुःखों का

कं. कर्ममुलकु दगु फलमुलु, कर्मठुलकु निडग राजु गानि सदा नि-
ष्कर्मुडगु नीश्वरुंडुनु, गर्मविहीनुनिकि राजु गाडु महात्मा ! ॥ 883 ॥

व. कावुन कर्मानुयोगंबुलन भूतंबुलकु बुरुहूतुनि वलन भीति येटिकि ? पुरातन जन्म संस्कारंबुलु कुप्पलु गोनि कप्पिन गर्मंबुल दप्पिंपचि, पेंपु पडय नप्परमेश्वरुंडुनु नेरडु। इतरुं जेप्पनेल। सुरासुर नरानीकंबुलतोडि लोकंबु निज संस्कारवशंबै यंदडिवि युन्नदि। संदेहंबु लेदु। देहि कर्मवशंबुन गुरु तनु देहंबुल जोच्चि वेडलु। ओज्ज, वेल्पु, पगरु, चुट्टंबुलु, कर्मंबुलु, जीवुंडु कर्मंबुतोड वर्तिंचु। अतनिकि कर्मंबु दैवतंबु। कर्मंबुनं ब्रतुकुचु नितर सेव सेयुट, सति पतिनि विडिचि जारुं जेरिन चंदंबगु। विप्रुंडु वैदिक कर्मंबुन मेलंगु, नृपति धरणीपालनंबुन संचरिंचु। वैश्युंडु वाणिज्य कृषि कुसीद गोरक्षणावुल वर्तिंचु। शूद्रुंडग्रजन्मुल सेविंचि ब्रतुकु। सत्वरजस्तमोगुणंबुलुत्पत्ति स्थिति लय कारणंबुलु। अंदु रजंबुन जगंबु जन्मिंचु, रजोगुण प्रेरितंबुलै मेघंबुलु वर्षिंचु। वर्षंबुनं ब्रजावृद्धियगु। इंद्रुंडेमि सेयंगलवाडु। अदियुनं गाक ॥ 884 ॥

कारण बनता है। ८८२ [कं.] हे महात्मन् ! कर्मठों (कर्म करनेवालों) को उनके कर्म के अनुसार योग्य फल देनेवाला राजा है ईश्वर। ईश्वर तो स्वयं निष्कर्म है (कोई कर्म नहीं करता)। कर्म-विहीन मनुष्यों को ईश्वर कुछ भी नहीं दे सकता। ८८३ [व.] इसलिए अपना-अपना कर्मफल भोगनेवाले भूतों (जीवों) को इंद्र से भयभीत क्यों होना चाहिए ? पुरातन-जन्म-संस्कारों के ढेर में छिपे हुए कर्मफल को टालने में और उच्च स्थिति प्राप्त करने में स्वयं परमेश्वर भी समर्थ नहीं है। तो दूसरों का क्या कहना ! देव, दानव और मनुष्यों के समूहों से भरा हुआ यह जीव-लोक अपने-अपने संस्कार के वशीभूत होकर उसी में दबा रहता है। इसमें संदेह नहीं है। देही (शरीरधारी जीव) अपने कर्म के अनुसार छोटे-बड़े (महान् और नीच) देहों में प्रवेश करता है, फिर बाहर निकलता है। गुरु, देवता, मित्र, शत्रु, बन्धु और जीव की समस्त क्रियाएँ सब कुछ कर्म को लेकर चलती हैं। कर्म ही जीव का दैव है। कर्म के बल पर जीवन व्यतीत करते हुए अन्यों की सेवा करना, निज भर्ता (पति) को छोड़ जार (व्यभिचारी) के साथ रहने के समान होगा। विप्र वैदिक (वेदोक्त) कर्म करता रहता है; राजा धरणी-पालन (राज्य-शासन) में रत रहता है; वैश्य वाणिज्य, कृषि, कुसीद (लेन-देन), गोरक्षण आदि कर्म अपनाता है; शूद्र अग्रजन्म वालों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) की सेवा करके गुजारा करता है। सत्त्व, रज, और तमोगुण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण बने रहते हैं। उनमें रजोगुण से जग उत्पन्न होता है, रजोगुण से प्रेरित होकर ही

शा. कोपिंपन् वनिलेदु शक्रुनिकि दागोपिंचु गाकेमि सं-
क्षेपंबय्येडिदेमि पट्टणमुल् गेहंबुलुन् देशमुल्
व्यापारंबुलु मीकु बोयेडिनें ? शैलारण्य भागंबुलन्
गोपत्वंबुन नुंडुचुन् मनकु संकोचिंपगा नेटिकिन् ? ॥ 885 ॥

सी. पसुलकु गोडकु ब्राह्मणोत्तमुलकु मखमु गाविचुट मंचि बुद्धि
यिंद्रयागंबुन केमेमि दॅप्पितुरवि येल्ल दॅप्पिपुडरसि मीरु
पायसंबुलु नपूपमुलु सेदपु बिंडि वंटलु पप्पुनु वलयुनद्दि
फल शाकमुलु वंड वंपुडु होमंबु सेयुडु धेनु दक्षिणल निच्चि

ते. बहु रसान्नंबु बॅट्टुडु ब्राह्मणुलकु
नचलुले पूजलॊनरिंपुडचलमुनकु
नधम चंडाल शुनक संहतिकि दगिन
भक्ष्यमुलु दॅंडु कसवुलु पसुल किडु ॥ 886 ॥

शा. गंधालंकरणांबरावळुलचे गैसेसि यिष्टान्नमुल्
बंधु श्रेणियु मीरलुं गुडिचि ना भाषारतिन् वेडुकल्
संधिल्लं गिरि गोद्विजानल नमस्कारंबु गाविपु डो-
जं धर्मंबनि तोचॅनेनि जनका ! जन्मंबु धन्यंबगुन् ॥ 887 ॥

मेघ वर्षा करते हैं। वर्षा के कारण प्रजा की वृद्धि होती है। इसमें इंद्र का कोई काम (दखल) नहीं है। वह क्या कर सकता है? इसके अलावा… ८८४ [शा.] इंद्र को हम पर कोप करने का कोई कारण नहीं है; अथवा समझो वह कुपित ही हुआ, पर इससे हमारा कौन-सा काम बिगड़ जाता है? हमारे नगर नहीं जाते, घर नहीं जाते, देश नहीं जाता, व्यापार नहीं जाता। [हमारे तो ये सब है ही नहीं] पर्वतों और वनों के प्रदेशों में [गाय-बैल चराते हुए] अहीरों का जीवन व्यतीत करनेवाले हम लोगों को [इंद्र से] डरने का कोई कारण नहीं है। ८८५ [सी.] अपने पशुओं के लिए, पहाड़ों के लिए, ब्राह्मणों के लिए यज्ञ करना बुद्धिमानी है। इन्द्रयाग के निमित्त जो-जो संभार जुटाने हो वह सब आप मँगवाइए। पायसान्न (खीर), अपूप (पक्वान्न), गेहूँ के आटे के बने भक्ष्य पदार्थ, दाल, फल और शाक (तरकारियाँ) ये सब जुटाइए; होम कीजिए; गौ, दक्षिणा और [ते.] मिष्टान्न देकर ब्राह्मणों का सत्कार कीजिए; पहाड़ की पूजा कीजिए; अधमों, चंडालों और कुत्तों को खाद्यान्न दीजिए; पशुओं को चारा खिलाइए। ८८६ [शा.] फूल, चंदन, वस्त्र, आभूषण आदि से अलंकृत हो, भाई-बंधुओं के साथ दावत खाइए; त्योहार मनाइए; पर्वत, गौ, ब्राह्मण और अग्नि की नमस्कार-पूर्वक अर्चना कीजिए; यदि आप इसे धर्म मानें तो

व. अनि मद्रियु, निर्लिपपति पेंपु दिपु तलंपुन, निम्मखंबु तनकु सम्मतंबनि, गोविंदुंडु पलिकिन, नंदादुलु मेलु मेलनि, तद्वचन प्रकारंबुनं बुण्याहवाचनंबुलु सदिविंचि, धरणीसुरुलकु भोजनंबुलिडि, पसुलकुं गसवु-लोसंगिरि। अप्पुडु ॥ 888 ॥

म. सकलाभीरुलु वीडे कृष्णुडन नैजंबैन रूपंबुतो
नकलंकस्थिति नुंडि शैलमिदे मीरर्चिप रंडंचु वा
नोक शैलाकृति दाल्चि गोपकुलतो नोंडोंड बूजिंचि गो-
पक दत्तान्नमुलाहरिंचें विभुडा प्रत्यक्ष शैलाकृतिन् ॥ 889 ॥

म. विनुडी शैलमु कामरूपि खलुलन् वेधिंचु नाज्यान्नमुल्
मन मोप्पिंचिन नाहरिंचें मनलन् मन्निंचें जित्तंबुलो
ननुकंपातिशयंबु सेसें मनपै नंचुन् सगोपालुडै
वनजाक्षुंडु नमस्करिंचें गिरिकिन् वंदारु मंदारुडै ॥ 890 ॥

व. इट्लु गोपकुलु हरिसमेतुलै, गिरिकि बूजनोपहारंबुलु समर्पिंचि, गोधनंबुलं

हे पिता! मेरे कहे अनुसार सब कार्य संपन्न कीजिए; हमारा जन्म धन्य होगा।" ८८७ [व.] इंद्र का बड़प्पन (गर्व) उतारने के विचार से कृष्ण ने [नंद आदि गोपों को] अपनी इच्छा के अनुकूल यज्ञ मनाने की सलाह दी। उन लोगों को वह रीति भली लगी, इसलिए उन्होंने कृष्ण के कहे अनुसार ही पुण्याहवाचन कराकर ब्राह्मणों को भोज और गायों को चारा खिलाकर उन्हें तृप्त किया। तब··· ८८८ [म.] कृष्ण एक तरफ़ अपने निजी निष्कलंक रूप में रहकर जिसे देखकर सभी अहीर पहचान कर कहते हैं कि— हाँ यही कृष्ण है— दूसरी तरफ़ पर्वत का रूप धरकर खड़ा हो गया; और उसने गोपों से कहा कि आओ गोपो! यह देखो पहाड़, इसकी हम अर्चना करेंगे। ऐसा कहकर स्वयं कृष्ण ने भी गोपों के साथ मिलकर उस पहाड़ की पूजा की। पश्चात् गोपों ने पहाड़ को अन्न आदि भक्ष्य पदार्थ जो समर्पित किया था उसे उस प्रभु (कृष्ण) ने, जो पर्वत की आकृति में सामने खड़ा था, स्वीकार कर खा लिया। ८८९ [म.] [फिर कृष्ण ने गोपों से कहा] "सुनो भाइयो! यह शैल (पर्वत) कामरूपी है (मनचाहा रूप धरनेवाला है)। यह दुष्टों को दंड देगा; हमने जो आज्यान्न (घी और अन्न) अर्पित किया उसे खाकर इसने हमें सम्मानित किया; हमारे प्रति इसके मन में अत्यंत अनुकंपा (दयाभाव) है।" इस प्रकार कहकर गोपों के साथ मिलकर उस कमलनयन और भक्तों के लिए कल्पवृक्ष रूपी कृष्ण ने उस पर्वत को प्रणाम किया। ८९० [व.] इस प्रकार गोपों ने कृष्ण को साथ लेकर पर्वत का पूजन और उपहार-समर्पण संपन्न किया,

बुरस्करिंचुकोनि, भूसुराशीर्वाद वचनंबुलतो गिरिकि प्रदक्षिणंबु सेसिरि। आ समयंबुन ॥ 891 ॥

कं. गुर्रमुल परुवु मेच्चनि, नर्रल गट्टिन रथम्मु नंद प्रमुखुल्
कुर्रल यार्पुलु चेलगग, दोर्रल गमि वेंटनंट दोलिरिलेशा ! ॥ 892 ॥

कं. पार्टिच्चि गान विद्या, पाटवमुन देरु लॅविक वहुता नमुलन्
वाटल गंधुलु कृष्णुनि, पाटलु वाडिरि विरोधिपाटनुडनुचुन् ॥ 893 ॥

कं. कुंडनिभापीनंबुलु, मंडित वर्णमुलु विविध महिताकृतुलु-
न्निडिन कडुपुलु गन्नुल, पंडुवुलुग बाडि कुर्रि पदुवुलु नडचॅन् ॥ 894 ॥

कं. पोंगरॅक्किन मूपुरमुल
दॅग गल वालमुलु शैल देहंबुलु भू-
गगनमुलु निंडु ड्रंकॅलु
मिगुल मॅड्रयु वृषभगणमु मॅल्लन नडचॅन् ॥ 895 ॥

व. इट्लु पर्वत प्रदक्षिणंबुलु सेसि, गोपकुलु माधवसमेतुलै, मंदकुं जनिरि।

अध्यायमु—२५

व. अंत महेंद्रुंडंतयु नॅरिंगि, महाकोपंबुन प्रळय प्रवर्तकंबुलगु संवर्तकादि मेघंबुल जीरि यिट्लियॅ ॥ 896 ॥

फिर अपने गोधन को आगे करके, ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेकर उस गिरि (पर्वत) का प्रदक्षिणा (परिक्रमा) की। उस समय... ८९१ [कं] हे राजन् ! 'घोड़ों की दौड़ को मात करके दौड़नेवाले वैलों को जोतकर नंद आदि गोप-प्रमुख रथों पर वैठ गये; उनके पीछे बालक कोलाहल मचाते चले। वछड़ों ने भी सवके साथ पहाड़ की फेरी लगायी। ८९२ [कं.] गान-विद्या-प्रवीणा गोपयुवतियाँ रथों पर आसीन हो शत्रुदमन कृष्ण की प्रशस्ति के गीत अनेक रागों में गाती चलीं। ८९३ [कं.] घड़ों के समान (स्थूल) थनवाली, सुंदर वर्णों से शोभित, अनेक आकारों में, नेत्रपर्व करनेवाली दुधारू गायों के झुंड गोपवृन्द के साथ चले। ८९४ [कं.] मांसल डिल्लों, लवी पूंछ और शैल-समान शरीरों वाले वृषभों के समूह जमीन और आसमान को अपने हुंकारों से भरते हुए धीरे-धीरे उनके साथ हो लिये। ८९५ [व.] इस भाँति पर्वत के चारों तरफ़ फेरी लगाकर, माधव (कृष्ण) समेत गोपवृन्द व्रज में वापस जा पहुँचा।

अध्याय—२५

[व.] तब महेंद्र ने सब हाल जानकर प्रलय मचानेवाले संवर्तक आदि मेघों को बुलवाकर उनसे यों कहा। ८९६ [म.] दही और घी पी-पीकर

म. पॆरुगुन् नेतुलु द्रावि क्रॊव्वि भुवि नाभीरुल् मदाभीरुलै
गिरि संघात कठोर पत्रदळन क्रीड़ासमारंभ दु-
र्भर दंभोळिधरुं बुरंदरु ननुं बाटिंचि पूजिप क-
ग्गिरिकिं बूजलु सेसि पोयिरिदॆ पो कृष्णुंडु प्रेरेपगन् ॥ 897 ॥

कं. गुरु देव हीनु बालुनि
गिरि भूज प्रमुखवासु गृष्णु ननीशुन्
बरिमाण शील कुल गुण
विरहितु जेपट्टि यिद्रु विडिचिरि गोल्लल् ॥ 898 ॥

आ. विमल घनतरात्म विज्ञान विद्यचे
निगुड लेक युडुप निभमुलगुचु
गर्ममयमुलयिन क्रतुवुल भव महा-
र्णवमु गडव गोरिनारु वीरु ॥ 899 ॥

शा. उद्यत्संपद नम्मि नंद तनयोद्योगम्मुनन् वॆर्रुलै
मद्यागंबु विसर्जनीयमनिरी मर्त्युल् वडिन् मीरु मी-
विद्युद्वल्लुल गप्पि गर्जनमुलन् वेधिंचि गोवुल् जनुल्
सद्योमृत्युवु बोंद राल्गुरियुडी शौर्यंबवार्यंबुगन् ॥ 900 ॥

भू पर के ये अहीर लोग मदमस्त हो मुझसे नितांत निर्भय हो गये हैं; पर्वतों के कठोर पंखों को भयंकरता से काट डालनेवाला वज्रायुध धारण किये हुए मुझ इंद्र का सम्मान और पूजा छोड़कर ये लोग कृष्ण की प्रेरणा से पर्वत की पूजा कर गये हैं। ८९७ [कं.] इस कृष्ण का कोई गुरु अथवा दैव नहीं है; पहाड़ों और वनों में निवास करता है, यह [बालक] अनीश्वर है। रूप, कुल, गुण, शील-रहित इस [ग्वालों के लड़के] का सहारा लेकर इन लोगों ने मुझे त्याग दिया है। ८९८ [आ.] इन गोपों ने संसार से तरने के लिए विमल आत्मज्ञानविद्या का सहारा लेना छोड़ केवल क्रियात्मक क्रतुओं (यज्ञों) का सहारा लेना चाहा; इनका यह काम महासमुद्र को छोटा-सा तरेंदा लेकर पार करने के यत्न के समान (निरर्थक) है। ८९९ [शा.] अपनी बढ़ी हुई संपत्ति (दौलत) पर भरोसा रख नंदनंदन (कृष्ण) की सलाह मानकर ये लोग विवेक खो बैठे हैं (पागल हो गये हैं); इन मनुष्यों ने समझा कि मेरे प्रति यज्ञ करना अनावश्यक है। अतः तुम लोग बिजलियों से आकाश को ढाँपकर, गर्जनों से [लोगों को] त्रस्त कर, अवार्य शौर्य से इस प्रकार पत्थर (ओले) बरसाओ जिससे गऊ और ग्वाले तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हों। ९०० [कं.] गोविंद (कृष्ण) के व्रज में संक्षोभ पैदा करने के निमित्त ऐरावत पर चढ़कर, देवगण को साथ लिये मैं

कं. मीवॆंट वत्तुने नॆं, -रावतनागंवु नॆव्किक रयमॊप्पंगा
देव गणंबुल तोडनु, गोविंदुनि मंदलॆल्ल गॊंदल पॆट्टन् ॥ 901 ॥

व. अनि यिट्लु पलिकि, जंभवैरि संरंभंवुन दंभोळि झळिपिंचि, विकंवुन शंकिपक, क्रिन्कतोड संकॆललु विप्पिचिन, महानिल प्रेरितंबुलै चनि, नंदुनि मंद मीद नमोघंवुलयिन मेघंवुलु महौघंवुलै पन्नि, प्रचंड गति जंडमरीचि-मंडलंबु गप्पि, दिवि निंडि, दिशलावरिंचि, रोदोंतराळंबु निरंतर नीरंध्र निविडांधकार बंधुरंबुग निरोधिंचि, वलिभंजन द्वितीय पादपल्लव भग्नंबयिन ब्रह्मांडभांडंबु चिल्लुल जल्लिंचिन, दॊड्डगु वहिस्समुद्र सलिल निर्झरंबुल वड्वुन नॆडतॆगक तोरंबुलयिन नीरधारलं गुरियुचु, शिललु वर्षिपुचु, विड्गुलु रुव्वुचुनुंड, मिट्टुवल्लंबुलु समतलंबुलयि, येकार्णवंबुरूपु चूपिन, नंदु दुड्कडुचुचु विलय विशिख शिखा संरंभ विजृंभमाणविद्युल्लता विलोकनंबुन रिम्मलुगॊनि सॊम्मलु वोवु लेगलुनु, लेगलकु मूतुलड्डंवु-लिडि, प्रळय भैरव भेरी भांकार भीषणंबुलगु गर्जन घोषणंबुल जॆवुडु वडि, चिदऱ वंदऱलैन डॆंवंबुलं गंदि व्रालु धेनुवुलुनु, धेनुवुल वॆनुक निडुकॊनि दुरंत कल्पांतकाल कीलि कराळ कालकर विशाल गदाघात प्रभूतंबु-लयिन निर्घातपातंबुल भीतंबुलै, हरिकि म्रॊक्किक, रक्ष रक्षेति शब्दंबुलु सेयु कैवडि, विड्वनि ऱंडि वडि, सॆरिपक शिरंबुलु वंचुकॊनि, गद्गद

स्वयं तुम्हारे पीछे चला आऊँगा।" ९०१ [व.] यों कहकर इंद्र ने उतावला होकर वज्रायुध झलकाया और घमंड में आकर विना संकोच किये अपने प्रलयंकारी मेघों को उनके साँकल खोल बंधन से मुक्त किया। प्रचंड वायु से संचालित होकर नंद-व्रज के ऊपर वे अमोघ मेघ ऐसे फैल गये कि सूर्यमंडल और दसों दिशाएँ उनमें छिप गयी; और घना अंधकार भूमंडल से नभोमंडल तक तनकर फैल गया। वादलों के वे समूह मोटी-मोटी जलधाराएँ ऐसा लगातार वरसाने लगे मानों वामन के द्वितीय चरण से भिग्न हुआ ब्रह्मांड रूपी चालनी से वाहर का समुद्र चाला जा रहा हो। नीरधाराओं के साथ शिलाओं और वज्रों (विजलियो) की वौछारें हुईं। समुद्र के समान दिखाई देनेवाले जल-प्रवाह में गड्ढे और टीले सब भरकर समतल हो गये। प्रलयकाल की अग्नि-शिखाओं के समान अत्यंत वेग और उद्दंडता से कौंधनेवाली विजलियों को देखने से उन्मत्त से हो बछड़े संज्ञाहीन हो गये। बछड़ों पर अपने मुँह टेककर गायें गिर पड़ी जो प्रलय समय में भैरव की भेरी से निकलनेवाले भांकार के समान भीषण गर्जनों के कारण श्रवण-शक्ति खोकर तितर-बितर हो गयी थीं। कल्पांत के समय के यम के गदाघातों के सदृश कराल हो कड़कड़ाहट से गिरनेवाली बिजलियों से भयभीत वृषभवृन्द गर्जन कर उठा मानों वे बैल वौछार न सह सकने के

कंठंबुल नंभारवंबुलु सेयु वृषभंबुलुनु, वृषभादि गोरक्षणंबु सेयुचु दुर्वार घोर शिलासारंबुल सारंबुलु सेंडि, शरीरंबुलु भारंबुलयिन स्रानवडु गोपकुलुनु, गोपकुलं बट्टुक दट्टंबयिन वानकोट्टुनं बेट्टुवडि वड्गु नडुमुलु नुलुसुवड वडंकुचु गोविंदुनि जीरु गोपिकलुनु गोपिकाजन कठिन कुचकलश युगळंबुल मरुंगुनं दलल पेट्टुकोनि परवशुलयिन शिशुवुलुं गलिगि, महाघोषंबुलतोड नष्टंबयिन घोषंबु जूचि, प्रबुद्धुलयिन गोपवृद्धुलु कोंदरु दुर्जन शिक्षकुंडुनु, दीनजन रक्षकुंडुनु नयिन पुंडरीकाक्षुनकु म्रोक्कि यिट्लनिरि ॥ 902 ॥

उ. अक्कट ! वान दोगि व्रज माकुलमय्यें गदय्य ! कृष्ण ! नी-
विक्कडनुंडि यितडवेल सहिंचिति नी पदाब्जमुल्
दिक्कुगनुन्न गोपकुलु दीनत नोंद भयापहारिवै
प्रक्कुन गावकिट्लुनिकि कारुणिकोत्तम ! नीकु बाडिये ॥ 903 ॥

कं. ई युरुमुलु नी मेरुमुलु, नी यशनि विघोषणमुलु नी जलधारल्
नी यान तोलि्लि येरुगमु, कूयालिपि गदय्य ! गुणरत्ननिधी ! ॥ 904 ॥

कं. वारि बरुवय्यें मंदल, वारिकि निर्दे परुलु लेरु वारिपंगा
वारिद पटल भयंबुनु, वारिरुहदळाक्ष ! नेडु वारिप गदे ॥ 905 ॥

कारण सिर झुकाकर गद्गदकंठ हो हरि (कृष्ण) को सिर नवाकर बचाव के लिए दुहाई दे रहे हों। गो-वृषभों को चराते समय घोर शिलासारों (ओलों की वर्षा) से सार (बल) खोकर शरीर ढोने में भी असमर्थ हो सभी गोपबालक निश्चेष्ट बन गये। वर्षा की बौछारों से आहत होकर पतली कमरों के साथ थरथर काँपती हुई गोपिकाएँ गोपों को पकड़ खड़ी हो गयीं और रक्षा के लिए गोविंद को पुकारने लगीं। उनके बच्चे माताओं के घनकुचों की आड़ में सिर छिपाकर विवश पड़े रहे। इस प्रकार महाघोष और आक्रंदनों से विकल हुए घोष (व्रजगाँव) को देखकर कुछ प्रबुद्ध (सुजान) गोपवृद्धों ने पुंडरीकाक्ष (कमलनयन : कृष्ण) को सिर नवाकर यों निवेदन किया जो दुर्जनों का शिक्षक और दीन जनों का रक्षक था। ९०२ [उ.] हे कृष्ण ! देखते नहीं हो ? पानी में भीगकर व्रजगाँव किस प्रकार व्याकुल हो गया है ! यहीं रहकर तुमने अब तब (इस विनाश को) क्यों सह लिया ? हाय ! हाय ! तुम्हारे चरणकमलों का भरोसा लिये हुए इन दीन गोपों की रक्षा किये बिना [यों उपेक्षा करना] हे करुणामय, भयापहारी कृष्ण ! तुम्हारे लिए उचित है क्या ? ९०३ [कं.] हे गुण-रत्नों की खान ! हम तुम्हारी सौगन्द खाकर कह रहे है, ये गर्जन, बिजली का यों कौंधना, ये ओले, ये अशनिपात, और ऐसा मूसलाधार पानी हमने पहले कभी नहीं देखा। हमारी गुहार तो सुनो। ९०४ [कं.] इन

व. अनिन विनि, सर्वज्ञुंडैन कृष्णुंडंतयु नॆरिंगि ॥ 906 ॥

उ. तन्नॊकयित गैकॊनक तप्पिरि यागमु सेसिरंचु दा
मिन्नुन नुंडि गोपकुलमीद शिलल् गुरियिंपुचुन्न वा-
ड़ुन्नत निर्जरेंद्र विभवोत्थित गर्व नगाधिरूढु़डै
कन्नुल गान डिद्रुडिटु गर्वपरुंडॊरु गान नेर्चुने ॥ 907 ॥

कं. देवतलंदरु नन्नुन्, सेवितुरु राज्यमदमु जॆंदरु चॆरुपं
गावलदु मानभंगमु, गाविपग वलयु शांति गलिगॆडु कॊरकै ॥ 908 ॥

व. अनि चिंतिचि, शिलावर्ष हतुलै शरणागतुलैन घोषजनुल रक्षिचुट तगवनि सकललोक रक्षकुंडैन विचक्षणुंडु ॥ 909 ॥

चं. कलगकुडी वधूजनुलु कंपमु नॊंदकुडी व्रजेश्वरुल्
तलगकुडी कुमारकुलु तविकनवारलु रालवानचे
नलयकुडी पशुव्रजमु नक्कड नक्कड निल्वनीकुडी
मॆलपुन मीकु नीश्वरुडु मेलॊसगुं गरुणार्द्रचित्तुडै ॥ 910 ॥

वा. अनि पलिकि ॥ 911 ॥

व्रजवासियों को यह वर्षा और पानी भार (असह्य) हो गया है; [इसका] निवारण करनेवाले तुम्हें छोड़कर और कोई नहीं हैं। हे वारिज-दलाक्ष (कमलोचन) ! इन बादलों के भय (उपद्रव) का निवारण आज तुम्हीं को करना है।" ९०५ "[व.] उनकी [गुहार] सुन, सर्वज्ञ कृष्ण सारा हाल-चाल समझकर। ९०६ [उ.] "इंद्र, यह कहकर कि मुझे किंचित् भी न मानकर ये गोप याग करने से रह गये, आसमान से [गोकुल पर] पत्थर बरसा रहा है, देवेंद्र का समुन्नत पद और वैभव पाकर यह गर्व के पर्वत पर चढ़ गया है, आँखों का अंधा बना यह गर्वीला इंद्र दूसरों को देख कैसे सकता है ? ९०७ [कं.] देवता सभी मुझे मानते हैं, मेरी सेवा करते है, उन्हें राज्य का मद नहीं हुआ, अतः उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचानी है; किंतु मानभंग (गर्वनिवारण) करके इस इंद्र को सावधान करना आवश्यक है।" ९०८ [व.] यों सोचकर, सकल-लोकरक्षक और विचक्षणशील कृष्ण ने निश्चय किया कि शिला-वर्षा में मार खाकर अपनी शरण में आये घोषवासियों की रक्षा करना उचित है। [उसने कहा] ९०९ [चं.] 'हे वनिताओ ! शोक मत करो; व्रजवासियो ! भय से घबड़ाओ मत; बच्चो ! तुम अपनी जगह से मत हटो, पशुसमूह को इधर-उधर टलने न दो। ईश्वर करुणार्द्रचित्त हो अवश्य ही तुम्हारा भला करेगा।" ९१० [व.] यों कहकर ९११

श्रीकृष्णुडु गोवर्धन पर्वतमु नॅत्तुट

कं. किरियै धर यॅत्तिन हरि
करि सरसिजमुकुळ मॅत्तुगति द्रिभुवन शं-
करकरुडै गोवर्धन
गिरि यॅत्तॅ जवक नॊवक केलन् लीलन् ॥ 912 ॥

कं. वंडिनि ब्रह्मांडंबुलु, चॅंडुल क्रिय बट्टि यॅगर जिम्मॆडु हरिकिन्
गॊंड बॅकलिचि यॅत्तुट, कॊंडॊक पनिगा यॊक्क कॊंडा तलपन् ॥ 913 ॥

व. इट्लु गिरि यॅत्ति ॥ 914 ॥

शा. बालुंडाडुचु नातपत्रमनि संभाविंचि पूगुत्ति कॅं-
गेलन् दाल्चिनलील लेनगवुतो गृष्णुंडु दा नम्महा-
शैलंबुन् वलकेल दाल्चि विपुलच्छत्रंबुगा बट्टॆ ना-
भीलाभ्रच्युत दुश्शिलाचकित गोपीगोप गोपंक्तिकिन् ॥ 915 ॥

व. इट्लु गोत्रंबु छत्रंबुगा बट्टि, गोपजनुलकु गोपालशेखरुं-
डिट्लनियॆ ॥ 916 ॥

कं. रा तल्लि ! रम्मु तंड्री ! व्रेतलु गोपकुलु रंडी विनुडी गर्त-
क्ष्मातलमुन नुंडुडु गो, व्रातमुतो मीरु मीकु वलसिन यॅडलन् ॥ 917 ॥

श्रीकृष्ण का गोवर्धन पर्वत उठाना

[कं.] वराह बनकर पृथ्वी को उठानेवाले हरि (कृष्ण) ने, जो अपने हाथ से तीनों लोकों का कल्याण करनेवाला है, खेल ही खेल में, जिस तरह हाथी कमल की मुकुल (कली) को उठाता है, गोवर्धन पर्वत को एक ही एक हाथ पर उठाया। ९१२ [कं.] बहादुरी के साथ ब्रह्मांडों को गेंद के समान उछाल खेलनेवाले हरि को पहाड़ उखाड़कर उठाना कोई प्रबल कार्य नहीं है, ठीक सोचा जाय तो वह बहुत छोटा काम है। ९१३ [व.] इस प्रकार गिरि को उठा रखकर। ९१४ [शा.] बालक जिस प्रकार खेल ही खेल में आतपत्र (छाता) तानकर पकड़ लेता है, अथवा फूलों का गुच्छा हाथ में लेकर घुमाता है उसी प्रकार कृष्ण ने मुस्कुराते हुए उस बड़े पहाड़ को दाहिने हाथ पर उठाकर छाते के समान ऊपर तानकर उन गो, गोप, गोपियों को आश्रय दिया जो आकाश से होनेवाले भयंकर शिलापात से त्रस्त हो रहे थे। ९१५ [व.] इस प्रकार पहाड़ को छत्री के समान पकड़कर गोपाल-शेखर (कृष्ण) ने गोपजनों से यों कहा : ९१६ [कं.] "आओ माँ ! आ जाओ तात ! गोप और गोपीजन! सब सुन लो, तुम लोग अपने-अपने पशुओं को साथ लेकर इस निम्न-भू-प्रदेश में जहाँ

शा. बालुंडीतडु कॉड दॉड्डदि महाभारंबु सैरिपगा
जालंडो यनि शीनिक्रिद निलुवन् शंकिपगा वोल दी
शैलांभोनिधि जंतुसंयुत धराचक्रंबु पै वडु ना
केलल्लाडदु बंधुलार! निलुडी क्रिवन् प्रमोदंबुनन् ॥ 918 ॥

व. इट्लु पलुकुचुन्न हरि पलुकुलु विनि, नॅम्मनमुल नम्मि, कॉडयडुगुन दमतम यिम्मुलं बुत्र मित्र कलत्रादि समेतुलै, गोवुलुं दारुनु, गोपजनुलु, जनार्दन करुणा विलोकनामृत वर्षंबुन नाकलि नीरु वप्पुल चॉप्पॅरुंगक, कृष्ण कथाविनोदंबुल नुंडिरि। इव्विधंबुन ॥ 919 ॥

म. हरि दोर्दंडमु कामगुब्ब शिखरं बालंबि मुक्तावळुल्
परगन् जारॅडु तोयबिंदुवुलु गोपालांगनापांग हा-
सरुचुल् रत्नचयंबु गाग नचलच्छत्रंबु शोभिल्लॅ द-
व्गिरिभिद् दुर्मद भंजियै जलधराक्लिन्न प्रजारंजियै ॥ 920 ॥

कं. राजीवाक्षुनिचे नॉक, राजीवमुभंगि शैलराजमु मॅरसॅन्
राजेंद्र! मीद मधुकर, राजिक्रिय मेघराजि राजिल्लॅ गडुन् ॥ 921 ॥

चाहो आकर रह जाओ। ९१७ [शा.] यह सोचकर कि यह तो बालक है, जो इस भारी पर्वत का बोझा सह नहीं सकेगा—तुम इसके नीचे आकर रहने में शंका मत करो; शैल, समुद्र और जीव-जंतु-समेत यह धरा-चक्र (पृथ्वी) भी यदि आकर गिरे तो भी मेरा यह हाथ हिलेगा नहीं। अतः हे बंधुओ! तुम सब सहर्ष इसके तले आकर प्रमोद से खड़े हो जाओ।" ९१८ [व.] हरि के वचन सुन, हृदय से उन पर विश्वास रखकर वे लोग पुत्र, मित्र, कलत्र (पत्नी) समेत, अपने पशुओं को भी साथ लेकर उस पर्वत के नीचे अनुकूल स्थानों में जाकर टिक गये। जनार्दन (कृष्ण) की करुणाभरी दृष्टि रूपी अमृतवर्षा [के प्रभाव] से उनकी भूख और प्यास जाती रही, और वे लोग कृष्ण-कथा-कथन और श्रवण में मग्न रह गये। ९१९ [म.] हरि (कृष्ण) का बाहुदंड उस गोवर्धन पर्वत रूपी छत्री की छड़ी बना, उसका शिखर छत्री की गुमटी या चोटी था, लगातार गिरनेवाले जल की बूँदें छत्री में लटकनेवाली मोतियों की लड़ियाँ थीं, गोप-युवतियों के कटाक्ष और हास-विलास छत्री में लगे जवाहिरात थे —इस रूप में वह पर्वत छत्री बनकर शोभायमान रहा। उसने इंद्र का घमंड चूर-चूर किया और मेघों की वर्षा में भीगी प्रजा को सुख पहुँचाया। ९२० [कं.] हे राजेंद्र! उस राजीवाक्ष (कमलनयन—कृष्ण) के हाथ में वह शैलराज (पर्वत) एक राजीव (कमल) की भाँति चमक उठा; [पर्वत के ऊपर की] मेघराजि (बादलों की कतार) मधुकरराजि (भ्रमरपंक्ति) के समान राजित (शोभित) हुई। ९२१ [कं.] इंद्र के भेजे मेघ सात रातों और

कं. वडिगॉनि बलरिपु पनुपुन
नुडुगक जडि गुरिसॆ नेडहोरात्रमु ल-
य्यॆड गोपजनुलु ब्रतिकिरि
जडि वडियक गॊंडगॊडुगु चाटुन नधिपा ! ॥ 922 ॥

व. इट्लु हरि येडहोरात्रंबुलु गिरि धरिंयिचिन, गिरिभेदि बिसिगि, बेसरि, कृष्णुनि चरितंबुलु विनि, वॆरगुपडि, विफलमनोरथुंडै, मेघंबुल मरलिचुकॊनि चनियॆ। अंत नभोमंडलंबु विद्योतमान खद्योतमंडलंबगुट विनि, गोवर्धनधरुंडु गोपालकुल किट्लनियॆ ॥ 923 ॥

कं. उडिगॆनु वानयु गालियु
वडि चॆडॆ नवुलॆल्ल बॊलपवड्ड लिगिरॆ गॊं-
डडुगुन नुंडक वॆडलुडु
कॊडुकुलु गोडंड्रु सतुलु गोवुलु मीरुन् ॥ 924 ॥

व. अनिन विनि, सकल गोपजनुलु शकटाद्युपकरण समेतुलै, गोवुलु दारुनु गॊंड यडुगु विडिचि वच्चिरि। अच्युतुंडुनु जॆच्चॆर दॊल्लिटि यट्ल निज स्थानंबुन गिरि निलिपॆ। अंत वल्लवुलॆल्लं गृष्णुं गौगिलिचुकॊनि, समुचित प्रकारंबुल संभाविंचि दीविंचिरि। गोपिकलु सेसलिडि, दध्यन्न कबळंबु लोसंगुचु, नाशीर्वदिंचिरि। नंद बलभद्र रोहिणी यशोदलालिंगनंबु सेसि, भद्रवाक्यंबुलु पलिकिरि। सिद्धसाध्य गंधर्ववरुलु विरुलु

सात दिनों तक बिना रुके ताबड़तोड़ पानी बरसाते रहे; हे राजन् ! फिर भी अहीर लोग पर्वत [रूपी] छत्ती के नीचे रहकर बिना भीगे सुरक्षित रहे। ९२२ [व.] इस प्रकार कृष्ण ने जब सात अहोरात्र गिरि को उठाये रखा तो गिरि-भेदी-इंद्र हैरान हो गया; कृष्ण का चरित (कार्य) सुनकर वह निश्चेष्ट हो गया, और अपने मेघों को वापस बुला ले गया। तब आकाशमंडल को सूर्य-रश्मि से प्रकाशमान हुआ देखकर गोवर्धनधारी कृष्ण ने गोपबालकों से यों कहा : ९२३ [क.] "अब हवा और पानी थम गये हैं; नदियों का वेग घट गया है; चारों तरफ़ फैले हुए जल-प्रवाह सूख गये; अब तुम लोग अपने पुत्रों, पुत्रवधुओं, स्त्रियों और बच्चों के साथ पर्वत के तले से बाहर निकल आओ।" ९२४ [व.] यह सुनकर समस्त गोपजन शकट आदि सवारियाँ जुटाकर अपने पशुओं के साथ पहाड़ के नीचे से निकल आये। अच्युत (कृष्ण) ने शीघ्रता से गोवर्धन को यथास्थान बिठा दिया। ग्वालों ने कृष्ण को गले से लगाकर उचित रीति से सम्मानित कर आशिशें दीं। गोपिकाओं ने अक्षत डाल, दही-भात के कौर खिलाकर आशीर्वाद दिया। नंद, बलदाऊ, रोहिणी और यशोदा ने आलिंगन करके

गुरियिंचिरि। सुरलु शंख दुंदुभुलु म्रोयिंचिरि। तुंबुरु प्रमुखुलयिन गंधर्वुलु पाडिरि। अप्पुडु ॥ 925 ॥

कं. वल्लव-कांतलु तन कथ, -लॅल्लनु वाडंग नीरजेक्षणु-डंतन्
वल्लवजन संयुतुडै, यॅल्लन गोष्ठंबु सेरॅ नुर्वीनाथा ! ॥ 926 ॥

अध्यायमु—२६

व अय्यवसरंबुन गृष्णु चरित्रंबुलु तलंचि, वॅरगु पडि, गोपजनुलु नंदुन किट्लनिरि ॥ 927 ॥

सी. कन्नुलु तॅरवनि कडु जिन्न पापडै दानवि जनुबालु द्रावि चंपॅ
मूडव नॅलनाडु मुद्दुल बालुडै कोपिंचि शकटंबु गूल दन्नॅ
नेडादि कुर्रडै यॅगसि तृणावर्तु मॅड वट्टुकॉनि कूल्चि मृतुनि जेसॅ
दल्लि वॅन्नलकुनै तनु रोल गट्टिन गोमरुडै मद्दुल गूड नीड्चॅ

ते. बसुल ग्रेपुल गाचुचु बकुनि जीरॅ
वॅलगतो वत्सदैत्युनि व्रेसि चंपॅ
सबलुडै खरदैत्युनि संहरिचॅ
नितडु केवल मनुजुडे यॅचि चूड ॥ 928 ॥

शुभकामनाएँ प्रगट की। सिद्ध, साध्य और गंधर्वों ने फूल बरसाये। देवताओं ने शंख और दुंदभी बजायी। तुंबुरु आदि गंधर्वों ने गीत गाये। उस समय··· ९२५ [कं.] हे भूपाल ! कमलनयन ग्वालों को साथ ले गोष्ठ में जा पहुँचा, ग्वालिनें उनका चरित्र गाती हुई साथ चली। ९२६

अध्याय—२६

[व.] उस अवसर पर कृष्ण के [अद्भुत] चरित्र (कार्य) पर विचार कर, आश्चर्य-चकित हो गोपालकों ने नंद से यों कहा : ९२७ [सी.] [इस कृष्ण ने] शिशु [की अवस्था में] रहकर, जब कि इसने आंखे भी नही खोली थी, राक्षसी का स्तन्य पीकर उसे मार डाला; तीन महीने का लाड़ला बालक रहकर इसने क्रोधित हो शकट को लात मार गिराया; एक साल का लड़का होकर तृणावर्त की गर्दन पकड़ नीचे पटक दिया और उसे मृतक बनाया; माता ने माखन [चोरी] के कारण जब ऊखल से बाँध रखा तो उसे घसीटता हुआ अर्जुन वृक्षों को गिरा दिया; [ते.] गायों और बछड़ों को चराते समय बक [असुर] को चीरकर मारा; वत्सासुर को कपित्थ वृक्ष पर दे मारा और प्राण हर लिया; बलवान होकर खर दैत्य

कं. तॆंपरियै रामुनिचे, जंपिचॆं बलंबु म्रिंगॆं जट्टल दवाग्निन्
सॊंपुचॆड द्रॊक्कि काळियु, द्रुंपक कालिंदि वॆडल दोलॆन् लोलन् ॥ 929 ॥

कं. एडेंड्ल बालुडॆक्कड, क्रोडं गरि तम्मि यॆत्तु क्रिय निदरमुं
जूड गिरि यॆत्तुटॆक्कड, वेडुक नॊक चेत नेडु वॆरगौ गादे ॥ 930 ॥

कं. ओ नंद ! गोपवल्लभ !, नी नंदनुडाचरिंचु नेर्परितनमुल्
मानवुलकु शक्यंबुलॆ, मानव मात्रुंडॆ नी कुमारुडु तंड्री ! ॥ 931 ॥

व. अनिन विनि, नंदुंडु वारलं जूचि, मुन्नु दनकु गर्गमहामुनि चॆप्पिन संकेतंबु तॆलिपि, शंक लेदु, कृष्णुंडु लोकरक्षकुंडैन पुंडरीकाक्षुनि निजांशमनुचु नंतरंगंबुन जिंतितु अनि पलिक्कन वॆरगु पडि, गोपकुलु कृष्णुंडनंतुंडनि पूजिंचिरि। अंत ॥ 932 ॥

अध्यायमु—२७

म. हरि केलन् गिरि यॆत्ति वर्षजल भिन्नाभीर गोराजिकिन्
शरणंबैन द्रिलोकराज्य मदमुं जालिंचि निर्गर्वुडै

का संहार किया —इन सब कृत्यों को परखते हुए [यही जान पड़ता है कि] यह बालक मनुष्य मात्र नहीं है। ९२८ [कं.] साहस करके बलराम के हाथ प्रलंब का वध कराया; भयंकर दावानल को निगल गया; कालिय नाग का सत्त्व हरकर, उसे पैरों तले कुचलकर प्राण लिये बिना यहाँ से भगा दिया। ९२९ [कं.] सात वर्ष का बालक कहाँ ? और एक हाथ पर पहाड़ उठा रखना कहाँ ? इसने हमारे देखते हुए उसे विनोद-पूर्वक ऐसा उठाया जैसा हाथी सूँड़ से कमल का फूल उठाता है। यह अचरज आज हमने देखा है। ९३० [कं.] हे गोपराज ! हे नंद ! तुम्हारा पुत्र जैसा चित्र-विचित्र कृत्य कर रहा है वह सब मानव-साध्य नहीं है; हे तात ! यह बालक [निश्चय ही] मानव मात्र नही है। ९३१ [व.] ये बातें सुन नंद ने उन्हे वह संकेत (रहस्य) बता दिया जो गर्ग महामुनि ने पूर्व में उसे जताया था; फिर उसने कहा— "मैं अंतरंग में सोचता हूँ कि यह कृष्ण और कोई नहीं, लोकरक्षक पुंडरीकाक्ष (विष्णु भगवान) का ही अंश है, इसमें संदेह नही"। नंद का यह वचन सुन गोपों ने चकित होकर कृष्ण को अनंत (भगवान) मान, उसका पूजन किया। तब… ९३२

अध्याय—२७

[म.] हरि ने जब इस प्रकार पर्वत को हाथ पर उठा रखकर वर्षा-

सुरभि गूडि बलारि वच्चि कनियॆन् सॊपेदि दुष्ट प्रजे-
श्वर दुर्मान निराकरिष्णु गरुणावर्धिष्णु श्रीकृष्णुनिन् ॥ 933 ॥

कं. कनि यिव्वडु पूजिचॆनु, दिनकर निभ निजकिरीट दीधितिचेतन्
मुनि हृदलंकरणंबुलु, सुनतोद्धरणमुलु नंदसुतु चरणंबुल् ॥ 934 ॥

व. इट्लु नमस्करिंचि, करकमलंबुलु मुकुळिंचि, हरिकि हरिहयुं-
डिट्लनियॆ ॥ 935 ॥

सी. परम ! नी धामंबु भासुर सत्वंबु शांतंबु हत रजस्तममु नित्य-
मधिक तपोमयमट्लु गावुन माय नॆगडॆडि गुणमुलु नीकु लेवु
गुण हीनुडवु गान गुणमुल नय्यॆडि लोभादिकमुलु नीलोन जेर
वॆन दुर्जन निग्रहमु शिष्ट रक्षणमु दगिलि सेयग दंडधारिवगुदु

ते. जगमु भर्तवु गुरुडवु जनकुडवुनु
जगदधीशुलमनु मूढजनुलु तलक
निच्चपुट्टिन रूपंबुलीवु दाल्चि
हितमु सेयुदु गादॆ लोकेश्वरेश ! ॥ 936 ॥

कं. नावंटि वॆर्रिवारिनि, श्रीवल्लभ ! नीवु शास्ति चेसितिवेनि
गावरमु मानि पॆद्दल त्रोवल, [जरुगुदुरु बुद्धितोडुत नीशा ! ॥ 937 ॥

जल से पीड़ित गो-गोपों को आश्रय दिया, तब इंद्र ने अपने त्रिलोकाधिपत्य का मद छोड़ दिया, और निगर्वी हो, शोभा खोकर कामधेनु को साथ ले कृष्ण के पास आया और उसका दर्शन किया जो दुष्ट राजाओं का दुरभिमान को दूर करनेवाला करुणामय है। ९३३ [कं.] दर्शन करके इंद्र ने सूर्य की प्रभा के समान चमकनेवाला अपना किरीट नंद-नंदन कृष्ण के उन चरणों पर रखकर पूजन किया जो मुनियों के हृदयों में अलंकार बनते हैं और अवनतों (भक्तों) का उद्धार करते हैं। ९३४ [व.] करकमल जोड़कर इंद्र ने हरि से यों विनती की : ९३५ [सी.] "हे परम [पुरुष] ! तुम्हारा धाम (वासस्थान) सत्त्वगुण से प्रकाशमान है; शांत है; रज और तमोगुण का वहाँ अभाव है; वह नित्य (शाश्वत) है; तपोमय (तप:पूर्ण) है; अत: माया से उत्पन्न गुण तुममें नहीं है; तुम गुण-रहित (गुणों से परे) हो, इस कारण गुणों से होनेवाले लोभ-मोह आदि [दोष] तुम्हें छूते भी नहीं; दुष्टों का निग्रह करने और शिष्टों (सज्जनों) का रक्षण करने के निमित्त तुम दंडधारी होते हो। [ते.] जग के तुम भर्त्ता (स्वामी) हो; गुरु और जनक हो; हे लोकेश्वर ! अपने को जगत् के अधीश समझनेवाले मूढ़जनों को [भयभीत कर उन्हें] कँपाने के लिए तुम मनमाने रूप धरकर उनका [मूढत्व दूर कर] हित करते हो। ९३६ [कं.] हे श्रीवल्लभ (लक्ष्मीपति) ! मुझ सरीखे उन्मत्तों को यदि तुम दंड

कं. ऒकॊक लोकमु गाचुचु
नॆक्कुडु गर्वमुन नेमॆ यीशुल मनुचुन्
जॊक्कि ननुबोटि वॆर्रुलु
निक्कमु नी महिम दॆलिय नेररनंता ! ॥ 938 ॥

आ. वासुदेव ! कृष्ण ! वरद ! स्वतंत्र ! वि-
ज्ञानमय ! महात्म ! सर्वपुण्य
पुरुष ! निखिलबीज भूतात्मक ब्रह्म !
नीकु वंदनंबु निष्कलंक ! ॥ 939 ॥

शा. नी सामर्थ्यं मॆरुंग मेघमुलचे नी घोषमुन् भीषणो-
ग्रसारंबुन मुंचितिन् मखमु नाकै वल्लवुल् सेय रं-
चो सर्वेश ! भवन्महत्त्वमुन ना युद्योगमिट्लय्यॆ नी
दासुन् नन्नु गृतापराधु गरुणन् दर्शिपवे माधवा ! ॥ 940 ॥

म. निनु ब्रह्मादुलॆरुंगलेरु जडतानिष्ठुंड लोकत्रया-
वन दुर्मानि गरिष्ठुडन् विपुल दुर्वैदुष्य भूयिष्ठुडन्
विनयत्याग कनिष्ठुडन् गुजन गर्वि श्रेष्ठुडन् देव ! नी
घन लीलाविभवंबु पॆंपु दॆलियंगा नॆव्वडन् सर्वगा ! ॥ 941 ॥

दोगे तो इससे वे लोग अपना गर्व छोड़, विवेक के साथ बड़ों के [बताये] मार्ग पर चलने लगेंगे। ९३७ [कं.] हे अनंत ! किसी एक लोक का पालन करते हुए, घमंड में आ, अपने को ही जगदीश्वर समझनेवाले— मुझ जैसे पागल लोग— निश्चय ही तुम्हारी महिमा जान नहीं सकेंगे। ९३८ [आ.] हे वासुदेव ! हे कृष्ण ! हे वरदाता ! हे स्वतंत्र ! हे विज्ञानमय ! हे महात्मा ! हे पुण्यपुरुष ! हे निष्कलंक ! तुम समस्त भूतों का बीज-स्वरूप ब्रह्म हो; तुम्हारी वंदना करता हूँ। ९३९ [शा.] इन अहीरों ने मेरा यज्ञ नहीं किया, इस कारण [कुपित हो] मैंने मेघों के द्वारा भयंकर जलधारा में इनकी बस्ती (घोष) बहा दी, मैंने तुम्हारी सामर्थ्य जानी नहीं। हे सर्वेश ! तुम्हारी महिमा से मेरा यत्न इस प्रकार [विफल] हुआ है। हे माधव ! मैं तुम्हारा दास हूँ, मैंने अपराध किया, मुझे कृपादृष्टि से देखो। ९४० [म.] तुम्हें ब्रह्म आदि [देवता भी] जान नहीं सकते; हे देव ! मैं तो जड़ता से भरा हूँ, तीनों लोकों का अधिपति होने के गर्व में अपने को गरिष्ठ मान बैठा हूँ; महान् अज्ञानी और अविवेकी हूँ; विनय त्यागकर नीच बन गया हूँ, कुजन हूँ और श्रेष्ठ अहंभावी हूँ; हे सर्वगतात्मा ! तुम्हारी लीलाओं का वैभव और आधिक्य समझने के लिए मैं कौन हूँ ? (समर्थ नहीं हूँ)" ९४१ [व.] यह सुन हँसकर, मेघ-गंभीर स्वर में

व. अनिन विनि, नगुचु, जलधर गंभीररवंबुन शक्रुनकुं जक्रि यिट्लनियॆ .॥ 942 ॥

म. अमराधीश्वर ! लक्ष्मितो दगिलि यिट्लंधुंडवै युन्न नी
समदोद्रेकमु द्रुंचि वैचुटकु नी जन्नंबु दप्पिंचितिन्
ब्रमदश्रीकुडु दंडधारिनगु नन् भाविंपडॆव्वानि नि-
क्कमु रक्षिंप दलंतु वानि नधनुं गाविंतु जंभांतका ! ॥ 943 ॥

कं. ना याज्ञ सेयुचुंडुमु, नी यधिकारंबुनंदु निलुवु सुरेंद्रा !
श्रीयुतुडवै मदिंपकु, श्रेयंबुलु गल्गु बॊम्मु सितकरिगमना ! ॥ 944 ॥

व. अनि यिट्लु जिष्णुनिन् बल्कुचुन्न तृष्णुनिकि म्रॊक्कि गोगणसमेतयैन् कामधेनुवु भक्तजन कामधेनुवैन यीश्वरुनकिट्लनियॆ ॥ 945 ॥

कं. विश्वेश ! विश्वभावन !
विश्वाकृति ! योगिवंद्य ! विनु नीचेतन्
शाश्वतुलमैति मिप्पुडु
शाश्वतमुग गंटि मधिकसौख्यंबु हरी ! ॥ 946 ॥

व. देवा ! माकुं बरम दैवतंबवु। इंद्रुंडवु। भूसुर गोसुर साधु सौख्यंबु कॊरकु निन्निंद्रुनि जेसि, पट्टमु गुट्टुमनि, विरिंचि नियमिंचि पुत्तॆंचॆ।

चक्रि (कृष्ण) ने शक्र (इंद्र) से यों कहा… ९४२ [म.] "हे देवराज ! लक्ष्मी (ऐश्वर्य) युक्त होकर तुम यों अंधे बने हो, तुम्हारा मद और उद्रेक भंग करने के निमित्त ही मैंने यह याग रोक दिया है। जो अपनी संपत्ति को देखकर मदमस्त हो जाता है, और मुझ दंडधारी (शासक) को मानता नहीं, उसका सर्वस्व छीनकर उसे निर्धन बनाकर [तद्‌द्वारा] उसे बचाऊँगा। हे जंभांतक (इन्द्र) ! [इसे समझो तुम] ९४३ [कं.] हे सुरेंद्र ! आगे से तुम मेरी आज्ञा का पालन किया करो; और अपने अधिकारों की सीमा में रहो, संपत्ति पाकर गर्व न करो; हे ऐरावतवाहन (इन्द्र) ! तुम्हें श्रेय प्राप्त होगा, अब जाओ।" ९४४ [व.] इस प्रकार इन्द्र को समझानेवाले कृष्ण की वंदना करके कामधेनु ने गोगण-समेत [सामने आकर] भक्तजनों के कामधेनु (वरदायक) ईश्वर को यों संबोधित किया : ९४५ [कं.] "हे विश्वेश्वर ! विश्वभावन ! विश्वाकृति ! हे योगिवंद्य (योगियों से पूजे जानेवाले) ! हम लोग तुम्हारे कारण अब शाश्वत हो गये है; हे हरि ! तुम्हारे द्वारा अत्यधिक सुख शाश्वत रूप से हम पा गये है। ९४६ [व.] हे देव ! तुम हमारे परम दैव हो; इंद्र हो; ब्रह्मा ने हमें यह आज्ञा देकर भेज दिया कि गो-ब्राह्मण, देवता और साधुओं को सुख देने के निमित्त इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित कर राजतिलक करें। तुम भूलोक का

नीवु भूतल भूरिभार निवारणंबु सेय नवतरिंचिन हरिवि। अनि पलिकिनयंत ॥ 947 ॥

म. सुरभिक्षीरमुलन् सुरद्विप महाशुंडालतानीत नि-
जंर गंगाबुवुलन् निलिंपजननी सन्मौनि संबंबुतो
सुरनाथुंडभिषिक्तु जेसि पलिकेन् सोंपार गोविंदुडं-
चु रणाक्रांत विपक्षु दोयजदळाक्षुन् साधुसंरक्षणुन् ॥ 948 ॥

सी. तुंबुरु नारदादुलु सिद्धचारण गंधर्वुलुनु हरिकथलु वाडि-
रमरकांतलु मिंट नाडिरि वेल्पुलु गुरिंयिचिरंचित कुसुमवृष्टि
जगमुलु मूडुनु संतोषमुनु बोंदें गुर्रुलु चन्नुल गुरिसें बालु
नवजलंबुलतोड नदुलॅल्ल व्रवहिंचें निखिल वृक्षमुलु तेनियलु वडिसें

ते. सर्व लतिकल फल पुष्पचयमुलमरें
बर्वतंबुलु मणिगण प्रभल नोप्पें
प्राणुलकुनॅल्ल दमलोनि पगलु मानें
वासुदेवुनि यभिषेक वासरमुन ॥ 949 ॥

व. इट्लु गोप गोगण पतित्वंबुनकु गोविंदु नभिषिक्तु जेसि, वीड्कोनि, पुरंदरुंडु देवगणंबुलतो दिवंबुन करिगें। अंत ॥ 950 ॥

भार उतारने के लिये अवतार लिये हुए हरि (विष्णु) हो।" — इतना कहने के बाद ९४७ [म.] इन्द्र ने कामधेनु का दिया दूध, और ऐरावत अपनी सूँड़ में भरकर आकाशगंगा का जल, जो लाया वह [दोनों को] लेकर देवमाता अदिति और मुनिसंघ के समक्ष कृष्ण का अभिषेक किया और शत्रुओं को रण में निहत करनेवाले, साधुओं की रक्षा करनेवाले उस कमलाक्ष कृष्ण को 'गोविंद' के नाम से सहर्ष सराहा। ९४८ [सी.] तुंबुरु, नारद, सिद्ध, चारण, गंधर्व आदि ने हरिकथाओं का गायन किया। देववनिताओं ने आकाश में नृत्य किया; देवताओं ने फूल बरसाये। तीनों लोक हर्षित हुए; दुधारू गायों ने थनों से दूध बरसाया। नदियाँ नूतन जल लेकर बह निकलीं, वृक्षों ने मधुर रस चुवाया। [ते.] सभी लताओं में फल-फूल निकल आये; पर्वत मणियों के झलमल से झलक उठे। जिस दिन वासुदेव (कृष्ण) का अभिषेक हुआ, समस्त प्राणी आपस का वैर-विरोध भूल गये। ९४९ [व.] इस प्रकार गोविंद (कृष्ण) को गोप और गो-गण के अधिपति के रूप में अभिषिक्त करके, इन्द्र देवगण के साथ विदा ले देवलोक लौट गया। अनंतर ·· ९५०

अध्यायमु—२८

श्रीकृष्णमूर्ति नंदुनि वरुणनगरमुनुंडि कॊनितॆच्चुट

सी. नंदुडेकादशिनाडुपवासंबु चेसि श्रीहरि पूज चेसि वनुज
वेळ यॆरुंगक वेगक मुंदर द्वादशीस्नानंबु तग नॊनर्प
यमुनाजलमु सॊर नंदीक्ष दैत्युंडु नंदुनि वरुणुनि नगरमुनकु
गॊनिपोव दक्किन गोपकुलंदरु नंदगोपकुनि गानक कलंगि

ते. राम कृष्णुल बॆकॊनि रवमु सेय
गृष्णुडीशुंडु तम तंड्रि गिकुरुपॆट्टि
वरुण-भृत्युंडु गॊनि पोयि वरुणु जेर्चॆ-
टॆरिगि रयमुन नच्चोटि कॆगॆ, नधिप ! ॥ 951 ॥

व. अप्पुडु ॥ 952 ॥

कं. वच्चिन माधवु गनुगॊनि, चॆच्चॆर वरुणुंडु पूजचेसि विनतुडै
यच्चुग निट्लनि पलिकॆनु, विच्चेसितॆ देव ! ना निवेशंबुनकुन् ॥ 953 ॥

उ. ए विभु पादपद्मरतुलॆन्नडु नॆव्वरु बॊंदलेनि प-
द्रोव जॆरितु रट्टि बुधतोषक ! नी वरुदॆंचुटं भ्रमो-

अध्याय—२८

श्रीकृष्ण का नंद को वरुणनगर से लौटा लाना

[सी.] हे राजन् ! [एक बार] नंद ने एकादशी के दिन उपवास रखकर, श्रीहरि का पूजन किया, फिर द्वादशी का उष:स्नान करने के निमित्त, यह न जानते हुए कि वह असुरवेला (रात्रि समय) है, भोर होने के पूर्व ही यमुना में पहुँच जल में पैठा। तुरंत ही एक दैत्य (असुर) उसे पकड़ कर वरुणनगर उठा ले गया। दूसरे ग्वाले नंद को न पाकर घबड़ा गये। [ते.] वे लोग चीखते-चिल्लाते राम और कृष्ण के पास पहुँचे; कृष्ण— जो ईश्वर था, जान गया कि वरुण का नौकर नंदबाबा को धोखा देकर वरुणलोक ले गया है— अविलंब स्वयं वहाँ पहुँच गया। ९५१ [व.] तब··· ९५२ [कं.] माधव (कृष्ण) को आया देख वरुण ने उसे पूजकर विनीत हो यों विनती की— "हे देव ! मेरे निवास पर तुम्हारा आगमन तो हुआ है ! ९५३ [उ.] जिस प्रभु के पादपद्म से प्रेम करनेवाला (प्राणी) उस उत्तम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होगा जो अन्य किसी के लिए भी दुर्लभ है, वैसे तुम बुधतोषक (ज्ञानियों को संतोष

दावृतमय्यॆ जित्तमु कृतार्थत नॊंदॆ मनोरथंबु नी
सेव बवित्रभावमुनु जॆंदॆ शरीरमु नेडु माधवा ! ॥ 954 ॥

उ. ए परमेश्वरुन् जगमु लिन्निटि गप्पिन माय गप्पगा
नोपक पारतंत्र्यमुन नुंडु महात्मक ! यद्दि नीकु नु-
द्दीपित भद्रमूर्तिकि सुधीजन रक्षणवर्तिकि दनू
तापमु वाय म्रॊक्कॆद नुदार तपोधन चक्रवर्तिकिन् ॥ 955 ॥

चं. अॆरुगडु वीडु ना भटुडॊकिंचुकयैन मनंबुलोपलन्
दरकुव लेक नी जनकु दॆच्चॆ दयं गॊनि पॊम्मु द्रोहमुन्
मरवुमु नन्नु नी भटुनि मन्ननसेयुमु नोदु सैरणन्
वरलुदु गादॆ यो जनकवत्सल ! निर्मल ! भक्तवत्सला ! ॥ 956 ॥

व. अनि यिट्लु पलुकुचुन्न वरुणुनि गरुणिंचि, तंड्रि दोड्कॊनि, हरि तिरिगि वच्चॆ। अंत नंदुंडु तन्नु वॆस्नुडु वरुण नगरंबुन नुंड विडिपिंचि तॆच्चिन वृत्तांतंबंतयु बंधुवुल कॆरिगिंचिन, वारलु कृष्णुंडीश्वरुंडनि तलंचिरि। अखिल दर्शनुंडयिन यीश्वरुंडु वारल तलंपॆरिगि वारि कोरिक सफलंबु सेयुदुननि वारि नंदरिनि ब्रह्महृदंबुन मुंचि यॆत्ति ॥ 957 ॥

देनेवाले) के शुभागमन से मेरा चित्त प्रमोद से भर गया है; मेरे मनोरथ सिद्ध हुए हैं; हे माधव ! तुम्हारी सेवा से आज मेरा शरीर पवित्र हुआ है। ९५४ [उ.] सब जगों को आवृत करनेवाली माया जिस परमेश्वर को ढाँप नही सकती और [इस कारण] उसके वशवर्ती होकर रहती है, वही महात्मा हो तुम ! प्रकाशमान भद्रमूर्ति हो; विवेकियों की सदा तुम रक्षा करते रहते हो। तुम उदार और तपोधनों में चक्रवर्ती हो। मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ, जिससे मेरे शरीर का ताप शांत हो जाय। ९५५ [चं.] मेरा यह सेवक बिलकुल अनजान होने और मन में विवेक न होने के कारण तुम्हारे जनक को यहाँ लाया है। कृपा करके पिता को वापस ले जाओ। मेरे सेवक ने जो अपराध किया उसे भूल जाओ। मुझे और मेरे इस सेवक को मान देकर क्षमा करो। हे वात्सल्यशील पिता ! निर्मल और भक्त-प्रेमी देव ! तुम महान् क्षमागुण से संपन्न हो।" ९५६ [व.] यों विनती करनेवाले वरुण पर दया दिखाकर, अपने पिता को साथ लेकर कृष्ण वापस चला आया। वरुणनगर से अपने को छुड़ा लाने का कृष्ण का यह सारा वृत्तांत नंद ने अपने भाई-बंधुओं को कह सुनाया। उन्होंने निश्चय किया कि कृष्ण ईश्वर ही है। अखिलदर्शन (सब कुछ देखनेवाले) ईश्वर ने उन गोपों की [ब्रह्मलोक देखने की] अभिलाषा जानकर, उसे सफल बनाने के विचार से उन सबको ब्रह्महृद में डुबकी

आ. प्रकृति गामकर्मपरवशमै युच्च
नीच गतुल बॊंदि नॆऽय भ्रमसि
तिरुगुचुन्न जनमु तॆलिय नेरदु निज
गति विशेष मी जगंबु नंदु ॥ 958 ॥

म. अनि चिंतिंचि दयाळुडैन हरि मायादूरमै ज्योयिये-
यनिरूप्यंबयि सत्यमै यॆरुकयै यानंदमै ब्रह्ममै-
यनघात्मुल् गुणनाशमंदु गनु नित्यात्मीय लोकंबु प्र-
वकुन जूपॆन् गरुणार्द्रचित्तुडगुचुन् गोपालक श्रेणिकिन् ॥ 959 ॥

व. इट्लु हरि मुन्नक्रूरुंडु पॊंदिन लोकमंतयु जूपि, ब्रह्मलोकंबुनुं जूपिनं जूचि, नंदादुलु परमानंदंबुनुं बॊंदि, वॆऽगु पडि, हंसस्वरूपकुडैन कृष्णुनि बॊडगनि, पॊगडि, पूजिंचिरि। अंत ॥ 960 ॥

अध्यायमु—२९

शरद्रात्रियंदु गोपिकलु गानमु चेसॆडु श्रीकृष्णुनि सन्निधिकि वच्चुट

चं. कलुवल मेलि कंडुवलु कामुनि कय्यपु वालॆमुल् विर-
क्तुलु तल डिचुवेळलु चकोरक पंक्तुल भोगकालमुल्

लगवायी। ९५७ [आ.] [ईश्वर कृष्ण ने सोचा] "प्रकृति के प्रभाव से काम्यकर्मों में निरत रहकर उच्च और नीच गतियों को प्राप्त होते हुए भ्रम में फँस, भ्रमण करनेवाले इस जग के जीव मेरी गतिविधि की विशेषता जान नहीं सकेंगे।" ९५८ [म.] दयालु हरि ने इस प्रकार सोचकर करुणार्द्र-चित्त हो उन गोपालकों पर तरस खाकर अपना वह आत्म-लोक दिखा दिया जो माया-रहित है, ज्योतिर्मय है, निरूपण के परे है, सत्य है, ज्ञानानंदमय है, ब्रह्म है और जिसे पुण्यात्मा लोग त्रिगुणातीत होने पर देख सकते हैं। ९५९ [व.] यों हरि ने पहले वह लोक दिखा दिया जिसे अक्रूर ने प्राप्त किया था, फिर ब्रह्मलोक भी दरसाया, इससे नंद आदि गोपों को परम आनंद हुआ; उन लोगों ने चकित होकर हंसस्वरूप कृष्ण को देख, स्तुति करके उसकी आराधना की। तब…९६०

अध्याय—२९

शरत् की रात गायन करनेवाले श्रीकृष्ण के समीप गोपिकाओं का आना

[चं.] शरत्काल की रातों का आगमन हुआ; सर्वत्र कुमुदिनियों का समूह दिखाई देने लगा। ये रातें कामदेव की लड़ाकू सेना-सी लगती थीं। यह शरत्काल विरक्तों के लिए सिर छिपाये पड़े रहने का, चकोरों

चॅलुवलु सैरणल् विडिचि चिक्कुलरुल् घन चंद्र चंद्रिका-
ज्वलित दिशल् शरन्निशलु जारकदुर्दशलय्यॆ नय्यॆडन् ॥ 961 ॥

आ. कामतंत्र टीक कलुवल जोक कं-
दर्पु डाक विटुल तालिमपोक
चकित चक्रवाक संप्रीतिजन लोक
राक वच्चॆ मेलुराक यगुचु ॥ 962 ॥

कं. पति तन करमुल कुंकुम
सति मॊगमुन नलदुभंगि समुदय वेळां-
चित कररागमुन निशा-
पति रंजिचॆन् नरेंद्र ! प्राक्सति मॊगमुन् ॥ 963 ॥

सी. विटसेनपै दंडु वॆडलॆडु वलरेनि गॊल्लॆनपै हेमकुंभमनग
गामक धृति वल्लिकलु द्रॆंप नॆत्तिन शंबरांतकु चेति चक्रमनग
मारुडु पांथुल मानाटवुलु गाल्प गूर्चिन निप्पुलकुप्पयनग
विरहिणी मृगमुल वेटाड मदनुंडु दॆच्चिन मोहन दीपमनग

आ. वित नुनुपु गलिग वृत्तमै यरुणमै
कांति तो जकोरगणमु लुब्ब

के लिए सुख भोग करने का, सुंदरियों के लिए सहन खोकर अधीर हो जाने का, चंद्र की चंद्रिका से प्रकाशमान दिशाओं का, जासूसों के लिए दुर्दशा का समय प्रतीत हो रहा था। ९६१ [आ.] तब पूर्णिमा आयी, जो कामतंत्र को [सुव्यक्त करनेवाली] टीका, कुमुदिनी की उमंग बढ़ानेवाली, कामदेव की बहादुरी बतलानेवाली कामुक पुरुषों का धीरज [और संयम] तोड़नेवाली, चक्रवाकों को चकित करनेवाली, और लोकजनों को संप्रीति-दायिनी थी। ९६२ [कं.] हे राजन् ! पति अपनी प्रिया के मुँह पर अपने हाथों जिस प्रकार कुंकुम का लेपन करता है उसी प्रकार निशापति (चंद्रमा) ने प्रमोद के समय प्राचीदिशा रूपी वधू के मुँह पर अपने किरण रूपी हाथों से कुंकुम-सा अरुण रागरंग (कांति) फैला दिया। ९६३ [सी.] आकाश-मंडल में पूर्वाचल पर पूर्णिमा का पूर्णचंद्र उदित होआ जो अद्भुत चिकनाई, गोल-गोल आकार और अरुण कांति लेकर चकरों में उमंग भरते हुए निकल आया। वह चंद्रबिंब ऐसा लग रहा था, मानों विरहियों की सेना पर चढ़ाई करने आये हुए कामराजा के डेरे पर का स्वर्ण-कलश हो; कामुक लोगों के धैर्य-रूपी लताओं को काटने के लिए उठाये हुए मन्मथ के हाथ का चक्र (आयुध) हो; [आ.] विरही पथिकों के मान रूपी जंगल को जलाने के निमित्त जमा किया हुआ आग का ढेर हो और विरहिणी रूपी हिरनियों का शिकार करने के लिए मदन (मन्मथ) का

वॉड्डुपु गॉंड चविक बॉडिचॅं राकाचंद्र
मंडलंबु गगनमंडलमुन ॥ 964 ॥

व. इट्लु पॉडमिन नवकुंकुमांकित रमा मुखमंडलंबुनुं बोलॅ नखंडंबैन चंद्रमंडलंबु बॉडगनि, पुंडरीकनयनुंडु यमुनातटवनंबुन जगन्मोहनंबुग नॉक्क गीतंबु वाडिन, विनि, परायत्तचित्तलै, तत्तरंबुन व्रेतलु पनुलकुं जेतुलाडकयु, गोवुलकुं ग्रेपुल विडुवकयु, विडिचि विडिचि यॉडकयु, नॉडि यॉडि यॉडिनपालु कापकयु, गाचि काचियु गागिन पालु डिपकयु, डिंचि डिंचियु डिंचिन पालु वालुरकुं वोयकयु वोसि पोसियु बतुलकु वरिचर्यलु सेयकयु, जेसि चेसियु नशनंबुलु गुडुवकयु, गुडिचि कुडिचियु, गुसुमंबुलु मुडुवकयु, मुडिचि मुडिचियु, दॉडवुलु दॉडुगकयु, दॉडिगि तॉडिगियु गोष्ठंबुल पट्टुल नुंडकयु, बायसंबुल नॅऽय वंडकयु, नय्यय्यॅड़ल निलु वंबडकयु, गाटुकलु सूटि निडकयु गुरुलु चक्क नॉत्तकयु, गुचंबुल गंधंबुलु कलय मॅत्तकयु, बय्यॅदलु विप्पि कप्पकयु, सखुलकुं जॅप्पकयु, सहोदरुलु, मगलु, मामलु, मऽदुलु, विड्डलु, नड्डंबु चनि, निवारिपं, दलारिपकयु, संचलिचि, पंचभल्लुनि भल्लंबुल मॉल्लंपु जल्लुल पॅल्लुनं दल्लडिल्लि, डिल्लपडि, मॉगुळ्ळगमि वॅलुवडि युल्लसिल्लु तटिल्लतल पॉंदुन, मंदगमन

लाया हुआ मनमोहक दीपक हो। ९६४ [व.] यों ताजे कुंकुम से अंकित रमा (लक्ष्मी) के मुखमंडल के समान शोभित पूर्णचंद्रमडल को देखकर, पुंडरीक-नयन (कमलनयन) कृष्ण ने यमुना तट पर के वन में खड़े होकर जगत् को मोहित करनेवाला एक गीत [बाँसुरी पर] बजाया। उसे सुनने पर गोपिकाओं का चित्त [चंचल हो] अन्यत्र लगा, संभ्रम के कारण उनके हाथ काम-काज में नही लगे। गायो के पास बछड़ों को नहीं छोड़ा; छोड़-छोड़कर भी दूध दुहा नहीं। दुह-दुहकर भी उसे औटाया नही; औटा-औटाकर भी [आँच पर से] उतारा नही; उतार-उतार कर भी वह दूध बच्चों को पिलाया नहीं; पिला-पिलाकर भी पतियों की परिचर्या नहीं की; पतियों की सेवा करके भी स्वयं भोजन नहीं किया; भोजन करके भी बालों में फूल नही सजाये; फूल सजा-सजाकर भी गहने नहीं सँवारे, गहने सँवार-सँवारकर भी गोष्ठ के समीप न रहीं; पायस नही पकाया; [आँखों में] काजल बराबर नही लगाया; बाल ठीक से नहीं सँवारे; कुचों में चंदन का लेप अधूरा ही रहा; खुला स्तनांशुक खुला ही रहा; सखियों को खबर भी नही दी; पति, पुत्र, सास, ससुर, ननद, देवर आदि के रास्ता रोकने पर भी वे (गोपियाँ) रुकी नही। पंचबाण (कामदेव) के तेज बाणों के पूर (प्रवाह) में विचलित हो, सत्व-हीन और निर्बल पड़कर वे युवतियाँ घोष (गाँव) से निकलकर गोविंद (कृष्ण)

लमंदगमनंबुल संदलु वॅलुवडि, गोविंद संदर्शनंबुनकुं जनिरि। अप्पुडु ॥ 965 ॥

म. तरुणुल् गॉंदरु मूलगेहमुल नुद्दंडिंचि राराक त-
द्विरहाग्नि बरितापमोंदुचु मनोवीथिन् विभुन् माधवुन्
बरिरंभंबुलु सेसि जारुडनुचुन् भाविंचियुन् जॉक्कि पॉं-
दिरि मुक्तिन् गुण देहमुल् विडिचि प्रीतिन् बंधनिर्मुक्तलै ॥ 966 ॥

व. अनिन नरेंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 967 ॥

कं. जारुडनि कानि कृष्णुडु, भूरि परब्रह्ममनुचु बुद्धि दलंपन्
नेररु गुणमय देहमु, -ले रीतिन् विडिचिरितुलॅरिंगिपु शुका ! ॥ 968 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 969 ॥

म. मुनुने जॆप्पिति जक्रिकि बगतुडै मूढुंडु चैद्युंडु पॆं
पुन गैवल्यपदंबु नॉंदॆ ब्रियलै पॉंदंग राकुन्नदे
यनघुं डव्ययु डप्रमेयु डगुणुंडैनट्टि गोविंदु मू-
र्ति नरश्रेणिकि मुक्तिदायिनि सुमी तॆल्लंबु भूवल्लभा ! ॥ 970 ॥

आ. बांधवमुननैन बगनैन वगनैन
ब्रीतिनैन ब्राणभीतिनैन

के संदर्शन के लिए ऐसे दौड़ गईं जैसे मेघपटल से बिजलियाँ निकल पड़ती हैं। तब ९६५ [म.] कुछ युवतियाँ, जो घर-द्वार छोड़ निकल नहीं सकीं, विरह की आग में जलती रहीं। वे अपने चित्त में प्रभु-माधव को गले लगाकर, उसमें जार की भावना करके परवश हुईं, और कृष्ण के प्रेम में अपने गुण और देह का स्फुरण छोड़, बंधन से छूटकर मुक्ति पा गईं। ९६६ [व.] यह सुनकर नरेंद्र (परीक्षित) ने कहा : ९६७ [कं.] "हे शुक ! इन युवतियों ने कृष्ण को केवल जार समझा, उन्होंने यह नहीं जाना कि कृष्ण परब्रह्म है, मुझे बताइए कि [ऐसी स्थिति में] गुणमय देह छोड़कर उन्होंने मुक्ति किस प्रकार पायी ?" ९६८ [व.] कहने पर, शुक ने यों कहा : ९६९ [म.] "राजन् ! मैंने इसके पहले बताया था कि मूर्ख शिशुपाल ने कृष्ण से शत्रुता करके भी कैवल्य (मुक्ति) पद प्राप्त किया था, तब प्रेम करनेवाली ये गोपियाँ क्यों नहीं प्राप्त कर सकतीं ? गोविंद अनघ (पापरहित) है, अव्यय (नाशरहित) है, अप्रमेय (समझ के परे) है और अगुणी (निर्गुण) है। उसकी मूर्ति मनुष्यों को मुक्ति देनेवाली है; यह अत्यंत स्पष्ट (सत्य) है। ९७० [आ.] चाहे बन्धुत्व से हो, शत्रुता से हो, दुःख से हो, प्रीति से हो, प्राणभय से हो, अथवा भक्ति से हो— किसी भी भाव से— यदि मनुष्य हरि के परतंत्र (तत्पर) होकर रहेंगे तो वे मोक्ष

भक्तिनैन हरिकि वरतंत्रुलै युंडु
जनुलु मोक्षमुनकु जनुदुरधिप ! ॥ 971 ॥

व. अट्टु गावुन वरमपुरुषुंडु नजुंडु योगीश्वरेश्वरुंडैन हरिनि सोकिन स्थावरं-
वैन मुक्तंवगु। वॆरगुपड वलदु। इविद्धंवुन ॥ 972 ॥

कं. घन मधुरगीत निनदमु
विनि वच्चिन गोपिकलनु वीक्षिंचि नयं-
वुन मेटि सुगुणि नेर्परि
तन वाग्वैभवमु मॆरसि तग निट्लनियॆन् ॥ 973 ॥

उ. मेला मीकु भयंबु वुट्टदुगदा मी मंदकुन् सिंह शा-
र्दूलानेकप मुख्यमुल् दिरिगॆडिन् दूरंवु लेतॆंतुरे
येला वच्चितिरी निशासमयसंदिच्चोट वर्तितुरे
चालुं जालु लतांगुलार ! चनुडी संप्रीतितो मंदकुन् ॥ 974 ॥

शा. मीरेतॆंचिन जाड गानक वगन् मी तल्लुलुं दंड्रुलुन्
मी रामुल् मरदुल् तनूजुलु गुरुल् मी सोदरुल् वंधुवुल्
मेरल् मीरिरि लेरु पोयिरनुचुन् मी घोषभूभागमं-
देरीति वरिंकिचिरो तगवुले यी साहसोद्योगमुल् ॥ 975 ॥

चं. इलुवडि सुन्न चेसि हृदयेशुल सिग्गुलु वुच्चि यत्त मा-
मल नॆरिंयिचि सोदरुल मानमु सूरलुवुच्चि तल्लि दं-

को प्राप्त करेंगे। ९७१ [व.] परमपुरुष, अज (जन्म-रहित) तथा योगीश्वर-हरि के स्पर्श से स्थविर (अचल पदार्थ) भी मुक्त हो जाते हैं; अतः तुम अचरज मत करो।" ९७२ [कं.] यों, अपने मधुर गायन का स्वर सुनकर पास आयी हुई गोपिकाओं को निहारकर कृष्ण ने, जो सुगुणी और चतुर था, अपनी वाक्‌चातुरी दरसाते हुए यों कहा— ९७३ [उ.] "हे सुकुमार वनिताओ ! तुम्हारा भला हो। यहाँ तो सिंह, शार्दूल (बाघ) और जंगली हाथी घूमते रहते है। तुम्हें डर नही लगता ? घर छोड़कर इतनी दूर आयी हो; क्या यह ठीक है ? यहाँ क्यों आईं ? रात के समय ऐसी जगह तुम क्योंकर रहतीं ? बस-बस ! खैर, अब राजी-खुशी अपने घोष में वापस चली जाओ। ९७४ [शा.] तुम्हारे इस वन में आने की खबर न पाकर घबड़ाते हुए तुम्हारे माता-पिता, पति, देवर, पुत्र-पुत्री, गुरु और भाई-बन्धु खोजते होंगे। तुम्हें हद से बाहर हो [स्वेच्छा से] विचरते देख सारा घोष, न जाने कितना दुःख करता होगा। इस प्रकार के साहस-कृत्य करना तुम्हारे लिए उचित है क्या ? ९७५ [चं.] कुलीनता मिटाकर, प्राण-पतियों की लज्जा हरण कर, सास-ससुरों

डुल रुचि मान्चि बंधुलकु रोत यॊनर्चुचु जारवांछलन्
वल नरि सत्कुलांगनलु वत्तुरॆ ? लोकुलु सूचि मॆत्तुरॆ ? ॥ 976 ॥

सी. प्राणेशुडॆरिगिन ब्राणंबुनकु वॆगु दंडिचु नॆरिगिन धरणि-विभुडु
माम यॆरिगिन मनुवॆल्ल जॆडिपोवु दलवरि यॆरिगिन दगुलु सेयु
दलिदंड्रुलॆरिगिन दललॆत्तकुंडुदु रेरालॆरिगिन नॆत्ति पॊडुचु
नात्मजु लॆरिगिन नादरिपरु चूचि बंधुवुलॆरिगिन वलिसि चॆरुतु

आ. लितरु लॆरिगिरेनि नॆतयु जुलकगा
जूतुरिदु नंदु सुखमु लेदु
यशमु लेदु निर्भयानंदमुनु लेदु
जारु जेर जनदु चारुमुखिकि ॥ 977 ॥

कं. नडवडि कॊरगाकुन्ननु, बडुगैन गुरूपियैन बामरुडैनन्
जडुडैन रोगियैननु, विडुचुट मर्याद कादु विभुनंगनकुन् ॥ 978 ॥

चं. इदि यमुनानदी जलसमेधित पादप पल्लव प्रसू-
न दळ विराजितंबगु वनंबु मनंबुलु मेर दप्पॆनो

को संताप पहुँचाकर, भाइयों की मान-मर्यादा लुटाकर, माता-पिता की रुचि भंग करके, रिश्तेदारों में अपने प्रति घृणा पैदा करके, कुलवधुएँ जारों की चाह रखकर, कुमार्ग में कैसे जा सकती हैं? लोग क्या उनकी सराहना करेंगे? ९७६ [सी.] प्राणपति को यदि मालूम हो जाय तो तुम्हारे प्राणों पर ही बन आयगा (खतरा होगा), राजा यदि जान गया तो दंड देगा; ससुर को खबर हुई तो वैवाहिक संबंध ही बिगड़ जायगा; कोतवाल अगर जान पाया तो उलझन में डाल देगा; माता-पिता जान लेंगे तो वे सिर नहीं उठा सकेंगे; जेठानी और देवरानी यदि सुनेंगी तो उलाहना देंगी; पुत्र यदि जान लेंगे तो तुम्हारा आदर नहीं करेंगे; बंधुओं को मालूम हो गया तो जात से बाहर कर देंगे; [आ.] दूसरे लोग अगर जान गये तो अनादर करेंगे; इहलोक अथवा परलोक कहीं भी सुख न होगा; यश न होगा; न निर्भयता रहेगी न आनंद रहेगा; इसलिए सुंदरियों को जार के पास कभी न पहुँचना चाहिए। ९७७ [कं.] पति यदि बदचलन हो, अशक्त हो, कुरूपी हो, नीच हो, अनाड़ी हो अथवा रोगी हो— तो भी स्त्री को उसे छोड़ देना मर्यादानुकूल नहीं है। ९७८ [चं.] यमुना नदी के जल से प्रवर्धित, पल्लव, प्रसून (पुष्प)-दलों से शोभित वृक्षों से यह वन विराजमान है, पर यह कभी अपने मन में भी मर्यादा तोड़ता नहीं है। [तब तुम लोग मनुष्य होकर हद को क्यों लाँघ जाती हो?] जाओ अपने-अपने घर; जाकर रोते हुए बच्चों को दूध पिलाओ; बछड़ों को गायों के

पोंदुगिट नेड्चु बिड्डलकु वोपुडु पालु विड्डु लेगलन्
मोंदवुलकुन् निजेश्वरुल मुद्दियलार ! भजिपुडोंप्पुगन् ॥ 979 ॥

चं. वनितलु नन्नु गोरि यिट वच्चितिरिंत कोंऱंत लेदु मे-
लोनरें समस्त जंतुवुलु नोलि प्रियंबुलु गावें नाकु नै-
ननु निलुवंग वोलदु सनातन धर्ममुलाड्वारिकि
वॅनिमिट्टुलन् भंजिचुटलु पेंद्दलु सॅप्पुचुनुंदुरॅल्लॅडन् ॥ 980 ॥

कं. ध्यानाकर्णन दर्शन, गानंबुल ना तलंपु गलिगिन जालुन्
वूनेंदरु कृतार्थत्वमु, मानवतुल् चनुडु मरलि मंदिरमुलकुन् ॥ 981 ॥

व. अनि पलिकिन विनि ॥ 982 ॥

सी. विरहाग्नि शिखलतो वेंडलु निट्टूर्पुल मुम्मरंबुल गंदि मोवु लॅंड
गन्नुल वॅडलॅडि कज्जल धारलु कुचकुंकुमंबुल ग्रोंच्चि पाऱ
जॅक्कुल जेर्चिन चेतुल वेडिमि मोमु दम्मुल मेलि मुरुवु डिव
वोंरि वोंरि बुंखानुपुंखंबुलै ताकु मदनु कोलल धैर्य महिम लॅडल

ते. दुःखभरमु माटलु तोंट्रुपडग
प्रियमुलाडनि प्रियु जूचि वॅग्गडिलि

पास छोड़ दो; हे मुग्धा स्त्रियो ! अपने पतियों को उचित रीति से भजो (सेवा करो)। ९७९ [चं.] हे वनिताओ ! मेरी चाह करके तुम लोग यहाँ आई हो; तुम्हारे प्रेम में कुछ कमी नही हुई; इससे तुम्हारा भला ही होगा केवल तुम ही नहीं, वरन् समस्त जीव-जंतु मेरे लिए प्रिय हैं। फिर भी तुमको यहाँ ठहरना उचित नही है; बड़े (आप्त) लोग कहा करते हैं कि अपने पतियों को भजना (सेवा करना) स्त्रियों का सनातन धर्म है। ९८० [कं.] ध्यान, कथाश्रवण, दर्शन, गायन (संकीर्तन) द्वारा मेरा चिंतन करना पर्याप्त है; इससे [भक्त] लोग कृतार्थ हो जायेंगे। अतः हे मानवती स्त्रियो ! अब तुम अपने मंदिरों (घरों) को वापस जाओ।" ९८१ [व.] ये वचन सुनकर [गोपिकाओं को दुख हुआ] ९८२ [सी.] विरह की आग से तपकर निकलनेवाली उसासों से उनके मुँह कुम्हलाकर सूख गये; आँखों से गिरे कजरारे आँसुओं की धाराएँ कुचों पर लगे कुंकुम-लेप को धोती रहीं; कपोलों से लगी हथेलियों के ताप से मुखकमलों का लावण्य जाता रहा; ताबड़-तोड़ लगनेवाले कामदेव के बाणों से धैर्य का तेज घटता गया। [ते.] दुख की तीव्रता के कारण वे अटपटाकर बोलने लगीं; ऐसे प्रिय को देख वे व्याकुल हो गयीं जो प्रियवचन नहीं बोला; संभ्रम में पड़ वे सब ललनाएँ चरण से भूमि पर रेखाएँ खींचते हुए शोक से

चरणमुलु नेल आयुचु संभ्रममुन
गांतलॆल्लनु वगल नाक्रांतलगुचु ॥ 983 ॥

व. इट्लनिरि ॥ 984 ॥

म. अकटा ! नम्मिति मेमु क्रूरुडन निन्नहॆंबॆ मा यिड्ललो
सकल व्याप्तुल डिंचि नी पदसरोजातंबुलर्चिप जि-
क्ककक येतॆंचिति मीशुडाढ्युडु मुमुक्षासक्तुलं गाचु पो-
लिक गावंदगु गाववे विडुव मेले कांतलन् भ्रांतलन् ॥ 985 ॥

म. पतुलन् बिड्डल बंधुलन् सतुलकुन् बाटिचुटे धर्म प-
द्धति यौनंटिवि देहधारिणुलकुन् धर्मज्ञ ! चिंतिपुमा
पति पुत्रादिक नाममूर्ति वगुचुन् भासिल्लु नी यंदु द-
त्पति पुत्रादिक वांछलन् सलिपि संभाविचुटन्यायमे ! ॥ 986 ॥

मत्त. नीपयिन् रति सेयुचुंदुरु नेर्परुल् सतत प्रियो-
द्दीपकुंडवु गान नॆव्वग दॆच्चु नाथ सुतादुलन्
जूप नेटिकि मन्महाशलु सुट्टि नी कड नुंडगा
बाप नेल मदीय तापमु बाप बोलु गृपानिधी ! ॥ 987 ॥

आक्रांत हो गयीं । ९८३ [व.] उन्होंने यों कहा : ९८४ [म.] "हाय ! हाय ! हमने तुम्हारा विश्वास किया था, तुम्हें क्रूर कैसे कहें ? घर पर का सारा व्यापार (कामकाज) छोड़कर, बंधनो से छूटकर तुम्हारे चरण-कमलों की अर्चना करने के लिए हम चली आयी है; संपन्न ईश्वर जिस प्रकार मुमुक्षुओं की रक्षा करता है, उसी प्रकार तुम्हें हम लोगों को उबारना उचित है; हम भ्रांत कांताएँ है, हमें छोड़ देना ठीक नहीं है; हमें बचाओ । ९८५ [म.] तुमने कहा था कि अपने पतियों, बच्चों और बंधुओं का आज्ञापालन ही स्त्रियों के लिए धर्मसंगत आचरण है । हे धर्मज्ञ ! तुम ज़रा सोचकर देखो; पति, पुत्र आदि के रूप और नामों से भासित होनेवाले तुममें पति-पुत्रादि की संभावना करके अपनी वांछापूर्ति की चाह रखना हम देहधारियों के लिए क्या न्याय-संगत नहीं है ? ९८६ [मत.] चतुर लोग सदा तुम्ही को प्रेम करते रहते हैं, [क्योंकि] तुम्हीं लोगों में प्रेम का उद्दीपन करते हो । अत: अत्यंत दुख देनेवाले पति-पुत्रों को हमें क्यों दिखाते हो ? जब कि हमारा अनुराग तुम्हीं को घेरे हुए है, उसे क्यों छुड़ाना चाहते हो ? हे कृपानिधि ! हमारा संताप छुड़ाओ । ९८७ [सी.] हमारे पैर चाह के साथ तुम्हारे चरण-कमलों के समीप ही पहुँचते हैं, पीछे हटकर वापस नहीं जाते; हमारे

सी. नी पादकमलंबु नॅम्मि डग्गर गानि तरलि पोवंग बादमुलु रावु
नी कराब्जंबुलु नॅरि नंटितिव गानि तक्किन पनिकि हस्तमुलु चॅरवु
नी वागमृतधार निंड ग्रोलग गानि चॅवुलन्य भाषल जेरि विनवु
नी सुंदराकृति नियति जूडग गानि चूडवन्यंबुल जूड्कि कनुलु

आ. निन्नॅ कानि पलुक नेरवु मा जिह्व-
लॅल्लननुचु बलुक नोड वोवु
मा मनंबुलेल मरपि दोंगिलितिवि
येमि सेयुवारमिक गृष्ण ! ॥ 988 ॥

चं. सिरिकि नुदार चिह्नमुल जेयु भवच्चरणारविंदमुल्
सरसिजनेत्र ! मा तपमु संपद जेरिति मॅट्टकेलकुन्
मरलग लेमु मा मगलमाटल नॅल्लमु पद्मगंधमुल्
मरगिन तेट्टुलन्य कुसुमंबुल चॅंतल जेरनेर्चुने ? ॥ 989 ॥

आ. सवतुलेक नी विशाल वक्षःस्थलि
दुलसितोड गूड दोयजाक्ष !
मनुपु मनुचु नॅपुडु माकांत नी पाद-
कमल रजमु गोरु गादॅ कृष्ण ! ॥ 990 ॥

उ. अत्तलु मामलुन् वगव नारडि कोडक नाथुलन् द्रपा-
यत्तुल जेसि यिल्वरुस लाड्डिवोवग नोदु नव्वुलन्

हाथ तुम्हारे सुंदर करकमलों को छूने को आगे बढ़ते है, दूसरे कामों पर लगते ही नही; हमारे कान तुम्हारी वाक्सुधा भरपूर पान करते हैं, अन्य भाषण सुनना नही चाहते; हमारा नेत्रद्वय तुम्हारी सुंदर आकृति (रूप) को स्वभाव से ही देखता रहता है, अन्य किसी [पदार्थ] पर जमता नहीं; [आ.] हमारी जीभ तुम्हारे सिवा और किसी की भी बात करना नही चाहती; हे कृष्ण ! हमे भुलाकर तुमने हमारा चित्त क्यों चुराया ? हाय ! अब हम करे क्या ? ९८८ [चं.] हे सरसिजनेत्र (कमलनयन)! लक्ष्मी के अलंकार बननेवाले तुम्हारे चरणारविंदों को हमने मर-पचकर तप से प्राप्त संपत्ति के रूप मे पाया है। अब उन्हें छोड़ लौट नही सकती; अपने पतियों की बाते हम मानेंगी नही, कमल की सुगंधि में आसक्त हो छके हुए भौंरे कहीं दूसरे फूलों के पास फटक सकते है ? ९८९ [आ.] हे कमलनयन ! लक्ष्मीदेवी तुलसी [माला] के साथ-साथ तुम्हारे विशाल वक्षस्थल में निवास करते रहने की अभिलाषा से तुम्हारे चरणकमलों की धूल [सिर पर] लेती है, हे कृष्ण ! यह तो तुम जानते ही हो ! ९९० [उ.] सास-ससुरों को रुलाकर,

मॅत्तनि माटलन् मरुडु मॅक्कॊनि यॅचिन वच्चिनार मे
पॊत्तुल नॊल्ल मो पुरुषभूषण ! दास्यमुलिच्चि काववे ॥ 991 ॥

म. मगुवल् चिक्करॆ तॊलिलि वल्लभुलकुन् मन्निंचि तद्वल्लभुल्
मगपंतंबु तलंपरे तगुलमुल मापालने पुट्टॆने
मगवाराडॆडि माटले तगवु नी माटल् मनोजाग्नि चे
बोगलं जालमु कौगिलिपुमु ममुं पुण्यंबु बुण्यात्मका ! ॥ 992 ॥

उ. कुंडलदीप्त गंडमुनु गुंचित कुंतलफालमुन् सुधा
मंडित पल्लवाधरमु मंजुल हासविलोकनंबुनै
युंडॆडु नी मुखंबु गनि युंडग वच्चुनॆ मन्मथेक्षु को-
दंड विमुक्त बाणमुल दासलमय्यॆदमादरिपवे ॥ 993 ॥

सी. नी यधरामृत निर्झरंबुलु नेडु चेरि वातेरलपै जिलुककुन्न
नी विशालांचित निर्मल वक्षंबु गुचकुट्मलंबुल गूर्पकुन्न
नी रम्यतर हस्त नीरजातंबुलु चिकुर बंधंबुलु जेर्पकुन्न
नी कृपालोकन निवहंबु मॆल्लन नेम्मॊगंबुल मोद नॆरपकुन्न

लोकनिंदा की उपेक्षा करके, अपने पतियों को लज्जित करके, कुल-मर्यादा को तिरस्कृत करते हुए और तुम्हारी मुस्कुराहट और मृदुवचनों के कारण कामार्त होकर हम तुम्हारे पास आयी है। हम कोई दूसरा नाता या संबंध स्वीकार नही कर सकतीं। अतः हे पुरुषभूषण (पुरुषों में श्रेष्ठ)! हमें अपना दास्य (सेवा करने का अवकाश) देकर, रक्षा करो। ९९१ [म.] क्या इसके पूर्व औरतें प्रेमियों के हाथ उलझती (फँसती) नही थीं? और वे प्रेमी उनका लालन कर अपने; पुरुषत्व साबित करने का ख्याल नही करते थे? क्या यह लगालगी (आसक्ति) केवल हमारे ही पाले पड़ी है? क्या तुम्हारे वचन पुरुषों के कहने योग्य है? नहीं, ऐसी बातें तुम्हारे योग्य नही हैं। कामाग्नि में [अब] हम संतप्त नहीं हो सकती। हे पुण्यात्मा (कृष्ण)! तुम्हें पुण्य होगा, हमें गले लगा लो। ९९२ [उ.] तुम्हारी कनपटियाँ कर्णकुंडलों की जोत से झलक रही हैं; फाल भाग पर घुंघुराले बाल लटक रहे हैं; पल्लव जैसा अधर सुधा से अलंकृत है; तुम्हारी चितवनें मुस्कुराती हुई सुंदर लग रहीं है, इस प्रकार शोभायमान तुम्हारा मुखड़ा देख हमसे रहा नहीं जाता, मन्मथ के इक्षुकोदड (ईख की कमान) से छूटे बाणों की हम शिकार बन गई हैं, हमारा आदर करो। ९९३ [सी.] यदि तुम अपने अधरामृत के सोते आज हमारे ओंठों पर प्रसरित न करो; अपना विशाल और निर्मल वक्षस्थल यदि हमारे कुचकुट्मलों (अधखिली कली-सदृश स्तनों) से न सटा रखो; अपने सुकोमल हस्त-

आ. नी नवीन माननीय सल्लापंबु
कर्णरंध्र दिशल गप्पकुन्न
नॆट्लु ब्रतुकुवार मॆंदु जेरॆडुवार
मधिप ! विग दगदॆ याडु कुयुलु ॥ 994 ॥

म. भवदालोकन हास गीतजमुलै भासिल्लु कामाग्नुलन्
भवदीयाधर पल्लवामृतमुचे बापन् दगुन् वापवे-
नि वियोगानल हेतिसंहतुलचे नीरै भवच्चिंतलन्
भवदंघ्रि द्वयवीथि बॊंदॆदमु नी पावंबुलानन् प्रिया ! ॥ 995 ॥

कं. तरु मृग खग गोगणमुलु
करमॊप्पॆडु निन्नु गन्न गानमु विन्नन्
गरगि पुलकिंचु नवललु
करगरॆ निनु गन्न नीवु गानमु विन्नन् ॥ 996 ॥

सी. ई पंचबाणाग्नि नेमिट नार्तुमु नी मंजु वाग्वृष्टि नॆगडदेनि
नी मन्मथांबोधि ने त्रोव गडतुमु नी दृष्टि नावयै निलुव देनि
नी चित्तजध्वांत मेजाड जॆरुतुमु नी हासचंद्रिक निगुडदेनि
नी दर्पकज्वर मेभंगि नणगु नी यधरामृतौषध मब्बदेनि

कमलों से यदि हमारा चिकुरबंध (जूड़ा) न सँवारो; यदि अपनी कृपा-दृष्टियाँ हमारे मुख पर न फैलाओ; [आ.] और अपने नूतन सम्मानित सल्लापों से यदि हमारे कर्णपुटों को ढाँप न दो तो हम कैसे जीवित रह सकती है ? कहाँ जाकर शरण लेंगी ? हे स्वामी ! इन स्त्रियों की गुहार सुनो तो। ९९४ [म.] हे प्रिय (कृष्ण) ! तुम्हारी चितवनों से, मंदहासों से, [मधुर] गीतों से उत्पन्न होकर [हमारे हृदयों में सुलग उठी] कामाग्नियों को अपने अधरामृत से बुझाना तुम्हारे लिए उचित है; यदि उसे [इस प्रकार] न बुझाओगे तो हम वियोग की आग की ज्वालाओं में जलकर राख हो जायेगी। चित्त में तुम्हारा चिंतन करते हुए हम तुम्हारे चरणों के पास पहुँचकर वही जगह पायेंगी। ९९५ [कं.] तरु (वृक्ष), मृग, खग (पक्षी) और गोगण भी तुम्हारी सुंदर मूर्ति देखकर, तुम्हारा गायन सुनकर पुलकित हो गल जाते है; तब हम, अबलाएँ क्या गल नहीं जायेंगी ? ९९६ [सी.] यदि तुम्हारे मृदुवचनों की वर्षा न हो तो यह कामाग्नि हम किस प्रकार बुझा सकेंगी ? यदि तुम्हारी कृपादृष्टि रूपी नाव न मिले तो इस काम समुद्र को हम किस रास्ते से पार कर सकेंगी ? तुम्हारी हँसी चाँदनी बनकर यदि हम पर न छिटकी तो यह काम रूपी अंधकार को हम किस उपाय से दूर कर सकेगी? तुम्हारे अधरामृत रूपी औषध के न मिलने पर हमारा कामज्वर किस प्रकार उतरेगा ? [आ.] हम यह

आ. ऎंट्लु निर्वहिंतु मेलागु मालागु, करुण सेयवेनि गदियवेनि
मरुडु निर्दयुंडु मन निच्चुने यशो, -दा कुमार ! युवति धैर्यचोर ! ॥997॥

कं. अमरुल गाचिन हरि क्रिय
गमलेक्षण ! नीवु नेडु करुण नभय ह-
स्तमु मायुरमुल शिरमुल
ब्रमदंबुन निडुमु मूर्छ पाल्पडकुंडन् ॥ 998 ॥

कं. कट्टा ! तलमुनुकलुने, दट्टपु विरहाग्नि शिखलु तरुणुल वेपन्
नॆट्टुं बलुकवु चूडवु, कट्टडिवि गदा कुमार ! करुणोदारा ! ॥ 999 ॥

व. अनि यिट्लु कुसुमशरुनि शरपरंपरापरवशलै, योपिक्लु लेक पलिकिन गोपिकल दीनालापंबुलु विनि, नव्वि योगीश्वरेश्वरुंडैन कृष्णुं-डात्मारामुंडै, वारलतो रमिंचॆ। अप्पुडु ॥ 1000 ॥

म. करुणालोकमुलं बटांचल कचाकर्षंबुलन् मेखला-
कर बाहुस्तन मर्शनंबुल नखांक व्याप्तुलन् नर्मवा-
क्परिरंभंबुल मंजुलाधर सुधापानंबुलन् गांतलन्-
गरगिंचॆन् रतिकेळि गृष्णुडु कृपन् गंदर्पु बालार्चुचुन् ॥ 1001 ॥

लगाव किस तरह निभा सकेंगी ? तुम यदि कृपा न करोगे और यदि हम से न मिलोगे, तो हे यशोदानंदन ! हे युवतियों का धैर्य चुरानेवाले कृष्ण ! निर्दयी मन्मथ हमें जीवित न रहने देगा। ९९७ [कं.] हे कमलनयन ! भगवान विष्णु ने जिस प्रकार देवताओं की रक्षा की थी, उसी प्रकार तुम आज हम पर करुणा दिखाकर हमारे वक्ष और सिरों पर प्रमोद के साथ अपना अभयहस्त रखो, जिससे हम मूर्च्छित होने से बची रहें। ९९८ [कं.] हाय ! हम सिर तक डूबी हुई हैं; जब कि विरह की लपटें हम युवतियों को भून रही हैं, हे कुमार ! तुम कुछ भी नहीं करते, देखते भी नहीं हो। हे करुणोदार कृष्ण ! तुम [वास्तव में] कठोर बने हुए हो !" ९९९ [व.] इस तरह मन्मथ की बाण-परंपरा से बिंध कर सत्त्वहीन हुई गोपिकाओं के दीनालाप सुनकर योगीश्वर कृष्ण ने हँसकर स्वयं आत्माराम बन उनके साथ विलास क्रीडा करके उन्हें आनन्द पहुँचाया। १००० [म.] करुणापूर्ण दृष्टियाँ फेंककर आँचल और केशपाश को घसीट कर, कमरबंद, हस्त, बाहू और स्तनों को टटोल कर, नखक्षत बनाकर, रसीली बातें बोलकर, आलिंगन करके, कोमल अधर-सुधा का पान करके, कृष्ण ने कृपापूर्वक काम का निवारण करते हुए रति-क्रीड़ा में उन गोपियों को द्रवीभूत किया (पिघला दिया)। १००१

कं. मक्कुव विकसित वदनलु
चक्कग दनु गौल्व हासचंद्रिकतोडन्
मिक्किलि मॅरसॅनु गृष्णुडु
चुक्कलगमि नडिमि पूर्ण सोमुनि भंगिन् ॥ 1002 ॥

आ. सतुलु दन्नु बाड संप्रीति नाडुचु, नरुतनुन्न वैजयंतितोड
वनजलोचनुंडु वनभूषणुंडय्यॅ, युवतिजन शतंबुलोलि गौलुव ॥ 1003 ॥

व. अंत ॥ 1004 ॥

उ. चिक्कक योशुडै यॅदिरि जिक्कुल बॅट्टुडि मायलानिकिन्
जिक्कि कृतार्थलै मरुनि चिक्कुल जौक्कि लतांगुलुंडगा
मक्कुव शांतिसेयुटकु मन्नन सेसि प्रसन्नुडौटकुन्
जक्कन ना विभुंडु गुणशालि तिरोहितुडय्यॅ नय्यॅडन् ॥ 1005 ॥

अध्यायमु—३०

व. इट्लु हरि, कनु मौऱगि चनिन, करि गानक तिरुगु करेणुल पॅल्लुन नुल्लंबुलु दल्लडिल्ल, वल्लवकांतलु तदीय गमन हास विलास वीक्षण विहार वचन रचनानुरागंबुलं जित्तंबुलु गोल्पडि, विविध चेष्टलकुं

[कं.] अपनी सेवा में रत उन गोपिकाओं के बीच, जिनके मुँह अनुराग से विकसित हुए थे, हास-विलास की चाँदनी छिटकाते हुए कृष्ण यों प्रकाशमान रहे मानों तारापुंज के मध्य में स्थित पूर्णचन्द्र हो। १००२ [आ.] जब युवतियाँ उनकी स्तुति गा रही थी तो वह (कृष्ण) प्रीति के साथ नाचने लगा; इस प्रकार वह वनजलोचन (कमलनयन) सैकड़ों युवतियों की सेवा से प्रसन्न हो गले में लगी हुई वैजयंती मालाओं के साथ वन-भूषण (वन की शोभा बढ़ानेवाला अलंकार) बन गया। १००३ [व.] तब १००४ [उ.] किसी की पकड़ाई में न आते हुए उलटे [जीवों को ही] उलझन में डालनेवाले उस मायावी (कृष्ण) के हाथ पड़कर वे लतांगी गोपिकाएँ कृतार्थ हुईं; जब वे कामदेव के फंदे में फँसकर छकी हुई थीं, वह गुणशाली प्रभु (कृष्ण) उनका प्रेम शांत करने, और उन्हें मान देकर प्रसन्न होने के विचार से एकाएक अंतर्हित (अदृश्य) हो गया। १००५

अध्याय—३०

[व.] जब हरि (कृष्ण) आँखों से ओझल हो गया, तो हाथी को न पाकर भटकनेवाली हथिनियों के समान, गोप-वनिताएँ [खोज में] घूमने लगीं; वे कृष्ण के चलने-फिरने, हास-विलास करने, कटाक्षों से देखने, विहार

बाल्पडि, तदात्मकत्वंबुन नेन नेन कृष्णुंडननि, कृष्णगुणावेशंबुलं जरियिंचुचु ॥ 1006 ॥

कं. भूतमुललोन वॅलि ब्र, ख्यातुंडगुनट्टिवानि गांतलु कालिं-
दीतीर वनांतरमुल, ब्रातिन् वॅदकंग जनिरि पाडुचु नधिपा ! ॥ 1007 ॥

सी. पुन्नाग ! कानवे पुन्नागवंदितु, दिलकंब ! कानवे तिलकनिटलु
घनसार ! कानवे घनसार शोभितु, बंधूकं ! कानवे बंधुमित्रु
मन्मथ ! कानवे मन्मथाकारुनि, वंशंब ! कानवे वंशधरुनि
जंदन ! कानवे चंदनशीतलु, गुंदंब ! कानवे कुंदरदनु

ते. निद्रभूजम ! कानवे यिंद्रविभवु
गुवल वृक्षम ! कानवे कुवलयेशु
ब्रियकपादप ! कानवे प्रियविहारु
ननुचु गृष्णुनि वॅदकिरय्यब्जमुखुलु ॥ 1008 ॥

व. मरियुनु ॥ 1009 ॥

करने, चतुर वचन कहने, और अनुराग दिखाने [आदि गुणों] पर चित्त लगाकर [अनुकरण में] उस प्रकार की विविध चेष्टाएँ करने लगीं। कृष्ण से तादात्म्य रखकर उसी के गुणों के आवेश से भरकर यह कहती फिरीं कि "मैं ही कृष्ण हूँ, मैं ही कृष्ण हूँ।" १००६ [कं.] हे राजन् ! समस्त भूतों में प्रत्यक्ष गोचर होनेवाले [भगवान] को वे रमणियाँ यमुना तट पर के वनांतरों में प्रीति से उसका गुणगान करते हुए ढूँढ़ती चलीं। १००७ [सी.] [वे कमलमुखी गोपिकाएँ वन के वृक्षों से इस प्रकार पूछती गयीं—] "हे पुन्नाग ! तुमने पुन्नाग-वंदित (पुरुषश्रेष्ठों से पूजित) कृष्ण को नहीं देखा ? हे तिलकवृक्ष ! तुमने तिलकनिटल (भाल पर टीका लगाए) कृष्ण को देखा नही ? हे घनसार ! (कपूर-कदली) तुमने घनसार-शोभित (कर्पूर से अलंकार किये) कृष्ण को देखा नहीं ? हे बधूक (दुपहरिया) ! क्या तुमने [हमारे] बंधुमित्र (कृष्ण) को नहीं देखा ? हे मन्मथ वृक्ष ! मन्मथाकार (सुंदरमूर्ति) कृष्ण को तुमने देखा नही क्या ? हे वंश (बाँस) ! तुमने वशधर (बाँसुरी पकड़े) कृष्ण को नहीं देखा ? हे चंदन-वृक्ष ! तुमने चंदन-शीतल (चंदन जैसा शीतल) कृष्ण को नही देखा ? हे कुंद ! तुमने कुंदरदन (कुंदकलियाँ जैसे दाँत वाले) कृष्ण को देखा नहीं क्या ? [ते.] हे इन्द्रवृक्ष (कुटज) ! तुमने इन्द्रविभव (इन्द्र के समान वैभवशाली) कृष्ण को नहीं देखा ? हे कुवलवृक्ष ! क्या तुमने कुवलयेश (जगत् के अधिपति) कृष्ण को नही देखा ? हे प्रियकवृक्ष (कदंब) ! क्या तुमने प्रियविहार (प्रीतिपूर्वक विहार करनेवाले) कृष्ण को नहीं देखा क्या ? १००८ [व.] तथा १००९ [उ.] एक काला

उ. नल्लनिवाडु पद्म नयनंबुलवाडु कृपारसंबु पै
जल्लेडुवाडु मौळि परिसर्पित पिंछमुवाडु नव्वु रा-
जिल्लेडु मोमुवाडोकडु चॆल्वल मानधनंबु दॆच्चॆ नो
मल्लियलार! मी पॊदलमाटुन लेडु गदम्म! चॆप्परे ॥ 1010 ॥

उ. अंगजुनैन जूड हृदयंगमुडै करगिंचुवाडु श्री
रंग दुरंबुवाडु मधुरंबगु वेणुरवंबुवाडु म-
म्मंगजु पुव्वुटूपुलकु नग्गमु चेसॆ लवंग लुंग ना
रंगमुलार! मी कडकु राडुगदा! कृप नुन्न जूपरे ॥ 1011 ॥

सी. मानिनीमन्मथु माधवु गानरे सललितोदार वत्सकमुलार!
सललितोदार वत्सक वैरि गानरे सुंदरोन्नत लतार्जुनमुलार!
सुंदरोन्नत लतार्जुनभंजु गानरे घनतर लसदशोकंबुलार!
घनतर लसदशोक स्फूर्ति गानरे नव्य रुचिर कांचनंबुलार!

आ. नव्य रुचिर कांचन किरीटु गानरे
गहनपदवि कुरुवकंबुलार!
गहन पदवि कुरुवकनिवासि गानरे
गणिकलार! चारु गणिकलार! ॥ 1012 ॥

[वर्णवाला, साँवला], पद्मनयन वाला, कृपारस [भक्तों के] ऊपर छिड़कनेवाला, सिर पर मोरपख सजाये रहनेवाला, हँसी से सुंदर बने मुखवाला [पुरुष], जो सुंदरियों का मान-धन लूट चला है, हे मल्लिकाओ ! वह तुम्हारी झाड़ियों की आड़ में [बैठा] तो नहीं है ? कहो न ! १०१० [उ.] कामदेव से भी अधिक मोहक होकर [स्त्रियों को] द्रवित करनेवाला, लक्ष्मी को छाती पर धारण करनेवाला, वेणु पर मधुर स्वर (गीत) बजानेवाला कृष्ण, हमें मन्मथ के पुष्प-बाणों का निशाना बनाकर चला गया; हे लवंग, लुंग, नारंग वृक्षो ! वह (कृष्ण) तुम्हारे समीप तो नहीं आया ? यदि आया हो तो कृपा करके हमें दिखा दो न ! १०११ [सी.] हे ललित (कोमल) और उदार वत्सक (मोतिया) ! तुमने मानवतियों के प्रियतम (मन्मथ)-माधव (कृष्ण) को नहीं देखा ? हे सुंदर और उन्नत अर्जुनवृक्ष ! तुमने ललित और उदार वत्सकवैरी (वत्सकासुर का शत्रु) कृष्ण को देखा नहीं ? हे घने और शोभायमान अशोक ! तुमने सुंदर और उन्नत अर्जुन-भजक (अर्जुनवृक्षों को उखाड़नेवाले) कृष्ण को नहीं देखा ? हे नव्य और मनोहर कांचन (कचनार) ! [आ.] तुमने नव्य और मनोहर कांचन-किरीटी (सुवर्ण-किरीट-धारी) कृष्ण को नहीं देखा ? घने वनों के हे कुरुवक वृक्षो ! क्या तुमने घने वनों में रहनेवाले कृष्ण को नहीं देखा ? हे गणिकाओ (वेला-लताओ) ! तुमने सुंदर कृष्ण को नहीं

सी. अदॅ नंदनंदनुंडंतर्हितुंडय्यॅ बाटली तरुलार ! पट्टरम्म !
हेलावतुल गृष्ण ! येल पासितिवनि यॅलेय लतलार ! य़डुगरम्म !
वनजाक्षुडिच्चटिकि वच्चि डागडु गदा चूत मंजरुलार ! चूडरम्म !
मानिनी मदनुतो मा राक यॅरिँगिचि माधवी लतलार ! मनुपरम्म !

आ. जाति सतुल बाय नीतियॅ हरि कनि
जातुलार दिशल] जाटरम्म !
कदळुलार ! पोयि कर्दालिचि शिखिपिंछ
जूटु दॅच्चि करुण जूपरम्म ! ॥ 1013 ॥

कं. हरि चरणमुलकु प्रियमॅ
हरि निनु मन्निप भद्र मंदॅडु तुलसी !
हरि नी दॅस राडु गदा !
हरि चॉप्पॅरिंगिचि शुभमु लॅदिपगदे ॥ 1014 ॥

ते. पॉगड दगुवानि गानरे पॉगडलार !
यी डॅरुंगनि विभु जूपुडीडॅलार !
मॉल्लमगु कीर्ति वाडॅडि मॉल्ललार !
शुकनिगदितुनि जॅपुडु किंशुकमुलार ! ॥ 1015 ॥

देखा ? १०१२ [सी.] वह देखो ! नंदनंदन उधर छिप गया है। हे पाटलवृक्ष ! उसे पकड़ लो। हे ऐलेय लताओ (इलायची बेलो) ! तुम लोग कृष्ण से पूछ लो कि वह विलासिनी-गोपिकाओं को क्यों छोड़ चला है ? हे चूत-मंजरियो (आम की बौर) ! कमलनयन (कृष्ण) यहाँ आकर छिप तो नही गया, देखो तो सही ! हे माधवी लताओ (चमेली) ! मानिनी-मदन (वनिताओं के लिए कामस्वरूप) कृष्ण को हमारे आने की सूचना देकर उसे भेज तो दो। हे जातियो (जायफल के वृक्ष) ! तुम चारों तरफ़ घोषित कर कह दो कि [आ.] अपनी जात की ललनाओं को त्याग देना हरि (कृष्ण) के लिए नीतिसगत नही है। हे कदलीवृक्षो (केले के वृक्ष) ! तुम जाकर मोरपखों को जूड़े में पहने कृष्ण को लाकर हमें दिखा देने की कृपा करो। १०१३ [क.] हे तुलसी ! तुम हरि (कृष्ण) के चरणों को अत्यंत प्रिय हो; वह तुम्हें मानकर तुम्हारी भलाई करता है; वह तुम्हारी तरफ़ तो नहीं आया ? उसकी टोह बताकर हमारा भला करो न ? १०१४ [ते.] हे बकुलवृक्षो (मौलसिरी) ! स्तुति करने योग्य (कृष्ण) को तुमने देखा नहीं ? हे जामुन के वृक्ष ! तुम लोग उस प्रभु को दिखा दो जिसे वय की कोई सीमा वहीं है। हे कुंदलताओ ! वह अत्यंत कीर्तिवान् कृष्ण कहाँ है ? बताओ। हे किंशुको (टेसुओ) ! शुक [योगी] से संस्तुत्य-कृष्ण कहाँ है हमें बता दो। १०१५ [कं.]ऐ

कं. तरुणी कुच कुंकुमयुत
हरि कंधर दाम गंध मडरॆडि जूडकुल्
हरि गनिनपगिदि दनरॆडि
हरिणी ! हरिजाड वुण्यमय्यॆडि जॆपुमा ॥ 1016 ॥

कं. किटियै कौगिट जेर्चॆनु
वटुडै वर्धिल्लि कौलिचॆ वडि गृष्णुंडै
यिट वदचिह्नमु लिडॆ ग्रि-
दटि वामुन नेमि नोचितम्म ! धरित्री ! ॥ 1017 ॥

व. अनुचु नुन्मत्त चित्तलै, तदात्मकत्वंबुन गृष्णु लीलल ननुकरिंपुचु ॥ 1018 ॥

सी. पूतनयै यौक्क पौलति चरिंपग शौरियै यौक कांत चन्नु गुडुचु
वालुडै यौक भाम पालकु नेड्चुचो वंडिने ननु लेम वारदन्नु
सुडिगालि ननि यौक्क सुंदरि कौनि पोव हरि ननि वर्तिचु नब्जमुखियु
बकुडनेननि यौक्क पडति संरंभिप बद्माक्षुडनु कौम्म परिभविंचु

हिरनी ! [यह जगह] कृष्ण के तरुणी-कुच-कुंकुम से अंकित गले में लगी पुष्प-मालाओं की सुगंध से महक रही है, तुम्हारी दृष्टियाँ ऐसे लग रही हैं जैसे तुमने कृष्ण को यहाँ देख लिया हो; [जान पड़ता है : कृष्ण अपनी प्रेयसी के साथ यहाँ विहार करने आया था।] तुम्हें पुण्य होगा, हमे उस हरि का पता बता दो। १०१६ [कं.] हे धरित्री (भूमि) ! पिछले जन्म में तुमने न जाने कौन सा व्रत साधा था, [कृष्ण ने] पहले आदिवराह बनकर तुम्हें गले से लगा लिया था, फिर वामन बनकर [अपना शरीर बढ़ाते हुए] तुम्हे सम्मान दिया था; अब कृष्ण होकर अपने चरण चिह्नों से तुम्हे अंकित कर रहा है।" १०१७ [व.] यों कहते हुए वे गोपियाँ उन्मत्त-चित्त होकर तादात्म्य के भाव में कृष्ण की लीलाओं का अनुकरण करने लगी : १०१८ [सी.] [उस अनुकरण की लीला में] एक युवती पूतना बन चली तो दूसरी सुंदरी बालकृष्ण बनकर उसका स्तन्य पीती; एक गोपी बालक बनकर दूध के लिए रोती हुई उस दूसरी ललना को, जो अपने को शकटासुर बताती, लात मार गिराती; अपने को अंधड़ (तृणावर्त) बताकर एक वनिता दूसरी अब्जमुखी को खींच ले जाती तो वह गोपी अपने को कृष्ण कहकर जूझ पड़ती; एक वामा अपने को बकासुर कहकर बनावट करती तो दूसरी कोमली अपने को पद्माक्ष (कमलनयन) कृष्ण कहकर उसका पराभव करती; [आ.] दो ललियाँ (ग्वालिनें) बलराम और कृष्ण

आ. नेंलमि रामकृष्णुलितुलिद्दरु गाग
गोप वत्सगणमु कोंदरगुदु
रसुरवैरि ननुचु नबल यौक्कतें चीरु
बसुल मनेंडि सतुल भरतमुख्य ! ॥ 1019 ॥

आ. लोकमेंल्ल गुक्षिलोपल नुन्नट्टि
माधवुंड नेनु मात वीवु
चूडु मनुचु नोंक्क सुंदरि यौकतेंकु
मुखमु देंरचि चूपु मुख्यचरित ! ॥ 1020 ॥

कं. वेंन्नलु दोंगिलि तिनियेंडि
वेंन्नुडननि यौकतें नुडुव वेरोक्कतें चे-
सन्नल यशोद नंचुनु
ग्रन्नन कुसुममुलदंड गट्टु निलेशा ! ॥ 1021 ॥

कं. काळियफणि यिदि वीरलु
काळिय फणि सतुलु म्रोक्क गडगिरि ने गो-
पालकुमारुड ननुचुनु
लीलागति नाडु नोंक्क लेम नरेंद्रा ! ॥ 1022 ॥

कं. तरुणुलु गोपकुलंदरु
हरिहयुडिदें वान गुरिसें हरिनेननि भा-
सुर चेलांचल मोंक्कतें
गिरि नेंत्तेंद ननुचु नेंत्तु गेंगेल नृपा ! ॥ 1023 ॥

बनती है तो अन्य कुछ बालाएँ गोपबालक और बछड़े बन जाती है; हे भरत-कुल-श्रेष्ठ (राजन्) ! एक अबला गायें बनी गोपियों को पास बुला लेती हैं। १०१९ [आ.] हे भव्यचरित् (राजन्) ! एक सुंदरी ने यह कहते हुए कि मैं समस्त लोकों को कुक्षि में रखनेवाला माधव (कृष्ण) हूँ और तुम मेरी माता (यशोदा) हो, देखो तो— अपना मुँह खोल दिया। १०२० [कं.] हे भूमीश (राजन्) ! जब एक गोपी ने कहा कि मैं माखन चुराकर खानेवाला विष्णु (कृष्ण) हूँ, तब एक दूसरी गोपी ने अपने को इशारे से यशोदा बताकर उसे गजरे से बाँध दिया। १०२१ [कं.] हे नरेंद्र ! एक नवेली ने [दूसरी को दिखाकर] कहा कि यह कालियनाग है, [कुछ अन्य गोपियों को दिखाकर कहा कि] ये सब कालिय की स्त्रियाँ हैं, मेरे पैरों पर पड़ रही हैं; वह अपने को गोपालकुमार (कृष्ण) कहकर विलास के साथ नृत्य करने लगी। १०२२ [कं.] हे राजन् ! "ये सब युवतियाँ ग्वाले है, यह देखो इंद्र पानी बरसा रहा है,

कं. मीरलु गोपकुले नसु, -राररिनि दावाग्नि वच्चॆं नट्टु जूडकुडी
वारिचॆद ननि यॊवकतॆ, चेरि बयल् कबळनंबु सेयु नरेंद्रा ! ॥ 1024 ॥

व. इट्लु तन्मयत्वंबुन गोपसुंदरुलु वृंदावनंबुनं गल तरु लतादुल हरि नडुगुचु, निरर्गळंबुलयिन विपिन मार्गंबुल सरोजात केतन हल कुलिशांकुशादि लक्षण लक्षितंबुलै, मनोहरंबुलैन हरिचरणंबुल चॊप्पु गनि, तप्पक चॆप्पुकॊनुचु दमलो निट्लनिरि ॥ 1025 ॥

सी. कॊम्मकु बुव्वुलु कोसिनाडिवकड मॊनसि पादाग्रंबु मोपिनाडु
सति नॆत्तुकॊनि वेड्क जरिगिनाडिवकड दृणमुलो लेदिवॆ तॆरवजाड
प्रियकु धम्मिल्लंबु पॆट्टिनाडिवकड गूर्चुन्न चॊप्पिद कॊमरुमिगुलु
नितिकि गॆम्मोवि यिच्चिनाडिवकडॆ वॆलदि निविकन गति विशदमय्यॆ

आ. सुवतितोड नीरु जॊच्चिनाडिवकड
जॊच्चि ता वॆडलिनचोट्लमरॆ
दरुणि गामकेळि दनिपिनाडिवकड
ननगि पॆनगि युन्न यंदमॊप्पॆ ॥ 1026 ॥

व. मरियुनु ॥ 1027 ॥

मैं हरि (कृष्ण) हूँ, [गोवर्धन] गिरि उठा रखूँगा" —यों कहकर एक ललना ने अपनी साड़ी का आँचल हाथ से ऊपर उठाकर फैलाया। ०१२३ [कं] "तुम लोग ग्वाले हो, मैं सुरारि कृष्ण हूँ, दवाग्नि आ रही हैतुम उधर मत देखो, मैं उसे रोक दूँगा" —यों कहती हुई, हे नरेश ! एक युवती खुले मैदान में [आग] निगल जाने का अभिनय करने लगी। १०२४ [व.] इस प्रकार तन्मयता से वे गोप-सुंदरियाँ बृन्दावन के तरु-लताओं से कृष्ण की टोह पूछती हुई खुले विपिन मार्गों पर कमल, केतन-(झंडा), हल, कुलिश (वज्र), अंकुश आदि रेखाओं से अंकित हरि के चरण-चिह्न देखकर एक-दूसरी से कहती हुई आपस में यों संलाप करने लगीं : १०२५ [सी.] "इस जगह पेड़ पर एक चरणाग्र (पैर) टेककर [कृष्ण ने] डाली से फूल तोड़े हैं। यहाँ से प्रिया को गोदी में उठाये उमँगते चला है; [क्योंकि] घास पर स्त्री के चरण-चिह्न दिखाई नहीं दे रहे। इस स्थान पर [कृष्ण ने] सखी का खोंपा (जूड़ा) सँवारा है, उनके वैठने के ये स्पष्ट निशान हैं। यहाँ पर उसने प्रेयसी को अपना पल्लवाधर दिया है, स्त्री के ऐठने का ढंग गोचर हो रहा है। इस जगह तरुणी को लेकर उसने जल में पैठ क्रीड़ा की है, [आ.] साथ-साथ जल में प्रवेश करने और निकलने के निशान बने हुए हैं। [कृष्ण ने] इस स्थान पर कामिनी से लिपट-चिपटकर, रतिक्रीडा में उसे छकाया, उनके मिलन से यह स्थान

सी. ऑक यॅलनाग चॅय्यूदिनाडिक्कड सरसनुन्नवि नालुगु चरणमुलुनु
नॉक नीलवेणितो नॉदिगिनाडिक्कड मगजाडलो निर्दे मगुव जाड
यॉक लेम म्रॉविकन नॉडिसिनाडिक्कड रमणि म्रॉविकन चॉव्वु रम्यमय्यॅ
नॉकयंति नॅदुरुगा नॉलसिनाडिक्कड नन्योन्य मुखमुले यंघ्रुलॉप्पॅ

आ. नॉकतॅ वॅंट दगुल नुंडक यॅगिना-
डडुगुमीद दरुणि यडुगु लमरॅ
नबललिरु कॅलंकुलंदुरा दिरिगिना-
डारुपदमु लुन्नवम्म ! यिचट ॥ 1028 ॥

सी. ई चरणंबुले यिंदुनिभानन ! सनकादि मुनि योग सरणि नॉप्पु
नी पादतलमुले यॅलनाग ! श्रुतिवधू सीमंतवीथुल जॅन्नु मिगुलु
नी पदाब्जंबुले यिभकुलोत्तमयान ! पालेटि . राचूलि पट्टुकॉम्म
लॊ सुंदरांघ्रुले यिंदीवरेक्षण ! मुक्तिकांता मनोमोहनंबु

आ. लॊ यडुगुल रजमॅ यिंति ! ब्रह्मेशादि
दिविजवरुलु मौळिदिशल दाल्तु-
रनुचु गॊंदरबल लब्जाक्षु डॅगिन
क्रममु गनियु नतनि गानरॅरि ॥ 1029 ॥

शोभायमान हुआ है। १०२६ [व.] और··· १०२७ [सी.] [कृष्ण ने] यहाँ पर एक नवेली का हाथ पकड़ा, चार पदचिह्न साथ-साथ पंक्ति में बने हुए हैं। इस जगह वह एक नीलवेणी (स्त्री) के कंधों पर झुक पड़ा है, पुरुष पदचिह्न पर ही स्त्री के भी पदचिह्न लगे हुए है। इस स्थान में उसने उस रमणी को ऊपर उठाया जो उसके पैरों पर गिरी थी, उसके नमस्कार करने का ढंग मनोहर था। यहाँ पर उसने एक सुंदरी को सामने से आकर भेंटा, उनके क़दम आमने-सामने पड़े दिखाई दे रहे हैं। [आ.] एक के साथ लगे न रहकर कृष्ण इस जगह उसे छोड़ चला, [क्योंकि उसके पद-चिह्न पर ही रमणी के भी डग पड़े दिखाई दे रहे हैं। यहाँ से कृष्ण दोनों बाजुओं में गोपियों को लेकर चला है, [क्योंकि यहाँ से छः-छः डग दिखाई दे रहे हैं। सखी ! इन्हें देखो। १०२८ [सी.] हे चंद्रमुखी ! [कृष्ण के] यही चरण सनक आदि मुनियों के [ध्यान-] योग के लिए अनुकूल है; हे तरुणी ! ये ही पदतल श्रुतिवधूसीमंत- (वेदरूपी स्त्री की माँग अर्थात् उपनिषदों) की शोभा बढ़ानेवाले है। हे गजगामिनी सखी ! ये ही चरण-कमल क्षीराब्धिकन्या (लक्ष्मी) के वासस्थान हैं। हे कमलाक्षी (कमल-नयनी) ! ये ही सुंदर चरण मुक्तिकांता का मन मोह लेनेवाले (मुक्तिदायक) हैं। [आ.]हे सखी ! इन्हीं चरणों का रज ब्रह्मा, ईश (महेश्वर) आदि देवता लोग अपने सिर पर धारण करते है।" —इस

सी. पतुल दैन्यंबुनु भामल क्रौर्यंबु जूपुचु विभु डोक्क सुदतितोड
विहरिंप नदि यॆल्ल वॆलदुल वर्जिचि ना यॊद्द नुन्नाडु नाथुडनुचु
गर्विचि राजाल गमलाक्षु सूपुन निड्कोनु मनुड् नय्यीश्वरुंडु
मॆरगि पोयिन दापमुनु बॊंदि यो कृष्ण! यॆक्कड जनिति प्राणेश ! रमण !

ते. नीकु वरवुड नय्यॆद निलुवुमनुचु
वगव गॊंदरु कांत ला वनित जूचि
वरुडु मन्निंप गर्विचि वनजनेत्रि
चिक्कॆ नेडनि वॆरगुनु जॆंदिरपुडु ॥ 1030 ॥

व. मरियुनु ॥ 1031 ॥

सी. ई पॊदरिंटिलो निदाक गृष्णुंडु नातोड मन्मथनटन माडॆ
निय्योल मगुचोट निदाक जॆलुवुंडु गाढंबुगा नन्नु गौगिलिंचॆ
नी महीजमुनीड निदाक सुभगुंडु चिट्टंटु सेतल सिग्गु गॊनियॆ
नी पुष्पलत पोत निदाक दयितुंडु ननु डासि यधरपानंबु सेसॆ

प्रकार गोपिकाएँ कहती चलीं। उनमे से कुछ ने कमलनयन (कृष्ण) का मार्ग खोजकर पहचान लिया किंतु उन्हें वह दिखाई नही दिया। १०२९ [सी.] पतियों की दीनता और स्त्रियों की क्रूरता (कठोरता) दिखाने के लिए प्रभु (कृष्ण) एक तरुणी के साथ विहार करता रहा; तव उस भामा (स्त्री) को यह घमंड हो गया कि अन्य सव ललनाओं को छोड़कर नाथ (पति) केवल मेरे ही साथ रहा; ऐसे गरूर में आकर उसने कृष्ण से कहा— "हे कमलाक्ष ! अव मैं चल नही सकती, पीठ पर लेकर चलो।" यह सुन ईश्वर (कृष्ण) [सहसा] ओझल हो गया; तब वह वनिता संतप्त हो रोते-रोते पुकारकर यों कहने लगी : "हे कृष्ण ! हे प्राणेश ! हे रमण (प्रिय) ! [ते.] तुम किधर चले गये ? वही खड़े रहो, मैं तुम्हारी टहलुई बनूंगी।" यों विलाप करती हुई उस स्त्री को देख कुछ कामिनियों को अचरज हुआ। वे बोलीं— "जब नाथ (पति) ने सम्मानित किया तो इस वनजनेत्री (कमलनयनी) को गर्व हो गया था, अब यह [बुरी तरह] फँस गयी।" १०३० [व.] अनंतर''' १०३१ [सी.] अन्य कुछ सुंदरियाँ [एक-एक करके] कृष्ण की पूर्ण लीलाओं को मन में लाकर कहने लगीं : "कृष्ण अभी-अभी इसी झाड़ी के भीतर मेरे साथ मन्मथक्रीड़ा करता रहा; इसी आड़ की जगह कुछ समय पूर्व सखा कृष्ण ने मुझे बलपूर्वक गले लगा लिया; इस वृक्षराज की छाया में कुछ देर पहले सुंदर-गोपकुमार (कृष्ण) ने नखक्षत, दंतक्षत आदि विलास-चेष्टाओं से मेरी लाज छुड़ायी; इस पुष्पलता के पीछे प्रिय सखा ने लगकर मेरा अधरपान किया; [आ.] इस

आ. नी प्रसूनवेदि निदाक रमणुंडु
कुसुमदाममुलमु गौप्पु दीर्चॆ
ननुचु गौंदरतिव लंभोजनयनुनि
पूर्वलील वलचि पौगडि रधिप ॥ 1032 ॥

म. अनि यिट्भंगि लतांगु लंदरुनु बृंदारण्यमंदीश्वरुन्
वनजाक्षुन् बरिकिंचि कानक विभुन् वर्णिपुचुन् बाडुचुन्
मनमुल् माटलु चेष्टलुन् ग्रियलु नम्मानाथुपै जेर्चि वे-
चनि रय्यामुन सैकताग्रमुनकुन् संत्यक्त गेहेच्छमै ॥ 1033 ॥

व. चनि गोपिकलु हरि नुद्देशिंचि यिट्लनिरि ॥ 1034 ॥

अध्यायमु—३१

गोपिकागीतमु

कं. नीवु जनिंचिन कतमुन
नो वल्लभ ! लक्ष्मि मंद नौप्पॆ नधिकमै
नी वॆंटनॆ प्राणमुलिडि
नी वाररसॆदरु चूपु नी रूपंबुन् ॥ 1035 ॥

कं. शारद कमलोदर रुचि
चोरकमगु चूपु वलन सुंदर ! मम्मुन्

फूलों के मँडवे के नीचे थोड़ी देर पहले विलासी कृष्ण ने फूलों से मेरा केशबंध सजाया।" हे राजन् ! इस प्रकार कुछ कमलनयनी रमणियाँ कृष्ण की पूर्व लीलाओं की संस्तुति करती रहीं। १०३२ [म.] इस तरह वे लतांगियाँ बृन्दारण्य में वनजाक्ष-ईश्वर (कृष्ण) को खोजकर भी पता नहीं लगा सकीं; तब वे सब प्रभु का वर्णन करतीं, स्तुति गातीं, मन, वचन और शारीरिक चेष्टाएँ लक्ष्मीपति पर जमाकर, घर-द्वार की चाह छोड़कर यमुना नदी के सैकत प्रदेश पर पहुँच गईं। १०३३ [व.] वहाँ जाकर हरि को लक्ष्य करके उन गोपिकाओं ने यों कहा : १०३४

अध्याय—३१

गोपिका-गीत

[कं.] "हे वल्लभ (प्रिय) ! तुम्हारे जन्म के कारण इस घोष का सौभाग्य चमक उठा है (अधिक हुआ है); तुम्हारे जन प्राणपण से तुम्हें खोज रहे हैं, उन्हें अपना रूप दिखाओ। १०३५ [कं.] हे सुंदर !

गोरि वॆलयीनि दासुल
धीरत नॊंप्पिचुटिदि वधिचुट गादॆ ॥ 1036 ॥

आ. विषजलंबु वलन विषधर दानवु
वलन गालिवानवलन वह्नि
वलन मिगुलुवानि वलननु रक्षिचि
कुसुमशरुनि बारि गूर्प दगुनॆ ॥ 1037 ॥

उ. नीवु यशोद विड्डवॆ नीरजनेत्र! समस्त जंतु चे-
तो विदितात्म वीशुडवु तॊल्लि विरिंचि तलंचि लोक र-
क्षाविधमाचरिंपुमनि सन्नुति सेयग सत्कुलंबुनन्
भूवलयंबु गाव निटु पुट्टिति गादॆ मनोहराकृतिन् ॥ 1038 ॥

आ. चरण सेवकुलकु संसारभयमुनु
बापि श्रीकरंबु पट्टु गलिगि
कामदायियैन कर सरोजंबु मा
मस्तकमुल नुनिचि मनुपु मीश! ॥ 1039 ॥

उ. गोवुलवॆंट द्रिम्मरुचु गॊल्चिन वारल पापसंघमुल्
द्रोवग जालि श्रीदनरि दुष्टभुजंग फणालताग्र सं-

[रूपवाले कृष्ण]! शरत्कालीन कमल के गर्भ-कोष की शोभा चुरानेवाली अपनी चितवनें हम पर डाल तुमने हमें बिना दाम दासी बना लिया, अब हमें इस तरह अधीर बनाकर दुखाना क्या हमारा वध कर देना नहीं है? १०३६ [आ.] [इसके पहले तुमने हमें] विषैले जल से, विषाक्त दानवों से, अंधड़ से, दावानल से और कई उपद्रवों से बचाया था; [इतनी कृपा करने के बाद] अब हमें मन्मथ के बाणों का शिकार बनाकर गिरा देना क्या तुम्हें उचित है? १०३७ [उ.] हे कमलनयन! क्या तुम [केवल] यशोदा की संतान हो? [नहीं] तुम तो समस्त जीव-जंतुओं के चित्त में दर्शित होनेवाली आत्मा हो। ईश हो। पूर्व में ब्रह्मा ने सोच-समझकर तुमसे विनती की कि तुम लोक-रक्षा का ढग अपनाओ (उपाय करो), [इस कारण] तुम भूमंडल की रक्षा करने के निमित्त [यादवों के] सत्कुल में मनोहर आकृति से उत्पन्न हुए हो। १०३८ [आ.] हे ईश्वर! हम तुम्हारी चरण-सेविकाएँ हैं, हमारा सांसारिक भय दूर कर दो; तुम्हारा करसरोज लक्ष्मी को ग्रहण किया हुआ है और अभीष्टदायी है, उसे हमारे सिर पर रखकर हमारा कल्याण करो। १०३९ [उ.] गायों को चराते हुए [भी] भजन करनेवालों का पाप-समूह तुम भगा देते हो; दुष्ट कालिय सर्प के फणों पर शोभित हुए तुम्हारे चरण-कमल हमारे स्तनों पर टेक दो

भावितमैन नी चरणपद्ममु चन्नुलमीद मोपि त-
द्भावज पुष्पभल्लभव बाध हरिपु वरिपु माधवा ! ॥ 1040 ॥

कं. बुधरंजनियुनु सूक्तयु, मधुरयु नगु नीदु वाणि मरगिचॆनु नी
यधरामृत संसेवन, विधि नंगजताप मॆल्ल विडिपिपगदे ॥ 1041 ॥

कं. मगुवलयॆड नी शौर्यमु
तगुने निजभक्त भीति दमनुड वकटा !
तगवु भवद्दासुलकुनु
नगु मॊगमु जूपि कावु नळिनदळाक्षा ! ॥ 1042 ॥

म. घन लक्ष्मीयुतमै महाशुभदमै कामादि विध्वंसियै
सनकादि स्तुतमै निरंतर तपस्संतप्त पुन्नाग जी-
वनमै यॊप्पॆडु नी कथामृतमु द्रावंगलुगुने भूरि दा-
न निरूढत्वमु लेनिवारलकु मानारी मनोहारका ! ॥ 1043 ॥

कं. नी नगवुलु नी चूड्कुलु, नी नाना विहरणमुलु नी ध्यानंबुल्
नी नर्मालापंबुलु, मानसमुल नाटि नेडु मगुडवु कृष्णा ! ॥ 1044 ॥

आ. घोषभूमि वॆडलि गोवुल मेपंग
नीरजाभमयिन नी पदमुलु

और कामदेव के पुष्पबाणों से हो रही हमारी बाधा हर लो, हे माधव ! हमारा वरण करो। १०४० [क.] तुम्हारी मधुर वाणी ने, जो बुधजनों को रंजित करनेवाली और सरस वर्णस्वर-युक्त है, हमें अनुरक्त किया; अपने अधरामृत का सेवन कराकर हमारा मन्मथ-संताप दूर कर दो। १०४१ [कं.] स्त्रियों पर अपना शौर्य दिखाना तुम्हें उचित नहीं है; आखिर [यह तो प्रसिद्ध ही है] कि तुम अपने भक्तजनों का भय दूर कर देनेवाले हो। हे नलिन-दलाक्ष (कमललोचन) ! अपने सेवकों को अपना मुस्कुराता चेहरा दिखाकर उन्हें उबारो। १०४२ [म.] हे लक्ष्मी-मनोहर ! तुम्हारी कथा शोभा-संपन्न, शुभ-फलदायक, काम [क्रोध आदि दुर्गुणों] को ध्वंस करनेवाली है; सनक [सनंदन] आदि मुनियों से संस्तुत्य है; निरंतर तपश्चर्या से संतप्त पुरुषश्रेष्ठों को जीवनदायक है; जिन लोगों में दान और त्याग की निष्ठा नहीं है, उनके लिए तुम्हारे कथामृत का पान करना संभव नहीं है। १०४३ [कं.] हे कृष्ण ! तुम्हारी मुस्कुराहटें, चितवनें, तरह-तरह के विहार-विनोद, तुम्हारा [रूप] ध्यान, तुम्हारे नर्मभाषण (दिल्लगी) ये सब हमारे मनों में गड़कर स्थिर हो गये हैं, अब वे [किसी तरह] निकलते नहीं। १०४४ [आ.] हे कमलनयन ! जब तुम घोष से निकलकर गाय चराने जाते हो तब यह सोचकर हमारे मन अत्यंत

कसवु शिललु दाकि कडु नोच्चुनो यनि
कलगु मा मनमुलु कमलनयन ! ॥ 1045 ॥

उ. मापटि वेळ नीवु वन मध्यमु वॅल्वडि वच्चि गोष्पद-
प्रापित धूळिधूसरित भासित कुंतलमै सरोरुहो-
द्दीपितमैन नी मोंगमु धीरजनोत्तम ! माकु वेड्कतो
जूपि मनंबुलन् मरुनि जूपुदु गादॆ क्रमक्रमंबुनन् ॥ 1046 ॥

आ. भक्तकामदंबु ब्रह्मसेवित मिला, मंडनंबु दुःखमर्दनंबु
भद्रकरमुनैन भवदंघ्रियुगमु मा, युरमुलंदु रमण ! युनुप दगदॆ ॥ 1047 ॥

आ. सुरतवर्धनंबु शोकापहरणंबु
स्वरित वंशनाळ संगतंबु
नन्यरागजयमुनयिन नी मधुराध-
रामृतमुन दाप मार्पु मीश ! ॥ 1048 ॥

उ. नी वडविन् बवल् दिरुग नी कुटिलालक लालितास्य मि-
च्छाविधि जूडकुन्न निमिषंबुलु माकु युगंबुलै चनुं
गावुन रात्रुलैन निनु गन्नुल नॅप्पुडु जूडकुंड ल-
क्ष्मीवर ! रॆप्प लड्डमुग जेसॆ निदेल विधात क्रूरुडै ॥ 1049 ॥

विकल हो जाते हैं कि तुम्हारे कमल से कोमल चरण घास-फूस और शिलाओं से रगड़ खाकर दुखते होंगे। १०४५ [उ.] हे धीरोत्तम ! सायं समय तुम वन से वापस आकर, गोधूलि से धूसरित (मलिन) घुँघुरों से शोभित अपना मुखकमल हमें दिखाते हो, जिसे देख हमारे मनों में तुम्हारी प्रीति क्षण-क्षण बढ़ती जाती है। १०४६ [आ.] हे प्रियवर ! तुम्हारा चरणयुग भक्तों का अभीष्ट पूर्ण करनेवाला है; ब्रह्मा से पूजा जानेवाला है; भूमंडल के लिए अलंकार है, दुःख का निवारण करनेवाला है, और शुभप्रद है, अतः उसे हमारे वक्ष पर टेकना उचित होगा। १०४७ [आ.] हे ईश ! तुम्हारे अधरों का अमृत, सुरत (अनुरक्ति) बढ़ानेवाला है, दुःख-शोक हरनेवाला है, बजती वंशी से लगा हुआ है, अन्य सभी रागों को (इच्छाओं को) जीतनेवाला है, उसे प्रदान कर हमारा ताप मिटा दो। १०४८ [उ.] हे लक्ष्मीपति ! जब तुम दिन के समय गाय चराते हुए वन में घूमते रहते हो उस समय तो घुँघराले लटों से शोभित तुम्हारा सुंदर मुखड़ा मन भरकर देखने को हमें नहीं मिलता; हर एक निमेष हमें एक-एक युग के समान बीतता है; [किंतु] रात्रि के समय भी तुम्हारे दर्शनों से हम वंचित ही रह जाती हैं; क्योंकि विधाता ने ये जो पलकें रची है, आड़े पड़ जाती हैं। उसने हम पर ऐसी क्रूरता क्यों की है —मालूम नहीं। १०४९ [उ.] हाय ! हमारे पति, पुत्र, भाई-बहिन आदि बंधुजन

उ. अक्कट ! बंधुलुन् मगलु नन्नलु दम्मुलु बुत्रकावुलुन्
नॅक्कोनि रात्रि बोकुडन नी मृदु गीतरवंबु वीनुलन्
वॅक्कसमैन वच्चितिमि वेगमॅ मोहमु नॉदि नाथ ! नी
वॅक्कड बोयितो यॅरुग मीक्रिय निर्दयुडॅदु गलगुने ॥ 1050 ॥

ते. मवनु डावॅग नी व्राडु मंतनमुलु
नव रसालोकनंबगु नगु - मॉगंबु
कमल किरवैन महित वक्षस्थलंबु
मा मनंबुल लोगॉनि मलपॅ गृष्ण ! ॥ 1051 ॥

म. अरविंदंबुलकंटॅ गोमलमुलै यंदंबुलै युन्न नी
चरणंबुल् कठिनंबुलै मॉनयु मा चन्नुंगवल् मोवगा
नॅरियं बोलु नटंचु बॉक्कुदुमु नी यी कर्कशारण्य भू-
परि संचारमु कृष्ण ! नी प्रियुलकुन् ब्राणव्यथं जेयदे ॥ 1052 ॥

कं. कट्टा ! मन्मथु कोललु
नॅट्टुन नोनाट बॅगडि नी पादंबुल्
पट्टिकॉनग वच्चिन ममु
नट्टडबिनि ड़िचि पोव न्यायमॅ कृष्णा ! ॥ 1053 ॥

कं. हृदयेश्वर ! मा हृदयमु
मृदुतरमुग जेसि तॉल्लि मिक्किलि कड नी

रात के समय घर छोड़ जाने से हमें रोक रहे थे, [किंतु] तुम्हारा मृदु-मधुर गायन ने कानों में पड़ हमें विह्वल बना दिया, तुम्हारे मोह में पड़ तुरंत हम चली आयीं। किंतु हे नाथ ! तुम कहाँ चले गये हो, मालूम नही पड़ता। ऐसे निर्दयी [पुरुष] कही होंगे क्या ? १०५० [ते.] हे कृष्ण ! कामदेव हमें संतप्त कर रहा है; तुम्हारे रहस्य-संकेत, नर्म-भाषण, रसभरी चितवनोंवाला हँसता मुखड़ा, लक्ष्मी को बसानेवाला विशाल वक्षस्थल —इन सबने हमारे मन को खींचकर उसे बाँध रखा है। १०५१ [म.] कमल पुष्पों से बढ़कर कोमल और सुंदर लगनेवाले तुम्हारे चरणों को जब हम अपने कठिन स्तनों पर रख लेती हैं तो हमें यह दुःख होता है कि तुम्हारे चरण छिल जाते होंगे। [ऐसी दशा में] हे कृष्ण ! इस कर्कश अरण्य भूमि पर तुम्हारा संचार करना, तुम्हारे प्रियजनों को प्राणांतक व्यथा न देगा ? १०५२ [कं.] हाय रे कृष्ण ! जब मन्मथ के बाण हमारे हृदयों में गहरे चुभ गये तो हमने भयभीत हो आकर तुम्हारे चरण पकड़े हैं, ऐसी हमें जंगल के बीच छोड़ जाना क्या तुम्हें न्याय लगा ? १०५३ [कं.] हे हृदयेश्वर (कृष्ण) ! विधि ने हमारे हृदय को मृदुतर बनाया,

हृदयमु कठिनमु जेसॅनु
मदीय सौभाग्यमिट्टि मंदमु गलदे ॥ 1054 ॥

उ. क्रम्मि निशाचरुल् सुरनिकायमुलन् वडि दाकि वीक वा-
लम्मुल तॅट्टॅमुल् वरप नड्डयि वच्चि जयितुवंड्रु निन्
नम्मिन मुग्धलन् रहितनाथल नक्कट! नेडु रॅंडु सू-
ळम्मुल येट्टुकाडॅदुर नड्डमु रागदे कृपानिधी! ॥ 1055 ॥

कं. तिय्यविलुकाडु डीकॉनि, व्रय्यलुगा दूरॅ नेसॅ वनितल मनमुल्
विय्यान निकनयिनन्, गुय्यालिपं गदय्य! गोविंद हरी! ॥ 1056 ॥

अध्यायमु—३२

म. अनि यिट्लंगन लंचितस्वरमुतो नंकिपुचुन् बाडुचुन्
दनु रावे यनि चीरि येडुव जगत्राणुंडु त्रैलोक्य मो-
हनुडै मन्मथ मन्मथुंडयि मनोज्ञकारियै हारियै
घन पीतांबरधारियै पॉडमॅ दत्कांता समीपंबुनन् ॥ 1057 ॥

कं. वच्चिन वल्लभु गनुगॉनि
विच्चेसॅ नटंचु सतुलु विकसितमुखुलै

फिर तुम्हारे कलेजे को कठोर बनाकर छोड़ा! हाय! ऐसे दुर्भाग्य को क्या कहें! १०५४ [उ.] कहा जाता है कि जब कभी निशाचर लोग देवसमूह पर चढ़ाई करके अस्त्र-शस्त्र चलाकर उन्हें त्रस्त करते हैं तब तुम आड़े आकर उन्हें (शत्रुओं को) निर्जित किया करते हो; हे कृपानिधि! हम मुग्धा अनाथ स्त्रियाँ हैं, तुम्हारे पाले पड़ी हुई हैं, आज पंचबाण (मन्मथ) हमें बाणों से विद्ध कर रहा है, बीच में आकर हमें बचाओ न! १०५५ [कं.] कामदेव हम वनिताओं से भिड़कर हमारे मानसों को बाणों से बेध रहा है, हे गोविंद! हे हरि! अब तो [कम से कम] बन्धुभाव से हमारी गुहार सुन लो।" १०५६

अध्याय—३२

[म.] इस प्रकार व्रजांगनाएँ जब पूज्य-स्वर में स्तुति करतीं, गुण गातीं, बुला-बुलाकर रोती-विलपती रहीं तो वह जगत्-रक्षापरायण कृष्ण, तीनों लोकों को मोहित करनेवाले, मन्मथ को भी लुभानेवाले मनोहर आकार में, पुष्पमालाओं से अलंकृत हो पीतांबर ओढ़े उन कांताओं के समीप मे प्रत्यक्ष हुआ। १०५७ [क.] प्रिय को आया देखकर हर्ष से उनका मुंह विकसित हुआ; वे ऐसी स्थगित रह गयी जैसे प्राण का [फिर

यच्चुग निलिचिरि प्राणमु
वच्चिन निलुचुंडु यवयवंबुल भंगिन् ॥ 1058 ॥

सी. अबल यॊक्कर्तॆ भक्ति नंजलि गाविंचि प्राणेशु कॆंगेलु वट्टिकॊनियॆ
नॆति यॊक्कर्तॆ जीवितेश्वरु बाहुवु मूपुन निडुकॊनि मुदमु नॊंदॆ
वनित यॊक्कर्तॆ तन वल्लभु तांबूल चर्वित मात्म हस्तमुन दाल्चॆ
वडति यॊक्कर्तॆ प्रियु पदमुलु विरहाग्नि तप्त कुचंबुल दापुकॊनियॆ

आ. भाम यॊकर्तॆ भृकुटि बंधंबु गाविंचि
प्रणय भंग कोप भाषणमुन
दष्टदशन यगुचु दंडिचु कैवडि
वाडि चूड्कि गमुल वरुनि जूचॆ ॥ 1059 ॥

कं. हरि मुख कमलमु, जूचुचु
दरुणि यॊकर्तॆ रॆप्पलिडक तनियक युंडॆन्
हरि पद कमलमु जूचुचु
मरगि तनिवि लेनि सुजनुमाड्कि नरेंद्रा ! ॥ 1060 ॥

उ. ऒक्क लतांगि माधवुनि युज्वलरूपमु चूड्कि तीगलं
जिक्कग बट्टि हृद्गतमु जेसि वॆलि जनकुंड नेत्रमुल्
ग्रक्कुन मूसि मेन बुलकंबुलु ग्रम्मग गौगिलिंचुचुन्
जॊक्कमुलैन लोचवुल जॊक्कुचु नुंडॆनु योगि कैवडिन् ॥ 1061 ॥

से] संचार होने पर शरीर के अवयव सजग खड़े हो जाते हैं। १०५८ [सी.] एक अबला ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्राणेश्वर कृष्ण का कमल-सा हाथ पकड़ लिया; एक सुन्दरी ने जीवितेश्वर कृष्ण की बाँह अपने कंधे पर डालकर संतोष प्रगट किया; एक वनिता (स्त्री) ने वल्लभ (प्रिय) का चबाया तांबूल (पान) अपनी हथेली पर लिया; एक ललना ने प्रिय (कृष्ण) के चरण को अपने विरहाग्नितप्त कुचों पर लेकर टेक लिया; [आ.] एक भामिनी भौंहें चढ़ाकर प्रणयकोप व्यक्त करते हुए, दाँत पीसते हुए प्रिय (कृष्ण) को तीखी नज़रों से देखने लगी मानों वह अपने नायक को दंडित कर रही हो। १०५९ [कं.] हे नरेंद्र ! एक युवती कृष्ण के मुखकमल पर अपलक दृष्टि लगाकर देखती रह गई, हरि-पद-कमलों के दर्शन में रत साधु-सज्जन के समान वह अघाती नहीं थी। १०६० [उ.] एक लतांगी ने माधव का उज्ज्वल रूप अपनी दृष्टि लताओं में कसकर हृदय में रख लिया, उसे बाहर जाने से रोकने के लिए एकायक नेत्र मूँद लिये; और पुलकांकित होकर कृष्ण को गले लगा लिया; वह एक योगी की भाँति अंतःसुख में परवश हो गई थी। १०६१

सी. ऎलयिचि प्राणेश ! यॆंदु वोयितिवनि तोरंपुटलुकतो दूरॆ नॊकतॆ
जलजाक्ष ! ननु बासि चनग नी पादंबुलॆट्लाडॆ ननि वग नॆयिचॆ नॊकतॆ
नाथ ! नी वरिगिन ना प्राणमुन्नदि कूमिये यिदि यनि कुंदॆ नॊकतॆ
यीश्वर ! ननु निन्नु निदाक वापॆ नी पापपु विधि यनि पलिकॆ नॊकतॆ
आ. तलगि पोवुनट्टि तप्पेमि चेसिति
नधिप ! पलुकु धर्म मनियॆ नॊकतॆ
येमि नोमु फलमॊ हृदयेश ! नी मोमु
मरल गंटिननुचु मसलॆ नॊकतॆ ॥ 1062 ॥
कं. पलिकिन प्रतिज्ञ दप्पॆडि
वलिकिंचिन गानि रमणु वलुक नटंचुन्
गलकंठि यॊकतॆ चॆलितो
वलुकुल नमृतमुलं गुरियु पलुकुलु वलिकॆन् ॥ 1063 ॥
कं. पट्टिन गानि मनोविभु
वट्ट गदा यंचु नॊक्क बालिक सखिचे
वट्टुकॊनि चॆप्पॆ धैर्यमु
पट्टॆल्लनु मरुनि टॆंकि पट्टग नधिपा ! ॥ 1064 ॥

[सी.] एक (गोपी) बड़ी खीज के साथ [कृष्ण को] यों उलाहना दे रही थी कि हे प्राणेश ! मुझे [अपने में] अनुरक्त बनाकर फिर छोड़ के कहाँ चले गये ? एक ने बड़ी चिंता प्रगट कर पूछा कि हे जलजाक्ष (कमलनयन) ! मुझे छोड़ जाने के लिए तुम्हारे कदम कैसे आगे बढ़े ? एक ने अपना दुख यों व्यक्त किया कि हे नाथ ! तुम्हारे चले जाने पर [भी] मेरा प्राण शेष रहा है, क्या यह भी कोई प्रेम है ? एक ने यों कहा— हे ईश्वर ! इस पापी विधि (दुर्दैव) ने तुम्हें मुझसे अब तक अलग कर रखा है। [आ.] एक ने कहा—- हे स्वामी ! मैंने ऐसा क्या अपराध किया जो तुम विछुड़ गये हो, धर्म की बात बोलो तो। एक ने उल्लास के साथ कहा— हे हृदयेश ! न जाने किस व्रत-साधन का फल है जो मुझे तुम्हारा मुँह फिर से देखने को मिला है ! १०६२ [कं.] एक कलकंठी (मधुरभाषिणी) ने अपनी सहेली से अमृत बरसानेवाली बोली में यों कहा : जब तक मेरा प्रिय (कृष्ण) मुझसे नहीं बोलेगा तब तक मैं उससे बतियाऊँगी नहीं, यदि मैं ही [पहले] बोलूं तो मेरी शपथ झूठी होगी। १०६३ [कं.] हे राजन् ! एक बाला ने अपनी सहेली का हाथ पकड़कर, शपथपूर्वक अपना धैर्य प्रगट करते हुए कहा— मेरा मनोनाथ जब तक मुझे नही पकड़ेगा, तब तक मैं उसे पकड़ूंगी नही। मानो वह

कं. चॅलुवुडु चॅप्पक पोयिन
पॉलपुन नीक मुग्ध मुन्नु चूड ननुचु नौ-
दल वंचि युंड जालक
दल यॅत्तनु लोन मरुडु दलयॅत्त नृपा ! ॥ 1065 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 1066 ॥

कं. हरि सुरुचिर ललिताकृति
दरुणलु गनि मुक्त विरहताप ज्वरलै
परमोत्सवंबु सलिपिरि
परमेश्वरु गनिन मुक्त बंधुल भंगिन् ॥ 1067 ॥

व. अंत नक्कांतुंडु कांताजन परिक्रांतुंडै, वनांतरंबुन शक्ति निकर संयुक्तुंडैन परमपुरुषुंडुनुं बोलॅ, वारलं दोड्कॉनि, मंदार कुंद कुसुम परिमळ मिळित पवमान मानित मधुकर निकर झंकार सुकुमारंबुनु, शरत्काल चंद्र किरण संदोह संदळितांधकारबुनु, यमुना तरंग संगत कोमल वालुका स्फारंबुनुनै, यमलिनंबैन पुलिनंबु प्रवेशिचॅ। वारुनु ज्ञानकांडंबुन नीश्वरुं गनि श्रुतुलु प्रमोदंबुनं गामानुबंधंबुलु विडिचिन विधंबुन, हरिं गनि, विरह वेदनल विडिचि, परिपूर्ण मनोरथलै ॥ 1068 ॥

कामदेव का स्थानबल प्रगट कर रही थी। १०६४ [कं.] हे राजन् ! एक मुग्धा ने सतराकर पहले तो कहा कि जब तक मेरा साजन मुझसे नहीं बोलेगा, मैं उसे देखूंगी नहीं, किंतु सिर झुकाकर मुँह फेरकर वह देर तक रह न सकी, उसने [प्रिय को देखने के लिए] सिर उठाया ही; क्योंकि उसके मन में काम ने सिर उठाया था। १०६५ [व.] इस प्रकार से··· १०६६ [कं.] हरि (कृष्ण) का ललित सुन्दर रूप देखकर वे युवतियाँ विरह-ताप के ज्वर से मुक्त हो गयीं; और उन सबने परमेश्वर का दर्शन पाकर मोक्ष पाये हुए भक्त जनों के समान आनंदोत्सव मनाया। १०६७ [व.] अनंतर वह कांत (कृष्ण) [सत्त्वादि] विविध शक्तियों से युक्त परमपुरुष की भाँति कांताजन से परिक्रांत होकर (घेरे जाकर) दूसरे वन को चल पड़ा; वहाँ वे सब एक ऐसे पुलिन प्रदेश में जा पहुँचे जो मंदार और कुंद पुष्पों के सौरभ से सुवासित पवन से और झुंड के झुंड भौंरों के झंकार से रम्य लग रहा था, जहाँ शरत्कालीन चंद्रमा की किरणों ने अंधकार को कुचलकर भगा दिया था। और यमुना की तरंगों के स्पर्श से शीतल और कोमल बनी बालुका का विस्तार लगा हुआ था, और इस तरह अमलिन (स्वच्छ) लग रहा था। जिस प्रकार वेद की ऋचाएँ ज्ञानकांड के द्वारा ईश्वर को प्रत्यक्ष करके काम के बंधन से छूटकर प्रसन्न हुई हैं, उसी प्रकार वे गोपवधुएँ कृष्ण का दर्शन

कं. पाठीन नयनलॆल्लन, काठिन्य पटांचलमुल गौतुकमुलु हृ-
त्पीठमुल संदडिपग, बीठमु गल्पिंचि रंत प्रियुनकु नंधिपा ! ॥ 1069 ॥

आ. परमयोगि हृदय भद्र पीठंबुल, नुंडु मेटि व्रजवधूत्तरीय
पीठमुन वसिंचि पॆंपारॆ द्रिभुवन, देवलक्ष्मि मेन देजरिल्ल ॥ 1070 ॥

म. मदनोद्दीपितुडॆन नाथुनिकि सन्मानंबु गाविंचुचुन्
मुदितल् हास विलोक विभ्रममुलन् मोदिंपुचुन् जेरि त .
त्पदमुल् हस्ततलंबुलन् बिसुकुचुन् वेंमुट्टुचुन्
जदुरुल्वलुकुचु गूर्मि निट्लनिरि योषत्कोप दीप्तास्यलै ॥ 1071 ॥

कं. कॊलिचिन गॊलुतुरु कॊंदरु
गॊलुतुरु दमु गॊलुवकुन्न गॊंदरु वरुलं
गॊलिचिननु गॊलुवकुन्ननु
गॊलुवरु मरिकॊंदरॆलमि गोपकुमारा ! ॥ 1072 ॥

व. अनि तन्नु नुद्देशिंचि रहस्यंबुगा वल्किन सुंदरुल पल्कुलु विनि, गोपाल सुंदरुंडिट्लनियॆ ॥ 1073 ॥

करके अपनी विरह-वेदना छोड़ परिपूर्ण मनोरथ वाली बन गयी हैं। १०६८ [कं.] हे राजन् ! उन मीनलोचनी गोपिकाओं ने जिनके हृदयों में कुतूहल लहरा रहा था, अपने प्रिय के [बैठने के] लिए अपने आँचल फैलाकर कोमल आसन तैयार किया। १०६९ [आ.] महान् योगियों के हृदय-रूपी शुभासन पर विराजमान रहनेवाला प्रभु [अब] व्रजवधुओं के उत्तरीयों से कल्पित आसन पर बैठकर तीनों लोकों की दिव्य शोभा से प्रकाशमान हो रहा। १०७० [म.] कामभाव को उत्तेजित करनेवाले अपने नाथ (स्वामी) का सम्मान करते हुए उन युवतियों ने हास-विलासों, प्रेमभरी चितवनों और हावभाव से उसे संतुष्ट किया; वे पास बैठकर उसके हाथ-पैर सहलाती रहीं, उसके अंगों पर हाथ फेरकर चतुरोक्तियों से उलाहना देती गयीं। फिर मुख पर थोड़ी सिसियाहट लाकर कृष्ण से उन्होंने यों पूछा : १०७१ [कं.] "कुछ लोग सेवा करने पर [बदले में] सेवा करते हैं; कुछ लोग अपनी सेवा न करने पर भी स्वामियों की सेवा करते हैं; हे गोपकुमार ! अन्य कुछ लोग अपनी सेवा करनेवालों और न करनेवालों दोनों की सेवा नहीं करते। [क्या कारण है ?]" १०७२ [व.] अपने को लक्ष्य करके रहस्य-भाषण करनेवाली (उलाहना देनेवाली) उन सुंदरियों के वचन सुनकर गोपाल कृष्ण ने यों उत्तर दिया : १०७३ [सी.] "कुछ लोग अपनी सेवा करनेवालों को अपनाकर सेवा करते हैं, जैसे जानवर

सी. कौलिचिन गौलुतुरु गौंदरु पशुवुल भजनमु भंगिनि फलमु कोरकु-
नै सख्यधर्ममुलंदु सिद्धिपवु कोंदरु दंड्रल गुणमु दाल्चि
दयगल वारलु दगिन सुहृत्तुलु गौलुवनि वारल गौल्तुरेपुडु
धर्म कामंबुलु तनरंग गोंदरु कौलुवनिवारिनि गौलुचुवारि

आ. गौलुचु तलपु लेमि गौलुव रात्मारामु-
लाप्तकामुलज्ञुलति कठिनुलु
वारियंदु बिदपवानिगा जिंतिचि-
ये लतांगुलार ! यिट्टुलनुट ॥ 1074 ॥

कं. ए निदॆव्वड नैनं-
गा नंगनलार ! परम कारुणिकुंडन्
मानस बंधुड नित्य
ध्यानमु मी कौनरवलसि तलगिति जुंडी ॥ 1075 ॥

म. ननु सेविंपुचुनुन्न वारलकु ने ना रूपमुं जूप जू-
चिन जालिंचि मदिंचि वारु मदि नन् सेविंपरो यंचु नि-
र्धनिकुंडात्मधनंबु चॆड्ड नॆपुडुन् दत्पारवश्यंबु दा-
ल्चिन भंगिन ननु बासि मत्प्रियुडु दा जिंतिचु ना रूपमुन् ॥ 1076 ॥

[अपने स्वलाभ के लिए] मालिक की सेवा करते हैं। ऐसे लोगों की सेवा में स्नेह और धर्म का भाव नही रहता। कुछ लोग जो पिताओं का [वात्सल्य] गुण ग्रहण करते है, दयालु और सच्चे मित्र उन लोगों की भी सेवा करते हैं जो अपनी सेवा नहीं करते। अन्य कुछ लोग, प्रतिफल की अभिलाषा से हो अथवा दयाधर्मभाव से हो, अपनी सेवा करनेवालों को और साथ-साथ न करनेवालों को दोनों को अपनाते नही। [आ.] उनमें दूसरों की सेवा करने का संकल्प ही नहीं रहता। [इस तीसरे प्रकार के लोगों के चार भेद हैं] वे ज्ञाननिष्ठ आत्माराम, भोगेच्छा-रहित पूर्ण-काम, कृतघ्न अज्ञानी और अति कठिन हृदयवाले है। हे सुन्दरियो ! मैं इनसे परे हूँ, सोच-समझकर ही मैं ऐसा कह रहा हूँ। १०७४ [कं.] मैं उनमें से कोई नहीं हूँ; मैं परम कारुणिक हूँ। तुम्हारे मनोभावों का [आदर करनेवाला] बंधु हूँ। हे अंगनाओ ! मैं इस कारण से तुम्हें छोड़ गया था कि सदा मेरा ध्यान करते रहने का अवकाश तुम्हें मिल सके। १०७५ [म.] मेरी सेवा करनेवालों को मैं अपना रूप दिखाऊँगा नहीं, यदि दिखा दूँ तो वे लोग मन से मेरी सेवा और ध्यान करना छोड़ कर मदमस्त हो जायेंगे। जिस प्रकार कोई निर्धन अपनी पूँजी खो बैठने पर उसी के चिंतन में तन्मय हो रहता है, उसी प्रकार मेरा प्रिय भक्त मुझसे बिछुड़कर मेरे रूप का चिंतन करता रहेगा। १०७६ [त.] न्याय और धर्म न

तरल तगवु धर्ममु जूड नॆल्लक तल्लिदंड्रुल बंधुलन्
मगल बिड्डल बासि वच्चिन मन्निषक्तल मिम्मु ने
दगदु पासिति दप्पु सेपुडु तद्वियोग भरंबुनन्
वगल बॊंदुचु मीरलाडिन वाक्यमुल् विनुचुंडितिन् ॥ 1077 ॥

उ. पायनि गेह शृंखलमु बासि निरंतर मत्परत्वमुं
जेयुचु नुन्न मीकु प्रतिसेय युगंबुलनैन नेर नन्
बायक गॊल्चु मानसमु प्रत्युपकारमुगा दलंचि ना
पायुट तप्पुगा गॊनक भामिनुलार ! कृपन् शमिपरे ॥ 1078 ॥

अध्यायमु—३३

कं. चक्कग हरि यिट्टु पलिकिन
जक्कनि वाक्यमुल नतनि संगममुन लो-
निक्किन वियोग तापमु
लॊक्कट विडिचिरि लतांगुलुर्वीनाथा ! ॥ 1079 ॥

देखकर माता-पिता, पति-पुत्र और भाई-बंधुओं को छोड़कर मुझमें अनुरक्त हो तुम लोग मेरे पास चली आयी हो, ऐसों को छोड़ जाना मेरे लिए उचित नहीं था; भूल हुई, क्षमा करो; मेरे वियोग का भार तुम सह न सकीं, दुःख करते हुए तुम लोगों ने जो वचन कहे उन्हें मैं सुनता रहा। १०७७ [उ.] घर-द्वार की शृंखला (जंजीर) तोड़े नहीं टूटती, पर तुम लोगों ने उसे भी तोड़ दिया, और निरंतर मुझमें तत्पर रह रही हो, युगों तक मैं तुम्हें इसका बदला (प्रतिफल) न दे सकूंगा; मेरी अविरत भक्ति करते रहने का मनोयोग ही मेरा किया प्रत्युपकार समझो। हे भामिनियो ! मैं तुम्हें जो छोड़ गया था उसे तुम बुरा मत मानो, कृपया शांत हो जाओ। १०७८

अध्याय—३३

[कं.] हे भूपाल ! इस प्रकार हरि (कृष्ण) ने जो मधुर वचन कहे उनसे और उसके संसर्ग से वे युवतियाँ अपना बचा-खुचा विरहताप खोकर एकदम संतुष्ट हो गयीं। १०७९

रासक्रीडाभिवर्णनमु

उ. आ समयंबुनन् विभुडनंतुडु कृष्णुडु चित्रमूर्तियै
चेसॅनु मंडल भ्रमण शील परस्परबद्ध बाहु कां-
ता सुविलासमुन् बहुविध स्फुरितानन हस्त पाद वि-
न्यासमु रासमुन् गृत वियच्चरनेत्र मनोविकासमुन् ।। 1080 ।।

व. इट्लु बहुगतु लंदि दिरुग नेर्परियगु हरि दपिचि, तन यिरु वॅलंकुल नलंकृतलै, कळंकरहित चंद्रवदन लिद्दरु मुद्दियलुद्दि कॊनि, वीणलं दिकॊनि, वीणलं ब्रवीणलै, सॊंपु मॆरसि, यिपुग वायिपुचु, नानंद लहरी निधानंबगु गानंबु सेय, नविरळंबै तरळबुगानि बॆडक सरळंबगु मुरळंबु लीलं गॆल नंदु कॊनि, मधुरंबगु नधरंबुनं गदियिंचि, मिंचि कामिनी जन कबरिका सौगंधिक गंधबंधुर करांगुळी किसलयंबुलु यतिलयंबुलं गूडि विवरंबुग मुरळी विवरंबुल सारिंचि, पूरिंचुचु, सरिलेनि भंगिद्रिभंगियै, कमलकणिका कारंबुन नडुम निलिचि, मरियु गोपसुंदरु लॆंद रंदरकु नंद रै, सुंदरुल कवलि यॆडलं दानुनु, दन कवलियॆडल सुंदरुलुनु दैजरिल्ल, नृत्यविद्या महार्णव वेलावलय वलयितंबै, विस्मिताखंडलंबैन रासमंडलंबु गल्पिंचि

रासक्रीडाभिवर्णन

[उ.] उस समय, अनंत, जगत्-प्रभु, कृष्ण ने विचित्र रूप धारण कर एक ऐसा रास (नृत्यमंडल) रचा जिसमे [गोप] सुन्दरियाँ, एक-दूसरी को बाहुओं से बाँधकर वृत्ताकार में घूमते हुए, हाथ, मुँह और पैरों का बहुविध विन्यास (संचालन) दिखाकर नाचती रहीं और जो गगनचारी देवों के मन और नेत्रों को [आह्लाद से] विकसित कर देता था। १०८०
[व.] इस तरह अनेक गतियों से थिरकने में चतुर कृष्ण ने अपने दोनों पार्श्वों में दो सुंदरियों को साथ लिया जो [आभूषणों से] सजी हुई थीं और निष्कलंक चंद्रमा के सदृश मुख से शोभित थी। वीणावादन में प्रवीण वे सुंदरियाँ वीणा लेकर सरस-(-स्वर) बजाती हुई आनंद-लहर के समान राग गाने लगीं। अत्यंत आनंददायक मुरली हाथ में लेकर कृष्ण ने अपने मधुर अधर से लगा लिया और कामिनियों की वेणी में लगे कमल-गंध से सुवासित अपनी सुकोमल उँगुलियाँ मुरली के छेदों पर फेरते हुए लय के अनुसार बजाने लगा। कमलपुष्प के दलों के मध्य की कर्णिका के समान कृष्ण गोपसुंदरियों के बीच में त्रिभंगी आकार में खड़ा रहा; और जितनी युवतियाँ थीं उतने रूप लेकर हर दो युवतियों के बीच में आप विद्यमान दिखाई दिया। उसने इस प्रकार एक ऐसा रासमंडल रचा जो नृत्तविद्या

वेल्पुलु हर्षंबुनं गुसुमवर्षंबुलु गुरिय, नंडु ब्रसूनमंजरी सहचरंबुलैन चंचरीकंबुल मिचु प्रकटिंचुचु, सुवर्ण मणिमध्यगंबुलैन सहेंद्रनीलंबुल तॆरंगु नॆरपुचु, गरिणी विहार बंधुरंबुलैन सिंधुरंबुल चॆलुवु गैकॊलुपुचु, पल्लवित कुसुमित लतानुकूलंबुलैन तमालंबुल सॊबगु निगुडिंचुचु, मॆरपु नीगॆल नॆड नडबॆडं गडरु नल्ल मॊगुळ्ळ पॆल्लु चूपुचु, दरंगिणी संगतंबुलैन रोहणाचल श्रृंगंबुल वागुलागिंचुचु, जगन्मोहनुडै युंडि, रक्त कमलारुणंबुलुनु, जंद्रशकल निर्मल संस्फुरणंबुलुनु, श्रुतिनितंबिनी सीमंत वीथिकालंकरणंबुलुनु, सनक सनंदनादि योगींद्र मानसाभरणंबुलुनुनैन चरणंबुलु गदिय निडि, समस्थिति नंजलि पुटंबुलं बुष्पंबुलुल्लसिल्ल जल्लि, सल्ललित कमल प्रशस्तंबुलैन हस्तंबुलु बल्लवी जनुल कंठंबुलपै निडि, तानु गीतानुसारंबुग विचित्र पाद संचारंबुलु सलुपुचु, वर्तुलाकार राजवंधंबुल नर्तनंबुनं ब्रवर्तिचि, वॆंडियु ब्रेतलुं, दानुनु, शंख पद्म वज्र कंदुक चतुर्मुख चक्रवाळ चतुर्भद्र सौभद्र नाग नंद्यावर्त कुंडलीकरल कुरळिबंध प्रमुखंबुलैन विशेष रासबंधंबुलकुं जॊच्चि, एक पाद समपाद

रूपी समुद्र को घेरा हुआ वलयाकार तट-सदृश लगता था, और जो देवेंद्र को आश्चर्यचकित कर देता था। हर्ष से देवताओं ने उस मंडल पर फूल बरसाये। पुष्पमंजरियों के ऊपर चक्कर काटते हुए भ्रमरसमूहों की शोभा दिखाते हुए, सुवर्णमणियों के मध्य में मढ़ी इन्द्रनील मणियों का सौंदर्य प्रगट करते हुए, हथिनियों के साथ विहार में लगे गजराजों का विलास दर्शाते हुए, पल्लवित और पुष्पित लताओं से वेष्टित (घिरे हुए) तमालवृक्षो का लालित्य फैलाते हुए, विद्युल्लताओं (बिजलियों) के बीच में स्थित काले बादलों का अतिशय प्रदर्शित करते हुए, नदियों को बग़ल में लेकर शोभायमान लगनेवाले रोहणाचल के श्रृंगों की रमणीयता विखेरते हुए, कृष्ण उस रासमंडल मे जगन्मोहन बन दिखाई दिया। रक्त-कमल के समान अरुण, चाँद के टुकड़ों के समान निर्मल नाखून वाले, श्रुतिवधू-सीमंत (वेद वनिता की माँग अर्थात् उपनिषद्) के लिए अलंकार बने हुए, और सनक, सनंद आदि योगियों के मानस में आभूषण (गहने) बननेवाले अपने चरणों को एक साथ जोड़कर कृष्ण सीधे खड़ा रहा और अपनी अंजली में फूल भर-भरकर (उन सुंदरियों पर) बरसाये; फिर अपने ललित कोमल हस्तकमल उन वल्लवियों के कंधों पर डाल दिये। वह गीत के लय के अनुकूल क़दम रखते हुए उस वर्तुल रासमंडल में नृत्य करने लगा। इस प्रकार कृष्ण और गोपिकाएँ साथ-साथ, शंख, पद्म, वज्र, कंदुक, चतुर्मुख, चक्रवाळ, चतुर्भद्र, सौभद्र, नाग, नंद्यावर्त, कुंडलीकरण, कुरलिबंध आदि विशेष प्रकार के रासबंध नृत्यों में प्रवृत्त हुए। उन्होंने

विनिर्वतित गतागत वलित वैशाख मंडल त्रिभंगि प्रमुखंबुलैन तानकंबुल
निलुचुचु, गनकंकिंकिणी कंकण मंजुल मंजीर शिंजनंबुलु जगज्जन
कर्णरंजनंबुलै चेलंग, घटित मर्दित पार्श्वग प्रमुखंबुलैन पादचारि
भेदंबुलु चेयुचु, समपाद शकट वदन मतल्लि शुक्ति प्रमुखंबुलैन पार्थिव
चारि विशेषंबुलुनु, अपक्रांत डोलापाद सूची प्रमुखंबुलैन व्योमचारि
विशेषंबुलुं जूपुचु, सुरेंद्रशाखि शाखा मनोहरंबुलुनु, नपहसित दिक्करींद्र
करंबुलुनु, द्रिलोक क्षेमकरंबुलुनुनगु करंबुलं दिरंबुलगु रत्नकटकंबुल
मॆरुंगुलु निगि चॆंदरंगुलं दऽचुकोन, नर्धचंद्र कर्तरीमुख कपित्थ कटकामुख
शुकतुंड लांगूल पद्मकोश पताका प्रमुखंबुलैन स्वस्वभाव सूचक नानाविध
करभावंबुलाचरिंपुचु, कटी निवद्धसुवर्ण वर्ण चेलांचल प्रभानिकरंबुलु
सुकरंबुलै दिशांगना मुखंबुलकु हरिद्रालेपन मुद्रालंकारंबु लॊसंगुचु,
नास्कंदित भ्रमर शकटासन प्रमुखंबुलैन जानुमंडल भेदंबुलनु, अलात,
दंडलात ललित विचित्र प्रमुखंबुलैन दैवमंडलंबुलु नॊनर्चुचु, गमनीय
कंबुकंठाभिरामंबुलु, नुद्दाम तेजस्तोमंबुलुनैन नील मौक्तिक वज्र वैडूर्य
दामंबुल रुचुलिंदिरा सुंदरिकि मंदिरंबुलै, सुंदरंबुलैन युरंबुलं दिरुगुचु
वडि कलयंबड, नंगांतर बाह्यलग्नच्छत्र प्रमुखंबुलैन भ्रमण विशेषंबुलु

एकपाद, समपाद, निविवर्तित, गतागत, वलित, वैशाख, मंडल, त्रिभंगी
आदि तानक रीतियों का प्रदर्शन किया। नर्तकियों की सोने की बनी
करधनियों, कंगनों, पायजेबों और घुंघुरुओं की छमछम ध्वनि जगत् के
लोगों को कर्ण मधुर होकर व्याप्त हुई। घटित, मर्दित, पार्श्वग आदि
पादचारी भेदों; समपाद, शकट, वदन, मतल्ली, शुक्ति आदि पार्थिवचारी
भेदों; अपक्रांत, डोलापात, सूची आदि व्योमचारी भेदों का प्रयोग करते
हुए उन लोगों ने नृत्य किया। उनके कल्पवृक्ष की शाखाओं से सुंदर,
दिग्गजों की सूंड़ को मात करनेवाले और तीनों लोकों का कल्याण करने
वाले हाथों में लगे हुए रत्नजटित कंगनों की झलझल आकाश के अंचलों
तक फैल गयी। उन नर्तकियों ने अर्धचंद्र, कर्तरीमुख, कपित्थ, कटकामुख,
शुकतंड, लांगूल, पद्मकोश, पताका आदि स्वस्वभानुकूल हस्तविन्यास
(करभाव) दिखाये। कृष्ण ने कमर में जो सुनहले रंग का दुपट्टा
पहन रखा था उससे प्रकाशपुंज झलककर दिगंगना के मुख पर हल्दी के
लेपन के समान अलंकार बन गया। कृष्ण जब, आस्कंदित, भ्रमर,
शकटासन आदि जानुमंडल भेदों का तथा अलात, दंडलात, ललित, विचित्र
आदि दैवमंडल भेदों का प्रयोग करते हुए नृत्य कर रहा था तब, उसके
कंबुकंठ (शंख जैसे कंठ) को सुशोभित करनेवाले, वज्र, वैडूर्य आदि मणि-
हार लक्ष्मी का आवास बने उसके वक्षस्थल पर झूलते हुए एक-दूसरे से

विलसिचुचु, निद्दंबुलगु चॆवकुटद्दंबुल मुद्दविडि दद्वयं बमाजित चंद्रमंडलंबुलगु कुंडलंबुल मॆरुंगु मॊत्तंबुलु नृत्यंबु लॊनरिप, गटिभ्रांत दंडरचित ललाट तिलक मयूरललित चक्रमंडल निकुंचित गंगावतरण प्रमुखंबुलॆन करणंबुलॆड्रिगिपुचु, वॆलिदम्मि विरुल सिरुल चॆन्नुमिगुलु कन्नुलवल दीनजन दैन्य कर्कशंबुलॆ तनरु कटाक्षदर्शन जालंबुलु जालंबुलॆ कामिनीजन नयनमीनंबुल नार्वरिप, ललित कुचित विकास मुकुळ प्रमुखंबुलॆन चूड्कुल देजरिल्लुचु, ननेक परिपूर्ण चंद्र सौभाग्य सदनंबुलगु वदनंबुल व्रसन्नरागंबुल व्रकटिंचुचु, नुदंचित पिंछमालिका मयूखंबुलकाल शक्रचापंबुल सॊपु संपादिप, निकुंचिताकुचित कंपिताकंपित परिवाहित परावृत्त प्रमुखंबुलॆन शिरोभावंबुलु नॆरपुचु, मृगनाभि तिलकंबुलु गल निटलफलकंबुल जिकुरंबुल निकरंबुलु गप्प, नपराजित सूचिकाविद्ध परिच्छिन्न विष्कंभ रेचित प्रमुखंबुलगु नंगहारंबुल विलसिल्लुचु, जरण कटि कर कंठ रेचकंबु लाचरिंचुचु नॊप्पॆ। अप्पुडा रासंबु संजनित

उलझकर तेज:पुज से शोभायमान लग रहे थे। नर्तन में कृष्ण ने अंगांतर, बाह्यलग्न, छत्र आदि प्रमुख भ्रमण-रीतियों का विलास प्रगट किया। उस भ्रमण में उसके स्निग्ध मनोहर कपोलों पर चंद्रमंडल-सदृश शोभायुक्त कुंडलों (करनफूल) की चमक-दमक भी नृत्य करने लगी। कटिभ्रांत, दंडरचित, ललाटतिलक, मयूरललित, चक्रमंडल, निकुंचित, गंगावतरण आदि करणों (नृत्यभेदों) को प्रदर्शित करते हुए कृष्ण ने अपने श्वेत कमलनेत्रांचलों से दीनजनों का दैन्य दलित करनेवाले कटाक्ष-जाल फेंककर गोप-कामिनियों के नयनमीनों को फँसा लिया। ललित, कुंचित, विकास, मुकुल आदि हाव-भेदों की दृष्टियाँ प्रसारित करते हुए कृष्ण ने अपने पूर्णचन्द्रशोभा-सदन-वदन से अनेक प्रसन्न अनुरागभाव व्यक्त किये। कृष्ण के [शिरोवेष्टन में लगे] मोरपखों की झलक से अकाल इन्द्रधनुष-सी छटा फैल गयी। निकुंचित, अकुंचित, कंपित, अकंपित, परिवाहित, परावृत्त आदि शिरोचालनों के द्वारा कृष्ण ने अनेक मनोभाव व्यक्त किये। कस्तूरी तिलक लगे फालपट्ट पर चिकुर-निकर (घुंघुराले बाल) फैल गये। अपराजित, सूचिकाविद्ध, परिच्छिन्न, विष्कंभ, रेचित आदि अंगहारों (अंगों के सचालन) से तथा चरण, कटि, (कमर) कर (हाथ) और कंठ के रेचकों से कृष्ण का नृत्य अत्यंत मनोहर बन पड़ा। कृष्ण का रचा वह रासनृत्य सकलजन-मनोभिराम रहा; जैसा सुधार्णव (अमृत-समुद्र) रस से (क्षीर से) मनोहर रहा वैसे ही यह रास रस से अर्थात् शृंगार-रस से मनोहर रहा। जिस प्रकार रामराज्य राग अर्थात् अनुराग से परिपूर्ण रहा, उसी प्रकार यह रास राग अर्थात् संगीत से

सकलजन मानसोल्लासकरंबै, सुधार्णवंबुनु बोलें नुज्वल रसाभिरामंब, रामराज्यंबुनुं बोलें रागपरिपूर्णंबै, पूर्णचंद्र मंडलंबुनुं बोलें गुवलयानंदंबै, नंदन वनंबुनुं बोलें भ्रमरी विराजमानंबै, मानधनुनि चित्तंबुनुं बोलें ब्रधान वृद्धि समर्थंबै, समर्थ कविविलसनंबुनुं बोलं बहुप्रबंध भासुरंबै, सुरलोकंबुनुं बोलें वसुदेवनंदन विशिष्टंबै, शिष्टचरितंबुनुं बोलें धरणी गगन मंडल सुंदरंबै, सुंदरी रत्नंबुनुं बोलें नंगहार मनोहरंबै, हरवधू निलयंबुनुं बोलें ननेक चारि सुकुमारंबै, सुकुमार वृत्तंबुनुं बोलें नुद्दीपितवंशंबै युंडे। अंडु ॥ 1081 ॥

चं. नडुमुलु वीगियाड चिरुनव्वुलु निव्वटिलंग हारमुल्
सुडिवड मेखलल् वदल जूड्कि मॅरुंगुलु पर्व घर्ममुल्
पॉडम गुरुल् चलिप श्रुतिभषणमुल् सॅरवन् सकृष्णलै
पडतुकलाडुचुं जॅलगि पाडिरि मेघ तटिल्लता प्रभन् ॥ 1082 ॥

परिपूर्ण रहा। पूर्णचंद्र जिस तरह कुवलयों को अर्थात् कुमुद पुष्पों के लिए आनन्ददायक रहता है, उसी तरह कृष्ण का रचा रास कुवलय को अर्थात् भूमंडल को आनंदित करनेवाला रहा। नंदनवन के समान, जो भ्रमरों (भौंरों) से विराजमान रहता है, यह रास भ्रमरियों से अर्थात् नर्तकियों के भ्रमणों से शोभायमान रहा। मीनधन (कामदेव) की स्थिर चित्तवृत्ति के समान यह रास श्रृंगार-वृत्ति में स्थिर रहा। जिस प्रकार समर्थ कवि की प्रतिभा प्रबंध (काव्य) रचना में प्रकाशमान रहती है, उसी प्रकार यह रास भी अनेक प्रकार के नृत्यबंधनों से प्रकाशमान रहा। जैसा सुरलोक (स्वर्ग-लोक) अष्टवसुओं, देवताओं और नन्दनवन से संपन्न रहता है, वैसा ही यह रास वसुदेव-नन्दन अर्थात् कृष्ण से संपन्न रहा। शिष्टजनों (सज्जनों) के चरित के समान यह रास भूमंडल और गगनमंडल के लिए अलंकार (शोभाजनक) बना रहा। सुंदरीरत्न की अवयव-शोभा के समान यह रास नर्तकियों के अंग-हार अर्थात् अभिनय से मनोहर बन पड़ा। हरवधू (पार्वती) का निलय, (घर) जिस प्रकार अनेक चरों (अनुचरों) और सुकुमारों (गणेश और कुमारस्वामी आदि सत्पुत्रों) से शोभायमान रहा, उसी प्रकार रासमंडल अनेक सुकुमार (ललित) नर्तकियों से मनोहर रहा। सुकुमारों (उत्तम पुत्रों) की सद्वृत्ति (चालचलन) से जिस प्रकार वंश (कुल) प्रसिद्धि पाता है, उसी प्रकार यह रासनृत्य [कृष्ण के हाथ के] वंश (बाँसुरी) से उद्दीपित (प्रशस्त) रहा। १०८१ [चं.] वे गोपवधुएँ कृष्ण के साथ मिलकर उमंग से गाती-नाचती रहीं, जैसे बिजलियाँ मेघ के बीच में कौंध जाती है। उस समय उन युवतियों की कमरें लचक उठीं; मुस्कानें फूट पड़ीं; गले के हार उलझ गये; करधनियाँ ढीली हुईं; चितवनें चमक उठीं; घर्मजल (पसीना)

कं. अंकरहितेंदुवदनलु, पंकजलोचनुनि गूडि परग नटिंपन्
गिंकिणुल नूपुरंबुल, कंकणमुल म्रोतलॆसगॆ गर्णोत्सवमै ॥ 1083 ॥

कं. हरिणीनयनल तोडनु
हरि रासक्रीड सेय नंबर वीथिन्
सुरनाथुलु भार्यलतो
सॊरिदि विमानंबुलॆक्कि चूचिरिलेशा ! ॥ 1084 ॥

कं. कुरिसॆन् बुव्वुल वानलु
मोरसॆन् दुंदुभुलु मिंट मुदितलु दारुन्
सरसन् गंधर्वपतुल्
वरुसन् हरि बाडिरपुडु वसुधाधीशा ! ॥ 1085 ॥

कं. रामलतोडनु रासमु
रामानुजुडाड जूचि रागिल्लि मनो-
रामुलमीद वियच्चर
रामलु मूर्छिल्लि पडिरि राजकुलेशा ! ॥ 1086 ॥

कं. ताराधिप निभववनलु
ताराधिपवंश्यु गूडि तारु नटिंपन्
दारलु निल्चि सुधांशुडु
दारुनु वीक्षिप रेयि तडवुग जरिगॆन् ॥ 1087 ॥

छूटा; लटें बिखर गयीं; कर्णभूषण (करनफूल) झलमलाये। १०८२ [कं.] निष्कलंक चन्द्र समान मुखवाली गोपियाँ जब कमललोचन कृष्ण के साथ मिलकर नाच रही थीं तब उनके कंकण, किंकिणी और नूपुरों की ध्वनि कर्णमधुर होकर [चारों तरफ़] फैल गयी। १०८३ [कं.] हे राजन् ! उन मृगनयनी गोपियों के साथ हरि जब रासक्रीडा कर रहा था तो आकाशपथ में देवता लोग विमानों पर बैठकर अपनी स्त्रियों के साथ चाव से देखने लगे। १०८४ [कं.] हे भूपाल ! उस समय पुष्पवर्षा हुई; दुंदुभी बज उठी; गंधर्वों ने अपनी प्रियाओं के साथ मिलकर कृष्ण की स्तुति गायी। १०८५ [कं.] हे राजकुलाधिप ! रामानुज कृष्ण को गोप सुंदरियों के साथ रास खेलते देखकर देवता-स्त्रियाँ रागरंजित हुईं, और वे अपने प्रेमियों के ऊपर मूर्च्छित हो गिरीं। १०८६ [कं.] चंद्रवदनी गोपियाँ जब चद्रवशी कृष्ण के साथ नाट्य कर रही थी तब सुधांशु चंद्र उसे देखने के लिए ठिठककर खड़ा हो गया, अतः रात धीरे-धीरे (देर करके) बीत चली। १०८७ [म.] यमुना के जलबिंदुओं को उछालते हुए, वनपुष्प-सुगन्ध को फैलाते हुए, रमणियों का घर्म (पसीना) दूर करते हुए,

म. यमुनाकंकण चारियै वनजपुष्पामोद संचारियै-
रमणी घर्मनिवारियै मदवती-रास-श्रमोत्तारियै
प्रमदामानस नव्य भव्य सुख संपत्कारियै चेरि या
कमलाक्षुंडलरंग गालि विसरँन् गल्याण भावंबुनन् ॥ 1088 ॥

व. अप्पुडु ॥ 1089 ॥

चं. प्रमद यौकर्ते माधवुडु पाड विपंचि धरिंचि केल सं-
भ्रममुन दंत्रि मीटुचु दिरंबुग ठायमु चेसि यौक्क रा-
गमु तग नालपिंचि सुभग स्वरजातुलु वेरु वेरुका
नमरग वाडें दन् रमणुडौ नन दारुवुलंकुरिंपगन् ॥ 1090 ॥

कं. आडुचु बाडुचु नंदोक
चेडिय मंजीर मंजु शिंजित ममरं
गूडि हरि करमु चनुगव
पँडायं दिगिचें जघन भारालसयै ॥ 1091 ॥

कं. चंदनलिप्तंबै यर-
विदामोदमुन नौप्पु विपुल भुजमु गो-
विंदुडोक तरुणि मूपून
बौंदिचिन नदि दँमलिच पुलकिंचें नृपा ! ॥ 1092 ॥

उन मदवतियों के रास (नृत्य) से हुए श्रम का निवारण करते हुए, उन प्रमदाओं के मनों में नव्य और भव्य सुख का संचार करते हुए, कल्याण (भलाई) करने की भावना से हवा [उनके समीप] बहने लगी जिससे कमलाक्ष कृष्ण को संतोष हुआ। १०८८ [व.] उस समय १०८९ [चं.] माधव (कृष्ण) के गाते समय, एक प्रमदा (गोपी) ने हाथ में वीणा लेकर संभ्रम के साथ तार बजाते हुए स्वर को स्थायी पर बिठाया और एक राग छेड़ा। उसने उस राग की अलग-अलग स्वरजातियाँ बजायीं जिस [के प्रभाव] से ठुंठ भी अंकुरित हुए और जिसे कृष्ण ने सराहा। १०९० [क.] मंजीरों की मंजुल शिंजित ध्वनि के साथ नाचती-गाती एक वनिता ने जघन-भार से थककर हरि का हाथ अपने कुचों पर लेकर उसे पास खींच लिया। १०९१ [कं.] हे नृप ! जब गोविंद ने अपनी विशाल भुजा (कंधा), जो चंदनलिप्त और कमल-गंध से सुवासित थी, एक तरुणी (युवती) की पीठ पर टेक दी, तब वह परवश हो पुलकित हुई। १०९२ [सी.] एक सुंदरी ने अपना कपोल कृष्ण के कपोल पर रख दिया तो प्रभु ने उसे अपना चर्वित तांबूल (चबाया हुआ पान) दे दिया।

सी. चॅलुव यॉक्कतॅ चॅक्कु जॅक्कुतो मोपिन विभुडु तांबूल चर्वितमु वॅट्टॅ
नाडुच् नॉक लेम यलसिन प्राणेशुडुन्नत दोस्तंभमूतसेसॅ
जॅर्मरिंचि यॉक भाम चेरिन गडगोर जतुरुडु कुचघर्म जलमु वापॅ
नलकंबु लॉकयिति कलिक चित्रिक रेख नंटिन प्रियुडु पायंग दुव्वॅ

आ. वडति यॉक्कतॅ पाडि पाडि डस्सिन यध-
रामृतमुन नाथुडादरिंचॅ
हार मॉक्क सतिकि नंसावृतंबैन
गांतुडुरमु जेचि कौगिलिंचॅ ॥ 1093 ॥

कं. हासंबुल गरतल वि, न्यासंबुल दर्शनमुल नालापमुलन्
रास श्रांतलका हरि, सेसॅन् मन्ननलु करुण जेसि नरेंद्रा ! ॥ 1094 ॥

कं. हरि तनु संगसुखंबुन-
बरवशलै वॅतलॅल्ल वर्य्यॅदलु निजां-
बरमुलु नॅरुगमि चोद्यमॅ
सुरसतुलॉक्षिंचि करगि चॉक्किरि मिटन् ॥ 1095 ॥

व. इट्लु भगवंतुंडैन कृष्णुंडात्मारामुंडय्युनु, गोपसतुलॅंदरंदरकु नंदरै, निज प्रतिबिंबमुतोडन् क्रीडिंचु बालुर पोलिकॅ रासकेळि सलिपिन ॥ 1096 ॥

नाचते-नाचते जब तक ललना श्रांत हुई तो प्राणेश (कृष्ण) ने अपने हाथों का सहारा देकर थाम लिया। जब एक भामा (स्त्री) पसीने से तरबतर हो पास पहुँची तो उस चतुर (कृष्ण) ने कुचों पर का पसीना अपने नखाग्र से पोंछ दिया। एक युवती के ललाट पर की सिंदूर-बिंदी से उसकी लटें चिपक गयी तो उसके प्रिय (कृष्ण) ने सँवारकर ठीक किया। [आ.] गा-गाकर थकी-माँदी एक वनिता को नाथ ने अपना अधरामृत देकर सम्मानित किया। एक ललना का हार उसके अंस (कंधे) पर अटक गया तो कांत (कृष्ण) ने उसे छुड़ाकर छाती से लगा लिया। १०९३ [कं.] हे नरेंद्र ! उस हरि (कृष्ण) ने अपने हास-विलास, हस्त-विन्यास, दर्शन (दृष्टियाँ) और सल्लापों से रासनृत्य में परिश्रांत गोपिकाओं का कृपापूर्वक समादर किया। १०९४ [कं.] हरि के तनु-संग-सुख से (शारीरिक संग से होनेवाले सुख से) परवश बनी हुई ग्वालिनों को अपने अंचलों और वस्त्रों तक का भी होश न रहा, उसमें आश्चर्य नहीं है; देवताओं की स्त्रियाँ, जिन्होंने आकाश में रहकर रास को देखा, वे भी परवश होकर द्रवित हुईं। १०९५ [व.] इस प्रकार भगवान् कृष्ण, आत्माराम होकर भी, जितनी गोपवनिताएँ थीं, उतने होकर [हर एक के साथ] रासक्रीडा में

कं. तग गूडि याडि मनमुल, नगॅ जूचॅ बलिकॅ नंदनंदनुडनुचुन्
मगुवलु पॅद्दरिकमुतो, बॉगडिरि तम पूर्व जन्म पुण्यश्रेणिन् ॥ 1097 ॥

जलक्रीडाभिवर्णनमु

व. इट्लु हरि रासकेळि सालिंचि, तारकांचितलगु तटिल्लतल चॅलुवुन घर्म सलिलकणाक्रांतलगु कांतलं गूडि, जलक्रीडा कुतूहलुंडै, यमुना जलंबुलु सॊर, नंदु मुंदट सुंदरुलु सॊच्चि, पदप्रमाणंबु, जानुदघ्नंबु, कटिद्वयसंबु, मध्यमात्रंबु, कुचंबुलबंटि, यनि पलुकुचुं, गुच नयन नाभिविवर कुंतलंबुलु चक्रवाक जलचरावर्त शैवालंबुल चंदंबुन नंदंबुग नीडु पॊंदिन येरुलनि, कळिंदनंदन करंबुलु साचि, परिरंभमुलकु नारंभिचु कॅवडि नॅवुरु सनुदॅंचि ताकु तरंगंबुलकु नुलुकुचु, सारसंबुलकुं गरंबुलु साचुचु, मराळंबुल जोपुचु जॅन्नु मिगिलिन चन्नुल यॅत्तुवत्तुमनु नॅपंबुलं दपंबुलु नीट गाविचु माड्किनि संचरिचु चक्रवाकंबुल दोलुचु, नितांत कांतिसदनंबुलगु वदनंबुलकु नोडि, व्रीडं जॅंदि, कंदि, चंद्रुरुडु चलमुडिगि, जलमुनंबडि,

---

यों प्रवृत्त हुआ जैसे बालक निज प्रतिबिंब के साथ खेला करते हैं। १०९६
[कं.] यह कहकर कि नंदनन्दन (कृष्ण) ने हमें देखा, [देखकर] हँसा, और [हँसकर] बातें कीं, उन स्त्रियों ने अभिमान के साथ अपने पूर्वजन्म के पुण्यों को सराहा। १०९७

जलक्रीडा का वर्णन

[व.] इस प्रकार हरि रासकेली समाप्त कर, तारिकाओं से सज्जित तटिल्लताओं (बिजलियों) के समान धर्मसलिलकणों से आक्रांत (पसीने से तर) कांताओं को साथ लेकर जलक्रीड़ा के कुतूहल से यमुनाजलों में प्रविष्ट हुआ। पहले सुंदरियाँ पानी में उतरती हुई कहने लगीं— "पैरों तक है, घुटनों तक आया, कमर तक ही की गहराई है (अब तो) पेट तक उतरीं, (यह देखो) कुचों तक डूबीं"— यमुना की तरंगें सामने से आकर उन रमणियों को थपेड़ने लगीं मानों उनके स्तनों को चक्रवाक, नयनों को जलचर (मीन), नाभिप्रदेश को भँवर और कुतल (बालों) को शैवाल के समान सुंदर समझकर कलिदनंदिनी (यमुना) अपने हाथ फैलाकर उन्हें आलिंगन करने आ रही हो। इस स्पर्श से गोपियाँ विह्वल हुईं। वे सारस पक्षियों की तरफ़ हाथ फेरती; हंसों को भगाती; उन चक्रवाकों को उड़ाती जो उन युवतियो के कुचों की सुघराई से समता पाने के बहाने मानों जल में तपस्या कर रहे हों; उनके हस्तसंचालन से संचलित जल में

कंपिंचु करणि, निजकरकलित जलप्रतिफलितुंडै कदलु चंद्रुनि गनि मेच्चि सोलुचु, सलिलावगाहन समय समुच्चलित वारिशीकर परंपरल वलन मकरंदपान मत्त मधुकर पक्षविक्षेपण संजात वात समुद्धूत कुमुदादि पराग पटलंबुलं जेड्चुचु, मोमु दम्मुल कम्मदनंबुलकु मूगि, झुम्मुरनु तुम्मेंदलकु वेड्चुचु, गरंबुल नीडॅगयं जड्चुचु, नील नीरद निपतित पयोबिंदु संदोहंबुलं दडियु पुव्वुदीवियल वागुन गृष्णु करद्वयतोयंबुनं बॅक्कु तोयंबुलं वडियुचु ग्रंदुकोनि सुडियुचु, नसमबाणुनि पुलु कडिगिन कुसुम बाणंबुल पगिदि मेनुलु मॅरव, सलिलावगाहन परायत्त चित्तलगुचु, मोत्तंबुलं सरस भाषणंबुलं द्रुळ्ळुचु, गरंबुल नीरु निंचि हरिमीद जल्लुचु, चल्लनेडं दडबड दाटुचु, दाटि चनक निलुवरिंचुचु, विनोदिंप, हरियु गरेणुकर विकीर्ण नीरधाराभिषिक्तंबगु शुंडालंबु लील नाभीर कामिनी कर समुज्झित जलासारंबुलं दोगुचु, व्रजवधूजन हस्तप्रयुक्त कल्हार कैरव पराग पटलंबु वलन भूतिभूषणु सिरि वहिंचुचु, गोपिकाजन पाणि किसलय समुन्मुक्त कमलदळंबुल वलन सहस्रनयनुनि रूपु जूपुचु,

चंद्रमा (का बिंब) प्रतिफलित हो ऐसा हिलने लगा मानों वह उन युवतियों के वदनों को देख, जो नितांत (अत्यंत) कांति के सदन थे, हारकर लज्जा से तप्त हो, ईर्ष्या छोड़, पानी मे गिरकर (थरथर) काँप रहा हो। इसे देख उन्हें संतोष हुआ। उनके जल में स्नान करते समय छीटों ने उछल-उछलकर मकरंदपान में मत्त मधुकरों (भौंरों) को विचलित किया; उन भौंरों के पक्षविक्षेपण (पंखों के फड़फड़ाने) के कारण हवा के झोंके उठे जिससे कुमुद आदि फूलों का पराग-पटल उड़कर गिरने लगा। अपने मुखकमलों के सौरभ से खिंचकर झंकार करते हुए घिरनेवाले भौंरों से वे युवतियाँ हैरान हुईं। वे अपने हाथों पानी उछालने लगी। नील-नीरद (काले बादल) से पतित पयोबिंदु (जलबिंदु)-संदोहों से भीगी पुष्पलताओं के सदृश कृष्ण के दोनों हाथों से उछाले गये जल में वे गोपियाँ बार-बार भीगकर व्याकुल हो गईं। कामदेव के निर्मल पुष्पबाणों के समान उनके शरीर चमचमाते रहे, वे सब जलक्रीडा में दत्तचित्त हो, सरस संभाषण में अनुरक्त हुईं। हाथो में भरकर हरि पर पानी फेंककर दूर हटतीं किंतु संभ्रम के कारण उसके (कृष्ण के) सामने ज़रा ठिठक रहती। [इस प्रकार] वे गोपियाँ मनोविनोद मे मग्न हुईं। हरि भी हथिनी की सूंड़ से गिरी नीरधारा से अभिषिक्त शुंडाल (हाथी) के सदृश उन आभीर (अहीर) कामिनियों के हाथों छूटी बौछार में भीग जाता। व्रजवधूओं ने अपने हाथों से कल्हार और कैरव (कुईं) के फूल जो फेक मारे उनके पराग-पटल से विभूषित होकर कृष्ण भूतिभूषण (शिव) की शोभा दिखाता; गोपिकाजनो के पाणिपल्लवों से छूटे कमलदलों से [अलंकृत होकर]

गोपालबालिका कुचकलश कुंकुम पंकंबु वलन ब्रभातभानुनि भंगि भासिल्लुचु, घोषयोषा कटाक्षविक्षेपणंबुल वलन मधुपपरिवृत हरि चंदन सौंदर्यंबु नोंदुचु, वल्लवो हासरुचुलवलन जंद्रिका प्रभाभासित नीलशैलंबु क्रिय नमरें। अंत ॥ 1098 ॥

म. सतुलुं दानुनु नीटिलो वॆडलि भूषागंध चेलाद्यलं-
कृतुडै कुंभि करेणु यूथमुलतो ग्रीडिंचु चंदंबुनन्
लतलंदुं दरुलंदु बुष्पमय लीलाशय्यलंदुन् सुखो-
न्नतुडै कृष्णुडु क्रीडलं दनिपॆ ना नारीललामंबुलन् ॥ 1099 ॥

व. इट्लु शरत्कालंबुन वॆन्नुंडिद्रिय स्खलनंबु सेयक गोपिकलतोड रमिंचॆ। अनि चॆप्पिन मुनिवरुनकु भूवरुंडिट्लनियॆ ॥ 1100 ॥

मत्त. धर्मकर्तयु धर्मभर्तयु धर्ममूर्तियुनैन स-
त्कर्मुडीशुडु धर्मशिक्षयु धर्मरक्षयु जेयगा
नर्मिलिन् धरमीद बुट्टि परांगनाजन संगमे
धर्मंबु दलंचि चेसॆ नुदात्तमानस चॆप्पुमा ! ॥ 1101 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लियॆ ॥ 1102 ॥

सहस्रनयन (इंद्र) सा रूप दिखाता; गोप-बालाओं के कुचकलशों पर लगे कुंकुम-पंक [के संयोग] से प्रभात समय के भानु (सूर्य)-सा भासित होता। घोषयोषाओं (अहीरन) के कटाक्षविक्षेपों (कनखियों) के कारण मधुपों (भौंरों) से घिरे हुए हरिचंदन-सा सुंदर दिखाई पड़ता; वल्लवियों (ग्वालिनों) के हास-विलास की कांति (प्रकाश) के कारण वह कृष्ण चाँदनी में चमकनेवाले नीलशैल के समान शोभायमान हो रहा था। पश्चात्— १०९८ [म.] उन वनिताओं समेत कृष्ण जल से बाहर निकलकर वस्त्र-आभूषण और गंध, पुष्प आदि से अलंकृत हुआ; फिर हाथी जिस प्रकार हस्तिनी-समूह के साथ क्रीड़ा करता है, उसी भाँति तरुलताओं में, पुष्प-शय्याओं पर सुखासीन हो कृष्ण ने उन नारीरत्नों को क्रीडा में परितृप्त किया। १०९९ [व.] "इस भाँति विष्णु ने उस शरद् काल में इंद्रियस्खलन (वीर्यपात) किये बिना गोपियों के साथ रमण किया" —यह सुनकर भूवर (राजा ने) मुनिवर से यों कहा— ११०० [मत्त.] "हे उदात्तमनस्क वाले मुनि ! कृपया मुझे यह [समझाकर] कहिए कि उस ईश्वर ने; जो [स्वयं] धर्मकर्ता, धर्मभर्ता, धर्ममूर्ति और सत्कर्मी है, धर्म की शिक्षा देने और धर्म की रक्षा करने के निमित्त प्रेमपूर्वक भूतल पर जन्म लिया, उसने भी परस्त्रियों से जो संसर्ग किया, उसे कौन सा धर्म कहकर किया है ? ११०१ [व.] तब शुक [योगी] ने यों कहा— ११०२

आ. सर्वभक्षकु डग्नि सर्वंबु भक्षिंचि
दोषिगानि पगिदि दोषमैन
जेसि दोषपदमु जेंदरु तेजस्वु-
लगुट जंद्र वासवादुलधिप ! ॥ 1103 ॥

कं. ईश्वरुडु गानिवाडु न
रेश्वर ! परकांत दलचि यॆट्लु ब्रतुकु गौ-
रीश्वरुडु दक्क नन्युडु
विश्वभयद विषमु म्रिंगि वॆलयं गलडे ॥ 1104 ॥

कं. सत्यमु प्रभुवुल वचनमु
नित्यमु तद्वचनविधिनि निलुतुरु पॆद्दल्
सत्यासत्यमु गावुन
सत्यमनुचु जनरु वारि चरितमुन नृपा ! ॥ 1105 ॥

म. घनुलॆ यॆव्वनि पादपंकज पराग ध्यानसंप्राप्त यो-
ग निरूढत्वमुचे मुनींद्रुलु महाकर्मंबुलन् वासि बं-
ध निरोधंबुलु लेक विच्चलविडि दर्पितुरा नित्यशो-
भनुडॆट्लुंडिन नुंडॆ गाक कलवे वंधंबुलुर्वीश्वरा ! ॥ 1106 ॥

आ. गोपजनमुलंदु गोपिकलंदुनु, सकल जतुलंबु संचरिंचु
ना महात्मुनकु वरांगनलॆव्वरु, सर्वमयुडु लील सलिपॆ गाक ॥ 1107 ॥

[आ.] अग्निदेव जो सर्वभक्षक है, सब कुछ स्वाहा करके भी दोषी नही बनता; हे राजन् ! उसी प्रकार इन्द्र और चंद्र आदि तेजस्वी [देवता] दोष [कृत्य] करके भी दोषी नही बनते। ११०३ [कं.] हे नरेश्वर (राजा) ! जो स्वयं ईश्वर नही है, वह परस्त्री की चाह करके क्योंकर जी सकता है ? गौरीपति (शिवजी) को छोड़ अन्य कोई [व्यक्ति] सारे विश्व के लिए भयदायक विष निगलकर कहीं जीवित रह सकता है ? ११०४ [कं.] हे राजा ! प्रभुओं का वचन सत्य होता है, अतः बड़े लोग सदा उनके वचन के अनुसार ही चलते हैं। किंतु, उनका आचरण हमेशा सत्य नहीं होता (वह तो सत्य और असत्य दोनों होता है) अतः प्रभुओं के आचरण को सत्य मानकर वैसा आचरण कोई नहीं करता। ११०५ [म.] जिसके पदपंकज-पराग का ध्यान करके महान् मुनीश्वर लोग स्थिर-योग प्राप्त करते है और [तद्द्वारा] बड़े से बड़ा कर्म-बंधन तोड़कर बिना रुकावट के स्वेच्छापूर्वक दर्प (अभिमान) दिखाते हैं, वह नित्यशोभन (भगवान्) चाहे जैसा आचरण करे, उसके लिए कोई प्रतिबंध नही है ! ११०६ [आ.] गोप-गोपीजनों में, समस्त जंतुजाल में संचार करनेवाले उस महात्मा के लिए कौन परस्त्री होती है ? वह सर्वमय है, उसने केवल यह लीला रची

व. अनि चॅप्पि, शुकुंडिट्लनियॆ। अंत ब्रह्ममुहूर्तंबुनं गृष्णु वीड्कॊनि, गोपिकलिच्च लेकयु निड्लकड केगिनं, गृष्णमाया मोहितुलै, गोपकुलु वारलं गोपिप नॆहुंगनेररैरि ॥ 1108 ॥

इंद्र. गोपाल कृष्णुंडुनु गोपकांतल्
प्रापिंचि क्रीडिंचिन भंगुलॆल्लन्
रूपिंचि वर्णिंचि नरुंडु हृत्सं-
तापंबुलं बायुनु दत्प्रसक्तिन् ॥ 1109 ॥

अध्यायमु—३४

सर्परूपियगु सुदर्शनुंडनु गंधर्वुनि शापविमोचनमु

व. अंत नॊक्कनाडु नंदादुलैन गोपकुलंबिकावनंबुनकु शकटंबुलॆक्कि जातरकुं जनि, सरस्वती नदी जलंबुल स्नानंबुलु सेसि, युमामहेश्वरुल नर्चिंचि, कानुकलिच्चि, ब्राह्मणुलकु गोहिरण्य वस्त्रान्न दानंबु लॊसंगि, जल प्राशनंबु सेसि, नियमंबुन नुंड, दैवयोगंबुन नाकॊनि यॊक्क महोरगंबु निदुरवोयिन नंदुनि गऱचि, म्रिंग नग्गलिप, नतंडु, 'कृष्ण ! कृष्णेति' वचनंबुलं दन्नु विडिपिंचुमनि मॊऱ यिडिन, विनि ॥ 1110 ॥

है। ११०७ [व.] ऐसा बताकर शुक ने यों कहा— जब ब्रह्ममुहूर्त हुआ तो कृष्ण से बिदा लेकर, इच्छा न होने पर भी गोपिकाएँ अपने-अपने घर चली गईं। कृष्ण की माया (के बल) से मोहित बने हुए गोप लोग उन पर कोप करना भी नहीं जान सके। ११०८ [इन्द्र.] गोप-स्त्रियों ने गोपालकृष्ण को पाकर जिस-जिस रीति से क्रीडाएँ रची थीं, उन सबका निरूपण करता हुआ वर्णन करनेवाला मनुष्य, उनके प्रभाव से हृदय का सारा संताप दूर कर लेता है। ११०९

अध्याय—३४

सर्प रूपी सुदर्शन नामक गंधर्व का शाप-विमोचन

[व.] अनंतर, एक दिन, नंद आदि गोप लोग शकटों पर सवार हो, अंबिकावन की यात्रा करने गये। सरस्वतीनदी में स्नान कर उन लोगों ने उपहार आदि समर्पण करके उमा-महेश्वर की पूजा-अर्चना की। फिर ब्राह्मणों को गो, हिरण्य, वस्त्र और अन्न का दान देकर जल का प्राशन किया और व्रत-नियम पालते रहे। इतने में दैवयोग से एक भूखा महासर्प सोये हुए नंद को डसकर निगल जाने को था तो नंद ने "कृष्ण", "कृष्ण" कहकर पुकार मचाई और अपने को अजगर के मुँह से छुड़ाने की

कं. गोपकुलंदरु मेल्कॊनि, कोपमुतो बॆंब्दगुदॆल गॊड्रवुल मॊत्तन्
दापमु नॊंदियु वदलक, पापपु पॆनुवामु नंदु वट्टॆ नृपाला ! ॥ 1111 ॥

व. अय्यवसरंबुन गृष्णुंडु दर्पिचि, पाद ताडनंबु सेसि, त्रॊक्किकन, सर्पंबु सर्प रूपंबु विडिचि, विद्याधरेंद्र रूपंबु दाल्चि, हरिकि म्रॊक्किन नतनिकि हरि यिट्लनियॆ ॥ 1112 ॥

उ. मंडित मूर्तितो गनक मालिकतो शुभलक्षणुंडवै
युंडॆडु नीकु गष्टपु महोरग देहमिवेल वच्चॆ नॆ-
व्वंडव् नाममॆय्यदि भवंबुनकॆद्दि मिधंबु नाकु नॊ-
डॊड यॆरुंग जॆप्पुमु बुधोत्तम ! नी पनि चोद्यमय्यॆडिन् ॥ 1113 ॥

व. अनिन वाडिट्लनियॆ । देवा ! येनु सुदर्शनुंडनु विद्याधरुंड । विमानारूढुंडनै, रूप संपद्गर्वबुलं जॊक्कि, दिशकुल जरिंचुचु, नॊक्कयॆड नांगिरसुलैन ऋषुल गुरूपुलैन वारलं गनि, नगिन, वारुनु, नीवुनु रूपदर्पंबुनं दम्मु नगितिवि गावुन महासर्पंबवैयुंडुमनि शपिंचिन विदप ने वेडुकॊनिन निट्लनिरि ॥ 1114 ॥

चं. यदुकुलमंदु भक्तुल भयंबु हरिंचुटकुं जनार्दनुं-
डुदयमु नॊंदि यी यडवि कॊक्कदिनंबुन रागलंडु व-

विनती की। उसकी गुहार सुन ११११० [कं.] गोपक सब जाग पड़े, क्रोधित होकर उन लोगों ने लाठियो और लुआठियों से उसे खूब मारा; संतप्त होकर भी उस पापी अजगर ने नंद को पकड़ ही रखा। ११११ [व.] उस समय कृष्ण ने आगे बढ़कर उसे लात मार-मारकर पैरों से खूब कुचल दिया। तुरंत वह अपना सर्परूप छोड़ विद्याधर का रूप धर हरि के पैरों पड़ा। तब हरि ने उससे यों पूछा : १११२ [उ.] "तुम तो सुवर्ण मालिकाओं से सजकर शुभलक्षण-युक्त दिखाई दे रहे हो, तुम्हें यह निकृष्ट सर्पशरीर कैसे प्राप्त हुआ ? आखिर, तुम कौन हो ? नाम क्या है ? इस जन्म का क्या कारण है ? हे बुधोत्तम ! मुझे तुरंत समझाकर कहो। तुम्हारी स्थिति आश्चर्यजनक मालूम होती है।" १११३ [व.] तब उसने यों कहा : "हे देव ! मैं सुदर्शन नामक विद्याधर हूँ; एक समय, विमान पर चढ़, अपने रूप, और संपद् के गर्व में चूर हो, चारों तरफ़ संचार करते हुए एक स्थान पर आंगिरस ऋषियों को देख, जो कुरूप थे, हँस पड़ा। तब उन्होंने यह कहकर मुझे शाप दिया कि चूंकि तुमने अपने रूप-सौंदर्य का घमंड कर हमारी हँसी उड़ाई है, महासर्प होकर पड़े रहो'। पश्चात् जब मैंने अनुनय-विनय कर क्षमायाचना की तो उन्होंने कहा : १११४ [चं.] 'भक्तों का भय हरने के लिए जनार्दन यदुकुल

त्पदमुन नीवु दन्नबडि पन्नग देहमुतोड बासि नी
मोदलिटि मेनु गांचेदवु मूढुड ! पोम्मनि रा दयानिधुल् ! ॥ 1115 ॥

म. निनु जिंतिंचिन विन्न बेरुकोनिन् निर्मूलमै क्रुस्सि पा-
पनिकायंबु विनष्टमौ नट भवत्पादंबु ना मीद बॅ-
ट्टिन दद्ब्राह्मण शाप संजनित कौटिल्यंबु दानिल्चुने
वनजातेक्षण ! नेडु वासॅ नुरगत्वंबॅल्ल ने बोयॅदन् ॥ 1116 ॥

व. अनि विन्नविंचि, हरिकि ब्रदक्षिणंबु वच्चि, म्रोक्कि, सुदर्शनुंडु दिवंबुनकुं जनियॅ। सर्पंबुवलन नंदुंडु विमुक्तुंडय्यॅ। तत्प्रकारंबु विनि, वॅऱगु पडि, गोपकुलु देवता महोत्सवंबु समाप्ति नोंदिंचि, श्रीकृष्ण कीर्तनंबु सेयुचु, मरल मंदकुं जनिरि। अंत ॥ 1117 ॥

श्रीकृष्णुडु कुबेरभट्टुडगु शंखचूडुंडनु गुह्यकुनि संहरिंचुट

चं. मरियॊक नाटि रात्रि बलमाधवुलुज्वल वस्त्र मालिका-
धरुलुनु लेपनाभरण धारुलुनै चनि मल्लिकादि पु-
ष्परस निमग्न मत्त मधुपंबुल गीतमु विंचु दद्वनां-
तरमुन वॆन्नॆलन् व्रजनितंबिनुलुंडग बाडिरिपुगन् ॥ 1118 ॥

में उदित होकर (अवतरित हो) एक दिन इस वन में आनेवाले है, उनके पैर की लात खाकर तुम यह सर्प-देह छोड़, अपना पूर्व रूप प्राप्त करोगे। हे मूर्ख ! अब तुम चले जाओ।' उन दयानिधि ऋषियों ने ऐसा कहकर मुझे भेज दिया। १११५ [म.] हे वनजातेक्षण (कमलनयन) ! सुना जाता है कि तुम्हारा चिंतन करने, कथा सुनने [अथवा] नाम लेने मात्र से पाप-निकाय (पाप-समूह) क्षीण होकर विनष्ट हो जायगा; [ऐसी दशा में] जब तुमने अपना चरण मुझ पर रख दिया, तो उस ब्राह्मण-शाप से उत्पन्न हुआ कुटिलत्व कहीं रह सकता है ? (नहीं) मेरी वह सर्प-दशा आज छूट गई है, अब मैं विदा होता हूँ।" १११६ [व.] यों विनती करने के पश्चात्, हरि की प्रदक्षिणा कर, उस सुदर्शन ने प्रणाम किया और स्वर्ग को चल दिया। [यों] नंद अजगर से विमुक्त हुआ। यह हाल सुन (देख) गोपालक चकित हुए, देवता-महोत्सव समाप्त कर सब लोग श्रीकृष्ण का संकीर्तन करते हुए अपने घोष में आ पहुँचे। पश्चात्— १११७

श्रीकृष्ण का शंखचूड़ नामक गुह्यक का, जो कुबेर का भट था, संहार करना

[चं.] एक और रात को, बलभद्र और माधव (कृष्ण) उज्ज्वल वस्त्र, और मालिकाएँ पहन, [सुगंध] लेपन और आभरणों से अलंकृत होकर वन में पहुँचे और मल्लिका आदि पुष्परस-[पान] में मग्न मत्त-मधुपों (-भौंरों)

कं. आ पाट चेवुलु सोकिन, नेपाटियु देहलतल नेरुगक दृग्वा-
चा पाटवमुलु सेडि पडि, -रा पाटलगंधुलेल्ल नटवी वीथिन् ॥ 1119 ॥

व. इट्लु सकल भूतसम्मोहंबगु गानंबु सेयुचु, निच्छावर्तनंबुलं बमत्तुल चंदंबुन रामकृष्णुलु क्रीडिंप, गुवेरभटुंडु शंखचूडुंडनुवाडु रामकृष्ण रक्षितलगु गोपिकल दन योगबलंबुन नुत्तरपु दिक्कुनकुं गोनिपोव, नय्योषलु 'राम ! कृष्णेति' भाषणंबुलु बलुकुचु, बुलिकि नगपडिन मोदवुलक्रिय मोरयिडिन विनि ॥ 1120 ॥

उ. ग्रब्दन सालवृक्षमुलु केकोनि वल्लिदुलन्नदम्मुला
यिद्दरु कालमृत्युवुल येपुन वेचिन योडकुंडुडो
मुद्दियलार ! यंचु दनु मुट्टिन जूचि कलंगि गुह्यकुं-
डुद्दवडिन् गतिन् वरुत्ते नुत्तरमितुल डिंचि भीतुडै ॥ 1121 ॥

व. इट्लु गुह्यकुनि चेत विडिवडिन गोपिकल रक्षिंचुकोनि युंडुमनि बलभद्रुनि बलिकि ॥ 1122 ॥

शा. ओरी ! गुह्यक ! पोकु पोकु मनि रोषोक्ति बकाराति वा
डे रूपंबुन नेंदु जोच्चे नेंट बोये दोड दा नेगि दु-

का गायन (गुंजार) सुनते हुए उन्होंने उस वनांतर में, छिटकी चाँदनी में, व्रज-वनिताओं के समक्ष मधुर गायन किया। १११८ [कं.] उस गायन का स्वर कान में पड़ते ही उन पाटलगंधियों (सुगंधित शरीरवाली गोपियों) को अपनी देहलता का होश जाता रहा, देखने और बोलने की शक्ति भी कुंठित हुई; उस वन के बीच वे युवतियाँ उस [आत्मविस्मृति की] दशा में पड़ी रहीं। १११९ [व.] इस प्रकार समस्त प्राणियों को सम्मोहित करनेवाला गायन करते हुए राम और कृष्ण प्रमत्तों की तरह जब मनचाही क्रीडाएँ कर रहे थे, तब शंखचूड़ नामक कुवेर का एक सेवक अपने योगबल से उन गोपिकाओं को, जो राम और कृष्ण से सुरक्षित थीं, उत्तर दिशा में उठा ले गया। तब वे स्त्रियाँ "हे राम, हे कृष्ण" कहकर पुकारती हुई, बाघ के सामने आई दुधारू गौओं के समान, चिल्लाने लगीं। उनकी चीख-पुकार सुन : ११२० [उ.] तुरंत ही उन दोनों बलिष्ठ भ्राताओं ने सालवृक्ष हाथ में लिये, मृत्युदेवता के समान उस [गुह्यक] का पीछा किया। उन्होंने पुकारा, "हे सुंदरियो ! भागो मत"। गुह्यक [राम और कृष्ण का] यह आक्रमण देख भयभीत हुआ और उन गोपियों को छोड़कर अत्यंत वेग के साथ उत्तर की तरफ़ भाग खड़ा हुआ। ११२१ [व.] गुह्यक के साथ से छूटी हुई उन गोपिकाओं को सुरक्षित रखने के लिए बलराम से कहकर, ११२२ [शा.] बकाराति (बकासुर का शत्रु— कृष्ण)

वरोदंचित मुष्टि वानि तल द्रॅव्वंबट्टि तद्वीरु को-
टीर भ्राजित रत्नमुन् गोनियॆ दंडिन् गोपिकल् सूडगन् ॥ 1123 ॥

व. इट्लु शंखचूडुनि जंपि, वानि शिरोरत्नंबु दॆच्चि, बलभद्रुन किच्चि मॆप्पिचॆ।

अध्याय—३५

व. मरियु, नॊक्क दिनंबुनं गृष्णुंडु वनंबुनकुं जनिन, नतनि लीललु पाडुचु निंड्लकडं दद्विरह वेदनानल भरंबु सहिंपक, गोपिकलु तमलो-निट्लनिरि ॥ 1124 ॥

शा. भ्रू विक्षेपमुलोड दापलि भुजंबुं जॆक्कु गीलिच्चि कॆ
म्मोविन् वेणुवु गूर्चि सुस्वरमुगा म्रोयिंचुचुन्नंगुळी
प्रावीण्यंबु विभुंडु सूप गनि सप्राणेशलै युंडियुन्
नीवीबंधमुलूड जॊक्कुदुरु पो निंगिन् निलिंपांगनल् ॥ 1125 ॥

म. नवमाधुर्यमु गल्गु कृष्णु मुरळी नादामृत स्यंदमुल्
सॊवुलन् जॊच्चि हृदंतराळमुल भासिल्लन् सवत्संबुलै

ने सरोष ललकारा "ओ रे ! गुह्यक ! भागो मत, [ठहरो]" गुह्यक जिस रूप में जहाँ-जहाँ गया, जहाँ-जहाँ घुसा, कृष्ण भी उसके पीछे-पीछे ही गया। [अंत में उसे पकड़कर] बलिष्ठ मुट्ठियाँ मार-मारकर उसे गिराया और गोपियों की आँखों के सामने ही उसके किरीट पर शोभित रत्न छीन लिये। ११२३ [व.] इस तरह शखचूड़ को मारकर उसके शिर पर के रत्न लाकर कृष्ण ने बलभद्र को दिये, और प्रशंसा पाई।

अध्याय—३५

[व.] पश्चात् एक दिन जब कृष्ण वन को चले गये तो गोपिकाएँ अपने घरों में रहकर कृष्ण की लीलाएँ गाती रहीं, और जब उसके विरह की वेदना की अग्नि असह्य हुई तो आपस में यों कहने लगीं : ११२४ [शा.] जब हमारा स्वामी बायें कंधे पर कपोल टेककर, भौहें मटकाते हुए, अरुण अधरों पर वेणु रख, सुस्वर में उँगलियों का नैपुण्य प्रदर्शित करते हुए बजाता रहता है तब देवांगनाएँ आकाश में अपने प्राणेशों (पतियों) के संग रहकर भी परवश हो जाती हैं और उनकी नीवी खुल जाती है। ११२५ [म.] हे रमणी ! नूतन माधुर्य से भरी, कृष्ण की मुरली का नादामृत-रस जैसे ही कानों में प्रवेश कर हृदय के अंतराल को प्रकाशित करता है,

युविदा ! मेपुलकुं दोरंगि मृग गोयूथंबुलुत्कंठतो
दिविकिन् गंठमु लॅत्ति लो वदलु बो देहेंद्रिय व्याप्तुलन् ॥ 1126 ॥

शा. ओ कंजेक्षण ! कृष्णुडुज्वलित हारोद्दामुडै गान वि-
द्या कौतूहलितन् मनोज्ञ मुरळीध्वानंबु गाविंपगा
नार्कणिचि सशंयमै मॊरग्यु नीलाभ्रंबुगा जूचुचुन्
गेकारावमुलिच्चुचुन् मुरियुबो केकींद्र संघातमुल् ॥ 1127 ॥

म. ललना ! येटिकि दॆल्लवाऱॆ रवि येला तोचॆ बूर्वाद्रिपै
गलकालंबु नहंबु गाक निशिगा गल्पिपडा ब्रह्म दा-
वलरेडुन् गृपलेडु कीरमुलु दुर्वारंबुलॆट्लो कदे
कलवे मापटिकालमंदु मनकुन् गंजाक्षु संभोगमुल् ॥ 1128 ॥

उ. ऎप्पुडु ग्रोवॆडु ग्रुंकु हरि येप्पुडु गोवुल मेपि तेच्चु मा
कॆप्पुडु तन्मुखांबुज समीक्षणमब्बु नतंडु वच्चि न-
न्नॆप्पुडु गारविंचु दुदि येप्पुडु मद्विरहाग्नि राशिकिन्
जॆप्प गदम्म ! बोटि ! मरुसेतल नुल्लमु दल्लडिल्लॆडिन् ॥ 1129 ॥

म. चॆलिया ! कृष्णुडु नन्नु वासि वनमुं जेरंग नय्याक्षणं-
बुलु नाकन्नियु नुंड नुंडग दगन् बूर्णंबुलै सागि लो

वैसे ही वन के मृग और गोवृंद जो अपने बछड़ों के साथ घास चरते रहते हैं, उत्कंठित हो, चारा छोड़, आकाश की तरफ़ गरदनें उठाकर देह और इंद्रियों का व्यापार भुला देते हैं। ११२६ [शा.] हे कमलाक्षी ! कृष्ण जब उज्ज्वल हारों से सजकर गानविद्या के कुतूहल से मनोहर मुरलीवादन में प्रवृत्त रहता है, तब उसे श्रवण कर, [कृष्ण को] विद्युल्लता के साथ चमकनेवाला नीलमेघ समझ, आनंदित हो मोरों का झुंड केकारव करता रहता है। ११२७ [म.] हे ललने ! सवेरा क्यों हुआ ? सूर्य पूर्वाद्रिपर क्यों दिखाई दिया ? विधाता दिन का सृजन न करके रात ही रात क्यों नहीं रचता? [आखिर] उस कामदेव को भी दया नही आती। इन तोतों को तो रोका नहीं जा सकता। अब क्या होगा बताओ। उस कंजाक्ष [कृष्ण] के साथ शाम को हमारे संभोग होंगे या नहीं ? ११२८ [उ.] सूर्यास्त कब होगा ? गाय चराकर हरि वापस कब आवेगा ? उसके मुखकमल के दर्शन हमें कब मिलेंगे ? पास आकर वह मुझे कब मनावेगा ? मेरे विरह की अग्नि कब बुझेगी ? इस जलन का अंत कब होगा ? बोलो तो भाई ! मन्मथ की करतूत के कारण मेरा दिल छटपटा रहा है। ११२९ [म.] सखी री ! कृष्ण मुझे छोड़ जब वन में जा रहता है, तब अंतर में लगता है कि वे घड़ियाँ क्रमशः बढ़कर परिपूर्ण हो रही हैं; प्रहर से बढ़कर दिन, फिर

पल दोचुं ब्रहरंबुलै दिनमुलै पक्षस्वरूपंबुलै
नॆललै यब्दमुलै महायुगमुलै निडारु कल्पंबुलै ॥ 1130 ॥

व. अनि मरियु, गृष्ण विरह दुःखबुन बहुविधंबुल बश्चात्तापंबु नॊंदुचु गोपिक लोपिकलु लेक, यॆट्ट केलकु दिनंबु गडपि, दिनांत समयंबुनंदु ॥ 1131 ॥

म. अदॆ भानुंडपराद्रि जेरॆ सायंकालमेतॆंचॆ न-
ल्लदॆ गोपादपरागं मॊप्पॆसगे बृंदारण्य मार्गंबुनं-
दिदॆ वीतॆंचॆ वृषेंद्रघोषमु प्रियुंडॆतॆंचॆ रंडंचु दा-
मॆंदु रेतॆंतुरु मापु कृष्णुनिकि नव्यियतुल् परिभ्रांतलै ॥ 1132 ॥

व. इट्लु तन कॆंदुरु वच्चिन मच्चिक नच्चॆलुवल नच्युतुंडिच्छावर्तनंबुल गारविंचॆ। अंत नॊक्कनाडु ॥ 1133 ॥

अध्यायमु—३६

वृषभासुर संहारमु

सी. ऎव्वनि मूपुर मोक्षिचि मेघंबु लद्रिश्रृंगं बनि याश्रयिंचु
नॆव्वनि रॆंकॆ कर्णेंद्रियंबुलु सोक गर्भपातंबगु गर्भिणुलकु
नॆव्वनि पदहति नॆगयु परागंबु लंधकाराति नार्वरिंचु
नॆव्वडु कॊम्मुल नॆदुरिंचि चिम्मिन बृथ्वीधरंबुलु पॆल्लगिल्लु

पखवारे, महीने, बरस, युग और पूरे कल्प बनते जा रहे है। ११३०
[व.] यों कहकर, कृष्ण के विरह में दुखी बन, अनेक प्रकार से संताप सहती हुई, वे गोपिकाएँ धीरज खोकर किसी तरह दिन काटती रहीं, फिर दिनांत (संध्या) के समय ··· । ११३१ [म.] "लो, सूरज अस्ताचल पर पहुँचा; अब सायंकाल आ गया है, उधर देखो, बृन्दावन के रास्ते में गोधूलि उड़कर फैल रही है; वृषभों का हुंकार और गौओं का रँभाना सुनाई दे रहा है। चलो हमारा प्रिय आ गया है।" —यों कहते हुए वे सुंदरियाँ परिभ्रांत होकर संध्या-सम कृष्ण की अगवानी करने चली आती है। ११३२
[व.] इस प्रकार अगवानी के लिए आई विमोहित सखियों का अच्युत (कृष्ण) उनकी इच्छानुकूल वर्तनों से समादर किया करता। पश्चात् एक दिन— ११३३

अध्याय—३६

वृषभासुर का संहार

[सी.] जिसका डिल्ला देख [उसे] पर्वतश्रृंग समझकर मेघ आश्रय लेते है; जिसका गर्जन कर्णपुटों में पड़ते ही गर्भिणी स्त्रियों के गर्भ गिर

ते. नट्टि वृषभासुरेंद्रुडहंकारिंचि
वाललत यॅत्ति पॅनुरंकं वेचि नेल
गालुं द्रव्वुचु निशितशृंगमुलु साचि
मंद बॅगडंग गविसॅ नमंदुडगुचु ॥ 1134 ॥

व. इट्लु वृषभाकारंबुन नरिष्टुंडु, हरिकि नरिष्टंबु सेयंदलंचि, पॅकुरिकिन ॥ 1135 ॥

उ. क्रेपुलु वारॅ गोवुलकु ग्रेपुलु गोवुलु गो वृषंबुलन्
बॅपडॅ वत्स धेनु वृषभंबुलु गोपकुलंबु जॊच्चॅ ना
गोपकुला वृषेंद्रमुलु गोवुलु लेगलु विच्चि पारगा
गोपचमूविभुंडु गनॅ गोवृष दैत्युडु वॅंट नंटगन् ॥ 1136 ॥

व. इट्लु भयभ्रांतुले, कांतलुं दारुनु 'कृष्ण! कृष्ण! रक्षिपु' मनियॅडि गोपकुलकु नड्डंबु वच्चि, दीनजन रक्षकुंडैन पुंडरीकाक्षुं डिट्लनियॅ ॥ 1137 ॥

उ. बालुर नितुलं बसुल बारगदोलुट वंटुपंतमे
चालु वृषासुरेंद्र बलसंपद जूपग नॅल्ल वोटि गो-
पालुर मंद गादु चनुपॅ बडितेनि ब्रचंड कृष्ण शा-
र्दूलमु नेडु नी गळमु द्रुंपक चंपक पोवनिच्चुने ॥ 1138 ॥

जाते है; जिसकी टाँगों के आघात से उड़कर धूल अंधकार के शत्रु चंद्रमा को ढाँप देती है, और जिसके सीगों से उछाले जाकर भूधर (पहाड़) भी उखड़ जाते है— [ते.] वह वृषभासुर मदमस्त हो, पूँछ उठाए जोर से दहाड़ कर, टाँगों से ज़मीन कुरेदता हुआ तेज़ सीगों से मारने को झपट पड़ा, जिसे देख सारा घोष दहल उठा। ११३४ [व.] इस प्रकार अरिष्ट नामक वह राक्षस, जो वृषभ के आकार में था, हरि को अरिष्ट (हानि) पहुँचाने की इच्छा करके झपट पड़ा। तव··· ११३५ [उ.] बछड़े गायों के पास भाग गये; बछड़े और गायें मिलकर बैलों में जा मिले; बछड़े, गाये और वृषभ गोपों के समीप दौड़े, जब बछड़े, गायें और वृषभों के साथ गोपालक भी भाग खड़े हुए तो गोपाल-प्रभु (कृष्ण) ने देखा कि वृषभासुर उन सबका पीछा कर रहा है। ११३६ [व.] इस प्रकार भयभीत होकर "हे कृष्ण! बचाओ, बचाओ।" —कहकर पुकारने वाले गोपों और गोपियों के समीप जा उन्हें भागने से रोककर दीनजन-रक्षक, पुंडरीकाक्ष (कृष्ण) ने यों कहा : ११३७ [उ.] "बालकों, स्त्रियों और पशुओं को यों खदेड़ना कौन सी बहादुरी है? बस, बस! वृषभासुर! अपना बल और पराक्रम दिखाने के लिए यह अन्य (साधारण) घोषों के समान नही है। यदि मुझ पर आक्रमण करो तो यह प्रचड कृष्ण-शार्दूल

आ. अनुचु धिक्करिंचि हस्ततलंबुल
जप्पुडिचि नगुचु सखुनिमीद
बन्नगेंद्रभयद बाहुदंडमु साचि
दंडि मेंड्रसि दनुजुदंड निलिचें ॥ 1139 ॥

व. अप्पुडु ॥ 1140 ॥

चं. खुरमुल नेल द्रव्वुचु नकुंठित वालसमीरणंबुलन्
विरविर बोयि मेघमुलु विव्व विषाणमु लोंड्डिकोचु दु-
स्तरतर मूर्तियै वृषभदैत्युडु कन्नुल निप्पुलोल्कगा
बुरदुर वच्चि ताकें रिपुदुर्मद मोचनु बद्मलोचनुन् ॥ 1141 ॥

उ. यादवकुंजरुंडु वृषभासुरु कोम्मुलु रेंडु बट्टि य-
ष्टादश पादमात्रमु गजंबु गजंबुनु द्रोव्वु केवडिन्
भेदिल द्रोब्बन नय्यसुर पिम्मिटि नोंदि चेमर्चि स्रोगि दु-
र्मदमुतोड डोकोनें ब्रमत्तविमर्दनु ना जनार्दनुन् ॥ 1142 ॥

आ. अंत गोपसिंहुडसुर कोम्मुलुवट्टि
धरणि द्रोचिब त्रोक्कि दैत्यभटुल
कोम्मु वीग सुरल कोम्मु वधिल वानि
कोम्मु वेरिकि मोत्ति कूल्चें नधिप ! ॥ 1143 ॥

(बाघ) आज तुम्हारा गला मरोड़कर संहार किये बिना [तुम्हें] जाने नहीं देगा।" ११३८ [आ.] इस प्रकार धिक्कारता हुआ कृष्ण ताली बजाकर हँस पड़ा; और भयंकर नागेंद्र के समान बाहुदंड फैलाकर बहादुरी के साथ उस दनुज के बाजू में खड़ा हो गया। ११३९ [व.] उस समय ११४० [चं.] खुरों से ज़मीन खुरचता हुआ, पूँछ को झंझोड़कर वह दैत्य प्रचंड वायुवेग से बादलों को तितर-बितर करता हुआ आगे बढ़ा; उसने सींगों को [मारने के लिए] आगे फैला कर, आँखों से अंगारे बरसाते हुए तेज़ी से झपट कर उस कृष्ण को धक्का दिया, जो पद्मलोचन और शत्रु-मद-मोचन था। ११४१ [उ.] उस यादव-कुंजर (-हाथी जैसा बलवान) कृष्ण ने वृषभासुर के दोनों सींगों को पकड़कर उसे अठारह क़दम पीछे खदेड़ा, जैसा हाथी दूसरे हाथी को खदेड़ता है। वह असुर अत्यंत व्यथा सह कर पसीने से तर हो गया; फिर झुककर, मस्ती से उस जनार्दन (कृष्ण) को टक्कर मारी जो प्रमत्तों का मर्दन करनेवाला है। ११४२ [आ.] हे राजन्! तब गोपसिंह (कृष्ण) ने उस राक्षस के सींग पकड़कर उसे धरणी पर ढकेल दिया; फिर उसे कुचलकर, सींग उखाड़कर मार-मार ढेर कर दिया, जिससे दैत्यों का उत्साह भंग हुआ और देवों का उत्साह

कं. उक्कु चॅडि रोजि नॅत्तुरु
मुक्कुन वातनु स्त्रविप मूत्र शकृतुल्
मिक्किलि विड्चुचु बसरपु
रक्कसुडनि समसॅ ब्रजकु रागमुलमरन् ॥ 1144 ॥

व. इट्लु वृषभासुरुं जंपिन, निलिंपुलु गुंपुलु गॊनि, विरुलु वर्षिप, गोपकुलु हर्षिप, गोपसतुलुत्कर्षिप, बलभद्रुंडुनु, वारुनु, गोविंदुंडुनु, बरमानंदंबुन मंदकुं जनिरि। अंत ॥ 1145 ॥

चं. घनुडॊकनाडु नारदुडु कंसुनितोड यशोदकूतु दा
गनुटयु जक्रि देवकिकि गर्भजुडौटयु मुन्नु रोहिणी-
तनयुडु रामुडौटयुनु दद्विभुलिद्दरु मंदनुन्न बा-
रनि यॆरुगंग जॆप्पिन महाद्भुत मंचु जलिचॆ गिन्कतोन् ॥ 1146 ॥

चं. कॊडुकुल मंदलोन निडि गॊट्टतनंबुन मोसपुच्चॆ नी
वडुगनि पट्टि चंपुटिदि भाव्यमटंचु गृपाणपाणियै
वडि वसुदेवुनि दुनुमवच्चिचन कंसुनि जूचि नारदुं-
डुडुगुमु चंप बोलदनि योडक मानिचि पोयॆ मिटिकिन् ॥ 1147 ॥

व. मरियु, नलुकदीरक कंसुंडु, देवकीवसुदेवुल लोहपाशबद्धुलं जेसि, केशि

उभर आया। ११४३ [कं.] वह पशु-देह-धारी राक्षस सारा बल खोकर, लंबी साँस लेता हुआ, नाक और मुख की राह रक्त बहाकर, मल और मूत्र छोड़-छोड़, उस मुठभेड़ में निष्प्राण हो गया। इससे प्रजा को आनन्द हुआ। ११४४ [व.] इस भाँति जब [कृष्ण ने] वृषभासुर का अन्त कर दिया, तो देवगण भीड़ लगाकर पुष्पवर्षा करने लगे; गोप हर्षित हुए; गोप-स्त्रियों को उत्कर्ष मिला; वे सब लोग बलभद्र और गोविंद के साथ परम आनन्द का अनुभव करते हुए अपने घोष में जा पहुँचे। अनंतर··· ११४५ [चं.] महिमावान् नारद ने एक दिन कंस से मिलकर उसे यह जानकारी दी कि यशोदा ने पुत्री को [ही] जन्म दिया था, [वास्तव में] चक्री-(कृष्ण) देवकी का गर्भज (पुत्र) है; रोहिणी ने पूर्व ही राम (बलराम) को जना था और वे दोनों प्रभु [संप्रति] व्रज घोष में रह रहे हैं। कंस ने इसे महान आश्चर्यजनक [कार्य] माना; वह रोष से विचलित हो गया। ११४६ [चं.] तब कंस यह कहते हुए कि इस निकम्मे वसुदेव ने अपने पुत्रों को घोष में छिपा रखकर दुष्टता से मुझे धोखा दिया, इसे पकड़कर मार डालना ही उचित है, कृपाणपाणि होकर तेज़ी से दौड़ पड़ा; उसे देख नारद ने कहा— छोड़ दो, उसे मार डालना उचित नहीं है; यों कंस को मना करके नारद निस्संकोच अंतरिक्ष में चले गये। ११४७ [व.] क्रोध शांत न हुआ तो कंस ने देवकी-वसुदेव को

यनुवानि बिलिचि, रामकेशवुलं जंपुमनि पंपि, मंत्रि भट गजारोहक
चाणूर मुष्टिक साल्व कोसल प्रमुखुल राविंचि, यिट्लनियॆ ॥ 1148 ॥

शा. ऎंदुन् नन्नॆदिरिंचि पोरुटकु देवेंद्रादुलुं जाल री
बृंदारण्यमु मंद निप्पुडु मदाभीरार्भकुल् रामगो-
विंदुल् :वर्द्धिलुचुन्नवारट रणोर्विन् गंसु नोंप्पितु मं-
चुं दर्पंबुलु वल्कुचुंदुरट यी चोद्यंबुलन् विंटिरे ॥ 1149 ॥

कं. पट्टण जनमुलु सूतुरु, दट्टंबुग मल्लरंगतल पार्श्वमुलन्
बॆट्टिपुडु तमकंबुलु, पुट्टिपुडु वीट मल्लु पोरनु माटन् ॥ 1150 ॥

शा. विज्ञाणंबुल बोर नेर्तुरु महावीर्य प्रतापादि सं-
पन्नुल् मीरलु मेटि मल्लु गमुलन् ब्रख्यातुलै पॆंपुतो
मन्नारा बलकृष्णुलं बॆनकुवन् मर्दिंचि मत्प्रीति का-
सन्नुल् गंडु पुरी जनुल् पॊगड नो चाणूर ! यो मुष्टिका ! ॥ 1151 ॥

शा. राश ! हस्तिप कॆंद्र गंड मद धारा गंध लोभांध गं-
भीरालि व्रजमैन मत्कुवलयापीड द्विपेंद्रंबु मद्-

लोहपाशवद्ध किया (वेड़ियों में बांध रखा)। और केशी नामक दैत्य को बुलाकर उसे राम और केशव (कृष्ण) का वध करने को भेज दिया। फिर अपने मंत्रियों, भटों, गजारोहकों, चाणूर, मुष्टिक, साल्व और कोसल के प्रमुखों को बुला भेजकर उनसे यों कहा— ११४८ [शा.] "जबकि देवेंद्र आदि [देवता] भी मेरा सामना करके लड़ने की हिम्मत नहीं करते, ये अहीरों के मदमस्त छोकरे— राम और गोविंद, जो इस बृंदावन के घोष में पल रहे हैं, सुना जाता है कि यह डींग मार रहे है कि हम रणभूमि में कंस को गिरा देंगे। क्या तुम लोगों ने यह अचंभे की बात नहीं सुनी ? ११४९ [कं.] नगर में मल्लयुद्ध के लिए दंगल (रंगभूमि) तैयार करो; नगरवासी लोग देख लेंगे। नगर मे मल्लयुद्ध की वार्ता फैलाकर उसके प्रति लोगों में मोह (तीव्र अभिलाषा) पैदा करो। ११५० [शा.] हे चाणूर, हे मुष्टिक ! तुम लोग महावीर्य [संपन्न] और प्रताप-संपन्न हो, बड़ी निपुणता से मल्लयुद्ध कर सकते हो। बड़े-बड़े युद्ध जीतकर तुम प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हो। [अतः] उन बलराम और कृष्ण का युद्ध में मर्दन करो और मेरी प्रीति का भाजन बनो। पुरजन तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। ११५१ [शा.] आओ ! महावतों के सरदार ! कुवलयापीड़ नामक मेरा गजेंद्र मेरे महल के द्वार पर स्तंभ के समीप खड़ा है जिसके गंडस्थल के मदजल की सुगंध से आकर्षित होकर झुंड के झुंड मधुप (भौरे) उसे घेरे रहते हैं। जैसे ही अहीर द्वार के पास पहुँचेंगे, गजेंद्र को तुम भड़का दो और उन

द्वारोदंचित देहळी परिसर स्तंभंबु डायंग ना-
भीरुल् रा नदलिचि डीकॊलुपु नी वीरंबु तोरंबुगन् ॥ 1152 ॥

कं. पशुविशसनमुलु सेयुडु
पशुपतिकि प्रियमुगाग मार्विचि चतु-
र्दशिनाडु धनुर्यागमु
विशदंबुग जेयवलयु विजयमु कॊरकुन् ॥ 1153 ॥

व. अनि तनवारि नंदर नय्ये पनुलकु नियमिंचि, यदुश्रेष्ठुंडगु नक्रूरुनि विलिचि, चेट्ट वट्टुकॊनि, यिट्लनियें ॥ 1154 ॥

शा. अक्रूरत्वमुतोड नीवु मनगा नक्रूरनामंबु नि-
र्वक्रत्वंबुन जॆल्लॆ मैत्रि सलुपन् वच्चुं निनुं जेरि नी
वक्रोधुंडवु मंदलोन बलकृष्णाभीरुलस्मद्विना-
श क्रीडारतुलै चरितुरट योजं देच्चि यॊप्पिंपवे ॥ 1155 ॥

आ. नाकु वॆरचि सुरलु नारायणुनि वेडि
कॊनिन नतडु वच्चि गोपकुलमु
नंदु गृष्णमूर्ति नानकदुंदुभि-
कुदितुडय्यॆ ननग नॊकटि विंटि ॥ 1156 ॥

व. कावुन नीवु गोपकुलचेत नरुलु गॊनि, धनुर्यागंबु जूड रंडनि, वारल दोड्कॊनिरम्मु। तॆच्चिन ॥ 1157 ॥

बालकों पर उसका कर (सूंड़) चला दो, तुम अपनी बहादुरी यों प्रदर्शित करो। ११५२ [कं.] विजय [की प्राप्ति] के लिए हमें चतुर्दशी के दिन धनुर्यज्ञ रचना है, उस दिन पशुपति (शिवजी) की प्रीति के निमित्त पशुवध करके बलि चढ़ाओ।" ११५३ [व.] यों कहकर अपने अनुचरों को उन-उन कार्यों पर नियुक्त किया; फिर यदुश्रेष्ठ अक्रूर को बुलाकर, उसका हाथ पकड़े इस प्रकार कहा— ११५४ [शा.] "तुम अक्रूरता से (क्रूरता छोड़) जी रहे हो, अतः 'अक्रूर' नाम तुम्हारे लिए निस्संशय सार्थक हुआ। तुमसे मिलकर मैत्री की जा सकती है; घोष में रहनेवाले बलराम, कृष्ण और अहीर लोग, जान पड़ता है, मेरे विनाश के यत्न कर रहे हैं; तुम क्रोध-रहित होकर, सबसे बरतते हो, अतः किसी उपाय से तुम उन्हें लाकर मुझे सौंप दो। ११५५ [आ.] एक [बात] मैंने यह सुनी कि मुझसे भयभीत होकर देवता लोगों ने नारायण की शरण में जाकर निवेदन किया तो वह कृष्णमूर्ति के नाम से गोपों के कुल में वसुदेव का पुत्र होकर उदित हुआ है। ११५६ [व.] अतः तुम उन गोपों से [पहले] राजस्व ले लो, फिर उन्हें धनुर्यज्ञ देखने के लिए बुलाओ, यों उन्हें [राम और कृष्ण को] अपने

शा. कॊंडल् गूलग द्रॊब्बु कॊम्मु तुदि गोपिंचि कोराडुचो
दंडिन् दंडि नधःकरिंचु नॊक वेदंडंबु ना यिंट ब्र-
ह्मांडंबैन गदल्पनोपु बलकृष्णाभीरुलन् बोरिलो
खंडिपन् दडवैंत दानि कदियं गादेनि यक्रूरका ! ॥ 1158 ॥

शा. चाणूरुंडुनु मुष्टिकुंडुनु सभासंख्यात मल्लुल् जग-
त्प्राणुन् मॆच्चरु सत्वसंपद्दल बाहाबाहि संग्राम पा-
रीणुल् वारलु रामकृष्णुल बलोद्रेकंबु संरितुरे
क्षीणप्राणुल जेसि चंपुदुरु संसिद्धंबु युद्धंबुनन् ॥ 1159 ॥

सी. आ रामकेशवुलंतरिंचिन वसुदेवमुख्युल जंपि तॆगुव मॆरसि
वृष्णिभोज दशार्णवीरुल दॆगटार्चि मुदुकडु राज्यकामुकुडु खलुडु
नगु नुग्रसेनु मायय्य गीटणगिंचि पिनतंड्रि देवकु बिलुकुमार्चि
मरियु वैरुल नॆल्ल मर्दिंचि ने जरासंध नरक बाण शंबरादि

आ. सखुलतोड भूमिचक्र मेलॆद बॊम्मु, तॆम्मु वेगम वसुदेव सुतुल
मखमु पेरु सॆप्पि मंत्रभेदमु सेय, वलयु बॆंप जनदु वैरि जनुल ॥ 1160 ॥

व. अनिन नक्रूरुंडिट्लनियॆ ॥ 1161 ॥

साथ लिवा लाओ। उन्हें बुला लाने पर··· ११५७ [शा.] मेरे यहाँ एक ऐसा हाथी है जो रोष के साथ दाँतों की नोक से कुरेदकर पर्वतों को भी खदेड़ सकता है, पौरुष के साथ यमराज को भी नीचा दिखा सकता है और ब्रह्मांड को भी हिला सकता है। भिड़ जाने पर बल-कृष्ण और आभीरों के टुकड़े करने में उसे देर नहीं लगती। हे अक्रूर ! यदि यह न हुआ तो [भी] ११५८ [शा.] चाणूर और मुष्टिक मेरी सभा के गिने-चुने मल्ल हैं; बल और सत्त्व में वे लोग वायु को भी नहीं मानते, और बाहु-युद्ध में पहुँचे हुए (प्रवीण) है। राम और कृष्ण के बल का आधिक्य उनको सह्य न होगा; अतः वे उन्हें युद्ध में शक्तिहीन बनाकर मार डालेंगे। यह निश्चित रूप से होने जा रहा है। ११५९ [सी.] जब उस राम और केशव (कृष्ण) का अंत हो जायगा तब मैं वसुदेव आदि को मारकर साहसपूर्वक वृष्णि, भोज और दशार्ण वीरों का अस्तित्व मिटा दूँगा। फिर मेरे वृद्ध पिता उग्रसेन का, वध कर दूँगा जो दुष्ट और राज्य का लोभी है। [साथ-साथ] चाचा देवक का भी प्राणहरण कर समस्त वैरियों को कुचल दूँगा। [इतना करने के बाद] जरासंध, नरक, बाण और शंबर आदि [आ.] मित्रों के साथ भूमिचक्र पर शासन करूँगा। चलो वेग से; यज्ञ का बहाना करके वसुदेव के पुत्रों को लाना चाहिए। शत्रुजनों को पालना उचित नहीं है।" ११६० [व.] तब अक्रूर ने यों

उ. पंपिन वोनिवाडनॆ नृपालक ! मानवुलॆन्न दम्मु नू-
हिंपरु दैवयोगमुल निंचुक गानरु तोचिनट्लु नि-
ष्कंप गतिन् जरितुरदि गादनवच्चुनॆ यीश्वरेच्छ द-
प्पिंपग रादु नी पगतुबिड्डल देच्चॆद वोयिवच्चॆदन् ॥ 1162 ॥
व. अनि पलिकि, यक्रूरुंडु चनिन, सकल जनुलनु वीड्कॊलिपि,
कंसुंडंतिपुरंबुनकुं जनियॆ ।

अध्यायमु—३७

[व.] अंत कंस प्रेरितुंडयि ॥ 1163 ॥

श्रीकृष्णुंडु केशि-व्योमासुरल संहरिंचुट

सी. खुरपुटाहति दूलि कुंभिनीचक्रंबु फणिराज फणुलकु बरवु सेय
भीषण हेषा विभीषितुलै मिट नमृतांधुलॊंडॊरु नंड गॊनग
जट्टल चंचल सटाच्छटल गाड्पुल मेघमुलु विमानमुलपै मुसुगु पडग
विवृतास्य गह्वर विपुल दंतंबुलु प्रळयाग्नि कीलल पगिदि मॆड्य

कहा : ११६१ [उ.] "हे नृपाल ! तुम भेज रहे हो तो मैं क्यों नहीं जाऊँगा ? मनुष्य सोचकर भी अपने पर जो बीतनेवाला है उसकी ऊहा (अनुमान) तक नहीं करते । दैवयोग किंचित् भी जाना नहीं जा सकता । बिना संकोच किये मनमाना वर्तन करते रहते हैं । इसे कोई नकार नहीं सकता; ईश्वरेच्छा टाली नही जा सकती । तुम्हारे शत्रु के पुत्रों को लिवा लाऊँगा । विदा ।" ११६२ [व.] इतना कहकर अक्रूर ने रथारूढ़ हो प्रस्थान गिया । तब कंस सब लोगों को विदा करके अंतःपुर में चला गया ।

अध्याय—३७

[व.] पश्चात् कंस की प्रेरणा से : ११६३

श्रीकृष्ण का केशि और व्योमासुर को मारना

[सी.] केशि नामक राक्षस [घोड़े का रूप धरकर] क्लेश (दुःख) फैलाता हुआ घोष में घुस आया । उसके खुरों के घट्टन से भूमंडल हिल-डुल गया जिससे फणिराज (शेषनाग) के फणों पर भार बढ़ गया; उसकी भयंकर हेषा (हिनहिनाने) से भयभीत हुए देवों ने एक-दूसरे को पकड़कर सहारा पा लिया; उसके चंचल अयाल के संचलन से उत्पन्न वायु ने मेघों को ऐसा झोंक दिया कि उन्होंने चलकर विमानों को ढँक दिया; उसके खुले हुए गुफा के समान मुँह में बड़े-बड़े दाँत प्रलयाग्नि की लपटों से चमकते

आ. गालप्राशलीलगा वालमेपार, वाहमगुचु गंधवाहगतुल
विजित शक्रपाशि वीर्य पयोराशि, केशि वच्चॆ मंद क्लेशमंद ॥ 1164 ॥

कं. भीषण घोटक दानव
हेषानिर्घोष भिन्न हृदय निखिल गो-
योषा पुरुषार्भकमै
घोषमु हरि चूड दैन्य घोषंबय्यॆन् ॥ 1165 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 1166 ॥

उ. पेदल घोषगोपकुल बिट्टदलिचुट वीर धर्मसा-
कादु व्रजंबुलो दनुजघस्मरुडॆडनि तन्नु दोयु क्र-
व्यादुनि जूचि गोपकुल कड्डमु वच्चि निशाट ! यिक बो-
रादनि शौरि चीरॆ मृगराजुक्रियन्नॆदिरिचॆ दैत्युडुन् ॥ 1167 ॥

आ. निष्ठुरोग्र सिंहनिनदंबुतो निंगि
म्रिंगुभंगि नोरु मिगुल दॆरचि
करवराग नतडु काटु दप्पिचिन
दन्नॆ नॆर्गासि तुरगदानवुंडु ॥ 1168 ॥

उ. तन्निन तन्नुनं बडक दानवहंत समीकरंतयै
कन्नुल गॆंपु पॆंपॆनय ग्रक्कुन घोटनिशाटु पादमुल्

दिखाई दिये। [आ.] उसकी पूंछ यमपाश की तरह फैल गयीं। वह अश्व रूपी राक्षस हवा की गति से बढ़ चला, और इन्द्र तथा यमराज को भी जीतकर समुद्र-सा विपुल बल-पराक्रम दिखा रहा था। ११६४ [कं.] उस भीषण घोटक-दानव की हेषा के गर्जन से ग्वालों, ग्वालिनों बच्चों और गायों के हृदय विदीर्ण हुए; हरि (कृष्ण) ने देखा कि अहीरों का घोष (बस्ती) दीनता से आर्तनाद कर रहा है। ११६५ [व.] उस अवसर पर··· ११६६ [उ.] "राक्षसांतक (कृष्ण) कहाँ है ?" —कहकर अपने को खोजनेवाले दैत्य को देखकर कृष्ण ने उसे ललकारकर कहा— "इन बेचारे ग्वालों को इस तरह भयभीत करना वीरधर्म नहीं होता; अरे राक्षस ! अब तुम वचकर जा नही सकते, ठहरो।" —गोपों की रक्षा के लिए आड़े आकर शौरि (कृष्ण) ने मृगराज (सिंह) के समान केशि पर आक्रमण किया। ११६७ [आ.] क्रूर और क्रुद्ध सिंह की तरह दहाड़ कर, मुँह ऐसा बाकर मानों आसमान को निगलने जा रहा हो, वह दैत्य [कृष्ण को] काटने चला, [पर] कृष्ण ने अपने को बचा लिया, इस पर उस तुरग (घोटक)-दानव ने झपटकर लात मारी। ११६८ [उ.] लात बचाकर वह दानवहंतक (राक्षसों का संहारक-कृष्ण) युद्ध का खेल खेलने

वन्नॆ चॆडंग बट्टि पडवैचॆ धनुश्शतमात्र दूरमुन्
बन्नग डिंभमुन् विसरि पारग वैचु खगेंद्रु कैवडिन् ॥ 1169 ॥

उ. वैचिन मोगिग लेचि वॆस वाजिनिशाटुडु हुंकरिंचि सं-
कोचमु लेक पै बडिन गोपकुलेंद्रुडु दिग्गजेंद्र शुं-
डा चटुलप्रभा बलविडंबकमैन भुजार्गळंबु दो-
षाचरु नोटिलोन निडॆ जंडफणिन् गुह नुंचु कैवडिन् ॥ 1170 ॥

शा. दंभोळि प्रतिमान कर्कश महोद्दाम दोःस्तंभमुन्
शुंभल्लील नघारि वानि रदमुल् चूर्णंबुलै रालगा
गंभीरंबुग कुक्षिलो जॊनिपि वीकन् वृद्धि पॊंदिपुचुन्
गुंभिचॆन् बवनंबु पिक्कटिल दत्कुक्षिन् नरेंद्रोत्तमा ! ॥ 1171 ॥

कं. वायुवु वॆडलक निलिचिन
गायंबु चॆमर्प गन्नुगव वॆलि कुरुकन
मायसॆडि तन्नुकॊनुचुनु
गूयुचु नश्वासुरुंडु गूलॆन् नेलन् ॥ 1172 ॥

आ. घोटकासुरेंद्रु कुक्षिलो गृष्णुनि
बाहु वधिक मयिन बट्टलेमि
बगिलि दोसपंडु पगिदि वद्देहंबु
वसुमतीश ! रॆंडु व्रय्यलय्यॆं ॥ 1173 ॥

लगा; उसके नेत्रों की लालिमा तेज़ हुई; झटपट घोटनिशाट (घोटक-राक्षस) की टाँगें पकड़कर, उसे कमज़ोर बनाकर, सौ कमान की दूरी पर ऐसा फेंक दिया जैसा खगेंद्र (गरुड़) साँप के बच्चे को फेंक मारता है। ११६९ [उ.] तब वह घोटक-राक्षस घुटने टेककर धीरे से उठ खड़ा हुआ, फिर हुंकार कर, संकोच छोड़ [कृष्ण पर] झपट पड़ा। तब गोपकुलाधिप [कृष्ण] ने अपना बाहुदंड, जो दिग्गज की सूँड़ के समान वलिष्ठ था, उस निशाचर के मुँह में डाल दिया। उस घोटकासुर के मुँह में रखा हुआ कृष्ण का हाथ गुफा में धरे हुए साँप जैसा था। ११७० [शा.] हे नरेंद्रोत्तम ! कृष्ण का वह वाम बाहुदंड वज्रायुध के समान अत्यंत कर्कश होने के कारण उस राक्षस के दाँत चूर-चूर होकर गिर गये। तब कृष्ण ने अपना हाथ उसके पेट के अन्दर घुसेड़कर धीरे-धीरे उसे बढ़ाकर इतना स्थूल बनाया कि पवन अन्दर ही कुंभित हुआ और उसका पेट फूलने लगा। ११७१ [कं.] श्वास [बदन के] अन्दर ही रुक गया, बाहर निकल नहीं सका। शरीर से पसीना छूटने लगा, आँखें (पुतलियाँ) बाहर निकल आईं; होश जाता रहा, चीखकर, छटपटाकर वह अश्वासुर नीचे गिरकर ढेर हो गया। ११७२ [आ.] हे भूपाल ! घोटकासुर की

कं. नळिनाक्षुडु लीलागति
विलयमु बोंदिंचे निट्लु वीरावेशिन्
पललाशिन् जगदभिनव
बलराशिन् विजित शक्रपाशिन् गेशिन् ॥ 1174 ॥

व. आ समयंबुनं बुष्पवर्षंबुलु गुरियिंचि, सुरलु विनुतिंचिरि। अंत हरिभक्ति विशारदुंडयिन नारदुंडु वच्चि, गोविंदुनि संदर्शिंचि, रहस्यंबुन निट्लनिये ॥ 1175 ॥

सी. जगदीश ! योगीश ! सर्वभूताधार ! सकलसंपूर्ण ! यीश्वर ! महात्म !
काष्ठगत ज्योति कैवडि निखिल भूतमुलंदु नोंकडवै तनरु दीवु
सद्गूढुडवु गुहाशयुडवु साक्षिवि, नीयंतवाडवै नीवु माय
गूडि कल्पितुवु गुणमुल वानिचे, बुट्टिंचि रक्षिंचि; पोलिय जेयु-

आ. दी प्रपंचमेल्ल निट्टि नी विष्णुडु, राजमूर्तुलयिन राक्षसुलनु
संहरिंचि भूमिचक्रंबु रक्षिप, नवतरिंचिनाडवय्य ! कृष्ण ! ॥ 1176 ॥

व. देवा ! नीचेत निक चाणूर, मुष्टिक, गज, कंस, शंख, यवन, मुर, नरक, पौंड्रक, शिशुपाल, दंतवक्त्र, साल्व प्रमुखुलु मडिसेदरु। पारिजातं-बपहृतं बय्येडिनि। नृगुंडु शापविमुक्तुंडगु। शमंतकमणि संग्रहंबगु।

कुक्षि में कृष्ण की बाँह इतनी बढ़ गई कि समा न सकी, अतः उसका कलेवर ककड़ी की तरह फटकर दो टूक हुआ। ११७३ [कं.] इस प्रकार, वीरावेशी, पललाशी (मांसभक्षक), जगत् का अपूर्व बलराशी, विजित-शक्रपाशी (इन्द्र और यम को जीतनेवाले) केशी को नलिनाक्ष (कमलनेत्र) कृष्ण ने खेल ही खेल में विनष्ट कर दिया। ११७४ [व.] उस समय देवता लोगों ने पुष्पवर्षा करके [कृष्ण की] स्तुति की। पश्चात् हरिभक्ति विशारद नारद ने आकर गोविंद का दर्शन किया और रहस्य में यों कहा : ११७५ [सी.] "हे जगदीश ! योगीश ! सर्वभूतों के आधार ! सकलसंपूर्ण ! हे ईश्वर ! हे महात्मा ! काष्ठ में निहित अग्नि के समान तुम समस्त भूतों में लीन रहते हो; विश्वात्मा हो, सबका आधार हो; (हृदयों में) साक्षी बने रहते हो; तुम्हारे समान तुम्ही हो [और कोई नहीं]; माया से मिलकर तुम गुणों को उत्पन्न करते हो, और उनके द्वारा समस्त जगत् का सृजन, रक्षण और [आ.] विनाश कराते हो; हे कृष्ण ! इस समय तुम राजा बने हुए इन राक्षसों का संहार कर भूमंडल की रक्षा करने के हेतु अवतरित हुए हो। ११७६ [व.] हे देव ! चाणूर, मुष्टिक, गज, कंस, शंख, यवन, मुर, नरक, पौंड्रक, शिशुपाल, दंतवक्त्र, साल्व, आदि प्रमुख दैत्य अब (आगे) तुम्हारे हाथ मरने जा रहे हैं। तुम पारिजात का हरण करोगे; नृग को शाप-विमुक्त करोगे; शामंतक मणि

मृत ब्राह्मणपुत्र प्रदानंबु सिद्धिंचु। अर्जुनु सारथिवै यनेकाक्षौहिणी बलंबुल वधियिचेंदवु। मरियुनु ॥ 1177 ॥

शा. कृष्ण! नी वॉनरिंचु कार्यमुलु लॅक्किपन् समर्थुडें व-
धिष्णुंडैन विधात मूडु गुणमुल् दीपिंचु लोपिंचु रो-
चिष्णुत्वंबुन नुंडु नीवलन निस्सीमंबु नीरूपुनिन्
विष्णुन् जिष्णु सहिष्णु नीशु नमितुन् विश्वेश्वरुन् म्रॉक्केंदन् ॥ 1178 ॥

व. अनि विनिपिंचि, वीडुकॉनि, नारदुंडरिगॅ। अंत नॉक्कनाडु कृष्ण-सहितुलै, गोपकुमारुलडविकिं जनि, पसुल मेपुचु, नॉक्क कॉंड दंड निलायन क्रीड चेसिरि। अंदु ॥ 1179 ॥

कं. कॉंदरु गॉर्रियल मनुचुनु
गॉंदरु पालकुल मंचु गुटिलत्वमुनन्
गॉंदरु दॉंगल मनुचुनु
जॅंदि कुमारकुलु क्रीड जेसिरि तमलोन् ॥ 1180 ॥

शा. आलो दॉंगललो मयासुरसुतुंडाद्युंडु व्योमुंडु गो-
पालुंडै चनि मेषकल्पनलतो भासिल्लि क्रीडिंचु त-
द्बालव्रातमु नॅल्ल मॅल्लन चतुःपंचावशिष्टंबुगा
शैलांतर्गुहलोनिकिं गॉनि चनॅन् जौर्यं बवार्यंबुगन् ॥ 1181 ॥

का संग्रह करोगे; ब्राह्मण के मृत पुत्र को प्राणदान दोगे; और अर्जुन का सारथी बनकर अनेक अक्षौहिणी सेना का वध करने जा रहे हो। और··· ११७७ [शा.] हे कृष्ण! तुम जो कार्य संपन्न करते हो, ब्रह्मा भी उन्हें गिनने में समर्थ नहीं है। तुम्हारे ही कारण त्रिगुण (सत्व, रज, तम) प्रकाशमान रहते और लुप्त होते रहते हैं। तुम्हारा रूप असीम है। तुम विष्णु हो, जिष्णु (जयशील) हो, सहिष्णु (सहनशील) हो, ईश (अधिपति) हो, अमित (अनंत) हो; विश्वेश्वर हो, तुम्हें नमस्कार करता हूँ।" ११७८ [व.] यों स्तुति करके, विदा ले नारद चले गये। पश्चात् एक दिन गोपकुमार (ग्वाले) कृष्ण के साथ कानन में गये, गाय चराते हुए एक पहाड़ के समीप वे लोग 'निलायन' नामक खेल (आँखमिचौनी) खेलने लगे। उस क्रीड़ा में ११७९ [कं.] कुछ बालक बनावट में भेड़ बने, कुछ लोग पहरेदार बने, और कुछ लोग भेड़ चुरानेवाले तस्कर बने। ११८० [शा.] इतने में मयासुर का ज्येष्ठ पुत्र व्योमासुर गोपाल का वेष धरकर चोर बने गोपों में जा घुसा; उसने चार-पाँच को छोड़ शेष सब ग्वालों को, जो कल्पित भेड़ और चोरों का खेल खेल रहे थे, धीरे से पहाड़ी गुफा में ले जाकर छिपा दिया, उसका चौर्य (चोरी का काम) अवार्य रहा

व. इट्लु कोंडगुहलोन क्रमक्रमंबुन गोपकुमारुल निडि, यॆक्क पॆनुरात दद्द्वारंबु गप्पि, यॆप्पटि यट्लु वच्चिन ॥ 1182 ॥

उ. वीरुड् माधवुंडखिलवेदि निशाचरभेदि नव्वुतो
नौर ! निशाट ! दॊंगतनमच्चुपडॆन् नॆरदॊंगवौदु वा-
भीरुलनॆल्ल शैलगुह बॆट्टिति चिक्किनवारि बॆट्टरा
रार ! यटंचु बट्टि मृगराजु वृकाख्यमु बट्टुकैवडिन् ॥ 1183 ॥

उ. पंकजलोचनुंडॊडिसि पट्टिन शैलनिभासुराकृतिन्
बिंकमुतोड बॊंगि विडिपिंचुकॊनंग बलंबु लेमि लो
शंकिलि बिट्टु तन्नुकॊन. जक्कन ना रणभीमु व्योमुनिन्
गॊंकक कूल्चॆ नव्विभुडु कोयनि मिट सुपर्वुलार्वगन् ॥ 1184 ॥

आ. घोर दनुजु नेल गूल्चि पर्वतगुह
वातनुन्न ऱायि व्रय्य दन्नि
गुह चरिंचुचुन्न गोपालकुल गॊंचु
बलिदुंडु गॊल्लपल्लॆ करिगॆ ॥ 1185 ॥

(रोका नहीं गया।) ११८१ [व.] उसने एक-एक करके उन गोपकुमारों को गुफा के भीतर रखकर उसका द्वार एक बहुत बड़े पत्थर से ढक दिया, और चुपके से वापस आया। तब··· ११८२ [उ.] दानवों के वैरी, वीर, और सब कुछ जाननेवाले माधव (कृष्ण) ने हँसते हुए उससे कहा : "वाह रे ! निशाचर ! तुम्हारी चोरी खुल गई (मालूम हो गई); मारके का चोर बन गये हो ! ग्वालों को गुफा में छिपा दिया; आओ, बाकी बचे लोगों को भी ले जाओ, देखें !" —यों कहते हुए जैसे सिंह भेड़िये को पकड़ता है··· ११८३ [उ.] पंकजलोचन (कमलनयन) कृष्ण ने उसे झपटकर पकड़ लिया, तुरन्त उस असुर ने अहंभाव के साथ अपनी आकृति शैल (पर्वत) के समान फुला दी [फिर भी] अपने को छुड़ा लेने का बल न होने के कारण वह मन ही मन डर गया और छटपटाने लगा। तब उस रणभीम (वीर) व्योमासुर को प्रभु (कृष्ण) ने आगा-पीछा किये बिना मार गिराया; इसे देख आसमान पर के देव जोर से चिल्ला उठे। ११८४ [आ.] उस घोर राक्षस को [मारकर] नीचे गिरा देने के बाद कृष्ण ने पहाड़ी गुफ़ा के द्वार पर रखा गया बड़ा पत्थर लात मारकर तोड़ डाला, और भीतर के ग्वालों को लेकर वह बलवीर कृष्ण वज्र-गाँव में वापस चला गया। ११८५

अध्यायमु—३८

कंसुनि पंपुन नक्रूरुंडु बृंदावनमुनकुं जनुट

व. अंत ना रात्रि मथुरानगरंबुन नक्रूरुंडु वसियिंचि, नियतुंडयि, रेपकड रथंबॆक्कि, नंदगोकुलंबुनकुं बोवुचु, दॆरुवुन दनलो निट्लनियॆ ॥ 1186 ॥

उ. अट्टि तपंबु सेयबडॆ नॆट्टि चरित्रमु लब्धमय्यॆनो
यॆट्टि धनंबुलर्हुलकु नीवडॆनो तॊलुबामुनंदु ना
, यट्टि विवेकहीनुनकु नादि मुनींद्रुलु योगवृष्टुलन्
बट्टगलेनि यीश्वरुनि ब्रह्ममयुन् हरि जूडगल्गॊडिन् ॥ 1187 ॥

उ. सूरुलु दॊल्लि ये विभुनि शोभित पादनख प्रभावळि
जेरि भवांधकारमुल जिक्कक दाटुदुरट्टि देवुनिन्
वैरमुतोडनैन बिलुवन् ननुबंचि शुभंबु सेसॆ नि-
ष्कारणमैन प्रेम निदॆ कंसुनि बोलु सखुंडु गल्गुने ॥ 1188 ॥

म. इतडा कंसुनिचेत बंपुवडिनन् हिंसिप नेतॆंचिना-
डति दुष्टुंडनि चूचुनो सकल भूतांतर बर्हिमध्य सं-

अध्याय—३८

कंस की आज्ञा पाकर अक्रूर का वृंदावन आना

[व.] तब वह रात मथुरा नगन में विताकर राजा से नियुक्त हुआ अक्रूर, दूसरे दिन तड़के रथ पर चढ़ नंदगोकुल जाते-जाते रास्ते में अपने आप यों कहने लगा : ११८६ [उ.] "पिछले जन्म में [मुझसे] कौन सा तप बन पड़ा होगा; किस प्रकार का चरित [मैंने] बरता होगा, योग्य पात्रों को कौन-सा धन (दान में) दिया होगा [पता नहीं, फलत: इस जन्म में] मुझ जैसे विवेकहीन को उस ईश्वर, ब्रह्ममय-हरि का दर्शन संभव हो रहा है, जो आदिमुनींद्र योगदृष्टियों से [भी] प्राप्त नहीं कर सकते। ११८७ [उ.] विद्वज्जन अब तक जिस प्रभु के सुंदर चरण-नख की ज्योति पाकर भवांधकार (जनन-मरण रूपी संसार के अँधेरे) में फँसे बिना तर जाते थे, उस देव (कृष्ण) को वैरभाव से ही सही बुला लाने को मुझे भेजकर कंस ने [मुझ पर] निष्कारण प्रेम दिखाया और [मेरा] कल्याण किया; कंस जैसा मित्र कहाँ मिलेगा? ११८८ [म.] इधर कृष्ण, मालूम नहीं मुझे कंस की आज्ञा पर हानि पहुँचाने आया हुआ दुष्ट समझेंगे अथवा स्वयं समस्त भूतों के बहिरंतर्मध्य में (बाहर, भीतर, और मध्य में) बने रहने के कारण, सोचकर मुझे सज्जन ही समझेंगे, किस तरह

गतुडौटन् दलपोसि नन्नु सुजनुंगा जूचुनो यट्टि यु-
न्नति गाविचुनो येक्रियन् बलुकुनो नाभाग्यमेट्लुन्नदो ॥ 1189 ॥

व. अनि मरियुन्नु ॥ 1190 ॥

म. अलक भ्राजितमै सुधांशु निभमै हास प्रभोद्दाममै
जलजाक्षंबयि कर्णकुंडल विराजद्गंडमै युन्न या
जलजाताक्षु मुखंबु जूड गलुगुन् सत्यंबु वो नाकु ना-
वल दिक्केगुचुनुन्न वो वनमृग व्रातंबुली त्रोवलन् ॥ 1191 ॥

उ. मापटिवेळ नेनु जनि माधवु पादसमीपमंदु दं-
डा पतितुंडनैन नतडाशुग कालभुजंग वेग सं-
तापित भक्तलोक भय दारणमैन कराब्जमौदलन्
मोपि हसिंचि ना कभयमुन् गृपतोडुत नीयकुंडुने ॥ 1192 ॥

व. अनि मरियु, नक्रूरुंडनेक विधंबुल गोविंद संदर्शनंबु गोरुचु, नमंदगमन सुंदर स्यंदनारूढुंडै चनि चनि ॥ 1193 ॥

कं. मुंदट गनें घनचंदन, कुंदकुटज ताल साल कुरवक वट मा-
कंदन् नंदित बल गो, -विंदन् विकचारु णारविंदन् बृंदन् ॥ 1194 ॥

व. कनि, बृंदावनंबु दरियं जोच्चि, यंदु सायंकालंबुन नडविकि नेंड्रिगल मेतल वेंबडि दिगंबडि, राक चिविकन कुर्र कोडॆ पड्ड तंडंबुलं गानक

का भला करेंगे, या किस भाँति बातचीत करेंगे; समझ में नहीं आ रहा है। मेरा भाग्य कैसा है [जान नहीं पड़ता] ११८९ [व.] और ११९० [म.] अलकों (घुँघराले बालों) से अलंकृत, चंद्र-समान, मुस्कराहट से चमकता हुआ, कमल-समान नयनोंवाला, कर्णकुंडलों से शोभित गंडस्थल वाला, उस जलजाक्ष (कृष्ण) का मुख मैं सचमुच देख पाऊँगा; ये वनमृग (हिरन) दाईं ओर से मेरा रास्ता काट रहे हैं; [अच्छा शकुन हो रहा है।] ११९१ [उ.] संध्यासमय जाकर जब मैं माधव के चरणों पर दंडवत् गिरूँगा, तब वे तुरन्त अपना वह हस्ताब्ज, जो काल (मृत्यु) रूपी सर्प से उत्पीडित भक्तों का भय निवारण करनेवाला है, मेरे सिर पर रख, हँसकर कृपापूर्वक मुझे अभय दिये बिना रहेंगे क्या?" ११९२ [व.] इस तरह और भी अनेक प्रकारों से गोविंद के संदर्शन की आकांक्षा करता हुआ अक्रूर ने सुंदर रथ पर बैठ तेज़ी से चलकर ११९३ [कं.] अपने सामने बृंदा (व्रज) को देखा जिसने विकसित अरुण अरविंदों (कमलों) से तथा चंदन, कुंद, कुटज, ताल, साल, कुरवक, वट, माकंद के वृक्षों से बलराम और गोविंद को आनन्दित कर रखा था। ११९४ [व.] बृन्दावन के समीप में उसने गोपकों की, अपने बछड़ों को बुलाने की

पॊद, यिरुमु, मिरुंपल्लंबु लनक, तूरि, पारि, वॆंदकि, चीरॆडु गोपकुल याह्वान शब्दंबुलाकर्णिपुचु, गोमल घासखादन कुतूहलंबुल जिक्कि, मक्कुवल ग्रेपुलं दलंचि, तलारिपक, तमकंबुलं दमतम यंत नंभारवंबुलु सेयुचु, नूधंबुलु स्त्रविप बरुवुलिडु धेनुवुलकु नोसरिपुचु, सद्योजातंबुलगु तर्णकंबुल वहिंचिन सूतिकलु वॆनुदगुलुटवलन दामहस्तुलं चनु वल्लवुल मॆल्लन विलोकिपुचु, मंद यिरु गॆलंकुलं गळंकरहितुलं, पुलि, सिवंगि, वेगि लोनगु वालु मॆकंबुल मोत्तंबुलवलन नप्रमत्तुलै, कुठार कुंत शरासन-प्रमुखंबुलु धरियिचि, कावलि तिरुगुवारल गडचि, नानाविध सरस तृणकवळ खादनगरिष्ठलयि, गोष्ठंबुलु प्रवेशिंचि, रोमंथ लीलालस-लयिन धेनुवुलुनु, चन्नुलु गुडिचि तल्लुल म्रोल वॆल्लु रेगि ऋळ्ळुरुकु लेगलुनु, नॆदलयिन मोदवुल वयिकोनि, परस्पर विरुद्धंबुलयि ढीकोनि, कॊम्मुल युद्धंबुलु सलुपु वृषभंबुलुनु, नकुंठित बलंबुलं गंठरज्जुवुल दॆंचु कॊनि, पॊदलुरिकि, दाटि, तल्लुलं दूटि, कुडुचु तरपि दूडल धट्टिचि पट्टनोपक, ग्रद्दन वॆद्दलं जीरु गोपकुमारुलुनु, कॊडुकुल, मगल, मामल, मरदुल वंचिचि, पंचायुधभल्ल भग्न हृदयलयि, गृहकृत्यंबुलु मरचि,

---

पुकारें सुनी, जो संध्यासमय वनप्रांत में विस्तार से फैली हुई हरियाली में चरने जाकर लापता हो गये थे। वे गोपबालक झाड़ियों, झुरमुटों, टीलों और तराइयों में घुसकर, दौड़ लगाकर उनकी खोज कर रहे थे। कोमल घास चरने के कुतूहल में लगी गौएँ अपने बछड़ों पर के मोह के कारण थनों से दूध चुआती हुई, रँभाती हुई दौड़ने लगीं। अक्रूर उनके रास्ते से बचकर देखता चला। तत्काल ही पैदा हुए बछियों को कंधे पर उठाकर पीछे-पीछे दौड़ आनेवाली ब्यायी गायों की दमरी हाथ में लिए चलनेवाले चरवाहों का, अक्रूर अवलोकन करता गया। गोवृन्द के दोनों तरफ़ निष्कलंक पहरेदार कुठार, तीर-कमान, भाला, बरछी हाथ में लिये, अप्रमत्त होकर बाघ, तेंदुआ, चीता, जंगली सूअर आदि से रक्षा कर रहे थे। तरह-तरह की रसदार हरी घास खाकर बलिष्ठ हुई गायें गोष्ठों में प्रवेश कर रही थीं। वहाँ की खिरकों में बैठी गायें अलसाती जुगाली कर रही थी। दूध पीकर बछड़े माताओं के सामने चंचलता से उछल-कूद मचा रहे थे। उठी हुई (ऋतु-समय-प्राप्त) गायों पर चढ़नेवाले वृषभ (साँड़) अपने विरोधी से टकराकर सींगो से जूझ रहे थे। गले में बँधी रस्सी को बलपूर्वक तोड़कर, छलाँग मार, माता के पास दौड़कर उसे तंग कर दूध पी जानेवाले बछड़ों को रोकथाम कर हटाने में असमर्थ होकर ग्वालों के बालक बड़ों को पुकार-पुकारकर बुला रहे थे। गोप-कामिनियाँ मन्मथ के बाणों से भग्न-हृदयवाली होकर अपने पुत्र, पति, ससुर और

शंकिलक, संकेतस्थलंबुल गृष्णागमन तत्परलयि युन्न गोपकामिनुलुनु, गोष्ठप्रदेशंबुल गोवुलकुं ग्रेपुलु विडिचि, यॊड्डुचु, मरलं गट्टुचु, नीड्चुचुं, ग्रीडिचु गोपकुलुनु, गोखुर समुद्धूत करीष पराग पटलंबुलवलन नुल्लारि, दुलदुलनै, धेनु दोहनवेळा विकीर्ण पयोबिंदु संदोहपरंपरा संपादित पंकंबुलुनु, दोहन समय गोपवराकृष्ट गोस्तननिर्गतंबुलयि कलशंबुलंदु बडु क्षीरधारल चप्पुल्ळुनु, महोक्ष कंठ संस्पर्शन स्निग्धंबुलयिन मंदिर द्वार दारुस्तंभंबुल पॊंत नूतन जन विलोकन कुपितंबुलयि कराळिंचु सारमेयंबुलुनुं गलिगि, बलकृष्ण बाहुदंड प्राकार रक्षाविशेषण भूषंबयिन घोषंबु प्रवेशिंचि यंदु ॥ 1195 ॥

कं. जलजांकुशादि रेखलु, गल हरिपादमुल चॊप्पु गनि मोदमुतो
बुलकिंचि रथमु डिगि यु, -त्कलिकन् संतोषबाष्प कलिताक्षुंडै ॥ 1196 ॥

म. कनॆ नक्रूरुडु पद्मनेत्रुलनु रंगद्गात्रुलन् धेनु दो-
हनवाटी गतुलन्नलंकृतुल नुद्यद् भासुलन् बीत नी-
ल नवीनोज्ज्वल वासुलन् गुसुममाला धारुलन् धीरुलन्
वनिताकामुल गृष्णरामुल जगद्वंद्य क्रमोद्दामुलन् ॥ 1197 ॥

देवरों को झाँसा देकर, गृहकृत्य छोड़, निर्भय हो संकेत-स्थलों पर जाकर कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर दिखाई दीं। गोशालाओं में गोपालक बछड़ों को चुरवाकर (दूध पीने छोड़कर), फिर उन्हें रोकते, घसीटकर [खूँटी से] बाँधते क्रीड़ा कर रहे थे। गायों के खुरों से ऊपर उछाली हुई गोबर की धूल सब जगह फ़ैलकर दुहते समय छिटकी दूध की बूँदों से मिलकर कीचड़ बनी दिखाई दे रही थी। दूध दुहते समय गोपों से निचुड़ी हुई क्षीर-धाराएँ उनके कलशों में गिरकर शब्द कर रही थीं। मंदिरों (मकानों) के द्वारों पर लगे काठ के स्तंभों के पास, जो वृषभों के कंठस्पर्श से स्निग्ध बन गये थे, नूतनजनों को देख कुपित हुए कुत्ते गुर्रा रहे थे। बलराम और कृष्ण के बाहुदंड रूपी प्राकार (कोट) से सुरक्षित उस घोष में अक्रूर जा प्रविष्ट हुआ। ११९५ [कं.] वहाँ उसने जलज, अंकुश आदि रेखाओं से लक्षित हरि (कृष्ण) के चरण-चिह्नों से सजा हुआ मार्ग देखा; वह मोद से पुलकित हो रथ से उतरा। उत्कंठा के कारण उसके नेत्र आनंदाश्रुओं से भर आये। ११९६ [म.] अक्रूर ने दूध दुहने के कोष्ठ में जाकर राम और कृष्ण को देखा जो पद्मनेत्र वाले थे; जिनके गात्र (शरीर) कांतिमान थे; गायगोठ में दूध दुहनेवालों के अनुकूल वेष बनाये हुए थे; पीले और नीले वस्त्रों में चमक रहे थे; कुसुम-माला-धारी और धीर थे; वनिताओं के चाहक थे और जगद्वंद्य पराक्रमी थे। ११९७ [कं.] [उन्हें] देखकर उनके चरणों पर विनयपूर्वक सिर

कं. कनि वारल पादमुलकु
विनयंबुन म्रॊक्कि भक्ति विवशुंडगुचुन्
दनुवुन बुलकांकुरमुलु
मॊनयग नानंदबाष्पमुलु जडि गुरियन् ॥ 1198 ॥

व. तदनंतरंब ॥ 1299 ॥

कं. अक्रूरुलयिन जनुल न, -वक्रगतिन् गाचु भक्तवत्सलुडंत-
यक्रूरु गौगिलिंचॆनु, जक्रांकित हस्ततलमु साचि नरेंद्रा ! ॥ 1200 ॥

व. मरियु, नक्रूरुंडु बलभद्रुनिकि प्रणतुंडयिन, गौगिलिचि, चॆट्टु पट्टुकॊनि कृष्णसहितुंडयि, गृहंबुनकुं गॊनिपोयि, मेलडिगि, गद्दियनिडि, पाद प्रक्षाळनंबु चेसि, मधुपर्कंबु समर्पिचि, गोवु निच्चि, यादरंबुन रसवदन्नंबु वॆट्टिचि, तांबूल गंधमाल्यंबुलोसंगि। अय्यवसरंबुन नंदुंडुप विष्णुंडयिन यक्रूरुन किट्लनियॆ ॥ 1201 ॥

कं. चॆलियलु मॊऱयिड नल्लुर
खलुडयि पॊरि गॊनिन यट्टि कंसुडु व्रतुकं-
गलदे मनिकि दशार्हुल
किलपै मी सेमंमिक नेमनि यडुगन् ॥ 1202 ॥

झुकाया; वह भक्ति से परवश हुआ, शरीर में पुलकांकुर उग आये, और आनंद के बाष्पों (आँसू) की झड़ी लग गई। ११९८ [व.] उसके बाद ११९९ [कं.] हे नरेंद्र ! भक्तवत्सल (कृष्ण) ने, जो अक्रूर (साधु) जनों की रक्षा निस्संदेह रूप से करनेवाला है, अपने चक्रांकित हस्त फैलाकर अक्रूर को गले से लगाया। १२०० [व.] तब, जब अक्रूर ने बलभद्र को प्रणाम किया तो उसने उसका आलिंगन किया और बाँह पकड़कर कृष्ण-समेत घर बुला ले गया। फिर कुशल-क्षेम पूछ, सुखासीन कर, पैर धोकर मधुपर्क समर्पित किया। गाय देकर आदरपूर्वक रस-भरे अन्न खिलाये। पश्चात् तांबूल देकर सुगंध और पुष्पमालाओं से सम्मानित किया। उस अवसर पर, उपविष्ट अक्रूर से नंद ने यों कहा··· १२०१ [कं.] "जब तक वह दुष्ट कंस जीवित रहेगा, जिसने बहिन की गुहार अनसुनी कर अपने भानजों का वध कर दिया, तब तक हम यादवों का इस भूतल पर क्षेम कहाँ रहेगा ? [ऐसी दशा में] हमारे कुशल-क्षेम का क्या पूछना है ? १२०२

अध्यायमु—३९

व. अनि पलिकॆ। अंत नक्रूरुंडॊक्क पर्यंकंबुन सुखोपविष्टुंडै युंड हरि यिट्लनियॆ ॥ 1203 ॥

म. शुभमे नीकु बमोदमे सखुलकुं जुट्टालकुन् सेममे
यभयंबे प्रजकॆल्ल गोत्रजुल कत्यानंदमे माम मु-
क्तभयुंडे वसुदेव देवकुलु तत्कारागृहंबंदु म-
त्प्रभवव्याज निबद्धुलै ब्रतिकिरे प्राणानिलोपेतुलै ॥ 1204 ॥

म. नॆंडि नेडिक्कड नीवु राग वगतो नीतोड नेमैन ना
कॆरुगं जॆप्पुमटंचु जॆप्परु गदा येमंडु रा वार्त ये
तॆंडगुन् लेदनि डस्सिरो वगचिरो दीनत्वमुं जॆंदिरो
वॆरतो ना तलिदंड्रु लॆट्लु पडिरो विन्पिपु मक्रूरका ! ॥ 1205 ॥

व. मरियु, नी वेमिकारणंबुन वच्चितनि, हरि पलिकिन, नतंडु कंसुनिकि नारदुंडु वच्चि चॆप्पिन वैरानुबंध प्रकारंबुनु, गंसुंडु देवकी वसुदेवुल वधियिपं गमकिंचि, मानिन तॆरंगुनु, धनुर्यागंबु पेरु चॆप्पि पुत्तॆंचिन

अध्याय—३९

[व.] यों कहने के बाद मंच पर सुखासीन अक्रूर से हरि (कृष्ण) ने इस प्रकार पूछा : १२०३ [म.] "तुम्हारा तो कल्याण (शुभ) है न ? भाई-बन्धु कुशल-क्षेम से हैं न ? प्रजा निर्भय रहती है न ? बिरादरीवालों को अत्यंत आनंद मिल रहा है न ? हमारे मामा के सब भय दूर हुए होंगे ! देवकी और वसुदेव, जो मेरे जन्म के कारण कारागार में निबद्ध हुए, प्राणों के साथ जीवित हैं न ? १२०४ [म.] हे अक्रूर ! जब तुम यहाँ आ रहे थे तो उन्होंने मुझसे कहने के लिए कोई दुःख की बात कह भेजी है क्या ? वे लोग क्या कह रहे हैं ? यहाँ से कोई वार्ता (समाचार) नहीं पहुँच रही, इस कारण से लोग दुखी और दीन-हीन हो रहे हैं न ? मुझे [स्पष्ट] बता दो, मेरे माता-पिता किस प्रकार भयभीत हो पड़े हुए हैं ? १२०५ [व.] तुम यहाँ किस कारण से आये हुए हो ?" —हरि के इस प्रकार पूछने पर अक्रूर ने सारा वृत्तांत सुनाया। किस प्रकार नारद आकर कंस को वैर-विरोध की बात कह गये, उस पर कंस किस प्रकार देवकी-वसुदेव का वध करने पर उतारू हुआ, फिर किस प्रकार विरत हुआ, और किस प्रकार उसने धनुर्यज्ञ के बहाने राम-कृष्ण को बुला लाने के लिए अपने को भेजा है, यह सारी बातें अक्रूर ने [सविस्तार] कह सुनायीं। इस पर बलराम

प्रकारंबु नॆर्व्रिगिचिन, रामकृष्णुलु नगिरि। अंत दम्मुं बरिवेष्टिंचिन नंदादि गोपकुल जूचि कृष्णुंडिट्लनियॆ ॥ 1206 ॥

शा. भूनाथुंडु मखंबु जूड बिलुवं बुत्तेंचिना डव्विभुं
गानं बोवलॆ बालु नॆय्यि पॆरुगुल् गट्नंबुलुन् गानुकल्
मी नेर्पॊप्पग गूडबॆट्टुडु तगन् मी मी निवासंबुलन्
यानंबुल् गॊनिरंडु पोडु मथुरा यात्राभिमुख्यंबुगन् ॥ 1207 ॥

व. अनि नियमिंचॆ। अंत नक्रूरुंडु मथुरकु वारि गॊपोयॆडि ननि यॆर्व्रिगि, व्रेतलु गलंगि ॥ 1208 ॥

उ. हरि नव्वुल् हरिमाटलुन् हरिमनोज्ञालापमुल् लीललुन्
हरि वेड्कल् हरिमन्ननल् हरि कराब्जालंबनाह्वानमुल्
हरिणी लोचनुलंदरुन् दलचुपायं बॆट्लंको यंचु लो-
नॆरियन् मुच्चटलाडिरंत गमुलॆ येकांत गेहंबुलन् ॥ 1209 ॥

व. मर्रियु दमलो निट्लनिरि ॥ 1210 ॥

उ. मेटि गृहस्थु ब्रह्मयनि मिक्किलि नम्मिति मम्म चूड ने-
पाटियु लेदु माकु बरिपालकुडैन सरोजनेत्रु नि-

और कृष्ण हँस पड़े। फिर अपने को घेरकर बैठे हुए नंद आदि गोपों से कृष्ण ने यों कहा— १२०६ [शा.] "राजा ने यज्ञ देखने के लिए हम लोगों को बुला भेजा है, हमें उन्हें देखने जाना होगा, तुम लोग अपने-अपने घरों मे दूध, दही, घी, [तरह-तरह के] उपहार अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार इकट्ठा करो; रथ और सवारियाँ तैयार रखो, चलो, हम सब मथुरा की यात्रा करने जायेंगे।" १२०७ [व.] इस प्रकार [कृष्ण ने] नियमन किया। यह जानकर कि अक्रूर उन्हें मथुरा बुला ले जाने आया है, ग्वालिनें व्याकुल हुईं। १२०८ [उ.] हरि की मुस्कुराहटें, हरि की बातें, हरि के मनोज्ञ संभाषण और लीलाएँ, हरि के विनोद, हरि के [दिये] सम्मान, हरि के कर-कमलों के आसरे और आह्वान —इन सबका मनन करते हुए हरिणीलोचन (हिरन की-सी आंखवाली) गोपिकाएँ अपने घरों में इकठ्ठी होकर एकांत में मन भर-भरकर चर्चा करती रहीं; वे कृष्ण को रोक रखने का उपाय सोचने लगीं। १२०९ [व.] उन्होंने आपस में यों कहा— १२१० [उ.] "हे माई! हम लोगों ने विश्वास किया कि ब्रह्मा श्रेष्ठ गृहस्थ है; पर देखने पर [लगता है] ऐसा किंचित् भी नहीं है। हमारे रक्षक सरोजनेत्र-कृष्ण को इधर [हमारे पास] रहने नहीं दे रहा है, उसे दूसरी जगह जाने का विधान रचकर [ब्रह्मा] वच्चों

च्चोट वसिपनीक नीक चोटिकि बो विधियिच पिन्न बि-
ड्डाटलु चेसॅ नी सुखमुलक्कट ! भारतिकॅन जॅप्परे ॥ 1211 ॥

व. अनि विधि दूरुचु, मदनतापायत्त चित्तलै ॥ 1212 ॥

उ. रम्मनि चीरि नंतनॅ पुरंबुन केगॅडु गानि नन्नु नी
कॉम्मलु नम्मिनार मरु कोलल कग्गमु चेसि पोवगा
मुम्मर मैन तापमुन म्रॉग्गुदुरो यन डंबुजाक्ष डा
यम्मलु गोपवृद्धुलु प्रयाणमु वल्दन रैरि चॅल्लरे ! ॥ 1213 ॥

शा. अक्रूरुंडनि पेरु पॅट्टुकॉनि ने डस्मन्मनोवल्लभुं
जक्रिन् माकड वापिकॉंचु नरुगन् जच्चिचि येतेंचि ना
डक्रूरुंडट क्रूरुडीतडु निजंबक्रूरुडौनेनि नि-
र्वक्रत्वंबुन गृष्णु बॅट्टि तनत्रोवं बो विचारिंपडे ॥ 1214 ॥

उ. फुल्लसरोजलोचनलु पूर्ण सुधांशुमुखुल् पुरांगनल्
मॅल्लनॅ यॅल्लि पट्टणमु मेडलनुंडि सुवर्ण लाजमुल्
चल्लग वारि जूचि हरि संगति सेयदलंचु गाक व्रे-
पल्लॅ वसिचु मुद्दियलपै बड नेल तलंचु नक्कटा ! ॥ 1215 ॥

का खेल खेल रहा है; हाय ! उसकी यह दुष्टता [कम से कम] भारती (सरस्वती) को तो बतावें।" १२११ [व.] यों कहकर विधि (ब्रह्मदेव) को कोसती हुई उन गोपियों के चित्त मदन (कामदेव) के ताप से भर गये। १२१२ [उ.] [कंस के] बुलाते ही यह अंबुजाक्ष-कृष्ण मथुरापुरी जाने लगा; किंतु उसने यह नहीं कहा कि ये युवतियाँ मुझ पर विश्वास रखती हैं, इन्हें यदि मैं मन्मथ के बाणों का शिकार बनाकर जाऊँ तो ये तीव्र संताप से गिर (मर) जाएँगी। अरी सखी ! [देखो तो] इन गोपवृद्धों ने और इन गोपवृद्धा माताओं ने भी इस प्रयाण को रोका नहीं (अस्वीकार नहीं किया)। १२१३ [शा.] "अक्रूर" नाम रखकर [यह सज्जन] हमारे मनोवल्लभ चक्री (कृष्ण) को हमारे पास से छुड़ाकर ले जाने की सोचकर आया हुआ है, भला ! यह अक्रूर कहलाता है, पर नहीं, यह क्रूर है। यदि वास्तव में अक्रूर होता तो सिधाई से कृष्ण को यहीं रहने देकर, अपनी राह जाने की नहीं सोचता ? १२१४ [उ.] [कल के दिन जब हरि मथुरापुरी में प्रवेश करेगा तो] नगर की अट्टालिकाओं पर से फुल्ल-सरोज-लोचनी (विकसित कमल-नयनी) और पूर्ण-सुधांशु-मुखी (पूर्ण चंद्रमुखी) पुरांगनाएँ कृष्ण पर सुवर्णलाजा बरसाएँगी, उन्हें देख हरि [रीझकर] उनकी संगति की अपेक्षा करेगा; भला, व्रजगाँव में रहनेवाली हम ललनाओं पर वह गिरना (संभोग करना) क्यों चाहेगा ! १२१५ [कं.] परसतियों (परस्त्रियों)

कं. पुरसतुल विलोकनमुलु, सरसालापमुलु नर्म संभोगमुलुन्
मरगि हरि मनल नॊल्लडु, नरवरुलो यम्म ! नूतनप्रियुलु गदे ॥1216॥

कं. पुट्टॆन्नडु हरि नॆरुगनि
पट्टण सुंदरुल कितनि बति जेसि कडुन्
दट्टपु विरहाग्नुलकुनु
गट्टिडि दवंबु घोषकांतल वॆदकॆन् ॥ 1217 ॥

म. हरि नेला कॊनिपोयॆ दरचु मन मा यक्रूरु ब्रार्थितमा
हरि बोनीकुडु निल्परे यनुचु नेडर्चितमा वेल्पुलन्
हरि पादंबुल कड्डमुल् वडुदमा हा दैवमा ! यंचु ना
तरुणुल् कॊप्पुलु जीरॆलुन् मरचि कंदर्पज्वर-भ्रांतलै ॥ 1218 ॥

म. उविदल् सिग्गुलु मानि कन्गवल नीरोडोड वर्षिपगा
विवशत्वंबुलतो गपोलतट संविन्यस्त हस्ताब्जलै
पवनोद्धूत लताभलै समं गृपं बालिपु गोविंद ! मा-
धव ! दामोदर ! यंचु नेड्चिरि सुजातंबैन गीतंबुलन् ॥ 1219 ॥

व. अंत मरुनाडु सूर्योदयकालंबुनं दनतोड वयनंबुनकु गमकिंचि नडचु गोपिकलनु, मरल वत्तुननि दूतिकामुखंबुन निर्वर्तिंचि, कृष्णुंडु शकटंबुलंबु

की चितवने, सरस-सल्लापों और नर्मसंभोगों में आसक्त होकर हरि हमें चाहेगा नहीं; अरी माई ! राजा लोग तो नूतन-प्रिय होते है न ? १२१६ [कं.] जन्म के समय से लेकर अब तक जिस हरि को नगरवासी सुंदरियों ने जाना ही नहीं, उसे (कृष्ण को) उनके स्वामी (पति) बनाकर क्रूर दैव ने हम घोष-कांताओं को विरहाग्नि में झोलने के निमित्त ढूंढ़ निकाला है। १२१७ [म.] क्या हम उस अक्रूर से विनती करें कि वह हरि को [यहाँ से] ले न जाय ? या हम देवताओं की अर्चना कर यह अभ्यर्थना करें कि वे हरि को जाने से रोक दें ? अथवा "हा दैव" कहकर हरि के चरणों पर गिर उन्हें रोक दें ?" इस प्रकार कहते हुए वे तरुणियाँ [छूटे हुए] केशपाश तथा साड़ियों को भी भूलकर काम-ज्वर के कारण विभ्रांत हुईं। १२१८ [म.] उन युवतियों ने लाज छोड़, नेत्रों से अविरल अश्रुवर्षा करते हुए, विवशता के कारण हस्ताब्ज (करकमल) कपोलों पर टेककर, पवन से उड़ाई गई लताओं की तरह [काँपते हुए]— "हे गोविंद ! हे माधव ! हे दामोदर !" कहकर उत्तम गीतों में रुदन किया। १२१९ [व.] तब दूसरे दिन सूर्योदय के समय अपने साथ-साथ पयान के लिए गमककर (उत्साहित हो) निकल चलती हुई गोपिकाओं को दूतियों के मुँह (द्वारा) "मैं वापस आऊँगा", कहकर [संदेशा भेज] कृष्ण ने उन्हें निवर्त किया (वापस भेज

गानुकलुनु, गोरसंबुलु निडुकोनि, नंदादुलैन गोपकुलु वेनु तगुल नक्रूरचोदितंबैन रथंबेक्कि, मथुराभिमुखुंडयि चनु समयंबुन ॥ 1220 ॥

चं. अदे चनुचुन्नवाडु प्रियु डल्लदे तेरदे वैजयंति य-
ल्लदे रथघोटकांघ्रि रजमा देस मार्गमु चूडुडंचु लो
नोंदवेडि मक्कुवन् हरिरथोन्मुखलै गमुलै व्रजांगनल्
कदलक निल्चि चूचिरट कन्नुल कब्बिनयंत दूरमुन् ॥ 1221 ॥

व. इट्लु बलभद्र कृष्णाक्रूरुलु चनि चनि ॥ 1222 ॥

कं. अवलोकिंचेनु कृष्णुंडु
प्रविमल कल्लोलपवन भासित जन्य-
न्नवसन्न पापसैन्यन्
गविजन मान्यन् गळिंदकन्यन् धन्यन् ॥ 1223 ॥

व. कनि तत्काळिंदियंदु बरिक्षुण्ण मणिगण समुज्वलंबुलगु जलंबुलु द्रावि, तरुसमूह समीपंबुन रामसहितुंडयि, कृष्णुंडु रथंबु नेक्के। अंत नक्रूरुंडु वारलकु म्रोक्कि, वीड्कोनि, काळिंदी ह्रदंबु सोच्चि, विधिपूर्वकंबुगा वेदमंत्रंबुल जपियिंचुचु ॥ 1224 ॥

दिया)। स्वयं अक्रूर के चलाये रथ पर बैठकर कृष्ण ने मथुरा की ओर प्रस्थान किया। नंद आदि गोपालक गोरस और उपहार गाड़ियों पर रखकर उसके पीछे-पीछे चले। उसके चलते समय… १२२० [चं.] "वह देखो, प्रिय जा रहा है, वही रथ है, [उधर] वही पताका है, वह देखो, घोड़ों के खुरों से मार्ग में धूल [उड़ रही है]", यों कहती हुई व्रजांगनाएँ हृदयों में उभरती हुई प्रीति के कारण हरि की दिशा में मुँह करके, अपनी जगह निश्चल खड़ी हो, जितनी दूर दृष्टि मिल पाती, देखती रह गईं। १२२१ [व.] इस प्रकार जब बलराम, कृष्ण और अक्रूर चलते रहे [तो रास्ते में]… १२२२ [कं.] कृष्ण ने, विमल (स्वच्छ) तरंगों पर के पवन से सुख देनेवाली, [भक्तों के] पाप रूपी सेना को नष्ट करनेवाली, कविजनों के लिए सम्मान्या, कलिंदकन्या तथा धन्या-यमुना का अवलोकन किया। १२२३ [व.] पश्चात् कृष्ण ने [यमुना में उतर] मणिचूर्ण के समान प्रकाशमान जल पी लिया, फिर तरु (वृक्ष) समूह के पास स्थित रथ पर बलराम के साथ जा बैठा। तब अक्रूर ने उन्हें सिर नवाकर विदा माँग ली और यमुना के जल में पैठकर विधि-पूर्वक वेदमंत्र जपता हुआ… १२२४

अक्रूरुंडु यमुनन् रामकृष्णुल दर्शिंचि नुतिचुट

उ. स्ननमु चेसि चेसि नदि चल्लनि नीटनु रामकृष्णुलन्
मानुग जूचि वारु रथमध्यमुपै वसियिंचियुन्न वा-
री नदि नीटिलोपलिकि नेप्पुडु वच्चिरटंचु लेचि मे-
धानिधि चूचॆ वारिनि रथस्थुल भक्त मनोरथस्थुलन् ॥ 1225 ॥

व. कनि वेॆरगुपडि ॥ 1226 ॥

शा. कंटिन् मुन्नु रथंबुपै जलमुलो गंटिन् दुदिन् ग्रम्मरन्
गंटिन् दौंटि रथंबुमीद निदॆ यी कल्याणचारित्रु ले
वेंटन् दोचिरि रेंडु दिक्कुल मनोबिभ्रांतियो नीटिलो-
नुंटाश्चर्यमु चूतु नंचु मरियुन्नूंहिंचि मग्नांगुडै ॥ 1227 ॥

उ. पोषित बांधवुंडु यदु पुंगवु डा जलमंदु गांचॆ स-
द्भाषु सहस्रमस्तक विभासित भूषु नहीशु भूमि भृ-
द्वेषु गृपाभिलाषु ब्रतिवीर चमू विजिगीषु नित्य सं-
तोषु नरोषु निर्दळितदोषु ननेकविशेषु शेषुनिन् ॥ 1228 ॥

व. मरियु नीलांबर संयुतुंडुनु, सिद्धोरगादि सन्नुतुंडुनुनै योप्पु नप्पापरुनि दप्पक कनुंगीनि ॥ 1229 ॥

अक्रूर का यमुना-जल में राम-कृष्ण का दर्शन कर उनकी स्तुति करना

[उ.] नदी के शीतल जल में [उसने] स्नान किया। उसने जल में मनोहर [आकृतिवाले] राम और कृष्ण को देखकर सोचा कि ये लोग [अभी-अभी] रथ पर बैठे हुए थे, फिर नदी के जल में कब आये होंगे। फिर उठकर उस बुद्धिमान ने देखा तो वे भक्त-मनोरथवासी रथ पर ही दिखाई दिये। १२२५ [व.] उन्हें देख वह भौंचक रह गया। १२२६ [शा.] "पहले इन्हें मैंने रथ पर देखा, फिर जल में देखा, फिर दूसरी बार पहले जैसा रथ पर ही देखा, [समझ में नहीं आता] ये शुभ-चरित्रवान (राम और कृष्ण) किस प्रकार दोनों दिशाओं में दिखाई दिये! यह मेरे मन की विभ्रांति (भ्रम) होगी। इनका जल में रहना आश्चर्यजनक है! फिर एक बार देखूंगा" —यों ऊहा करके [अक्रूर ने] डुबकी लगाई। १२२७ [उ.] बंधुपोषक (बंधुस्नेही) और यादवश्रेष्ठ अक्रूर ने जल में उस आदिशेष को देखा जो सहस्र मस्तकों (फणों) से विभूषित है, सर्पराज है, सद्भाषी और भूमिभार ढोनेवाला है, दयालू है, शत्रु-सेना-विजेता है, नित्यसंतोषी और शांतमना है, पापहारी और अनेक विशेषताओं से विभूषित है। १२२८ [व.] अक्रूर ने भलीभांति देखा कि वह नाग-

सी. आ भोगि भोग पर्यंकमध्यंबुन वलनोप्पु पच्चनि वलुववानि
मेघंबुपैनुन्न मॅरुगु चंदंबुन नुरमुन श्रीदेवि यॉप्पुवानि
मुसरु तेट्टुलु विव्व मुख चतुष्कमु गल तनयुडाडेंडि बोड्डु तम्मि वानि
कदलिन बहु पदक्रम विशेषंबुल रवमुचूपेंडि नूपुरमुलवानि

आ. जलजगर्भ रुद्र सनक सनंदन
सद्द्विजामर प्रशस्यमान
चरितुडैनवानि सौंदर्यखनियैन
वानि नॉक्क पुरुषवर्यु गांचि ॥ 1230 ॥

व. मरियु, जारु लक्षणलक्षित नख पाद गुल्म जानु जंघोरु कटि नाभि मध्योदरुंड्नु, सादरुंड्नु, श्रीवत्स कौस्तुभ वनमालिका विराजित विशाल वक्षुंडुनु, बुंडरीकाक्षुंडुनु, शंख चक्र गदा पद्म हस्तुंडुनु, सत्वगुण प्रशस्तुंडनु, ब्रह्मसूत्र कटिसूत्र हार केयूर कटक कंकण मकरकुंडल किरीटादि विभूषणुंडुनु, भक्तजन पोषणुंडुनु, सुंदर कपोल फाल नासाधर वदन कर्णुंडुनु, नील नीरदवर्णुंडुनु, गंबुकंधरुंडुनु, करुणागुण बंधुरुंडुनु, ब्रह्लाद नारद सुनंद नंद प्रमुख संभावितुंडुनु, श्रीपुष्टि तुष्टि कीर्ति कांती लोर्जा

राज नीलांबर ओढ़े था और सिद्ध, उरग आदि उनकी स्तुति कर रहे थे। १२२९ [सी.] उसने शेषनाग की शय्या के बीच एक ऐसे पुरुषवर को पाया जो अत्यंत शोभायमान पीतांबर ओढ़े हुए था, मेघ के ऊपर चमकनेवाली बिजली के समान श्रीदेवी जिसके वक्ष पर विराजमान थी, जिसके नाभिकमल में चतुर्मुख-पुत्र (ब्रह्मा) भिनकते भँवरों के साथ खेल रहा था, जिसके पैरों के नूपुर पादचलन के साथ मधुर-स्वर से बज रहे थे; [आ.] ब्रह्मा, रुद्र, सनक-सनंदन, द्विज और अमर (देवता) जिसके चरित की प्रशंसा कर रहे थे, और जो सौंदर्य की खान बना हुआ था। १२३० [व.] अक्रूर ने उस परमेश्वर को सिर नवाया, जिसके नख, पद (पैर), टखने, घुटने, जाँघें, कटि, नाभि और पेट सुंदर लक्षणों से लक्षित (अंकित) थे; जिसका विशाल वक्षस्थल श्रीवत्स, कौस्तुभ और वनमालिका से विराजमान था; जो पुण्डरीकाक्ष (कमललोचन) था; जिसके हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभित थे; जो सत्त्वगुणसंपन्न था; जो ब्रह्मसूत्र, कटिसूत्र (कमरबंद), हार, केयूर (बाजूबंद), कटक-कंकण, मकर-कुंडल, किरीट आदि आभूषणों से सजा हुआ था; जो भक्तजनों का पोषक था; जिसके कपोल, फाल, नासा, अधर, वदन (मुँह) और कर्ण (कान) अत्यंत सुंदर थे; जिसका कंठ शंख-सा था; जो करुण रस से परिपूर्ण था; जो प्रह्लाद, नारद, सुनंद, नंद आदि से संभावित (सम्मानित) था; श्री (लक्ष्मी) पुष्टि, तुष्टि, कीर्ति, कांति, इला (बुद्धि), ऊर्जा (बल), विद्या, अविद्या,

विद्याविद्या शक्ति मायादि सेवितुंडुनुनै यॊप्पु नप्परमेश्वरुनकु नक्रूरुनिक, भक्ति संभ्रमंबुलग्गलंबुग गद्गदकंठुंडै, दिग्गनं गरंबुलु मुकुळिंचि यिट्लनि विनुतिंचॆ ॥ 1231 ॥

अध्यायमु–४०

दंड. श्री मानिनी मानचोरा ! शुभाकार ! वीरा ! जगद्धेतुहेतु प्रकारा ! समस्तंबु नस्तंगतंबै, महालोल कल्लोल मालाकुलाभील पाथोनिधि गूलगा बालकेळीगति देहि, नारायणाख्यं बटुख्याति शोभिल्लु नी नाभिकंजंबुलो लोकपुंजंबुलं बन्न विन्नाणियै मन्न या बम्म युत्पन्नुडय्यॆं गदा, पात्रकाकाश वातावनीवार्य हंकार माया महामानसाद्रुल् हृषीकाबुलुन् लोकमुल् लोक बीजंबुलुन् नित्य संदोहमै, नी महादेहमंदुल्लसिंचुन् वसिंचुन् नशिंचुन् जडत्वंबु लेकात्मयै यॊप्पु नी यॊप्पिदंबॆल्ल नो चॆल्ल ! चॆल्लन् विचारिंप वारॆंत वारॆंतवारेन, मायाद्रुलुन् मायतो गूडि क्रीडिंचु लोकानुसंघात यी धात निर्णेतये, नी कळाराशिकिन् गोवरंभोजगर्भादु- लध्यात्मलंदुन्न शेषाधि भूतंबुलंदुन्न नेकाधि दैवंबुलंदुन् सदा साक्षिवै

शक्ति, माया आदि जिसकी सेवा में लगे थे। अक्रूर के हृदय में जब भक्ति और संभ्रम तीव्र हुए तो उसने, गद्गद कंठ से, मुकुलित करों (जुड़े हाथों) से इस प्रकार विनती की : १२३१

अध्याय–४०

[दंडक] हे मानिनीमानचोर (रूठी स्त्री का मान हरनेवाले) ! शुभाकार ! हे वीर ! जगत के लिए कारण बने रहनेवाले ! समस्त जग विनष्ट होकर जब कल्लोल-मालाओं से आकुल और महाभयंकर सागर में गिर जायगा तब तुम बच्चों के खेल की भाँति तिरते रहकर नारायण के नाम से विख्यात होकर शोभित रहते हो। तुम्हारे नाभिकमल में लोकरचना में निपुण वह ब्रह्म उत्पन्न हुआ है। अग्नि, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, अहंकार, माया, महामानस, इंद्रिय, लोक और लोक के बीज यह समस्त सामूहिक रूप से तुम्हारी महाकाया (देह) में उल्लसित् होता, वास करता और विनष्ट हो रहता है। जडत्व-रहित हो, एकात्म के रूप में विलसनेवाले तुम्हारी शोभा को हाय ! कितने ही महान् क्यों न हों, कौन कूत सकते हैं ? तुम्हारी कलाराशि का निर्णायक क्या यह माया हो सकती है ? [अथवा] माया के साथ मिलकर क्रीडा करनेवाला, लोकों का अनुसंधाता (रचनेवाला) यह ब्रह्मा हो सकता है ? ब्रह्मा आदि कुछ लोग कहते हैं कि अध्यात्मों मे, अधिभूतों में, अनेक अधिदैवतों में तुम सदा साक्षी बनकर

युंदुवंचुन्, दबंतर्गत ज्योति वीशुंडवंचुन्, त्रयी पद्धतिन् गोंदरिंद्रादि देवाभिधानंबुलन् निक्कमोक्कंडवंचुन्, मरि गोंदरारूढकर्मंबुलं द्रुंचि, संसारमु द्रेंचि, सन्यस्तुलै मिचि, विज्ञानचक्षुंडवंचुन्, मरि बंच-रात्रानुसारंबुनं दन्मयत्वंबुतो गोंदरी वात्मयंचुन्, मरि गोंद रा वासुदेवादि भेदंबुलन् नल्वुरै चेल्वु वारितु वंचुन्, मद्रि मोवु नारायणाख्युंड-वंचुन्, शिवाख्युंडवंचुन्, मरिन् बेक्कु मार्गंबुलन् निन्नु नग्गितुरग्गेमि ग्रेरुल् पयोराशिने रासुलै कूडु क्रीडन्, विशेषंबुलेल्ल नशेषंबुलै डिंदि, नी यंदनूनंबु लीनंबुलौ, नेक राकेंदुबिंबु कुंभांतराळंबुलं बिबितंबैन वेरुन्नदे, यंत्र नेला घटांतर्गताकाशमुल् तद् घटांतंबुलं देकमौ रेख लोकावधिन् वीकने पोकलं बोक येकाकिवै युंडुदीशा! कृशानुंडु नम्मोमु (सोमुंडु) भानुंडु कन्नुल्, दिशल् कर्णमुल्, भूमि पादंबु, लंभोनिधुल् गुक्षि, शल्यंबु लद्रुल्, लता सालमुल् रोममुल्, गालि प्राणंबु, बाहुल् सुरेंद्रुल्, घनंबुल् कचंबु, लुनभोवीथि नाभिप्रदेशंबु, रेलुं बगळ्ळुन् निमेषंबु, लंभोज-गर्भुंडु

रहते हो। उनका कहना है कि उन सबके अंतर्गत ज्योति [स्वरूप] तुम्हीं ईश्वर हो। कुछ लोग समझते हैं कि "त्रयी पद्धति" (वेदोक्त रीति) पर इंद्र आदि नामों से पुकारे जानेवाले देवता वास्तव में तुम्ही हो। अन्य कुछ लोग आरूढ़ (संचित) कर्मों को मिटाकर, संसार के [बंधन] तोड़ संन्यासी होकर तुम्हें विज्ञान के चक्षु (नेत्रों) द्वारा प्राप्त करते है। दूसरे कुछ लोग पांचरात्र आगम के अनुसार तन्मयता से [भज कर] तुम्हें आत्मा के रूप में पाते हैं। और कुछ लोग मानते है कि वासुदेव [संकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न] आदि चार भेदों (चतुर्व्यूहों) से तुम्ही शोभा पाते हो। और कुछ लोग तुम्हें नारायण और शिव के नाम देकर अनेक मार्गों (प्रकारों) से स्तुति करते हैं। इसमें दोष क्या है? जैसे असंख्य नदियाँ समुद्र में गिरकर उसी में मिल जाती हैं, वैसे ही सारी विशेषताएं (पृथक्-पृथक् साधनाएँ) तुम्ही में पहुँच निश्शेष हो निश्चित रूप से तुम्हीं में विलीन हो जाती है। घड़ों के अंदर [के जल में] प्रतिबिंबित होनेवाला पूर्णचन्द्र क्या एक नही है? (अनेक है क्या?) [उन प्रतिबिंबों को] अलग-अलग क्यों गिना जाता है? जिस प्रकार घटों के भीतर का आकाश उन घटों के टूटते ही एक हो जाता है, उसी प्रकार लोक (सृष्टि) का अंत होने पर, हे ईश! तुम किसी भी तरह बदलते नहीं हो, एकाकी होकर बने रहते हो। हे देव! अग्नि तुम्हारा माथा है, सूर्य और चंद्र तुम्हारे नेत्र हैं; दिशाएँ कान हैं; भूमि पैर है; समुद्र तुम्हारा कोख (उदर) है; पर्वत हड्डियाँ हैं; लताएँ और वृक्ष तुम्हारे रोएँ है; पवन प्राण है; देवता तुम्हारी बाँहें हैं; बादल केशपाश हैं; आकाश नाभिप्रदेश है; रात और दिन

शेफंबु, वर्षंबु वीर्यंबु, नाकंबु मूर्धंबुनु, -ग्नेकमै युन्न नी मेनि वंडन् बयोजातगर्भाडमुल् मंडितोदुंबरानोकहानेक शाखा फलापूरितानंत जंतुप्रकांडंबु लीलं, प्रसिद्धोदराशिस्थ जंतुप्रकारंबुगा निंडियुंडुन्, महारूप ! नी रूपमुल् वॆंगलं बुग्गाडिपन् लयांभोधिलो मीनु मेनन् विरोधिन्निरोधिंचि साधिंचि, मुन्वेधकुन् वेदराशि प्रसादिपवे, द्रुंपवे कैटभश्री, मधुं जक्रिवै मॊत्तवे, यॆत्तवे मंदरागंबु, रागंबुतो गूर्मलीला परिष्पंदिवै, पंदिवै, मेदिनिन् मीदिकि द्रोचि, दोषाचरं गॊम्मुलन् नॆम्मुलं जिम्मुचुन् ग्रव्वबे, त्रव्वबे घोर वैरिन् नृसिंहुंडवै, दंडिवै दंडि वैरोचनि जूचि याचिंपवे, पॆंपवे मेनु ब्रह्मांडंबुन्निड बाडुंडवै, राजकोटिन् विपाटिंपवे, राजवै राजबिंबास्यकै दुर्मदारिन् विदारिंपवे, नॊंपवे क्रूरुलन् वासुदेवादि रूपंबुलन्, शुद्ध बुद्धुंडवै वैरिदारांतरंगंबुलन्नंतरंगंबुलुंगा गरगिंपवे, पॆंपु दीपिंपवे, कल्किमूर्ति प्रवर्तिंचु निन्नॆन्न ने नॆव्वडन्, नन्नु माया निपन्नुनु, विषण्णुं, प्रपन्नुं, प्रसन्नुंडवै, खिन्नतं बापि मन्निंपवे, पन्नगाधीशतल्पा ! कृपाकल्प ! वंदारुकल्पा ! नमस्ते, नमस्ते, नमस्ते, नमः ॥ 1232 ॥

तुम्हारे लिए निमेष हैं; ब्रह्मा मेढ़ (शिश्न) है; वर्षा वीर्य है; आकाश सिर है। इन सबसे बने तुम्हारे शरीर के अंदर ही समस्त ब्रह्मांड (लोक) इस प्रकार समाया हुआ है जैसे गूलर के वृक्ष में अनेक शाखाएँ और उनमें फल और फलों में अनत जीव-जंतु (कीड़े) भरे रहते हैं, और जैसे समुद्र की जलराशि में मीन-मत्स्य भरे रहते है। हे महारूपी ! तुम्हारे रूपों (अवतारों) का वर्णन करना साध्य नहीं है। प्रलय-काल के महासागर में मीनशरीर धर कर, शत्रु का निरोध कर, उसे वश में करके ब्रह्मदेव को तुमने वेदराशि को प्रदान किया था न ? कैटभ का उत्कर्ष तुमने तोड़ दिया था न ? चक्री (चक्रधारी) बन तुमने मधु का वध किया था। कछुआ (कूर्म) बनकर तैरते हुए तुमने अनुराग के साथ मंदरपर्वत को उठाया था। तुमने सूकर बनकर, राक्षस को नुकीली दाढ़ें भोंककर मार डाला और भूमि को जलगर्भ से ऊपर उठाया था। नृसिंह बनकर तुमने घोर वैरी को चीर डाला था न ? ब्रह्मचारी (वामन) बनकर तुमने प्रतापी राजा बलि से याचना की और अपना शरीर बढ़ाकर सारे ब्रह्मांड में फैल गये हो। ब्राह्मण (परशुराम) होकर तुमने समस्त राजलोक को जड़ से काट दिया। राजा (राम) होकर तुमने चंद्रमुखी (सीता) के निमित्त दुर्मद (रावण) को कुचल दिया था। वासुदेव (कृष्ण) के रूप में तुमने क्रूर दानवों को गिरा दिया। शुद्धबुद्ध होकर तुमने वैरि-स्त्रियों के अंतरंग (हृदय) पिघला दिये। कल्कि मूर्ति बन तुम महत्त्व प्रदर्शित करते हो। मैं कौन हूँ जो तुम्हारी गणना कर सकूँ ! मुझ माया में फँसे हुए को, दुःखी को, प्रपन्न (शरणार्थी) को, प्रसन्नता से दुःख दूर करते हुए

म. कललं बोलॅडि पुत्र मित्र वनितागारादि संयोगमुल्
जलवांछारति नॅडमावुलकु नासल् चेयु चंदंबुनन्
दलतुन् रुच्यमुलंचु मूढुड वृथा तत्त्वज्ञुडन् नाकु नी
विलसत् पादयुगंबु जूपि करुणन् वीक्षिपु लक्ष्मीपती ! ॥ 1233 ॥

अध्यायमु—४१

व. अनि मरियुनु विनुतिप नक्रूरुनिकि यमुनाजलंबुलोनं दन मॊदलि मेनु सूपि, चालिंचि, नटुनिकैवडि, दिरोहितुंडैन, नक्रूरुंडु नीरु वॆडलि, वॆरगंदु पडुचु वच्चि, रथारोहंबु सेसिन, हरि यिट्लनियॆ ॥ 1234 ॥

कं. जलमुलु चेरुव नुन्नवि, तलपोयग नीवु पोयि तडवय्यॆ नदी-
जलमुन नभमुन धरणि, गलुगनि चोद्यमुलु नीकु गानंबडॆने ॥ 1235 ॥

व. अनिन नतंडिट्लनियॆ ॥ 1236 ॥

कं. नी लोन लेनि चोद्यमु
ले लोकमुनंदु जॆप्प रीश्वर ! नीट-
न्नेलं निगिनि नुन्नवॆ
नीलो जोद्यंबुलॆल्ल नॆगडु महात्मा ! ॥ 1237 ॥

क्षमा करो। हे पन्नगाधीश-तल्पा (शेषशयन) ! कृपालु ! वंदारुकल्प (भक्तों का कल्पवृक्ष), नमस्ते, नमस्से, नमस्ते, नमः। १२३२ [म.] पुत्र, मित्र, वनिता (स्त्री), घर, द्वार आदि का संयोग स्वप्नों के समान है; मृगमरीचिका में जल पाने की अभिलाषा करने के समान मैं इन्हें रुचिकर (प्रिय) समझता रहा हूँ; [वास्तव में] मैं मूढ़ हूँ; व्यर्थ ही अपने को तत्त्वज्ञानी मानता हूँ; हे लक्ष्मीपति ! मुझे अपना प्रकाशमान चरण-युगल दिखाकर करुणापूर्वक निहारो।" १२३३

अध्याय—४१

[व.] यों बार-बार विनती करनेवाले अक्रूर को कृष्ण अपना मूल [विराट्] रूप दरसाकर, फिर उसे समेट, नट (अभिनेता) की भाँति अंतर्धान (अदृश्य) हुआ। जब अक्रूर जल में से निकल आया और आश्चर्यचकित हो रथ पर आ बैठा तो हरि ने उससे यों कहा : १२३४ [कं.] "जल तो पास ही है, पर तुम्हें गये बहुत देर हुई, लगता है तुम्हें पानी में ऐसा चमत्कार दिखाई दिया जो न भूमि पर है और न आकाश में।" १२३५ [व.] तब उसने यों उत्तर दिया : १२३६ [कं.] "हे ईश्वर! कहते है जो चमत्कार तुममें नहीं है वे जग में [अन्यत्र]कहीं नहीं हैं; जो

व. अनि पलिकि, सायंकालंबुनकु नक्रूरुंडु मथुरानगरंबु चेर रथंबु गडपॆ। अंतट मुन्नु चनिन नंदावुलु पुरोपवनंबुन विडिसियुंड, वारलं गूडुकॊनि, कृष्णुंडक्रूरुनि जूचि, नीवु रथंबु गॊनुचु नगरंबुनकुं जनुमु मेमु वॆनुक वच्चॆदमु। अनिन नतंडिट्लनियॆ ॥ 1238 ॥

श्रीकृष्णुनि मथुरानगर प्रवेशमु

कं. ना यिटिकि विच्चेयुमु, नी यंघ्रिसरोज रेणुनिकरमु सोकन्
ना यिल्लु पवित्रंबगु, श्रीयुत! नॆ भटुनि बॆंप्द सेयं दगदे ॥ 1239 ॥

व. अनि मरियुं ब्रार्थिचिन, हरि यिट्लनियॆ ॥ 1240 ॥

कं. यदुकुल विद्वेषणुडै
मदमुन वर्तिचु कंसु मर्दिचि भवत्
सदनंबु सूड वच्चॆद
वद यी स्यंदनमु गॊनुचु बुरमुनकनघा! ॥ 1241 ॥

व. अनि पलिकिन, नक्रूरुंडु पुरंबुनकुं जनि, रामकृष्णुलु वच्चिरनि कंसुन कॆरिगिंचि, तन गृहंबुनकुं जनियॆ। अंत नपराह्णंबुन बलभद्र गोपाल सहितुंडयि, कृष्णुंडु ॥ 1242 ॥

चमत्कार (विस्मय) जल में, भूमि पर और आकाश में दिखाई देते हैं, हे महात्मा! वे सब तुम्हारे अंदर ही झलक पड़ते हैं।" १२३७ [व.] यों कहकर अक्रूर ने रथ को ऐसा चलाया कि संध्या तक मथुरा जा पहुँचा। नंद आदि लोग जो पहले ही पहुँच गये थे, नगर के उपवन (उद्यान) में पड़ाव डाल बैठे हुए थे। उन्हें साथ लेकर कृष्ण ने अक्रूर से कहा, "तुम रथ को नगर में हाँक ले चलो, हम लोग पीछे से आयेंगे।" इस पर अक्रूर ने कहा: १२३८

श्रीकृष्ण का मथुरा नगर में प्रवेश करना

[कं.] "मेरे यहाँ पधारो; तुम्हारे अंघ्रि (चरण)-सरोज-रज के स्पर्श से मेरा घर पवित्र हो जायेगा; हे श्रीमान! तुम्हारे [इस] अनुचर को बड़ाई देना उचित ही तो है!" १२३९ [व.] फिर से प्रार्थना करने पर हरि ने कहा: १२४० [कं.] यादवकुल के विद्वेषी (घोर शत्रु) और मदमस्त हो चलनेवाले कंस का मर्दन (नाश) करके तुम्हारा सदन (घर) देखने आऊँगा; हे निष्पाप! जाओ, तुम यह रथ लेकर नगर में जाओ।" १२४१ [व.] इतना कहने पर, अक्रूर नगर में पहुँच, कंस को राम और कृष्ण के आने की सूचना देकर अपने घर चला गया। पश्चात् अपराह्न (दोपहर)

म. परिघल् कोटलु कोम्मलुन् बडगलुन् ब्रासादमुल् वीथुलुन्
हयुलुन् देरुलु वीरुलुन् गजमुलुन् हर्म्यंबुलुन् वाद्यमुल्
तरुणुल् धान्यमुलुन् धनंबुलु महोद्यानंबुलुन् दीर्घिकल्
कर माश्चर्यरुचि दनर्चु मथुरन् गांचेन् विभुंडंतटन् ॥ 1243 ॥

व. कनि यप्पुरंबु ब्रवेशिंचि, वच्चु समयंबुन ॥ 1244 ॥

उ. नंद तपःफलंबु सुगुणंबुल पुंजमु गोपकामिनी-
बृंदमु नोमुपंट सिरिविड्डु दयांबुधि योगिबृंदमुल्
डेंदमुलंदु गोरेडु कडिंदि निधानमु चेरवच्चेनो
सुंदरुलार! रंडु चनि चूतमु कन्नुल कोर्कॅ तीरगन् ॥ 1245 ॥

व. अनि मरियु, गोविंदसंदर्शन कुतूहलंबुलं बौरसुंदरुलु परस्पराहूयमानलै, भुंजानलै, भोजन भाजनबुलु दलंगद्रोचियु, शयानलै लेचियु, नभ्यज्यमान-लै जलंबुलाडकयु, गुरुजन शिक्ष्यमाणलै योडकयु, गृहकार्य प्रवर्तमानलै परिभ्रमिपकयु, रमण रममाणलै रमिंपकयु, शिशुजन बिभ्राणलै डिंचियु, नलंकुर्वाणलै यन्योन्य वस्त्राभरण माल्यानुलेपनंबुलु वीड्वड धरिंचियु नरिगि ॥ 1246 ॥

को बलभद्र और गोपालकों-सहित हो, १२४२ [म.] प्रभु कृष्ण ने सारी मथुरा नगरी का अवलोकन किया, जिसमें आश्चर्य और अभिरुचि-उत्पन्न करनेवाले खंदक, कोट (दुर्ग), बुर्ज, झंडे, महल, वीथियाँ, घोड़े, रथ, वीर, गज, भवन, बाजे, गाजे, तरुणियाँ (युवतियाँ), धन, धान्य, उद्यानवन और बावड़ियाँ आदि [विद्यमान] थे। १२४३ [व.] सबको देख नगर में से होकर चलते समय, १२४४ [उ.] हे सुंदरियो, चलो, चलकर उसे देखें जिससे नेत्रों की लालसा पूर्ण हो (प्यास बुझे)। लो वह [कृष्ण] समीप ही आ रहा है जो, नंद का तपःफल है, सुगुणों का पुंज है, गोपकामिनियों (सुन्दरियों) की मनौती (व्रतसाधना) की उपज है, लक्ष्मी का प्रियबंधु है, दया का सागर है, योगीवृन्द की मनचाही गाढ़े दिनों की धरोहर है। १२४५ [व.] यों कहती हुई गोविंद-संदर्शन का कुतूहल लेकर, पौरसुंदरियाँ, परस्पर एक-दूसरी को बुलाती हुई चल पड़ीं। [उस अवसर पर] भोजन करनेवालियों ने भोजन के भाजन (बर्तन) दूर हटा दिये; शयन करनेवाली उठ गईं; अभ्यंजन (शिरस्नान) करनेवालियों ने नहाना छोड़ दिया; गुरुजनों की सीख (शिक्षा, मनाही) सुननेवालियों ने भय और संकोच छोड़ दिया; गृहकार्य में लगी स्त्रियों ने इधर-उधर चलना छोड़ दिया; प्रेमियों के साथ रमनेवालियों ने रमना छोड़ दिया; शिशुओं को हलरानेवालियों ने उन्हें उतार दिया; अपना सिंगार करनेवालियों ने वस्त्राभरण और माल्यानुलेपन को अधूरा ही छोड़ दिया; [इस प्रकार

कं. वीट गल चॆडॆलॆल्लनु, हाटकमणि घटित तुंगहर्म्याग्रमुलन्
गूटुवलु गॊनुचु जूचिरि, पाटिंचि विशालवक्षु बद्मदळाक्षुन् ॥ 1247 ॥

सी. वीडटे ! रक्कसि विगतजीवग जन्नु बालुद्राविन मेटि बालकुंडु
वीडटे ! नंदुनि वॆलदिकि जगमॆल्ल मुखमंदु जपिन मुद्दुलाडु
वीडटे ! मंदलो वॆन्नलु दॊंगिलि दर्पिंचि मॆक्किन दापरीडु
वीडटे ! य़ॆलयिंचि व्रेतलमानंबु चूरलाडिन लोकसुंदरुंडु

ते. वीडु लेकुन्न पुरमटवीस्थलंबु
वीनि बॊंदनि जन्मंबु विगतफलमु
वीनि बलुकनि वचनंबु विहगरुतमु
वीनि जूडनि चूड्कुलु वृथलु वृथलु ॥ 1248 ॥

म. चॆलिया ! गोपिकली कुमारतिलकुन् जिंतिंपुचुन् बाडुचुन्
गलयं बल्कुचु नंटुचुन् नगुचु नाकर्षिंपुचुन् हस्तगा-
मलकक्रीडकु दॆच्चि यिच्चलुनु सम्मानंबुलन् बॊंदगा
दॊलिजन्मंबुल नेमि नोचिरॊ गदे दुर्गप्रदेशंबुलन् ॥ 1249 ॥

मथुरा की सुंदरियाँ कृष्ण-दर्शन के लिए उतावली हुईं।] १२४६ [कं.] नगर में जितनी नवेलियाँ थीं, सबने सुवर्ण-मणि-घटित उच्च हर्म्यों के शिखरों पर इकट्ठी होकर विशाल-वक्षवाले, पद्माक्ष (-कृष्ण) का सादर अवलोकन किया। १२४७ [सी.] [वे आपस में यों कहने लगी] "अरी ! क्या यह वही बालकों का सिरमौर है, जिसने स्तन्य पीकर राक्षसी को निष्प्राण कर दिया ? क्या यह वही लाडला मुन्ना है जिसने नंदपत्नी को अपने मुँह मे समस्त जगत दिखा दिया था ? क्या यह वही चोर है जो घोष में मक्खन चुराकर दर्प के साथ भग जाता था ? क्या यह वही लोकसुंदर है जिसने ग्वालिनों को आसक्त बनाकर उनका मान लूट लिया था ? [ते.] लगता है—वह नगर जिसमें यह (कृष्ण) नहीं है अटवीस्थल (जंगल) है। जो इसकी संगति नहीं पाता उसका जन्म निष्फल है। वह भाषण (बातचीत), जो इसके साथ नहीं किया जाता, पक्षियों का चहचहाना है। वे नयन जो इसे नही देखते, वे व्यर्थ हैं, [बिलकुल] व्यर्थ हैं। १२४८ [म.] ऐ सखी ! दुर्गम प्रदेशवासी उन गोपिकाओं ने पिछले जन्मों में, न जाने कौन सा व्रत पाला था जिससे कि इस कुमारतिलक (श्रेष्ठ कुमार) का चिंतन करते हुए, इसका गीत गाते हुए, हिलमिल बातें करते हुए, इसका स्पर्श करते हुए, हास्य-विनोद में इसे आकर्षित करते हुए और हस्तामलक बना कर इसके साथ क्रीड़ा करते हुए अपना अभीष्ट साधा और सम्मान प्राप्त कर लिया है।" १२४९ [कं.] हे राजन् ! यों कहकर उन पुर-स्त्रियों

कं. अनि मख्रियु वौरकांतलु
मुनुकोनि हरिरूपु नेत्रमुल वेंटनु लो-
गोनि तालिचरि हृदयमुलनु
जनित प्रमदमुन विरुलु सल्लुचु नधिपा ! ॥ 1250 ॥

व. मरियुनु ॥ 1251 ॥

कं. नानाविध गंधमुलु ब,-सून फलाक्षुतुनु हरितशुभ लाजमुलुन्-
गानुकलिच्चुच विप्रुलु, मानुग बूजिंचि रा कुमारोत्तमुलन् ॥ 1252 ॥

व. आ समयंबुन नगरद्वारंबुननुंडि वच्च रागकारुंडगु नोक रजकुं गांचि हरि यिट्लनियें ॥ 1253 ॥

उ. विडुलमै नरेश्वरुनि वोटिकि वच्चिचति मेमु माकु मा
मंदललोन गट्टुकोन मंचि पटंबुलु लेवु नी मुडिन्
सुंदर धौतचेलमुलु शोभिलुचुन्नाव तेम्मु निच्चु मे-
लंदेडि निम्मु राजु देस नल्लुर मो रजकान्वयाग्रणो ! ॥ 1254 ॥

व. अनिन रोषिंचि वाडिट्लनियें ॥ 1255 ॥

शा. अट्टेट्ट्रा मनुजेंद्रु चेलमुलु मी की वाडिये मीरलुं
गट्टं बोलुदुरे पयो धृत दधि ग्रासंबुलन् मत्तुलै
यिट्टाडं जने गाक गोल्ललकु मी कब्भंगि नोराडेडिन्
गट्टा ! प्राणमु गोलुपोयेदु सुमी कंसोद्धति बालका ! ॥ 1256 ॥

ने आगे आकर हरि का स्वरूप नेत्रों की राह से अंदर खीचकर अपने हृदयों में धर लिया। प्रमद (यौवन की मस्ती) के वश होकर उन्होंने कृष्ण पर फूल बरसाये। १२५० [व.] और······ १२५१ [कं.] ब्राह्मणों ने उन कुमारोत्तमों का पूजन अनेक प्रकार के चंदन, सुगंध, फल, फूल, पीले लाज (लावा) और उपहार आदि समर्पित कर अच्छी तरह से किया। १२५२ [व.] उस समय एक अहंकारी और रंगरेज़ धोबी को नगर के द्वार से आते देख उससे हरि ने यों कहा : १२५३ [उ.] "हम नरेश के अतिथि होकर नगर में आए हुए हैं; हमें पहनने के लिए घोष में उत्तम वस्त्र नही मिले, तुम्हारी गठरी मे धोये-धुलाये सुंदर वस्त्र चमक रहे हैं, कुछ हमें दे दो, तुम्हारा भला होगा; हे रजक-कुलश्रेष्ठ ! हम राजा के भानजे लगते हैं।" १२५४ [व.] इस पर क्रोध में आकर उसने यों कहा : १२५५ [शा.] "कैसे रे, राजेन्द्र (नरेश) के कपड़े तुम्हें देना उचित होगा ? तुम उन्हें पहनने योग्य हो क्या ? तुम अहीर लोग घी, दूध और दही खा-खाकर मस्त हो गए हो; ऐसी बात तुम्हारे मुँह से निकली;

कं. मा राजु सॊम्मु गैकॊन, ने राजुलु वॆरतुरित यॆल्लिदमे नी
की राजराज गृहमुन, नी राजस मेल गॊल्ल येगुमु तलगन् ॥ 1257 ॥

व. अनिन विनि रोषिंचि ॥ 1258 ॥

कं. घोर कराग्रतलंबुन, धीरुडु कृष्णुंडु शिरमु दॆगिपड गॊट्टॆन्
बीरुल गुंडॆलु वगुलग, वीरोद्रेकिन् मदाविवेकिन् जाकिन् ॥ 1259 ॥

व. इट्लु भग्नुंडयिन रजकुं जूचि, वानिवारलु पटंबुलु डिंचि, वॆरचि, परचिन, रामकृष्णुलु वलसिन वस्त्रंबुलु धरिंपिचि, कॊन्नि गोपकुल कॊसंगि, चनुचुंड ॥ 1260 ॥

कं. अंतट नॊक वायकु डा, श्रांतन् वसुदेवसुतुल गनि बहुवर्णा-
त्यंत मृदु पटाभरणमु, लॆंतयु संतसमुतोड निच्चॆन् मॆच्चन् ॥ 1261 ॥

शा. कारुण्यंबुन वानि गैकॊनि यलंकारंबु गाविंचि श्रृं-
गारोदंचित दिग्गजेंद्र कलभाकारंबुलं बॊल्चि रा
शूरुल् माधवु डंत वायकुनि शुश्रूषन् महाप्रीतुडै
सारूप्यंबुनु लक्ष्मियुन्नॊसगॆ नैश्वर्यावि संधायियै ॥ 1262 ॥

व. अंत ना रामकृष्णुलु, सुदामुंडनु मालाकारु गृहंबुनकुं जनिन, नतंडु गनि

कैसे ? हाय ! बच्चो, बलवान कंस के हाथ तुम अपने प्राण खो बैठोगे। १२५६ [कं.] हमारे नरेश का माल छूने मे [अन्य] सभी राजा लोग घबड़ाते हैं, पर, तुम तो ऐसी लघुता (हल्कापन) दिखाते हो ! इस राज-राज के घर में तुम्हें यह राजस (बड़प्पन) क्यों ? अरे गड़रिये ! यहाँ से हट जा।" १२५७ [व.] ये बातें सुन ताव में आकर १२५८ [कं.] अत्यंत तामसी, मद में चूर, अविवेकी उस धोबी को धीरवीर कृष्ण ने अपनी कठोर कराग्रतल (हथेली) से ऐसा मारा कि उसका सिर धड़ से अलग हो गिर पड़ा। उसे देख वीरों के कलेजे टूक-टूक हुए। १२५९ [व.] यों निहत हुए रजक (धोबी) को देख, उसके साथी सब अपने पास के वस्त्र वहीं छोड़ भय के मारे भाग खड़े हुए। राम और कृष्ण ने आवश्यक वस्त्र लेकर पहन लिये, थोड़े से गोपकों को भी दिये; फिर सब आगे चलने लगे। १२६० [कं.] मार्ग में एक जुलाहे ने वसुदेव के पुत्रों को देखकर रंग-बिरंगे और मृदुल वस्त्रालंकार संतोष के साथ देकर उन्हें प्रसन्न किया। १२६१ [शा.] [राम और कृष्ण ने] करुण-भाव से उन्हें स्वीकार कर अपना अलंकार कर लिया, उस वेश में वे दोनों वीर कुमार सजे हुए गजेन्द्र के बच्चों के समान शोभायमान दिखाई दिये। तब माधव ने, जो ऐश्वर्यप्रदाता है, उस जुलाहे की परिचर्या से प्रीत (संतुष्ट) होकर उसे सारूप्य [मोक्ष] और संपत्ति का प्रदान किया। १२६२ [व.] अनंतर राम

लेचि, प्रवकुन म्रोविक, चत्कन नर्घ्यपाद्यादिकंबु लाचरिंचि, सानुचर-
लैन वारलकु तांबूल कुसुम गंधंबु लोसंगि, यिट्लनियें ॥ 1263 ॥

उ. पावनमय्ये ना कुलमु पंडे वपंबु गृहंबु लक्ष्मिकिन्
सेवितमय्ये निष्टमुलु सेकुरे विश्वनिदानमूर्तुलै
भूवलयंबु गाव निटु पुट्टिन मीरलु राक जेसि ने
नेविध मार्चरितु बनु लॅय्यवि बंट नॅरुंग जॅप्परे ॥ 1264 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 1265 ॥

कं. दामोदर रामुल कु-
द्दाम यशोहसित तुहिन धामुलकु वधू-
कामुलकु नॅच्चि यिच्चॆ सु-
दामुडु घन सुरभिकुसुम दाममुलधिपा ! ॥ 1266 ॥

कं. वारुनु मालिकु डिच्चिन
भूरि कुसुमदाममुलनु भूषितुलै नी
कोरिन वर मिच्चॆद मनि
कारुण्यमु सेय नतडु गनि यिट्लनियॆन् ॥ 1267 ॥

कं. नी पादकमल सेवयु, नी पादार्चकुलतोडि नॅय्यमुनु नितां-
तापार भूतदययुनु, दापसमंदार ! नाकु दय सेयगदे ! ॥ 1268 ॥

और कृष्ण सुदामा नामक एक मालाकार के घर पर गये, वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ, वंदना की, अर्घ्य और पाद्य आदि से सत्कार किया और साथियों को तांबूल, कुसुम और सुगंध देकर उसने यों कहा : १२६३ [उ.] "आप लोग विश्व के कारण-भूत मूर्तियाँ हैं, भूलोक की रक्षा करने के निमित्त इस प्रकार जन्मे हैं, आपके आगमन से मेरा कुल पवित्र हुआ, मेरा तप सफल हुआ, घर लक्ष्मी की सेवा में प्रशस्त हुआ, अभीष्ट सिद्ध हुए। मैं आपका सेवक हूँ, मुझे समझाकर कहिये कि मैं आपकी क्या-क्या सेवा (कार्य) करूँ और किस रीति से करूँ। १२६४ [व.] यों कहकर… १२६५ [कं.] हे राजन् ! सुदामा ने दामोदर (कृष्ण) और राम (बलराम) को, जिनकी प्रबल कीर्ति चंद्रमा की हँसी उड़ानेवाली है, और जो वधुओं के मनचाहे [पुरुष] हैं, उत्तम सुरभित-कुसुम-दाम (सुगंधित पुष्पमालाएँ) समर्पित किये। १२६६ [कं.] उन्होंने माली के दिये गजरों से सजकर दयालु हो उससे कहा— "तुम जो वर माँगो, दे देंगे।" तब उस माली ने कहा— १२६७ [कं.] "हे तपस्वियों के कल्पवृक्ष ! मुझे तो, तुम्हारे चरणों की सेवा, तुम्हारे चरण-पूजकों (भक्तों) के साथ स्नेह और नितांत, अपार भूतदया (जीवदया) प्रदान कीजिए।" १२६८ [व.] उसकी

व. अनि वेडुकोनिन निच्चि, मरियुनु, माधवुंडम्मालिकुनकु बलायुः कांति कीर्ति संपद लोसंगि, वानि गृहंबु वेडलि, राजवीथि जनि चनि ॥ 1269 ॥

अध्यायमु—४२

कं. आ नळिनाक्षुडु गांचेनु
नाना लेपमुल भाजनमु चेकोनुचुन्
बूनि चनुदेंचु दानिनि
नानन रुचि निचय विनमिताब्जं गुब्जन् ॥ 1270 ॥

व. कनि यिट्लनियें ॥ 1271 ॥

कं. ऎव्वरि वानवु लेपमु
लॆव्वरिकि गोरि कोनुचु नेगेदु नी पे-
रॆव्वतॆ मा किम्मिसियु
निव्वटिलेदु चक्क नगुचु नीरजनेत्री ! ॥ 1272 ॥

व. अनिन नय्यबल यिट्लनियें ॥ 1273 ॥

उ. चक्कनिवाडवौदु सरसंबुल नोंपकु मॆल्लवारिकिन्
जक्कदनंबुलॆक्कडिवि चारुशरीर ! त्रिवक्र यंड्रु ने
निक्कमु कंसु दासिनि विनिर्मल लेपनविद्यदान नन्
मिक्किलि राजु मॆच्चु दग मीरु विलेपनमुल् धरिंपरे ॥ 1274 ॥

प्रार्थना मान, मुँह माँगा वर दे दिया। फिर माधव उस मालाकार को बल, आयु, कांति, कीर्ति और संपत्ति भी प्रदान करके उसके घर से निकल राजमार्ग पर चलने लगा। १२६९

अध्याय—४२

[कं.] तब, अनेक प्रकार के लेपों को बरतन में रखकर ले चलनेवाली, अपने मुख के कांतिपुंजों से कमल को हरानेवाली एक कुब्जा (कूबरी) को नलिनाक्ष (कमलनयन) कृष्ण ने देखा। १२७० [व.] देखकर यों पूछा—१२७१ [कं.] "तुम कौन हो ? ये लेप किसके निमित्त ले जा रही हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? हे नीरजनेत्री (कमलनयनी) ! कुछ लेप हमें भी दे दो, तो तुम सीधी होकर सुंदर बन जाओगी।" १२७२ [व.] इस पर उस अबला ने यों कहा : १२७३ [उ.] "तुम तो सुंदर ही हो, पर हँसी उड़ाकर मुझे मत सताओ। सुंदरता सबमे कहाँ होती ! हे रूपवान् ! मुझे त्रिवक्रा कहते हैं। मैं कंस की दासी हूँ। सुंदर लेपन (बनाने) की विद्या मैं जानती हूँ, राजा मेरी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

कं. गॊल्ललकुनु गंबळ्ळुनु, जॆल्लुनु गट्टंग गरकु चीरलु निते
मॆल्लनॆ मेललाडॆदो, युल्लंबुन नडुग निट्लु नुचितमॆ मीकुन् ॥ 1275 ॥

कं. अनि पलिकि या कुमारुल
तनुवुलु नगवुलुनु वीक्षितमुलुनु माटल्
दनचित्तमु गरगिंचिन
ननुलेपमुलिच्चॆ वारि कवल प्रियमुतोन् ॥ 1276 ॥

सी. इव्विधंबुन गुब्ज यिच्चन लेपंबुलन्नियु दानु देहमुन नलदि-
कॊनि प्रसन्नत नॊंदि कुब्ज मुव्वंकल यॊडलु चक्कग नॊत्ति युनुप दलचि
तत्पदंबुल मीद दनपदंबुलु द्रॊक्कि हस्तांगुळीद्वय मबल गवुद
क्रिद विप्पुग निडि कृष्णुडु मीदिकि नॆत्तिन वक्रतलॆल्ल मानि

आ. चक्कनैन चित्तजन्मु बाणमु क्रिय
गॊमरु मिगिलि पिरुदु गुचयुगंबु
सॊंपु जेय दरुणि सुंदरमूर्तियै
कमलनयनु जूचि कांक्षतोड ॥ 1277 ॥

कं. वॆंचेयुमु ना यिंटिकि, पंचशराकार यनुचु बॆकॊंगाक-
र्षिचि हरि दिगिचॆ गामिनि, पंचाशुग बाणजाल भग्नहृदययै ॥ 1278 ॥

कं. कामिनि दिगिचिन गृष्णुडु
रामुनि वीक्षिंचि नगुचु राजानन ! म-

तुम भी चाहो तो ये लेप लगा लो।" १२७४ [कं.] ग्वालों को तो कंबल और मोटे वस्त्र फबते हैं; लेपन माँगकर तुम दिल्लगी कर रहे हो, यह तुम्हारे लिए उचित न होगा।" १२७५ [कं.] ऐसा कहकर उस अबला ने प्रेम के साथ उन्हें अनुलेपन दे दिये, उन कुमारों के (सुंदर) शरीर, उनकी हँसियाँ, उनके कटाक्ष और उनका वार्तालाप—इन सबने उस कुब्जा के चित्त को द्रवीभूत किया। १२७६ [सी.] कुब्जा के दिये सब लेप अपनी देह पर लगाकर, प्रसन्न हो उसका त्रिवक्र शरीर सीधा करने की अभिलाषा से, उसके चरणों को अपने चरणों से दबाये रखकर, अपने हस्तद्वय की दो-दो उँगलियों को उसके जबड़ों के नीचे रख कृष्ण ने जब उसे ऊपर उठाया तो उसके शरीर की सारी वक्रता दूर हुई; [आ.] और वह मन्मथ के तीर के समान मनोज्ञ बन गई। उसका पृष्ठ और कुचयुग उभर आये और उस तरुणी ने सुंदरमूर्ति बनकर कमलनयन (कृष्ण) को चाह से देखा। १२७७ [कं.] "हे मन्मथाकारवाले ! तुम मेरे घर पधारो" —यों कहती हुई उस कामिनी ने, जिसका हृदय कामदेव के बाणों से विद्ध हुआ, उत्तरीय पकड़कर हरि को खींचा। १२७८ [कं.] जब

कामिनितमु वीथि विदपन्
नी मंदिरमुनकु वत्तु नेडलुगकुमी ॥ 1279 ॥

व. अनि वीडुकोलिपि, कृष्णुंडु, विपणिमार्गंबुनन् जनि चनि, तांबूल मालिका गंधंबुलुनु, बहुविधंबुलयिन कानुकलुनु, बौरुलिच्चिनं बरिग्रहिंपुचु, धनुश्शाल करिगि, यंदु ॥ 1280 ॥

कं. सुरराजु विंटि केवडि
गुरुतरमयि भूरि बीर गुप्तंबयि दु-
स्तरमयिन विल्लु बौडगनि
नरुलु वलदनंग बिट्टु नगि विकसितुडै ॥ 1281 ॥

शा. बंधुल् मेलन वामहस्तमुन जापं बेत्ति मौर्वीलता
संधानं बौनरिंचि कोवंपु वेगन् शब्दिंचुचुन् धीरता-
सिंधुंडा हरि दानि खंडितमुगा जेसेन् जनुल् चूडगा
गंधेभंबु रसालदंडमु नोगिन् खंडिंचु चंदंबुनन् ॥ 1282 ॥

कं. कोदंड भंग निर्गत, नादमु वीनुलकु भीषणंबै याशा-
रोदोंतरमुलु निंडुचु, भेदिंचेन् भोजविभुनि बिकमु नधिपा ! ॥ 1283 ॥

व. अप्पुडु ॥ 1284 ॥

उस कामिनी ने खींचा तो कृष्ण ने बलराम को देख हँसते हुए कहा— "हे चंद्रमुखी ! मुझे प्रथमतः अपनी अभिलाषा पूर्ण करने दो, उसके बाद तुम्हारे मंदिर (भवन) मे आऊँगा, आज तुम रूठना नहीं।" १२७९ [व.] ऐसा कहकर उसे विदा किया, फिर विपणिमार्ग (बाजार) से जाते-जाते नागरिकों के दिये तांबूल, पुष्पमाला, सुगध और विविध उपहार स्वीकार करके [कंस की] धनुश्शाला पहुँच गया। वहाँ पर [कृष्ण]··· १२८० [कं.] सुरराजा के धनुष (वज्रायुध) के समान भारी, वीरों से बचाकर रखा हुआ, दुस्साध्य कठोर धनुष देखकर मुस्कुराया, फिर प्रसन्नता से, लोगों के मना करने पर भी उसके पास पहुँचा। १२८१ [शा.] उसने बायें हाथ से वह चाप (धनुष) उठाया और मौर्वी (डोरी) चढ़ाकर संधान किया तो वह ज़रा तड़क उठा तब धीरता का समुद्र उस हरि ने उसे सबके सामने चट से ऐसा तोड़ डाला जैसे मस्त गजेंद्र ईख के डंडे को तोड़ देता है। यह देख उसके भाई-बंधु सबने सराहना की। १२८२ [कं.] हे राजन् ! उस कोदंड (धनुष) के टूटने पर जो ध्वनि निकली वह कानों को भीषण लगी, और दिशाओं के मध्य में तथा भूमि पर आकाश के अन्तर में भरकर उस ध्वनि ने भोजों के राजा कंस का घमंड तोड़ दिया। १२८३ [व.] उस अवसर पर··· १२८४ [उ.] "वाह

उ. अविदर ! राचविल् विरिचि नर्भकुडेतयु शंकलेक ने-
डुद्दवडिन् सहिंपदगदुग्रत वट्टुवमंचु ग्रुद्धुलै
ग्रव्वन लेचि तद्धनुवु कावलिवारुवेर वारि न-
टियदृरु गूडि पट्टि वधियिंचिरि कार्मुकखंड-हस्तुलै ॥ 1285 ॥

व. इट्लु रामकृष्णुलु मथुरापुरंबुन विहरिंचि वॅडलि, विडिदलकुं जनिरि ।
अंत ॥ 1286 ॥

सूर्यास्तमय, चंद्रोदय वर्णनमु

म. गगनारण्य चरांधकारजगमुन् गालाह्वय व्याधु ड-
च्चुग बट्टं गमकिंचि मच्चिडुटकै चूतांकुर श्रेणिचे
नॉगि गल्पिचिन कंदुकंबनग सूर्युडंत वीक्षिपगा
बगॅ मंदप्रभतोड बश्चिम महा धात्रीधरेंद्रंबुनन् ॥ 1287 ॥

कं. तरुणुडगु शीतकरुनिन्
मरगि वियल्लक्ष्मि तन्नु मानि मुदुकडुन्
खरकरुडु ननुचु द्रोब्बिन
करणिन् रवि पश्चिमाद्रिकड ग्रुंकॅ नृपा ! ॥ 1288 ॥

रे ! इस अर्भक (बालक) ने निश्शंक हो, राजा का धनुष तोड़ दिया। हम इसे सह नहीं सकते, [तुरन्त उठो] बलपूर्वक इसे पकड़ ले" —यों कहते हुए उस धनुष के रक्षक (पहरेदार) रोष से दौड़ पड़े; पर इन दोनों [बालकों] ने उन लोगों को पकड़कर धनुष के टुकड़ों को हाथ में ले मार गिराया। १२८५ [व.] इस प्रकार राम और कृष्ण मथुरापुरी में विहार (सैर) करके अपने डेरे पर पहुँच गये। १२८६

सूर्यास्त और चन्द्रोदय का वर्णन

[म.] सूर्य मंद (कम) तेज के साथ पश्चिमाद्रि (अस्ताचल) पर दिखाई दिया, वह ऐसा लगा मानों काल रूपी शिकारी ने आकाश के अरण्य में चलते हुए अँधकार रूपी गज को फँसाकर पकड़ने के यत्न में चूतांकुरों (आम की कोंपलों) का गोला बनाकर रख दिया हो। १२८७ [कं.] हे राजन् ! सूर्य पश्चिमाद्रि (पश्चिमी पहाड़) के पास ऐसा डूबा मानों आकाश रूपी लक्ष्मी ने, तरुण (युवक) चंद्रमा के संसर्ग में अनुरक्त होकर सूरज को छोड़ यह कहते हुए कि यह बूढा और कर्कश हाथोंवाला है— उसे ढकेल दिया हो। १२८८ [आ.] [दिन के डूबने पर] कमल-पुष्प मुंद गये मानों वे सती-साध्वियाँ हों जो यह कहती हों कि चंद्र चाहे

आ. कळलु गलुगुगाक कमल तोडगुगाक
शिवुनि मौळिमीद जेरुगाक
नन्यु नॊल्ल दपनुडैन मत्पति यनि
साध्वि भंगि कमलजाति मॊगिडॆ ॥ 1289 ॥

कं. सुंदर सायंसंध्या, -वंदन विप्रार्घ्यतोय वज्रहतोद्य-
न्मंदेहासुर रक्त, -स्यंदमु क्रिय गॆंपु सॊपॆसगॆ नपरदिशन् ॥ 1290 ॥

आ. भूमिनिंड मिट वूर्णमै कर्कट
मकर मीनराशि महितमैन
हर यशस्सुधाब्धि यंदल तुंपुरु
लनग जुक्कलॊप्पॆ नाकसमुन ॥ 1291 ॥

कं. ऎल्ल दिशलु निंडिन श्री
वल्लभु गुणमहिम ब्रह्म वासिचुटकै
चाल्लन मृगमद मनगा
वॆल्लि विरिसॆ दममु गगनवीथुल नॆल्लन् ॥ 1292 ॥

कं. आ चीकटि वॆंनु दगिलिन
प्राची दिशनुंडि गंतु परवुन रवि भ-
र्माचलमु मलक त्रोवनु
वे चनियॆं गाक निलिचि विरुगकयुन्नॆ ॥ 1293 ॥

कलावान क्यों न हो, लक्ष्मी उसकी सहजन्मी (बहन) क्यों न हो, वह चाहे शिवके सिर पर क्यों न बैठे, हम तो उस पराये को स्वीकार नहीं करेंगी; सूर्य तपानेवाला होने पर भी वही हमारा पति है। १२८९ [कं.] पश्चिम दिशा में [फैली] लालिमा ऐसी लगी मानों सुंदर सायं समय के संध्या-वंदन में विप्रों (ब्राह्मणो) के दिये अर्घ्यजल रूपी वज्रायुध से कटे मंदेह [नामक] राक्षस का रक्तस्राव (रक्त का प्रवाह) हो। १२९० [आ.] आकाश में नक्षत्र ऐसे चमक उठे मानों वे भूमि और आकाश में पूर्ण होकर फैले हुए, कर्कट (केंकड़े), मकर (मगर) और मीन (मछली) की राशि (समूहों) से महान बने हुए, हरि के यश रूपी क्षीरसमुद्र मे से ऊपर उठे छीटे हों। १२९१ [क.] अंधकारमय गगन (आकाश) की वीथियों (मार्गों) मे सर्वत्र व्याप्त होकर ऐसी लगी मानों वह सारी दिशाओं में भरे हुए श्रीवल्लभ (विष्णु) के गुणमहल को सुगंधित करने के उद्देश्य से ब्रह्मदेव की बिखेरी कस्तूरी हो। १२९२ [क.] जब अंधकार ने पीछा किया तो रवि (सूर्य) पूर्वी दिशा से कूदता-फाँदता हुआ भर्माचल (सुवर्णाचल) के टेढ़े रास्ते भाग निकला, यदि वह [भाग खड़ा न होता] यहीं खड़ा रहता तो क्या वह [शत्रु के हाथ] हार न जाता? १२९३

उ. मीकुनु वैरि यॆप्पुडुनु मिक्किलि माकुनु वैरि राजु दो
षाकरुँडिक वच्चु जलजातमुलार ! मदीय बालुरन्
जेकॊनुडंचु बालकुल जीकटि दाचिन भंगि जिक्कि रा
राक वसिचॆ दुम्मॆदलु रात्रि सरोरुह कुट्मलंबुलन् ॥ 1294 ॥

सी. प्राची दिशांगना फालतलंबुन दीपिचु सिंदूर तिलकमनग
दर्पिचि विरहुल धैर्यवल्लुलु द्रेंप दर्पकुँडॆत्तिन दात्रमनग
नलिगि कालकिरातुडंधकार मृगंबु खंडिप मॆरयिचु खड्गमनग
गगन तमाल वृक्षमु तूर्पु कॊम्मनु ललितमै मॆरयु पल्लवमनंग

आ. दॊगलु संतसिल्ल दॊंगलु भीतिल्ल
गडलि मिन्नु मुट्टि कडलुकॊनग
बॊडिचॆ शीतकरुडु भूरि चकोरक-
प्रीतिकरुडु जार भीतिकरुडु ॥ 1295 ॥

क. दर्पित ताराधिप परि
सर्पित किरणौघ मिळित सकल दिशंबै
येर्पडि कमलभवांडमु
कर्पूरपु ग्रोविभंगि गनुपट्टॆ नृपा ! ॥ 1296 ॥

कं. आ रेयि गोपयुतुलै, क्षीरान्नमु गुडिचि रामकृष्णुलु मदि गं-
सारंभ मॆरिगि यिट्लु वि, -हारंबुन नप्रमत्तुलै युंडिरिटन् ॥ 1297 ॥

[उ.] भौंरों ने कमल के संपुटो में बंद होकर सारी रात वहीं वास किया; मानों रात्रि ने यह कहकर कि— "हे कमल के फूलो ! तुम्हारा और हमारा वैरी राजा-दोषाकर (चंद्र) अब आनेवाला है, मेरे बच्चों को अपने यहाँ सुरक्षित रखो" —उन्हें (भौंरों को) उन फूलों में छिपा दिया हो । १२९४ [सी.] चकोरों के लिए अत्यंत प्रीतिकर, जारों के लिए भीतिकर (भयदायक), शीतकर (चन्द्रमा) का उदय हुआ; मानों वह प्राचीदिशांगना (पूर्व दिशा रूपी स्त्री) के फालतट (माथे) पर चमकने वाला सिंदूर का तिलक हो, विरहियों के धैर्य रूपी लताओं के काटने के लिए कामदेव का उद्दंडता के साथ उठाया हुआ हँसिया हो; अंधकार रूपी मृग को काटने के लिए काल रूपी क्रुद्ध वधिक के [हाथ में] झलकनेवाला खड्ग हो; गगन रूपी तमाल वृक्ष की पूर्वी शाखा पर चमकनेवाला ललित (कोमल) पल्लव हो । [आ.] चंद्र का उदय होने पर कुमुदों को हर्ष हुआ, चोरों को भय हुआ, समुद्र उमगकर आकाश को छूने लगा । १२९५ [कं.] हे राजन् ! उद्दंड चन्द्रमा के किरण-जाल से घिरा हुआ ब्रह्मांड (सारा विश्व) कर्पूर की डिबिया के समान दिखायी दिया । १२९६ [कं.] उस रात को राम और कृष्ण गोपों के साथ क्षीरान्न (दूध-भात)

कं. तन पुरिकि रामकृष्णुलु
चनुदेंचि निजानुचरुल जंपुटयु महा
धनुवु गदिसि विरुचुटयुनु
विनि कंसुडु निद्रलेक विह्वलमतियै ॥ 1298 ॥

सी. कर्णरंध्रमुलु चेगप्पिन लोपलि प्राणघोषमु विनबडक डिवें
दोयादिकमुलंदु दोंगिचूचुचु नुंड दल गानरादय्ये दनुवुमीद
गरशाख नासिकाग्रंबु पै निडि चूड ग्रहतारकलु रेंडुगा नगपडें
वेंलुगुन निलुचुंडि वीक्षिपगा मेनि नीड सरंध्रमै नेल दोचें

आ. नडुगुजाड दृष्टमौट लेदय्येंनु, दरुवुलेंल्ल हेमतरुवुलगुचु
मेंरयुचुंडे गाल मृत्युवु डग्गर, बुद्धियेंल्ल गलगें भोजपतिकि ॥ 1299 ॥

कं. गरळमु दिनुटयु व्रतमु
बरिरंभिचुटयु नग्नभावुडवुटयुन्
शिरमुन वेंलमु वडुटयु
खरपति नेंक्कुटयु नतडु गललो गनियेंन् ॥ 1300 ॥

व. मरियु रक्त कुसुममालिकाधरुंडै, योंक्करुंडुनु नेंक्कडेनियुं जनुचुन्न वाड

खाकर, अपने मन में कंस के रचे षड्यंत्र पर सोच-विचार करते हुए अप्रमत्त होकर रहे। १२९७ [कं.] अपनी नगरी में राम और कृष्ण के आने, अपने अनुचरों का वध करने और महाधनुष को तोड़ने का समाचार सुनकर कंस निद्रा छोड़ विह्वलमति वाला हो गया (मन में घबड़ा उठा)। १२९८ [सी.] कर्ण-रंध्रों को हाथ में मूंद लेने पर शरीर के अंदर साँस चलने का शब्द उसे सुनाई नहीं दिया, जल आदि में झाँककर देखने पर उसे अपने धड़ पर सिर दिखाई नहीं दिया; नाक पर उँगलियाँ रख देखने पर आकाश में ग्रह और तारे दो-दो करके दीख पड़े; रोशनी में खड़े होकर देखने पर भूमि पर पड़ी अपने शरीर की छाया में सूराख दिखाई दिये; [आ.] जमीन पर अपने पदचिह्न (पैरों के निशान) अदृश्य थे; सभी वृक्ष पीले-पीले होकर दिखाई पड़े; (इस प्रकार) मृत्यु के आसन्न होने के विचार ने भोजराजा (कंस) के मन में क्षोभ उत्पन्न किया। १२९९ [कं.] [पश्चात्] उसने, स्वप्न में स्वयं विष खाने, प्रेत (मृत शरीर) को गले लगाने, नंगे रह जाने, सिर पर तेल के गिरने, और गधे पर सवार होने के दृश्य देखे। १३०० [व.] और भी कंस ने स्वप्न में देखा कि वह स्वयं रक्त-कुसुममालिका (लाल-लाल फूलों की मालाएँ) धारणकर अकेले ही कहीं चला जा रहा है। [अतः] मृत्यु

ननि कल गांचि, मरण हेतुक भीति जिताक्रांतुंडै निद्र जेंदक वेगिंचुचुन्न समयंबुन ॥ 1301 ॥

सूर्योदय वर्णनमु

कं. अरुण हरि नखर विदळित
गुरु तिमिरेभेंद्र कुंभकूट विनिर्मु-
क्त रुधिर मौक्तिकमुलक्रिय
सुरपति दिश गेंपुतोड जुक्कलु मॅरसॅन् ॥ 1302 ॥

सी. पौलोमि तन बालु पाऩ्पुपै गनुपट्ट बन्निन पवडंपु बंति यनग
नायुरर्थंमुल व्ययंबुलौत्तिलि चाटु कालजांघिकु चेतिघंट यनग
घन जंतु जीवित कालरासुल विधि कौल्व नॅत्तिन हेमकुंभ मनग
बश्चिम दिक्कांत बरग गैसेयुचो मुंदर निडुकौन्न मुकुर मनग

ते. कोक तापोपशम दिव्यघटिक यनग
बद्मिनीकांत नोमुल फल मनंग
मूडु मूर्तुल सारंपु मुद्दयनग
मिहिरमंडल मुदयाद्रि मीद नॉप्पॆ ॥ 1303 ॥

के भय के कारण वह चिताक्रांत हुआ, बिना नींद सोये वह [रात भर] जागरण करता रहा। १३०१

सूर्योदय का वर्णन

[कं.] पूर्व दिशा [के आकाश] में नक्षत्र लालिमा के साथ चमक उठे, वे ऐसे लगे मानों अरुण कांति रूपी सिंह के, नखों से अंधकार रूपी गजेंद्र का कुंभस्थल विदीर्ण करने पर उसमें से छूटे हुए रक्तारुण मौक्तिक (मोती) हों। १३०२ [सी.] [इतने में] उदयाचल पर सूर्य का बिंब दिखाई दिया, वह ऐसा लगता था मानों [इंद्र की पत्नी] शचीदेवी ने अपने बालक को दिखाने के लिए विस्तर पर प्रवाल (मूंगों) का गेंद रख दिया हो; [प्राणियों की] आयु और अर्थ (धन आदि) के व्यय हो जाने (घट जाने) का समाचार निश्चित रूप से जतानेवाले समय रूपी जांघिक (वार्ताहार) के हाथ का घंटा हो; प्राणियों के जीवनकाल (ज़िंदगी) के ढेर मापने के निमित्त ब्रह्मदेव का उठाया हुआ हेमकुंभ (सोने का घड़ा) हो; पश्चिम दिक्कांता (दिगंगना) का, अपना अलंकार करते समय सामने रखा मुकुर (आईना) हो; [ते.] कोक (चकवा) के विरह-ताप का उपशम (निवारण) करनेवाली घुटिका (गोली) हो; पद्मिनी

कं. वच्चेँ जल्लनि गाड्पुलु
विच्चेँ गमलमुलु दममु विरिसि बिलंबुल्
चोँच्चेँन् बद्ममरंदमु
मेँच्चेँन् दुम्मेँदलु ग्रोलि मिहिरुडु पोँडमन् ॥ 1304 ॥

कं. संकाशितोदयाचल, पंकजसख किरणराग परिपूर्णंबै
पंकेरुह गर्भांडमु, कुंकुम सलिलंबु क्रोवि कोँमरुन नोँप्पेँन् ॥ 1305 ॥

व. तदनंतरंबुन ॥ 1306 ॥

सी. पाषाण वल्मीक पंकादि रहितंबु मृदुल कांचननिभ मृण्मयंबु
कमनीय कस्तूरिकाजल सिक्तंबु बद्ध चंदनदारु परिवृतंबु
महनीय कुसुमदाम ध्वजतोरण मंडितोन्नत मंच मध्यमंबु
ब्राह्मण क्षत्रादि पौरकोलाहलं बश्रांततूर्य त्रयांचितंबु

आ. निर्मलंबु सममु निष्कंटकंबुनै, पुण्यपुरुषु मनमु बोलि कंस
सैन्य तुंगमगुचु संतुष्ट लोकांत, -रंगमन मल्लरंग मोँप्पे ॥ 1307 ॥

कं. आ मल्लरंग परिसर, भूमिस्थित मंचमंबु भोजेंद्रुंडु मा-
न्यामात्य संयुतुंडे, भूमीशुलु गोँलुव नुंडे बोँक्कुचु नधिपा ! ॥ 1308 ॥

(कमलिनी) स्त्री के मनोती का फल हो; त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के सार का गोला हो। १३०३ [कं.] सूर्य का उदय होने पर, शीतल वायु निकली, कमल विकसित हुए, तम (अँधेरा) गुफाओं में जा छिपा, भौरे पद्म-मकरंद पीकर प्रसन्न हुए। १३०४ [कं.] उदयाचल पर प्रकाशमान सूर्य की किरणों की रक्तिमा (ललाई) से परिपूर्ण होकर विश्व ब्रह्मांड कुंकुम सलिल (जल) से भरी डिबिया के समान सुंदर दिखाई दिया। १३०५ [व.] उसके अनंतर··· १३०६ [सी.] वहाँ पर [राजा के द्वारा] मल्लयुद्ध के लिए एक अत्यंत शोभायमान रंगस्थल (अखाड़ा) निर्मित हुआ, जिसमे पत्थर, बाँबी, कीचड़ आदि नहीं थे, नरम पीली मिट्टी बिछी हुई थी, सुगंधित कस्तूरिका जल का सिंचन हुआ था, चारों तरफ़ चंदनकाष्ठों का घेरा बना हुआ था, जो सुंदर फूलों की मालाओं, ध्वजाओं और तोरणों से सजा हुआ था, जिसके मध्य में ऊँचे मंच बने थे, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पौरजनों का कोलाहल मचा हुआ था, तीनों प्रकार के बाजे लगातार बज रहे थे, जो पुण्यपुरुषों के मन के सदृश [आ.] निर्मल, समान और निष्कंटक बना हुआ था, और जो कंस की सेना के साथ महान और लोगों के हृदयों को संतोष देनेवाला था। १३०७ [कं.] हे राजन् ! उस रंगभूमि के समीप में जो मंच था उस पर भोज नरेश (कंस) अपने अमात्यों के साथ आसीन था, और राजा लोग उसकी

म. सकलांभोनिधि मेखलावहनमुं जालिंचि येतेंचु ना-
ग कुलांगंबुलभंगि नोप्पुचु दगं गैसेसि चाणूर मु-
ष्टिककूटुल् शलतोशलुल् गुरुवुलन् सेविंचुचुन् रंग धा-
त्रिकि नेतेंचिरि तूर्यघोषमुल नुद्रेकं बनेकंबुगन् ॥ 1309 ॥

कं. नंदादुलयिन गोपकु, -लंदरु लनि कानुकलु समर्पिचि नृपुन्
संदर्शिचि तदनुमति, जेंदि महामंचमुल वसिचिरि वरुसन् ॥ 1310 ॥

अध्यायमु—४३

श्रीकृष्णुंडु कुवलयापीडनमुनु वधिंचुट

व. अंत ना रामकृष्णुलु नलंकृतुले, मल्लदुंदुभि निनदंबुलु विनि, संदर्शन-
कुतूहलंबुन ॥ 1311 ॥

कं. ओडक रंगद्वारमु, जाडं जनि चारु गनिरि समद कुवलया-
पीडंबुन् भिन्नपरा, -क्रीडंबुन् ब्रमदकंटकित चूडंबुन् ॥ 1312 ॥

व. कनि तत्करि-पालक-श्रेष्ठुंडयिन यंबष्ठुनिकि मेघनाद गंभीर भाषणंबुल
रिपुभीषणुंडगु हरि यिट्लनियें ॥ 1313 ॥

सेवा कर रहे थे। १३०८ [म.] समस्त भूमंडल का भार वहन् करना (ढोना) छोड़कर, एक साथ चले आनेवाले कुलपर्वतों के समान चाणूर, मुष्टिक, कूट, शाल और तोशल [आदि मल्ल] बन-ठनकर, गुरुओं की वंदना करते हुए, वाद्यघोषों (गाजे-बाजों) के उद्रेक के साथ रंगभूमि में आ डटे। १३०९ [कं.] नंद आदि गोपक उठकर राजा के सम्मुख पहुँचे, उन्हें उपहार समर्पित कर, अनुमति पा मंचों पर कतार में आ विराजे। १३१०

अध्याय—४३

श्रीकृष्ण का कुवलयापीड़ का वध करना

[व.] तब राम और कृष्ण अलंकृत हो, मल्लों का दुंदुभि-निनाद (शब्द) सुनकर, देखने के कुतूहल से [वहाँ जा पहुँचे।] १३११ [कं.] जब वे बिना भय खाये, रंगस्थल के फ़ाटक पर पहुँचे तो उन्होंने कुवलयापीड़ [नामक] मदमत्त गजेंद्र को जो शत्रुओं का आक्रमण छिन्न-भिन्न करनेवाला और जिसका मस्तक मदमत्तता से कर्कश (कंटकित) बना हुआ था। १३१२ [व.] तब रिपुभीषण (शत्रुभयंकर) हरि ने गजपालक (महावत) अंबष्ठ से मेघ-गर्जन के समान गंभीर भाषण में यों कहा : १३१३

शा. ओरी ! कुंजरपाल ! मा दॅसकु नी युद्यन्मदेभेंद्रमुं
ब्रेरेपं वनि लेदु द्रिप्पु मरलं ब्रेरेचिनन् निन्नु गं-
भीरोग्राशनि तुल्य मुष्टिहतुलन् भेदिंचि नेडंतकुं-
जेरंबुत्तु महत्तरद्विपमुतो सिद्धंबु युद्धंबुनन् ॥ 1314 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 1315 ॥

म. मिंचिन कॉप्पु जक्क निडि मेलन पच्चनि चीर कासॅ बं-
धिंचि ललाट कुंतल ततिन् मरलिपुचु संगर क्रिया
चुंचुत बेंचि बालकुडु सूचु जनंबुलु दन्नु बापुरे !
यंचु नुतिंप डग्गरियॅ हस्तजितागमु गंधनागमुन् ॥ 1316 ॥

कं. अंजक बालकु डनियुनु, गॉजक दयमालि राजकुंजरु नाज्ञन्
गुंजरमुन् डीकॉलिपॅनु, गुंजरपालकुडु गोपकुंजरु मीदन् ॥ 1317 ॥

व. मट्टियु, नय्यनेकपंबनेकपालक प्रेरितंबै, महावात संघात समुद्धूतंबगु विलयकाल कीलिकेळिनि विट्टु मिट्टिपडि, मृत्यु देवत यॅत्तुनं, गालुपोलिक, शमनु गमनिक, नॅदिरि, मदसलिल परिमळ लुब्ध परिभ्रमदबभ्र भ्रमरगायक झंकृतुलहंकृति संपादिप, गुलकुंभिनीधर गुहाकुंभ गुंभनंबुग घींकरिंचि, रोषभीषण शेषभोगि भोगभयंकरंबगु करंबुन शौरि जोरि, चोरिकि गॉनक पट्टिन, नट्टिट्टु गिट्टिट, विधुंतुद वदन गह्वरंबु बलन

[शा.] "अरे ! कुंजरपाल (महावत) ! इस मस्त हाथी को हमारी तरफ़ उकसाओ मत, इसे वापस पलटाओ; यदि हम पर चलाया तो तुम्हें और इस गजेंद्र (दोनों) को आज के युद्ध में वज्रतुल्य मुष्टिघातों से मार कर मृत्यु के पास पहुँचा देंगे। यह निश्चय है।" १३१४ [व.] यों कहकर··· १३१५ [म.] बढ़े हुए बालों को ठीक बाँधकर, पीताम्बर की काछनी बनाकर, ललाट पर के कुंतल (बाल) ऊपर उकसाकर, युद्धसन्नद्ध हो कृष्ण उस गंधनाग (मत्तगज) के पास पहुँचा जो अपनी सूँड़ से पहाड़ को भी हटा सकता था। उस बालक को देखनेवाले लोगों ने "बाप रे" कहकर [चकित हो] उसकी प्रशंसा की। १३१६ [कं.] कुंजरपालक (हाथीवान) ने, भय और संकोच छोड़, दयाहीन हो, राजकुंजर (कंस) की आज्ञा से उस कुंजर (हाथी) को गोपकुंजर (कृष्ण) के ऊपर उकसाया। १३१७ [व.] तब वह हाथी महावतों से प्रेरित होकर, महावात-संघात (आँधी) से उकसायी गई प्रलयकाल की अग्नि-शिखा के समान तथा मृत्यु, प्रलयकाल और यम के सदृश तेजी से उछलकर कृष्ण से टकराया। उसके मदजल के परिमल के लोभ में पड़कर चारों तरफ़ मँड़राते हुए भौंरों के झंकार ने उसका अहंकार बढ़ा दिया। उसका चींकार (चिंघाड़ना)

विडिवडि युरुकु तरणि करणि दपिंचि कुप्पिंचि, पादमध्यंबुनकु नसाध्युंडै डूटि दाटि, माटुपडिनं, ग्रोधबंधुरंबै, सिंधुरंबु महार्णवमध्य मंथायमान मंथर महीधरंबु कैवडि, जिरजिरं दिरिगि, कानक, भयानकंबै गालि वॅरबुनं गनि पॉगि, चॅंगटं ब्रळयदंडि वंड प्रशस्तंबगु हस्तंबु वंचि, वंचिंचि, चुट्टि वट्टि, पडवेयं गमकिंचिनं, जलिपक, तॅंपुन हरि करि पिरुंदि कुरिकि, महाराहु वालवल्लिकाकर्षणोदीर्णुंडगु सुपर्णु तॅरंगुन नॅगिरि, शुंडालंबु वालंबुलीलं गेल नॉडिसि पट्टि, जळिपिंचि, पंचविंशति बाणासन प्रमाण दूरंबु बिरबिरं द्रिप्पि वैव, नव्वारणंबु दुर्निवारणबै, रणंबुन कोह्टिपक, सव्यापसव्य परिक्रमणंबुल नवक्रंबै, कविसिन, नपसव्य सव्य क्रमंबुलं दप्पिंचि, रॉप्पि, कुप्पिंचि, यॅवुकॉनिन, कर्कशुंडै, मेचकाचल तुंग शृंग निभंबगु कुंभिकुंभंबु चक्कटि व्रक्कलै, चॅक्क लॅगय, दुरंत कल्पांत जीमूत प्रभूत निर्घात निष्ठुरंबगु मुष्टि सारिंचि, यूचि, पॉडिचिनं,

---

कुलपर्वतों की गुहाओं में भरकर प्रतिध्वनित हुआ। रोष में आये शेषनाग के फण-सदृश भयंकर दिखाई देनेवाली सूँड़ से उस गज ने शौरि (कृष्ण) को घेर लिया, परन्तु वह पकड़ाई में न आकर [सूँड़ को] इधर-उधर हटाकर राहु के मुख से छूटे सूरज के समान कूदकर [हाथी के] पैरों के बीच में दौड़कर छिप गया। उत्कट क्रोध से वह सिंधुर (हाथी) महार्णव (समुद्र) को मथते हुए मंथर पर्वत के समान घुरम-घुरमकर उसे (कृष्ण को) देखने लगा, पर उसे न पाकर वह और भी भयानक बन गया। उस हाथी ने सूँघकर जान लिया कि कृष्ण अपने पैरों के बीच में छिपा है। तब वह प्रलयकाल के यमदंड रूपी सूँड़ झुकाकर इस ताक में रहा कि जैसे ही वह निकले वैसे ही उसे घेरकर गिरा दूँ। पर हरि विचलित न हुआ, साहस के साथ वह हाथी के पीछे की तरफ़ दौड़ा और महाराहु (सर्प) की पूँछ पकड़ बेल की तरह खींच ले चलनेवाले गरुड़ के समान झपटकर उसकी पूँछ दृढ़ता से पकड़ हिलाते हुए उसे पच्चीस धनुओं की दूरी पर फेंक दिया। फिर भी वह वारण (हाथी) दुर्निवारण रहा (रोका नहीं जा सका)। वह सामने से भिड़ने का इरादा छोड़ कभी दायें से और कभी बायें से आक्रमण करता रहा। कृष्ण भी दायें आक्रमण को बायें में रहकर और बायें आक्रमण को दायें में रहकर बचा लेता। फिर उसने कठोर बनकर कल्पांत समय (प्रलयकाल) के प्रचंड बादलों से निकली बिजली-सी अपनी कठोर मुट्ठी तानकर उसके कुंभ-स्थल पर ऐसा आघात किया कि काले पहाड़ के शिखर के समान उसका माथा फट गया और उसके मांसखंड [चारों तरफ़] उड़ गये। उसके फटे कुंभस्थल से गिरकर रक्त-सिक्त-मौक्तिक (मोती) भूमि पर ऐसे बिछ गये जिससे वसुंधरा को संध्या-राग-रंजित तारिकाओं से मंडित

दद्विकीर्ण पूर्ण रक्त सिक्त मौक्तिकंबुलु वसुंधरकु संध्याराग रक्ततारका-च्छन्नंबगु मिन्नु चॆन्नलवरिप, निलुवरिपक, म्रॊगिग, मोकरिलि, म्रॊग्गक दिग्गन नग्गजंबु लेचि, चूचि, ओचि, नडचि संहारसमय समुद्रसंघात संभूत समुत्तुंग भंग संघट्टितंबगु कुलाचलंबुक्रिय ग्रम्मर नम्महाभुजुनि भुजादंडंबुवलन घट्टितंबै, कट्टलुक मुट्टि, नॆट्टि, डीकॊनि, मुम्मरंबुगं गॊम्मुलं जिम्मिन, नम्मेटि चेसुटि मॆरसि, हस्ताहस्ति संगरंबुन गरंबॊप्पि दप्पि बडक नॊप्पिचिन, नकुंठित कालकंठ कठोरभल्ल भग्नंबगु पुरंबु पगिदि, जलधि जटुल झंझानिल विकलंबगु कलंबु कैवडि, नम्मदकलभंबु मबंबु दक्कि, चिक्कि, स्रुक्कु वडि, लोभिकरंबुनं बोलॆ दान सलिलधारा विरहितंबै, विरहि तलंपुनं बोलॆ निरंतर चित्तजात विग्रहंबै, ग्रहणकालंबुनं

आकाश की शोभा मिल गयी। मुष्टिघात सहन न होने से वह हाथी झुककर घुटनों पर खड़ा रहा। फिर झट से उठ, इधर-उधर देख [दुबारा] आक्रमण किया। प्रलय के समय विक्षुब्ध समुद्रों की उत्तुंग तरंगों से जिस प्रकार कुलपर्वत टक्कर खाता है, उसी प्रकार वह गजेंद्र फिर से उस महाभुजबली के भुजादंडों के धक्के खाता रहा। इससे उसका क्रोध और भड़क उठा; जब वह अपने दाँत भोंकने को झपटा तब कृष्ण ने नीचे झुककर अपने को बचा लिया। फिर दोनों ने हस्ताहस्ति (हाथों से) युद्ध किया। कृष्ण ने अत्यंत चातुरी से लड़कर उस हाथी को अनायास ही निस्तेज कर दिया। शिवजी के कठोर भालों की मार से भग्न हुई पुरी के समान, समुद्र में झंझानिल (तूफ़ान) से डगमगाती नौका की भाँति वह मत्तगज निश्शक्त बन गया। उसकी सारी मस्ती उतर गयी; लोभी पुरुष का हाथ जिस प्रकार दान-जल-धारा से शून्य रहता है, उसी प्रकार वह गज दान (मद) जल से शून्य रह गया। जिस तरह विरहीजन की भावना निरंतर चित्तजात (कामवासना) के विग्रह (घर्षण) से भरी रहती, उसी तरह वह गज [बलहीन बन जाने के कारण] चित्तजात (मन में उत्पन्न) विग्रह (क्रोध) से भर गया। वह गज ग्रहणकाल का पराधीन खरकर (सूर्य) बन गया (अर्थात् ग्रहण के समय सूर्य की तेज किरणें पराधीन अंधकार के अधीन हो निस्तेज बन जाती है,) उसी प्रकार कृष्ण के साथ युद्ध में इस गज की कर्कश सूंड़ कृष्ण के अधीन हो जाने से वह निस्तेज हो गया)। खर-कर-उदय के समान वह गज भी भिन्न-पुष्कर हो गया (अर्थात् सूर्योदय का समय विकसित-कमलों वाला होता है और यह गज भिन्न-तुंडाग्र हुआ (सूंड़ का मुंह संघर्ष में टूट गया)। पुष्कर-वैरी के विलसन की भाँति वह गज अभासित-पद्मक बन गया— अर्थात् चंद्रोदय के समय कमल प्रकाशित नही रहते, उसी प्रकार कृष्ण के हाथों चोट खा-खाकर वह गज ऐसा दुर्बल बन गया कि उसके मुख पर के चिह्न (धब्बे)

बोलॅ बराधीन खरकरंबै, खरकरोदयंबुनुं बोलॅ भिन्न पुष्करंबै, बुष्करवैरि विलसनंबुनुं बोलॅ नखासित पद्मकंबै युन्न समयंबुन ॥ 1318 ॥

उ. कालं द्रॊक्कि सलीलुडै नगवुतो गंठीरवेंद्राकृतिन्
गेलन् भीषणदंतमुल् वॅरिकि संक्षीणंबुगा मॊत्ति गो-
पालग्रामणि वीरमौळिमणियै प्राणंबुलं बापॅ ना
शैलेंद्राभमु घ्राणलोभमु नुदंचत्सार गंधेभमुन् ॥ 1319 ॥

व. मरियु, दंतिदंतताडनंबुल दंतावळ पालकुल हरिंचि, तत्प्रदेशंबुल वासि ॥ 1320 ॥

म. करिदंतंबुलु मूपुलंदु सॅरयन् घर्मांबुवुल् मोमुलन्
नॅरयं गोपकुलंत नंत मलयन् नित्याहवस्थेमु ला
हरिरामुल् सनुदेंचि कांचिरि महोग्राडंबरापूरि ता-
मर मर्त्यादि जनांतरंगमु लसन्मल्लावनी रंगमुन् ॥ 1321 ॥

सी. महित रौद्रंबुन मल्लुल कशनियै नरुल कद्भुतमुग नाथुडगुचु
शृंगारमुल बुरस्त्रीलकु गामुडै निजमृत्युवै कंसुनिकि भयमुग
मूढुलु बीभत्समुनु बॊद विकटुडै तंड्रिकि दयराग दनयुडगुचु
खलुलकु विरसंबुगा दंडियै गोपकुलकु हास्यंबुग गुलजुडगुचु

फीके पड़ गये। उस समय… १३१८ [उ.] पैरों से रौंदकर, खेल ही खेल में हँसते हुए कृष्ण ने कंठीरवेंद्र (सिंह) बनकर उस गजेंद्र के दाँत हाथ से उखाड़ दिये। उस गोपाल-ग्रामणि (-मुखिया) ने उन्ही दाँतों से मार-मारकर उसे क्षीण कर दिया। [इस प्रकार] वीर शिखामणि (कृष्ण) ने उस मत्तगज के प्राण हर लिये जो [पहले] शैलेंद्र (पर्वतराज) के समान महाबली था, पर अब सारहीन हो प्राणावशिष्ट हो गया था। १३१९ [व.] अनंतर कृष्ण ने उन्ही दाँतों से मारकर हस्तिपालकों के भी प्राण लिये, फिर वह स्थान छोड़कर, १३२० [म.] पीठ पर चमकते हुए हाथी-दाँतों को रख, मुँह पर बिखरी पसीने की छीटों के साथ, आजू-बाजू में साथ चलनेवाले गोपकों-समेत वे युद्धवीर कृष्ण और बलराम मल्लभूमि पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि वह रंगस्थल (अखाड़ा) अत्यंत आडंबर से सजा हुआ था, और देवों और मनुष्यों से भरा हुआ था। १३२१ [सी.] रंगस्थल में बलराम के संग खड़े होकर कृष्ण [वहाँ के] मल्लो को रौद्ररूप में वज्रपात-सा दिखाई दिया; [दर्शक] जनों को अद्भुत रूप में प्रभु जैसा लगा; पुरस्त्रियों को शृंगार-भाव में कामदेव के समान दिखाई दिया; भयंकर रूप में कंस को निजमृत्यु-सा भासित हुआ; विकटाकार से मूढ़ों में बीभत्सभाव उत्पन्न किया; दया और अनुराग के रूप के पिता (वसुदेव) को पुत्र मालूम

आ. बांधवुलकु प्रेमभासिल्ल वेलुपै
शांतमौनर योगिजनुल कॆल्ल
बरम तत्वमगुचु भासिल्लॆ बलुनितो
माधवुंडु रंग मध्यमंदु ॥ 1322 ॥

व. अप्पुडु ॥ 1323 ॥

कं. चच्चिचन कुंभींद्रंबुनु
वच्चिचन बलमाधवुलनु वरुसं गनि ता
नॊच्चिचन चित्तमुतोडुत
जॆच्चॆर गडु वॆरचॆ भोजसिंहुंडधिपा ! ॥ 1324 ॥

उ. धीरुल वस्त्र माल्य मणि दीप्त विभूषणधारुलन्नटा-
कारुल सर्वलोक शुभकारुल मानव मानिनी मनो-
हारुल रंगभूतल विहारुल गोपकुमारुलन् महा
वीरुल जूचि चूचि तनिविन् मदिमुट्टक लोकुलंबरुन् ॥ 1325 ॥

उ. सन्नुत रामकृष्ण मुख चंद्र मयूख सुधारसंबुलन्
गन्नुल द्रावु चंदमुन गांचुचु जिह्वल नंटि चूचु लो-
लन्नुति सेयुचुन् गरमुलन् बरिरंभण सेयुभंगि न-
त्युन्नति जूपुचुन् दगिलि योंडोरुतोड रहस्यभाषलन् ॥ 1326 ॥

पड़ा; दुष्टों को विरस (कठोर) रूप में दंड देनेवाला शासक जैसा जान पड़ा; हास्यभाव में गोपों को अपना ही कुलज (सजातीय) लगा; [आ.] बंधुओं (संबंधियों) को प्रेम से भासित होनेवाला देवता दिखाई दिया; योगिजनों को शांतिदायक परतत्व-सा मालूम पड़ा। १३२२ [व.] तब··· १३२३ [कं.] हे राजन्! भोज-कुल का सिंह-कंस मृत गजेंद्र को और [मल्लरंग में] आये हुए बलराम और कृष्ण को बारी-बारी से देख, विकल-चित्त हो, सहसा भयभीत हुआ। १३२४ [उ.] धीर, वस्त्र, माल्य-विभूषण-धारी, नटाकारी, सर्वलोकशुभंकर, मानव-मानिनी-मनोहारी, रंग-भूमि-विहारी और महावीर उन गोप-कुमारों को देख-देख लोगों को तृप्ति न मिली। १३२५ [उ.] वे उन्हें ऐसे देखते रहे मानों राम-कृष्ण के मुख रूपी चंद्र की किरणों से [स्रवित] सुधारस को अपने नेत्रों के मार्ग से पी रहे हों, वे उनकी स्तुति करते हुए ऐसा अनुभव कर रहे थे मानों अपनी जीभ से उन कुमारों का स्पर्श कर रहे हों; उठकर [हाथ ऐसा फैला रहे थे] मानों वे उन्हें गले लगा रहे हों। लोग एक-दूसरे से लगकर रहस्य में यों संभाषण करने लगे: १३२६ [कं.] "सुनते हैं कि ये कुमार वसुदेव के घर वसुधा (भूमि) की रक्षा

कं. वसुदेवु निवासंबुन, वसुधन् रक्षिप वीरु वैष्णवतेजो-
लसनमुन बुट्टिनारट, पसिबिड्डलनंग जनदु परदेवतलन् ॥ 1327 ॥

सी. चंपें रक्कसि बट्टि चक्रवातुनि गूल्चें ग्रड ड्रोब्बें मद्दुल बकुनि जीरें
नघ दैत्यु बौरिगोनें नडरि वत्सकु द्रुंचें गिरि येत्ते देवेंद्रु गिंवु परिचें
गाळियु मर्दिचें गहनानलमु द्रावें गेशि नंतकुपुरि कनिचें
मयुपुत्रु बरिमार्चें मरियु दानवभटुल हरिंचि गोपकुलंबु गाचें

ते. गोपकांतल मनमुल कोर्कें दीर्चें
नी सरोरुह लोचनुंडी शुभांगु-
डी महामहुडी दिग्गजेंद्र निभुडु
मनुजमात्रुडें तलपोय माधवुंडु ॥ 1328 ॥

श्रीकृष्ण बलरामुलु चाणूर मुष्टिकुलनु वधिचुट

व. अनि पलिकि, सकल जनुलु सूचुचुंड रामकृष्णुलकु जाणूरुं-
डिट्लनियें ॥ 1329 ॥

म. वनमार्गंबुन गोपबालकुलतो वत्संबुलन् मेपुचुन्
वनगन् मिक्किलि नेर्चिनारनुचु पृथ्वीजनुल् सेप्प मा

करने वैष्णव तेज की शोभा लेकर जन्मे हैं; ये परलोक के देवता हैं, इन्हें छोटे बालक कहना उचित नहीं है। १३२७ [सी.] इन्होंने राक्षसी को मारा, चक्रवात (बवंडर के रूप में तृणावर्त राक्षस) को पकड़ गिराया; अर्जुन (वृक्षों) को ढकेल दिया, बक को चीर डाला; अघासुर के प्राण लिये; वत्सक का वध किया; [गोवर्धन] गिरि उठाकर देवेंद्र को धिक्कारा; कालियनाग का मर्दन किया; दावाग्नि को पी लिया; केशि को यमपुरी भेज दिया; मयपुत्र का अंत कर दिया, दानव भटों (अनुचरों) का नाश करके गोपकुल बचाया; [ते.] गोपिकाओं के मन की वांछा पूरी की; यह माधव, यह सरोरुहलोचन, यह शुभांग, यह महामहिम, यह दिग्गजेंद्र-समान कुमार विचार करने पर मनुष्य मात्र नहीं मालूम होता।" १३२८

श्रीकृष्ण और बलराम का चाणूर-मुष्टिक का वध करना

[व.] यों कह लेने पर, चाणूर ने सबके समक्ष राम और कृष्ण से इस प्रकार कहा : १३२९ [म.] "देश में लोग कहते हैं कि तुमने वन-प्रांत में ग्वालों के साथ गाय चराते हुए मल्लक्रीड़ा भलीभाँति सीख ली है; इसी कारण से हमारे राजा ने तुम लोगों को यहाँ बुला भेजा; क्या यह

मनुजेंद्रडिट मिम्मु जीर बनिचॆन् मल्लाहवक्रीडकुन्
जनदे कॊंत पराक्रमिप मनकुन् सभ्युल् विलोकिपगन् ॥ 1330 ॥

म. जवसत्वंबुलु मेलॆ सामु गलदे सत्राणमे मेनु भू-
प्रवरुं बोसन मिम्मनंगवलॆने पाळीलभोष्टंबुले
पविवो काक कृतांत दंडकमवो फालाक्षु नेत्राग्निवो
नवनीतंबुल मुद्द गादु मॆसगन् ना मुष्टि गोपार्भका ! ॥ 1331 ॥

कं. जनमुलु नेर्चिन विद्यलु
जननाथुनि कॊरकु गादॆ जननाथुडु नी
जनमुलु मॆच्चग युद्धं-
बुन मनमुं गॊंत प्रॊद्दु पुत्तमे कृष्णा ! ॥ 1332 ॥

व. अनिन विनि, हरि यिट्लनियॆ ॥ 1333 ॥

उ. सामुलु लेबु पिन्नलमु सत्वमु गल्दनरादु मल्ल सं-
ग्राम विशारदुल् कुलिश कर्कशदेहुलु मीरु मीकडन्
नेमु चरिंचुटॆटलु धरणीशुनि वेड्कलु सेयुवारमुन्
गामु विनोदमुल् सलुप गादनवच्चुने यॊक्कमाटिकिन् ॥ 1334 ॥

कं. नीतोडुत ने बॆनगॆद, ब्रीतिन् मुष्टिकुनितोड बॆनगॆडि बलुडु-
ग्रातत मल्लाहवमुन, भूतलना थुनिकि मॆच्चु बुट्टितु सभन् ॥ 1335 ॥

उचित न होगा कि हम यहाँ पर मल्लयुद्ध में अपना-अपना पराक्रम थोड़ा दिखा दें जिससे दर्शक लोग देख [आनन्द ले] सकें। १३३० [म.] क्या तुममें [पर्याप्त] देह-बल और स्फूर्ति है ? बदन पर कवच है या नहीं ? राजा से कहकर [तुम्हारे लिए] दूध मँगाऊँ ? अथवा पासा (चौपड़) खेलना तुम्हें पसंद आता है ? अहीर के छोकरे ! मेरा मुष्टिघात (घूंसा) या तो वज्र [प्रहार] है, या यमराज का डंडा है, अथवा फालाक्ष (शिव) की नेत्राग्नि है। वह तो [तेरे खाने के लिए] नवनीत (मक्खन) का लोंदा नही है ! १३३१ [कं.] जन की सीखी विद्या (हुनर) जननाथ (राजा) के निमित्त तो है, हे कृष्ण ! आज हम थोड़ा-सा समय मल्लयुद्ध में बिताएँगे, जिससे राजा और प्रजा हमारी प्रशंसा करेंगे।" १३३२ [व.] यह सुन हरि ने यों कहा : १३३३ [उ.] "[हम लोगों ने] कसरतें नही सीखीं, हम अल्पवयस्क है, यह नहीं कह सकते कि हममें बल-सत्त्व है; तुम लोग तो मल्लसंग्राम-विशारद हो; और वज्र-समान कर्कश देहवाले हो; तुम्हारे सामने हम कैसे टिक सकते है ? तुम्हारे राजा का मन बहलानेवाले भी हम नहीं हैं; हाँ, एक बार [उनके समक्ष] विनोद करने से तो इनकार नहीं कर सकते। १३३४ [कं.] तुम्हारे साथ मैं भिड़

व. अनिन विनि, रोषिंचि, चाणूरुंडिट्लनियॆ ॥ 1336 ॥

शा. नातो बोरग नॆंतवाड विसिरो ना साटिये नीवु ? वि-
ख्यातुंडन् गुलजुंड सद्गुणुड सत्कर्म स्वभावुंड नी
केतादृग्विभवंबुलॆल्ल गलवे यी वोट बोराडुटल्
व्रेतल् जूडग गुप्पिगंतुलिडुटे वीक्षिपु गोपार्भका ! ॥ 1337 ॥

शा. स्थाणुन् मॆच्चडु ब्रह्म गैकॊनडु विष्वक्सेनु नव्वुं जग-
त्प्राणुन् रम्मनडीडुगाडनि महा बाहाबल प्रौढि न-
क्षीणुंडाजिकि नॆल्लि नेडनडु संक्रीडन् विजृंभिंचु न-
च्चाणूरुंडॊक गोपबालु पनिकिन् शक्तुंडु गाकुंडुने ॥ 1338 ॥

कं. प्रल्लदमेटिकि गोपक !, बलिलवुडनु लोकमंदु प्रख्यातुड ना
चल्लडमु क्रिंद दूरनि, मल्लुरु लेरॆंडु धरणिमंडलमंदुन् ॥ 1339 ॥

सी. चलमुन ननु डासि जलराशि जॊररादु निगुडि गोत्रमुदंड निलुवरादु
कॆडिंचि कुंभिनिक्रिंदिकि बोरादु मनुजसिंहुंडनि मलयरादु
चेरिन बडवेंतु जॆय्यि सापगरादु वॆरसि नामुंदट बॆरुगरादु
भूनाथ हिंसकु बोरादु ननु मोरि शोधिंचु गानल जॊरगरादु

जाऊँगा, और मुष्टिक के साथ वलराम प्रीतिपूर्वक लड़ेगा; इस भयंकर मल्लयुद्ध में राजा को और सभा को सन्तुष्ट कर प्रशंसा पाऊँगा।" १३३५ [व.] इसे सुनकर चाणूर ने रोषपूर्वक यों कहा : १३३६ [शा.] "मेरे साथ तुम क्या लड़ोगे ? थू ! तुम कौन बड़े हो ? मेरे बराबर हो क्या ? मैं विख्यात (ख्यातनामा) हूँ। कुलीन, सद्गुणी, और सत्कर्म-स्वभावी हूँ। ऐसा वैभव (बड़प्पन) क्या तुम्हारे पास है ? ऐ गोप-बालक [अच्छी तरह] देख ले ! इस रंगभूमि में मेरे साथ लड़ना ग्वालों के बीच उछल-कूद मचाना नहीं है। १३३७ [शा.] यह चाणूर शिव को बड़ा नहीं मानता, ब्रह्मा की परवाह नहीं करता, विष्णु की हँसी उड़ाता, वायु को अपना समकक्ष न समझता, वाहुवल में असमान है; [युद्ध का बुलावा आने पर] आज और कल कहकर टालता नहीं, अवक्र पराक्रम से लड़ता है। ऐसा चाणूर, एक गोप-बालक का काम तमाम करने में समर्थ नहीं होगा ? १३३८ [कं.] हे गोपक ! बकवास क्यों करता है ? मैं जगत् में प्रख्यात महाबली हूँ, इस भूमंडल पर ऐसा कोई मल्ल नहीं जो मेरे जाँघिया में आकर छिपता नहीं। १३३९ [सी.] मुझसे शत्रुता करके तू, जलराशि (समुद्र) में छिप नहीं सकता [जैसा मत्स्य बनकर किया था]; चलकर पहाड़ के पास रह नहीं सकता [जैसा कूर्म वनकर किया]; हटकर भूमि के नीचे नहीं जा सकता [जैसा वराह बनकर किया]; अपने को नर-सिंह कहकर ऐंठ नहीं सकता [जैसा नृसिंह बनकर किया]; हाथ फैलाकर मेरे पास आया तो तुझे गिरा

आ. प्रबलमूर्ति ननुचु भासिल्लगाराडु
धर प्रबुद्धुड ननि दरुमराडु
कलिकितनमु चूपि गर्विपगाराडु
तरमुगाडु कृष्ण तलगु तलगु ॥ 1340 ॥

व. अदिगाक नीवु श्रीहरि नंटिवेनि ॥ 1341 ॥

सा. महिमतो नुंडग मथुरापुरमु गानि पॊलुपार वैकुंठपुरमु गादु
गर्वंबुतो नुंड गंसुनिसभ गानि संसाररहितुल सभयु गादु
प्रकटिंचि विनग ना बाहुनादमु गानि नारदु वीणास्वनंबु गादु
चदुरुलाडग मल्लजन विग्रहमु गानि रमतोडि प्रणयविग्रहमु कादु

ते. वॆलसि तिरुगंग वेदांतवीथि गादु
मीरुगि पो मुनि मनमुल मूलगादु
सागि नडवंग भक्तुल जाड गादु
शौरि ! नाम्रोल नीवॆंदु जनियॆदिक ॥ 1342 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 1343 ॥

दूंगा, वैसा नही कर सकता, मेरे सामने तू फैलकर बढ नहीं सकता [जैसा वामन बनकर किया]; मुझे तरह देकर (निराकरण करके) तू राजाओं को मार नहीं सकता [जैसा परशुराम बनकर किया था]; काननों (वनों) में घूमता नहीं रह सकता, तुझे खोज निकालूँगा [जैसा श्रीराम बनकर किया]; [आ.] अपने को प्रबल मूर्ति कहकर चमक नहीं सकता [जैसा कृष्ण बनकर किया]; अपने को प्रबुद्ध मानकर भूमि पर विहार नहीं कर सकता [जैसा बुद्ध बनकर किया]; कल्कीपन बताकर घमंड नहीं कर सकता; हे कृष्ण ! [मुझे जीतना] तेरी शक्ति के बाहर है; हट जा। [फिर से कहता हूँ] हट जा। १३४० [व.] यदि तू अपने को हरि (विष्णु) बताता है तो… १३४१ [सी.] महिमा (ऐश्वर्य) के साथ रहने के लिए यह सुंदर वैकुंठपुरी नहीं है, वरन् यह मथुरापुरी है; गर्व का अनुभव करने के लिए यह विरक्तों (सन्यासियों) की सभा नहीं है— कंस का दरबार है; प्रगट में (सभासदों के साथ) सुनने के लिए यह नारद का वीणानाद नही, यह तो मेरे भुजदंड ठोंक बजाने का शब्द है; विनोद करने के लिए यह लक्ष्मी के साथ का प्रणय-कलह नहीं, मल्लजनों से होनेवाला युद्ध है; [ते.] प्रत्यक्ष विचरने के लिए यह वेदांत-वीथी नहीं है; आड़ में रहने के लिए यह मुनिमानसो का कोना नहीं है; चलकर जाने के लिए यह भक्तों का मार्ग नहीं है; हे शौरी (विष्णु) ! अब तू मेरे समक्ष से बचकर कहाँ जायगा ?" १३४२ [व.] इस प्रकार कहकर [वह आगे बढ़ा] १३४३ [सी.] क्रोधपूर्ण चाणूर के सिर पर पतली चोटी अग्नि

सी. रोषाग्नि धूमप्ररोहंबु कैवडि शिरमुन सन्नपु सिग वेलुंग
नाशामदेभेंद्र हस्तसन्निभमुलै बाहुदंडंबुलु भयदमुलुग
लयसमयांतकोल्लसित दंष्ट्रल भंगि जागिन कोऱमीसमुलु मेऱय
नल्लनि तॆगगल नडगोंडचाड्पुन नाभील नीलदेहंबु मेऱय

आ. चरण हतुल धरणि संचलिंपग नभो-
मंडलंबुनिंड मल्लसऱचि
शौरिवॆंसकु नडचॆ जाणूरमल्लुंडु
पौरलोक हृदय भल्लुडगुचु ॥ 1344 ॥

अध्यायमु—४४

व. इट्टग्गलंबगु नग्गलिक डग्गरिन मल्लुनिं गनि, मॆल्लन मॊल्लंबगु वीरंबु वॆल्लिगॊन, वल्लव वल्लभुंडुल्लसिल्ल बाहुनादंबुन रोदोंतराळंबु पूरिंचि, मिंचि, कविसॆ। इट्लिद्दऱु नुद्दविडि नुन्नत विषमंबुलगु ठाणलिडि, करि करियुनु, हरि हरियुनु, गिरि गिरियुनुं दाकुवीकं दलपडि, यितरेतर हेतिहिंसितंबुलगु दवानलंबुल तॆऱंगुन बरस्पर दीर्घ निर्घात घट्टितंबुलगु महाभ्रंबुल विभ्रमंबुन, नन्योन्य तुंग तरंग ताडितंबुलगु कल्पांतकाल

से निकली धूम्र-शिखा के समान झलक रही थी; दिग्गज की सूँड़ के समान उसके बाहुदंड भयंकर दिखाई दे रहे थे; प्रलय-काल के यम की दाढ़ों की तरह उसकी बढ़ी हुई नुकीली मूँछें चमक रही थीं; चलते हुए काले पहाड़ की भाँति उसका भयंकर नीला शरीर जगमगा रहा था; [आ.] उसके पैरों के आघात से धरणी (भूमि) संचलित हुई; बाँहें ठोंकने पर निकला शब्द नभोमंडल (आकाश) में भर गया, पुरजनों के हृदय का भल्ल (भाला, काँटा) बनकर वह मल्ल चाणूर शौरि (कृष्ण) की ओर बढ़ा। १३४४

अध्याय—४४

[व.] अतिशय शौर्यशाली मल्ल को समीप आया देख कृष्ण के मन में उत्कट पराक्रम उमड़ पड़ा; उस गोप-प्रभु ने उल्लसित हो भुजनाद (भुजाओं के ठोंकने के शब्द) से भूमि और आकाश के अंतराल को भर दिया और उस (मल्ल) से भिड़ गया। तब दोनों वेग के साथ सम-विषम चालें चलते हुए लड़ने लगे जैसे हाथी, हाथी से, सिंह, सिंह से, गिरि (पहाड़), गिरि से टकराते हैं। एक-दूसरे की लपटों से नष्ट करनेवाले दावानल की भाँति, बिजली गिराकर परस्पर घट्टित करनेवाले मेघों के समान; उत्तुंग तरंगों से टकरानेवाले कल्पांत (-प्रलय) कालीन समुद्रों की

संमुद्रंबुल रौद्रंबुन, नॊंडॊरुल मुष्टिघट्टनंबुल घट्टित शरीरुलै, दद्दरिलक, डग्गरि, ग्रद्दन, नय्यिद्दरुं दिरुगुनॆड, हरि चॊच्चि, पॆच्चि, यार्चि, जॆट्टिट बट्टि, पडं बिगिचि, पादंबुल जाडिचि, समुल्लासंबुन नॆसकंबुनकु वच्चिन, मॆच्चि, नॊच्चि, यच्चपलुंडु मोरि, मोर सारिंचि, तॆरलक, पॊरलंद्रोब्बिन, नव्वलानुजुंडुद्वि, गॊब्बुन मेनु वर्धिल्ल, नर्धांगकंबुननुंडि, जानुबुल नॊत्तुचु, नुरर्वडि गरवडंबुन नुन्न, ना दुर्नयुंडुनु बाल ! मेलु मेलनि, लीलं गालु सॊरनिच्चि, त्रोचिनं जूचि, येचि, खेचरुलग्गिंचि युग्गडिप, नग्गोपकुमारुंडु पाटवंबुन राटवंबुनकुं जनि, वॆन्नॆक्कि, निक्किन, नक्कंसभटुंडु, मदगज रेखावंधुरंबगु पदंबुनु बवंबुनं, गरंबुनु गरंबुनं ग्रहिंचि, वहिंचि, नैपुण्यंबुन लोपलं दिरिगि, यट्टिट्टु दट्टिचिन, दिट्टतनंबुनं दिटवु दप्पक, यप्पद्मलोचनुंडु, कॆंडिचि, येचि, समरतलंबुन वैचि, प्रचंडंबगु वानि पिचंडंबु वार्गिचि, कालन् गालु गोलिचि, डॊक्करंबु गॊनिन, नय्यभ्यासि, सभ्युलु सन्नुतिपं ग्रम्मरिंचि, जड्डनं गालड्डगिंचि, रक्षिचु कॊनिन, ना रक्षोवैरि, वैरि कटिचेलंबु पट्टिट, यॆत्ति, यॆत्तिन, नडुम रागॆयिडि, संदुवॆट्टिट, नव्विन, नव्विरोधि कालु कालितो निडि, वेंधिचि, निरोधिचिन, निरोधंबु

भयंकरता के साथ, उन दोनों ने एक-दूसरे के शरीरों को मुष्टिघातों से पीड़ित किया। विचलित हुए विना वे दोनो जब उलझ रहे थे, तब हरि दहाड़कर फ़ुर्ती से मल्ल पर झपटा और उसे पकड़कर नीचे गिरा दिया, फिर उस पर पैर झटका कर उल्लास के साथ चढ बैठा। तब उस चपल मल्ल ने— चोट खा कर भी, कृष्ण को सराहा, उसने प्रवल हो, मुँह वाकर कृष्ण को नीचे लुढ़का दिया; तव बलराम के भाई (कृष्ण) ने झट उठकर अपना शरीर बढाया, और अर्धांगक [नामक] चाल चलकर मल्ल के घुटनों को दबाकर चढ़ बैठा। तव उस दुर्नय (दुष्टवुद्धि) चाणूर ने कृष्ण की प्रशंसा करते हुए उसे अपने पैरों के बीच मे बाँधकर नीचे को पलट दिया। तब वह गोपकुमार चक्राकार में घूम-घूमकर नैपुण्य के साथ उस दानव की पीठ पर उछलकर बैठ गया, जिसे देख खेचर (देवता) लोग उसकी स्तुति करने लगे। तव कंस के उस योद्धा ने मस्त हाथी के-से अपने पाँव को कृष्ण के पाँव में, अपने हाथ को उसके हाथ में लपेट कसकर बाँधा और झकझोर कर हिलाया। तव पद्मलोचन कृष्ण ने दृढ़ता से अपने को उसकी पकड़ से छुड़ा लिया, फिर उस दानव को दंगल में पछाड़ कर उसकी पीठ को धमाधम पीटा; और उसका पाँव मरोड़ दिया। तव उस मल्ल ने झट से पलट कर पैर से कृष्ण का पेंच रोक अपने को बचा लिया। इस पर दर्शक लोगों ने उसकी सराहना की। तब कृष्ण ने उस राक्षस-वैरी शत्रु का पटका (कमरबंद) पकड़कर उसे ऊपर उठाया परंतु उस-शत्रु ने मल्ल-

बासि, तिरिगि, वसुदेवु पट्टि, पट्टिसंबु गॅनि, दट्टिचिन, नुब्बरिक चेसि, चाणूरुंडु, हरि करंबु वट्टि, हुम्मनि नॅम्मॊगंबुनं गालिडि, मीदॅनं, गेळिबालकुंडु, कालि गाल निवारिंचि, मीदै, नॅगडि युंडनीक, दुर्वारबलंबुन विदलिंचि, लेचि, गृहीत परिपंथिचरणुंडै, विपक्षुनि वक्षंबु, वज्रि वज्र-सन्निभंबगु पिडिकिटं बॊडिचिन, वाडु, वाडि चॅडक, विजृंभिंचि, पंभोराशि मथनंबुनं दिरुगु शैलंबु पोलिक, नेल जिरजिरं दिरिगि, तन्निन, वॆन्नुंडु, कुप्पिंचि, युप्परं बॅगसि, मीद नुरिकिन, नतंडु, कृष्णपाद संधि परिक्षिप्तपादुंडै, यॆगसि, लेचि, समुद्धतुंडय्यॆ। अय्यॆड ॥ 1345 ॥

कं. बलभद्रुडु मुष्टिकुडुनु
बलमुलु मॆरयंग जेरि बाहाबाहि
ब्रळयाग्नुल क्रिय बोरिरि
वॆलयग बहुविधमुलैन विन्नाणमुलन् ॥ 1346 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 1347 ॥

कं. वल्लवुलु पॆनगिरुन्नत
गल्लुलतो भिन्न दिगिभ करवल्लुलतो
मल्लुलतो रिपुमानस
भल्लुलतो भीत गोपवल्लुलतोडन् ॥ 1348 ॥

बन्ध (पेंच) से उसे वश में कर लिया। अनंतर, वसुदेव-पुत्र (कृष्ण) ने पट्टिस (खाँड़ा) तान कर गर्जन किया तो चाणूर ने चाल चलकर हरि का हाथ थाम लिया और हुंकार कर कृष्ण के मुँह पर लात जमायी। दोनों में प्रचड रूप से हाथापाई हुई। उस लीला-बालक-कृष्ण ने अपने दुर्वार बल-पराक्रम से शत्रु का पैर मरोड़ कर उसके वक्ष (छाती) पर वज्र-समान मुष्टि से आघात किया, किंतु इससे शत्रु का आवेग कम न हुआ। उसने दुर्निवार होकर आक्रमण किया; समुद्र को मथनेवाले शैल के समान रणभूमि में चक्राकार घूमते हुए कृष्ण पर पाद-प्रहार किया। तब कृष्ण सहसा ऊपर हवा में उछलकर उस पर चढ़ बैठा, परंतु वह कृष्ण के पैरों के बीच अपना पैर अड़ाकर उद्धत हो उठा। उस अवसर पर… १३४५ [कं.] बलभद्र और मुष्टिक अपना-अपना बलबूता चमका कर बाहाबाही लड़ते हुए अनेक प्रकार के मल्लबंधों में प्रलयकाल की अग्नियों के समान जूझते रहे। १३४६ [व.] इस प्रकार… १३४७ [कं.] आभीर वीरयोद्धा सिंहनाद करते हुए, दिग्गजों को भी तोड़-फोड़ कर सकनेवाली अपनी [बलिष्ठ] भुजाओं से उन मल्लों के साथ भिड़ गये जो शत्रुओं के मानसों को भालों के समान सालनेवाले, और गोपवृन्द को

व. आ समयंबुनं बौरकांतलु मूकलु गट्टि, वॅच्च नूर्चुचु, मुच्चटलकुं जॊच्चि, तमलो निट्लनिरि ॥ 1349 ॥

उ.　मंचि कुमारुलं गुसुम मंजुशरीरुल दॅच्चि चॅल्लरे !
　　यंचित वज्रसारुलु महाद्रि कठोरुलुनैन मल्लुरं
　　ग्रिंचुल बॅट्टि राजु पॅनगिंचुचु जूचुचुनुन्नवाडु मे-
　　लिंचुक लेदु मानु मनडिट्टि दुरात्मुनि मुन्नु विंटिमे ! ॥ 1350 ॥

कं.　चूचॅदरु गानि सभिकुलु
　　नी चिन्नि कुमारकुलकु नी मल्लुरकु-
　　न्नो चॅल्ल ! यीडु गादनि
　　सूचिपरु पतिकि दमकु शोकमु गादे ॥ 1351 ॥

सी.　वेणुनादमुलमै वॅलसिन माधवुंडधरामृतमुलिच्चि यादरिंचु
　　पिंछ दाममुलमै पॅरिगिन वॅन्नुंडु मस्तकंबुन दालिच मैत्रि नॅरपु
　　पीतांबरमुलमै वॅरसिन गोविंदुडंस भागमुल वायक धरिंचु
　　वैजयंतिकलमै व्रालिन गमलाक्षुडति कुतूहलमुन नऱत दाल्चु

तॆ.　वनरु बृंदावनंबुन दरुलमैन
　　गृष्णुडानंदमुन जेरि क्रीड सल्पु
　　नॅट्टि नोमुल नयिन मुन्निट्टिविधमु
　　लेल कामैतिमो यम्म ! यिक नॅट्लु ? ॥ 1352 ॥

भयभीत करनेवाले थे। १३४८　[व.] उस समय पौरकांताएँ (पुर-स्त्रियाँ) इकट्ठी होकर गरम साँसें छोड़ते हुए, वतकही में लग आपस में यों कहने लगीं : १३४९　[उ.] "हाय री ! इस राजा को तो देखो, कुसुम-[समान] मंजुल (कोमल) शरीरवाले इन भोले कुमारों को लाकर, उन्हें वज्रवली और महा-पर्वत के समान कठोर नीच मल्लों के साथ भिड़ाकर [विनोद] देख रहा है, उन मल्लों को मना नहीं करता, इसमें किंचित् भी अच्छाई नहीं है; ऐसे दुरात्मा राजा पूर्व में कभी सुना नहीं गया। १३५०　[क.] सभिक (सभासद) लोग जो देख रहे हैं, राजा को सुझाते भी नहीं कि इन किशोर कुमारों और उन मल्लों में कोई समता नहीं है; हाय भगवान् ! इन्हें दुख नहीं होता क्या ? १३५१　[सी.] हम [लुगाइयाँ] यदि वेणुनाद (स्वर) बनकर प्रगट होतीं तो माधव (कृष्ण) अधरामृत देकर हमारा आदर करता; पिंछदाम (मोरपंख) होकर वढ़ती तो विष्णु (कृष्ण) अपने मस्तक पर चढ़ाकर स्नेह करता; पीतांबर होकर पास पहुँचती तो गोविन्द अपने कंधे पर अवश्य धारण करता; वैजयंती (माला) होकर उतरती तो कमलाक्ष हमें कुतूहल से गले में पहन लेता; [ते.] सुंदर बृन्दावन में वृक्ष बनती तो कृष्ण आनंदपूर्वक [हम पर चढ़कर] क्रीड़ा

उ. बापपु ब्रह्म ! गोपिकल पल्लॆललोन सृजिपराद मु-
ग्नी पुरिलोपलन् मनल नेल सृजिंच नटैन निच्चलुन्
जेपडु गार्दे यी सुभगु जॆंदॆडि भाग्यमु संतसंबु नी
गोपकुमारु बोंद मुनु गोपकुमारिकलेमि नोचिरो ! ॥ 1353 ॥

कं. गोपाल कृष्णुतोडनु, गोपालन वेळलंदु गूडि तिरुगु ना
गोपालुरॆंत धन्युलो, गोपालुर कॆन निट्टि गुरु रुचि गलदे ॥ 1354 ॥

कं. श्रमजलकण सिक्तंबै
कमल दळेक्षणुनि वदन कमलमु मॆरसॆन्
हिमजलकण सिक्तंबै
कमनीयंबगुचुनुन्न कमलमु भंगिन् ॥ 1355 ॥

आ. सभकु बोव जनदु सभवारि दोषंबु
नॆरिगि यूरकुन्न नॆरुगकुन्न
नॆरिगियुंडियैन निट्टट्टु पलिकिन
प्राज्ञुनैन बॊंदु बापचयमु ॥ 1356 ॥

व. अनि पॆक्कंड्रु पॆक्कु विधंबुलं बलुक दद्बाहु युद्धंबुन ॥ 1357 ॥

करता; अरी माई ! हम लोगों ने कैसी भी मनौतियाँ करके पहले ही ऐसा जन्म क्यों न लिया ? हाय ! अब क्या करें ! १३५२ [उ.] ब्रह्मा पापी है ! उसने हमें ग्वालिनों की बस्ती में क्यों पैदा नहीं किया ? इस नगरी में क्यों जन्म दिया ? यदि वहाँ [उत्पन्न] हुई होतीं तो इस सुंदर [कृष्ण] को प्राप्त करने का भाग्य और संतोष नित्य ही प्राप्त होता। इस गोपकुमार को पाने के निमित्त उन गोपकुमारिकाओं ने पूर्व [जन्म] में न जाने कौन-सा व्रत साधा था। १३५३ [कं.] गाय चराते समय गोपाल कृष्ण के संग मिलकर विचरनेवाले वे गोपाल कितने धन्य हैं ! वैसा महाभाग्य राजाओं को कहाँ मिलता ? १३५४ [कं.] हिम-जल-कण से सिंचा हुआ (भीगा हुआ) कमनीय कमल की भाँति उस कमलदलेक्षण (कमल-नयन कृष्ण) का वदन-कमल श्रमजल कणों (पसीने) से भीगकर शोभित हो रहा है। १३५५ [आ.] सभावालों का दोष जो सदस्य जानता नहीं, जानकर भी [सूचित किये बिना] चुप रहता अथवा कुछ ऐसी वैसी कह कर टाल देता वह प्राज्ञ (विद्वान्) होने पर भी पाप का भागी बनता है। उसे ऐसी सभा में जाना ही नहीं चाहिए।" १३५६ [व.] इस प्रकार कइयों ने कई तरह के वचन कहे। [चाणूर और कृष्ण के] उस बाहु-युद्ध के······१३५७ [कं.] [अन्त में] धैर्य खोकर वह मल्ल (चाणूर) हरि के वश में आ गया जो अतुलित-भवजलधितरी है (संसार का समुद्र

कं. धृति चडि लोबडं मल्लुं-
डतुलित भव जलधि तरिकि हतरिपु पुरिकिन्
जित करिकिन् धृत गिरिकिन्
ततहरि रव भरित शिखरि दरिकिन् हरिकिन् ॥ 1358 ॥

कं. हरिकिनि लोवडि वॆंगडक
हरि युरमु महोग्र मुष्टि नहितुडु वोडुवन्
हरि कुसुममालिका हत
करिभंगि वराक्रमिचॆं गलहोद्धतुडै ॥ 1359 ॥

कं. शौरि नॆंड्रि जौच्चि करमुलु
क्रूरगति वट्टि त्रिप्पि कुंभिनि वैचॆन्
शूरुन् गलहगभीरुन्
वीरुन् जाणूरु घोरु विततकारुन् ॥ 1360 ॥

कं. शोणितमु नोर नोलुकग
जाणूरुंडट्लु कृष्ण संभ्रमणमुन सं-
क्षीणुडै क्षोणि वडि
प्राणंबुलु विडिचॆं गंसुप्राणमु गलगन् ॥ 1361 ॥

कं. बलभद्रुंडुनु लोकुलु
बलभद्रुंडनग वॆंनगि पटु बाहु गतिन्

पार करानेवाली नौका है); हत-रिपु-पुरी है (जिसने शत्रु का नगर नष्ट कर दिया); जित-करी है (जिसने हाथी कुवलयापीड़ को जीत लिया); धृत-गिरि है (जिसने गोवर्धन गिरि को हाथ पर धारण किया); तत-हरिरव-भरित-शिखरि-दरी है (जिसका सिंहनाद पर्वत गुहा को भर देता है)। १३५८ [क.] हरि के वश में आकर भी निर्भय बन उस शत्रु ने जब हरि की छाती में भयंकर घूंसा मारा। तो कुसुम-मालिका से आहत हाथी की भाँति हरि (कृष्ण) ने युद्ध के आवेश से भरकर उस पर आक्रमण किया। १३५९ [कं.] शौरि (कृष्ण) ने झपट कर उसके दोनों हाथ दृढ़ता से पकड़ लिये और घुमा-घुमाकर क्रूरगति से उस चाणूर को धरती पर पटक दिया जो शूर-वीर, कलह-गभीर (युद्ध में भयंकर), और घोर विशालकाय था। १३६० [क.] उसके मुंह से रक्त वह निकला; उसकी शक्ति क्षीण हुई; कृष्ण के हाथों में घुरम-घुरम कर (चक्कर खा-खाकर) उस चाणूर ने भूमि पर गिर प्राण छोड़ दिये। इससे कंस के प्राण विचलित हुए। १३६१ [कं.] [उधर] बलराम, जिसे लोग बलभद्र कहते थे, मुष्टिक के साथ बाहुयुद्ध में उलझ गया। उसके हाथ बलपूर्वक कसकर पकड़ लिये और उसे घुमा-घुमाकर त्रस्त कर दिया। इसे देख इंद्र

बलभेदि मॅच्च द्रिप्पॅनु
बलवन् मुष्टिकुनि गंसु बलमुलु वॅगडन् ॥ 1362 ॥

आ. त्रिप्पि नेलवॅव दिग्गन रक्तंबु
वदन गह्वरमुन वरदवार
मुष्टिकुंडु घोर मुष्टि सत्त्वमु सॅडि
कूलॅ गालि दरुवु गूलिनट्लु ॥ 1363 ॥

कं. पाटवमुन बलु पिडिकिट
सूटि बड बॉडिचॅ बलुडु शोभित घन बा-
हाटोप नृपति कोट्टन्
गूटन् वाचाटु नधिक घोरललाटुन् ॥ 1364 ॥

व. अंत नव्दनुजांतकुंडु, चरण प्रहरणंबुल भिन्न मस्तकुलं जेसि, वानि चॅलुल नंतकांतिकंबुन कनिचिन ॥ 1365 ॥

कं. वल्लव बालकुलनि मन
मल्लवरुलु पॅनगि नेडु मडिसिरि वीरल्
बल्लिदुलु तलडु तलडनि
चॅल्लाचॅदरॅरि पारि चिक्किन मल्लुल् ॥ 1366 ॥

आदि देवता उसकी प्रशंसा करने लगे और कंस के अनुचर भयभीत हुए। १३६२ [आ.] बलराम ने जब घुमा-घुमाकर मुष्टिक को ज़मीन पर दे मारा तो उसके मुँह से रक्त प्रवाहित हुआ और वह सत्त्व खोकर ऐसा ढेर हो गया जैसा हवा के झोंके से वृक्ष धराशायी होता है। १३६३ [कं.] [अनंतर] बलराम ने बड़ी निपुणता से उस कूट (मल्ल) को तानकर ऐसा घूंसा मारा कि वह [छटपटाकर] गिर गया। उस मल्ल का विशाल बाहुदंड राजा [की रक्षा] के लिए दीवार-सा बना हुआ था; वह बड़ा वाचाल (बातूनी) था और उसका माथा विकृत आकार का था। १३६४ [व.] तब उस दनुजांतक (कृष्ण) ने अपने पाद-प्रहारों से कूट के साथियों का मस्तक फोड़ उन्हें यमसदन भेज दिया। १३६५ [कं.] बाकी बचे मल्ल वीरों ने कहा कि इन्हें अहीर बालक समझ हमारे मल्लश्रेष्ठ इनसे लड़ पड़े और सबके सब मर गये, किंतु ये बालक नहीं, बड़े ही बलवान वीर है; [अतः] यहाँ से हट जाओ, भागो। यों कहते हुए वे सब तितर-बितर होकर भाग खड़े हुए। १३६६

श्रीकृष्णुंडु कंसुनि वधिचुट

उ. मल्लुर जंपि गोपक समाजमुलो मृगराजु रेख शो-
भिल्लग बादपद्ममुल बॆल्लुग नंदॆलु म्रोय वच्चु ना
वल्लवराज नंदनुल वारक चूचि महीसुराडु ल-
ल्लल्लन संस्तुतिचिरि प्रियंबुग गंसुडु दक्क नंदरुन् ॥ 1367 ॥

व. अंत सभाजनंबुल कलकलंबु निवारिंचि, मंत्रुलं जूचि, कंसुं-
डिट्लनियॆ ॥ 1368 ॥

म. वल्लव बालुरन् नगरिवाकिटिकिन् वॆडलंग द्रोब्बुडी
गोल्लल मुट्टिकोल्गोनुडु क्रूरुनि नंदुनि गट्टुडुर्विकिन्
दॆल्लमुगाग नेडु वसुदेवुनि जंपुडु तंड्रिगाडु वी
डॆल्लविधंबुलन् बरुल किच्चुडु कावकुडुग्रसेनुनिन् ॥ 1369 ॥

व. अनि पलुकु समयंबुन ॥ 1370 ॥

शा. जंघालत्वमुतो नगोपरि चरत्सारंग हिंसेच्छ नु-
ल्लंघिपं गर्मकिचु सिंहमुक्रियन् लक्षिंचि, पौरप्रजा-
संघातंबुलु तल्लडिल्ल हरि कंस प्राणहिंसार्थियै
लंघिचॆन् दमकंबु मीदिकि रयोल्लासंबु भासिल्लगन् ॥ 1371 ॥

श्रीकृष्ण का कंस का वध करना

[उ.] मल्लों का अंत कर देने के बाद वल्लवों की सभा में मृगराज (सिंह) के समान शोभित हो रहे उन वल्लवराजनंदनों (राम और कृष्ण) को, चरण-कमलों के नूपुरों की ध्वनि के साथ चले आते निहारकर सभा के ब्राह्मण आदि सदस्य— एक कंस को छोड़कर सब के सब संतोष के साथ उनकी संस्तुति करने लगे। १३६७ [व.] तब सभा में उपस्थित जनों का कोलाहल रोककर मंत्रियों को लक्ष्य करके कंस ने यों कहा :— १३६८ [म.] "इन ग्वालों के छोकरों को नगर के फ़ाटक के बाहर खदेड़ दो; इन अहीरों पर आक्रमण करो; क्रूर नंद को बाँध दो; आज वसुदेव का अंत कर दो जिससे पृथ्वी पर के लोग जान जायँ; यह उग्रसेन मेरा पिता नहीं, यह हर तरह से परायों का भला करता है, इसे बचाकर मत रखो।" १३६९ [व.] [कंस के] यों कहते समय··· १३७० [शा.] पहाड़ पर चरते हुए हिरनों पर वेग से झपटनेवाले सिंह के समान कृष्ण वेग के साथ कंस का प्राण हरण करने के निमित्त मंच पर लाँघ चला; उसका यह अतिशय रणोत्साह देख पौर-प्रजा का कलेजा धक से हो गया। १३७१ [कं.] यादवकुल-श्रेष्ठ— कृष्ण को मंच पर उछल आते

कं. तमगमुन कंगुरु यदु स-
त्तम गण्युनि जूचि खड्गधरुडै येंदिरि
वम गमिवारलु वीरो-
त्तमगण विभुडनग गंसधरणीपतियुन् ॥ 1372 ॥

शा. पक्षींद्रुंडुरगंबु बट्टु विधमोप्पन् गेशबंधंबु लो-
कक्षोभंबुग बट्टि मौळिमणु लाकल्पांतवेळा पत-
न्नक्षत्रंबुलभंगि राल रणसन्नाहंबु डिंदिंचि रं-
गक्षोणि बड द्रोचे गृष्णुडु वेसन् गंसुन् नृपोत्तंसुनिन् ॥ 1373 ॥

शा. मंचाग्रंबुन नुंडि रंगधरणी मध्यंबुनं गूलि ये
संचारंबुनु लेक चिविक जनुलाश्चर्यंबुनं बोंदगा
बंचत्वंबुनु बोंदियुन्न विमतुन् बद्माक्षुडीड्चेन् वडिन्
बंचास्यंबु गजंबु नीड्चु पगिदिन् बाहाबलोल्लासियै ॥ 1374 ॥

कं. रोष प्रमोद निद्रा, भाषाशन पान गतुल बायक चक्रिन्
दोषगति जूचियैन वि, शेषगतिन् गंसुडतनि जेंदे नरेंद्रा ! ॥ 1375 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 1376 ॥

कं. गोपालुडोक्कडहिर ! भूपालकु जंपे वीनि बोंडुवुंडेत-
द्रू पालस्यमु लेलनि, तापानल रोषुलगुचु दर्पोद्धतुलै ॥ 1377 ॥

देखकर कंस-धरणी-पति (राजा कंस) ने— जिसे उसके साथी उत्तम वीरों का गणनायक कहते थे— खड्गधारी हो, कृष्ण का सामना किया। १३७२ [शा.] तब कृष्ण ने कंस का केशबन्ध (जूड़ा) यों पकड़ लिया जैसा पक्षीद्र (गरुड़) सर्प को पकड़ लेता है, जिसके कारण लोक में खलबली मची हुई थी। उस नृपश्रेष्ठ— कंस को कृष्ण ने— उसका सारा रणोत्साह विफल करता हुआ रंगस्थल पर पछाड़ दिया। [चोटी पकड़कर खींचते समय] कंस के किरीट की मणियाँ इस प्रकार नीचे गिर गयीं जैसे कल्पांत (प्रलय के) समय में आकाश से नक्षत्र गिर पड़ते हैं। १३७३ [शा.] मंच के शिखर से गिरकर रंगभूमि के बीच निश्चल रूप से ढेर बनकर कंस पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त हुआ; उसे देख लोग आश्चर्यचकित हुए; पद्माक्ष (कृष्ण) ने उस विमति (मूर्ख) कंस को, अपना बाहुबल दिखाता हुआ यों घसीटा जैसा पंचास्य (सिंह) गज को खींच ले जाता है। १३७४ [कं.] हे राजन्! कंस क्रोध, आनंद, संभाषण, खानपान आदि की सभी अवस्थाओं में निर्विराम, दुष्ट भावना से ही सही, चक्री कृष्ण का ही चिंतन करता रहा, [अत.] वह अंत में कृष्ण-गति को ही पहुँच गया। १३७५ [व.] उस समय··· १३७६ [कं.] "लो! अकेले एक ग्वाले ने भूपाल (राजा) को मार डाला; इसे पकड़कर मारो,

शा. न्यग्रोधुंडुनु गह्वुडुन् मोदलुगा नानायुधानीक सा-
मग्रिन् गंसुनि सोदरुल् गवियुडुन् माद्यद्गजेंद्राभुडै
युग्रुंडै परिघायुधोल्लसितुडै योंडोंड चेंडाडि का-
लाग्र क्षोणिकि बंचे रामुडु गरीयस्थेस्मुडै वारलन् ॥ 1378 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 1379 ॥

कं. चेतुल दाळमु लोत्तुचु, जेतो मोदंबुतोड सिगमुडि वीडन्
बातरलाडुचु मिटनु, गीतमु नारदुडु वाडे गृष्णा ! यनुचुन् ॥ 1380 ॥

कं. वारिजभव रुद्रादुलु
भूरि कुसुमवृष्टि गुरिसि पोगडिरि कृष्णुन्
भेरुलु म्रोसेनु निर्जर
नारुलु दिवि नाडिरधिक नटनमुल नृपा ! ॥ 1381 ॥

व. अंत गंसादुल कांतलु भर्तृमरण दुःखाक्रांतलै, करंबुल शिरंबुलु मोदुकोनुचु, नश्रुधारा परिषिक्त वदनलै, सदनंबुलु वेलुवडि वच्चि, वीरशय्या निद्रितुलयिन विभुलं गौगिलिचुकोनि, सुस्वरंबुल विलपिंचिरि। अंदु गंस भार्यलिट्लनिरि ॥ 1382 ॥

सी. गोपाल सिंहंबु कोपिंचि वेलवडि निनु गजेंद्रुनि भंगि नेडु गूल्चे
यादवेंद्रानिल माभील जवमुल निनु महीजमु माड्कि नेल वाल्चे
वासुदेवांभोधि वारि युद्रुलसै निनु दीवि कैवडि नेडु मुंचे
देवकी सुत वज्रि देवतललरंग निनु गोंडक्रिय नेडु निहतु जेसे

अब देरी क्यों ?" यों कहते हुए ताप, रोष और दर्प से उद्यत होकर… १३७७ [शा.] न्यग्रोध और गह्व आदि कंस के भ्राता लोगों ने अस्त्र-शस्त्र ले आक्रमण किया तो अत्यंत बलवान बलराम ने मस्त गजेंद्र-सम उग्र होकर परिघ (गँड़ासा) लेकर एक-एक को आहत कर सब को यमलोक पहुँचा दिया। १३७८ [व.] उस अवसर पर… १३७९ [कं.] हाथ से करतार बजाते हुए, मन में मोद भरकर, छूटी चोटी के साथ नाचते हुए नारद आकाश में कृष्ण को संबोधित कर गीत गाने लगा। १३८० [कं.] ब्रह्मा, रुद्र आदि [देवताओं] ने कुसुम बरसा कर कृष्ण को सराहा; भेरियाँ बज उठीं; हे राजन् ! अंतरिक्ष में देवनारियों ने अनेक प्रकार के नृत्य किये। १३८१ [व.] तब कंस आदि की पत्नियाँ भर्तृमरण के दुःख से आक्रांत हो, हाथों से सिर पीटते हुए, अश्रुधारा-परिषिक्त-वदन होकर अपने घरों से बाहर निकल आईं; उन्होंने वीर-शय्या पर निद्रित अपने पतियों का आलिंगन कर सुस्वरों में विलाप किया। उनमें कंस की स्त्रियों ने यों कहा : १३८२ [सी.] "आज गोपालसिंह

ते. हा ! मनोनाथ ! हा वीर ! हा महात्म !
हा महाराज ! नी विट्लु हतुडवयिन
मनुचु नुन्नार मवकट ! मम्मु बोलु
कठिन हृदयलु जगतिपै गलरॆ यॆंदु ॥ 1383 ॥

क. भूतमुल कॊग्गु सेसिन
भूतंबुलु नीकु नॆग्गु बुट्टिचॆ वृथा-
भूतमगु मनिकि यॆल्लनु
भूतद्रोहिकिनि शुभमु बॊंददधीशा ! ॥ 1384 ॥

कं. गोपाल कृष्णुतोडनु
भूपालक ! मुन्नु दॊडरि पोलिसिन वारिन्
नीपाल बुधुलु सॆप्परॆ
कोपालस्यमुलु विडिचि कॊलुवं दगदे ? ॥ 1385 ॥

श्रीकृष्णुंडु देवकीवसुदेवुल चॆर माग्पि युग्रसेनुनिकि पट्टमु कट्टुट

व. अनि विलपिंचुचुन्न राजवल्लभल यूरार्चि, जगद्वल्लभुंडयिन हरि

कुपित हो निकल आया और गजेंद्र-सम तुम्हें धराशायी किया, यादवेंद्र (कृष्ण) रूपी अंधड़ ने भयंकर झोंके से वृक्ष के समान तुम्हें ज़मीन पर गिरा दिया; वसुदेव (कृष्ण) रूपी समुद्र-जल ने उमड़कर बाँध तोड़ द्वीप-सम तुम्हें आज डुबो दिया; देवकी-पुत्र रूपी इन्द्र ने, देवताओं को प्रसन्न करते हुए, पर्वत के समान तुम्हें तोड़ दिया; [ते.] हाय मनोनाथ ! हा वीर ! हा महात्मा ! हा महाराज ! तुम तो निहत हुए, पर हाय ! हम अभी जीवित ही हैं ! हमारे समान कठिन हृदयवाले जग में कहीं नहीं होंगे। १३८३ [कं.] तुमने भूतों (प्राणियों) का अपकार किया अतः उन्हीं ने तुम्हारा अपकार कराया; जो भूतों के प्रति द्रोह करेगा उसका सारा जीवन व्यर्थ जायगा, हे राजन् ! उसे कभी शुभ प्राप्त न होगा। १३८४ [कं.] हे भूपाल ! गोपाल कृष्ण का जिन्होंने अब तक विरोध किया उन सबका विनाश हो चुका, बुद्धिमानों ने यह बात तुम्हें बता ही दी, तुम्हारे लिए कोप और आलस्य छोड़ कर कृष्ण का मान करना उचित था।" १३८५

श्रीकृष्ण का देवकी-वसुदेव को कारा से मुक्त करना
और उग्रसेन का राजतिलक करना

[व.] यों विलाप कर रही राजपत्नियों को सान्त्वना देकर,

कंसादुलकु बरलोक संस्कारंबुलु सेयं बनिचि, देवकी वसुदेवुल बंधनंबु विडिपिंचि, बलभद्र सहितुंडयि, वारलकु प्रणामंबुलु सेसिन ॥ 1386 ॥

अध्यायमु—४५

म. कनि लोकेशुलु गानि वीरु कॊडुकुल् गारंचु जित्तंबुलन्
जनयित्री जनकुल् विचारपरुलै शंकिप गृष्णुंडु दा
जनसम्मोहिनियैन माय ददभिज्ञानंबु वारिंचि यि-
द्दलनियॆन् साग्रजुडै महाविनतुडै यानंद संधायियै ॥ 1387 ॥

सी. मम्मु गंटिरि गानि मा बाल्य पौगंड कैशोर वयसुल गदिसि मीर-
लॆत्तुचु दिपुचु नॆलमि मन्निपुचुनुंडु सौभाग्यंबुलॊंबरेति-
राकांक्ष गलिगियुन्नदि दैवयोगंबु तल्लिदंड्रलयॊद्द दनयुलुंडि
यॆ यवसरमुन नॆब्भंगि लालितुलगुचु वधिल्लुदुरट्टि महिम

ते. माकु निन्नाळ्ळु लेदय्यॆ मरियु विनुडु
निखिल पुरुषार्थ हेतुवं नॆगडुचुन्न
मेनिकॊव्वारलाढ्युलु मीर कारॆ
या ऋणमु दीर्प नुर्रेड्लकैन जनदु ॥ 1388 ॥

जगद्वल्लभ (जगत्-पति) हरि ने कंस आदि [मृतकों] का परलोक-संस्कार करवाया; फिर देवकी और वसुदेव को बंधन से मुक्त करवाकर बलभद्र के साथ जाकर उनको प्रणाम किया। १३८६

अध्याय—४५

[म.] [राम और कृष्ण को] देखकर उनके माता-पिता ने चित्त में यह सोचकर शंका की कि ये दोनों हमारे पुत्र नहीं हैं; कृष्ण ने अपनी जनसम्मोहिनी माया के द्वारा उनका वह अभिज्ञान दूर किया और अग्रज (बड़े भाई) के साथ मिलकर अत्यंत विनीत और आनंददाता होकर उनसे यों कहा : १३८७ [सी.] "आप लोगों ने हमें केवल जन्म दिया, किंतु हमारी बाल्य, पौगंड और किशोर अवस्थाओं में हमें [गोदी में] उठाने-उतारने, संतोष से हमारा लालन करने का सौभाग्य आप पा न सके; आकांक्षा रहते हुए भी दैवयोग से वह [अवसर] आपको प्राप्त न हुआ। पुत्र अपने माता-पिता के पास रहकर भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न रीतियों से लालित-पालित हो, बड़े होते है, [ते.] किंतु हमें तो वैसा सुयोग इतने दिनों तक मिला ही नहीं। और सुनिये, समस्त पुरुषार्थों के लिए कारण (साधन)-भूत होकर बढ़ते रहनेवाले हमारे शरीरों के स्वामी

कं. चॅल्लुबडि गलिगि यॅव्वडु
तल्लिकि दंड्रिकिनि देह धनमुल वृत्तुल्
सॅल्लिपडट्टि कष्टुडु
प्रल्लदुडामीद नात्मपललाशियगुन् ॥ 1389 ॥

क. जननी जनकुल वृद्धुल, दनयुल गुरु विप्र साधु दारावुल ने
जनुडु घनुडय्यु ब्रोवक, व नरुनु जीवन्मृतुंडु वाडु धरित्रिन् ॥ 1390 ॥

व. अदियुनुं गावुन ॥ 1391 ॥

शा. काराशालल मा निमित्तमु मिमुं गंसुंडु गारिपगा
वारिपंग समर्थतल् गलिगियुन् वारिपगाराक नि-
ष्कारुण्यात्मुलमैन क्रूरुल महा कौटिल्य संचारुलन्
सारातिक्षमुलार ! मम्मु गॉइतल् सैरिचि रक्षिपरे ॥ 1392 ॥

व. अनि यिट्लु माया मनुष्युंडयिन हरि पलिकिन पलुकुलकु मोहितुलै, वारल नंकपीठंबुल निडुकॉनि, कौगिलिचुकॉनि, कन्नीटं वडुपुचु, प्रेमपाश-बद्धुलयि, देवकी वसुदेवुलूरकुंडिरि। अंत वासुदेवुंडु मातामहुंडयिन युग्रसेनुनि जूचि ॥ 1393 ॥

(संपत्ति के अधिकारी) और कौन हैं ? आप ही तो है ! आपका वह ऋण सौ वर्षों में भी चुकाये नहीं चुकता। १३८८ [कं.] क्षमता (सामर्थ्य) रखते हुए भी जो मनुष्य माता-पिता को अपनी देह, धन और समस्त व्यापार अर्पित कर सेवा नहीं करता, वह कर्कश और दुष्ट अपने शरीर का मांस ही खानेवाला बनता है। १३८९ [कं.] जो जन अपने जननी-जनक (माता-पिता), वृद्ध, पुत्र, गुरु, विप्र (ब्राह्मण), साधुजन और पत्नी आदि का पालन-पोषण न कर दीनता प्रगट कर रोता रहता है, वह बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, इस धरती पर जीते हुए भी मरे हुए के समान है। १३९० [व.] इसके अतिरिक्त··· १३९१ [शा.] हमारे कारण से कंस आप लोगों को कारागार में रख जब बाधित कर रहा था, तब उसे रोकने की सामर्थ्य रखकर भी वैसा न करके हम [दोनों] करुणाहीन, क्रूर और कुटिल-वर्तन बने रहे; हे अत्यंत बलसमर्थ [माता-पिता] ! आप हमारी अपकृति सहन कर हमारी रक्षा कीजिए।" १३९२ [व.] इस प्रकार उस मायामानुष हरि के कहे वचन सुन, मोहित हो, देवकी-वसुदेव ने उसे अंकपीठ पर बिठाकर, गले लगाया और आंसुओं से भिगोया; वे दोनों प्रेम के पाश में बद्ध होकर अवाक् रह गये। तब वासुदेव (कृष्ण) ने अपने मातामह (नाना) उग्रसेन को देखकर··· १३९३ [चं.] "हे पुण्यशील ! ययाति के शाप के कारण [हम] यादववंशी वीरों के लिए राजसिंहासन पर रहना मना है;

चं. अनघ ! ययाति शापमुन यादववीरुलकुन् नरेश्वरा-
सनमुन नुंडराडु नृपसत्तम राजवु गम्मु भूमिकिन्
निनु गॊलुवंग निर्जरुलु नी करिवॆट्टॆदुरन्यराजुलं
वनिगॊनुटॆंत रम्मु जनपालनशीलिवि गम्मु वेड्कतोन् ॥ 1394 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 1395 ॥

कं. मन्निंचि राजु जेसॆनु, वॆन्नुडु सत्यावधानु विश्रुतदानुन्
सन्नुत मानुन् गदन, -च्छिन्नाहित सेनु नुग्रसेनुन् दीनुन् ॥ 1396 ॥

व. तदनंतरंब, तॊल्लि कंसभीतुलयि, विदेशंबुलं गृशिपुचुन्न यदु वृष्णि भोज मरु दशार्ण कुकुरांधक प्रमुखुलगु सकल ज्ञाति बंधुलनु रांविचि, वित्तंबुललर वित्तंबुलिच्चि, वारि वारि निवासंबुल नुंड नियमिंचॆ । इव्विधंबुन ॥ 1397 ॥

कं. मधुसूदन सत्करुणा, मधुरालोकन विमुक्त मानस भयुलै
मधुरवचनमुल दारुनु, मधुरानगरंबु प्रजलु मनिरि नरेंद्रा ! ॥ 1398 ॥

व. अंत नॊक्कनाडु संकर्षण सहितुंडयि, नंदुनि जेरि, गोविंदुं-डिट्लनियॆ ॥ 1399 ॥

शा. तंड्रि जूडमु तल्लि जूडमु यशोदा देवियुन् नीवु मा
तंड्रि दल्लियुनंचु नुंडुदुमु सद्धर्मंबुलं दॊल्लि ये

अत: हे नृपश्रेष्ठ ! तुम इस धरती का पालक बनो, देवता भी कर देकर तुम्हारा सम्मान करेंगे; अन्य राजाओं को [सामंत बनाकर] नियुक्त करना कौन बड़ी बात है ? आओ, सहर्ष तुम लोकजनपालक (राजा) बनो ।" १३९४ [व.] यों कहकर " १३९५ [कं.] कृष्ण ने उस उग्रसेन को सम्मानपूर्वक राजा बनाया जो [अब तक] दीन बना हुआ था, किंतु जो सत्यनिष्ठ, विश्रुत (प्रसिद्ध) दानी, सन्नुत और मान्य था, और जिसने शत्रुसेनाओं को युद्ध में छिन्न-भिन्न कर दिया था । १३९६ [व.] अनंतर उसने, यदु, वृष्णि, भोज, मरु, दशार्ण, कुकुर, अंधक आदि अपने समस्त ज्ञातिबंधुओं को, जो पूर्व में कंस से त्रस्त हो विदेशों में जाकर कृश हो रहे थे, बुलवाया, उन्हें धनद्रव्य देकर प्रसन्न-चित्त किया, और उन्हें अपने-अपने निवासों में नियुक्त किया (बसाया) । इस प्रकार— १३९७ [कं.] हे नरेंद्र ! मधुसूदन (कृष्ण) की [दिखायी] करुणा, मधुर आलोकन (दृष्टि) तथा मधुरवचनों के द्वारा मथुरा नगर की प्रजा के मानस भयविमुक्त हुए और वे लोग सुख से निवास करने लगे । १३९८ [व.] तब एक दिन संकर्षण (बलराम) सहित हो, नंद के पास पहुँच उससे गोविंद ने यों कहा : १३९९ [शा.] हमने न माता को देखा, न पिता को, अब तक

तंड्रुल् बिड्डुल निट्लु पेंचिरि भवत् सौजन्य भावंबुलन्
दंड्री ! यितटिवारमैतिमि गदा तत्तद्वयोलीललन् ॥ 1400 ॥

उ. इक्कडनुन्न बांधवुलकेल्लनु सौख्यमु सेसि वत्तु मे-
मक्कडिकिन् मदीयुलकु नंदड्रिकिन् विनुपिंपुमय्य ! ने
मॆक्कडनुन्न माकु मदि नॆन्नडु बायवु मो व्रजंबुलो
मक्कुवतोड मीरु कृप मार्कोनरिंचु क्रिया विशेषमुल् ॥ 1401 ॥

व. अनि पलिकि, वस्त्र भूषणादुलॊसंगि, सादरंबुनं गौगिलिचुकोनि, गोविंदुं-
डनिचिन, नंदुंडु प्रणयविह्वलुंडयि, बाष्पजलपूरित लोचनुंडगुचु
वल्लवुलुं, दानुनु व्रेपल्लेकुं जनियें। अंत ॥ 1402 ॥

रामकृष्णु लुपनीतुलै काशीपट्टणमुनकुं जनि विद्याभ्यासमु जेयुट

कं. गर्गादि भूसुरोत्तम, -वर्गमुचे नुपनयनमु वसुदेवुडु स-
न्मार्गंबुन जेयिंचॆनु, निर्गर्व चरित्रुलकुनु निज पुत्रुलकुन् ॥ 1403 ॥

कं. द्विजराज वंशवर्युलु, द्विजराज मुखांबुजोपदिष्ट व्रतुलै
द्विजराजत्वमु नॊंदिरि, द्विज राजादिक जनंबु दीविपंगन् ॥ 1404 ॥

यशोदादेवी को माता और आपको पिता समझते हुए हम बड़े हुए; किसी भी माता और किसी भी पिता ने आज तक बच्चों को इतने धर्म के साथ पाला-पोसा न होगा जैसा आप लोगों ने किया। हे बाबा ! आप लोगों के सौजन्य के कारण ही हम दोनों, अवस्थानुकूल खेल-कूद (लीलाएँ) करते हुए इतने बड़े हो गये। १४०० [उ.] यहाँ पर के सब बांधवों को सुख पहुँचाने के बाद हम उधर [वापस] आयेंगे; आप यह संवाद मेरे अपने आत्मीयों को सुनाइयेगा। व्रज में आप लोगों ने प्रेम और कृपापूर्वक हमारे साथ जो जो विशेष उपकृतियाँ की थीं, वे सब (उनकी स्मृति) हमारे मन से कभी दूर नही होंगी— चाहे हम कहीं भी रहें। १४०१ [व.] यों कहकर वस्त्र-आभूषण आदि देकर सादर आलिंगन करके गोविंद ने जब बिदा किया, तो नंद प्रेम-विह्वल हो गया, उसके लोचन (नेत्र) बाष्प-जल-पूरित हुए, फिर वल्लव और आप गोकुल के लिए रवाना हुए। अनंतर… १४०२

राम और कृष्ण का उपनीत हो काशीपट्टन पहुँच विद्याभ्यास करना

[कं.] वसुदेव ने गर्ग आदि भूसुरोत्तम (ब्राह्मण) वर्ग के द्वारा निगर्व-चरितवाले अपने पुत्रों का उत्तम विधिपूर्वक उपनयन-संस्कार करवाया। १४०३ [कं.] द्विजराज (चंद्र) कुल-श्रेष्ठ राम और कृष्ण ने द्विजराजों (ब्राह्मणोत्तमों) के मुखकमल से उपदेश प्राप्त कर

व. उपनयनानंतरंबुन वसुदेवुंडु, ब्राह्मणुलकु सदक्षिणंबुलुगा ननेक गो हिरण्यदानंबुलॊसंगि, तॊल्लि रामकृष्णुल जन्मसमयंबुनंदु निज मनोवत्स-लयिन गोवुल नुच्चरिंचि यिच्चि, कामितार्थंबुल नर्थुलकुं बॆट्टॆ। इट्लु ब्रह्मचारुलै ॥ 1405 ॥

शा. उर्विन् मानवुलॆव्वरैन गुरु वाक्योद्युक्तुलै कानि त-
त्पूर्वारंभमु सेय बोल दनुचुन् वोधिचुचंबंबुनन्
सर्वज्ञत्वमुतो जगद्गुरुवुलै संपूर्णुलै युंडियुन्
गुर्वंगीकरणंबु सेय जनिरा गोविंदुडुन् रामुडुन् ॥ 1406 ॥

व. चनि महावैभवराशियैन काशि जेरि, तत्तीरंबुन नवंतीपुर निवासियु, सकल विद्याविलासियुनैन, सांदीपनि यनु बुधवर्युं गनि, यथोचितंबुग दर्शिंचि, शुद्धभाव वर्तनंबुल भक्ति सेयुचुनुंड, वारलवलन संतुष्टुंडै ॥ 1407 ॥

शा. वेदश्रेणियु नंगकंबुलु धनुर्वेदंबु दंत्रंबु म-
न्वादि व्याहृत धर्मशास्त्रमुलु नुद्यन्न्यायमुं दर्क वि-

[ब्रह्मचर्य] व्रत स्वीकार किया, उन्होंने द्विजों (ब्राह्मणों) और राजाओं के आशीर्वाद लेकर द्विजराजत्व (उत्तमद्विज-संज्ञा) प्राप्त किया। १४०४

[व.] उपनयन के अनंतर वसुदेव ने ब्राह्मणों को दक्षिणा के साथ अनेक गो-हिरण्य-दान दिये। राम और कृष्ण के जन्म के समय वसुदेव ने जिन गौओं का दान करने का संकल्प मन में कर लिया था, उनका नाम लेकर इस अवसर पर दे दिया; और अर्थियों (याचकों) में उनका मनचाहा द्रव्य बाँट दिया। इस प्रकार ब्रह्मचारी बनकर··· १४०५

[शा.] गोविंद (कृष्ण) और राम, स्वयं सर्वज्ञता और संपूर्णता लिये जगद्गुरु होते हुए भी [अपने विद्योपार्जन के लिए] एक गुरु को स्वीकार करने घर से निकल पड़े, मानों वे [दूसरों को] यह बोध देना चाहते हों कि लोक मे किसी भी मनुष्य को गुरु के मुखतः उपदेश पाकर ही विद्या सीखना उचित है, गुरु को प्राप्त करने के पूर्व (बिना गुरु के) नहीं। १४०६

[व.] चलकर वे महावैभवराशि काशी पहुँचे; उसके तट पर अवंतीपुर-वासी, सकलविद्या-विलासी सांदीपनि नामक बुधवर्य को पाकर उन्होंने उचित रीति से उनका दर्शन किया और विशुद्ध भाव तथा विशुद्ध वर्तन से उनकी भक्ति करते रहे। उनसे संतुष्ट होकर··· १४०७

[शा.] उस ब्राह्मण-श्रेष्ठ ने मन में उपजे हर्ष के साथ राम और कृष्ण को वेद, वेदांग, धनुर्वेद, तंत्रशास्त्र, मनु आदि से उक्त (कहे गए) धर्मशास्त्र, समुन्नत न्यायशास्त्र, तर्कविद्या-दक्षता, राजनीति-शास्त्र आदि निर्दुष्ट-पद्धति से

द्या दक्षत्वमु राजनीतियुनु शुद्धप्रक्रियन् जॅप्पॅ ना
भूदेवाग्रणि रामकृष्णुलकु संभूत प्रमोदंबुनन् ॥ 1408 ॥

कं. अरुवदि नालुगु विद्यलु
नरुवदिनालुगु दिनंबुलंतन वारल्
नॅरवादुलयिन कतमुन
नॅरि नोवकोक्कनाटि विनिकि नेर्चिरिलेशा ! ॥ 1409 ॥

कं. गुरुवुलकु नल्ल गुरुलै
गुरु लघ भावमुलु लेक कोमरारु जग-
द्गुरुलु त्रिलोक हितार्थमु
गुरु शिष्य न्यायलील गॉल्चिरि वेड्कन् ॥ 1410 ॥

व. इट्लु कृतकृत्युलयिन शिष्युल जूचि, वारल महात्म्यंबुनकु वॅरगु पडि, सभार्युंडयिन सांदीपनि यिट्लनियॅ ॥ 1411 ॥

शा. अंभोराशि बभासतीर्थमुन मुन्नस्मत्तनूसंभवुं-
डंभोगाहमु सेयुचुन् मुनिगि लेडय्यॅं गृपांभोनिधुल्
शुंभद्वीर्युलु मीरु मी गुरुनिकि जोद्यंबुगा शिष्यतन्
गांभीर्यंबुन बुत्रदक्षिण यिडन् गर्तव्यमूहिंपरे ॥ 1412 ॥

कं. शिष्युलु बलाढ्युलयिन चि-
शेष्यस्थिति नोंदि गुरुवु जीविंचुनु नि-
र्दूष्य गुणबल गरिष्ठुलु
शिष्युलरै गुरुनि कोर्कॅ सेयं दगवे ॥ 1413 ॥

सिखाये। १४०८ [कं.] हे भूपति ! अत्यंत निपुण (बुद्धिमान्) होने के कारण से उन्होने चौंसठ विद्याओ को चौंसठ दिनों मे एक-एक एक-एक दिन के क्रम से सुनकर ही सीख लिया था। १४०९ [क.] समस्त गुरुओं के गुरु होकर, गुरु (बड़े) लघु (छोटे) की भावना के बिना शोभित होनेवाले जगद्गुरु राम और कृष्ण ने तीनों लोकों के हित के लिए गुरु-शिष्य-न्याय के अनुसार सहर्ष गुरुकुलवास किया था। १४१० [व.] इस प्रकार सफल हुए शिष्यों को देखकर, उनकी महिमा से आश्चर्यचकित होकर सांदीपनि, जो अपनी भार्या (पत्नी) के साथ थे, यों बोले : १४११ [शा.] "पूर्व में मेरा तनूभव (पुत्र) प्रभासतीर्थ के समुद्र में स्नान करते समय डूब गया, फिर नही मिला; तुम लोग कृपासिंधु हो, महान् वीर हो, गुरु का अद्भुत रीति से शिष्यत्व किया है, [अतः] निर्भय होकर पुत्र के रूप में मुझे गुरुदक्षिणा देना अपना कर्तव्य समझो। १४१२ [क.] शिष्य यदि बलाढ्य हो तो गुरु उच्च स्थिति में रहकर जीवन बितावेगा, तुम लोग दोष-

व. अनिन विनि, रामकृष्णुलु गुर्वर्थंबुगा दुर्वार रथारूढुलै, रयंबुनं जनि, रौद्रंबुन समुद्रंबु जेरि यिट्लनिरि ॥ 1414 ॥

कं. सागर ! सुबुद्धितोडनु
मा गुरुपुत्रकुनि दॅम्मु माऱाडिन नी
वागडमौदुवु दुस्सह-
वेग रणाशील निशित विशिखाग्नुलकुन् ॥ 1415 ॥

व. अनिन वारलकुं जलराशि यिट्लनियॆ ॥ 1416 ॥

उ. वंचन यितलेदु यदुवल्लभुलार ! प्रभासतीर्थमं-
दंचित मूर्ति विप्रसुतुडाढ्युडु तोयमुलाडुचुंड नु-
त्संचलितोर्मि यॊक्कटि प्रचंड गति गॊनिपोयॆ बोवगा
बंचजनुंडु म्रिगॆ नति भासुरशोलुनि विप्रबालुनिन् ॥ 1417 ॥

व. अनि वानि वसियिंचु चोटॆऱिंगिंचिन ॥ 1418 ॥

शा. शंखारावमुतोड वंचजनुडाशंकिंचि चित्तंबु लो
संखिन्नुंडुग वार्धि जॊच्चि दहन ज्वालाभ हेमोज्ज्वलत्
पुंखास्त्रंबुन गूल्चि वानि जठरंबुन् व्रच्चि गोविंदु ड-
प्रेखच्चित्तुडु बालु गानक गुरु प्रेमोदितोद्योगुड ॥ 1419 ॥

रहित, गुणवान् और बलसपन्न हो; मेरे शिष्य होकर गुरु की कामना पूर्ण करना तुम्हें उचित ही होगा । १४१३ [व.] यह सुन, राम और कृष्ण गुरु के (कार्य) के लिए दुर्निवार रथ पर आरूढ़ हो अत्यंत वेग के साथ समुद्र पर पहुँचे और क्रोध से यों बोले : १४१४ [कं.] "हे सागर ! समझदार होकर हमारे गुरु-पुत्र को लाकर सौंप दो, [ऐसा न करके] यदि कुछ प्रतिवाद किया तो हमारे दुस्सह भयंकर बाणाग्नि में विनष्ट हो जाओगे" । १४१५ [व.] तब समुद्र ने उन्हें यों उत्तर दिया । १४१६ [उ.] "हे यदु-वल्लभ (यादवपति) ! इसमें मेरा कपट-वर्तन किंचित् भी नहीं है; प्रभास तीर्थ में जब पूज्यमूर्ति, गुणाढ्य वह ब्राह्मणपुत्र स्नान कर रहा था तब ऊँची उठी हुई लहर प्रचंड गति से उसे खींच ले गयी, तब उस उज्ज्वल विप्रबालक को पचजन निगल गया ।" १४१७ [व.] यह कहकर [समुद्र ने] उस (पंचजन) का निवासस्थान बता दिया; तब" १४१८ [शा.] गोविंद ने ऐसा शखाराव (शखध्वनि) किया जिसे सुन पंचजन भयभीत और खिन्न हुआ; कृष्ण ने समुद्र में घुसकर आग की लपट के समान सुनहले वर्ण का आग्नेयास्त्र चलाकर उसे गिरा दिया, और उसका पेट चीरकर देखा तो उसमे बालक दिखाई नही दिया । फिर भी स्थिरचित्त होकर गुरु पर के प्रेम से प्रेरित हो प्रयत्नशील रहा । १४१९

कं. दानवुनि देहजंबगु, मानित शंखंबु गॊनुचु मसलक बलुडुन्
तो नेतेरग रथियै, दानवरिपुडरिगॆ दंडधरु पुरिकि नृपा ! ॥ 1420 ॥

व. चनि, संयमनी नाम नगरंबु चेरि, तद्द्वारंबुनं ब्रळयकाल मेघ गंभीर निनद भीषणंबगु शंखंबु पूरिंचिन, विनि वेरंगुपडि ॥ 1421 ॥

शा. अस्मद्बाहुबलंबु गैकॊनक शंखारावमुन् मानसा-
पस्मारंबुग नॆव्वडॊक्को नगर प्रांतंबुनं जेसॆ म-
द्विस्मेरावह रोषपावकुनिचे विध्वस्तुडै वाडु दा
भस्मंबै चॆडुनंचु नंतकुडु कोप प्रज्वलन्मूर्तियै ॥ 1422 ॥

व. वच्चि, रामकृष्णुलं गनि, वारु लीलामनुष्युलयिन विष्णुमूर्तुलनि यॆरिगि, भक्तितोड शुश्रूष चेसि, सर्व भूतमयुंडगु, कृष्णुनकु नमस्करिंचि, येमि सेयुदु, आनतिम्मु, अनिन नम्महात्मुंडिट्लनियॆ । 1423 ॥

कं. चॊप्पॆद मा गुरुनंदनु, दप्पु गलुग जूचि नीवु दंडनमुनकुन्
दॆप्पिचिनाड वातनि, नॊप्पिपुमु माकु वलयु नुत्तमचरिता ! ॥ 1424 ॥

कं. अनिन विनि वीडॆ वीनि
गॊनि पॊडनि भक्तितोड गुरुनंदनु नि-

[कं.] हे राजन् ! दानवों का शत्रु वह कृष्ण उस दानव (राक्षस) के शरीर से निकला प्रसिद्ध [पांचजन्य] शंख लेकर, बलराम के संग रथारूढ़ हो दंडधर की पुरी (यम की राजधानी) पहुँचा । १२२० [व.] संयमनी नामक उस नगर के द्वार (फ़ाटक) पर जाकर कृष्ण ने प्रलयकाल के मेघ-गर्जन के समान भयकर ध्वनि वाला अपना शंख बजाया, जिसे सुन चकित होकर··· १४२१ [शा.] "हमारा बाहुबल स्वीकार किये बिना ही यह कौन है जो मेरे नगर के पास, मन को विभ्रांत करनेवाला शंखाराव कर रहा है ! मेरे अद्भुत क्रोधाग्नि में नष्ट होकर वह [अवश्य ही] भस्म हो जाएगा" —यों कहता हुआ यमराज क्रोध से जल उठा । १४२२ [व.] समीप आकर उसने राम और कृष्ण को देखा, वह जान गया कि वे लीलामानुष-रूप मे साक्षात् विष्णु की मूर्तियाँ हैं, फिर उसने सर्वभूतमय (जीवांतर्गत) कृष्ण को भक्ति के साथ नमस्कार किया, उनकी शुश्रूषा करके विनती की कि जो आज्ञा हो सुना दें । तब उस महात्मा ने यों कहा :: १४२३ [कं.] मैं कहता हूँ कि तुमने मेरे गुरु के पुत्र को उसकी भूल देखकर दंड देने के निमित्त अपने पास बुलवा लिया था, हे उत्तम चरित ! हमें उनकी आवश्यकता है, लाकर हमें सौंप दो" । १४२४ [कं.] यह सुनकर यम ने, "यही है वह [गुरुपुत्र], इसे ले जाइए" —यों कहकर उसे सौंप दिया । तब कृष्ण-दुर्जनों का दमन करनेवाले, महिष पर

च्चिन गृणुङु वीड्कोनियेनु
घन दुर्जनदमनु महिषगमनुन्. शमनुन् ॥ 1425 ॥

व. इट्लु जमुनडिगि तेच्चि, रामकृष्णुलु सांदीपनिकि बुत्रुनि समर्पिंचि, यिंक नेमि सेयवलयु, अडुगुमु, अनिन नतंडिट्लनियें ॥ 1426 ॥

कं. गुरुनकु गोरिन दक्षिण
करुणन् मुन्नेव्वरिच्चें घनुलार! भव-
द्गुरुनकु गोरिन दक्षिण
दिरमुग निच्चितिरि मीरु दीपित यशुलै ॥ 1427 ॥

कं. कालुनि वीटिकि जनि मृत
बालकु दे नोरुल वशमे? भवदीय कृपन्
मेलु दोरकोनियें माकु वि-
शालमगुं गात मी यशमु लोकमुलन् ॥ 1428 ॥

व. महात्मुलार! येनु गृतार्थुंडनैति, अनि दीविंचिन सांदीपनि वीड्कोनि कृतकृत्युलै, रामकृष्णुलु रथारोहणंबु सेसि, मथुरकुं जनुदेंचि, पांचजन्यंबु पूरिंचिन गनि, नष्टधनंबुलु गनिनवारि भंगि व्रजलु प्रमोदिंचिरि। अंत नोक्कनाडेकांतंबुन ॥ 1429 ॥

सवार होनेवाले, यम से विदा हुआ। १४२५ [व.] इस प्रकार यम से माँग लाकर राम और कृष्ण ने सांदीपनि के पुत्र को उन्हें समर्पित किया और कहा, "हमें और क्या करना है; आज्ञा दीजिए।" तब गुरु ने कहा: १४२६ [कं.] हे महात्माओ! अब तक गुरु को उसकी मनचाही दक्षिणा किसने चुका दी? किंतु आप लोगों ने स्थिर बुद्धि से अपने गुरु को उसकी माँगी हुई दक्षिणा देकर यश कमाया। १४२७ [क.] यमसदन जाकर मृत बालक को वापस ला लेना किसी और के वश की बात नहीं है, आपकी दया से हमारा भला हुआ; लोक में आप लोगों की कीर्ति विशाल हो जाए। १४२८ [व.] हे महात्माओ! मैं कृतार्थ हुआ।" यों कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। इस प्रकार कृतकृत्य (सफल मनोरथ) हो सांदीपनि से विदा लेकर, राम और कृष्ण रथ पर चढ़ मथुरा आ पहुँचे। [नगर में प्रवेश करते हुए] उन्होंने अपना पांचजन्य शंख फूंक बजाया तो उसे सुन लोग ऐसे प्रमुदित हुए मानों उन्होंने अपना खोया धन पा लिया हो। अनंतर एक दिन एकांत में…१४२९

अध्यायमु—४६

श्रीकृष्णुंडु गोपकांतल चेंतकु नुद्धवुनि बंपुट

शा. नापै जित्तमुलॅप्पुडुन् निलुपुचुन् ना राक गांक्षिपुचुन्
ना पेरातमल नावहिंचुचु वगन् नाना प्रकारंबुलन्
गोपालांगनलेंत जालिपडिरो कोपिंचिरो दूरिरो
व्रेपल्लॅन् निज धर्मगेहमुललो विभ्रांत चैतन्यलै ॥ 1430 ॥

व. अनि चिंतिचि ॥ 1431 ॥

कं. सिद्धविचारु गभीरुन्
वृद्धवचो वर्णनीय वृष्णिप्रवरुन्
बुद्धिनिधि नमरगुरुसमु
नुद्धवुनि जूचि कृष्णुडॅय्यन पलिकॅन् ॥ 1432 ॥

शा. रम्मा युद्धव ! गोपकामिनुलु ना राकल् निरीक्षिपुचुन्
सम्मोहंबुन नम्मियुन् मदुचि ये चंदंबुनन् गुंदिरो
तम्मुन् नम्मिनवारि डिग्ग विडुवं धर्मंबु गावंडू वे
पोम्मा ! प्राणमु लेक्रियन् निलिपरो प्रोद्यद्वियोगाग्नुलन् ॥ 1433 ॥

अध्याय—४६

श्रीकृष्ण का गोपकांताओं के पास उद्धव को भेजना

[शा.] "मुझ पर आठों पहर चित्त रखकर, मेरे आगमन की आकांक्षा करते हुए, मेरा नाम ले-लेकर मन ही मन दु:खित होते हुए, उधर गोकुल में गोपांगनाएँ कितनी अधीर हो रही होंगी, कितना खीज रही होंगी, [मुझ पर] कितना दोष लगा रही होंगी। अपने घरों में रहकर भी, गृहस्थ-धर्म चलाते हुए भी वे युवतियाँ संभ्रांत हो तन-मन भूले बैठी होंगी।" १४३० [व.] यों सोचकर [कृष्ण] चिंतित हो गया। फिर उसने······ १४३१ [कं.] सिद्ध-संकल्प, गहराई में जा सोचनेवाले, वृद्धों के समान बातचीत कर सकनेवाले, वृष्णि वंश में प्रसिद्ध, बुद्धि में बृहस्पति के समकक्ष उद्धव को देखकर कृष्ण ने धीरे-धीरे यों कहा : १४३२ [कं.] आओ, उद्धव ! गोपकामिनियाँ मेरे [लौट] आने का निरीक्षण (प्रतीक्षा) करके मुझ पर के मोह के कारण, मुझ पर विश्वास रखकर, अपने काम-काज भी भूल किस प्रकार संताप सहती होंगी [देख लेना]; बड़े लोग कहते हैं कि अपने ऊपर विश्वास रखनेवालों को छोड़ देना धर्मसंगत नहीं है। अतः शीघ्र चले जाओ; [जाकर देखो] बढ़ती हुई विरहाग्नि से वे स्त्रियाँ किस भाँति अपने प्राण

कं. लौकिकमॉल्लक नन्ना, लोकिचु प्रपन्नुलकुनु लोबडि करुणा-
लोकननुल बोषितुनु, ना काश्रित रक्षणंबुलु नैसर्गिकमुल् ॥ 1434 ॥

कं. संदेहमु मानुं डर, -विंदाननलार ! मिम्मु विडुवनु वत्तुन्
बृंदावनमुन कनि हरि, संदेशमु पंपॆ ननुमु संकेतमुनन् ॥ 1435 ॥

व. अनि मंदहास सुंदर वदनारविंदुंडै, करंबु करंबुन नवलंबिंचि, सरसवचनंबु-
लाडुचु, वीडुकॉलिपन, नुद्धवुंडुनु रथारूढुंडै, सूर्यास्तमय समयंबुनकु नंदव्रजंबु
जेरि, वनंबुलनुंडि वच्चु गोकुल चरण वेणुवुलं प्रच्छन्न रथुंडै, चॉच्चि, नंदु
मंदिरंबु प्रवेशिंचिन ॥ 1436 ॥

शा. आ पुण्यात्मुनि गौगिलिंचुकॉनि नंदाभीरुडानंदियै
मा पालिटिकि गृष्णुडीतडनुचुन् सन्निंचि पूजिंचि वां-
छापूर्णंबुग मंजुलान्नमिडि मार्गायासमुं बापि स-
ल्लापोत्साहमुतोड निट्लनियॆं संलक्षिंचि मोदंबुनन् ॥ 1437 ॥

कं. ना मित्त्रुडु वसुदेवुडु, सेमंबुग नुन्नवाडॆ चॆलुवुग बुत्त्रुल्
नेमंबुन बूजिप म, -हामत्तुंडैन कंसुडणगिन पिदपन ॥ 1438 ॥

बचाकर रखती हैं। १४३३ [क.] लौकिक (इहलोक संबंधी सुख आदि) की अपेक्षा न रखकर मुझ पर दृष्टि रखनेवाले प्रपन्नों (शरणागतों) के वशीभूत होकर मै करुणा-दृष्टि से उनका पालन-पोषण करूँगा; आश्रितों की रक्षा करना मेरा स्वाभाविक गुण है। १४३४ [कं.] तुम [गोकुल पहुँचकर] किसी रहस्य स्थान में उनसे कहो कि मैंने यह सदेशा भेजा है— "हे अरविंदानन (कमलमुखी) सुंदरियो ! मैं तुम्हें त्याग नही दूँगा, वृंदावन को अवश्य जाऊँगा; संदेह छोड़ दो।" १४३५ [व.] ऐसा कहकर [कृष्ण ने] अरविंद (कमल) समान सुंदर वदन (मुख) पर मंदहास ला, [उद्धव के] हाथ में हाथ डालकर सरस वचनों से उसे विदा किया; वह उद्धव रथारूढ़ हो सूर्यास्त के समय तक नंदव्रज (गोकुल) पहुँचा, वन से लौट रही गायों की चरण-रेणुओं से उसका रथ ढक गया था, बस्ती में जाकर वह नंद के मंदिर में प्रविष्ट हुआ। १४३६ [शा.] उस पुण्यात्मा को (उद्धव को) गले लगाकर नंद गोप आनंदित हुआ; यह कहते हुए कि "ये हम लोगों के लिए कृष्ण हैं"; मान-सहित उसकी पूजा की, फिर मन भरकर मिष्टान्न खिलाया और मार्गायास (राह की थकावट) दूर किया। अनंतर संतोष से देखकर सल्लाप (बातचीत) करने के उत्साह से नंद ने यों कहा : १४३७ [कं.] "मदमत्त कंस के मरणानंतर मेरा मित्र वसुदेव, अपने पुत्रों से नियमानुकूल प्रेमपूर्ण पूजाएँ (सेवाएँ) पाकर क्षेम से रहता है न ? १४३८ [शा.] भाई उद्धव !

शा. अन्ना ! भद्रमॆ तल्लिदंड्रुल ममुन् हर्षिंचि चिंतिंचुने
तम्मुं बासिन गोपगोपिकल मित्रव्रातमुं गोगणं-
बुन् नित्यंबु दलंचुने वन नदी भूमुल् प्रसंगिंचुने
वेन्नुंडिम्मडु वच्चुनय्य ! यिट मा व्रेपल्लेकुन् नुद्धवा ! ॥ 1439 ॥

कं. अंकिलि गलुगक माकक-
लंकेंदुनि पगिदि गांति ललितंबगु त-
त्पंकज नयनुनि नॆम्मोग-
मिक विलोकिंप गलदॆ यी जन्ममुनन् ॥ 1440 ॥

कं. अनि हरि मुन् नॊनरिंचिन
पनु लॆल्लनु जॆप्पि चॆप्पि बाष्पाकुल लो-
चनुडै डग्गुत्तिकतो
विनयंबुन नुंडॆ गोपवीरुंडंतन् ॥ 1441 ॥

कं. पॆनिमिटि बिड्डनि गुणमुलु
विनुतिंप यशोद प्रेम विह्वलमतियै
चनु मोनल बालु गुरियग
गनु गॊनलनु जलमुलॊलुकगा बॆग्गिलियॆन् ॥ 1442 ॥

व. इट्लु गोविंद संदर्शनाभावविह्वलुलैन यशोदानंदुलकु नुद्धवुं-
डिट्लनियॆ ॥ 1443 ॥

कृष्ण तो कुशल है न ? हम माता-पिता की बात, हर्ष के साथ कभी सोचता है ? बिछुड़े हुए गोपों, गोपिकाओं, मित्रवृंद और गोगण को नित्य याद करता है या नहीं ? यहाँ के वन, नदी और भूप्रदेशों के विषय में कभी कुछ कहता है या नहीं ? हे आर्य ! हमारे गोकुल में विष्णु (कृष्ण) कब लौट आनेवाला है, बताओ। १४३९ [कं.] बिना किसी विघ्नबाधा के हमें इस जन्म में पंकजनयन (कमलनयन—कृष्ण) का वह मुखड़ा फिर से देखने को मिलेगा, जो निष्कलंक चंद्रमा के समान कांति से सुहावना लगता है"। १४४० [व.] यों कहकर वह गोपवीर (नंद), पूर्व में हरि के किये समस्त कृत्यों को बार-बार बखान कर बाष्पाकुल-लोचन और गद्गद-कंठ हो सविनय चुप रह गया। १४४१ [कं.] पति जब पुत्र के गुणों की प्रशंसा कर रहा था तब यशोदा [उसे सुन] प्रेम से विह्वलमति हो गयी, उसके चूचुकों से दूध चूने लगा तो नेत्रांचलों से आँसू टपकने लगे, और वह भयाकुल हो गयी। १४४२ [व.] गोविंद का संदर्शन न होने के कारण यों विह्वल बने यशोदा और नन्द से उद्धव ने कहा : १४४३

कं. जननी जनकुल मिम्मुं, गनुगॊन शीघ्रंबॆ वच्चु गनि भद्रंबुल्
वनजाक्षुंडॊनर्रिचुनु, मनमुन वगवकुडु धैर्य मंडनुलारा ! ॥ 1444 ॥

म. वलुडुन् गृष्णुडु मर्त्युले वसुमती भारंबु वारिप वा-
रल रूपंबुल बुट्टिनाडु हरि निर्वाण प्रभुंडॆव्वडु-
ज्ज्वलुडै प्राण वियोग कालमुन दत्सर्वेशु जिंतिचु वा-
डलघु श्रेयमु बॊंदु ब्रह्ममयुडै यर्काभुडै नित्युडै ॥ 1445 ॥

सी. अट्टि नारायणुंडखिलात्म भूतुंडु कारण मानवाकारुडैन
जित्तंबुलतनिपै जेर्चि सेविचितिरति कृतार्थुलरैतिरनवरतमु
शोभिल्लु निधन ज्योति चंदंबुन नखिल भूतमुलंदु नतडतनिकि
जननी जनक दार सखि पुत्र बांधव शत्रु प्रियाप्रिय जनुलु लेरु

आ. जन्म कर्मंबुलु जन्मंबुलुनु लेवु
शिष्टरक्षणंबु सेयु कॊरकु
गुणविरहितुडय्यु गुणिययि सर्वर-
क्षण विनाशकेळि सलुपुचुंडु ॥ 1446 ॥

व. अनि, मरियुनु बॆक्कु विधंबुल हरिप्रभावंबुपन्यसिंपुचु, ना रेयि गडपि,

---

[कं.] "धैर्य की शोभा बढ़ानेवाले हे यशोदा और नन्द ! वनजाक्ष (कमल-नयन) कृष्ण तुम माता-पिता को देखने के लिए शीघ्र ही आनेवाला है, देखकर तुम्हारा कल्याण करेगा, मन में दुख मत करो। १४४४ [म.] बलराम और कृष्ण मर्त्य (मानव) थोड़े ही हैं ? भूमि का भार दूर करने के निमित्त हरि ने उनके रूप में जन्म लिया है, जो विमुक्ति (मोक्ष) का प्रभु है। जो व्यक्ति परिशुद्ध होकर प्राणावसान के समय उस सर्वेश्वर का चिंतन करेगा वह महान् श्रेय प्राप्त करेगा, ब्रह्ममय हो जायगा, सूर्य के समान नित्य बन जायगा। १४४५ [सी.] अखिल (जगत्) की आत्मा बना हुआ है, उस नारायण का, कारणवश मानव के आकार मे उद्भव हुआ, तुम लोगों ने उस पर चित्त रखकर सेवा की और [फलतः] अत्यन्त कृतार्थ हुए हो। ईंधन (लकड़ी) में अग्निवत् वह समस्त भूतों में सदा-सर्वदा शोभित रहता है। उसके कोई जनक, जननी, दारा (पत्नी) सखी, पुत्र, बन्धु, शत्रु, प्रिय या प्रिया जन नहीं हैं। [आ.] उसके न जन्म है और न जन्म-कृत कर्म है। स्वयं गुणरहित होकर भी शिष्टरक्षण के निमित्त वह गुणवान् बनता है और सबके रक्षण और विनाश का खेल खेला करता है।" ११४६ [व.] यों अनेक प्रकार से हरि के प्रभाव का बखान करते हुए रात बिताकर दूसरे दिन [प्रातः] दधिमंथन का शब्द

दधिमथन शब्दंबुलाकर्णिपुचु लेचि, मरुनाडु कृतानुष्ठानुंडै, युद्धवुंडोक्क रहस्य प्रदेशंबुन नुन्न समयंबुन ॥ 1447 ॥

अध्यायमु—४७

शा. राजीवाक्षुडु सुंदरास्युडु महोरस्कुंडु पीतांबरुं-
डाजानुस्थित बाहुडंबुरुह मालालंकृतुंडुल्लसत्
राजत् कुंडलुडोक्क वीरुडिचटन् राजिल्लुचुन्नाडु मा
राजीवाक्षुनि भंगि नंचु गनिरा राजान्वयुं गोपिकल् ॥ 1448 ॥

व. कनि लज्जासहित हासविलोकनंबुलु मुखंबुलकुं जेलुवोसंग निट्लनिरि ॥ 1449 ॥

भ्रमरगीतलु

चं. ऍरुगुदु मेमु निन्नु वनजेक्षणु मित्रुड वीवु कूरिमिन्
मॅऱ्युचु दल्लि दंड्रुलकु मेलॅरिगिंप बियुंडु पंपगा
वरुलॅंडु भक्ति वच्चितिवि वारलनेन मनंबु लोपलन्
मरवडु शौरि मेलु मरि मान्युलु राजुनकेव्वरिच्चटन् ॥ 1450 ॥

सुनकर उद्धव जाग पड़ा, फिर नित्यानुष्ठान पूरा कर एक रहस्यस्थान (एकांत) में जा बैठा। तब··· १४४७

अध्याय—४७

[शा.] "राजीवाक्ष (कमलनेत्र), सुन्दरास्य (सुन्दर मुखवाला), महोरस्क (विशाल वक्षवाला), पीतांबरधारी, आजानुबाहु, कमल-मालालंकृत, चमकदार और सुन्दर कुडल पहने कोई एक वीर हमारे राजीवाक्ष (कृष्ण) के सदृश यहाँ विराजमान है" —यों कहती हुई गोपिकाओं ने वहाँ आकर उस राजवंशी [उद्धव] को देखा। फिर··· १४४८ [व.] मुख की शोभा बढ़ानेवाली लज्जायुक्त मुस्कुराहटों और चितवनो के साथ उन गोपिकाओं ने यों कहा : १४४९

भ्रमर-गीत

[चं.] "हम तुम्हें जानती हैं; वनजेक्षण (कमलनयन—कृष्ण) के तुम मित्र हो, माता-पिता को अपना क्षेम और प्रेम जताने के निमित्त प्रिय ने तुम्हें भेजा, और तुम अत्यन्त भक्ति के साथ आये हुए हो। शौरि (कृष्ण) ने अपने मन में, कम से कम, उन्हें तो नहीं भूला, यह अच्छा ही हुआ;

कं. मुनिवरुलैननु बंधुल
घन सख्यमु विडुवलेरु गाक विडुवरे
सनिमित्त सख्य माकटि
पनि वीडिन नळुलु विरुल वायुनॆ लेवो ॥ 1451 ॥

च. अनि यिटु गोपिकल् वलुक नंदॊक गोपिक कृष्णपाद चिं-
तनमुन जॊक्कि चेरुवनु दैववशंबुन गांचॆ नुज्वलत्
मुनिशित सद्विवेकमु प्रसून मरंद मदादिरेकमुन्
घन मृदुनाद संचलित कामुक लोकमु जंचरीकमुन् ॥ 1452 ॥

व कनि, हरि तन्नुं ब्राथिप बुत्तेंचिन दूत यनि कल्पिचुकॊनि, युद्धवुनकि नन्यापदेशंबं यॆरुंकपड, नय्यळिकि दीय्यलि यिट्लनियॆ ॥ 1453 ॥

म. भ्रमरा ! दुर्जनमित्र ! मुट्टकुमु मा पादाब्जमुल् नागर
प्रमदाळी कुचकुंकुमांकित लसत् प्राणेश दाम प्रसू-
न मरंदारुणितानननुंडवगुटन् नाथुंडु मन्निंचु गा-
क ममुन् नेपुचु वौरकांतल शुभागारंबुलन् नित्यमुन् ॥ 1454 ॥

म. ऒक पुव्वंदलि तनॆं द्रावि मधुपा ! युत्साहिवै नीवु वे
ऱॊकटि वॊंदॆडि भंगि मन्मधरपीयूषंबुनं देलिच मा

ठीक है, राजा के लिए यहाँ पर माननीय लोग कौन हैं ? १४५०
[कं.] मुनिवर लोग भी [माता-पिता जैसे] बांधवों पर का स्नेह छोड़ नही सकते, किंतु स्वार्थ सिद्धि के लिए किया हुआ स्नेह वे भी छोड़ देते हैं। भौरे भी तो अपना कार्य करने के बाद (मधुपान से भूख बुझाने के पश्चात्) फूलों को त्याग देते है न ?" १४५१ [चं.] जब गोपिकाएँ इस प्रकार कह रही थीं, उनमें से एक गोपिका ने जो कि कृष्ण के चरणों के चिंतन में परवश हो गयी थी, अपने समीप में दैवयोग से एक भौरे को देखा जो उज्ज्वल, तेज, विवेक से युक्त था, पुष्प का मकरंद पीकर मस्त हुआ था, और अपने मृदुनाद (झंकार रूपी मधुर गायन) से कामी लोगों को विचलित कर देनेवाला था। १४५२ [व.] देखकर वह गोपिका यह कल्पना करके कि वह उसे मनाने के लिए हरि का भेजा दूत है, अन्यापदेश द्वारा उद्धव को जताने के निमित्त उस भौंरे से यों कहने लगी : १४५३
[म.] "हे दुर्जन मित्र, भौरे ! हमारे पादाब्ज (चरण-कमल) छुओ मत। क्योंकि नगरवासिनी प्रमदाओं के कुचों पर लगे कुकुम से अंकित हमारे प्राणेश्वर (कृष्ण) [के वक्षस्थल पर विराजित] की माला के पुष्पों का मकरंद पीते हुए तुम्हारा मुख अरुण (लाल) हो गया है; हमारा नाथ भले ही तुम्हारा सम्मान करे, किंतु वह नित्य ही पौरकांताओ के शुभागारों (मंदिरों) में विचरते हुए हमें संतप्त कर रहा है। १४५४ [म.] हे मधुप ! तुम

यकलंकोज्ज्वल यौवनंबु गॉनि यन्यासक्तुडय्यॅन् विभुं-
डकटा ! यातनि कॅट्लु दक्कॅ सिरि मिथ्याकीर्ति नम्मॅन् जुमी ॥ 1455 ॥

शा. भृंगा ! कृष्णुडु मंचिवाडनुचु संप्रीतिन् ब्रसंगिचॅं दी
संगीतंबुग नेमु सॉक्कुदुमॅ तच्चारित्रमुल् वितले
यंगीकारमु गावु माकु बुरकांताग्र प्रवेशंबुलन्
संगीतंबीर्नारिपु वारिड्डुरोजन् नीकु निष्टार्थमुल् ॥ 1456 ॥

म. समदाळीश्वर ! चूडुमुज्ज्वलित हासभ्रू बिजृंभंबुलन्
रमणीयुंडगु शौरिचे गरगरे रामल् त्रिलोकंबुलन्
बमदारत्नमु लक्ष्मि यातनि पदाब्जातंबु सेविंचु नि-
क्कमु मेमॅव्वर मा कृपाजलधिकिन् गारुण्यमुं जेयगन् ॥ 1457 ॥

शा. रोलंबेश्वर ! नीकु दूत्यमु महारूढंबु नी नेरुपुल्
चालुन् मच्चरणाब्जमुल् विडुवुमस्मन्नाथ पुत्रादुलन्
लीलं बासि परंबुडिचि तनकुन् लीनत्वमुन् बॉदु म-
म्मेला बासॅ बिभुंडु धार्मिकुलु मुन् नी चंदमुन् मॅत्तुरे ॥ 1458 ॥

एक फूल का मधु पीकर उत्साही (शौकीन) बन और एक फूल पर आसक्त होते हो; वैसा ही हमारा प्रभु (कृष्ण) हमें अपने अधरपीयूष (अधरामृत) से छकाकर, हमारा निष्कलंक उज्ज्वल यौवन लूटकर हाय ! अब अन्यों पर आसक्त हुआ है। न जाने ऐसे को लक्ष्मीदेवी कैसे प्राप्त हुई ? उस देवी ने, निश्चय ही, उसकी झूठी कीर्ति पर विश्वास कर लिया है। १४५५ [शा.] हे भृग (भौंरे) ! तुम बड़ी प्रीति के साथ कृष्ण को सज्जन कहकर प्रशंसा कर रहे हो, तुम्हारे इस संगीत से हम विमोहित होनेवाली नही हैं; उसका चरित्र हम भलीभाँति जानती हैं, उसमें कोई अनोखापन नही है। हमे उसकी बातें पसंद नहीं हैं। तुम जाकर [मथुरा की] पुरांगनाओं के प्रासादों में अपना गायन सुनाओ, वे तुम्हें उत्साह के साथ मनचाहा ईनाम देंगी। १४५६ [म.] हे मत्त-भृंगराज ! देखो; उज्ज्वल हास और भ्रूविलास से सुंदर लगनेवाले शौरि (कृष्ण) पर रीझकर तीनों लोकों की सुंदरियाँ द्रवित होती हैं, और प्रमदाओं में रत्न वह लक्ष्मीदेवी तो उसके चरणकमलों की सेवा करती रहती है। वह कृपासमुद्र (कृष्ण) हम पर करुणा क्यों दिखादेगा ? वास्तव में, हम उनकी कौन होती हैं ? १४५७ [शा.] हे मधुपेश्वर ! दूत-कार्य में तुम परिनिष्ठ हो; अब तुम्हारा चातुर्य बस है, [अपनी चतुराई मत दिखाओ]; मेरे चरण-कमल छोड़ दो। पति, पुत्र आदि को चुपके से छोड़कर, परम (परलोक धर्म) त्याग कर, उसी में लीन होनेवाली हम लोगों को उस प्रभु ने क्यों छोड़ दिया ? धार्मिक लोग इस रीति को कभी सराहेंगे ? १४५८

शा. वालि जंपॆनु वेटकानि पगिदिन् वंचिचि दैत्यानुजन्
लोलं बट्टि विरूप जेसॆनु बलिन् लोभंबुतो गट्टि यी
त्रैलोक्यंबु मोॕरंगिपुच्चुकॊनियॆन् धर्मज्ञुडे माधवुं-
डेला षट्पद ! यॆग्गु मावलन नीकॆग्गिपगा नेटिकिन् ॥ 1459 ॥

उ. पन्नुग मिंटिपैकॆगसि पारु विहंगमुलैन वीनुलन्
तन् नोकमाटु विन्न गृहदार सुतादुल बापि वित्त सं-
पन्नत डिंचि संसरणपद्धति बापॆडुवाडु नित्यकां-
क्षन् नॆरि नुन्न मा ब्रतुकु संचुनॆ येल मधुव्रतोत्तमा ! ॥ 1460 ॥

म. कमनीयंबगु वेटकानि पलुकाकर्णिंचि निक्कंबुगा
दम चित्तंबुल जेर्चि हरिणुल् तद्बाण निर्भिन्नलै
यमितोग्र व्यथ नोंदु भंगि हरि मायालापमुल् नम्मि दुः-
खमुलं जॆंदिति मंगजास्त्र जनितोग्रश्रांति निंदिदिरा ! ॥ 1461 ॥

उ. बंधुल विड्डलन् मगल भ्रातल दल्लुल दंड्रुलन् मनो-
जांधत जेसि डिंचि शरणंदिन मम्मु वियोग दुर्दशा-
सिंधुवुनंदु द्रोसि यिट चेरकपोवुट पाडि गादु पु-
ष्पंधय ! मी यधीशुनकु वादमुलं बडि यॊत्ति चॆप्पवे ॥ 1462 ॥

[शा.] [उसने] व्याध [शिकारी] के समान धोखे से वालि का वध किया; राक्षस की बहिन (सूर्पणखा) को, जो रीझकर आयी थी, पकड़ कर कुरूप कर दिया; लोभी (याचक) बन [राजा] बलि को बाँधकर छलछंद से तीनों लोक झड़प लिये। [ऐसा करनेवाला] माधव क्या धर्मज्ञ है? बोलो षट्पद ! उसने हमारा तिरस्कार क्यों किया ? जाने दो। [इन बातों से] हम तुम्हारा अनादर क्यों करें ? १४९५ [उ.] आकाश पर चढ़कर उड़नेवाला पक्षी भी यदि एक बार ही सही अपना नाम श्रवणों से सुन लेता है तो उसे उसके घर-द्वार, स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति आदि से छुड़ाकर कृष्ण उसे संसार-बंधन से विमुक्त कर देता है; किंतु हम तो नित्य ही उसकी कांक्षा करती रहती हैं, फिर भी हमारा दुख-भरा जीवन उसे सह्य हो रहा है ! यह क्यों ? बोलो, हे उत्तम मधुव्रत ! (भौरे) १४६० [म.] शिकारी के कर्णमधुर शब्द सुनकर उन पर चित्त लगाकर हिरन पास पहुँचते है और उसके बाणों से विद्ध होकर तीव्र बाधा सहते हैं, उसी प्रकार हरि के मायावचनों का विश्वास करके हम लोग दुःख पा रही हैं, हे भौरे, मन्मथ के अस्त्रों से हमें असह्य बाधा हो रही है। १४६१ [उ.] बन्धु [बांधव], पति, पुत्र, भाई [बहिन] और माता-पिता —सबको हमने कामांध बनकर छोड़ दिया, और उसी में शरण ली, ऐसे हम लोगों को वियोग-दुःख के समुद्र में ढकेलकर

सी. कांचन रत्न संघटित सौधंबुले मा कुटीरंबुलु माधवनकु
विविध नरेंद्र सेवित राजधानिये मा पल्लॆ यदुवंश मंडनुनकु
सुरभिपादप लताशोभितारामम मा यरण्यमु सिंहमध्यमुनकु
गमनीय लक्षण गज तुरंगंबुले मा धेनुवुलु कंसमर्दनुनकु

ते. रूप विभ्रम नैपुण्य रूढलैन
मगुवलमॆ मेमु मन्मथ मन्मथुनकु
नेल चिंतिंचु ममु गृष्णुडेल तलचु
बृथिवि नधिपुलु नूतन प्रियुलु गारे ? ॥ 1463 ॥

व. अनि मरियु निट्लनेक विधंबुल गृष्णसंदर्शन लालसलै पलुकुचुन्न गोपिकल वचनंबुलु विनि, युद्धवुंडु मधुरालापंबुल नूरार्चुचु निट्लनियॆ ॥ 1464 ॥

म. जप दान व्रत होम संयम तपस्स्वाध्याय मुख्यंबुलन्
निपुणुल् गोरियु नेविभुन् मनमुलो निल्पंगलेरट्टि स-
द्विपुलाकारुनिपै महामहिमुपै विश्वेशुपै मी कज-
स्र पद्ध्यानमुलिट्लु निल्चुनॆ भवच्चारित्रमुल् चित्रमुल् ॥ 1465 ॥

फिर पास न फटका, ऐसा करना न्याय नहीं है; हे पुष्पंधय (भ्रमर) ! यह बात तुम अपने स्वामी से उसके चरणों पर गिर, आग्रह के साथ कहो न ? १४६२ [सी.] हमारे कुटीर उस माधव (कृष्ण) के लिए कांचन-रत्न-निर्मित सौध है क्या ? (नहीं है ।) हमारा गाँव यदुवंशभूषण (कृष्ण) के लिए विविध-नरेंद्र-सेवित राजधानी है क्या ? (नहीं है ।) हमारे अरण्य उस सिंह-मध्यम (सिंह की जैसी कमर वाले) कृष्ण के लिए सुगंधियुक्त, वृक्ष-लता-शोभित आराम (बगीचे) है क्या ? हमारी गायें उस कंस-मर्दन कृष्ण के लिए सुंदर लक्षणों वाले हाथी-घोड़े हैं क्या? हम [गोपिकाएँ] मन्मथ के भी मन्मथ बने कृष्ण के लिए [ते.] रूप-विभ्रम-नैपुण्य-रूढ़ कामिनियाँ बन सकती है? (नहीं ।) इसलिए कृष्ण हमारी याद क्यों करेगा, हमारी चिंता क्यों करेगा ? पृथ्वी पर राजा लोग [स्वभाव से] नूतनता के प्रेमी होते हैं न ?" १४६३ [व.] यों कृष्ण-संदर्शन की लालसा से बोलने वाली गोपिकाओं के अनेक प्रकार के वचन सुनकर उद्धव ने अपने मधुर संलाप से उन्हें सांत्वना देते हुए कहा : १४६४ [म.] "जप, दान, व्रत, होम, संयम, तप, स्वाध्याय आदि [साधनाओं] द्वारा प्रज्ञाशाली लोग, अभिलाषा रखते हुए भी जिस प्रभु को अपने मन में धारण कर नहीं रख सकते उस विराड्रूप, महामहिम, विश्वेश्वर पर तुम लोग संतत-स्थिर-ध्यान इस प्रकार रख सकी हो [यह आश्चर्य है]; तुम लोगों के चरित्र विचित्र है। १४६५ [कं.] मुझे तुम लोगों के पास, संदेशा देकर, भेजते समय कृष्ण ने पास बुलाकर जो वचन कहे है उन्हें सुनो, सब विशद रूप से

कं. ननु मी कडकुं गृण्णुडु
पनि पंपेंडु वेळ विलिचि पलिकिन पलुकुल्
विनुडन्नियु विवरिंचेंद
वनजेक्षणलार ! मीरु दगवकु डिकन् ॥ 1466 ॥

व. अनि हरिवचनंबुलुगा निट्लनियें ॥ 1467 ॥

सी. अल्ल कार्यमुलकु नेनु प्रधान कारणमु गावुन मीकु रमणुलार !
कलुगदु मद्वियोगमु चराचररूपमुललो महाभूतमुलु वसिच्
करणि नुंडुदु सर्वगतुडनै ने मनः प्राण बुद्धि गुणेंद्रियाश्रयुंड
नात्मयंदात्मचे नात्म बुट्टितु रक्षितुनु ब्रुंतु हृषीकभूत

ते. गुणगणाकारमात्मलो गोमरु मिगुलु
निविड मायानुभवमुन नित्यशुद्ध-
मात्मविज्ञानमयमुनै यमरु गुणमु
प्रकृतिकार्य मनोवृत्ति वट्टि पोंदु ॥ 1468 ॥

चं. कल गनि लेचि मुन्नु कल गन्न समस्त विषंबु कल्लगा
दलचिन भंगि मानस पदार्थमुचे निखिलेंद्रियार्थमुल्
वलमुन गट्टि तद्ज्ञुडु प्रपंचम लेदनु दन् मनंबु दा-
रलयक गट्टुडुन् बुधुल कव्वल नोंडोक भेदमुन्नदे ॥ 1469 ॥

बताऊँगा, हे वनजेक्षण (कमलनयनी) वनिताओ, अब तुम लोग दुख मत करो।" १४६६ [व.] ऐसा कहकर [उसने] हरि के वचन यों दुहराये : १४६७ [सी.] "समस्त कार्यों का मैं प्रधान कारण हूँ, अतः हे रमणियो ! तुम्हें मुझसे वियोग [सहना] न होगा। जिस प्रकार इन चराचर (स्थावर-जगम) रूपों में [पंच] महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) निवास करते हैं, उसी प्रकार मैं सर्वगत (सभी के अंतर्भूत) होकर रहता हूँ। मैं ही मन, प्राण, बुद्धि, गुण और इन्द्रियों का आश्रय (आधार) हूँ; आत्मा के द्वारा (स्वेच्छा से) आत्मा में, आत्मा (अपने) को उत्पन्न करता हूँ, रक्षा और उपसंहार भी करता हूँ; इंद्रियाँ, भूत, [ते.] गुण और आकार (रूप) माया के गहरे अनुभव के द्वारा आत्मा में चमक उठते है; आत्मा नित्य-शुद्ध और विज्ञानमय होकर भी प्रकृतिकार्य और मनोवृति के अनुसार गुण को ग्रहण करती है। १४६८ [चं.] स्वप्न देखकर जाग जाने के बाद मनुष्य जिस प्रकार स्वप्न के समस्त पदार्थों को मिथ्या समझ जाता है, उसी प्रकार मानस-व्यापार द्वारा [सुख-दुःख आदि] समस्त इन्द्रिय-विषयों को बलपूर्वक रोककर ज्ञानी प्रपंच को मिथ्या मानता है। मन को सहज में बाँधनेवाले तत्वज्ञ बुद्धिमान में कोई भेदभाव नहीं

आ. सांख्य योग निगम सत्य तपो दम-
मुलु मनो निरोधमुलु गडपल
गाग नुंडु जलधि कडपलगा गल
नदुल भंगि नळिननयनलार !॥ 1470 ॥

म. चॅलुवल् दव्वुल नुन्न वल्लभुलपै जित्तंबुलं गूर्तुरु-
त्कलिकन् जेरुववारिकंटे नदियुं गाकॅप्पुडुन् नन्नु मी-
रलु चिंतिपुचुनुंड गोरि यिट्टु दूरस्थत्वमुन् बॉदिति
दलकं बोलदु नन्नु बॉदेदरु नित्यध्यानपारीणलै ॥ 1471 ॥

व. अनि मीकुं जॅप्पुमनि कृष्णुंडु संप्पे। अनवुडु नुद्धवुनिकि गोपिकलु संतसिंचि यिट्लनिरि ॥ 1472 ॥

उ. इम्मुल नुन्नवाडॅ हरि यिक्कडि कॅप्पुडु वच्चु वच्चि मा
युम्मलिकंबु वापुनॅ प्रियुं डिट वच्चॅदनन्न सैतुरे
यम्मथुरापुरी रमणुलड्डमु वत्तुरु गाक चॅल्लरे !
मम्मु विधात निर्दयुडु मन्मथवेदनपालु सेसॅने ॥ 1473 ॥

चं. मरचुनॅाको मदि दलचि माधवुडा यमुनातटंबुनन्
दरचुग दिव्य सौरभ लतागृह सीमल नेम्मु डाग ना

रह जाता। १४६९ [आ.] हे नलिन-नयनी गोपिकाओ ! जिस प्रकार नदियाँ जलधि (समुद्र) में जाकर अन्त होती हैं, उसी प्रकार सांख्य, योग, वेद, सत्य, तप और दम [आदि सब साधन] मनोनिरोध में जाकर परिसमाप्त होते है। १४७० [म.] सुन्दरियाँ समीपस्थ पतियों (प्रेमियों) की अपेक्षा दूर पर रहते हुओं पर ही उत्कंठा से मन लगाती है; इसके अतिरिक्त, मैं इस अभिलाषा से यों दूरी पर रहता हूँ कि तुम लोग सदा मेरा चिंतन करती रहो। तुम लोग डरो मत, नित्य ही [यदि] मेरे ध्यान में मग्न रहोगी तो मुझे प्राप्त करोगी।" १४७१ [व.] यों तुमसे कहने के लिए कृष्ण ने मुझे भेजा। उद्धव के इस भाँति कहने पर गोपिकाएँ संतुष्ट होकर कहने लगीं : १४७२ [उ.] "हरि सुख से है न ? यहाँ कब आयेगा ? आकर हमारा दुख कब दूर करेगा ? जब प्रिय यहाँ आना चाहेगा तो मथुरापुरी की वे रमणियाँ सहन करेंगी क्या ? वे उसका रास्ता रोकेंगी नहीं ? हाय ! उस निर्दयी विधाता ने हमें मन्मथ-बाधा (कामवेदना) सहने को बाध्य किया है। १४७३ [चं.] क्या माधव अपनी वह रीति मन में भुला चुका है, जब वह अकसर उस यमुनातट पर के दिव्य सुरभित लतागृहों में छिपी हम ललनाओं को छायाओं में बुला ले जाता, [लीलाओं में] थका देता, जब हम तन-मन बिसारतीं, हमें जाग्रत्

मरुवुलनुंडि नीडलकु मम्मेलंयिचि कलंचि देहमुल्
मऱचिन देंचि नूल्कोलिपि मन्मथलीलल देल्चु चंदमुल् ॥ 1474 ॥

शा. नीतो नर्मगृहंबुलं बलुकुने नेमेल्ल वंशोल्लस-
द्गीत-भ्रांतलमै कळिंदितनया-तीरंबुनन् जेरिनन्
जेतोजात सुखंबुलं दनिपि मा चित्तस्थितुल् सूड ली-
लातंत्रज्ञत डागि मेल्लन मदालापंबु लालिंचुटल् ॥ 1475 ॥

कं. मुच्चट वेळल जेप्पुने, यच्चुग मुनु नेमु नोमुनप्पुडु जलमुल्
सोच्चिन मा चेलबुलु, मुच्चिलि यिच्चिन विधंबु मूलंबेल्लन् ॥ 1476 ॥

शा. एकांतंबुन नीदुपै नोरुगि ता नेमेनि भाषिंचुचो
माकांतुंडु वचिंचुने रविसुता-मध्यप्रदेशंबुनन्-
राकाचंद्र मयूखमुल् मेरयगा रासंबु मातोड नं-
गीकारंबोनरिंचि बंधनियति ग्रोडिंचु विज्ञणमुल् ॥ 1477 ॥

सी. तनु वासि योविकत तडवैन निटमीद नेलपै मेनुलु निलुववनुमु
नेलपं मेनुलु निलुवक यटमुन्न धैर्यंबुलोक्कट दलगुननुमु
धैर्यंबु लोक्कट दलगिन पिम्मट जित्तंबुलिक्कड जिक्कदनुमु
चित्तंबुलिक्कड जिक्कक वच्चिन प्राणंबुलुंडक पायुननुमु

कर, मनवाकर कामक्रीड़ा में आनन्द-परवश कर दिया करता था। १४७४ [शा.] क्या उसने कभी तुमसे केलीमंदिर में सल्लाप करते हुए यह कहा है कि जब हम वंशी के मधुर गायन से सम्मोहित हो नदी तीर पहुँची, तब वह हमें कामसुखों मे छकाकर हमारे चित्त की स्थिति देखने के लिए मायावी वन छिपे-छिपे हम लोगों की मद-भरी बातें सुनता रहता था। १४७५ [कं.] कुछ दिन पूर्व हम लोग [कात्यायनी का] व्रत साधते समय जल में उतर नहा रही थीं, तो कृष्ण ने हमारे वस्त्र चुराकर रख लिये, और पश्चात् वापस दे दिये, उसने इसका वृत्तांत आद्योपांत तुमसे बतकही के बीच कभी कहा था या नहीं? १४७६ [शा.] यमुना के मध्य प्रदेश में जब पूर्णचन्द्र की किरणें (चाँदनी) छिटक रही थीं, हमसे सहमत होकर नृत्यबंध के नियमों के अनुसार कृष्ण ने रासक्रीडा में जो नैपुण्य दिखाया था उसका वृत्तांत तुम्हारे साथ एकांत में बैठ तुम पर झुककर गपशप करते हुए हमारे प्रिय ने कभी बताया था या नहीं? १४७७ [सी.] [हमारे प्रिय से] कह दीजिएगा कि उसका वियोग और अधिक काल तक रहा तो हमारे ये शरीर भूमि पर नहीं रहेंगे; धरती पर शरीरों के न रहने के पहले, हमारा धैर्य सब छूट जायेगा, धैर्य सब छूट जाने के बाद चित्त वश में नहीं रहेगा; चित्त जब विवश हो जायगा तो हमारे प्राण

ते. प्राणमुलु पोव मरि वच्चि प्राणविभुडु
प्राणिरक्षकुडगु तन्नु ब्राणुलेल्ल
जेरि दूरंग मरि येमि सेयुवाडु
वेग विन्नपमोनर्रिपवे महात्म ! ॥ 1478 ॥

कं. तगुलरे मगलनु मगुवलु
तगुलदे तनु मुन्नु कमल तगवु विडिच्चियुन्
दगिलिन मगुवल विडुचुट
दगु दगदनि तगवु बलुक दगुदुवु हरिकिन् ॥ 1479 ॥

सी. विभुडु मा व्रेपल्ले वीथुल नेतेर जूतुमे योकनाडु चूड्कुललर
प्रभुडु मातो नर्मभाषलु भाषिप विदुमे योकनाडु वीनुललर
दनुवुलु पुलकिप दयितुडु डासिन गलुगुने योकनाडु गौगिलिप
ब्राणेशु सम्मेल पासितिवनि दूर दोरकुने योकनाडु तोट्रुपडग

ते. वच्चुने हरि मेमुन्न वनमु जूड
दलचुने भर्त मातोडि तगुलु तेरगु
तेच्चुने विधि मन्नाथु दिट्टुवडक
येरुग बलुकु महात्म ! नी केरुगवच्चु ॥ 1480 ॥

भी रहेंगे नहीं, [हमें] छोड़ जायेगे; [ते.] [हमारे] प्राण छूट जाने के पश्चात् प्राणनाथ आकर क्या करेगा ? प्राणवान् (लोग) सब मिलकर प्राणरक्षक कहे जानेवाले उसी [कृष्ण] की निंदा करेगे। हे महात्मा ! शीघ्र [जाकर] उससे विनती कीजिए। १४७८ [कं.] क्या स्त्रियाँ पुरुषों पर आसक्त नही होती ? क्या पूर्व मे कमला (लक्ष्मी) झगड़ा छोड़कर उस [कृष्ण] पर अनुरक्त नही हुई थी ? अपने ऊपर अनुरक्त हुई स्त्रियों को त्याग देना उचित है या अनुचित है— इसका न्याय हरि को बताने के तुम योग्य हो न ? १४७९ [सी.] क्या कोई दिन ऐसा आयेगा जब हम अपने स्वामी को गोकुल की गलियों में आते हुए देख, नेत्रों को निहाल कर सकेंगी ? क्या कोई दिन ऐसा आयगा जब प्रभु को हमसे सरस सल्लाप करते हुए सुनकर कानों को सुख दे सकेंगी ? क्या कोई दिन ऐसा होगा जब प्रिय हमारे समीप आये और हम पुलकित शरीरों से उसे गले लगा सकेंगी ? क्या कोई दिन ऐसा होगा जब हम संभ्रम के साथ प्राणेश को यह उलाहना दे सकेंगी कि तुम हमें छोड़ क्यों गये हो ? [ते.] क्या हमारा यह वन का आवास देखने हरि आवेगा ? स्वामी ने जिस ढंग से हमारे साथ संपर्क किया था, क्या उसे कभी याद करता है ? हमारी निंदा सहे विना विधि हमारे नाथ को हमारे पास ला देगा ? हे महात्मा ! तुम सब

व. अनि दुःखार्णव मग्नंबैन गोपकुलंबु नुद्धरिंपुमु। रमानाथ! यनि गोपिकलु वगचि, तदनंतरंब मरियु, नुद्धव निगदितंबुलैन कृष्ण संदेशंबुलवलन विरह वेदनलु विडिचि, युद्धवुनि बूजिंचिरि। इट्लु कृष्णलीला वर्णनलु सेयुचु, व्रेपल्लॆ नुद्धवुंडु कॊन्नि नॆललुंडि, नंदादुल वीड्कॊनि, मरलि, रथारूढुंडै, चनि चनि ॥ 1481 ॥

कं. सारमति ब्रणुति सेयुचु, नारय नुद्धवुडु गांचॆ नघसंहारिन्-
हरिन् मथुरानगर वि,-हारिन् रिपुजन मदापहारिन् शौरिन् ॥ 1482 ॥

व. कनि, यथोचितंबुगा भाषिंपुचु दनचेत नंदादुलु पुत्तेंचिन कानुकलु बलकृष्णुलकु, नुग्रसेनुनिकिन् वेरु वेरु यिच्चॆ। अनि शुकुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुन किट्लनियॆ ॥ 1483 ॥

अध्यायमु—४८

कृष्णंडुद्धवुनितो जेरि कुब्जा गृहंबुन करुगुट

म. तनुमुन्नंगजकेळि गोरिन लतातन्विन् रतिक्रीडलं
दनुपन् गोरि जनार्दनुंडरिगॆ रत्न स्वर्ण माल्यानुले-

कुछ जान सकते हो, हमें समझाकर कहो। १४८० [व.] दुःख समुद्र में निमग्न इस गोपकुल की रक्षा करे रमानाथ।" यों कहकर गोपिकाओं ने दुःख प्रकट किया। अनंतर उन्होंने उद्धव के सुनाये हुए कृष्ण-संदेश के द्वारा अपनी विरह-व्यथा भूलकर उद्धव का पूजन किया। इस प्रकार कृष्ण की लीलाओं का श्रवण करते हुए उद्धव गोकुल में कुछ महीने रह गया। फिर नंद आदि से विदा लेकर रथारूढ़ हो वापस चला आया। चलकर··· १४८१ [कं.] मतिमान् उद्धव ने अघहारी (पापहारी), हरि, मथुरानगर-विहारी, रिपु-जन-मदहारी, शौरी, कृष्ण के नमस्कारपूर्वक दर्शन किये। १४८२ [व.] उचित (आवश्यक) संभाषण के बाद उसने बलराम को, कृष्ण को और उग्रसेन को अलग-अलग उपहार अर्पण कर दिये जिन्हें नंद आदि ने उसके हाथ भिजवा दिये थे। यों बताकर शुक ने राजा परीक्षित से यों कहा: १४८३

अध्याय—४८

श्रीकृष्ण का उद्धव के साथ कुब्जा के घर पर जाना

[म.] जिस कोमलांगी ने पूर्व में अपने साथ कामकेलि करनी चाही थी, उस कुब्जा को रतिक्रीड़ा में तृप्त करने के निमित्त जनार्दन—कृष्ण,

पन भूषांबर धूपदीप परिदीप्तंबै मनोज प्रदी-
पनमै युन्न तदीय गेहमुनकुं बंचेषु बंचेषुडै ॥ 1484 ॥

व. इट्लरिगि तद्गेह मध्यंबुन ॥ 1485 ॥

आ. कामु शरमु बोलॆ कमलारि कळबोलॆ
मॆलगि याड नेर्चु मॆरुगुबोलॆ
निखिल भुवन मोहिनी दैवतमु बोलॆ
जॆलुवु मॆरसि युन्न चॆलुव गनियॆ ॥ 1486 ॥

म. हरि येतॆंचिन लेचि संभ्रममुतो नाळीसमूहंबु चे-
सिरि यॊप्पन् विहितोपचारमुलु ता जेर्यिचि सौवर्ण सुं-
दर तल्पस्थितु जेसि युद्धवुनि तुष्टप्रीति बूजिंचि भा-
सुर पीठंबुन नुंडुमंचु मदि नौत्सुक्यंबु शोभिल्लगन् ॥ 1487 ॥

कं. आळीनिवह निवेदित, माला मृगनाभिपंक मणिमय भूषा
चेलालंकृत यगुचुनु, हेलावति गोरॆ वनरुहेक्षणु गवयन् ॥ 1488 ॥

कं. लीलावती कृतोल्लस, -दैला कर्पूर मिळित हित मधुर महा-
हालारस पानमद, श्रीलालितयगुचु नबल चेरॆन् गृष्णुन् ॥ 1489 ॥

म. सरसालोकन वृष्टिपै गुरियुचुन् सम्यग्वचो वैखरिन्
गरगं जेसि सुवर्ण कंकण समग्रंबैन सैरंध्रि केल्

कामदेव के लिए भी मनोज्ञ बनकर उसके भवन पर गया, जो रत्न, स्वर्ण, माल्यानुलेपन, भूषण, वस्त्र, धूप, दीप आदि से प्रकाशमान था और काम को उद्दीप्त कर रहा था। १४८४ [व.] यों चलकर उस घर के मध्य में १४८५ [आ.] कामदेव के बाण की तरह, कमलारि (चंद्रमा) की कला के समान, नाचती हुई विद्युत् रेखा के सदृश, निखिल-भुवन-मोहिनी देवी की नाईं शोभायमान सुन्दरी को देखा। १४८६ [म.] हरि के आने पर उठकर उसने संभ्रम के साथ सखी जनों द्वारा अपने ऐश्वर्य के अनुरूप समस्त उपचार करवाये और सुंदर सुनहले पलंग पर बिठाया, फिर उसने प्रीति के साथ उद्धव को पूजकर उत्सुक मन से विनती की कि एक प्रकाशमान पीढ़े पर विराजें। १४८७ [कं.] सखियों के कहे अनुसार कस्तूरी-लेपन, मणिमय-भूषण, और सुंदर वस्त्र आदि से अलंकृत होकर उस विलासिनी ने कमलनयन कृष्ण का संभोग चाहा। १४८८ [कं.] वह अबला लीलावती (एक सखी) के बनाये एला (इलायची) और कर्पूर मिले, हितकर और मधुर, हालारस (मद्य) के पान से उत्पन्न मद की शोभा लिये कृष्ण से जा मिली। १४८९ [म.] सरस अवलोकनों (दृष्टियों) की वर्षा और वचन-चातुरी से पिघलाकर (द्रवित कर) कृष्ण ने उस

गर पद्मंबुन बट्टि तल्पमुन काक्कषिंचि गंभीरतन्
बरिरंभादुल नान बुच्चि मरु संभाविपुचुन् वेडुकन् ॥ 1490 ॥

उ. जातियु गालमु गळयु सत्वमु देशमु भाव चेष्टलुन्
धातुवु ब्रायमु गुणमु दद्दशयुन् हृदयंबु जूड्कियुन्
ब्रीति विशेषमु देलिसि पेक्कुविधंबुल दीय्यलिन् मनो-
जात सुखंबुलं दनिपे शौरि वधू हृदयापहारिये ॥ 1491 ॥

कं. करपद्मंबुल माधवु
गर मोप्पं गोगिलिच्चि कामानलमुन्
गरभोरुवु वजिचेनु
गर मरुदनि तोडि शीतकरमुखुललरन् ॥ 1492 ॥

म. सनकादुल् तलपोसि काननि विभुन् सर्वप्रभुन् दुर्लभुन्
मुनु दानिच्चिचन यंगराग सुकृतामोदंबुनन् गूडियुन्
घन निर्वाणविभूति यिम्मनक या कंजाक्षि ये वाय जा-
ल ननुं गोग्नि दिनंबुलंगभव लीलं देल्पवे नावुडुन् ॥ 1493 ॥

सैरंध्री को उसका सुवर्ण-कंकण-भूषित हस्त अपने करकमल से पकड़कर पलंग पर खीच लिया और आलिंगन आदि से उसकी लज्जा छुड़ाकर, उसके प्रेम को सहर्ष सराहा। १४९० [उ.] जाति (पद्मिनी, हस्तिनी आदि स्त्री जाति); काल (समय), कला (१६ कामकलाएँ), सत्व (देहबल); देश, भाव चेष्टाएँ; धातु (वात, पित्त आदि); वय, गुण (सत्व, रज आदि); दशा (मानसिक स्थिति); हृदय; दृष्टि; प्रीतिविशेष आदि [सारी बातें] पहचान कर, शौरि (कृष्ण) ने वधू-हृदयापहारी (-चित्तचोर) बन, अनेक प्रकार से उस ललना को कामसुख से संतृप्त किया। १४९१ [कं.] अपने करपद्मों से माधव (कृष्ण] का गाढ़ालिंगन करके उस रूपवती ने अपनी कामाग्नि (मन्मथताप) को त्याग दिया, जिसे चंद्रमुखी सखियों ने दुर्लभ कार्य कहकर संतोष प्रकट किया। १४९२ [म.] सनक आदि महात्मा ध्यान लगाकर जिस दुर्लभ, समस्त के प्रभु ईश्वर को देख नहीं सकते, उस स्वामी का संसर्ग उस कंजाक्षी (कमलनयनी) ने अपने उस सुकृत (पुण्य) के बल पर प्राप्त कर लिया जिसे उसने कृष्ण को पहले अंगराग (चंदन आदि सुगंधित लेपन) देकर कमाया था। फिर भी उस ललना ने [भगवान् से] महान निर्वाणविभूति (मोक्ष का भाग्य) नहीं माँगी, वरन् उसने विनती की कि मैं तुमसे वियुक्त हो रह नहीं सकती, और थोड़े दिन कामक्रीड़ा में मुझे तृप्त करते रहो। १४९३ [आ.] तब शौरि (कृष्ण) उस वनिता को उसका मुंह-माँगा वर देकर उद्धव-सहित उसके

आ. वनित गोरुकोनिन वरमिच्चि शौरि या
युद्धवुंडु दानु नुविद यिल्लु
वेडलें नपुडु तिय्यविलुकाडु सुरभितो
दोंगयिल्लु वेडलु तेरगु मेरय ॥ 1494 ॥

कं. ए वेदंबुलु गाननि, देवोत्तमु गांचि मुक्ति तेरुवडुगक रा-
जीवेक्षण रति यडिगेनु, भाविप ददीयकर्म फल मेट्टिदियो ! ॥ 1495 ॥

कं. कारुण्यंबुन गृष्णुडु, तारुण्यमु सेऽसि मदन तंत्रंबुल ली-
लारण्य वीथि देल्चेनु, सैरंध्रिन् विभवविजित शक्रपुरंध्रिन् ॥ 1496 ॥

व. तदनंतरंब कृष्णुंडुद्धव राम सहितुंडयि, हस्तिपुरंबुनकु नक्रूरुनि बनुपं दलंचि, तद्गृहमुनकुं जनिन, नतंडु वारलंगनि, लेचि, रामकृष्णुलकु नमस्करिंचि, युद्धवुं गौगिलिंचुकोनि, वारि नंदऱनु यथाविधि बूजिंचि, हरि पादंबुलु तन तोडलमीद निडुकोनि यिट्लनिये ॥ 1497 ॥

कं. अनुचरुलु दानु गंसुडु, सनियेन् नीचेत जमुनि सदनंबुनकुन्
घनुलार ! मी बलंबुन, नोनरग यादवुल वंशमुद्धृतमय्येन् ॥ 1498 ॥

व. महात्मुलारा ! मीरु विश्वादि पुरुषुलरु, विश्वकारणुलरु, विश्वमयुलरु, नगुट, मीकु कार्यकारणंबुलु लेवु अवधरिंपुमु । परमेश्वरा ! नीवु रजोगुणंबुन नखिलंबुलु सृजियिंचि, कारणरूपंबुनं ददनुप्रविष्टुंडवै, श्रुतदृष्ट

घर से यों चला आया जैसे मन्मथ वसंत के साथ लता-गृह से निकला हो। १४९४ [कं.] जिसे कोई भी वेद जानता नहीं, उस देवोत्तम को पाकर भी उससे मुक्ति-मार्ग (-उपाय) न पूछकर उस कमलनयनी ने रति माँग ली; जान नहीं पड़ता उसका कर्मफल किस प्रकार का है ! १४९५ कृष्ण ने उस सैरंध्री (अंत:पुरदासी) को जो वैभव में शक्रपुरंध्री (शची देवी को) जीत चुकी थी, करुणापूर्वक अपने तारुण्य के बल कामतंत्र की लीलाओं के अरण्य-मार्ग में से ले जाकर पार पहुँचाया। १४९६ [व.] अनंतर कृष्ण उद्धव और बलराम-सहित हो, अक्रूर को हस्तिनापुर भेजने के विचार से उसके घर गया। उन्हें देख अक्रूर उठा, राम और कृष्ण को नमस्कार किया और उद्धव को गले लगाया। उसने यथाविधि सबको पूजकर हरि-चरणों को अपनी जाँघ पर ले यों कहा : १४९७ [कं.] "कंस और उसके अनुचर तुम्हारे हाथ यमसदन पहुँच गये; हे महिमावान् ! तुम्हारे बलबूते पर यादवों के वंश का उद्धार हुआ है। १४९८ [व.] हे महात्माओ ! तुम लोग विश्व के आदिपुरुष हो; विश्व के कारण हो; विश्वमय हो; अतः तुम्हारे लिए कार्यकारण कुछ भी नहीं है। सुनिए ! हे परमेश्वर ! तुमने रजोगुण के बल अखिल (विश्व) की सृष्टि

कार्यरूप प्रपंचाकारंबुन दीपिंचुचुंदुवु। कार्यरूप चराचर देहंबुलकुं गारणंबुलयिन भू प्रमुखंबुलनुगतंबुलुनु, गार्यरूप देहंबुलु नयि, प्रकाशिंचु चंदंबुन नोक्कंडवु, कारणरहितुंडवु, नात्म तंत्रुंडवुनै युंडियु, विश्वाकारंबुनं बॅक्कगुदुवु। सृष्टि स्थिति लयंबुलं जेयुचुंडियु विज्ञानमूर्तिवगुट बरिभ्रांतुडयिन जीवुनि भंगि गुण कर्म वद्धुंडवु गावु। कावुन सिद्धंबु तन्निमित्तंबु बंधहेतुवु सिद्धिपदु ॥ 1499 ॥

सी. परग जीवुनिकैन बंधमोक्षमुलंटवंटने परतत्वमैन निन्नु
नंटुने यीश! देहाद्युपाधुलु ननिर्वचनीयमुलु गान वरुस नोकु
जन्मंबु जन्म संश्रय भेदमुनु लेदु कावुन बंधमोक्षमुलु लेवु
गणुतिप निन्नुलूखलवद्धुडनुटयु नहि मुक्तुडनुटयु नस्मदीय

आ. बाल बुद्धि गादॆ पाषंडमुखर मा, -र्गमुलचेत नी जगद्धितार्थ-
मैन वेदमार्ग मणगिपो वच्चिन, नवतरिंचि निलुपुदंबुजाक्ष ॥ 1500 ॥

कं. आ नीवु धरणि भारमु, मानिचि रक्कसुल नॆल्ल मर्दिचुटकै
यानकदुंदुभि यिटनु, मानुग जन्मिचितिवि समंचित कीर्तिन् ॥ 1501 ॥

करके कारणरूप में उसी के अंदर प्रविष्ट हो रहते हो और श्रुत-दृष्ट-कार्य रूपी प्रपंच के आकार में दीप्त (प्रकाशमान) रहते हो। कार्य रूपी चराचर देहों (प्राणियों) के लिए कारण बने हुए पृथ्वी आदि पंचभूत स्वयं चराचरदेही बन प्रकाशित होते है। उसी प्रकार तुम अकेले ही कार्य और कारण के रूप में भासित होते हो। कारण-रहित और आत्मतंत्र (अपने-आप प्रवर्तित होनेवाले) एकाकी होकर भी तुम विश्वाकार में अनेक बनते हो। सृष्टि, स्थिति और लय करते हुए भी विज्ञान की मूर्ति होने के कारण परिभ्रांत जीव के समान तुम गुण-कर्म-बद्ध नहीं होते। तुम सिद्ध हो, सिद्ध के लिए बंध का कारण सिद्ध नहीं होता। १४९९ [सी.] जब कि यह कहा जाता है कि बंध और मोक्ष जीव को स्पर्श नहीं कर सकते तब, हे ईश! तुम-परतत्त्व को वे कैसे छू सकते हैं? देह आदि उपाधियाँ मिथ्या पदार्थ है, अतः तुम्हें जन्म और उसके आश्रय-भेद नही होते; इस कारण से तुम्हें बंध और मोक्ष भी नहीं हैं। परखने से यही मालूम होता है कि तुम्हारे विषय में यह कहना कि तुम [यशोदा के द्वारा] ऊखल में बाँध दिये गये हो और [कालिय] नाग सर्प से विमुक्त हुए हो। [आ.] केवल हमारे बच्चों की जैसी बुद्धि का परिणाम है। हे अंबुजाक्ष! जब पाषंड आदि कुमार्गों के कारण जगद्धितकारी वेदमार्ग दब जाता है, तब तुम अवतार लेकर उसे पुनः स्थापित कर देते हो। १५०० [कं.] यो धरणी (भूमि) का भार उतारकर, समस्त राक्षसों का मर्दन करने के निमित्त तुम आनकदुंदुभि (वसुदेव) के घर जन्म लेकर कीर्तिमान्

म. त्रिजगत्पावन पादतोयमुलचे दीपिंचि वेदामर-
द्विज मुख्याकृतिवैन नीवु करुणन् विच्चेयुटन् जेसि मा
निजगेहंबुलु धन्यतं वनरेवो निम्नार्युलर्चिपगा
नजितत्वंबुलु वारिकित्तुवनुकंपायत्त चित्तुंडवै ॥ 1502 ॥

शा. ए पुण्यातिशय प्रभावमुननो यी जन्ममंदिक्कडन्
नी पादंबुल गंटि निन्नेरिगितिन् नीवुं गृपाळुंडवै
ना पं नर्मिलि जेसि मान्पगदवे नाना धनागार कां-
ता पुत्रादुलतोडि बंधनमु भक्तव्रात-चिंतामणी ! ॥ 1503 ॥

कृष्णुंडक्रूरुनि हस्तिनापुरंबुनकु बंपुट

व. अनि पलिकि नगुचु नक्रूरुनिकि माटलवलन संसारसंबंधंबगु मोहंबु गोलु
कोलुपुचु, हरि यिट्लनियें ॥ 1504 ॥

कं. बंधुंडवु सद्यो हित, -संधुंडवु वावि जूड जनकुडवु, कृपा-
सिंधुंडवैल्लगुणमुल, नंधुंडवु गावु प्रोव नहुंड वेंदुन् ॥ 1505 ॥

चं. कोलुतुरु मर्त्युलिष्टमुलु गोरि शिलामय देवसंघमुन्
जलमय तीर्थसंघमुनु संततमुन्नटु वारु गोल्वगा

हुए हो। १५०१ [म.] तीनों लोकों को पवित्र करनेवाले पाद-जल (गंगा-जल) से तुम दीप्तिमान हो; वेद, अमर (देवता) और द्विजों के [प्रत्यक्ष] मूर्ति-स्वरूप हो; करुणापूर्वक तुम हमारे यहाँ पधारे हो, जिससे ये घर-द्वार धन्य हुए हैं। जो सज्जन तुम्हारी अर्चना करते हैं, उन्हें तुम दयापूर्ण-चित्त से अजेयता प्रदान करते हो। १५०२ [शा.] किसी अतिशय पुण्य के प्रभाव से मैं इस जन्म में, यहाँ पर तुम्हारे चरणों को देख पाया, और तुम्हें जान सका। हे भक्तों के चिंतामणि ! तुम कृपालु होकर, मुझ पर प्रीति रखकर, नाना [प्रकार के] धनागार, कांता और पुत्रों के साथ का मेरा बंधन छुड़ा दो।" १५०३

कृष्ण का अक्रूर को हस्तिनापुर भेजना

[व.] इतना कहने पर हरि ने हँसकर ऐसे वचन कहे, जिनसे अक्रूर के मन में संसार संबंधी मोह जाग्रत् हो गया : १५०४ [कं.] "तुम मेरे बन्धु हो; तुरंत ही हित करनेवाले हो; नाते में मेरे पिता लगते हो; दया के समुद्र हो; समस्त गुणों से युक्त हो; सब प्रकार से रक्षा करने में समर्थ हो। १५०५ [च.] मानव अपनी इष्टसिद्धि के लिए शिलामय देवी-देवताओं को पूजते हैं, नदी-तीर्थों की सदा यात्रा करते हैं; उनके इस पूजन

वल दनराडु गाक भगवत्पदभक्तुलरैन मीक्रियन्
सॊलयक देवतीर्थमुलु चूचिनयंतनॆ कोर्कॆ लिच्चुने ॥ 1506 ॥

व. महात्मा ! परमभागवतुंडवैन नीवु माकभीष्टंबुल नीर्नरिप नर्हुंडवु। विनुमु। पांडुराजु परलोकगतुंडयिन, गुंतीसहितुलयिन पांडवुलु धृतराष्ट्र शासनंबुन नेतॆंचि, करिपुरंबुन नुन्नवारट। निज पुत्र मोहितुंडगु नय्यंधनृपति, वारियंडु समत्वंबुनं जरिपंडु। अटु गावुन ॥ 1507 ॥

कं. वारलु बंधुलु गावुन, वारलकुनु मेलॊनर्चि वारलरंगा
वारिपवलयु दुःस्थिति, वारिजरिपुवंश ! पॊम्मु वारिजूडन् ॥ 1508 ॥

व. अनि पलिकि, संकर्षणोद्धव सहितुंडै, हरि निजगृहंबुनकु जनुटयु,

अध्यायमु—४९

व. अक्रूरुंडु कौरवराजधानियगु करिपुरि करिगि, यंदु धृतराष्ट्र भीष्म विदुर बाह्लिक भारद्वाज गौतम दुर्योधन कर्णाश्वत्थामादुलनु, गुंती-सहितुलैन पांडवुलं, दक्किन बंधुवुलनुंगनि, यथोचित सत्कारंबुल नॊंदि,

---

और सेवा को हम अस्वीकार नहीं करते; किंतु तुम भगवद्पदभक्त होकर जिस तरह दर्शन करते ही, वरदान देते हो, उस तरह वे देवता और तीर्थ नकार किये बिना हमारे अभीष्ट की पूर्ति तत्काल ही नहीं करते। १५०६ [चं.] हे महात्मा ! तुम परमभागवत हो, हमारा अभीष्ट पूरा करने में समर्थ हो। [अतः] सुनो। पांडुराजा के परलोकगत (स्वर्गवास) होने पर, सुना है कि कुन्ती-सहित पांडव लोग धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर हस्तिनापुर में आकर रहने लगे हैं। अपने पुत्र के मोह में पड़े वह अंधा राजा पांडवों के साथ समत्व का व्यवहार नहीं कर रहा है। अतः··· १५०७ [कं.] पांडव हमारे बंधु (संबंधी) है, उनका भला करके उन्हें संतुष्ट रखने के लिए उनकी दुःस्थिति दूर करनी चाहिए। अतः हे चंद्रवंशी ! उन्हें देखने जाओ।" १५०८ [व.] यों कहकर संकर्षण और उद्धव को साथ ले हरि अपने घर लौट आया।

अध्याय—४९

[व.] अनंतर अक्रूर कौरव-राजधानी हस्तिनापुर पहुँचा; वहाँ धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, वाह्लीक, भारद्वाज, गौतम, दुर्योधन, कर्ण, अश्वत्थामा आदि, [कौरवों] से तथा कुंती-सहित पांडवों से और अन्य बांधवों से मिला। उनसे उचित सत्कार प्राप्त कर, एक-एक का वर्तन जान लेते हुए कुछ दिन वहाँ विताये। एक दिन कुंती ने एकांत में विदुर के समक्ष अक्रूर से यों

तत्तद्वर्तनंबुलॅरिगिकॉनुचु, गॉन्नि दिनंबुलुंड, नॉक्कनाडु विदुरुंडु विन नेकतंबुन नक्रूरुनिकि गुंति यिट्लनियॆ ॥ 1509 ॥

शा. अन्ना ! तल्लुलु दंड्रुलुं भगिनुलुन्नल्लुंड्रु मद्भ्रातलुन्
निन्नुं बॊम्मनुवेळ नेमनिरि मा नॆव्वल् विचारिंतुरे
युन्नारा सुखयुक्तुले मृग वृक व्यूहंबुलो नुन्न रे-
खन्ने निक्कड नुन्न दान गुमनः कौरव्य मध्यंबुनन् ॥ 1510 ॥

म. करपिंचॆन् फणिकोटिचे लतिकलं गट्टिंचि गंगानदिन्
नॆरि द्रोपिंचॆ विषान्वितान्न मॊसगॆन् निद्रारतिं जॆंदि ये-
मरि युंडन् बॊडिपिंचॆ नायुधमुलन् मत्पुत्रुलं देमियुन्
गॊरगाडी धृतराष्ट्रसूनुडु महाक्रूरुंडु कार्यंबुलन् ॥ 1511 ॥

म. बलुडुन् गृष्णुडु नॆन्नडैन दमलो भाविंचि मेनत्त बि-
डुलकुन् मेलु दलंतुरे वगवुलंडव्यंगबालॆरयो !
जलजाताक्षुडु भक्तवत्सलुडिलाचक्रंबु भागिंचि यि-
म्मुल निप्पिंचुने ना कुमारकुलकुन् मुख्यप्रकारंबुनन् ॥ 1512 ॥

व. अनि पलिकि, कृष्णुनि जित्तंबुन निलिपि, नमस्करिंचि, संकीर्तनंबु चेसि, सर्वात्म ! सर्वपालक ! पुंडरीकाक्ष ! शरणागतनैन नन्नु रक्षिपु, रक्षिपुमु, अनि वगचुचुन्न कुंतिकि नक्रूरुंडु विदुर समेतुंडै, प्रिय वचनंबुल दुःखोशमनंबु

कहा : १५०९ [शा.] "भाई ! तुम्हें यहाँ भेजते समय मेरे माता-पिता, भाई, बहिन और भानजे आदि ने क्या कहा ? हमारे कष्टों के बारे में वे लोग कभी सोचते हैं ? वे सब सुख से है न ? दुष्ट कौरवों के मध्य में मैं यहाँ भेड़ियों के बीच में हिरन के समान रहती हूँ। १५१० [म.] यह, धृतराष्ट्र का पुत्र [दुर्योधन] मेरे पुत्रों के सामने किसी काम का नहीं, किंतु कार्य में महाक्रूर है। उसने उन्हें साँपों से डसवाया; लताओं से बाँधकर गंगानदी में ढकेलवाया; विष-मिला अन्न खिलवाया, निद्रा में सुधबुध भूल पड़े हुओं को शूलों से चुभवाया। १५११ [म.] बलराम और कृष्ण कभी आपस में विचार कर अपने फुफेरे भाइयों का भला सोचते हैं या नहीं ? हाय ! मेरे बच्चों को चिंता से घुलना पड़ रहा है। जलजाताक्ष (कमललोचन), और भक्तवत्सल कृष्ण इस भूमंडल का बँटवारा कराकर मेरे पुत्रों को उनका उचित राज्य-भाग अनायास दिलवायेगा या नहीं ?" १५१२ [व.] यों कहकर [कुंती ने] कृष्ण को चित्त में स्थापित कर, नमस्कारपूर्वक संकीर्तन किया— "हे सर्वात्मा ! सर्वपालक ! पुंडरी[illegible] ! मुझ शरणागत को बचाओ; रक्षा करो, र[illegible] करो " इस प्र[illegible] [illegible]ाप करती हुई कुंती का, [illegible] के

चेसि, वीड्कॊनि, बंधुमित्र मध्यंबुन सुखोपविष्टुंडैन धृतराष्ट्रु न
किट्लनिरे ॥ 1513 ॥

अक्रूरुंडु धृतराष्ट्रुनितो हितोपदेशरूपमुगा संभाषिंचुट

उ. नी यनुजुंडु पांडु धरणीविभुडोलिगन नीवु भूमि ध-
र्मायतबुद्धि नेलुचु प्रजालनु गाचुचु गौरवंबुतो
बाधक लोकुलंदु समभावन जेसितिवेनि गीर्तियुन्
श्रेयमु गल्गु वेरॊकटि चेसिन दुर्गति गल्गु भूवरा! ॥ 1514 ॥

सी. अवनीश! पांडवुलंदु नी नंदनुलंदु समानुंडवगुट बुद्धि
यॆव्वनितो योगमिदॆव्वनिकि नित्य मंगनागार पुत्रादिकमुल
वलन नय्यॆडिदेमि वसुमति नॊक जंतु वुदयिंप नॊकजंतु वुक्कडंगु
नॊकडु पुण्यमु जॆंदु नॊकडु पापमु नॊंदु मीन जीवन भूत मिळित जलमु

आ. तत्तनूजुलॆट्लु द्रावुदुरट्लु मू-
ढात्मु वित्तमॆल्ल नपहरिंतु-
रहितुलैन कॊडुकुलटमीद मनियैन
जच्चियैन दंड्रि जाड जनरु ॥ 1515 ॥

मिलकर प्रियवचनों से दुःखोपशमन किया। फिर विदा लेकर मित्रों के मध्य में सुख से उपविष्ट धृतराष्ट्र के पास जाकर यों कहा : १५१३

अक्रूर का धृतराष्ट्र से हितोपदेशपूर्वक संभाषण करना

[उ.] "हे भूवर (राजा)! तुम्हारे अनुज पांडुराजा के मरने पर तुम धर्मबुद्धि से राज करने लगे हो; यदि तुम प्रजा की रक्षा करते हुए लोगों के साथ गौरव और समभाव बरतते रहोगे तो कीर्ति और श्रेय प्राप्त करोगे, विपरीत कार्य करोगे तो तुम्हारी दुर्गति होगी। १५१४ [सी.] हे भूपाल! अपने पुत्रों और पांडवों के विषय में समान रूप से व्यवहार करना तुम्हारे लिए बुद्धिमत्ता है; यहाँ पर (लोक में) किसी का संयोग किसी के लिए शाश्वत नहीं रहता; स्त्री, पुत्र, घर-द्वार आदि से [भला] क्या होगा? भूमि पर यदि एक जंतु (प्राणी) पैदा होता है तो दूसरा एक मरता रहता है; एक पुण्य कमायेगा तो दूसरा पाप बटोरेगा; जिस प्रकार मीनों के जीवन के लिए आधारभूत जल को [आ.] उन्हीं की संतान (दूसरी मछलियाँ) पी जाती है, उसी प्रकार मूढात्माओं का [कमाया] सारा वित्त (धन) उनके दुष्ट पुत्र अपहरण करते है, फिर वे लोग पास फटक कर भी नहीं देखते कि पिता जीवित है या मरा है। १५१५

कं. कावुन मूढात्मुडवै, नी वार्जिचिन धनंबु नी पुत्रुलु दु-
र्भावुलु पुच्चुकोनंगा, भूवर ! निंदितुडवगुदु भूनाकमुलन् ॥ 1516 ॥

शा. निंदं बॊंदकुमय्य ! यी तनुवु दा निद्रा कळावृष्टमौ
संदोहंबु विधंबु निल्वदु सुमी जात्यंधतं बॊंदियुन्
मंद प्रज्ञतलेल चेसॆदवु सम्यग् ज्ञानचक्षुंडवै
संदेहिंपक यिम्मु पांडवुलकुन् सर्वंसहा-भागमुन् ॥ 1517 ॥

व. अनिन धृतराष्ट्रुं डिट्लनियॆ ॥ 1518 ॥

सी. नी माट मंचिदि निश्चयमगुनैन नस्थिरंबयिन ना यंतरंग-
मंबु निल्वदु सुदामाचल स्फटिक शिलातलोद्यत तटिल्लतिक भंगि
नमृतंबु नॊंदियु नानंदितुडु गानि नरुमाड्कि नेनु नानंद मॊंद
नीश्वराज्ञाविधमॆव्वडु दप्पिंप नोपु विज्ञानियै युंडियैन

आ. विश्वमॆल्ल जेसि विभजिंचि गुणमुल
नॆव्वडनुसरिंचॆ नॆव्वडवनि
भारमॆल्ल बाय गर्भविंचॆ देवकि
कॆव्वडात्मतंत्रुडीश्वरुंडु ॥ 1519 ॥

व. अट्टि कृष्णुनकु नमस्करिंचॆद। आ नंदनंदनुनि दिव्य चित्तंबुनं गल

[कं.] अतः मूढात्मा होकर तुमने जो संपत्ति कमायी उसे तुम्हारे दुष्ट पुत्र जब छीन लेंगे तो, हे राजन् ! भूतल में और स्वर्गलोक में तुम्हारी निंदा होगी (अपयश पाओगे) । १५१६ [शा.] हे आर्य ! तुम निंदा (अपकीर्ति] मत लो; यह शरीर स्वप्न में देखी हुई वस्तुओं के समान अदृश्य हो जाता है, टिकता नहीं; जन्मांध होने पर भी तुम ज्ञानांध (मंदप्रज्ञ) क्यों बनते हो ? (बुद्धिहीन कृत्य क्यों करते हो ?) ज्ञानचक्षु (विवेकी) होकर, संदेह छोड़, पांडवों को भूमि (राज्य) का भाग दे दो।" १५१७ [व.] इस पर धृतराष्ट्र ने यों कहा : १५१८ [सी.] तुम्हारा कहना बहुत अच्छा है, इसमें संदेह नहीं; किंतु मेरे अस्थिर हृदय में वह टिकता नहीं, जैसे सुदामाचल की स्फटिक-शिला पर पड़ी विद्युत्-रेखा उस पर नहीं टिकती। अमृत पाकर भी आनंदित न होनेवाले मनुष्य के समान मैं भी आनंद नहीं पाता। विज्ञानी होने पर भी [आ.] मनुष्य ईश्वर की आज्ञा टाल नहीं सकता। जिसने सारा विश्व रचकर, [सत्व-रज-तम आदि] गुणों का विभाजन करके उन्हीं का अनुसरण किया है, जो भूमि का भार उतारने के निमित्त देवकी के गर्भ में उत्पन्न हुआ, जो स्वतंत्र आत्मा ईश्वर है··· १५१९ [व.] उस कृष्ण को नमस्कार करता हूँ। उस नंदनंदन का दिव्य चित्त जिस प्रकार का

तरंगुनं ब्रतुकं गलवारमु। अनि वीड्कॊलिपिन, नक्रूरुंडतनि तलंपॆऱिगि, यिट्लनियॆ। नी तलंपु गनुगॊंटि। नी किष्टंबगुनट्लु वर्तिपुमु। अनि पलिकि, मरलि मथुरकुं जनुदॆंचि, तदीय वृत्तांतंबु रामकृष्णुल कॆऱिंगिचॆ।

अध्यायमु—५०

व. अंत गंस भार्यलगु नस्तियुं, प्राप्तियु, विधवलयि दुःखिपुचुं, दम तंड्रि ययिन जरासंधुनिकडकुंजनि ॥ 1520 ॥

जरासंधुडु मथुरापट्टणमुमीद वंडॆत्तिवच्चि कृष्णुनितो युद्धमु चेयुट

शा. वांड्रुन् वीड्रुनु राजुले यनुचु गर्व प्रौढितो यादवुल्
वेंड्रंबैन बलंबुतो मथुरकुन् वे वच्चि निष्कारणं-
बांड्रुन् बिड्डलु बंधुलुन् वगव गंसादि क्षमानाथुलन्
दंड्री! चंपिरि कृष्णुचेत निटु वैधव्यंबु वच्चॆन् ग्रुमी ॥ 1521 ॥

व. अनिन विनि, प्रळयकालानलंबु तॆरंगुन मंडिपडि, शोकरोषंबुलु बंधुरंबुलुगा जरासंधुंडिट्लनियॆ ॥ 1522 ॥

होगा, उसी के अनुसार हम जीवन व्यतीत करेंगे।" यों कहकर विदा किया तो अक्रूर ने राजा का मंतव्य जानकर यों कहा— "तुम्हारा विचार मैं जान गया, अपनी इच्छा के अनुसार ही तुम आचरण करो।" इतना कहकर वह मथुरा लौट आया और सारा वृत्तांत राम और कृष्ण को कह सुनाया।

अध्याय—५०

[व.] अनंतर कंस की पत्नियाँ— अस्ति और प्राप्ति विधवाएँ बन दुःख करती हुई अपने पिता जरासंध के समीप जाकर [यों विलाप करने लगीं]। १५२०

जरासंध का मथुरा पर चढ़ाई करके कृष्ण के साथ युद्ध करना

[शा.] "यादव लोग अत्यंत गर्व के साथ यह कहते हुए कि 'ये ऐरे-गैरे भी राजा हैं, —अपार दलबल लेकर मथुरा पर चढ़ आये और बिना किसी कारण के, कंस के साथ अन्य नरपतियों को भी मारकर उनके स्त्री-बाल-बंधुओं को रोते-विलपते छोड़ गये। हे पिताजी! मुझे कृष्ण के हाथ यों वैधव्य प्राप्त हुआ, देखिए न!" १५२१ [व.] यह सुनकर, [जरासंध]

शा. एमी ! कंसुनि गृष्णुडे रणमुलो हिंसिचें नोचेल्ल ! ना
सामर्थ्यंबु दलंपडिचुकयु मच्चंड प्रतापानलो-
द्दामार्चुल् वडि नेडु गाल्चु यदु संतानाटवी वाटिकन्
भूमि ग्रुंगिन निंगि ब्राकिन महांभोराशिलो जोच्चिननन् ॥ 1523 ॥

कं. यादवविरहितयगु बो, मेदिनि नाचेत नेडु मोदुमिगिलि सं-
पादित बलुलै हरि रु, -द्रादुलु निद्रादुलॅव्वरडुंबैनन् ॥ 1524 ॥

व. अनि पलिकि, समरसन्नाह संकुल चित्तंबुन, गोपंबु दीपिंप, संगर भेरि वेयिंचि कदलि ॥ 1525 ॥

कं. वक्षुंडै यिरुवदि मू, -डक्षौहिणुलैन बलमुलनुगतमुलुगा
नक्षमण जरासंधुडु, प्रक्षोभमुतोड मथुरपै जनियें नृपा ! ॥ 1526 ॥

कं. गंधेभ तुरग रथ भट, बंधुर चरणोत्थितोग्र पांसुपटल यो-
गांधीभूतमुलै विवि, मंथरगति नडचें नपुडु मार्तांडहरुल् ॥ 1527 ॥

व. इट्लु चनि, निरंतर किसलय पत्र कोरक कुसुम फलभार विनमित वृक्षविलसित महोद्यानंबुनु, उद्यान वनभाग वलमान जलोन्नयन वारुयंत्र लतानिबद्ध कलश विमुक्त सलिलधारा शीकर परंपरा संपादित वर्षा-

---

प्रलयकाल के अनल की भाँति जलभुन गया; शोक और रोष प्रबल होने पर उसने कहा : १५२२ [शा.] "हैं ! क्या कृष्ण ने ही रण में कंस को मारा है ? उसने मेरे सामर्थ्य का किंचित् भी विचार नहीं किया; मेरे प्रचंड प्रतापानल की तीव्र ज्वालाएँ यादव-संतान-वंशी-अटवी-वाटिका को अब भस्मीभूत कर देंगी चाहे वे लोग जमीन में धँस जायँ, आकाश पर चढ़ जायँ अथवा अंभोराशि (समुद्र) में पैठ जायें। १५२३ [कं.] आज मेरे द्वारा भूमंडल यादवरहित हो जायगा, चाहे हरि, रुद्र और इन्द्र आदि [देवता] अधिक दलबल जुटाकर [यादवों की रक्षा के लिए] आड़े क्यों न आ पड़ें।" १५२४ [व.] यों कहकर, समर के सन्नाह (तैयारी) में संकुल-चित्त हो, उद्दीप्त क्रोध से उसने संग्राम के लिए भेरी बजवायी। १५२५ [कं.] हे राजन् ! तब क्रुद्ध जरासंध ने तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ समर्थ होकर उसी क्षण मथुरा पर आक्रमण किया। १५२६ [कं.] मत्तगज-तुरग (घोड़े)-रथ-भटसमूह के चरणों से उड़कर धूल का आवरण [आकाश में] फैल गया जिससे सूर्य के घोड़े अंधे हुए और वे अंतरिक्ष में मंथरगति (धीमी चाल) से चलने लगे। १५२७ [व.] इस प्रकार चलकर जरासंध सेना-सहित उस मथुरानगरी में पहुँचा जहाँ किसलय (कोंपल)-पत्र-कोरक (कलियाँ)-कुसुम-फल-भार-विनमित वृक्षों से निरंतर शोभायमान उद्यानवन थे; उद्यान-भूमि में घूमती हुई ढेंकुली और मोट में लगे कलसों

कालंबुनु, कालकिंकर सदृश वीर भट रथ तुरग सामज संकुलंबुनु, गुलाचार धर्म प्रवीण पौरजन भासुरंबुनु, सुरांभेद्यमान महोन्नताट्टालक यंत्र भयंकर प्राकारचक्रंबुनु, जक्र सारस हंसादि कलकल रवकलित सरोवरंबुनु, सरोवर संफुल्ल हल्लक कमल परिमळ मिळित पवन विराजितंबुनु, जितानेक मंडलेश्वर भूषणमणिगण रजोनिवारित मदगजेंद्र दानजल प्रभूत पंकंबुनु, बंकरहित यादवेंद्र दत्तसुवर्णाचल कल्पतरु कामधेनु सम्मर्दित विद्वज्जन निकेतनंबुनु, गेतनसन्निबद्ध चामर मयूर चाप शिंजिनी निनद परिपूरिताभ्रंबुनु, नभ्रंलिह महाप्रासाद सौध गवाक्ष रंध्र निर्गत घनसार धूप-धूम पटल विलोकन संजनित जलधरभ्रांति विभ्रांत शिखंडि तांडव रुचिरंबुनु, जिरतरानेक देवालय जोघुष्यमाणतूर्य निनद परिभावित पारावार कल्लोल घोषंबुनु, घोषकामिनी प्राणवल्लभ बाहुदंड परिरक्षितंबुनुनै, परुलकु नलक्षितंबैन मथुरानगरंबु चेरि, वेलालंघनंबु चेसि, वॆल्लि विरिसिन महार्णवंबु तॆरंगुन पट्टणंबुनकु मुट्टणंबु चेसि, चुट्टुनु विडिसिन जरासंधुनि वलौघंबु गनि, वेळाविदुंडगु हरि तन मनंबुन ॥ 1528 ॥

से निकली सलिल-धारा और शीकर-परंपरा के कारण जहाँ वर्षाकाल-सा बना रहता था; कालकिंकर (यमभट) सदृश वीरभट, रथ, तुरग (घोड़े), सामजों (हाथियों) से जो संकुल बनी हुई थी; जो कुलाचार-धर्म में प्रवीण पौरजनों से प्रकाशमान थी; देवताओं के लिए भी अभेद्य, महोन्नत प्राकारों (बुर्जों) पर रखे भयंकर तोपोंवाले दुर्ग से जो घिरी हुई थीं; जहाँ चक्रवाक, सारस, हंस आदि [पक्षियों] के कलरव से पूर्ण सरोवर थे; जहाँ सरोवरों में विकसित कुमुद, कमलों के परिमल-मिलित-पवन का संचार होता था; विजित मंडलेश्वरों (सामंत राजाओं) के आभूषणों में लगी मणियों (जवाहिरातों) की धूल और मदगजेंद्र का दानजल मिलकर जहाँ पर पंक (कीचड़) फैला हुआ था; जहाँ विद्वज्जनों के निकेतनों (घरों) में, पंक (कलमष) रहित यादवेंद्र (कृष्ण) के दिये सुवर्णाचल, कल्पवृक्ष और कामधेनु के कारण भीड़ लगी रहती थी; ध्वजाओं में बंधे चामर, मयूर, चाप और धनुष की डोरी के शब्दों से जहाँ का आकाश गूंजता रहता था; आकाश को चूमनेवाले महाप्रासादों के गवाक्षरंध्रों से निर्गत घनसार (कर्पूर) धूप-धूम-पटलों को देख मेघ की भ्रांति में पड़े विभ्रांत मयूरों के नृत्यों से जो शोभायमान रही; जहाँ के अनेकानेक देवालयों में बजाये जानेवाले नगाड़ों का निनाद (ध्वनि) सागर के कल्लोल-घोष का पराभव करता था; घोषकामिनियों (गोपिकाओं) के प्राणवल्लभ-कृष्ण के बाहुदण्डों से जो परिरक्षित थी; और जो परजनों (शत्रुओं) को दिखाई

म. ऐदुन्नालुगु नाळरेंडु निरु मूडक्षौहिणुल् सुट्टि सं-
छादिंचेन् बुरमॆल्ल मागधु नॆडन् सामंबु दानंबु सं-
भेदंबुन् बनिलेदु दंडविधि शोभिल्लं ब्रयोगिंचि यी
भूदेवी तनुभारमॆल्ल नुडुपन् बोलुन् जयोद्भासिनै ॥ 1529 ॥

कं. ए नवतरिंचुटॆल्लनु
मानुग जतुरंत धरणिमंडल भरमुन्
मानुपु कॊरकुं गादे
पूनॆद निदि मॊदलु दगिलि भूभरमणपन् ॥ 1530 ॥

आ. मगधनाथु बोर मडियिंप बोलदु
मडियकुन्न वीडु मरलि मरलि
बलमु गूर्चुकॊंचु बरतॆंचु बऱतेर
द्रुंपवच्चु नेल दॊसगु दॊऱग ॥ 1531 ॥

व. अनि यिट्लु चिंतिचुचुन्न समयंबुन, नभोभागंबुन नुंडि महा प्रभा-
समेतंबुलुनु, सपरिच्छद सूतंबुलुनु, ननेकबाण बाणासन चक्रादि विविधा-
युधोपेतंबुलुनैन रथंबुलु रॆंडु मनोरथंबुलु पल्लविंप दैवयोगंबुनं जेरवच्चिनं
जूचि, हरि संकर्षणुनकिट्लनियॆ ॥ 1532 ॥

नहीं देती थीं। ऐसी मथुरानगरी पहुँचकर जरासंध की सेना ने बाँध तोड़कर उमड़नेवाले सागर के समान नगर को घेरकर पड़ाव डाल दिया। उसे देखकर समयज्ञानी हरि ने अपने मन में (यों सोचा)। १५२८ [म.] यह मागध (जरासंध) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर नगर को चारों तरफ़ से घेरे बैठा है। इसके साथ साम, दान और भेद के उपायों से काम लेना बेकार है, दंडविधि का प्रयोग करके मैं विजयी हो भूदेवी का सारा भार उतार दूँगा। १५२९ [कं.] मेरा अवतार लेना चतुर्दिगंत भूमंडल का भार उतारने के निमित्त ही तो है, अतः भूभार उतारना अब से आरंभ कर दूँगा। १५३० [आ.] इस मगधराज को युद्ध में मार डालना ठीक न होगा, यदि यह न मरे तो सेना जुटाकर बार-बार आक्रमण करने आयेगा, अभी इसका सारा दलबल नष्ट करने के द्वारा भूलोक की विपत्ति दूर की जा सकेगी।" १५३१ [व.] इस प्रकार सोचते समय, दैवयोग से, हरि का मनोरथ पूर्ण करनेवाले, ऐसे दो रथ नभोभाग से उतरकर पास पहुँचे जो महाप्रभा (कांति) समेत थे, सारथि आदि परिजनों से युक्त थे, और जो अनेक धनुर्बाण, चक्र आदि विविध आयुधों से संपन्न थे। उन्हें देख हरि ने संकर्षण (बलराम) से यों कहा : १५३२ [शा.] "हे राम ! देखो न, आकाश से प्रकाशमान रथ और आयुध आ पहुँचे; इन्हें लेकर राजसमूहों को अविलंब मार डालो, भूभार का निवारण

शा. कंटे राम ! रथंबु लायुधमुलुन् गाढ प्रकाशंबुलै
मिटन् वच्चॅनु वीनि गैकॉनि सुरल् मॅच्चन् नृपश्रेणुलन्
वॅटिपं बनि लेदु चंपुमु धराभारंबु वारिपु मी
वॅटन् नी यवतारमुन् सफलमौ वेवेग लॅम्माजिकिन् ॥ 1533 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 1534 ॥

कं. खरुलै दृढकवच धनु-
श्शरुलै यधिगत रथानुचरुलै मदवत्
करुलै घन हरुलै बल
हरुलय्यॅड नाजि केगिररि भीकरुलै ॥ 1535 ॥

व. इट्लु समर सन्नाहंबुनं बुरंबु वॅडलि ॥ 1536 ॥

उ. अन्युलु वल्लडिल्ल दनुजांतकु डॉत्तॅ गभीर घोष का-
ठिन्य महाप्रभाव विकटीकृत पद्मभवांड जंतु च-
तन्यमु धन्यमुन् दिविजतापस मान्यमु ब्रीत भक्त रा-
जन्यमु भीत दुश्चरित शात्रव सैन्यमु बांचजन्यमुन् ॥ 1537 ॥

कं. सिंधुर भंजन पूरित, बंधुरतर शंखनिनद भारमुन जरा-
संधुनिकि गल सैन्यमु, लंधमुलै संचरिंचॅ नाहव भूमिन् ॥ 1538 ॥

व. अय्यवसरंबुन मागधुंडु माधवुनकिट्लनियॅ ॥ 1539 ॥

कर देवताओं से प्रशंसा पाओ, इससे तुम्हारा अवतार लेना भी सफल होगा, शीघ्रता से युद्ध के लिए निकल पड़े ।" १५३३ [व.] इस प्रकार कहने के अनंतर··· १५३४ [कं.] बलराम और हरि कठोर होकर, दृढ़ कवच और धनुर्बाण ले, रथ और अनुचरों (सेना) के साथ, मस्त हाथी और बलिष्ठ सिंह के समान बनकर, शत्रुओं को भयभीत करते हुए युद्ध के लिए चल पड़े। १५३५ [व.] यों समर के लिए सन्नद्ध हो नगर से बाहर निकलकर··· १५३६ [उ.] दनुजांतक (राक्षसों को मारनेवाला) कृष्ण ने वह पांचजन्य शंख फूंक बजाया, जिसने शत्रुओं को कँपाया; जिसके गंभीर घोष और कठोर प्रभाव ने ब्रह्मांड के जीव-जंतुओं को विचलित किया; जो धन्य हुआ, देवता और तपस्वियों द्वारा जो मान्य हुआ; भगवद्भक्त राजाओं को जो प्रीतिकर रहा; और जिसने दुश्चरित्रवाले शत्रुओं की सेना को भयभीत कर दिया। १५३७ [कं.] सिंधुरभंजन-पूरित (हाथी को मारनेवाले कृष्ण के बजाये) घनघोर शंख-ध्वनि के प्रभाव से जरासंध की सेना युद्धभूमि में अंधी बनकर भटकने लगी। १५३८ [व.] उस अवसर पर मागध (जरासंध) ने माधव (कृष्ण) से यों कहा : १५३९ [सी.] "हे गोपाल ! हाँककर खदेड़ने

सी. अर्दलिचि रौप्पंग नाल मंदलु गावु गंधगजेंद्र संघमुलु गानि
परिकिंचि विनग नंभारवंबुलु गावु वाजींद्र हेषारवमुलु गानि
पदहति गूलपंग व्रातबंड्लुनु गावु नगसमान स्यंदनमुलु गानि
प्रियमुलाडंग नाभीर लोकमु गादु कालाभ वैरिवर्गंबु गानि

ते. यार्प वन-वह्नि गादु बाणाग्नि गानि
मरियु वृंदावनमु गादु सैनलु गानि
यमुन गादु नटिंप घोराजि गानि
पोरु नी केल गोपाल! पोम्मु पोम्मु ॥ 1540 ॥

म. तरुणिं जंपुटयो बकुं गेंडपुटो धात्रीजमुल् गूल्चुटो
खरमुन् द्रुंचुटयो फणि बरपुटो गालिन् निबंधिचुटो
गिरि हस्तंबुन दाल्चुटो लयमहाग्नि स्फार दुर्वार दु-
र्भर बाणाहति नेट्लु निलुचेंदवु सप्राणुंडवै गोपका! ॥ 1541 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1542 ॥

सी. गोपिका वल्लकी घोषणंबुलु गावु शिंजिनी रवमुलु चेवुडु पडुचु
वल्लवीकर मुक्त वारिधारलु गावु शरवृष्टि धारलु चक्कु सेयु
घोषांगनापांग कुटिलाहतुलु गावु निशितासि निहतुलु निग्रहिंचु
नाभीरकामिनी हस्ताब्जमुलु गावु मुष्टिघातंबुलु मुरुवु डिंचु

के लिए ये गोगण नहीं है, मत्तगजों के समूह हैं। ध्यान लगाकर सुनने के लिए ये [धेनुओं के] रँभाने के शब्द नहीं है, वरन् वाजींद्रों (प्रशस्त अश्वों) के हेषारव (हिनहिनाहट) हैं। लात मार गिराने के लिए ये [टूटी-फूटी] पुरानी गाड़ियाँ नहीं है, पर्वत-समान स्यंदन (रथ) है। प्रेमालाप के लिए ये गोप-गोपीजन नहीं हैं; मृत्युसदृश वैरि-वर्ग (शत्रुसमूह) है। [ते.] बुझाने के लिए यह वन की आग नहीं है, वाणाग्नि है। विहार के लिए यह बृंदावन नहीं है, समर का व्यूह है। खेलने के लिए यह यमुना [तटी] नहीं है, भयंकर युद्धभूमि है। अतः तुम [वापस] चले जाओ, युद्ध तुम्हारे लिए नहीं है। (तुम्हें युद्ध से क्या काम ?) १५४० [म.] स्त्री को मार डालना, बक का अंत कर देना, वृक्षों को गिरा देना, खर (गधे) का प्राण लेना, सर्प को भगा देना, हवा को बाँध रखना, पहाड़ को हाथ पर रख लेना —ये सब तो तुम कर सकते हो; किंतु, हे गोपक (ग्वाले)! प्रलयाग्नि की ज्वाला-सदृश दुर्भर और दुर्निवार बाणाग्नि के सामने तुम प्राणों के साथ ठहर कैसे सकते हो? १५४१ [व.] इसके अतिरिक्त··· १५४२ [सी.] यह गोपिकाओं के बजाय वीणा-निनाद (संगीत) नहीं है, धनुष का टकार घोष है जो कानों को बधिर कर देगा। गोपिकाओं के हाथों निकले जल के फुहारे नहीं है, ये तो बाण-वर्षा की

ते. नल्ल व्रेपल्लॆ गाडु घोराचनीश
मकर संघात संपूर्ण मगधराज
वाहिनी सागरं बिदि वनजनेत्र !
नॆड्रसिनिनु दीवि कॆव्वडि नेडु मुंचु ॥ 1543 ॥

व. अनिन श्रीहरि यिट्लनियॆ ॥ 1544 ॥

उ. पंतमुलेल तॊल्लि जनपालुर बोरल गॆल्चिनाड वं-
डूंतिय चालदे बिरुदुलाडुट बंटुतनंबु त्रोवये
यितट दीरॆने मगध ! येटिकि व्रेलॆवु नीव येल क-
ल्पांत महोग्र पावकुनिनैन हरिंतु वरिंतु संपदन् ॥ 1545 ॥

कं. गोपालुड ननि पलिकिति, भूपालक ! दीन नेमि पोराडंगा
गोपाल महीपाल, व्यापारांतरमु दॆलिय वच्चुं बोरन् ॥ 1546 ॥

व. अनिन रोष बंधुरुंडै, जरासंधुंडिट्लनियॆ ॥ 1547 ॥

उ. बालुड वीवु कृष्ण ! बलभद्रुनि बंपु रणंबु सेय गो-
पालक बालुतोड जनपाल शिखामणियैन मागधुं-

धाराएँ हैं जो [शत्रु को] खडित कर देंगी। ये व्रजांगनाओं के कुटिल कटाक्ष के आघात नही है, तेज तलवारों के चीर डालनेवाले प्रहार हैं। ये आभीर कामिनियों के हस्ताब्ज नहीं है, ये तो ऐसे मुष्टिघात है जो तुम्हारा [सारा] सौंदर्य उतार देंगे। हे वनजनेत्र ! [ते.] यह आटविक व्रजगाँव नहीं है, यह तो मगधराज की सेना रूपी सागर है जिसमें समस्त राजलोक रूपी भयंकर मगरमच्छ भरे हुए हैं, यह सागर तुम्हें टापू के समान आज डुबा देगा।" १५४३ [व.] यह सुन श्रीहरि ने यों कहा : १५४४ [उ.] "अपनी डीग क्यों मारते हो ? कहा जाता है कि तुमने पूर्व में अनेक राजाओं को युद्ध में जीत लिया था, क्या [ऐसी प्रसिद्धि] पर्याप्त नही है ? अपनी बड़ाई बघारना क्या वीरों की रीति है ? इससे तुम्हारी हवस पूरी हो गयी ? हे मगध ! बकवास मत करो। तुम्हारी तो बात ही क्या ? कल्पांत के महोग्र पावक (अग्नि) का भी अंत कर दूंगा और विजयश्री का वरण करूँगा। १५४५ [कं.] हे भूपाल ! तुमने मुझे "गोपाल" कहा, इससे क्या होगा ? युद्ध तो हो सकता है न ? जब तुम लड़ने लगोगे 'गोपाल' में और महीपाल में जो अंतर है वह तुम्हें जान पड़ेगा।" १५४६ [व.] यह सुन जरासंध ने रोष से भरकर यों कहा : १५४७ [उ.] "हे कृष्ण ! तुम [अभी] बालक हो, मुझसे युद्ध करने के लिए बलराम को भेजो। लोग जब कहेंगे कि राजशिखामणि-मागध ने एक ग्वालों के छोकरे से युद्ध किया, तो मुझे लज्जा

डालमु सेसँ नंचु जनु लाडेंडि माटकु सिग्गु वुट्टँडिन्
जालु दौलंगु दिव्य शरजालुर मम्मु जयिपवच्चुने ॥ 1548 ॥

व. अनिन नगि, नगधरुंडिट्लनियेँ ॥ 1549 ॥

कं. पौंगडु कौनुदुरे शूरुलु
मगटिमि जपुदुरु गाक मागध! नीकुन्
मगतनमु गरिगँ नेनियु
दगु सेँय्य विकत्थनमुलु दगदी पोरन् ॥ 1550 ॥

व. अनिन रोषिंचि ॥ 1551 ॥

चं. पवनुडु मेघरेणुवुल भानु कृशानुल गप्पु कँवडिन्
विविध वलौघमु बनिचि वेगम मागधुडावरिँचॅ भू-
म्यवन चरिष्णुलन् विमत मानवनाथ निराकरिष्णुलन्
दिविष दलंकरिष्णुल नतिस्थिर जिष्णुल रामकृष्णुलन् ॥ 1552 ॥

म. हयहेषल् गजबृंहितंबुलु रथांगारावमुल् शिंजिनी
चय टंकारमुलुन् विवर्धित गदा चक्रास्त्र नादंबुलुन्
जय शब्दंबुलु भेरि भांकृतुलु निस्साणादि घोषंबुलुन्
भयद प्रक्रिय नौक्क वीक नॅगसॅन् ब्रह्मांड भेदंबुगन् ॥ 1553 ॥

व. मरियु, नय्येँड मागध माधव वाहिनुलु रेंडु नौडौंटि दाकि, रौद्रंबुन,

---

होगी। बस! अब तुम हट जाओ। दिव्य शस्त्रास्त्रवाले हमें तुम जीत कैसे सकोगे?" १५४८ [व.] इसे सुनकर नगधर (गोवर्धनधारी) कृष्ण ने हँसकर कहा: १५४९ [क.] "शूर शूरता दिखाते हैं, अपनी बड़ाई आप नहीं करते। यदि तुममें पौरुष (पराक्रम) हो तो युद्ध में दिखा दो, आत्मप्रशंसा उचित नहीं है।" १५५० [व.] इस पर रोष में आकर… १५५१ [चं.] पवन जिस प्रकार मेघ के टुकड़ों से सूर्य और अग्नि को ढक देता है, उसी प्रकार अपने अनेक प्रकार के सेना-समूहों को भेजकर शीघ्रता से मागध (जरासंध) ने उन राम और कृष्ण को घेर लिया जो भूमि की रक्षा में लगे हुए हैं, विपरीत बुद्धिवाले राजाओं को दूर कर रहे हैं, देवताओं की शोभा बढ़ा रहे हैं और अत्यंत स्थिर विजय प्राप्त कर रहे हैं। १५५२ [म.] घोड़ों का हिनहिनाना; हाथियों का चिघाड़ना; रथों का गड़गड़ाना; धनुषों के टंकार; गदा, चक्र आदि अस्त्रों के चलने का निनाद; जय-जय ध्वनि, भेरियों का भांकार-घोष, दमामों का धड़धड़ाना —ये सब एक साथ भयंकर रीति से ब्रह्मांड को भेदते हुए छूट पड़े। १५५३ [व.] और, उस समय, मागध (जरासंध) और माधव (कृष्ण) की सेनाएँ एक-दूसरी से टकराकर,

संवर्तसमय समुद्रंबुलभंगि निगिडि वोगि, चॅलंगि, चलंबुनं दलपडि, पोरु नॅड, मसरु कविसि, महारण्यंबुलु वॅलुवडि मार्कोनु मदगजंबुल माड्किनि, महोत्कंठंबुलगु कंठीरवंबुल ग्रद्दन, दुर्लभंबुलगु शरभंबुल चाड्पुनं, प्रचंडंबु-लगु गंडभेरुंडंबुल गमनिकं, दमतम मोनलकुं दलकडचि, वीररसंबुलु विविधरूपंबुलेन विधंबुनं वडुगुरु, नूर्वुरेवुरु, गमुलै, कुलकुधर गुहांत-रळंबुलु निंड, सिंहनादंबु लोनर्चुचु, नट्टहासंबुलु सेयुचु, नरिवीरुल रोयुचु, पटह काहळ भेरी शंख शब्दंबुलकु नुब्बुचु, गवंबुलं ब्रव्वुचु, गदल व्रेयुचु, गांडंबुल नेयुचु, मुद्गरंबुल नोत्तुचु, मुसलंबुल मोत्तुचु, गुंतंबुलं ग्रुच्चि यॅत्तुचु, गरवालंबुलंद्रेंचुचु, जक्रंबुलं द्रुंचुचु, शस्त्रंबुलं दरुगुचु, जित्रबुलं दिरुगुचु, बरिघंबुलं ग्रिप्पि कोट्टुचु, ब्रासंबुलं वॅट्टुचु, शूलंबुल जिम्मुचु, सुरियलं ग्रम्मुचु, बहुभंगुलं बराक्रमिचु वीर भट्लुनु, निविड नीरंध्र नेमि निर्घोषंबुल नाकाशंबु निरवकाशंबुगा ननर्गळ चक्रमार्गंबुलं बडु पदातुलु चदिय नरवंबुलु दोलि, विविधायुध प्रयोगंबुल वेरुल ब्रच्चि वंदरलाडु रथिकुलुनु, रथिक शरपरंपरल गॅपिपक महामोघ मेघधारलकुं जलिपनि धरणीधरंबुल चाड्पुन रथंबुलकुं गविसि, कल्पांतकाल दंडि दंड प्रचंडंबु

क्रोधपूर्ण हो, प्रलयकालीन समुद्रों की भाँति आकाश तक उमड़कर, एक-दूसरी से होड़ लगाकर युद्ध करने लगी। आवेश में आ, महारण्य से निकलकर मुठभेड़ करनेवाले दो मदगजों के समान; दो व्यग्र सिंहों की भाँति, दो अपूर्व शरभों की तरह, प्रचंड गंड-भेरुंडों की रीति से दोनों अपने-अपने मोर्चे आगे बढ़ाकर लड़ने लगीं। दोनों तरफ़ के सैनिक दस, पाँच और सौ-सौ के दलों में बँटकर आक्रमण करने लगे मानों वीररस अनेक रूपों में (स्रोतों) में प्रकट हुआ हो। उनका सिंहनाद कुलपर्वतों के गुहांतरालों में भर गया। वीर भट चीखते-चिल्लाते, अट्टहास करते, शत्रु वीरों को दुतकारते, पटह-काहळ-भेरी-शंख-शब्दों को सुन फूलते, डींग हाँकते, गदाएँ फेंकते, बाणो से वेधते, मुद्गरों से दबोचते, मूसलों से पीटते, भाले चुभाकर [मुर्दों को] ऊपर उठाते, करवालों से काटते, चक्रों से छेदते, शस्त्रों से भेदते, [तरह-तरह से] चक्कर काटते, बर्छियाँ मारते, शूल फेंकते, छुरियाँ भोंकते, इस तरह अनेक प्रकार से पराक्रम दिखाते थे। विविध आयुधों के प्रयोग से वैरियों को तहस-नहस करनेवाले रथिक अपने रथों को यों दौड़ाते चले कि चक्रों के नीचे गिरकर पैदल सैनिक तुरन्त ही पिस जाते और नेमि-निर्घोष (पहियों की लोहे की पट्टी से होनेवाली गड़गड़ाहट) से आकाश निविड, नीरंध्र और निरवकाश (बिना खाली जगह के) हो गया। अमोघ मेघधाराओं के सामने अविचल रहनेवाले धरणीधरों (पर्वतों) की भाँति रथिकों की शरपरंपरा (बाण-वर्षा) का

लगु शुंडादंडंबुलु साचि, पूचि, कडनोगलोडिसि, तिगिचि, कुदिचि, विरिचि, कूबरमुलु नुरुमुलुगं जिरु जिरु द्रिप्पि वैचियु, भटुलं जटुलगति बंतुलक्रियन् नेगर वैचि, दंतंबुल ग्रुच्चियु, घोटकंबुल ब्रच्चियु, विच्चलविडि दिरुगु करुलुनु, वज्रिवज्र धारलकुं दप्पि, ककुप्पुलकु नेगयु ऱेक्कलु गल गिरुल सिरुलं ववकॅरलतोड हेषारव भीषणंबुलै, मनोजवबुगल तुरंगंबुलं बऱपि, तुरंगपद पांसुपटल प्रभूत बहुळांधकारंबुलु, करकलित कठोर खड्ग मरीचि जालंबुल निवारिंपुचु, नानाप्रकारंबुलं ब्रतिव्यूहंबुलं जिचि चेंडाडु राहुत्तुलु गलिगि संग्रामंबु भीमंबय्यें। अंदु ॥ 1554 ॥

कं. चेंडु रथमुलु दॆगु हरुलुनु
बडु करुलुनु मडियु भटुलु वऱचु रुधिरमुन्
मडियु तललॊरगु तनुवुलु
बॊडियगु तॊडवुलुनु मधुरिपुनि दॆस गलिगॆन् ॥ 1555 ॥

कं. भीतंबै हत सुभट, व्रातंबै भग्न तुरग वारण रथ सं-
घातंबै विजय श्री, वीतंबै यदुबलंबु विरिगॆ नरेंद्रा ! ॥1556 ॥

शा. योधाग्रेसरुडा हलायुधुडु लोकोत्कृष्ट बाहाचल
श्रीधौरेयुडु गृष्णुडिट्टि घनुलन् जित्रंबुनेडिट्लु सं-

निर्भय सामना करनेवाले हाथी उन रथों को घेरकर प्रलयकाल के यमदंड के समान प्रचंड शुंडादंडों को पसारकर रथों का बम पकड़कर, झुकाकर, तोड़कर, टूक-टूककर फेंकते और भटों को गेंद के समान ऊपर ऊछालते, दंतों को भोंकते, घोड़ों को कुचलकर स्वच्छंद विहार करते थे। इन्द्र के वज्राघातों को सहकर गगनमंडल में उड़ जानेवाले पंखोंवाले पर्वतों की शोभा लिये हुए, ज़ीनदार घोड़े भयंकर हेषारव (हिनहिनाहट) करते हुए मनोवेग से दौड़ते रहे; उन पर सवार घुड़-सवार तुरग-पद-पांसु-(-रज) पटल से बने गाढ़ांधकार का निवारण अपने कठोर खड्गों के प्रकाशपुंज से करते थे, इस तरह वे प्रतिपक्ष के सैनिक व्यूह तोड़-मरोड़कर घोर संग्राम करते रहे। उस भयंकर युद्ध में··· १५५४ [कं.] टूटे हुए रथ, कटे हुए घोड़े, गिरे हुए हाथी, मरे हुए सैनिक, बहता हुआ रक्त, खंडित मुंड, ढेर में पड़े रुंड, चूर हुए आभूषण मधुरिपु (कृष्ण) के पक्ष में दिखाई दिये। १५५५ [क.] हे राजन् ! यादवों का बल टूट गया, भयभीत उनका सैनिकवर्ग कट गया, तुरग (घोड़े), वारण (हाथी), रथ का संघात (समूह) भग्न हुआ, विजयश्री उन्हें छोड़ चली। १५५६ [शा.] पौरकांताएँ (नगर की वनिताएँ) सौधाग्रों पर से (अटारियों के ऊपर से) [युद्ध की दशा] देखकर अत्यंत संतप्त (दुःखित) हुईं; वे अपने आप कहने लगीं— यह हलायुध (बलराम) योधाग्रेसर है, और यह कृष्ण लोकोत्तर महाबली है,

रोधिचें वलमुं देरलचें मगधेंद्रुडंचु वोक्षिपुचुन्
सौधारंबुल वीरकांतलु महासंतप्तलरैंतयुन् ॥ 1557 ॥

व. इट्लु तन मौनलु विरिगि पारिनं गनुंगोनि, समरसंरंभंबुन हरि विश्वंभराभरण वेदंडतुंडाभंबुलगु वाहुदंडंबुलं वेंचि, विजृंभिचि, ब्रह्मांड कुहर कुंभपरिस्फाटनंवगु पांचजन्य निनदंबु निबिड निर्घातशब्दंबुग, नुदंचित पिछ्छदामंबु संक्रंदन चापंबुग, प्रशस्त हस्तलाघवंबुन, शराकर्षण संधान-मोक्षणंबु लेर्पडक, निर्वक्र चक्राकारंबुतोड मार्तांड मंडल प्रभा प्रचंडंबगु शाङ्र्ग कोवंडंबु क्रौम्मॅंरुंगुलुग, दिग्गजेंद्र कर्णभीषणंबुलगु गुण घोषणंबुलु घुमघुमाराव दुस्सहंबुलैन गर्जनंबुलुग, रथ तुरंगम रिखा समुद्धूत पराग पटल परंपरा संपादित पुंजीभूतंबगु पेंजीकटि यिरुलुग, नसम समर सन्नाह चातुरी विशेषंबुलकुं जोंक्कि, निक्कि, करंबुलेत्ति नर्तनंबुलं ब्रवर्तिचु नारद हस्तविन्यासंबुलु लीलातांडव मंडित महोत्कंठंबुलगु, नीलकंठंबुलुग, सुंदर स्यंदन नेमि निर्घोष भीतुलै कुंभि कुंभंबुलपै व्रालु

बाहाचलधौरेय (बाहुओं पर पर्वत का भार धरनेवाला) है, ऐसे महानुभावों को आज इस मगधराजा ने निरोध किया (रोक दिया) और उनकी सेना तितर-बितर कर दी —यह विचित्र [घटना] है। १५५७ [व.] हरि (कृष्ण) ने जब अपनी सेना को टूटकर भागते हुए देखा तो युद्ध के उत्साह से भर गया, और पृथ्वी-भार को ढोनेवाले दिग्गजों की सूँड़ों के समान अपने बाहुदंड बढ़ाकर पांचजन्य-शंख ऐसा फूँका कि उसका घनघोर निनाद ब्रह्मांड रूपी कुंभ को फोड़ता-सा लगा। कृष्ण ने पराक्रम करके युद्ध-भूमि में प्रलयकाल के जलप्लावन के समान [शत्रु] रक्त के प्रवाह बहा दिये। उसका शंखारव ही वज्रपात की ध्वनि बना; सुंदर पिछदाम (मोरपंख) ही इन्द्रधनुष बना रहा; प्रशस्त हस्तलाघव (हाथ की सफ़ाई) के साथ कृष्ण शरसंधान और मोक्षण निर्विराम रूप से जो करता गया उससे उसका शाङ्र्ग-कोदंड चक्राकार मार्तंड-मंडल की भाँति प्रचंड-प्रभायुक्त हो विद्युत्-सा कौंध जाता था; दिग्गजों को भी कर्णकठोर लगनेवाले प्रत्यंचा का टंकार उमड़-घुमड़ कर छाये बादलों का दुस्सह गर्जन बन गया; रथ-तुरंगम-रिखा-समूद्धूत-परागपटल-परंपरा-संपादित-पुंजीभूत धूंधुर [चारों तरफ़] गाढ़ांधकार समान फैल गई (रथ के घोड़ों के खुरों से उठी धूल के परतों से बनी धूंधुर घनी अँधेरी-सी छा गई); कृष्ण की युद्धचातुरी देख प्रसन्न हो उत्साहपूर्वक नृत्य करते हुए नारद का हस्तविन्यास [मेघ-दर्शन से] उत्कंठित नीलकंठों (मोरों) का लीला-तांडव जान पड़ता था; सुंदर स्यंदनों (रथों) के नेमिनिर्घोष (चक्रों की गड़गड़ाहट) से डरकर गजों के कुंभस्थलों पर जा गिरनेवाले वीर सैनिक, मत्तमयूरों के केकारव (मोर की

वीरुलु, मत्तमयूर केकारव चकितुलै, युवति कुचकुंभंबुलमीद व्रालेडु कामुकुलुग, नाना नरेंद्र रक्तपिपासा परवशंबुलै, वाचऽरचुचुन्न भूतव्रातंबुलु, वर्षं वर्षेति निस्वनंबुलीसंगु चातकंबुलुग, नभंग संगर प्रेरकुंडगु हलायुधुंडु वृष्टिकारणंबगु मंद समीरणंबुग, ननल्प कल्पांत काल नील वलाहकंबु भाति नराति चतुरंगदेह क्षेत्रंबुल बुंखानुपुंखंबुलुग, नसंख्यात बहुविध दिव्यबाण वर्षंबु गुरियुनेंड, शस्त्रास्त्र परंपरा संघट्टन जनितंबुलगु मिणुगुरुलु वर्षाकाल विहित विद्योतमान खद्योतंबुलुग, विशिख विकीर्ण कोटीर घटित पद्मराग शकलंबुलिंद्रगोपंबुलुग, महित मार्गण विदळित मत्तमातंग कुंभ मौक्तिकंबुलु वडगंड्लुग, जटुलार्धचंद्र शरच्छिन्न चरणंबुलै, कृष्ण! कृष्ण! निलु निलुमनि पलुकुचुं गूलेंडि मेनुलु, कृषीवल कर परशुधारा विदळित मूल विशाल सालंबुलुग, भासुर भल्लभग्नंबुलयिन वदन गह्वरंबुलवलन डुल्लेडु वंतपुंजंबुलु मालती कुसुम मंजरुलुग, नव्यनाराच भिन्न देहंबुलै, दिग्गन ऋोग्गंड्लवलन वेडलु रक्तस्यंद संदोहंबुलतो संचारिपक, प्राणंबुलु विडुचु शुंडालंबुलु सेलयेरुल-

---

कूक) से चकित हो, युवतियों के कुचकुंभों पर जा गिरनेवाले कामुक पुरुषों-से लगते थे; [कटकर मरे] राजाओं के रक्त के लिए पिपासा (प्यास) से परवश हो पुकार मचानेवाला भूतसंघ (जीव-जंतु) वर्षा की याचना करते हुए 'पी', 'पी' कह पुकारनेवाले चातक-समूह की भाँति दिखाई दिया; निरंतर संग्राम की प्रेरणा देनेवाला हलायुध (बलराम) वर्षाकारक मंद-समीर बन गया; प्रलयकाल के नील-मेघ की भाँति कृष्ण शत्रु की चतुरंग सेना के शरीरों को क्षेत्र (खेत) बनाकर पुंखानुपुंख विविध दिव्य बाणों की वर्षा करने लगा; शस्त्रास्त्र परंपरा के घर्षण से निकले स्फुलिंग (चिनगारियाँ) वर्षाकाल में सहज ही गोचर होनेवाले खद्योत (जुगनू) बन चमकते रहे; राजाओं के किरीटों में लगे पद्मराग बाणों के आघात से चूर-चूर होकर इंद्रगोपों (वीरवहूटियों) से जमीन पर बिखर गये; मत्त-मातंगों (गजों) के कुंभस्थल (माथे) तेज़ बाणों के लगने से जब फट जाते, तो उनमें से मौक्तिक (मोती) गिरकर ओलों से लगते थे; अर्धचंद्राकार बाणों से सैनिकों के पैर जब छिन्न हो जाते तो "कृष्ण ठहरो", "कृष्ण ठहरो" —कहते हुए उनके शरीर धड़ाम से गिर पड़ते थे मानो वे कृषीवल (किसान) के कुल्हाड़ों से मूल-कटे सालवृक्ष हों; भासुर (चमकीले) भालों से भग्न हुए [सैनिकों के] वदनगह्वरों (मुँह के गड्ढों) से उखड़ पड़नेवाली दंतपंक्ति मालती-कुसुम-मंजरी-सी लगती थी; नव्य-नाराचों (नये बाणों) से जब सारा शरीर छिद जाता और नये-नये घावों से रक्त अविरल बह निकलता तो संचार छोड़कर बड़े-बड़े हाथी युद्धभूमि में ढेर हो प्राण छोड़ते थे, वे ऐसे दीख पड़ते थे मानो झरनों के संग

तोडि कॊंडलुग, गठोर कांडखंडितंबुलैन भुजादंडंबुलतोडं गलसि पडिन वज्रमय कंठिकाभरणंबुलु भोगि भोगसमेत केतकी कुसुमंबुलुग, प्रळयार्णव कल्लोलशब्द सन्निभंबुलयिन भेरीरवंबुलु, भीकर भेकीरवंबुलुग, दारुणेषु विलून वाह वारण मनुज मस्तिष्कंबु रॊंपिग, सॊंपु मॆरय नाभील कीलाल प्रवाहंबुलु प्रवहिंचॆ। अंदु भुजंबुलु भुजंगमंबुलुग, गपालंबुलु कमठंबुलुग, शिरोजंबुलु शैवालंबुलुग, गरंबुलु मीनंबुलुग, हयंबुलु नक्रंबुलुग, गजंबुलु दीवुलुग, धवळच्छत्रंबुलु नुरुवुलुग, जामरंबुलु कलहंसंबुलुग, भूषणरत्न रेणुरासुलु पुलिनंबुलुगनु नॊप्पॆ। अप्पुडु ॥ 1558 ॥

लयविभाति
हसित हरिनीलनिभ वसनमु विशालकटि
नसमनयनाद्रि परिलसितमगु मेघो-
ल्लसनमु वहिप गरकिसलयमु हेम मणि
विसर वलय द्युतुलु वॆंसल तुदलंदुन्
वसलु गुरियंग सरभसमुन बलुंडु दर-
हसितमु मुखाब्जमुन नॆसग घन काला-
यसमय महोग्रतर मुसलमु वडिन् विसरि
कसिमसगि शत्रुवुल नसुवुलनु बापॆन् ॥ 1559 ॥

पहाड़ियाँ खड़ी हों। कठोर खड्गों से खंडित [सैनिकों के] भुजादंडों के साथ बिखरे पड़े वज्रमय कंठिकाभरण भोगीभोग (सर्प-फण) समेत केतकी कुसुमों से भासित हो रहे थे; प्रलयकालीन सागर के कल्लोल-सदृश बजनेवाले भेरियों के शब्द मेंढकों के भीकर टर्र-टर्र से लगते थे; तीक्ष्ण बाणों से कटे, घोड़ों, हाथियों और मनुष्यों के मुंडों से वह निकली चर्बी कीचड़ बनी दिखाई देती थी; भयंकर रक्त का प्रवाह बाढ़-सा बह निकल रहा था; उस बाढ़ में भुजाएँ भुजंग (साँप) बनकर, कपाल कमठ (कछुए) होकर, शिरोज (सिर के बाल) शैवाल के समान, हाथ मछलियों की तरह, घोड़े मगरों की भाँति, हाथी टापुओं की तरह, धवल-छत्र फेन-सा, चामर कलहंसों की रीति से, आभूषणों के रत्नों की बुकनी के ढेर पुलिनों (टीलों) के समान फबते रहे। तब। १५५८ [लयविभाति] बलराम ने, जिसके विशाल कटिप्रदेश में मरकतमणि-वर्ण का (हरा) वस्त्र कैलास गिरि को घेरकर चमकनेवाले मेघ के समान शोभित हो रहा था, करपल्लव के हेममणिकंकण (मणियों से मढ़ा सोने का कंगन) की ज्योति दिगंतों में कांति बरसा रही थी, मुखकमल पर दरहास (मुस्कुराहट) शोभायमान था, अत्यंत वेग के साथ अपना लोहे का उग्रतर मूसल फेंककर, आवेश में आ शत्रुओं के प्राण हर लिये। १५५९ [लयविभाति] प्रलय समय के यमराज के समान नेत्रों से अग्नि के कण बरसाते हुए, सोने के वलय (कड़े) और मणियों से

लयविभाति प्रळयसमयांतकुनि चॅलुवुन कटाक्षमुल
नलघु चटुलाग्निकणमुलु चदर गोला-
हलमुग सुवर्ण मणि वलयनिचयोज्ज्वलित
हलमु वडि जाचि शिरमुलु नुरमुलुन् नि-
र्दळितमुलुगन् शकलमुलुग नीनरिप गनि
पॅलुकुडि जरालुतिनि बलमु रणवीथिन्
जलित दनुजावळिकि, बलिकि, भयभीत सुर
फलिकि त्रिजगच्छलिकि हलिकि दलडिचॅन् ॥ 1560 ॥

शा. रोषोद्रेक कळाभयंकर महारूपंबुतो नॊक्कचे
नीषादंडमु साचि लांगलमु भूमीशोत्तम ग्रीवलन्
भूवल् राल दगिलिच रादिगिचि संपूर्णोद्धतिन् रोकटन्
वेषंबुल् चॅड मॊत्ति रामुडु रणोर्विन् नॆत्तुरुल् जॊत्तिलन् ॥ 1561 ॥

कं. हलि हलहत करिकुंभ-
स्थल मुक्ताफलमु लॊलि दनरॆ गृषिक लां-
गल मार्गकीर्ण बीजा
वलिकै वडि नद्भुताहव क्षेत्रमुनन् ॥ 1562 ॥

कं. तरिमि हलिहलमु विसरुचु
नॆरि गदिसिन बॅगडि विमत निकरमुलॆडलॆ
वॆरगुपडु नॊदुगु नडगुनु
मरुपडु जॆडु मडियु वीरलु मरलं दॆरलुन् ॥ 1563 ॥

उज्ज्वल हल तानकर बलराम ने [शत्रुओं के] सिर और छातियों को टूक-टूक किया तो जरासंध की सेनाएँ हिम्मत हार नीरस पड़ गयी और रण-भूमि में उस दनुजमर्दन तीनों लोकों को कँपानेवाले हलधर (बलराम) के सामने सिर झुकाया। १५६० [शा.] रोष के उद्रेक से, महाभयंकर रूप धारण कर, बलराम ने एक हाथ से हल तानकर राजाओं के गले में डाल, [उन्हें] पास खींच उद्धति से मूसल मार-मारकर उन्हें नष्ट कर दिया, इस प्रकार रणभूमि में रक्त प्रवाहित किया। १५६१ [कं.] बलराम के हलायुध के आघातों से जब हाथियों के कुंभस्थल (मस्तक) फट गये तो उनमें से मोती उस अद्भुत रणक्षेत्र में बिछकर ऐसे दिखाई दिये मानो वे कृषकों के हल जुते खेत में फैले हुए बीज हों। १५६२ [कं.] हल फेंक मारते हुए बलराम ने जब उनका पीछा किया तो शत्रु-सैनिक भयभीत हो तितर-बितर हुए [illegible] [लोग] निश्चेष्ट हुए, कुछ रास्ते से हट गये, कुछ [illegible]
गये, [illegible] कुछ कटकर मर गये, कुछ
और [illegible] कले। १५६३ [कं.] सूर्य

कं. हरि तिग्म गो शतंबुल
हरिदंतरमॆल्ल गप्पु नाकृति गडिसिन्
हरि तिग्म गो शतंबुल
हरिदंतर मॆल्ल गप्पॆ नरिभीकरुडै ॥ 1564 ॥

सी. पदुगु रेगुरु दीर्घ बाणमुल् गाडिन गुदुलु ग्रुच्चिन भंगि ग्रूलुवारु
तललु द्रॆव्विन मुन्नु तारु वीक्षिचिन वारल नॊप्पिंचि व्रालुवारु
पदमुलु तॆगिपड्ड वाहुल बोरि निर्मूलित बाहुलै स्रॊग्गुवारु
क्षतमुल रुधिरंबु जॆल्लिप निर्झरयुत शैलमुलभंगि नुंडुवारु

आ. भ्रातृ पुत्र मित्र बंधुवुल् वीगिन
नड्डमरुगुदॆंचि यणगुवारु
वाहनमुलु दॆगिन वडि नन्यवाहना-
धिष्ठुलगुचु नॆदिरि त्रॆळ्ळुवारु ॥ 1565 ॥

व. मरियुनु ॥ 1566 ॥

शा. ई कायंबुल वासि नंतटनॆ माकॊग्गॆमि जेतृत्वमुन्
नीकुं जॆल्लदु कृष्ण ! निर्जरुलमै निन्नोर्तु मी मीदटन्
वैकुंठंबुन नंचु बल्कु क्रिय दुर्वारास्त्र भिन्नांगुलै
याकंपिपक गॊंदराड्डुरु गर्वालापमुल् कृष्णुनिन् ॥ 1567 ॥

तेज किरणों से दिक्-दिगंतो को ढाँप देता है, उसी तरह कृष्ण ने अरि (शत्रु) भीकर होकर पराक्रम करता हुआ तीक्ष्ण बाणो से चारो दिशाओं को भर दिया। १५६४ [सी.] दीर्घ बाणों में विधकर दस-दस, पाँच-पाँच शत्रु सैनिक एक साथ तोरण (माला) के समान छिदकर गिर पड़ते थे; कुछ सिर-कटे सैनिक उन प्रतिपक्षियों पर वार करके गिर जाते थे, जिन्हे उन्होंने पूर्व में अपने सामने देखा था; पैर कटे लोग बाहुओं से लड़कर उन बाहुओं के कट जाने पर नीचे लुढ़क जाते थे; घावो से रक्त के वह निकलने पर वे घायल सैनिक निर्झर-समेत पर्वतों के समान दीख पड़ते थे; [आ.] अपने भाई, पुत्र, मित्र और बंधुओ के गिर जाने पर प्रतिपक्षियों के सामने आकर लड़नेवाले सैनिक स्वयं भी कट मरते थे; अपने वाहनों के टूटने पर झट से दूसरों के वाहनों पर चढकर कुछ सैनिक शत्रु से लड़ते हुए धराशायी होते थे। १५६५ [व.] और··· १५६६ [शा.] कृष्ण के अमोघ अस्त्रों से जिनके अंग-प्रत्यंग कट गये, ऐसे कुछ सैनिक अविचल भाव से कृष्ण के प्रति यों घमंड की बातें कहने लगे : "हे कृष्ण ! इस शरीर के कट जाने से हमारी कोई हानि नही होती, किंतु विजयी होने का अभिमान भी तुम नही कर सकते। क्योंकि इसके बाद हम देवता बनकर

व. इट्लिवधंबुन ॥ 1568 ॥

कं. जगतीश ! येमि चॅप्पुदु
नगणित लयवार्धि भयदमै सूगिन य-
म्मगधेशु बलमुलॅल्लनु
दॅग जूचिरि हरियु हलियु दीव्रक्रीडन् ॥ 1569 ॥

कं. भुवन जनि स्थिति विलयमु
लवलीलं जेयु हरिकि नरिनाशन मॅं-
त विषयमैन मनुजुडै
भवमोंदुट जेसि पॉगड बडियें गृतुलन् ॥ 1570 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 1571 ॥

शा. अंहः कर्मुलु तल्लडिल्ल भयदाहंकारुडै सेरि दो-
रंहं बॉप्प हलावर्तिन् रथ धनू रथ्यंबुलं गूल्चि तत्
संहार स्पृह जॉच्चि पट्टॅनु जरासंधुन् मदांधुन् महा
सिंहंबुन् व्रतिसिंहमुख्यमु बलश्री बट्टु नेर्पर्पडन् ॥ 1572 ॥

व. इट्लु पट्टुकॉनि ॥ 1573 ॥

उ. कुंठितुलै परुल् बॅगड घोरबलुंडु बलुंडु वानि सो-
ल्लुंठमु लाडुचुन् दिगिचि लोकभयंकरमैन मुष्टिचे

वैकुंठ में तुम्हें हरा देंगे। १५६७ [व.] इस रीति से··· १५६८ [कं.] हे भूपति ! मैं क्या कहूँ ! जब विनाश का समुद्र अत्यंत भयंकर हो चला तब कृष्ण और बलराम ने तीव्र क्रीडा (युद्ध) करके मगधेश (जरासंध) की सारी सेना को मिटा दिया। १५६९ [कं.] संसार की सृष्टि, स्थिति और लय (नाश) खेल ही खेल में करनेवाले हरि के लिए शत्रुओं का नाश कौन बड़ी बात है ? फिर भी मनुष्य होकर जन्म लेने के कारण उसके कृत्यों के विचार से कृष्ण प्रशंसित ही हुआ है। १५७० [व.] उस अवसर पर··· १५७१ [शा.] पापकर्मी शत्रुओं को विचलित करते हुए बलराम ने भयंकर रूप धारण कर बाहुवेग से हल चलाया, उस (हल) के आघात से रथ, घोड़े और धनुओं को नष्ट किया, फिर मदांध जरासंध का संहार करने की इच्छा से अपना नैपुण्य दिखाते हुए उसे ऐसा पकड़ लिया जैसे एक सिंह को उसका विरोधी सिंहराज बलपूर्वक पकड़ लेता है। १५७२ [व.] यों पकड़कर··· १५७३ [उ.] प्रचंड बलवान बलराम ने जरासंध को, जिसके सैनिक भयविह्वल हो हार गये थे, पकड़कर घसीटा और उसकी हँसी उड़ाते हुए भयंकर मुष्टिघातों से प्राणहरण करना चाहा, [किंतु] भूमिभार हरने की इच्छा से कृष्ण ने भावी लाभ सोचकर मना किया और

गंठ गतासु जेसि तमकंबुन मॊत्तग भूभर क्षयो-
त्कंठुडु चक्रि मीदॆंड्रिगि कार्यमु गल्दनि मान्चि यिट्लनुन् ॥ 1574 ॥

शा. दुःखिपन् वनिलेदु पॊम्मु वलसंदोहंबुलन् दॆम्मु चे-
तःखेदंबॆडलंग रम्मु रिपुलं दंडिपु कादेनि भू-
स्वःखेलज्जनमॆल्ल मॆच्च नृप ! नो शौर्योन्नतुल् चूपि मे-
धःखंडंबुलु भूतमुल् विन दनुत्यागंबु सेयं दगुन् ॥ 1575 ॥

व. अनि नगुचु विडिपिचिन, विडिवडि, चिडिमुडिकि नग्गलंबयिन सिग्गुन स्रॊगि, नॆम्मॊगंबु सूपक, कोप कपटभावंबुलु मनंबुनं बॆनंगॊन, दपंबु जेसियैन, वीरलं जयिचॆद ननि, पलायितुलैन राजुलं गूडुकॊनुचु, जरासंधुंडु विड्रिगि चनियॆ । सुरलु कुसुम वर्षंबुलु गुरिय, हरियु, हलियुनु, मथुरानगरजन वंदि मागध जेगीयमानुलै, वीणा वेणु मृदंग शंख दुंदुभि निनदंबु लाकर्णिपुचु, मृगमद जल सिक्त विमल वीथिका शतंबुनु, विविध विचित्र केतनालंकृतंबुनु, सुवर्णमणि वज्र जयस्तंभ निबद्ध तोरण संयुतंबुनु, वेदनाद निनादितंबुनु, संतुष्टजन संकुल गोपुरंबुनुनैन पुरंबु प्रवेशिचिरि । अंदु ॥ 1576 ॥

[जरासंध से] यों कहा : १५७४ [शा.] "हे राजन् ! अब दुःख करने का काम नहीं है; वापस जाओ, दल-बल लेकर फिर आओ, शत्रुओं को दंडित कर मन का गुबार उतार लो, अथवा देवताओं की प्रशंसा पाते हुए अपना शौर्य दिखाकर लड़ो और [रण में] शरीर त्याग दो जिससे भूत-प्रेत उसके टुकड़े खा सकें; ऐसा करना तुम्हें उचित होगा ।" १५७५ [व.] यों कहकर कृष्ण ने उसे विमुक्त किया तो उसने चिड़चिड़ाहट और लज्जा में डूब, अपना मुँह छिपा लिया; कोप और कपट के भाव उसके मन में व्याप्त हुए, उसने ठान लिया कि [आवश्यक हो तो] तपस्या करके मैं इन लोगों को जीत लूँगा । रण छोड़ भागे हुए राजाओं को साथ लेकर जरासंध अपने यहाँ लौट चला । देवताओं ने कुसुमवर्षा की, हरि और हलायुध (बलराम) जब मथुरा लौट रहे थे तो नगरवासी और वंदी-मागधों ने जय-जयकार किया । वीणा, वेणु, मृदंग, शंख और दुंदुभी के निनाद श्रवण करते हुए, उन दोनों ने उस नगर में प्रवेश किया जहाँ की विमल वीथियाँ मृगमदजल से सींची हुई थीं, विविध विचित्र केतनों (पताकाओं) से अलंकृत थी, जहाँ पर सुवर्ण, मणि तथा वज्रों से निर्मित जयस्तंभों पर तोरण निबद्ध थे, जहाँ पर वेद-ध्वनि सुनाई दे रही थी, जहाँ के गोपुर पर भीड़ लगाकर पुरजन संतोष प्रकट कर रहे थे । वहाँ पर··· १५७६ [उ.] "प्रवाह-सदृश समस्त वैरि-नृप-वीरों को जीतकर

उ. वॅल्लुवलॅन वॅरि नृपवीरुल नॅल्ल जयिंचि वीटिकिन्
बल्लिदुलॅन कृष्ण बलभद्रुलु वच्चुचुनुन्नवार रं-
डुल्लमुलार जूत मनि युन्नत सौधमु लॅक्कि वारिपै
बल्लव पुष्प लाजमुलु पौरपुरंध्रुलु सल्लिरेल्लॅडन्॥ 1577॥

कालयवनुंडु श्रीकृष्णुनिमीद वंडॅत्ति मथुरापुरमुनु मुट्टडि वेयुट

व. इट्लु पुरंबु प्रवेशिंचि, युद्धप्रकारंबॅल्ल नुग्रसेनुन कॅरिंगिंचि, कृष्णुंडिच्छा-विहारंबुल नुंडॅ। मत्सरियु नॅक्कुड मच्चरंबुन नम्मागधुंडु महीमंडलंबुनं गल दुष्ट महीपतुल नॅल्लं गूडुकॊनि, सप्तदश वारंबुलु, सप्तदशाक्षौहिणी बलसमेतुंडै, मथुरानगरंबुपै विडिसि, माधव भुजा प्राकार रक्षितुलगु यादवुलतोड नालंबु चेसि, निर्मूलित बलुंडै पोयि, क्रम्मर नष्टादश युद्धं-बुनकु वच्चुनॅड, गलहविद्या विशारदुंडगु नारदुंडु कालयवनुकडकुं जनि, यिट्लनियॅ॥ 1578॥

म. यवना! नीवु समस्त भूपतुल बाहाखर्व गर्वोन्नतिन्
बवनुंडभ्रमुलन् हरिंचु पगिदन् भंजिंचियुन् नेल या-
दवुलन् गॅल्ववु वारलन् मरचियो दर्पंबु लेकुंडियो
यविवेकस्थिति नॊंदियो वॅरचियो हैन्यंबुनुं जॅंदियो॥ 1579॥

बलवान कृष्ण और बलभद्र घर लौट रहे हैं, चलो, उन्हें जी भरकर देखें" —यों कहते हुए पौर-वनिताओं ने उन्नत सौधों पर चढ़कर उन पर पल्लव-पुष्प और लाज (धान का लावा) बरसाये। १५७७

कालयवन का श्रीकृष्ण पर चढ़ाई करके मथुरापुर को घेर लेना

[व.] इस प्रकार नगर में प्रविष्ट होकर युद्ध का सारा विवरण कृष्ण ने उग्रसेन को सुनाया; फिर वह अपने इच्छानुकूल विहार करता रहा। अनंतर अधिक मात्सर्य (ईर्ष्या) से उस मागध ने महीमंडल के सारे दुष्ट महीपतियों (राजाओं) को एकत्रित कर सत्रह बार सत्रह अक्षौहिणी सेना समेत मथुरा पर आक्रमण किया। माधव (कृष्ण) के भुजा-प्राकार से परिरक्षित यादवों से लड़कर अपना समस्त सैनिक-बल विनष्ट कर बैठा। फिर जब वह अठारहवाँ युद्ध लड़ने आ रहा था तो कलह-विद्या-विशारद नारद ने कालयवन के समीप जा उससे यों कहा : १५७८
[म.] "हे यवन! तुमने समस्त राजाओं के असीम भुजबल का गर्व, पवन जिस प्रकार मेघों को उड़ा देता है, उसी प्रकार, तोड़ डाला था; फिर भी यादवों को तुमने क्यों नहीं जीता? क्या उन्हें भुला दिया? या तुम्हें [अपने बल का] गर्व नहीं था? अथवा अविवेक की स्थिति हो गयी?

कं. यादवुललोन नॊक्कडु, मेदिनिपै सत्वरेख मॆऱसि जरासं-
धादुल दूलन् दोलॆन्, दादृशुडिल लेडु विनवे तत्कमंबुल् ? ॥ 1580 ॥

व. अनिन विनि, कालयवनुंडिट्लनियॆ ॥ 1581 ॥

शा. एमी नारद ! नीवु चॆप्पिन नरुंडेरूपुवाडॆंतवा-
डे मेरन् विहरिंचु नॆव्वडु सखुंडॆंदुंडु नेपाटि दो-
स्सामर्थ्यंबुन गय्यमुल् सलुपु नस्मद्बाहु शौर्यंबु सं-
ग्रामक्षोणि भरिंचि निल्वगलडे गर्वाढ्युडे चॆप्पुमा ॥ 1582 ॥

व. अनिन विनि, देवमुनि यिट्लनियॆ ॥ 1583 ॥

सी. नीलजीमूत सन्निभ शरीरमुवाडु तामरसाभ नेत्रमुलवाडु
पूर्णेंदु बिंबंबु बोलॆडि मोमु वाडुन्नत दीर्घ बाहुवुलवाडु
श्रीवत्सलांछनांचित महोरमु वाडु कौस्तुभमणि पतकंबुवाडु
श्रीकर पीत कौशेय चेलमुवाडु मकरकुंडल दीप्ति मलपुवाडु

ते. राज ! यितंतवाडनरानि वाडु
मॆऱसि दिक्कुल नॆल्लनु मॆऱयुवाडु

या तुम डर गये हो ? अथवा [सब तरह से] हीन बन गये हो ? १५७९ [कं.] यादवों में एक ऐसा व्यक्ति है जो इस भूमंडल पर बल-सत्त्वों से चमक उठा, और जरासंध आदि को गिरा दिया, उसके सदृश [वीर] संसार मे कोई नहीं है, उसके [पराक्रम] के कार्य क्या तुमने नहीं सुने ?" १५८० [व.] यह सुन कालयवन ने यों कहा : १५८१ [शा.] "क्या कहा नारद ! तुमने जिसके बारे में कहा, वह मनुष्य कैसा (किस आकार का) है ? वह कितना बड़ा है ? कहाँ रहता है ? उसके सखा-साथी कहाँ रहते हैं ? वह कितने बाहुबल से युद्ध करता है ? मुझे यह बता दो कि युद्धभूमि में वह मेरे बाहुबल और शौर्य को सहकर ठहर सकता है या नहीं ? क्या वह वैसा गर्वाढ्य (गर्वीला) है ?" १५८२ [व.] यह कथन सुनकर देवमुनि (नारद) ने यों कहा : १५८३ [सी.] "उसका शरीर नीलमेघ के समान है, और नेत्र तामरस (कमल) की भाँति चमकने वाले है। मुख उसका पूर्णेन्दुबिंब-सदृश और बाहु उन्नत और दीर्घ हैं। उसका विशालवक्ष श्रीवत्सलांछनयुक्त है; [गले में] कौस्तुभमणि का पदक शोभित है; वह शुभप्रद पीत कौशेय (रेशमी) वस्त्र पहने हुआ है; कानों के मकरकुंडल दीप्ति (जोत) फैलाते है; [ते.] हे राजन् ! उसे ऐसा-वैसा कहा नहीं जा सकता। अपने आप चमकता हुआ चारों दिशाओं को प्रकाशमान करता है; जान-बूझकर वह हर समय संचार करता रहता है; जब तक हम पकड़ना नहीं सीखते तब तक वह हमारी पकड़ाई में नही

तॅलिसि येवेळलंदेन विरुगुवाडु
पट्टनेर्चिन गानि लोबडनिवाडु ॥ 1584 ॥

व. अनि मरियु नितर लक्षणंबुलु चॅप्पिन विनि, सरकु सेयक यवनुं डिट्लनियॅ ॥ 1585 ॥

उ. यादवु डॅंतवाडु प्रळयांतकुडॅन नॅदिर्च नेनियुन्
गादन बोर मत् कलह कर्कश बाहु धनुर्विमुक्त ना-
ना वृढ हेमपुंख कठिन ज्वलदस्त्र परंपरा समु-
त्पादित वह्निकीलमुल भस्ममु जेसॅद दापसोत्तमा ! ॥ 1586 ॥

व. अनि पलिकि, कालयवनुंडु मूडु कोट्ल म्लेच्छ वीरुलं गूडुकॉनि, शीघ्र गमनंबुनं दाडि वॅडलि, मथुरापुरंबुमीद विडिसिनं जूचि, बलभद्रसहितुं-डयि कृष्णुंडिट्लनि वितर्किंचॅ ॥ 1587 ॥

विश्वकर्म कृष्णनियोगंबुन समुद्रमुलो द्वारकानगरमुनु निर्मिंचुट

सी. यवनुंडु पुरमॅल्ल नावरिंचॅनु नेटि यॅल्लिटि यॅल्लुंडि यी नडुमनु
मागधुंडुनु वच्चि मनमीद विडियुनु यवन मागधुलु महाप्रबलुलु
पुरि रॅंडुवंकल बोरुदुरट्टिचो नोपिन भंगि नॊवक्कॊक्क चोट
मनमु युद्धमु सेय मरियॊक्कडॅड सॊच्चि बंधुल नंदर बट्टि चंपु

आता।" १५८४ [व.] [नारद ने] और भी अनेक लक्षण बतलाये; सब सुनकर यवन ने परवाह किये बिना यों कहा... १५८५ [उ.] "हे तापसोत्तम ! यादव की क्या हस्ती ! [साक्षात्] प्रलयांतक (मृत्युदेवता) ही आ जाय तो भी मैं लड़ने से डरूँगा नहीं। समर में कर्कश हाथों से चलाये धनुष से छूटे दंदह्यमान शस्त्रों की आग की लपटों में शत्रु को भस्मीभूत कर दूँगा।" १५८६ [व.] यों कहकर कालयवन ने तीन करोड़ म्लेच्छ वीरों को लेकर शीघ्रगमन से आक्रमण करके मथुरापुरी पर पड़ाव डाला तो उसे देखकर बलभद्रसहित कृष्ण ने यों वितर्क किया (सोचा) : १५८७

कृष्ण के नियोग पर विश्वकर्मा का समुद्र में द्वारकानगर का निर्माण करना

[सी.] "यवन ने नगर को [चारों तरफ़ से] घेर लिया, कल-परसों के अन्दर मागध भी आकर हम पर आक्रमण करेगा; यवन और मागध दोनों महाप्रबल [योद्धा] है। नगर के दोनों तरफ़ मे ये लोग लड़ेंगे, शक्तिभर हम एक तरफ़ सामना करते रहेंगे तो दूसरी ओर से दूसरा शत्रु घुस पड़ेगा और हमारे सब बंधुओं को पकड़ मार डालेगा;

ते. नीॅडॅ गौॅनि पोयि चॅरबॅट्टु नुग्रकर्मु-
डॅन मागधुडदि गान यरिवरुलकु
विडिय बोराडगारानि विषम भूमि
नीवक दुर्गंबु चेसि यंदुनुपवलयु ॥ 1588 ॥

व. अनि वितर्किचि समुद्रु नडिगि, समुद्र मध्यंबुन बंड्रेंडु योजनंबुल निडुवु, नंतिय वॅडल्पुं गल दुर्गम प्रदेशंबु संपादिचि, तन्मध्यंबुनं गृष्णुंडु सर्वाश्चर्य-करंबुग नीवक नगरंबु निर्मिपुमनि विश्वकर्मं बंचिन ॥ 1589 ॥

आ. वरुणपुरमुकंटॅ वासवपुरिकंटॅ, धनदु वीटिकंटॅ दंडधरुनि
नगरिकंटॅ ब्रह्मनगरंबु कंटॅ ब्र, -स्फुटमु गाग नीवक पुरमु जेसॅ ॥ 1590 ॥

व. अंदु ॥ 1591 ॥

कं. आकसमुतोडि चूलन
प्राकारमु पोडुवु गलदु पाताळ महा-
लोकमुकंटॅनु लोतॅं-
तो कलदा परिघ यंरुग दीरक दीकरिकिन् ॥ 1592 ॥

कं. कोटयु मिन्नुनु तमलो
बाटिकि जगडिप नड्डपडि निल्चिन वा-
चाटुल रुचि दारकमुलु
कूटुवलॅ कोटतुदल गोमरारु बुरिन् ॥ 1593 ॥

[ते.] अथवा वह क्रूरकर्मा (क्रूरता करनेवाला) मागध इन्हें पकड़ ले जाकर बंदी बनायेगा। [अतः हमें] एक दुर्गम स्थान में एक ऐसा दुर्ग बनवाकर उसमें इन [बंधुओं] को रखा लेना चाहिए, जिस पर शत्रु न चढ़ाई कर सकते हैं, न हमसे लड़ सकते हैं।" १५८८ [व.] इस प्रकार सोचकर कृष्ण ने समुद्र से याचना कर सागर के बीच में बारह योजन लंबा और उतने ही योजन चौड़ा दुर्गम प्रदेश प्राप्त कर लिया; उसके मध्य में सब प्रकार से एक आश्चर्य-जनक नगर का निर्माण कर देने के निमित्त कृष्ण ने विश्वकर्मा को भेजा। १५८९ [आ.] [उस विश्वकर्मा ने] एक ऐसे नगर का निर्माण किया जो वरुणपुर, इन्द्रपुर, कुबेरनगर, यमनगर और ब्रह्मनगर से भी अधिक प्रशस्त बन पड़ा। १५९० [व.] उस [नगर] में... १५९१ [कं.] प्राकार इतना ऊँचा था कि उसे आकाश का साथी कहा जा सकता था और [चारों तरफ़ का] खंदक पाताल महालोक से भी गहरा था, उसकी थाह किसी से लगायी नहीं जा सकती थी। १५९२ [कं.] दुर्ग (कोट) और आकाश समता (बराबरी) के लिए [दोनों] कलह कर रहे थे, तो बीच में अड़ंगा डालने वाले वाचाटों के समान तारे झुंड के झुंड कोट के मुंडेरों पर शोभित हो

शा. साधु द्वार कवाट कुड्य वलभी स्तंभार्गळा गेहळी
वीथी वेदि गवाक्ष चत्वर सभावेश्म प्रघाम प्रपा
सौधाट्टालक साल हर्म्य विशिखा सौपान संस्थानमुल्
श्रीधुर्य स्थिति नॊप्पु गांचनमणि स्निग्धंबुलै यप्पुरिन् ॥ 1594 ॥

कं. कूडि ग्रहंबुलु दिरुगग, मेडलतुदि निलुवलंदु मेलगॊडि बालल्
क्रीडिपरु पुरुषुलतो, व्रीडन् दद्वेळलंदु विनु मा वीटन् ॥ 1595 ।

उ. आयत वज्रि नीलमणि हाटक निर्मित हर्म्य सौध वा-
तायनरंध्र निर्गदसिताभ महागरु धूप धूममुल्
तोयद पंक्तुलो यनुचु दुंगमहीरुह रम्यशाखलन्
जेयुचुनुंडु दांडवविशेषमुलप्पुरि गेकिसंघमुल् ॥ 1596 ॥

आ. सरस नडचुचुंडि सौधाग्र हेमकुं-
भमुललोन निनुडु प्रतिफलिप
नेर्पड्रिपलेक निनुलु पॆक्कंड्रचु
प्रजलु चूचि चोद्यपडुदुरंदु ॥ 1597 ॥

उ. श्रीरमणीय गंधमुल जॆन्नुवहिंचु पुरी वनंबुलन्
गोरक जालक स्तबक कुट्मल पुष्प मरंदपूर वि-

रहे थे। १५९३ [शा.] उस पुरी में सिंहद्वार, किवाड़ें, दीवारें, छतें, स्तंभ, अर्गलाएँ, देहलियाँ, वीथियाँ, चबूतरे, गवाक्ष, आँगन, सभामंडप, कोठरियाँ, घनशालाएँ, सौध, अटारियाँ, शालाएँ, भवन, राजवीथी, सोपान आदि सभी स्थापनाएँ (आयोजन), कांचन (सोना), मणियों से चमकती हुई, शोभासंपन्न दिखायी दे रही थीं। १५९४ [कं.] सुनो, उस नगर में रहनेवाली बालाएँ जब ऊँचे भवनों की अटारियों पर विहार करती रहतीं तो उस समय यदि ग्रहों का संचार होता हो तो वे उस समय उनके समक्ष लज्जावश पुरुषों के साथ [काम] क्रीड़ा नहीं करती। १५९५ [उ.] इंद्रनील मणियों और सुवर्ण से निर्मित ऊँचे-ऊँचे भवनों के वातायनों (खिड़कियों) के रंध्रों से निकले अगरु-धूपों के काले धुएँ को तोयदपंक्ति (मेघमाला) समझकर तुंग-महीरुहों (ऊँचे वृक्षों) की रम्य शाखाओं पर केकिसंघ (मयूर के झुंड) तांडव नृत्य करते रहते है। १५९६ [आ.] भवनों की अटारियों पर रखे हेमकुंभों में जब सूर्यबिंब प्रतिफलित होता तो रास्ते चलनेवाले लोग उस प्रतिबिंब में और गगन पर के सूर्य में भेद न कर सकने के कारण यह कहकर अचरज करते हैं कि वहाँ पर दो-दो सूर्य प्रकाशमान हैं। १५९७ [उ.] वहाँ के उद्यानवन, झुंड के झुंड अधखिली कलियों, फूलों के गुच्छों, मकरंदपूर्ण पुष्पराजियों, लता-प्रकांडों, पल्लव-वल्लियों, जटा-मूलियों, फल-राशियों से प्रपूर्ण वृक्षों और लताविशेषों से अत्यन्त रमणीय और सुगंध-युक्त

स्फार लताप्रकांड विटपच्छद पल्लव वल्लरी शिफा-
सार परागमूल फलसंभृत वृक्ष लताविशेषमुल् ॥ 1598 ॥

कं. श्रीकरमुलु जनहृदय व, -शीकरमुलु मंदपवन शीर्ण महांभ-
श्शीकरमुलु हंसविहं, -गाकरमुलु नगरि कुवलयाब्जाकरमुल् ॥1599 ॥

कं. नव कुसुमामोद भरा-
जवनमुरतिखिन्न देहज स्वेदांभो-
लवनमु समधिगत वनमु
पवनमु विहरिंचु बौर भवनमुलंदुन् ॥ 1600 ॥

कं. ब्रह्मत्वमु लघुवगु ननि
ब्रह्मयु बिरुदुलकु वच्चि पट्टडु गा का
ब्रह्मादिकळल दत्पुरि
ब्रह्मजनुल् ब्रह्म जिवकु वरुपरॆ चर्चन् ॥ 1601 ॥

कं. नगरी भूसुर कृत लस
दगणित मखधूम पिहितमै काक महा
गगनमु नीलं बगुने
मिगुलग बॆडगगुनॆ ग्रह समृद्धंबय्युन् ॥ 1602 ॥

कं. तिरुगरु पलुकर्थुलकुनु
सुरुगरु धन मित्तुरितर सुदतीमणुलन्

होकर नगर की शोभा बढ़ा रहे थे। १५९८ [कं.] वहाँ के कमलालय (पोखरे) श्रीकर है (लक्ष्मीप्रद हैं), जनहृदय-वशीकर हैं [दर्शकों के हृदय हरनेवाले है), मंदपवन से छितराये जलकणों के फुहारों वाले हैं; हंस आदि विहंगों (पक्षियों) के आकर हैं, कुवलयों (नीलकमलों) की खाने हैं। १५९९ [कं.] उस पुर (नगर) के भवनों में ऐसे पवन का संचार होता रहता जो नव (टटके) कुसुमों के आमोद (सुगंध) से भरकर बहता; रतिखिन्न देहों से (स्त्री-पुरुषों के संभोगश्रम से थके शरीरों से) निकले स्वेदजल (पसीने) को सुखानेवाला (निवारण करनेवाला) है; और वनों में संचार कर बह रहा है। १६०० [कं.] उस नगर के ब्राह्मण लोग ब्रह्मविद्या की चर्चा में ब्रह्म [देव] को भी संकट में डाल देंगे, इसीलिए ब्रह्मा अपनी बड़ाई बचाकर रखने के विचार से उन चर्चाओं में नहीं उतरता, उसे डर है कि उसका ब्रह्मत्व घट जायगा। १६०१ [कं.] उस नगर के ऊपर का गगनतल (आकाश) केवल उसी समय नीला बन जाता जब वह ब्राह्मणों के किये असंख्य यज्ञों से निकले धुएँ से आच्छादित होता है, ग्रह-ताराओं से समृद्ध होने पर भी वह अधिक प्रकाशमान नहीं रहता। १६०२ [कं.] उस नगर के राजकुमार लोग अर्थियों (याचकों)

मरगरु रणमुन विड्रिदिकि
नरुगरु राजन्यतनयुला नगरमुनन् ॥ 1603 ॥

कं. रत्नाकरमयि जलनिधि
रत्नमुलीनेरदेटि रत्नाकरमो
रत्नमुल गोनुचुरित्तुरु
रत्नाकर जयुलु वैश्यरत्नमुलु पुरिन् ॥ 1604 ॥

कं. तुंगंबुलु करहृत गिरि, शृंगंबुलु दानजल वशीकृत भंगी
भृगंबुलु पटुशैल स, मांगंबुलु नगरी मत्त मातंगंबुल् ॥ 1605 ॥

कं. प्रियमुलु जितपवन मनो-
रयमुलु कृतजयमुलधिक रमणीय गुणा-
न्वयमुलु सविनयमुलु नि-
र्भयमुलु हतरिपु चयमुलु पट्टण हयमुल् ॥ 1606 ॥

कं. पुलुल पगिदि गंठीरव-
मुल क्रिय शरभमुल माड्कि मुदित मदेभं-
बुल तेड्गुन नानाविध
कलह महोद्भटुलु भटुलगलरावीटन् ॥ 1607 ॥

कं. आ वीट नुंडुवारिकि, भाविंपग लेवु क्षुत्पिपासादुलु त-
द्गोविंद कृपावशमुन, देव प्रतिमानुलगुचु दीपितुरिलन् ॥ 1608 ॥

को वचन देकर मुकरते नहीं, किंतु [भरपूर] धन देते हैं; दूसरों की सुदतियों (स्त्रियों) में आसक्त नहीं होते, रण में पीठ नही फेरते। १६०३ [कं.] सागर रत्नाकर कहलाता है, फिर भी [उस नगर की तुलना में] वह रत्न दे नहीं सकता, मालूम नहीं वह किस प्रकार का रत्नाकर है! उस नगर के वैश्य-रत्नों ने रत्नाकर पर विजय पा ली है, वे रत्नों को लेते और देते रहते हैं। १६०४ [कं.] उस नगर के मत्तमातंग (मस्त हाथी) बहुत ही ऊँचे थे; अपनी सूँड़ों से पर्वतशृंगों को काटनेवाले थे, उनके दान-जल (गजमद) में आसक्त भृंग और भृंगी (भौंरे और भौंरियाँ) उनके साथी हो गये; उनके शरीर के अंग शैलों (पर्वतों) के समान थे। १६०५ [कं.] [द्वारका] पट्टण के घोड़े, प्रिय लगनेवाले, वायुवेग और मनोवेग को परास्त किये हुए, [युद्धों में] विजय प्राप्त किये हुए, अधिक रमणीय, अच्छे गुण (स्वभाव) वाले, विनयशील, निर्भय और शत्रुसमूह को निहत किये हुए थे। १६०६ [कं.] उस नगर के सैनिक व्याघ्रों, कंठीरवों (सिंहों), शरभों और मत्तगजों के समान अनेक प्रकार के आक्रमणों में उद्भट (प्रबल) हो विजयी हुए थे। १६०७ [कं.] उस नगर के निवासियों को गोविंद (कृष्ण) की कृपा के कारण भूख और प्यास भी नहीं रही,

सी. आसक्ति कृष्ण मुखावलोकनमंद हरिपादसेवनमंद चित
वॅरपु नारायण विमुख कार्यमुलंद पारवश्यमु विष्णुभक्तियंद
बाष्पनिर्गति चक्रि पद्यसंस्तुतुलंद पक्षपातमु शार्ङ्ग भक्तुलंद
लेमि गोविंदान्य लीलाचरणमंद श्रमयु गोविंद पूजनमुलंद

ते. बंधमच्युतेतर बुण्ट पथमुलंद
ज्वरमु माधवविरहित क्षणमुलंद
मत्सरमु लीशु कैंकर्य मतमुलंद
नरवरोत्तम ! विनुमु तन्नागरुलकु ॥ 1609 ॥

व. मरियु नप्पुरवरंबुन हरिकि बारिजात महीजंबुनु, सुधर्म यनियेडि देवसभयुनु, देवेंद्रुंडिच्चें। कर्णैक देशंबुल नलुपु गलिगि, मनोजवंबुलुनु, शुक्लवर्णंबुलुनैन तुरंगंबुल वरुणुंडोसंगें। मत्स्यकूर्म पद्म महापद्म शंख मुकुंद कच्छप नीलंबु लनुर्नेनिमिदि निधुल गुबेरुंडु समर्पिचुकोनें। निजाधिकार सिद्धि कोरकु दक्किन लोकपालकुलुनु, वोल्लि तमकु भगवत्करुणा कटाक्षवीक्षणंबुल संभविंचिन सर्वसंपदल मरल नतिभक्तितो समर्पिचिरि। इव्विधंबुन ॥ 1610 ॥

वे लोग भूतल पर देवों के समान प्रकाशमान थे। १६०८ [सी.] उनकी आसक्ति केवल कृष्ण के मुखावलोकन में थी; उनको हरि के पाद (चरण) सेवन में ही चिंता रहती; नारायण (कृष्ण) से विमुख होकर किये जाने वाले कार्यो से ही उन्हें डर रहता; परवशता केवल विष्णु-भक्ति में रहती; चक्रि (कृष्ण) के स्तुतिगायन के समय ही वे आँसू गिराते; उन्हें शार्ङ्गि (विष्णु) के भक्तों से ही पक्षपात रहता; गोविंद को छोड़ अन्यों के निमित्त कार्य करने में उन्हें दरिद्रता रहती; गोविंद के पूजनों में ही वे श्रम करते रहते; [ते.] अच्युत (कृष्ण) को छोड़ अन्यों के [बताये] मार्ग में चलने से उन्हें रोक रहती; जिन क्षणो में (जिस समय) माधव (विष्णु) का साथ नही रहता तभी उन्हे ज्वर चढ़ता; हे नरोत्तम ! सुनो, वहाँ के नागरिक ईश्वर-कैंकर्य (-सेवा) करने में ही [एक-दूसरे पर] मात्सर्य (डाह) दिखाते। १६०९ [व.] देवेंद्र ने कृष्ण को उस नगर में पारिजात वृक्ष और सुधर्म नामक देवसभा (राजसभा) लाकर दिया; वरुण ने केवल कानों में काला रंग, शेष देह में सफ़ेद रंग और मनोवेग सम जव रखनेवाले घोड़े लाकर दिये; मत्स्य, कूर्म, पद्म, महापद्म, शंख, मुकुंद, कच्छप, नील नामक अष्टनिधियाँ (संपत्तियाँ) कुवेर ने लाकर समर्पित की; और शेष लोकपालकों ने अपने अधिकार की सिद्धि के लिए पूर्व में अपने को भगवत्-करुणा-कटाक्षवीक्षणों के कारण संप्राप्त संपत्तियों को भक्ति के साथ कृष्ण को समर्पित किये। इस प्रकार''' १६१० [कं.] विश्वकर्मा ने दर्प के

कं. र्वपिचि चेसि पुरमु स-
मर्पिचँनु विश्वकर्म मंगळगुण सं-
तर्पित गह्वररिकि गुरु
र्वपित दुःख प्रवाह तरिकिन् हरिकिन् ॥ 1611 ॥

श्रीकृष्णुंडु निरायुधुंडै कालयवनुडु वेंटनंट बरुगॅत्तुट

व. इट्लु विश्वकर्म निर्मितंबयिन द्वारकानगरंबुनकु निज योग प्रभावंबुन मथुरापुर जनुल नंदरं जेर्चि, बलभद्रुन कॅरिंगिचि, तदनुमतंबुन नंदन वनंबु निर्गमिचु पूर्वदिग्गजंबु पॅंपुन, मेरुगिरि गह्वरंबु वॅलुवडु कंठीरवंबु तॅरंगुन, हरिहय दिगंतराळंबुन नुदयिचु नंधकार परिधि कैवडि, मथुरा नगरंबु वॅलुवडि, निरायुधुंडै, यॅदुरु वच्चुचुन्न हरिगनि ॥ 1612 ॥

अध्यायमु—५१

म. करिसंघंबुलु लेवु रावु तुरगौघंबुल् रथ व्रातमुल्
परिसर्पिपवु रारु शूरुलु धनुर्बाणासि मुख्यायुधो-

साथ [द्वारका] नगर का निर्माण करके हरि को [कृष्ण को] समर्पित किया जिसने अपने मंगलमय गुणों द्वारा भूलोक को संतृप्त किया, और जो उद्दंड दुःख-प्रवाह तरने के निमित्त नाव बना हुआ था। १६११

श्रीकृष्ण का निरायुध होकर पीछे लगे कालयवन को लेकर भागना

[व.] कृष्ण ने मथुरापुर के सब निवासियों को अपने योग के प्रभाव से विश्वकर्मा द्वारा निर्मित द्वारकानगर में पहुँचा दिया; फिर बलराम को सब हाल बताकर उसकी अनुमति से मथुरानगर से ऐसा निकला जैसा नंदनवन से ऐरावत निकलता है, मेरुपर्वत की गुहा से सिंह निकलता है, तथा प्राची दिशा से अंधकार का शत्रु सूर्य निकलता है। हरि को निरायुध (बिना हथियार के) ही सामने से आते देखकर [कालयवन ने अपने-आप कहा]··· १६१२

अध्याय—५१

[म.] "हाथियों का समूह नहीं है, न घुड़सवार आ रहे हैं, रथों का दल भी पास दिखाई नहीं दे रहा, न शूरवीर सामने आ रहे हैं। धनुर्बाण, खड्ग आदि आयुध धरे बिना, यह एक ही एक मालाधारी व्यक्ति नगर-द्वार से निकला जो शक्रचाप (इंद्रधनुष) के साथ दिखाई देनेवाले मेघ-सा

त्करमुं वट्टडु शक्रचापयुत मेघस्फूर्तितो मालिका-
धरुडॉक्कंडदॅ निर्गमिचॅ नगरद्वारंबुनं गंटिरे ॥ 1613 ॥

शा. ऑन्नेनय्यॅ दिनंबु लो नगरिपै नेतॅचि पोराटकुन्
मुन्नॅव्वंडुनु राडु वीडोकडु निर्मुक्तायुधुं डेगुदॅं-
चॅन्न नोर्वगनो, प्रियोक्तुलकुनो, श्रीगोरियो चूडु डं-
चुन्नात्मीयजनंबुतोड यवनेशुंडिट्लु तर्किपगन् ॥ 1614 ॥

कं. विभुलगु ब्रह्मप्रमुखुल-
कभिमुखुडै नडवकुंडु नट्टि गुणाढ्युं-
डिभराजगमन मॊप्पग
नभिमुखुडै नडचॅ गालयवनुनकधिपा ! ॥ 1615 ॥

व. आ समयंबुन नय्यादवॅंद्रुनि नेर्पडं जूचि ॥ 1616 ॥

म. वनजाताक्षुडु सिंहमध्युडु रमावक्षुंडु श्रीवत्सलां-
छनुडंभोधरदेहुडिंदुमुखडंचद्दीर्घ बाहुंडु स-
द्वनमालांगद हार कंकण समुद्यत् कुंडलुंडीत डा-
मुनि सूचिचिन वीरु नौ ननुचु नम्मूढुंडु गाढोद्धतिन् ॥ 1617 ॥

सी. चटुल वालाभील सैंहिकेयुनि भंगि लालितेतर जटालतिक तूल
ब्रळयावसर बृहद्भानु हेतिद्युति वरुषारुण श्मश्रु पटलि व्रेल
गादंबिनी छन्न कांचनगिरि भाति गवचसंवृत दीर्घ काय ममर
वल्मीकसुप्त दुर्वाराहि कैवडि क्रोशंबुलो वालु कौमरु मिगुल

चमक रहा है, देखो न ! १६१३ [शा.] मुझे इस नगर पर घेरा डाले कई दिन बीत गये; लड़ने के लिए अब तक कोई नहीं आया, यह एक ही एक निरस्त्र [व्यक्ति] चला आ रहा है। देखें, यह मुझे हराने के लिए आ रहा है, या प्रियोक्तियाँ (लल्लो-चप्पो) कहने के लिए, अथवा मुझसे धन माँगने आ रहा है?" —इस प्रकार यवनराज अपने आत्मीय जनों से विचार-विमर्श करने लगा। १६१४ [कं.] हे राजन् ! वह गुणाढ्य-कृष्ण, जो ब्रह्मा आदि देवों के सामने भी कभी चलकर नहीं पहुँचा, उस कालयवन की तरफ़ अभिमुख हो गजराज के गमन की शोभा के साथ चल पड़ा। १६१५ [व.] तब उस यादवेंद्र (कृष्ण) को ध्यान से देख कर··· १६१६ [म.] [उसने सोचा] "यह वनजाताक्ष (कमललोचन), सिंह-मध्य (सिंह की कमर जैसी कमरवाला), रमावक्ष (लक्ष्मी को छाती पर धरनेवाला), श्रीवत्सलांछन, अंभोधरदेह (मेघसम-शरीरवाला), इन्दुमुख (चंद्रमुख), दीर्घबाहु, वनमाला-अंगद-हार-कंकण-कुंडल-धारी— वही वीर होगा जिसे मुनि ने सूचित किया था। ऐसा कहकर उस मूढ़, उद्धत, [यवन आगे

आ. नाचि पेचि मिचि यश्वंबु गदलिचि
कमलसंभवादि घनुलकैन
बट्टरानि प्रोड बट्टदंदनि जग-
दवनु बट्ट गदिसे यवनुडधिप ! ॥ 1618 ॥

कं. इट्टु दन्नु बट्टवच्चिन, बट्टर जवरेख मॅरसि पट्टनडक दि-
क्तटमुलद्रुव हरि वारॅं, जट्टुलगतिन् वाडु दोड जनुदेरंगन् ॥ 1619 ॥

व. अप्पुडु कालयवनुंडिट्लनियॅ ॥ 1620 ॥

म. यदुवंशोत्तम ! पोकु पोकु रणमीनहंबु कंसादुलन्
गदनक्षोणि जयिंचि तीवनि समित्कामंबुनन् वच्चितिन्
विदितख्यातुलु वीटि बोव नरिकिन् वॅन्निच्चि थिॠंगि ने-
गुदुरे राजुलु राजमात्रुडवॅ वैगुण्यंबु वच्चॅन् जुमी ॥ 1621 ॥

म. बलिमिन् माधव ! नेडु निन्नु भुवन प्रख्यातिगा बट्टुदुन्
जलमुल् सॊच्चिन भूमिक्रिंद जनिनन् शैलंबुपै नॅक्किनन्
बलिदंडन्विलसिच्चिनन् विकृतरूपंबुं ब्रवेशिंचिनन्
जलधिन् दाटिन नग्रजन्म हलिकाश्वाटाकृतुल् दालुच्चिनन् ॥ 1622 ॥

वढ़ा]। १६१७ [सी.] हे राजन् ! जिसकी उलझे हुए वालों की लंबी जटा राहु की भयंकर पूँछ की तरह चलायमान थी, जिसकी रूखी लाल दाढ़ी प्रलयकालीन सूर्य की प्रखर ज्योति के समन लटक रही थी, जिसकी कवच-बद्ध दीर्घ काया (देह) मेघाच्छन्न कांचनगिरि (सुवर्ण-पर्वत) के समान फब रही थी, जिसकी म्यान के अन्दर रखी तलवार बाँबी में सोयी दुर्वार सर्पिणी की भाँति झलक रही थी, [आ.] वह यवन उस चतुर जगत्रक्षक [कृष्ण] को, जिसे कमलसंभव (ब्रह्मा) आदि महान भी नही पकड़ सकते, पकड़ने की सोचकर गर्जन करता हुआ घोड़े को बढ़ाकर उसके समीप पहुँचा। १६१८ [कं.] यों [यवन जब] पकड़ने आया तो हरि उसकी पकड़ाई में न आया। वह [कांति-रेखा के समान] चमकते हुए, दिशाओं को कंपित करते हुए अत्यन्त वेग के साथ भाग चला; और वह यवन पीछे लग गया। १६१९ [व.] तब कालयवन ने यों कहा : १६२० [म.] "हे यदुवंशोत्तम ! भागो मत, ठहरो, युद्ध करना उचित है। यह जानकर कि तुमने रणक्षेत्र में कंस आदियों को जीत लिया है, तुमसे युद्ध करने की कामना लेकर आया हूँ। विख्यात वीर शत्रु को पीठ देकर इस प्रकार [युद्ध से] भागते नहीं, ऐसा करना नाशकारी है। क्या तुम राजमात्र हो ? तुम्हारे राजत्व में कलंक लगा है। १६२१ [म.] हे माधव ! तुम्हें आज मैं बलपूर्वक पकड़ लूँगा जिससे संसार में मुझे ख्याति मिले। तुम चाहे जल में पैठो, भूमि के नीचे चले जाओ, शैल (पर्वत) पर चढ़ जाओ, बलि

व. अदियुनुं गाक ॥ 1623 ॥

म. शरमुल् दूरवु मद्धनुर्गुण लताशब्दंबु वीतेंडु ना
हरि रिखोद्धत धूळि गप्पदकटा ! हास्युंडवै पार्रें वु-
र्वरपै नेक्रिय बोरितो कदिसि मुन् वाताशितो गेशितो
गरितो मल्लुरतो जरातनयुतो गंसावनीनाथुतोन् ॥ 1624 ॥

व. अनि पलुकुचु, गालयवनुंडु वेंट नरुगु देर, सरकुसेयक, मंदहासंबु मुखारविंदंबुनकु सौंदर्यंबु नोसंग, वेगिरपडक, रम्मु रम्मनुचु हरियुनु ॥ 1625 ॥

सी. अदे यिदे लोबडे ननि पट्टवच्चिन गुप्पिचि लंघिंचु गौंततडवु
पट्टराडीतनि परुवगलंडनि भाविंप दन समीपमुन निलुचु
नडरि पार्श्वंबुन कड्डंबु वच्चिन गेडिंचि यिट्टट्टु गिकुरु वेट्टु
वल्मीक तरु सरोवरमुलड्डंबैन सव्यापसव्य संचरत नूपु

(राजा वलि) के सामने प्रगट होओ, विकृतरूप बना लो, समुद्र के पार जाओ अथवा ब्राह्मण, हलिक (किसान) और आश्विक (घुड़सवार) का रूप धारण करो, मैं तो तुम्हें छोड़ने का नहीं[1]। १६२२ [व.] इसके अतिरिक्त १६२३ [म.] [तुम्हें मेरे] वाण भी अभी नहीं लगे, मेरे धनुष की डोरी का शब्द भी तुम तक नहीं पहुँचा, मेरे घोड़ों के खुरों से उड़कर धूल भी छायी नहीं, इसी बीच, आश्चर्य है ! तुम [जग में] हास्यास्पद बनकर भाग निकले हो। [पता नहीं] तुमने पूर्व में सर्प से, केशी से, गज से, मल्लों से, जरासंध से और राजा कंस से भिड़कर किस प्रकार युद्ध किया था ?" १६२४ [व.] यों कहते हुए कालयवन ने जब पीछा किया तो, उसकी परवाह न करके, मंदहास से अपने मुखारविंदु (मुखकमल) की शोभा वढ़ाते हुए, हरि ने उत्तर दिया; "चिंता मत करो, [कुछ जल्दी नहीं है] साथ-साथ चले आओ।" १६२५ [सी.] "यह देखो, पकड़ में आया", "वह देखो, मिल गया" —यों कहते हुए [यवन] जब धरने आता तो [कृष्ण] उछल कर छलांग मारता और निकल जाता। जब वह सोचता कि यह बड़ी तेजी से दौड़ रहा है, इसे पकड़ना कठिन है, तब [कृष्ण] उसके समीप में ही खड़ा रहता। पार्श्व से रास्ता काटकर जब वह दौड़ पड़ता, तो [कृष्ण] बचकर इधर-उधर हट जाता और उसे बहकाता। जब बमीठे, पेड़-पौधे और सरोवर आदि रास्ता अड़ाते तो वह दाईं ओर से चलता हुआ-सा दिखाई देकर बायीं ओर को पहुँचता, यदि यवन दाईं ओर से आता तो कृष्ण बाईं ओर चल निकलता। [ते.] कभी

[1] इस पद्य मे—विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नृसिंह, राम, परशुराम, बलराम और कल्कि अवतारों के प्रति इंगित किया गया है।

ते. वल्लमुल डागु दिव्वल बयलु पडुनु
नीडलकु बोवु निरुमुल निगिडि ताशु
नम्नु वट्टिन नीवु मानवुडवनुचु
यवनुडँगुवंग वहु जगदवनुडधिप ! ॥ 1626 ॥

व. मरियुनु ॥ 1627 ॥

सी. सकल भूतव्रात संवासुडय्युनु वनमुलु नगमुलु वरुसदाटु
लोकोन्नतुंडुनु लोकचक्षुडुनय्यु माटिमाटिकि निविक मगिडि चूचु
बक्षविपक्ष संबंध शून्युंडय्यु दनु विपक्षुडु वेंट दगुल निगुडु
विजयापजय भाव विरहितुंडय्यु दा नपजयंबुनु जेंदिनट्लु तोचु

ते. नभय भयविहीनुडय्यु भीतुनि माड्कि
गानबडुनु सर्वकालरूपु-
डय्यु गालचकितुडैन कैवडि वन-
मालि परचु वेंरुपुमालि यधिप ! ॥ 1628 ॥

व. इट्टिविधंबुन ॥ 1629 ॥

कं. दारित शात्रव भवनु न-
पार महावेग विजित पवनुन् यवनुन्
दूरमु गोनि चनि कृष्णुडु
घोरंबगु नोक्क शैलगुह वडि जोच्चेन् ॥ 1630 ॥

गड्ढों में जा छिपता, कभी टीलों पर दिखाई पड़ता, कभी छायाओं में जा खड़ा होता, कभी आड़ों में छिपकर अदृश्य रहता। हे राजन् ! जगदीश्वर कृष्ण यह कहकर कि "यदि तुम मुझे पकड़ो तो मानव बनोगे" —यवन को उकसाता रहता। १६२६ [व.] और १६२७ [सी.] सकल-भूत-व्रात (समस्त भूतसंघ) में निवास करनेवाला होकर भी [कृष्ण] वनों को और पर्वतों को क्रम से लाँघता जा रहा; लोकोन्नत और लोकचक्षु होते हुए भी बार-बार छिपकर ताकता रहता; पक्ष-विपक्ष-संबंध-शून्य (अपने पराये का नाता न रखनेवाला) होकर भी शत्रु के पीछा करने पर भागता; जय और अपजय का भाव न होने पर भी ऐसा दीखता मानों स्वयं अपजय पा रहा हो; [आ.] निडर और भयरहित होकर भी भयभीत-सा दिखाई देता; हे राजन् ! स्वयं कालस्वरूप होकर भी वनमाली (कृष्ण) कालचकित-सा होकर (मानों मृत्यु से डरा हो), निरुपाय हो भागता रहा। १६२८ [व.] इस प्रकार··· १६२९ [कं.] शत्रु-भवनों के विध्वंसक, वेग में पवन को जीतनेवाले उस यवन को बहुत दूर ले जाकर कृष्ण एक घोर (भयंकर) पर्वतगुहा में तेजी से घुस गया। १६३०

कं. अदॆ लोबडॆ निदॆ लोबडॆ, नदॆ यिदॆ पट्टॆद नदंचु नाशावशुडै
यदुसिंहुनि पदपद्धति, वदलक गिरि गह्वरंबु वाडुं जॊच्चॆन् ॥ 1631 ॥

व. इट्लु चॊच्चि मूढ हृदयंबुनुं बोलॆ तमःपूर्णंबैन गुहांतराळंबुन दीर्घ तल्प निद्रितुंडै, गुरक पॆट्टुचुन्न यॊक्क महापुरुषुनि गनि श्रीहरि गा दलंचि ॥ 1632 ॥

उ. आलमु सेयक पुरुषाधम! दुर्लभ कंटक द्रुमा-
भील महाशिला सहित भीकरकुंजर खड्गसिंह शा-
र्दूल तरक्षु संकलित दुर्गपथंबुन नारुदॆंचि यी
शैलगुहन् सनिद्रुक्रिय जागि नटिंचिन बोवनित्तुने ॥ 1633 ॥

कं. ऎक्कड नॆव्वारलकुनु
जिक्कवनुचु नारदुंडु सॆप्पॆनु नाकुं
जिक्कितिवॆक्कड बोयॆदु
निक्कमुगा निद्रपुत्तु निन्नी कॊंडन् ॥ 1634 ॥

आ. अनुचु यवनुडट्टहासंबु गाविंचि
चटुल कठिन कुलिश सदृशमैन
पादमॆत्ति तन्नॆ वारि तद्देहंबु
नगगुहं ब्रतिस्वनंबु निगुड ॥ 1635 ॥

[कं.] "वह मिल गया", "यह मिल गया", "इधर पकड़ूंगा", "उधर पकड़ूंगा", कहकर आशा के वश होकर यदुसिंह (कृष्ण) के चरण-चिह्नों को पकड़े उस यवन ने भी उसी गुफा में प्रवेश किया। १६३१ [व.] यों घुसकर उसने उस गुहा के अंतर्भाग में, जो [अज्ञान से भरे] मूढहृदयों के समान तमःपूर्ण (अंधकारपूर्ण) था, दीर्घ-शय्या पर निद्रित और खुर्राटे ले रहे एक महापुरुष को देखा। यवन ने उन्हें श्रीहरि (श्रीकृष्ण) समझकर··· १६३२ [उ.] "हे पुरुषाधम! युद्ध करने में असमर्थ होकर, तुम कंटकाकीर्ण, भयंकर द्रुम-शिला-सहित (वृक्ष और चट्टानों वाले), कुंजर (हाथी), खड्ग (गैंडा), सिंह, शार्दूल (व्याघ्र) और तरक्षुओं (तेंदुओं) से भरे दुर्गम पथ से भागकर आये हो और इस शैलगुहा में लेटकर सोते हुए की तरह नाटक (झूठा अभिनय) रच रहे हो; ऐसे तुम्हें मैं जाने दूंगा क्या? १६३३ [कं.] मुझको नारद ने बताया था कि तुम कहीं भी, किसी की भी पकड़ में नहीं आते, अब तुम मेरे हाथ लगे हो, अब कहाँ जाओगे? निश्चय ही तुम्हें इस पर्वत में सुला दूंगा।" १६३४ [आ.] यों कहते हुए उस यवन ने अट्टहास किया और कठोर कुलिश (वज्र)-सदृश अपना पैर तानकर उस देह में एक लात जमायी, जिसकी प्रतिध्वनि उस गुफा में फैल गयी। १६३५ [उ.] [यवन के लात मारने पर] उस

उ. तन्निन लेचि नीलिग कनुदम्मुलु मॅल्लन विच्चि लोपलन्
सन्नपु गिन्क वधिल दिशल् गनि दृष्टि समिद्ध विग्रहो-
त्पन्न महाग्नि कीलमुल भस्ममु सेसॅ नतंडु सायक-
च्छिन्न विरोधिकंठवनु श्रीभवनुन् यवनुन् लघुक्रियन् ॥ 1636 ॥

व. इट्लेकक्षण मात्रंबुन यवनुंडु नीऱय्यॅ। अनिन विनि राजि-
ट्लनियॅ ॥ 1637 ॥

आ. अॅव्वडात डतनि कॅव्वंडु वंड्रि घो-
राद्रि गुहकु नेटि कतडु वच्चि
निद्रवोयॅ यवनु निटु गाल्पनेट्लोपॅ
दॅलिय बलुकु नाकु धीवरेण्य ! ॥ 1638 ॥

व. अनिनं, बरीक्षिन्नरेंद्रुनकु नतिकुतूहलंबुतो शुकयोगिवर्युं डिट्लनियॅ।
इक्ष्वाकुकुल संभवुंडु मांधात कॊडुकु मुचुकुंदुंडनु राजु, राक्षस भीतुलयिन
वेल्पुलं बॅद्दकालंबु संरक्षिचिनमॅच्चि, वारमरलोक रक्षकुंडैन या राज
कुमारुनि कडं जेरि, वरंबुवेडुमनिन वारलं गनुंगॊनि, मोक्षपदं बडिगिन
वारलतनिकिट्लनिरि ॥ 1639 ॥

[महात्मा] ने उठकर अँगड़ाई ली; धीरे से कमल-नेत्र खोल चारों तरफ़ देखा, उसके [मन के] अंदर ज़रा-सी झुँझुलाहट बढ़ गयी। उसने अपनी दृष्टि की ज्योति के विस्तार से उत्पन्न तीक्ष्ण अग्निज्वालाओं से उस यवन को अनायास ही भस्म कर दिया जो विरोधकंठ-रूपी वन को अपने बाणों से छेदकर कीर्तिसंपन्न हुआ था। १६३६ [व.] इस भाँति एक क्षणमात्र में वह यवन राख बन गया। यह कथन सुनकर [परीक्षित] राजा ने यों कहा… १६३७ [आ.] "हे धीवरेण्य (श्रेष्ठ बुद्धिमान)! मुझे स्पष्ट समझा कर बताइए कि वह [महात्मा] कौन था? उसका पिता कौन था? भयंकर अद्रिगुहा (पहाड़ की गुफा) में आकर वह क्यों सोया हुआ था? उस यवन को वह किस प्रकार जला सका था?" १६३८ [व.] यह सुन योगिवर्य शुक ने अतिकुतूहल के साथ राजा परीक्षित् से इस प्रकार कहा: इक्ष्वाकु-कुल-संभव मांधाता का पुत्र मुचुकुंद नामक राजा राक्षसों से भयभीत देवों की बहुकाल तक रक्षा करता रहा, अमरलोक-रक्षक उस राजकुमार को सराहते हुए देवों ने उससे वर माँगने को कहा। तब उसने उनसे मोक्षपद माँगा तो उन्होंने यों कहा: १६३९

मुचुकुंदुनि पूर्वकथाभिवर्णनमु

म. जगतिन् निर्गत कंटकंबयिन राज्यंबुन् विसर्जिंचि शू-
र-गणाग्रेसर ! पॆद्दकालमु ममुन् रक्षिंचिती लोन नी
मगुवल् मंत्रुलु बंधुलुन् सुतुलु संबंधुल् भुविन् लेरु का-
लगतिन् जॆंदिरि कालमॆव्वरिकि दुर्लंघ्यंबु दा नारयन् ॥ 1640 ॥

कं. कालमु प्रबलुलकुनु बलि
कालात्मुंडीश्वरुंडगण्युडु जनुलन्
गालवशुलुगा जेयुनु
गालमु गडवंगलेरु घनुलॆव्वारुन् ॥ 1641 ॥

कं. वर मिच्चॆद मर्थिपुमु
धरणीश्वर ! मोक्षपदवि दक्कनु मे मॆं-
व्वरमुनु विभुलमु गा मी
श्वरुडगु हरि दक्क मोक्षसंगति जेयन् ॥ 1642 ॥

व. अनि पलिकिन, देवतलकु नमस्करिंचि, मुचुकुंदुंडु निद्रं गोरि, देवदत्त निद्रावशुंडै, पर्वत गुहांतरालंबुन शयनिंचि युंडॆ। यवनुंडु नीरैन पिम्मट हरि मुचुकुंदुनि मुंदट निलिचॆन ॥ 1643 ॥

मुचुकुंद की पूर्वकथा का अभिवर्णन

[म.] शूराग्रेसर ! तुम भूमंडल पर का अपना निष्कंटक (सुरक्षित) राज्य छोड़कर बहुत काल तक हमारी रक्षा करते रहे, इस बीच में तुम्हारे स्त्रियाँ, मंत्री, बंधु, पुत्र सब काल कर गये, अब वे सब भूमि पर नहीं हैं; सोचने पर जान पड़ेगा कि काल (मृत्यु) हर किसी के लिए दुर्लंघ्य (टाला नहीं जा सकता) है। १६४० [कं.] काल प्रबल व्यक्तियों के लिए भी बलवान रहता है; ईश्वर कालात्मक है; वह अगण्य है (कूता नहीं जा सकता); जनों को वह काल के वश बना देता है। कितना ही महान क्यों न हो, कोई भी [मनुष्य] काल को लाँघ नहीं सकता। १६४१ [कं.] हे धरणीश्वर (राजन्) ! एक मोक्षपद को छोड़कर शेष कुछ भी माँगो, हम वरदान करेंगे। ईश्वर-हरि के सिवाय हममें से कोई भी मोक्ष देने में समर्थ नहीं है।" १६४२ [व.] इतना कहने पर, मुचुकुंद ने देवताओं को नमस्कार कर उनसे निद्रा माँगी। फिर वह देवता-प्रदत्त निद्रा के वश होकर पर्वत की गुहा के अंतराल में सोता रहा। यवन के भस्म हो जाने के पश्चात् हरि (कृष्ण) मुचुकुंद के सामने जा खड़ा हुआ। १६४३ [सी.] वनरुहलोचन (कमलाक्ष), वैजयंती माला से

सी. वनरुहलोचनु वैजयंतीदामशोभितु राकेंदु सुंदरास्यु
मकरकुंडल कांति महित गंडस्थलु गौस्तुभ ग्रैवेयु घनशरीरु
श्रीवत्सलांछनांचित वक्षु मृगराज मध्यु जतुर्बाहु मंदहासु
गांचनसन्निभ कौशेयवासु गांभीर्य सौंदर्य शोभितु बसन्नु

आ. नम्महात्मु जूचि याश्चर्यमुनु बोंदि
तन्मनोज्ञदीप्ति तनकु जूड
नलविगाक चकितुडै यॆट्टकेलकु
वलिकॆ ब्रीति नवनिपालकुंडु ॥ 1644 ॥

म. शशिवो यिंद्रुडवो विभावसुडवो चंड प्रभाराशिवो
शशिचूडामणिवो पितामहुडवो चक्रांक हस्तुंडवो
दिशलुन् भूमियु मिन्नु निंडॆ निदॆ नी तेजंबु जूडंग दु-
र्वशमॆव्वंड विटेल वच्चितिचटन् वर्तिचॆं देकाकिवै ॥ 1645 ॥

कं. ईयडवि विषम कंटक
भूयिष्ठमु घोर सत्व पुंजालभ्यं-
बो यय्य ! यॆट्लु वच्चिति
नी यडुगुलु कमलपत्र निभमुलु सूडन् ॥ 1646 ॥

व. महात्मा ! येनु नीकु शुश्रूषणंबु सेयगोरॆद । नीजन्म गोत्रंबु लॆरिंगिपु ।

शोभित, पूर्णचंद्र-सम सुंदर मुखवाले, जिसके गंडस्थल (कनपटी) पर मकर-कुंडल (कर्णभूषण) की कांति झलक रही थी, कौस्तुभ (मणि) लगी कंठी पहने, घन-शरीरवाले, श्रीवत्सलांछन से विभूषित, मृगराज-मध्य (सिंह की जैसी कटिवाले), चतुर्बाहु, मंदहास करनेवाले, कांचन (सुवर्ण) सन्निभ (समान) कौशेय पहने, गांभीर्य और सौंदर्य से शोभित, प्रसन्न रहनेवाले [आ.] उस महात्मा (विष्णु) को देखकर उसे विस्मय हुआ। उसकी मनोज्ञ दीप्ति (कांति) देखने में असमर्थ होकर उस अवनिपाल (भूपाल) ने आखिर प्रीतिपूर्वक यों कहा। १६४४ [म.] "तुम क्या चंद्र हो? इन्द्र हो? या अग्नि हो? अथवा प्रचंड प्रकाशवाले सूर्य हो? नहीं तो चंद्रचूड़ शिव हो? पितामह ब्रह्म हो क्या? या चक्रहस्त विष्णु हो? तुम्हारा यह तेज भूमि, आकाश और दिशाओं में भर गया है, तुम्हें देख पाना अशक्य है। कौन हो तुम? इधर किसलिए आये हो? एकाकी क्यों रहते हो? १६४५ [कं.] यह अरण्य विषम-कंटक-भूयिष्ठ (भरा

ने निक्ष्वाकुवंश संभवुंडनु। मांधातृ नंदनुंडनु। मुचुकुंदुंडनुवाड। देवहितार्थंबु चिरकाल जागरश्रांतुंडनै, निद्र नोंदि, यिंद्रिय संचारंबुलु मऱचि ॥ 1647 ॥

शा. ए निद्रिंपुचुनुंड नोक्क मनुजुंडेतेंचि दुष्कर्मुडै
ता नोरे चेंडे नात्मकिल्बिषमुनन् दर्पोग्रुडै यंतटन्
श्रीनाथाकृतिवैन निन्नु गनि वीक्षिंपन्नशक्तुंडनै
दीनत्वंबुनु जेंदितिन् ननु गृपादृष्टिन् विलोकिंपवे ॥ 1648 ॥

व. अनिन विनि, मेघगंभीर भाषल हरि यिट्लनियें ॥ 1649 ॥

सी. भूरजंबुलनैन भूनाथ ! येन्नंग जनु गानि ना गुण जन्म कर्म
नामंबुलेल्ल नेन्नंग नेव्वरु जाल रदियेल नाकुनु नलवि गादु
नेलकु व्रेग्गैन निखिल राक्षसुलनु निर्जिंचि धर्मंबु निलुप बेट्टि
ब्रह्मचे मुन्नु ने प्रार्थिंपबडि वसुदेवु निंटनु वासुदेवुडनग

आ. गरुण नवतरिंचि कंसाख्यतोनुन्न
कालनेमि जंपि खलुल मऱियु
द्रुंचुचुन्नवाड दोडरि नी चूडकि नी-
रैनवाडु कालयवनु डनघ ! ॥ 1650 ॥

चाहता हूँ; अपना जन्म और गोत्र मुझे बता दो; मैं तो इक्ष्वाकु-वंश में जन्मा हूँ, मांधातृ का नंदन (पुत्र) हूँ, मुझे मुचुकुंद कहते हैं। देवों के निमित्त चिरकाल तक जागकर श्रांत (थका हुआ) था, (अतः) इंद्रिय-संचालन (सुध-बुध) भूलकर सो गया। १६४७ [शा.] मेरे सोते समय एक मनुष्य आया, दर्प से प्रचंड बनकर उसने दुष्कर्म किया और अपने पाप के कारण भस्म होकर नष्ट हो गया। अनंतर, श्रीनाथ (विष्णु) की आकृति में तुम्हें पाकर, देखने में अशक्त हो दीन बना हुआ हूँ, मुझे अपनी कृपादृष्टि से देखो न !" १६४८ [व.] यह कथन सुनकर हरि ने मेघगंभीर स्वर में यों कहा··· १६४९ [सी.] "हे भूपाल ! धूल के कणों को भले ही गिना जा सकता हो, किन्तु मेरे समस्त जन्म, कार्य और नामों को कोई भी नहीं गिन सकता; इतना क्यों, मेरे लिए भी साध्य नहीं है। भूमि का भार बने हुए निखिल (समस्त) राक्षसों को मारकर धर्म की स्थापना करने के निमित्त पूर्व में ब्रह्मा से मैं प्रार्थित हुआ था, [अतः] मैं वसुदेव के घर वासुदेव बनकर दयापूर्वक अवतरित हुआ, और [अब तक] कालनेमि का, [आ.] जो कंस के नाम से था, संहार किया; शेष दुष्टों को अब मार रहा हूँ। हे पुण्यवान् ! तुम पर आक्रमण करके, तुम्हारी दृष्टि से अब जो राख हो गया है, वह कालयवन था। १६५० [व.] और सुनो; पूर्व

व. विनुमु। तॆल्लियु, नीवु नन्नु सेविंचिनकतंबुन, निन्ननुग्रहिंप नी शैल गुहकु नेतॆंचिति। अभीष्टंबुलयिन वरंबुलडुगुमु, इच्चॆद। मद्भक्तुलगु जनुलु क्रम्मर शोकंबुन कर्हुलु गारु। अनिन हरिकि मुचुकुंदुंडु नमस्करिंचि, नारायण देवुंडगुट यॆरिंगि, यिरुवदि यॆनिमिदव महायुगंबुनंदु नारायणुंडवतरिंचु ननि मुन्नु गर्गुडु चॆप्पुट दलंचि ॥ 1651 ॥

मुचुकुंदुनि श्रीकृष्णस्तोत्रमु

कं. नी माय जिक्कि पुरुष
स्त्री मूर्तिक जनमु निन्नु सेविंपदु वि-
त्तामय गृहगतमै सुख
तामसमै कामवंचितंबै यीशा ! ॥ 1652 ॥

उ. पूनि यनेक जन्ममुल बॊंदि तुदिन् दन पुण्यकर्म सं-
तानमु पेर्मि गर्मवसुधास्थलि बुट्टि प्रपूर्ण देहुडै
मानवुडै गृहेच्छ बडु मंदु जडंबु तृणाभिलाषियै
कानक पोयि नूत बडु कैवडि नी पदभक्ति-हीनुडै ॥ 1653 ॥

में तुमने मेरा संसेवन (सम्यक् सेवा) किया था, इस कारण से तुम पर अनुग्रह (कृपा) दिखाने के लिए तुम्हारी शैलगुहा में आया हूँ; अपने अभीष्ट (मनचाहे) वर माँगो, दूंगा; मेरे भक्त होने के बाद [उन भक्त] जनों को फिर से दुःख भोगना न पड़ेगा।" ऐसा कहने पर मुचुकुद ने हरि को नमस्कार किया, अब वह जान गया कि [जो सामने खड़ा है] वह नारायण दैव है। उसने गर्ग का यह वचन, कि अट्ठाईसवें महायुग मे नारायण अवतार लेंगे— स्मरण किया, [और कहा।] १६५१

मुचुकुंद का श्रीकृष्ण-स्तोत्र

[कं.] हे ईश ! तुम्हारी माया में फँसकर स्त्री-पुरुष-जन तुम्हारी सेवा (भक्ति) नहीं करते, [क्योंकि] वे धन-दौलत, घर-द्वार और बीमारियों में ग्रस्त रहकर, सुख-भोग में ज्ञान खोकर कामवासना से ठगे हुए रहते है। १६५२ [उ.] [जीव] अनेक जन्म पाने के बाद अन्त में मानव बनकर अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से कर्मभूमि में जन्म लेता और [सब प्रकार से] परिपूर्ण देह-वाला बनता है, फिर भी तुम्हारी पदभक्ति छोड़ वह मूर्ख बनता है और घर-द्वार के मोह में गिर जाता है जैसे चारे की अभिलाषा (लालच) से बकरा आँख मूँदकर चलता रहता और कुएँ में गिर पड़ता है। १६५३ [कं.] हे ईश्वर ! स्त्री, पुत्र, धन आदि में

कं. तरुणी पुत्र धनादुल
मरगि महाराज्य विभव मदमत्तुडनै
नर तनु लुब्धुडनगु ना
करयग बहुकाल मीश ! याऽडि वोयॅन् ॥ 1654 ॥

कं. घट कुड्य सन्निभंबगु
चटुल कळेवरमु जॉच्चि जनपति नंचुन्
वट्टु चतुरंगबुलतो
निट नट दिरुगुडुनु निन्नु नॅरुगक यीशा ! ॥ 1655 ॥

आ. विविध काम लोभ विषय लालसु मत्तु
नप्रमत्तवृत्ति नंतकुंड-
वॅन नीवु वेळ नरसि त्रुंतुवु सर्प-
मॉदिगि मूषकंबु नोडियु नट्लु ॥ 1656 ॥

कं. नरवर संज्ञितमै रथ
करि सेवितमैन यॉडलु कालगतिन् भी-
कर मृगभक्षितमै दु-
स्तर विट् क्रिमि भस्म संज्ञितंबगु नीशा ! ॥ 1657 ॥

आ. सकल दिशलु गॅलिचि समुलु वर्णिपंग
जारु पीठमॅक्कि सार्वभौमु-
डॅन सतुल गृहमुलंदु क्रीडाभोग
वृत्ति नुंडु निन्नु वॅदक लेडु ॥ 1658 ॥

अनुरक्त हो, महाराज का वैभव पाकर मैं मदमत्त हुआ था; इस तरह मानव शरीर के [सुखों के] लालच में पड़ने के कारण, मैं जानता हूँ, मेरा बहुत सा समय व्यर्थ गया है। १६५४ [कं.] हे ईश ! घट (घड़ा) और कुड्य (दीवार) के समान इस चटुल (चंचल) कलेवर (शरीर) में रहकर अपने को जनपति (राजा) कहता हुआ, तुम्हें जाने विना, इस दृढ़ चौपड़ के खेल में इधर-उधर भटकता रहा। १६५५ [आ.] अनेक प्रकार की अभिलाषाओं में, लालचों में, सुखभोगों में, लालसाओं में ग्रस्त रहनेवालों को, तुम अंतक (संहारक) होने के कारण, सावधानी से, समय देखकर इस प्रकार नष्ट कर देते हो जैसे साँप आड़ में रहकर मूषक को धर लेता है। १६५६ [कं.] हे ईश ! नरवर (राजा) कहलाकर रथ, गजादि [सेना] की सेवा से लाभान्वित हुआ यह शरीर, कालगति से भयंकर मृगों द्वारा खाये जाकर घोर विट् (विष्टा) और क्रिमिपूर्ण राख बनकर रह जाता है। १६५७ [आ.] [राजा] समस्त दिशाओं [के शत्रुओं] को जीतकर अपने बराबरी वालों से प्रशंसा पाकर, सुंदर सिंहासनारूढ़ हो सार्वभौम

आ. मानसंब गट्टि महित भोगंबुलु
मानि यिंद्रियमुल मदमुलणचि
तपमु चेसि यिंद्रतयु गोरु गानि नी
यमृतपदमु गोरडज्ञु डीश ! ॥ 1659 ॥

सी. संसारियै युन्न जनमुन कीश्वर ! नी कृप येप्पुडु नेरय गल्गु
नप्पुडे बंधंबु लन्नियु तेगिपोवु बंध मोक्षंबयिन ब्राप्तमगुनु
सत्संगमंबु, सत्संगमंबुन नीदु भक्ति सिद्धिंचु नी भक्ति वलन
सन्मुक्तियगु नाकु सत्संगमुन कंटे मुनु राज्य बंध निर्मूलनंबु

ते. गलिगिनदि देव ! नी यनुग्रहमु कादे
कृष्ण ! नी सेव गानि तक्किनवि वलदु
मुक्तिसंधायिवगु निन्नु मुट्ट गोलिचि
यात्मबंधंबु गोरुने यार्युडेंदु ? ॥ 1660 ॥

व. कावुन, रजस्सत्व तमोगुणंबुल यनुबंधंबुलगु नैश्वर्य शत्रु मरण धर्मादि विशेषंबुलु विडिचि, यीश्वरुंडुनु, विज्ञान घनुंडुनु, निरंजनुंडुनु, निर्गुणुंडुनु, नद्वयुंडुनु, -नैन परमपुरुषुनि निन्नाश्रयिंचेद। चिरकालंबु कर्मफलंबुल चेत नार्तुडनै, क्रम्मर दद्वासनल संतप्तुंडनै, तृष्णं बायक, शत्रुवुलैन

कहलाता है, और अपनी पत्नियों के भवनों में कामोपभोग की क्रीड़ाओं में लगा रहता है, पर तुम्हें खोजता नहीं। १६५८ [आ.] हे ईश्वर ! मनुष्य [यद्यपि] मन का विरोध कर, सुख-भोग त्याग, इंद्रियों का मद मर्दन करते हुए तप करता है, तो भी अज्ञ (मूर्ख) बनकर इन्द्रपद चाहता है, किन्तु तुम्हारा अमृतपद (मुक्ति) माँगता नहीं है। १६५९ [सी.] हे ईश्वर ! संसारी जन को जिस समय तुम्हारी कृपा भरपूर मिल जाती है, उसी समय उसके सारे बंधन कट जाते हैं; बंधमोक्ष (बंधविमुक्ति) नेहो पर सत्संग प्राप्त होता है; सत्संगति से तुम्हारी भक्ति की सिद्धि होती है तुम्हारी भक्ति से मुक्ति का लाभ होता है। हे देव ! सत्संग के पूर्व ही मेरा राज्यबंधन जो निर्मूल (नष्ट) हुआ, [ते.] वह तुम्हारी कृपा ही तो है। हे कृष्ण ! केवल तुम्हारी सेवा को छोड़ मुझे अन्य कुछ भी नहीं चाहिए। तुम मुक्ति-संधायक (प्राप्त करानेवाले) हो, तुम्हें प्राप्त करने के पश्चात् आर्यजन अपने लिए फिर से बंधन कभी नहीं चाहेगा। १६६० [व.] अतः सत्त्व, रज और तमोगुणों के साथ लगे हुए ऐश्वर्य, शत्रु-विजय, गुण-धर्म आदि विशेषों को छोड़कर तुम परमपुरुष का आश्रय ग्रहण करूँगा, जो कि ईश्वर हो, विज्ञानघन हो, निरंजन, निर्गुण और अद्वय हो। [पूर्व] कर्मफल से चिरकाल तक आर्त (पीड़ित) बना रहा, फिर उन्हीं

यिद्रियंबु लारिटिनि गॆलुवलेनि नाकु शांति यॆक्कडिदि; विपन्नुंडनैन नन्नु निर्भयुं जेसि, रक्षिपुमु। अनिन मुचुकुंदुनिकि हरि यिट्लनियॆ ॥ 1661 ॥

उ. मंचिदि नीदु बुद्धि नृपमंडन! नीवु परार्थमॆट्लु व-
तिचिननैन गोरिकल दिक्कुन जिक्कवु मेलु निर्मलो-
दंचित वृत्ति नन्नु गॊलुचु धन्युलवद्धलु नट्ल नीकु नि-
श्चंचल भक्ति गल्गॆडिनि सर्वमु नेलुमु मान नेटिकिन् ॥ 1662 ॥

व. नरेंद्रा! तॊल्लि, क्षत्रधर्मंबुन निलिचि, मृगयाविनोदंबुल जंतुवुल वधियिंचिनाडवु। तपंबुन दत्कर्मविमुक्तुंडवै, तर्वाति जन्मंबुन सर्वभूत सख्तत्वंबु गलिगि, ब्राह्मण श्रेष्ठुंडवै, नन्नुं जेरॆदवनि वीड्कॊलिपिन

अध्यायमु—५२

व. हरिकि प्रदक्षिणंबु वच्चि, नमस्करिंचि, गुह वॆडलि, सूक्ष्मप्रमाण देहंबुलतो नुन्न मनुष्य पशु वृक्ष लतादुलं गनि, कलियुगंबु प्राप्तंबगु ननि तलचि,

---

वासनाओं से सतप्त होकर, तृष्णा त्यागने में अशक्त हो, षड्-इंद्रियों से हारा हुआ हूँ, वे मेरे शत्रु हैं; इस कारण से मुझे शांति कहाँ होगी? मुझ विपन्न (दुखी) को निर्भय बनाकर रक्षा करो।" यों कहने पर हरि ने मुचुकुंद को यों समझाया: १६६१ [उ.] "हे राजशेखर! तुम्हारी बुद्धि अच्छी है, दूसरो [की भलाई] के लिए तुमने चाहे जो कुछ किया हो, पर इच्छाओं में नही फँसे, यह अच्छा ही हुआ। निर्मल-वृत्ति (-आचरण) से मेरी आराधना करनेवाले विमुक्त धन्य पुरुषों वाली निश्चल भक्ति मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ। [पूर्ववत्] राज्यपालन करते रहो, उसे छोड़ना क्यों? १६६२ [व.] हे नरेंद्र! पूर्व में तुमने क्षात्रधर्म मानकर मृगयाविनोद (शिकार) में जीव-जंतुओं का जो वध किया था, उस कर्मफल से तपस्या द्वारा तुम विमुक्ति पा जाओ। अगले जन्म में समस्त भूतों में सख्य भाव रखकर, ब्राह्मण-श्रेष्ठ बनोगे, तद्द्वारा मुझे प्राप्त करोगे।" —यों कहकर [कृष्ण ने] उसे विदा किया।

अध्याय—५२

[व.] विदा होकर [मुचुकुंद ने] प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार किया; फिर गुफा से निकलकर उसने मनुष्य, पशु, वृक्ष, लता आदि को सूक्ष्म प्रमाण (छोटे आकार) वाली देहों मे स्थित देखकर समझा कि अब कलियुग आनेवाला है। फिर उत्तराभिमुख हो तपोनिष्ठ हुआ; संशयों को

युत्तराभिमुखुंडै, तपोनिष्ठुंडगुचु, संशयंबुलु विडिचि, संगंबुलु परिहरिंचि, विष्णुनियंदु चित्तंबु जेर्चि, गंधमादनंबु प्रवेशिंचि, मरियु नरनारायण निवासंबयिन बदरिकाश्रमंबु चेरि, शांतुंडै, हरि नाराधिंचुचुंडॆ। इट्लु मुचुकुंदुनि वीड्कॊनि ॥ 1663 ॥

शा. अच्छिद्र प्रकट प्रताप रविचे नाशांतराळंबुलन्
ब्रच्छादिंचुचु ग्रम्मरन् मथुरकुन् बद्माक्षुडेतेंचि वी-
डाच्छादिंचि महानिरोधमुग जक्राकारसै युन्न या
म्लेच्छव्रातमु नॆल्ल द्रुंचॆ रणभूमिन् वेंपु सॊंपारगन् ॥ 1664 ॥

जरासंधुडु प्रवर्षगिरिनि दहिंचुट

व. इट्लु म्लेच्छुलं बॊरिगॊनि, मरियु नम्मथुरानगरंबुनं गल धनमु द्वारका नगरंबुनकुं बंचिन, मनुष्युलु कॊनिपोवुनॆड ॥ 1665 ॥

सी. घोटक संघात खुर समुन्निर्गत धूळिजीमूत संदोहमुगनु
महनीय मदकल मातंग कट दान धारलु कीलाल धारलुगनु
निरुपम स्यंदन नेमि निर्घोषंबु दारुण गर्जित ध्वानमुगनु
निशित शस्त्रास्त्र मानित दीर्घरोचुलु ललित सौदामिनी लतिकलुगनु

छोड़, संगों का परिहार कर, विष्णु में चित्त लगाया; [पश्चात्] गंधमादन पहुँच, बदरिकाश्रम में प्रवेश किया जो नर-नारायण का निवासस्थान था; वहाँ शांत होकर हरि की आराधना करता रहा। इस प्रकार मुचुकुंद से छुट्टी पाकर ·· १६६३ [शा.] रवि (सूर्य) के समान अपने अखंड प्रताप से दिशाओं को आच्छादित करते हुए पद्माक्ष (कृष्ण) मथुरा लौट आया। और नगर को [चारों ओर से] चक्राकार में घेरकर पड़ाव डाले हुई म्लेच्छ-सेनाओं को रणभूमि में पूरी तरह से तोड़कर मिटा दिया। १६६४

जरासंध का प्रवर्षगिरि को जला डालना

[व.] इस प्रकार म्लेच्छों का अंत कर देने के बाद, कृष्ण मथुरानगर की धन-संपत्ति जब द्वारकानगर को अपने जनों द्वारा ले जा रहा था, तब···१६६५ [सी.] जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना का बल लेकर शत्रु-राजाओं की प्रतापाग्नि (शौर्य रूपी अग्नि) को बुझाने के लिए, बरसात के समान [बीच में] आ धमका। उस [की सेना] के घोटक-संघात (अश्व-समूह) के खुरों से निर्गत (उड़ी) धूल जीमूत-संदोह (मेघमंडल)-सा छा गई; बड़े-बड़े मत्त-मातंगों के गंडस्थल से बहनेवाली मदधाराएँ वर्षा की जलधाराओं-सी लगी; [ते.] निरुपम (असमान) स्यंदन-नेमि-निर्घोष (रथ-

ते. शत्रुराज प्रतापाग्नि शांतमुगनु
वृष्टिकालमु वच्चु नव्विधमु दोप
नॅगुदॅचॅं जरासंधु डिरुवदियुनु
मूडु नक्षौहिणुलु दन्नु मौनसि कॉलुव ॥ 1666 ॥

चं. इटु चनुदॅचियुन्न मगधेश्वरु वाहिनि जूचि युद्ध सं-
घटनमु मानि मानवुल कैवडि भीरुलभंगि नोडि मुं-
दटि धनमॅल्ल डिंचि मृदु तामरसाभ पदद्वयुल् क्रिया
पटुवुलु रामकेशवुलु पाॾिरि घोर वनांतरंबुलन् ॥ 1667 ॥

व. इट्लु पऱचुचुन्न कृष्ण बलभद्रुलं जूचि, वारल प्रभावंबु लॅऱुंगक, परिहसिंचि ॥ 1668 ॥

उ. ओ यदुवीरुलार ! रभसोद्धति वाऱकुडिट्लु पाॾिनन्
बोयॅडुवाड गानु मिमु भूति नडंगिन मिन्नु प्राकिनन्
दोयधि जॉच्चिनं दगिलि द्रुंचॅदनंचु समस्तसेनतो
बायक वच्चॅ वॅंटबडि बाहुबलाढ्युडु मागधेशुडुन् ॥ 1669 ॥

व. मऱियुं, बलायमानुलै, बहुयोजनंबुल दूरंबु चनि, विश्रांतुलै, तमकु दाग नॅलवगुजनि, यिंद्रुंडु मिक्किलि वर्षिप, प्रवर्षणाख्यंबै, पदुनॊकंडु योजनंबुल पॊडवुनु, नंतिय वॅडलुपुनुं गल गिरि यॅक्किरि । अंत ॥ 1670 ॥

चक्रों की ध्वनि) दारुण (तीव्र) गर्जित-ध्वनि (मेघगर्जन)-सा बन गया; निशित (तेज) शस्त्रों की कांति किरणें ललित (पतली) सौदामिनी (विद्युत्) लताओं-सी दीखती थीं। १६६६ [चं.] यों आयी हुई मगधेश्वर (जरासंध) की सेना को देख युद्धकर्म छोड़, भीरु (कायर) मनुष्यों के समान हार मान [राम और कृष्ण ने] अपना सारा धन [शत्रु के हाथ] डाल दिया; कमल के समान कोमल चरणवाले, और क्रियानिपुण वे दोनों घोर वनों में भाग चले। १६६७ [व.] उस प्रकार भागते हुए कृष्ण-बलराम को देख, उनका प्रभाव न जानकर [जरासंध ने] उनका यों परिहास किया [हँसी उड़ायी]: १६६८ [उ.] "हे यदुवीर ! यों अत्यंत तेजी से मत भागो; भागने पर भी मैं तुम्हें छोड़नेवाला नहीं हूँ; चाहे भूमि के नीचे धँस जाओ, गगन में उड़ जाओ, सागर में पैठ जाओ, पीछा करके तुम्हारा संहार करूँगा।" यों कहते हुए वह बाहुबलाढ्य-मगधेश समस्त सेना के साथ उनके पीछे लगा। १६६९ [व.] अनेक योजन दूरी तक भाग कर, [राम और कृष्ण] श्रांत हो, छिपने के लिए अनुकूल स्थान समझकर एक गिरि (पर्वत) पर चढ़ गये जो इंद्र द्वारा किये गये अत्यधिक वर्षपात के कारण प्रवर्षण कहलाती थी और जो ग्यारह योजन लंबी और उतने ही योजन

शा. आ शैलेंद्रमु जुट्टिरा विडिचि रोषाविष्टुडै मागधो-
वीशुंडा वसुदेवनंदनुल दा वीक्षिपगा लेक त-
न्नाशेच्छन् बिल सानु शृंगमुल बूर्णक्रोधुडै काष्ठमुल्
रासुलगानिडि चिच्चु वेट्ट बनिचेन् रौद्रंबुतो भृत्युलन् ॥ 1671 ॥

व. इट्लु जरासंध परिजन प्रदीपितंबैन महानलंबु दरिकोनियें। अंदु ॥ 1672 ॥

कं. पोगलेगसे बोगलतुदलनु
मिगुलुच्चु मिणुगुरुलु निगिडे मिणुगुरुगमि मु-
म्मुग ब्रह्मांडमु निंडनु
भगभगमनि मंटलोदवे भयदमुलगुचुन् ॥ 1673 ॥

व. मरियु, नम्महानलंबु बिल सानुशृंग वृक्ष लताकुंज पुंजंबुल दरिकोनि, शिखलु किसलयंबुलुग, विस्फुलिंगंबुलु विरुलुग, समुद्भूत धूम पटलंबुलु बंधुर स्कंध शाखा विसरंबुलुग, ननोकहंबु कैवडि नभ्रंकषंबै, प्रब्बि कठोर समीरण समुन्नत महोल्काजाल तिरोहित वियच्चर विमानंबुनु, विविध विधूम विस्फुलिंग विलोकन प्रभूत नूतन तारका भ्रांति विभ्रांत गगनचरंबुनु, संतप्यमान सरोवर सलिलंबुनु, विशाल ज्वालाजाल जाज्ज्वल्यमान तक्कोल चंदनागरु कर्पूर धूम वासना वासित गगन

चौड़ी थी। तब··· १६७० [शा.] उन वसुदेवनंदनों (राम-कृष्ण) को न देख सकने के कारण रोष में आकर मगधनरेश ने शैलेंद्र पर चढ़ना छोड़ दिया; [पर] उनका विनाश चाहता हुआ, रौद्र-भाव से उसने उस पर्वत की गुहाओं, कंदराओं और शृंगों में ईंधन की राशियाँ जमाकर आग लगाने के निमित्त अपने भृत्यों को भेजा। १६७१ [व.] इस प्रकार जरासंध के परिजनों द्वारा सुलगाया हुआ महानल धधक उठा। उसमें से··· १६७२ [कं.] धुआँ ऊपर उठा, धुएँ के आगे चिनगारियाँ फैल गयीं; चिनगारियों के साथ-साथ भयदायक लपटें धू-धू करके ब्रह्मांड भर में व्याप्त हुई। १६७३ [व.] वह महानल (अग्नि) गुफाओं, कंदराओं, शृंगों के वृक्ष, लता-कुंज-पुंजों (समूहों) को जलाते हुए आकाश को छूनेवाले महावृक्ष के समान दिखाई दे रहा था, उस अग्नि की शिखाएँ किसलयों (कोपलों)-सी, चिनगारियाँ फूलों-सी, ऊपर उठे हुए धूम्रपटल मोटे स्कंध (तना) और डालों से लगते थे। इस प्रकार वह अनल प्रबल हुआ। तेज हवा से ऊपर फैले हुए ज्वाला-जाल ने गगनचारी देवताओं के विमानों को ढाँप दिया। उसके अनेक निर्धूम स्फुलिंगों के अवलोकन से [आकाशगामी] देवताओं को नूतन तारिकाओं का भ्रम हुआ और वे चकरा गये। सरोवरों का सलिल (जल) [उस आग से] तप्त हुआ; उस आग की दूर तक फैली ज्वालाओं

कुहरंबुनु, कराळ कीलाजाल वंदह्यमान कीचक निकुंज पुंज संजनित चिटचिटाराव परिपूरित दिगंतराळंबुनु, भयंकर बहुळतर शाखा भिद्यमान पाषाणघोषण परिमूर्छित प्राणिलोकंबुनु, संतप्यमान शाखिशाखांतर निबिड नीडनिहित शावक वियोगदुःख डोलायमान विहगकुलंबुनु, महाहेति संदीप्यमान कटिसूत्र संघटित मयूरपिंछ कुचकलशयुगळ भारालस शबरकामिनी समाश्रित निर्झरंबुनु, दग्धानेक मृगमिथुनंबुनुनै, येर्चु नॆड ॥ 1674 ॥

क. इल नेकादश योजन-
मुल पॊडवगु शैल शिखरमुन नुंडि वडिन्
बल कृष्णुलु रिपुबलमुल
वॆलि कुरिकिरि कानबडक विलसितलीलन् ॥ 1675 ॥

व. इट्लु शत्रुवुल वंचिचि, यादवेंद्रुलु समुद्र परिघंबैन द्वारका नगरंबुनकुं जनिरि। जरासंधुंडुनु वारलु दग्धुलैरनि तलंचुचु, बलंबुलु दानुनु, मगध देशंबुनकु मरलि चनियॆ। अंत ॥ 1676 ॥

से जलते हुए तक्कोल, चंदन, अगरु तथा कर्पूर वृक्षों के धुएँ से आकाश का अंतराल सुवासित (सुगंधित) हुआ। कराल (भयंकर) ज्वालाओ से जलते हुए वेणुवन (बाँस की झाड़ियों) से चटचट की ध्वनि उत्पन्न हो दिगंतों में भर गयी। भयानक वृक्षशाखाओं के टूटने और पाषाणों के फटने के घोष (ध्वनि) के कारण प्राणिलोक मूर्च्छित हो गया। उस आग से जब वृक्षों की शाखाएँ जल जाने लगीं तो उन पर बने घोंसलों मे रखे पक्षियों के बच्चे जल-भुन जाने लगे तो वह विहंगकुल (पक्षिसमूह) वियोग-दुख से डोलायमान हुआ, न वे बच्चों को बचा सकते थे और न छोड़ सकते थे। उस अग्नि की ज्वालाओं के कारण शबर कामिनियों के कटिसूत्र में बँधे हुए मयूरपिंछों में आग लगी, तो वे भाग निकलीं और कुचकलशों के भार से थककर निर्झरों (झरनों) में आश्रय लिया (शरण ली)। अनेक मृगों के मिथुन (जोड़ियाँ) उस आग में जल-भुन गयी। इस तरह वह अनल जब जलाने लगा तो··· १६७४ [कं.] ग्यारह योजन लंबे उस शैल शिखर पर से बलराम और कृष्ण वेग के साथ, अद्भुत रीति से ऐसे उतर भागे कि शत्रु-सेना को दिखाई नहीं दिये। १६७५ [व.] यों शत्रुओं को ठग कर वे [दोनों] यादवेंद्र समुद्र से घिरे हुए अपने द्वारकानगर पहुँच गये। जरासंध यह समझते हुए कि वे अग्नि में दग्ध हुए हैं, अपनी सेनाओं के साथ मगध को लौट गया। अनन्तर··· १६७६

रुक्मिणी कल्याण कथा प्रारंभमु

कं. आ वनजगर्भु पंपुन
रैवतुडनु राजु वच्चि रामुन किच्चेन्
रेवति यनियेडु कन्यनु
भूवर ! मुनु विटि कादे वुद्धि देलियन् ॥ 1677 ॥

व. तदनंतरंबुन ॥ 1678 ॥

म. खगनाथुंडमरेंद्रु गेलिचि सुध मुन् गैकोन्न चंदंबुनन्
जगतीनाथुल जैद्य पक्षचरुलन् साळ्वादुलं गेलिचि भ-
द्रगुडै चक्रि वरिंचे भीष्मक सूतन् राजीवगंधिन् रमा-
भगवत्यंशभवन् महागुणमणिन् बालामणिन् रुक्मिणिन् ॥ 1679 ॥

व. अनिन राजिट्लनियें। मुन्नु राक्षस विवाहंबुन स्वयंवरंबुनकु वच्चि, हरि रुक्मिणि गोनिपोयें ननि पलिकितिवि। कृष्णुंडोक्करुंडेव्विधंबुन साळ्वादुलं जयिंचि तन पुरंबुनकुं जनियें। अदियुनुं गाक ॥ 1680 ॥

शा. कल्याणात्मकमैन विष्णुकथलाकर्णिपुचुन् मुक्त वै-
कल्युंडेव्वडु तृप्तुडौ, नवि विनंगा ग्रोत्तलौचुंडु सा-

रुक्मिणी-कल्याण (विवाह)-कथा का प्रारंभ

[कं.] हे भूपाल ! तुमने इसके पहले ही सुना और जान लिया था कि ब्रह्मदेव की आज्ञा से रैवत नामक राजा ने अपनी कन्या रेवती को लाकर बलराम को [विवाह में] दिया था। १६७७ [व.] उसके अनंतर··· १६७८ [म.] जिस प्रकार पूर्व में खगनाथ (गरुड़) अमरेंद्र (इंद्र) को जीतकर अमृत ले गया था, उसी प्रकार चक्रि (कृष्ण) ने शिशुपाल के पक्ष में आये हुए साल्व आदि राजाओं को हराकर भद्रता के साथ भीष्मक-पुत्री रुक्मिणी को, जो कि कमलगंधी, महागुणमणि, बालामणि और लक्ष्मी के अंश से जन्मी थी, ले जाकर विवाह कर लिया। १६७९ [व.] यह सुन राजा (परीक्षित) ने यों कहा— "तुमने पहले कहा था कि स्वयंवर में आकर कृष्ण रुक्मिणी को राक्षस-विवाह की रीति से [पकड़] ले गया था; [अब यह बताओ] सो कृष्ण अकेला किस प्रकार साल्वादि को जीतकर अपनी नगरी पहुँच गया ? इसके अतिरिक्त··· १६८० [शा.] विष्णु की कथाएँ कल्याणात्मक (शुभप्रद) हैं; विकलता-रहित होकर कोई भी पुरुष उन्हें सुनकर तृप्त नहीं होता; बार-बार सुनने पर भी वे कथाएँ नयी ही लगती है; हे भूसुरोत्तम (ब्राह्मणोत्तम) ! मेरे मन मे रुक्मिणी-कल्याण (-विवाह) [की कथा] सुनने का कुतूहल जागा है,

कल्यं वेर्पड भूसुरोत्तम ! यॅट्लुंगं बल्कवे रुक्मिणी
कल्याणंबु विनंग नाकु मदिलो गौतूहलंबय्यॅडिन् ॥ 1681 ॥

कं. भूषणमुलु सॅवुलकु बुध
तोषणमुलनेक जन्म दुरितौघ विनि-
श्शोषणमुलु मंगळतर
घोषणमुलु गरुडगमनु गुण भाषणमुल् ॥ 1682 ॥

व. अनि राजडिगिन शुकुंडिट्लनियॅ ॥ 1683 ॥

चं. विनुमु विदर्भ देशमुन वीरडु कुंडिन भर्त भीष्मकुं-
डनु नॉक दॉड्ड राजु गलडातनि केवुरु पुत्रु लग्रजुं
दनघुडु रुक्मि ना बरगु नंदरकुं गडगॉट्टु चॅल्लॅले
मनुजवरेण्य ! पुट्टॅ नॉक मानिनि रुक्मिणि ना बसिद्धयै ॥ 1684 ॥

कं. बालेंदु रेख दोचिन
लालितयगु नपर दिक्कु लागुन धरणी-
पालुनि गेहमु मॅरसॅनु
बालिक जन्मिंचि यॅवुग भासुरमगुचुन् ॥ 1685 ॥

व. मरियुनु, दिनदिन प्रवर्धमानयै ॥ 1686 ॥

सी. पेर्वेर बॉम्मल पॅंड्लिड्लु सेयुचु नबललतोड वियंबुलंदु
गुज्जनगूळ्ळनु गोमरॉप्प वंडिचि चॅलुलकु बॅट्टुचु जॅलुवु मॅरय

[अतः] उसे आद्यंत स्पष्ट समझाकर सुनाओ। १६८१ [कं.] गरुड़-गमन (विष्णु) के गुणगान कानों के लिए भूषण (अलंकार) बनते हैं, बुद्धिमानों को संतोष-प्रद है, अनेक जन्मों में संचित पापपुंज को सुखाने (नष्ट करने) वाले हैं, और मंगल की घोषणा करनेवाले है।" १६८२ [व.] यों राजा के पूछने पर शुक ने इस तरह कहा : १६८३ [चं.] "सुनो; विदर्भ देश में, कुंडिन-नगर-पति भीष्मक नामक एक प्रसिद्ध राजा राज करता था, उसके पाँच पुत्र थे, उनमें अग्रज (ज्येष्ठ) जो पुण्यवान् था, रुक्मि कहलाता था, हे मानवोत्तम ! उन सबकी कनिष्ठ भगिनी होकर एक कन्या उत्पन्न हुई जो रुक्मिणी नाम से प्रसिद्ध हुई। १६८४ [कं.] बाल-इन्दु (चंद्र) रेखा के उदय से पूर्व दिशा जिस प्रकार शोभित होती है, उसी प्रकार, धरणीपाल (राजा) का घर उस बालिका के जन्म के कारण प्रकाश से चमक उठा। १६८५ [व.] और [वह कुमारी] दिन-दिन प्रवर्धमान होकर… १६८६ [सी.] तरह-तरह से गुड़ियों का ब्याह रचकर [खेलाड़ी] बालिकाओं के साथ सामध रचती, (वैवाहिक संबंध जोड़ती); बालक्रीड़ाओं में तरह-तरह के पकवान

रमणीय मंदिराराम देशंबुल बुव्वुदीगॅलकुनु ब्रोवि सेयु
सदमल मणिमय सौधभागंबुल लोलतो भर्मडोलिकल नूगु

ते. बालिकलतोड जॅलरेगि बंतुलाडु
शारिका कीर पंक्तिकि जदुवुचॅप्पु
बर्हिसंघमुलकु मुरिपमुलु गरपु
मदमराळंबुलकु जूपु मंदगतुलु ॥ 1687 ॥

व. अंत ॥ 1688 ॥

सी. देवकी सुतुकोर्कॅ तीगॅलु वीडंग वॅलदिकि मैदीगॅ वीड वॉणगॅ
गमलनाभुनि चित्तकमलंबु विकसिप गांति नितिकि मुखकमल मॉप्पॅ
मधुविरोधिकि लोन मदनाग्नि वॅडचूप बॅलतिकि जनुदोयि पॅडवसूपॅ
शौरिकि धैर्यंबु सन्नमैडय्यंग जलजाक्षि मध्यंबु सन्नमय्यॅ

आ. हरिकि प्रेमबंधमधिकंबुगा गेश-
बंध मधिक मगुचु बाल कमरॅ
बप्रनयनु वलन प्रमदंबु निंडार
नलत यौवनंबु निंडियुंड ॥ 1689 ॥

व. इट्लु रुक्मि, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्ममालियनु नेवुरकुं जॅलिय-
लैन रुक्मिणीदेवि दन यॅलप्रायंबुन ॥ 1690 ॥

बनवाकर सखियों को प्रेमपूर्वक जेंवाती, राजभवन के बगीचों में पुष्पलताओं को पोसती; स्वच्छ मणिमय सौधों के अन्दर सुवर्ण डोलिकाओं में चपलता से झूलती; [ते.] अन्य वालिकाओं के साथ उल्लासपूर्वक गेंद खेलती; शारिका (मैना) और कीर (तोता) पक्षियों को पाठ पढ़ाती; बर्हि-संघ (मोरों के झुंड) को सुकुमार चाल बताती। १६८७ [व.] अनंतर १६८८ [सी.] [इधर] देवकी-सुत (-कृष्ण) के मन में अभिलाषा पल्लवित होती गयी तो [इधर] बाला की देह-लता लहलहाने (बढ़ने) लगी; [उधर] कमलनाभ (कृष्ण) का चित्तकमल विकसित हुआ तो [इधर] स्त्री (रुक्मिणी) के मुखकमल पर कांति बढ़ गई; [इधर] शौरि (-कृष्ण) का धैर्य पतला पड़कर क्षीण होने लगा तो [इधर] जलजाक्षि (कमलनयनी रुक्मिणी) की कमर पतली पड़ती गयी; [आ.] [उधर] हरि का प्रेम-बंधन दृढ़ बनता गया तो [इधर] बाला का केशबंध (जूड़ा) बढ़कर बड़ा होने लगा; जैसे-जैसे पद्मनयन (-कृष्ण) का प्रमद (मस्ती) पूर्ण होता गया, वैसे-वैसे इस वनिता का यौवन परिपूर्ण बनता गया। १६८९ [व.] इस प्रकार रुक्मि, रुक्मरथ, रुक्मवाहु, रुक्मकेश, रुक्ममाली नामक उन पाँच भ्राताओं की छोटी बहिन रुक्मिणी देवी ने अपनी तरुण-वय के समय

कं. तन तंड्रि गेहमुनकुं
जनुदेंचुचुन्न यतिथिजनुलवलन गृ-
ष्णुनि रूप बल गुणादुलु
विनि कृष्णुड् दनकु दगिन विभुडनि तलचेंन् ॥ 1691 ॥

कं. आ ललन रूपु बुद्धियु
शीलमु लक्षणमु गुणमु जिंतिंचि तगन्
बालारत्नमु दन कि-
ल्लालुग जेकोंदुननुचु हरियुं दलचेंन् ॥ 1692 ॥

व. अंत ॥ 1693 ॥

उ. बंधुवुलॆल्ल गृष्णुनकु बालिक निच्चॆदमंचु शेमुषी-
सिंधुवुलै विचारमुलु सेयग वारल नड्डपॆट्टि दु-
स्संधुडु रुक्मि कृष्णुनॆड जाल विरोधमु जेसि मत्त पु-
ष्पंधयवेणि निच्चु शिशुपालुनकंचु दलंचॆ नंधुडै ॥ 1694 ॥

उ. अन्न तलंपु दा नॆरिगि यन्नवनीरजगंधि लोन ना-
पन्नत नोंदि याप्तुडगु ब्राह्मणु नॊक्कनि जीरि गर्वसं-
छन्नुडु रुक्मि नेडु ननु जेद्युनकिच्चॆद नंचुनुन्न वा-
डॆन्निविधंबुलं जनि बुधेश्वर! चक्रिकि विन्नविंपवे! ॥ 1695 ॥

कं. अय्या! कॊडुकु विचारमु-
लय्ययु वारिंप जालडट्टु काकुंडन्

में··· १६९० [कं.] अपने पितृगृह में आनेवाले अतिथिजनों से कृष्ण के रूप-बल-गुण आदि का वर्णन सुनकर कृष्ण को ही अपने लिए योग्य पति मान लिया। १६९१ [कं.] उस ललना के रूप, बुद्धि, शील, लक्षण और गुणों का भलीभाँति विचार करके [उधर] हरि ने भी सोचा कि इस बालारत्न को अपनी गृहिणी बनाऊँगा। १६९२ [व.] तत्पश्चात् १६९३ [उ.] सागर-समान गंभीर बुद्धिवाले [भीष्मक के] सब बंधु-बांधवों ने चाहा कि [यह] बालिका (रुक्मिणी) कृष्ण को दी जाय, किन्तु दुर्मति रुक्मि ने अड़ंगा लगा दिया, कृष्ण के प्रति विरोध-भाव रखने के कारण अंधा बन, उसने चाहा कि वह मस्त अलिवेणी (रुक्मिणी) शिशुपाल से ब्याही जाय। १६९४ [उ.] अपने भाई की इच्छा जानकर वह नवनीरजगंधी (टटके खिले कमल की गंधवाली) रुक्मिणी मन में व्यथित हुई; उसने एक आप्त (विश्वसनीय) ब्राह्मण को बुलाकर कहा— "हे बुधेश्वर (श्रेष्ठ बुद्धिमान्)! किसी भी प्रकार से जाकर चक्रि (कृष्ण) से निवेदन कीजिए कि गर्वसंछन्न (घमंड से घिरा हुआ) रुक्मि अब मुझे चैद्य (शिशुपाल) को देने की कह रहा है। १६९५ [कं.] हे आर्य! पुत्र का विचार (इच्छा) पिता भी रोक

नॆय्यमॆर्रिगिंचि चीरुमु
चय्यन निज सेवकानुसारिन् शौरिन् ॥ 1696 ॥

व. अनि कॊन्नि रहस्यवचनंबुलु सॆप्पिन विनि ब्राह्मणुंडु द्वारकानगरंबुनकुं जनि, प्रतिहारुलवलन दन राक नॆर्रिंगिंचि, यन्नगधरुंडुन्न नगरुं ब्रवेशिंचि, यंदु गनकासनासीनुंडै युन्न पुरुषोत्तमुं गांचि, पॆंड्लि कॊडुकवु गम्मनि दीविंचिन, मुसिमुसिनगवुलु नगुचु, ब्रह्मण्यदेवुंडैन हरि, तन गद्दिय दिग्गन डिगि, ब्राह्मणुं गूर्चुंड नियोगिंचि, तनकु देवतलु सेयु चंदंबुनं बूजलु सेसि, सरस पदार्थसंपन्नंबैन यन्नंबु पॆट्टिंचि, रॆट्टिंचिन प्रियंबुन नयंबुन भासुरुंडैन भूसुरुं जेरि, लोकरक्षण प्रशस्तंबैन हस्तंबुन नतनि यडुगुलु पुडुकुचु, मॆल्लन नतनिकिट्लनियॆ ॥ 1697 ॥

सी. जगतीसुरेश्वर ! संतोषचित्तुंडवैनुन्न नी धम मतिसुलभमु
वृद्धसम्मतमिदि वित्तमॆय्यदियैन ब्रापिप हर्षिंचु ब्राह्मणुंडु
तन धर्ममुन नुंडु दरलडा धर्मंबु गोरिकलतनिकि गुरियुचुंडु
संतोषि गाडेनि शक्रुंडैन नशिंचु निर्धनुंडयिननु निद्र बोलु

नहीं सकता; [अतः] ऐसा कीजिए कि भाई की इच्छा कार्यान्वित न हो; अपने सेवकों का अनुसरण करनेवाले शौरि (कृष्ण) को [उनके प्रति] मेरा स्नेह बताकर उन्हें तुरन्त बुला लाइये।" १६९६ [व.] यों कहने के बाद उसने [ब्राह्मण को] कुछ रहस्य वचन बता दिये; उन्हें सुनकर ब्राह्मण ने द्वारकानगर पहुँच, प्रतिहारों द्वारा अपना आगमन सूचित किया। फिर उस नगधर (गोवर्धनधारी) के महल में प्रवेश कर, उसमें कनकासन (सुवर्णपीठ) पर आसीन पुरुषोत्तम को देख आशीर्वाद दिया कि (शीघ्र) दूल्हा बन जाओ। इस पर मुस्कराते हुए उस ब्रह्मण्य देव हरि ने, तुरन्त गद्दी से उतर कर ब्राह्मण को बिठाने की आज्ञा सुनाई। फिर, देवता जिस प्रकार अपनी पूजा करते है, उसी प्रकार उसने उस ब्राह्मण का पूजन किया। अनन्तर सरस-पदार्थ-संपन्न अन्न (भोजन) खिलाया और दुगुने प्रेम और विनय के साथ उस भासुर (प्रकाशमान) भूसुर के पास पहुँचकर अपने लोकरक्षण में प्रशस्त हस्तों (हाथों) से उसके पैर सहलाते हुए धीरे-धीरे यो कहा : १६९७ [सी.] "हे भूसुरेश्वर (ब्राह्मण देवता) ! संतोषचित्त होने पर तुम्हारा धर्म (कर्तव्य कर्म) अत्यंत सुलभ हो जाता है; ब्राह्मण को जो कुछ वित्त मिले उसी से वह हर्षित (संतुष्ट) हो जाता है, यही वृद्धसम्मत रीति है। वह अपने धर्म में स्थिर रहता है, उससे टलता नहीं। [जो यथालाभसंतोषी है] उसकी इच्छाएँ सब भरपूर सफल हो जाती है। [आ.] जो [प्राप्त धन से] संतोष

आ. संतसिच्चेनेनि सर्वभूत सुहृत्त-
मुलकु आप्तलाभ मुदितधान-
सुलकु शांतुलकुनु सुजनुलकुनु गर्व-
हीनुलकुनु विनतुले नोनर्तु ॥ 1698 ॥

उ. ऎव्वनि देशमंदुनिकि यॆव्वनिचे गुशलंबु गल्गु मी-
कॆव्वनि राज्यमंदु ब्रजलॆल्ल सुखितुरु वाडु मत्प्रियुं-
डिब्बनराशिदुर्गमुन कॆट्लरुदेंचितिवय्य ! नीवु ले
नव्वुलु गावु नी तलपुनं गल मेलॊनर्तु धीमणी ! ॥ 1699 ॥

व. अनि यिट्लु लीला गृहीतशरीरुंडैन यप्परमेश्वरुंडडिगिन, धरणीसुरवरु-
डतनिकिट्लनियॆ । देवा ! विदर्भ देशाधीश्वरुंडगु भीष्मकुंडनु राजु
गलंडु । आ राजुकूतुरु रुक्मिणियनु कन्यकामणि गलदु । अयिंदुवदन
नीकुं गैंकर्यंबु सेयं गोरि, विवाहमंगळ प्रशस्तंबैन यीपक संदेशंबु विन्नविंपु-
मनि पुत्तेंचॆ । अवधरिंपुमु ॥ 1700 ॥

सी. ए नी गुणमुलु कर्णेंद्रियंबुलु सोक देहतापंबुलु वीड्रिपोवु
ने नी शुभाकार मीक्षिप गन्नुल कखिलार्थलाभंबु गलुगुचुंडु
ने नी चरणसेवले प्रोद्दु चेसिन भुवनोन्नतत्वंबु बोंदगलुगु
ने नीलसन्नाममे प्रोद्दु भक्तितो दडविन बंधसंततुलु वापु

नहीं कर लेता वह इन्द्र होने पर भी विनष्ट होता है, और संतुष्ट रहनेवाला यदि निर्धन हो तो भी इंद्र-सम [भाग्यवान] हो जाता है। समस्त भूतों के साथ मैत्री करनेवालों को, प्राप्त लाभ से मन में हर्षित होनेवालों को, शांत पुरुषों को, सज्जनों को, गर्वहीनों को मैं नमस्कार करता हूँ। १६९८ [उ.] हे धीमणि (श्रेष्ठ-बुद्धिमान) ! तुम किस [राजा] के देश मे रहते हो ? तुम्हारा कुशल-क्षेम किसके हाथ हो रहा है ? जिसके राज्य में प्रजा सुखी रहती है वह मेरे लिए प्रिय है। हे आर्य ! तुम इस समुद्र से घिरे हुए दुर्ग में कैसे आ गये हो, मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ, तुम जो लाभ प्राप्त करना चाहते हो, वह [अवश्य] दूंगा, बताओ।" १६९९ [व.] इस तरह, उस लीला-गृहीत-शरीर वाले परमेश्वर (कृष्ण) के पूछने पर धरणीसुरवर (ब्राह्मणश्रेष्ठ) ने यों कहा : "हे देव ! भीष्मक नामक एक राजा है जो विदर्भ देश का अधिपति है, रुक्मिणी नाम से एक कन्यकामणि उसकी पुत्री है, उस इंदुवदना (चंद्रमुखी) ने तुम्हारे कैंकर्य (सेवा) करने की अभिलाषा रखकर मंगलमय वैवाहिक संदेश तुम्हें सुनाने के निमित्त मुझे भेजा है; ध्यान से सुनो : १७०० [सी.] "तुम्हारे गुणकथन का स्पर्श कर्णेन्द्रियों को होते ही देह का ताप दूर हो जाता है, तुम्हारा शुभाकार (भव्यरूप) नेत्रों से देखते ही अखिल मनोरथों की पूर्ति होती है, तुम्हारी

ते. नट्टि नी यंदु ना चित्तमनवरतमु
नच्चियुन्नदि नी यान नानलेदु
करुण जूडुमु कंसारि ! खलविदारि !
श्रीयुताकार ! मानिनीचित्तचोर ! ॥ 1701 ॥

शा. धन्युन् लोकमनोभिरामु गुल विद्यारूप तारुण्य सौ-
जन्य श्रीबल दान शौर्य करुणा संशोभितुन् निन्नु ने
कन्यल् गोररु ? कोरदे मुनु रमा कांताललामंबु रा-
जन्यानेकपसिंह ! नावलन ने जन्मिचेने मोहमुल् ॥ 1702 ॥

उ. श्रीयुतमूर्ति ! यो पुरुषसिंहम ! सिंहमु पालि सॊम्मु गो-
मायुवु गोरुचंदमुन मत्तुडु चैद्युडु नी पदांबुज-
ध्यायिनियैन नन्नु वडि दा गॊनिपोयॆदनंचुनुन्न वा-
डा यधमाधमुंडॆरुगडद्भुतमैन भवत्प्रतापमुल् ॥ 1703 ॥

म. व्रतमुल् देव गुरु द्विजन्म बुध सेवल् दानधर्मादुलुन्
गतजन्मंबुल नीश्वरुन् हरि जगत्कल्याणु गांक्षिचि चे-

सेवा सदा करने पर लोक में उन्नत पद प्राप्त होता है, तुम्हारे सुंदर नाम का सब दिन उच्चारण करने पर संसार के बंधनों की परंपरा छूट जाती है, ऐसे [देव] हो तुम । [ते.] मेरा चित्त अनवरत (हमेशा) तुममें ही लगा रहता है, तुम्हारी सौगंध; यह मैं लज्जा छोड़ कह रही हूँ । हे कंसारि (कंस के शत्रु) ! खलविदारी (दुष्टसंहारक) ! हे श्रीयुताकारी (लक्ष्मीसंपन्न आकारवाले) ! हे मानिनी-चित्त-चोर (युवती-चित्त-हारी) ! मुझे कृपा [दृष्टि] से देखो । १७०१ [शा.] तुम धन्य हो, लोक-मनोभिराम (लोगों को आनंद देनेवाले) हो, कुल, विद्या, रूप, तारुण्य (यौवन), सौजन्य, लक्ष्मी, बल, दानशीलता, शौर्य तथा करुणा से सुशोभित हो । ऐसे तुमको कौन-सी कन्या नहीं चाहेगी ? इसी कारण से तो पूर्व में कांताललाम (स्त्रीरत्न)-लक्ष्मीदेवी ने तुम्हें वरण किया था । हे राजा रूपी गजों के लिए सिंह-समान वीर ! तुम्हारे प्रति मोह (प्रेम) केवल मुझ अकेली ही में नहीं है । १७०२ [उ.] हे लक्ष्मीसम्पन्न मूर्ति ! हे पुरुषसिंह ! जिस प्रकार सिंह को प्राप्य धन (आहार) गीदड़ ले जाना चाहेगा, उसी प्रकार मदमत्त चैद्य (शिशुपाल) तुम्हारे चरण-कमल-ध्यायिनी (ध्यान करनेवाली) मुझे शीघ्र ही ले जाना चाह रहा है, तुम्हारा अद्भुत प्रताप वह अधमाधम क्या जाने ! १७०३ [म.] जगत्-कल्याण-कारी, ईश्वर, हरि (को पाने) की अभिलाषा से पिछले जन्मों में यदि मैंने देव, गुरु, ब्राह्मण और ज्ञानियों की सेवाएँ की हों, व्रत साधे हों, तथा दान-धर्म आदि (सत्कर्म) किये हों तो वसुदेव-नंदन मेरा हृदयेश्वर हो जाय !

लितिनेनिन् वसुदेवनंदनुड् ना वित्तेशुडौगाक नि-
र्जितुलॅ पोदुरु गाक संगरमुलो जेधीशमुख्याधमुल् ॥ 1704 ॥

उ. अंकिलि सॅप्पलेदु चतुरंग वलंबुलतोड नॅलिल यो
पंकजनाभ ! नीवु शिशुपाल जरासुतुलन् जयिंचि ना
वंककु वच्चि राक्षसविवाहमुनन् भवदीय शौर्यमे
युंकुव सेसि कृष्ण ! पुरुषोत्तम ! चेकौनि पोम्मु वच्चॅदन् ॥ 1705 ॥

सी. लोपलि सौधंबुलोन वर्तिपंग वे वच्चुने निन्नु वॅलुनेनि
गावलिवारल गल वंधुवुल जंपि कानि तेरादनि कमलनयन !
भाविंचितेनि नुपायवु चॅप्पंद नालिपु कुलदेवयात्र जेसि
नगरंबु वॅलुवडि नगजातकुनु म्रौक्क वॅंड्लिकि मुनुपड वॅंड्लिकूतु

तॆ. नॅलमि मावारु पंपुदुरेनु नट्लु
पुरमु वॅलुवडि येतॅंचि भूतनाथ-
सतिकि म्रौक्कंग नीवु ना समयमुनकु
वच्चि कौनिपोम्मु नन्नु नवार्यचरित ! ॥ 1706 ॥

म. घनुलात्मीय तमोनिवृत्ति कौरकै गौरीशुमर्याद नॅ-
व्वनि पादांबुज तोयमंदु मुनुगन् वांछितुरे नट्टि नी
यनुकंपन् विलसिपनैनि व्रतचर्यन् नूरु जन्मंबुलन्
नितु र्जितिचुचु प्राणमुल् विडिचॅदन् निक्कंबु प्राणेश्वरा ! ॥ 1707 ॥

शिशुपाल आदि अधम (नीच) राजा लोग युद्ध में निर्जित हो जायें (हार जायें) ! १७०४ [उ.] हे पंकजनाभ (कमलनाभ) ! कल तुम चतुरग बल (सेना) सहित आकर, शिशुपाल, जरासंध आदि को जीतकर मेरे पास आओ; हे पुरुषोत्तम, हे कृष्ण ! अपना शौर्य रूपी शुल्क देकर राक्षस-विवाह में मुझे ले जाओ, मैं साथ चलूंगी, इनकार नहीं करूंगी। १७०५ [सी.] हे कमलनयन ! यदि तुम यह भावना करो कि पहरेवालों और अन्य बन्धुओं को बिना मारे महल के भीतर रहनेवाली तुम्हें मैं किस प्रकार ले आऊँ, तो, मैं इसका उपाय बताती हूं, सुनो, मेरे [परिवार के] लोग विवाह के पूर्व [दिन] मुझ दुलहिन को कुलदेव की यात्रा में पार्वती की आराधना करने के लिए नगर के बाहर भेजेंगे। [ते.] वैसे मैं पुर (नगर) से बाहर निकलकर जब भूतनाथसती (पार्वती) की प्रार्थना करती रहूंगी तब, हे अनिवार्य-चरितवाले कृष्ण ! तुम समय पर आकर मुझे ले चलो। १७०६ [म.] बड़े लोग भी अपने तमोगुण (अज्ञान) की निवृत्ति के लिए गौरीपति शिवजी की भाँति तुम्हारे चरण-कमल से निर्गत-तोय (गंगाजल) मे डुबकी लगाने की वांछा करते है, ऐसे महान देव तुम्हारी अनुकंपा (दया) से यदि मै विलसित न हुई तो अगले सौ जन्मों में तुम्हारा चिंतन करते हुए

सी. प्राणेश ! नी मंजुभाषलु विन लेनि कर्णरंध्रंबुल कलिमि येल
पुरुषरत्नम ! नीवु भोगिंपगा लेनि तनुलतवलनि सौंदर्यमेल
भुवनमोहन ! निन्नु बॉडगानगालेनि चक्षुरिंद्रियमुल सत्वमेल
दयित ! नी यधरामृतं बानगा लेनि जिह्वकु फलरससिद्धि येल

आ. नीरजातनयन ! नी वनमालिका-
गंध मब्बलेनि घ्राणमेल
धन्यचरित ! नीकु दास्यंबु सेयनि
जन्मसेल यॅन्नि जन्ममुलकु ॥ 1708 ॥

व. अनि यिट्लु रुक्मिणीदेवि पुत्तॅंचिन संदेशंबुनु, रूपसौंदर्यातिविशेषंबुलुनु, ब्राह्मणुंडु हरिकि विन्नविंचि, कर्तव्यंबॅद्दि सेय नवधरिंपुमनि, सवरणगा निट्लनियॅ ॥ 1709 ॥

सी. पल्लव वैभवास्पदमुलु पदमुलु कनकरंभा तिरस्कारुलूरु-
लरुण प्रभा मनोहरमुलु करमुलु कंबु सौंदर्य मंगळमु गळमु
महित भावाभाव मध्यंबु मध्यंबु चक्षुरुत्सवदायि चन्नुदोयि
परिहसिताब्धेंदु पटलंबु निटलंबु जित मत्त मधुकर श्रेणि वेणि

व्रताचरण द्वारा मैं अपने प्राण तज दूंगी। हे प्राणेश्वर ! यह मेरा निश्चय है। १७०७ [सी.] हे प्राणनाथ! उन कर्णरंध्रों (कानों) का अस्तित्व ही व्यर्थ है जो तुम्हारे मंजुभाषण (मधुर वचन) सुन नही पाते; हे पुरुषरत्न ! उस तनुलता (शरीर) का सौंदर्य व्यर्थ है जिसका उपभोग तुम नही कर सकते; हे भुवनमोहन ! उन चक्षुरिंद्रियों (नेत्रों) के रहने से क्या लाभ है जो तुम्हारा दर्शन नहीं कर पातीं; हे स्वामी ! उस जिह्वा (जीभ) को फलरस रुचेगा कैसे जो तुम्हारे अधरामृत का पान नहीं करती; [आ.] हे नीरजातनयन (कमललोचन) ! वह घ्राण (नाक) रहे ही क्यों जिसे तुम्हारी वनमालिका की सुगंध (सौरभ) प्राप्त न हो। हे धन्य चरित्रवान ! [चाहे अनेकों जन्म क्यों न ले] मनुष्य का हर जन्म व्यर्थ जाता है यदि वह तुम्हारा दास्य (सेवा) न करे।" १७०८ [व.] इस प्रकार ब्राह्मण ने हरि को रुक्मिणी देवी के भेजे संदेश के साथ-साथ उसके रूप, सौंदर्य आदि विशेषताओं का भी निवेदन किया, फिर उससे कर्तव्य पर ध्यान देने को कहा। [अन्त में] परिष्कार के रूप में यों सुनाया : १७०९ [सी.] "[रुक्मिणी के] चरण [ललित]-पल्लवों (कोंपलों) के समान सौंदर्य के आस्पद (स्थान) हैं; उसके ऊरु (जाँघें) कनक-रंभाओं (सुवर्ण-कदली-स्तंभों) का तिरस्कार करते हैं; उसके हाथ अरुणप्रभा (लाल कांति) के समान मनोहर हैं; उसका कंठ शंख की सुंदरता लिये मंगलप्रद है; उसकी कमर भावाभाव के मध्य मे (है या नहीं है के बीच में अर्थात् पतली) है;

आ. भावजाशुगमुल प्रापुलु चूपुलु
कुसुमशरुनि विंटि कॊनलु बॊमलु
चित्ततोषणमुलु चॆलुव भाषणमुलु
जलजनयनमुखमु चंद्रसखमु ॥ 1710 ॥

उ. आ यॆलनाग नीकु दगु नंगनकुं दगुदीवु मा युपा-
ध्यायुल यान पॆंड्लियगु दप्पदु जाड्यमु लेल नीवु नी
तोयमुवारु गूडुकॊनि तोयरुहानन दॆत्तुगानि वि-
च्चेयुमु शत्रुलन् नुरुमु सेयुमु सेयुमु शोभनंबिलन् ॥ 1711 ॥

अध्यायमु—५३

व. अनि यिट्लु पलिकि, ब्राह्मणुनिवलन विदर्भराजतनय पुत्तॆंचिन संदेशंबुनु, रूप सौंदर्यादि विशेषंबुलुनु विनि, यवधरिंचि, निजकरंबुन नतनि करंबु वट्टि नगुचु, नय्यादवेंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 1712 ॥

चं. कन्निय मीद ना तलपु गाढमु कूरकुराडु रेयि ना
कॆन्नडु ना विवाहमु सहिंपक रुक्मि तलंचु कीडु ने

उसका स्तनद्वय नेत्रोत्सव करनेवाला (आनन्ददायी) है; उसका निटल (माथा) अर्धचंद्र मंडल-सा है; उसकी वेणी (चोटी) मत्त-मधुकर-श्रेणी को (भौरों की पंक्ति को) जीतनेवाली है; [आ.] उसकी चितवनें कामदेव के बाणों के आश्रय है; उसकी भौंहें कुसुमशर (मन्मथ) के धनुष के सिरे (अग्रभाग, नोक) हैं; उस रमणी के भाषण (बातें) चित्ततोषण (चित्त को संतोष देनेवाले) हैं, उस जलजनयनी (कमलाक्षी) का मुख चंद्र-सखा है। १७१० [उ.] मैं अपने गुरु की सौगंध खाकर कह रहा हूँ; वह कोमली तुम्हारे लिए योग्य (बराबरी की) है, और तुम उस अंगना से समता रखते हो। तुम दोनों में विवाह अवश्य होगा, टलेगा नहीं, अब देरी क्यों करते हो ? अपने साथियों को लेकर आओ, और उस कमल-मुखी को ले जाओ। पधारकर शत्रुओं को पीस डालो, जगत् का कल्याण करो।" १७११

अध्याय—५३

[व.] [ब्राह्मण के] यों कहने के पश्चात् यादवेंद्र (कृष्ण ने, ब्राह्मण द्वारा विदर्भराजपुत्री का भिजवाया संदेशा तथा उसके रूप-सौंदर्यादि विशेषताएँ सुनकर, ध्यान से सोचकर, अपने हाथ से ब्राह्मण का हाथ पकड़, हँसते हुए यों कहा : १७१२ [चं.] "उस कन्या पर मेरा प्रेम प्रगाढ़

मुन्नॆ यॆऱुंगुदुन् बरुलमूकलडंचि कुमारि दॆत्तु वि-
द्वन्नुत ! मानु द्रचिच नववह्निनशिखन् वडि दॆच्चु कैवडिन् ॥ 1713 ॥

कं. वच्चॆद विदर्भ भूमिकि
जॊच्चॆद भीष्मकुनि पुरमु सुरुचिरलीलन्
दच्चॆद बालन् द्रॆल्मिडि
व्रच्चॆद नड्डंबु रिपुलु वच्चिन बोरन् ॥ 1714 ॥

व. अनि पलिकि, रुक्मिणी देवि पॆंड्लि नक्षत्रंबु दॆलिसि, तनपंपुन रथसारथि-
येन दारकुंडु शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प वलाहकंबुलनु तुरंगंबुल गट्टि, रथ-
मायत्तंबु चेसि तॆच्चिन, नमोघ मनोरथुंडैन हरि तानुनु, ब्राह्मणुंडुनु,
रथारोहणंबु चेसि, येकरात्रंबुन नानर्तक देशंबुलु गडचि, विदर्भ देशंबुनकुं
जनियॆ। अंदु गुंडिन पुरीश्वरुंडैन भीष्मकुंडु कॊडुकुनकु वशुंडै, कूतु
शिशुपालुनकित्तुननि तलंचि, शोभनोद्योगंबु सेयिंचॆ। अप्पुडु ॥ 1715 ॥

सी. रच्चलु ग्रंतलु राजमार्गंबुलु विपणिदेशंबुलु विशदमुलुग
जेसिरि चंदनसिक्त तोयंबुलु गलयंग जल्लिरि कलुवडमुलु
रमणीय विविधतोरणमुलु गट्टिरि सकल गृहंबुलु सक्क जेसि
कर्पूर कुंकुमागरु धूपमुलु वॆट्टिरतिवलु पुरुषुलु नन्नियॆडल

(घनिष्ठ) है, [इस कारण] मुझे रात भर नींद नहीं आ रही, [उसके साथ] मेरा विवाह होना रुक्मि को सह्य नहीं है, मैं पहले ही से जानता हूँ कि वह मेरा बुरा चाह रहा है; हे विद्वन्नुत (विद्वानों से प्रशंसित) ब्राह्मण ! इंधन को मथकर उसमें से जैसे अग्निशिखा निकाली जाती है वैसे ही मैं शत्रुदल को नष्ट करके उस कुमारी को ले आऊँगा। १७१३ [कं.] विदर्भ भूमि (राज्य) में आऊँगा, शान (प्रतिष्ठा) के साथ भीष्मक के नगर में प्रवेश करूँगा, शत्रु यदि रुकावट डालें तो रण में उन्हें फोड़ दूँगा और चुटकी में उस बाला (रुक्मिणी) को ले आऊँगा।" १७१४ [व.] यों कहकर, रुक्मिणीदेवी का विवाह-नक्षत्र [जो निश्चित हुआ हो] जान लिया। फिर अपनी आज्ञा से दारक नामक सारथी, शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, और वलाहक नामक घोड़े जोतकर जो रथ तैयार कर लाया, उस पर अमोघ (सफल) मनोरथ कृष्ण ब्राह्मण को भी लेकर आरूढ़ हुआ। एक रात चलकर, आनर्तक देश पार करता हुआ कृष्ण विदर्भ देश में पहुँच गया। उसमें कुंडिनपुरीश्वर भीष्मक ने अपने पुत्र के वशवर्ती होकर, अपनी कन्या शिशुपाल को देने के विचार से शुभ विवाह की तैयारियाँ कर रखीं। तब १७१५ [सी.] वीथियाँ, गली-कूचे, राजमार्ग, विपणि प्रदेश (हाट-बाजार) विशद (स्वच्छ) बनाये गये; चंदन घोलकर पानी छिड़का गया;

आ. विविध वस्त्रमुलुनु विविध माल्याभर-
णानुलेपनमुल नमरियुंडि-
रखिल वाद्यमुलु महाप्रीति म्रोयिचि-
रुत्सवमुन नगरमॉप्पियुंडे ॥ 1716 ॥

व. अंत ना भीष्मकुंडु विहित प्रकारंबुलं पितृदेवतल नर्चिचि, ब्राह्मणुलकु भोजनंबुलु वॅट्टिचि, मंगळाशीर्वचनंबुलु सदिविचि, रुक्मिणीदेवि नभिषिक्तं जेसि, वस्त्र युगळ भूषितं गाविचि, रत्नभूषणंबुलिडि, ऋग्यजुस्साममंत्रंबुल मंगळाचारंबु लॉनरिचि, भूसुरुलु रक्षाकरणंबुलाचरिंचिरि। पुरोहितुंडु ग्रहशांति कॉरकु निगमनिगदित न्यायंबुन होमंबु गाविचॅ। मरियु ना राजु दंपतुल मेलु कॉरकु तिलधेनु कलधौत कनक चेलादि दानंबुलु धरणी देवतल कॉसंगॅ। अय्यवसरंबुन ॥ 1717 ॥

म. भटसंघंबुलतो रथावळुलतो भद्रेभ यूथंबुतो
बटु वेगान्वित घोटक व्रजमुतो बंधुप्रिय श्रेणितो
गटु संरंभमुतो विदर्भतनयं गॅकॊंदुनंचुन् विशं-
कटवृत्तिन् जनुदॅचॅ जॆद्युडु गडुन् गर्विचि यव्वीटिकिन् ॥ 1718 ॥

सुंदर फूलों की लड़ियाँ और विविध तोरण लटकाये गये; सत्र घर-द्वार, मकान, भवन आदि सजाये गये; कर्पूर, कुंकुम, अगरु आदि के च[illegible] लगाये गये; स्त्री और पुरुष [आ.] विविध वस्त्र, मालाएँ, आभरण (गहने) और लेपनों से सजधज कर बने-ठने दिखायी दिये; प्रीति के साथ समस्त वाद्य बजाये गये —यों वह नगर उत्सवों से रम्य दिखाई दे रहा था। १७१६ [व.] तब उस भीष्मक ने विहित प्रकार से पितृदेवताओं की अर्चना (पूजा) करके ब्राह्मणों को भोज दे उनसे मंगल आशीर्वचन दिलाये। रुक्मिणी देवी को अभिषिक्त कराकर (नहलवाकर) वस्त्र-युगलों से, रत्नाभरणों से विभूषित किया; और ऋग्यजुस्साम मंत्रों से मंगलाचार कराये। ब्राह्मणों ने रक्षायंत्र बाँध दिये। अनन्तर पुरोहित ने ग्रहशांति के निमित्त निगमविदित (वेदोक्त) रीति से होम [illegible]वाये। राजा ने दंपति (पति-पत्नी) की भलाई (कल्याण) के लिए ति[illegible], धेनु, चाँदी, सोना, वस्त्र आदि के दान ब्राह्मणों को दिये। उस अवसर पर··· १७१७ [म.] शिशुपाल घमंडी हो यह कहते हुए कि मैं विदर्भराजकुमारी को ले जाऊँगा, अपने सैनिक-संघ, रथसमूह, भद्रजाति के गज-यूथ (-झुंड), तेज दौड़नेवाले अश्वदल, बंधु और प्रियजनों को साथ लेकर बड़े संरंभ (आडंबर) से किसी रुकावट के बिना उस नगर में पहुँचा। १७१८ [उ.] जरासंध,

उ. बंधुल गूडि कृष्ण बलभद्रुलु वच्चिन वाड्रदोलि नि-
मंधरवृत्ति जेद्युनिकि मानिनि गूर्चेदमंचु नुल्लसत्
सिंधुर वीर वाजि रथ सेनलतो जनुदेंचिरा जरा-
संधुडु दंतवक्त्रुडुनु साल्व विदूरथ पौंड्रकादुलुन् ॥ 1719 ॥

व. मरियु, नाना देशंबुल राजुलनेकुलेतेंचिरि। अंदु शिशुपालु नेंदुकोनि, पूजिंचि, भीष्मकुंडोक्क निवेशंबुन नतनि विडियिंचें। अंत दद्वृत्तांतंबु विनि ॥ 1720 ॥

चं. हरि योंकडेगिनाडु मगधावुलु चैद्य हितानुसारुलै
नरपतुलेंदरेनि जनिनारु कुमारिक देच्चुचोट सं-
गरमगु दोडु गावलयु गंसविरोधिकिनंचु वेग दा-
नरिगें हलायुधुंडु कमलाक्षुनि जूड ननेक सेनतोन् ॥ 1721 ॥

कं. आलोपल नेकतमुन, नालोलविशालनयन यगु रुक्मिणि त-
न्ना लोकलोचनुडु हरि, यालोकमु चेसि कदियडनि शंकितयै ॥ 1722 ॥

शा. लग्नंबेल्लि विवाहमुं गदिसें नेला राडु गोविंदुडु-
द्विग्नंबय्येडि मानसंबु विनेनो वृत्तांतमुन् ब्राह्मणुं-
डग्निद्योतनुडेटिकि दडसें ना यत्नंबु सिद्धिंचुनो
भग्नंबै चनुनो विरिंचि कृतमेट्लंगिन् ब्रवर्तिंचुनो ॥ 1723 ॥

दंतवक्त्र, साल्व, विदूरथ, पौंड्रक आदि राजा लोग भी, अपने-अपने गज, भट, तुरंग, रथ-सेनाओं को लेकर यह कहते हुए वहाँ आ पहुँचे कि यदि कृष्ण और बलभद्र बंधुसमेत आये तो हम उन्हें भगाकर बिना देर किये उस मानिनी (रुक्मिणी) को शिशुपाल को प्राप्त करा देंगे। १७१९ [व.] तथा, अनेक देशों से अनेकों राजा लोग भी आये। उनमें से शिशुपाल की अगवानी करके भीष्मक ने एक भवन में उसे ठहराया। तब यह वृत्तान्त सुनकर… १७२० [चं.] हलायुध (बलराम), यह सोचकर कि— "हरि अकेले गया है, जबकि चैद्य (शिशुपाल) का हित साधने के निमित्त अनेकों नरपति जा पहुँचे हैं, कुमारी को लाने की जगह (अवसर) पर युद्ध होगा, कंसारि को सहायता की आवश्यकता पड़ेगी", —भारी सेना लेकर वेग के साथ कमलाक्ष (कृष्ण) से आ मिला। १७२१ [कं.] इतने में उस लोल-(चंचल) विशाल-नयनी-रुक्मिणी अपने मन में यह शंका करने लगी— "वह लोकलोचन (जगच्चक्षु) हरि क्योंकर मुझे देखेगा और समीप पहुँचेगा ? १७२२ [शा.] विवाह आ पहुँचा, लग्न (मुहूर्त) कल ही है, गोविंद [अब तक] कैसे नहीं आया? मेरा मन उद्विग्न हो रहा (घबड़ा रहा) है, मेरा संदेशा उसने सुना न होगा। अग्निद्योतन (-ब्राह्मण) ने देरी क्यों

म. घनुडा भूसुरुडेंगेंनो नडम मार्गश्रांतुडै च्चिवर्केनो
विनि कृष्णुंडिदि तप्पुगा दलचेंनो विच्चेसेंनो यीश्वरुं-
डनुकूलिप दलंचुनो तलपडो यार्यामहादेवियुन्
ननु रक्षिप नेंरुंगुनो येंरुगदो ना भाग्य मेंट्लुन्नदो ॥ 1724 ॥

व. अनि वितर्किपुचु ॥ 1725 ॥

उ. पोडनु ब्राह्मणुंडु यदुपुंगवु वीटिकि वासुदेवुडुन्
राडनु निक बोयि हरि रम्मनि चीरेंडि यिष्टबंधुडुन्
लेडनु रुक्मिकिं दगवु लेदिट जैद्युन कित्तुनंचु नु-
न्नाडनु गौरि कीश्वरिकि नावलनं गृप लेदु नेडनुन् ॥ 1726 ॥

उ. चेंप्पदु तल्लिकिं दलपु जिक्कु दिशल् दरहास चंद्रिकन्
गप्पदु वक्त्र तामरस गंध समागत भृंगसंघमुन्
रोंप्पदु निद्र गैकोनदुरोज परस्पर सक्त हारमुल्
द्रिप्पदु कृष्णमार्गगत वीक्षण पंक्तुल द्रिप्पदेंप्पुडुन् ॥ 1727 ॥

चं. तुडुवदु कन्नुलन् वेंडलु तोयकणंबुलु कोंप्पु जक्कगा
मुडुवदु नेंच्चेंलि गदिसि मुच्चटकुं जनदन्नमेमियुन्

की ? मेरा यत्न सफल होगा अथवा भग्न होगा ? विधाता की कृपा न जाने कैसी होगी ! १७२३ [म.] वह महाशय-भूसुर (-ब्राह्मण) [द्वारका] पहुँचा है [अथवा] मार्ग में श्रांत हो अटक गया है ? [मेरा संदेश] सुनकर कृष्ण ने उसे बुरा माना हो ! या इधर पधारा हो ? ईश्वर मेरे लिए अनुकूल होना चाहता है या नहीं चाहता ? आर्या महादेवी (पार्वती) मेरी रक्षा करना जानती या नहीं जानती ? पता नही मेरा भाग्य कैसा है !" १७२४ [व.] इस प्रकार वितर्क करती हुई··· १७२५ [उ.] वह [रुक्मिणी अपने-आप] कहती— "यदुपुंगव (यादववीर) के यहाँ ब्राह्मण गया नहीं होगा; वासुदेव नही आयेगा; अब जाकर उसे बुला लानेवाला इष्टबंधु भी कोई नहीं है; यहाँ तो रुक्मि के सामने कोई रुकावट नहीं है; वह तो चैद्य को मुझे देने पर तुला हुआ है, आज ईश्वरी (गौरी) की मुझ पर कृपा नहीं आयी।" १७२६ [उ.] [वह रुक्मिणी] अपने मन का उलझन माता से नहीं कहती; अपने मंदहास की चंद्रिका (चाँदनी) दिशाओं में नही फैलाती; अपने मुखकमल की गंध से जुटे भृंगसंघ (भौंरों के झुंड) को भगाती नहीं; निद्रा नहीं लेती (सोती नही); उरोजों (स्तनों) में उलझे हारों को सुलझाती नही; कृष्ण के [आने के] मार्ग में लगी अपनी वीक्षण पंक्तियों (चितवनों की कतार) को कभी पीछे नही फिराती। १७२७ [चं.] आँखों से निकलनेवाले अश्रुकण (आँसू) पोंछती नहीं; जूड़ा

गुडुवदु नीरमुन् गोनदु कूरिमि कीरमु जेरि पद्यमुन्
नोडुवदु वल्लकीगुण विनोदमु सेयदु डायदन्युलन् ॥ 1728 ॥

सी. मृगनाभि यलददु मृगराज मध्यम जलमुल नाडदु जलजगंधि
मुकुरंबु जूडदु मुकुर सन्निभमुखि पुव्वुलु दुरुमदु पुव्वुबोणि
वनकेळि गोरदु वनजातलोचन हंसंबु बेंपदु हंसगमन
लतल बोषिपदु लतिका ललित देह तोडवुलु दोडवदु तोडवुतोडवु

आ. तिलकमिडदु नुदुट दिलकिनीतिलकंबु
गमलगृहमु जोरदु कमलहस्त
गार्रविच्चि तन्नु गरुण गैकोन वन-
मालि राडु तगवुमालि यनुचु ॥ 1729 ॥

व. मरियुनु ॥ 1730 ॥

म. मलगुन् मेल्लनिगालिकिन् बदु नटन्मत्त द्विरेफाळिकिन्
दलगुन् गोयिलस्रोतकै यलगु नुद्यत् कीरसंभाषलन्
गलगुन् वेन्नेल वेडिमिन् मलगु माकंदांकुरच्छायकुन्
दोलगुन् गोम्म मनोभवानल शिखा दोदूयमानांगियै ॥ 1731 ॥

(चोटी) ठीक सँवारती नही; सखी से मिलकर संलाप करने नहीं जाती; न कोई अन्न (आहार) खाती, न पानी पीती; अपने प्यारे तोते को पद्य नहीं पढ़ाती; न वीणा-वादन से मन बहलाती, न दूसरों से मिलती। १७२८ [सी.] वह मृगराज-मध्यम (सिंह की जैसी पतली कमरवाली) मृगनाभि (कस्तूरी) नही मलती (लेपन नहीं कर लेती); वह जलजगंधी (कमल की जैसी गंधवाली) जलक्रीड़ा नही करती; वह मुकुर-सन्निभ-मुखी (मुकुर समान स्वच्छ मुखवाली) मुकुर (दर्पण) नही देखती; वह पुष्प-समान मनोज्ञ युवती [बालों में] फूल नहीं खोंसती; वह वनजात-लोचना (कमल-नयनी) वन-विहार नही चाहती; वह हसगमना (हंस की-सी चालवाली) अपने हंस का पालन नहीं करती; वह लता-सी ललित (कोमल) देहवाली [अपने भवन में] लताओं का पोषण नहीं करती; वह आभूषणों को भी विभूषित करनेवाली (शोभा बढ़ानेवाली) रुक्मिणी आभूषण पहन नहीं रही; [आ.] वह युवती-तिलक (श्रेष्ठ युवती) माथे पर तिलक नहीं सँवारती; वह कमलहस्ता (कमलों जैसे हाथ वालीं) रुक्मिणी कमलगृह (कमलवन) में प्रवेश नहीं करती; वह कहती— "यह वनमाली (कृष्ण) झगड़ा छोड़ मुझे आदर देकर करुणापूर्वक अपनाने के लिए आया नहीं है।" १७२९ [व.] और··· १७३० [म.] उस रमणी के अंग-प्रत्यंग कामाग्नि की शिखाओं से तप्त हो रहे थे; वह [शीतल] मंदवायु के कारण उद्विग्न हो जाती; उड़कर आनेवाले मस्त भौंरों से हट जाती; कोयल की कूक

व. इट्लु हरिराक कॊँदुरु चूचुचु, सकल प्रयोजनंबुलयंदुनु विरक्तयै, मनो-जानलंबुनं बॊगिलॆँडि मगुवकु शुभंबु चॆप्पु चंदंबुन वामोरुलोचन भुजंबु-लदरॆँ। अंत गृष्णु नियोगंबुन ब्राह्मणुंडु सनुदॆंचिन, नतनि मुखलक्षणं-बुपलक्षिंचि, या कलकंठि महोत्कंठतोड नकुंठितयै, मॊगंबुनं जिरुनगबु निगुड, नॆँदुरु चनि, निलुवंबडिन, ब्राह्मणुंडिट्लनियॆँ ॥ 1732 ॥

उ. संच्चॆँ भवद्गुणोन्नतिकमेय धनादुल निच्चॆँ नाकु दा
वच्चॆँ सुदर्शनायुधुडु वाडॆँ सुरासुरुलॆल्ल नड्डमै
वच्चिननैन राक्षस विवाहमुनन् गॊनिपोवु निन्नु नी
सच्चरितंबु भाग्यमुनु सर्वमु नेडु फलिंचॆँ गन्यका ! ॥ 1733 ॥

व. अनिन वैदर्भि यिट्लनियॆँ ॥ 1734 ॥

म. जलजातेक्षणु दोडितॆच्चितिवि ना संदेशमुं जॆप्पि नन्
निलुवं बॆट्टिति नी कृपं ब्रतिकितिन् नी यट्टि पुण्यात्मकुल्
गलरे दीनिकि नीकु ब्रत्युपकृतिन् गाविंपगानेर नं-
जलि गाविंचॆद भूसुरान्वयमणी ! सद्बंधु-चिंतामणी ! ॥ 1735 ॥

सुनकर रुष्ट हो जाती; तोते का संभाषण सुन विकल हो जाती; चाँदनी में तप्त हो जाती; आम्रपल्लवों की छाया से परेशान हो जाती थी। १७३१ [व.] इस प्रकार हरि की प्रतीक्षा करती हुई, समस्त प्रयोजनों (कार्यों) से विरक्त हो मनोज (मन्मथ) के अनल में झुलसती हुई उस युवती की बायी भुजा और बायी आँख फड़क उठी मानों शुभ की सूचना दे रही हों। इतने में कृष्ण के भेजने पर वह ब्राह्मण चला आया; उसके मुखलक्षणों को देखकर वह कलकंठी (मधुरभाषिणी) बड़ी उत्कंठा से उत्साहित हो, मुख पर मुस्कुराहट लाकर उसके सामने जाकर खड़ी हो गयी। तब ब्राह्मण ने यों कहा : १७३२ [उ.] हे कन्या ! सुदर्शनायुध-धारी कृष्ण ने तुम्हारे समुन्नत गुणों की सराहना कर मुझे अमेय (अगणित) धन आदि दिया; वह आप [मेरे साथ] आया हुआ है। सुरासुर (देव-दानव) सब मिलकर रुकावट डालें तो भी वह तुम्हें राक्षस-विवाह में [अवश्य] ले जानेवाला है; तुम्हारा सच्चरित्र और समस्त भाग्य (अदृष्ट) आज सफल होनेवाला है। १७३३ [व.] इस पर वैदर्भी (रुक्मिणी) ने यों कहा : १७३४ [म.] हे भूसुरान्वयमणि (ब्राह्मण-कुल-भूषण) ! तुम जलजातेक्षण (कमल-नयन) कृष्ण को अपने साथ लिवा लाये हो; मेरा संदेश सुनाकर तुमने मुझे ठिकाने लगा दिया (अवलंब दिलाया); तुम्हारी कृपा से मैं जी गयी; तुम्हारे समान पुण्यात्मा विरले ही मिलेंगे; इसका [योग्य] प्रत्युपकार मैं नहीं कर सकती। हे सद्बंधुओं के चिंतामणि (कामितार्थ देनेवाले) ! मैं तुम्हें अंजलि जोड़ती हूँ।" १७३५ [व.] यों

व. अनि नमस्करिंचें। अंत रामकृष्णुलु दन कूतु विवाहंबुनकु वच्चुट विनि, तूर्य घोषणंबुलतो नॅदुर्कोनि, विध्युक्त प्रकारंबुन बूजिंचि, मधुपर्कंबु-लिच्चि, विविधांबराभरणंबुलु मोदलैन कानुकलोसंगि भीष्मकुंडु बंधुजन सेना समेतुलैन वारलकुं दूर्णंबुन सकल संपत्परिपूर्णंबुलैन निवेशंबुलु गल्पिंचि, विडियिंचें। इट्लु कूडिन राजुलकॅल्लनु वयो वीर्य बल वित्तंबुलॅट्लट्ल कोरिन पदार्थंबुलॅल्ल निप्पिंचि पूजिंचें। अंत विदर्भपुरंबु प्रजलु हरि राक विनि, वच्चि चूचि, नेत्रांजलुलं ददीय वदनकमल मधुपानंबु सेयुचु ॥ 1736 ॥

म. तगु नी चक्रि विदर्भराज सुतकुन् दथ्यंबु वैदर्भियुं
दगु नी चक्रिकि निल मंचि दगुने दांपत्यमी यिद्दॅरि
दगुलं गट्टिन ब्रह्म नेर्परि गदा दर्पाहतारातियै
मगडौ गावुत जक्रि यी रमणिकिन् मा पुण्यमूलंबुनन् ॥ 1737 ॥

व. अनि पलिकिरि। आ समयंबुन ॥ 1738 ॥

सी. सन्नद्धुलै बहु शस्त्र समेतुलै बलसि चुट्टुनु वीर भट्लु गोलुव
मुंदट नुपहारमुलु कानुकलु गोंचु वर्गंबुलै वारवनितलेग
बुष्प गंधांबर भूषण कलितलै पाडुचु भूसुर भार्यलरुग
बणव मर्दल शंख पटह काहळ वेणु भेरी ध्वनुल मिन्नु पिक्कटिलग

कहकर उसने नमस्कार किया। यह सुनकर कि अपनी पुत्री के विवाह में [भाग लेने] राम और कृष्ण आये हैं, भीष्मक ने तूर्यनादों (गाजे-बाजे) के साथ उनकी अगवानी करके, विध्युक्त प्रकार (रीति) से मधुपर्क, विविध वस्त्राभूषण आदि उपहार देकर पूजन किया। उसने तत्काल ही, बंधुजन और सेना-समेत आये राम और कृष्ण के लिए समस्त-संपत्-परिपूर्ण आवासों का प्रबंध करके उन्हे ठहराया। इस प्रकार समागत सभी नरेशों को, उन-उनकी वय, शूरता, सेना तथा ऐश्वर्य के अनुसार अभीप्सित पदार्थ (वस्तुएँ) दिलवाकर राजा ने उनका पूजन किया। तब विदर्भपुरी की प्रजा हरि का आगमन [वार्ता] सुनकर उसे देखने आयी। नेत्र रूपी अंजलियों से कृष्ण के मुखकमल का मधुपान करते हुए लोग [आपस में]··· १७३६ [म.] "यह चक्री (कृष्ण) विदर्भराज की पुत्री के लिए योग्य है (लायक है), और निस्संदेह वैदर्भी भी चक्री के लिए योग्य है; अहा! इन दोनों का दांपत्य कितना अच्छा होगा! इन दोनों की जोड़ी बनानेवाला ब्रह्मा सचमुच, चतुर है; हमारे पुण्यों के कारण से चक्री, दर्प के साथ शत्रुनाश करके इस रमणी का पति बन जाय!" १७३७ [व.] इस प्रकार कहते रहे। उस अवसर पर··· १७३८ [सी.] चिकुरों (अलकों) से पिहित (आच्छादित) फाल-(मस्तक) वाली वाला (रुक्मिणी)

आ. दगुलु सखुलु गॊलव दल्लुलु बांधव
सतुलु दोड राग सविनयमुग
नगरु वॆडलि नडचॆ नगजातकुनु म्रॊक्क
बाल-चिकुर-पिहित-फाल यगुचु ॥ 1739 ॥

व. मरियु, सूत मागध वंदि गायक पाठक जनुलंतंत नभिनंदिचुचुं जनुदेर, मंदगमनंबुन मुकुंद चरणारविंदंबुलु डेंदंबुनं दलंचुचु, निबुधरसुंदरी मंदिरंबु चेरि, सलिल धारा धौत चरण करारविंदयै, वार्चि, शुचियै, गौरी समीपंबुनकुं जनियॆ। अंत मुत्तैदुवलगु भूसुरोत्तमुल भार्यलु भवसहितयैन भवानिकि मज्जनंबु गाविंचि, गंधाक्षतंबुलिडि, वस्त्र माल्यादि भूषणंबुल नलंकरिंचि, धूपदीपंबुलॊसंगि, नाना विधोपहारंबुलु समर्पिचि, कानुकलिच्चि, दीपमालिकल निवाळिंचि, रुक्मिणी देविनि म्रॊक्किंचिरि। अप्पुडु ॥ 1740 ॥

उ. नम्मिति ना मनंबुन सनातनुलैन युमामहेशुलन्
मिम्मु बुराणदंपतुल मेलु भजितु गदम्म! मेटि पॆ-

अगजात (पार्वतीदेवी) की वंदना करने के लिए नगर से निकलकर, सविनय पैदल चलने लगी। वह शस्त्र-समेत सन्नद्ध वीर भट (सैनिक) उसे घेरे साथ चल रहे थे; वारवनिताओं का दल उपहार और चढ़ावे लेकर आगे-आगे जा रहा था; पुष्प, गंध, वस्त्र, आभूषणों से लैस होकर भूसुर-भार्याएँ (ब्राह्मणपत्नियाँ) गीत गाती चल रही थीं; पणव (ढोल), मर्दल (मृदंग), शंख, पटह (नगाड़ा), काहल, वेणु, और भेरी की ध्वनियों से आकाश भर गया; [आ.] सखियाँ साथ-साथ चलकर सेवा कर रही थी; माताएँ और वधुओं की स्त्रियां साथ चल रही थी। १७३९ [व.] और, सूत, मागध, वंदी, गायक और पाठक जन कुछ दूरी पर बधाइयाँ देते हुए चल रहे थे; इस प्रकार वह कन्या, हृदय में मुकुंद-चरणारविंद का ध्यान करती हुई, मंदगमन से चलकर चंद्रशेखर (शिव) की पत्नी (-पार्वती) के मंदिर पर पहुँची। फिर अपने कर-चरणारविंद (कमल से कोमल हाथ-पैर) जल से धोकर, आचमन कर, शुचि हो गौरी के समक्ष गयी। तब सुहागिन ब्राह्मण-पत्नियों ने शिव-समेत भवानी पर अभिषेक करके गंधाक्षत, वस्त्र-माल्यादि भूषणो से अलंकृत कर धूप-दीप सहित नाना प्रकार के उपहार और चढ़ावे समर्पित किये; अनन्तर दीपमालिकाओं से आरती उतार रुक्मिणीदेवी से विनती (नमस्कार) करवायी। तब १७४० [उ.] "हे ईश्वरी! मैंने सनातन (शाश्वत) [देवी-देवता] उमा और महेश का मन में विश्वास कर रखा, हे माता! तुम पुरातन दंपति हो, तुम्हारे उपकार का मैं कीर्तन करूँगी; तुम श्रेष्ठ हो; माताओं की भी माता हो;

वृदम्म ! दयांबुराशिवि गदम्म ! हरि बतिसेयुमम्म ! निन्
नम्मिन वारिकेन्नटिकि नाशमु लेदु गदम्म ! योश्वरी ! ॥ 1741 ॥

व. अनि गौरी देविकि म्रोक्कि, पतुल तोडं गूडिन ब्राह्मणभार्यलकु लवणा-
पूपंबुलुनु, तांबूल कंठसूत्रंबुलुनु, फलंबुलु, निक्षुदंडंबुलु निच्चि, रुक्मिणी देवि वारल बूजिंचिन ॥ 1742 ॥

आ. वारु नुत्सहिंचि वलनोप्प दीविंचि
सेसलिडिरि युवति शिरमुनंदु
सेसलॅल्ल दालिच शिववल्लभकु म्रोक्कि
मौननियति मानि मगुव वॅडलॅ ॥ 1743 ॥

व. इट्लु मेघमध्यंबु वॅलुवडि विलसिंचु क्रोक्कारु मॅरुंगु तॅरंगुन, मृगधरमंडलंबु निर्गमिंचि चरिंचु मृगंबु चंदंबुन, गमलभवनर्तकुंडेत्तिन जवनिकमरुगु वॅडलि पोडसूपिन मोहिनी देवत कैवडि, देव दानव संघात करतल सव्यापसव्य समाकृष्यमाण पन्नगेंद्र पाश परिवलयित पर्याय परिभ्रांत मंदराचल मंथान मथ्यमान घूर्णित घुमघुमायित महार्णव मध्यंबुन नुंडि चनुदेंचु निंदिरासुंदरी वैभवंबुन, वहुविध प्रभाभाससानयै, यिदुधर-सुंदरी मंदिरंबु वॅडलि, मानसकासार हेमकमल कानन विहरमाण मत्तमराळंबु

दयांबुराशी (दयासमुद्र) हो; हरि (कृष्ण) को मेरा पति बनाओ; माता! तुम पर भरोसा रखनेवालों का कभी नाश नहीं होता।" १७४१ [व.] यों कहकर गौरीदेवी को प्रणाम करने के बाद रुक्मिणीदेवी ने पतियों-समेत उपस्थित ब्राह्मण-पत्नियों को लवण (नमक), अपूप (पकवान्न), तांबूल (पान-सुपारी), कंठसूत्र, फल, गन्ना (गँड़ेरियाँ) आदि देकर उनका पूजन किया। १७४२ [आ.] उन्होंने उत्साहपूर्वक अनुकूल आशीर्वचन देकर उस युवती के सिर पर अक्षत डाले। अक्षत स्वीकार कर, शिववल्लभा (पार्वती) के सामने सिर नवाकर, वह युवती मौन छोड़ निकल पड़ी। १७४३ [व.] वह [राजकुमारी] पार्वती के मंदिर में से अनेक प्रकार से कांति फैलाती हुई ऐसे निकली जैसे— मेघों के मध्य में से नववर्षा की बिजली कौंधती है; मृगधर-मंडल (चंद्रमंडल) में से मृग (हिरन) निकल पड़ता हो; ब्रह्मदेव रूपी नाटककार की उठायी यवनिका की आड़ से जैसे मोहिनीदेवी [मंच पर] प्रत्यक्ष होती हो; देव और दानव-संघ के हाथों से कभी सव्य और कभी अपसव्य खींची जानेवाली पन्नगेंद्र (वासुकी सर्प) रूपी डोरी से लिपटे जाकर, पर्याय में (कभी इधर, कभी उधर) घूमते हुए मंदराचल रूपी मंथान द्वारा मथे जानेवाले घुमघुमाते महार्णव [समुद्र] के मध्य में से इन्दिरासुंदरी (लक्ष्मीदेवी) वैभव के साथ जैसे निकल आती हो। मानसकासार (मानससरोवर) के हेम (कनक) कमलोंवाले

भंगि, मंद गमनंबुन गनककलशयुगळ संकाश कर्कश पयोधर भार परिकंप्यमान मध्ययै, रत्नमुद्रिकालंकृतंबैन कॆंगेल नॊक्क सखी ललामंबु कैदंड गॊनि, रत्ननिवह समंचित कांचन कर्णपत्र मयूखंबुलु गंडभागंबुल नर्तनंबुलु सलुप, नरविंद परिमळ कुतूहलावतीर्ण मत्त मधुकरंबुल माड्कि नराळंबुलैन कुंतल जालंबुलु मुखमंडलंबुन ग्रंदुकॊन, सुंदर मंदहास रोचुलु दिशलंबु वालचंद्रिका सौंदर्यंबु नावहिंप, नधरबिंब फलारुण मरीचि मालिकलु वदन कुंदकुट्मलंबुलकनुरागंबु संपादिंप, मनोजातकेतन सन्निभंबैन पय्यॆद कॊंगु दूग, सुवर्ण मेखलाघटित मणिकिरण पटलंबुलकाल शक्रचाप जनकंबुलै मॆऱय, जॆऱकुविलुतुंडॊऱ वॆऱिकि, वाडियिडि, झळिपिचिन धगद्धगायमानंबुलगु बाणंबुलपगिदि, सुरुचिर विलोकननिकरंबुलु राजवीरुल हृदयंबुलु भेदिंप, शिंजान मंजु मंजीर निनदंबुलु चॆवुल पंडुवलु सेय, बाद संचारंबुन हरि राककॆदुरु सूचुचु, वीर मोहिनियै चनुदॆंचुचुन्न समयंबुन ॥ **1744** ॥

कानन (वन) में विहार करती हुई मत्तमराल हंसी की भाँति वह मंदगमन से चलने लगी; [चलते समय] कनक-कलश-युगल (दो सुवर्ण-कलशों) के समान कठिन पयोधरों (स्तनों) के भार से उसकी कमर कंपित हो रही थी। उसने रत्नमुद्रिका (अँगूठी) से अलंकृत हाथ से एक सखीललाम का सहारा लिया; रत्ननिवह (रत्न-समूह) से मढ़े कांचन-कर्णपत्रों (सोने के करनफूल) के मयूख (किरणें) गंडभागों (कनपटियों) पर नर्तन कर रही थीं; अराल-कुंतल-जाल (घुँघराले वाल) उसके मुखमंडल पर ऐसा छाया हुआ था मानों अरविंद-परिमल-कुतूहल के कारण (कमलगंध के लालच के कारण) जुटे हुए मधुकर (भौंरे) हों; उस [रमणी] के मंदहास की दीप्ति दिशाओं मे हलकी चाँदनी की शोभा फैला रही थी; उसके बिंबफल सदृश अधरों की अरुणिमा की झलक उसके मुँह के कुंदकुट्मलों (कुंद-कलियों) से [दाँतों] को ललाई दे रही थी; उसका आँचल मनोजातकेतन (मन्मथ के झंडे) के समान [हवा में] हिल रहा था; उसकी सुवर्ण मेखला (सोने की करधनी) में लगी मणियों के किरण-जाल अकाल शक्रचाप (इन्द्रधनुष) का भ्रम उत्पन्न कर रहा था; उसकी सुंदर दृष्टियों के समूह राजवीरों के हृदयों को भेद रहे थे मानों वे कामदेव के द्वारा तरकस से निकाले जाकर, सान पर चढ़ाये गये चमचमाते वाण हों; उसके मंजु (सुंदर) मंजीरों (नूपुरों) की शिंजित ध्वनि कर्णोत्सव करती रही; हरि (कृष्ण) का रास्ता देखती हुई, वीरों के सामने मोहिनी-सी वनी-ठनी वह रमणी जब पैदल चल रही थी, उस समय… १७४४

[म.] भौंरों-सी नीली (काली) अलकें, पूर्णचंद्र-सा मुख, हिरनी की-सी

म. अळिनीलालक बूर्णचंद्रमुखि नेणाक्षि ब्रवाळाधरन्
गलकंठिन् नवपल्लवांघ्रियुगळन् गंधेभकुंभस्तनिन्
बुलिन श्रोणि निभेंद्रयान नरुणांभोजातहस्तन् महो-
त्पलगंधिन् मृगराजमध्य गनि विभ्रांतात्मुलैरंदरुन् ॥ 1745 ॥

व. मरियु, नव्वियति दरहास लज्जावलोकनंबुल जित्तंबु लेमरि, धैर्यंबुलु दिगनाडि, गांभीर्यंबुलु विडिचि, गौरवंबुलु मरचि, चेष्टलु मानि, येरुक लुडिगि, यायुधंबुलु दिगवैचि, गजतुरग रथारोहणंबुलु सेयनेरक, राजुलॅल्ल नेलकु व्रालिरि। आ येणीलोचन तन वामकर नखंबुल नलकंबुलु दलगं द्रोयुचु, नुत्तरीयंबु चक्क नोत्तुचु, गडकंटि चूपुलं ग्रमंबुन ना राजलोकंबु नालोकिंपुचु ॥ 1746 ॥

चं. कनियॅन् रुक्मिणि चंद्रमंडल मुखुं गंठीरवेंद्रावल-
ग्नु नवांभोजदळाक्षु जारुतर वक्षुन् मेघसंकाश दे-
हु नगाराति गजेंद्रहस्त निभ बाहुं जक्रि बीतांबरुन्
घन भूषान्वितु गंबुकंठु विजयोत्कंठुन् जगन्मोहनुन् ॥ 1747 ॥

आँखें, प्रवालों (मूंगों) के समान अधर (होंठ), मधुर कंठ [स्वर], नव-पल्लवों (कोपलों) से अंघ्रियुगल (चरणद्वय), गंधेभ (मत्तगज) के कुंभ-समान [स्थूल] स्तन, पुलिन (रेत के टीले) सदृश श्रोणी, गजेंद्र की-सी चाल, अरुणांभोजहस्त (लाल कमल से हाथ), उत्पल (कुमुदिनी) की-सी गंध, मृगराज (सिंह) की जैसी कमर —इन लक्षणोंवाली रुक्मिणी को देखकर सब के सब विभ्रांत हो गये। १७४५ [व.] और, उस सुंदरी की मुस्कुराहट और लजीली चितवनों से प्रभावित होकर अपने-अपने चित्त को भूलकर, धैर्य छोड़कर, गांभीर्य विसर्जित कर, गौरव भुलाकर, शारीरिक चेष्टाओं से विरत हो, प्रज्ञा (होश) विस्मृत कर, आयुध (शस्त्रास्त्र) नीचे पटककर, गज, तुरग (घोड़े), रथों पर चढने में अशक्त होकर सभी राजा लोग जमीन पर पड़े रहे। वह मृगलोचनी अपने बायें हाथ के नखों से अलकों को हटाती हुई, उत्तरीय (उपरना) सँवारती हुई कनखियों से राजलोक को क्रम से (एक-एक करके) आलोकन करती गयी। तब। १७४६ [चं.] रुक्मिणी ने उस चक्री (विष्णु) को देखा, जिसका मुख चंद्रमंडल-सा था, कमर कंठीरवेंद्र (सिंह) की-सी थी, नेत्र नवांभोज (टटके खिले कमल) सम थे, वक्ष (छाती) चारुतर (सुंदर) था, देह मेघ-सदृश थी, बाहुएँ इन्द्र के ऐरावत की सूंड़-सी थीं, जो पीतांबर पहने था, आभूषणों से सजे हुए था, जो कंबुकंठ (शंख-सा कंठवाला) था, जो विजय के लिए उत्कंठित था और जो जगन्मोहन (जगत् को मोहित करनेवाला) था। १७४७ [व.] देखकर, उसके रूप, वय, लावण्य, वैभव, गांभीर्य,

व. कनि तदीय रूप वयो लावण्य वैभव गांभीर्य चातुर्य तेजोविशेषंबुलकु संतसिल्लि, मनोभव शराक्रांतयै, रथारोहणंबु गोरुचुन्न वरारोहंजूचि, परिपंथि राजलोकंबुलु सूचुचुंड, मंदगमनंबुन गंधसिंधुरंबुलील जनुदेंचि, फेरवंबुल नडिमि मागंबु गोनिचनु कंठीरवंबु कैवडि, निखिल भूपाल गणंबुल गणिंपक, तृणीकरिंचि, राजकन्यकं देच्चि, हरि तन रथंबुमीद निडुकोनि, भू नभोंतराळंबुलु निंड, शंखंबु पूरिंचुचु, बलभद्रुंडु तोड नडव, यादव वाहिनी परिवृतुंडै, द्वारका नगर मार्गंबु पट्टि चनियें। अंत जरासंधवशुलैन राजुलंदरु हरि पराक्रमंबु विनि सहिंपनोपक ॥ 1748 ॥

म. घन सिंहंबुल कीर्ति नीचमृगमुल् गैकोन्न चंदंबुनन्
मन कीर्तुल् गोनि बाल दोड्कोनुचु नुन्मादंबुतो गोपकुल्
सनुचुन्नारदे शौर्यमेन्नटिकि मी शस्त्रास्त्रमुल् गालपने
तनुमध्यन् विडिपिंपमेनि नगरे धात्रीजनुल् प्रंतलन् ॥ 1749 ॥

चातुर्य और तेजोविशेष पर प्रसन्न हो, मनोभव (कामदेव) के शरों (बाणों) से आक्रांत (पीड़ित) होकर वह रथारोहण करना ही चाहती थी कि इतने में उस वरारोह (उत्तम स्त्री) को देखकर हरि ने शत्रु राजाओं के देखते-देखते गंधगज के समान मंदगमन से चलकर, समस्त भूपालों की परवाह किये बिना, सबका तिरस्कार करते हुए उस राजकन्या को यों लाकर अपने रथ पर बिठा लिया जैसे गीदड़ों के बीच में पड़ा हुआ आहार कंठीरव (सिंह) ले चलता है। फिर उसने ऐसा शंख बजाया कि उसकी ध्वनि भूमि और आकाश के अंतराल में भर गयी। यादव-वाहिनी (सेना) से परिवृत होकर कृष्ण ने बलराम के साथ द्वारका नगर का रास्ता लिया। जब जरासंध के वशवर्ती राजाओं ने हरि का वह पराक्रम सुना, तो उसे वे लोग सह न सके, तब··· १७४८ [म.] "जैसे महान् सिंह की कीर्ति कोई नीच मृग ले ले, वैसे ही ये गोपालक जन मस्ती के साथ हमारी कीर्ति और हमारी बाला को लेकर उधर चले जा रहे हैं, तुम्हारा शौर्य कब काम आयेगा ? तुम्हारे शस्त्रास्त्र जला डालने योग्य हैं; इस तनुमध्या (पतली कमर की स्त्री) को यदि हम छुड़ा नहीं सके तो धात्रीजन (दुनिया के लोग) बाजारों में हमारी हँसी नहीं करेंगे ?" १७४९

अध्यायमु—५४

व. अनि यीडोरल वॅल्पुकोनि, रोषंबुलु हृदयंबुल निल्पुकोनि, संरंभिंचि, तनुत्राणंबुल वहिंयिचि, धनुरादि साधनंबुलु धरियिंचि, पंतंबुलाडि, तम-तम चतुरंग बलंबुलं गूडि, जरासंधादुलु यदुवीरुलवेंट नंटंदाकि, निलु निलुंडनि धिक्करिंचि पलिकि, युक्कु मिगिलि, महीधरंबुलमीद सलिल धारलु गुरियु धाराधरंबुल चंदंबुन, बाण वर्षंबुलु गुरिसिन, यादवसेनलं गल दंडनाथुलु कोदंडंबु लॅक्किडि गुणंबुलु म्रोयिंचि, निलुवंबडिरि। अप्पुडु ॥ 1750 ॥

कं. अरि बलभट सायकमुल
हरि बलमुलु गप्पबडिन नडरॅडि भीतिन्
हरिमध्य सिग्गु तोडनु
हरि-बदनमु जूचॅ चकित हरिणेक्षणयै ॥ 1751 ॥

व. इट्लु चूचिन ॥ 1752 ॥

कं. वच्चॅदरदॅ यदुवीरुलु
व्रच्चॅदररिसेनलॅल्ल वैरुल् पॅलुचन्
नोच्चॅदरनु विच्चॅदरनु
जच्चॅदरनु नेडु चूडु जलजाताक्षी ! ॥ 1753 ॥

अध्याय—५४

[व.] यों एक-दूसरे से परामर्श करके, जरासंध के सैनिक, हृदयों में रोष भरकर, तनुत्राण (कवच) और धनुर्बाण आदि शस्त्रों से सज्जित हो युद्ध-सन्नद्ध हुए। उन लोगों ने अपना-अपना चतुरंग बल लेकर यदुवीरों का पीछा किया। "ठहरो", "ठहरो" कहकर उन्हें धिक्कारते हुए, अतिशय शौर्य के साथ जरासंध आदि राजाओं ने यादवों पर यों बाण बरसाये जैसे धाराधर (मेघ) महीधरों (पर्वतों) पर सलिलधारा बरसाते हैं। इस पर यादव-दंडनाथ (-सेनापति) धनुष चढ़ाकर, टंकार करते हुए खड़े हो गये। उस समय… १७५० [कं.] जब हरि (कृष्ण) के सैनिक अरिभटों (शत्रुसैनिकों) के चलाये बाणों से आक्रांत होने लगे तो हरिमध्या (सिंह की-सी कमरवाली) रुक्मिणी ने लज्जायुक्त हो भयभीत हरिणी की चकित दृष्टि से हरि का वदन (मुँह) देखा। १७५१ [व.] इस तरह देखने पर… १७५२ [कं.] "हे जलजाताक्षी (कमलाक्षी) ! वह देखो यादव-वीर चले आ रहे हैं, वे लोग शत्रु-सेना को तोड़-फोड़ देंगे; वैरी लोग मार

व. अनि रुक्मिणी देविनि हरि यूरडिंचॆं। अंत बलभद्र प्रमुखुलैन यदुवीरुलु प्रळयवेळ मिन्नुनं बन्निन वलुपिडुगुल नडरिचु पॆंनु मॊगुळ्ळ चदुवुन, जरासंधादि परिपंथिराज चक्रंबुमीद नवक्र पराक्रमंबुन शिखि शिखा संकाश निशित शिलीमुख नाराच भल्ल प्रमुखंबुलैन बहुविध बाण परंपरलु गुरिय, नदियुनु बिदळित मत्त मातंगंबुनु, विच्छिन्न तुरंगंबुनु, विभिन्न रथवरूथंबुनु, विनिहत पदाति यूथंबुनु, विखंडित वाह वारण रथारोह मस्तकंबुनु, विशकलित वक्षोमध्य कर्णकंठ कपोल हस्तंबुनु, विस्फोटित कपालंबुनु, विकीर्ण केशजालंबुनु, विपाटित चरण जानु जंघंबुनु, विदळित दंतसंघंबुनु, विघटित वीर मंजीर केयूरंबुनु, विभ्रष्ट कुंडल किरीट हारंबुनु, विश्रुत वीरालापंबुनु, विदार्यमाण गदा कुंत तोमर परशु पट्टस प्रास करवाल शूल चक्र चापंबुनु, विनिपातित केतन चामर-छत्रंबुनु, विलून तनुत्राणंबुनु, विकीर्यमाण घोटक संघ रिखा समुद्धूत धरणी परागंबुनु, विनष्ट रथवेगंबुनु, विनिवारित सूत मागध वंदि वादंबुनु, विकुंठित हय हेषा पटह भांकार, करटिघटा घींकार, रथनेमि

खाकर भाग जायेंगे, अथवा आज ही मर मिटेंगे।" १७५३ [व.] यों कहकर हरि ने रुक्मिणीदेवी को आश्वासन दिया। तब बलभद्र आदि यादववीरों ने, प्रलय के समय आकाश में फैलकर भयंकर वज्रपात करने वाले घने बादलों के समान, जरासंध आदि शत्रु राजचक्र पर, अवक्र पराक्रम से अग्निज्वाला-सम तीक्ष्ण शिलीमुख (बाण), नाराच, भल्ल आदि अनेक प्रकार के बाणों की परंपरा बरसा दी। इससे शत्रुसेना के मत्तमातंग (गज) विदीर्ण हुए; तुरग (घोड़े) विच्छिन्न हुए (कट गये); रथसमूह टूट गया; पदातियूध (पैदल-सेना) निहत हुई; घोड़े, हाथी और रथिकों के मस्तक खंडित हुए; [वीरों के] वक्ष (छाती), मध्य (कमर), कर्ण (कान), कंठ, कपोल (गाल) और हस्त (हाथ) टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़े; उनके कपाल (खोपड़े) फट गये; सिर के केशजाल बिखरे पड़े; चरण, जानु (घुटने) और जघा फट गये; दंत-पंक्तियाँ चूर-चूर हुईं, वीरों के मंजीर (घुँघरू) और केयूर (बाजूबंद) छूट पड़े; उनके कुंडल, किरीट और हार गिर पड़े; वीरों के प्रलाप सब जगह सुनाई दे रहे; गदा, कुंत (बर्छी), तोमर, परशु (कुल्हाड़ा), पट्टस (खाँड़ा), प्रास (शूल), करवाल (तलवार), शूल, चक्र और चाप (धनुष) सब पिस गये; केतन (झंडे), चामर, छत्र गिर गये; [सैनिकों के] तनुत्राण (कवच) भग्न हुए; घोड़ों के खुरों से उड़कर धूल धरती पर फैल गयी; रथों का वेग बंद हो गया; सूत, मागध, बंदियों का वादन रुक गया; हयहेषा (घोड़ों का हिनहिनाना), और पटहभांकार (नगाड़ों की तुमुल ध्वनि) थम गये।

फटात्कार, तुरग नाभिघंटा घणघणात्कार, वीर हुंकार, भूषण झण झणात्कार, निस्साण धणधणात्कार, मणिनूपुर झंकार, किंकिणीगण किणात्कार, शिंजिनी टंकार, भट परस्पर धिक्कार नादंबुनु, विनिर्भिद्य-मान राजसमूहंबुनु, विद्यमान रक्त प्रवाहंबुनु, विश्रूयमाण भूत बेताळ कलकलंबुनु, विजृंभमाण फेरव काक कंकादि संकुलंबुनु, प्रचलित कबंधंबुनु, प्रभूत पलल गंधंबुनु, प्रदीपित मेदो मांस रुधिर खादंबुनु, प्रवर्तित डाकिनी प्रमोदंबुनुनै युंडे। अप्पुडु ॥ 1754 ॥

चं. मगिडि चलिंचि पारुचुनु मागधमुख्युलु गूडि योक्कचो
वगचुचु नालि गोल्पडिन वानिक्रियन् गडु वेच्च नूर्चुचुन्
मोगमुन दप्पि देर दम मुंदट बोक्कुचुनुन्न चैद्युतो
बगतुर चेतुलो बडक प्राणमुतोडुतनुन्नवाडवे ॥ 1755 ॥

आ. ब्रतुक वच्चु नोंडल प्राणंबुलुंडिन
ब्रतुकु गलिगेनेनि भार्य गलदु
प्रतिकितीवु भार्यपट्टु दैवमेरुंगु
बगववलदु चैद्य! वलदु वलदु ॥ 1756 ॥

गज-समूह का घींकार, रथनेमियों (चक्रों का घेरा) का फटात्कार (फटफट शब्द); तुरग-नाभि-घंटा-घणघणात्कार (घोड़ों में बँधे घंटों का घणघण शब्द); वीरभटों का हुंकार; भूषणों (गहनों) का झणझणत्कार (झन-झनाहट), दमामों का धणधणात्कार (धनधन शब्द); मणिनूपुरों और किंकिणियों (घुंघुरों) का किणात्कार (छमछम शब्द); धनुष की डोरी का टंकार, भटों के परस्पर (आपस में) होनेवाले धिक्कार के शब्द, ये सब बंद हुए। राजसमूह कट गया तो रक्त के प्रवाह बह निकले; भूत, बेतालों [जो रक्त पीने के लिए इकट्ठे हुए] का कलकल शब्द सुनायी दे रहा था; काक-कंकों से, जो झपट पड़ते थे, मैदान संकुल हो गया, कबंधों (मुंडहीन धड़ों) से रणभूमि पट गयी; चारों तरफ़ पलल (मांस) की दुर्गंध फैल गयी; सर्वत्र व्याप्त मेदा, मांस और रुधिर आदि खा-खाकर डाकिनियाँ प्रमोद करने लगीं। उस समय''' १७५४ [चं.] मागधमुख्य (जरासंध के वीर) जो विचलित होकर [रण छोड़] भागने लगे, एक जगह इकट्ठे हुए, उन्होंने सामने शिशुपाल को देखा जो गरम साँसें छोड़ रहा था, जिसका मुँह सूख चला, और अपनी स्त्री को गँवाकर संताप करनेवाले मनुष्य की तरह जो दुःख कर रहा था; उस शिशुपाल को देख जरासंध ने कहा : "शत्रु के हाथ में न पड़कर प्राण-सहित जी गये हो। १७५५ [आ.] शरीर में यदि प्राण रहे तो [आगे] जीवित रह सकते, जीवित रहे तो स्त्री मिल सकती, स्त्री की बात भगवान जाने, तुम बच गये हो [यही बहुत है]। हे चैद्य!

व. विनुमु। देहधारि स्वतंत्रुडु गाडु। जंत्रगानिचेति जंत्रपु बोम्म कैवडि न श्वरतंत्र पराधीनुंडै, सुखदुःखंबुलंदु नर्तनंबुलु सलुपु। तोल्लि नेनु मथुरापुरंबुमीद वदि येड्मारुलु पराक्रमंबुनन् विडिसि, चक्रि चेत निर्मूलित बलचक्रुंडनै, कामपालुचेतं बट्टुवडि, यी कृष्णुंडु करुणतो, विडिपिंचिन वच्चि, क्रम्मर निरुवदिमूडक्षौहिणुलं गूडुकोनि, पदुनेनिमिदवमारु दाडि चेसि, शत्रुवुलं दोलि, विजयंबु जेकोंटिनि। जयापजयंबुलंदु हर्षशोकंबुल नेन्नंडुनु जेंद। नेटि दिनंबुन नी कृष्णुनि कोंदिरि पोर मनराजलोकंबु-लेल्ल नुग्राक्षुं गूडुकोनि, योदिरि पोरिन नोडु। इंतिय काक दैवयुक्तंबैन कालंबुनं जेसि, लोकंबुलु परिभ्रमिंचुचुनुंडु। अदियुनुं गाक ॥ 1757 ॥

म. तमकुं गालमु मंचिदैन मनलं द्रैलोक्य विख्यात वि-
क्रमुलं गेल्चिरि यादवुल् हरि भुजागर्वंबुनन् नेडु का-
लमु मेलै चनुदेंचे नेनि मनमुन् लक्षिंचि विद्वेषुलन्
समरक्षोणि जयिंतमित पनिकें शंकिप नीकेटिकिन् ॥ 1758 ॥

व. अनि यिट्लु जरासंधुंडुनु, अतनि योद्दि राजुलुनु, शिशुपालुनि परितापंबु निवारिंचि, तमतम भूमुलकुं जनिरि। शिशुपालुंडु ननुचर सेनासमेतुंडै,

---

दुख मत करो, मत करो,। १७५६ [व.] सुनो, देहधारी स्वतंत्र नहीं है; यांत्रिक के हाथ की यंत्रवाली पुतली के समान ईश्वरतंत्र (विधान) के अधीन होकर प्राणी सुख और दुःखों से नाचता रहता है। इसके पूर्व मैं मथुरापुरी पर सत्रह वार चढ़ाई करके कृष्ण के हाथ समस्त सैनिक-वल खो बैठा, कामपाल (वलराम) की पकड़ाई में आया, फिर इसी कृष्ण ने कृपा करके छुड़ाया तो वच निकला; पश्चात् अठारहवीं वार तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आक्रमण किया और शत्रुओं को खदेड़ कर विजय प्राप्त की। जय और अपजय पाकर मैंने कभी न हर्ष किया, न शोक। [आज यदि हम अपने समस्त राजलोक को लेकर और उग्राक्ष (रुद्र) की भी सहायता पाकर इस कृष्ण के विरुद्ध लड़ते तो भी अवश्य हार जाते] इतना ही नहीं, समय जव दैव [की इच्छा] के अनुकूल होता है तभी तदनुसार समस्त लोक परिभ्रमण करता रहता है। इसके अतिरिक्त १७५७ [म.] हम लोगों को, जो त्रैलोक्य में विख्यात पराक्रमशाली हैं, आज यादव हरि-भुजवल पाकर इस कारण से जीत सके हैं कि काल उनके लिए अच्छा (अनुकूल) रहा है; आगे हमारे लिए भी यदि काल अनुकूल वनेगा तो हम भी युद्धभूमि में शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेंगे; इतने से कार्य के लिए तुम शंका क्यों कर रहे हो? १७५८ [व.] इस प्रकार जरासंध और उसके साथी राजा लोग शिशुपाल का परिताप शांत कर

तन नगरंबुनकुं जनियें; नंत रुक्मि यनुवाडु कृष्णुंडु राक्षस विवाहंबुनं दन चेलियलि गोनिपोवुटकु सहिंपक, येकाक्षौहिणी बलंबुतोड समरसन्नाहंबुनं गृष्णुनि वेंनुदगिलि पोवुचु, दन सारथितोनिट्लनियें ॥ 1759 ॥

उ. बल्लिदु नन्नु भीष्मजनपाल कुमारुनि जिन्न जेसि ना
चेल्लेलि रुक्मिणि गोनुचु जिक्कनि निक्कपु बंटुवोलें नी
गोल्लडु वोयेंडिन् रथमु गूडगदोलुमु तेजितोल्लसत्-
भल्ल परंपरन् मदमु बापेंद जूपेंद ना प्रतापमुन् ॥ 1760 ॥

व. अनि यट्लु रुक्मि हरि कोलंदि येंरुंगक सारथि नदलिंचि, रथमु गूड दोलिंचि, गोपालक! वेंन्न-म्रुच्च! निमिषमात्रंबु निलु निलु मनि तिरस्करिंचि, बलुविंट नारि सेरिंचि, मूडु वाडितूपुल हरि नोंप्पिंचि, यिट्लनियें ॥ 1761 ॥

सी. मा सरिवाडवा मा पाप गोनिपोव नेपाटि गलवाड-वेवि वंश-
मेंदु जन्मिंचिति वेंक्कड बेरिगिति वेंय्यदि नडवडि येंव्वडेंरुगु
मानहीनुड वीवु मर्याद लेंरुगवु माय गैकोनि कानि मलयरावु
निजरूपमुन शत्रुनिवहंबुपे बोवु वसुधेशुडवु गावु वावि लेवु

अपने-अपने देश चले गये। शिशुपाल भी, अनुचर सेना समेत अपने नगर पहुँचा। अनन्तर, अपनी छोटी बहिन को राक्षस-विवाह में कृष्ण का उठा ले जाना रुक्मि को सह्य न हुआ तो वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर समर के लिए सन्नद्ध हुआ और कृष्ण का पीछा करते हुए अपने सारथी से यों कहा : १७५९ [उ.] "मुझ बलवान भीष्मराजकुमार का अपमान करके यह ग्वाला महा प्रसिद्ध वीर के समान मेरी बहिन रुक्मिणी को लेकर वह जा रहा है, हमारा रथ उसके पीछे-पीछे हाँक ले चलो, तेज बाणों की परंपरा से उसका मद छुड़ाऊँगा, उसे अपना प्रताप दिखा दूँगा।" १७६०. [व.] यों कहकर हरि की शक्ति जाने बिना रुक्मि ने सारथी को घुड़क कर रथ [यादवों के] पीछे हँकवाया; फिर कृष्ण को धिक्कारते हुए कहा—"अरे गोपालक! माखनचोर! एक निमेषमात्र ठहर जाओ।" पश्चात् उसने अपने बलिष्ठ धनुष पर डोरी चढ़ाकर तीन तीखे तीरों से हरि को चोट लगाकर यों कहने लगा : १७६१ [सी.] "तुम क्या हमारी बराबरी के हो जो हमारी कन्या को ले जा रहे हो? किस बात में समता रखते हो? तुम्हारा वंश कौन-सा? कहाँ जन्मे? कहाँ पले? तुम्हारा चाल-ढाल कैसा? कौन जाने? तुम मान (अभिमान) हीन हो, मर्यादा नहीं जानते। माया किये बिना कोई काम नहीं करते; अपने निजरूप में शत्रुसेना पर चढ़ आनेवाले नरेश नहीं हो; [आ.] तुम किसी के बंधु नहीं हो; (हमारी) कन्या को लौटा दो,

आ. कॊम्म निन्नु नीवु गुणरहितुंडवु
विडुवु विडुववेनि विलयकाल
शिखि शिखा समान शित शिलीमुखमुल
गर्वमॆल्ल गॊंदु गलहमंदु ॥ 1762 ॥

व. अनि पलिकिन, नगधरुंडुनगि, यॊक्क बाणंबुन वानि कोदंडंबु खंडिंचि, यारुशरंबुल शरीरंबु दूरं नेसि, यॆनिमिदि विशिखंबुल रथ्यंबुलं गूलिच, रॆंडम्मुल सारथि जंपि, मूडु वाडितूपुलं गेतनंबु द्रुंचि, मरियु नॊक्क विल्लंदिनं द्रुंचि, वॆंडियु, नॊक्क धनुवु वट्टिन विदळिंचि, क्रमंबुन परिघ पट्टिस शूल चर्मासि शक्ति तोमरंबुलु धरियिंचिनं, दुनुकलु सेसि, क्रम्मरं नायुधंबुलॆल्ल यॆत्तिन नन्नियु शकलंबुलु गाविंचॆ। अंतटं दनिविसनक वाडु रथंबु डिग्गि, खड्ग हस्तुंडै, दवानलंबु पॆंवडु मिडुतचंदंबुनं गदिसिन, खड्गकवचंबुलु चूर्णंबुलु चेसि, मॊक्कंगुलु चॆंदर नडिदंबु बॆरिकि झळिपिंचि, वानि शिरंबु द्रॆंगवेयुदु ननि, गर्मकिचि, नडचुचुन्न, नड्डंबुवच्चि, रुक्मिणी देवि हरिचरणारविंदंबुलु वट्टुकॊनि, यिट्लनियॆ ॥ 1763 ॥

मत्त. निन्नु नीश्वरु देवदेवुनि निर्णयिंपग लेक यो
सन्नुतामर ! कीर्तिशोभित ! सर्वलोकशरण्य ! मा

तुम गुण-रहित हो; यदि उसे नहीं छोड़ते तो विलय (प्रलय) काल की अग्नि-ज्वालाओं के समान तीक्ष्ण वाणों से समर में तुम्हारा सारा गर्व भंग करूंगा।" १७६२ [व.] रुक्मि के यों कहने पर नगधर (गिरिधारी-कृष्ण) ने हँसकर एक वाण से उसका कोदंड (धनुष) तोड़कर, छ शरों (वाणों) से उसका शरीर भेदकर, आठ विशिखाओं (तीरों) से उसके घोड़ों को गिराकर, दो तीरों से सारथि को मारकर ,तीन तीक्ष्ण वाणों से उसका केतन (झंडा) गिरा दिया। जब रुक्मि ने एक और कमान लिया तो उसे भी तोड़ा, फिर एक धनुष पकड़ने पर उसे भी टूक-टूक किया; यों क्रम से परिघ (गँड़ासा), पट्टिस (खाँड़ा), शूल (भाला), ढाल-तलवार, शक्ति-तोमर आदि जो-जो हथियार रुक्मि ने धारण किये उन सबको कृष्ण ने चूर-चूर कर दिया। [परन्तु] इतने से तृप्त न होकर रुक्मि रथ से उतरकर खड्गहस्त हो (हाथ में तलवार लेकर) दवानल पर गिरनेवाली टिड्डी की भाँति, कृष्ण पर झपट पड़ा, तो उसने [रुक्मि के] खड्ग और कवच चूर्ण करके, अपना करवाल खींचकर झड़झड़ाया (जोर से हिलाया) जिसकी चमक-दमक छितरती रही। कृष्ण को— "उसका सिर काट डालूंगा" —कहते हुए आगे लपक चलते देखकर रुक्मिणी उसे रोक कर, उसके चरणारविंद (चरणकमल) पकड़कर यों बोली : १७६३
[मत्त.] "हे सन्नुतामर (देववंद्य) ! कीर्तिशोभित ! सर्वलोक-शरण्य !

यन्न यीतडु नेडु चेसें महापराधमु नी येडन्
नन्नु मन्नन चेसि कावु मनाथनाथ ! दयानिधी ! ॥ 1764 ॥

मत्त. कल्ललेदनि विन्नविचुट गादु वल्लभ ! यीतनिन्
ब्रल्लदुं दॅग जूचितेनियु भाग्यवंतुल मैति मा
कल्लुडय्ये मुकुंदुडीश्वरुडंचु मोदितुलैन मा
तल्लिदंड्रुलु पुत्रशोकमु दालिच चिक्कुदुरीश्वरा ! ॥ 1765 ॥

म. अनि डग्गुत्तिकतो महाभयमुतो नाकंपितांगंबुतो
विनत श्रांत मुखंबुतो श्रुतिचलद्वेणी कलापंबुतो
गनुदोयिन् जडिगोन्न बाष्पमुलतो गन्याललामंबु स्रो-
क्किकन रुक्मि दॅगन्नेय बोक मगिडॅन् गृष्णुंडु रोचिष्णुडै ॥ 1766 ॥

व. इट्लु चंपक, बावा ! रम्मनि चिरुनगवु नगुचु, वानिं बट्टि बंधिंचि, गड्डंबुनु, मीसंबुनुं, दलयुनु नोक कत्तिवाति यम्मुन रेवुलु वारं गोरिगि, विरूपिं जेसें। अंतट यदुवीरुलु परसैन्यंबुलं बारदोलि, तत्समीपंबुनकु वच्चिरि। अप्पुडु हतप्रायुंडै, कट्टुवडियुन्न रुक्मि जूचि, करुण चेसि, बलभद्रुंडु बंधंबुलु विडिचि, हरिनि डग्गरि, यिट्लनियें ॥ 1767 ॥

मेरा भाई निश्चय नहीं कर सका कि तुम ईश्वर हो, देवदेव हो; उसने आज तुम्हारे प्रति घोर अपराध किया है; हे अनाथनाथ ! हे दयानिधि ! मेरा सम्मान (आदर) करके उसे बचाओ। १७६४ [मत्त.] हे प्रिय ! मैं यह नहीं कहती कि भाई से अपराध नहीं हुआ, किंतु हे ईश्वर ! मैं यह विनती कर रही हूँ कि यदि तुम इस दुष्ट का वध कर डालोगे तो मेरे माता-पिता, जो इस समय यह कहकर हर्षित होते होंगे कि मुकुंद, ईश्वर हमारा दामाद हुआ है, पुत्रशोक पाकर कृशित (क्षीण) हो जायेंगे।" १७६५ [म.] यों कहकर उस कन्याललाम (कन्यारत्न) रुक्मिणी, रुद्धकंठ से महाभय (भीति) से, कंपित शरीर से, विनत (झुके) श्रांत (खिन्न) मुख से, कान पर हिलने-वाली वेणी (बालों की चोटी) से, आँखों से झड़ते बाष्पों (आँसुओं) से कृष्ण के चरणों पर गिरी; तब कृष्ण रोचिष्णु (प्रकाशवान्) होकर रुक्मि का वध करने न जाकर लौट पड़ा। १७६६ [व.] यों उसका प्राण न लेकर— "हे श्यालक ! आओ" कहकर, मुस्कुराते हुए [कृष्ण ने] रुक्मि को पकड़कर बाँध दिया; फिर उसकी दाढ़ी, मूँछ और सिर एक तलवार जैसी धार वाले बाण से साफ़ मूँड़ कर विरूप (विकृत) कर दिया। इतने में यादववीर शत्रु सेना को भगाकर कृष्ण के समीप आये। बलभद्र ने हतप्राय (मरे से) दीखनेवाले और बंधन में पड़े हुए रुक्मि को देखकर उस पर दया करके बंधन खोल कर हरि से यों कहा : १७६७ [कं.] "हे महात्मन् ! भीष्मनंदन को चले जाने को कहने के बदले यों उसका सिर

कं. तल मनक भीष्मनंदनु, तलयुनु मूतियुनु गॊरुग दगवे ! बंधुं
दलयुनु मूतियु गॊरुगुट, तल दरुगुटकंटॆ दुच्छतरमु महात्मा ! ॥ 1768 ॥

कं. कॊंदरु रिपुलनि कॊंदुनु
गॊंदरु हितुलंचु मेलु गूर्पवु निज मी-
वंदरियंदुनु समुडवु
पॊंदगनेलय्य ! विषमबुद्धि ननंता ! ॥ 1769 ॥

व. अनि वितर्किंचि पलिकि, रुक्मिणीदेवि नुपलक्षिंचि यिट्लनियॆ ॥ 1770 ॥

सहोदरुनि भंगमुनकु खिन्नयगु रुक्मिणीदेविनि बलभद्रुंडूरार्चुट

शा. तोडंबुट्टिनवानि भंगमुनकुन् दुःखिंचि मा कृष्णु नॆ-
ग्गाडं जूडकुमम्म ! पूर्वभवकर्माधीनमै प्राणुलन्
गीडुन् मेलुनु जॆंदु लेडॊकडु शिक्षिपंग रक्षिप नी
तोडंबुट्टुवु कर्मशेष परिभूतुंडय्यॆ नेडिय्यॆडन् ॥ 1771 ॥

कं. चंपॆडि दोषमु गलिगिन
जंपजनदु बंधुजनुल जनु विडुवंगा
जंपिन दोषमु सिद्धमु
चंपनु मरि येल मुन्न चच्चिनवानिन् ॥ 1772 ॥

और मूँछ मूँड़ना क्या उचित है ? बंधु का सिर और मूँछ मूँड़ना उसका सिर काटने से भी क्षुद्र कार्य (अपमान) है । १७६८ [कं.] हे अनंत ! कुछ लोगों को शत्रु कहकर उनको हानि, और कुछ लोगों को मित्र कहकर उनको भला, तुम कभी नहीं पहुँचाते हो; यह सत्य है कि तुम सबके लिए सम रहते हो; अब, हे आर्य ! यह विषम बुद्धि क्यों अपनाते हो ?" १७६९ [व.] इस प्रकार वितर्क करके रुक्मिणी देवी को लक्ष्य करके [बलराम ने] यों कहा : १७७०

सहोदर के अपमान से खिन्न हुई रुक्मिणी देवी को बलराम का सांत्वना देना

[शा:] "हे माई ! अपने सहजात (सहोदर) का जो अपमान हुआ उसके लिए दुख करते हुए हमारे कृष्ण को दोष मत दो (निंदा मत करो); प्राणियों को उनके पूर्वजन्म के कर्म के अधीन होकर हानि और लाभ प्राप्त होते रहते हैं; शिक्षित करनेवाला (दंड देनेवाला) और रक्षित करनेवाला कोई [और व्यक्ति] नहीं है; तुम्हारा सगा [भाई] अपने कर्मशेष के कारण आज यहाँ पर अपमानित हुआ है । १७७१ [कं.] मार डालने योग्य अपराध करने पर भी बंधुजनों का प्राण नहीं लेना चाहिए, उन्हें छोड़कर जाने देना उचित है; उन्हें मार डालने से दोष (पाप) लगेगा;

आ. ब्रह्मचेत भूमिपतुल की धर्मंबु, कल्पितंबु राज्यकांक्ष जेसि
तोडिचूलुनैन दोडबुट्टिनवाडु, चंपुचुंडु गूरचरितुडगुचु ॥ 1773 ॥

कं. भूमिकि धनधान्यमुलकु
भामलकुनु मानमुलकु ब्रभवमुनकुं
गामिंचि मीवु गानरु
श्रीमदमुन मानधनुलु चेनकुदुरोरुलन् ॥ 1774 ॥

व. विनुमु, दैवमायं जेसि, देहाभिमानुलैन मानवुलकुन् बगवाडु, बंधुंडु, नुदासीनुंडुननु मोहंबु सिद्धंबै युंडु। जलादुलयंदु जंद्रसूर्यादुलुन, घटादुलयंदु गगनंबुनु, बेक्के कानंबडु भंगि, देहधारुल कंदरिकि नात्म योक्कंडय्युनु, बेक्कंडै तोचु। आद्यंतंबुलु गल यी देहंबु द्रव्य प्राण गुणात्मकंबै, यात्मयंदु नविद्यचेत गल्पितंबै, देहिनि संसारंबुनं द्रिप्पु। सूर्युंडु तटस्थुंडै युंडं, ब्रकाशमानंबुलैन दृष्टिरूपंबुल बोलें नात्म तटस्थुंडै युंड, देहेंद्रियंबुलु प्रकाशमानंबुलगुनु। आत्मकु वेरोक्कटितोड संयोग वियोगंबुलु लेवु। वृद्धिक्षयंबुलु चंद्रकळलकुं गानि, चंद्रुनिकि लेनि कैवडि, जन्मनाशंबुलु देहंबुनकुगानि, यात्मकु गलुग नेरवु। निद्रबोयिनवा-

---

पहले ही मरे हुए को क्यों मारना ? १७७२ [आ.] एक भाई राज्य की कांक्षा (अभिलाषा) के कारण क्रूर बनकर अपने सगे (सहजात) भाई को भी मार डालता रहता है, यह धर्म राजाओं के लिए ब्रह्मा द्वारा कल्पित हुआ है। १७७३ [कं.] मानधन (अभिमानी) लोग अपनी संपत्ति (ऐश्वर्य) के मद में, भूमि, धन-धान्य, स्त्रियाँ, सम्मान, अधिकार आदि पाने की चाह रखकर अपना भविष्य (होनेवाला परिणाम) नहीं देखते, वे लोग दूसरों की हिंसा करते हैं। १७७४ [व.] और सुनो! देहाभिमानी मनुष्यों को दैवमाया के कारण, "यह शत्रु है, यह मित्र है और यह उदासीन है" —ऐसा मोह उत्पन्न होता है! यद्यपि सभी देहधारियों की आत्मा एक ही है फिर भी उन्हें अनेक होने का भान होता है, जैसे जल में सूर्य और चंद्र, तथा घट आदि में गगन (आकाश) अलग-अलग अनेक दिखाई देते हैं। आदि और अंत से युक्त यह देह द्रव्य, प्राण और गुणात्मक है, अविद्या के कारण वह आत्मा में कल्पित होती है, और देही को संसार में घुमाती रहती है। सूर्य [वस्तुओं से दूर] तटस्थ हो रहता है तो भी अनेक दृश्य और रूप उससे प्रकाशित होते हैं। उसी भाँति आत्मा के तटस्थ रहने पर भी देह और इन्द्रियाँ उससे प्रकाशमान हो रहती हैं। किसी दूसरी वस्तु से आत्मा का न संयोग (मिलन) है, न वियोग (अलगाव)। जिस प्रकार वृद्धि और क्षय चंद्रकला (चाँदनी) को होती है न कि चंद्रमा को, उसी प्रकार जन्म और नाश देह को होते हैं, आत्मा

डात्मनु विषय फलानुभवंबुलु सेयिचु तेरंगुन, नेरुकलेनिवाडु निजमुगानि यर्थमुनंदु भवमु नोंदुचुंडु गावुन ॥ 1775 ॥]

कं. अज्ञानजमगु शोकमु, विज्ञान विलोकनमुन विडुवुमु नीकुं
प्रज्ञावतिकि वगुने, यज्ञानुलभंगि वगव नंभोजमुखी ! ॥ 1776 ॥

व. इट्लु बलभद्रुनिचेत देलुपंबडि, रुक्मिणीदेवि दुःखंबु मानि युंडे। अट रुक्मि यनुवाडु प्राणावशिष्टुंडै, विडुवबडि, तन विरूप भावंबुनकु नेरियुचु हरि गेलिचि कानि कुंडिनपुरंबु जोरननि प्रतिज्ञ सेसि, तत्समीपंबुन नुंडे। इट्विधंबुन ॥ 1777 ॥

कं. राजीवलोचनुडु हरि
राजसमूहमुल गेलिचि राजसमोप्पन्
राजितयगु तनपुरिकिनि
राजानन देच्चे बंधुराजि नुतिपन् ॥ 1778 ॥

श्रीकृष्णुंडु रुक्मिणी देविनि पेंड्लियाडुट

व. अंत नय्यादवेंद्रुनि नगरंबु समारब्ध विवाह कृत्यंबुनु, प्रवर्तमान गीत वाद्य

को नहीं हो सकते। जैसे सोता हुआ मनुष्य आत्मा से विषयों के फलों (सुख-दुख आदि) की अनुभूति कराता है, वैसे ही अज्ञानी मनुष्य झूठे अर्थों (विषयों) में जन्म लेता रहता है। अतः १७७५ [कं.] तुम विज्ञान की दृष्टि से देखकर यह शोक छोड़ दो, जो अज्ञान के कारण से उत्पन्न हुआ है। हे अंभोजमुखी (कमल-समान मुखवाली)! तुम प्रज्ञाशालिनी को अज्ञानियों की तरह दुःख करना उचित नहीं है। १७७६ [व.] यों वलभद्र से समझायी जाकर रुक्मिणी देवी दुःख छोड़े रही। उधर रुक्मि विमुक्त किये जाने पर भी प्राणावशिष्ट होकर अपने विकृत रूप का संताप सहते हुए यह प्रतिज्ञा करके समीप में पड़ा रहा कि हरि को जीतकर ही मैं कुंडिनपुर में प्रवेश करूँगा। इस प्रकार··· १७७७ [कं.] वह राजीव-लोचन (कमललोचन) हरि, राजस (गुण) से शोभित हो, उस राजानन (चंद्रमुखी) को अपने विराजित (शोभायमान) पुरी में ले आया, जिसे देख उसकी बंधुराजि (बन्धुवर्ग) उसकी नुति (प्रशंसा) करती रही। १७७८

श्रीकृष्ण का रुक्मिणीदेवी से विवाह कर लेना

[व.] पश्चात् उस यादवेंद्र—कृष्ण के नगर में विवाह के कृत्य (काम-काज) समारब्ध हुए (शुरू हुए); गीत, वाद्य (बाजे), नृत्य प्रवर्तित हुए

नृत्यंबुनु, प्रतिगृहालंकृत विलसिताशेष नर नारीवर्गंबुन्, परिणय महोत्सव समाहूयमान महीपाल गज घटा गंडमंडल दान सलिलधारा सिक्त मार्गंबुनु, प्रति द्वार मंगळाचार संघटित क्रमुक कदळिका कर्पूर कुंकुमागरु धूप दीप परिपूर्ण कुंभंबुनु, विभूषित सकल गृहवेदिका कवाट देहळी स्तंभंबुनु, विचित्रकुसुमांबर रत्नतोरण विराजितंबुनु, समुद्धूत केतन विभ्राजितंबुनुनै युंडे। अय्यवसरंबुन ॥ 1779 ॥

म. ध्रुवकीर्तिन् हरि पेंड्लियाडे निज चेतोहारिणिन् मान वै-
भव गांभीर्य विहारिणिन् निखिल संपत्कारिणिन् साधु बां-
धव सत्कारिणि पुण्यचारिणि महादारिद्र्य संहारिणिन्
सुविभूषांबरधारिणिन् गुणवती-चूडामणिन् रुक्मिणिन् ॥ 1780 ॥

कं. सतुलुं दारुनु पौरुलु
हितमति गानुकलु वेच्चि यिच्चिरि करुणो-
न्नत वर्धिष्णुलकुनु मा
नित रोचिष्णुलकु रुक्मिणी कृष्णुलकुन् ॥ 1781 ॥

(चल पड़े)। हर एक घर में अशेष नर-नारीवर्ग अपना अलंकार करके विलसित हुए; परिणय (विवाह) महोत्सव में आहूत (आमंत्रित) महीपालों (राजाओं) के गजसमूहों के गंडस्थलों से [निकले] दान-सलिल (जल)-धाराओं से [नगर के] मार्ग सींचे गये; प्रत्येक द्वार (ड्योढ़ी) पर मंगलाचारपूर्वक क्रमुक (सुपारी), कदलिका (केले), कुंकुम, अगरु, धूप, दीपों से परिपूर्ण पूर्णकुंभ रखे गये; घरों की वेदिकाएँ (चबूतरे), कवाट (किवाड़), देहली, स्तंभ विभूषित हुए (सुसज्जित हुए); सारा नगर विचित्र (कई रंगों के) कुसुम (पुष्प), अंबर (कपड़े, पर्दे), रत्नतोरणों (बंदनवारों) से विराजित हुआ (सुंदर बन पड़ा)। ऊपर उड़ाये गये केतनों (झंडों) से विभ्राजित (प्रकाशमान) रहा। उस अवसर पर… १७७९ [म.] हरि (कृष्ण) ने उस (रुक्मिणी) से विवाह कर लिया जो स्थिर कीर्ति (प्रसिद्धि) प्राप्त कर चुकी थी, जो अपने चित्त को हर चुकी थी, जो अभिमान, वैभव और गांभीर्य से विचरण करती थी, समस्त संपत् (ऐश्वर्य) देनेवाली, साधु और बंधुओं का आदर सत्कार करनेवाली, पुण्याचरण करनेवाली, महादारिद्र्य का संहार (नाश) करनेवाली, उत्तम आभूषण और वस्त्र धारण किये हुए थी, और गुणवतियों में चूड़ामणि (श्रेष्ठ) बनी हुई थी। १७८० [कं.] पौरजनों (नगरवासियों) ने अपनी-अपनी पत्नियों-समेत स्नेहपूर्वक उन रुक्मिणी-कृष्णों को, जो करुणा [गुण] से महोन्नत बने हुए थे, और जो सम्मानित थे और प्रकाशमान थे, कई उपहार लाकर दिये। १७८१ [कं.] हरि के विवाह से केकय, कुरु,

कं. हरि पॆंड्लिकि गैकेयक
कुरु सृंजय यदु विदर्भ कुंति नरेंद्रुल्
परमानंदमु बॊंदरि
धरणीशुललोन गाढ तात्पर्यमुलन् ॥ 1782 ॥

कं. हरि यी तॆऱगुन रुक्मिणि
नरुदुग गौनिवच्चि पॆंड्लियाडुट विनि दु-
ष्कर कृत्यमनुचु वॆऱगं-
दिरि राजुलु राजसुतुलु दिक्कुल नॆल्लन् ॥ 1783 ॥

आ. अनघ ! यादिलक्ष्मियैन रुक्मिणितोड
ग्रीड सलुपुचुन्न कृष्णु जूचि
पट्टणंबु लोनि प्रजलुल्लसिल्लिरि
प्रीतुलगुचु मुक्तभीतुलगुचु ॥ 1784 ॥

व. अनि चॆप्पि ॥ 1785 ॥

कं. कुवलय रक्षातत्पर !
कुवलयदळ नीलवर्ण कोमलदेहा !
कुवलयनाथ शिरोमणि !
कुवलयजन विनुत विमलगुण संघाता ! ॥ 1786 ॥

मा. सरसिजनिभहस्ता ! सर्वलोकप्रशस्ता !
निरुपम शुभमूर्ती ! निर्मलारूढकीर्ती !

सृंजय, यदु, विदर्भ और कुंति के नरेशों ने परम आनन्द प्राप्त किया; धरणी पर के राजाओं में (कृष्ण के विवाह के प्रति) गाढ़ सद्भाव (तत्परता) उत्पन्न हुआ। १७८२ [कं.] हरि ने रुक्मिणी को इस अपूर्व रीति से लाकर जो ब्याह कर लिया था, वह [वार्ता] सुनकर चारों दिशाओं के राजा और राजकुमार लोग उसे दुष्कर (अत्यन्त कठिन) कार्य कहकर आश्चर्यचकित हुए। १७८३ [आ.] हे अनघ (पुण्यमान्) ! आदिलक्ष्मी— रुक्मिणी के साथ क्रीड़ा (लीला) करते हुए कृष्ण को देखकर नगर की प्रजा, भय से विमुक्त हो, संतोषपूर्वक उल्लसित (आनंदित) हुई। १७८४ [व.] इस प्रकार कहकर… १७८५ [कं.] हे कुवलय (भूमंडल)-रक्षातत्पर ! कुवलयदल (कमलपत्र)-समान नीलवर्ण और कोमल देहवाले ! कुवलयनाथ-शिरोमणि (भूमंडल के राजाओं के शिरोभूषण) ! कुवलयजन-विनुत (भूमंडल-के जनों से स्तुत्य) ! विमल गुणों के संघात (समूह) ! [कृष्ण तुम्हें प्रणाम] १७८६ [मा.] हे सरसिज-निभ-हस्त (कमल-समान हस्तवाले) ! सर्वलोक-प्रशस्त ! निरुपम-

परहृदयविदारी ! भक्तलोकोपकारी !
गुरुबुधजनपोषी ! घोरदैतेय शोषी ! ॥ 1787 ॥

गद्य इदि श्रीपरमेश्वर करुणाकलित कविताविचित्र, केसनमंत्रिपुत्र, सहज पांडित्य, पोतनामात्यप्रणीतंबयिन श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणमुनंदु देवकीदेवि विवाहंबुनु, गगनवाणी श्रवणंबुनु, कंसोद्रेकंबुनु वसुदेव प्रार्थनंबुनु, योगमायाप्रभावंबुनु, बलभद्रुनि जन्मंबुनु, ब्रह्मादिसुरस्तोत्रंबुनु, कृष्णावतारंबुनु, घोषप्रवेशंबुनु, योगनिद्राचरितंबुनु, नंदपुत्रोत्सवंबुनु, पूतनासंहारंबुनु, शकटभंजनंबुनु, तृणावर्तु मरणंबुनु, गर्गागमनंबुनु, नारायणादि नामनिर्देशंबुनु, बालक्रीडयुनु, मृद्भक्षणंबुनु, वासुदेव वदन गह्वर विलोक्य मानाखिल लोकालोकनंबुनु, नवनीत चौर्यंबुनु, यशोदा-रोषंबुनु, उलूखलबंधनंबुनु, अर्जुनतरु युगळ निपातनंबुनु, नलकूबर मणिग्रीवुल शापमोक्षणंबुनु, बृंदावन गमनंबुनु, वत्सपालनंबुनु, वत्सासुरवधयुनु बकदनुज विदारणंबुनु, अघासुरमरणंबुनु, वत्सापहरणंबुनु, नूतन वत्सबालक कल्पनंबुनु, ब्रह्मविनुतियु, गोपालनंबुनु, गार्दभासुर दमनंबुनु, काळियफणि मर्दनंबुनु, गरुड काळियनाग विरोधकथनंबुनु, प्रलंबासुर हिंसनंबुनु, दवानल पानंबुनु,वर्षर्तुवर्णनंबुनु, शरत्काल लक्षणंबुनु,

---

शुभ-मूर्ति ! निर्मल-आरूढ़ (स्थिर) कीर्तिवाले ! पर (शत्रु) हृदय-विदारी (तोड़नेवाले) ! भक्तलोकोपकारी ! गुरु-बुधजन-पोषी ! घोर-दैतेय-शोषी (घोर-राक्षस-संहारी) ! [देव तुम्हें नमस्कार] १७८७ [गद्य] यह श्री परमेश्वर-करुणाकलित-कविताविचित्र, केसनमंत्री-पुत्र, सहज-पांडित्य, पोतनामात्य प्रणीत श्रीमहाभागवत नामक महापुराण में : देवकी देवी का विवाह; गगनवाणीश्रवण; कंसोद्रेक; वसुदेव-प्रार्थना; योग-माया-प्रभाव; बलभद्रजन्म; ब्रह्मादि सुरों का स्तोत्र; कृष्णावतार; घोष-प्रवेश; योगनिद्राचरित; नंद-पुत्रोत्सव; पूतना-संहार; शकट-भंजन; तृणावर्त-मरण; गर्गागमन; नारायणादि-नामनिर्देश; बालक्रीड़ा; मृद्भक्षण; वासुदेव-वदन-गह्वर-विलोक्यमान-लोकालोकन; नवनीत-चौर्य; यशोदा-रोष; उलूखल-बंधन; अर्जुनतरुयुगल-निपातन; नलकूबर-मणिग्रीव-शाप-मोक्षण; बृन्दावन-गमन; वत्सपालन; वत्सासुर-वध; वक दनुज-विदारण; अघासुर-मरण; वत्सापहरण; नूतन-वत्स-बालक-कल्पना; ब्रह्म-विनुति; गोपालन; गर्दभासुर-दमन; कालियफणि-मर्दन; गरुड़-कालियनाग-विरोध-कथन; प्रलंबासुर-हिंसन; दावानल-पान; वर्षर्तुवर्णन; शरत्काल-लक्षण; वेणु-विलास; हेमंत-समय-समागम; गोपकन्याचरित, हविष्य-व्रत; कात्यायनी सेवन; वल्लवी-वस्त्रापहरण; विप्रवनिता-दत्तान्न-भोजन; इन्द्रयाग-निवारण; नंद-मुकुंद-संवाद; पर्वत-भंजन; पाषाण-सलिल-वर्षण;

वेणुविलासंबुनु, हेमंतसमय समागमंबुनु, गोपकन्या चरित हविष्यव्रतंबुनु, कात्यायनी सेवनंबुनु, वल्लवी वस्त्रापहरणंबुनु, विप्रवनिता वत्तान्न भोजनंबुनु, इंद्रयाग निवारणंबुनु, नंदमुकुंद संवादंबुनु, पर्वतभंजनंबुनु, पाषाण सलिल वर्षंबुनु, गोवर्धनोद्धरणंबुनु, वरुण किंकरुंडु नंदुनि गॊनिपोयिन हरि वॆच्चुटयुनु, वेणुपूरणंबुनु, गोपकाजन घोषनिर्गमनंबुनु, यमुनातीर वनविहारणंबुनु, कृष्णांतर्धानंबुनु, घोषकामिनी गण परिदेवनंबुनु, गोपिकान्वेषणंबुनु, गोपिकागीतलुनु, हरि प्रसन्नतयुनु, रासक्रीडनंबुनु, जलकेळियुनु, सर्परूपकुंडयिन सुदर्शन विद्याधरुंडु हरिचरण ताडनंबुन निजरूपंबु वडयुटयुनु, शंखचूडुंडनु गुह्यकुनि वधिचुटयुनु, वृषभासुर विदळनंबुनु, नारदोपदेशंबुन हरिजन्मकथ नॆऱिगि कंसुंडु देवकी वसुदेवुल बद्धुलं जेयुटयुनु, घोटकासुरुंडयिन केशियनु दनुजुनि वधिचुटयुनु, नारदस्तुतियुनु, व्योमदानव मरणंबुनु, अक्रूरागमनंबुनु, अक्रूर रामकृष्णुल सल्लापंबुनु, घोषनिर्गमंबुनु, यमुनाजलांतराळंबुन नक्रूरुंडु हरि विश्वरूपमुनु गांचुटयुनु, अक्रूर स्तवंबुनु, मथुरानगर प्रवेशंबुनु, रजकवधयुनु, वायक मालिकुलचे सम्मानमॊंदुटयुनु, कुब्जा प्रसादकरणंबुनु, धनुर्भंगंबुनु, कंसु दुस्स्वप्नंबुनु, कुवलयापीड पीडनंबुनु, रंगस्थल प्रवेशंबुनु,

---

गोवर्धनोद्धरण; वरुणकिंकर द्वारा नंद का हरण होने पर कृष्ण का उसे वापस लाना; वेणुपूरण; गोपिकाजन-घोष-निर्गमन; यमुनातीर-वन-विहरण; कृष्णांतर्धान; घोषकामिनी-परिदेवन; गोपिकान्वेषण; गोपिका-गीत; हरि की प्रसन्नता-रासक्रीड़ा तथा जलकेली; सर्परूपी सुदर्शन विद्याधर का हरिचरण के ताड़न से निजरूप प्राप्त करना; शंखचूड़ नामक गुह्यक का वध; वृषभासुर-विदलन; नारद का उपदेश सुन, हरिजन्म की कथा जानकर कंस का देवकी-वसुदेव को बाँध रखना; घोटकासुर-केशि का वध करना; नारद-स्तुति; व्योमदानव-मरण; अक्रूरागमन; अक्रूर-रामकृष्ण-सल्लाप; घोषनिर्गमन; जलांतराल में अक्रूर का हरि-विश्वरूप-संदर्शन; अक्रूर द्वारा किया गया स्तवन; मथुरानगर में प्रवेश; रजक-वध; वायक-मालिक द्वारा सम्मान पाना; कुब्जा-प्रसाद-करण; धनुर्भंग; कंस का दुस्स्वप्न; कुवलयापीड़-पीड़न; रंगस्थल-प्रवेश; चाणूर-मुष्टिकों का वध; कंस-वध; वसुदेव-देवकी-बंध-मोक्षण; उग्रसेन-राज्य-स्थापना; राम-कृष्णों का सांदीपनि से विद्याभ्यास करना; संयमिनी-नगर-गमन; गुरु-पुत्र-दान; उद्धव की घोषयात्रा; भ्रमरगीत; कुब्जावास-गमन; अक्रूर का करिनगर पहुँच कुंती देवी को सांत्वना देना; कंस-भार्या-अस्ति-प्रास्तियों ारा जरासंध को कंस-मरण-वार्ता का सूचित होना; जरासंध-आक्रमण;

चाणूरमुष्टिकु वधयुनु, कंसवधयुनु, वसुदेवदेवकी बंधमोक्षणंबुनु, उग्रसेनु राज्यस्थापनंबुनु, रामकृष्णुलु सांदीपनिवलन विद्यल नभ्यसिंचुटयु संयमिनी नगरगमनंबुनु, गुरुपुत्र दानंबुनु, उद्धवुनि घोषयात्रयुनु, भ्रमर-गीतलुनु, कुब्जावास गमनंबुनु, करिनगरंबुनकु नक्रूरुंडु सनि कुंतीदेवि नूरार्चुटयुनु, कंसभार्यलगु नस्ति प्रास्तुलु जरासंधुनकु गंसु मरणंबु वॅर्रिंगिंचुटयुनु, जरासंधुनि दंडयात्रयुनु, मथुरानगर निरोधनंबुनु, युद्धंबुन जरासंधुंडु सप्तदशवारंबुलु पलायितुं डगुटयुनु, नारदप्रेरितुंडै कालयवनुंडु मथुरपै दाडिवॅडलुटयुनु, द्वारकानगर निर्माणंबुनु, मथुरापुर निवासुलं दन योगबलंबुन हरि द्वारकानगरंबुनकु दॅच्चुटयुनु, कालयवनुंडु हरि वॅंटं जनि, गिरिगुहयंदु निद्रितुंडयिन मुचुकुंदुनि दृष्टिवलन नीरुगुटयुनु, मुचुकुंदुंडु हरिनि संस्तुति चेसि तपंबुनकुं जनुटयुनु, जरासंधुंडु ग्रम्मर रामकृष्णुलपै नेतुंचटयुनु, प्रवर्षण पर्वतारोहणंबुनु, गिरिदहनंबुनु, गिरि डिग्ग नुर्रिकि रामकृष्णुलु द्वारकं जनुटयु, रुक्मिणी जन्मंबुनु, रुक्मिणी संदेशंबुनु, वासुदेवागमनंबुनु, रुक्मिणी ग्रहणंबुनु, राजलोक पलायनंबुनु, रुक्मियनुवानि भंगंबुनु, रुक्मिणी कल्याणंबुनु, ननु कथलुगल दशमस्कंधंबुनंदु पूर्वभागमु संपूर्णमु ॥ 1788 ॥

मथुरा-नगर का निरोधन; युद्ध में जरासंध का सत्रह बार पलायित होना (भाग जाना); नारद-प्रेरित कालयवन का मथुरा पर चढ़ आना; द्वारका-नगर-निर्माण; मथुरापुरवासियों का योगबल से हरि के द्वारा द्वारका नगर में पहुँचाया जाना; कालयवन का हरि का पीछा करते हुए गिरिगुहा में निद्रित मुचुकुंद की कोपदृष्टि के कारण भस्म हो जाना; मुचुकुंद का हरि का संस्तवन करके तप करने चला जाना; जरासंध का फ़िर से राम और कृष्ण पर चढ़ाई करना; प्रवर्षण-पर्वतारोहण; गिरि-दहन; गिरि पर से कूदकर राम-कृष्ण का द्वारका पहुँचना; रुक्मिणी का जन्म; रुक्मिणी का संदेशा; वासुदेवागमन; रुक्मिणी-ग्रहण; राजलोक-पलायन; रुक्मि का [गर्व] भंग; रुक्मिणी-कल्याण (विवाह) नामक कथाओं से समन्वित दशम स्कंध का पूर्व-भाग सम्पूर्ण हुआ। १७८८

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(१० से १२ स्कन्ध)

ॐ

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(दशम स्कन्धमु — उत्तरभागमु)

प्रद्युम्नोपाख्यानमु

कं. श्रीकर ! परिशोभित, रत्नाकर ! कमनीय गुणगणाकर ! कारु-
ण्याकर ! भीकर शरधाराकंपित दानवेंद्र ! रामनरेंद्रा ! ॥ 1 ॥

अध्यायमु—५५

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनि श्रेष्ठुलकु, निखिल पुराण व्याख्यान वैखरी समेतुंडैन सूतुंडिट्लनियें। अट्लु प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुंडु रुक्मिणी परिणयानंतरंबुननैन कथावृत्तांतंबंतयु विनिर्पिपुमनिन शुक योगींद्रुंडिट्लनियें ॥ 2 ॥

(दशम स्कन्ध—उत्तरभाग)

[कं.] हे श्रीकर ! परितोषित-रत्न-कर ! कमनीय गुण-गुणों के आकर (स्थान) ! कारुण्याकर, भीकर-शर धाराकंपित-दानवेंद्र ! हे राम नरेंद्र ! [तुम्हें प्रणाम ।] १

अध्याय—५५

[व.] महनीय गुण गरिष्ठ उन मुनि श्रेष्ठों से निखिल पुराण-व्याख्यान-वैखरी-समेत सूत ने इस प्रकार कहा । उस प्रकार प्रायोपविष्ट परीक्षित नरेंद्र ने कहा "रुक्मिणी परिणय के अनंतर संपन्न सारा कथा-वृत्तांत सुनाओ" तो शुकयोगींद्र ने इस प्रकार कहा । २ [उ.] ईश्वर के नेत्र की ज्वालाओं में दग्ध होकर, बाद को देह-लब्धि के लिए लगातार

उ. तामरसाक्षु नंशमुन दर्पकुडीश्वरु कंटि मंटलन्-
दामुनु दग्धुडै पिदप दत्परमेशुनि देहलब्धिकै
वेमरु निष्ठ जेसि हरिवीर्यमुनं बभविंचॆ रुक्मिणी-
कामिनि गर्भमंदसुरखंडनु मारट मूर्तियो यनन् ॥ 3 ॥

व. अंत ना डिंभकुंडु, प्रद्युम्नुंडनु पेर विख्यातुंडय्यॆ। आ शिशुवु सूतिका-गृहंबुनं दल्लि पॊंदिगिटनुंड दनकु शत्रुंडनि यॆरिगि शंबरुंडनु राक्षसुंडु तन माया बलंबुनं गामरुपियै वच्चि कॊनिपोयि समुद्रंबुलो वैचि तन गृहंबुनकुं जनियॆ। अंत ना शावकुंडु जलधि जलंबुन दिगंबड नॊडिसि यॊक महा मीनंबु म्रिंगॆ नंदु ॥ 4 ॥

कं. जालि बडि पारु जलचर, जालंबुल बोवनीक चनि रोषाग्नि
ज्वाललु निगुडग नूरक, जालंबुलु वैचि पट्टु जालरुलंतन् ॥ 5 ॥

व. समुद्रंबुलोन ना मीनंबुनु, दत्सहचरंबुलैन मीनंबुलनु बट्टिकॊनि तॆच्चि शंबरुनकुं गानुकगा निच्चिन नतंडु वंडि तॆंडनि महानस गृहंबुनकुं बंपिन ॥ 6 ॥

कं. राजनगरि यडबाललु
राजीबमु कडुपु व्रच्चि राजनिभास्युन्
राजशिशुवु गनि चॆप्पिरि
राजीव दळाक्षियैन रतिकि नरेंद्रा ! ॥ 7 ॥

तत्परमेश की निष्ठा (तपस्या) करके दर्पक (मन्मथ) तामरसाक्ष के अंश में, हरि के वीर्य से, रुक्मिणी कामिनी के गर्भ से (इस प्रकार) प्रभावित हुआ (पैदा हुआ) मानों असुर-खंडन (श्रीकृष्ण) का प्रतिरूप हो। ३ [व.] बाद को वह डिंभक (बालक) प्रद्युम्न नाम से विख्यात हुआ। जब वह शिशु सूतिका गृह में माँ का स्तन्य पानकर रहा था, [उसे] अपना शत्रु समझकर शंबर नामक राक्षस अपनी माया के बल से कामरूपी बनकर आकर [उसे] ले जाकर (और) समुद्र में फेंककर, अपने गृह चला गया। तब उस शावक (शिशु) के जलधि-जल में धँस जाने पर एक महामीन ने— ऊपर कूदकर पकड़कर, [उसे] निगल लिया। तब, ४ [कं.] जाल में फँसकर [निकल] जानेवाले जलचर-जाल (-समूह) को जाने न देकर, जाकर, रोषाग्नि की ज्वालाओं के व्याप्त होने पर लगातार जाल फैलाकर पकड़नेवाले मछुओं ने तब ५ [व.] समुद्र में उस मीन को (और) उसके सहचर मीनों को पकड़ लाकर शंबर को भेंट के रूप में दिया तो उसने 'पकाकर लाओ' कहकर महानस-गृह (रसोईघर) में भेज दिया तो ६ [कं.] हे नरेंद्र ! राजनगरी (अंतः पुर) में रहनेवाली स्त्रियों ने राजीव (मछली विशेष) के पेट को चीरकर राज निभास्य

व. अंत, नारदुंडु वच्चि बालकुनि जन्मंबुनु शंबरोद्योगंबुनु मीनोदर प्रवेशंबुनुं जॅप्पिन विनि या रति मायावतियनु पेर शंबरुनि यिंट वातिव्रत्यंबु सलुपुचु दहन-दग्धुंडैन तन पॅनिमिटि शरीर धारणंबु सेयुट कॅदुरु चूचुचुन्न यदि गावुन नय्यर्भकुंडु दर्पकुंडनि तॅलिसि मॅल्लन पुत्रार्थिनियैन तॅरंगुन शंबरुनि यनुमति वडसि सूपकारुल यॉद्द नुन्न पापनि दॅच्चि पोषिंचुचुंडॅ। आ कुमारुंडनु शीघ्र कालंबुन नारूढयौवनुंडै ॥ 8 ॥

कं. सुंदरमगु तन रूपमु, सुंदरु लोकमारु देरि चूचिन जालुन्
सौंदर्यमेमि चॅप्पनु, बॉंदेदमनि डायु बुद्धि बुट्टिंचु नृपा ! ॥ 9 ॥

सी. चक्कनि वारल चक्कदनंबुन कुपमिप नॅव्वडु योग्युडय्यॅ
मिक्किलि तपमुन मॅरयु नंबिककुनै शंकरु नॅव्वडु सगमु सेसॅ
ब्रह्मत्वमुनु बॉंदि परगु विधातनु वाणिकै यॅव्वडु वाडि चॅरिचॅ
वेयि डागुल तोडि विबुधलोकेशुनि मूर्तिकि नॅव्वडु मूलमय्यॅ

ते. मुनुल तालिमि कॅव्वडु मुल्लु सूपु
मगल मगुवल नॅव्वंडु मरुलु कॉलुपु
गुसुमधनुवुन नॅव्वंडु गॉनु विजयमु
चिगुरुवालुन नॅव्वंडु चिक्कुपरचु ॥ 10 ॥

(चंद्रमुखवाले) राज शिशु को देखकर, राजीवदलाक्षी रती से कहा। ७ [व.] तब नारद के आकर बालक के जन्म, शंबरोद्योग (और) मीनोदर-प्रवेश [के बारे में] कहने पर सुनकर वह रती जो मायावती नाम से शंबर के घर में पातिव्रत्य करते हुए दहन दग्ध अपने पति के शरीर धारण करने की प्रतीक्षा कर रही थी, उस अर्भक (बालक) को दर्पक (मन्मथ) जानकर धीरे-धीरे पुत्रार्थिनी की तरह, शंबर की अनुमति पाकर सूपकारों के पास रहनेवाले शिशु को लाकर [उसका] पोषण कर रही थी। वह कुमार भी शीघ्र काल में आरूढ़-यौवन बन गया, ८ [कं.] हे नृप ! उसके सुन्दर रूप को सुंदरियाँ एक बार ध्यान से देखें तो पर्याप्त है। उसके सौंदर्य के विषय में क्या कहूँ ? [वह सौंदर्य] (उसको) पाने के लिए उसके पास जाने की इच्छा पैदा करता। ९ [सी.] सुंदरों के सौंदर्य से उपमान देने के लिये जो योग्य हुआ, बड़े तप से प्रकाशमान होनेवाली अंबिका के लिये शंकर को जिसने आधा (अर्धनारीश्वर) बनाया, ब्रह्मत्व को पाकर आनंदित रहनेवाले विधाता के नैशित्य को वाणी (सरस्वती) के लिये जिसने कुंठित बनाया; सहस्र अक्षियों से विबुध-लोकेश (इन्द्र) की मूर्ति के लिये जो मूल हुआ, [ते.] मुनियों की क्षमता को जो कंटकित बनाता था, स्त्रियों और पुरुषों में जो मोह पैदा करता था, (अपने) कुसुम धनुष से जो विजय को प्राप्त करता था, कोंपल रूपी खड्ग से जो (लोगों

व. अनि तन्नु लोकुलु विनुतिंचु प्रभावंबुलु गलिग पद्मदळलोचनुंडुनु प्रलंब बाहुंडुनु जगन्मोहनाकारुंडुनैन पंचबाणुनि गनि लज्जा हास गर्भितंबुलैन चूपुलं जूचुचु मायावति सुरत भ्रांति जेसिनं जूचि प्रद्युम्नुंडिट्लनियें ॥ 11 ॥

मत्त. ना तनूभवुडीतडंचुनु नान यिंचुक लेक यो
मात! नीविदि येमि? नेडिट्टु मातृ भावमु मानि सं-
प्रीति गामिनि भंगि जेसेंदु पेक्कु विभ्रमसुल् महा
ख्यात वृत्तिकि नीकु धर्ममु गादु मोहमु सेयगान् ॥ 12 ॥

व. अनिन रति यिट्लनियें। नीवु नारायण नंदनुंडवैन कंदर्पुंडवु। पूर्वकालंबुन नेनु नीकु भार्यनैन रतिनि। नीवु शिशुववै युंडुनेंड निर्दयुंडै दोंगिलि तल्लि दोंरंगजेसि शंबरुंडु कोंनिवच्चि निन्नु नीरधिलो वचिन नोक्क मीनंबु म्रिंगें। मीनोदरंबु वेंडलितीवु। मीदटि कार्य माकर्णिपुमु ॥ 13 ॥

कं. मायावि वीडु दुर्मति, मायडु संगरमुलंदमर्त्युल गेलुचुन्
मायकरणमुन वीनिन्, मायिपुमु मोहनादि मायल चेतन् ॥ 14 ॥

मत्त. पापकर्मुडु वीडु निन्निट बट्टि तेच्चिन लेचि ना
पापडेक्कड बोयेनो सुतु वापिते विधि यंचु दा

को) व्याकुल बना देता था। १० [व.] इस प्रकार अपने को लोगों के विनुति करने के प्रभावों से युक्त होकर, पद्मदल लोचन, प्रलंब बाहु, और जगन्मोहनाकार वाले पंचबाण को देखकर, लज्जा और हास गर्भित दृष्टियों से देखते हुये मायावती के सुरति की भ्रांति [उत्पन्न] करने पर [-उसे] देखकर प्रद्युम्न ने इस प्रकार कहा। ११ [मत.] "यह कहते हुये कि यह मेरा तनूभव है, कुछ भी लज्जित न होकर, ओ माँ, यह क्या है, तुम आज इस प्रकार मातृ-भाव को त्यागकर संप्रीति से कामिनी की तरह कई विभ्रम कर रही हो? महाख्यात वृत्तिवाली तुम्हारे लिए ऐसा मोह करना धर्म (उचित) नहीं है।" १२ [व.] ऐसा कहने पर रती ने इस प्रकार कहा; "तुम नारायण-नंदन कंदर्प हो। पूर्व-काल में मैं तुम्हारी पत्नी रती हूँ। जब तुम शिशु थे, निर्दयी बनकर (तुम्हें) चुराकर, (तुम्हारी) माँ से छुड़ाकर, शंबर ने लाकर तुम्हे नीरधि में डाल दिया तो एक मीन ने (तुम्हें) निगल डाला। मीनोदर से तुम निकल पड़े। आगे का कार्य आकर्णित करो। १३ [कं.] "यह मायावी है। दुर्मति है। संगरों में नहीं मरता; अमर्त्यों को जीत लेता। माया करके मोहन आदि मायाओं से इसको मार डालो। १४ [मत.] "यह पाप कर्म करनेवाला है; तुमको

ग्रेपु बासिन गोवु भंगिनि खिन्नयै वडि गाढ सं-
तापयै निनु नोचि कांचिन तल्लि कुय्यिडकुंडुने ॥ 15 ॥

व. अनि पलिकि मायावति महानुभावुंडैन प्रद्युम्नुनिकि सर्व शत्रु माया विनाशिनि यथिन महा माया विद्य नुपदेशिंच निव्विधंबुन ॥ 16 ॥

म. गुरु मायारण वेदियै कवचियै कोदंडियै बाणियै
हरिजुंडोरि ! निशाट ! वैचितिवि नाडंभोनिधिन् नशु घो-
र रणांभोनिधि वेतु निन्नु निदे वे रम्मंचु जीरेन् मनो-
हर दिव्यांबरु नुल्लसद्दनुजसेना डंबरुन् शंबरुन् ॥ 17 ॥

चं. अदलिचि यिट्लु कृष्णसुतुडाडिन निष्ठुर भाषणंबुलन्
वदहतमै वडि गविषु पन्नगराजमु बोलि शंबरुं-
डदरुचु लेचि वच्चि गद नच्युत-नंदनु वैसे नुज्ज्वल-
दिभदुर कठोर घोष सम भीषण नादमु जेसि यार्चुचुन् ॥ 18 ॥

कं. दनुजेंद्रुडु वेसिन गद, दन गदचे वाय नडचि दनुजुलु बेदरन्
दनुजांतकुनि कुमारुडु, दनुजेशुनि मोद नार्चि तन गव वैचेन् ॥ 19 ॥

पकड़कर यहाँ लाने पर-उठकर, 'न जाने मेरा बच्चा कहाँ गया है; हे विधि ! तुमने मेरे पुत्र को मुझसे अलग किया है; (इस प्रकार) कहते हुये वह बछड़े से बिछुड़ी हुई गाय की तरह खिन्ना (और) गाढ़-संताप युक्त बनकर, व्रत धारण करके तुम्हें प्राप्त करनेवाली माँ क्या रोये बिना रहेगी ?" १५ [व.] इस प्रकार कहकर मायावती ने महानुभाव प्रद्युम्न को सर्वशत्रु-माया-विनाशिनी महामाया-विद्या का उपदेश दिया। इस प्रकार। १६ [म.] गुरु (बड़ा) माया रणवेदी बनकर, कवची (कवच-धारी) बनकर, कोदंडी (कोदंड धारण करने वाला) बनकर, बाणी (बाण धारण करनेवाला) बनकर, हरिज ने (हरि पुत्र प्रद्युम्न) यह कहते हुए कि रे, निशाट (राक्षस) ! मुझे पहले अंबोनिधि में फेंक दिया था न, अब तुम्हें घोर रणांभोनिधि में डाल दूंगा, शीघ्र आओ, [ऐसा कहकर उसने] मनोहर-दिव्यांबरवाले और उल्लसत्-दनुज सेनाडंबरवाले शंबर को बुलाया। १७ [चं.] क्रोध से इस प्रकार कृष्ण-सुत के कहे हत निष्ठुर भाषणों को (सुनकर) पद-हत होकर शीघ्रता से आक्रमण करनेवाले पन्नगराज की तरह शबर ने चलायमान होकर, उठकर, आकर, (अपनी) गदा को अच्युत-नंदन पर उज्ज्वलत्-भिदुर (-वज्र) कठोर-घोष के सम भीषण नाद करके, गरजते हुये डाल दिया। १८ [कं.] दनुजेंद्र की फेंकी हुई गदा को अपनी गदा से दमन कर, जिससे दनुज डर जाएँ, दनुजांतक के कुमार ने गरजकर दनुजेश पर अपनी गदा को फेंक दिया। १९

व. अंत ना रक्कसुंडु वॆक्कसंबगु रोषंबुन दनकु दोलिल मयुंडॆऱिगिंचिन दैतेयमाय नाश्रयिंचि मिंटिकि नॆगसि पंचबाणुनिपै बाण वर्षंबु गुरिसिन नम्महारथुंडु नॊच्चियु संचलिंपक मच्चरंबुन सर्वमाया विनाशिनियैन सात्त्विक मायं ब्रयोगिंचि दनुजुनि बाणवृष्टि निवारिंचॆ, मऱियु वाडु भुजग गुह्यक पिशाच मायलु पन्नि नॊप्पिंचिन नन्नियुं दप्पिंचि ॥ 20 ॥

कं. दंडधर मूर्ति गैकॊनि, यॊंडाडक चक्रि सूनुडुग्रतरासिन्
खंडिंचॆ शंबरुनि तल, गुंडल कोटीर मणुलु कुंभिनि रालन् ॥ 21 ॥

कं. चिगुराकडिदपु धारनु, जगमुल बरवशमु सेयु चलपादिकि दॊ-
ड्डगुनुक्कडिदंबुन दन, पगतुं दॆग व्रेयुटॆंत पनि चिंतिपन् ॥ 22 ॥

कं. बॆगडुचु नुंडग शंबरु
दॆगडुचु ब्रूविंटिजोदु धीर गुणंबुल्
पॊगडुचु गुरिसिरि मुदमुन
नॆगडुचु गुसुममुल-मुसुरु निर्जरुलधिपा ! ॥ 23 ॥

[व.] तब उस राक्षस के असहनीय रोष से, अपने को पूर्व में मय की सिखायी हुई दैतेयमाया के आश्रय को पाकर, आकाश पर उड़कर (और) पंचवाण पर बाणों की वर्षा बरसाने पर, उस महारथी ने पीड़ित होकर भी, विचलित न होकर मात्सर्य से सर्वमाया-विनाशिनी सात्त्विक माया का प्रयोग करके दनुज की बाण-वृष्टि का निवारण किया और उसने (शंवर ने) भुजग, गुह्यक, पिशाच-मायाओं का प्रयोग करके पीड़ित किया तो उन सबसे बचकर। २० [कं.] दंडधर मूर्ति (यम के रूप) को ग्रहण करके, और कुछ न बोलकर, चक्रिसून (विष्णुपुत्र) ने उग्र क्रोध से शंवर के सिर का खंडन किया जिससे कुंडलों और किरीटों की मणियाँ कुंभिनी (धरती) पर झड़ जायँ। २१ [कं.] कोंपल रूपी खड्ग की धारा से जगों को परवश करनेवाले मात्सर्यशील को लोहे के खड्ग से अपने शत्रु को काट डालना, विचार करने पर, कितना बड़ा काम है ? (महत्त्व का नहीं है।) २२ [कं.] हे अधिप ! डरते हुए न रहकर, शंबर को गालियाँ देते हुए और पुष्पधन्वा के धीर गुणों की प्रशंसा करते हुए निर्जरों ने मोद से कुसुमों की वर्षा की। २३

रतीदेवि प्रद्युम्नसहितयै गगनमार्गंमुन द्वारककुंबोवुट

व. इट्लु शंबरुनि वधियिंचि विलसिल्लुचुन्न यिंचुविलुकानि गौंचु नाकाश चारिणियैन या रतीदेवि गगनपथंबु बट्टि द्वारकानगरोपरि भागंबुनकुं जनुदेंचिन ॥ 24 ॥

आ. मॆरुगु दीगॆ तोडि मेघंबु कैवडि, युविद तोड मिंट नुंडि कदलि
यरुगुदेंचे मदनुडंगना जनमुलु, मॆलगुचुन्न लोनि मेडकडकु ॥ 25 ॥

म. जलदश्यामु प्रलंबबाहु युगळुं जंद्राननुन् नील सं-
कुल वक्रालकु बीतवासु घनवक्षुन् सिंहमध्युन् महो-
त्पल पत्रेक्षणु मंदहास ललितुं बंचायुधुन् नीरजा-
क्षुलु दारेमरि पाटु चूचि हरि यंचुं डागि रय्यैयॆडन् ॥ 26 ॥

कं. कौंदरु हरियगु नंदुरु
कौंदरु चिह्नमुलु कौन्नि कौन्नि हरिकि ले-
वंदुरु मॆल्लनॆ तॆलियुद-
मंदुरु मरु जूचि कौंदरबललु गुमुलै ॥ 27 ॥

कं. हरि यनि वॆनुचनि पिदपन्
हरि बोलॆडु वाडु गानि हरि गाडनुचुन्
हरि मध्य लल्लनल्लन
हरि नंदनु डाय वच्चि राश्चर्यमुनन् ॥ 28 ॥

रतीदेवी का प्रद्युम्न-सहिता बनकर गगन-मार्ग से द्वारका जाना

[व.] इस प्रकार शंबर का वध करके विलसित होनेवाले इक्षुधन्वा (मदन) को लेकर आकाशचारिणी उस रती देवी के गगन-पथ से द्वारका नगरोपरि भाग पर आने पर… २४ [आ.] बिजली के साथ मेघ की तरह स्त्री (रती) के साथ आकाश पर से चलकर मदन उस अंतःपुर में आया जहाँ अंगना-शत विराजमान थीं। २५ [म.] जलदश्याम, प्रलंब-बाहु-युगल वाले, चंद्रानन वाले, नील-संकुल-वक्र अलक वाले, पीतवस्त्र वाले, घन वक्ष वाले, सिंह-मध्य वाले, महोत्पल-पत्रेक्षण वाले, मंदहास से ललित और पंचायुध वाले को नीरजाक्षियाँ असावधानी से देखकर 'हरि' मानकर इधर-उधर छिप गईं। २६ [कं.] कुछ (स्त्रियाँ) कहती हैं, "हरि हैं"; कुछ कहती हैं कि कुछ चिह्न (लक्षण) हरि के नहीं है। अबलाएँ समूहों में (आकर) मार (मदन) को देखकर कहती हैं कि धीरे-धीरे मालूम कर लेंगी। २७ [कं.] 'हरि' कहकर पीछे जाकर, बाद को यह कहते हुए कि हरि की सूरत वाला है, परन्तु हरि नहीं है, -हरिमध्याएँ (स्त्रियाँ)

उ. अम्नुलु सेर वच्चि मरु नंदनु जूडग दानु वच्चि सं-
पन्न गुणाभिराम हरि पट्टपु-देवि विदर्भपुत्रि क्रे-
गन्नुल ना कुमारकुनि कैवडि नेर्पड जूचि वोटितो
जन्नुलु सेप निट्लनियँ संभ्रम दैन्यमु लुल्लसिल्लगन् ॥ 29 ॥

शा. ई कंजेक्षणुडी कुमार तिलकुं डी यिंदु बिंबाननुं-
डो कंठीरव मध्यु डिन्नटिकि नेडेंदुंडि येतेंचेनो
यी कल्याणुनि गन्न भाग्यवति मुन्ने नोमुलन् नोचेंनो
ये कांतामणि यंदु वीनि गनेनो येकांतु डी कांतुनिन् ॥ 30 ॥

शा. काळी ! ना तोलु चूलि पापनिकि वोर्कांडिचि ने सूतिका-
शाला-मध्य विशाल-तल्प-गतनै चन्निच्चि निद्रिंप ना
वालुन्नाचनु वालकुं जेरिचि ये पापात्मुले त्रोवमु-
न्नेलीलं गोनि पोयिरो शिशुवु दाने तल्लि रक्षिचेंनो ॥ 31 ॥

कं. कोडुकडु ना पोविगिटिलो
जेडिपोयिन नाट नुंडि चेलिया तेलियं
बड देवातंपु नतडे
वडुवुन नेच्चोट निलिचि वर्तिंचेडिनो ॥ 32 ॥

धीरे-धीरे आश्चर्य से हरि-नंदन के पास आयीं। २८ [उ.] मार (मदन) को देखने सब स्त्रियों के आने पर संपन्न गुणाभिरामा, हरि की पट्टमहिषी, विदर्भ [राज] पुत्री (रुक्मिणी) स्वयं आकर, आँखों के कोनों से उस कुमार के [शरीर] सौष्ठव को देखकर, अपने स्तनों में दूध भर आने पर संभ्रम और दीनता का प्रकोप होने से (अपनी) सखी से इस प्रकार बोली। २९ [शा.] "यह कंजेक्षण, यह कुमार तिलक, यह इंदु-बिंबानन, यह कंठीरव-मध्य वाला, आज यहाँ कहाँ से आया होगा, इस कल्याणमय को जन्म देनेवाली भाग्यवती ने न जाने किन व्रतों को धारण किया होगा, किस कांत (पति) ने इस कांत (सुंदर युवक) को किस कांतामणि में पैदा किया है !" ३० [शा.] "आली (सखी) ! अपनी प्रथम संतान (पुत्र) को नहलाकर मेरे सूतिकाशाला के मध्य में विशाल तल्पगता होकर (और) स्तन्य पिलाकर सोने पर, मेरे बालक को मेरे स्तन से अलग करके न जाने कौन सा पापात्मा किस रास्ते से, किस प्रकार ले गया है। (उस) शिशु की न जाने किस माँ ने रक्षा की है।" ३१ [कं.] "सखी ! जबसे मेरा पुत्र मेरी गोद से दूर हुआ है, कोई समाचार नहीं मालूम हुआ। मालूम नहीं, वह कैसे (और) कहाँ रहता होगा !" ३२ [कं.] "अब तक अगर वह जीवित रहा होगा तो, सन्देह

कं. इंदाक वाडु ब्रतिकिन, संदेहमु लेदु देह चातुर्य वय-
स्यौंदर्यंबुलु लोकुलु, वंदिपग नितनि यंत वाडगु जुम्मी ॥ 33 ॥

म. अतिवा ! सिद्धमु नाटि बालकुनकी याकरमीवर्ण मी
गति यी हास विलोकन स्वरमु लो गांभीर्य मीकांति वी
डतडे कादगु नुन्न वारलकु ना यात्मेशु सारूप्य सं-
गति ! सिद्धिपदु वीनियंदु मिगुलं गौतूहलंबय्येडिन् ॥ 34 ॥

कं. पोंदलंडि मुदमुन जित्तमु, गदलेंडि ना यंडम मूपु गन्नुल वेंट
ब्रिदिलेंडि नानंदाश्रुलु, मेंदलेंडि बालिड्ल बालु मेलय्येडिनो ॥ 35 ॥

व. अनि डोलायमान मानसयै वितर्किचुचु ॥ 36 ॥

कं. तनयुडनि नीडुव दलचुनु
दनयुडु गाकुन्न मिगुल दति गोनि सवतुल्
तनु नगियेदरनि तलचु न-
तनु संशयमलमि कोनग दनुमध्य मदिन् ॥ 37 ॥

व. इट्लु रुक्मिणीदेवि विचारिचुचुंड लोपलि नगरि कावलि वारिवलन विनि कृष्णुंडु देवकी वसुदेवुलं दोड्कोनि चनुदेंचि सर्वज्ञुंडय्यु नेमियु विवरिपक यूरकुंडे। नंत नारदुंडु चनुदेंचि शंबरुंडु कुमारुनि गोनिपोबुट मोदलैन वार्तलेरिंगिचिन ॥ 38 ॥

नहीं, देह, चातुर्य, वय (और) सौंदर्य की लोग प्रशंसा करें, इस युवक के समान हुआ होता !" ३३ [म.] "ओ स्त्री ! उस दिन के उस बालक को यह आकार, यह वर्ण (रंग), यह गति (प्रकार), ये हास-विलोकन-स्वर, यह गांभीर्य और यह कांति सिद्ध थी; यह वही हो सकता है; (यद्यपि) किसी में ये सब (लक्षण) हो सकते हैं, (परन्तु, फिर भी) उसके मेरे आत्मेश की सारूप्य-संगति सिद्ध नही होती । इसमें (इसके प्रति) अधिक कुतूहल होता है ।" ३४ [कं.] "उफनकर आनेवाले मोद (संतोष) से चित्त चंचल हो रहा है और बायाँ स्कंध फड़क रहा है; आँखों में से आनंदाश्रु बह रहे हैं; स्तनों में दूध निकल रहा है; स्यात् शुभ हो !" ३५ [व.] यों कहकर डोलायमान मानस वाली बनकर, बितर्क करते हुए, ३६ [कं.] वह कहना चाहती थी कि '[यह] मेरा तनय है । अगर तनय न होगा तो अधिक समूह मे आकर सौतें मुझे देखकर हँसेंगी ।' ऐसे कहते हुए वह तनुमध्या (रुक्मिणी) मन्मथ [के विषय में] संशय से भर गई । ३७ [व.] इस प्रकार रुक्मिणी देवी के सोचते रहते समय अंतःपुर के पहरेदारों से सुनकर कृष्ण, देवकी [और] वसुदेव को लेकर आकर, सर्वज्ञ होकर भी कुछ भी न कहकर चुप रहा । तब नारद के आकर शंबर के, कुमार को

कं. चच्चिन बालुडु ग्रम्मर
वच्चिन क्रिय वच्चॆ वॆक्कु वर्षमुलकु नी
सच्चरितु नेडु गंटिमि
चॆच्चॆर मुन्नॆट्टि तपमु सेयंबडॆनो ! ॥ 39 ॥

व. अनि यंतःपुरकांतलुनु देवकी वसुदेव रामकृष्णुलुनु यथोचित क्रमंबुन नाबंपतुल दिव्यांबराभरणालंकृतुल सत्करिंचि संतोषिंचिरि। रुक्मिणी देवियु नंदनुं गौगिलिंचुकॊनि ॥ 40 ॥

शा. अन्ना ! ना चनु बापि निन्नु दनुजुंडंभोनिधिन् वैचॆने
यॆन्ने वर्षमुलय्यं बासि सुत ! नावेरीति जीविंचि ये
सन्नाहंबुन शत्रु गॆल्चितिवॊ याश्चर्यंबु संधिल्लॆडिन्
निन्नुं गांचिति नित कालमुनकुन् ने धन्यतं जॆंदितिन् ॥ 41 ॥

व. अनि कॊडुकु वलन संतोषिंचि कोडलि गुणंबुलु कॊवारंबुलु सेसि विनोदिंचु-चुंडॆ, नंत द्वारका नगरंबुप्रजलु विनि हर्षिंचिरंदु ॥ 42 ॥

कं. सिरि पॆनिमिटि पुत्रकुडगु
मरु गनि हरि जूचि नट्लु मातलु वमलो-
गरगुदुरट परकांतलु
मरु गनि मोहांधकार मग्नुलु गारे ! ॥ 43 ॥

ले जाने आदि की बातें सुनाई तो, ३८ [कं.] मृत बालक के वापस आने की तरह कई वर्षों के बाद (यह बालक) आया; इस सच्चरित [से युक्त] को शीघ्रता से आज देखा। न जाने पूर्व में कैसा तप किया गया था ! ३९ [व.] यों अंतःपुर-कांताएँ, देवकी, वसुदेव, राम (बलराम) [और] कृष्ण यथोचित क्रम से उस दंपति का दिव्यांबराभरणालंकृतियों से सत्कार करके संतुष्ट हुए। रुक्मिणी देवी भी नंदन (पुत्र) का आलिंगन करके, ४० [शा.] 'भाई (पुत्र) ! मेरे पयोधर से अलग करके, तुम्हें दनुज ने अंभोनिधि में डाल दिया। हे सुत, [तुम्हें] छोड़कर कितने वर्ष हुए ? आश्चर्य होता है कि तुमने किस प्रकार जीवित रहकर, किस सन्नाह (प्रयत्न) से शत्रु को जीत लिया ! इतने काल के बाद तुम्हें देख लिया ! मैं धन्य हुई !' ४१ [व.] यों कहकर पुत्र से संतुष्ट होकर बहू के गुणों की प्रशंसा करके, विनोद कर रही थी। तब द्वारकानगर की प्रजा [यह समाचार] सुनकर हर्षित हुई। उनमें ४२ [कं.] कहते हैं कि श्री (लक्ष्मी) के पति के पुत्र मार (मदन) को देखकर माताएँ अपने में ऐसे गल जाती है मानो हरि को देखा हो ! तब क्या [मार को देखकर] परकांताएँ मोहांधकार-मग्न नहीं होतीं ? ४३

अध्यायमु—५६

श्रीकृष्णुंडु लोकोपवाद-निवृत्ति कॊरकु शमंतकमणिनि दॆच्चुट

व. अनि चॆप्पि शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 44 ॥

कं. सत्राजित्तु निशाचर-
शत्रुनकुं गीडु सेसि सद्विनयमुतो
बुत्रि शमंतक मणियुनु
मैत्रि गॊनि तॆच्चि यिच्चॆ मनुजाधीशा ! ॥ 45 ॥

व. अनिन विनि राजिट्लनियॆ ॥ 46 ॥

आ. शौरि केमि तप्पु सत्राजितुडु सेसं
कूतु मणिनि नेल कोरि यिच्चॆ
नतनि कॆट्लु गलिगॆ ना शमतक मणि
विप्रमुख्य ! नाकु विस्तरिंपु ॥ 47 ॥

व. अनिन विनि शुक योगिवर्युंडिट्लनियॆ । सत्राजित्तनुवाडु सूर्युनकु भक्तुडै चॆलिमि सेय नतनि वलन संतसिंचि सूर्युंडु शमंतक मणि निच्चॆ, ना मणि कंठंबुन धरिंचि सत्राजितुंडु भास्करुनि भंगि भासमानुंडै द्वारका नगरंबुनकु वच्चिन, दूरंबुन नतनि जूचि जनुलु मणि प्रभा पटल तिरोहित दृष्टुलयि सूर्युंडनि शंकिंचि वच्चि हरिकिट्लनिरि ॥ 48 ॥

अध्याय—५६

श्रीकृष्ण का लोकापवाद-निवृत्ति के निमित्त स्यमंतकमणि को लाना

[व.] यों कहकर शुक ने इस प्रकार कहा। ४४ [कं.] हे मनुजाधीश, सत्राजित ने निशाचर-शत्रु (श्रीकृष्ण) का अपकार करके [बाद को] सद्विनय से [उसको अपनी] पुत्री को [और] स्यमंतक मणि को मित्रतापूर्वक लाकर दे दिया। ४५ [व.] ऐसा कहने पर राजा ने इस प्रकार कहा; ४६ [आ.] "शौरि के प्रति सत्राजित ने क्या अपराध किया ? जान-बूझकर पुत्री [तथा] मणि को क्यों दिया ? उसको वह स्यमतक मणि कैसे मिल गई ? हे विप्रमुख्य, मुझसे विस्तार के साथ कहो। ४७ [व.] ऐसा कहने पर सुनकर, शुकयोगिवर्य ने इस प्रकार कहा। सत्राजित नामक (एक व्यक्ति) सूर्य का भक्त बनकर, मित्रता करने पर, उससे संतुष्ट होकर सूर्य ने स्यमंतक मणि दी। उस मणि को कंठ में धारण करके सत्राजित के भास्कर की तरह भासमान होकर द्वारका नगर में आने पर, दूर से उसे देखकर लोगों ने मणिप्रभापटल से तिरोहित

कं. नारायण ! दामोदर ! नीरजदळनेत्र ! चक्रि ! निखिलेश ! गदा
धारण ! गोविंद ! नम, स्कारमु यदुपुत्र ! नित्य-कल्याणनिधी ! ॥ 49 ॥

म. दिविजाधीश्वरुलिच्चगितुरु गदा देवेश ! निन् जूड या-
दव वंशंबुन गूढ मूर्तिवि जगत्राणुंडवै युंडगा
भवदीयाकृति जूड नेडिदे रुचि प्रच्छन्न दिग्भागुडै
रवियो नीरजगर्भुडो यीकडु सेरन् वच्चे मार्गंबुनन् ॥ 50 ॥

व. अनि यिट्लु पलिकिन मूढजनुलं जूचि गोविंदुंडु नगि मणि समेतुंडैन सत्राजितुंडु गानि सूर्युंडु गाडनि पलिकें नंत सत्राजितुंडु श्रीयुतंबयि मंगळाचार संचारंबैन तन गृहंबुनकुं जनि महीसुरुल चेत निज देवता-मंदिरंबुन नम्मणि श्रेष्ठंबु प्रवेशंबु सेयिंचे नदियुनु प्रतिदिनंबु नेनिमिदि बारुवुल सुवर्णंबु गलिगिंचुचुंडु ॥ 51 ॥

कं. एराजेलेंडु वसुमति, ना रत्नमु पूज्यमानमगु नक्कड रो-
गारिष्ट सर्वमायिक, -मारी दुर्भिक्ष भयमु मानु नरेंद्रा ! ॥ 52 ॥

कं. अम्मणि यादव विभुनकु, निम्मनि हरियडुग नातडीक धनेच्छन्
वोम्मनि पलिकेनु जक्रिकि, निम्मणि योकुन्न मीद नेमौननुचुन् ॥ 53 ॥

दृष्टि वाले (अंधे) होकर, सूर्य की शंका करके, आकर हरि से इस प्रकार कहा। ४८ [कं] "[हे] नारायण, दामोदर, नीरजदलनेत्र, चक्रि, निखिलेश, गदाधारी, गोविंद, यदुपुत्र, नित्यकल्याणनिधे, नमस्कार। ४९ [म॰] "[हे] देवेश, दिविजाधीश्वर तुम्हें देखना चाहते हैं न ! यादव वंश में [उत्पन्न] तुम गूढ़ मूर्ति वाले हो। जब तुम जगत्राता बनकर रहते हो, भवदीयाकृति को देखने के लिए आज, अभी, रुचि-प्रच्छन्न-दिक्भागी बनकर, न जाने वह रवि है या नीरज-गर्भ, कोई मार्ग से हमारे समीप आया।" ५० [व.] इस प्रकार बोलनेवाले मूढ़ (भोले-भाले) जनों को देखकर गोविंद ने हँसकर कहा कि [वह] मणि समेत सत्राजित है, न कि सूरज। तब सत्राजित ने श्रीयुत होकर मंगलाचार-संचार होनेवाले अपने गृह मे जाकर महीसुरों से निज-देवता-मंदिर में उस मणि-श्रेष्ठ का प्रवेश कराया और वह (मणि) प्रतिदिन एक सौ साठ मन सुवर्ण देती रहती। ५१ [कं.] हे नरेंद्र ! जो राजा जिस वसुमति (भूमि) पर राज्य-पालन करता है, वहाँ वह रत्न पूज्यमान होता हो तो वहाँ रोग [और] अरिष्ट, सर्वमायिक (नाश करनेवाला) मारी (रोग-विशेष), दुर्भिक्ष [और] भय नहीं होते। ५२ [कं.] जब हरि ने माँगा कि उस मणि को यादवविभु को दे दो, उसने न देकर [और] धनेच्छा से यह सोचते हुए कि चक्रि को यह मणि न देने पर क्या होगा (कुछ नही

व. अंत ॥ 54 ॥

चं. अडरॅडु वेड्क गंठमुन नम्मणि दाल्चि प्रसेनुडोक्कना-
डडविकि घोर वन्य मृगया-रति नेगिन वानि जंपियें-
वडि मणि गॉंचु नॉक्क हरि पारग दानि वधिंचि डासि ये-
र्पड गनॅ जांबवंतुडु प्रभात्त दिगंतमु ना स्यमंतमुन् ॥ 55 ॥

कं. कनि जांबवंतुडा मणि
गॉनिपोयि समीप शैलगुह जॉच्चि मुदं-
बुन दन कूरिमि सुतकुनु
घन केळीकंदुकंबुगा जेसॅ नृपा ! ॥ 56 ॥

व. अंत सत्राजितुंडु तन सहोदरुंडैन प्रसेनुनि गानक दुःखिचुचु ॥ 57 ॥

म. मणि कंठंबुन दाल्चि नेडडविलो मावाडु वर्तिपगा
मणिकै पट्टि वधिंचिनाडु हरिकिन् मर्याद लेदंचु दू-
षणमुं जेयग वानि दूषणमु गंस-ध्वंसि यालिंचि ये
व्रणमुन् नायॅड लेदु निंद गलिगॅन् वारिंचुटेरीतियो ॥ 58 ॥

व. अनि वितर्किचि ॥ 59 ॥

म. तन बारॅल्ल प्रसेनु जाड दॅलुपन् दर्किचुचुन् वच्चि त-
द्वनवीथि गनॅ नेल गूलिन महाश्वंबुन् प्रसेनुं प्रसे-

होगा)। कहा कि जाओ [नहीं देता] ५३ [व.] तब ५४ [चं.] अधिक उत्कंठा से [अपने] कंठ में उस मणि को धारण करके प्रसेन एक दिन अरण्य में घोर वन्य-मृगया-रति से गया तो उसे मार डालकर उस पर गिरकर और मणि को लेकर एक हरि (सिंह) भाग गया तो उसका वध करके, पास जाकर जांबवान ने प्रभात्त-दिगंत होनेवाले (दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले) उस स्यमंतक को अलग गिरा हुआ देखा। ५५ [कं.] हे नृप, देखकर जांबवान ने उस मणि को ले जाकर समीप [की] शैल-गुफा मे घुसकर मोद से अपनी प्रिय सुता के लिए (उसे) घन-केली-कंदुक बनाया। ५६ [व.] तब सत्राजित अपने सहोदर प्रसेन को न देखकर दुःखित होते हुए। ५७ [म.] 'मणि को कंठ में धारण करके आज मेरे भाई के जंगल में घूमते समय, मणि के लिए पकड़कर वध किया है। हरि शिष्टता नही जानता'; ऐसा कहते हुए दूषण किया तो, उसके दूषण को कंस-ध्वंसि (कृष्ण) ने सुनकर 'मेरा कोई दोष नही है, निंदा हुई है; न जाने कैसे निवारण कर सकूं !' ५८ [व.] इस प्रकार वितर्कित होकर ५९ [म.] अपने सब लोगों के आकर प्रसेन का पता देने पर, तर्क करते हुए आकर, तद्वनवीथी में मृत महान् अश्व को, प्रसेन को और प्रसेन को

नुनि हिंसिचिन सिंहमुन् मृगपतिन् नोंप्पिचि खंडिचि ये-
गिन भल्लूकमु सोंच्चियुन्न गुहयुं गृष्णुंडु रोचिष्णुडै ॥ 60 ॥

व. कनि तन वेंट नंटि वच्चिन प्रजल नॆल्ल गुहामुखंबुन विडिचि साहसंबुन महानुभावुंडैन हरि निरंतर निबिडांधकार वंधुरंबयि भयंकरंबै विशालंबयिन गुहांतराळंबु सोंच्चि चनि यक्कड नोक्क बालिक कॆदुर दर्शनीय केळि कंदुकंबुगा व्रेलं गट्टिन यम्मणि श्रेष्ठंबु गनि हरियु हरिंप निश्चयिंचि ॥ 61 ॥

कं. मॆल्लनॆ पदमुलिडुचु यदु-
वल्लभुडाशिशुवु कडकु वच्चिन गुंडॆल्
जल्लनग जूचि कंपमु
मोल्लवुग दानि दादि मोऽरवॆट्टॆ नृपा ! ॥ 62 ॥

व. अंत ना ध्वनि विनि बलवंतुंडैन जांबवंतुंडु वच्चि तन स्वामियनि कृष्णु नॆऱुंगक प्राकृतपुरुषुंडनि तलंचि कृष्णुनितो रणंबु चेसॆ नंदु ॥ 63 ॥

कं. पललमुनकु बोरॆडु डे-
गल क्रिय शस्त्रमुल दरुल गरमुल विजये-
च्छल निरुवदि यॆनिमिदि दिन-
मुलु वोरिरि नगचरेंद्रमुख्युडु हरियुन् ॥ 64 ॥

कं. अडिदमुलु दरुलु विरिगिन
बॆडिदमुलगु मगतनमुल बिरुतिवक वडिन्

हिंसा पहुँचानेवाले सिंह को देखा। मृगपति को पीड़ित करके और खंडित कर, गये हुए भल्लूक के प्रविष्ट गुफा को रोचिष्ण होनेवाले कृष्ण ने… ६० [व.] देखा। [देखकर] अपने साथ आये हुए सब लोगों को गुफा-मुख पर छोड़कर साहस से महानुभाव हरि निरंतर निबिडांधकार-वंधुर, भयंकर [और] विशाल गुहांतराल में घुसकर, जाकर, वहाँ एक बालिका के सम्मुख दर्शनीय केलिकंदुक की तरह लटकायी गयी उस मणिश्रेष्ठ को देखकर [उसे] हर (अपहरण करने) का निश्चय करके… ६१ [कं.] हे नृप ! धीरे-धीरे पाँव धरते हुए यदुवल्लभ के उस शिशु के पास आने पर, हृदय के धड़कते देखकर, कंप के अधिक होने पर, उसकी धाय ज़ोर से चिल्लाई। ६२ [व.] तब वह ध्वनि सुनकर, बलवान जांबवान ने आकर, कृष्ण को अपने स्वामी के रूप में न जान कर, प्राकृत पुरुष (सामान्य मानव) समझकर कृष्ण के साथ युद्ध किया। उसमें ६३ [कं.] मांस के लिए लड़नेवाले बाजों की तरह, शस्त्रों, तरुओं और करों से विजय की इच्छाओं से नगचरेंद्र-मुख्य (जांबवान) और हरि अट्ठाईस दिन लड़ते रहे ! ६४

बिड्गुल वडुवुन वडियॆडि
पिडिकिटि पोट्लनु गलन वॆरसिरिरुवुरुन् ॥ 65 ॥

शा. स्पष्टाहंकृतुलुल्लसिल्ल हरियुन् भल्लूक लोकेशुडुन्
मुष्टामुष्टि नहर्निशंबु जय सम्मोहंबुनं बोरुचो
बुष्टि बासि मुकुंदु मुष्टि हतुलन् बूर्ण श्रमोपेतुडै
पिष्टांगोरु शरीरुडै यतडु दा भीतात्मुडै यिट्लनॆन् ॥ 66 ॥

व. देवा ! निन्नु बुराणपुरुषु नधीश्वरुंडैन विष्णु बभविष्णु नॆरुंगुदु । सर्वभूतंबुलकुं बाण प्रताप धैर्य बलंबुलु नीव । विश्वंबुनकु सर्ग स्थिति लयंबु नॊनरा-चरितुरु वारिकि सर्गस्थिति लयंबुल जेयु नीश्वरुंडवु नीव । आत्मकुं बरमात्मवु नीव यनि मरियुनु ॥ 67 ॥

सी. बाणाग्नि नॆव्वडु परपि पयोराशि निंकिंचि बंधिचि येपु मापॆ
बरग नॆव्वडु प्रताप प्रभाराशिचे दानव गर्वांध तमसमडचॆ
गंजातमुलु द्रेंचु करि भंगि नॆव्वडु दशकंठु कंठ बृंदमुलु द्रुंचॆ
नाचंद्रसूर्यमै यमरु लंका राज्यमुनकु नॆव्वडु बिभीषणुनि निलिपॆ

ते. नन्नु नेलिन लोकाधिनाथु डॆव्व-
डंचितोदार करुणा रसाब्धि यॆव्व-

[कं.] खड्गों और तरुओं के टूट जाने पर भयंकर पौरुष से पीछे न हटकर वेग से [और] बिजली के ज़ोर से पड़नेवाले आघातों से दोनों ने मुष्टि-युद्ध किया । ६५ [शा.] स्पष्ट हुंकृतियों के बढ़ने पर हरि और भल्लूक-लोकेश मुष्टामुष्टि, अहर्निश, जय-सम्मोह से युद्ध करने पर, पुष्टि को खोकर, मुकुंद की मुष्टि के आघातों से पूर्ण श्रमोपेत होकर, पिष्टांगोरु-शरीरी (पिसे हुए उरु शरीर वाला) बनकर [और] उसने स्वयं भीतात्मा बनकर इस प्रकार कहा । ६६ [व.] 'देव, तुमको पुराणपुरुष, अधीश्वर, विष्णु [और] प्रभविष्णु [के रूप में] जान गया हूँ । सर्वभूतों के लिए प्राण, प्रताप, धैर्य, बल तुम ही हो । विश्व के लिए सर्ग, स्थिति [और] लय का आचरण जो करते हैं उनके लिए सर्ग, स्थिति [और] लय करनेवाले ईश्वर तुम ही हो । आत्मा के लिए परमात्मा तुम ही हो ।' यों कहकर और… ६७ [सी.] 'जिसने बाणाग्नि से विशाल पयोराशि को सुखाकर, बाँध करके (उसका) गर्व चूर कर दिया, जिसने [अपनी] प्रताप-प्रभा-राशि से दानव के गर्वांध-तमस को कुचल डाला, कंजातों को (कमलों को) तोड़नेवाले करि (हाथी) की तरह जिसने दशकंठ के कंठ-बृंदों (-समूह) को तोड़ डाला, आचंद्र-सूर्य हो प्रकाशमान होनेवाले लंका राज्य का जिसने विभीषण को राजा बनाया, [ते.] जिस

डातडवु नीव कावे महात्म ! नेडु
माड्रुवडि यॆग्गु सेसिति मऱ्रववलयु ॥ 68 ॥

व. अनि यिट्लु परम भक्तुंडयिन जांबवंतुंडु विनुतिंचिन ननि शरीरनिग्रह-निवारणंबुगा भक्तवत्सलुंडयिन हरि तन करंबुन ननि मेनु निमिरि मेघ-गंभीर भाषणंबुल निट्लनियॆ ॥ 69 ॥

कं. ई मणि मा चेबडॆननि, तामसु लॊनरिंचु निंद दप्पॆंडु कॊऱकै
नी मंदिरमगु बिलमुन, केमरुदेंचितिमि भल्लुकेश्वर ! विंटे ॥ 70 ॥

व. अनिन विनि संतसिंचि जांबवंतुंडु मणियुनु दन कूतु जांबवतियनु कन्यका-मणियुनु दॆच्चि हरिकि गानुकगा समर्पिंचॆ, नट मुन्न हरि वॆंट वच्चिन वारलु, बिलंबु वाकिट पंड्रेंडु दिनंबुलु हरि राक कॊंदुरु चूचि, वेसरि वगचि, पुरंबुनकुं जनि रंत देवकी वसुदेवुलुनु रुक्मिणियुनु मित्र बंधु ज्ञाति जनुलुनु गुह सॊच्चि कृष्णुंडु राक चिक्कॆननि शोकिंचि ॥ 71 ॥

कं. दुर्गममगु बिलमुन हरि, निर्गतुडयि चेर वलयु नेडनि पौरुल्
वर्गमुलै सेविंचिरि, दुर्गन् गृत-कुशलमार्ग-दोषित-भर्गन् ॥ 72 ॥

लोकाधिनाथ ने मेरी रक्षा की और जो अंचित (विपुल)-उदार-करुणा का रसाब्धि है, वह तुम ही हो; महात्मा आज तुम्हारा, सामना करके मैंने अपराध किया है, [उसे] भूल जाओ।' ६८. [व.] यों कहकर इस प्रकार परमभक्त जांबवान के विनुति करने पर, उसके शरीर-निग्रह-निवारण के रूप में भक्तवत्सल हरि ने अपने कर (हाथ) से उसके शरीर को फेरकर मेघगंभीर भाषणों से इस प्रकार कहा। ६९ [कं.] "[हे] भल्लूकेश्वर, सुनो, 'यह मणि हमारे हाथ पड़ गई है' कहकर तामस लोग जो [मेरी] निंदा करते हैं, उससे मुक्त होने के लिए तुम्हारे मंदिर (घर) रूपी बिल में हम आये।" ७० [व.] यों कहने पर सुनकर संतुष्ट होकर जांबवान ने मणि को [और] अपनी बेटी जांबवती नामक कन्यकामणि को लाकर हरि को पुरस्कार के रूप में समर्पित किया। उधर पहले हरि के साथ आये हुए लोग बिल के द्वार पर बारह दिन [तक] हरि के आगमन की प्रतीक्षा करके, संदेह कर, दुःखित होकर पुर को लौट पड़े। तब देवकी [और] वसुदेव, रुक्मिणी, मित्र, बंधु [और] ज्ञाति-जन इस प्रकार कहकर कि गुफा में घुसकर कृष्ण [बाहर] न आकर फँस गया, [और] शोक करके ७१ [कं.] 'दुर्गम बिल में हरि को निर्गत होकर आज [बाहर] पहुँचना चाहिए'; यों कहते हुए पौरों ने (नागरिकों ने) वर्गों में बँटकर कृत-कुशलमार्ग वाली और तोषित-भर्ग वाली दुर्गा की सेवा की। (कुशल मार्ग को दिखानेवाली और शिव को संतुष्ट करनेवाली दुर्गा की पूजा की।) ७२ [कं.] डोलायित मानस

कं. डोलायित मानसुलै
जालिबडि जनुलु गोलुव जंडिक वलिकॅन्
वालामणितो मणितो
हेलागति वच्चु नंबुजेक्षणुडनुचुन् ॥ 73 ॥

कं. यत्नमु सफलंबगिन स, -पत्न समूहमुलु बेंगड बद्माक्षुंडा-
रत्नमुतो गन्याजन, -रत्नमुतो बुरिकि वच्चॅ रयमुन नंतन् ॥ 74 ॥

कं. मृतुडैनवाडु पुनरा-
गतुडैन क्रियं दलंचि कन्यामणि सं-
युतुडै वच्चिन हरि गनि
विततोत्सव कौतुकमुल वॅलसिरि पौरुल् ॥ 75 ॥

व. इट्लु हरि तन पराक्रमंबुन जांबवती देवि बरिग्रहिंचि राजसभकु सत्राजित्तु बिलिपिंचि तद्वृत्तांतंबंतयु नॅरिंगिंचि सत्राजित्तुनकु मणि निच्चिन नतंडुनु सिग्गुवडि मणि बुच्चुकोनि पश्चात्तापंबु नोंदुचु बलवद्विरोधंबुनकु वॅरचुचु निंटिकि जनि ॥ 76 ॥

कं. पापात्मुल पापमुलं, बापंगा नोपु नट्टि पद्माक्षुनि पै
बापमु गलदनि नोडिविन, पापात्मुनि पापमुनकु बारमु गलदे ॥ 77 ॥

म. मित भाषित्वमु मानि येल हरिपैं मिथ्याभियोगंबु चे-
सिति बापात्मुड नर्थ लोभुडनु दुश्चित्तुंड मत्तुंड दु-

वाले बनकर जब लोग करुणार्द्र हो सेवा कर रहे थे, तब चंडिका (दुर्गा) ने कहा कि बालामणि [तथा] मणि के साथ हेलागति (संतोष) से अंबुजेक्षण (कृष्ण) आ जायगा। ७३ [कं.] सफलीकृत यत्न होकर पद्माक्ष उस रत्न [और] कन्याजनरत्न के साथ शीघ्र ही तब पुर में आया जिससे सपत्न (शत्रु)-समूह संभ्रमित हो जायँ। ७४ [कं.] मृत के पुनरागत होने की तरह मानकर कन्यामणि-संयुत [के साथ] आये हुए हरि को देखकर, पौरजन विततोत्सव-कौतुकों से विलसित हुए। ७५ [व.] इस प्रकार हरि ने अपने पराक्रम से जांबवती देवी का परिग्रहण करके, राजसभा में सत्राजित को बुलवाकर तद्वृत्तान्त सब समझाकर सत्राजित को मणि दे दी। वह भी लज्जित होकर मणि को लेकर पश्चात्तप्त होते हुए, बलवद्विरोध (बलवान से विरोध) के लिए डरते हुए घर जाकर, ७६ [कं.] "पापात्माओं के पापों को दूर कर सकनेवाले पद्माक्ष पर पाप है"; [ऐसा] बोलनेवाले पापात्मा के पाप का पार (अंत) होता है? [नहीं।] ७७ [म.] "मितभाषित्व को छोड़कर मैंने हरि पर मिथ्याभियोग क्यों लगाया? [मैं] पापात्मा हूँ, अर्थलोभी हूँ, दुश्चित्त

मॅति नी देहमु गाल्पने दुरितमे मार्गंबुनन् वायु ने
गति गंसारि प्रसन्नुडै मनुचु नन् गारुण्य भावंबुनन् ॥ 78 ॥

आ. मणिनि गूलुनिच्चि माधवु पदमुलु
पट्टुकॊंटिनेनि ब्रतुकु गलदु
संतसिचु नतडु सदुपायमगु निदि
सत्य मितर वृत्ति जक्क बडदु ॥ 79 ॥

म. अनि यिट्भंगि बहु प्रकारमुल नेकांतस्थुडै यिंटिलो
दन बुद्धि बरिकिंचि नीति गनि सत्राजित्तु संप्राप्त शो-
भनुडै यिच्चॆ विपत्पयोधि तरिकिन् भामा-मनोहारिकिन्
दनुजाधीश-विदारिकिन् हरिकि गांतारत्नमुन् रत्नमुन् ॥ 80 ॥

उ. तामरसाक्षु डच्युतु डुदार यशोनिधि पॆंड्लि याडॆ ना-
ना मनुजेंद्र वंदित गुणस्थिति लक्षण सत्यभाम नु-
द्दाम पतिव्रतात्व नय धर्म विचक्षणता दया यशः
कामनु सत्यभामनु मुखद्युति-निर्जित-सोम नय्यॆडन् ॥ 81 ॥

कं. मणि यिच्चिनाडु वासर-
मणि नीकुनु माकु गलवु मणुलु कुमारी-
मणि चालु नंचु गृष्णुडु
मणि सत्राजित्तुनकुनु मरलग निच्चॆन् ॥ 82 ॥

हूँ, मत्त हूँ, दुर्मति हूँ, क्या यह देह जलाने को है ? [मेरा] दुरित (पाप) किस प्रकार दूर होगा ? किस प्रकार कंसारि (कृष्ण) प्रसन्न होकर कारुण्य भाव से मुझे जीवित रहने देगा ? ७८ [आ.] "मणि को [और अपनी] पुत्री को देकर माधव के पदों को पकड़ूँ तो [मेरा] जीवन होगा। वह संतुष्ट होगा। यह सदुपाय होगा। सत्य है। इतर-वृत्ति (-उपाय) से [यह काम] नहीं बनेगा।" ७९ [म.] इस प्रकार कहकर बहु प्रकार से एकांतस्थ हो घर में अपनी बुद्धि से सोचकर, नीति को पाकर, सत्राजित ने संप्राप्त शोभन हो, विपत्पयोधि के लिए तरि, भामा मनोहारी, दनुजाधीश-विदारि, हरि को कन्या-रत्न और रत्न दे दिया। ८० [उ.] तामरसाक्ष, उदार यशोनिधि, अच्युत ने तब नाना मनुजेंद्र-वंदित, गुण-स्थिति लक्षणा सत्यभामा से, उद्दाम पतिव्रतात्व, नय-धर्म-विचक्षणता-दया-यशःकामा [और] मुखद्युति-निर्जित-सोमा (चन्द्र) सत्यभामा से विवाह कर लिया। ८१ [कं.] "वासरमणि (सूर्य) ने तुम्हें मणि दे दी; [और] हमारे पास मणियाँ है। कुमारी-मणि पर्याप्त है;" इस प्रकार कहते हुए कृष्ण ने मणि सत्राजित को लौटा दी। ८२

अध्यायमु—५७

शतधन्वुडु सत्राजित्तुनि जंपि मणि नपहरिंचुट

व. अंत नक्कड गुंती सहितुलयिन पांडवुलु लाक्षागारंबुन दग्धुलैरनि विनि निखिलार्थ दर्शनुंडय्युनु गृष्णुंडु बलभद्र सहितुडै करिनगरंबुनकुं जनि कृप विदुर गांधारी भीष्म द्रोणुलं गनि दुःखोपशमनालापंबुलाडुचुंडे नय्येड ॥ 83 ॥

सी. जगदीश ! विनवय्य ! शतधन्वु बीडगनि यक्रूर कृतवर्म लाप्त वृत्ति
मनकित्तु ननुचु सम्मति जेसि तनकूतु बद्माक्षुनकु निच्चि पाडि दप्पे
खलुडु सत्राजित्तु गडक नेक्रिय नैन मणि पुच्चुकोनुमु नीमतमु सेड्रसि
यनि तन्नु ब्रेरेप ना शतधन्वुंडु पशुवु गटिकि वाडु पट्टि चंपु

आ. करणि निदुर बोव गडगि सत्राजित्तु
बट्टि चंपि वानि भामलेल्ल
मोरलु वेट्ट लोभमुन जेसि मणि गोचु
जनियें नोक्कनाडु जनवरेण्य ! ॥ 84 ॥

व. इट्लु हतुंडैन तंड्रि गनि शोकिंचि सत्यभाम यतनि देल द्रोणियंदु वेट्टिंचि, हस्तिपुरंबुनकुं जनि सर्वज्ञुंडैन हरिकि सत्राजित्तु मरणंबु विन्नविंचिन

अध्याय—५७

शतधन्वा का सत्राजित की हत्या करके मणि का अपहरण करना

[व.] तब वहाँ कुंती-सहित पांडवों का लाक्षागार में दग्ध होना सुनकर, निखिलार्थ-दर्शन करनेवाला होकर भी कृष्ण बलभद्र-सहित होकर, करिनगर (हस्तिनापुर) जाकर, कृप, विदुर, गांधारी, भीष्म [और] द्रोण को देखकर दुःखोपशमनालाप करता रहा। तब ८३ [सी.] [हे] जगतीश सुनो, शतधन्वा को देखकर अक्रूर और कृतवर्मा आप्त-वृत्ति से यह कहते हुए कि 'हमें देने को कहते हुए स्वीकार करके, खल सत्राजित अपनी बेटी को पद्माक्ष (श्रीकृष्ण) को देकर नीति-मार्ग से दूर हुआ; किसी न किसी प्रकार उपाय करके मणि को ले लो'; इस प्रकार कहते हुए अपने को प्रेरित करने से वह शतधन्वा जिस प्रकार पशु को पकड़कर क़साई मार डालता है, [आ.] वैसे ही एक दिन सत्राजित के सो जाने पर यत्न करके, उसे पकड़कर मार डालकर, उसकी सब भामाओं के रोते रहने पर लोभ से मणि को लेकर, [हे] जनवरेण्य ! वह चला गया। ८४ [व.] इस प्रकार हत-पिता को देखकर शोकित होकर सत्यभामा के उसको तैलद्रोणी में

हरियुनु बलभद्रुंडु नीश्वरुलय्युनु मनुष्य भावंबुल विलपिंचिरंत बलभद्र-
सत्यभामा समेतुडै हरि द्वारका नगरंबुनकु मरलि वच्चि शतधन्वुं
जंपेंदननि तलंचिन नॆरिंगि शतधन्वुंडु प्राणभयंबुन गृतवर्मु यिंटिकि जनि
तनकु सहायुंडुवु गम्मनि पलिकिन गृतवर्म यिट्लनियॆ ॥ 85 ॥

उ.　अक्कट! रामकृष्णुलु महात्मुलु वारल कॆग्गु सेयगा
　　निक्कड नॆव्वडोपु विनु मेपॆड गंसुडु बंधुयुक्तुडै
　　चिक्कडॆ मुन्नु मागधुडु सेनलतो बदि येडु तोयमुल्
　　दिक्कुल बारडे मनकु दृष्टमु वारल लावु वितयो ॥ 86 ॥

व. अनि युत्तरंबु चॆप्पिन विनि शतधन्वुंडक्रूरु निंटिकि जनि हरि तोडि
पगकुं दोडुकम्मनि चीरिन नक्रूरुंडु हरि बल पराक्रम धैर्यस्थैर्यंबुलुग्गडिंचि
मरियु निट्लनियॆ ॥ 87 ॥

सी.　एव्वडु विश्वंबु नॆल्ल सलीलुडै पुट्टिंचु रक्षिंचु बोलिय जेयु
　　नॆव्वनि चेष्टल नॆरुगरु ब्रह्मादु लॆव्वनि माय मोहिंचु भुवन
　　मेड्ेंडल पापडै येविभु डॊक चेत गोरक्षणमुनकं कॊंड नॆत्ते
　　नॆव्वडु कूटस्थु डीश्वरु डद्भुत कर्मु डनंतुडु गर्मसाक्षि

रखवाकर हस्तिनापुर जाकर सर्वज्ञ हरि को सत्राजित के मरण [का समाचार] सुनाने पर, हरि और बलभद्र ने ईश्वर होकर भी मनुष्य भावों से विलाप किया। तब बलभद्र [और] सत्यभामा समेत हरि ने द्वारका नगर में लौट आकर सोचा कि शतधन्वा को मार डालूँगा, [यह] जानकर शतधन्वा ने प्राण-भय से कृतवर्मा के घर आकर कहा कि मेरे सहायक बनो; तो कृतवर्मा ने इस प्रकार कहा। ८५　[उ.] "ओह! राम और कृष्ण महात्मा है; उनके प्रति अपराध करने के लिए यहाँ कौन समर्थ है? सुनो, क्या पहले (इसके पूर्व) बंधुयुक्त होकर कंस नही मर गया? मागध सत्रह बार सेनाओं के साथ दिशाओं में नहीं भाग गया? हमारे लिए दृष्ट है। उनका बल आश्चर्यजनक है।" ८६ [व.] इस प्रकार उत्तर देने पर सुनकर शतधन्वा ने अक्रूर के घर जाकर हरि के साथ विरोध करने के लिए बुलाया तो अक्रूर ने हरि के बल-पराक्रम, धैर्य-स्थैर्यों की प्रशंसा करके और इस प्रकार कहा। ८७ [सी.] "जो सारे विश्व को सलील (लीला से) बनकर पैदा करता है, [उसकी] रक्षा करता है और [उसका] नाश करता है, जिसकी चेष्टाओं को ब्रह्मा आदि नहीं जानते, जिसकी माया से भुवन मोह करता है, जिस विभु ने सात वर्ष का बालक होकर गोरक्षण के लिए एक [ही] हाथ से पहाड़ को उठाया, जो कूटस्थ है, ईश्वर है, अद्भुत कर्म करनेवाला है, अनंत है [और] कर्मसाक्षी है, [ते.] ऐसे घन (श्रेष्ठ) को, शौरि को,

ते. यट्टि घनुनकु शौरिकि ननवरतमु
म्रॊक्कॆदमु गाक विद्वेषमुनकु नेमु
वॆरतुमॊल्लमु नी पॊंदु वेग वॊम्मु
चालु वदिवेलु वच्चॆ नी सख्यमुननु ॥ 88 ॥

व. अनि यिट्लक्रूरुंडुत्तरंबु वलिकिन नम्महामणि यक्रूर नॊद्द नुनिचि वॆरचि शतधन्वुंडु तुरगारूढुंडयि शत योजन दूरंबु चनियॆ। अंत गरुडकेतनालंकृतं-बैन तेरॆक्कि राम कृष्णुलु वॆनुचनि रंत नतंडुनु मिथिलानगरंबु जेरि तत्समीप वनंबुनंबु ॥ 89 ॥

चं. तुरगमु डिग्गि तल्लडमुतो शतधन्वुडु पादचारियै
परुविड बोकु पोकुमनि पद्म दळाक्षुडु गूड बारि भी-
कर गति वानि मस्तकमु खंडितमैपड ग्रेसॆ जक्रमुं-
वरिहत - दैत्य- चक्रमु, प्रभाचय - मोदित - देव - चक्रमुन् ॥ 90 ॥

व. इट्लु हरि शतधन्वुनि वधियिंचि वानि वस्त्रंबुलंदु मणि वॆदकि लेकुंडुट दॆलिसि बलभद्रुनि कडकु वच्चि शतधन्वुंडूरक हतुंडय्यॆ। मणिलेदनिन बलभद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 91 ॥

सी. आ मणि शतधन्वुडपहरिंचुट निक्कमॆव्वरिचे दाप निच्चिनाडॊ
वेगम नी वेगि वॆदकुमु पुरिलोन वदेहु दर्शिप वांछ गलदु
पोयि वच्चॆद नीवु पॊम्मनि वीडकॊनि मॆल्लन रामुंडु मिथिल जॊच्चि
पोयिन जनकुंडु पॊडगनि हर्षिंचि यॆंतयु प्रियमुतो नॆदुरवच्चि

अनवरत नमस्कार तो करते हैं; विद्वेष के लिए हम डरते हैं; तुम्हारी मित्रता को [हम] स्वीकार नही करते। जल्दी जाओ। वस, तुम्हारे सख्य से दस हजार आये। (व्यर्थ की आफ़त आई।) ८८ [व.] इस प्रकार अक्रूर के उत्तर देने पर उस महामणि को अक्रूर के पास रखकर, डरकर, शतधन्वा तुरगारूढ़ होकर शत योजन दूर चला गया। गरुड़केतनालंकृत रथ पर चढकर राम [और] कृष्ण पीछे गये। वह भी मिथिला नगर पहुँचकर तत्समीप वन में ८९ [चं.] तुरग से उतर कर, घबराहट से शतधन्वा के पादचारी होकर भाग जाने पर 'जाओ मत, जाओ मत' कहते हुए श्रीकृष्ण ने भी दौड़कर, भीकर गति से परिहृत -दैत्यचक्र, (समूह वाले) प्रभाचयमोदित देवशक्र[होनेवाले]चक्र को इस प्रकार फेंक दिया कि उसका मस्तक खंडित होकर नीचे गिर जाय। ९० [व.] इस प्रकार हरि ने शतधन्वा का वध करके उसके वस्त्रों में मणि के लिए ढूंढ़ा, उसका न रहना जानकर बलभद्र के पास आकर कहा कि शतधन्वा यों ही हत हुआ, (उसके पास) मणि नहीं है, बलभद्र ने इस प्रकार कहा। ९१ [सी.] 'उस मणि को शतधन्वा का अपहरण करना

नुनि हिंसिचिन सिंहमुन् मृगपतिन् नॊप्पिंचि खंडिंचि ये-
गिनं भल्लूकमु सॊच्चियुन्न गुहयुं गृष्णुंडु रोचिष्णुडै ॥ 60 ॥

व. कनि तन वॆंट नंटि वच्चिन प्रजल नॆल्ल गुहामुखंबुन विडिचि साहसंबुन महानुभावुंडैन हरि निरंतर निबिडांधकार बंधुरंबयि भयंकरंबै विशालंबयिन गुहांतराळंबु सॊच्चि चनि यक्कड नॊक्क बालिक कॆदुर दर्शनीय केळि कंदुकंबुगा व्रेलं गट्टिन यम्मणि श्रेष्ठंबु गनि हरियु हरिंप निश्चयिंचि ॥ 61 ॥

कं. मॆल्लनॆ पदमुलिडुचु यदु-
वल्लभुडाशिशुवु कडकु वच्चिन गुंडॆल्
जल्लनग जूचि कंपमु
मॊल्लंबुग दानि दादि मॊऱवॆट्टॆ नृपा ! ॥ 62 ॥

व. अंत ना ध्वनि विनि बलवंतुंडैन जांबवंतुंडु वच्चि तन स्वामियनि कृष्णु नॆऱुंगक प्राकृतपुरुषुंडनि तलंचि कृष्णुनितो रणंबु चेसॆ नंदु ॥ 63 ॥

कं. पललमुनकु वोरॆडु डे-
गल क्रिय शस्त्रमुल दरुल गरमुल विजये-
च्छल निरुवदि यॆनिमिदि दिन-
मुलु वोरिरि नगचरेंद्रमुख्युडु हरियुन् ॥ 64 ॥

कं. अडिदमुलु दरुलु विरिगिन
बॆडिदमुलगु मगतनमुल विकृतिवक वडिन्

हिंसा पहुँचानेवाले सिंह को देखा। मृगपति को पीड़ित करके और खंडित कर, गये हुए भल्लूक के प्रविष्ट गुफा को रोचिष्ण होनेवाले कृष्ण ने… ६०
[व.] देखा। [देखकर] अपने साथ आये हुए सब लोगों को गुफा-मुख पर छोड़कर साहस से महानुभाव हरि निरंतर निबिडांधकार-बंधुर, भयंकर [और] विशाल गुहांतराल में घुसकर, जाकर, वहाँ एक बालिका के सम्मुख दर्शनीय केलिकंदुक की तरह लटकायी गयी उस मणिश्रेष्ठ को देखकर [उसे] हर (अपहरण करने) का निश्चय करके… ६१ [कं.] हे नृप ! धीरे-धीरे पाँव धरते हुए यदुवल्लभ के उस शिशु के पास आने पर, हृदय के धड़कते देखकर, कंप के अधिक होने पर, उसकी धाय जोर से चिल्लाई। ६२
[व.] तब वह ध्वनि सुनकर, बलवान जांबवान ने आकर, कृष्ण को अपने स्वामी के रूप मे न जान कर, प्राकृत पुरुष (सामान्य मानव) समझकर कृष्ण के साथ युद्ध किया। उसमें ६३ [कं.] मांस के लिए लड़नेवाले बाजों की तरह, शस्त्रों, तरुओं और करों से विजय की इच्छाओं से नगचरेंद्र-मुख्य (जांबवान) और हरि अट्ठाईस दिन लड़ते रहे ! ६४

बिडुगुल वडुवुन बडियेंडि
पिडिकिटि पोट्टलनु गलन बॅरसिरिरुवुरुन् ॥ 65 ॥

शा. स्पष्टाहंकृतुलुल्लसिल्ल हरियुन् भल्लूक लोकेशुडुन्
मुष्टामुष्टि नहर्निशंबु जय सम्मोहंबुनं वोरुचो
बुष्टि बासि मुकुंदु मुष्टि हतुलन् बूर्ण श्रमोपेतुडै
पिष्टांगोरु शरीरुडै यतडु दा भीतात्मुडै यिट्लनॅन् ॥ 66 ॥

व. देवा ! निन्नु बुराणपुरुषु नधीश्वरुंडैन विष्णु बभविष्णु नॅरुंगुदु। सर्वभूतंबुलकु बाण प्रताप धैर्य बलंबुलु नीव।' विश्वंबुनकु सर्ग स्थिति लयंबु नॅव्वराचरितुरु वारिकि सर्गस्थिति लयंबुल जेयु नीश्वरुंडवु नीव। आत्मकुं बरमात्मवु नीव यनि मरियुनु ॥ 67 ॥

सी. बाणाग्नि नॅव्वडु पड्रपि पयोराशि निंकिंचि बंधिचि येपु मापॅ
बरग नॅव्वडु प्रताप प्रभाराशिचे दानव गर्वांध तमसमडचॅ
गंजातमुलु द्रेंचु करि भंगि नॅव्वडु दशकंठु कंठ बृंदमुलु द्रुंचॅ
नाचंद्रसूर्यमै यमरु लंका राज्यमुनकु नॅव्वडु बिभीषणुनि निलिपॅ

ते. नन्नु नेलिन लोकाधिनाथु डॅव्व-
डंचितोदार करुणा रसाब्धि यॅव्व-

[कं.] खड्गों और तरुओ के टूट जाने पर भयंकर पौरुष से पीछे न हटकर वेग से [और] बिजली के ज़ोर से पड़नेवाले आघातों से दोनों ने मुष्टि-युद्ध किया। ६५ [शा.] स्पष्ट हुंकृतियों के बढ़ने पर हरि और भल्लूक-लोकेश मुष्टामुष्टि, अहर्निश, जय-सम्मोह से युद्ध करने पर, पुष्टि को खोकर, मुकुंद की मुष्टि के आघातों से पूर्ण श्रमोपेत होकर, पिष्टांगोरु-शरीरी (पिसे हुए उरु शरीर वाला) बनकर [और] उसने स्वयं भीतात्मा बनकर इस प्रकार कहा। ६६ [व.] 'देव, तुमको पुराणपुरुष, अधीश्वर, विष्णु [और] प्रभविष्णु [के रूप में] जान गया हूँ। सर्वभूतों के लिए प्राण, प्रताप, धैर्य, बल तुम ही हो। विश्व के लिए सर्ग, स्थिति [और] लय का आचरण जो करते है उनके लिए सर्ग, स्थिति [और] लय करनेवाले ईश्वर तुम ही हो। आत्मा के लिए परमात्मा तुम ही हो।' यों कहकर और… ६७ [सी.] 'जिसने बाणाग्नि से विशाल पयोराशि को सुखाकर, बाँध करके (उसका) गर्व चूर कर दिया, जिसने [अपनी] प्रताप-प्रभा-राशि से दानव के गर्वांध-तमस को कुचल डाला, कंजातों को (कमलों को) तोड़नेवाले करि (हाथी) की तरह जिसने दशकंठ के कंठ-बृंदों (-समूह) को तोड़ डाला, आचंद्र-सूर्य हो प्रकाशमान होनेवाले लंका राज्य का जिसने विभीषण को राजा बनाया, [ते.] जिस

डातडवु नीव कावॆ महात्म ! नेडु
माकुवडि यॆग्गु सेसिति मरुववलयु ॥ 68 ॥

व. अनि यिट्लु परम भक्तुंडयिन जांबवंतुंडु विनुतिचिन ननि शरीरनिग्रह-निवारणंबुगा भक्तवत्सलुंडयिन हरि तन करंबुन नतनि मेनु निमिरि मेघ-गंभीर भाषणंबुल निट्लनियॆ ॥ 69 ॥

कं. ई मणि मा चेवडॆननि, तामसु लॊनरिंचु निंद दप्पॆडु कॊऱकै
नी मंदिरमगु बिलमुन, केमरुदॆंचितिमि भल्लुकेश्वर ! विटे ॥ 70 ॥

व. अनिन विनि संतसिंचि जांबवंतुडु मणियुनु दन कूतु जांबवतियनु कन्यका-मणियुनुं दॆच्चि हरिकि गानुकगा समर्पिचॆ, नट मुन्न हरि वॆंट वच्चिन वारलु, बिलंबु वाकिट बंड्रॆंडु दिनंबुलु हरि राक कॆदुरु चूचि, वेसरि-वगचि, पुरंबुनकुं जनि रंत देवकी वसुदेवुलुनु रुक्मिणियुनु मित्र बंधु ज्ञाति जनुलुनु गुह सॊच्चि कृष्णुंडु राक चिक्कॆननि शोकिंचि ॥ 71 ॥

कं. दुर्गममगु बिलमुन हरि, निर्गतुडयि चेर वलयु नेडनि पौरुल्
वर्गमुलै सेविंचिरि, दुर्गन् गृत-कुशलमार्ग-दोषित-भर्गन् ॥ 72 ॥

लोकाधिनाथ ने मेरी रक्षा की और जो अंचित (विपुल)-उदार-करुणा का रसाब्धि है, वह तुम ही हो; महात्मा आज तुम्हारा, सामना करके मैंने अपराध किया है, [उसे] भूल जाओ।' ६८ [व.] यों कहकर इस प्रकार परमभक्त जांबवान के विनुति करने पर, उसके शरीर-निग्रह-निवारण के रूप में भक्तवत्सल हरि ने अपने कर (हाथ) से उसके शरीर को फेरकर मेघगंभीर भाषणों से इस प्रकार कहा। ६९ [कं.] "[हे] भल्लूकेश्वर, सुनो, 'यह मणि हमारे हाथ पड़ गई है' कहकर तामस लोग जो [मेरी] निंदा करते है, उससे मुक्त होने के लिए तुम्हारे मंदिर (घर) रूपी विल में हम आये।" ७० [व.] यों कहने पर सुनकर संतुष्ट होकर जांबवान ने मणि को [और] अपनी वेटी जांबवती नामक कन्यकामणि को लाकर हरि को पुरस्कार के रूप में समर्पित किया। उधर पहले हरि के साथ आये हुए लोग बिल के द्वार पर वारह दिन [तक] हरि के आगमन की प्रतीक्षा करके, संदेह कर, दुःखित होकर पुर को लौट पड़े। तव देवकी [और] वसुदेव, रुक्मिणी, मित्र, बंधु [और] ज्ञाति-जन इस प्रकार कहकर कि गुफा में घुसकर कृष्ण [बाहर] न आकर फँस गया, [और] शोक करके ७१ [कं.] 'दुर्गम बिल में हरि को निर्गत होकर आज [बाहर] पहुँचना चाहिए'; यों कहते हुए पौरों ने (नागरिकों ने) वर्गों में बँटकर कृत-कुशलमार्ग वाली और तोषित-भर्ग वाली दुर्गा की सेवा की। (कुशल मार्ग को दिखानेवाली और शिव को संतुष्ट करनेवाली दुर्गा की पूजा की।) ७२ [कं.] डोलायित मानस

कं. डोलायित मानसुलै
जालिबडि जनुलु गोलुव जंडिक बलिकॅन्
बालामणितो मणितो
हेलागति वच्चु नंबुजेक्षणुडनुचुन् ॥ 73 ॥

कं. यत्नमु सफलंबगिन स, -पत्न समूहमुलु बेगड बद्माक्षुंडा-
रत्नमुतो गन्याजन, -रत्नमुतो बुरिकि वच्चॅ रयमुन नंतन् ॥ 74 ॥

कं. मृतुडैनवाडु पुनरा-
गतुडैन क्रियं दलंचि कन्यामणि सं-
युतुडै वच्चिन हरि गनि
विततोत्सव कौतुकमुल वॅलसिरि पौरुल् ॥ 75 ॥

व. इट्लु हरि तन पराक्रमंबुन जांबवती देवि बरिग्रहिंचि राजसभकु सत्राजित्तु बिलिपिंचि तद्वृत्तांतंबंतयु नॅरिंगिंचि सत्राजित्तुनकु मणि निच्चिन नतंडुनु सिग्गुवडि मणि बुच्चुकोनि पश्चात्तापंबु नोंदुचु बलवद्विरोधंबुनकु वॅरचुचु निर्लिकि जनि ॥ 76 ॥

कं. पापात्मुल पापमुलं, बापंगा नोपु नट्टि पद्माक्षुनि पैं
बापमु गलदनि नोडिविन, पापात्मुनि पापमुनकु बारमु गलदे ॥ 77 ॥

म. मित भाषित्वमु मानि येल हरिपै मिथ्याभियोगंबु चे-
सिति बापात्मुड नर्थ लोभुडनु दुश्चित्तुंड मत्तुंड दु-

वाले बनकर जब लोग करुणार्द्र हो सेवा कर रहे थे, तब चंडिका (दुर्गा) ने कहा कि बालामणि [तथा] मणि के साथ हेलागति (संतोष) से अंबुजेक्षण (कृष्ण) आ जायगा। ७३ [कं.] सफलीकृत यत्न होकर पद्माक्ष उस रत्न [और] कन्याजनरत्न के साथ शीघ्र ही तब पुर में आया जिससे सपत्न (शत्रु)-समूह संभ्रमित हो जायँ। ७४ [कं.] मृत के पुनरागत होने की तरह मानकर कन्यामणि-संयुत [के साथ] आये हुए हरि को देखकर, पौरजन विततोत्सव-कौतुकों से विलसित हुए। ७५ [व.] इस प्रकार हरि ने अपने पराक्रम से जांबवती देवी का परिग्रहण करके, राजसभा में सत्राजित को बुलवाकर तद्वृत्तान्त सब समझाकर सत्राजित को मणि दे दी। वह भी लज्जित होकर मणि को लेकर पश्चात्तप्त होते हुए, बलवद्विरोध (बलवान से विरोध) के लिए डरते हुए घर जाकर, ७६ [कं.] "पापात्माओं के पापों को दूर कर सकनेवाले पद्माक्ष पर पाप है"; [ऐसा] बोलनेवाले पापात्मा के पाप का पार (अंत) होता है ? [नहीं।] ७७ [म.] "मितभाषित्व को छोड़कर मैंने हरि पर मिथ्याभियोग क्यों लगाया ? [मैं] पापात्मा हूँ, अर्थलोभी हूँ, दुश्चित्त

मंति नी देहमु गाल्पने दुरितमे मार्गंबुनन् वायु ने
गति गंसारि प्रसन्नुडै मनुचु नन् गारुण्य भावंबुनन् ॥ 78 ॥

आ. मणिनि गूतुनिच्चि माधवु पदमुलु
पट्टुकोंटिनेनि ब्रतुकु गलवु
संतसिंचु नतडु सदुपायमगु निदि
सत्य मितर वृत्ति जक्क वडवु ॥ 79 ॥

म. अनि यिब्भंगि बहु प्रकारमुल नेकांतस्थुडै यिंटिलो
दन बुद्धि वरिकिंचि नीति गनि सत्राजित्तु संप्राप्त शो-
भनुडै यिच्चॆं विपत्पयोधि तरिकिन् भामा-मनोहारिकिन्
दनुजाधीश-विदारिकिन् हरिकि गांतारत्नमुन् रत्नमुन् ॥ 80 ॥

उ. तामरसाक्षु डच्युतु डुदार यशोनिधि पॆंड्लि याडॆ ना-
ना मनुजेंद्र वंदित गुणस्थिति लक्षण सत्यभाम नु-
द्दाम पतिव्रतात्व नय धर्म विचक्षणता दया यशः
कामनु सत्यभामनु मुखद्युति-निर्जित-सोम नय्येडन् ॥ 81 ॥

कं. मणि यिच्चिनाडु वासर-
मणि नीकुनु माकु गलवु मणुलु कुमारी-
मणि चालु नंचु गृष्णुडु
मणि सत्राजित्तुनकुनु मरलग निच्चॆन् ॥ 82 ॥

हूँ, मत्त हूँ, दुर्मति हूँ, क्या यह देह जलाने को है ? [मेरा] दुरित (पाप) किस प्रकार दूर होगा ? किस प्रकार कंसारि (कृष्ण) प्रसन्न होकर कारुण्य भाव से मुझे जीवित रहने देगा ? ७८ [आ.] "मणि को [और अपनी] पुत्री को देकर माधव के पदों को पकड़ूँ तो [मेरा] जीवन होगा। वह संतुष्ट होगा। यह सदुपाय होगा। सत्य है। इतर-वृत्ति (-उपाय) से [यह काम] नहीं बनेगा।" ७९ [म.] इस प्रकार कहकर बहु प्रकार से एकांतस्थ हो घर में अपनी बुद्धि से सोचकर, नीति को पाकर, सत्राजित ने संप्राप्त शोभन हो, विपत्पयोधि के लिए तरि, भामा मनोहारी, दनुजाधीश-विदारि, हरि को कन्या-रत्न और रत्न दे दिया। ८० [उ.] तामरसाक्ष, उदार यशोनिधि, अच्युत ने तब नाना मनुजेंद्र-वंदित, गुण-स्थिति लक्षणा सत्यभामा से, उद्दाम पतिव्रतात्व, नय-धर्म-विचक्षणता-दया-यशःकामा [और] मुखद्युति-निर्जित-सोमा (चन्द्र) सत्यभामा से विवाह कर लिया। ८१ [क.] "वासरमणि (सूर्य) ने तुम्हें मणि दे दी; [और] हमारे पास मणियाँ हैं। कुमारी-मणि पर्याप्त है;" इस प्रकार कहते हुए कृष्ण ने मणि सत्राजित को लौटा दी। ८२

अध्यायमु—५७

शतधन्वुडु सत्राजित्तुनि जंपि मणि नपहरिंचुट

व. अंत नक्कड गुंती सहितुलयिन पांडवुलु लाक्षागारंबुन दग्धुलैरनि विनि निखिलार्थ दर्शनुंडय्युनु गृष्णुंडु बलभद्र सहितुडै करिनगरंबुनकुं जनि कृप विदुर गांधारी भीष्म द्रोणुलं गनि दुःखोपशमनालापंबुलाडुचुंडे नय्येड ।। 83 ।।

सी. जगदीश ! विनवय्य ! शतधन्वु बॊडगनि यक्रूर कृतवर्म लाप्त वृत्ति
मनकित्तु ननुचु सम्मति जेसि तनकूतु बद्माक्षुनकु निच्चि पाडि दप्पॆ
खलुडु सत्राजित्तु गडक नेक्रिय नैन मणि पुच्चुकॊनुमु नीमतमु सॆद्दसि
यनि तन्नु ब्रेरेप ना शतधन्वुंडु पशुवु गटिकि वाडु पट्टि चंपु

आ. करणि निदुर बोव गडगि सत्राजित्तु
बट्टि चंपि वानि भामलॆल्ल
मॊऱलु वॆट्ट लोभमुन जेसि मणि गॊंचु
जनियॆ नॊक्कनाडु जनवरेण्य ! ।। 84 ।।

व. इट्लु हतुंडैन तंड्रि गनि शोकिंचि सत्यभाम यतनि दैल द्रोणियंदु बॆट्टिंचि, हस्तिपुरंबुनकुं जनि सर्वज्ञुंडैन हरिकि सत्राजित्तु मरणंबु विन्नविंचिन

अध्याय—५७

शतधन्वा का सत्राजित की हत्या करके मणि का अपहरण करना

[व.] तब वहाँ कुंती-सहित पांडवों का लाक्षागार मे दग्ध होना सुनकर, निखिलार्थ-दर्शन करनेवाला होकर भी कृष्ण बलभद्र-सहित होकर, करिनगर (हस्तिनापुर) जाकर, कृप, विदुर, गांधारी, भीष्म [और] द्रोण को देखकर दुःखोपशमनालाप करता रहा। तब ८३ [सी.] [हे] जगतीश सुनो, शतधन्वा को देखकर अक्रूर और कृतवर्मा आप्त-वृत्ति से यह कहते हुए कि 'हमें देने को कहते हुए स्वीकार करके, खल सत्राजित अपनी बेटी को पद्माक्ष (श्रीकृष्ण) को देकर नीति-मार्ग से दूर हुआ; किसी न किसी प्रकार उपाय करके मणि को ले लो'; इस प्रकार कहते हुए अपने को प्रेरित करने से वह शतधन्वा जिस प्रकार पशु को पकड़कर क़साई मार डालता है, [आ.] वैसे ही एक दिन सत्राजित के सो जाने पर यत्न करके, उसे पकड़कर मार डालकर, उसकी सब भामाओं के रोते रहने पर लोभ से मणि को लेकर, [हे] जनवरेण्य ! वह चला गया। ८४ [व.] इस प्रकार हत-पिता को देखकर शोकित होकर सत्यभामा के उसको तैलद्रोणी में

हरियुनु बलभद्रुंडु नीश्वरुलय्युनु मनुष्य भावंबुल विलपिंचिरंत बलभद्र-सत्यभामा समेतुडै हरि द्वारका नगरंबुनकु मरलि वच्चि शतधन्वु जंपॆदननि तलंचिन नॆऱिगि शतधन्वुंडु प्राणभयंबुन गृतवर्मु यिंटिकि जनि तनकु सहायुंडुवु गम्मनि पलिकिन गृतवर्म यिट्लनियॆ ॥ 85 ॥

उ. अक्कट ! रामकृष्णुलु महात्मुलु वारल कॆग्गु सेयगा
निक्कड नॆव्वडोपु विनु मेपॆड गंसुडु बंधुयुक्तुडै
चिक्कडॆ मुन्नु मागधुडु सेनलतो बदि येडु तोयमुल्
दिक्कुल बाऱडे मनकु दृष्टमु वारल लावु वितर्यौ ॥ 86 ॥

व. अनि युत्तरंबु चॆप्पिन विनि शतधन्वुंडक्रूरु निंटिकि जनि हरि तोडि पगकुं दोडुकम्मनि चीरिन नक्रूरुंडु हरि बल पराक्रम धैर्यस्थैर्यंबुलुगडिचि मऱियु निट्लनियॆ ॥ 87 ॥

सी. एव्वडु विश्वंबु नॆल्ल सलीलुडै पुट्टिंचु रक्षिंचु बॊलिय जेयु
नॆव्वनि चेष्टल नॆऱुगरु ब्रह्मादु लॆव्वनि माय मोहिंचु भुवन
मेडेंड्ल पापडै येविभु डीक चेत गोरक्षणमुनकै कॊंड नॆत्ते
नॆव्वडु कूटस्थु डीश्वरु डद्भुत कर्मु डनंतुडु गर्मसाक्षि

रखवाकर हस्तिनापुर जाकर सर्वज्ञ हरि को सत्राजित के मरण [का समाचार] सुनाने पर, हरि और बलभद्र ने ईश्वर होकर भी मनुष्य भावों से विलाप किया। तब बलभद्र [और] सत्यभामा समेत हरि ने द्वारका नगर में लौट आकर सोचा कि शतधन्वा को मार डालूंगा, [यह] जानकर शतधन्वा ने प्राण-भय से कृतवर्मा के घर आकर कहा कि मेरे सहायक बनो; तो कृतवर्मा ने इस प्रकार कहा। ८५ [उ.] "ओह ! राम और कृष्ण महात्मा हैं; उनके प्रति अपराध करने के लिए यहाँ कौन समर्थ है ? सुनो, क्या पहले (इसके पूर्व) बंधुयुक्त होकर कंस नहीं मर गया ? मागध सत्रह बार सेनाओं के साथ दिशाओं में नहीं भाग गया ? हमारे लिए दृष्ट है। उनका बल आश्चर्यजनक है।" ८६ [व.] इस प्रकार उत्तर देने पर सुनकर शतधन्वा ने अक्रूर के घर जाकर हरि के साथ विरोध करने के लिए बुलाया तो अक्रूर ने हरि के बल-पराक्रम, धैर्य-स्थैर्यों की प्रशंसा करके और इस प्रकार कहा। ८७ [सी.] "जो सारे विश्व को सलील (लीला से) बनकर पैदा करता है, [उसकी] रक्षा करता है और [उसका] नाश करता है, जिसकी चेष्टाओं को ब्रह्मा आदि नहीं जानते, जिसकी माया से भुवन मोह करता है, जिस विभु ने सात वर्ष का बालक होकर गोरक्षण के लिए एक [ही] हाथ से पहाड़ को उठाया, जो कूटस्थ है, ईश्वर है, अद्भुत कर्म करनेवाला है, अनंत है [और] कर्मसाक्षी है, [ते.] ऐसे घन (श्रेष्ठ) को, शौरि को,

ते. यट्टि घनुनकु शौरिकि ननवरतमु
म्रोक्कॅदमु गाक विद्वेषमुनकु नेमु
वॅरतुमॊल्लमु नी पॊंदु वेग वॊम्मु
चालु बदिवेलु वच्चॅ नी सख्यमुननु ॥ 88 ॥

व. अनि यिट्लक्रूरुंडुत्तरंबु वलिकिन नम्महामणि यक्रूर नॊद्द नुनिचि वॆरचि शतधन्वुंडु तुरगारूढुंडयि शत योजन दूरंबु चनियॆ। अंत गरुडकेतनालंकृतंबैन तरंबिक राम कृष्णुलु वॆंटुचनि रंत नतंडुनु मिथिलानगरंबु जेरि तत्समीप वनंबुनंदु ॥ 89 ॥

चं. तुरगमु डिग्गि तल्लडमुतो शतधन्वुडु पादचारियै
परुविड बोकु पोकुमनि पद्म दळाक्षुडु गूड बारि भी-
कर गति वानि मस्तकमु खंडितमैपड ब्रैसं जक्रमुं-
बरिहत - दैत्य- चक्रमु, प्रभाचय - मोदित - देव - चक्रमुन् ॥ 90 ॥

व. इट्लु हरि शतधन्वुनि वधियिंचि वानि वस्त्रंबुलंदु मणि वॆदकि लेकुंडुट दॆलिसि बलभद्रुनि कडकु वच्चि शतधन्वुंडूरक हतुंडय्यॆ। मणिलेदनिन बलभद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 91 ॥

सी. आ मणि शतधन्वुडपहरिंचुट निक्कमॆव्वरिचे दाप निच्चिनाडॊ
वेगम नी वेगि वॆदकुमु पुरिलोन वदेहु दशिप वांछ गलदु
पोयि वच्चॆद नीवु पॊम्मनि वीड्कॊनि मॆल्लन रामुंडु मिथिल जॊच्चि
पोयिन जनकुंडु पॊडगनि हर्षिंचि यॆंतयु प्रियमुतो नॆदुरुवच्चि

अनवरत नमस्कार तो करते हैं; विद्वेष के लिए हम डरते है; तुम्हारी मित्रता को [हम] स्वीकार नही करते। जल्दी जाओ। बस, तुम्हारे सख्य से दस हजार आये। (व्यर्थ की आफ़त आई।) ८८ [व.] इस प्रकार अक्रूर के उत्तर देने पर उस महामणि को अक्रूर के पास रखकर, डरकर, शतधन्वा तुरगारूढ़ होकर शत योजन दूर चला गया। गरुड़केतनालंकृत रथ पर चढकर राम [और] कृष्ण पीछे गये। वह भी मिथिला नगर पहुँचकर तत्समीप वन में ८९ [चं.] तुरग से उतर कर, घबराहट से शतधन्वा के पादचारी होकर भाग जाने पर 'जाओ मत, जाओ मत' कहते हुए श्रीकृष्ण ने भी दौड़कर, भीकर गति से परिहत -दैत्यचक्र, (समूह वाले) प्रभाचयमोदित देवशक्र[होनेवाले]चक्र को इस प्रकार फेंक दिया कि उसका मस्तक खंडित होकर नीचे गिर जाय। ९० [व.] इस प्रकार हरि ने शतधन्वा का वध करके उसके वस्त्रों में मणि के लिए ढूँढ़ा, उसका न रहना जानकर बलभद्र के पास आकर कहा कि शतधन्वा यों ही हत हुआ, (उसके पास) मणि नहीं है, बलभद्र ने इस प्रकार कहा। ९१ [सी.] 'उस मणि को शतधन्वा का अपहरण करना

ते. यर्घ्यपाद्यादि कृत्यंबुलाचरिंचि
यिच्चगिंचिन वस्तुवुलॅल्ल निच्चि
युंडुमनि भक्ति चेसिन नुंडॆ मुसलि
कुवलयेश्वर ! मिथिललो गॊन्नि यॆड्लु ॥ 92 ॥

व. अंत दुर्योधनुंडु मिथिला नगरंबुनकुं जनुदॆंचि जनकराजु चेत सन्मानितुंडयि ॥ 93 ॥

कं. चलमुन गांधारेयुडु, ललित गदायुद्ध कौशलमु नेर्चॆ दगन्
हलिचे नाश्रित निर्जर, -फलिचे त्रैलोक्य वीर भट गण बलि चेन् ॥ 94 ॥

व. अट कृष्णुंडुनु द्वारका नगरंबुनकुं जनि शतधन्वुनि मरणंबुनु मणि लेकुंडुटयुनु सत्यभामकुं जॆप्पि सत्यभामा प्रियकरुंडु गावुन सत्राजित्तुनकुं बरलोक क्रियलु सेयिंचॆ, नक्रूर कृतवर्मलु शतधन्वु मरणंबु विनि वॆरचि द्वारकानगरंबु वॆडलि बहु योजन दूर भूमिकि जनिरक्रूरुंडु लेमि जेसि वानलु लेक महोत्पातंबुलुनु, शरीर मानस तापंबुलुनु द्वारका नगर वासुलकु संभविंचिन नंदुल वृद्ध जनुलु बॆगडि हरिकिट्लनिरि ॥ 95 ॥

सत्य है। न जाने छिपा रखने के लिए [उसे] किसे दिया। जल्दी तुम जाकर ढूंढ़ो; [मुझे] पुर मे वैदेह के दर्शन करने की वांछा है। जाकर आऊँगा। तुम जाओ।" इस प्रकार कहकर, विदा लेकर धीरे-धीरे राम (बलराम) के मिथिला में प्रवेश करने पर जनक ने [उसे] देखकर हर्ष करके, कितने ही [अधिक] प्रेम से उसकी अगवानी करके, [ते.] अर्घ्य, पाद्य आदि कृत्यों का आचरण करके, [और राम ने] जिन-जिन वस्तुओं को चाहा, उन सबको देकर, ठहरने की भक्ति (प्रार्थना) की तो, [हे] कुवलयेश्वर ! मुसली (बलराम) कुछ वर्ष मिथिला में रहा। ९२ [व.] तब दुर्योधन मिथिला नगर में आकर राजा जनक से सम्मानित होकर ९३ [कं.] [बड़ी] लगन के साथ गांधारेय (दुर्योधन) ने आश्रित-निर्जर-फली (कल्प-वृक्ष) और त्रैलोक्य-वीरभट-गण बली [होनेवाले] हली (बलराम) से ललित गदा-युद्ध-कौशल को सीख लिया। ९४ [व.] वहाँ कृष्ण ने भी द्वारका नगर में जाकर शतधन्वा के मरण [और] मणि के न रहने का विषय सत्यभामा से कहकर, सत्यभामा का प्रियकर होने के कारण सत्राजित की परलोक-क्रियाएँ करवायीं। अक्रूर [और] कृतवर्मा शतधन्वा के मरण को सुनकर, डरकर, द्वारकानगर से निकलकर बहु योजन दूर की भूमि को गये। अक्रूर के न रहने से, वर्षा के अभाव में महोत्पात [और] शरीर-मानस-ताप द्वारकानगरवासियों को संभव (संप्राप्त) होने से वहाँ के वृद्ध जनों ने डरकर हरि से इस प्रकार कहा। ९५ [सी.] "[हे] कमलाक्ष ! सुनो।

सी. कमलाक्ष ! विनवय्य ! काशीशुडेलेडि कुंभिनि वानलु गुरिय कुन्न
गोरि श्वफल्कुनि गोनि पोयि यतनिकि गांदिनि यनियेडु कन्य निच्चि
काशी विभुंडु सत्कारंबु सेसिन वानलु गुरिसे ना वसुध मीद
नातनि पुत्रकुडन यक्रूरुंडु नंतटि वाडु महा तपस्वि

आ. मरलि वच्चेनेनि मानु नुत्पातंबु-
लेल्ल वान गुरियु नी स्थलमुन
देव ! यतनि दोडि तेच्चिपु मन्निपु
मानवलयु बीड मानवुलकु ॥ 96 ॥

व. अनि पलुकु पेद्दल पलुकु लाकर्णिंचि दूतजनुलनु बंपि कृष्णुं डक्रूरुनि राविंचि पूजिंचि प्रिय कथलु कोन्नि सेप्पि सकल लोकज्ञुंडु गावुन मृदु मधुर भाषणंबुल नतनि किट्लनिये ॥ 97 ॥

सी. तानेगु तरि शतधन्वुंडु मणि देच्चि नीयिंट बेट्टुट निजमु देलिसि
नाड सत्राजित्तुनकु बुत्रकुलु लेमि नतनिकि गार्यंबु लाचरिंचि
वित्तंबु ऋणमुनु विभजिंचु कोनियेद रतनि पुत्रिकलेल्ल नतडु परुल
चेत दुर्मरणंबु जेंदिनाडतनिकै सत्कर्मबुलु मीद जरुपवलयु

आ. मणि ग्रहिंपु मीव मा यन्न ननु नम्म-
डेलमि बंधु जनुल केल्ल जूपु

काशीश की पालित कुंभिनि (भूमि) पर वर्षा के न होने से इच्छा करके श्वफल्क को ले जाकर, उसे कांदिनी नामक कन्या को देकर काशीविभु ने सत्कार किया तो उस वसुधा पर वर्षा हुई। उसका पुत्र अक्रूर उसके (अपने पिता के) समान है; महान् तपस्वी है ! [आ.] [अगर वह] वापस आवे तो सब उत्पात दूर हो जायेंगे; इस स्थल पर वर्षा होगी। [हे] देव ! उसे बुलवाओ (लिवा लाओ); आदर करो; मानवों (प्रजा) की पीड़ा को दूर करना चाहिए।" ९६ [व.] यों कहनेवाले बड़ों के वचन आकर्णित करके दूतों को भेजकर कृष्ण ने अक्रूर को बुलवाकर, [उसकी] पूजा करके प्रिय कथाएँ (बातें) कुछ कहकर, सकल लोकज्ञ होने के कारण मृदु मधुर भाषणों से उससे इस प्रकार कहा। ९७ [सी.] "मैंने इस सत्य को जान लिया कि शतधन्वा ने स्वयं जाते समय मणि को लाकर तुम्हारे घर में रखा; सत्राजित के पुत्र न होने के कारण उसके कार्य (पितृ-कर्म) सम्पन्न करके वित्त और ऋण को उसकी पुत्रिकाएँ विभाजित कर लेंगी; उसने परों (शत्रुओं) से दुर्मरण को पाया; आगे उसके लिए सत्कर्म करने चाहिए; [आ.] तुम ही मणि को ग्रहण करो; हमारा बड़ा भाई मुझ पर विश्वास नहीं करता। संतोष के साथ तुम मणि को सभी बंधु जनों को

मय्य ! नीगृहमुन हाटक वेदिका
सहित मखमुलमरु संततमुनु ॥ 98 ॥

व. अनि यिट्लु सामवचनंबुलु हरि पलिकिन नक्रूरुंडु वस्त्रच्छन्नंबैन मणि देच्चि हरि किच्चिन ॥ 99 ॥

उ. संततमंदि बंधु जन सन्निधिकिन् हरि देच्चि चूपॅ न-
श्रांत विभासमान घृणि जाल पलायित भू नभोंतर-
ध्वांतमु हेमभारचय वर्षण विस्मित देव मानव
स्वांतमु गीर्ति पूरित दिशावलयांतमु नाशमंतमुन् ॥ 100 ॥

कं. चक्रायुधु डीक्रिय दन, यक्रूरत्वंबु जनुल कंदरकुनु नि-
र्वक्रमुग देलिपि क्रम्मर, नक्रूरुन किच्चॅ मणि गृपाकलितुंडै ॥ 101 ॥

क. घनुडु भगवंतुडीश्वरु-
डनघुडु मणि देच्चि यिच्चि नट्टि कथनमुनन्
विनिन बठिंचिन दलचिन
जनुलकु दुर्यशमु बापसंघमु दलगुन् ॥ 102 ॥

दिखाओ। तुम्हारे गृह से संतत [सदा] हाटक-वेदिका-सहित मख (यज्ञ) सम्पन्न हो जायेंगे।" ९८ [व.] इस प्रकार हरि के साम-वचन बोलने पर अक्रूर ने वस्त्रच्छन्न मणि लाकर हरि को दे दिया तो ९९ [उ.] संतुष्ट होकर हरि ने अश्रांत विभासमान घृणि-जाल-पलायित भू-नभोंतरध्वांत, हेमभार-चयवर्षण विस्मित देव मानव अंतरंग [तथा] कीर्ति-पूरित दिशावलयांत [होनेवाले] उस स्यमंत को बंधुजन सन्निधि में लाकर दिखाया। १०० [कं.] चक्रायुध ने इस प्रकार अपने अक्रूरत्व को निर्वक्र गति से सभी जनों को समझाकर [प्रकटित करके] फिर कृपाकलित होकर [उस] मणि को अक्रूर को दे दिया। १०१ [कं.] घन (श्रेष्ठ), भगवान, ईश्वर [और] अनघ के मणि को लाकर देने के कथन को जो चाहे सुनें, चाहे [उसका] पठन करें, चाहे मनन करें, उन जनों का दुर्यश [और] पाप-संघ [-समूह] दूर हो जायेंगे। १०२

अध्यायमु—५८

श्रीकृष्णुंडिंद्रप्रस्थपुरंबुन करुगुदेंचुट

व. अंत नोक्कनाडु पांडवुल जूड निश्चयिंचि सात्यकि प्रमुख यादवुलु गोलुव बुरुषोत्तमुंडिंद्रप्रस्थपुरंबुनकु जनिनं ब्राणंबुलं गनिन यिद्रियंबुलभंगि वारखिलेश्वरुंडयिन हरिं गनि कौगिलिंचुकोनि कृष्णुनि दिव्य-देह-संगमंबुन निर्धूतकल्मषुलै यनुराग हास विभासितंबैन मुकुंद मुखारविंदंबुनु संदर्शिंचि यानंदंबु नोंदिरि। गोविंदुंडुनु युधिष्ठिर भीमसेनुल चरणंबुलकु नभिवंदनंबुलु चेसि यर्जुनु नालिंगनंबुन सत्करिंचि नकुल सहदेवुलु म्रोक्किन ग्रुच्चि यैत्ति युत्तमपोठंबुन नासीनुंडयि युंडे नपुडु ॥ 103 ॥

कं. चंचद्घन कुच भारा, -कुंचितयै क्रोत्त पेंड्लि कूतुरगुट निं-
चिंचुक सिग्गु जनिपग, बांचाल तनूज म्रोक्के बद्माक्षुनकुन् ॥ 104 ॥

व. अंत सात्यकि पांडवुल चेतं बूजितुंडै योक्क पोठंबुन नासीनुंडै युंडे, दक्किन यनुचरुलुन् वारि चेत बूजितुलै कोलिचि युंडिरि। हरियु गुंतीदेवि कडकुं जनि नमस्करिंचि यिट्लनियें ॥ 105 ॥

अध्याय—५८

श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थपुर में आना

[व.] तब एक दिन पांडवों को देखने का निश्चय करके, सात्यकि प्रमुख यादवों के सेवाएँ करने पर, पुरुषोत्तम इंद्रप्रस्थपुर गया तो प्राणों को देखे, प्राप्त किए हुए इन्द्रियों की तरह, उन्होंने (पांडवों ने) अखिलेश्वर हरि से आलिगन करके, कृष्ण के दिव्यदेह-संगम से निर्धूतकल्मषवाले होकर अनुराग-हास-विभासित-मुकुंद के मुखारविंद का संदर्शन करके आनंद को पाया। गोविंद भी युधिष्ठिर [और] भीमसेन के चरणों को अभिवादन करके, अर्जुन का आलिगन से सत्कार करके, नकुल [और] सहदेव के, प्रार्थना करने पर [उन्हें] बाहुओं में उठा लेकर, उत्तम पीठ पर आसीन होकर रहा। तब १०३ [कं.] चंचत्-घनकुचभार से सिकुड़ी हुई पांचाल-तनूजा (द्रौपदी) ने, नववधू होने के कारण, थोड़ी सी लज्जा के उत्पन्न होने से पद्माक्ष को नमस्कार किया। १०४ [व.] तब सात्यकि पांडवों से पूजित होकर एक पीठ पर आसीन होकर रहा। शेष अनुचर भी उनसे पूजित होकर सेवाएँ करते रहे। हरि ने भी कुंतीदेवी के पास जाकर नमस्कार करके इस प्रकार कहा। १०५ [कं.] "फूफी, पुत्रों और व

कं. अत्ता ! कॊडुकुलु गोडलु, जित्तानंदमुग बनुलु सेयग नात्मा-
यत्तानुगवै याज्ञा, -सत्ताद्दुलु गलिगि मनुवॆ सम्मोदमुनन् ॥ 106 ॥

चं. अनवुडु प्रेम विह्वलत नंदुचु गद्गद भाषणंबुलन्
गनुगव नश्रुतोयमुलु ग्रम्मग गुंति सुयोधनुंडु चे-
सिन यपकारमुं दलचि चॆंदिन दुःखमुलॆल्ल जॆप्पि या
दनुजविरोधि कित्त्लनियॆ वद्दयु वॆद्दरिकंबु सेयुचुन् ॥ 107 ॥

सी. अन्न ! नी चुट्टाल नरयुदु मरुववु नीवु पुत्तॆंचिन नॆम्मितोड
मा यन्न येतॆंचि ममु जूचि पोयॆनु निल्चि युन्नारमु नी बलमुन
ना पिन्नवांड्रकु नाकु दिक्कॆव्वरु नेडादिगा निंक नीव काक
यखिल जंतुवुलकीवात्मवु गावुन वरुलु मा वारनि भ्रांति सेय

ते. नय्य ! ना भाग्यमॆट्टिदो यनवरतमु
जित्तमुन नुंडि करुण मा चिक्कुलॆल्ल
वापुचुंडुवु गादॆ यो परमपुण्य !
यदुकुमारवरेण्य ! बुधाग्रगण्य ! ॥ 108 ॥

व. अनिन युधिष्ठिरुंडित्त्लनियॆ ॥ 109 ॥

उ. पट्टगलेरु निन्नु दमभावमुलंदु सनंदनादु ले-
पट्टुननैन नट्टि गुण भद्र चरित्रुडवीवु नेडु मा

चित्तानंद से, काम करते रहने पर आत्मायत्तानुगा (स्वतंत्र) होकर आज्ञा और सत्ता के साथ सम्मोद से रहती हो न !" १०६ [चं.] तब प्रेम-विह्वलता के साथ गद्गद भाषणों से, नेत्रद्वय में अश्रुजल के भर जाने पर कुंती ने सुयोधन के किये हुए अपकार का स्मरण करके, अपने सहे हुए सब दुःखों को कहकर, उस दनुज-विरोधी (श्रीकृष्ण) को बड़प्पन (गौरव) देते हुए [उससे] इस प्रकार कहा। १०७ [सी.] "भाई, अपने बांधवों को जानते हो; प्रेम के साथ तुम आते हो, नहीं भूलते हो। हमारा भाई आकर, हमें देखकर चला गया है। तुम्हारे बल पर हम जीवित हैं। मेरे बच्चों और मेरी रक्षा करनेवाला तुमको छोड़कर, आज से लेकर, और कौन है? सभी जंतुओं (प्राणियों) की तुम आत्मा हो; इसलिए ऐसी भावना करो कि पर (इतर) लोग मेरे हैं। [ते.] न जाने मेरा भाग्य कैसा है। हे परमपुण्य ! यदुकुमारवरेण्य ! [और] बुधाग्रगण्य ! अनवरत (सदा) [हमारे] चित्त में रहकर करुणा से हमारे उलझनों को सुलझाते रहो न !" १०८ [व.] [कुंती के] ऐसा कहने पर युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा। १०९ [उ.] "हे अधीश्वर ! सनंदन आदि भी तुमको अपने मन में किसी भी तरह धारण नही कर सकते। तुम वैसे गुणभद्र,

चुट्टम वंचु वच्चॅदवु चूचॅदवल्पुलमैन मम्मु नॅ-
मॅट्टि तपंबु सेसितिमधीश्वर! पूर्वशरीर वेळलन् ॥ 110 ॥

व. अनि धर्मजुंडु दन्नु ब्रार्थिचिन निंद्रप्रस्थपुरंबु वारलकु नयनानंदंबु सेयुचु हरि कौन्नि नॅललु वसियिंचि युंडे नंदॉक्कनाडु ॥ 111 ॥

म. तुरगश्रेष्ठमु नॅक्कि कंकट धनुस्तूणी शरोपेतुडै
हरितोडन् वनभूमि केगि विजयुंडासक्तुडै चंपॅ शं-
बर शार्दूल तरक्षु शल्य चमरी भल्लूक गंधव का-
सर कंठोरव खड्गकोल हरिणी सारंग मुख्यंबुलन् ॥ 112 ॥

कं. अच्चोट बवित्रमुलै
चच्चिन मृगराजिनॅल्ल जननाथुनकुं
दॅच्चि यॊसंगिरि मॅच्चुग
जॅच्चॅर नरु, गॊलिचि युन्न सेवकुलधिपा! ॥ 113 ॥

सूर्यतनुजायगु काळिंदिनि कृष्णुंडु वरिंचुट

व. अंत नर्जुनुंडु नीरुवट्टुन डस्सिन यमुनकुं जनि यम्महारथुलैन नर-नारायणुलंदु वार्चि जलंबुलु द्रावि यॊक पुलिन प्रदेशंबुन नुंडि ॥ 114 ॥

चरित्रवान हो। आज तुम हमारे रिश्तेदार बनकर आये हो। हम अल्पों को देख रहे हो। न जाने अपने पूर्व जन्मों में हम लोगों ने कैसा तप किया था।" ११० [व.] इस प्रकार अपने को धर्मराजा के प्रार्थना करने पर, इन्द्रप्रस्थपुर में उनके नयनों को आनंद पहुँचाते हुए हरि ने कतिपय महीने वहाँ निवास किया; तब एक दिन १११ [म.] श्रेष्ठ तुरग पर आरूढ़ होकर, कंकट-धनु-तूणी [र]-शरोपेत होकर, हरि के साथ वनभूमि में जाकर विजय ने आसक्त होकर, शंबर, शार्दूल, तरक्षु, शल्य, चमरी, भल्लूक, गंधर्व, कासर, कंठीरव, खड्गकोल, हरिणी [और] सारंग मुख्यों (आदियों) को मार डाला। ११२ [कं.] हे अधिप (परीक्षित)! नर (अर्जुन) के साथ रहनेवाले सेवकों ने, वहाँ पवित्र होकर मरी हुई सारी मृगराजि (मृगसमूह) को लाकर शीघ्र ही जननाथ को दिया ताकि वह प्रशंसा करे। ११३

सूर्यतनूजा कालिंदी को श्रीकृष्ण का वरण करना

[व.] तब अर्जुन प्यास से थक गया तो यमुना में जाकर वे महारथी नर (अर्जुन) और नारायण आचमन करके, जल को पीकर, एक पुलिन प्रदेश पर बैठे रहे। ११४ [चं.] उपगत (बैठे हुए) पुरुषोत्तम [और]

चं. उपगतुलैन यटिट् पुरुषोत्तम पार्थुलु गांचिरापगा
विपुल विलोल नीलतर वीचकलंदु शिरोजभार रु-
च्यपहसिताळि-मालिक नुदंचित बालशशि प्रभालिकन्
दपनुनि बालिकन् मदन-दर्पण-तुल्य कपोल-पालिकन् ॥ 115 ॥

व. कनि यच्युतुंडु पंचिन विव्वच्चुंडु चनि या कन्यकिट्लनियॆ ॥ 116 ॥

म. सुदती ! यॆव्वरि दान वेमि कॊऱकिच्चोटन् ब्रवर्तिचॆदे-
य्यदि नी नामसु गोर्कि यॆट्टिदि विवाहाकांक्षतो गूडि यी
नदिकिन वच्चिन जाड गानवडॆ धन्यंबय्यॆ नी राक नी
युदयादि स्थिति नॆल्ल जॆप्पु मवला ! युद्यत्कुरंगेक्षणा ! ॥ 117 ॥

व. अनिन नर्जुनकु गाळिंदि यिट्लनियॆ ॥ 118 ॥

म. नर-वीरोत्तम ! येनु सूर्युनि सुतन् ना पेरु काळिंदि भा-
स्कर संकल्पित गेहमंदु नदिलो गंजाक्षु विष्णुं ब्रभुन्
वरुगा गोरि तपंबु सेयुदु नॊरुन् वांछिप गृष्णुंडु व-
न्यरतिन् वच्चि वरिंचु नंचु बलिकॆन् ना तंड्रि ना तोडुतन् ॥ 119 ॥

व. अनिन विनि धनंजयुंडानीलवेणि पलुकुलु हरिकि जॆप्पिन विनि सर्वज्ञुंडैन

पार्थ ने नदी के विपुल-विलोल-नीलतर-वीचिकाओं में शिरोजभार की रुचि (कान्ति) से अपहसित आलि (भ्रमर) मालिका, उदंचित-बालशशि-प्रभालिका [और] मदन दर्पणतुल्य-कपोलपालिका होनेवाली तपन (सूरज) की कन्या को देखा। ११५ [व.] देखकर अच्युत के भेजने पर अर्जुन ने जाकर उस कन्या से इस प्रकार कहा। ११६ [म.] "सुदती ! तुम किसकी हो? तुम यहाँ किसके लिए प्रवर्तित (घूमती) हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी क्या इच्छा है? ऐसा लगता है कि तुम विवाह की आकांक्षा (इच्छा) से इस नदी में आयी हो। तुम्हारा आगमन धन्य हुआ। [हे] अबला ! उद्यत्-कुरंगेक्षणा ! अपने उदय (जन्म) की आदि-स्थिति [से लेकर] सारी [कथा] कहो।" ११७ [व.] ऐसा कहने पर अर्जुन से कालिंदी ने इस प्रकार कहा। ११८ [म.] "[हे] नर-वीरोत्तम ! मैं सूर्यसुता हूँ। मेरा नाम कालिंदी है। भास्कर-संकल्पित-गृह में, नदी में, कंजाक्ष होनेवाले विष्णु-प्रभु को वर के रूप में [प्राप्त करने की] इच्छा करके तप करती हूँ। दूसरों को नहीं चाहती। मेरे पिता ने मुझसे कहा कि कृष्ण वन्यरति (आखेट में प्रीति) से आकर वरण करेगा।" ११९ [व.] ऐसा कहने पर सुनकर धनंजय ने उस नीलवेणी की बातों को हरि से कहा तो सुनकर सर्वज्ञ [होनेवाले] हरि ने [उस] हरिमध्या (युवती) को रथ पर रखकर धर्मराजा के पास जाकर उनसे वांछित विश्वकर्मा

हरियु हरिमध्यनु रथंबुमीद निडुकौनि धर्मराजु कडकुंजनि वारलु गोरिन
विश्वकर्मनु राविचि वारि पुरं बति विचित्रंबु सेयिंचें ॥ 120 ॥

कं. देवेंद्रुनि खांडवमुनु, बावकुनकु नी दलंचि पार्थुनि रथिकुन्
गाविचि सूतुडय्यनु, गोविंदुडु मरदि तोडि कूरिमि वॅलयन् ॥ 121 ॥

व. इट्लु नरनारायणुलु सहायुलुगा दहनुंडु खांडववनंबु दहिंचि संतसिंचि
विजयुनकु नक्षय तूणीरंबुलु नभेद्य कवचंबुनु गांडीवमनियॅडि बाणासनंबुनु
दिव्यरथंबुनु धवळ रथ्यंबुलु निच्चें नंदु ॥ 122 ॥

उ. वासवसूनुचे दनकु वह्नि शिखा जनितोग्र वेदनल्
पासिन जेसि यॅक्क सभ पार्थुन किच्चॅ मयुंडु प्रीतुडै
या सभलोन गादॅ गमनागमनंबुल गौरवेंद्रुडु-
ल्लासमु बासि युंडुट जलस्थल निर्णय बुद्धि होनुडै ॥ 123 ॥

श्रीकृष्णुंडु काळिंदि मित्रविंद नाग्नजिति भद्रलक्षण यनुवारलं बरिणयंबगुट

व. अंत गृष्णुंडु धर्मराज प्रमुखुल वीडुकौनि सात्यकि प्रमुख सहचरुलु गॊलुव
मरलि तन पुरंबुनकुं जनुदेंचि बंधु जनंबुलकु बरमानंदंबु सेयुचु नॊक्क
पुण्य दिवसंबुन शुभलग्नंबुनं गाळिंदि बॅंड्लियय्यॅ मरियु नवंतिदेशा-

को बुलवाकर उनके पुर को अति विचित्र बनवाया। १२० [कं.] देवेंद्र के खांडव को पावक (अग्नि) को देने को सोचकर, पार्थ को रथिक बनाकर, गोविंद (अपने) फुफेरे भाई (अर्जुन) पर होनेवाले प्रेम से सारथी बना। १२१ [व.] इस प्रकार नर [और] नारायण को सहायक [बनाकर] दहन (अग्नि) ने खांडव वन का दहन करके [और] संतुष्ट होकर विजय (अर्जुन) को अक्षय तूणीर, अभेद्य कवच [और] गांडीव नामक बाणासन, धनुष, दिव्य रथ [और] धवल रथ्य (घोड़े) दिये। उसमें १२२ [उ.] वासवसून (अर्जुन) से अपने को वह्निशिखाजनित उग्र वेदनाओं के दूर होने पर मय ने प्रीत (संतुष्ट) होकर एक सभा को बनाकर पार्थ को दिया। उसी सभा में तो गमनागमनों से कौरवेंद्र जल और स्थल के निर्णय में बुद्धिहीन बनकर, उल्लास-रहित हो गया। १२३

श्रीकृष्ण का कालिंदी, मित्रविंदा, नाग्नजिति, भद्रा, लक्षणा नामक कन्याओं से परिणय कर लेना

[व.] इसके बाद कृष्ण ने धर्मराज प्रमुखों (आदियों) से विदा लेकर, सात्यकि प्रमुख सहचरों के सेवाएँ करने पर, निकलकर, अपने पुर में आकर, को परम आनंद [प्रदान] करते हुए, एक पुण्य f

धीश्वरुलैन विदानुविंदुलु दुर्योधनुनकु वश्युलै हरिकि मेनत्तयैन राजाधिदेवि कूतुरैन तम चेलियलि विवाहंबु सेय नुद्योगिंचि स्वयंवरंबु जाटिंचिन ॥ 124 ॥

कं. भूरमणुलु सूडग हरि
वीरत जेकॊनियॆ मित्रविंदनु नित्या-
पूरित सुजनानंदं
जारु चिकुर कांति विजित षट्पद-वृंदन् ॥ 125 ॥

सी. जननाथ विनुमु कोसल देशमेलॆडि नग्नजित्तनु नरनाथुडॊकडु
सुमति धार्मिकुडु तत्सुत नाग्नजितियनु कन्यक गुणवति गलदु दानि
बॆंड्लि याडुटकुनै पृथिवीशुलेतॆंचि वाडि कॊम्मुलुगल वानि वीर-
गंधंबु सोकिन गालु द्रव्वॆडि वानि नतिमदमत्तंबुलैन वानि

ते. गोवृषंबुल नेडिंटि गूर्चि तिगिचि
बाहु बलमुन नॆव्वंडु पट्टि कट्टु
नतडु कन्यकु दगु वरुंडनिन वानि
वट्ट जालक पोदुरु प्रजलु वॆंगडि ॥ 126 ॥

व. इट्लु गोवृषंबुल जयिंचिनवाडव्कन्यकु वरुंडनिन भगवंतुंडयिन हरि विनि सेना परिवृतुंडै कोसलपुरंबुनकुं जनिन गोसलाधीश्वरुंडु हरि नॆ-

---

शुभ लग्न में कालिंदी से विवाह कर लिया। और अवंतिदेशाधीश्वर विदानुविंदों ने दुर्योधन के वश्य बनकर, हरि की फूफी राजाधिदेवी की बेटी [और] अपनी बहन का विवाह करने का उद्योग (प्रयत्न) करके स्वयंवर घोषित किया तो १२४ [कं] भूरमणों (राजाओं) के देखते रहने पर हरि ने वीरता के साथ नित्यापूरित सुजन-आनंद (-आनंद देनेवाली) चारु चिकुर-कांति [से] विजित षट्पदवृंदा (भ्रमर-समूह वाली,) मित्रविंदा को ग्रहण किया। १२५ [सी.] [हे] जननाथ, सुनो! कोसल देश पर राज्य करनेवाले नग्नजित नामक एक नरनाथ था। वह सुमति [और] धार्मिक था। उसकी सुता नाग्नजिति नामक कन्या गुणवती थी। उससे विवाह करने के लिए पृथ्वीशों के आने पर 'तेज सींगवाले, वीरों की गंध पाने पर खुरों से भूमि को खोदनेवाले [और] अति मदमत्त होनेवाले [ते.] सात गोवृषभों को इकट्ठा करके [और] आकर्षित कर बाहुबल से जो पकड़कर बाँध देगा, वही [उस] कन्या के लिए योग्य वर है' ऐसा कहने से [राजा] लोग डरकर उन [वृषभों] को नहीं पकड़ सके। १२६ [व.] इस प्रकार कहने पर कि 'जो गोवृषों को जीत लेगा वह उस कन्या का वर होगा', भगवान हरि [यह] सुनकर, सेना से परिवृत होकर, कोसलपुर में गया तो कोसलाधीश्वर ने हरि की अगवानी करके अर्घ्य-पाद्य आदि

दुर्कों नि यर्घ्यपाद्यादि विधुलं बूजिंचि, पीठंबु समर्पिंचि प्रतिनंदितुंडयि युन्न यॅड ॥ 127 ॥

कं. आ राजकन्य प्रियमुन, ना राजीवाक्षु मोहनाकारु द्रिलो-
कारााधितु माधवु दन, -काराध्युंडैन नाथुडनि कोरें नृपा ! ॥ 128 ॥

व. मद्रियु नक्कन्यकारत्नंबु तन मनंबुन ॥ 129 ॥

आ. विष्णुडव्ययुंडु विभुडु गावलेनननि
नोचिनट्टि तोंटि नोमु फलमु
सिद्ध मय्येनेनि जेकोनुवो नन्नु
जक्रधरुंडु वैरिचक्र-हरुडु ॥ 130 ॥

म. सिरियुं पद्म भवेश दिक्पतुलु मुन् सेविंचि यॅव्वानि श्री
चरणांभोज परागमुन् शिरमुलन् सम्यग्गति दाल्तु री
धरणी-चक्र-भरंबु वापुटकु नुद्यत्केळि मूर्तुल् दया-
परुडै यॅव्वडु दाल्चु नट्टि हरि यॅब्भंगि ब्रवर्तिचुनो ॥ 131 ॥

व. अनि यिट्लु नाग्नजिति विचारिंचुनॅड गृष्णुंडा राजुं जूचि मेघ गंभीर निनदंबुन निट्लनियें ॥ 132 ॥

कं. अन्युल याचिपरु रा, -जन्युलु सौजन्य कांक्ष जनुदेंचिति मी
कन्यन् वेडॅद निम्मा, कन्याशुल्कदुल मेमु गामु नरेंद्रा ! ॥ 133 ॥

व. अनिन विनि राजिट्लनियें ॥ 134 ॥

विधियों से [उनकी] पूजा करके, पीठ (आसन) समर्पित किया [और] प्रतिवंदित होकर रहा तो १२७ [कं.] हे नृप ! उस राजकन्या ने प्रेम से उस राजीवाक्ष, मोहनाकार, त्रिलोकाराधित माधव को अपने लिए आराध्यनाथ के रूप में चाहा। १२८ [व.] और वह कन्यकारत्न अपने मन में १२९ [आ.] "अव्यय विष्णु विभु [मेरा पति] हो" —ऐसी इच्छा से पूर्व में [मैंने] जो व्रत किया था, उसका फल सिद्ध हुआ तो वैरिचक्र-समूह-हर चक्रधर मुझे स्वीकार कर लेगा। १३० [म.] "श्री (लक्ष्मी), पद्मभव, ईश और दिक्पति पूर्व मे सेवा करके जिसके श्रीचरणांभोजपराग को शिरों पर सम्यक् गति से धारण कर लेते हैं, इस धरणीचक्र-भार को दूर करने के लिए उद्यत केलि-मूर्तियों (अवतारों) को दयापर होकर जो धारण कर लेता है, वैसा हरि न जाने कैसा व्यवहार करता है।" १३१ [व.] इस प्रकार जब नाग्नजिति सोच रही थी, कृष्ण ने उस राजा को देखकर मेघ-गंभीर निनद से यों कहा। १३२ [क.] "[हे] नरेंद्र ! राजन्य [लोग] अन्यों से याचना नहीं करते। सौजन्यकांक्षा से आया हूँ। इस कन्या को माँगता हूँ। दे दो। हम कन्याशुल्क-द (देनेवाले) नहीं है।" १३३

शा. कन्यं चेकॉननन्नि लोकमुल नीकॅंटॅन् घनुंडॅन रा-
जन्युंडॅव्वडु नीगुणंबुलकु नाश्चर्यंबुनुं बॉंदि ता-
नन्यारंभमु मानि लक्ष्मि भवदीयांगंबुनन् नित्ययै
धन्यत्वंबुनु जेंदि युन्नदि गदा तात्पर्य संयुक्तय ॥ 135 ॥

शा. चंचद्गोवृषसप्तकंबु गडिमिन् सैरिंचि यॅव्वाडु भं-
जिचुन् वानिकि गूतु नित्तु ननि ये जीरिंचिनन् वैभवो-
दंचदगर्वुलु वच्चि राजतनयुल् तत्पाद शृंगाहति
गिंचित्कालमु नोर्व केगुवुर्रनि गेंडिचि भिन्नांगुलै ॥ 136 ॥

शा. उष्णांशुंडु तमंबु दोलु क्रिय नीवुग्राहवक्षोणिलो
गृष्णा! वैरुल दोलिनाडवु रण क्रीडा विशेषंबुलन्
निष्णातुंडवु सप्त गोवृषमुलन् नेडाजि भंजिचि रो-
चिष्णुत्वंबुन वच्चि चेकॉनुमु मा शीतांशु विंबाननन् ॥ 137 ॥

व. अनि नग्नजित्तु दनकूतु विवाहंबुनकु चेसिन समयंबु सॅप्पिन विनि ॥ 138 ॥

चं. कनियॅं नघारि वत्स वक कंस विदारि खल प्रहारि दा
घनतर किल्बिषंबुल नगण्य भयंकर पौरुषंबुलन्

[व.] ऐसा कहने पर, सुनकर, राजा ने इस प्रकार कहा। १३४ [शा.] "[इस] कन्या को स्वीकार करने के लिए सभी लोकों में तुमसे बढ़कर घन (श्रेष्ठ) राजन्य कौन है? तुम्हारे गुणों के कारण आश्चर्य पाकर स्वयं लक्ष्मी अन्य आरंभ को छोड़कर भवदीय अंग में नित्या [और] तात्पर्यसंयुक्ता बनकर धन्यत्व को पा चुकी है न!" १३५ [शा.] "जब मैंने यह कहकर बुलवाया कि चंचत्-गोवृषसप्तक को पराक्रम से सहकर जो उनका भंजन करेगा [उसको] अपनी बेटी दूँगा [तब] वैभवोदंचित गर्वीले राजतनय (राजकुमार) आकर तत्पाद [और] शृंगाहति से किंचित् काल भी न सह सककर युद्ध में भिन्नांग बनकर हट गए।" १३६ [शा.] "[हे] कृष्ण! जैसे उष्णांशु (सूरज) तम को दूर कर देता है [वैसे] तुमने उग्र आहव-क्षोणी (युद्धभूमि) में वैरियों को भगा दिया था। रण-क्रीड़ा विशेषों में निष्णात हो। सप्त गोवृषों को आज आजि (युद्ध) में भंजन करके रोचिष्णुत्व से आकर, हमारी शीतांशु-विंबानना (चंद्रमुखी) को स्वीकार करो।" १३७ [व.] इस प्रकार नग्नजित ने अपनी बेटी के विवाह के लिए किये गये समय (प्रतिज्ञा) को कहा तो सुनकर, १३८ [चं.] अघारि ने, वत्स, वक [और] कंस का विदारण करनेवाले [और] खलों पर प्रहार करनेवाले ने स्वयं घनतर किल्बिषों को, अगण्य भयंकर पौरुषों [से युक्त]

सुनिशित श्रृंग निर्दळित शूर समूह मुखामिषंबुलन्
हनन गुणोन्मिषंबुल महा परुषंबुल गोवृषंबुलन् ॥ 139 ॥

उ. चेलमु चक्क गट्टुकोनि चित्र गतिन् वडि नेडु मूर्तुलै
बालुडु दारुरूपमुल बट्टेडु कैवडि बट्टि वीर शा-
र्दूलुडु गुद्दि नेलबड द्रोचि महोद्धति गट्टि यीड्चे भू-
पालकुलेल्ल मेच्च वृषभंबुल पर्वत सन्निभंबुलन् ॥ 140 ॥

व. इट्लु वृषभंबुल नन्निटिनि गट्टि यीड्चिनं जूचि संतसिंचि हरिकि नाग्नजित्तु नाग्नजिति निच्चिन विधिवत् प्रकारंबुनं बेंड्लि यय्यं नाराज-सुंदरुलानंदंबुनुं बोंदिरासमयंबुन ब्राह्मणाशीर्वादंबुलुनु गीत पटह शंख काहळ भेरी मृदंग निनदंबुलु सेलंगे। अंत नाकोसलेंद्रुंडु दंपतुल रथारोहणंबु सेयिंचि पदिवेल धेनुवुलुनु विचित्रांबराभरण भूषितलैन युवतुलु मूडु वेलुनु तोम्मिदि वेल गजंबुलुनु गजंबुलकु शतगुणमुलैन रथंबुलुनु रथंबुलकु शतगुणंबुलैन हयंबुलुनु हयंबुलकु शतगुणाधिकंबैन भट समूहंबुनु निच्चि पुत्तेंचिन वच्चुनप्पुडु ॥ 141 ॥

उ. भूति येलर्प गोसलुनि पुत्रिककै चनुदेंचि तोल्लि या-
बोतुल चेत नोट्टु वडि पोयिन भूपतुलेल्ल माधवुं-

सुनिशित श्रृंगों से निर्दलित-शूरसमूह-मुखामिषों [मुखों के आमिष (मांस) वाले], हनन गुणोन्मिषों [हनन गुण से उन्मेष को प्राप्त] को [और] महापरुष गोवृषों को देखा। १३९ [उ.] चेल (वस्त्र) को अच्छा पहनकर, चित्रगति से सात रूपों में परिणत होकर, जैसे बालक दारु-रूपों को (काठ के खिलौनों को) पकड़ लेता है, वैसे ही पर्वत-सन्निभ वृषों को पकड़कर, वीर शार्दूल (कृष्ण) ने घूँसा देकर पृथ्वी पर गिराकर [और] महोद्धति से बाँधकर खींचा जिसकी सभी भूपालकों ने प्रशंसा की। १४० [व.] इस प्रकार सब वृषभों को बाँधकर खींचा तो देखकर संतुष्ट होकर हरि को नग्नजित ने नाग्नजिति को दिया तो विधिवत् प्रकार से विवाह हुआ; उन राजसुन्दरियों ने आनंद पाया। उस समय ब्राह्मण-आशीर्वाद [और] गीतपटह-शंख-काहल-भेरी-मृदंग-निनद हुए। तब उस कोसलेंद्र ने दंपति से रथारोहण कराकर दस सहस्र धेनुओं, विचित्रांबर-आभरण-भूषिता तीन सहस्र युवतियों, नौ सहस्र गजों, गजों के शतगुण रथों को, रथों के शतगुणा हयों को, हयों के शतगुणाधिक भटसमूहों को देकर भेज दिया तो आते समय १४१ [उ.] अतिशय भूति (संपदा) से कोसल की पुत्रिका के लिए आकर पहले वृषभों से हारकर गये हुए सभी भूपतियों ने गुप्तचरों के द्वारा माधव का उस तरुणी को वरण करना सुनकर, मार्ग

डा तरुणिन् वरिंचुट चरावलिचे विनि श्रोव सैन्य सं-
घातमु तोड दाकिररि गर्व विमोचनु वद्म लोचनुन् ॥ 142 ॥

उ. दंडिनरातुलॆल्ल हरि दाकिन नड्डमु वच्चि वीकतो
भंडन भूमि यंदु दन बांधवुलॆल्लनु संतसिपगा
गांडिव चाप मुक्त विशिखंबुल वैरुलनॆल्ल जंपॆ ना-
खंडल नंदनुंडु शशकंबुल सिंहमु चंपु कैवडिन् ॥ 143 ॥

व. इट्लु हरि नाग्नजिति वॆंड्लियै यरणंबु पुच्चुकॊनि द्वारका नगरंबुनकु वच्चि सत्यभामतोडं ग्रीडिंचुचुंडॆ, मरियुनु ॥ 144 ॥

म. जनवंद्यन् श्रुतकीर्तिनंद्य दरुणिन् संदर्शन क्षोणि पा-
द्यनुजन् मेन मरंदलिन् विमल लोलापांग गैकेयि नि-
द्धनयोन्निद्र प्रपूर्णसद्गुण समुद्रन् भद्रनक्षुद्र ना
वनजाताक्षुडु पॆंड्लियाडॆ नहित व्रातंबु भीतंबुगन् ॥ 145 ॥

व. मरियुनु ॥ 146 ॥

चं. अमरुल बार दोलि भुजगांतकुडॆन खगेश्वरुंडु मु-
न्नमृतमु दॆच्चु कैवडि मदांधुल राजुल नुक्कडंचि या
कमल दळायतेक्षणुडु गैकॊनि तॆच्चॆनु मद्र कन्यकन्
समद-मृगेक्षणन् नय-विचक्षण-लक्षण बुण्य-लक्षणन् ॥ 147 ॥

व. इट्लु हरिकि रुक्मिणियु जांबवतियु सत्यभामयु गाळिंदियु मित्रविंदयु

में सैन्य-संघात के साथ अरिगर्व-विमोचक पद्मलोचन का सामना किया। १४२ [उ.] जब बड़े-बड़े राजाओं ने रास्ता रोककर पराक्रम से हरि का सामना किया तो भंडनभूमि (युद्धभूमि) में, अपने सभी बंधु संतुष्ट हो जायँ, ऐसा गांडीवचापमुक्त विशिखों से सभी वैरियों को आखंडलनंदन (अर्जुन) ने ऐसे मार डाला जैसे सिंह शशकों को मार डालता है। १४३ [व.] इस प्रकार हरि नाग्नजिति से विवाह करके दहेज (पुरस्कार) लेकर द्वारकानगर में आकर सत्यभामा के साथ क्रीड़ा करता रहा। और १४४ [म.] उन वनजाताक्ष (कृष्ण) ने अहित-समूह भीत हो जाए, ऐसा जनवंद्या, श्रुतकीर्ति-नंद्या, तरुणी, संदर्शन क्षोणिप की अनुजा, अपनी फुफेरी बहिन, विमल लोलापांगा, कैकेयिनिद्धन, प्रपूर्ण-सदगुण-समुद्रा, अक्षुद्रा भद्रा से विवाह कर लिया। १४५ [व.] और १४६ [च.] अमरों को भगा देकर भुजगांतक खगेश्वर (गरुत्मान) पहले जैसे अमृत लाया वैसे ही मदांध राजाओं के गर्व का अपहरण करके वह कमल-दलाय तेक्षण (कृष्ण) मद्रकन्यका, समदमृगेक्षणा, नयविचक्षणा, पुण्यलक्षणा लक्षणा को पकड़कर लाया। १४७ [व.] इस प्रकार हरि के रुक्मिणी,

नाग्नजितियु, भद्रयु, मद्रराजनंदनयैन लक्षणयु ननंगा नेनमंड्रु भार्यलैरि। मरियु नरकासुरुनि वधिंचि तन्निरुद्ध कन्यल षोडश सहस्र संख्यल रोहिणि मोदलैन वारि बरिग्रहिंचें ननिन विनि॥ 148॥

अध्यायमु—५९

कं धरकुं ब्रियनंदनुडगु, नरकुनि हरि येल चंपें नरकासुरुडा-
वरकुंतललगु चामी, -करकुंभस्तनुल नेल कारिय वेंट्टेन्॥ 149॥

व. अनिन नरेंद्रुनकु मुनींद्रुंडिट्लनियें। नरकासुरुनि चेत नदिति कर्णकुंडलंबुलुनु वरुणच्छत्रंबुनु मणिपर्वतमनियेंडु नमराद्रि स्थानंबुनु गोलुपड्टयु निंद्रुंडु वच्चि हरिकि विन्नविंचिन हरि नरकासुरवधार्थंबु गरुड वाहनारूढुंडै चनु समयंबुन हरिकि सत्यभाम यिट्लनियें॥ 150॥

श्रीकृष्णुंडु सत्यभामतो गूड नरिगि मुरासुर नरकासुरुल वधिंचुट

शा. देवा! नीवु निशाट संघमुल नुद्दीपिंचि चेंडाड नी
प्रावीण्यंबुलु सूड गोरुदु गदा प्राणेश! मन्निंचि न-

जांबवती, सत्यभामा, कालिंदी, मित्रविंदा, नाग्नजिति, भद्रा [और] मद्रराजनंदना लक्षणा नाम की आठ पत्नियाँ हुईं। और नरकासुर का वध करके तन्निरुद्ध कन्याओं को षोडश सहस्र संख्यावाली रोहिणी आदियों का परिग्रहण किया —ऐसे कहने पर सुनकर, १४८

अध्याय—५९

[कं.] धरा के प्रियनंदन होनेवाले नरक [असुर] को हरि ने क्यों मार डाला? नरकासुर ने वरकुंतला होनेवाली उन चामीकर (सुवर्ण)-कुंभस्तनियों को क्यों कारागार में रखा? १४९ [व.] ऐसा कहने पर नरेंद्र से मुनींद्र ने इस प्रकार कहा। नरकासुर के हाथ अदिति के कर्ण-कुंडल, वरुण का छत्र और मणिपर्वत नामक अमराद्रिस्थान को खो जाने पर इन्द्र ने आकर हरि (कृष्ण) से विनती की तो हरि नरकासुर-वधार्थ गरुड़वाहनारूढ़ होकर जाने लगा, तब हरि से सत्यभामा ने इस प्रकार कहा। १५०

श्रीकृष्ण का सत्यभामा के साथ जाकर मुरासुर और नरकासुर का वध करना

[शा.] "हे देव! जब तुम निशाट (राक्षस)-संघों को, उद्दीप्त होकर मार डालोगे तब तुम्हारे प्रावीण्य को देखना चाहती हूँ। हे

नीवेंटं गोंनि पोम्मु नेडु करुणन् ने जूचि येतेंचि नी
देवी संघमुकेल्ल जेप्पुदु भवद्दीप्त प्रतापोन्नतुल् ॥ 151 ॥

व. अनिन प्राणवल्लभकु वल्लभुंडिट्लनियें ॥ 152 ॥

सी. समद पुष्पंधय झंकारमुलु गावु भीषण कुंभींद्र बृंहितमुलु
वायु निर्गत पद्म वन रेणवुलु गावु तुरग रिखा मुखोद्धूत रजमु-
लाकीर्ण जल तरंगासारमुलु गावु शत्रु धनुर्मुक्त सायकमुलु
कलहंस सारस कासारमुलु गावु दनुजेंद्र सैन्य कदंबकमुलु

ते. कमलकल्हार कुसुम संघमुलु गावु
चटुल रिपु शूल खड्गादि साधनमुलु
कन्य! नीवेड? रणरंग गमन मेड?
वत्तु वेगम निलुवुमु वलदु वलदु ॥ 153 ॥

व. अनिन प्रियुनकु प्रियंबु जनियिप डग्गरि ॥ 154 ॥

उ. दानवुलैन नेमि मरि दैत्य समूहमुलैन नेमि नी
मानित बाहु दुर्गमुल माटुन नुंडग नेमि शंक नी
तो नरुदेंतुनंचु गर तोयजमुल् मुकुळिचि म्रोक्कें न-
म्मानिनि दन्नु भर्त बहुमान पुरस्सरदृष्टि जूडगन् ॥ 155 ॥

व. इट्लु तनकु म्रोक्किन सत्यभामनु गरकमलंबुल ग्रुच्चि येत्ति तोड्कोनि

प्राणेश! क्षमा करके करुणा से मुझे अपने साथ ले जाओ। मैं देखकर, लौट आकर तुम्हारे देवी-समूह को भवद्दीप्त प्रतापोन्नति को बतला दूंगी। १५१ [व.] यों कहने पर प्राणवल्लभा से वल्लभ ने इस प्रकार कहा। १५२ [सी.] [वहाँ की युद्धभूमि में] समद भ्रमर-झंकार नहीं है, [परन्तु] भीषण कुंभींद्र-बृंहित हैं। [वहाँ] वायुनिर्गत पद्मवन की रेणु नहीं है [परन्तु] तुरग-रिखामुखोद्धूत रज है। आकीर्ण जलतरंगासार नहीं हैं, [परन्तु] शत्रु-धनुर्मुक्त सायक (बाण) हैं; कलहंस-सारस-कासार नहीं है, [परन्तु] दनुजेंद्र-सैन्य-समूह हैं। [ते.] कमल-कल्हार-कुसुम-समूह नहीं है, [लेकिन] भयंकर-रिपु-शूल-खड्ग आदि साधन हैं। हे कन्ये! तुम कहाँ, रण-रंग-गमन कहाँ? मैं जल्दी ही लौट आऊँगा; तुम [यहीं] ठहरो। न [आना], न [आना]। १५३ [व.] कृष्ण] के ऐसा कहने पर, [प्रियतम] को प्रिय लगे, ऐसा पास जाकर, १५४ [उ.] 'दानव हों तो क्या, फिर दैत्य-समूह हों तो क्या? तुम्हारे मानित बाहु दुर्गों में रहने पर [मुझे] शंका (भय) क्या है? तुम्हारे साथ आऊँगी।' ऐसा कहते हुए जब पति ने उसे बहुमान-पुरस्सर-दृष्टि से देखा, तब उस मानिनी ने कर-तोजयों को मुकुलित (जोड़) कर प्रार्थना की। १५५

गरुडारूढुंडयि हरि गगन मार्गंबुनं जनि गिरि शस्त्र सलिल दहन पवन दुर्गमंबै मुरासुर पाश परिवृतंबयिन प्राग्ज्योतिषपुरंबु‌ऽडगरि ॥ 156 ॥

म. गदचे बर्वत दुर्गमुल् शकलमुल् गाविंचि सत्तेजित
प्रदरश्रेणुल शस्त्र दुर्ग चयमुन् भंजिंचि चक्राहति
जेंदरन् वायु जलाग्नि दुर्गमुल निश्शेषंबुलं जेसि भी-
प्रदुडै वालुन द्रुंचे गृष्णुडु मुर प्रच्छन्न पाशंबुलन् ॥ 157 ॥

व. मरियुनु ॥ 158 ॥

शा. प्राकारंबु गदा प्रहारमुल नुत्पाटिंचि यंत्रंबुलुन्
नाकारातुल मानसंबुलुनु भिन्नत्वंबु सेंदंग न-
स्तोकाकारुडु शौरि योत्तें विलयोद्भूताभ्र निर्घात रे-
खा काठिन्यमु बांचजन्यमु विमुक्त प्राणि चैतन्यमुन् ॥ 159 ॥

व. अंत लयकाल-कालाभ्र गर्जनंबु पगिदि नोप्पु नम्महा-ध्वनि विनि पंचशिरुंडैन मुरासुरुंडु निदुर सालिंचि यावुलिंचि नोलिग लेचि जलंबुलु वेडलि वच्चि हरि गनि प्रळयकाल कोलि कैवडि मंडुचु दुर्निरीक्ष्युंडै कराळिंचुचुं दन पंचमुखंबुलं बंचभूतमयंबयिन लोकंबुल म्रिंग नप्पळिंचु चंदंबुनं गदिसि याभील कीला जटालंबगु शूलंबुन गरुडुनि वेंचि भूनभोंतरंबुलु निंड नार्चुचु ॥ 160 ॥

[व.] इस प्रकार अपने को प्रणाम करने पर सत्यभामा को कर-कमलों से पकड़कर उठाकर ले जाकर गरुड़ारूढ़ बनकर हरि गगन-मार्ग से जाकर, गिरि-शस्त्र-सलिल-दहन-पवन से दुर्गम बनकर, मुरासुर-पाश-परिवृत प्राग्ज्योतिषपुर के पास जाकर, १५६ [म.] गदा से पर्वत-दुर्गों के शकल (टुकड़े) बनाकर, उत्तेजित प्रदर-श्रेणियों के शस्त्र-दुर्गचय [समूह] का भंजन करके, चक्राहति से विकीर्ण कर, वायु, जल, अग्नि, दुर्गों को निश्शेष करके भीप्रद (भयंकर) होकर, सुगमता से कृष्ण ने मुरप्रच्छन्न पाशों को तोड़ डाला। १५७ [व.] और १५८ [शा.] गदा-प्रहारों से प्राकारों को [और] यन्त्रों को उखाड़कर, अस्तोकाकार वाले शौरि ने विलयोद्भूत अभ्रनिर्घात रेखा-काठिन्य [और] विमुक्त-प्राणि-चैतन्य पांचजन्य को फूँका [बजाया] जिससे नाकारातियो (राक्षसों) के मानस के भिन्न [टुकड़े] हुए। १५९ [व.] तब लयकाल के कालाभ्र के गर्जन की तरह सुनाई पड़नेवाली उस महाध्वनि को सुनकर, पंचशिरवाला मुरासुर निद्रा को छोड़कर, जँभाई लेकर, अँगड़ाई लेकर, उठकर जल से बाहर निकलकर हरि को देखकर प्रलयकाल की कीलि [ज्वाला] की तरह जलते हुए, दुर्निरीक्ष्य बनकर, गरजते हुए, अपने पाँचों मुखों से पंचभूतमय लोकों को निगल डालने की तरह निकलकर, आभील (भयंकर) कीला-

कं. दुर दुर वरुविडि विरुसुन
हरि हरि निलु निलुवुमनुचु नसुरयु गदिसॆन्
मुर मुर दिविजुल हृदयमु
मॆर मॆर यिर्वे यडगु ननुचु मॆरसॆन् हरियुन् ॥ 161 ॥

व. अप्पुडु ॥ 162 ॥

कं. गरुडुनिपै वड वच्चिन
मुर शूलमु नडुम नौडिसि मुत्तुनियलुगा
गरमुल विरिचि मुकुंदुडु
मुर मुखमुल निशित विशिखमुलु वडि जॊनिपॆन् ॥ 163 ॥

म. गद व्रेसॆन् मुर दानवुंडु हरिपै गंसारियुं दद्गदन्
गदचे द्रुंचि सहस्र भागमुलुगा गल्पिंचॆ नालोन वा-
डॆदुरै हस्तमुलॆत्तिकॊंचु वडि रा वीक्षिंचि लीला सम-
ग्र दशन् वानि शिरंबुलॆदुनु वडिन् खंडिंचॆ जक्राहतिन् ॥ 164 ॥

व. इट्लु शिरंबुलु चक्रि चक्र धाराच्छिन्नंबुलयिन वज्रि वज्र धारादळित शिखरंबै कूलॆडि शिखरि चंदंबुन मुरासुरुंडु जलंबुलंदु गूलिन वानि सूनुलु जनकवध जनित शोकातुरुलै जनार्दनु मर्दितुमनि रणकुर्दनंबुनं दाम्रुंडु नंतरिक्षुंडु श्रवणुंडु विभावसुंडु वसुंडु नभस्वंतुंडु नरुणुंडु नन नेडुवुरु

जटल शूल से गरुड़ को मारकर, गरज उठा, जिससे भू-नभोंतर भर गये। १६० [कं.] जल्दी-जल्दी दौड़कर पौरुष से "हरि-हरि", ठहरो-ठहरो" कहते हुए असुर भी समीप आया, जिससे दिविजों के हृदय दब गये; 'उनकी मनोव्यथा अभी दूर होगी' यों कहते हुए हरि भी चमक उठे। १६१ [व.] तब··· १६२ [कं.] गरुत्मान पर पड़ने आये हुए मुर के शूल को बीच में ही पकड़कर [अपने] हाथों से तीन टुकड़ों में तोड़कर मुकुंद ने मुर के मुखों को निश्चित विशिखों को शीघ्र ही भर दिया। १६३ [म.] मुर दानव ने हरि पर गदा फेंकी। उस गदा को कंसारि (कृष्ण) ने भी [अपनी] गदा से तोड़कर सहस्र भागों में विभाजित किया। इतने में सामना करके हस्तों को उठाकर उसके [मुर के] शीघ्र आने पर वीक्षण करके (देखकर) लीला-समग्र-दशा से शीघ्र चक्राहति से उसके पाँचों सिरों का खंडन किया। १६४ [व.] इस प्रकार सिरों के चक्री के चक्र की धारा से छिन्न होने पर वज्रि (इन्द्र) की वज्रधारा से दलित शिखर बनकर, गिर पड़ने की शिखरि (पर्वत) की तरह मुरासुर जलों में गिर पड़ा तो उसके सूनुओ (पुत्रों) ने [अपनी] जनकवधा से जनित शोकातुर बनकर, 'जनार्दन का मर्दन करेंगे' कहकर, रण-कुर्दन [रणक्रीड़ा] में ताम्र,

योधुलु सक्रोधुलै कालांतक चोदितंबैन प्रळय पवन सप्तकंबु भंगि नरकासुर प्रेरितुलै रथंबुन बीठुंडनियॆडु दंडनाथुं बुरस्करिंचुकॊनि पऱतॆंचि हरि दाकि शरशक्ति गदा खड्ग करवाल शूलादि साधनंबुलु प्रयोगिंचिन ॥ 165 ॥

उ. आ दनुजेंद्रयोध विविधायुध संघमु नॆल्ल नुग्रतन्
मेदिनि गूल नेयुचु समिद्ध निरर्गळ मार्गणालि ग्र-
व्याद कुलांतकुंडसुर हस्त भुजानन कंठ जानु जं-
घादुल द्रुंचि वैचॆ दिललंतलु खंडमुलै यिलंबडन् ॥ 166 ॥

व. मऱियु हरि शरजाल चक्र निहतुलयि तनवारलु मडियुटकु वॆऱंगु पडि रोषिंचि गरुड गमनुनि दूषिंचि तन्नु भूषिंचुकॊनि सरकु सेयक नरकुंडु वरकुंडल प्रमुखाभरण भूषितुंडयि दान सलिल धारा सिक्त गंडंबुलुनु महोद्दंड शुंडंबुलुनैन वेदंड तंडंबुलु नडव वॆडलि मंडनंबुनकुं जनि ॥ 167 ॥

म. बलवंतुंडु धरासुतुंडु गनॆ शुंभद्राज बिंबोपरि
स्थल शंपान्वित मेघमो यन खगेंद्रस्कंध पीठंबुपै

अंतरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान [और] अरुण नामक सात योद्धाओं ने सक्रोधी बनकर, कालांतक-चोदित प्रलय-पवन-सप्तक की तरह नरकासुर प्रेरित होकर, शीघ्रता से पीठ नामक दंडनाथ को आगे रखकर, आकर, हरि पर आक्रमण करके शर-शक्ति-गदा-खड्ग-करवाल-शूल आदि साधनों का प्रयोग किया तो ··· १६५ [उ.] उस दनुजेंद्र योद्धा के विविधायुध-संघों को उग्रता से मेदिनी (भूमि) पर गिराते हुए, समिद्ध-बाधा-रहित-बाणसमूह से क्रव्याद (राक्षस)-कुलांतक ने असुरों के हस्तों-भुजाओं, आननों, कंठों, जानुओं और जंघादियों को तोड़कर, इस प्रकार भूमि पर डाल दिया कि वे तिल प्रमाण के खंड होकर इला (भूमि) पर गिर पड़े। १६६ [व.] और हरि-शर-जालचक्र से निहत होकर अपने लोगों के मरने पर आश्चर्य करके, रोष दिखाकर, गरुड़गमन (श्रीकृष्ण) का दूषण करके, अपना भूषण (अपनी प्रशंसा) करके, परवाह न कर, नरक वर-कुंडल-प्रमुख-आभरण-भूषित होकर, दान-सलिल (मद) धारा-सिक्त-गंडस्थलोंवाले, महोद्दंड शुंड वाले वेदंडों (गजों) के समूहों के चलने पर निकलकर, भंडन में (युद्ध में) जाकर··· १६७ [म.] बलवान धरासुत (नराकासुर) ने खगेंद्रस्कंध-पीठ पर ललनारत्न (सत्यभामा) के साथ, संगरकथालाप करनेवाले, उज्ज्वल नील अंगवाले, कनन्निषंगी (प्रकाशमान तूणीर धारण करनेवाले), कुहनासंगी (कपट-लंपट) और रणाभंगी

ललना रत्नमु गूडि संगर कथालापंबुलं जेयु नु-
ज्ज्वल नीलांगु गर्नान्निषंगु गुहनासंगुन् रणाभंगुनिन् ॥ 168 ॥

व. कनि कलहंबुनकु नरकासुरुडु गमकिंप दमकिंपक विलोकिंचि संभ्रमंबुन ॥ 169 ॥

सत्यभाम नरकासुरुनितो युद्धमु सेयुट

शा. वेणिन् जोॅल्लॅमु वॅट्टि संघटित नीवीबंधयै भूषण
श्रेणि दाल्चि मुखेंदुमंडल मरीची जालमुल् पर्वगा
वाणि बय्यॅद जक्कगा दुरिमि शुंभद्वीर संरंभयै
येणी लोचन लेचि निल्चॅ दन प्राणेशाग्र भागंबुनन् ॥ 170 ॥

कं. जन्यंबुन दनुजुल दौ-
र्जन्यमुलुडुपंग गोरि चनुदेंचिन सौ-
जन्यवति जूचि यदु रा-
जन्य श्रेष्ठुंडु सरस सल्लापमुलन् ॥ 171 ॥

कं. लेमा ! दनुजुल गॅलुवग, लेमा नीवेल कडगि लेचिति विटु रा
ले मानु मानवे निन्, लेमा विल्लंदि कॉनुमु लीलं गेलन् ॥ 172 ॥

व. अनि पलिकि ॥ 173 ॥

[युद्ध में भंग (अपजय) को न पानेवाले] को देखा, मानों बड़े प्रकाशमान चंद्रबिंब के ऊपर विजली से युक्त मेघ हो । १६८ [व.] देखकर कलह के लिए जब नरकासुर प्रयत्न कर रहा था, जल्दी न करके, देखकर, संभ्रम से १६९

सत्यभामा का नरकासुर के साथ युद्ध करना

[शा.] वेणी-बंधन करके, संघटित-नीवी को बाँधकर, भूषणश्रेणी का धारण करके, मुखेंदु-मंडल के मरीची-जालों के व्याप्त होने पर, पाणि (हाथ) से आँचल ठीक खोंसकर, शुंभद्वीर-संरंभा बनकर, ऐणी (हरिणी)-लोचना (सत्यभामा) उठकर, अपने प्राणेश के अग्रभाग में [सामने] खड़ी रही । १७० [कं.] जन्य (युद्ध) में दनुजों के दौर्जन्यों का नाश करने की इच्छा से आयी हुई सौजन्यवती को देखकर यदुराजन्य-श्रेष्ठ ने सरस सल्लापों से [कहा] १७१ [कं.] "[हे] स्त्री, क्या हम दनुजों को नहीं जीत सकते ? तुमने क्यों उठने का प्रयत्न किया ? इधर आओ । उठो, रुको, हाँ, तुम नहीं रुकती हो न ! लीला से अपने हाथ में हमारा धनुष ले लो ।" १७२ [व.] यों कहकर… १७३ [कं.] हरिणाक्षी को हरि ने सुर-निकरों को उल्लास देनेवाले शूर-कठोर-असुर-सैन्य को त्रास (भय)

कं. हरिणाक्षिकि हरि यिच्चेनु
सुर निकरोल्लासनमुनु शूर कठोरा-
सुर सैन्य त्रासनमुनु
बर गर्व निरासनमुनु बाणासनमुन् ॥ 174 ॥

शा. आ विल्लंदि बलंबु नोंदि तदगण्यानंत तेजो विशे-
षाविर्भूत महा प्रतापमुन वीरालोक दुर्लोकयै
ता वेगन् सगुणंबु जेसे धनुवुं दन्वंगि दैत्यांगना-
ग्रीवा-संघमु निर्गुणंबुग रण क्रीडा महोत्कंठतोन् ॥ 175 ॥

कं. नारि मोरयिंचे रिपु से, नारिखण हेतुवैन नादमु निगुडन्
नारी मणि बल संप, न्नारी भादिकमु मूर्छनंद नरेंद्रा ! ॥ 176 ॥

सी. सौवर्ण कंकण झण झण निनदंबु शिंजिनी रवमुतो जॅलिमि सेय
दाटंक मणि गण धग धग दीप्तुलु गंडमंडल रुचि गप्पिकॉनग
धवळतरापांग धक धक रोचुलु बाण जाल प्रभा पटलि नडप
शरपात घुमघुम शब्दंबु परिपंथि सैनिक कलकल स्वनमु लुडुप

ते. वीर श्रृंगार भय रौद्र विस्मयमुलु
गलसि भामिनि यय्यॅनो काक यनग

देनेवाले, पर (शत्रु)-गर्व का निरसन (दूर) करनेवाले बाणासन (धनुष) को दे दिया। १७४ [शा.] उस धनुष को पाकर, बल पाकर, तत् (वह) अगण्य (अनगिनत) अनंत तेजो-विशेष [से] आविर्भूत महाप्रताप से वीरों के लोक के लिए दुर्लोका (दुर्निरीक्ष्य) बनकर, उस तन्वंगी ने स्वयं झट रणक्रीड़ा की महोत्कंठा से दैत्यांगनाओं के ग्रीवासंघ (कंठों) को निर्गुण (मंगल सूत्र-विहीन = वैधव्य को प्राप्त) करते हुए धनुष के सगुण [ज्या] को बजाया (धनुष्टंकार किया।) १७५ [कं.] हे नरेंद्र! नारीमणि (सत्यभामा) ने ऐसा धनुष्टंकार किया कि रिपुसेना के रिखण (भाग जाने) के हेतु होनेवाला नाद व्याप्त हो जाय [और] बलसंपन्न अरि (शत्रु) के इभ (हाथी) आदि मूर्च्छित हो जायँ। १७६ [सी.] जब सौवर्ण-कंकणों का झण-झण निनाद शिंजनी-रव से मिलता कर रहा था, ताटंक-मणिगण की धग-धग (चमकती) दीप्तियाँ गंड-मंडल रुचि को ढक लेती थीं; धवलतर अपांग की धल-धल (धवल) रोचियाँ बाणजाल-प्रभा-पटलि का दमन कर रही थीं [और] शरपात का घुम-घुम शब्द परिपंथि (शत्रु)-सैनिकों के कल-कल स्वन को दबा रहा था, तब इंदुवदना (सत्यभामा) ने ऐसा युद्ध किया कि [ते.] वीर, श्रृंगार, भय, रौद्र [और] विस्मय मिलकर मानों भामिनी [के रूप में] बन गए हों और इषु (बाण)

निषुवु दोड्गुट दिवुचुट येयुटॅल्ल
नॅऱगराकुंड ननि सेसॅ निदुवदन ॥ 177 ॥

म. परु जूचुन् वरु जूचु नॉप नलरिपन् रोष रागोदया-
विरत भ्रूकुटि मंदहासमुलतो वीरंबु श्रृंगारमुन्
जरगं गन्नुल गॅंपु सॉंपु बरगं जंडास्त्र संदोहमुन्
सरसालोक समूहमुन्नॅऱपुचुं जंद्रास्य हेलागतिन् ॥ 178 ॥

म. अलि नीलालक चूड नॉप्पॅसगॅ ब्रत्यालीढ पादंबुतो
नलिक स्वेद विकीर्णकालकलतो नार्कर्णकानीत स-
ल्ललित ज्या नख पुंख दीधितुलतो लक्ष्यावलोकंबुतो
वलयाकार धनुर्विमुक्त विशिख व्राताहतारातियॅ ॥ 179 ॥

सी. बॉम्म पॅंड्लिड्लकु बोनोल्लननु बाल रणरंगमुन कॅट्लु रा दलंचॅ
मगवारि गनिन दा मऱुगु जेरॅडु निति पगवारि गॅलव ने पगिदि जूचॅ
वसिडि युय्यॅललॅक्क भयमंदु भीरुवु खगपति स्कंधमे कडिदि नॅक्कॅ
सखुल कोलाहल स्वनमु लोर्वनि कन्य पटह भांकृतुल केभंगि नोर्चॅ

आ. नील कंठमुलकु नृत्यंबु गरपुचु
नलसि तलगि पोवु नलरुबोडि

चढ़ाना-उतारना और छोड़ना [कब हो रहा था], समक्ष में न आ रहा था। १७७ [म.] वीर [और] श्रृंगार के व्याप्त होने से आँखों में लालिमा और प्रेम के भर जाने पर, चंडास्त्र-संदोह और सरस-आलोक-समूह को फैलाते हुए चंद्रास्या (सत्यभामा) हेला गति से रोष-रागोदय-विरत-भ्रूकुटि [और] मंदहासों से पर (शत्रु) को देखती दमन करने और वर (प्रियतम) को देखती प्रीति दिखाने। १७८ [म.] अलि-नील-अलका (भ्रमर जैसे काले बालोंवाली) [सत्यभामा] प्रत्यालीढपाद से स्वेद और विकीर्ण (बिखरे हुए) अलकों से युक्त अलिक (ललाट) से, आकर्णिकानीत (कानों तक खींचे हुए) सल्ललित ज्या-नख-पुंख दीधितियों से, लक्ष्यावलोकन से, वलयाकार धनु [से], विमुक्त विशिख (बाण)-व्रात (-समूह) से हत आराति (शत्रु) बनकर देखने में मनोहर लगी। १७९ [सी.] गुड़ियों की शादी करने जाने के लिए तैयार न होनेवाले ने रण-रंग में आना कैसे चाहा? मर्दों को देखने पर स्वयं आड़ में जानेवाली स्त्री ने शत्रुओं को जीतना कैसे चाहा? सोने के झूले पर चढ़ने के लिए डरनेवाली भीरु खगपति के स्कंध पर कैसे चढ़ गयी? सखियों के कोलाहल को सह न सकनेवाली कन्या पटह-भांकृतियों को कैसे सह सकी? [आ.] नीलकंठों को (मयूरों को) नृत्य सिखाते-सिखाते थक जानेवाली

येविधमुन नुंडें नॅलमि नालीढादि
मानमुलनु रिपुल मान मडप ॥ 180 ॥

सी. वीणॅ जक्कग बट्ट वॅरवॅरुंगनि कॊम्म बाणासनंबॆट्लु पट्ट नेर्चॆ
म्राकुन दीगॆ गूर्पग नेरनि लेम गुणमु ने क्रिय धनुःकोटि गूर्चॆ
सरवि मुत्यमु ग्रुव्व जालनि यबल ये निपुणत संधिंचॆ निशित शरमु
जिलुककु बद्यंबु सॆप्पनेरनि तन्वि यस्त्र मंत्रमुलॆन्नडभ्यसिंचॆ

आ. बलुकु मनिन बॆक्कु पलुकनि मुग्द ये
गति नॊनर्चॆ सिंह गर्जनमुलु
ननग मॆरसॆ द्रिजगदभिराम गुणधाम
चारु चिकुरसीम सत्यभाम ॥ 181 ॥

शा. ज्यावल्ली ध्वनि गर्जनंबुग सुरल् सारंग यूधंबुगा
नाविल्लिद्रशरासनंबुग सरोजाक्षुंडु मेघंबुगा
दा विद्युल्लत भंगि निंति सुरजिद्दावाग्नि मग्नंबुगा
ब्रावृट्कालमु सेसॆ बाणचयमंभश्शीकर श्रेणिगान् ॥ 182 ॥

सी. राकेंदु बिंबमै रविबिंबमै यॊप्पु नीरजातेक्षण नॆम्मॊगंबु
कदर्प केतुवै घन धूमकेतुवै यलरु बूबोडि चेलांचलंबु
भावजु परिधियै प्रळयार्कु परिधियै मॆरयु नाकृष्टमै मॆलत चाप-
ममृत प्रवाहमै यनल संदोहमै तनरारु निंति संदर्शनंबु

सुकुमारी संतोष के साथ आलीढ आदिमानों से रिपुओं के [अभि] मान का नाश करने किस प्रकार उद्यत हुई? १८० [सी.] वीणा को ठीक-ठीक पकड़ने का उपाय न जाननेवाली स्त्री ने बाणासन को पकड़ना कैसे सीख लिया? वृक्ष पर लता को न लगा दे सकनेवाली युवती ने गुण (धनुर्ज्या) को धनुष्कोटि को किस प्रकार लगा दिया? सूत्र में मोतियों को गूंथ न सकनेवाली अबला ने किस निपुणता से निशित शर का संधान किया? तोते को पद्य पढ़ा न सकनेवाली तन्वी ने अस्त्र-मंत्रों का अभ्यास कब किया? [आ.] बात करने के लिए कहने पर अधिक न बोलने वाली मुग्धा ने सिंहगर्जन कैसे किये? इस प्रकार त्रिजगदभिरामा, गुण-धामा, चारु चिकुर सीमा (सुंदर वेणीवाली), सत्यभामा प्रकाशित हुई। १८१ [शा.] ज्यावल्लीध्वनि गर्जन है; सुर (देवतागण) सारंग-यूथ हैं; वह धनुष इंद्रशरासन है; सरोजाक्ष (कृष्ण) मेघ हैं; वह स्वयं विद्युल्लता की तरह है; उस स्त्री (सत्यभामा) ने सुरजित्-दावाग्नि-मग्न-बाणचय रूपी अंभश्शीकर (पानी की बूंदें)-श्रेणी से प्रावृटकाल बनाया। १८२ [सी.] नीरजातेक्षणा का सुंदर मुख राकेंदु-बिंब हो और रविबिंब हो सुंदर लगता। [उस] सुंदर सुदति का चेलांचल कंदर्प-

आ. हर्षदायियै महारोषदायियै
परगु मुद्दरालि बाणवृष्टि
हरिकि नरिकि जूड नंदंद श्रृंगार
वीर रसमु लोलि विस्तरिल्ल ॥ 183 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 184 ॥

कं. शंपालताभ बॆडिदपु, -टंपरचे घोरदानवानीकंबुल्
पॆंपडि सन्नाहंबुल, सॊंपडि भूसुतुनि वॆनुक जॊच्चॆन् विच्चॆन ॥ 185 ॥

व. अय्यवसरंबुन गंस संहारि मनोहारिणि जूचि संतोषकारियुं गरुणा रसावलोकन प्रसारियु मधुर वचन सुधारस विसारियुं ददीय समर सन्नाह निवारियुनैयिट्लनियॆं ॥ 186 ॥

कं. कॊम्मा ! दानवनाथुनि
कॊम्माहवमुनकु दॊलगॆं गुरु विजयमु गै-
कॊम्मा मॆच्चिति निच्चॆद
गॊम्माभरणमुलु नीवु गोरिनवॆल्लन् ॥ 187 ॥

व. अनि पलिकि सम्मान रूपंबुलुनु मोहन दीपंबुलुनु दूरीकृत चित्त विक्षेपंबुलुनुनैन सल्लापंबुलं गळावति दद्दयु बॆद्दरिकंबु सेसि तत्कर

केतु और घन धूमकेतु हो प्रकाशमान होता। उस तन्वंगी का चाप (धनुष) भावज (मन्थन) की परिधि और प्रलय [काल] के अर्क की परिधि होकर प्रकाशमान होता। उस युवती का संदर्शन अमृत-प्रवाह और अनल-संदोह होकर विलसित होता। उस मुग्धा की बाणवृष्टि [आ.] हर्षदायी और महती रोषदायी होकर फैल जाती। हरि को [और] अरि को देखने पर वहाँ (क्रम से) श्रृंगार और वीर-रस विस्तृत हुए। १८३ [व.] इस प्रकार''' १८४ [कं.] शंपालता के समान भयंकर बाण-समूह के कारण घोर दानवानीक अपनी वड़ाई के नष्ट होने पर, सन्नाहों के प्राचुर्य के घट जाने पर, भूसुत (नरकासुर) के पीछे घुस कर, बिखर गये। १८५ [व.] उस अवसर पर कंस-संहारी ने मनोहारिणी को देखकर संतोषकारी, करुणारसावलोकन-प्रसारी, मधुर वचन-सुधारसविसारी, तदीय-समर-सन्नाह-निवारी (-निवारण करनेवाला) बन कर इस प्रकार कहा। १८६ [कं.] "[हे] लतांगी ! दानवनाथ का वल आहव (युद्ध) के लिए घट गया। गुरु (वड़ी) विजय ले लो; मैं तृप्त हुआ। तुम जो आभरण चाहती हो, सब दे दूंगा; ले लो।" १८७ [व.] यों कहकर सम्मान-रूप, मोहनदीप (मोह को दीप्त करनेवाले) [और] दूरीकृत चित्त-विक्षेप होनेवाले सल्लापों से कलावती

किसलयोल्लसित बाणासनंबु मरल नंदुकॊनियॆ, नप्पुडु सुरवैरि मुरवैरि-
किट्लनियॆ ॥ 188 ॥

कं. मगुव मगवारि मुंदर
मगतनमुलु सूप रणमु मानुट नीकुन्
मगतनमु गादु दनुजुलु
मगुवल वॆस जनरु मगल मगलगुट हरी ! ॥ 189 ॥

व. अनिन हरि यिट्लनियॆ ॥ 190 ॥

कं. नरका ! खंडिचॆद म-
त्कर कांडासन विमुक्त घन शरमुल भी-
कर-कायु निन्नु सुर कि-
न्नर कांतलु सूचि नेडु नंदमु बॊंदन् ॥ 191 ॥

व. अनि पलिकि हरि नरकासुर योधल मीद शतघ्नियनु दिव्यास्त्रंबु
प्रयोगिंचिन नॊक्क वरुसनु वारलंदरु महाव्यथं जॆंदिरि ।
मरियुनु ॥ 192 ॥

म. शर विच्छिन्न तुरंगमै पटु गदा संभिन्न मातंगमै
युरु चक्राहत वीर मध्य पद बाहुस्कंध मुख्यांगमै
सुरभित्सैन्यमु दैन्यमुं बॊरयुचुन् शोषिंचि हैन्यंबुतो
हरि म्रोलन् निलुवंगलेक परचॆन् हाहा निनादंबुलन् ॥ 193 ॥

(सत्यभामा) का बड़ा सम्मान करके तत्-करकिसलयोल्लसित-बाणासन को [कृष्ण ने] फिर ले लिया। तब सुरवैरि (नरक) ने मुरवैरि (कृष्ण) से इस प्रकार कहा। १८८ [कं.] "[हे] हरि! नारी का मर्दों के आगे मर्दानगी दिखाना [और] तुम्हारा रण को छोड़ देना मर्दानगी नहीं है; दनुज [तो] स्त्रियों की ओर नहीं जाते, क्योंकि वे मर्दों के मर्द (पति) हैं।" १८९ [व.] यों बोलने पर हरि ने इस प्रकार कहा। १९० [कं.] "[हे] नरक (असुर)! सुर, किन्नर-कांताएँ देखकर आज आनंद पावें, [ऐसा] मत्करकांडासन-विमुक्त-घन-शरों से तुम्हारे भीकर काय (शरीर) का खंडन करूँगा।" १९१ [व.] यों कहकर हरि ने नरकासुर के योद्धाओं पर शतघ्नि नामक दिव्यास्त्र का प्रयोग किया तो एक दम उन सबने महती व्यथा को पाया। और... १९२ [म.] शर-विच्छिन्न-तुरंग होकर, पटु-गदा-संभिन्न मातंग होकर, उरु-चक्राहत-वीर-मध्य-पद-बाहु-स्कंध-मुख्यांग होकर, सुरभित् (राक्षस) का सैन्य दैन्य को पाते हुए शोषित होकर, हैन्य से हरि के सामने ठहर न सककर, हाहा-निनादों के साथ भाग गया। १९३

व. अप्पुडु ॥ 194 ॥

आ. मीनसि दनुजयोध मुख्युलु निगिडिंचु
शस्त्र समुदयमुल जनवरेण्य !
मुरहरुंडु वरुस मूडेसि कोलल
खंडितंबु सेसॅ गदनमंदु ॥ 195 ॥

कं. वॅन्नुनि सत्यनु मोचुचु, वन्नुग बदनखर चंचु पक्षाहतुलन्
भिन्नमुलु सेसॅ गरुडुडु, पन्निन गज समुदयमुल बौरवमुख्या ! ॥ 196 ॥

व. मरियु विहगराजपक्ष विक्षेपण संजात वातंबु सैरिपं जालक हतशेषंबैन सैन्यंबु पुरंबु सॊच्चुटं जूचि नरकासुरुंडु मुन्नु वज्रायुधंबु दिरस्करिंचिन तन चेति शक्ति गॊनि गरुडुनि वैचॅ, नतंडुनु विरुल दंड ब्रेटुन जलिपनि मदोद्दंड वेदंडंबुनुं बोलॅ विलसिल्लॅ, नय्यवसरंबुन गजारूढुंडै कलह रंगंबुन ॥ 197 ॥

म. समदेभेंद्रमु नॅक्कि भूमि सुतुडा चक्रायुधुन् वैव शू-
लमु चेबट्टिन नंतलोन रुचिमाला भिन्न घोरासुरो-
त्तम चक्रंबगु चेति चक्रमुन दत्यध्वंसि खंडिचॅ र-
त्नमयोदग्र किरीट कुंडल समेतंबैन तन्मूर्धमुन् ॥ 198 ॥

शा. इल्लालंगिटियैन कालमुन मुन्नेनंचु घोषितु वो
तल्ली ! निन्नु दलंचियैन निचटं दन्नुं गृपन् गावडे

[व.] तब… १९४ [आ.] [हे] जनवरेण्य ! मुरहर ने प्रयत्न करके दनुज-योद्धा-मुख्यों के प्रयुज्य (प्रयुक्त)-शस्त्र-समूहों का प्रतिघटन करके युद्ध में क्रम से तीन-तीन बाणों से खंडन किया। १९५ [कं.] [हे] पौरवमुख्य ! विष्णु को और सत्या को वहन करते हुए अच्छी तरह [अपने] पद-नख-चंचु-पंखों से हतों को [और] फैलाये हुए गज-समूहों को गरुत्मान ने भिन्न कर दिया। १९६ [व.] और विगहराज-पक्ष-विक्षेपण-संजात-वात (-वायु) को न सह सककर, हतशेष सैन्य को पुर में प्रवेश करते हुए देखकर, नरकासुर ने पहले (पूर्वकाल में) वज्रायुध का तिरस्कार करनेवाले अपने हाथ की शक्ति को लेकर, गरुड़ पर डाल दिया; वह भी फूलों की माला के समान पड़ने पर, अचलित-मदोद्दंड वेदंड (गज) की तरह प्रकाशमान हुआ। उस अवसर पर गजारूढ़ होकर कलह-रंग में… १९७ [म.] समद-इभेंद्र पर चढ़कर भूमिसुत ने उस चक्रायुधधारी (कृष्ण) पर डालने के लिए शूल को ज्योंही ग्रहण किया, रुचिमाला भिन्न घोर-असुरोत्तम-चक्र (-समूह) होनेवाले अपने हाथ के चक्र से दैत्यध्वंसि ने रत्नमय-उदग्र-किरीट-कुंडल-समेत उसके सिर का खंडन किया। १९८

चॅल्लंबो ! तल द्रॅंचॅं नंचु निल नाक्षेपिंचु चंदंबुनन्
व्रॅळ्ळॅं जप्पुडुगाग भूमिसुतुडुद्दीप्ताहवक्षोणिपै ॥ 199 ॥

कं. कंटिमि नरकुडु वडगा
मंटिमि नेडनुचु वॅस नमर्त्युलु मुनुलुन्
मिटन् बुव्वुलु गुरियुचु
बॅंटिपक पॉगडिरोलि बद्मदळाक्षुन् ॥ 200 ॥

व. अंत भूदेवि वासुदेवुनि डग्गर नेतॅंचि जांबूनद रत्न मंडितंबैन कुंडलं-बुलुनु वैजयंतियनु वनमालयुनु वरुण दत्तंबयिन सितच्छत्रंबु नॉक्क महारत्नंबुनु समर्पिंचि म्रॉक्कि भक्ति तात्पर्यंबुल तोडं गरकमलंबुलु मुकुळिंचि विबुधवंदितुंडुनु विश्वेश्वरुंडुनुनैन देव देवुनि निट्लनि विनुतिंचॅं ॥ 201 ॥

भूदेवि श्रीकृष्णुनि स्तुतिंचुट

सी. अंभोजनाभुन कंभोजनेत्रुन कंभोजमाला समन्वितुनकु
नंभोजपदुन कनंत शक्तिकि वासुदेवुनकुनु देवदेवुनकुनु
भक्तुलु गोरिनभंगि नेरूपैन बॉंदुवानिकि नादिपुरुषुनकुनु
नखिलनिदानमै यापूर्ण विज्ञानुडैन वानिकि बरमात्मुनकुनु

[शा.] '[हे] माता ! [विष्णु के] किटि (वराह) बनने के समय तुमने घोषणा की कि पत्नी हूँ; पहले मैं हूँ कहकर, तुमको देखकर भी यहाँ कृपा से मेरी रक्षा नहीं करता, ओह ! सिर को काट डाला' मानो ऐसे कहते हुए आक्षेप कर रहा हो, इस प्रकार भूमिसुत उद्दीप्त आहव-क्षोणि पर चुपके से गिर गया। १९९ [कं.] 'नरक को गिरते हुए देखा; आज बच गये' कहकर शीघ्र ही अमर्त्यों और मुनियों ने आकाश पर फूल बरसाते हुए अविलंब एक-एक करके पद्मदलाक्ष की बड़ी प्रशंसा की। २०० [व.] तब भूदेवी ने वासुदेव के समीप आकर जांबूनदरत्नमंडित कुंडल, वैजयंती नामक वनमाला, वरुणदत्त सित छत्र [और] एक महारत्न समर्पित करके, नमस्कार कर, भक्ति-तात्पर्यों से करकमल जोड़कर विबुध-वंदित और विश्वेश्वर होनेवाले देवदेव की इस प्रकार प्रार्थना की। २०१

भूदेवी का श्रीकृष्ण की स्तुति करना

[सी.] "अंभोजनाभ को, अंभोजनेत्र को, अंभोजमालासमन्वित को, अंभोज-पद (चरण) को, अनंत शक्ति को, वासुदेव को, देवदेव को, भक्त जैसा रूप चाहते हैं वैसा रूप धारण करनेवाले को, आदिपुरुष को, अखिल का निदान

आ. धातगन्न मेटि तंड्रिकि नजुनिकि
नीकु वंदनंबु नेनॊर्तु
निखिल भूतरूप ! निरुपम यीश ! प-
रापरात्म महित ! यमितचरित ! ॥ 202 ॥

व. देवा ! नीवु लोकंबुल सृजिचुटकु रजोगुणंबुनु, रक्षिचुटकु सत्वगुणंबुनु, संहरिचुटकु दमोगुणंबुनु धरियितुवु। कालमूर्तिवि, प्रधान पूरुषुंडवु, परुंडवु नीव। नेनुनु वारियु वह्निनयु ननिलुंडु नाकाशंबु दन्मात्रलु निद्रियंबुलुनु देवतलुनु मनंबुनु गर्तयुनु महत्तत्त्वंबुनु जराचरंबैन विश्वंबु नद्वितीयुंडवैन नीयंदु संभवितुमु ॥ 203 ॥

चं. दय निटु चूडुमा ! नरक दैत्युनि विड्डडु वीडु नी दॆसन्
भयमुन नुन्नवाडु गडु बालुडनन्य शरण्यु डार्तु डा-
श्रय रहितुंडु तंड्रि क्रिय शौर्यमु नेरडु नीपदांबुज-
द्वयि बॊडगांचॆ भक्त-परतंत्र-सुवीक्षण ! दीनरक्षणा ! ॥ 204 ॥

व. अनि यिट्लु भूदेवि भक्ति तोड हरिकि ब्रणमिल्लि वाक्कुसुमंबुलं बूजिचिन नर्चितुंडै भक्तवत्सलुंडयिन परमेश्वरुंडु नरक पुत्रुंडयिन भगदत्तुनकभयंबिच्चि सर्वसंपदलॊसंगि नरकासुरगृहंबु प्रवेशिचियंदु ॥ 205 ॥

होकर पूर्ण विज्ञानी होनेवाले को [आ.] परमात्मा को, धाता को पैदा करने वाले बड़े पिता को, अज को, [हे] निखिल भूत-रूप ! निरुपम ईश ! परापरात्मा ! महित-अमित-चरित वाले ! तुम्हें नमस्कर कर रही हूँ। २०२ [व.] [हे] देव ! तुम लोकों का सृजन करने के लिए रजोगुण को, रक्षा करने के लिए सत्व गुण को, संहरण करने के लिए तमोगुण को धरते हो। [तुम] कालमूर्ति हो, प्रधान पुरुष हो, पर तुम ही हो। मैं, वारि (जल), वह्नि, अनिल, आकाश, तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), इन्द्रिय, देवता, मन, कर्ता, महत्तत्त्व [और] चराचर विश्व अद्वितीय होनेवाले तुममें पैदा होते हैं। २०३ [चं.] दया करके इधर देखो; यह [बालक] नरक दैत्य का लड़का है। तुमसे डरता है। बहुत छोटा है। अन्य शरण्य से रहित है। आर्त है, आश्रय-रहित है, पिता की तरह शौर्य नहीं जानता। [हे] भक्त परतंत्र ! सुवीक्षण [करनेवाले] ! दीन रक्षण [करनेवाले] ! [इसने] तुम्हारे पदांबुजद्वय को देखा है।" २०४ [व.] इस प्रकार भूदेवी ने भक्ति के साथ हरि को प्रणाम करके वाक्-कुसुमों से पूजा की तो अर्चित होकर भक्तवत्सल होनेवाला परमेश्वर नरक के पुत्र भगदत्त को अभय देकर सर्वसंपदाएँ देकर, [तत्पश्चात्] नरकासुर-गृह में प्रवेश करके, उसमें··· २०५

श्रीकृष्णुंडु पदाऱुवेल कन्नियल वरिंचि देवलोकमुनकु बोयि पारिजातमु देच्चुट

उ. राजकुलावतंसुडु पराजित-कंसुडु सोच्चि कांचे घो-
राजुल राजुलन् बटु शराहति नोंचि धरातनूजुडु-
त्तेजित शक्ति दोलिल चेरु देच्चिन वारि बदाऱु वेल धा-
त्रीजन मान्यलन् गुणवती-व्रत-धन्यल राजकन्यलन् ॥ 206 ॥

म. कनिरा राजकुमारिकल् परिमळत्कौतूहलाक्रांतलै
दनुजाधीश चमूविदारु नतमंदारुन् शुभाकारु नू-
तन शृंगारु विकार दूरु सुगुणोदारुन् मृगीलोचना-
जन चेतो घनचोरु रत्नमकुटस्फारुन् मनोहारुनिन् ॥ 207 ॥

व. कनि यतनि सौंदर्य गांभीर्य चातुर्यादि गुणंबुलकु मोहिंचि तमकंबुलु जनियिंप धैर्यंबुलु सालिंचि सिग्गुलु वर्जिंचि पंचशर संचलित हृदयलै दैवयोगंबुनं बरायत्तंबुलैन चित्तंबुल नम्मत्तकाशिनुलु दत्तरंबुन मनोजुंडुत्तलपेट्टु नतंडु दमकु प्राणवल्लभुंडनि वरियिंचि ॥ 208 ॥

उ. पापपु रक्कसुंडु चेर पट्टेनटंचु दलंतु मेप्पुडुन्
बापुरे ! वीनि धर्ममुन बद्मदळाक्षुनि गंटि मम्म ! मु-

श्रीकृष्ण का सोलह हजार कन्याओं का वरण करके देवलोक में जाकर पारिजात को लाना

[उ.] राजकुलावतंस कृष्ण ने प्रवेश करके घोर युद्धों में राजाओं को पटुशराहति से हराकर उत्तेजित शक्ति से पूर्वकाल मे बंदिनी करके नरकासुर की लाई हुई सोलह हजार धात्रीजनमान्या, गुणवती, व्रतधन्या राजकन्याओं को देखा। २०६ [म.] उन राजकुमारिकाओं ने परिमल के कारण कौतूहलाक्रांता बनकर दनुजाधीश के चमूविदारण करनेवाले, नतमंदार, शुभाकार, नूतन-शृगार से युक्त, विकार-दूर, सुगुणोदार, मृगीलोचना जन के चेतोधन-चोर, रत्नमुकुटस्फार, मनोहर को देखा। २०७ [व.] देखकर उसके सौंदर्य, गांभीर्य, चातुर्य आदि गुणों के कारण मोहित हो करके, शीघ्रता के पैदा होने पर धैर्य को खोकर, लज्जा को वर्जित करके, पंचशर-संचलित हृदया बनकर, दैवयोग से परायत्तचित्तों से वे मत्तकाशिनियाँ संभ्रम के साथ मनोज (मदन) के उकसाने पर, उस (कृष्ण को) अपना प्राणवल्लभ कहकर वरण करके, २०८ [उ.] "पापी राक्षस ने [हमें] बंदिनी बनाया यों कहते हुए सदा सोचती हैं। क्या वह पापी था ? उसके धर्म (दया) से पद्मदलाक्ष को देख पाई है; सखी, इस पुरुषोत्तम को पाने के लिए, न जानती, पहले कैसे व्रत किये थे ! वह

न्नी पुरुषोत्तमुं गदिय नेमि व्रतंबुलु सेसिनारमो
या परमेष्ठि पुण्युडु गदम्म हरिन् ममु गूर्चॆ निच्चटन् ॥ 209 ॥

कं. उन्नति नीतडु गौगिड, मन्निपंग निक व्रतुकु मानिनि मनलो
मुन्नेमि नोमु नोचॆनॊ, सन्नुत मार्गमुल विपिन जल दुर्गमुलन् ॥ 210 ॥

कं. विन्नारमॆ यी चॆलुवमु, गन्नारमॆ यिट्टि शौर्य गांभीर्यंबुलन्
मन्नारमित कालमु, गॊन्नारमॆ यॆन्नडैन गूरिमि सिवकन् ॥ 211 ॥

सी. वनजाक्षि ! ने गन वैजयंतिकनैन गदिसि व्रेलुदु गदा कंठमंदु
विंवोष्ठि ! ने गन पीतांबरमनैन मॆरसि युंडुदु गदा मेनु निंड
गन्निय ! ने गन गौस्तुभ मणिनैन नॊप्पु चूपुदु गदा युरमुनंदु
वालिक ! ने गन पांचजन्यमनैन मॊनसि नॊक्कुदु गदा मोवि ग्रोलि

आ. पद्मगंधि ! नेनु बर्हदाममनैन
जित्र रुचुलनुंदु शिरमुनंदु
ननुचु बॆक्कु गतुल नाडिरि कन्यलु
गमुलु गट्टि गरुडगमनु जूचि ॥ 212 ॥

शा. भूनाथोत्तम कन्यकल् वरुस नंभोजातनेत्रुंडु न-
न्ने नव्वॆ दग जूचॆ डग्गरियॆ वर्णिचॆन् विवेकिंचॆ स-

परमेष्ठी (ब्रह्मा) तो पुण्यात्मा है; [क्योंकि उसने] हमको यहाँ हरि से मिला दिया है। २०९ [कं.] [हे] मानिनी, उन्नति से इसके आलिंगन में गौरव करने पर [हमारा] जीवन [धन्य] है। न जाने, हममें से किसी ने पहले सन्नुत मार्गों में, विपिनों में [या] जल-दुर्गों में कौन सा व्रत किया है। २१० [कं.] क्या [हमने] कभी इतने सौंदर्य के बारे में सुना है ? ऐसे शौर्य [और] गांभीर्य को देखा है ? इतने समय तक जीवित रहीं, कभी इतने प्रेम को प्राप्त किया है ? २११ [सी.] [हे] वनजाक्षी, अगर मैं वैजयंती बनती तो [उससे] लगकर कंठ में लटकती [रहती] न ! [हे] बिंबोष्ठी ! अगर मैं पीतांबर बनती तो [उसके] शरीर भर में चमकती रहती न ! [हे] कन्ये ! अगर मैं कौस्तुभ मणि बनती तो उर पर अच्छी लगती न ! [हे] बालिके ! अगर मैं पांचजन्य बनती तो मुँह में रहकर [और] ओंठों का रस पानकर फूंक लेती न! [आ.] [हे] पद्मगंधी ! अगर मैं मोरपंख बनती तो सिर पर चित्र रुचियों में रहती न !" इस तरह अनेक प्रकार कहते हुए [वे] कन्याएँ समूहों में रहकर [और] गरुड़गमन [कृष्ण] को देखकर बोलीं। २१२ [शा.] भूनाथोत्तम-कन्यकाएँ एक-एक करके यह कहते हुए कि 'अंभोजनेत्र वाला मुझी को देखकर हँसा; [मुझे] अच्छी तरह देखा; [मेरे] समीप आया; [मेरा] वर्णन किया;

म्मानिचॆन् गरुणिचॆ वेरडिगॆ सन्मार्गंबुतो बॆंड्लियौ
नेने चक्रिकि देविनंचु दमलो निर्णेतलैरंदरुन् ॥ 213 ॥

व. इट्लु बहुविधंबुलं दम तम मन्ननलकु नुव्विळ्ळूरु कन्नियलं बदारुवेल धवळांबराभरण माल्यानुलेपनंबुलॊसंगि यंदलंबुल निडि वारलनु नरकासुर भांडागारंबुनं गल नाना विधंबुलैन महाधनंबुलनु रथंबुलनु तुरंगंबुलनु धवळंबुले वेगवंतंबुलै यैरावतकुलसंभवंबुलैन चतुर्दंतवंतावळंबुलनु द्वारका नगरंबुनकुं बनिचि देवेंद्रुनि पुरंबुनकुंजनि यदितिदेवि मंदिरंबु सॊच्चि या पॆद्दम्मकु मुद्दु सूपि मणिकिरण पटल परिभावित भानु मंडलंबुलैन कुंडलंबुलॊसंगि शची समेतुंडैन महेंद्रुनि चेत सत्यभाम तोडं बूजितुंडै पिदप सत्यभाम कोरिन नंदनवनंबु सॊच्चि ॥ 214 ॥

म. हरि केलं बॆकलिचि तॆच्चि भुजगेंद्राराति पै बॆट्टॆ सुं-
दर गंधानुगत भ्रमद्भ्रमर नादव्रातमुं बल्लवां-
कुर शाखा फल पर्ण पुष्प कलिका गुच्छादिकोपेतमुन्
गिरिभित्रातमु बारिजातमु त्रिलोकी याचकाख्यातमुन् ॥ 215 ॥

व. इट्लु पारिजातंबुनु हरिंचि यदुवल्लभुंडु वल्लभयुं दानुनु विहगवल्लभा-रूढुंडयि चनुचुन्न समयंबुन ॥ 216 ॥

विवेक (ग़ौर) से देखा; [मेरा] सम्मान किया; [मुझ पर] करुणा दिखायी; [मेरा] नाम पूछा; सन्मार्ग से [मुझसे] विवाह कर लेगा; मैं ही चक्रि की देवी बनूँगी; आपस में सब निर्णेता बन गयीं (फ़ैसला कर चुकी)। २१३ [व.] इस तरह बहुविधियों (प्रकारों) से अपने-अपने गौरव के लिए मन का लड्डू खानेवाली कन्याओं को, सोलह हज़ार धवल-अंबर-आभरण-माल्यानुलेपन देकर पालकियों में बिठाकर, उनको नरकासुर के भांडागार में रहनेवाले नानाविध महाधन, रथ, तुरग, धवल होकर, वेगवान बनकर, ऐरावतकुलसंभव होनेवाले चतुर्दंत-दंतावलियों (-हाथियों) को द्वारका नगर में भेजकर, देवेंद्र के पुर में जाकर, अदिति देवी के भवन में जाकर, उस वृद्धा को चुंबन देकर, मणिकिरणपटलपरि-भावित भानुमंडल होनेवाले कुंडल देकर, शची-समेत महेंद्र से सत्यभामा के साथ पूजित होकर, बाद को जिस नंदनवन को सत्यभामा ने चाहा उसमें घुसकर··· २१४ [म.] हरि ने सुंदर गंधानुगत भ्रमत् भ्रमर नादव्रात, पल्लवांकुर शाखा-फल-पर्ण-पुष्प-कलिका-गुच्छ आदि से उपेत, गिरिभित्-त्रात, त्रिलोकी-याचकाख्यात पारिजात को हाथ से उखाड़कर, लाकर, भुजगेंद्राराति (गरुड़) पर रखा। २१५ [व.] इस प्रकार पारिजात को हरकर यदुवल्लभवल्लभा (पत्नी) तथा स्वयं उसके साथ विहगवल्लभारूढ़

सी. नरकासुरुनि वाध नलगि गोविंदुनि कड केगि तत्पाद कमलमुलकु
दन किरीटमु सोक दंड प्रणामम्मुल् गाविप ना चक्रि करुण सेसि
चनुदेंचि भूसुतु समयिंचि तन वारि दम्मु रक्षिचुट दलप मरचि
यिद्रुंडु बृंदारकेंद्रत्व मदमुन पद्मलोचन ! पोकु पारिजात

आ. तरुवु विडुवुमनुचु दार्के नड्डमु वच्चि
तद्रिमि सुरलुनट्लु दाकिट रकट !
येंरुकवलदे निर्जरेंद्रत गाल्पने
सुरल तामसमुनु जूड नरिदि ॥ 217 ॥

व. इट्लु तनकु नोड्डारिचि यड्डंबु वच्चिन निर्जरेंद्रादुल निर्जिचि तन पुरंबुनकुं जनि निरंतर सुरभिकुसुम मकरंद माधुरी विशेषंबुलकुं जोक्कि चिक्कक नाकलोकंबुन नुंडि वेंट नरुगुदेंचु तुम्मंदलकुनेंम्मि दलंचुचुन्न पारिजातम्मु नाश्रित पारिजातुंडयिन हरि महाप्रेमाभिरामयगु सत्य-भामतो क्रीडिंचु महोद्यानंबुन संस्थापिंचि नरकासुरुनि यिंट देंच्चिन राजकन्यकलेंदरुंदरकु नन्नि निवासंबुलु गल्पिंचि गृहोपकरणंबुलु समर्पिचि ॥ 218 ॥

म. अमितविहारु डीश्वरु डनंतुडु दा नोकनाडु मंचि ल-
ग्नमुन वदारुवेल भवनंबुल लोन वदारुवेल रु-

होकर जाते समय··· २१६ [सी.] नरकासुर की वाधा से शोक करके गोविंद के पास जाकर तत्पाद-कमलों पर दंड-प्रणाम करने 'पर, जिससे उस (इन्द्र) का किरीट [कृष्ण के पादों का] स्पर्श करे, वह चक्रि करुणा करके आकर नरकासुर को मार डालकर; अपने बंधुओं और अपनी रक्षा करने की बात भूलकर इंद्र ने बृंदारकेंद्रत्व के मद से 'पद्मलोचन ! मत जाओ, पारिजात तरु को छोड़ दो' [आ.] यों कहते हुए, रोड़ा अटकाकर [कृष्ण पर] आक्रमण किया; सुरों ने [कृष्ण को] खदेड़कर वैसे ही आक्रमण किया। ओह ! [इन्द्र आदि को] जानना नहीं चाहिए ? क्या निर्जरेंद्रता जलाने के लिए है ? देखने पर [ऐसा लगता है कि] सुरों का तामस दुर्लभ है। २१७ [व.] इस प्रकार द्वेष करके, पथ में रोड़े अटकानेवाले निर्जरेंद्रादियों को निर्जित करके, अपने पुर में जाकर [पारिजात के] निरंतर-सुरभि-कुसुम-मकरंद-माधुरी विशेषों के कारण परवश होकर, नाकलोक से साथ आनेवाले भ्रमरों को सतोष देना चाहनेवाले पारिजात को, आश्रित-पारिजात होनेवालाहरि महा-प्रेमाभिरामा सत्यभामा के साथ जिस महोद्यान में क्रीड़ा करता था, उसमें संस्थापित करके, नरकासुर के घर से जितनी राजकन्यकाओं को लाया उन सबके लिए उतने निवास [-गृह] बनवाकर [और] गृहोपकरण समर्पित करके। २१८ [चं.] हे भूवर !

पमुल बदारुवेल नृप बालल ग्रीति बदारुवेल चं-
दमुल विभूति नोंदुचु यथाविधितो वरियिंचें भूवरा ! ॥ 219 ॥

उ. दानमुलंदु सम्मद विधानमुलं दवलोक भाषणा-
ह्वानमुलंदु नोक्क क्रिय ना ललितांगुल कन्निमूर्तुलै
ता ननिशंबु गान बडि तक्कुव यॆक्कुव लेक युत्तम
ज्ञान गृहस्थ धर्ममुन जक्रि रमिचें ब्रपूर्णकामुडै ॥ 220 ॥

कं. तरुणुलु पॆक्कंड्रयिननु, बुरुषुडु मनलेडु सवति पोराटमुलन्
हरि या बदारु वेवुरु, तरुणुलतो समत मनियॆ दक्षत्वमुनन् ॥ 221 ॥

शा. अन्ने भंगुल योग मार्गमुल ब्रह्मेंद्रादु लीक्षिचुचुन्
मुन्ने देवुनि जूडगानक तुदिन् मोहितुरा मेटिके-
विज्ञाणंबुननो सतुल् गृहिणुलै विख्याति सेविचि र-
च्छिन्नालोकन हास भाषण रतिश्लेषानुरागंबुलन् ॥ 222 ॥

सी. इंटिकि वच्चिन नॆदुरेगुदेंचुचु नानीत वस्तुवुलंदिकोनुचु
सौवर्णमणिमयासनमुलु वॆट्टुचु बदमुलु गडुगुचु भक्ति तोड
संवासितस्नान जलमुलंदिच्चुचु सद्गंधवस्त्र भूषणमुलोसगि
यिष्ट पदार्थंबुलिडुचु दांबूलादुलोसगुचु विसरुचुनोज मॆरसि

अमित विहारी, ईश्वर, अनंत ने स्वयं एक दिन अच्छे लग्न (मुहूर्त) में सोलह हज़ार भवनों में, सोलह हज़ार रूपों से, सोलह हज़ार नृपबालाओं को, सोलह हज़ार विधियों से, विभूति (ऐश्वर्य) को पाते हुए यथाविधि वरण किया। २१९ [उ.] चक्रि ने प्रपूर्णकामी बनकर दानों में, सम्मद विधानों में [और] अवलोकन-भाषणाह्वानों में एक ही प्रकार उन ललितांगियों को उतने (सोलह हज़ार) रूपों में स्वयं दिखाई देकर बिना कमी [या] ज्यादती के, उत्तम ज्ञानयुक्त गृहस्थ-धर्म से रमण किया। २२० [कं.] जब तरुणियाँ अनेक होती हैं, पुरुष सौतेले झगड़ों के कारण जीवित नही रह सकता। हरि ने दक्षता से सोलह हज़ार तरुणियों में समता दिखाई। २२१ [शा.] किन्ही प्रकार के योग-मार्गों से ब्रह्मा और इन्द्र आदि ईक्षण करते हुए (देखते हुए) पहले जिस देव को देख न सककर, अंत में मोह करते हैं, उस श्रेष्ठ की, किसी विज्ञान से, सतियों ने गृहिणियाँ बनकर विख्याति से [और] अच्छिन्न-आलोक-सहास-भाषण-रति-श्लेष (-आलिंगन) [और] अनुराग के साथ सेवा की। २२२ [सी.] घर आने पर [उसकी] अगवानी करते हुए, आनीत वस्तुओं को लेते हुए, सौवर्ण मणिमय आसन (...) लगाते हुए, भक्ति-सहित पाद धोते हुए, संवासित ...ल देते ... ध से युक्त वस्त्र [और] भूषण देकर, इष्ट पदार्थ देते ...ल ...ए, पंखा करते हुए, तेजस्

ते. शिरमु दुव्वुचु शय्यपैं जॆलुवु मिगुल
नडुगुलॊत्तुचु दासी सहस्रयुक्त-
लय्यु गॊलिचिरि दासुलै हरि नुदारु
दारकाधिपवदनलु दारु दगिलि ॥ 223 ॥

शा. नन्ने पायडु रात्रुलं दिनमुलन् नन्ने कृपंजॆंदॆडिन्
नन्ने दॊड्डग जूचु वल्लभललो नाथुंडु नायिंटने
युन्नाडंचु वदारुवेलु दमलो नूहिंचि सेविंचि रा
यन्नुल् गाढ पतिव्रतात्व परिचर्याभक्ति योगंबुलन् ॥ 224 ॥

कं. आ रामलतो नॆय्पुडु, बोरामुलु चाल नॆरपि पुरुषोत्तमुडु
गारामुन दिरिगॆनु सौ, -धारामलता सरो विहारमुल नृपा ! ॥ 225 ॥

कं. ए देवुडु जगमुल नु, -त्पादिंचुनु मनुचु जॆरुचु प्राभवमुन म-
र्यादा रक्षणमुनकै, या देवुंडट्लु मॆरसॆ यादवुलंदुन् ॥ 226 ॥

अध्यायमु—६०

श्रीकृष्णुंडु केळीगृहमुनंदु रुक्मिणी देवितो विरसोक्तुलाडुट

व. अंत नॊक्कनाडु रुक्मिणीदेवि लोगिट महेंद्रनील मरकतादि मणिस्तंभ

[ते.] सिर पर कंघी देते हुए [और] शय्या पर अधिक सुंदर पाँवों को दबाते हुए, दासी सहस्रयुक्ता होकर भी तारकाधिप-वदनाओं ने (चन्द्र-वदनाओं ने) दासियाँ बनकर, उदार पति हरि से लगकर [उसकी] सेवा की। २२३ [शा.] "दिन-रात मुझे छोड़कर नहीं रहता; मुझी पर कृपा करता; [सभी] वल्लभाओं में मुझी को अच्छा देखता; नाथ मेरे ही घर में रहता"; इस प्रकार सोलह हज़ार तरुणियों ने अपने में अनुमान करके गाढ़ पतिव्रतात्व-परिचर्या [और] भक्तियोगों से [अपने पति की] सेवा की। २२४ [कं.] हे नृप ! उन रामाओं (स्त्रियों) के साथ सदा अनेक स्नेह दिखाते हुए पुरुषोत्तम, प्रेम से सौध-आराम (-उपवन) लता-सरो-विहारों में घूमता रहा। २२५ [कं.] जो देव प्राभव से मर्यादा-रक्षण के लिए जगों का उत्पादन करता, पोषण करता [और] बिगाड़ देता, वह देव यादवों में उस प्रकार प्रकाशमान हुआ। २२६

अध्याय—६०

श्रीकृष्ण का केली-गृह में रुक्मिणीदेवी के साथ विरसोक्तियाँ कहना

[व.] तब एक दिन रुक्मिणीदेवी के प्रासाद में महेंद्रनील, मरकतादि

वलभि विटंकपटल देह्ळी कवाट विराजमानंबुनु, शातकुंभकुड्य गवाक्ष वेदिका सौपानंबुनु, विलंबमान मुक्ताफल दाम विचित्र कौशेय वितानंबुनु विविधमणि दीपिका विसर विभ्राजमानंबुनु, मधुकर कुल कलित मल्लिका-कुसुम मालिकाभिरामंबुनु, जालक रंध्र विनिर्गत कर्पूरागरुधूप धूमंबुनु, वातायन विप्रकीर्ण शिशिरकर किरणस्तोमंबुनु, बारिजात नवामोद परिमिळित पवन सुंदरंबुनयिन लोपलि मंदिरंबुन शरच्चंद्र चंद्रिका धवळ पर्यंक मध्यंबुन जगदीश्वरुंडयिन हरि सुखासीनुंडयि युंड सखीजनंबुलु दानुनु डग्गरि कौलिचियुंडि ।। 227 ।।

सी. कुच कुंभमुल मीदि कुंकुमतो रायु हारंबुलरुणंबुलगुचु मॅरय
गर पल्लवमु साचि कदलिप नंगुळीयक कंकणप्रभलावरिंप
गदलिन बहुरत्न कलित नूपुरमुल गंभीर निनदंबु गडलुकॉनग
गांचन मणिकर्णिका मयूखंबुलु गंड पालिकलपै गंतुलिडग

ते. गुरुलु नतिप वय्यॅद कॉंगु तूल
बोटि चेनुन्न चामर पुच्चुकॉनुचु
जीवितेश्वरु रुक्मिणि चेर नरिगि
वेड्कलिगुरॉत्त मॅल्लन वीव दॉडगॅ ।। 228 ।।

व. अप्पुडु ।। 229 ।।

मणिस्तंभ, वलभिविटंक-पटल -देहली-कवाट से विराजमान होनेवाले, स्वर्ण-कुड्य-गवाक्ष-बेदिका-सोपान से युक्त होनेवाले, विलंबमान मुक्ताफलदाम विचित्र कौशेयवितान होनेवाले, विविधमणिदीपिका-विसर-विभ्राजमान होनेवाले, मधुकर-कुलकलित-मल्लिका-कुसुममालिकाभिराम होनेवाले, जालकरंध्र विनिर्गत कर्पूर-अगरु-धूप-धूमवाले, वातायन-विप्रकीर्ण-शिशिर-किरण-समूह वाले [और] पारिजात नवामोद परिमलित पवन से सुंदर होनेवाले, अंत:पुर में शरच्चंद्रचंद्रिकाधवलपर्यंक मध्य जगदीश्वर होनेवाला हरि सुखासीन होकर रहा तो, सखीजन [और] वह स्वयं [हरि के] समीप रहकर सेवा करते हुए, २२७ [सी.] कुचकुंभों पर के कुंकुम से रगड़खाने से हारों के अरुण होते हुए चमकने पर, कर-पल्लव को पसार कर हिलाने से अंगुलीयक-कंकण-प्रभाओं के व्याप्त होने पर, [उस कर के] हिलने से बहुरत्न कलित नूपुरों के गंभीर निनाद के भर जाने पर, कांचनमणि कर्णिका मयूखों के गंडस्थलों पर छलांग मारने पर, कुरुओं (शिरोजों) के नर्तन करने पर [ते.] [और] आँचल के किनारे के खिसक जाने पर, अपनी सखी के हाथ में रहनेवाले चामर को लेते हुए रुक्मिणी [अपने] जीवितेश्वर के पास जाकर धीरे-धीरे इस प्रकार पंखा करने लगी कि अभिलाषाएँ अंकुरित हो जाएँ। २२८ [व.] तब। २२९

म. पतिये रूपमु दाल्चिनन् ददनुरूपंबैन रूपंबुतो
सति ता नुंडॆडु नट्टि रूपवति नाति चंद्रास्य ना लक्ष्मि ना
सुतनुन् रुक्मिणि ना यनन्यमति ना शुद्धांतरंगं गळा
चतुरत्वंबुन शौरि यिट्लनियॆं जंचन्मंदहासंबुतोन् ॥ 230 ॥

म. बल शौर्यंबुल भोगपूर्ति कुलरूप त्याग संपद्गुणं-
बुल दिक्पालुर कंटॆ जैद्य मुखरुल् पूर्णुल् घनुल् वारिकिन्-
नॆलता ! तल्लियु दंड्रियुन् सहजुडुन् निन्निच्चिनं बोक यी
बलवद् भीरुल वार्धि लीनुल ममुं बाटिप नीकेटिकिन् ॥ 231 ॥

सी. लोकुल नडवडि लोनिवारमु गामु परुलकु मा जाड बयलु पडबु
बलमदोपेतुलु पग गॊंड्रु मा तोड राज पीठमुलकु रामु तरचु
शरणंबु माकु नी जलराशि सततंबु निष्किंचनुल मेमु निधुलु लेवु
कलवारु चुट्टालु गारु निष्किंचन जन बंधुलमु मुक्त संग्रहुलमु

आ. गूढ वर्तनुलमु गुणहीनुलमु भिक्षु-
लॆन वारि गानि याश्रयिप-
मिंदुमुखुलु दगुलरिट्टुवंटि ममुबोटि
वारि नेल दगुल वारिजाक्षि ! ॥ 232 ॥

[म.] पति जिस रूप को धारण करता है, तदनुरूप होनेवाले रूप से वह स्वयं रहनेवाली उस रूपवती सती से, स्त्री से, उस चंद्रास्या लक्ष्मी से, उस सुतनु से, उस रुक्मिणी से, उस अनन्यमति रखनेवाली से, उस शुद्धांतरंगा से, कलाचातुर्य से चंचन्मंदहास के साथ शौरि ने इस प्रकार कहा। २३० [म.] "[हे] स्त्री ! बल, शौर्य, भोग, पूर्ति, कुल, रूप, त्याग, संपदा [और] गुणों में, दिक्पालकों से बढ़कर चैद्य-मुखर (आदि) पूर्ण [और] घन (श्रेष्ठ) हैं; [तुम्हारे] माता-पिता [और] सहज (भ्राता) ने तुम्हें उनको [विवाह में] देना चाहा; [लेकिन] तुमने न जाकर (उन्हें स्वीकार न करके) इन बलवद्भीरु [और] वारधि-लीन [होनेवाले] हमको क्यों स्वीकार किया ?" २३१ [सी.] "[इतर] लोगों के चाल-चलन में हम नहीं आते (हमारा चाल-चलन दूसरों के चाल-चलन के समान नहीं है); परों (दूसरों) को हमारा पता विदित न होता। बल-मदोपेत हमसे बदला लेना चाहते; हम अकसर राजपीठों के लिए नहीं आते। यह जलराशि (समुद्र) सतत हमारे लिए शरण्य है; हम निष्किंचन है; [हमारी] निधियाँ नहीं हैं; धनवान [लोग] हमारे बंधु नहीं है; [हम] निष्किंचन जन [के] बंधु हैं; मुक्त-संग्रह हैं। [आ.] गूढवर्तन हैं; गुणहीन है; भिक्षुओं के ही आश्रित हैं; ऐसे हमारे जैसो से इंदुमुखियाँ नही लग जातीं [प्रेम नही करती]; [हे] वारिजाक्षी !

कं. सिरियुनु वंशमु रूपुनु, सरियैन विवाह-सख्य-संबंधंबुल्
जरुगुनु सरि गाकुन्ननु, जरुगवु लोलाक्षि ! यॆट्टि संसारुलकुन् ॥ 233 ॥

कं. तगदनि यॆरुगवु मम्मुन्
दगिलितिवि मृगाक्षि ! दीन दप्पगु नीकुं
दगिन मनुजेंद्रु नॊक्कनि
दगुलुमु गुणहीन जनुल दगुने तगुलन् ॥ 234 ॥

सी. साल्व जरासंध चैद्यादि राजुलु चॆलगि नन् वीक्षिचि मलयुचुंडु
रदिगाक रुक्मि नी यन्नयु गर्विचि वीर्य मदांधुडै वॆलयुचुन्न
वारि गर्वंबुलु वारिपगा गोरि चॆलुव ! निन्नॊडिचि तॆच्चितिमि गानि
कांता-तनूजार्थ-कामुकुलमु गामु काम मोहादुल ग्रंदुकॊनमु

ते. विनु मुदासीनुलमु क्रिया विरहितुलमु
पूर्णुलमु मेमु नित्यात्म बुद्धि तोड
वॆलुगुचुंडुमु गृहदीप विधमु मॆऱसि
नवलतातन्वि ! मा तोड नवयवलदु ॥ 235 ॥

व. अनि यिट्लु भगवंतुंडैन हरि दन्नु बायक सेविंचुटं ब्रियुरालनु बट्टंपुदेवि ननियॆडि रुक्मिणी-दर्पंबु नेर्पुन नुपसंहरिंचि यूरकुंडिन नम्मानवति

तुम हम से क्यों लग गयीं (हमारा वरण क्यों किया) ? २३२ [कं.] [हे] लोलाक्षी ! जब श्री (धन), वंश [और] रूप ठीक होते हैं, तब विवाह [और] सख्य-संबंध होते हैं; [वे] ठीक न हों तो किसी प्रकार सांसारिकों के [संबंध] नहीं होते। २३३ [कं.] तुम नहीं जानती कि यह [मुझसे प्रेम करना] युक्त नहीं है। हमसे लग गयी हो। [हे] मृगाक्षी, इस कारण तुम्हारी भलाई नही होती। [अपने लिए] योग्य किसी एक मनुजेंद्र से लग जाओ। [उनका हाथ पकड़ लो]; क्या गुणहीन जनों से लग जाना युक्त है ? २३४ [सी.] जब साल्व, जरासंध, चैद्य आदि राजा लोग विजृंभण करके मुझे देखकर उद्रिक्त हुए थे; इसके अतिरिक्त तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मि गर्व करके वीर्यमदांध होकर रहा था, उनके गर्व का निवारण करने की इच्छा से तुम [जैसी] सुंदरी को आकर्षित करके लाये है; लेकिन हम कांता, तनूज (पुत्र), अर्थ के कामी नहीं हैं। काम, मोह आदि में फँस नही जाते। [ते.] सुनो, हम उदासीन हैं, क्रिया-विरहित हैं; पूर्ण है; हम नित्य आत्म-बुद्धि (-ज्ञान) से गृहदीप की तरह चमककर प्रकाशमान होते रहते हैं। [इसलिए हे] नवलतातन्वी ! हमारे साथ [रहकर] दुखित न होना !" २३५ [व.] भगवान हरि के अपने को न छोड़कर सेवा करने के कारण रुक्मिणी

यप्रियंबुलु सगौरवंबुलु नपूर्वकंबुलुनैन मनोवल्लभुमाटलु विनि दुरंतंबैन चिंता भरंबुन संतापंबु नॊंदुचु ॥ 236 ॥

सी. काटुक नॆऱयंग गम्भीर वऱदलै कुचकुंभयुगळ कुंकुममु दडिय
विडुवक वॆडलॆडु वेडि निट्टूर्पुल लालिताधर किसलयमु कंद
जॆलुवंबु नॆरि दप्पि चिन्नबोवुचुनुन्न वदनारविंदंबु वाडु दोप
मारुताहति दूलु महित कल्पक वल्लि वडवुन मेन् वडबड वडंक

ते. जित्तमॆरियंग जॆक्किट जेयि सेर्चि
कौतुकंवेदि पदतलाग्रमुन नेल
व्रासि पॆंपुचु मोमरवांचि वगल
वॊंदे मव्वंबु गंदिन पुव्वु बोलॆ ॥ 237 ॥

चं. अलिकुल वेणि तन्नु ब्रियुडाडिन यप्रिय भाषलिम्मॆयिन्
सॊलवक कर्णरंध्रमुल सूदुलु सॊन्पिन रीति गाग बॆ-
ब्बुलि रॊद विन्न लेडि क्रिय बॊल्पऱि चेष्टलु दक्कि नेलपै
वल नऱि व्रालॆ गोलॆडलि व्रालिन पुत्तडि बॊम्म कैवडिन् ॥ 238 ॥

व. इट्लु व्रालिन ॥ 239 ॥

के इस दर्प का कि मैं [कृष्ण की] प्रिया हूँ, पटरानी हूँ, इस प्रकार कुशलता के साथ उपसंहार (शमन) करके [कृष्ण] चुप रहा तो वह मानवती अप्रिय [और] अपूर्व होनेवाली मनोवल्लभ की बातें सुनकर दुरंत चिंता-भार से संताप को पाते हुए २३६ [सी.] काजल से युक्त आंसुओं की बाढ़ों से कुचकुंभ-युगल पर के कुंकुम के भीग जाने पर, लगातार निकलनेवाली गरम साँसों में ललिताधर रूपी किसलय के मुरझाने पर, सुंदरता के क्रम को छोड़कर फीका होने पर, वदनारविंद के मुकुलित होने पर, मारुताहत होकर लड़खड़ानेवाली महित कल्पक वल्ली की तरह शरीर के थरथर काँपने पर, [ते.] चित्त के परितप्त होकर गाल पर हाथ लगा कर कौतुकहीन होकर पद-तलाग्र से ज़मीन पर रगड़ते हुए मुख को झुकाकर कोमलताशून्य पुष्प की तरह [वह रुक्मिणी] दुःखित हुई। २३७ [चं.] अलिकुल-वेणी अपने प्रति प्रिय की कही हुई अप्रिय भाषाएँ (बातें) इस प्रकार बिमुखता को न पाकर [सीधे] कर्णरंध्रों में सुइयों को चुभाने के समान होने पर, व्याघ्र की गरज को सुननेवाली हिरणी की तरह लावण्य-हीन बनकर [और] निश्चेष्ट होकर भूमि पर इस प्रकार गिर गई जिस प्रकार पुर्जे के छूट जाने पर सोने का खिलौना गिर जाता है। २३८ [व.] इस प्रकार गिरने पर··· २३९ [म.] प्रणताम्नाय कृष्ण तब बाष्पावरुद्ध अरुणेक्षणा, विस्रस्त विनूत्न भूषणा, दुरुक्त क्रूर नाराच-

म. प्रणताम्नायुडु कृष्णु डंत गदिसॅन् बाष्पावरुद्धारुणे-
क्षण, विस्रस्त विनूत्न भूषणदुरुक्त क्रूर नाराच शो-
षण, नालिंगित-धारुणिन्, निजकुला-चारैक सद्धर्म चा-
रिणि, विश्लेषिणि, वीततोषिणि, बुरंध्री-ग्रामणिन्,रुक्मिणिन् ॥ 240 ॥

सी. कनि संभ्रमंबुन दनुवु नंदनुवुगा ननुवुन जंदनंबल्ल नलदि
कन्नीरु पन्नीट गडिगि कर्पूरंपु बलुकुलु चॅवुललो बाइ नूदि
करमॉप्प मुत्याल सरुल चिक्कॅडलिचि युरमुन बॉंदुगा निरुवु कॉलिपि
तिलकंबु नुनुफाल फलकंबुपै दीर्चि वदलिन भूषणाव लुलु दॉडिगि

ते. कमलदळ चारु तालवृंतमुल विसरि
पॉलुचु पय्यॅद गुचमुल बॉंदु परिचि
चित्तमिगुरॉत्त नॉय्यन सेद दॅर्चि
बिगिय गौगिट जेर्चि नॅम्मॉगमु निमिरि ॥ 241 ॥

ते. नॅरुलु गल मरु नीलंपु टुरुल सिरुल
नरुलु गॉन जालि नरुलनु मरुलु गॉलिपि
यिरुलु गॅलिचिन तुम्मॅद गरुल दॅगडु
कुरुल नुलि दीर्चि विरुलिडि कॉप्पुवॅट्टि ॥ 242 ॥

कं. मुरसंहरु डिंदिदिर
गरुदनिलचलत्प्रसून कलिकांचित सं-

शोषणा, जिसने धरणी का आलिंगन किया हो, निज कुलाचारेक सद्धर्मचारिणी, विश्लेषिणी, वीततोषिणी, पुरंध्री-ग्रामणी, रुक्मिणी के समीप गया। २४० [सी.] देखकर संभ्रम से सारे शरीर में अच्छी तरह चंदन को लगाकर, अश्रुओं को इत्र से धोकर, कानों में कर्पूर-खंडों को फूंककर, सुंदर मोतियों के हारों के उलझनों को सुलझाकर और उनको उनके शरीर पर ठीक सँवारकर, सुंदर फाल पर तिलक लगाकर, निकाली गयी भूषणावलि को धारण करा कर, [ते.] कमलदल [और] सुंदर ताल के वृंतों से पंखा कर, अच्छे लगनेवाले आँचल को कुचों पर ठीक करके, फिर चित्त स्वस्थ हो जाने के लिए थकावट को मिटाकर, गाढ़ आलिंगन करके [और] कोमल मुख को [हाथ से] फेरकर··· २४१ [ते.] घुँघराले नील शिरोजों को जो नरों को मादक बनाते थे, अंधकार को जीत चुके थे [कालिमा के कारण], [और] भ्रमरों के समूह की भी निंदा करते थे [अपनी कालिमा से] बालों के उलझनों को सँवारकर, फूल गूंथकर और बाँधकर २४२ [कं.] मुर-संहर (मुर का संहार करनेवाले कृष्ण) ने भ्रमरों के पंखों की वायु से

दर शय्य जेर्चॆ भीष्मक-
वर-पुत्रिन्, नुत-चरित्रवारिज-नेत्रन् ॥ 243 ॥

रुक्मिणीदेवि श्रीकृष्ण लालितयै यतनि स्तुतिचुट

व. इट्लु पानुपुनं जेर्चि मृदु मधुर भाषणंबुल ननुनयिंचिन ॥ 244 ॥

कं. पुरुषोत्तमु मुख कोमल, सरसिजमयियंदुवदन सव्रीडा हा-
स रुचि स्निग्धापांग, -स्फुरदवलोकमुलीलय जूचिट्लनियॆन् ॥ 245 ॥

कं. मुरहर ! दिवसागम दळ, -दरविंददळाक्ष ! दलपनदि यट्टिद ले
निरवधिक विमल तेजो, -वरमूर्तिवि भक्तलोकवत्सल ! यॆंदुन् ॥ 246 ॥

ते. संचितज्ञान सुखबलैश्वर्य शक्तु-
लादिगा गल सुगुणंबुलमरु नीकु
नेनु दगुदुनॆ सर्वलोकेश्वरेश !
लीलमै सच्चिदानंदशालि वनघ ! ॥ 247 ॥

सी. रूढिमै ब्रकृति पूरुष कालमुलकु नीश्वरुडवै भवदीय चारु दिव्य
ललित कळा कौशलमुन नभिरतुडै कडगु नी रूपमॆवकड महात्म !
सत्त्वादिगुण समुच्चय युक्त मूढात्मनयिन नेनॆक्कड ननघ चरित !
कोरि नी मंगळ गुण भूति गानंबु सेयंगवडुनंनि चॆंदुभीति

हिलनेवाले पुष्पों व कलियां से अलंकृत शय्या पर भीष्मक की वर (श्रेष्ठ) पुत्री, नुत (प्रशंसित) चरित्रा, वारिजनेत्रा (रुक्मिणी) को लिटाया। २४३

रुक्मिणी का श्रीकृष्ण-लालिता बनकर उसकी स्तुति करना

[व.] इस प्रकार शय्या पर लिटाकर मृदु मधुर भाषणों से समझाया तो… २४४ [कं.] पुरुषोत्तम के कोमल-सरसिज मुख को सव्रीडा (लज्जायुक्त) हास-रुचि (कांति) से स्निग्ध, अपांग [और] स्फुरत् अवलोकनों से देखकर उस इंदुवदना (रुक्मिणी) ने इस प्रकार कहा। २४५ [कं.] "[हे] मुरहर ! दिवसागम (प्रातःकाल) के दलत् (विकसित) अरविंद-दलाक्ष ! भक्तलोकवत्सल ! तुम निरवधिक विमल तेजोमूर्ति हो। सोचने पर वैसा (मूर्ति) कहीं नहीं है। २४६ [ते.] "तुममें संचित ज्ञान, सुख, बल, ऐश्वर्य [और] शक्ति आदि सुगुण विद्यमान हैं। [हे] सर्वलोकेश्वरेश ! [हे] अनघ ! तुम लीला-युक्त सच्चिदानंदशाली हो ! मैं तुम्हारे लिए योग्या बन सकती हूँ ? २४७ [सी.] "[हे] महात्मन् ! रूढ़ि से, प्रकृति, पुरुष और काल के तुम ईश्वर बनकर भवदीय चारु दिव्य ललित कला-कौशल से अभिरत होकर

ते. नंबुनिधि मध्य भागमंदमृत फेन-
पटल पांडुर निभमूर्ति पन्नगेंद्र-
भोग-शय्यनु बव्वळिपुचुनु दनरु
नट्टियुन्नत लील दिव्यंबु दलप ॥ 248 ॥

व. शब्द स्पर्श रूप रस गंधंबुलनियेडु गुणंबुल चेत बरिग्रहिंपबडिन मंगळ सुंदर विग्रहुंडवै यज्ञानांधकार निवारकंबैन रूपंबु गैकोनि भवदीयुलयिन सेवकुलकु ननुभाव्युंडवैति। भवत्पादारविंद मकरंदरसास्वाद लोलात्मुलैन योगींद्रुलकैनन‍ु भवन्मार्गंबु स्फुटंबु कादट्लगुट जेसि यी मनुज पशुवुलकु दुर्विभाव्यंबगुट येमि चेप्प। निट्टि यीश्वरुंडवैन नीकु निच्छ स्वतंत्रंबु गावुन नदियुनु नाकभिमतंबु गावुन निन्नु नेननुसरितु, देवा! नीवकिंचनुंडवैतेनि बलि-भोक्तलयिन ब्रह्मेंद्रादुलेव्वनि कोरकु बलि समर्पणंबु चेसिरि? नीवु समस्त पुरुषार्थमयुंडवनियुनु फलस्वरूपिवनियुनु नीयंदलि प्रेमातिशयंबुलं जेसि विज्ञान दीपांकुरंबुन निरस्त समस्त दोषांधकारुलै यिह सौख्यंबुलु विडिचि सुमतुलु भवदीय दाससंगंबु गोरुचुंडुदुरट्लु सेयनेरक निजाधिकारांधकारमग्नुलैन वारु भवत्तत्त्वंबु देलिसि बलि

विराजमान होनेवाला तुम्हारा रूप कहाँ? हे अनघ-चरित! सत्त्व आदि गुण समुच्चययुक्त मूढ़ात्मा होनेवाली मैं कहाँ? इच्छा करके तुम्हारी मंगल-गुण-भूति (ऐश्वर्य) का गान किये जाने में बड़ी भीति होगी —ऐसी भीति से [ते.] अंबुनिधिमध्य भाग में अमृत फेन पटल पांडुर निभ(सम)मूर्ति, पन्नगेंद्र [की] भोग-शय्या पर लेटते हुए प्रकाशमान होनेवाली उन्नत लीला से [तुम्हारे] दिव्यत्व की चिंता करते हुए (भीति को पाता है।) २४८
[व.] शब्द, स्पर्श, रूप, रस [और] गंध नामक गुणों से परिगृहीत मंगल [और] सुंदर विग्रह बनकर अज्ञानांधकार-निवारक रूप को ग्रहण करके भवदीय सेवकों के लिए अनुभाव्य बन गये हो। भवत्पादारविंद मकरंद रसास्वादलोलात्मा होनेवाले योगींद्रों के लिए भी भवन्मार्ग स्फुट नहीं होता। इसलिए इन मनुज पशुओं के लिए दुर्विभाव्य होना क्या कहूँ? ऐसे ईश्वर होनेवाले तुमको इच्छा स्वतंत्र है; इसलिए वह भी मेरा अभिमत है। इसलिए मैं तुम्हारा अनुसरण करती हूँ। देव! अगर तुम अकिंचन होते तो बलिभोक्ता होनेवाले ब्रह्मा और इन्द्र आदियों ने किसके लिए बलि समर्पण किया है? तुम समस्त पुरुषार्थमय हो, फलस्वरूपी हो, इसलिए तुम पर होनेवाले प्रेमातिशय के कारण विज्ञान दीपांकुर से निरस्त समस्त दोषांधकार [वाले] होकर, इह सौख्यों को त्याग करके सुमति (बुद्धिमा[illegible]) भवदीय दासों के संग को चाहते हैं; इस प्रकार कर[illegible] निज[illegible]-अंधकारमग्न होनेवाले [लोग]

प्रक्षेपणंबु सेयंजालक मूढुलै संसार चक्रंबुनं बरिभ्रमितु-
रदियुनुंगाक ॥ 249 ॥

आ. वर मुनींद्र योगिवर सुर कोटि चे
वर्णित प्रभाव वैभवंबु
गलिगि यखिल चेतनुलकु विज्ञान प्र-
दुंड वगुदुवभव ! दुरितदूर ! ॥ 250 ॥

व. देवा ! भवदीय कुटिल भ्रूविक्षेपोदीरित कालवेगंबु चेत विध्वस्त
मंगळुलगु कमलभव भव पाकशासनादुलं दिरस्करिंचिनट्टि मदीय
चित्तवुन ॥ 251 ॥

चं. निनु वरियिंचिनं बॆलुच नीरजलोचन ! शाङ्‌र्ग सायका-
सन निनदंबुलन् सकल शत्रु धरापतुलन् जयिंचि बो-
रन बशुकोटि दोलु मृगराजु निजांशमु भूरिशक्ति गै-
कॊनिन विधंबुनन् ननु नकुंठित शूरत दॆच्चितीश्वरा ! ॥ 252 ॥

उ. अट्टि नृपाल कीटमुल नाजि नॆदुर्पंगलेनि वानि य-
ट्लॊट्टिन भीतिमै निट्टु पयोधि शरण्युडवैति वितथुन्
नॆट्टन माय गाक यिवि निक्कमुले भवदीय भक्तुलै-
नट्टि नरेंद्रमौळि मणुलंचित राजऋषुल् मुदंबुनन् ॥ 253 ॥

वलिप्रक्षेपण न कर सककर [और] मूढ़ बनकर संसार-चक्र में परिभ्रमण करते हैं। इसके अतिरिक्त… २४९ [आ.] "हे अभव ! दुरितदूर ! वर (श्रेष्ठ) मुनींद्र, योगिवर, सुरकोटि से वर्णित प्रभाव-वैभव को पाकर अखिल चेतनों के लिए विज्ञान-प्रद बनते हो। २५० [व.] हे देव ! भवदीय कुटिल भ्रूविक्षेपों से उदीरित कालवेग से विध्वस्तमंगल होनेवाले कमलभव, भव (शिव), पाकशासनादियों का तिरस्कार करनेवाले मदीय चित्त में… २५१ [चं.] [हे] ईश्वर ! नीरजलोचन ! तुम्हारा वरण करने पर अतिशय शक्ति से शार्ङ्ग-सायकासन निनदों से सकल शत्रु धरापतियों को जीतकर, शीघ्र ही पशु-कोटि (-समूह) को खदेड़नेवाला मृगराजा निजांश को (अपने भाग को) भूरि शक्ति से ले जाने की विधि से मुझे [अपनी] अकुंठित शूरता से लाये हो। २५२ [उ.] इस प्रकार के नृपाल-कीटों को (निंद्य राजाओं को) युद्ध में न हरानेवाले की तरह भीतियुक्त होकर इस प्रकार पयोधिशरण्य बन गये हो। यह सब कुछ माया है, नहीं तो यह सच है क्या? भवदीय भक्त होनेवाले नरेंद्रमौलिमणि [गण] और अंचित राजऋषि मोद से… २५३ [आ.] [हे] अभव ! वितत राज्य गरिमा को छोड़कर काननों में

आ. विततराज्य गरिम विडिचि काननमुल
नात्मलंदु मी पदाब्जयुगमु
वलति गाग निलिपि वातांबु-पर्णाश-
नोग्र नियतु लगुचु नुंदुरभव ! ॥ 254 ॥

म. विमल ज्ञान निरूढुलैन जनमुल् वीक्षिप मीपाद कं-
ज मरंदस्फुट दिव्य सौरभमु नास्वादिंचि निर्वाण रू-
पमु सत्पूरुषवागुदीरितमु शोभा श्रीनिवासंबुनौ
मिमु सेविपक मानवाधमुनि दुर्मेधात्मु सेवितुने ! ॥ 255 ॥

व. मरियुनु देवा ! भूलोकंबुनंदुनु, नित्यनिवासंबुनंदुनु, सकल प्रदेशमुलंदुनु जगदीश्वरुंडवयिन निन्नु नभिमतंबुलयिन कामरूपंबुलु गैकोनि वरियितुरु। भवदीय चरणारविंद मकरंदास्वादन चातुर्यधुर्यभृंगियैन कामिनि, यति हेयंबैन त्वक् श्मश्रु रोम नख केशंबुल चेत गप्पंबडि यंतर्गतंबयिन मांसास्थि रक्त क्रिमि विट् कफ पित्तवातंबुलु गल जीवच्छवंबयिन नराधमुनि मूढात्मयै कामिंचुने ? यदियुनुंगाक ॥ 256 ॥

सी. नीरदागम मेघ निर्यत्पयःपान चातकं बेगुने चौटिपडेंकु
बरिपक्व माकंद फल रसंबुलु ग्रोलु कीरंबु चनुनॆ दुत्तूरमुलकु
घनरवाकर्णनोत्कलिक मयूरमु कोरुनॆ कठिन झिल्लीरवंबु
गरिकुंभ पिशित सद्ग्रास मोदित सिंहमरुगुने शुनक मांसाभिलाष

[रहते हुए] आत्माओं में आपके पदाब्जयुग को स्थिर करके ताकि वह उनके अधीन हो जाय, वात (वायु), अंबु (जल), पर्ण (पत्ते) और अशन (आहार) से उग्र नियत बनकर रहते। २५४ [म.] विमल ज्ञान निरूढ़ जन, देखने पर, आपके पादकंज-मरंद-स्फुट दिव्य सौरभ का आस्वादन करके निर्वाण-रूप, सत्पूरुष-वाक्, उदीरित [और] शोभा-श्री के निवास होनेवाले आपकी सेवा न करके मानवाधम और दुर्मेधात्मा की सेवा करते हैं। २५५ [व.] और भी देव ! भूलोक में, नित्य निवास में, सकल प्रदेशों में जगदीश्वर होनेवाले अभिमत कामरूप लेकर तुम्हारा वरण करते हैं। भवदीय चरणारविंद के मकरंद का आस्वादन करने में चातुर्य-धुर्य भृंगी होनेवाली कामिनी अतिहेय होनेवाले त्वक्, श्मश्रु, रोम, नख [और] केशों से ढके जाकर, अंतर्गत होनेवाले मांस, अस्थि, रक्त, क्रमि, विट (मल), कफ, पित्त [और] वात से भरे हुए जीवच्छव होनेवाले

ते. प्रविमलाकार ! भवदीय पादपद्म-
युग समाश्रय नैपुणोद्योग चित्त-
मन्यु जेरुनें तन कृपास्यंबुकाग
भक्त-मंदार ! दुर्भव भयविदूर ! ॥ 257 ॥

कं. वासववंदित भवकम, -लासन दिव्य प्रभा विभासिवि यॅपुडुन्
नी समधिक चारित्र क, -था सुरुचिरगान मवितथंबयि चॅल्लुन् ॥ 258 ॥

कं. धरणीनाथुलु तमतम
वर-वनिता मंदिरमुल वसियिंपुचु गो-
खर मार्जालंबुल गति
स्थिर वद्धुलगुदुरु निन्नु दॅलियनि कतनन् ॥ 259 ॥

आ. जलजनाभ ! सकल जगदंतरात्मवै
नट्टि देव ! नी पदारविंद
युगळि सानुरागयुक्तमै ना मदि
गलुगु नट्लु गाग दलपु मनघ ! ॥ 260 ॥

आ. पृथुरजोगुण प्रवृद्धमैनट्टि नी, दृष्टि चेत नन्नु देरकॉनग
जूचुटॅल्ल पद्मलोचन ! नामोदि, घन दयार्द्र दृष्टिगा दलंतु ॥ 261 ॥

व. अदियुनुं गाक मधुसूदना ! नी वाक्यंबुलु मिथ्यलु गावु, तल्लि वचनंबु कूतुरि

रव (शब्द) को [सुनना] चाहता है ? करिकुंभ-पिशित-सद्ग्रास-मोदित-सिंह कहीं शुनक-मांस [को पाने की] अभिलाषा से जाता है ? [ते.] प्रविमलाकार वाले भवदीय पाद पद्मयुग समाश्रय नैपुण्य का उद्योग (प्रयत्न) [करनेवाला] चित्त, [हे] भक्तमंदार ! दुर्भव [और] भय-विदूर ! अपने उपास्य को छोड़कर, कहीं अन्य पर लग जाता है ? २५७ [कं.] [हे] वासव (इंद्र से) वंदित ! भव (शिव), कमलासन (ब्रह्मा) [की] दिव्य प्रभा [युक्त] सभावली को सर्वदा तुम्हारा समधिक चारित्र कथा-सुरुचिर गान अवितथ (सच) होकर रहता है। २५८ [कं.] तुमको न जानने के कारण धरणीनाथ अपने-अपने वर-वनिता मंदिरों मे रहते हुए गो, खर, मार्जालों की तरह स्थिरवद्ध वाले होते हैं। २५९ [आ.] [हे] जलजनाभ ! [हे] अनघ ! सकल जगदंतरात्मा होनेवाले [हे] देव ! ऐसा समझो (करो) कि तुम्हारे पदारविंदयुगल सानुराग-युक्त होकर मेरे हृदय में रहे। २६० [आ.] [हे] पद्मलोचन ! ऐसा सोचती हूँ कि पृथु (बड़ी) रजोगुण [से] प्रवृद्ध होनेवाली अपनी दृष्टि से मुझे बचाने को देखना, सब मुझ पर होनेवाली घन (श्रेष्ठ) दया-दृष्टि ही है। २६१ [व.] इसके अतिरिक्त, [हे] मधुसूदन ! तुम्हारे

कभिमतंबु गादे यौवनारूढमदंबुन स्वैरिणियगु कामिनि पुरुषांतरासक्त-यगुट विचारिंचि परिज्ञानियैन वाडु विडुचु नविवेकिययिन पुरुषुंडिद्रिय-लोलुंडै रति दगिलि दानि विडुवनेरक परिग्रहिंचि युभय लोकच्युतुंडगु नट्लु गावुन नीयेरुंगनि यथंबु गलदे ? यनि विन्नविंचिन रुक्मिणी-देवि वचनंबुलकु गृष्णुंडु संतसिल्लि यिट्लनियें ॥ 262 ॥

कृष्णुंडु रुक्मिणीदेवि नूरडिंचुट

चं. अलिकुलवेणि ! नव्वुलकु नाडिन माटलकित नी मदि
गलगगनेल वेटलनु गय्यमुलन् रतुलंदु नोव्वगा
बलिकिन माटलेंगुलनि पट्टुदुरे भवदीय चित्तमुं
देलियग गोरि ये बलिकितिन् मदिलो निट्टु गुंद नेटिकिन् ॥ 263 ॥

व. अदियुनुंगाक ॥ 264 ॥

उ. किंकलु मुद्दु बल्कुलुनु गेंपु गनुंगव तिय्य मोवियुन्
जंकेलु तेरि चूपु लॅक सक्कॅमुलुन् नॅलवंक बोम्मलुन्

वाक्य (बातें) मिथ्या नहीं हैं । माता का वचन (कहना) पुत्री के लिए क्या अभिमत नहीं होता ? यौवनारूढ़मद से स्वैरिणी होनेवाली कामिनी का पुरुषांतरासक्ता (अन्य पुरुष पर आसक्त होना) होने को, विचार करके [देखकर] परिज्ञानी होनेवाला [उस कामिनी को] छोड़ देता है; अविवेकी होनेवाला पुरुष इंद्रियलोल बनकर [और] रति में लगकर उस [स्त्री] को छोड़ न सककर परिग्रहण करके उभयलोकच्युत बन जाता है । इसलिए ऐसा कोई अर्थ (विषय) है जिसे तुम नहीं जानते ?" इस प्रकार विनति करने पर रुक्मिणी देवी के वचनों के लिए संतुष्ट होकर कृष्ण ने इस प्रकार कहा । २६२

श्रीकृष्ण का रुक्मिणीदेवी को सान्त्वना देना

[चं.] [हे] "अलिकुलवेणी ! हँसी-मजाक़ में [मैंने] जो बातें कहीं, उनके लिए अपने मन में इतनी दुःखित क्यों हो रही हो ? आखेटों में, झगड़ों में [और] रतियों में व्यथा पहुँचाने की जो बातें कही जाती हैं, उनको [कहीं] दोष समझते हैं ? भवदीय चित्त को जानने की इच्छा करके मैंने [इस प्रकार] कहा । मन में इस प्रकार दुखित होना किसलिए ? २६३ [व.] इसके अतिरिक्त २६४ [उ.] [हे] कुरंग-लोचने ! अल्पक्रोध, प्रिय उक्तियाँ, लाल आँखें, मधुर मुख, भुजमूल, सीधी दृष्टियाँ, हास्योक्तियाँ, चं[illegible]ी तरह होनेवाली भौंहें, बिना किसी संदेह

गीकक वीडनाडुटलु गूरिमियुं गल कांत गूडुटल्
अंकिलि लेक जन्म फलमब्बुट गादॆ कुरंगलोचना ! ॥ 265 ॥

व. अनि मऱियु निट्लनियॆं ॥ 266 ॥

उ. नीवु पतिव्रतामणिवि निर्मल धर्म विवेकशील स-
द्भाववु नीमनोगतुल बायक यॆप्पुडु नस्मदीय सं-
सेवय कानि यन्यमु भजिंपवु पुट्टिन नाट नुंडि नो
भावमॆऱिंगि युंडियुनु वल्किन तप्पु सहिंपु मानिनी ! ॥ 267 ॥

व. अनि वॆंडियु निट्लनियॆं। नी वाक्यंबुलु श्रवण सुखंबुलु गाविंचॆं, नीवु विविधंबुलैन कामंबुलु गोरितिवेनि नवि यन्नियुनु नायंद युंडुट जेसि येकांत सेवा-चतुरवैन नीकु नवि यन्नियु नित्यंबुलै युंडु। नी पातिव्रत्यंबुनु नायंदलि स्नेहंबु नतिविशदंबुलय्यॆं। ना वाक्यंबुल चेत भवदीय चित्तंबु चंचलंबुगाक नायंदुल बुद्धि दृढंबगुं गावुन सकल संपद्विलसितंबैन द्वारका नगर दिव्य मंदिरंबुलंदु नीदु भाग्यंबुनं जेसि संसारि कैवडि नीयंदु बद्धानुरागुडनै वर्तितु दक्किन प्राणेंद्रिय परवशत्वंबुन विकृत शरीरधारिणियैन सति नन्नुंजेंदुट दुष्करं बदियुनुं गाक मोक्ष प्रदुंडनैन नन्नु गामातुरलैन यल्पमतुलु व्रत तपोमहिमल चेत दांपत्य योगंबुकै सेवितुरदि यंतयु ना माया-विजृंभितंबु।

के परित्याग करना, प्रिय कांता से मिलना, निर्विघ्न हो जन्म-फल का प्राप्त होना नहीं है ?" २६५ [व.] [उसने] फिर इस प्रकार कहा। २६६ [उ.] "तुम पतिव्रतामणि हो, निर्मल धर्म-विवेकशील सद्भावा हो; तुम्हारे मनोगतों में बिना छोड़े सदा अस्मदीय संसेवा के अतिरिक्त अन्य की चिंता नहीं करती; जन्मकाल से-लेकर तुम्हारे भाव को जानते हुए भी, हे मानिनी ! मैं जो गलत बोला, उसको सहन करो।" २६७ [व.] यों कहकर, फिर इस प्रकार कहा, "तुम्हारे वाक्यों (बातों) ने श्रवणों को सुख दिया। अगर तुम विविध काम (इच्छाएँ) चाहती हो तो वे सब मुझमें ही होने के कारण एकांत सेवा-चतुरा होनेवाली तुमको वे सब नित्य बने रहते है। तुम्हारा पातिव्रत्य [और] मुझ पर [रहनेवाला] स्नेह अतिविशद बन गये। मेरे वाक्यों (बातों) से भवदीय चित्त चंचल न बनकर, मुझ पर [तुम्हारी] बुद्धि दृढ़ होगी, इसलिए, सकल संपद्विलसित होनेवाले द्वारकानगर के दिव्य मंदिरों में तुम्हारे भाग्य से गृहस्थ की तरह तुम पर बद्धानुरागी बनकर रहूँगा। बाकी प्राणेंद्रिय परवशत्व से विकृत शरीरधारिणी होनेवाली सती को प्राप्त करना मेरे लिए दुष्कर है। इसके अतिरिक्त मोक्षप्रद होनेवाले कामातुर अल्पमति वाले व्रत-तपो-महिमाओं से दांपत्ययोग के लिए मेरी सेवा करते है। वह सब मेरी

दानं जेसि वारु मंदभाग्यलै निरयंबु नोंदुदुरु अट्लु गावुन नी समानयैन कांत येकांतलंदेन गलदे ? नी विवाह कालंबुन ननेक राजन्यवर्युल गैकोनक भवदीय मधुरालाप श्रवणात्मकुंडनयिन ना सन्निधिकि ना शरीरं वितर योग्यंबु कादु। नीकु शेषंबनयि युन्न दान ननि येकांतंबुन ब्राह्मणुं बुत्तेंचिन नेनुनु जनुदेंचि नी परिणय विषयंबुनन् भवत्सहोदरुंबट्टि विरूपुं गाविंचिन नदि गनुंगोनियु ना यंदुल विप्रयोग भयंबुन नूरकुंडिति वदि गावुन बहु प्रकारंबुलं वर्तिंचु नी सद्गुणंबुलकु संतसितु ननि यिव्विधंबुन देवकीसुतुंडु नरलोक-विडंबनंबुग गृहस्थुनि भंगि निजगृह-कृत्यंबुलाचरिंचुचुंडे ननि शुकुंडु मरियु निट्लनियें ॥ 268 ॥

कं. अनि यिट्लु कृष्णुडाडिन
विनय विवेकानुलाप विततामृत से-
चन मुदित हृदयये य-
व्वनितामणि विकच-वदन-वनरुह यगुचुन् ॥ 269 ॥

कं. नगवार्मतिचु चूपुलु
नगधरु मोगमुननु निलिपि नयमुन गरमुल्
मोगिचि विनुतिचें गृष्णुन्
खगवाहुन् रुचिरदेहु गलितोत्साहुन् ॥ 270 ॥

माया से विजृंभित है। इसलिए वे मंदभाग्याएँ बनकर निरय (दुर्गति) को प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम्हारे समान कांता अन्य कांताओं में हो सकती है ? (नही) तुम्हारे विवाह-काल पर अनेक राजन्यवर्यो को न लेकर भवदीय मधुरालाप-श्रवणात्मक होनेवाले मेरी सन्निधि को छोड़ मेरा शरीर इतर योग्य नहीं है। 'तुम्हारे लिए शेष बनकर रहती हूँ' कहकर एकांत में [तुम्हारे] ब्राह्मण को भेजने पर, मैंने भी आकर तुम्हारे परिणय के विषय में तुम्हारे सहोदर को पकड़कर विरूप बनाया तो वह जानकर भी मुझसे होनेवाले विप्रयोग के भय से [तुम] मौन रही। इसलिए बहुत प्रकार के होनेवाले तुम्हारे सद्गुणों के कारण मैं संतुष्ट होता हूँ।" इस प्रकार कहकर कि यों देवकीसुत नरलोक-विडंबना (-मिष) से गृहस्थ की तरह निज-गृहकृत्यों का आचरण करता था। शुक ने फिर इस प्रकार कहा। २६८

[कं.] इस प्रकार कृष्ण ने जो विनय-विवेक [युक्त] अनुलाप किये उनसे [रुक्मिणी] वितत-अमृत-सेचन से मुदित-हृदया बनकर, उस वनितामणि ने विकच-वदन-वनरुहा होते हुए, २६९ [क.] हँसी को बुलानेवाली

चं. अतुल विराजमान मुखुडै विविधांबर चारुभूषण
प्रततुल तोड गोरिन वरंबुलु दद्दयु निच्चॅ गृष्णुडु-
न्नत शुभमूर्ति देवगणनंदित कीर्ति दयानुवर्तियै
यति मृदुवाणिकि गिसलयारुणपाणिकि नीलवेणिकिन् ॥ 271 ॥

व. इट्लु सन्मानिंचि कृष्णुंडु रुक्मिणियुं दानुनुं दनंतरंब ॥ 272 ॥

चं. एलमि घटिपगा गलसि यीडॅल नीडॅल मल्लिका लता-
वलि गरवीर जाति विरवादुल वोथुल गम्म वॅम्मॅरल्
पॉलयु नवीन वासमुल बॉन्नल दिन्नॅल वच्चरच्चलन्
गीलकुल लेगॅलंकुलनु गोरिक लीरिकलॉत्त ग्रॉत्तलै ॥ 273 ॥

कं. आरामभूमुलंदु वि, -हारामल सौख्य लील नतिमोदमुतो
ना रामानुजुडुंडॅनु, ना रामामणियु दानु नभिराममुगन् ॥ 274 ॥

व. मट्रियु ननेकविध विचित्र मणिवितानाभिशोभित प्रासादोपरिभागंबुलनु लालित नीलकंठ कलकंठ कलविंक शुककलाप कलित तीरंबुलनु मकरंदपान मदवदिंदिदिर झंकार संकुल कमल कल्हार सुधासार नीहार पूरित कासारंबुलनु धातु निर्झर रंजित सानु देशगिरिकुंज पुंजंबुलनु गृतक शैलंबुलनु ग्रीडागृहंबुलनुं जॅलंगि नंदनंदनुंडु विदर्भराजनंदनं दगिलि कंदर्पकेळी लोलात्मुंडय्यॅ ।

अंबर (वस्त्र) [और] चारु (सुंदर) भूषण-प्रततियों से, माँगे हुए वरों को, उन्नत शुभ मूर्तिवाले, देवगणनंदित कीर्ति [युक्त, और] दयानुवर्ति होकर कृष्ण ने अतिमृदुवाणी, किसलयारुण पाणी [और] नीलवेणी को तुरंत दे दिया। २७१ [व.] इस प्रकार सम्मान करके कृष्ण, रुक्मिणी और वह स्वयं तदनंतर २७२ [चं.] संतोष के साथ [दोनों] मिलकर, वृक्षों की छायाओं में, मल्लिका-लतावलि में, करवीर जाति, विरव आदि की वीथियों में, सुगंधपूरित वायुओं से भरे हुए नवीन निवासस्थलों में, पुन्नागों की वेदिकाओं पर, तृण-भूमियों में, सरोवरों में [और] सब दिशाओं में नूतन इच्छाओं के होने पर २७३ [कं.] आराम (उपवन) भूमियों में विहारों की सौख्य लीलाओं से अति संतोष के साथ वह रामानुज (बलराम का अनुज) उस रामामणि के साथ और स्वयं अभिराम (सुख) से रहा। २७४ [व.] और अनेक विध विचित्र मणिवितानाभिशोभित प्रासादों के उपरि-भागों पर, लालित नीलकंठ-कलकंठ-कलविंक-शुक कलालाप-कलित तीरों पर, मकरंदपानमदवत्-इंदिदिर (भ्रमर) के झंकार-संकुल-कमल-कल्हार सुधासार-नीहार-पूरित कासारों में, धातु-निर्झर-रंजित-सानुदेश-गिरि-कुंज-पुंजों में, कृतक-शैलों पर [तथा] क्रीड़ागृहों में विहार करते हुए नंदनंदन विदर्भराजनंदना से लगकर कंदर्पकेली-लोलात्मा बन गया।

अध्यायमु—६१

व. अनंतरंब या सुंदरीललामंबुवलन व्रद्युम्नुंडु चारुधेष्णुंडु सुधेष्णुंडु सुचारुवु चारुदेहुंडु चारुगुप्तुंडु भद्रचारुयु चारुचंद्रुंडु विचारुवु चारुवु ननियॅडु पदुगुरु तनयुलं बडसॅ नट्लु सत्यभामा जांबवती नाग्नजिती कालिंदी माद्रि मित्रविंदा भद्रलकु वेरुवेरं पदुगुरेसि भद्रमूर्तुलैन कुमारुलुदयिंचि- रिव्विधंबुन मरियुनु ॥ 275 ॥

चं. अनघ! पदारुवेल सतुलंदु जनिंचिरि वेरुवेर नं-
दन दशकंबु तत्सुत वितानमु गांचिरनेक सूनुल-
ग्गॅनयग निट्लु पिल्लचॅरकीनिन कैवडि बुत्र पौत्र व-
र्धनमुन नॉप्पॆ गृष्णुंडु मुदंबुन दामर तंपरै भुविन् ॥ 276 ॥

ते. अट्लु यादव वृष्णि भोजांधकादि विविध
नामधेयांतरमुल नॅन्नंग नूट-
यॊक्कडै चाल वर्धिल्लु नक्कुलंबु
नृपकुमारुल जदिविंचु नेर्पु गलुगु ॥ 277 ॥

ते. गुरुजनंबुलु विनु मूडु कोट्ल मीद
नॅनुबदॆनिमिदि वेलपै नॅसग नूर्गु-
रन्न दद्बालकावलि नॆन्न दरमॆ
शूलिकैननु दामर चूलिकैन ॥ 278 ॥

अध्याय—६१

[व.] अनंतर उस सुंदरीललाम से प्रद्युम्न, चारुधेष्ण, सुधेष्ण, सुचारु, चारुदेह, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचंद्र, विचारु [और] चारु नामक दस तनयों (पुत्रों) को पाया। उसी प्रकार सत्यभामा, जांबवती, नाग्नजिता, कालिंदी, माद्री, मित्रविंदा [और] भद्रा में अलग-अलग दस-दस भद्रमूर्ति होनेवाले कुमारों का उदय हुआ। इस प्रकार फिर २७५ [चं.] [हे] अनघ ! सोलह हजार सतियों में पृथक्-पृथक् (एक-एक से) नंदन-दशक का जन्म हुआ। ईख के पौधों के ब्याये हुए के समान उस सुत-वितान (समूह) को अनेक सूनों (पुत्रों) को देखकर, पुत्र-पौत्रवर्द्धन से कृष्ण मोद से भुवि पर चार चाँद लगाकर प्रकाशमान हुआ। २७६ [ते.] उस प्रकार यादव, वृष्णि, भोज, अंधक आदि नामधेयांतरों से गिनने पर एक सौ एक होकर वह कुल बहुत बढ़ गया; नृप कुमारों को पढ़ने की कुशलता (शक्ति) आयी। २७७ [ते.] सुनो, गुरु जन (बड़े लोग) तीन करोड़ों पर अस्सी हज़ार से अधिक एक सौ होने पर उनकी

व. अंदु गोविंदनंदनुंडैन प्रद्युम्नुनकु रुक्मि कूतु वलन ननिरुद्धुंडु संभविंचॅ ननिन मुनिवरुनकु भूवरुंडिट्लनियॅ ॥ 279 ॥

अनिरुद्धुनि विवाहसमयमुन बलरामुंडु रुक्मि मोदलगुवारिनजंपुट

कं. ववरमुन गृष्णुचे मु-
न्नवमानमु नोंदि रुक्मि यच्युतु गॅलुवं
दिवुरुचु दन सुत नरिसं-
भवुनकु नॅट्लिच्चॅ नॅरुग बलुकु मुनींद्रा ! ॥ 280 ॥

सी. नावुडु शुकयोगि नरनायकोत्तम ! नीवु चॅप्पिन यट्ल नॅम्मनमुन
बद्मायताक्षुचे बडिन बन्नमुनकु गनलुचु नुंडियु ननुजतोडि
नॅय्यंबुनन भागिनेयुन किच्चॅनु गूतु नंचित पुष्प कोमलांगि
दन पून्कि दप्पिन दग विदर्भेशुंडु विनु मॅरिंगितु. दद्विधमु दॅलिय

ते. वरग रुक्मवती स्वयंवरमुकॅलमिकोंगि
नरुगुदॅंडनि भीष्म-भूवर-सुतुंडु
वरुस रप्पिचॅ राजन्यवर-कुमार-
वरुल ननु वार्त कलरि या हरिसुतुंडु ॥ 281 ॥

बालकावली की गिनती शूली (शिव) या ब्रह्मा से भी हो सकती है ? २७८ [व.] उनमें गोविंद-नंदन होनेवाले प्रद्युम्न के रुक्मि की बेटी से अनिरुद्ध का जन्म हुआ। ऐसा कहने पर मुनिवर से भूवर ने इस प्रकार कहा। २७९

अनिरुद्ध के विवाह के समय बलराम का रुक्मि आदि का संहार करना

[कं.] "हे मुनीद्र, (मुनिश्रेठ) युद्ध में कृष्ण से पहले (इतःपूर्व) अवमानित होकर रुक्मि ने अच्युत (कृष्ण) को जीतना चाहते हुए अपनी सुता को अरिसंभव को (शत्रु के पुत्र को) कैसे दिया ? समझाओ।" २०८ [सी.] ऐसे पूछने पर शुकयोगी बोला— हे नरनायकोत्तम ! सुनो, वह विध (बात) समझा दूंगा। जैसे तुम कह रहे हो, अपने मन में पद्मायताक्ष (कृष्ण) से पाये हुए अवमान के लिए क्रोधित होते हुए भी, अनुजा पर होनेवाले स्नेह से अपनी बेटी को, अंचित-पुष्प-कोमलांगी को अपने उद्यम के भग्न होने पर विदर्भेश ने भागिनेय (भाञ्जे) को दिया। [ते.] भीष्म भूवर-सुत (रुक्मि) ने रुक्मवती के स्वयंवर के लिए समस्त राजन्य-वर कुमारवरों को बुलवाया। इस वार्ता (समाचार) के लिए हरिसुत (प्रद्युम्न) संतुष्ट होकर, २८१ [चं.] वरमणि भूषण-प्रभाओं के वर्गो के अनर्गल

चं. वरमणि भूषण प्रभल वर्ग मनर्गळ भंगि बर्व ब्र-
स्फुरित रथाधिरोहण विभूति दलिर्प मनोहरंक सु-
स्थिर शुभलील नेगॅ यदुसिंह-किशोरमु राजकन्यका-
परिणय वैभवागत नृपालक कोटिकि रुक्मि वीटिकिन् ॥ 282 ॥

चं. चनि पुरि जॊच्चि वृष्णिकुल सत्तमुडच्चट मूगि युन्न य-
म्मनुज वरेण्य नंदनुलु मानमु दूलि भयाकुलात्मुलै
चनग ननेक चंडतर सायक संपद जूपि रुक्मिनं-
दन गॊनि वच्चि वेड्क निजधाममु सॊच्चॅ नवार्य शौर्युडै ॥ 283 ॥

व. इट्लु तॆच्चि प्रद्युम्नुंडु हरिणनयनं बरिणयंबयिन निखिलसुखंबुलनु-
भविपुचुंडॅ यनंतरंब ॥ 284 ॥

कं. धीरुडु कृतवर्मुनि सुकु-
मारुडु वरियिंचॅ रुचिर मंडनयुत नं-
भोरुहमुखि रुक्मि सुतं
जारुमती कन्य प्रकट सज्जनमान्यन् ॥ 285 ॥

ते. प्रकट चरितुंडु भीष्म भूपाल सुतुडु
मनमु मोदिप दनकूर्मि मनुमरालि
रुक्म-लोचन नसमान रुक्म कांति
जॆलिमि ननिरुद्धुनकु बॆंड्लि सेयुनपुडु ॥ 286 ॥

(बिना किसी अवरोध के) रूप में फैल जाने पर प्रस्फुरित रथाधिरोहण-विभूति के अतिशय होने पर मनोहर तथा सुस्थिर शुभ लीला से राज-कन्यका परिणय वैभव के लिए आगत नृपालक-कोटि (-समूह) के लिए [होनेवाला] यदुसिंहकिशोर (प्रद्युम्न) रुक्मि के घर गया। २८२ [चं.] जाकर और पुर में प्रवेश करके [उस] वृष्णि-कुल-सत्तम ने, अवार्य शौर्य से वहाँ जमा हुए उन मनुजवरेण्य नंदनों का अवमान करके [अपनी] अनेक चंडतर सायक-संपदा को दिखाकर ताकि [वे राजा लोग] भयाकुलात्मा बनकर भाग जायँ, रुक्मि-नंदना को लाकर संतोष के साथ अपने धाम में प्रवेश किया। २८३ [व.] इस प्रकार लाकर प्रद्युम्न के हरिणनयना (रुक्मवती) से परिणय करने के बाद, २८४ [कं.] रुचिर मंडनयुता, अंभोरुहमुखी, चारुमती, कन्या, प्रकट (प्रसिद्ध) [और] सज्जनमान्या होनेवाली रुक्मिसुता का धीर [और] कृतवर्मा के सुकुमार (सुपुत्र) ने वरण किया। २८५ [ते.] प्रसिद्ध चरित्र वाला भीष्म भूपाल-सुत के [अपने] मन के संतुष्ट होने पर अपनी प्रिय पौत्री असमान रुक्म (सुवर्ण) कांतिवाली, रुक्मलोचना को अनिरुद्ध को सस्नेह देकर विवाह करते समय, २८६ [कं.] अच्छी तरह रत्न-विभूषणोज्ज्वल बनकर शुभ

कं. पॊलुपुग रत्नविभूषो,-ज्ज्वलुलै शुभवेळ नव्विवाहार्थमु नि-
र्मल बहु वैभव शोभन, कलित विदर्भावनीश कटकंबुनकुन् ॥ 287 ॥

चं. हरियुनु रुक्मिणीसतियु ना बलभद्रुडु शंबरारियु
न्नरिमदभेदि सांबुडुनु नादिग राजकुमार कोटि सिं-
धुर रथवाजि सद्भटुल तो जनि यंदु समग्र वैभवा-
चरित विवाहयुक्त दिवसंबुलु वेडुक बुच्चि यंतटन् ॥ 288 ॥

कं. ऒकनाडु यदुकुमारकु,-लकलंक समग्र वैभवाटोपमहो-
त्सुकुलै युंडग जूपो,-पक यॆकसक्कॆमुन नवनि पालुरु वरुसन् ॥ 289 ॥

उ. ऎच्चरिकं गळिगधरणीशुडु रुक्मि मॊगंबु चूचि नी
यॊच्चॆमु दीर्चुको निदिय यॊप्पगुवेळ बलुंडु जूदमं-
दिच्चगलंडु गानि पॊलुपॆरिकन नेर्परिगाडु गान नी
किच्चु नवश्यमुन् जयमु नीगुमु तॊल्लिट वडुड वन्नमुन् ॥ 290 ॥

कं. अनि पुरिकॊल्पिन रुक्मियु
दन चेट्टु तलंपलेक तालांकुनितो-
डनु जूदमाड विविरॆनु
वनजासनु कृतमु गडचु वारॆव्वरिलन् ॥ 291 ॥

व. अंत ॥ 292 ॥

वेला में उस विवाहार्थ (विवाह के लिए) निर्मल वहु-वैभव-शोभन-कलित विदर्भावनीश की राजधानी को २८७ [चं.] हरि (कृष्ण), सती रुक्मिणी, शंवारि वलभद्र [और] अरि (शत्रु)-मद-भेदी सांव आदि राजकुमार-कोटि (-समूह), सिंधुर-रथ-वाजि-सद्भटों के साथ जाकर उसमें (उस राजधानी नगर मे) समग्र वैभवाचरित विवाहयुक्त दिवसों को मनोरंजन के साथ व्यतीत करने के वाद, २८८ [कं.] एक दिन यदु-कुमार जव अकलंक समग्र वैभवाटोप महोत्सुक बनकर रहे तो [उनको] देखकर न सह सककर हँसी-मजाक़ में अवनि-पालकों ने एक-एक करके, २८९ [उ.] सूचना [प्राय] के रूप में कलिंग-धरणीश ने रुक्मि का मुख देखकर, "तुम अपने अपमान का बदला ले लो; यही युक्त समय है; वलराम जुआ का इच्छुक है, लेकिन उसका विधान नहीं जानता। इसलिए अवश्य तुम्हारी जीत होगी। पहले जो अवमान हुआ, उसको गँवा दो।" २९० [कं.] ऐसे उकसाये जाने पर रुक्मि भी अपना अनिष्ट न समझ सक कर, तालांक (बलराम) के साथ जुआ खेलने की इच्छा प्रकट की। वनजासन (ब्रह्मा) के कृत (विधि) को इस भूमि पर कौन टाल सकता है? २९१ [व.] तब २९२ [कं.] इच्छा करके विदर्भ (राजा)

कं. कोरि विदर्भुडु कुटिल वि, -हारुंडै पिलिचॆ जूदमाड जितारिन्
हारिन् सन्नुत सूरिन्, सीरिन् रैवत सुतार्द्र-चित्त विहारिन् ॥ 293 ॥

आ. पूनि मनमु गॊंत प्रॊद्दुवोककु राम !
नॆत्तमाड नीवु नेर्तुवनग
विंदु मिपुडु कॊंत वॊल यॊड्डि याड्डद-
मनिन वलुडु लॆस्स यनि चॆलंगि ॥ 294 ॥

कं. मदिलोनि चलमु डिपक
पदि यिरुवदि नूरु वेयि पदिवेलिदॆ प-
न्निदमनि यॊड्डुचु नाडिरि
मदमुन निव्वरुनु दुरभिमानमु पेर्मिन् ॥ 295 ॥

उ. आडिन याटलॆल्लनु हलायुधुडोड्डगु रुक्मि गॆल्चुडुन्
दोडि नृपालकोटि परितोषमु जॆंद गळिंग भू विभुं-
डोडॆ बलुंडटंचु ब्रहसोक्तुल नॆंतयु रामु जुल्कगा
नाडॆनु दंतपंक्ति वॆलियै कनुपट्टग जाल नव्वुचुन् ॥ 296 ॥

ते. बलुडु गोपिंचि यॊक लक्षपणमु सेसि
याडि प्रकटंबुगा जूदमपुडु गॆल्चॆ

ने कुटिल विहारी बनकर जुआ खेलने के लिए जितारि (शत्रु को जीतने वाले), हारी (मालाधारी), सन्नुत प्रशंसित वीर और रैवत-सुतार्द्र-चित्त-विहारी, सीरी (बलराम) को बुलाया। २९३ [आ.] "[हे बल] राम, हम सुनते हैं कि प्रयत्न करके मन बहलाने के लिए तुम जुआ खेलना जानते हो। अब कुछ पण लगाकर खेलेंगे।" ऐसा कहने पर बलराम "ठीक है" कहकर, उत्साहित होकर, २९४ [कं.] मन के मात्सर्य को कम न करके, दस, बीस, सौ, हज़ार, दस हज़ार, "यही बाज़ी [है]" कहकर हारते हुए, मस्ती के साथ [और] बड़े दुरभिमान से दोनों ने खेला। २९५ [उ.] जितने खेल खेले उन सबको हलायुध (बलराम) हार जाता था और रुक्मि जीत लेता था; इसलिए साथ की सारी नृपाल-कोटि (-समूह) के परितुष्ट होने पर कलिंग-भू-विभु ने 'बलराम हार गया' यों कहते हुए हँसी-मज़ाक़ उड़ाते हुए राम (बलराम) पर ऐसे व्यंग्य कसे और हँसा कि उनकी दाँतों की पंक्ति बाहर निकलकर दिखाई पड़ी। २९६ [ते.] तब बल (राम) ने क्रोधित होकर एक लाख (सिक्कों) का पण लगाकर [और] खेलकर प्रकट रूप से जुए को जीता। [उसके] जीतने पर भी रुक्मि [बोला] कि जब मैंने इसे जीता, तब जीत अपनी कहकर क्या धोखा दे

गॅल्चिननु रुक्मि यिदि येनु गॅल्चि युंड
गॅलुपु नीदनि किकुरिप नलवि यगुने ? ॥ 297 ॥

कं. अनवुड हलधरु डच्चटि
जनपालक सुतुल जूचि सत्यमु पलुकुं-
डनि यडिगिन वारलु रु-
क्मुनि हितुलै पलुकरैरि मोगमोटमुनन् ॥ 298 ॥

उ. अप्पटि यट्ल योडि्ड मुसलायुधुडेपुन नाडि जूदमुं-
जोप्पड गॅल्चि यी गॅलुपु चूडग नादियो वानिदो जनुल्
तप्पक चॅप्पुडन्न विदित ध्वनितो नशरीरवाणि दा
निप्पटि याट रामुडे जयिंचें विदर्भुडे योडें नावुडुन् ॥ 299 ॥

व. अनिन विनि, सकलजनंबुलु नद्भुतानंद निमग्न मानसुलैरि। कुटिल स्वभावुलयिन भूवरुलु रुक्मि गैकोल्पिन नतंडु तन तोल्लिटि पराभवंबु दलंचि येंदिरि दन्नु नेरुंगक बलाबल विवेकंबु सेयनेरक विधिवशानुगतुंडै चलंबुन बलुनि गनि यिप्पटि याटयु नेने गॅल्चि युंड वृथाजल्प कल्पनुंडवयि नीवु गॅल्चिति ननि पलिकॅद वक्ष विद्या नैपुणि गल भूप कुमारुलतो बसुल कापरुलॅत्तु वत्तुरे यनि क्रोव्वुन नव्वुचुं बलिकिन नप्पलुकुलु चॅवुलकु मुलुकुल क्रियं दाकिन गोपोद्दीपित मानसुंडै पॅट पॅटं बंड्लु गोरुकुचुं गन्नुल

सकते हो ? २९७ [कं.] [उसके] ऐसा बोलने पर हलधर ने वहाँ के जनपालक-सुतों (राजकुमारों) को देखकर पूछा कि सच बोलो, तो वे रुक्मि के हितैषी बनकर मुख-प्रीति के कारण कुछ न बोले। २९८ [उ.] तब तो इस प्रकार हारकर मुसलायुध (बलराम) ने लगन के साथ जुआ खेलकर [और] अच्छी तरह जीतकर कहा कि लोग अवश्य कहें कि यह जीत मेरी है या उसकी है। ऐसा कहने पर विदित ध्वनि से अशरीर-वाणी तब यों बोली, "अब के खेल को राम ने ही जीता है, विदर्भ हार गया।" २९९ [व.] [ऐसे कहने पर] सुनकर सकलजनअद्भुतानंद निमग्नमानस बन गये। कुटिल स्वभाव वाले भूवरों के रुक्मि को उकसाने पर उसने अपने पूर्व अपमान को स्मरण करके शत्रु को और अपने को न समझकर, बलाबल का विवेक न कर सककर, विधिवशानुगत होकर, मात्सर्य से बल [राम] को देखकर कहा, "जब अब के खेल को भी मैंने जीता है, वृथा जल्प-कल्पन (अयुक्त वचन कहनेवाला) तुम कह रहे हो कि मैं (बलराम) जीत गया। क्या अक्षविद्यानिपुण होनेवाले भूपकुमारों की बराबरी पशुओं को चरानेवाले कर सकते हैं ?" इस प्रकार गर्व से हँसते हुए बोला तो उन बातों के कर्णों को तीरों के समान लग जाने पर कोपोद्दीपित-मानस वाला होकर, दाँतों को कटकटाते हुए, आँखों से आग बरसने

निप्पुलुप्पतिल्ल गिनुकं दोक द्रोविकन महोरगंबु नोजन् रोजुचु दंड ताडितं-
बयिन पुंडरीकंबु लील हुम्मनि म्रोयुचु ब्रचंड वाहुदंडंबु साचि परिघं
नंदुकोनि परिपंथियैन रुक्मिनि नतनि कनुकूलंबयिन राजलोकंबुनं बडलु
पड नडिचे नय्यवसरंबुन ॥ 300 ॥

कं. मुनु दंत पंक्ति वैलिगा
दनु नव्विन यवकळिंगु दलवट्टि रयं-
बुन बड दिगिचि वदन मे-
पुन वैडचे व्रेसि दंतमुलु वेस डुलिचेन् ॥ 301 ॥

कं. अंतं बोवक रुक्मिनि, दंतंबुलु मुन्नु डुलिचि तनुवगलिप-
न्नंतकु पुरिकेगेनु वा, -डेंतयु भयमंदि राजुलेल्लं गलगन् ॥ 302 ॥

व. अट्लु सेसि यय्यादव सिंहंबसह्य विक्रमंबुनं जेलंगेनंत ॥ 303 ॥

कं. भूवर ! पद्माक्षुडु दन, बाव हतुंडगुट गनियु बलुकक युंडेन्
भावमुन रुक्मिणी बल, देवुल केमनग नेग्गु देरुनो यनुचुन् ॥ 304 ॥

व. अंत ना विदर्भनगरंबु निर्गमिंचि ॥ 305 ॥

कं. परमानुरागरस सं-
भरितांत करणलगुचु वार्टिचि वधू-

पर, क्रोध से कुचले हुए पूँछवाले महोरग की तरह फुफकारते हुए, दंड-ताडित पुंडरीक (बाघ) की तरह हुंकार करते हुए, प्रचंड बाहुदंड को बढ़ाकर [और] परिघा को लेकर परिपंथी रुक्मि को तथा उसके अनुकूल राजलोक को ऐसे दबा दिया कि [वे सब] राशियों में गिर पड़ें। उस समय पर, ३०० [कं.] जो कलिंग इत:पूर्व दाँतों की पंक्ति को बाहर निकालकर हँस पड़ा, उसके सिर को पकड़कर [और] वेग से झुकाकर उसके मुख पर बायें हाथ से जोर से मारा और दाँतों को शीघ्र ही तोड़ डाला। ३०१ [कं.] उससे तृप्त न होकर पहले रुक्मि के दाँतों को तोड़ डालकर, शरीर को चीर डाला तो वह अंतकपुरी (यमलोक) को गया जिससे सब राजा लोग भयभीत होकर व्याकुल बन जायँ। ३०२ [व.] वैसा करके वह यादवसिंह असह्य विक्रम से प्रकाशमान हुआ। तब ३०३ [कं.] हे भूवर ! अपने स्यालक का हत होना देखकर भी ऐसा सोचकर कि क्या कहने से रुक्मिणी और बलदेव के भावों में क्या बुरा लगेगा, पद्माक्ष (कृष्ण) मौन रहा। ३०४ [व.] तब उस विदर्भ नगर से निर्गमन करके ३०५ [कं.] परम अनुराग-रस-संभरित अंत:करणों से सम्मान करके वधू तथा वर को रथ में बिठाकर हलधर, हरि और रुक्मिणी की यदुवीरों ने सेवा की। ३०६ [उ.] जब मंगल-तूर्य-घोप-अमंद गति से

वरुलनु रथमंबिडि हल-
धर हरि रुक्मिणुल गॊल्चि तग यदुवीरुल् ॥ 306 ॥

उ. मंगळ तूर्य घोषमुलमंदगति जॆलगंग मत्त मा-
तंग तुरंग सद्भट कदंबमुतो जनि कांचिरंत ना-
रंगलवंग लुंग विचरन्मद भृंग सुरंगनाद सं-
संगतरंगिणी कलित संतत निर्मल ना कुशस्थलिन् ॥ 307 ॥

व. इट्लु पुरोपवनोपकंठंबुनकुं जनि ॥ 308 ॥

कं. अंदु वसिचिरि नंदित, चंदन मंदार कुंद चंद्रलसन्मा
कंदमुल नीड हृदया, -नंदमु संधिप नंदनंदन मुख्युल् ॥ 309 ॥

व. तदनंतरंब पुरप्रवेशंबु सेसिरनि चॆप्पि शुकयोगींद्रुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुन किट्लनियॆ ॥ 310 ॥

अध्यायमु—६२

उषापरिणय-कथ

बाणासुरुंडीश्वरप्रसादंबुनॊंदुट

ते. अनघ ! बलिनंदनुलु नूर्वुरंदुलोन
नग्रजातुंडु बाणुडत्युग्र मूर्ति

प्रवर्धमान हुए, तब उन्होंने मत्त मातंग-तुरंग-सद्भट-कदंब (-समूह) के साथ जाकर उस रंग-लवंग-लुंगयुक्त विचरनेवाले मस्त भृंग-सुरंग-नाद से संसंग तरंगिणी-कलित संतत निर्मल कुशस्थली को देखा। ३०७ [व.] इस प्रकार पुरोपवनोपकंठ को जाकर, ३०८ [कं.] नंदनंदन-मुख्य (आदि) नंदित चंदन, मंदार, कुंद और चंद्र से प्रकाशित आम्र वृक्षों की छाया में हृदयानंद होने पर वहाँ ठहर गये। ३०९ [व.] इसके बाद पुर-प्रवेश किया —इस प्रकार कहकर शुकयोगींद्र ने परीक्षिन्नरेंद्र से इस प्रकार कहा। ३१०

अध्याय—६२

उषा-परिणय-कथन

बाणासुर का ईश्वर-प्रसाद को प्राप्त करना

[ते.] हे अनघ ! बलि के नंदन एक सौ थे; उनमें से अग्रजात (ज्येष्ठ) बाण था; [वह] अति उग्रमूर्ति, चिर यशोहारी, विहित-पूजित-

चिर यशोहारि विहित पूजित पुरारि
यहित तिमिरोष्णकरुडु सहस्रकरुडु ॥ 311 ॥

कं. वाणुडु विक्रमजित गी-
र्वाणुडु सनि काँचॆ भक्तिवशुडै सगण
स्थाणुन् निर्दळितासम-
बाणुन् दांडव-धुरीणु भक्तत्राणुन् ॥ 312 ॥

कं. कनि यनुराग विकासमु
दन मनमुन गडलुकॊनग धर जागिलि वं-
दन माचरिंचि मोदमु
दनरग दांडवमु सलुपु तरि नभवुन् ॥ 313 ॥

उ. संचित भूरि बाहुबल संपद पॆंपुन नारजंबु वा-
यिंचि यनेक भंगुल नुमेशु द्रिलोक शरण्यु नात्म मॆं-
च्चिंचि प्रमोदियै निजवशीकृत निश्चलितांतरंगु गा-
विंचि तदाननांबुरुह - वीक्षणुडै तग म्रॊक्कि यिट्लनुन् ॥ 314 ॥

उ. शंकर ! भक्तमानस वशंकर ! दुष्टमदासुरेंद्र ना-
शंकर ! पांडु नील रुचि संकर वर्ण निजांग भोगिरा-
ट्कंकण ! पार्वतीहृदय कैरव कैरवमित्र ! योगि हृ-
त्पंकज पंकजाप्त ! जयतांडव-खेलन ! भक्तपालना ! ॥ 315 ॥

व. अनि विनुतिंचि ॥ 316 ॥

पुरारी, अहित तिमिर [तथा] उष्णकर और सहस्रकर (सूर्य-सम) था। ३११ [कं.] विक्रमजित गीर्वाण वाण ने भक्तिवश होकर और जाकर सगण, निर्दलित असमवाण (मन्मथ), तांडव-धुरीण और भक्तत्राण [होनेवाले] स्थाणू (शिव) को देखा। ३१२ [कं.] देखकर अपने मन में अनुराग के विकसित होने पर धरा पर साष्टांग दंड प्रणाम करके, मोद के साथ, उस अभव (शिव) के तांडव (नृत्य) करते समय, उस शिव को ३१३ [उ.] संचित भूरिबाहुबलसंपदा के आधिक्य से आरज (एक वाद्य-विशेष) को बजाकर अनेक प्रकार त्रिलोक-शरण्य [होनेवाले] उमेश (शिव) की आत्मा को संतुष्ट करके प्रमोद से निजवशीकृत, निश्चलित अंतरंग बनाकर तदानन-अंबुरुह वीक्षण करके [और] बहुत प्रार्थना करके इस प्रकार कहा; ३१४ [उ.] "[हे] शंकर, भक्तमानस-वशंकर, दुष्टमद-असुरेंद्रनाशंकर, पांडु-नील-रुचि-संकर-वर्ण-निजांग-भोगिराट्-कंकण, पार्वती-हृदय-कैरव [के लिए] कैरव-मित्र, योगिहृत्पंकज, पंकजाप्त जय तांडव खेलन [और] भक्तपालक !" ३१५ [व.] इस प्रकार विनति करके ३१६ [उ.] "[हे] देव, इस प्रकार विनती करूँ

उ. देव ! मदीय वांछितमु तेट पडग्निट्टु विन्नविंचेदन्
नीवुनु नद्रिनंदनयु नॆम्मनि ना पुरिकोट वाकिटन्
गावलि युंडि नन्नुगृप गावुमु भक्त फल प्रदात ! यो
भावभवारि ! नीचरण पद्ममुलॆप्पुडु नाश्रयिंचेदन् ॥ 317 ॥

व. अनि यभ्यर्थिचिनं प्रसन्नुडयि भक्तवत्सलुंडगु पुरांतकुंडु गौरीसमेतुंडयि तारकांतकादि भूतगणंबुल तोड वाण निवासंबगु शोणपुरंबु वाकिटं गापुंडॆ वदंपडि यॊक्क नाडव्वलि-नंदनुंडु ॥ 318 ॥

ते. दर्पमुन बॊगि रुचिर मार्तांड दीप्त
मंडलमु तोड मार्पडु महित शोण-
मणि किरीटमु त्रिपुरसंहरुनि पाद-
वनजमुलु सोक म्रॊक्कि यिट्लनि नुतिंचॆ ॥ 319 ॥

सी. देव ! जगन्नाथ ! देवेंद्रवंदित ! विततचारित्र ! संततपवित्र !
हालाहलाहार ! यहिराज केयूर ! वालेंदुभूष ! सद्भक्तपोष !
सर्वलोकातीत ! सद्गुणसंघात ! पार्वतीहृदयेश ! भवविनाश
रजताचलस्थान ! गजचर्म परिधान ! सुरवैरि विध्वस्त ! शूलहस्त !

ते. लोकनायक ! सद्भक्तलोक वरद !
सुरुचिराकार ! मुनिजनस्तुत विहार !

ताकि मदीय वांछा [तुम्हें] विदित हो जाय; तुम और अद्रिनंदना (पार्वती) संतोष के साथ मेरी पुरी के क़िले के मुखद्वार पर रखवाली करते हुए रहें [और] कृपा करके मेरी रक्षा करें। [हे] भक्तफलप्रदाता, हे भावभव (मदन) के अरि (शत्रु), मैं सदा तुम्हारे चरण-पद्मों के आश्रय में रहूँगा।" ३१७ [व.] इस प्रकार अभ्यर्थना करने पर प्रसन्न होकर भक्तवत्सल होनेवाले पुरांतक (ईश्वर) गौरी-सहित [और] तारकांतक आदि भूतगणों के साथ बाणासुर के निवासस्थान शोणपुर के द्वार पर रहने लगा; इसके बाद एक दिन उस बलिनंदन ने ३१८ [ते.] दर्प से बढ़कर रुचिर मार्तांड दीप्त मंडल के साथ अन्य रूप लेनेवाले महित शोणमणि किरीट को त्रिपुर-संहर के पाद-पद्मों का स्पर्श करे, ऐसे प्रार्थना करके इस प्रकार विनती की। ३१९ [सी.] "देव, जगन्नाथ, देवेंद्रवंदित, वितत-चारित्र, संतत पवित्र, हालाहलाहार, अहिराजकेयूर, बालेंदुभूष, सद्भक्तपोष, सर्वलोकातीत, सद्गुणसंघात, पार्वतीहृदयेश, भव-विनाश, रजताचल-स्थान [रहनेवाला], गजचर्म-परिधान (वस्त्र), सुरवैरि-विध्वस्त, शूल-हस्त, [ते.] लोकनायक, सद्भक्तलोकवरद, सुरुचिराकार, मुनि-जनस्तुत-विहार, भक्तजनमंदिरांगण-पारिजात, अभव, तुम्हरी नुति

भक्तजन मंदिरांगण पारिजात !
निन्नु नॅव्वडु नुतिसेय नेर्चुनभव ! ॥ 320 ॥

व. अनिस्तुतिर्यिचि ॥ 321 ॥

म. अनिलो नन्नु नॅदिर्चि वाहुवल शौर्यस्फूर्ति बोराड जा-
लिन वीरुं डॉकडेन बंदॆमुनकुन् लेडय्यॆ भूमंडलि-
न्ननयंबु भवदीयदत्त कर साहस्रंबु कंडूति वा-
युनुपायंबुनु लेदॆ यीभरमु नॆट्लोर्तुन्नुमा-नायका ! ॥ 322 ॥

सी. हुंकार कंकण ऋंकार शिंजिनी टंकार निर्घोष संकुलंबु
चंड दोर्दंड भास्वन्मंडलाग्र प्रकांड खंडित राजमंडलंबु
शूलाहतक्षतोद्वेल कीलाल कल्लोल केळी समालोकनंबु
शुंभ दुन्मद कुंभि कुंभस्थल ध्वंस संभूत शौर्य विजृंभणंबु

ते. गलुगु नुद्दाम भीम संग्राम केळि
घन पराक्रम विक्रम क्रममु गाग
जरपलेनट्टि करमुलु गरमु दुःख-
करमुलगु गाक संतोषकरमुलगुनॆ ? ॥ 323 ॥

उ. कान मदीय चंड भुजगर्व पराक्रम केळिकिन् समुं-
डी निखिलावनिं गलडॆ यिदु-कळाधर ! नीवु दक्कगा

(स्तुति) करने योग्य कौन है ?" ३२० [व.] इस प्रकार स्तुति करके ३२१ [म.] "[हे] उमानायक ! इस भूमंडली में ऐसा एक भी वीर नहीं है जो बाज़ी लगाकर युद्ध में बाहुवल, शौर्य की स्फूर्ति से मेरा सामना करके मेरे साथ लड़ सकता है। क्या भवदीय दत्त [इस] कर-सहस्र की कंडूति (खुजलाहट) को दूर करने का उपाय नहीं है ? इस भार को मैं कैसे सह सकता हूँ ? ३२२ [सी.] हुंकार-कंकण-कंकार-शिंजिनी-टंकार के निर्घोष से संकुल, चंड-दोर्दंड भास्वन्मंडलाग्र प्रकांड-खंडित राजमंडल, शूलाहत, क्षतोद्वेल कीलाओं से कल्लोलित केली-समालोकन, [और] शुंभदुन्मदकुंभि-कुंभस्थल-ध्वंस-संभूत-शौर्य-विजृंभण होनेवाले [ते.] उद्दाम भीम संग्राम केलि से घन-पराक्रम-विक्रम-क्रम हो जाय, ऐसा [युद्ध] न कर सकनेवाले कर (हस्त) अधिक दुःखकर ही होते हैं, [क्या वे] संतोषकर होते हैं ? ३२३ [उ.] इसलिए मदीय चंडभुजगर्व-पराक्रम-केलि के लिए समान होनेवाला, हे इंदुकलाधर, तुम्हारे अतिरिक्त, क्या इस निखिल अवनि (भूमि) पर [कहीं, कोई] है ?" इस प्रकार कहने पर, हे भूवर ! उस दनुजाधिप की बातों को [सुनकर] वहुत क्रुद्ध होकर

ना निटलांबकुंडु दनुजाधिपु माटकु जाल रोसि लो-
नूनिन रोष वार्धि गड्डलोत्तग निट्लनि पल्कॆ भुवरा ! ॥ 324 ॥

कं. विनु मूढहृदय ! नी के, -तनमॆप्पुडकारणंब धारुणिपै गू-
लुनु नपुड नी भुजावलि, तुनियग नायंत वानितो ननि गल्गुन् ॥ 325 ॥

व. अनि पलिकिन नट्लु संप्राप्त मनोरथुंडयि निज-भुज-विनाशकार्य धुरीणुंडगु बाणुंडु संतुष्टांतरंगुंडगुचु निज निवासंबुनकुं जनि तन प्राण वल्लभल युल्लंबुलु पल्लविप जेयुचु निजध्वज निपातंबु निरीक्षिचुचुंडॆ ददनंतरंब ॥ 326 ॥

सी. आ दानवेश्वरु ननुगु गूतुरु नुषा कन्य सच्चरित सौजन्य धन्य
रूप विभ्रम कळा रुचिर कोमल देह यतनु नारव बाणमनग बरगु
सुंदरीरत्नंबु निंदु-निभानन यलि-नीलवेणि पद्मायताक्षि
यॊकनाडु रुचिर सौधोपरि-वेदिका-स्थलमुन मृदुशय्य नॆलमि गूर्कि

ते. मुन्नु दन चॆवुल नॆन्नडु विन्नयतडु
गन्नुलारंग दाबॊडगन्न यतडु
गानि यसमान रूपरेखा विलास
कलितु ननिरुद्धु नॆमिलि गवसि नट्लु ॥ 327 ॥

अंतर्निहित रोष-वारिधि से वह निटलांबक (शंकर) इस प्रकार बोला ताकि उसका मुँह बंद हो जाय। ३२४ [कं.] "[हे] मूढ़ हृदयवाले, सुनो, तुम्हारा केतन (झंडा) अकारण ही धारुणि पर गिर जायगा; तब मेरे बराबर वाले के साथ युद्ध ऐसा होगा कि तुम्हारी भुजावलि कट जायगी। ३२५ [व.] ऐसा बोलने पर, उस प्रकार संप्राप्त मनोरथ वाला बनकर निजभुज-विनाश-कार्य-धुरीण वाण संतुष्टांतरंग बनते हुए निजवास (घर) जाकर, अपनी प्राणवल्लभाओं के मनों को पल्लवित करते हुए निजध्वजनिपात की प्रतीक्षा कर रहा था। इसके बाद ३२६ [सी.] उस दानवेश्वर की प्रिय पुत्री उषा कन्या जो सच्चरिता-सौजन्या, धन्या [तथा] रूप-विभ्रम-कला-रुचिर-कोमल-देहा, अतनु (मन्मथ) का छठा बाण कहलाने युक्त सुंदरी-रत्न, इंदुनिभानना, अलिनीलवेणी और पद्मायताक्षी थी, एक दिन रुचिर सौधोपरि वेदिकास्थल में मृदु शय्या पर प्रशांत हो सो रही थी; [ते.] उसने ऐसा सपना देखा कि मानो वह उस असमान रूप-रेखा-विलास कलित अनिरुद्ध से मिली हो जिसके बारे में उसने कभी अपने कानों से न सुना, जिसे उसने कभी अपनी आँखों से न देखा। ३२७ [चं.] सपना देखकर, त्वरित गति से जागकर, आँखों से बाष्प-कणों के बह जाने से

च. कलगनि यंत मेलुकनि कन्नुल बाष्पकणंबु लोल्कगा
गल वलें गाक निश्चयमुगा गमनीयविलास विभ्रमा-
कलित तदीय रूपमु मुखंबुन व्रेलिन यट्लु दोचिनन्
गळबळमंदुचुन् बिगिय गौगिटिचे बयलप्पळिचुचुन् ॥ 328 ॥

व. मरियुनु ॥ 329 ॥

च. सरसमृदूक्तुलं गुसुमसायक केळियु शाटिका कचा-
करषणमुल् नख क्रियलु गम्र कपोलललाट मेखला
कर कुच बाहु मूलमुलु गेकोनियुंडुटलादिगा दलो-
दरि मदि गाढमै तगिलें दर्पकुडच्चुन नोत्तिनट्लयै ॥ 330 ॥

सी. कलिकि चेष्टलु भाव गर्भंबुलैननु ब्रियु मीदि कूरिमि बयलु पडप
बिदपिदनै लज्ज मदि बदनिच्चिन जॅलि मेन बुलकलु चॅवकुलोत्त
मदनाग्नि संतप्त मानस यगुटकु गुरुकुचहार वल्लरुलु गंद
जित्तंबु नायकायत्तमै युंटकु मरुमाट लाडंग मरपु गदुर

ते. नतिव मनमुन सिग्गु मोहंबु भयमु
बॉडम नुनुमंचु नॅत्तम्मि बॉदुवु माड्कि
ब्रथम चिंता भरंबुन बद्मनयन
कोरि तलचोर वाटिप नेरदय्यॅ ॥ 331 ॥

उसे सपना न मानकर निश्चय ही कमनीय विलास-बिभ्रमाकलित तदीय रूप के अपने मुख पर लटक रहा हो, ऐसा लगने पर, घबड़ाते हुए गाढ़ आलिंगन से अपने स्तनों को स्पर्श करते हुए; ३२८ [व.] और ३२९ [चं.] सरस मृदु उक्तियों से, कुसुम-सायक-केलि से, शाटिका कचाकर्षणों से, नखक्षतों से, कमनीय कपोल, ललाट, मेखला, कर (हस्त), कुच, बाहु-मूलों का स्पर्श करते हुए वह तलोदरी (उषा) अपने मन में तीव्र अनुभव करने लगी मानो ठीक दर्पक (मदन) की ही तरह उससे मिली हो। ३३० [सी.] उस कलिकि (सुंदरी) की चेष्टाएँ भाव-गर्भित होकर उसके प्रियतम पर होनेवाले प्रेम का प्रदर्शन कराने पर, उसके मन में कोमल लज्जा के अंकुरित होने पर उस कन्या के शरीर के पुलकांकित होने पर, मदनाग्नि से संतप्त मानसा होने के कारण गुरु (बड़े) कुचों [पर लगे हुए] हारों की वल्लरियों के झुलस जाने पर, उसने चित्त के नायकायत्त होकर रहने से, बातें बोलने में संभ्रम होने से, [ते.] उस अतिवा (सुंदरी) के मन में लज्जा, मोह और भय के ऐसे दिखाई पड़ने पर मानो सुंदर अरविंद पर ओस के कण जम गये हों, वह पद्मनयना प्रथम चिंता-भार से अपने मन की बातें प्रकट रूप से कह नहीं सकती थी। ३३१ [व.] इस प्रकार

व. इट्लु विरहवेदना दूयमान मानसयै युंडे, नंत नॆच्चॆलुलु डायंजनुदॆंचिनं दन मॊगंबुनं बॊडमु मनोज विकारंबु मरुगुवॆट्टुचु नप्पुडु ॥ 332 ॥

च. पॊरि वॊरि वुच्चु नूर्पुगमि वुक्किट नुंचि कुचाग्रसीम पै
बरसिन सन्न ले जॆमट बिंदुवुलॊय्यन नार्चि गन्नुलन्
दॊरगॆडु वाष्प पूरमुलु दॊंगलि रॆप्पल नानि चुक्कलन्
दरुणुलु रंडु चूतमनि ता मॊगमॆत्तुनु गूढ रागयै ॥ 333 ॥

व. इव्विधंबुनं जरियिंचुचुंडॆ नट्टियॆड ॥ 334 ॥

ते. अंतकंतकु संताप मतिशयिंचि
वलुद चन्नुलु गन्नीटि वरद दडिय
जॆलुल दॆस जूड जाल लज्जिंचि मॊगमु
वांचि पलुकक युंडॆ नव्वनरुहाक्षि ॥ 335 ॥

व. अंत ॥ 336 ॥

ते. वलि तनूभवु मंत्रिकुंभांडु तनय
तन बहिःप्राण मिदि यन दनरुनट्टि
कामिनीमणि मुखपद्मकांति-विजित
शिशिर करचारु रुचि रेख चित्ररेख ॥ 337 ॥

व. कदिसि यव्वाल नुपलक्षिंचि ॥ 338 ॥

विरह-वेदना-दूयमान-मानसा बनकर रही, तो सखियों के उसके पास आने पर, अपने मुख में दिखाई पड़नेवाले मनोज (मन्मथ)-विकार को छिपाते हुए, तब ३३२ [चं.] बार-बार लंबी साँसों से मुँह भरकर, कुचाग्र-सीमा पर प्रकाशमान होनेवाली पतली स्वेद-बिन्दुओं को धीरे-धीरे पोंछते हुए, आँखों में भर आनेवाले वाष्पों के कोमल पलकों से छूकर गिरनेवाली बिंदुओं को देखने के लिए तरुणियों के आने पर वह (उषा कन्या) गूढ़-रागा बनकर स्वयं अपना मुँह उठाती। ३३३ [व.] इस प्रकार रहती थी; उस समय ३३४ [ते.] उत्तरोत्तर संताप के बढ़ जाने पर, ऊँचे स्तनों के आँसुओं की धारा से भीग जाने पर, अपनी सखियों की ओर देखने के लिए बहुत लज्जित होकर वह वनरुहाक्षी मुँह झुकाकर चुप रह गयी। ३३५ [व.] तब ३३६ [ते.] वलि के तनूभव (बाणासुर) के मंत्री कुंभांड की तनया चित्तरेखा, जो उसके (उषा के) बहिःप्राण के समान थी, कामिनीमणि थी, मुखपद्मकांति-विजिता थी और शिशिर-कर (चंद्रमा) की चारु (सुंदर) रुचि-रेखा (कांति-रेखा) थी; ३३७ [व.] [उसके] समीप आकर उस वाला (उषा) को देखकर [यों बोली]; ३३८ [ते.] "भामिनीमणि! [किसी] सुंदर युवा का

ते. भामिनीमणि ! सॊबगुनि बयलवॆदकु
विधमुननु नात्मविभु वासि विह्वलिंचु
वगनु चेतिकि लोनैन वानि वासि
भ्रांति बॊंदिन भावंबु प्रकटमय्यॆ ॥ 339 ॥

ते. वनित ! नाकन्न नॆनरैन वारु नीकु
गलुग नेर्तुरॆ नीकोर्कि दॆलिय जॆप्प-
कुन्न मीयन्न तोडन्न गन्न गवनु
नलरु नुनुसिग्गुतो नगवार्मतिप ॥ 340 ॥

व. इव्विधंबुल जित्ररेखं गनुंगॊनि यिट्लनियॆ ॥ 341 ॥

च. चॆलि ! कललोन नॊक्क सरसीरुहनेत्रुडु हार रत्नकुं-
डल कटकांगुळीयकरणन्मणि नूपुर भूषणुंडु नि-
र्मल कनकांबरुंडु सुकुमार-तनुंडु विनील-देहुडु-
ज्ज्वल रुचि नूतन प्रसव सायकुडुन्नत वक्षुडॆतयुन् ॥ 342 ॥

च. ननु बिगियार गौगिटि मनं बलरारग जेर्चि मोदमुं
दनुकग नंचिताधर सुधारसमिच्चि मनोज केळिकिन्
बनुपड जेसि मंजु मृदु भाषल देलिचि यंत लोनने
चनियॆनु दुःखवार्धि बॆलुचन् ननु द्रोचि सरोरुहानना ! ॥ 343 ॥

अन्वेषण करने के समान, आत्मविभु को खोकर विह्वल होने के समान, हाथ में फँसे हुए [प्रियतम को] खोकर भ्रांति को पाने का भाव प्रकट हुआ है। ३३९ [ते.] हे वनिते ! मुझसे बढ़कर तुम्हारे प्रिय व्यक्ति कौन हो सकते हैं ? अगर तुम अपनी इच्छा न समझाती तो तुम्हारे भाई की कसम"; ऐसा कहने पर दोनों नेत्रों में ईषत् लज्जा के अंकुरित होने पर ३४० [व.] इस प्रकार चित्रलेखा को देखकर [उषा ने] यों कहा, ३४१ [च.] "[हे] सखी, सपने में एक सरसीरुह नेत्रवाला, हार, रत्न, कुंडल, कटक, अंगुलीयक, रणन्मणि, नूपुर, भूषणों से [भूषित], निर्मल कनकांबरधारी, सुकुमार तनु [वाला], विनील-देही, उज्ज्वल रुचि, नूतन प्रसव-सायक (मन्मथ) [और] उन्नतवक्ष [युक्त] बहुत ३४२ [च.] "मुझसे गाढ़ आलिंगन करके ताकि [हम] सतुष्ट हो जायँ, मोद की तृप्ति से अंचित अधर सुधारस को पिलाकर मनोज-केलि (रति) के लिए सिद्ध बनाकर मंजु [और] मृदु भाषणों से संतुष्ट करके, इतने में ही [अचानक] हे सरोरुहानन वाली, कठिनता से मुझे दुःखवार्धि मे ढकेल कर, चला गया।" ३४३

चित्ररेख राजवरुल पटंबुन लिखिंचि चूपि यनिरुद्धुनि दॅच्चुट

व. अनुचु नम्मत्तकाशिनि चित्तंबु चित्तजायत्तंबयि तत्तरंबुन विरहानलंबुत्तलपॅट्ट गन्नीरु मुन्नीरुगा वगचुचु विन्ननयिन वदनारविंदंबु वांचि यूरकुन्न जित्ररेख तन मनंबुन नध्ययति संतापंबु चिंतिंचि यिट्लनियॅ ॥ 344 ॥

च. सरसिजनेत्र ! येटिकि विचारमु नाकुशलत्व मेपॅडन्
नर सुर यक्ष किंपुरुष नाग नभश्चर सिद्ध साध्य किं-
न्नर वर मुख्युलन् बटमुनन् लिखियिंचिन जूचि नी मनो-
हरु गनि वीडॅ यॅम्मनिन नप्पुडॅ वानिनि नीकु दॅच्चॅदन् ॥ 345 ॥

व. अनि यॊडंबरिचि मिलमिलनि मंचु तोडं बुरुडिचु धळ धळमनु मॅरुंगुलु दुरंगलि गॊनु पटंबु नावटंबु सेसि वज्रंबुन मेदिंचि पंच वन्नियलु वेरु वेरु कनक रजत पात्रंबुल निंचि केलं दूलिक धरिंचि यॊक विजनस्थलंबुनकुं जनि मुल्लोकंबुलं वेरु गलिगि वयोरूप संपन्नुलयिन पुरुषमुख्युल नन्वय गोत्र नामधेयंबुल तोड व्रासि यायितंबयिन यप्पटंबु दन मुंदट दॅच्चिपॅट्टि यिप्पटंबुनं दगुलनिवारु लेरु वारि जॅप्पॅद सावधानंबुग नाकणिपुमनि यिट्लनियॅ ॥ 346 ॥

चित्ररेखा का पट्टिका पर राजाओं (के चित्र) को लिख, दिखाकर अनिरुद्ध को दिखाना

[व.] यों कहते हुए जब वह मत्तकाशिनी (सुन्दर स्त्री) अपने चित्त के चित्तज (मन्मथ) के अधीन होने से संभ्रम से विरहानल (विरह रूपी अग्नि) के कारण व्याकुल होकर आँसू बहाते हुए रोकर चिंतित होकर अपने वदनारविंद को झुकाकर रही तो चित्ररेखा ने अपने मन में उस युवती के संताप के बारे में सोचकर इस प्रकार कहा; ३४४ [च.] "हे सरसिज-नेत्रवाली, दुःख किसलिए ? ताकि मेरी कुशलता विदित हो जाय, नर, सुर, यक्ष, किंपुरुष, नाग, नभश्चर, सिद्ध, साध्य [और] किन्नर वरमुख्यों को पट पर लिखने पर देखकर, अपने मनोहर को पहचानकर 'यही है, जाओ' कहो तो तुरंत उसे तुम्हारे पास ला दूंगी।" ३४५ [व.] इस प्रकार समझाकर प्रकाशमान होनेवाले हिम के समान अधिक चमकनेवाले पट को फैलाकर वज्र से मिलाकर पाँच रंग पृथक्-पृथक् कनक-रजत-पात्रों में भरकर, हाथ में तूलिका धर कर, एक विजन स्थल में जाकर, तीनों लोकों में प्रसिद्ध होकर वय और संपन्न पुरुष-मुख्यों को अन्वय-गोत्र-नामधेयों के साथ लिखकर सिद्ध किये गये उस पट को उसके सामने ला रखकर और यह कहकर कि इस पट में न आनेवाला कोई नहीं है, उनके बारे में कहूँगी,

सी. कमनीय संगीतकलित कोविदुलु किंपुरुष गंधर्व किन्नरुलु वीरॆ
सतत यौवन यदृच्छा विहारुलु सिद्ध साध्य चारण नभश्चरुलु वीरॆ
प्रविमल सौख्य संपद्वैभवुलु सुधाशन मरुद्यक्ष राक्षसुलु वीरॆ
निरुपम रुचि कळान्वित काम रूपुलै पॊगडॊंदुनट्टि पन्नगुलु वीरॆ

ते. चूडुमनि नेर्पु दीपिंप जूपुटयुनु
जित्तमु निज मनोरथ सिद्धि वडय
जालकुंडिन मध्यम क्ष्मातलाधि-
पतुल जपुचु वच्चॆ नप्पद्मनयन ॥ 347 ॥

उ. माळव कॊंकण द्रविड मत्स्य पुळिंद कळिंग भोज नॆ-
पाळ विदेह पांड्य कुरु बर्बर सिंधु युगंधरांध्र बं-
गाळ करूश टॆंकण त्रिगर्त सुधेष्ण मराट लाट पां-
चाल निषाद घूर्जरक साळ्व महीशुलु वीरॆ कोमली ! ॥ 348 ॥

उ. सिंधुरवैरि विक्रमुडु शीतमयूख मराळिका पय-
स्सिंधु पटीर निर्मल विशेष यशोविभवुंडु शौर्य द-
र्पांध रिपुक्षितीश निकरांधतमःपटलार्कुडी जरा-
संधुनि जूडु मागधुनि सद्बृहदश्व सुतुं गृशोदरी ! ॥ 349 ॥

सावधान होकर सुनो, [फिर] इस प्रकार कहा। ३४६ [सी.] "कमनीय संगीत-कलित-कोविद [होनेवाले] किंपुरुष, गंधर्व [और] किन्नर ये ही हैं। सतत यौवन यदृच्छा-विहारी [होनेवाले] सिद्ध, साध्य, चारण [और] नभश्चर ये ही हैं। प्रविमल सौख्य-संपद्वैभव [पानेवाले] सुधाशन (अमर), मरुत, यक्ष [और] राक्षस ये ही हैं। निरुपम-रुचि-कलान्वित काम-रूप बनकर प्रशंसित होनेवाले पन्नग ये ही है। देखो।" [ते.] यों कहकर अपनी कुशलता (नैपुण्य) के प्रकाशमान होने पर दिखाने से, चित्त के निज मनोरथ सिद्धि को न पा सकने पर वह पद्मनयना (चित्तरेखा), मध्यम क्ष्मातलाधिपतियों को (राजाओं को) दिखाने लगी। ३४७ [उ.] "[हे] कोमली ! मालव, कोंकण, द्रविड़, मत्स्य, पुलिंद, कलिंग, भोज, नेपाल, विदेह, पांड्य, कुरु, बर्बर, सिंधु, युगधर, आंध्र, बंगाल, करूश, टॆंकण, त्रिगर्त, सुधेष्ण, मराट (महाराष्ट्र), लाट, पांचाल, निषाद, घूर्जरक ! [और] साल्व महीश ये ही हैं। ३४८ [उ.] [हे] कृशोदरी ! इस जरासंध को देखो जो सिंधुर-वैरिविक्रम है, शीत-मयूख-मरालिका-पयस्सिंधु-पटीर-निर्मल-विशेष-यशोविभव [युक्त] है, शौर्यदर्पांध रिपु क्षितीश-निकर [के लिए] अंधतमः पटलार्क है, मागध है और जो सत् बृहदश्वसुत है। ३४९ [म.] [हे] मत्त द्विरेफालके ! सकल उर्वीतलनाथ-सन्नुत,

म. सकलोर्वीतलनाथ सन्नुतुडु शश्वद्भूरि वाहा बला-
धिकुडुग्राहव कोविदुंडु त्रिजगद्विख्यात चारित्रकुं-
डकलंकोज्ज्वल दिव्य भूषुडु विदर्भाधीश्वरुंडैन भी-
ष्मक भूपाल कुमारु जूडु मितनिन् मत्तद्विरेफालका ! ॥ 350 ॥

उ. संगर रंग निर्दळित चंड विरोधि वरूधिनीश मा-
तंग तुरंग सद्भट रथ प्रकटैक भुजा विजृंभणा-
भंग पराक्रम प्रकट भव्य यशोमहनीयमूर्ति का-
ळिंगुडु वीडॆ चूडु तरळीकृत चारु कुरंगलोचना ! ॥ 351 ॥

म. सुगुणांभोनिधि फाल लोचनु नुमेशुन्नात्म मॆप्पिंचि श-
क्तिगरिष्ठंबगु शूलमुन् वडसॆ नक्षीण प्रतापोन्नतिन्
जगतिन् मिक्किलि मेटि वीरुडु रणोत्साहुंडु भूपौत्रुडी
भगदत्तुं गनुगॊंटॆ पंकजमुखी ! प्राग्ज्योतिषाधीश्वरुन् ॥ 352 ॥

म. विकचांभोरुह पत्रनेत्रुडगु गोविंदुंडु दा वूनु नं-
दक चक्राब्ज गदादि चिह्नमुल चेतन् वासुदेवाख्य नु-
त्सुकुडै यॆप्पुडु मच्चरिंचु मदि गृष्णुंडन्न नीमेटि पौं-
ड्रकु गाशीश-सखुं गनुंगॊनुमु वेड्कं जंद्रबिंबानना ! ॥ 353 ॥

म. द्विज शुश्रूषयु सूनृत व्रतमुनुद्वृत्तिन् भुजागर्वमुन्
विजयाटोपमु जाप नैपुणियु धी विस्फूर्तियुं गल्गु नी

शश्वत् भूरि-वाहाबल-अधिक, उग्र-आहव-कोविद, त्रिजगत् विख्यात चरित्रवान्, अकलंकोज्ज्वल दिव्य भूषित [और] विदर्भाधीश्वर [होनेवाले] इस भीष्मक भूपाल-कुमार को देखो। ३५० [उ.] [हे] तरलीकृत चारु कुरंग-लोचने! संगर-रंग-निर्दलिता चंड-विरोधी वरूधिनीश, मातंग, तुरंग, सद्भट, रथ-प्रकटैक-भुजा-विजृंभणाभंग-पराक्रम-प्रकट-भव्य-यशोमहनीय मूर्ति कालिंग (कलिंग देश का राजा) यही है, देखो। ३५१ [म.] [हे] पंकजमुखी ! सुगुणांभोनिधि, फाललोचन उमेश (शिवजी) की आत्मा को तृप्त करके शक्ति-गरिष्ठ होनेवाले शूल को अक्षीण प्रतापोन्नति से पाया है, जगत में बहुत बड़ा वीर है, रणोत्साही है; भूपौत्र है, यह भगदत्त है। इस प्राग्ज्योतिषाधीश्वर को (क्या तुमने) देखा है ? ३५२ [म.] [हे] चंद्रबिंबानने ! विकच अंभोरुहपत्र जैसे नेत्रवाला गोविंद अपने से धारण किये गये नंदक, चक्राब्ज, गदा, आदि चिह्नों से वासुदेवाख्य हो उत्सुक बनकर कृष्ण कहे तो सदा मन में द्वेष करता रहता है; इस श्रेष्ठ पौंड्रक को जो काशीश (शिवजी) का सखा है, कुतूहल से देखो। ३५३ [म.] [हे] पद्माक्षी ! रजनीनाथ [चंद्र] कुल प्रदीप होनेवाले इन धर्मज, भीम, अर्जुन और माद्रि-नंदनों को (नकुल और सहदेव) को अच्छी तरह

रजनीनाथ कुल प्रदीपकुल वाड्रजूडु पद्माक्षि ! ध-
र्मज भीमार्जुन माद्रि नंदनुल संग्रामैक पारीणुलन् ॥ 354 ॥

म. बलिमिन् सर्वनृपालुरन्नदिमि कप्पंबुल् दगं गोंचु नु-
ज्ज्वल तेजो विभवातिरेकमुन भास्वत्कीर्ति शोभिल्लगा
बोलुपोंदं दनु राजराजन महा भूरि प्रतापंबुलं
गल दुर्योधनु जूडु सोदरयुतुं गंजातपत्रेक्षणा ! ॥ 355 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन छप्पन्न देशाधीशुलगु राजलोकंबुलु नेल्ल जूपुचु यदुवंश संभवुलैन शूरसेन वसुदेवोद्धवादुल जूपि, मरियुनु ॥ 356 ॥

उ. शारदनीरदाब्ज घनसार सुधाकर काश चंद्रिका-
सार पटीरवर्णु यदुसत्तमु नुत्तम नायकुं बम-
त्तारि नृपाल कानन हुताशन मूर्ति प्रलंबदैत्य सं-
हारुनि गामपालुनि हलायुधु जूडुमु दैत्यनंदना ! ॥ 357 ॥

सी. कमनीयशुभ गात्रु गंजातदळ नेत्रु वसुधाकळत्रु बावन चरित्रु
सत्य संकल्पु निशाचरोग्र विकल्पु नतपन्नगाकल्पु नागतल्पु
गौस्तुभमणि भूषु गंभीर मृदुभाषु श्रित जन पोषु नंचित विशेषु
नीलनीरद कायु निर्जितदैतेयु धृत पीत कौशेयु नत विधेयु

देखो जो द्विजों की शुश्रूषा से, सूनृत व्रत से, उद्धत भुजा-गर्व से, विजय के आधिक्य को दिखाने की निपुणता से और धी [बुद्धि] की विस्फूर्ति से भूषित है और संग्रामैकपारीण है। ३५४ [म.] हे कंजात-पत्रेक्षणे ! भाइयों से युक्त इस दुर्योधन को देखो जो बल से सभी नृपालों को दबाकर कर (राजस्व) को लेते हुए, उज्ज्वल तेजोविभवातिरेक से भास्वत् (प्रकाशमान) कीर्ति के शोभायमान होने पर, अपने को राजराजा कहलाते हुए, महान् भूरि प्रतापों से शोभायमान होता है।" ३५५ [व.] इस प्रकार छप्पन देशाधीश होनेवाले सब राजलोकों को दिखाते हुए यदुवंश-संभव होनेवाले शूरसेन, वसुदेव [और] उद्धवादियों को दिखाकर और ३५६ [उ.] "[हे] दैत्यनंदने ! शारदनीरदाब्ज, घनसार, सुधाकर, काश, चंद्रिका-सार-पटीर वर्ण वाले यदुसत्तम को, उत्तम नायक को, प्रमत्त अरि-नृपाल-[रूपी] कानन [के लिए] हुताशन-मूर्ति होनेवाले प्रलंब दैत्य-

ते. नघमहागदवैद्यु वेदांतवेद्यु
दिव्य मुनि सन्नुतामोदु दीर्थपादु
विष्णु वरसद्गुणालंकरिष्णु गृष्णु
जूडु दैतेयकुलवाल ! सुभगलील ! ॥ 358 ॥

च. स्फुरदळि शिंजिनीरव विभूषित पुष्प धनुर्विमुक्त भा-
स्वर नवचूतकोरक निशात शिलीमुखपातभीत पं-
करुह् भवादि चेतननिकायु मनोज निजांशु रुक्मिणी-
वर सुतु राजकीर परिवारुनि मारुनि जूडु कोमली ! ॥ 359 ॥

व. इव्विधंबुन जूपिन ॥ 360 ॥

म. वनितारत्नमु कृष्णनंदनुनि भाव प्रौढि दा जूचि ग्र-
द्दन दर्शथि वरिंचि गन्न सुगुणोत्तंसंबका नात्मलो-
ननुमानिंचि यनंतरंब यनिरुद्धाख्युन् सरोजाक्षु नू-
तन चेतो भवमूर्ति जूक्षिमदि संतापिंचुचुन्निट्लनुन् ॥ 361 ॥

उ. ईति ! मदीय मानधनमॆल्ल हरिंचिन म्रुच्चु निर्म्मॆयि
वंतमॆलर्प व्रासि पट भाग निरूपितु जेसिनट्टि नी
यंतटि पुण्यमूर्ति गॊनियाडग नेर्तुनॆ नी चरित्रमुल्
वित्तलॆ नाकु नी महित वीरु कुलंबु बलंबु जॆप्पुमा ॥ 362 ॥

वाला है, निर्जित दैतेय (राक्षस) है, धृत-पीत-कौशेय है, नत-विधेय है, [ते.] अघमहागद-वैद्य है, वेदांत-वेद्य है, दिव्य-मुनि-सन्नुत है, आमोद (संतोष) करनेवाला है, तीर्थपाद है, विष्णु है और वर सद्गुणालंकरिष्णु है। ३५८ [चं.] हे कोमली ! स्फुरत् अलि (भ्रमर) शिंजिनी-रव-विभूषित पुष्पधनु [से] विमुक्त भास्वर नवचूत-कोरक-निशात-शिलीमुख-पात-भीत-पंकरुह भव (ब्रह्मा) आदि चेतन निकाय, मनोज-निजांश, रुक्मिणी-वरसुत, राजकीर परिवार वाले और मार (मन्मथ) को देखो।" ३५९ [व.] इस प्रकार दिखाने पर ३६० [म.] कृष्ण-नंदन को भावप्रौढ़ि से स्वयं देखकर त्वरित गति से उसको चाहकर और वरण करके चले गये सुगुणोत्तम को [अपनी] आत्मा मे अनुमान करके, अनंतर, अनिरुद्धाख्य उस सरोजाक्ष को, नूतन चेतोभवमूर्ति को देखकर [और] मन में संताप करते हुए वह वनितारत्न (उषा) इस प्रकार बोली। ३६१ [उ.] "हे सखी, मदीय सारे मान-धन को हरनेवाले [इस] चोर का इस प्रकार हठ के साथ लिखकर चित्र में निरूपित करनेवाली तुम्हारी जैसी पुण्यमूर्ति की क्या मैं प्रशंसा कर सकती हूँ ? क्या तुम्हारा चरित्र मेरे लिए आश्चर्यकर है ? इस महित वीर का कुल [और] बल क्या हैं, कहो।" ३६२ [चं.] तब

च. अनघुडु जित्ररेख जलजाक्षिकि निट्लनु नी कुमारकुं-
डनघुडु यादवान्वय सुधांबुधि-पूर्ण-सुधाकरुंडुना-
दनरिन कृष्णपौत्रकुडुदार चरित्रुडु भूरि सिंह सं-
हननुडरातिसैन्य तिमिरार्कुडु पेरनिरुद्धुडंगना ! ॥ 363 ॥

व. अनि चेप्पि ये नतित्वरितगति जनि यक्कुमार-रत्नबु दोड्कोनिवत्तु नंतकु संतापिपकुंडुमनि याक्षणंब वियद्गमनंबुनं जनि चनि मुंदट ॥ 364 ॥

कं. सरसिजमुखि कनुगोनें शुभ-
भरित विलोकन विधूत भव वेदनमुन्
बर साधनमुनु सुकृत
स्फुरणापादनमु गृष्णु पुट भेदनमुन् ॥ 365 ॥

व. कनि डायंजनि तदीय सुषमा विशेषंबुलकुं बरितोषंबु नोंबुचुं गामिनी चरण रणित मणि नूपुर झणंझण ध्वनित मणि गोपुरंबुनु नति विभव विजित गोपुरंबुनु नगु द्वारकापुरंबु निशासमयंबुनं ब्रच्छन्न, वेषंबुनं जोच्चि कनक कुंभ कलित सौधाग्रंबुन मणि दीप निचयंबु प्रकाशिप जंद्रकांत शिला-भवनंबुन सुधाधाम रुचि निचयंबु नपहसिचु हंस तूलिका तल्पंबुन निजांगना रति श्रमंबुन निद्रासक्तुंडैयुन्न यनिरुद्धु जेरि तन योगविद्या महत्त्वंबुन नतनि नेत्तुकोनि मनोवेगंबुन शोणपुरंबुनकुं जनि बाणासुर-नंदनयगु नुषा-सुंदरि तल्पंबुनंदुनिचि यिट्लनियें ॥ 366 ॥

चित्ररेखा ने (उस) जलजाक्षी से इस प्रकार कहा, "हे अंगने, यह कुमार अनघ, यादवान्वय सुधांबुधि [के लिए] पूर्ण सुधाकर [चन्द्रमा] होनेवाले कृष्ण का पौत्र है, उदार चरित्र वाला है, भूरि सिंह-संहनन है [और] अराति (शत्रु) सैन्य रूपी तिमिर के लिए अर्क (सूरज) है; [इसका] नाम अनिरुद्ध है।" ३६३ [व.] इस प्रकार कहकर, "मैं अतित्वरित गति से जाकर उस कुमार रत्न को लिवा लाऊंगी; तब तक संतप्त मत बनो" यों कहकर उसी क्षण वियद्गमन से जा-जाकर सामने ३६४ [कं.] (उस) सरसिज-मुखी ने शुभ भरित, विलोकन-विधूत-भव वेदना, पर साधन और सुकृत स्फुरणापादन [होनेवाले] कृष्ण के नगर को देखा। ३६५ [व.] देखकर, समीप जाकर, तदीय सुषमा विशेषों के कारण परितुष्ट होते हुए, कामिनी-चरण रणित मणि-नूपुर झणंझण ध्वनित मणि गोपुर को, अति विभव-विजित गोपुर होनेवाले द्वारका नगर में निशा समय में प्रच्छन्नवेष में प्रवेश करके कनक-कुंभ-कलित सौधाग्र पर मणिदीपनिचय के प्रकाशमान होने पर, चंद्रकांत शिला भवन में सुधा-धाम-रुचि-निचय का अपहास्य करनेवाले हंसतूलिका-तल्प पर निजांगना रतिश्रम से निद्रासक्त होकर लेटे हुए

कं. वनजाक्षि ! चूडु नी विभु
ननिमिष नग धीरु शूरु नभिनव मारुन्
वनधिगभीरु नुदारुनि
ननिरुद्धकुमारु विदळिताहित-वीरुन् ॥ 367 ॥

कं. अनिन नुषासति दन मन-
मुन ननुरागिल्लि मेन बुलकांकुरमुल्
मॊनयग नानंदाश्रुलु
गनुगव जडि गुरिय मुखविकासमॆलर्पन् ॥ 368 ॥

व. इट्लु मनंबुन नुत्साहिंचि चित्ररेखं गनुंगॊनि यय्यिति यिट्लनियॆ ॥ 369 ॥

सी. अतिव ! नी सांगत्यमनु भानु रुचि नाकु गलुगुट गामांधकारमडगॆ
दरळाक्षि ! नी सखित्वंबनु नावचे गडिदि वियोगाब्धि गडव गंटि
नबल ! नी यनुबंधमनु सुधावृष्टिचे नंगज संताप मार्प गंटि
वनित ! नी चॆलितनंबनु रसांजनमुचे ना मनोहर निधानंबु गंटि

ते. गलल दोचिन रूपु ग्रक्कन लिखिंचु
वारु नॊनन्न दोड्तॆच्चु वारु गलरॆ

अनिरुद्ध के पास जाकर अपनी योगविद्या के महत्त्व से उसे उठाकर मनो-वेग से शोणपुर में जाकर बाणासुर-नंदना उषासुंदरी के तल्प पर रखकर इस प्रकार कहा, ३६६ [कं.] "हे वनजाक्षी, अपने विभु अनिरुद्धकुमार को देखो, जो अनिमिष नग धीर है, शूर है, अभिनव मार (मदन) है, वनधि (समुद्र) जैसा गंभीर है, उदार है [और] विदलित अहित (शत्रु) वीर है।" ३६७ [कं.] ऐसा कहने पर उषा सती, उसके मन में अनुराग के उत्पन्न होने पर, शरीर में पुलकांकुर होने पर, दोनों आँखों में से आनंदाश्रु के बहने पर [और] मुख के विकसित होने पर, ३६८ [व.] इस प्रकार मन में उत्साहित होकर [और] चित्ररेखा को देखकर वह स्त्री (उषा) यों बोली, ३६९ [सी.] "हे स्त्री, तुम्हारे सांगत्य रूपी भानु (सूर्य) की रुचि की [कांति] मुझे मिलने से [मेरा] कामांधकार दब गया। हे तरलाक्षी, तुम्हारे सखीत्व (स्नेह) रूपी नाव से कठिन वियोगाब्धि को पार कर सकी। हे अबले, तुम्हारे अनुबंध रूपी सुधा-वृष्टि से [अपने] अंगज-संताप को दूर कर सकी। हे वनिते, तुम्हारे स्नेह रूपी रसांजन (काजल) से अपने मनोहर-निधान को देख (पहचान) सकी; [ते.] स्वप्न में जो रूप दिखाई पड़ता है, शीघ्र ही उस रूप का चित्र-लेखन करनेवालों के रहने पर भी उसे लिवा लानेवाला कोई है ? पानी छाया को पैदा करने की कुशलता तुम्हें छोड़कर तीनों लोकों में और

नीटिलो जाड बुट्टिचु नेपुं नीक
काक कलगुनॆ मूडु लोकमुलयंदु ? ॥ 370 ॥

व. अनि विनुतिंचि चित्ररेखनु निजमंदिरमुनकुं बोवंबनिचिनं जनियॆ, नंत वित-जनुल कॆव्वरिकि ब्रवेशिंपरानि यंतःपुर सौधांतरंबुन ननिरुद्धुंडु मेल्कनि यय्यिंति गनुंगॊनि यप्पुडु ॥ 371 ॥

कं. सुरुचिर मृदु तल्पंबुन, बरिरंभण सरसवचन भावकळा चा-
तुरि मॆरसि राकुमारुडु, तरुणीमणि बॊंदॆ मदन तंत्रज्ञुंडै ॥ 372 ॥

उषाकन्यका संगतुंडगु ननिरुद्धुनि बाणासुरुंड नागपाशबद्धुनि जेयुट

व. इव्विधंबुन नतिमनोहर विभवाभिरामंबुलगु दिव्यांबराभरण माल्यानुले-पनंबुल गर्पूर तांबूलंबुनु विविधान्नपानंबुल सुरुचिर मणि दीप नीराजनंबुल सुगंध बंधुरागरु धूपंबुल नाटल बाटल वीणा विनोदंबुलं बरितुष्टि बॊंदि कन्याकुमारकुलानंद सागरांतर्निमग्न-मानसुलै युदयास्त-मय निरूपणंबु सेयनेरक प्राणंबु लॊक्कटियैन तलंपुलं गदिसि यिष्टोपभोगंबुल सुखियिचुचुंडिरंत ॥ 373 ॥

किसी की है ?" ३७० [व.] इस प्रकार विनुति करके चित्ररेखा को अपने मंदिर में भेज दिया [तो वह] चली गयी। तब विनोदी प्रजा के प्रवेश न कर सकनेवाले अंतःपुर-सौधांतर में अनिरुद्ध जागकर उस स्त्री को देखकर, तब ३७१ [कं.] सुरुचिर मृदु तल्प पर, परिरंभण (आलिंगन), सरस वचन [तथा] भावकला-चातुरी से चमककर उस राजकुमार ने मदन-तंत्रज्ञ बनकर [उस] तरुणी-मणि को पा लिया। ३७२

उषाकन्या के संग रहनेवाले अनिरुद्ध को बाणासुर का नागपाश-बद्ध करना

[व.] इस प्रकार अति मनोहर विभव अभिराम होनेवाले दिव्य वस्त्र, आभरण, माल्य, अनुलेपनों से, कर्पूर-तांबूलों से, विविध अन्नपानों से, सुरुचिर मणि-दीप-नीराजनों से सुगंध बंधुर अगरु धूपों से, खेलों से, गानों से [और] वीणा-विनोदों से परितुष्ट होकर कन्या (उषा) और कुमार (अनिरुद्ध) आनंद-सागरांतर्निमग्नमानस वाले बनकर उदय [या] अस्तमय का निरूपण न कर सक कर, प्राणों के एक हो जाने पर विचारों में मिलकर इष्टोपभोगों से सुखी रहे; तब ३७३ [कं.] इतने में अति चिरकाल लगातार सुख से बीत जाने पर उषा बाला-ललामा सुरुचिर रूप से गर्भवती

कं. आलोनन यति चिरमगु
कालमु सुखलोल जरगगा वरुस नुषा-
बाला ललाम कॉय्यन
जूलेर्पडि गर्भमॉदवें सुरुचिर भंगिन् ॥ 374 ॥

कं. आ चिह्नलंगजाललु, चूचि भयाकुलत नॉदि स्त्रुक्कुचु दमलो
नोचॅल्ल यॅट्टुलो यी, राचूलिकि जूलु निलिचॅ रा यिट्भंगिन् ॥ 375 ॥

कं. अनि गुज गुज वोवुचुनि-
प्पनि दप्पक दनुज लोकपालुनि तोडन्
विनिर्पिप वलयु ननि वे-
चनि वाणुनि जेरि म्रॉक्कि सद्विनयमुनन् ॥ 376 ॥

कं. मंतनमुन देवर ! क, न्यांत:पुर मेमु गाचि यरयुचु नुंडन्
वित जनमुलकु जॉरग दु, -रंतमु विनु पोतुटीगकैन सुरारी ! ॥ 377 ॥

ते. इट्टिच्चो गावलुन्न मेमॅव्वरमुनु
नेमि कनुमाययो कानि यॅरुगमधिप !
नी कुमारिक गर्भंबु निव्वटिल्लि
युन्न दन्ननु विनि रोष युक्तुडगुचु ॥ 378 ॥

व. अट्टि यॅड दानवेंद्रुंडु रोष भीषणाकारुंडयि कटमुलदर बॉमलु मुडिवडंगनु
गवल ननल कणंबुलुप्पतिल्ल सटलु वॅरिकिनं जटुल गति नॅगयु सिंगंबु

बनी। ३७४ [कं.] गर्भवती बनने के चिह्नों को देख, भयाकुल होकर, डरते हुए रनिवास की रखवाली करनेवाली स्त्रियाँ आश्चर्य में पड़कर कहने लगीं कि किस प्रकार इस राजकुमारी का गर्भ हुआ। ३७५ [कं.] इस प्रकार कानाफूसी करते हुए यों निश्चय करके कि इसके बारे में अवश्य दनुजलोक-पालक को सुनाना चाहिए, जल्दी जाकर बाण [असुर] के पास पहुँचकर और नमस्कार करके सद्विनय से ३७६ [कं.] "हे प्रभु, रहस्य से जब हम कन्यांत:पुर की रखवाली करती थीं, सारी प्रजा के लिए अद्भुत विषय यह है कि हे सुरारी ! नर-मक्खी भी उसके अन्दर नहीं घुस सकता। ३७७ [ते.] ऐसी जगह पर रखवाली करनेवाली हमारे रहने पर, न जाने वह कैसी माया है, हे अधिप ! तुम्हारी कुमारी का गर्भ हुआ।" ऐसे कहने पर सुनकर रोषयुक्त बनते हुए। ३७८ [व.] उस समय दानवेंद्र रोष से भीषणाकार बनकर गालों के फड़कने पर, भौंहों के सिकुड़ने पर, आँखों में से अनल-कणों के पैदा होने पर, जटा को उखाड़ने पर, त्वरित गति से कूद पड़नेवाले सिंह की तरह लाँघते हुए भीकर करवाल को हाथ में धारण करके समुद्दंडगति से कन्या [के] सौधांतर में जाकर... ३७९

विधंबुन लंघिचुचु भीकर करवालंबु केलं दाल्चि समुद्दंडगति गन्यासौधांतरंबुनकुं जनि ॥ 379 ॥

सी. कनियें शुभोपेतु गंदर्पसंजातु मानितदेहु नाजानुबाहु
मकरकुंडल कर्णु महित प्रभापूर्णु जिरयशोल्लासु गौशेय वासु
गस्तूरिकालिप्तु घन कांतिकुमुदाप्तु हारशोभितवक्षु नंबुजाक्षु
यदुवंशतिलकु मत्तालि नीलालकु नव पुष्पचापु बूर्णप्रतापु

ते. नभिनवाकारु नक्षविद्या विहारु
महित गुणवृद्धु मन्मथमंत्र सिद्धु
गलित परिशुद्धु नखिल लोक प्रसिद्धु
जतुरु ननिरुद्ध नंगनाजन निरुद्धु ॥ 380 ॥

च. कनि कनलग्गलिप सुर कंटकुडुद्धति सद्भटावळि
गनुगोनि यी नराधमुनि गट्टुडु पट्टुडु कोट्टुडन्न वा
रनुपम हेति दीधितुलहर्पति तेजमु माय जेय डा
सिन नृप शेखरुंडु मदि जेवयु लावुनु नेर्पु दर्पमुन् ॥ 381 ॥

च. कलिगि महोग्रवृत्ति बरिघंबु करंबुन लील दाल्चि दो-
र्बल घन विक्रम प्रळय भैरवु भंगि विजृंभण क्रिया
कलन नेंदिर्चि दानव निकायमुतो दलपाटु पोटुनुं
जलमु बलंबु धैर्यमुनु शौर्यमु व्रेटुनु वाटु जूपुचुन् ॥ 382 ॥

[सी.] शुभोपेत, कंदर्प-संजात, मानितदेही, आजानुबाहु, मकर-कुंडल कर्ण वाले, महित प्रभापूर्ण, चिर यशोल्लास वाले, कौशेयवास वाले, कस्तूरिकालिप्त, घनकांति-कुमुदाप्त, हार-शोभित वक्षवाले, अंबुजाक्ष, यदुवंश-तिलक, मत्त अलि की तरह नील अलकों वाले, नवपुष्पचापधारी, पूर्ण प्रतापवान्, [ते.] अभिनवाकार वाले, अक्ष-विहारी, महितगुण वृद्ध, मन्मथमंत्र-सिद्ध, कलित परिशुद्ध, अखिल लोक-प्रसिद्ध, चतुर [और] अंगनाजन निरुद्ध अनिरुद्ध को देखा। ३८० [च.] देखकर [और] क्रुद्ध हो सुरकंटक (बाणासुर) उद्धत बनकर [अपनी] सद्भटावलि को देखकर "इस नराधम को बाँध दो, पकड़ो, मारो", [ऐसा] कहा तो अनुपम हेति दीधितियों के सूर्य-तेज को नष्ट करने के लिए नज़दीक आने पर नृपशेखर मन में शक्ति, बल, बुद्धि [और] दर्प ३८१ [च.] के साथ महोग्रवृत्ति से [अपने] कर (हाथ) में परिघ (एक आयुध) को धारण करके दोर्बल घन विक्रम-प्रलय-भैरव की तरह विजृंभण-क्रिया से [अनिरुद्ध का] सामना करके, दानव-निकाय (-समूह) सहित पहली मार से शीघ्रता, बल, धैर्य, शौर्य और निशाना दिखाते हुए ३८२ [च.] पद, बाहु, सिर, बगलें, गाल,

च. पदमुलु बाहुलं दललु व्रक्कलु सॅक्कलु जानु युग्ममुल्
रदमुलु गर्णमुल् मॅडलुरंबुलु मूपुलु वीपु लूरुवुल्
चिदुरुपलं धरं दोरग जिदरवंदर सेय सैनिकुल्
कदन पराङ्मुख क्रममु गैकोनि पारिरि कांदिशीकुलै ॥ 383 ॥

व. इव्विधंबुन सैन्यंबु दैन्यंबुनोंदिवॅरचियुं बरचियु विच्चियुं जच्चियु गलंगियु नलंगियु विरिगियु सुरिगियु जॅदरियुं बॅदरियु जेवदरिगि नुरुमुलै तन मरुगु सॊच्चिन बाणुंडु शौर्यधुरीणुंडुनु गोपोद्दीपित मानसुंडुनै कदिसि येसियु व्रेसियु बॊडिचियु नडिचियु बॅनंगि ॥ 384 ॥

कं. क्रुद्धुंडै यहिपाश नि,-बद्धु गाविंचॅ नसुरपालुडु रण स-
न्नद्धुन् शरविद्धुन्ननि,-रुद्धुन् महित प्रबुद्धु रूप समृद्धुन् ॥ 385 ॥

व. इट्लु कट्टि त्रोचिन नुषा-सति शोक व्याकुलित चित्तयै युंडॆनंत ॥ 386 ॥

कं. नील पटांचितमै सुवि,-शालंबै वायु निहति जंडध्वनि ना-
भीलमगु नतनि केतन,-मालोन नकारणंब यवनि गूलॆन् ॥ 387 ॥

कं. अदि सूचि दनुजपालुडु, मदनांतकुडाडिनट्टि माट निजमुगा
गदनंबु गलुगु नंचु,-न्नॆदुरॆदुरे चूचुचुंडॆ नॆंतयु प्रीतिन् ॥ 388 ॥

व. अंत नक्कड ॥ 389 ॥

जानु-युग्म, दाँत, कान, गर्दन, उर, स्कंध, पीठ, ऊरु, अलग-अलग काटकर [और] धरती पर गिराकर तितर-बितर करने पर सैनिक कदन (युद्ध)-पराङ्मुख-क्रम को लेकर [और] कान्दिशीक बनकर भाग गये। ३८३ [व.] इस प्रकार सेना के दैन्य को पाकर, डरकर, भागकर, कटकर, मरकर, युद्ध करके, क्रोधित होकर, टूटकर, थककर, बिखरकर, भय से हटकर, साहस को खोकर, गरजते हुए अपनी जगह पर जाकर घुस जाने पर बाण (असुर) शौर्यधुरीण [और] कोपोद्दीपित-मानस बनकर, समीप जाकर, मारकर, काटकर, भोंककर, दबाकर [और] युद्ध करके ३८४ [कं.] असुरपाल ने क्रुद्ध होकर [उस] रण-सन्नद्ध, शरविद्ध, महित प्रबुद्ध और रूप-समृद्ध अनिरुद्ध को अहिपाश-निबद्ध बनाया। ३८५ [व.] इस प्रकार बाँधकर गिरा डाला तो उषा सती शोक-व्याकुलित-चित्ता बनकर रही तो ३८६ [कं.] इतने में उसका भयंकर केतन नील पटांचित [और] सुविशाल होकर वायु की निहति से चंड (भयंकर) ध्वनि के साथ अकारण ही अवनि पर गिर गया। ३८७ [कं.] वह देखकर दनुजपाल (बाणासुर) यह सोचते हुए कि मदनान्तक (शिव) ने जो बात कही उसके अनुसार सचमुच युद्ध होगा, बड़ी प्रीति (उत्कंठा) के साथ [युद्ध की] प्रतीक्षा कर रहा था। ३८८ [व.] तब वहाँ ३८९

अध्यायमु—६३

कं द्वारकलो ननिरुद्धकु-
मारुनि पोककुनु यदु समाजमु वगलं
गूरुचु नोक वार्तयु विन
नेरक चिंतिप नालुगु नेललरिगें नृपा ! ॥ 390 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 391 ॥

नारदुनिवलन ननिरुद्धुनि वृत्तांतमुनु विनि कृष्णुंडु बाणासुरुनिपै वेंडलुट

कं. शारद कोमल नीरद, पारद रुचि देहुंडतुल भाग्योदयुडा
नारद मुनि येतेंचें न, -पार दयामति मुरारि भजन प्रीतिन् ॥ 392 ॥

व. अट्लु चनुदेंचिन यद्दिव्य मुनिकि निर्मल मणि विनिर्मित सुधर्माभ्यंतरमुन यदुवृष्णि भोजांधक वीरुलु गोलुवं गोलुवुन्न कमललोचनुंडु प्रत्युत्थानंबु सेसि यर्घ्यपाद्यादि विधुलं बूजिंचि समुचित कनकासनासीनुं जेसिन। नत्तापसोत्तमुंडु पुरुषोत्तमु नुदात्त तेजोनिधि बोगडि यनिरुद्धु वृत्तांतंबंतयु देटपड नेरिंगिंचि यप्पुंडरीकाक्षुनि चेत नामंत्रणंबु वडसि यंतर्धानंबु नोंदें। तदनंतरंब कृष्णुंडु शुभ मुहूर्तंबुन दंडयात्राभिमुखुंडै प्रयाण-भेरि

अध्याय—६३

[कं.] हे नृप ! द्वारका में अनिरुद्ध कुमार के चले जाने के कारण यदुओं के समाज के दुःखित होते हुए एक भी वार्त्ता (खबर) सुन न सककर, चिन्ता करते हुए चार महीने बीत गए। ३९० [व.] उस अवसर पर ३९१

नारद से अनिरुद्ध का वृत्तान्त सुनकर कृष्ण का बाणासुर पर आक्रमण करना

[कं.] शारद (शरत्कालीन) कोमल नीरद [तथा] पारद की रुचि (कान्ति) जैसी देह [वाला], अतुल भाग्योदय [वाला] वह नारद मुनि अपार दयामति [होनेवाले] मुरारि के भजन की प्रीति से आया। ३९२ [व.] ऐसे आये हुए उस दिव्य मुनि की निर्मल मणि विनिर्मित सुधर्माभ्यंतर में यदु, वृष्णि, भोज, अंधक वीरों से सेवित, सभा में विराजमान कमल-लोचन ने उठकर अर्घ्य-पाद्यादि विधियों से पूजा करके समुचित कनकासन पर आसीन किया तो वह तापसोत्तम पुरुषोत्तम की उदात्ततेजोनिधि की प्रशंसा करके अनिरुद्ध का सारा वृत्तान्त साफ़-साफ़ समझाकर उस पुंडरीकाक्ष से आमंत्रण पाकर अंतर्धान हुआ। इसके बाद कृष्ण शुभ मुहूर्त पर

वेयिंचि बलंबुलु वॆडलिप नद्दलवारि बनिचि तानुनु गट्टायितंबय्यॆ नंत ॥ 393 ॥

सी. हार किरीट केयूर कंकण कटकांगुळीयक नूपुरादि विविध
भूषण प्रततिचे बॊलुपारि करमुल घन गदा शंखचक्रमुलु दनर
सुरभि चंदन लिप्त सुरुचिरोरस्स्थलि नविमल कौस्तुभ प्रभलु निगुड
जॆलुवारु पीत कौशेय चेलमु कासॆ वलनुगा रिंगुलु वार गट्टि

ते. शैब्य सुग्रीव मेघ पुष्पक वलाह-
कमुल बून्चिन तेरायितमुग जेसि
दारकुडु दॆरनॆक्क मोदंबॆलर्प
भानु डुदयाचलंबॆक्कु पगिदि मॆरय ॥ 394 ॥

व. इट्लु रथारोहणबु सेसि भूसुराशीर्वचन पूतुंडुनु महित दूर्वांकुरालंकृतुंडुनु ललित पुण्यांगना कर किसलय कलित शुभाक्षत विन्यास भासुर मस्तकुंडुनु मागध मंजुल गानानुमोदितुंडुनु वंदिजन संकीर्तनानंदितुंडुनु बाठक पठन रव विकासित हृदयुंडुनुनयि वॆडलु नवसरंबुन ॥ 395 ॥

सी. बलभद्र सात्यकि प्रद्युम्न मुख यदु वृष्णि भोजांधक वीर वरुलु
दुर्वार परिपंथि गर्वभेदन कळा चतुर बाहा बलोत्साह लील
वारणस्यंदन वाजि संदोहंबु सवरण सेयिंचि संभ्रममुन
समुचित प्रस्थान चटुल भेरी भूरि घोषमंभोनिधि घोष मडप

युद्धयात्राभिमुखी बनकर प्रयाण-भेरी को पिटवाकर सेना को निकलवाने के लिए वेत्रधारियों को भेजकर वह भी स्वयं सिद्ध हुआ तो ३९३ [सी.] हार, किरीट, केयूर, कंकण, कटक, अंगुलीयक, नूपुर आदि विविध भूषण-प्रतति से अधिक प्रकाशमान होने पर, करों (हाथों) में घन गदा, शंख, चक्र के शोभायमान होने पर, सुरभि-चंदन-लिप्त सुरुचिर उरस्थली पर प्रविमल कौस्तुभ की प्रभाएँ प्रकाशमान होने पर, सुंदर पीत कौशेय चेल (वस्त्र) को एक विचित्र ढंग से फेंटों को बाँधकर, [ते.] शैब्य, सुग्रीव, मेघ, पुष्पक, वलाहकों से जुते हुए रथ को तैयार करके दारक (सारथी) मोद (संतोष) के साथ रथ पर चढ़ा ताकि भानु के उदयाचल पर चढ़ने की तरह प्रकाशमान हो। ३९४ [व.] इस प्रकार रथारोहण करके भूसुरों के आशीर्वचन से पूत (पवित्र), महित दूर्वांकुरालंकृत, ललित पुण्यांगना कर-किसलय-कलित शुभाक्षत विन्यास भासुर मस्तक [वाला], मागध-मंजुल-गानानुमोदित, वंदिजन-संकीर्तनानंदित, पाठक, पठन-रव-विकासित हृदय [वाला] बनकर जाते समय ३९५ [सी.] बलभद्र, सात्यकि, प्रद्युम्न मुख -[आदि], यदु, वृष्णि, भोज, अंधक वीरवर, दुर्वार परिपंथि (शत्रु) के गर्व का भेदन करने की कला में चतुर बाहाबलोत्साहलीला

ते. द्वादशाक्षौहिणी बलोत्करमुलोलि
नडिचॆ गृष्णुनि रथमु वॆन्नंटि चॆलगि
पृथुलगति मुन् भगीरथु रथमु वॆनुक
ननुगमिंचु वियन्नदिननुकरिंचि ! ॥ 396 ॥

व. इव्विधंबुनं गदलि कतिपय प्रयाणंबुल शोणपुरंबु चेरंजनि वेलालंघनंबु चेसि यदुवीरुलंत ॥ 397 ॥

म. सरिदाराम सरोवरोपवन यज्ञस्थानमुल् मापि वे-
परिखल् पूडिचि यंत्रमुल् दुनिमि वप्रव्रातमुल् द्रोब्चि गो-
पुरमुल् गूलग द्रोचि सौध भवनंबुल् नूकि प्राकारमुल्
धरणिं गूल्चि कवाटमुल् विरिचिरुद्दंड क्रियालोलुरै ॥ 398 ॥

व. इट्लनेक प्रकारंबुल गासि चेसि पुरंबु निरोधिंचि पेर्चि यार्चिनं जूचि याग्रह समग्रोग्रमूर्तियुं बोलॆ समर सन्नाह संरंभविजृंभमाणुंडै बाणुंडु संगर भेरि व्रेयिंचिन ॥ 399 ॥

सी. आचक्रवाळाचलाचक्रमंतयु भ्रमसि कुम्मरि सारॆ पगिदि दिरिगॆ
घन घोणि खुर कोटि घट्टित नदमुल करणि नंभोनिधुल् गलगि पॊरलॆ
गाल रुद्राभील-करशूल-हति रालु पिडुगुल गति नुडुबृंदमॆडलॆ
जटुलानिलोद्धूत शाल्मली तूलंबु चाड्पुन मेघमुल् चदल दूलॆ

से वारण (गज) स्यंदन, वाजि (घोड़े) के संदोह (समूह) को सजा कर संभ्रम से समुचित प्रस्थान से चटुल (चलित) भेरी भूरि घोषा के, अंभोनिधि की घोषा (गर्जना) को दबाने पर [ते.] द्वादश अक्षौहिणी-बलोत्कर (-सेना) क्रम से कृष्ण के रथ के पीछे पृथुल गति से इस प्रकार चली जैसे पूर्व काल में भगीरथ के रथ के पीछे अनुगमन करनेवाली वियन्नदी (गंगा) का अनुकरण कर रही हो। ३९६ [व.] इस प्रकार चलकर कतिपय प्रयाणों के पश्चात् शोणपुर में पहुँचकर वेलालंघन कर यदुवीरों ने तब ३९७ [म.] उद्दंड-क्रिया-लोल बनकर सरित्, आराम (वन), सरोवर, उपवन [और] यज्ञस्थानों का नाश करके, परिखाओं को (मिट्टी से) भरकर, यंत्रों को तोड़कर, वप्र व्रातों को (क़िलों को) गिरा कर, गोपुरों को भग्न करके, सौध भवनों को नष्ट करके, प्राकारों को धरणि पर गिरा कर [और] किवाड़ों को तोड़ डाला। ३९८ [व.] इस तरह अनेक प्रकारों से नाश करके पुर का निरोध करके, अतिशय करके (विजृंभित होकर) दबा दिया तो आग्रह से समग्र उग्र मूर्ति की तरह समर-सन्नाह-संरंभ विजृंभमाण बनकर बाण ने युद्ध-भेरी को बजवाया तो ३९९ [सी.] वह सारा चक्रवाल-अचला (पृथ्वी) चक्र भ्रम में पड़कर कुम्हार-चक्र-सम घूम गया। घन

ते. गिरुलु वडकाडॅ दिवि पॅल्लगिल्लॅ सुरल
गुंडॅलविसॅ रसातल क्षोभमॊंदॆ
दिक्कुलदरॅ विमानमुल् दॆरलि चॆदरॅ
गलगि ग्रहराज चंद्रुल गतुलु दप्पॆ ॥ 400 ॥

व. अट्ट समर सन्नाहंबुनकु गट्टायितंबै मणिखचित-भर्म-वर्म-निर्मलांशु-जालंबुलुनु, शिरस्त्राण किरीट कोटि घटित विनूत्न रत्नप्रभा पटलंबुलुनु, कनककुंडल ग्रैवेय हार कंकण तुला कोटि विविध भूषणव्रात रुचि निचयंबुलुनु, प्रचंड बाहुदंड सहस्रंबुन वॆलुंगु शरशरासन शक्ति प्रास तोमर गदा कुंत मुसल मुद्गर भिंदिवाल करवाल पट्टिस शूल क्षुरिका परशु परिघादि निशात हेतिव्रात दीधितुलुनु, वियच्चर कोटि नेत्रंबुलकु मिरुमिट्लु गॊलुप, गनकाचल शृंग समुत्तुंगंबगु रथंबॆक्कि यरातिवाहिनी-संदोहंबुनकुं दुल्यंबैन निज सेना समूहंबुलिरु गडल नडव बाणुंडक्षीण प्रतापंबु दीपिंप ननिकि वॆडलॆ, नय्यवसरंबुन ॥ 401 ॥

घोणी (वराह) के खुरों की नोकों से भरे हुए नदों की तरह अंभोनिधि व्याकुल होकर प्रवाहमान हो गये। कालरुद्र के भयंकर कर (हस्त) के शूल से आहत होकर झड़नेवाली बिजलियों की तरह उडुवृंद (नक्षत्र-समूह) विच्छिन्न हुआ। शीघ्र अनिलोद्धूत शाल्मली-तूल की तरह मेघ छँट गये। [ते.] गिरि कंपित हुए। दिवि (स्वर्ग) उखड़ गयी। सुरों के हृदय फट गये। रसातल क्षोभित हुआ। दिशाएँ फड़क गयीं। विमान विचलित हो गये। ग्रहराज (सूरज) [और] चन्द्रमा की गतियाँ व्याकुल होकर भ्रष्ट हो गयीं। ४०० [व.] ऐसे समर-सन्नाह के लिए अच्छी तरह संसिद्ध होकर मणिखचित भर्म-वर्म के निर्मल-अंशु-जाल, शिरस्त्राण-किरीट-कोटि-घटित-विनूत्न-रत्न-प्रभा-पटल, कनक-कुंडल-कंठहार-कंकण-तुला-कोटि-विविध-भूषण-समूह-रुचि-निचय, प्रचंड-बाहुदण्ड-सहस्र में प्रकाशमान शर-शरासन, शक्ति, प्रास, तोमर, गदा, कुन्त, मुसल, मुदगर, भिंडिवाल, करवाल, पट्टिस, शूल, क्षुरिका, परशु, परिघ आदि निशात, हेतिव्रात की प्रभाएँ वियच्चरकोटि के नेत्रों में चकाचौंध पैदा करने लगीं तो कनकाचल-शृंग-सम उत्तुंग रथ पर चढ़कर, अराति-वाहिनी-संदोह के तुल्य-निज-सेना समूह के उसके (बाण के) दोनों पार्श्वों में चलने पर, बाण (असुर) [अपने] अक्षीण प्रताप के दीप्त होने पर युद्ध करने चला। उस समय पर ४०१

बाणासुरुनिकि सहायभूतुंडगु शिवुनकु कृष्णुनकु युद्धमगुट

च. वरदुडुदार भक्तजन वत्सलुडैन हरुंडु बाणुनि
गर मनुरक्ति नात्मजुलकंटे दयामति जूचु गान दा
दुरमोनर्चि वेडुक ब्रमथुल् गुहुडुन् निजभूत कोटियुन्
सरस भजिप नुज्ज्वल निशात भयंकर शूलहस्तुडै ॥ 402 ॥

सी. खुर पुटाहति रेगु धरणीपरागंबु पंकेरुहाप्त बिंबंबु वीडुव
विपुल वालाटोप विक्षेप जात वाताहति वारिवाहमुलु विरिय
गुरुच तिन्ननि वाडि कोम्मुल जिम्मिन ब्रह्मांड भांड कर्परमु वगुल
नलवोक बोलें खणिल्लनि ऱंकें वैचिन रोदसी-कुहरंबु भेदिलंग-

ते. गळ चलद्भर्म घंटिका घणघण प्र-
घोषमुन दिक्तटंबुलाकुलत नोंद
नील नडतेंचु कलधौत शैलमनग
नुक्कु मिगिलिन वृषभेंद्रु नेक्कि वेडलें ॥ 403 ॥

व. इट्लु वेडलि समर सन्नाह समुल्लासंबु मोगंबुलकु विकासंबु नापादिपं
प्रतिपक्षबलंबुल तोडं दलपडिन द्वंद्व युद्धंबय्ये नप्पुडप्पुरातन योधुल
यायोधनंबु जूचु वेडुक जनुदेंचिन सरसिजसंभव प्रमुख निखिल सुर मुनि

बाणासुर के सहायक शिव और कृष्ण का युद्ध होना

[च.] वरद और उदार भक्तजनवत्सल [होनेवाला] हर (शिव) बाण (असुर) को अधिक अनुरक्ति से आत्मजों से भी अधिक दयामति से देखता है; इसीलिए स्वयं युद्ध करने के कुतूहल से प्रमथ (गण), गुह (कुमार स्वामी) और निज भूत-कोटि (-समूह) के सरस होकर भजने पर (सेवा करने पर) उज्ज्वल निशात भयंकर शूलहस्त होकर, ४०२ [सी.] खुरपुटों से आहत होकर उड़नेवाले धरणी-पराग से पंकेरुह-प्त-बिंब (सूर्यबिंब) के ढके जाने से, विपुल वालाटोपों के विक्षेप से उत्पन्न वाताहति से वारिवाहों (बादलों) के बिखर जाने से, छोटे, सीधे और तेज (नुकीले) सींगों से बिखेर दिये जाने पर ब्रह्मांड-भांड के कर्पर (ऊपर का भाग) के टूट जाने पर, लीलायुक्त हो जोर से रँभाने पर रोदसी कुहर के फट जाने पर [ते.] कंठ में चंचल होनेवाले भर्म घंटिकाओं के घड़घड़-प्रघोष से दिक्तटों के व्याकुल होने पर, मानो, विलासयुक्त हो आनेवाला कलधौत-शैल हो, प्रतापी वृषभेंद्र पर सवार होकर निकल पड़ा। ४०३ [व.] इस प्रकार निकलकर समर-सन्नाह-समुल्लास के मुखों को विकसित करने पर प्रतिपक्ष सेना का सामना करने पर द्वंद्व-युद्ध हुआ। तब उन पुरातन योद्धाओं के युद्ध को देखने के कुतूहल से आये हुए सरसिज-संभव

यक्ष राक्षस सिद्ध साध्य चारण गंधर्व किन्नर किंपुरुष गरुडोरगादुलु निज विमानारूढुलै वियत्तलंबुन निलिचिरट्टियेडं गृष्णुंडुनु हरुंडुनु मारुंडुनु गुमारुंडुनु गूपकर्ण कुंभांडुलुनु गामपालुंडुनु वाणपुत्रुंडगु वलुडुनु सांबुंडुनु सात्यकियुनु बाणुंडुनु रविकुलु रथिकुलुनु, नाश्विकुलु नाश्विकुलुनु, गजारोहकुलु गजारोहकुलुनु, वदातुलु वदातुलुं दलपडि यितरेतर हेति संघट्टनंबुल मिड्गुरुलु सॅदरं वरस्पराह्वान विरुदांकित सिंहनाद हुंकार शिंजिनी टंकार वारण घींकार वाजिहेषारवंबुलनु बटह काहळ भेरी मृदंग शंख तूर्य घोषंवुलनु ब्रह्मांड कोटरंबु परिस्फोटितंबय्ये नय्यवसरंबुन ॥ 404 ॥

च. जलरुह नाभुडार्चि निज शाङ्र्ग शरासन मुक्त सायका-
वलि निगिडिचि नॉर्चॅ वुरवैरि पुरोगमुलन् रणक्रिया-
कलितुल गुह्यक प्रमथ कर्बुर भूत पिशाच डाकिनी
वलवदराति योधुलनु वम्मॅर पोयि कलंगि पाड्गन् ॥ 405 ॥

व. इट्लेसि यार्चिन कुंभिनीधरु भुजा विजृंभण संरंभंवुनकु सहिंपक निटलांबकुंडनल कणंबुलुमियु निशितांबकंबुलं बीतांबरुनि नेसिन वानिनर्जिटि नडुमन प्रतिवाणंवुलेसि चूर्णंवुलु सेसिनं गनुंगोनि मड्रियुनु ॥ 406 ॥

आदि निखिल सुर, मुनि, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, साध्य, चारण, गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, उरग आदि अपने-अपने विमानारूढ़ होकर वियत्तल पर खड़े रहे। उस समय कृष्ण ने हर का, मार ने कुमार का, कूपकर्ण ने कुंभांड का, काम-पाल ने वाण-पुत्र वल का सांव और सात्यकि ने वाण का, रथिकों ने रथिकों का, आश्विकों ने आश्विकों का, गजारोहकों ने गजारोहकों का, पदातियों ने पदातियों का सामना किया और इतरेतर हेति-संघट्टनों से अग्निकणों के बिखर जाने पर परम्पराह्वान विरुदांकित सिंहनाद हुंकार-शिंजिनी-टंकार-वारण-घींकार-वाजि-हेषारवों से और पटह-काहल-भेरी-मृदंग-शंख-तूर्य-घोषों से ब्रह्मांड-कोटर परिस्फोटित हुआ। उस अवसर पर ४०४ [च.] जलरुहनाभ (कृष्ण) ने गरजकर निज शाङ्र्ग शरासनमुक्त सायकों को संधान करके पुरवैरि (शिव) के पुरोगामियों को, रणक्रियाकलितों को, गुह्यक, प्रमथ, कर्बुर (राक्षस), भूत, पिशाच, डाकिनी, बलवदराति योद्धाओं को ऐसे पीड़ित किया कि वे भ्रम में पड़कर और व्याकुल होकर भाग जायँ। ४०५ [व.] इस प्रकार मारकर गरजे हुए कृष्ण के भुजा-विजृंभण-संरंभ को न सहकर निटलांबक (शिव) ने अनल-कणों को उगलनेवाले निशित वाणों को पीतांवर पर छोड़ दिया तो उन सवको वीच ही में प्रतिवाणों को छोड़कर चूर्ण किया हुआ देखकर

म. अनलाक्षुंडु त्रिलोक पूज्यमगु ब्रह्मास्त्रं बरिबोसि या-
वनजातेक्षणु मीद क्रोध महिमा-व्याकीर्णुडै येसॅ ने-
सिन वद्दिव्य शरंबु चेतनॅ मरल्चॅ गृष्णुडत्युद्धतिन्
जनिताश्चर्य रसाब्धि-मग्नुलगुचुन् शक्रादुलग्गिपगन् ॥ 407 ॥

शा. वायव्यास्त्रमुपेंद्रुपै नलिगि दुर्वारोद्धतिन्नेय दै-
तेय ध्वंसियु बार्वताशुगमुचे द्रॅचॅ ग्रतुध्वंसि या-
ग्नेयास्त्रंबडरिचॅ नुग्रगति लक्ष्मीनाथुपै दानि वे-
मायं जेसॅनु नैंद्रबाणमुन वद्माक्षुंडु लीलागतिन् ॥ ॥ 408 ॥

व. मरियुनु ॥ 409 ॥

उ. पायनि क्रिन्कतो हरुडु पाशुपतास्त्रमु नारि बोसिनन्
दोयरुहायताक्षुडुनु दोडन लोक-भयंकरोग्र ना-
रायण बाण राजमु रयंबुन नेचि मरल्चॅ दानि ज-
क्रायुधुडित्तॅरंगुन बुरारि शरावलि रूपु मापिनन् ॥ 410 ॥

कं. ऊह कलंगियु विगतो,-त्साहुंडगु हरुनिमीद जलजाक्षुडु स-
म्मोहन शिलीमुखं ब,-व्याहत जय शालि यगुचु नडरिचॅ नृपा ! ॥ 411 ॥

व. अट्लेसिन ॥ 412 ॥

कं. जृंभण शरपातमुचे, शंभुडु निज तनुवु परवशंबयि सोलन्
जृंभितुडै घन निद्रा,-रंभमुन वृषेंद्र मूपुरमुपै व्रालॅन् ॥ 413 ॥

और ४०६ [म.] अनलाक्ष (शिव) ने त्रिलोक-पूज्य होनेवाले ब्रह्मास्त्र को मंत्रित करके क्रोध-महिमा-व्याकीर्ण बनकर उस वनजातेक्षण (कृष्ण) पर ऐसे छोड़ देने पर, कृष्ण ने बड़ी उद्धति से उसे दिव्य शर से लौटा दिया ताकि शक्र (इंद्र) आदि जनिताश्चर्य-रसाब्धि-मग्न होते हुए उनकी (कृष्ण की) प्रशंसा करें। ४०७ [शा.] क्रोधित होकर दुर्वार उद्धति से वायव्यास्त्र को उपेन्द्र पर डाला तो क्रतुध्वंसि (शिव) ने दैतेय-ध्वंसि होनेवाले पार्वताशुग [नामक अस्त्र] से [उसे] तोड़ डाला; उग्र गति से लक्ष्मीनाथ पर आग्नेयास्त्र को डाला तो पद्माक्ष ने लीलागति से (आसानी से) ऐन्द्र-बाण से उसे रोका। ४०८ [व.] और ४०९ [उ.] बने रहनेवाले क्रोध से हर ने पाशुपतास्त्र को छोड़ दिया तो तोयरुहायताक्ष (कृष्ण) ने तुरन्त लोक-भयंकर [और] उग्र [होनेवाले] नारायण-बाण-राज को जल्दी डालकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार चक्रायुध ने पुरारि की शरावली का नाश किया तो ४१० [कं.] ऊहा (सोच) के व्याकुल होने पर भी विगतोत्साह होनेवाले हर पर जलजाक्ष ने अव्याहत जयशाली बनते हुए सम्मोहन शिलीमुख को डाल दिया। ४११ [व.] ऐसे डालने पर ४१२ [कं.] जृंभण शरपात से शंभु निज तनु के परवश होकर

व. इट्लु व्रालिनं जक्रपाणि परबलंबुल निशितवाणपरंपरलं वुनिमियु नोक्कयेडं गृपाणंबुलं गणिकलु सेसियु नोक्क चोट गदा हतुलंवुत्तुमुरुगा मोत्तियु निव्विधंबुन वीनुंगु बेंटलु गाविचें नंत ॥ 414 ॥

च. तरिमि मुरांतकात्मजुडुदात्त श्लंबुन वाहुलेयुपै
गरुकरि दाकि तीव्र शित कांड परंपर सेसि नोपगा
नेरुकुलु गाडिपै दोरगु नेत्तुट जोत्तिलि वैरुलार्वगा
बरचें मयूर वाहनमु वेकोनि तोलुचु नाजिभीतुडै ॥ 415 ॥

उ. पंबि रणक्षितिन् शर विपाटित शात्रववीरुडेन या
सांवुडु हेमपुंखशित सायक जालमु लेचि भूरि को-
पंबुन नेसिनन् बेदरि वाण तनूभवु डोडि पारे शौ-
र्यंबुनु वीरमुं दगवु नारुडि बोव बलंबुलार्वगन् ॥ 416 ॥

म. वरबाहा बलशालि या हलि रणावष्टंभसंरंभ वि-
स्फुर दुग्राशनितुल्यमैन मुसलंबु वून्चि व्रेसेन् वोरिन्
वोरि गुंभांडक कूप कर्णुलु शिरंबुल् व्रस्सि मेदंबु ने-
त्तुरु गर्णबुल वातनुं दोरगि संधुल् व्रोलि वे चावगन् ॥ 417 ॥

व. अट्टियेड सैन्यंबु दैन्यंबु नोंदि यनाथंबयि चेंडि विरिगि पारिनं गनि बाणुंडु सात्यकि गेडिचि प्रळयाग्नियुंबोलें बिजृंभिचि चेयिवीचि बलंबुल मरलं

गिरने पर, जृंभित होकर घन निद्रारंभ में वृषेंद्र के कंधे पर झुक गया ४१३ [व.] इस प्रकार झुक जाने पर चक्रपाणि ने पर-बल (शत्रु-सेना) को निशित-वाण-परंपराओं से काटकर एक जगह पर कृपाणों को तोड़कर [और] एक जगह पर गदाहतों को टुकड़े-टुकड़े बनाकर इस तरह शवों के ढेर लगाये तो ४१४ [च.] मुरांतकात्मज ने उदात्त बल से बाहुलेय [कुमार स्वामि] पर काठिन्य से लगकर तीव्र शित कांड-परंपरा को छोड़कर पीड़ित किया तो पंखों के घावों से रक्त के वहने पर [और] वैरियों के हलचल मचाने पर वह स्वयं मयूरवाहन पर सवार होकर हाँफते हुए आजि (युद्ध)-भीत बनकर भाग गया। ४१५ [उ.] अतिशय होकर रणक्षिति (युद्धभूमि) पर शरविपाटित शात्रव वीर सांव ने हेमपुंख-शित-सायक-जाल (समूह) को निकालकर भूरि (बड़े) कोप के साथ डाल दिया तो डरकर वाण-तनूभव हारकर भाग गया; जब बल व्यर्थ हो जाता है, तब शौर्य और गर्व अच्छे नहीं लगते। ४१६ [म.] वर (श्रेष्ठ) बाहाबल-शाली होनेवाले उस हलि (बलराम) ने रणावष्टंभ-संरंभ-विस्फुरत् उग्र अशनि-तुल्य मुसली को निशाना लगाकर डाल दिया तो कुंभाण्डक तथा कूपकर्णों के सिर कटकर भूमि पर ऐसे गिर गए कि कर्णों से रक्त बहा और संधियाँ टूटकर मर गए। ४१७ [व.] तब [अपनी] सेना को

बुरिकोलिप तानुनु मुंगलियै नडचॆ, नप्पुडुभय सैन्यंबुलन्योन्यजयकांक्षं दलपडु दक्षिणोत्तर समुद्रंबुल रौद्रंबुन मीकं दाकिनं बोरु घोरंबय्यॆ, अट्टि यॆड गदल नडिचियु गुठारंबुलं बोडिचियु सुरियलं ग्रुम्मियु शूलंबुल जिम्मियु शक्तुल नॊचियु जक्रबुलं द्रुंचियु मुसलंबुल मॊत्तियु मुद्गरंबुल नॊत्तियु गुंतंबुल ग्रुच्चियु बंतंबु लिच्चियु बरिघंबुल नॊंचियु बट्टिसंबुलं द्रुंचियु शरंबुल नेसियु गरवालंबुल व्रेसियु सत्रासुलै पासियु वित्रासुलै डासियु बॆनंगिनं दुनिसिन शिरंबुलुनु दुनुकलैन करंबुलुनु दॆगिन काळ्ळुनु द्रॆस्सिन व्रेळ्ळुनु द्रुमुरुलैन यॆमुकलुनु ब्रोवुलैन प्रेवुलुनु नुलिसिन मेनुलुनु नलिसिन जानुवुलुनु नॊगिलिन वर्मबुलुनु बगिलिन चर्मंबुलुनु बिकलंबुलयिन सकलावयवंबुलुनु विशीर्णंबुलयिन कर्णंबुलुनु विच्छिन्नंबुलयिन नयनंबुलुनु वॆडलु रुधिरंबुलुनु बडलु पडु बलंबुलुनु गॊडल वडुवुनंबडु मांस खंडंबुलुनु वाचङ्चु कॊऱ प्राणंबुलुनु व्रालिन तेरुलुनु गूलिन करुलुनु नॊऱमिन गुर्रंबुलुनु दॆरलिन कालुबलंबुलुनु गलिगि पलल खादन कुतूहल जनित मदांधीभूत पिशाच डाकिनी भूत बेताळ समालोल कोलाहल भयंकरा-राव बधिरीकृत सकल दिशावकाशंबयि संगरांगणंबु भीषणंबय्यॆ नय्यवसरंबुन ॥ 418 ॥

दीनता को पाकर, अनाथ होकर बिगड़कर, भग्न होकर भाग जाते हुए देखकर बाण सात्यकि की परवाह न करके प्रलयाग्नि की तरह, विजृंभित होकर, हाथ हिलाकर, सेना को फिर प्रोत्साहित करके वह स्वयं आगे चला। तब दोनों सेनाओं ने अन्योन्य जयकांक्षा से आक्रमण करनेवाले दक्षिणोत्तर समुद्रों के रौद्र से सेना का सामना किया तो घोर युद्ध हुआ। उस समय गदाओं से दबाकर, कुठारों से चुभोकर, कटारों से भोंककर, शूलों से मारकर, शक्तियों से दबाकर, चक्रों से तोड़कर, मुसलों से आहत करके, मुद्गरों से पीड़ित कर, भालों से चुभो कर, पौरुष दिखाकर, परिघों से झुकाकर, पट्टिसों से काटकर, शरों से मारकर, करवालों से हिंसा पहुँचाकर, सत्रास बनकर दूर जाकर, वित्रास बनकर पास आकर [परस्पर] युद्ध करने पर कटे हुए सिरों, टूटे हुए करों (हाथों), कटे हुए पैरों, पिसी हुई अँगुलियों, टूटी हुई हड्डियों, ढेरों मे लगी हुई आँतड़ों, पिसे हुए शरीरों, जानुओं, विकलित वर्मो, फटे हुए चमड़ों, विकल सकल अवयवों, विशीर्ण कर्णो, विच्छिन्न नयनों, प्रवाहमान रुधिरों, राशियों में पड़ी हुई सेनाओं, पहाड़ों की तरह गिरे हुए मांस-खंडों, पुकारते हुए अंतिम प्राणों, गिरे हुए रथों, मरे हुए हाथियों, रोते हुए घोड़ों, और व्याकुल प्यादों से, मांस-खादन के कुतूहल से जनित मद के कारण अंधीभूत पिशाच, डाकिनी, भूत, भेतालों से समालोल कोलाहल से [उत्पन्न] भयंकर आराव (ध्वनि) से

च. शरकुमुवंबु नुल्लसित चामर फेनमु नातपत्र भा-
सुर नवपुंडरीकमुनु शोणित तोयमु नस्थिसैकतो-
त्करमु भुजा भुजंगम निकायमु केशकलाप शैवल-
स्फुरण रणांगणंबमरॆ बूरित शोण नवंबु पोलिकन् ॥ 419 ॥

व. अट्टियॆड बाणुंडु कट्लुकन् गृष्णुनिपै दन रथंबु वरपिंचि यखर्व बाहासहस्र दुर्वार गर्वाटोप प्रदीप्तुंडै कदिसि ॥ 420 ॥

म. ऒक येनूरु करंबुलन् धनुवुलत्युग्राकृति दाल्चि त-
क्कक पॊंवक्कॊवकट सायक द्वयमु वीकं बून्चु नालोन नं-
दकहस्तुंडु तदुग्रचापचय विध्वंसंबु गाविंचि कॊं-
जक तत्सारथि गूल नेसि रथमुं जक्काडि शौर्योद्धतिन् ॥ 421 ॥

ते. प्रळय जीमूतसंघात भयद भूरि
भैरवारावमुग नॊत्तॆ बांचजन्य
मखिल जनुलु भय भ्रांतुलै चलिप
गर्भगि निर्भिन्न राक्षसी गर्भमुगनु ॥ 422 ॥

व. अट्टि यवक्र विक्रम पराक्रमंबुनकु वॆंगडुपडि बाणुंडु व्रेलु मोगंबु वडि सेयुनदि लेक विन्ननयि युन्नयॆड ॥ 423 ॥

वधिरीकृत सकल दिशावकाश होकर समरांगण भीषण हुआ । तव ४१८ [च.] शर रूपी-कुमुदों से, उल्लसित चामर रूपी फेन से, आतपत्र रूपी भासुर नव-पुंडरीकों से, शोणित (प्रवाह) रूपी तोय (जल) से, अस्थि रूपी सैकतोत्कर से, [कटी हुई] भुजा रूपी भुजंगों से सैनिकों के केश-कलाप रूपी शैवाल से स्फुरित होनेवाला रणांगण, पूरित पूर्ण शोण नदी की तरह दिखाई पड़ा । ४१९ [व.] तव बाणासुर वड़े क्रोध से कृष्ण पर अपने रथ को दौड़ाकर अखर्व-वाहा-सहस्र-दुर्वार-गर्वाटोप से प्रदीप्त होकर समीप में जाकर ४२० [म.] एक पाँच सौ करों से धनुओं को अति उग्र आकृति से धारण करके, वाक़ी (पाँच सौ हाथों में) एक-एक (हाथ) में सायक (तीर) द्वय को लेने लगा तो इतने में नंदक-हस्त (कृष्ण) ने तत् उग्र चापचय का विध्वंस करके संदेह किये बिना उसके सारथि को मारकर-शौर्य की उद्धति से रथ का खंडन करके ४२१ [ते.] प्रलय (काल के) जीमूत (मेघ) संघात (समूह) [की तरह] भयद-भूरि-भैरव (भयंकर) आराव (शब्द) से यत्न करके पांचजन्य को (शंख को) फूंका ताकि अखिल जन भयभ्रान्त होकर, चलित हो जायँ [और] राक्षसी-गर्भ निर्भिन्न हो जायँ । ४२२ [व.] ऐसे अवक्र विक्रम पराक्रम को [देख] चकित होकर वाण किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर उदास हो दुःखित रहा तो ४२३

सी. अत्तरि गोटरयनु बाण जनयित्रि सुतु गाचु मतमु सन्मति दलंचि
वीडि शिरोजमुल् वेलंग निर्मुक्त परिधानयै मुरासुर विभेदि
येंदुर निल्चिन जूड मदि जाल रोसि पराङ्मुखुडै युन्न ननुवु वेचि
तल्लडिचुचु बाणुडुल्लंबु गलगंग दलचीर वीडि यादवुलु नव्व

ते. नव्य कांचन मणि भूषणमुलु राल
बादहति नेल गंपिप बाद्रि यात्म-
पुरमु वडि जॉच्चे नप्पुडु भूतगणमु-
नरुगुटयुनु ॥ 424 ॥

कं. लाकुलत तोड नॅक्कटि भी-
शिरमुलु मूडुनु घन
कर पदमुलु मूडु गलिगि कनलि महेश-
ज्वर मुरु घोराकृतितो
नरुदेरग जूचि कृष्णुडल्लन नगुचुन् ॥ 425 ॥

वैष्णवज्वरमुचे बराजितंबै शैवज्वरमु श्रीकृष्णनि स्तुतिचुट

च. परुवडि वैष्णवज्वरमु बंचिन नय्युभय ज्वरंबुलुन्
वॅरंवुनु लावु जेवयुनु वीरमु बीरमु गलिग घोर सं-
गर मौनरिप नंदु गर कंठकृत ज्वर मुग्र वैष्णव
ज्वरमुन कोडि पारॅ ननिवारण वैष्णवि वॅट नंटगन् ॥ 426 ॥

[सी.] तब कोटरा नामक बाण की जनयित्री [अपने] सुत की रक्षा करने का मत (उपाय) सन्मति से विचार करके, शिरोजों के खुलकर लटकने पर निर्मुक्त-परिधाना (विवस्त्रा) बनकर मुरासुर विभेदी के सामने खड़ी रही तो [उसे] देखकर [कृष्ण] मन में बहुत घृणा करके [और] पराङ्मुख रहा तो अवसर की ताक में रहकर, चलित होते हुए बाण [अपने] मन के व्याकुल होने पर, पगड़ी को छोड़कर, जिससे यादव जिससे पड़े, [ते.] नव्य काञ्चन-मणि-भूषणों के झड़ जाने पर [उसकी] पादाहति से भूमि के कंपित होने पर, हटकर आत्मपुर में शीघ्रता से घुसा। तब भूतगण व्याकुलता से, जहाँ जावें वहाँ, ४२४ [कं.] तीन शिरों और घन-भीकर पदों से, क्रोधित होकर उरु (बड़ी) घोराकृति से महेश ज्वर के व्याप्त होने पर [उसे] देखकर, कृष्ण धीरे-धीरे हँसते हुए ४२५

वैष्णवज्वर से पराजित होने पर शैवज्वर का श्रीकृष्ण की स्तुति करना

[च.] इसके बाद वैष्णवज्वर को भेजने पर उन उभय ज्वरों की युक्ति, बल, सार, वीर [और] पराक्रम के साथ घोर संग्राम करने पर, उनमें करकंठकृत ज्वर उग्र वैष्णव-ज्वर से हारकर भाग गया और अनिवारण

ते. पारि ये दिक्कु गानक प्राण भीति
नॆनसि येड्चुचु नाहृषीकेशु पाद-
कंजमुल बडिननु गावु कावुमनुचु
निटलतट घटितांजलिपुटयु नगुचु ॥ 427 ॥

व. इट्लु विनुतिचॆ ॥ 428 ॥

सी. अव्ययु ननघु ननंत शक्तिनि बरुलैनट्टि ब्रह्मरुद्रामरेंद्र
वरुल कीश्वरुडैन वानि सर्वात्मकु ज्ञानस्वरूपु समानरहितु
वरदुनि जगदुद्भवस्थिति-संहार-हेतुभूतुनि हृषीकेशु नभवु
ब्रह्म चिह्नंबुलै परगु सुज्ञानशक्त्यादुल नॊप्पु ब्रह्मंबु नीशु

आ. नजु षड्र्मि-रहितु निज योगमाया वि-
मोहिताखिलात्मु मुख्य चरितु
महिततेजु नादि मध्यांतहीनुनि
चिन्मयात्मु निनु भजितु गृष्ण ! ॥ 429 ॥

व. अदियुनुंगाक लोकंबुन देवंबनेक प्रकारंबुलै युंडु नदि यॆट्टिदनिनं गळा-
काष्ठामुहूर्तंबुल नंगल कालंबुनु सुकृत दुष्कृतानुभव रूपंबुलैन जीवकर्मं-
बुलुनु स्वभावंबुनु सत्त्वरजस्तमो गुणात्मकंबैन प्रकृतियुनु सुखदुःखाश्रयंबैन
शरीरंबुनु जगज्जंतु निर्वाहकंबैन प्राणंबुनु सकल पदार्थ परिज्ञान कारणंबैन

वैष्णवी उसका पीछा करने लगी। ४२६ [ते.] भागकर [और] बचने का कोई मार्ग न देखकर प्राण-भीति को पाकर, रोते हुए उस हृषीकेश के पाद-कंजों पर गिरकर "मुझे बचाओ, बचाओ" यों कहते हुए निटल-तटि-घटित अंजलिपुट वाले होते हुए [उसने] ४२७ [व.] इस प्रकार विनती की ४२८ [सी.] "हे कृष्ण, अव्यय, अनघ, अनंत शक्ति से पर (दूसरे) होनेवाले, ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्र वरों के ईश्वर होनेवाले, सर्वात्मा, ज्ञानस्वरूप, समान रहित, वरद, जगत् के उद्भव-स्थिति, संहार-हेतु-भूत [होनेवाले] हृषीकेश, अभव, ब्रह्मचिह्न होकर प्रकाशमान होनेवाले सुज्ञान-शक्ति आदि से प्रकाशमान ब्रह्म, ईश, [आ.] अज, षड्र्मि-रहित, निजयोगमाया से विमोहित अखिलात्मा, मुख्यचरित्र वाले, महित तेजस्वी, आदि-मध्यांत-हीन [और] चिन्मयात्मा होनेवाले तुम्हारा भजन करता हूँ। ४२९ [व.] "इसके अतिरिक्त लोक में देव अनेक प्रकार से विद्यमान रहता है। वह कैसा है, यह पूछा जाय तो— कला-काष्ठा-मुहूर्त कहलानेवाला काल, सुकृत-दुष्कृत, अनुभव रूपी जीव कर्म, स्वभाव, सत्त्व-रजस्तमोगुणात्मक प्रकृति, सुख-दुःखाश्रय होनेवाला शरीर, जगज्जंतु-निर्वाहक होनेवाला प्राण,

यंतःकरणंबुनु महदहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध तन्मात्र तत्कार्यभूत गगन पवनानल सलिल धरादि पंचभूतंबुलु नादिगा गल प्रकृति विकारंबुलुनु नन्निटि संघातंबुनु बीजांकुरन्यायंबुनं गार्य कारण रूप प्रवाहंबुनुनै जगत्कारण शंकितंबै युंडुनदि यंतयु भवदीय माया विडंबनंबु गानि युन्नदि कादु। तदीय माया निवर्तकुंडवैन नीवु नाना विध दिव्यावतारादि लीललं जेसि देवगणंबुलनु सत्पुरुषुलनु लोक निर्माण-चणुलैन ब्रह्मादुलनु बरिरक्षिंचुचु लोक-हिंसा प्रवर्तकुलैन दुष्ट मार्ग गतुल गूरात्मुल हिंसिंचुचुंदुवु। विश्वविश्वंभराभार निवारणंबु सेयुटकु गदा भवदीय दिव्यावतार प्रयोजनंबु गावुन निन्नु शरणंबु वेडेद ॥ 430 ॥

सी. शांतमै महित तीक्ष्ण सुदुस्सहंबै युदारमै वलुगोंदु तावकीन
भूरि भास्वत्तेजमुन दापमोंदिति गडु गृशिंचिति नन्नु गरुण जूडु-
मितर देवोपास्ति रति मानि नी पाद कमलमुल् सेविंचु विमल बुद्धि
येंदाक मदि दोपदंदाकने कदा प्राणुलु निखिल तापमुल वडुट

ते. यविरळानन्यगतिकुल नरसि प्रोचु
बिरुदु गल नीकु ननु गाचुटरुदे देव!

सकल पदार्थ परिज्ञान कारण होनेवाला अंतःकरण, महदहकार-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध-तन्मात्र-तत्कार्य-भूत-गगन, पवन, अनल, सलिल, धरा आदि पंच भूत आदि से युक्त प्रकृति विकार और सबके संघात, बीजांकुर न्याय से कार्य-कारण-रूप प्रवाह बनकर जगत्कारण शंकित होकर रहनेवाला सब कुछ भवदीय माया-विडंबन ही है; [वह] स्थित नहीं है। तदीय माया-निवर्तक होनेवाले तुम नाना विधि दिव्यावतार आदि लीलाओं को रचकर देवगणों को, सत्पुरुषों को और लोक-निर्माणचण होनेवाले ब्रह्मा आदियों की रक्षा करते हुए लोक-हिंसा-प्रवर्तक होनेवाले दुष्टमार्गगत क्रूरात्माओं की हिंसा करते हो। विश्व-विश्वंभराभार निवारण करने के लिए ही है न, भवदीय दिव्य अवतार का प्रयोजन! इसलिए तुम्हारी शरण में आयी हूँ। ४३० [सी.] "हे देव! प्रविमलाकार संसार के भय को दूर करनेवाले, भक्तजनों का पोषण करके उनको परितोष (संतोष) देनेवाले और परमपुरुष! शांत, महित, तीक्ष्ण [और] सुदुस्सह होकर [और] उदार होकर प्रकाशमान होनेवाले तावकीन भूरि भास्वत् तेज से [मैंने] ताप को पाया, अधिक कृश बना, मुझ पर करुणा दिखाओ। इतर देवों की उपास्ति (सेवा) की रति (लगाव) को छोड़कर तुम्हारे पाद-कमलों की सेवा करने की [ते.] विमल बुद्धि जब तक मन में न सूझती तब तक ही न, प्राणी निखिल तापों को पाते हैं। अविरल अनन्य

प्रविमलाकार संसार भयविदूर
भवत जनपोष ! परितोष ! परमपुरुष ! ॥ 431 ॥

च' अनिन, बसन्नुडै हरि यनंतुडु दैत्य-विभेदि दानि कि-
ट्लनियॆ मदीय साधन मनन्य निवारणमौट नी मदि
गनि ननु नाति जॊच्चितिवि कावुन मज्ज्वरतीव्रदाहवे-
दन निनु बॊदर्दिक बरितापमु दक्कुमु नी मनंबुनन् ॥ 432 ॥

व. अनि मरियु नप्पुंडरीकाक्षुंडिट्लनु, नॆव्वरेनियु नी युभयज्वर विवादंबुनु नीवु मत्प्रपत्ति जॊच्चुटयु जित्तंबुलं दलंतुरट्टि पुण्यात्मुलु शीतोष्ण ज्वरादि तापंबुलं बॊरयरनि यानतिच्चिन नम्महेश्वर ज्वरंबु परमानंद भरित हृदयंबयि या रथांग पाणिकि साष्टांग दंड प्रणामं वाचरिंचि निजेच्छं जनियॆ । अंत बाणासुरुंडु नक्कड ॥ 433 ॥

बाणासुरुडु रॆंडव सारि युद्धमुनकु वच्चुट

सी. कमनीय किंकिणी घंटिका साहस्र घण घण ध्वनि चेत गगनमगल
नन्यजनालोक नाभील तरळोग्र कांचन ध्वजपताकलु वॆलुंग
बृथुनेमि घट्टन बृथिवि कंपिपंग वलनॊप्प वट्टु जवाश्वमुल बून्चि-
नट्टि युन्नत रथंबत्युग्रगति नॆक्कि कर सहस्रमुन शीकरतरासि

गति वालों को जानकर [उनका] पोषण करने का विरुद (खिताब) रखनेवाले तुमको क्या मेरी रक्षा करना कष्ट है ?" ४३१ [च.] इस तरह कहने पर प्रसन्न होकर हरि, अनन्त, दैत्यविभेदी ने उससे इस प्रकार कहा, "मदीय साधन के अनन्य निवारण होने से अपने मन में देखकर (जानकर) मेरी शरण में आये हो; इसलिए मज्ज्वर-तीव्र-दाह-वेदना अब तुम्हें न होगी; अपने मन के परिताप (दुःख) को छोड़ दो।" ४३२ [व.] इस प्रकार कहकर फिर उस पुंडरीकाक्ष ने यों कहा, "जो कोई इस उभय ज्वर-विवाद के बारे में [और] तुम्हारे मत्प्रपत्ति में आने के बारे में अपने मन में सोचते है, ऐसे पुण्यात्मा शीतोष्ण ज्वर आदि तापों को नहीं पाएँगे।" इस प्रकार आज्ञा देने पर वह महेश्वर ज्वर परमानंदभरित-हृदययुक्त बनकर उस रथांगपाणि को साष्टांग दंड प्रणाम करके अपनी इच्छा से चला गया। तब बाणासुर वहाँ ४३३

बाणासुर का दूसरी बार युद्ध के लिए आना

[सी.] कमनीय किंकिणी घंटिका सहस्र घण-घण ध्वनि से गगन के भग्न होने पर, अन्य जनालोकन से आभील (भयंकर) तरल, उग्र,

ते शर शरासन सुख दिव्य साधनमुलु
दनर जलमुनु बलमु नुत्कटमु गाग
हर्षमिगुरोत्त गय्यंपुटायितमुन
बुरमु वेलुवडे बलि पुत्रुडुरु जवमुन ॥ 434 ॥

कं. चनि रणभूमिनि मध्यं-
दिन मार्ताड प्रचंड दीप्ताकृतितो
दनरुचु वरिपंथिबलें
घन दव शिखियेन कृष्णु दार्के बेलुचन् ॥ 435 ॥

उ. ताकि भुजा विजृंभणमु दर्पमु नेर्पुनु नेर्पडंग नौ-
वक्रकुन वेयि जेतुल महोग्रशरावळि पिज पिजतो
दाकग नेसिनन् मुरविदारुडु तोडन तच्छरावळि-
न्नाक गोनंग द्रुंचे निशितार्थ शशांक शिलीमुखंबुलन् ॥ 436 ॥

व. अंत ॥ 437 ॥

च. नुत नव पुंडरीक नयनुंडननोप्पु मुरारि रोष घू-
र्णित महितारुणाब्जदळ नेत्रुडु दानट पंचे दैत्युपै
दितिसुत कानन प्रकर दीपित शुक्रमु रक्षितांचिता-
श्रित जनचक्रमुन् सतत सेवित शक्रमु दिव्य चक्रमुन् ॥ 438 ॥

कांचन ध्वज-पताकाओं के प्रकाशमान होने पर, पृथुनेमि-घट्टन से पृथ्वी के कंपित होने पर, अति सुंदर जवनाश्वों से जुते हुए उन्नत रथ पर अति उग्र गति से चढ़कर कर-सहस्र में भीकरतर असि, [ते.] शर, शरासन मुख (आदि) दिव्य साधनों के प्रकाशमान होने पर, हठ और बल के उत्कट होने पर, हर्ष के उत्पन्न होने पर, लड़ने के लिए तैयार होकर बालि का पुत्र उरु (बड़े) जव (वेग) के साथ पुर से निकला। ४३४ [कं.] जाकर रणभूमि में मध्यंदिन मार्ताड की प्रचंड दीप्तियुक्त आकृति से अतिशयता को पाते हुए परिपंथि (शत्रु)-बल के लिए इंधन दवशिखि (दावाग्नि) होनेवाले कृष्ण पर (बड़ी वीरता के साथ) आक्रमण किया। ४३५ [उ.] करके [अपने] भुजा-विजृंभण, दर्प और कुशलता के बनने पर एक दम हजार हाथों से महान् उग्र शरावलि के बल को बल से लगाने पर मुरविदार (कृष्ण) ने शीघ्र ही उस शरावलि को निशित अर्ध शशांक शिलीमुखों से तोड़ डाला। ४३६ [व.] तब ४३७ [चं.] नुत-नव-पुंडरीक-नयन कहलाने में प्रसिद्ध मुरारि, रोष-घूर्णित महित अरुणाब्जदलनेत्र ने दितिसुत-कानन-प्रकर-दीपित-शुक्र, रक्षितांचित आश्रित जन चक्र, सतत सेवित शक्र (इन्द्र) [और] दिव्य चक्र को उधर दैत्य पर भेज दिया। ४३८ [व.] और प्रचंड

व. मरियुनु प्रचंड मार्तांड मंडल प्रभाविडंबितंबुनु, भीषण शत सहस्र कोटि दंभोळि निबिड निशित धारा सहस्र प्रभूत ज्वलन ज्वालिकापास्त समस्त कुटिल परिपंथि दुर्वार बाहा खर्व गर्वाध कारंबुनु, सकल दिक्पाल देवता गण जेगीयमानंबुनु, समद दानव जनशोक कारण भयंकर दर्शनंबुनु, समंचित सज्जन लोक प्रियंकर स्पर्शनंबुनुनगु सुदर्शनंबसुरांतक प्रेरितंबै चनि यारामकारुंडु कदळिका-कांडंबुल नेर्चु चंदंबुनं बेचि समद वेदंड शुंडादंडंबुल बिडंबिंचुचु कनक मणि वलय केयूर कंकणालंकृतंबगु तदीय बाहा सहस्रंबु गर चतुष्टयावशिष्टंबुगा दुनुमु नवसरंबुन ॥ 439 ॥

शिवुडु बाणुनि रक्षिप श्रीकृष्णुनि स्तुतिचुट

ते. कालकंठुडु बाणुपै गरुण गलडु
गान नखिलांडपति गृष्णु गदिय वच्चि
पुरुषसूक्तंबु चदिवि संपुट कराब्जु-
डगुचु बद्मायताक्षु निट्लनि नुतिचें ॥ 440 ॥

व. देवा ! नीवु ब्रह्मस्वरूपंबगु ज्योतिर्मयुंडवु निखिल वेद-वेदांत निगूढुंडवु निर्मलुंडवु समानाधिक रहितुंडवु । सर्व व्यापकुंडवैन निन्नु निर्मलांतः

मार्तांड-मंडल-प्रभा को विडंबित करनेवाला, भीषण-शत-सहस्र-कोटि-दंभोलि (वज्रायुध), समस्त कुटिल परिपंथि-दुर्वार-बाहा-खर्व-गर्वाधिकार को, निबिड-निशित-धारा-सहस्र-प्रभूत-ज्वलन-ज्वालिका को अपास्त (अपदस्थ-निर्वतित) करनेवाला, सकल दिक्पाल-देवतागण-जेगीयमान, समद-दानव-जन-शोक-कारण-भयंकर-दर्शन देनेवाला, समंचित-सज्जन-लोक-प्रियंकर-स्पर्शन होनेवाला सुदर्शन कृष्ण-प्रेरित होकर जाकर जैसे आरामकार (माली) कदलिका-काण्डों को काट डालता है, वैसे काटकर समद वेदंड-शुंडादंडों से विडंबित होते हुए कनक-मणिवलय-केयूर-कंकणालंकृत [होनेवाले] तदीय बाहा-सहस्र को कर-चतुष्टयावशिष्ट बनाते हुए जब काट रहा था । ४३९

शिव का बाणासुर की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण की स्तुति करना

[ते.] कालकंठ को बाणासुर पर करुणा थी; इसलिए अखिलाण्डपति कृष्ण के पास आकर पुरुषसूक्त को पढ़कर [और] संपुट, कराब्ज वाला बनकर पद्मायताक्ष की इस प्रकार प्रार्थना की । ४४० [व.] "हे देव ! तुम ब्रह्म-स्वरूप होनेवाले ज्योतिर्मय हो । निखिल वेद-वेदान्त-निगूढ़ हो । निर्मल हो । समानाधिक भाव से रहित हो । सर्वव्यापक होनेवाले तुमको निर्मलान्तःकरण होनेवाले आकाश की तरह अवलोकते हैं । इसके अतिरिक्त

करणुलैन वारलाकाशंबु पगिदि नवलोकिंतु, -रदियुनुं गाक पंचोपनिषन्मयं-बयिन भवदीय दिव्य मंगळ महा विग्रह परिग्रहंबु सेयुनेड नाभियंदाकाशंबुनु मुखंबुनं गृशानुंडुनु, शिरंबुन स्वर्गंबुनु, श्रोत्रंबुल दिशलुनु, नेत्रंबुल सूर्युंडुनु, मनंबुन जंद्रुंडुनु, वादंबुल वसुंधरयु, नात्मयंदहकारंबुनु, जठरंबुन जलधुलुनु, रेतंबुन नंबुवुलुनु, भुजंबुल निंद्रुंडुनु, रोमंबुल मेघ-महीरुहौषधि व्रातंबुलुनु, शिरोजंबुल ब्रह्मलुनु, ज्ञानंबुन सृष्टियु, नवांतर प्रजापतुलुनु, हृदयंबुन धर्मंबुनु, गलिगि महापुरुषुंडवै लोककल्पनंबु कोरकु नीयकुंठित तेजबु गुप्तंबु सेसि जगदुद्भवबंबु कोरकु गैकोन्न भवदीय दिव्यावतार वैभवंबेरिगि नुतिप नेंत वारमु, नीवु सकल चेतनाचेतन नियमंबुलकु नाद्युंडवु, नद्वितीयुंडवु, पुराणपुरुषुंडवु, सकल सृष्टि हेतु भूतुंडवु, नोश्वरुंडवु। दिनकरुंडु कादंबिनी कदंबावृतुंडगुचु भिन्नरूपुंडै बहुविधच्छायलं दोचु विधंबुन नीयघटित घटना निर्वाहकंबैन संकल्पंबुन द्रिगुणातीतुंडवय्युनु सत्त्वादिगुण विधानंबुल ननेकरूपुंडवै गुणवंतुलैन सत्पुरुषुलकु दमो निवारकंबैन दीपंबु रूपंबुनं ब्रकाशिंचुचुंदुवु। भवदीय माया विमोहितुलयिन जीवुलु पुत्र दार गृह क्षेत्रादि संसार रूपंबैन पाप पारावार महावर्त गर्तंबुन मुनुंगुचुं देलुचुंदुरु। देवा, भवदीय दिव्य रूपानुभवंबु सेयंजालक यिंद्रिय परतंत्रुंडै भवत्पाद सरसीरुहंबुल जेरनेरंगनि

पंचोपनिषन्मय होनेवाले भवदीय दिव्य मंगल महान् विग्रह का परिग्रहण करते समय नाभि में आकाश को, मुख में कृशान (अग्नि) को, सिर में स्वर्ग को, श्रोत्रों में दिशाओं को, नेत्रों में सूर्य को, मन में चंद्र को, पादों में वसुंधरा को, आत्मा में अहंकार को, जठर में जलधियों को, रेतस् में अंबुओं (जल) को, भुजाओं में इन्द्र को, रोमों में मेघ-महीरुह ओषधि-व्रात को, सिरोजों में ब्रह्माओं को, ज्ञान में सृष्टि को, अवान्तर प्रजापतियों को, हृदय में धर्म को धारण करके महान् पुरुष बनकर लोक-कल्पना के लिए अपने अकुंठित तेज को गुप्त बनाकर जगत् के उद्भव के लिए ग्रहण किये गये भवदीय दिव्यावतार वैभव को जानकर स्तुति करने के निमित्त हमारा अस्तित्व ही क्या है ? तुम सकल चेतन और अचेतन नियम के आद्य हो, अद्वितीय हो, पुराणपुरुष हो, सकल सृष्टि के हेतुभूत हो, ईश्वर हो, दिनकर जैसे कादंबिनी कदंबावृत होकर भिन्नरूप हो, बहुविध छायाओं में लगता (दीखता) है वैसे अपने अघटित घटना निर्वाहक होनेवाले संकल्प से त्रिगुणातीत होकर भी सत्त्व आदि गुण-विधानों से अनेक रूप [में] होकर गुणवान होनेवाले सत्पुरुषों के लिए तमो-निवारक दीप के रूप में प्रकाशमान होते हो। भवदीय माया [से] विमोहित जीव पुत्र-दारा-गृह-क्षेत्र आदि परिवार रूपी पाप-पारावार के महावर्तगर्त में डूबते-तैरते हुए रहते हैं। हे देव ! जो मूढ़

मूढात्मुडात्म वंचकुंडनंबडु, विपरीत बुद्धिजेसि प्रियुंडवैन निन्नु नॊल्लक यिंद्रियार्थानुभवंबु सेयुट यमृतंबु मानि हालाहलंबु सेविंचुट गादॆ, जगदुदय पालन लय लीला हेतुंडवै, शांतुंडवयि सुहृज्जन भागधेयुंडवै समानाधिक वस्तु शून्युंडवैन निन्नु नेनुनु ब्रह्मयुं बरिणतांतःकरणुलैन मुनिगणंबुलुनु भजियिंचुचुंदुमु। मरियुनु ॥ 441 ॥

ते. अव्ययुंड वनंतुंड वच्युतुंड-
वादि मध्यांत शून्युंड वखिल धृतिवि
निखिलमंदॆल्ल वर्तिंतु नीवु दगिलि
निखिलमॆल्लनु नीयंद नॆगडु गृष्ण ! ॥ 442 ॥

सी. अनि सन्नुतिंचिन हरि यात्म मोदिंचि मॊगमुन जिरुनव्वु मॊलकलॆत्त
ललित बालेंदुकळामौळिकिट्लनु शंकर नीमाट सत्य मरय
नेदि नीकिष्टमै यॆसगॆडु दानिन वेडुमु नीकित्तु वीडवध्यु-
डदि यॆट्टिदनिन ब्रह्लादुंडु मद्भक्तुडतनिकि वरमु नी यन्वयमुन

ते. जनन मंदिन वारल जंपननुचु
गडक मन्निंचितिनि नदि कारणमुग
विश्व विश्वंभराभार विपुल भूरि
बल भुजा गर्व मडपंग वलयु गान ॥ 443 ॥

भवदीय दिव्य रूप का अनुभव नहीं कर सक कर इंद्रिय-परतन्त्र होकर भवत्पाद-सरसीरुहों को नही पहुँच सकता, वह आत्म-वंचक कहलाता है। विपरीत बुद्धि के कारण, प्रिय होनेवाले तुमको छोड़कर इन्द्रियार्थानुभव करना ठीक वैसे ही है जैसे अमृत को छोड़कर हालाहल की सेवा करे (पी ले)! जगत के उदय, पालन, लय-लीला हेतु (कारण) बनकर, शांत हो, सुहृज्जन भागधेय हो [और] समानाधिक वस्तु शून्य होनेवाले तुम्हारी सेवा मैं, ब्रह्मा और परिणतांतःकरण होनेवाले मुनिगण करते हैं। और ४४१ [ते.] हे कृष्ण ! [तुम] अव्यय हो, अनन्त हो अच्युत हो, आदि-मध्यांत-शून्य हो, अखिल धृति हो, सारे निखिल (समस्त) में विद्यमान रहते हो, तुम में ही आकर समस्त निखिल पनपता है।" ४४२ [सी.] ऐसी स्तुति करने पर, हरि ने अपनी आत्मा में मुदित होकर [और] मुख पर मुस्कुराहट के प्रकट होने पर, ललित-बालेंदु-कला-मौलि (शिव) से इस प्रकार कहा, "हे शंकर, तुम्हारा वचन सत्य है। सोचकर अपने को जो कुछ पसंद है, उसे माँगो, तुमको दे दूँगा। यह (बाणासुर) अवध्य है, क्योंकि प्रह्लाद मेरा भक्त है; उसको मैंने वर दिया कि [ते.] 'तुम्हारे वंश में पैदा होने वालों को नहीं मार डालूँगा'। उस कारण (इसके) विश्व-विश्वंभरा-

कं. करमुलु नालुगु चिक्क
बरिमार्चिति वीडु नीडु भक्तुलकग्रे-
सरुडै पोंगडोंदि जरा-
मरणादि भयंबु दक्कि मनु निट मीदन् ॥ 444 ॥

व. अनि यानतिच्चिन नंबिकावरुंडु संतुष्टांतरंगुंडय्यें नव्बलिनंदनुंडट्लु रणरंगवेदि गृष्ण देवता सन्निधि प्रज्वलित चक्रकृशानु शिखाजालंबुलंदु निजवाहा सहस्र शाखा समित्प्रचयंबुनु दत्क्षतोद्वेल कीलाल महिताज्य-धारा शतंबुनु बर भयंकर वीर हुंकार मंत्रंबुलतोड वेल्चि परिशुद्धि बोंदि विज्ञान दीपांकुरंबुन भुजा खर्व गर्वांधकारंबु निवारिंचें ननवरत पूजित स्थाणुंडगु नव्बाणुंडु भुजवन विच्छेद जनित निरूपित स्थाणुंडय्युनु ददीय वरदान कलितानंद हृदयारविंदुंडगुचु गोविंद चरणारविंदंबुलकु ब्रणामंबुलाचरिंचि यनंतरंब ॥ 445 ॥

उषानिरुद्ध-सहितुंडै कृष्णुंडु द्वारकापुरंबुन करुगुट

कं. पुरमुन केगि युषा सुं-
दरिकिनि ननिरुद्धुनकु मुदंबुन भूषा-

भार-विपुल-भूरि-बल-भुजा-गर्व का नाश करना है; इसलिए ४४३ [कं.] चार करों (हस्तों) के मिलने पर [उनको] काट डाला। यह तुम्हारे भक्तों में अग्रेसर होने की प्रसिद्धि पाकर जरा, मरण आदि भय से रहित होकर इसके बाद जीवित रहेगा।" ४४४ [व.] इस प्रकार आज्ञा देने पर अंबिकावर संतुष्टांतरंग बन गया। उस बलिनंदन ने उस प्रकार रणरंग-वेदी पर कृष्णदेवता की सन्निधि में प्रज्वलित चक्र-कृशानुशिखा-जालों में निजबाहा-सहस्र-शाखा-समित्प्रचय को तत् क्षतोद्वेल-कीला-महित आज्यधारा-शत को परभयंकर वीर हुंकार मंत्रों के साथ होम करके परिशुद्ध होकर विज्ञान दीपांकुर में भुजा-खर्व-गर्वांधकार का नाश किया; अनवरत पूजित स्थाणु होनेवाला वह बाणासुर भुजवन-विच्छेद के कारण जनित निरूपित स्थाणु होकर भी तदीय वरदान-कलित-आनंद-हृदयारविंद होते हुए गोविंद चरणारविंदों को प्रणाम करके, इसके बाद ४४५

उषा-अनिरुद्ध-सहित होकर कृष्ण का द्वारकापुर में प्रवेश करना

[कं.] पुर में जाकर, उषा सुंदरी को [और] अनिरुद्ध को मोद से भूषणों को, अंबरों को, दास-दासिका जन को, वरवस्तु-वितान देकर

वर दास दासिका जन
वर वस्तु वितान सॊंपगि वारनि भक्तिन् ॥ 446 ॥

कं. कनक रथंबुन निडुकॊनि
घन वैभव मॊप्प गन्यका युक्तमुगा
ननिरुद्धुनि गोविंदु-
डनु मोदिपंग दॆच्चि यर्पिचॆ नृपा ! ॥ 447 ॥

उ. अंत मुरांतकुंडु त्रिपुरांतकु वीड्कॊनि बाणु निल्पि य-
त्यंत विभूतिमै निज बलावलितो जनुदॆर ना युषा-
कांतुडु मुख्युगा बटह् काहळ तूर्य निनाद पूरिता-
शांतरुडै वॆसं जनियॆ नात्मपुरोमुखुडै मुदंबुनन् ॥ 448 ॥

म. कनियॆन् गोपकुमार शेखरुडु रंगत्फुल्ल राजीव को-
कनदोत्तुंग तरंग संगत लसत्कासारकन् भूरि शो-
भन नित्योन्नत सौख्य भारकन् शुभद्वैभवोदारकन्
जन संताप निवारकन् सुजन भास्वत्तारकन् द्वारकन् ॥ 449 ॥

व. कनि डायंजनि पुरलक्ष्मिकृष्ण संदर्शन कुतूहलयै चेसन्नलं जीरु चंदंबुन नंदंबु नॊंदु नुद्भूत तरळ बिचित्र केतु पताकाभिशोभितंबुनु, महनीय मरकत तोरण मंडितंबुनु, गनक मणि विनिर्मित गोपुर सौध प्रासाद वीथिका विलसितंबुनु, मौक्तिक वितान विरचित मंगळ रंगवल्ली

उनको बड़ी भक्ति से, ४४६ [कं.] हे नृप (परीक्षित)! कनक-रथ पर बिठाकर धन-वैभव से कन्यकायुक्त अनिरुद्ध को लाकर गोविंद के अनुमोदित होने पर अर्पित किया। ४४७ [उ.] तब मुरान्तक (कृष्ण) त्रिपुरान्तक से बिदा लेकर [और] बाण को रोककर अत्यन्त विभूति से निज बलावलि से निकला तो उस उषाकान्त आदि के साथ पटह्-काहल-तूर्य-निनाद-पूरित आशान्तर बनकर [और] मोद से आत्मपुरी की ओर शीघ्र ही चला गया। ४४८ [म.] गोपकुमार-शेखर ने रंगत्फुल्ल राजीवकोकनदोत्तुंग-तरंग-संगत-लसत्-कासारयुक्त, भूरि-शोभन-नित्योन्नत-सौख्य-भारयुक्त, शुभद्वैभवोदारा, जन-संताप-निवारक [और] सुजन-भास्वत्तारक [होनेवाली] द्वारका को देखा। ४४९ [व.] देखकर [उसके] समीप जाकर पुरलक्ष्मी के कृष्ण-संदर्शन-कुतूहला बनकर करों के इशारों से बुलाने की तरह आनंदित होने वाले उद्भूत तरल विचित्र केतु-पताकाओं से शोभित, महनीय-मरकत-तोरण से मंडित, कनक-मणि-विनिर्मित गोपुर-सौध-प्रासाद-वीथिका-विलसित, मौक्तिक वितान-विरचित मंगल-रंगवल्ली-विराजित, शोभनाकलित विन्यस्त कदलिका

विराजितंबुनु, शोभना कलित विन्यस्त कदळिकास्तंभसुरभिकुसुम मालिका क्षतालंकृतंबुनु, गुंकुम सलिल सिक्त विपणि मार्गंबुनु, शंख दुंदुभि भेरी मृदंग पटह काहळादि मंगळाराव कलितंबुनु, वंदिमागध संगीत प्रसंगंबुनुने यति मनोहर विभवाभिरामंबैन यप्पुरवरंबु सचिव पुरोहित सुहृद्बांधव मुख्युलेंदुरुकौन भूसुराशीर्वादंबुलनु, बुण्यांगनाकर कलित पवित्राक्षतलनु, गैकोनुचुं गामिनी मणुलु कर्पूर नीराजनंबुलु निवाळिपं ब्रवेशिंचि निजमंदिरंबुन केगि यप्पुंडरीकाक्षुंडु परमानंदंबुन सुखंबुंडె नंत ॥ 450 ॥

कं. श्रीकृष्णुनि विजयंबगु, नीकथ बठियिंचु वारलेप्पुडु जयमुं
गैकोनि यिहपर सौख्यमु, ना कल्पोन्नति वहिंतुरवनीनाथा ! ॥ 451 ॥

कं. अनि चेप्पिन शुकयोगिकि
जन नायकुडनियॆ गृष्ण चरितमु विन ना
मन मॆपुडु दनियदिकनु
विनवलतुंगरुण जॆप्पवे मुनिनाथा ! ॥ 452 ॥

व. अनिनं बरीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 453 ॥

स्तंभ-सुरभि-कुसुममालिका-अक्षतों से अलंकृत, कुंकुम-सलिल-सिक्त-विपणि-मार्ग [से युक्त], शंख-दुंदुभि-भेरी-मृदंग-पटह-काहल आदि मंगलाराव से कलित, [और] वंदि-मागध-संगीत-प्रसंग [युक्त] होकर, अतिमनोहर-विभवाभिराम होनेवाले उस पुर में सचिव-पुरोहित-सुहृत्-बांधव मुख्यों के स्वागत देने पर भूसुरों के आशीषों को [और] पुण्यांगना-कर-कलित-पवित्र अक्षतों को लेते हुए कामिनी-मणियों के कर्पूर-नीराजन समर्पित करते समय प्रवेश करके अपने मन्दिर में जाकर वह पुंडरीकाक्ष परमानंद में सुख से रहा; तब ४५० [कं.] हे अवनीनाथ ! श्रीकृष्ण की विजय की इस कथा का पठन करनेवाले सदा जय को पाकर इह-पर-सौख्य को [और] आकल्प-उन्नति को पायेंगे। ४५१ [कं.] ऐसा कहने पर शुकयोगी से जननायक ने इस प्रकार कहा, "हे मुनिनाथ ! कृष्ण का चरित्र (कथा) सुनने के लिए मेरा मन कभी तृप्त नहीं होता; (और भी) सुनना चाहता हूँ; कृपा करके कहिए।" ४५२ [व.] ऐसे कहने पर परीक्षित्-नरेंद्र से शुकयोगींद्र ने इस प्रकार कहा। ४५३

अध्यायमु—६४

नृग महाराजु चरित्रमु

सी. धरणीश ! यॊक नाडु हरि तनूजुलु रतीश्वर सांब सारण चारु भानु-
लादिगा यदुकुमारावलि युद्यान वनमुनकति वैभवमुन नेगि
वलनॊप्प निच्छानुवर्तुलै सुख लील जरियिंचि घन पिपासलनु जॆंदि
नॆंड्रि दप्पि सलिल मन्वेषिंचुचुनु वेग वच्चुचो नॊकचोट वारि-रहित

ते. कूपमुनु गंदुलो नॊक कॊंडवोलॆ
विपुलमगु मेनि यूसरवॆल्लि गांचि
चित्तमुल विस्मयंबंदि तत्तरमुन
दानि वॆडलिंचु वेडुक दगुलुटयुनु ॥ 454 ॥

च. परुविडि पोयि तॆच्चि घनपाश चयंबुल नंट गट्टि य-
ग्गुरु भुजुलंदरुं गदिसि को यनि यार्चुचु दानि नॆम्मॆयि
दरलग दीयलेक दग दट्टमुगा मदि दुट्टगिल्ल नॊ-
क्कॊरु गडवंग वेचनि पयोरुह नाभुनकंत जॆप्पिनन् ॥ 455 ॥

च. विनि सरसीरुहाक्षुडति विस्मितुडै जलशून्य कूप म-
ल्लन कदियंग नेगि कृकलासमु नॊक्क तृणंबु बोलॆ गॊ-

अध्याय—६४

नृग महाराजा की कथा

[सी.] हे धरणीश ! एक दिन हरि के तनूज, रतीश्वर (मन्मथ), सांब, सारण, चारुभानु आदि यदुकुमारावलि उद्यानवन में अतिवैभव से जाकर, सब दिशाओं मे इच्छावर्ती बनकर सुख लीला से घूमकर, घन पिपासा को पाकर [और] क्रम को छोड़कर सलिल का अन्वेषण करते हुए [और] जल्दी आते हुए एक जगह पर वारि-रहित [ते.] कूप को [और] उसमें पर्वत के समान रहनेवाले एक गिरगिट को देखकर [और] चित्तों में विस्मित हो जल्दी उसे निकालने के प्रयत्न में लग गये। ४५४ [च.] भाग जाकर, घनपाशचय लाकर, कसकर बाँधकर, गुरु (बड़े) भुजाओं वाले वे सब मिलकर 'को' कहकर पुकारते हुए उसे (गिरगिट को) आसानी से बाहर निकाल न सककर, अपने मन में बहुत थककर [और] एक के बाद एक ने जल्दी जाकर पयोरुहनाभ (कृष्ण) से सब कुछ (वृत्तांत) कहा तो ४५५ [च.] सुनकर सरसीरुहाक्ष ने अति विस्मित होकर [और] जलशून्य कूप के पास धीरे-धीरे चलकर गिरगिट को तृण की तरह

ब्बुन वॅडलिचॅ वामकर पद्ममुनन्नदि यंतलोन गां-
चन रुचि मेनगलगु पुरुषत्वमुलो बॉडसूपि निल्चिनन् ॥ 456 ॥

व. चूचि कृष्णुंडतनि वृत्तांतंबंतयु नॅरिंगियु नक्कडि जनंबुलुं गुमार वर्गंबुनु
देलियु कॉरकु नतनि चेत दद्वृत्तांतंबंतयु नॅरिंगिचु वाडयि
यिट्लनियॆ ॥ 457 ॥

च. कनदुरु रत्न भूषण निकायुडवै महनीय मूर्तिवै
यनुपम कीर्ति शोभितुडवै विलसिल्लुचु धात्रि मीद वॅ
पॊनरिन नीकु नेमिगत मूसरवॅल्लितनंबु चॊप्पडॅन्
विन निदि चोद्यमय्यॆ सुविवेक चरित्र ! यॆरुंग जॆप्पुमा ॥ 458 ॥

कं. अनि यडिगिन मुररिपु पद-
वनजंबुल दन किरीट वरमणुलॊरयन्
विनयमुन म्रॊक्कि यिट्लनु
घन मोदमुतोड निटल घटितांजलियै ॥ 459 ॥

ते. विश्व संवेद्य ! महित ! यी विश्वमंदु
प्रकटमुग नी वॆरुंगनि दॊकटि कलदॆ ?
यॆन नाचेत विन निष्टमय्यॆनेनि
नवधरिंपुमु विनुपितु नंबुजाक्ष ! ॥ 460 ॥

शीघ्र ही वाम-कर-पद्म से बाहर निकाला तो इतने में वह (गिरगिट) काञ्चन-रुचि के शरीर से पुरुषत्व को प्राप्त कर खड़ा रहा तो ४५६ [व.] [उसे] देखकर कृष्ण ने उसका सारा वृत्तान्त जानते हुए भी वहाँ के जन [समूह] को [तथा] कुमार वर्ग को विदित होने के निमित्त उससे तद् सारा वृत्तान्त समझानेवाला बनकर, इस प्रकार कहा। ४५७ [च.] "हे सुविवेक चरित्रवाले ! देखने पर तुम गुरु (बड़े) रत्न-भूषण-निकाय बनकर, महनीय मूर्तियुक्त होकर [और] अनुपम कीर्ति से शोभित होकर विलसित होते हुए धात्रि पर प्रसिद्ध होनेवाले तुमको किस कारण [यह] गिरगिट-रूप मिला ? सुनने में आश्चर्य होता है। समझा दो।" ४५८ [कं.] ऐसा पूछने पर मुर-रिपु के पद-वनजों से अपने किरीट की वर मणियाँ लग जायँ, विनय से, घन मोद से [और] निटल घटित अंजलि से प्रणाम करके इस प्रकार कहा। ४५९ [ते.] "हे विश्वसंवेद्य ! महित ! अंबुजाक्ष ! इस विश्व में ऐसी कोई चीज है, जिसके बारे में तुम प्रकट रूप से नहीं जानते ? फिर भी अगर तुम मेरे द्वारा सुनना चाहते हो, तो सुनो, सुना दूँगा। ४६० [शा:] "मैं इक्ष्वाकु-तनूज हूँ; मेरा नाम नृग है। मैं अतिशयता युक्त भूपाल हूँ। दीनों के व्रात (समूह) की, अर्थित (याचित)

शा. ए निक्ष्वाकु तनूजुडन् नृगुडना नेपारु भूपालुडन्
दीनव्रातमु नर्थि ब्रोचुच् धरित्री नायकुल गोल्चि स-
म्मानिपं जतुरंतभूभरण सामर्थ्युंडनै संतत
श्री निंडारिनवाड नुल्लसित कीर्तिस्फूर्ति शोभिल्लगन् ॥ 461 ॥

च. पलुकुल दन्नु दा बोगड पातक मंदुरटुंडे तारका-
वलि सिकताव्रजंबु हिमवारि कणंबुलु लेक्कवेट्टगा
नलवडु गानि येनु वसुधामर कोटिकि दानमिच्चु गो-
वुल गणुतिप धातयुनु नोपडु माधव! येमि सेप्पुदुन् ॥ 462 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 463 ॥

च. पोलुच् सुवर्णशृंग खुरमुल् दनरं दोलु चूलुलै सुव-
त्सलु गल पाडि यावुल नुदात्त तपोव्रत वेद पाठमुल्
गलिगि कुटुंबुलै विहित कर्ममुलं जरियिंचु पेद वि-
प्रुलकु सदक्षिणंबुग विभूति दलिर्पग नित्तु नच्युता! ॥ 464 ॥

व. मरियु न्याय समुपार्जित वित्तम्मुल गो भू हिरण्य रत्न निवास रथ हस्ति वाजि कन्या सरस्वती वस्त्र तिल कांचन रजित शय्यादि बहुविध दानंबु लनूनंबुलुगा ननेकंबुलु सेसिति पंच महा यज्ञंबु लोनरिंचिति। वापी कूप तटाक वन निर्माणंबुलु सेयिंचिति निव्विधंबुनं जेयुचो नोक्कनाडु ॥ 465 ॥

होने पर, रक्षा करते हुए धरित्री-नायकों के (मेरी) सेवा करके [मेरा] सम्मान करने पर, चतुरंत (चारों दिशाओं तक व्याप्त) भूभरण-सामर्थ्य से युक्त होकर संततश्री से भरा हुआ था जिससे उल्लसित कीर्ति की स्फूर्ति शोभायमान हो! ४६१ [च.] बातों में अपने आपकी प्रशंसा करना पाप कहते है— अस्तु। तारकावलि को, सिकताव्रज को [और] हिमवारि-कणों को गिन सकते है; लेकिन, हे माधव, मैं वसुधामर-कोटि [ब्राह्मणों] को जितनी गायों का दान करता हूँ उनकी गिनती धाता भी नही कर सकता। [फिर मैं] क्या कहूँ? ४६२ [व.] इसके अतिरिक्त ४६३ [च.] हे अच्युत! सुंदर सुवर्णशृंग-खुर-युक्त हो प्रकाशमान होनेवाले बछड़ों-सहित पहली ब्यायी हुई गायों को उदात्त, तपोव्रती [और] वेद-पाठी बनकर गृहस्थ बने हुए विहित कर्म करनेवाले निर्धन विप्रों को, दक्षिणा-सहित देता हूँ, ताकि [उनकी] विभूति (संपदा) बढ़े! ४६४ [व.] और न्याय-समुपार्जित वित्तों से गो-भू-हिरण्य-रत्न-निवास-रथ-हस्ति-वाजि-कन्या-सरस्वती-वस्त्र-तिल-कांचन-रजित-शय्या आदि बहुविध दानों को अनून रूप से अनेक दान किया; पंच महायज्ञ किये; वापी-कूप-तटाक-

कं. अनघा ! मुनुपड गश्यपु-
डनु विप्रुनकेन कल्मषात्मुडनै यि-
च्चिन गोवु दप्पि नामं-
दनु गलसिन दॅलियलेक तग ना गोवुन् ॥ 466 ॥

कं. औंडीक भूमीसुरकुल, -मंडनुनकु दानमीय मसलक या वि-
प्रुंडा गोवुं गॊनि चनु, -चुंडन् मुनु धार गॊन्न युर्वीसुरुडुन् ॥ 467 ॥

कं. मदि रोषमॊदव दोवति
वदलिन बिगियिंचुकॊनुचु वच्चि यिदिय ना
मॊदवु नडिवीथि दॊंगिलि
वदलक कॊनिपोयॆदिट्टिवारुं गलरे ! ॥ 468 ॥

च. अनवुडु नातडिट्लनियॆ नातनितो निपुडेनु दीनि नी
जनपति चेत धारगॊनि साधुगति जन नीदियंट यॆ-
ट्लनिन नतंडु नेनुनु धराधिपुचे मुनु धारगॊन्न या
वनि बिनिर्पिप निद्दरकु नर्थि ननेक विवाद मच्चटन् ॥ 469 ॥

व. इट्लु विप्रुलिद्दरुं दमलो नंतकंतकु मच्चरंबुन बॆच्चु पॆरिगि कलहिंचि ना
युन्न यॆडकुं जनुदेंचि मुन्नु नाचेत गोदानंबु गॊन्न ब्राह्मणुं-
डिट्लनियॆ ॥ 470 ॥

वन का निर्माण कराये; जब मैं इस प्रकार कर रहा था, एक दिन ४६५
[कं.] हे अनघ ! एक बार कश्यप नामक विप्र को अकल्मषात्मा बनकर
[एक गाय को दान में] दिया तो [वह] गाय भटककर मेरी [गायों
की] भीड़ में मिली तो [न जानकर] ठीक उस गाय को ४६६
[कं.] और एक भूमिसुर-कुल-मंडन (ब्राह्मण) को दान में देने पर
[फिर] लौटकर न देख, जब वह विप्र उस गाय को लेकर जा रहा था, तो
पहले दान में ग्रहण किये हुए उर्वीसुर (ब्राह्मण) के ४६७ [कं.] मन
में रोष होने पर ढीली पड़ी धोती को कस लेते हुए आकर 'यह मेरी गाय
है, सड़क के बीच में (दिन-दहाड़े) चुराकर [और] बिना छोड़े ले जा
रहे हो। [कहीं] ऐसे लोग होते हैं ?' ४६८ [च.] ऐसा कहने पर
उस ब्राह्मण से (कश्यप से) उसने (दूसरे ब्राह्मण ने) यों कहा, 'अभी मैं इसे
इस [देश के] जनपति के द्वारा दान में पाकर साधु गति से जाने पर [इसे]
अपनी कहते हो ? यह कैसे [हो सकता है] ऐसा कहने पर उसने भी 'मैंने
भी धराधिप से पहले दान में इसे पाया है' कहा तो उन दोनों में वहीं पर
विवाद छिड़ गया। ४६९ [व.] इस प्रकार दोनों विप्र आपस में
अधिक से अधिक मात्सर्य के बढ़ जाने पर कलह करके मेरे यहाँ आकर

सी. मनुजेंद्र ! प्रजलधर्म प्रवर्तनमुल नडवकुंडगनाज्ञ नडपु नीवु
मनमुन नेधर्ममनि यार्चारिचिति मुनु नाकु निच्चिन मोदवु दप्पि
वच्चि नीमंदलो जोच्चिन निप्पुडी भूसुरुनकु धारवोसि यिच्चि
तगवु मालितिवि दातवु नपहर्तवुनैन निन्नेमंटु नवनिनाथा !

ते. यनिन माटलु चेवुलु सोकिन गलंगि
भूसुरोत्तम यज्ञान पूर्वकमुग
निट्टि पापंबु दोरसे नेनेरिंगि सेय
गोनुमु नीकित्तु नोकलक्ष गोधनंबु ॥ 471 ॥

कं. अनि मट्रियुनु निव्विप्रनि
सुनयोक्तुल ननुनयिंचुचुनु निट्लंटिन्
ननु गावु नरक कूपं-
बुन बडगा जाल बुरुष-पुंगव ! यनुचुन् ॥ 472 ॥

ते. येंत वेडिन मच्चरंवंत पेरिगि
मोदल नाकिच्चिनट्टि यी मोदवे कानि
येनय नीराज्यमंतयु निच्चितेनि
नोल्लननि विप्रुडच्चट नुंड करिगे ॥ 473 ॥

व. अट्लतंडरिगिन नारेंडव ब्राह्मणुनि वार्थिचिन नतंडुनु जलंबु डिपक
पद्दिवेलेड्रि कोरिन पाडि मोदवुल निच्चिन नेननु दोनिन कानि योल्लननि

पहले मुझसे गोदान को लिये हुए ब्राह्मण ने इस प्रकार कहा, ४७० [सी.] 'हे मनुजेंद्र ! प्रजा अधर्म प्रवर्तन में न करे, आज्ञा देनेवाले तुमने मन में कौन सा धर्म समझकर इस प्रकार किया कि पहले तुमने मुझे जिस गाय को दिया वह भटककर तुम्हारी भीड़ में मिल गई तो अब इस भूसुर को दान देकर तुम न्याय से दूर हो गये । हे अवनिनाथ! [ते.] दाता और अपहर्ता होनेवाले तुमको मैं क्या कहूँ ?' ऐसी बोली हुई बातें मेरे कानों में लग गईं तो दुःखित होकर, 'हे भूसुरोत्तम ! अज्ञानपूर्वक ऐसा पाप हुआ; जान-बूझकर मैंने नहीं किया; ले लो, तुमको एक लाख गोधन दे दूँगा ।' ४७१ [कं.] यों कहकर फिर उस विप्र का सुनयोक्तियों से अनुनय करते हुए [मैंने] इस प्रकार कहा, 'हे पुरुषपुंगव ! मुझे बचाओ । नरक-कूप में [मैं] नहीं जा सकता ।' ऐसा कहते हुए ४७२ [ते.] जितनी प्रार्थना की, मात्सर्य के उतना बढ़ने पर, 'पहले मुझे जो गाय दी इसे छोड़कर इसके बराबर अपने पूरे राज्य को देने पर भी मैं स्वीकार नहीं करूँगा ।' यों कहकर [वह] विप्र वहाँ न ठहरकर चला गया । ४७३ [व.] उस प्रकार उसके चले जाने पर उस दूसरे ब्राह्मण से प्रार्थना की तो वह भी

निलुवक चनियें, नंत गाल परिपक्वंबैन नन्नु दंडधर-किंकरुलु गोनिपोयि वैवस्वतु मुंदरं बेट्टिन नतंडु नन्नु.नुद्देशिंचि यिट्लनियें ॥ 474 ॥

म. मनुजेंद्रोत्तम ! वंशपावन जगन्मान्य क्रियाचार ! नी
घन दानक्रतु धर्ममुल् त्रिभुवन ख्यतंबुलै चेल्लेंडिन्
मुनु दुष्कर्म फलंबु नोंदि पिदपं बुण्यानुबंधंबुलै
चनु सौख्यंबुलबोंदु. पद्मजुनि याज्ञं द्रोव गावच्चुने ? ॥ 475 ॥

व. अनि वेगंबुन द्रोब्बिचिन नेनु बुडमिबडुनपुड यी निकृष्टंबयिन यूसरवेल्लि रूपंबु गैकोंटि नितकालंबु तद्दोष निमित्तंबुन निद्दुरवस्थं बोंदवलसें ब्राणुलकु बुण्य पापंबुलनुभाव्यंबुलु गानि यूरक पोनेरवु, नेडु समस्त दुरित विस्तारकंबयिन भवदीय पादारविंद संदर्शनंबुनं जेसि यी घोर दुर्दशंबासि निर्मलात्मकुंडनैतिननि ' पुनः पुनः प्रणामंबुलाचरिंचि मरियु निट्लनियें ॥ 476 ॥

आ. कृष्ण ! वासुदेव ! केशव ! परमात्म !
यप्रमेय ! वरद ! हरि ! मुकुंद !
निन्नु जूड गंटि नीकृप गनुगोंटि
नखिल सौख्य पदवुलंदगंटि ॥ 477 ॥

मात्सर्य से मुक्त न होकर [और] इस तरह कहकर कि 'दस हज़ार चुनी हुई दूध देनेवाली गायों को देने पर भी इसे छोड़कर [और किसी को] नहीं स्वीकार करूँगा' चला गया। इसके बाद काल के परिपक्व होने पर मुझे दंडधर के किंकरों ने ले जाकर वैवस्वत के सामने छोड़ दिया तो उसने मेरे प्रति इस प्रकार कहा, ४७४ [म.] "हे मनुजेंद्रोत्तम ! वंश को पावन बनानेवाले, जगत में मान्य तुम्हारे क्रियाचार और तुम्हारे धन, दान, क्रतु, धर्म त्रिभुवनख्यात होकर प्रख्यात हुए। पहले दुष्कर्म का फल पाकर, इसके बाद पुण्यानुबंध होकर चलनेवाले सौख्यों को प्राप्त करो। ब्रह्मा की आज्ञा को टाल सकते है ?' ४७५ [व.] इस प्रकार कहकर शीघ्र ही [मुझे] ढकेलवाया तो मैंने पृथ्वी पर गिर जाते समय इस निकृष्ट गिरगिट-रूप को पाया; इतने काल तक तद्दोष के निमित्त इस दुरवस्था को पाना पड़ा; प्राणियों के लिए पुण्य-पाप अनुभाव्य हैं; लेकिन यों ही नष्ट नहीं होते। आज समस्त दुरित-विस्तारक होनेवाले भवदीय पादारविंद-संदर्शन करके इस घोर दुर्दशा को छोड़कर (से मुक्त होकर) निर्मलात्मा बना।" इस प्रकार कहकर पुनःपुनः प्रणाम करके फिर इस तरह कहा, ४७६ [आ.] "कृष्ण, वासुदेव, केशव, परमात्मा, अप्रमेय, वरद, हरे, मुकुंद, तुम्हें देख सका, तुम्हारी कृपा को पहचान सका; अखिल सौख्य-पदों को

व. अनि यनेक भंगुलं गोनियाडि गोविंदुनि पादारविंदंबुलु वन किरीटंबु सोकं ब्रणमिल्लि देवा ! भवदीय पादारविंदंबुलु नाहृदयारविंदंबुनं बायकुंडुनट्लुगा ब्रसादिंपवे यनि तदनुज्ञातुंडै यच्चटि जनंबुलु चूचि यद्भुतानंदंबुलं वोंद नतुल तेजो विराजित दिव्य विमानारूढुंडै दिवंबुन करिगें नंत नम्माधवुंडु नच्चट नुन्न पार्थिवोत्तमुलकु धर्म बोधंबुगा निट्लनियें ॥ 478 ॥

सी. नरनाथकुल काननमु दहिंचुटकुनु नवनीसुरुल वित्तमग्नि कील
जननायकुल निजैश्वर्याब्धि निंकिंप ब्राह्मण क्षेत्रंबु बाडबंबु
पार्थिवोत्तमुल संपच्छैलमुल गूल्प भूसुर धनमु दंभोळि धार
जगतीवरुल कीर्ति चंद्रिक माप विप्रोत्तमु धनमु सूर्योदयंबु

ते. विप्रतति सोम्मुकंटेनु विषमु मेलु
गरळमुनकुनु प्रतिकृति गलदु गानि
दानि मान्पंग भुवि नौषधमुलु लेवु
गान ब्रह्मस्वमुलु गोंट गादु पतिकि ॥ 479 ॥

कं. ऎरुगमिनैननु भूसुर
दरुल धनंबपहरिंप वलवदु पतिकिन्

प्राप्त कर सका।" ४७७ [व.] ऐसे अनेक रीतियों से प्रशंसा करके गोविंद के पादारविंदों को ऐसे प्रणाम करके जिससे उसका किरीट उन्हें स्पर्श करे, 'देव ! ऐसा आशीर्वाद दो कि भवदीय पादारविंद मेरे हृदयारविंद में सदा बने रहें' यों कहकर तदनुज्ञात होकर जिससे वहाँ के लोग देखकर अद्भुत आनंद को पावें, अतुल तेजोविराजित दिव्य विमानारूढ़ होकर दिव को चला गया। तब माधव ने वहाँ रहनेवाले पार्थिवोत्तमों से धर्मबोध के रूप में इस प्रकार कहा। ४७८ [सी.] "नरनाथों के कुल [रूपी]-कानन का दहन करने के लिए अवनीसुरों (ब्राह्मणों) का वित्त अग्नि की कीला (ज्वाला) है। जननायकों के निज ऐश्वर्य [रूपी] अब्धि को सुखाने के लिए ब्राह्मणों का क्षेत्र बाडब (बड़वाग्नि) है। पार्थिवोत्तमों के संपत् (रूपी) शैलों को गिरा देने के लिए भूसुरों का धन दंभोलि (वज्र) की धारा है। जगतीवरों की कीर्ति-चंद्रिका का नाश करने के लिए विप्रोत्तमों का धन सूर्य का उदय है। [ते.] विप्रतति के धन की अपेक्षा विष बेहतर है। गरल की भी प्रतिकृति होती है; लेकिन विप्रकोप को दूर करने के लिए भुवि पर औषध नहीं है। इसलिए राजाओं को ब्रह्मस्व नहीं लेने चाहिए। ४७९ [कं.] अज्ञानवश भी क्यों न हो, भूसुरवरों के धन का अपहरण नहीं करना चाहिए। भूल से अनल को छूने पर

मऱपुन ननलमु मुट्टिन
दरिकोनि वॆसगालपकुन्ने तनुवेरियंगन् ॥ 480 ॥

व. मऱियुनु दन धनंबु परुल चेत गोल्पडिन विप्रुंडु दुःखमुन रोदनंबु सेय नुरलिन यश्रुकणंबुल नवनि रेणुवुलॆन्नि तडियु नन्नि वेलेंड्लु तदुपेक्षापरुंडैन पति दारुण वेदनलु गलकुंभीपाक नरकंबुलं बोंदु मऱियु ननतनि तोड ग्रिदट बदि तरंबुल वारुनु मीदट बदि तरंबुल वारुनु बोंदुदुरु। स्वदत्तंबैन बरदत्तंबैन नर्थलोभंबुनं जेसि दुश्शीलुंडै ब्राह्मणक्षेत्र संभूत धान्य धनादिकंबु भुजिंचु नप्पापात्मुंडरुवदिवेल संवत्सरंबुलु मलकूपंबुनं ग्रिमि रूपंबुन वर्तिंचु। अट्लगुट यॆऱिंगि विप्रुंडॆंत तप्पु चेसिन नॆन्नि कॊट्टिन नॆन्निदिट्टिन नतनि कॆंदुरु पलुकक विनयंबुन वंदनंबाचरिंचु पुण्यात्मुलु नादु पालिटिवारु। अदियुनुंगाक येनुनु प्रतिदिनंबुनु भूसुरुल नति विनयंबुन बूजितु। इट्लु सेयक विपरीत वर्तनुलैन तामसुलनेनु वॆदकि दंडितु। अदि गावुन मीरलु ब्राह्मण जनंबुलवलनं बरम भक्ति गलिगि मॆलंगुडनि यानतिच्चि यादव प्रकरंबुलु सेविंप नखिल लोक शरण्युंडैन यप्पुंडरीकाक्षुंडु निज निवासंबुनकुं जनियॆननि चॆप्पि शुकुंडिट्लनियॆ ॥ 481 ॥

(वह) जलकर शीघ्र जलाये बिना रहता है क्या जिससे शरीर जल जाय? ४८०
[व.] इसके अतिरिक्त जब वह विप्र दुःखित होता है जिसका धन दूसरों से चुराया जाता है, तब उसके रोदन करने से बहनेवाले अश्रुकणों से अवनि की जितनी रेणुयें भीग जाती हैं, उतने हज़ार वर्ष उस ब्राह्मण की उपेक्षा करनेवाला राजा भयंकर वेदना-सहित कुंभीपाक नरक को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, उस [राजा] के साथ उसके पूर्व की दस पीढ़ियों और उसके बाद की दस पीढ़ियों के लोग [उस नरक को] प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण-क्षेत्र में संभूत-धान्य-धनादि का भोजन (भोग) करनेवाला वह पापात्मा साठ हज़ार वर्ष मल-कूप में क्रिमि-रूप में पड़ा रहता है। यह जानकर चाहे विप्र कितना ही दोष क्यों न करे, कितना भी मारे, कितनी भी गालियाँ क्यों न दे, उसका प्रतिवादन न करके विनयपूर्वक जो पुण्यात्मा पूजते है वे मेरे अधीन होते है। इसके अतिरिक्त मैं भी प्रतिदिन अतिविनय से भूसुरों की पूजा करता हूँ। ऐसा न करके जो तामस विपरीत वर्तन करते हैं, उनको ढूँढ़कर मैं उनको सजा देता हूँ। इसलिए तुम लोग ब्राह्मण जन के प्रति परमभक्ति के साथ व्यवहार करो।" इस प्रकार आज्ञा देकर यादवसमूहों से सेवित होते हुए, अखिल लोक शरण्य होनेवाला वह पुंडरीकाक्ष निज निवास को चला गया। यह कहकर शुक ने इस प्रकार कहा, ४८१ [कं.] इस

कं.- ई कथ जदिविन वारलु
गैकोनि विनुवारु विगत कलुषात्मकुलै
लौकिक सौख्यमु नोंदुदु-
रा कैवल्यंबु गरतलामलक मगुन् ॥ 482 ॥

अध्यायमु—६५

वलरामुंडु सुहृद्‌बंधुजन दर्शनार्थमै व्रेपल्लेंकु वोवुट

सी. नरनाथ ! विनुमोकनाडु तालांकुंडु चुट्टाल बंधुल जूचु वेडुक
सुंदर कांचन स्यंदनारूढुडै भासिल्लुचुन्न व्रेपल्लै करिगि
चिरकालसंगत स्नेहुलै गोप गोपांगना निकर मालिगनमुलु
समुचित सत्कृतुल् सलुप गैकोनि महोत्सुकलील नंद यशोदलकुनु

ते. वंदनंबाचरिंचिन वारु मोद-
मंदि बिगियार गौगिळ्ळ नोंद जेंचि
समत दीविंचि यंक पीठमुन जेंचि
शिरमु मूर्कोनि चुबुकंबु गरमु पुणिकि ॥ 483 ॥

व. मरियु नानंद बाष्प धारासिक्त कपोल युगळंबु तोडं गुशल प्रश्नंबुगा निट्लनिरि। अन्ना, नीवुनु नी चिन्न तम्मुंडगु वेन्नुंडुनु लेस्सयि युन्नवारे ?

कथा को पढ़नेवाले, लेकर सुननेवाले लोग विगत कलुषात्मा बनकर लौकिक सौख्य को पाते हैं। उन्हें कैवल्य करतलामलक हो जाता है। ४८२

अध्याय—६५

बलराम का सुहृद्‌बंधुजन के दर्शनार्थ व्रेपल्ले (व्रजभूमि) को जाना

[सी.] हे नरनाथ ! सुनो, एक दिन तालांक (बलराम) भाई-बंधुओं को देखने की इच्छा से सुंदर तथा कांचन-स्यंदन [पर] आरूढ़ होकर प्रकाशमान व्रेपल्ले (व्रजभूमि) को जाकर चिरकाल-संगत-स्नेही बनकर, गोप-गोपांगना-निकर के आलिंगन [और] समुचित सत्कृतियाँ करने से, स्वीकार करके महान् उत्सुक-लीला से नन्द [तथा] यशोदा को [ते.] नमस्कार करने के बाद उन्होंने (नन्द-यशोदा ने) मुद (सन्तोष) पाकर, कसकर आलिंगन करके, शुभ आशीष देकर, अंक-पीठ पर बिठाकर, सिर को चूमकर, चुबुक को छूकर ४८३ [व.] और आनन्द-बाष्प [की] धारा [से] सिक्त कपोल-युगल से कुशल-प्रश्न के रूप में इस प्रकार कहा— 'बेटा, तुम [और] तुम्हारा छोटा भाई कृष्ण अच्छे हैं न ? हमें

मम्मॅप्पुडु नरसि रक्षिप वलयु। माकु नेडुगडयु मीरकाक यॅव्वरु गलरे !
यनि समुचित संभाषणंबुलं बॊद्दु पुच्चुचुंडु नंत ॥ 484 ॥

कं. गोपालवरुलु प्रमदं, -बापोवनि मदि निर्वर्तिताखिल गेह-
व्यापारुलगुचु हलधरु, श्रीपादंबुलकु नतुलु सेसिरि वरुसन् ॥ 485 ॥

कं. सीरियु वारिकि गरुणो, -दारंडै नडपॆ समुचित क्रियलंतं
गोरि तन यीडु गोपकु, -मारुल जे जरचि बलुडु मंदस्मितुडै ॥ 486 ॥

कं. निज सुंदर देहद्युति
रजताचल रुचुल दॆगड रामुडु वारल्
भजियिंप नेगि यॊकचो
विजनस्थलमुन वसिंचि विलसिल्लुनॆडन् ॥ 487 ॥

कवि. चरणमुलं गनक स्फुट नूपुर जालमु गल्लनुचुं जॆलगं
गरमुल गंकणमुल् मॆरयन् नलिकौनसियाड गुचाग्रमुलन्
सरुलु नटिंप गुरुल् गुनियन् विलसन्मणिकुंडल कांतुलु वि-
स्फुरित कपोलमुलन् बॆरयन् व्रजसुंदरुलंदरमंदगतिन् ॥ 488 ॥

कवि. चनि बलभद्रुनि शौर्य समुद्रुनि संचित पुण्यु नगण्युनि जं-
दन घनसार पटीर तुषार सुधा रुचिकायु विधेयु सुधा

सदा दृष्टि में रखकर हमारी रक्षा करनी चाहिए। हमारे रक्षक तुम लोग हो और कोई नहीं है। इस प्रकार समुचित भाषणों से [बलराम] समय विता रहा था, तो ४८४ [क.] गोपालवरों ने अतृप्त-प्रमद (संतोष) से मन में निवर्तित अखिल गृह व्यापारी बनते हुए हलधर के श्रीचरणों को क्रम से नमस्कार किए। ४८५ [कं.] सीरी (बलराम) ने भी उनके प्रति करुणा [और] उदारता के साथ समुचित क्रियायें सम्पन्न कीं; तब अपनी इच्छा से समवयस्क गोपकुमारों को अपने पास बुलाकर वलराम ने मंदस्मित होकर (समय बिताया)। ४८६ [कं.] उसकी सुंदर देहद्युति जब रजताचल रुचियों का भी अपमान कर रही थी, (वल) राम उनके भजन (सेवा) करने पर एक जगह पर विजन-स्थल में निवास करके प्रकाशमान होता रहा, तो ४८७ [कवि.] चरणों में कनक (सुवर्ण) स्फुट नूपुर-जाल के झनझन ध्वनि करते रहने पर, करों के (हाथों के) कंकणों के प्रकाशमान होते रहने पर, बहुत पतली कमर के हिलने पर, कुचाग्रों पर कंठ हारों के नृत्य करने पर, शिरोजों के नाचते रहने पर, विलसत मणि-कुंडलों की कांतियों के विस्फुरित कपोलों पर व्याप्त होने पर सभी व्रज सुंदरियाँ असंद गति से ४८८ [कवि.] जाकर उत्कंठा से शौर्य का समुद्र, संचित पुण्यात्मा, अगण्य, चंदन-घनसार-पटीर-तुषार-सुधारुचि-

शनरिपु-खंडनु सन्मणि मंडनु सार विवेकु नशोकु महा-
त्मुनि गनि गोपिकिलोपिक लेकयदु प्रभु निट्लनिरक्कलिकन् ॥ 489 ॥

च. हलधर ! नी सहोदरुडुदंचितकंज विलोचनुंडु स-
ल्ललित पुरांगना जनविलास विहार समग्र सौख्यमुल्
गलिगि सुखिचुने ममु नॊकानॊक वेळनयेनि बुद्धि लो
दलचुनॊ नूतन प्रियल दार्कॊनि येमियु बल्ककुंडुनॊ ॥ 490 ॥

कं. जननी जनकुल ननुजुल
दनुजुल बंधुवुल मित्रततुल विडिचिनॆ-
म्मनमुन नॊह्रु दलंपक
तनु नम्मिनवारि विडुव दगुने हरिकिन् ? ॥ 491 ॥

सी. सललित यामुन सैकत स्थलमुल नुंडि मम्मेमनि यूरडिंचॆ
विमल वृंदाबन वीथि मा चुबुकमुल् वुडुकुचु नेमनि बुज्जगिंचॆ
वुष्प वाटिकललो बॊलुचु मा कुच युग्म मंटुचु नेमनि यादरिंचॆ
गासारमुल पॊत गौगिट ममु जेर्चि नय मॊप्प नेमनि नम्म वलिकॆ

ते. नन्नियु मरचॆ गावोलु वॆन्नुडात्म
गोरि ताजायगानॆन वारि विडुचु

शरीरी, विधेय, सुधाशन-रिपुखंड, सन्मणिमंडन, सारविवेकी, अशोक और महात्मा यदु-प्रभु बलभद्र को देखकर गोपिकाओं ने असहन के साथ इस प्रकार कहा। ४८९ [चं.] "हे हलधर ! विकसित, उदंचित कंज-विलोचन वाला, तुम्हारा सहोदर, क्या सल्ललित पुरांगना जन-विलास-विहार-समग्र-सौख्यों से सुखी रहता है न ? हमारी किसी न किसी समय स्मरण करता है या नूतन प्रियाओं से मिलकर विना कुछ बोले रहता है ? ४९० [कं.] जननी-जनक, अनुजों, तनुजों, बंधुओं तथा मित्र-ततियों को छोड़कर अपने मन में और कुछ न सोचकर, उस पर जिन्होंने विश्वास किया, उनको छोड़ना क्या हरि को युक्त [काम] है ? ४९१ [सी.] उसने ललित जमुना के सैकत स्थलों पर रहकर हमको कैसे सान्त्वना दी ? विमल बृन्दावन-वीथियों में हमारे चिबुकों को पकड़कर किस प्रकार समझाया-बुझाया ? पुष्पवाटिकाओं में हमारे उन्नत कुचयुग्म का स्पर्श करके क्या कहकर हमारा आदर किया ? सरोवरों के पास हमसे आलिंगन करके नीति-सम्मत हो (हमसे) कैसे विश्वास के साथ बोला ? [ते.] शायद कृष्ण जान-बूझकर यह सब कुछ भूल गया होगा—ऐसा न सोचकर कि कृष्ण ने जिनको अपनी पत्नियाँ बना लिया, उनको त्यागकर पीड़ित बना देगा, पुरसतियों ने पगली होकर [कृष्ण पर] कैसे विश्वास

नन्नु कृष्णुडु तमु रट्टु वॅट्टु ननक
येल नम्मिरि पुरसतुल् वेललगुचु ॥ 492 ॥

म. अनि यिट्भंगि सरोज लोचनुनि नर्मालापमुल् नव्वुलुन्
ननुबंधुल् परिरंभणंबुलु रतिव्यासंगमुल् भावमुल्
विनयंबुल् सरसोक्तुलुं दलचि युग्विळ्ळूरु चित्तंबुलन्
जनितानंग शराग्नि चेत दुरवस्थं बौंदि शोकिंचिनन् ॥ 493 ॥

व. अंत बलभद्रुंडु वारल मनंबुल संतापंबुलु वाय नुपायंबुलगु सरस चतुर वचनंबुल गृष्णुनि संदेशंबुलु चॅप्पि विगत खेदलं जेसि यच्चंट मासद्वयंबु निलिचि वसंत वासरंबुलु गडपुचु गाळिंदी तीरंबुन ॥ 494 ॥

सी. माकंद जंबीर मंदार खर्जूर घनसार शोभित वनमुलंदु
नेलालता लोल मालती मल्लिका वल्लीमतल्लिका वाटिकलनु
दरळ तरंग शीकर साधु शीतल सैकत वेदिका स्थलमुलंदु
मकरंद रसपान मदवदिंदिर पुंज रंजित मंजुकुंजमुलनु

ते. विमल रुचि गलगु सानु देशमुल यंदु
ललित शशिकांत घन शिला तलमुलंदु
लील निच्छा विहार विलोलुडगुचु
सुंदरी जनमुलु गॉल्व जूड नॉप्पे ॥ 495 ॥

ते. अट्लु विहरिंप वरुणुनि याज्ञ जेसि
वारुणी-देवि मद्य भावंबु नॉंदि

किया ?" ४९२ [म.] इस प्रकार कहकर सरोज-लोचन [वाली गोपियाँ] श्रीकृष्ण के नर्मालापों का स्मरण करके बहुत खुश होनेवाले मनों में जनित अनंग-अग्नि से दुरवस्था को प्राप्त करके (गोपिकाएँ) दुःखित हुई तो ४९३ [व.] तब बलभद्र उनके मनों के संतापों को दूर करने के उपाय होनेवाले सरस [और] चतुर वचनों से कृष्ण के संदेशों को सुनाकर [उन गोपिकाओं को] विगत-खेद वाली बनाकर और वहाँ मासद्वय ठहरकर वसन्त-वासरों को विताते हुए कालिंदी के किनारे पर ४९४ [सी.] आम्र, जंबीर, मंदार, खजूर [और] घनसार से शोभित वनों में, एला (इलायची)-लता-लोल-मालती-मल्लिकावल्ली-मतल्लिका (श्रेष्ठ)-वाटिकाओं में, तरल-तरंग-शीकर साधु शीतल सैकत-वेदिका-स्थलों में, मकरंद-रसपान-मदवत् इंदिंदिर-पुंज-रंजित-मंजु कुंजो में, [ते.] विमल रुचियुक्त सानु देशों में और ललित शशिकान्त-घन शिलातलों में, लीला से इच्छा-विहार-विलोल बनते हुए, सुंदरी जन जब उसकी सेवा करती थी, [वह बलराम] देखने योग्य बन गया। ४९५ [ते.] ऐसे विहार करने पर वरुण की आज्ञा से वारुणी

निखिलतरु कोटरमुलंदु निर्गमिंचि
मिचु वासन चेत वासिंचे वनमु ॥ 496 ॥

व. अद्दियेंड ॥ 497 ॥

म. करमोप्पारु नवीन वासनल नाघ्राणिंचि गोपाल सुं-
दरुलुं दानुनु डायनेगि यति मोदंबोप्प सेविंचि या
तरळाक्षुल् मणि हेमकंकण झणत्कारानुकारंबुलै
करताळंबुलु म्रोय वाडुचुनु वेड्कन्नाडुचुन् सोलुचुन् ॥ 498 ॥

सी. तनमीदि विरुदांकितमुलैन गीतमुल् पाडुचु रा बलभद्रुडंत
महित कादंबरी मधुपान मद विह्वलाक्षुंडु ललित नीलालकुंडु
नालोल नवपुष्प मालिकोरस्स्थलुडनुपम मणिकुंडलांचितुंडु
प्रालेय संयुक्त पद्मंबुगति नोप्पु सललितानन घर्म जल कणुंडु

ते. नगुचु वनमध्यमुन सलिलावगाह-
शीलुडयि जलकेळिकि जेरि यमुन
निडु रम्मनि पिलुव गाळिंदि यतनि
मत्तुडनि सड्ड सेयक मसलुटयुनु ॥ 499 ॥

च. घनकुपितात्मुडै यमुन गन्गोनि रामुडु वल्कॅ डाय जो-
रिन जनुदेक तक्किति पूरे ! निनु निवरु जुड मद्भुजा-

देवी के मद्यभाव को पाकर निखिल तरु-कोटरों में निर्गमन करने से अधिक गंध से [सारा] वन सुगंधित हुआ। ४९६ [व.] तब ४९७ [म.] अधिक मधुर लगनेवाली [उन] नवीन गंधों का आघ्राण करके गोपाल सुंदरियाँ और वह (बलराम) स्वयं एकस्थित होकर अतिमोद के साथ [मधु का] सेवन करके वे तरलाक्षियाँ मणिहेमकंकण-झणत्कारानुकार बनकर करतालों के बजने पर गाते हुए [और] संतोष के साथ खेलते [तथा] थकते हुए ४९८ [सी.] जब बलराम की विरुदावलि से अंकित गीतों को गाते हुए आयीं, तब उस कादंबरी मधुपान से मद-विह्वल होनेवाली अक्षियों वाले, ललित नील अलकों वाले, आलोल नवपुष्पमालिका को उरस्थल पर धारण करनेवाले, अनुपम मणि-कुंडलों से अंचित (अलंकृत), प्रालेय (हिम) से युक्त पद्म की तरह सुन्दर लगनेवाले घर्म (स्वेद)-जलकण युक्त सललितानन वाले [बलराम] ने हँसते हुए [ते.] वन-मध्य में सलिलावगाहशील बनकर जलकेलि के लिए जाकर यमुना को अपने पास बुलाया तो कालिंदी ने उसे मत्त समझकर अलक्ष्य करके [आने में] देरी की। ४९९ [च.] तो अधिक कुपित होकर [और] यमुना को देखकर राम ने [इस प्रकार] कहा, "जब [मैंने तुमको] पास बुलाया तो बाप रे !

सुनिशित लांगलाग्रमुन सॉपर निप्पुडु नूरु त्रोवलै
चनवैस जिचि वैतुननि चंड पराक्रमसौष्प नुग्रुडै ॥ 500 ॥

व. अट्लु कट्टलुक रामुंडुद्दामंबगु बाहुबलंबुन हलंबु साचि यम्महावाहिनि दगिलिचि पेकलिरा दिगिचिन नन्नदि भयभ्रांतयै सुंदरी रूपंबु गैकोनि यति रयंबुनं जनुदेंचि यय्यदुवंशतिलकुंडगु हलधरुनि पादारविंदंबुलकु वंदनंबाचरिंचि यिट्लनियें ॥ 501 ॥

म. वलरामा ! घनबाहु ! नीयतुल शुंभद्विक्रमं बंगनल्
तॅलियं जालॅडिवारॅयी यखिल धात्री भारधौरेय नि-
श्चल सत्त्वुंडगु कुंडलीश्वरुडुनुं जर्चिप नी सत्कळा-
कलितांश प्रभवुंडुनी गुरु भुजागर्वंबु सामान्यमे ! ॥ 502 ॥

च. अनि विनुतिंचि येनु भवदंघ्रिसरोजमु लाश्रयिंचॅदन्
ननु गरुणिपुमन्न यदुनंदनुडन्नदि पूर्वमार्गवै
चनुमनि कामिनी निकर संगतुडै जलकेळि सल्पॅ नि-
र्विनय गरेणुकायुत मदेभमु चाड्पुन नम्महानदिन् ॥ 503 ॥

ते. अंत जलकेळि सालिचि संतसंबु
नंदुचुंड विनील वस्त्रादि रत्न

तुम नहीं आयीं, सुनो, इतने लोगों के देखते-देखते [मैं] अपनी भुजा [पर रहनेवाले] सुनिशित लांगलाग्र (हल की नोक) से [तुम्हें] अब ऐसे फाड़ दूँगा कि तुम एक सौ धाराओं से बह जाओ और तुम्हारा सारा सौंदर्य मिट जाय।" यों कहकर चंड पराक्रम से उग्र बनकर, ५०० [व.] इस प्रकार बड़े क्रोध से [और] उद्दाम बाहुबल से [अपने] हल को बढ़ाकर, उस महावाहिनी में लगाकर [और] खींचकर बुलाया तो उस नदी ने भय-भ्रांता बनकर सुंदरी का रूप धारण कर अतिवेग से आकर और उस यदुवंश-तिलक होनेवाले हलधर (बलराम) के पादारविंदों की वंदना करके इस प्रकार कहा। ५०१ [म.] "[हे] बलराम ! घनबाहुवाले ! क्या तुम्हारे अतुल शुंभद्विक्रम को अंगनाएँ मालूम कर सकती हैं ? इस अखिल धात्री-भार-धौरेय-निश्चल-सत्त्व होनेवाला, तुम्हारी सत्कला-कलितांश-प्रभव-कुंडलीश्वर (आदिशेष) [जब तुम्हारी] प्रशंसा करता है, क्या तुम्हारा भुजा-गर्व सामान्य है ?" ५०२ [च.] जब इस प्रकार विनय से बोली कि मैं भवदंघ्रिसरोजों के आश्रय में रहूँगी, मुझ पर करुणा दिखाओ, यदुनंदन ने कहा कि तुम पूर्वमार्गा बनकर बहो और कामिनी-निकर-संगत बनकर अधिक संतोष से जल-केलि [उस महानदी में] इस प्रकार की जैसे करेणुकायुत मदेभ (मस्त गज) करता है। ५०३ [ते.] तदुपरांत [बलराम] जलकेलि को समाप्त करके संतुष्ट रहा, तब विनील-वस्त्रादि रत्न-मंडलों

मंडनंबुलु गांचन मालिकयुनु
दॅच्चि हलिकिच्चि चनॅ ना नदी-ललाम ॥ 504 ॥

कं. अवि यॅल्ल दाल्चि हलधरु-
डविरळगति नॊप्पि वल्लवांगनलुनु दा
दिविजेंद्रु बोलि महितो-
त्सवमुन वर्तिपुचुंडॆ सौख्योन्नतुडै ॥ 505 ॥

कं. अवनीश ! यिट्लु हलमुन
दिविचिन कार्ळिदि व्रय्य दॆरपै नेडुन्
भुविनुति कॆक्कॆनु रामुनि
प्रविमलतरमैन बाहुबल सूचकमै ॥ 506 ॥

अध्यायमु—६६

श्रीकृष्णुंडु पौंड्रक वासुदेवुनि मीद दंडॆत्ति पोयि वानि जंपुट

व. अंत बलभद्रुंडु व्रजसुंदरी समेतुंडै नंदघोषंबुनं बरितोषंबु नॊंदुचुंडॆ नंत नक्कड गरूशाधिपतियैन पौंड्रकुंडु तन दूतं बिलिचि यिट्लनियॆ ॥ 507 ॥

सी. मनुजेश ! बलगर्वमुन मदोन्मत्तुडै यवनिपै वासुदेवाख्युडनग
नेनॊक्करुड गाक यितरुलकी नाम मलवडुने यनि यदट्टु मिगिलि
तॆगि हरि ता वासुदेवुड ननुकॊनुनट पोयि बलदनुमनुचु दूत
वद्मायताक्षुनि पालिकि वॊम्मन्न नरिगि वाडंबुजोदरुडु पॆद्द

को और कांचन-मालिका को लाकर और हली (बलराम) को देकर वह नदी-ललामा चली गयी। ५०४ [कं.] उन सबको धारण करके जब हलधर अविरल गति से शोभायमान होकर व्रज-वनिताओं के साथ वह स्वयं दिविजेंद्र की तरह महित-उत्सव से [तथा] सौख्योन्नत बनकर रहने लगा। ५०५ [कं.] हे अवनीश ! इस प्रकार हल से फाड़ डाली गई तो कालिंदी की धारा सफ़ेद रंग से प्रविमलतर बाहुबल-सूचक बनकर आज भी भुवि पर प्रसिद्ध हुई। ५०६

अध्याय—६६

श्रीकृष्ण का पौंड्रक वासुदेव पर आक्रमण करके उसको मार डालना

[व.] जब बलभद्र व्रजसुंदरी समेत नंदघोष में परितोष पा रहा था, उस समय वहाँ करूशाधिपति पौंड्रक ने अपने दूत को बुलाकर ऐसे कहा। ५०७ [सी.] हे मनुजेश ! बल के गर्व से मदोन्मत्त बनकर अवनि पर वासुदेवाख्य (वासुदेव नामक) एक, 'मुझे छोड़कर और किसी का यह नाम (वासुदेव नाम) हो सकता है ?' यों कहकर गर्व के आधिक्य से बहुत बढ़कर 'सुनते

ते. कौलुवु गैकोनि युंड संकोच पडक
विनुमु माराजु माटगा वनजनाभ !
यवनि रक्षिप वासुदेवाख्य नोंदि
नट्टि येनुंड सिग्गु वोदट्टि नीवु ॥ 508 ॥

कं. ना पेरुनु ना चिह्नमु
लेपुन धरियिंचि तिरिगदिदि पंतमे यिगे-
ते पो मदि वरिंकिचिन
ने पंत मॆरुंगु गोल्लडेमिट नेनन् ॥ 509 ॥

आ. इंतनुंडियैन नॆदिरि दन्नॆड्रिगि ना
चिन्नॆलेल्ल विडिचि चेरि कोलिचि
ब्रतुकु मनुमु काक पंतंबु लाडेना
यॆदुरु मनुमु घोर कदनमुनकु ॥ 510 ॥

कं. अनु दुर्भाषलु सभ्युलु
विनि यॊंडोरु मोगमु सूचि विस्मितुलगुचुन्
जनुलार ! यॆट्टि क्रोत्तलु
विनबडियॆनु निचट लॆस्स विंटिरॆ यनगन् ॥ 511 ॥

व. अट्टि यॆड गृष्णुंडु वानि किट्लनियॆ ॥ 512 ॥

हैं कि हरि अपने को वासुदेव कहता है। जाकर कहो कि वह ऐसा न करे।' यह कहकर एक दूत से 'पद्मायताक्ष (कृष्ण) के पास जाओ' कहा तो वह अंबुजोदर के, भरी सभा में बैठकर रहने पर [ते.] विना किसी संदेह के (इस प्रकार बोला), "मेरे राजा की बात समझकर सुनो, हे वनजनाभ, अवनि की रक्षा करने वासुदेव का नाम पाकर रहनेवाला जब मैं हूँ तो तुम, ५०८ [क.] मेरा नाम [और] मेरे चिह्नों को धारण करके घूमते हो। क्या यह कोई वाज़ी (होड़) है? अगर यह वाज़ी ही है तो चलो, ग्वाले को क्या मालूम है कि वाज़ी (होड़) क्या होती है? ५०९ [आ.] "कम से कम अब से अपने को और शत्रु को जानकर मेरे सब चिह्नों को छोड़कर मेरी सेवा करके जिओ; अगर ऐसा न करके वह दुर्भाषाएँ बोलता है तो कहो कि वह निकलकर भयंकर युद्ध में आकर मेरा सामना करे। ५१० [कं.] ऐसी दुर्भाषाओं को सुनकर सदस्य एक-दूसरे का मुख देखकर विस्मित होते हुए बोले, "हे जन (लोगो), अब यहाँ कैसी नई-नई बातें सुन रहे है? अच्छा, आप लोगों ने सुना है न!" [उनके] ऐसा बोलने पर, ५११ [व.] तब कृष्ण ने उस (दूत) से इस प्रकार कहा, ५१२ [म.] "रे सुन! तुम्हारे नृप के कहे हुए चिह्नों को मैं

म. विनरा मीनृपुडस्न चिह्नमुलु ने वे वच्चि घोराजिलो
दनमीदन् वॅसवैव गंकमुख गृध्र व्रातमुल् मूगगा
ननिलो दर्पमु दूलि कूलि विकलंबै सारमेयालिकि-
स्ननयंबुन् शरणंबवय्येदनु मेनन्नद्लुगा वानितोन् ॥ 513 ॥

कं. अलि युद्रेकमुगा ना-
डिन माटल कुलिकि वाडु उँदमु गलगन्
जनि तन येलिक कंतयु
विनिपिंचेनु नतनि मदिकि विरसमु गदुरन् ॥ 514 ॥

व. अंत गृष्णुंडु दंडयात्रोत्सुकुंडै विविधायुध कलितंबुनु विचित्र कांचन पताका केतु विलसितंबुनुनगु सुंदरस्यंदनंबु बटु जवतुरंगंबुल वून्चि दारुकुंडु देच्चिन नॅक्कि यतित्वरितगति गाशिका नगरंबुन करिगिनं बौंड्रकुंडुनु रणोत्साहंबु दीपिंप नक्षौहिणी द्वितयंबुतोडं बुरंबु वॅडलॅ नप्पुडतनि मित्रुंडैन काशीपतियुनु मूडक्षौहिणुलतोडं दोडु पडु वाडै वॅडलॅ निट्लाप्तयुतुंडै वच्चुवानि ॥ 515 ॥

सी. चक्र गदा शंख शाङ्र्गादि साधनु कृत्रिम कौस्तुभ श्रीविलासु
मकरकुंडलहार मंजीर कंकण मणिमुद्रिका वनमालिकांकु-
दरळ विचित्र पतंग पुंगव केतु जॅलुवॉंदु पीत कौशेय वासु
जवनाश्व कलित कांचन रथारूढुनि रणकुतूहलु लसन्मणि किरीटु

जल्दी ही युद्ध में आकर उसके ऊपर फेंक दूँ तो कंकमुख और गृध्र-व्रातों (-संघों) के जम जाने पर, युद्ध में दर्प के दब जाने पर गिरकर और विकल होकर सारमेयालि (कुत्तों के समूह) की शरण में सदा जाओगे। इस प्रकार हमारी ओर से तुम अपने राजा से कहो।" ५१३ [कं.] उद्रिक्तता के साथ इस प्रकार बोली हुई बातों के लिए उस (दूत) ने नाराज़ होकर हृदय के क्रोध के भर जाने पर, जाकर अपने राजा से सारी बातें कह दीं जिससे उसके मन में विरस उत्पन्न हो जाय। ५१४ [व.] तब आक्रमण करने की उत्सुकता से कृष्ण के विविधायुधकलित, विचित्र-कांचन-पताका-केतु-विलसित और सुंदर स्यंदन के पटु-जव-तुरंगों से जुते हुए रथ को दारुक (सारथी) के लाने पर उस पर चढ़कर अतित्वरित गति से काशिका नगर में जाने पर पौंड्रक भी रणोत्साह के प्रज्वलित होने पर दो अक्षौहिणियों के साथ पुर से निकला तो उसका मित्र काशीपति भी तीन अक्षौहिणियों के साथ सहायता करने निकला। इस प्रकार आप्तयुत होकर आनेवाले को ५१५ [सी.] चक्र-गदा-शंख-शाङ्र्ग आदि साधनों को लेकर कृत्रिम कौस्तुभ श्रीविलासी को मकर-कुंडल-हार-मंजीर-कंकण-मणि-मुद्रिका-वन-मालिकांक को, तरल-विचित्र-पतंग-पुंगव-केतु को, प्रकाशमान पीत कौशेय-

ते. नात्म समवेषु रंग विहार कलित
नट समानुनि पौंड्रभूनाथु गांचि
हर्ष मिगुरोत्त नव्वे बद्मायताक्षु
डंतवाडुनु नुद्वृत्तुडगुचु नडरि ॥ 516 ॥

कं. परिघ शरासन पट्टिस
शर मुद्गर मुसल कुंत चक्र गदा तो-
मर भिडिवाल शक्ति
क्षुरिकासिप्रास परशु शूलमुल वेसन् ॥ 517 ॥

च. परुवडि वेचिनन् दनुज भंजनुडंत युगांतकाल भी-
कर महितोग्र पावकुनि केवडि नेचि विरोधि साधनो-
त्करमुल नोक्कटन् शरनिकायमुनन् निगिडिचित्रुंचिभा-
स्वरगति नोत्ते संचलित शात्रव सैन्यमु पांचजन्यमुन् ॥ 518 ॥

उ. वारनि यल्कतो गिनिसि वारिजनाभुडु वारि सैन्यमुल्
मारि मसंगिनट्लु नुइसाडिन वीनुगु वेंटलै वेसं
देरुलु व्रालें नश्वमुलुद्रेळ्ळें गजंबुलु क्रोंगें सद्भटुल्
धारुणि गूलिरिट्लु नॅरि दप्पि चनॅन् हतशेष सैन्यमुल् ॥ 519 ॥

व. अट्टियेड, रुधिर प्रवाहंबुलुनु मेदोमांसपंकंबुलुनै संगरांगणंबु घोर भंगि

वास को, जवनाश्व-कलित-कांचन-रथारूढ़ को, रणकुतूहल रखनेवाले को, लसन्मणि किरीटधारी को, [ते.] आत्मसमवेषधारी को रंग-विहार-कलित नट-समान को, पौंड्र भूनाथ को देखकर, हर्ष के अधिक होने पर, पद्मायताक्ष हँस पड़ा। तब उसने भी उद्धत्त बनते हुए और विजृंभित होते हुए। ५१६ [क.] परिघ, शरासन, पट्टिस, शर, मुद्गर, मुसल, कुंत, चक्र, गदा, तोमर, भिडिवाल, शक्ति, क्षुरिका, असि, प्रास, परशु और शूलों का जल्दी, ५१७ [च.] दौड़कर प्रयोग किया तो दनुजभंजन (कृष्ण) ने युगांतकाल भीकर, महित और उग्र पावक की तरह विरोधि साधनोत्करों को एक दम शरनिकायों का प्रयोग करके, विजृंभित होकर, काटकर, शात्रव-सेना को संचलित करनेवाले पांचजन्य को भास्वर गति से बजाया। ५१८ [उ.] अधिक क्रोध से क्रुद्ध होकर वारिजनाभ ने उनकी सेना को विजृंभित हो मार डाला तो शवों की राशियाँ अधिक हो रथ कट गये, अश्व मर गये, गज गिर गये, सद्भट (मरकर) धरती पर लेट गये; इस प्रकार हत शेष सेनाएँ क्रम-रहित होकर भाग गयी। ५१९ [व.] उस समय रुधिर प्रवाहों [तथा] मेदो-मांस-पंकयुक्त होकर संगर का आँगन घोर बन गया। तब युद्ध के लिए छेड़नेवाले उस पौंड्रक को देखकर [और उसे]

यय्ये। अय्यवसरंबुनं गय्यंबुनकु गालु द्रव्वु नप्पौंड्रकुनि गनुंगोनि
हरि संबोधिंचि यिट्लनियें ॥ 520 ॥

म. मनुजेंद्राधम! पौंड्रभूपसुत! नीमानंबु बीरंबु ने-
डनिलो मापुदु नेंद्दु क्रोव्वि पेलुचन्नाबोतुपै ड्रंके वे-
चिन चंदंबुन दूतचेत ननु नाक्षेपिंचि वल्दन्न पे-
रुनु जिह्नंबुलु नीपयिन् विडुतु नर्चुल पर्वनेडाजिलोनन् ॥ 521 ॥

कं. अदिगाक नीडु शरणमु
पदपडि योजोत्तु नीवु बल विक्रम सं-
पदगल पोटरि वेनियु
गदलक निलुमनुचु निशित कांडमुलंतन् ॥ 522 ॥

म. चल मोप्पन् निगिडिंचि वानि रथमुन् जवकाडि तत्सारथिन्
दल वे त्रुंचि हयंबुलन् नड्रिकि युद्दंड प्रताप क्रियन्
ब्रळयार्क प्रतिमान चक्रमुन नप्पौंड्रुन् वेसं द्रुंप वा-
डिल गूलेन् गुलिशाहतिन्नोरगु शैलेंद्राकृतिन् भूवरा! ॥ 523 ॥

च. मडवक काशिकाविभुनि मस्तकमुद्धति द्रुंचि बंति कै-
वडि नदि पिंजपिंज गरुवन् विशिखाळि निगिड्चि वानिये-

संबोधन करके हरि ने इस तरह कहा। ५२० [म.] "हे मनुजेंद्राधम! पौंड्रभूपसुत! तेरे मान और बड़ाई का, आज युद्ध में अंत कर दूंगा। जैसे बैल बढ़कर साँड़ पर गरजता है वैसे दूत के द्वारा मेरा तिरस्कार करके मेरे जिन चिह्नों को छोड़ देने के लिए तूने कहा उसी नाम और उन चिह्नों को आज युद्ध में ऐसे छोड़ दूंगा कि उनकी कांतियाँ चारों ओर फैल जायँ। ५२१ [कं.] "इसके अतिरिक्त मैं फिर तुम्हारी शरण में आ जाऊँगा। अगर तू बल-विक्रम-संपदायुक्त योद्धा है तो बिना हिले-डुले खड़ा रह।" इस प्रकार कहते हुए निशित कांडों (शरों) को ५२२ [म.]हे भूवर! [पौंड्र का] मात्सर्य अधिक हो जाय, विजृंभित होकर उसके रथ का खंडन करके, उसके सारथी का सिर काटकर, हयों को मार डालकर, उद्दंड प्रताप-क्रिया से, प्रलयार्क प्रतिमान चक्र से जल्दी उस पौंड्र का वध किया तो वह धरती पर इस प्रकार गिर पड़ा जैसे कुलिशाहति (वज्र के आघात) से शैलेंद्र नीचे गिर जाता है। ५२३ [च.] मुरांतक ने सफलता के साथ काशिकाविभु (पौंड्र) का मस्तक उद्धति से काटकर गेंद की तरह फेंक दिया जिससे वह टुकड़े-टुकड़े हो जाय, विशिखालि (शरसमूह) को विजृंभित करके अवलीला के साथ उस पुरी में फेंक दिया जिस पर उसने

लॅंडि पुरिलोन वॅसे नवलील मुरांतकुडिट्लु वैरुलन्
गडगि जयिंचि चित्तमुन गौतुकमुं जिगुरॉत्तनरिन् ॥ 524 ॥

कं. सुर गंधर्व नभश्चर
गरुडोरग सिद्ध साध्य गणमु नुतिपन्
मरलि च्चनुदेंचि हरि निज
पुरमुन सुखमुंडॅ नति विभूति दलिर्पन् ॥ 525 ॥

कं. वनजोदरु चिह्नंबुलु
गॉनकॉनि धरियिंचि पौंड्रकुडु मच्चरियै
यनवरतमु हरि दनतल-
पुन गलुगुट जेसि मुक्ति वॉंदॅ नरेंद्रा ! ॥ 526 ॥

सी. अवकड गाशिलो ना राजु मंदिरांगणमुन गुंडल कलितमगुचु
वडियुन्न तल जूचि पौरजनंबुलु दम राजु तलयनि तग नॅरिंगि
चॅप्पिन ना नृपु जीवितेश्वरुलुनु सुतुलु बंधुवुलुनु हितुलु गूडि
मॉनसि हाहाकारमुन नेड्चिरत्तरि दत्तनूभवुडु सुदक्षिणुंडु

ते. वॅलय दंड्रिकि बरलोक विधुलॉनर्चि
जनकु ननिलो वधिंचिन चक्रपाणि
नडरि मर्दिपदगु नुपायंबु दलचि
चतुरुडगुनट्टि तन पुरोहितुनि बिलिचि ॥ 527 ॥

राज्य किया था। इस प्रकार वैरियों को यत्नपूर्वक जीतकर चित्त में कौतुक के पल्लवित होने पर, तब ५२४ [कं.] सुर, गंधर्व, नभश्चर, गरुड़, उरग, सिद्ध, साध्य गण के नुति करने पर लौटकर हरि निज पुर में आकर सुखी रहा ताकि विभूति (संपदा) अत्यंत अधिक हो जाय। ५२५ [कं.] हे नरेन्द्र ! वनजोदर (कृष्ण) के चिह्नों को यत्न के साथ धारण करके पौंड्रक ने मात्सर्य से अपनी चिन्ता में अनवरत हरि को धारण करने से मुक्ति पायी। ५२६ [सी.] वहाँ काशी में उस राजा के मंदिर के आँगन में कुंडल कलित हो गिरे हुए सिर को देखकर और जानकर पौर-जनों के कहने पर कि यह हमारे राजा का सिर है, उस नृप की जीवितेश्वरियाँ, सुत, बंधु और हित सब मिलकर जोर से हाहाकार करते हुए रोये। उस समय उसका तनूभव सुदक्षिण, [ते.] अच्छी तरह [अपने] पिता की परलोक-विधियों की पूर्ति करके, जनक को युद्ध में मार डाले हुए चक्रपाणि को विजृंभण करके मर्दन करने का उपाय सोचकर चतुर होनेवाले अपने पुरोहित को बुलाकर, ५२७ [कं.] वह (पुरोहित)

कं. अतडुं दानुनु जनि पशु, -पति पदसरसिजमुलकुनु बमदमुतो ना-
नतुडयि यद्देवुनि बहु, गतुलं बूजिप नतडु करुणान्वितुडै ॥ 528 ॥

कं. मॅच्चिचति वरमैननु, निच्चॅद ननु वेडु मनिन नीश्वर ! निन्नुन्
नच्चिन रक्षिंतुवु पॊर, पॊच्चॅमु सेयक महेश ! पुरहर ! यभवा ! ॥529॥

कं. देवा ! मज्जनकुनि वसु, -देवात्मजु डाजिलो वधिचॅनु ने ना
गोविंदुनि ननिलोपल, नेविधमुन गॅलुतु नानतीवे पुरारी ! ॥ 530 ॥

ते. अनिन शंकरुडतनिकि ननियॆ ननघ !
नीवु ऋत्विजुलुनु भूसुरावळियुनु
बीति नभिचारमॊनरिंप भूतयुक्तु-
डगुचु ननलुंडु दीर्चु नी यभिमतंबु ॥ 531 ॥

ते. अनिन ना चंद्रमौळि वाक्यमुल भंगि
भूरि नियममुतो नभिचार होम-
मॊनर गाविप नग्नि यथोचितमुग
जॅलगि दक्षिण वलमान शिखल वॅलिगॆ ॥ 532 ॥

व. अंदु दाम्रश्मश्रु केश कलापंबुलुनु नशनि संकाशंबुलैन निडुद कोरलुनु निप्पुलुप्पतिल्लु चूड्कुलुनु मुडिवडिन बॊमलुनु जेवुरिंचिन मॊगंबुनु गलिगि कृत्य यति रौद्राकारंबुन बज्वरिल्लुचु गुंडंबु वॅलुवडि कृत्य यनुदिन

और स्वयं (सुदक्षिण) जाकर पशुपति के पद-सरसिजों पर प्रमद के साथ आनत होकर उस देव की बहुविधियों से पूजा करने पर वह (शिव) करुणान्वित होकर ५२८ [कं.] "सन्तुष्ट हुआ, कोई भी वर दे दूंगा, माँगो" —ऐसे कहने पर "हे ईश्वर, हे महेश, हे पुरहर, हे अभव ! तुमको जो पसंद आता है, उसकी रक्षा बिना किसी कपट के करोगे। ५२९ [कं.] "हे देव ! हे पुरारी ! मेरे जनक का वसुदेवात्मज ने युद्ध में वध किया। मैं उस गोविंद को युद्ध में किस प्रकार जीत लूँगा ! आज्ञा दो।" ५३० [ते.] ऐसे पूछने पर शंकर ने उससे कहा, "[हे] अनघ ! तुम्हारे, ऋत्विजों के और भूसुरावलि के प्रीति से अभिचार होम करने पर अनल भूत युक्त होकर तुम्हारे अभिमत की पूर्ति करेगा।" ५३१ [ते.] ऐसा कहने पर उस चंद्रमौलि के वाक्यों के अनुसार भूरि नियम से अभिचार होम करने पर अग्नि यथोचित रीति से व्याप्त होकर दक्षिण वलमान (दक्षिण दिशा की ओर व्याप्त) शिखाओं से प्रकाशमान हुआ। ५३२ [व.] उसमें से ताम्र श्मश्रु, केश-कलापों, अशनिसंकाश दीर्घ दंष्ट्राओं, आग बरसाती हुई आँखों, गाँठ पड़ी हुई भौहों, और लाल मुख से युक्त कृत्या के अति रौद्राकार से प्रज्वलिता होती हुई कुंड से निकलकर निहन्यमान प्राणि,

निहन्यमान प्राणिरक्तारुण मृत्यु करवालंबु लीलं जूपट्टु नालुकनु सॅलवुल नाकिकॉनुचु, नग्नि कीलाभीलंबगु शूलंबु केलंदालिचि भुवन-कोलाहलंबुगा नार्चुचु, नुत्ताल तालप्रमाण पादद्वयहतुलं दूलु पॅधूळि निगि म्रिंग भूतंबुलु सेविंप नग्नवेषयै निजविलोचन संजात समुद्भूत निखिल भयंकर ज्वालिका जालंबुल दिशाजालंबुलु नोलि ब्रेलचुचु नुद्वेग गमनंबुन नगधरनगरंबुन कच्चुदेर बौरजनंबुलु भयाकुल मानसुलै दावदहनुनिगनि परचु वनमृगंबुल चाड्पुनं बरचि सुधर्माभ्यंतरंबुन जूदंबाडु दामोदरु गनि रक्षरक्षेति रवंबुलं नार्तुलयि कृष्ण ! कृष्ण,! पॅनुमंटलंबुरंबु गालपं ब्रळयाग्नि चनुदेंचॅनन वारि जूचि योडकोडकुडनि भयंबु निवारिंचि सर्वरक्षकुंडैन पुंडरीकाक्षुंडु जगदंतरात्मुंडु गावुन दद्वृत्तांतंबंतयु दन दिव्य चित्तंबुन नॅरिगि काशिराज पुत्र प्रेरितयैन यम्महाकृत्यनु निग्रहिंपं दलंचि निज पार्श्ववर्तियै युन्न यद्दिव्य साधनंबु गनुंगॉनि यप्पुडु ॥ 533 ॥

सी. भीममै बहुतीव्र-धाममै हतरिपु-स्तोममै सुमहितोद्दाममगुचु
जंडमै विजित-मार्तांडमै पालिताजांडमै विजय-प्रकांडमगुचु
दिव्यमै निखिल-गंतव्यमै सुजन-संभाव्यमै सद्भक्त-सेव्यमगुचु
नित्यमै निगम-संस्तुत्यमै विनमितावित्यमै निर्जित-दैत्यमगुचु

रक्तारुण मृत्यु करवाल की भाँति दिखाई पड़नेवाली जीभ से लार को चाटती हुई, अग्निकीलाभील शूल को कर (हाथ) में धारण करके भुवन कोलाहल के रूप में गरजती हुई,. उत्ताल-ताल-प्रमाण पादद्वय-हतों (-आघातों) से उठनेवाली विस्तृत धूलि के आकाश को निगलने पर, भूतों से सेवा लेती हुई, नग्नवेषा बनकर निज विलोचन-संजात-समुद्भूत-निखिल-भयंकर-ज्वालिका-जाल से दिशा-जाल (समूह) को क्रम से विस्फोटित करती हुई, उद्वेग-गमन से कृष्ण के नगर में प्रवेश करने पर पौर-जन के भयाकुल मानस वाले बनकर, दावदहन करनेवाले [अग्नि] को देखकर भाग जानेवाले वनमृगों के जैसे भागकर सुधर्माभ्यंतर में जुआ खेलनेवाले दामोदर को देखकर "रक्ष-रक्ष" कहकर आर्त बनकर "कृष्ण-कृष्ण ! भयंकर अग्नि से पुर का दहन करने के लिए प्रलयाग्नि आयी है" कहकर बोलने पर उनको देखकर 'मत डरो, मत डरो' कहकर (उनके भय का निवारण करके) सर्वरक्षक पुंडरीकाक्ष ने जगदंतरात्मा होने के कारण उस सारे वृत्तांत को अपने दिव्य-चित्त से जानकर, काशीराज-पुत्र द्वारा प्रेरिता उस महाकृत्या का निग्रहण करने के लिए निजपार्श्ववर्ती होनेवाले उस दिव्य साधन को देखकर तब । ५३३
[सी.] भीम (भयंकर), बहुतीव्र धाम, हतरिपुस्तोम तथा सुमहितोद्दाम होते हुए; चंड, विजित-मार्तांड, पालित-अजांड तथा विजय-प्रकांड बने हुए; दिव्य, निखिल-गन्तव्य, सुजन-संभाव्य तथा सद्भक्त-सेव्य होते हुए;

ते. विलय समय समुद्भूत विपुल भास्व-
दळिक लोचन लोचनानल सहस्र
घटित पटु नटाज्वालिका जटिल सर्व-
भयद चक्रंबु कृत्यपै बंपॆ शौरि ॥ 534 ॥

व. अदियुनु प्रळयवेळा संघात जीमूत संघात प्रभूत घुमघुमाटोप निनदाधरीकृत महा दुस्सह कहकह निबिड निस्वन निर्घोष परिपूरित ब्रह्मांड कुहरंबुनु, नभ्रंलिह कीला समुत्कट पटु चिट चिट स्फुट स्फुट द्विस्फुलिंग विसरंबुनु, सकल देवतागण जय-जय शब्द कलितंबुनु, ननंत तेजोविराजितंबुनुनगुचुं गदिसिनं बॆंटिपक कॆंटॊगचु कृत्यनु गॆंटि वॆंटनंटिन नदि तन तॊंटि रौद्रंबु विडिचि मडिचि काशीपुरंबु सॊच्चि पौरलोकंबु भयाकुलतं बॊंदि वापोव रोष भीषणाकारंबुतो नप्पुडु श्रृत्विक्ननिकाय-युतंबुगा सुदक्षिणुनि दहिंचॆ, नत्तरि जक्रंबु ननगरंबु सौध प्राकार गोपुराट्टालकादि विविध वस्तु वाहन निकरंबुलतो भस्मंबु गाविंचि मरलि यमरुलु वॆरगंद गमललोचनपार्श्ववर्तियै निज प्रभा पुंजंबु वॆलुगॊंद गॊलिचि युंडॆ ननि चॆप्पि मरियु निट्लनियॆ ॥ 535 ॥

कं. मुररिपु विजयांकितमगु
चरितमु सद्भक्ति दगिलि चदिविन विनिनन्

नित्य, निगम-संस्तुत्य, विनमित-आदित्य तथा निर्जित-दैत्य होते हुए; [ते.] विलय सयय में समुद्भूत विपुल भास्वदलिक-लोचनों के अनल सहस्र-घटित पटु सटा ज्वालिका जटिल एवं सर्व भयद चक्र को शौरि ने कृत्या पर भेज दिया। ५३४ [व.] वह भी प्रलयवेला-संभूत जीमूत-संघात प्रभूत घुमघुमाटोप से निनद-बधरीकृत महा दुस्सह कहकह (अनुकरण ध्वनि) के निबिड-निस्वन-निर्घोष परिपूरित ब्रह्मांड कुहर, अभ्रंलिह-कीला-समुत्कट पटु-चिटचिट (अनुकरण ध्वनि) स्फुट द्विस्फुलिंग विसर, सकल देवतागण जय जय शब्दकलित और अनंत तेजोविराजित होते हुए समीप आने पर, विलंब न करके विरोध करनेवाली कृत्या को हटाकर पीछा करने पर, उसने अपने पूर्व रौद्र को छोड़कर, लौटकर, काशीपुर में घुसकर पौरलोक के भयाकुलता को पाकर रोने पर रोष भीषणाकार से तब ऋत्विक्निकाययुत सुदक्षिण को जला दिया। तब चक्र भी उस नगर को जो सौध-प्राकार-गोपुर-अट्टालिका आदि विविध वस्तु-वाहन-निकर-सहित था, भस्म करके लौटकर, अमरों के डरने पर, कमल-लोचन का पार्श्ववर्ती बनकर, निज प्रभापुंज के प्रकाशमान होने पर सेवा करता रहा। इस प्रकार कहकर [शुकयोगी ने] फिर इस प्रकार कहा। ५३५ [कं.] हे अधिप! मुर-रिपु विजयांकित होनेवाले

दुरितमुल बासि जनुलिह-
पर सौख्यमुलतनिचेत बडयुदु रधिपा ! ॥ 536 ॥

अध्यायमु—६७

व. अनिन शुकयोगिकि राजयोगि यिट्लनियें ॥ 537 ॥

बलरामुंडु द्विविदुंडनु वानरुनि संहरिंचुट

कं. बलभद्रुड प्रमेयुं-
डलघु डनंतुंडु ननतनि यद्भुतकर्मं-
बुलु विनियु दनिय विकनु
वॅलियग नाकानतिम्मु दिव्य मुनींद्रा ! ॥ 538 ॥

व. अनिन राजुनकु शुकुंडिट्लनियें ॥ 539 ॥

कं. जननायक ! विनु सुग्री-
वुनि सचिवुडु मैंदुनकु सहोदरुडनगा
विनुतिकि नॅक्किन द्विविदुं-
डनु प्लवगुडु नरक-सख्युडति दर्पितुडै ॥ 540 ॥

इस कथा को सद्भक्ति से लगकर पढ़ने और सुनने पर दुरितों से विमुक्त होकर लोग उसके फल स्वरूप ऐहिक तथा पारलौकिक सुख पायेंगे। ५३६

अध्याय—६७

[व.] ऐसा कहने पर शुकयोगी से राजयोगी ने इस प्रकार कहा। ५३७

बलराम का द्विविद नामक वानर का संहार करना

[कं.] हे दिव्य मुनींद्र ! बलभद्र अप्रमेय है, अलघु है, अनंत है। और भी उसके अद्भुत कर्मों के बारे में सुनकर भी तृप्ति नहीं होती; जानने के लिए मुझे आज्ञा दो। ५३८ [व.] ऐसा कहने पर राजा से शुक (मुनि) ने इस प्रकार कहा। ५३९ [कं.] हे जननायक ! सुनो ! सुग्रीव का सचिव [और] मैंद का सहोदर बनकर प्रख्यात होनेवाला द्विविद नामक प्लवंग, जो नरक [असुर] का सखा था, अति दर्पित बनकर, ५४०

सी. चॅलिकानि पगदीर्प दलचि कृष्णुंडेलु पुरमुलु जनपदंबुलु दहिंचि
सरिदुपवन सरोवरमुलु गोराडि मंदल गोंदलमंदजेसि
प्रासादमुलु द्रोव्वि परिघलु मायिंचि चतुरंग बलमुल समयजेसि
पुरुषुल सतुलनु भूधरगुहललो वॅट्टि वाकिलि गट्टि बिट्टु नोंचि

ते. फलित तरुवुल द्रुंचि साधुल नलंचि
कोटलगलिचि पडुचुल नीट मुंचि
धरणि निब्भंगि वॅक्कु बाधल जलंबु
पडव जेयुचु नोकनाडु प्लवगवरुडु ॥ 541 ॥

कं. चतुर मृदुगीत रवमु-
न्नति वीतेंचिन जॅलंगि नगचरुडा रै-
वतगिरि कंदरमुन का-
यत गति जनि यंदु नॅत्तमाडेंडु वानिन् ॥ 542 ॥

च. ललित विनीलवस्त्रुनि विलासवतीयुतु जंद्रचंद्रिका-
कलित महोन्नतांगु मणिकांचन दिव्य विभूषणोन्नतुन्
विलसित वारुणी समद विह्वललोचनु गांचॅ सीर नि-
र्दळित रिपुक्षितीश निजधामुनि रामुनि गामपालुनिन् ॥ 543 ॥

[सी.] [अपने] मित्र का बदला लेने की इच्छा करके कृष्ण के राज्य के अन्तर्गत होनेवाले जनपदों को जलाकर सरित, उपवन, सरोवरों को तितर-बितर करके, पशुसमूहों को क्षोभ पहुँचाकर, प्रासादों को गिराकर, परिखाओं को गिराकर, चतुरंग सेना को मार डालकर, पुरुषों की सतियों को भूधरों की गुफाओं में रखकर शीघ्र ही दरवाज़ा बन्द करके, [ते.] फलित तरुओं को तोड़कर, साधुओं को पीड़ित कर, क़िलों को तोड़ कर और युवतियों को जल में डुबो कर, इस प्रकार धरणी [जनों] को अनेक बाधाएँ पहुँचाते हुए प्लवंगवर ने एक दिन, ५४१ [कं.] उन्नति से चलनेवाले चतुर मृदु गीत रव के सुनाई पड़ने पर विजृंभित होकर नगचर (द्विविद) ने उस रैवत गिरि की कंदरा में शीघ्र जाकर वहाँ जुआ खेलने वाले, ५४२ [च.] ललित विनील वस्त्रधारी, विलासवती-युत, चंद्रचंद्रिका-कलित महोन्नतांगवाले, मणिकांचन दिव्य विभूषणोन्नत तथा विलसित वारुणी समद विह्वल लोचनवाले [अपने] सीर (हल) से निर्दलित रिपु क्षितीश (राजाओं को कुचल डालनेवाले) निज धाम, कामपाल बलराम को देखा। ५४३ [सी.] देखकर तत्पुरोगम भूमिरुहों की शाखाओं पर चढ़

सी. कनुगोनि तत्पुरोगम भूमिरुह शाखलॅक्कि यूचुचु जाल वॅक्किरिंचु
गिकुरिंचुचुनु बॅड्लिगिलिंच चूपुचु वॅस गॉम्म कॉम्मकु नुरुकुचु नदल्चु
दोक नूरक मेनु सोकग नुलिवॅट्टु वॅड वॅड नालुक वॅडलबॅट्टु
बरुल नखंबुल गिरगिर गोकुचु बॉरि बॉरि फलमुलु गडचिवॅच

ते. गोळ्ळु तॅग गॉरिकि युमियुनु गुदमु सूपु
बलसि मर्कट जाति यिप्पगिदि जेय
गोपमुन हलधरुडॉक गुंडु वॅव
दानि दप्पिंचुकॉनि प्रल्लबमुन नतनि ॥ 544 ॥

कं. नगि यासवकलशमु गॉनि न-
जगतीरुहशाखयॅक्कि चापलमुन दद्घट
मुजगपति पवि वॅचॅ मॉदवन् ॥ 545 ॥
मगलगनदि चूचि कोपमगल

व. मडियुनु ॥ 546 ॥

कं. सीरिनि दन मनमुन नॉक
चीरिकि गॅकॉनक कदिसि चीरलु चिंपन्
वारकतडु भुवि जनमुल
गारिंचुट मान्प दलचि घनकुपितुंडै ॥ 547 ॥
॥ 548 ॥

व. इट्लु कोपोद्दीपित मानसुंडयि कनुंगॉनि हलायुधुंडप्पुडु

कर, हिलाते हुए, बहुत मज़ाक़ करते हुए, शोर मचाते हुए, दाँतों को दिखाते हुए, जल्दी-जल्दी एक शाखा से दूसरी शाखा पर लाँघते हुए, डराते हुए, यों ही पूँछ को अपने शरीर से लिपटाते हुए, रह-रहकर जीभ को बाहर निकालते हुए, अपने पार्श्वों को नखों से जल्दी-जल्दी खरोंचते हुए, बार-बार फूलों को काटते हुए, [ते.] नाखूनों को काट-काटकर थूकते हुए, गुदा को दिखाते हुए, खूब मस्त होकर, मर्कट जाति [वाले] के इस प्रकार करने पर, कोप से हली ने एक गोल पत्थर को फेंका तो उससे बचकर और हँसी से उसने ५४४ [कं.] हँसकर आसव-कलश को लेकर जगतीरुह-शाखा पर चढ़कर चापल्य से उस जगपति पर उस घट को फेंक दिया; उसके फूट जाने पर उसे देखकर अधिक कोप होने पर, ५४५ [व.] और ५४६ [कं.] अपने मन में सीरि (बलराम) की परवाह न करके, समीप आकर चीरों को फाड़ देने पर, सह न सककर वह (बलराम) भुवि के लोगों की बाधा को दूर करने का निश्चय करके, अधिक कुपित होकर, ५४७ [व.] इस प्रकार कोपोद्दीपित मानस वाला होकर, देखकर, हलायुध के तब, ५४८ [चं.] तीव्र

च. मुसलमु दीव्र शात हलमुन् धरियिंचि समस्त चेतन
ग्रसनंमु नाडु पॊंगु लय-कालुनि भंगि नदलिच निलव या-
डसदृश विक्रम क्रम विहारमॆलर्प समीप भूजमुन्
वॆस वॆकलिंचि मस्तकमु व्रेसॆ जलंबु वलंबु चॊप्पडन् ॥ 549 ॥

व. इट्लु व्रेय वलुंडप्पुडु ॥ 550 ॥

च. उरवडि दंडताडित महोरगुभंगि गडंगि वीर सा-
गरमुन नेर्चि हेमकटकंबुल नॊप्पु सुनंदनाम भी-
करमुसलंबुनन् द्विविदु कंठमु व्रेसिन वॊल्चॆ वाडु जे-
गुरु गल कॊंडचंदमुन गोयनि यार्चि सुरल् नुतिपगन् ॥ 551 ॥

मत्त. अंतवाडोकयित मूर्छिलि यंतलो दॆलिवॊंदि दु-
दाँत भूरि भुजा विजृंभणुडै महीजमु वून्चि दै-
त्यांतकाग्रजु व्रेसॆ व्रेसिन नाग्रहंबुन वानि नि-
र्तितलै धर रालजेसॆ नहीन विक्रमशालियै ॥ 552 ॥

कं. मरियुनु जलमुडुगक वॆस
दरुचरुडॊक तरुवु व्रेय दालांकुंडा-
तरुवुनु दुनिमिन वॆंडियु
दॊरगिंचॆ भुजंबुलतडु दोड्तो दुनुमन् ॥ 553 ॥

शात हल होनेवाले मुसल को धारण करके, मानो समस्त चेतनग्रस (प्रलय) के दिन हो, उबलनेवाले लयकाल की तरह हटाकर खड़े होने पर उसने असदृश विक्रम क्रम विहार करने के लिए समीपस्थ भूज (वृक्ष) को शीघ्र ही उखाड़कर ज़ोर से फेंक दिया। ५४९ [व.] ऐसा फेंक देने पर वल (राम) ने तब ५५० [च.] शीघ्र ही दंड ताडित महान् उरग की तरह प्रयत्न करके वीर सागर में फेंककर, हेमकटकों की तरह प्रकाशमान सुनंद नाम के भीकर मुसल को द्विविद के कंठ पर डाला तो वह (द्विविद) लाल पहाड़ की तरह दिखाई पड़ा जिससे सुरों ने पुकार-पुकारकर उस (वलराम) की प्रशंसा की। ५५१ [मत्त.] तब उसने थोड़ी देर के लिए मूर्च्छित होकर, [फिर] होश में आकर दुर्दांत भूरि भुजा-विजृंभण वाला बनकर महीज (वृक्ष) को लेकर दैत्यांतक के अग्रज (वलराम) पर डाला तो [वलराम ने] आग्रह से अहीन विक्रमशाली बनकर उसको टुकड़े-टुकड़े बनाकर धरा पर गिरा दिया। ५५२ [कं.] फिर भी हठ (उत्साह) को न खोकर शीघ्र ही तरुचर (वानर) ने एक तरु (वृक्ष) को फेंका तो तालांक (बलराम) ने उस तरु को काट डाला तो फिर) उस [वानर] ने वृक्षों को फेंक दिया तो (वलराम ने) उन सबको काट डाला। ५५३ [कं.] इस

कं. आ चंदंबुन वनचरु-
डेंचि महीरुह चयंबुलॅल्लनु हलिपै
वेचि यवि शून्यमगुटयु
जूचि शिलावृष्टि गुरिसे सुरलगिवन् ॥ 554 ॥

कं. बलुडपुडु रालु दुमुरे
यिल रालग जेसि यावं नेपुडुगक या
वलिमुखुडु दाल-सन्निभ-
मुलयिन निजबाहु दंडमुल नुग्रुंडे ॥ 555 ॥

कं. वडि बिडुगु वोलु पिडिकिट
बॉडिचिन वडि सॅडक बलुडु मुसलमु हलमुन्
विडिचि प्लवंगुनि मंड गडु
वॅडवॅड ब्रिगिर्यिचॅं ग्रुड्लु वॅलिकुरुकंगन् ॥ 556 ॥

क. वदनमुन जॅवुल रुधिरमु
मॅदडुनु दोरगंग वाडु मेदिनि मोदं
जविकिल बडि यौक्क यितयु
मॅदलक मिडुकंगलेक मृति बॉदॅं नृपा ! ॥ 557 ॥

ते. वानि पाटुन कप्पुडु वन समेत-
मगुचु ना शैलराज मल्लल्ल नाडॅ
सुरगणंबुलु रामुपै सुरभिकुसुम-
वृष्टि गुरियिंचिरतुल संतुष्टि मॅड्सि ॥ 558 ॥

प्रकार वनचर ने महीरुहचय को हली (बलराम) पर डाला तो वे सब शून्य हो गये; यह देखकर [वानर ने] शिलावृष्टि बरसायी; ताकि सुर प्रशंसा करें, ५५४ [कं.] बल (राम) ने तब पत्थरों को टुकड़े-टुकड़े बनाकर भूमि पर गिरा दिया तो, साहस को न खोकर उस बलिमुखी (वानर) ने ताल [वृक्षों के] समान होनेवाले अपने बाहुदंडों से उग्र बनकर, ५५५ [कं.] शीघ्र ही बिजली के समान होनेवाली मुष्टि से मारा तो [अपनी] कुशलता को न खोकर बलराम ने मुसल और हल को छोड़कर प्लवंग के गरदन को पकड़कर कस डाला ताकि उसकी आँखों के पुतले बाहर निकल आयँ। ५५६ [कं.] हे नृप ! वदन से, कानों से, मस्तक से रुधिर के बहने से वह (द्विविद) मेदिनी पर धड़ाम से गिरकर कुछ भी न हिल-डुलकर, डाँवाँ-डोल हो न सककर मर गया। ५५७ [ते.] उसके गिरने से तब वह शैलराज वन समेत हिल गया। सुरगण अतुल संतुष्टि पाकर (बल) राम पर सुरभि-कुसुमवृष्टि की। ५५८ [व.] इस प्रकार भुवन-कंटक होनेवाले

व. इव्विधंबुन भुवन कंटकुंडयिन दुष्ट शाखा-मृगेंद्रुनि वसुंधरकुं बलि सेसि सकल जनंबुलु परमानंद कंदळित हृदयारविंदुलै तन्नु नंदिप नय्यदुनंदनुंड निज नगरंबुन करुगुदेंचेननि शुकुंडु वेंडियु नम्मनुजपति-किट्लनियें ॥ 559 ॥

अध्यायमु—६८

बलरामुंडु हस्तिनापुरमुनु गंगलो द्रोयबूनुट

सी. कोरि सुयोधनु कूतुरि सर्वलक्षणमुलु गलिग लक्षण यनंग महिनोप्पु कन्यकामणि विवाहंबुन जक्रहस्तुनि तनूजातुडयिन सांबुडु घन साहसमुन नेत्तुक पोव गौरवुल् वीक्षिचि कडगि कोंवि-पडुचु वाडोकडवे बालिक गोनिपोवुचुन्नाडु गंकोनकुवकु मिगिलि

ते. यिट्टि दुर्मदु गयिमुट्टि पट्टि तेच्चि
जनुलु वेंड्रगंव जेरपट्टि युनुतुमेनि
यदुवुलु मनल नेमि सेयंग गलरो
यनुचु गुरुवृद्ध जनमुल यनुमतमुन ॥ 560 ॥

व. इट्लु गडंगि युद्ध सन्नद्धुलै बल शौर्योपेतुलगु कर्णशल्य भूरिश्रवोयज्ञकेतु सुयोधनादुलु समुन्नत रथारूढुलै कूडनरिगिन वारलं गनुंगोनि जांबवती-

---

दुष्टशाखा-मृगेंद्र को वसुंधरा को बलि देकर, सकल जनों के परमानंद कंदलित हृदयारविंद बनकर प्रशंसा करने पर, वह यदुनंदन निज नगर को चला गया। इस प्रकार कहकर शुक ने फिर उस मनुजपति से इस तरह कहा। ५५९

अध्याय—६८

बलराम का हस्तिनापुर को गंगा मे ढकेल देने का प्रयत्न करना

[सी.] जान-बूझकर मही पर प्रसिद्ध होनेवाली और सुयोधन की पुत्री सर्वलक्षणयुक्ता लक्षणा के विवाह के समय कृष्ण के तनूज सांब घन साहस से [उसे] उठा ले गया तो कौरव देखकर 'यत्न करके मदमत्त हो, नौजवान अकेले, देखो, बालिका को उठा ले जा रहा है; उसके शौर्य का लक्ष्य न करके, [ते.] ऐसे दुर्मद को पकड़ लाकर क़ैद करके, ताकि लोग आश्चर्यचकित हों, रख लेते तो देखें, यादव हमारा क्या बिगाड़ देंगे" —ऐसा कहते हुए कुरु वृद्ध जनों की अनुमति से, ५६० [व.] इस प्रकार प्रयत्न करके युद्धसन्नद्ध होकर बल-शौर्यपित होनेवाले कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु

नंदनुंडु मंदस्मित वदनारविंदुंडगुचु सिंगंबु भंगि गर्जिचुचु मणि दीप्तंबैन
चापंबु बूनि निल्चिन वारुनु सांबु नदल्चि निलु निलु मनि ॥ 561 ॥

ते. चंड कोदंड मुक्त निशात विशिख-
जाल मंदंद परूपि याभीलमुगनु
नंदनंदन नंदन स्यंदनंबु
मुंचि रचलेंद्रमुनु मुंचु मंचु पगिदि ॥ 562 ॥

व. मरियुनु ॥ 563 ॥

शा. शौर्याटोप विजृंभणंबुल सरोजाताक्ष-सूनुन् सुरा-
हार्यस्थैर्युनि मीदनेय नतडुद्यद्भूरि बाहा बला-
वार्युंडै शित सायकालि नवि मार्य जेसिनन् देवता-
तूर्यंबुल् दिवि म्रोसे नंत नतडस्तोक प्रतापोन्नतिन् ॥ 564 ॥

व. इट्लु गडंगि बाण जालंबुलु परगिंचि यंदर कन्नि रूपुले रथरथ्य सूत ध्वज पताकातपत्रंबुलु चूर्णंबुलु गाविंचि विरथुलं जेसि वारल मेयि मरुवु लरुवुळ्ळु गाविंचि यौक्कोक्कनि बेक्कु बाणंबुल नुच्चि पोनेसिन वारलु शोणित दिग्धांगुलै कुसुमित किंशुकंबुलुं बोले नुंडिरंत ॥ 565 ॥

उ. वारलनेकुलय्यु बलवंतुलुनय्यु महोग्र संगरो-
दार पराक्रम प्रकट दक्षुलुनय्यु गुमारकुन् जग-

[और] सुयोधन आदि के समुन्नत रथारूढ़ होकर साथ-साथ (सांब के पीछे) गये तो उनको देखकर जांबवतीनंदन के मंदस्मित वदनारविंद होते हुए सिंह की तरह गरजते हुए मणिदीप्त चाप को लेकर खड़े होने पर उन्होंने भी सांब का सामना करके 'ठहरो, ठहरो' कहकर ५६१ [ते.] चंड कोदंड [से] मुक्त निशित विशिखजाल (समूह) को जहाँ-तहाँ फैलाकर भयंकरता के साथ नंदनंदन-नंदन (सांब) के स्यंदन को ऐसे डुबो दिया जैसे हिम (बरफ़) अचलेंद्र को डुबो देता है। ५६२ [व.] और, ५६३ [शा.] शौर्याटोप विजृंभणों को सरोजाताक्ष पुत्र [और] सुराहार्यस्थैर्य पर डालने से उसने उद्यत् भूरि बाहाबल [से] अवार्य बनकर शितसायकालि को अदृश्य बना दिया तो दिवि [पर] देवता-तूर्य बज गये; तब उसने अस्तोक प्रतापोन्नति से, ५६४ [व.] इस प्रकार प्रयत्न करके बाण-जालों (समूहों) को फैलाकर सबको सब रूपों में रथ-रथ्य-सूत-ध्वज-पताकातपत्नों को चूर्ण बनाकर, विरथ बनाकर, उनके शरीरों के कवचों को नष्ट करके [और] एक-एक पर अनेक बाणों से कपालों को तोड़ डाला तो वे शोणित-दिग्धांग बनकर कुसुमित किंशुकों की तरह रह गये। तब, ५६५ [उ.] यद्यपि वे अनेक थे, बलवान थे, महोग्र संगरोदार पराक्रम को प्रकट करने में दक्ष थे, [उस] कुमार का, जो

द्रौरुनि नौक्कनि जॅनकि येलुनु वंपग लेक सिग्गुनं
गूरिन चित नॉंडोरुल गूड्चु विच्चुचु वॅच्च नूर्चुचुन ॥ 566 ॥

व. मगिडि समर सन्नद्धुलै संरंभिचि ॥ 567 ॥

उ. अंदरु नौक्क पॅट्ट दनुजांतक नंदनु जुट्टमुट्टि यं-
दंद निशात सायक चयंबुल मुंचि रथंबुनुग्रली-
लं दुनुमाडि चापमु चलंबुन द्रुंचि हयालि जंपि सू-
तुं देगटाचि यंत विरथुंडगुटन् वॅस जौच्चि पट्टिननन् ॥ 568 ॥

ते. बालकुडु चेयुनदिलेक पट्टुपडियॅ
गौरवुलु तम मनमुल गौतुकंबु-
लौलय सांबुनि गन्यकायुक्तमुगनु
बुरमुनकु दॅच्चिरतुल विभूति मॅरसि ॥ 569 ॥

व. अंत द्वारका नगरंबुन ॥ 570 ॥

उ. जांबवतेयुवार्त यदुजातुलु नारद योगिचे सम-
स्तंबुनु विन्न वारगुचु संगर कौतुक मुप्पतिल्ल जि-
त्तंबुल गौरवान्वय कदंबमु नौक्कट नुक्कडंचु को-
पंबुन नुग्रसेन जनपालु ननुज्ञ ननून सैन्यमुल् ॥ 571 ॥

ते. कूडि नडवंग गनि वारितोड वलुडु
धार्तराष्ट्रुलु मनकु नॅंतयुनु डासि
नट्टि बंधुलु वारिपै निट्टि यलुक
नॉत्ति चनुचुंट यिदि नीतियॆ तलंप ॥ 572 ॥

जगद्वीर था, अकेला था, समना करके [उसकी] अँगूठी को भी झुका न सककर, लज्जा के वश चिंतित हो, एक-दूसरे से मिलते हुए, अलग होते हुए [और] गरम साँसें लेते हुए; ५६६ [व.] पुनः समरसन्नद्ध हो, संरंभ से, ५६७ [उ.] सबके एक साथ दनुजांतक नंदन को घेरकर जहाँ-तहाँ निशात-सायक-चयों मे डुबोकर, रथ को उग्र लीला से काटकर, चाप को शीघ्र तोड़कर, हयों को मार डालकर, सूत का वध करके, तब [सांब के] विरथ होने पर, जल्दी जाकर [उसे] पकड़ने पर। ५६८ [ते.] बालक विवश होकर पकड़ा गया। कौरव अपने मनों में कौतुक के होने पर सांब को कन्यकायुक्त, अतुल विभूति से चमककर पुर में लाये। ५६९ [व.] तब द्वारका नगर मे, ५७० [उ.] जांबवतेय (सांब) की सारी वार्ता यदुजातियाँ नारद योगी के द्वारा सुनकर संगर का कौतुक बढ़ जाने से चित्तों में कौरवान्वय कदंब को हराने के कोप से उग्रसेन जनपाल की आज्ञा से अनून सेनाओं के, [ते.] एकत्रित कर चलने पर, उनको देखकर बलराम इस

व. अनि वारल वारिंचि तत्क्षणंब बंधुप्रियुंडैन बलरामुंडनलार्क संकाशंबगु कांचन रथंबेक्कि यनुरक्तुलैन भूसुरुलु नुद्धवादि कुलवृद्धुलुनु सेविपं गरि-पुरंबुनकुं जनि तत्पुरोपकंठ वनंबुन सुरभि कुसुम फल भरित तरुच्छाया विरचित चंद्रकांत शिलातलंबुनंदु बसियिंचि सहित ग्रह मध्यगतुंडैन पूर्ण चंद्रुननुकरिंचि युंडे। अंत गार्य बोधनंबु सेयुटकै कौरवुलकडकु नबुद्धुंडैन युद्धवुनि बनिचिनं जनि यतंडांबिकेय धनुराचार्यापगातनूभव सुयोधनुल-कुं ब्रणमिल्लि वारिचेत नभिनंदितुंडै यिट्लनियें ॥ 573 ॥

सी. भूरि यशोधनुलार! तालांकुंडु चनुदेंचि नगरोपवनमुनंदु-
नुन्नवाडनिन वारुत्साहमुन बलु बोडगनु वेडुक बुद्धि वोप
दनरारु कानुकल् गोनि चनि यर्घ्य पाद्यादि सत्कृतुलु नेय्यमुन जेसि
धेनुवु निच्चि सन्मानिंचि यंदरु, नंदंद वंदनं बाचरिंचि

ते. युचित भंगिनि नचट गूर्चुन्न येडनु
गुशलमे मीकु माकुनु गुशलमनुचु
बलिकि रामुडु कुरु नरपालु जूचि
यचटि जनमुलु विनग निट्लनियें दॆलिय ॥ 574 ॥

प्रकार कहकर कि धार्तराष्ट्र (कौरव) हमारे बहुत ही सन्निहित बंधु हैं; उन पर ऐसा क्रोध करके जाना, सोचने पर, क्या नीति है? ५७२ [व.] इस प्रकार कहकर उनको रोककर तत्क्षण बंधुप्रिय होनेवाला बलराम अनल-अर्क-संकाश (-सम) कांचन रथ पर चढ़कर, अनुरक्त भूसुर, उद्धव आदि कुलवृद्धों की सेवाएँ लेते हुए, करिपुर को जाकर तत्पुरोपकंठ वन में सुरभि-कुसुम-फल-भरित तरुच्छाया-विरचित चंद्रकांत-शिलातल पर निवास करके सहितग्रह मध्यस्थित पूर्णचंद्र की तरह रहा। तब कार्य का बोध करने के लिए कौरवों के पास प्रबुद्ध उद्धव को भेज दिया तो जाकर उसने आंबिकेय, धनुराचार्य आपगा-तनूभव (भीष्म) सुयोधनों को प्रणाम करके, उनसे अभिनंदित होकर इस प्रकार कहा। ५७३ [सी.] "हे भूरि यशोधन, तालांक आकर नगर के उपवन में है"; ऐसा कहने पर वे उत्साह के साथ बलराम को देखने के कुतूहल से इच्छा होने पर, युक्त पुरस्कारों को लेकर (उसके पास) जाकर, अर्घ्य-पाद्यादि सत्कृतियाँ स्नेहपूर्वक करके, धेनु को देकर, सम्मान करके, सब लोग जहाँ के तहाँ वन्दना करके, [ते.] उचित रीति से वहाँ बैठ गये तो बलराम ने यह पूछकर कि आप लोग कुशल से हैं [और यह कहकर कि] हम लोग तो कुशल हैं, कुरु नरपाल को देखकर इस प्रकार समझाया जिसे वहाँ के सब लोग सुनें। ५७४ [उ.] "हमारे नरनाथ की आज्ञा को

उ. मा नरनाथु नाज्ञ निज मस्तमुलन धरियिंचि कौरवुल्
मानुग जेयुटोप्पगु गुमारकु नोक्कनि बेक्कु यूथपुल्
पूनिन लावुसै नेदिरि पोर जयिंचुट मीदि तप्पु त-
प्पैननु गाचे बांधव हितात्मकुडै मनुजाधिनाथुडुन् ॥ 575 ॥

कं. अनुमाटलु विनि कौरव-
जन नायकुडात्म नलिगि चालु बुरे! ये-
मन गलदु कालगति च-
वकन गालं दोडुगु पादुकलु दलकेक्कॅन् ॥ 576 ॥

आ. मनमु बंधुवरुस मन्निंचु मन्नन
गादे राज्य भोग गरिम बोदलि
वसुध वेरु गलिगि वासिकि नेक्कुट
दमकु ननुभविंप दगनि यट्टिट ॥ 577 ॥

व. सितच्छत्र चामर शंख किरीट चित्र शय्या सौध सिंहासनंबुलु गैकोंट मन-
मंदे मेलंबुनंगादे यिट्टिचो सरिवारुनुं बोले नूरक गर्विंचु यदुकुलुल तोडि
संबंध सख्यंबुलु चालु दामुलकु बालु वोसि पेंचिन विषंबु दप्पुने मम्मुं दम
पंपु सेयु मनुट सिग्गु लेकुंडुट गादे यदियुनुं गाक दिव्यास्त्र कोविदुलैन

अपने मस्तकों पर धारण करके कौरवों को मनोज्ञ रूप में [विवाह] करना उचित है। कुमार को [अकेले] अनेक सेनानायकों के प्रयत्न करने पर, जोर से [उसका] सामना करके युद्ध कर जीतना आपका दोष है; दोष होने पर भी मनुजाधिनाथ ने बांधवहितात्मा बनकर [उसे] सह लिया।" ५७५ [कं.] ऐसी बातें सुनकर कौरव जननायक आत्मा में क्रोधित होकर, "बस, अरे! काल गति के बारे में क्या कह सकते हैं? पाँवों में पहनी जानेवाली पादुकाएँ सिर पर चढ़ गई हैं! ५७६ [आ.] बंधु मानकर हम जो गौरव दिखाते हैं उसी के कारण ही है न, उनके राज्य-भोग की गरिमा (श्रेष्ठता) से अभिवृद्धि पाकर वसुधा पर प्रसिद्ध होना! ऐसा भोग कर रहे हैं जिसके लिए वे अर्ह नहीं है। ५७७ [व.] सितच्छत्र, चामर, शंख-किरीट-चित्रशय्या-सौध-सिंहासनों को लेना क्या हमारी उपेक्षा के कारण नहीं? ऐसी स्थिति में बराबरों के समान सदा गर्व करनेवाले यदुओं के साथ स्थापित संबंध [और] सख्य बस है। क्या सर्पों को दूध पिलाने पर भी [उनके] विष से बच सकते है? अपनी आज्ञा के अनुसार करने के लिए हमसे कहना निर्लज्जित होना नहीं है? इसके अतिरिक्त क्या उसे महेंद्र भी छुड़ा सकता है जो दिव्यास्त्र कोविद होनेवाले, गंगानंदन, गुरु, कुरु-कुमार [तथा] कर्ण आदि योद्धाओं के वश में पड़ जाता है? अहह! वृथा जल्पों

गंगानंदन गुरु कुरुकुमार कर्णादि योधुलकु लोबड्ड वानिनि महेंद्रुनि-
कैननु विडिपिप वच्चुने ? यहह ! वृथा जल्पंबुल केमि पनि यनि दुर्भाष-
लाडुच दिग्गन लेचि निज मंदिरंबुनकुं जनियें, नप्पुडु हलायुधुंडम्माटल
कदिरिपडि ॥ 578 ॥

उ. कौरवुंडाडि पोयिन यगौरव भाषलकात्म गिन्क दे-
वारग नुल्लसत्प्रळय भानुनि कैवडि मंडि चंड रो-
षारुणितांबकुंडगुचु यादव वृद्धुल जूचि पल्कें बें-
पारिन राज्य वैभवमदांधुल माटलु मोरु विटिरे ? ॥ 579 ॥

ते. श्रीमदांधुलु सामंबु चेत जक्क
बड्डुरे येंडु ? बोयडु पसुल दोलु
पगिदि नुग्रभुजा विजृंभण समग्र
सुमहिताटोपमनि लोन जूपकुन्न ॥ 580 ॥

कं. कौरवुल समय जेयनु, -दारत यदुवीरवरुलु दामोदरुडुन्
रा रावलदनि यच्चट, वारिंचिति गादे बंधुवत्सलयुक्तिन् ॥ 581 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 582 ॥

सी. ए देवु भृत्युलै यिंद्रादि दिक्पालवरुलु भंजितुरु वरुसतोड
नेदेवु मंदिरं बेपारु देवता तरु सभा विभव सुंदरत जेंदि
ये देवु पदयुगं बेप्रोद्दु सेविंचु नखिल जगन्मातयैन लक्ष्मि
ये देवु चारु समिद्ध कळांश संभवुलमु पद्मज भवुलु नेनु

(शब्दों) से क्या लाभ ?" इस प्रकार दुर्भाषाएँ (दूषण) करते हुए उठ-बैठकर निज मंदिर (प्रासाद) में चला गया। तब हलायुध ने उन बातों के लिए चक्रित होकर, ५७८ [उ.] कौरव की कही हुई गौरवहीन बातों के लिए आत्मा में क्रोध आने पर उल्लसत्-प्रलयभानु की तरह जल कर चंड-रोष-अरुण-अंबक (आँख) वाला बनकर [और] यादव वृद्धों को देखकर इस प्रकार कहा, "अधिक राज्य-वैभव के मद से अंध होनेवालों की बातों को तुम लोगों ने सुन लिया है न ! ५७९ [ते.] क्या श्री के मद से अंध बननेवाले [लोग] साम (उपाय) से दुरुस्त होते है ? पशुओं को हाँकने की तरह उग्र-भुजा-विजृंभण के समग्र सुमहिताटोप को युद्ध में अगर नहीं दिखाया होता तो कहाँ गये होंगे (उनकी क्या दशा हुई होगी) ? ५८० [कं.] 'उदारता और बंधुवत्सल युक्ति से यदुवीरों और दामोदर को, जो कौरवों को मार डालने के लिए निकले थे, 'मत जाओ, मत जाओ' कहकर वहीं पर रोक दिया था न ! ५८१ [व.] इसके अतिरिक्त, ५८२ [सी.] जिस देव के भृत्य होकर इंद्र आदि दिक्पाल-वर क्रम से भजते हैं, जिस देव का मंदिर देवतातरु सभा विभव सुंदरता को

ते. नट्टि देवुंडु दुष्ट संहारकुंडु
हरि मुकुंदुडु पंपु सेयंग नॊप्पु
नुग्रसेनुनि राज्य समग्र गरिम
यंतयुनु दार यिच्चिनदट तलंप ! ॥ 583 ॥

च. अदियुनु गाक यॆव्वनि पदांबुजचारु रजोवितान मा
त्रिदिववरादि दिक्पति किरीटमुलंदु नलंकरिंचु भू-
विदितपु दीर्थमुं गडु पवित्रमु सेयुनु नट्टि कृष्णुचे
बॊदलिन राज्य चिह्नमुल बॊंदगरादट येमि चोद्यमो ॥ 547 ॥

कं. तामट तलपं दललट, येमट पादुकलमट गणिपग राज्य
श्रीमदमुन निट्लाडिन, यी मनुजाधिपुनि माट केमनवच्चुन् ? ॥ 585 ॥

व. अनि सक्रोधमानसुंडै यप्पुडु ॥ 586 ॥

कं. धारुणि निट मीदट नि, -ष्कौरवमुग जेयकुन्न गादनि युग्रा-
कारुंडै बलभद्रुडु, सीरमु वेसवून्चि लावु जेवयु नॆसगन् ॥ 587 ॥

व. इट्लु पून्चि कौरवराजधानियैन करिनगरंबु कडतल हलाग्रंबुनु
जॊनिपि यप्पुटभेदन विस्तारंबगु गड्डं भुजाबल गर्व दुर्वारुंडै पॆकलिचि
तिगिचि गंगाप्रवाहंबुनं बडद्रोय गमकिंचिन नप्पुडु महाजलमध्य-
विलोलंबगु नाव चंदंबुन नन्नगरंबु वडवड वडंकुचु गोपुर वप्र प्राकार

पाकर अतिशय होता, जिस देव के पदयुग्म की सदा अखिल जगन्माता लक्ष्मी सेवा करती है, जिस देव के पद्मजभव और मैं सुंदर समिद्ध-कलांश-संभव हैं, [ते.] ऐसे देव, दुष्ट संहारक हरि, मुकुंद के भेज देने पर उग्रसेन की समग्र राज्य गरिमा अच्छी लगती है; कहते हैं कि सब कुछ उन्होंने (कौरवों ने) दे दिया है। सोचने पर ५८३ [च.] इसके अतिरिक्त जिसके पदांबुजों का चारु रजोवितान (पदधूलि) त्रिदिववर आदि दिक्पतियों के किरीटों पर अलंकृत होता है और भूविदित तीर्थ को बहुत पवित्र बना देता है, ऐसे कृष्ण से प्रवर्धमान राज्य-चिह्नों को [कौरव] कहते हैं कि [हम] पा नहीं सकते। कैसा आश्चर्य है ! ५८४ [कं.] कहते है कि सोचने पर वे सिर है [और] हम पादुकाएँ है; सोचने पर, राज्य के श्रीमद से ऐसे बोलने वाले इस मनुजाधिप की बात को क्या कह सकते हैं ?" ५८५ [व.] यों कहकर सक्रोध मानस बनकर, तब ५८६ [कं.] "अब से धारुणी को अगर मैं निष्कौरव नहीं बना डालूँ, (तो काम) नहीं होगा", ऐसा कहकर उग्राकार धारण करके बलभद्र [अपने] सीर को जल्दी धारण करके पौरुष के बढने पर, ५८७ [व.] इस प्रकार धारण करके कौरवों की राजधानी होनेवाले करिनगर की ज़मीन में हलाग्र को घुसाकर उस पट्टण के विस्तृत

सौधाट्टालक तोरण ध्वज द्वार कवाट कुड्य वीथियुतंबुगा नोंड्डगिलंबड बौरजनंबुलु पुडमि नड्डुगुलिडंग राक तडंबडुचु नार्तुलै कुय्यिडुचुंडि-रट्टिटयेंड नम्महोत्पातंबुलु गनुंगोनि तालांकुंडु किनुक वोंडमि कार्विचिन युपद्रवंबुगा नेंरिंगि दानिकि ब्रतीकारंबु लेमिनि गळवळंबुन भयाकुल-मानसुलै पुत्र मित्र कळत्र बंधु भृत्य पौरजन समेतंबुगा भीष्म दुर्योधनादि कौरवुलु वेगंबुन नतनि चरणंबुलु शरणंबुगा दलंचि सांबुनि गन्यकायुक्तं-बुगा ननेक मणिमय भूषणांबर जालंबुलतो गोनिवच्चि दंडप्रणामंबु-लाचरिंचि करकमलंबुलु मोंगिड्चि यिट्लनिरि ॥ 588 ॥

कं. राम ! समंचित मुक्ता-
दाम यशःकाम ! घन सुधा धामरुचि-
स्तोम ! जयसोम ! जगदभि-
राम ! गुणोद्दाम ! निखिल राजललामा ! ॥ 589 ॥

कं. नी महिम येंरिंगि पोंगडग
नेमेंतटि वार मखिलनेतवु त्रिजगत्
क्षेमंकरुडवु सुमतिवि
तामसुलमु मम्मु गाव दगु हलपाणी ! ॥ 590 ॥

भूभाग को भुजा-गर्व-दुर्वार बनकर, उखाड़ कर [और] निकालकर गंगा-प्रवाह में फेंक देने का प्रयत्न किया तो तब महाजल के मध्य विलोल होने वाली नाव की तरह वह नगर कंपित होते हुए गोपुर-वप्र-प्राकार-सौध-अट्टालिका-तोरण-ध्वज-द्वार-कवाट-कुड्य-वीथि-सहित एक ओर झुक गया तो पुरजन पृथ्वी पर क़दम न रख सक कर डाँवांडोल होते हुए आर्त बनकर पुकारते रहे, उस वक्त उन महोत्पातों को देखकर, यह जानकर कि तालांक ने क्रोधित होकर यह उपद्रव मचाया है, उसके प्रतीकार के न रहने पर निगळवळ में भयाकुल मानस हो पुत्र-कलत्र-बंधु-भृत्य-पौरजन समेत भीष्म, दुर्योधन आदि कौरव शीघ्र उसके (बलराम के) चरणों को शरण मानकर सांब को कन्यकायुक्त अनेक मणिमय भूषण तथा अंबर (वस्त्र) जाल (समूह) के साथ लाकर दंड प्रणाम करके करकमल जोड़कर इस प्रकार बोले, ५८८ [कं.] "हे राम, समचित मुक्तादाम, यशःकाम, घन सुधा धाम, रुचिस्तोम, जय सोम, जगदभिराम-गुणोद्दाम, निखिलराज-ललाम ! ५८९ [कं.] "तुम्हारी महिमा को जानकर प्रशंसा करने के लिए हम कौन है ? (हम बहुत छोटे हैं।) तुम अखिल नेता हो। त्रिजगत क्षेमंकर हो। सुमति हो। हम तामस हैं। हे हलपाणी, हमारी रक्षा की जाय। ५९० [कं.] हे बलदेव ! सारे भूचक्र को धारण

कं. भूचक्रमॆल्ल दालिचन
या चक्रीश्वरुडु तावकांशुडु वलदे-
वा ! चक्रिकि नग्रजुडवु
नीच क्रियलुडुप जॆल्लु नीकु जितारी ! ॥ 591 ॥

कं. रक्षिपुमु रक्षिपुमु-
पेक्षिपक नमित निखिलवृंदारक घो-
र क्षणदाचरविष निट-
लाक्ष ! भयातुरुल मम्मु नरयु मनंता ! ॥ 592 ॥

व. मरियुनु देवा ! यी सचराचरंबुलयिन जगंबुल नी लीला विनोदंबुलं जेसि दुष्टजन मर्दनंबुनु शिष्टजन रक्षणंबुनुं जेयुचु जगदुत्पत्ति स्थिति लय हेतुवैन नीकु नमस्करिंतुमनि वॆंडियु निट्लनिरि ॥ 593 ॥

ते. अव्ययुंडवु सर्वभूतात्मकुडवु
सर्वशक्ति धरुंडवु शाश्वतुडवु
विश्वकरुडवु गुरुडवु विमलमूर्ति-
वयिन निन्नु नुतिप ब्रह्मकुनु दरमे ? 594 ॥

च. अनि विनुतिचिनं ब्रमुदितात्मकुडै हलपाणि वारलं-
गनुगॊनि योडकोडकुडु कार्यगति दगिलिट्लु मीरु से-
सिन यविनीति चेत निट्टु सेसिति निक भयंबु दविक पॊ-
डनिन सुयोधनुंडु विनयंबुन नल्लुनि गूतुनुं दगन् ॥ 595 ॥

करनेवाला वह चक्रीश्वर तुम्हारे अंश का है। तुम उस चक्री के अग्रज हो। हे जितारी ! नीच क्रियाएँ रोकी जायँ। ५९१ [कं.] हे अनत ! हे अमित निखिल वृंदारक ! हमारी उपेक्षा न करके रक्षा करो, रक्षा करो। हम घोर क्षणदाचर (राक्षस)-विष [होनेवाले] निटलाक्ष से भयातुर हैं। हमें जान लो। ५९२ [व.] और भी [हे] देव ! इन सचराचर होने वाले जगों को अपने लीला-विनोद बनाकर, दुष्ट जनमर्दन और शिष्ट जन रक्षण करते हुए जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का हेतु होनेवाले तुमको नमस्कार करते हैं।" इस प्रकार कहकर फिर ऐसे बोले। ५९३ [ते.] "तुम अव्यय हो, सर्वभूतात्मा हो, सर्वशक्तिधर हो, शाश्वत हो, विश्वकर हो, गुरु हो, विमलमूर्ति होनेवाले तुम्हारी प्रशंसा क्या ब्रह्मा भी कर सकता है ?" ५९४ [च.] ऐसी विनुति करने पर प्रमुदितात्मा बनकर हलपाणि के, उन्हें देखकर, ऐसा कहने पर कि डरो मत, डरो मत, कार्य-गति में लगकर तुम्हारी की हुई ऐसी अविनीति के कारण मैंने ऐसा किया है। भय छोड़कर जाओ। इस तरह कहने पर सुयोधन ने विनय से दामाद और बेटी को अच्छी तरह, ५९५ [क.] भेजते हुए, दहेज के

कं. अनुपुचु नरणमु दासी, -जनमुल वेयिटि लक्ष सैंधवमुल दा-
निनुमडि येनुंगुलगां, -चन रथमुल नारुवेल सम्मति निच्चेन् ॥ 596 ॥

व. इट्लिच्चि यनिचिन बलभद्रुंडु गोडुकुनु गोडलि दोड्कोनुचु वरमानंदंबु नोंदुचु नक्कडक्कडि जनंबुलु पदिवेल विधंबुल बोगड निजपुरंबुन करिगि यच्चट यादवुल तोड दा गरिपुरंबुनकुं बोयिन विधंबुनु वारलाडिन दुरालापंबुलुनु दा नंदुलकै योनर्चिन प्रतीकारंबुनु नेर्पिगिचि सुखंबुंडे। वारण-पुरंबु नेडुनु दक्षिणंबेगसि युत्तर भागं बोंकिचुक गंग कै क्रुंगि बलभद्रुनि माहात्म्यंबु वेलुपुचुन्नदनि यम्महात्मुनि भुजवीर्यंबवार्यंबनि चेप्पि शुकयोगींद्रुंडु परीक्षन्नरेंद्रुन किट्लनियें ॥ 597 ॥

अध्यायमु—६९

षोडश सहस्र स्त्रीसंगतुंडैन श्रीकृष्णुनि महिम नारदुंडरयुट

च. नरवर! योक्कनाडु विनु नारदसंयमि माधवुंडु दा
नरकुनि द्रुंचि वानि भवनंबुननुन्न पदारुवेल सुं-
दरुलनु नोक्क माट्र प्रमदंबुन नंदट्र कन्निरूपुलै
परिणयमय्ये ना विनि शुभस्थिति दद्गृहभवंबु जूडगन् ॥ 598 ॥

रूप में एक हज़ार दासीजनों को, एक लाख सैंधवों (घोड़ों) को, उनके दुगुने हाथियों को [और] छः हज़ार कांचन रथों को प्रीतिपूर्वक दे दिया। ५९६ [व.] इस प्रकार देकर भेज देने पर, पुत्र तथा पुत्रवधू को लेकर बलभद्र परमानंद को प्राप्त करते हुए, जहाँ-तहाँ लोगों के दस हज़ार विधियों से प्रशंसा करने पर अपने पुर में जाकर, वहाँ यादवों को अपने हस्तिनापुर में जाने के विधान को, उनके (कौरवों के) बोले हुए दुरालाप [और] स्वयं उसका प्रतीकार करने का विधान समझाकर सुख से रहा। यह कहकर कि वारणपुर (हस्तिनापुर) आज भी दक्षिण की ओर ऊँचा रहकर [और] उत्तर की ओर कुछ गंगा की ओर धँसकर बलभद्र के माहात्म्य को दिखाता है, उस महात्मा का भुजवीर्य अवार्य है, शुकयोगींद्र ने परीक्षित् नरेंद्र से इस प्रकार कहा। ५९७

अध्याय—६९

षोडश सहस्र स्त्री-संगत होनेवाले श्रीकृष्ण की महिमा को नारद का जान लेना

[च.] हे नरवर! सुनो, एक दिन संयमी नारद यह सुनकर कि माधव ने नरक [असुर] का संहार करके, उसके भवन में स्थित [बंदिनियों के रूप में] सोलह हज़ार सुंदरियों से एक ही साथ प्रमोदन से, सबको सब रूपों

व. इट्लु तलंचि कृष्ण परिपालितंबयिन द्वारकानगरंबु डायंजनि मुंदट ॥ 599 ॥

सी. शुक शारिका शिखि पिक कूजित प्रसवांचितोद्यान वनौघमुलनु
गलहंस सारस कैरव कमल कल्हार शोभित कमलाकरमुल
गलमादि सस्य संकुल वरेक्षु क्षेत्र भूरि लसन्नदी तीरमुलनु
गिरि सानु पतित निर्झरकण संदोह संतत हेमंत समयमुलनु

ते. गमलसंभव कांचनकार रचित
चिरतरैश्वर्य नगरलक्ष्मी कराब्ज-
घटित नवरत्नमय हेमकटकमनग
सौबगु मीऱिन कोटयु जूचॆ मौनि ॥ 600 ॥

व. मऱियुनु समुत्तुंग मणिसौध गवाक्ष रंध्र निगत नीरंध्र घनसार चंदनागरु धूप धूम पटल विलोकन संजनित पयोधराभिशंकांगीकृत तांडव केळी विलोल पुर-कामिनी जनोपलालित नीलकंठ समुदयंबुनु, चंद्रकांतमणि स्फटिकस्तंभसंभृत मरकत पद्मराग घटित नवरत्न कांचन प्रासाद शिखराग्रन्यस्त बहुसूर्य विभ्रम कृदंचित शांतकुंभ कुंभनिचयंबुनु, समस्त वस्तु विस्तार समर्पित वेश्यागार वीथी वेदिकाकलितंबुनु, महितातप

मे [दिखाई देकर] विवाह कर लिया था। शुभस्थिति में उसके विभव को देखना [चाहकर], ५९८ [व.] यों सोचकर कृष्ण [से] परिपालित द्वारका नगर में जाकर सामने ५९९. [सी.] शुक-शारिका-शिखि-पिक-कूजित [तथा] प्रसवांचित उद्यान वनौघों (वन-समूहों) को, कलहंस-सारस-कैरव-कमल-कल्हार-शोभित कमलाकरों को, कलमादि सस्य-संकुल वर-इक्षु-क्षेत्रों से भूरि लसत् नदी तीरों को, गिरि-सानु-पतित निर्झर-कण-संदोह [के कारण] संतत-हेमत-समयों को, [ते.] कमलसंभव (ब्रह्मा) कांचनकार (सुवर्ण) से रचित चिरतर-ऐश्वर्य [से युक्त] नगर-लक्ष्मी के कराब्ज में घटित नवरत्नमय हेमकटक हो, [ऐसा] अधिक शोभायमान क़िले को उस मुनि ने देखा। ६०० [व.] इसके अतिरिक्त समुत्तुंग मणि-सौधों के गवाक्ष-रंध्रों से निर्गत-नीरंध्र-घनसार-चंदनागरु-धूप-धूम-पटल के विलोकन से, उत्पन्न पयोधराभिशंकांगीकृत-तांडव-केळी-विलोल पुरकामिनी जनोपलालित-नीलकंठ (मयूर) समुदय को, चंद्रकांत-मणि-स्फटिक-स्तंभ-संभृत मरकत-पद्मराग-घटित तथा नवरत्न-कांचन-प्रासाद-शिखराग्र-न्यस्त-बहुसूर्य-विभ्रम-उदचित स्वर्ण-कुंभनिचय, समस्त वस्तु-विस्तार-समर्पित-वैश्यागार-वीथी-वेदिका-कलित, महितातप-निवारण-तरळ-विचित्र-केतनाबद्ध-मयूर-शिंजिनी-निनद-पूरिताशांतरिक्ष, सरोजनाभ पूतना-चेतनापहारादि नूतन विजय संदेश-लिखित स्वर्णवर्णावली विभासित गोपुर-मणि-विटंक-प्रदेश, यादवेंद्र

निवारण तरळ विचित्र केतनाबद्धमयूर शिंजिनी निनद पूरिताशांतरिक्षंबुनु, सरोजनाभ पूतनाचेतनापहारादि नूतन विजय संदेश लिखित स्वर्ण वर्णावळी विभासित गोपुर मणि विटंक प्रदेशंबुनु, यादवेंद्र दर्शनोत्स-वाहूयमान समागत नानादेशाधीश भूरि वारण दान जल प्रभूत पंक निरसनैक गतागत जन सम्मर्दकर कंकण कर्षण विकीर्यमाण रज:पुंजंबुनु, विनूत्न रत्नमय मंगळ रंगवल्ली विराजित प्रतिगृह प्रांगणंबुनु, गुंकुम सलिल सिक्त विपणि मार्गंबुनु, वंदिमागध संगीत मंगळाराव विलसितंबुनु, भेरीमृदंग काहळ शंख तूर्य रवाधरीकृत सागर घोषंबुनुनै यमरावतीपुरंबुनुं बोलॅ, वसुदेवनंदन निवासंबै यनल पुट भेदनंबुनुंबोलॅ, गृष्णमार्ग संचार पूतंबै, संयमनिनाम नगरंबुनुं बोलॅ हरितनूभवाभिरामंबयि, नैरुत निलयंबुनुं बोलॅ बुण्य जनाकीर्णंबयि, वरुण निवासंबुनुं बोलॅ गोत्ररक्षण भुवन प्रशस्तंबै, प्रभंजन पट्टणंबुनुं बोलॅ महाबल समृद्धंबै, यलकापुरंबुनुं बोलॅ मुकुंदवर शंख मकरांक कलितंबयि, रजताचलंबुनुं बोलॅ नुग्र सेनाधिपार्यालंकृतबयि, निगमंबुनुं बोलॅ विविध वर्णक्रम विध्युक्त संचारंबयि, ग्रहमंडलंबुनुं बोलॅ गुरु बुध कवि राजमित्र विराजितंबयि, संतत कल्याण वेदियुंबोलॅ वैवाहिकोपेतंबै बलि दानव करतलंबुनुं बोलॅ संतत दानवारियुक्तंबै योप्पु नप्पुरंबु प्रवेशिंचि यंदु विश्वकर्म निर्मितं-बैन यंत:पुरंबुन नुंडुषोडश सहस्र हर्म्यंबुलंदु ॥ 601 ॥

दर्शनोत्सवाहूयमान सभागत नाना देशाधीशों के भूरि-वारण-दान-जल-प्रभूत पंक निरसनैक गतागतजन सम्मर्द कर कंकण-कर्षण विकीर्यमाण रजः पुंज, विनूत्न रत्नमय मंगल रंगवल्ली विराजित प्रतिगृह प्रांगण, कुंकुम-सलिल-सिक्त-विपणि-मार्ग, वंदि-मागध-संगीत-मंगलाराव-विलसित [तथा] भेरी-मृदंग-काहल-शंख-तूर्य-बधिरीकृत सागर घोष होकर अमरावतीपुर की तरह वसुदेवनंदन का निवास बनकर, अनल-पुर-भेदन की तरह कृष्णमार्गसंचार-पूत बनकर, संयमनी नाम नगर की तरह हरितनूभवाभिराम बनकर, नैर्ऋत निलय की तरह पुण्यजनाकीर्ण बनकर, वरुण-निवास की तरह गोत्र-रक्षण-भुवन-प्रशस्त बनकर, प्रभंजन पट्टण की तरह महाबल-समृद्ध बनकर, अलका-पुर की तरह मुकुंद वर शंख-मकरांक-कलित बनकर, रजताचल की तरह उग्रसेनाधिपार्यालंकृत बनकर, निगम की तरह विविध वर्णक्रमविध्युक्त संचारयुक्त हो, ग्रहमंडल की तरह गुरु-बुध-कविराज-मित्र-विराजित बनकर, संतत युक्त कल्याणवेदी की तरह वैवाहिकोपेत बनकर [और] बलि दानव करतल की तरह संतत दानवारियुक्त बनकर प्रकाशमान होनेवाले उस पुर में प्रवेश करके उसमें विश्वकर्मा-निर्मित अंत:पुर में रहनेवाले षोडश सहस्र हर्म्यों में ६०१ [सी.] स्फटिक स्तंभों, प्रवालों की पट्टियों,

सी. पटिकंपु गंबमुल् पवडंपु वट्टॅलु मरकत रचितमुल् मदुरुलमर
वैडूर्यमणिगण वलभुल बद्मरागंबुल मोंगडुल कांतुलॅलय
सज्जाति वज्राल सज्जाल रुचुलतो भासिल्लु नील सोपानमुलुनु
गरुड पच्चल विटंकमुलुनु घनरुचि वॅलसिन शशिकांत वेदिकलुनु

ते. वॅलुगु मौक्तिक घटित कवाटमुलुनु
प्रविमल स्वर्णमय सालभंजिकलुनु
मिंचु कलरव मॅसग क्रीडिंचु मिथुन
लील नॉप्पु कपोत पालिकलु गलिगि ॥ 602 ॥

ते. चेटिकानीक पदतुलाकोटि मधुर
निनद भरितमै रुचिर माणिक्यदीप-
मालिकयु गलिग चूपट्ट प्रालु नॉक्क
जलजलोचन निजसौध तलमुनंदु ॥ 603 ॥

ते. कनक कंकण झणझणत्कार कलित
चंद्रबिंबानना - हस्त - जलज - घटित
चामरोद्धूत - मारुत - चलित - चिकुर
पल्लवुनि गृष्णु वल्लवी - पल्लवुनिनि ॥ 604 ॥

व. मरियु हाट निष्कंबु लरुॅलंदु वॅलुगोंद गंचुकंबुलु शिरोवेष्टनंबुलु गनक कुंडलंबुलु धरियिंचि संचरिंचु कंचुकुलुनु-समान वयोरूप गुण विलास

मरकत-रचित मुंड़ेरों, वैदूर्यमणि गणवलभों [तथा] पद्मरागों से बनाई गई छतों की कांतियों के व्याप्त होने पर; सत् जाति वज्रों की सत्-जाल-रुचियों से प्रकाशमान सोपानों, मरकत-माणिक्यों से निर्मित विटंकों [और] घन रुचि से निर्मित शशिकांत वेदिकाओं, [ते.] प्रकाशमान मौक्तिक घटित कवाटों, प्रविमल स्वर्णमय सालभंजिकाओं [और] अधिक कलरव करते हुए क्रीड़ा करनेवाले कपोतों के घोंसलों से, ६०२ [ते.] चेटिका रूपी आनीक (सेना) के पदों की तुलाकोटि (पाँवों का एक आभरण) के मधुर निनद से भरित होकर रुचिर माणिक्य दीप-मालिका से दिखाई पड़ने पर एक जलजलोचना के निज सौध तल में ६०३ [ते.] कनक-कंकण झण-झणत्कार-कलित, चंद्रबिंबानना हस्त-जलज-घटित, चामरोद्धूत मारुत चलित चिकुर पल्लव [तथा] वल्लवी (गोपी)-वल्लभ होनेवाले कृष्ण को ६०४ [व.] और हाट निष्कों के समीप में, ताकि प्रकाशमान हों, कंचुक, शिरोवेष्टन तथा कनक-कुंडल धारण करके संचरण करनेवाले कंचुकी और समान वयोरूप-गुण-विलास-विभ्रम-कलित-विलासिनी सहस्र के (कृष्ण की) सेवा करने पर सभा में स्थित उस पद्मलोचन को कांचन-सिंहासनासीन

विभ्रमकलितलयिन विलासिनी सहस्रंबुलुनु गोलुवं गोलुवुन्न यप्पद्मलोचनुं गांचन सिंहासनासीनुं गांचें। अप्पुंडरीकाक्षुंडुनु नारदुं जूचि प्रत्युत्थानंबु सेसि यप्पुडु ॥ 605 ॥

कं. मुनिवरु पादांबुजमुलु
तन चारु किरीट मणि वितानमु सोकन्
विनमितुडै निज सिंहा-
सनमुन गूर्चुंड वॅट्टि सद्विनयमुनन् ॥ 606 ॥

कं. तन पाद - कमल - तीर्थं-
बुन लोकमुलं बवित्रमुग जेयु पुरा-
तन मौनि लोकगुरु ड-
म्मुनि पदतीर्थंबु मस्तमुन धरियिंचेन् ॥ 607 ॥

व. इट्लु ब्रह्मण्यदेवुंडुनु नरसखुंडुनुनैन नारायणुंडशेष तीर्थोपमानंबयिन मुनींद्र पाद तीर्थंबु धरियिंचिन वाडयि सुधासारंबुलैन मित भाषणंबुल नारदुन किट्लनियें ॥ 608 ॥

कं. ए पनि वंचिन जेयुदु, तापसवर ! यनुडु ननडु दामोदर ! चि-
द्रूपक भवदवतार, व्यापारमु दुष्ट निग्रहार्थम कादे ! ॥ 609 ॥

ते. अखिल लोकैक पतिवि दयार्द्रमतिवि
विश्व संरक्षकुंडवु शाश्वतुडवु
वॅलय नेपनियैन गावितु ननुट
यार्तबंधुंडविदि नीकु नद्भुतंबॆ ? ॥ 610 ॥

रहते हुए देखा। उस पुंडरीकाक्ष ने नारद को देखकर प्रत्युत्थान करके तब, ६०५ [कं.] मुनिवर के पादांबुजों पर ऐसे विनमित होकर जिससे अपना चारु किरीट-मणि-वितान स्पर्श करे, निज सिंहासन पर बिठाकर सद्विनय से, ६०६ [कं.] अपने पाद (चरण) कमल तीर्थ से लोकों को पवित्र बनानेवाले पुरातन मुनि [तथा] लोक के गुरु (कृष्ण) ने उस मुनि के पदतीर्थ को अपने मस्तक पर धारण किया। ६०७ [व.] इस प्रकार ब्रह्मण्यदेव तथा नरसखा होनेवाले नारायण ने अशेष तीर्थोपमान होनेवाले मुनींद्रपाद (चरण) तीर्थ को धारण करके सुधासार होनेवाले मितभाषणों से नारद से इस प्रकार कहा। ६०८ [कं.] "हे तापसवर, तुम जो आज्ञा दोगे, वह कर दूंगा।" ऐसे कहने पर उसने (नारद ने) कहा, "दामोदर, चिद्रूपक ! भवदवतार का व्यापार दुष्टों के निग्रह के लिए ही है न ! ६०९ [ते.] तुम अखिल लोकैक पति हो, दयार्द्रमति हो, विश्व-संरक्षक हो ! शाश्वत हो ! 'कोई भी काम करूंगा' [तुम्हारा] ऐसा कहना आर्तबंधु

ते. अब्जसंभव ! हरदेवतार्चनीय !
भूरि संसार सागरोत्तारणंबु
नव्ययानंद मोक्षदायकमुनैन
नी पदध्यान मात्मलो निलुवनीवें ? ॥ 611 ॥

व. अनि यभ्यर्थिंचि यद्देवुनि वलनं ब्रसन्नत वडसि तन्मंदिरंबु वेंडलि मुनिवरुं-डम्महात्मुनि योगमाया प्रभावंबु देलियंगोरि वेरोक चंद्र बिंबानन गेहंबुनकुं जनि यंदु नेत्तमाडुचुन्न पुरुषोत्तमु नुद्धवयुतुंगनि यद्भुतंबु नोंदुचु नतनि चेत सत्कृतुंडै यच्चोटुवासि चनि ॥ 612 ॥

कं. मुनिवरुडु गांचें नोंडोक
वनजायतनेत्र निज निवासंबुन नं-
दनयुतु जिष्णु सहिष्णुन्
विनुत गुणालंकरिष्णु विष्णुं गृष्णुन् ॥ 613 ॥

कं. नारदुडटचनि कनेनोक
वारिजमुखि यिटनुन्न वानि मुरारिन्
हारिन् दानवकुल सं-
हारिं गमला-मनो-विहारिन् शौरिन् ॥ 614 ॥

व. इट्लु गनुगोनुचुं जनुचुंड नोक्क यॅड नम्मुनींद्रुनकु मुकुंदुंडु प्रत्युत्थानंबु सेसि मुनींद्रा ! संपूर्णकामुलयिन मिम्मु नपूर्ण कामुलमैन मे मेमिट

होनेवाले तुम्हारे लिए कोई अद्भुत [कार्य] है ? ६१० [ते.] हे ब्रह्मा [तथा] हर देवतार्चनीय ! भूरि संसार सागरोत्तारण [और] अव्ययानंददायक होनेवाले तुम्हारे पद-ध्यान को [मेरी] आत्मा में ठहरने दो।" ६११ [व.] इस प्रकार अभ्यर्थना करके उस देव से प्रसन्नता पाकर उस मंदिर से निकलकर मुनिवर उस महात्मा की योगमाया के प्रभाव को जानने की इच्छा से और एक चंद्रबिंबानना के गृह में जाकर उसमें जुआ खेलनेवाले और उद्धवयुत पुरुषोत्तम को देखकर आश्चर्य करते हुए उससे सत्कृत होकर, उस जगह को छोड़कर और जाकर ६१२ [कं.] मुनिवर ने किसी एक वनजायत-नेत्रा के निवास (मकान) में नंदनयुत, जिष्णु, सहिष्णु, विनुत गुणालंकरिष्णु और विष्णु [होनेवाले] कृष्ण को देखा। ६१३ [कं.] नारद ने वहाँ जाकर एक वारिजमुखी के घर पर रहनेवाले मुरारि, हारी, दानवकुल-संहारी [और] कमला-मनो-विहारी [होनेवाले] शौरि को देखा। ६१४ [व.] इस प्रकार देखते हुए जाते समय एक जगह पर उस मुनींद्र को मुकुंद का प्रत्युत्थान करके, "हे मुनींद्र ! संपूर्णकामी होनेवाले आपको संपूर्ण कामी होनेवाले हम यहाँ परितृप्त बना सकते हैं। भवदीय

बरितृप्ति नोंद जेयंगल वारमु भवदीय दर्शनंबुन निखिल शोभनंबुलनंदेद मनि प्रिय पूर्वकंबुगा बलिकिन ना नंदनंदनु माटलकु नानंद कंदळितहृदयार-विंदुंडुनु मंदस्मित सुंदर वदनारविंदुंडुनु नगुचु नारदुंडु वेंडियुं जनि चनि ॥ 615 ॥

कं. अनघात्मुडु गनुगोनें नोक
वनितामणि मंदिरमुन वनकेळी सं-
जनितानंदुनि ननिमिष-
विनमित चरणारुणारविंदु मुकुंदुन् ॥ 616 ॥

कं. परमेष्ठिसुतुडु गनेनोक, तरुणी भवनंबुनंदु दनु दान मनो-
बुरुहमुन दलचुचुंडेडि, नरकासुर-दमनु शूरु नंदकुमारुन् ॥ 617 ॥

व. मरियुनुं जनि चनि ॥ 618 ॥

सी. ऒकचोट नुचित संध्योपासनासक्तु नोकचोट बौराणिकोक्ति कलितु
नोकचोट बंचयज्ञोचित कर्मुनि नोकचोट नमृतोपयोग लोलु
नोकचोट मज्जनोद्योगानुषक्तुनि नोकचोट दिव्य भूषोज्ज्वलांगु
नोकचोट धेनु दानोत्कलितात्मुनि नोकचोट निजसुत प्रकरयुक्तु

ते. नोक्क चोटनु संगीतयुक्त चित्तु
नोक्क चोटनु जलकेळियुत विहारु
नोक्क चोटनु सन्मंचकोपयुक्तु
नोक्क चोटनु वलभद्रयुक्त चरितु ॥ 619 ॥

दर्शन से निखिल शोभनों को प्राप्त करेंगे।" इस प्रकार प्रियपूर्वक बोला तो उस नंदनंदन की बातों पर आनंद-कंदलित हृदयारविंद [तथा] मंदस्मित सुंदर वदनारविंद होते हुए नारद फिर जा-जाकर ६१५ [कं.] अनघात्मा ने एक वनितामणि के मंदिर (घर) में वनकेली-संजनित आनंद पानेवाले [और] अनिमिष विनमित चरण (रूपी) अरुणारविंद [होनेवाले] मुकुंद को देखा। ६१६ [कं.] परमेष्ठि-सुत ने एक तरुणी के भवन में उस नंदकुमार को देखा जिसकी वह अपने मनोबुरुह में चिंता करता था, जो नरकासुर का दमन करनेवाला था और जो शूर था। ६१७ [व.] और भी जा-जाकर, ६१८ [सी.] एक जगह पर उचित संध्योपासनासक्त को, एक जगह पर पौराणिकोक्ति कलित को, एक जगह पर पंच यज्ञोचित कर्मी को, एक जगह पर अमृतोपयोग लोल को, एक जगह पर मज्जनोद्योगानुषक्त को, एक जगह पर दिव्य भूषोज्ज्वलांग को, एक जगह पर धेनु-दानोत्कलितात्मा को, एक जगह पर निज सुत प्रकरयुक्त को, [ते.] एक जगह पर संगीतयुक्त चित्त वाले को, एक जगह पर जलकेलियुत विहारी को, एक जगह पर सन्मंचकोपयुक्त को [तथा] एक जगह पर

व. मरियुनु ॥ 620 ॥

सी. सकलार्थ संवेदियोक यिटि लोपल जॅलितोड मुच्चटल् सॅप्पुचुंडु
विपुल यशोनिधि वेरॊक्कयिटिलो सरसिजानन गूडि सरसमाडु
बुंडरीकदळाक्षुडॊंडोक यिटिलो दरुणिकि हार वल्लरुलु ग्रुच्चु
गरुणापयोनिधि मद्रियोक यिटिलो जॅलिगेडि विडियमु सेयुचुंडु

आ. विकच कमलनयनु डॊकयिटिलो नव्वु
ब्रविमलात्मु डॊकट वाडुचुंडु
योगिजन विधेयु डॊकयिट सुखगोष्ठि
सलुपु ननघु डॊकट जॅलगुचुंडु ॥ 621 ॥

व. इट्लु सूचुचुं जनि चनि ॥ 622 ॥

कं. चतुराननं-नंदनुडं, -चित मति जनि कांचॅ नॊक्क चॅलि गेहमुनं
ग्रतु कर्माचरणुनि ना, -श्रित भय हरणुन् सुरेंद्र-सेवित-चरणुन् ॥ 623 ॥

कं. वृत्रारि नुतुनि वरम प, -वित्रुनि नारदुडु गांचॅ वेरॊक यिटां-
बुत्रक पौत्रक दुहितृ क, -ळत्र समेतुनि ननंतु लक्षणवंतुन् ॥ 624 ॥

कं. सुंदरमगु नॊक सुंदरि, -मंदिरमुन बद्म भवकुमारुडु गांचॅन्
नंदित-नंदुन् सुजना, -नंदुन् गोविंदु नत-सनंदु मुकुंदुन् ॥ 625 ॥

कं. जलजभव सुतुडु गनॅ नॊक, नलिनाक्षि निवासमंदु नतभद्रेभुन्
जलदाभुन् गत लोभु, -न्नलकाळिजित द्विरेफु नंबुजनाभुन् ॥ 626 ॥

बलभद्रयुक्त चरित वाले को [देखा]। ६१९ [व.] और ६२० [सी.] सकलार्थ संवेदी एक घर में सहेली से [इधर-उधर की] बातें करता रहता; विपुल यशोनिधि और एक गृह में सरसिजानना के साथ सरस सल्लाप करता रहता; पुंडरीक-दलाक्ष और एक घर में तरुणी के लिए हार-वल्लरियाँ गूँथता रहता; करुणापयोनिधि अन्य गृह में सहेली के साथ तांबूलसेवन करता रहता; [आ.] विकच कमलनयन एक घर में हँसता रहता; प्रविमलात्मा एक जगह पर गाता रहता; योगिजनविधेय एक घर में सुख गोष्ठी करता रहता; अनघ एक जगह पर प्रकाशमान रहता। ६२१ [व.] इस प्रकार देखते हुए जा-जाकर ६२२ [कं.] चतुरानन-नंदन ने अंचित मति से जाकर एक सहेली के गृह में क्रतु-कर्माचरण, आश्रित-भय-हरण तथा सुरेन्द्र-सेवित चरण [वाले] को देखा। ६२३ [कं.] नारद ने और एक घर में वृत्रारिनुत, परम पवित्र, पुत्रक-पौत्रक-दुहितृ-कलत्र समेत [तथा] लक्षणवान अनंत को देखा। ६२४ [कं.] पद्मभव के कुमार नारद ने नंदितनंद, सुजनानंद, गोविंद, नत सनंद [तथा] मुकुंद को एक सुंदरी के सुंदर मंदिर (घर) में देखा। ६२५ [कं.] जलजभव-सुत

म. ऒकचोट गजवाजि रोहकुडनै यॊक्कट भुंजानुडै
सकलात्मुंडु परुंडु षोडश सहस्र स्त्री निवासंबुलं-
दॊक वोट्टिटनु दप्पकुंड निजमायोत्साहुडै युंड न-
घ्यकलंकुन् वरदुन् महापुरुषु ब्रह्मण्युन् नताब्जासनुन् ॥ 627 ॥

कं. अस्तोक चरितु नमित स-
मस्त सुधाहारु वेदमस्तकतल वि-
न्यस्त पदांबुज युगळु न-
पास्तश्रित निखिल-पापु वरमु ननंतुन् ॥ 628 ॥

आ. परम भागवतुडु परमेष्ठि-तनयुंडु
मनुज लील जॆंदि महित सौख्य-
चित्तुडैन या हृषीकेशु योग मा-
या प्रभावमुनकु नात्म नलरि ॥ 629 ॥

कं. मायुरे ! हरि ! हरि ! वरद ! य-
मेयगुणा ! यनुच नात्म मॆच्चि मुनींद्रुं-
डा यदुनायकु सुजन-वि-
धेयुनि निट्लनियॆ देव ! त्रिजगमुलंदुन् ॥ 630 ॥

कं. नीमाय दॆलियु वारलॆ, तामरसासन सुरेंद्र तापसुलैनन्
धीमंतुलु नी भक्तिसु, -धामाधुर्यमुन बॊदलु धन्युलु दक्कन् ॥ 631 ॥

(नारद) ने एक नलिनाक्षी के निवास (घर) में नत भद्रेभ, जलदाभ, गत लोभ, अलकालिजित द्विरेफ [तथा] अंबुजनाभ को देखा। ६२६ [म.] एक घर में गज-वाजिरोही बनकर, एक घर में भुंजान बनकर जब वह सकलात्मा, पर [परमात्मा] षोडश सहस्र स्त्रियों के निवासों में एक रमणी को भी न छोड़कर निजमाया के उत्साह के साथ रहा तो उस अकलंक, वरद, महापुरुष, ब्रह्मण्य [तथा] नत-अब्जासन को, ६२७ [कं.] अस्तोक-चरित, अमित समस्त सुधाहारी, वेद-मस्तक-तल-विन्यस्त पदांबुजयुगल, अपास्तश्रित निखिल पाप, पर [-मात्मा] [तथा] अनंत को ६२८ [आ.] परम भागवत [होनेवाले] परमेष्ठि-तनय (नारद) ने मनुजलीला को पाकर महित सौख्य चित्त होनेवाले उस हृषीकेश की योगमाया के प्रभाव पर अपनी आत्मा में आनंदित होकर, ६२९ [कं.] "ओह ! हरि, हरि, वरद ! अमेय गुणवाले !" कहते हुए आत्मा में प्रशंसा करके मुनींद्र ने उस यदुनायक से जो सुजन-विधेय था, इस प्रकार कहा, "हे देव, त्रिजगों में, ६३० [कं.] "धीमान, तुम्हारी भक्ति-सुधा तथा माधुर्य में मग्न होनेवाले धन्यों के अतिरिक्त ब्रह्मा तथा सुरेंद्र, तापस भी

कं. अनि हर्षिंचुचु निक ने
वनिविनिर्येद निखिल लोक पावनमुनु स-
ज्जन हितमुनैन नी की-
र्तन मखिल जगंबुलंदु दग नेर्रिंगितुन् ॥ 632 ॥

कं. अनि तद्वचन सुधा से, -चनमुन मुदितात्मुडगुचु संयम चित्तं-
बुन दन्मूर्तिदग निडु, -कोनि चनियेन् हरिनुतैक कोविदुडगुचुन् ॥ 633 ॥

कं. ई पगिदि लोकहितामति, ना परमेश्वरुडु मानवाकृति द्रिजग-
द्दीपित चरित्रुडु बहु, रूपमुलं बोंदे सुंदरुल नरनाथा ! ॥ 634 ॥

च. अनि हरियिट्लु षोडश सहस्र वधूमणुलं ब्रियंबुनन्
मनसिज केळि देल्चिन यमानुष लील समग्र भक्तितो
विनिन वठिंचिनं गलुगु विष्णु-पदांबुज भक्तियुन् महा-
धन पशु पुत्र मित्र वनिता मुख सौख्यमुलुन् नरेश्वरा ! ॥ 635 ॥

अध्यायमु—७०

व. अनि चेप्पि यप्पाराशर्यनंदनुं डभिमन्युनंदनुन किट्लनियें आ निशाव-
सानंबुन बद्म बांधवागमनंबुनु गमलिनी लोकंबुनकु मुनु कलुग
नेर्रिंगिचु चंदंबुनं गलहंस सारस रथांग मुख जल विहंगंबुल रवंबुलु सेलंग

तुम्हारी माया को जान सकते हैं ?" [नहीं] ६३१ [कं.] इस प्रकार हर्ष प्रकट करते हुए, "अब मैं विदा ले लूंगा [और] निखिल लोकपावन, सज्जनहित होनेवाले तुम्हारे कीर्तन को अखिल जगों में अच्छा समझा दूंगा।" ६३२ [कं.] यों कहकर तद्वचन-सुधा-सेचन से मुदितात्मा बनते हुए संयम चित्त में उस (कृष्ण की) मूर्ति को अच्छी तरह स्थिर करके एकमात्र हरि-नुति का कोविद बनते हुए चला गया। ६३३ [कं.] हे नरनाथ ! इस प्रकार लोक का हित करने की मति से उस परमेश्वर ने मानवाकृति से त्रिजगद्दीपित चरित वाले ने बहुरूपों से सुंदरियों को पाया। ६३४ [चं.] नरेश्वर ! इसलिए हरि के इस प्रकार षोडश सहस्र वधू-मणियों को प्रिय से मनसिज-केली में संतृप्त करने की अमानुष लीला को समग्र भक्ति के साथ सुनने पर या पढ़ने पर विष्णु-पदांबुज भक्ति [और] महाधन-पशु-पुत्र-मित्र-वनिता-मुख-सौख्य प्राप्त हो जायेंगे। ६३५

अध्याय—७०

[व.] यों कहकर उस पाराशर्य-नंदन ने अभिमन्यु-नंदन से इस प्रकार कहा। उस निशावसान के समय पद्मबांधव का आगमन

नरुणोदयंबुन मंगळ पाठक संगीत मृदु मधुर गान निनदंबुनु ललित मृदंग वीणा वेणु नादंबुनु वीतेर मेलुकनि तन चित्तंबुन जिदचिदानंदमयु बरमात्मु नव्ययु नविकारु नद्वितीयु नजितु ननंतु नच्युतु नमेयु नाढ्यु नाद्यंत विहीनु बरम ब्रह्मंबुनैन तन्नुं दानोक्कित चिंतिचि यनंतरंब विरोधि राजन्य नयन कल्हारंबुलु मुकुळिप भक्त जन नयन कमलंबुलु विकसिप निरस्तनिखिल दोषांधकारुंडैन गोविंदुंडु मोगिच्चिन लोचन-सरोजंबुलु विकसिपं जेयुचु दल्पंबु डिग्गि चनुदेंचि यंत ॥ 636 ॥

सी. मलयज कर्पूर महित वासित हेम कलशोदकंबुल जलकमाडि
नव्य लसन्मृदु दिव्य वस्त्रंबुलु वलनोप्प रिंगुलु वारु गट्टि
मकर कुंडल हार मंजीर केयूर वलयादि भूषणावलुलु दाल्चि
घनसार कस्तूरिका हरिचंदन मिळित पंकमु मेन नलर नलदि

ते. महित सौरभ नवकुसुममुलु दुरिमि
पोसग रूपैन शृंगार रसमनंग
मूर्ति गैकोन्न करुणा-समुद्र मनग
रमण नोप्पुचु ललित दर्पणमु चूचि ॥ 637 ॥

ते. कडगि सारथि देच्चिन कनक-रथमु
सत्यक-सुत प्रियोद्धव सहितु डगुचु

जिस प्रकार कमलिनी-लोक के लिए आनंद की सूचना देता है, कलहंस-सारस-रथांग-मुख जलविहंगों के रवों के होने पर, अरुणोदय के समय मंगल पाठक संगीत मृदु मधुर गान निनद [और] ललित मृदंग-वीणा-वेणुनाद के सुनाई पड़ने पर जागकर अपने चित्त में चिदचिदानंदमय, परमात्मा, अव्यय, अविकार, अद्वितीय, अजित, अनंत, अच्युत, अमेय, आढ्य, आद्यंत-विहीन [तथा] परमब्रह्म होनेवाले अपने ही आप कुछ चिंता करके, इसके बाद विरोधिराजन्य नयन [रूपी] कल्हार मुरझाये [और] भक्त-जन-नयन [रूपी] कमल विकसित हो जाय, इस प्रकार निरस्त निखिल दोषांधकार होनेवाला गोविंद कुम्हलाये हुए लोचन सरोजों को विकसित करते हुए तल्प से उतरकर आकर तब ६३६ [सी.] मलयज कर्पूर महित वासित हेम कलशोदकों से स्नान करके, नव्य लसन्मृदु दिव्य वस्त्रों को अच्छी तरह फेंटों-सहित पहनकर, मकर-कुंडल-हार-मंजीर-केयूर वलय आदि भूषणों को धारण करके, घनसार-कस्तूरिका-हरि-चंदन-मिलित पंक को शरीर पर लगाकर, [ते.] महित सौरभ नव-कुसुमों को [सिर में] रखकर, मानो सुंदर रूप में परिणत शृंगार-रस हो, मूर्तिमान करुणा समुद्र हो, सौंदर्य में प्रकाशमान होते हुए ललित दर्पण में देखकर ६३७ [ते.] प्रयत्नपूर्वक सारथि के लाये हुए कनक-रथ पर

नॆविक निजकांति दिक्कुल विक्कटिल्ल
वूर्वगिरि दोचु भानुनि बोलि वॆलिगॆ ॥ 638 ॥

सी. अभिनव निजमूर्ति यंतःपुरांगना नयनाब्जमुलकु नानंदमोसग
सललित मुखचंद्र चंद्रिकातति पौरजन चकोरमुलकुत्सवमु सेय
महनीय कांचन मणिमय भूषण दीप्तुलु दिक्कुल देजरिल्ल
नल्ल नल्लन वच्चि यरदंबु वॆस डिग्गि हल कुलिशांकुश जलजकलश

ते. ललितरेखलु धरणि नलंकरिप
नुद्धवुनि करतलमूनि योध्य नडचि
महितगति देवता-सभा-मध्यमुननु
रुचिर सिंहासनमुन गूर्चुडॆ नॆलमि ॥ 639 ॥

च. अति विभवंबुनं दनरि यात्म तनुद्युति तेजरिल्लगा
हितुलु पुरोहितुल् वसुमतीशुलु मित्रुलु बांधवुल् बुधुल्
सुतुलुनु मागधुल् कवुलु सूतुलु मंत्रुलु भृत्युलुन् शुभ-
स्थिति गॊलुवंग नॊप्पॆ नुडु-सेवितुडैन सुधांशुडो यनन् ॥ 640 ॥

कं. करुणार्द्र दृष्टि ब्रजलं, बरिरक्षिचुचु विवेक भाव कळाचा-
तुरि मॆरसि यिष्ट गोष्ठि, बरमानंदमुन राज्य भारकुडगुचुन् ॥ 641 ॥

सत्यक-सुत (सात्यकि) [तथा] प्रिय उद्धव-सहित चढ़कर, जिससे निज कांतियाँ चारों ओर बिखर जायें, पूर्व-गिरि पर उदित भानु की तरह प्रकाशमान हुआ। ६३८ [सी.] अभिनव निजमूर्ति के अंत.पुरांगनाओं के नयनाब्जों को आनंद देने पर, सललित मुखचंद्र चंद्रिकातति के पौरजन चकोरों को उत्सव करने पर (संतुष्ट करने पर) महनीय कांचन मणिमय भूषणों की दीप्तियों के दिशाओं में प्रकाशमान होने पर धीरे-धीरे आकर रथ से जल्दी उतरकर, हल, कुलिश, अंकुश, जलज, कलश की [ते.] ललित रेखाओं के धरणि को अलंकृत करने पर उद्धव के करतल को पकड़कर इठलाते हुए चलकर महित गति से देवता सभा (सुधर्मा-सभा) के मध्य रुचिर सिंहासन पर संतोष के साथ बैठ गया। ६३९ [च.] अमित विभव से प्रकाशमान होकर आत्म-तनु की द्युति के बिखर जाने पर, हितों, पुरोहितों, वसुमतीशों, मित्रों, बांधवों, बुधों, सुतों, मागधों, कवियों, सूतों, मंत्रियों [और] भृत्यों के शुभ-स्थिति से [उनकी] सेवा करने पर मानो उडु-सेवित सुधांशु हो, प्रकाशमान हुआ। ६४० [कं.] करुणार्द्र दृष्टि से प्रजा की रक्षा करते हुए, विवेक भाव-कला चातुर्य से प्रकाशमान होकर इष्ट जनों की गोष्ठि (संगति) में परम आनंद को प्राप्त करते हुए राज्य का भार ग्रहण करते हुए। ६४१

जरासंध भीतुलयिन राजुल पंपुन विप्रुंडु कृष्ण सन्निधि केतेंचुट

व. इट्लिवधंबुनं ब्रतिदिवसंबुनु नुंडु नवसरंबुन नोक्क नाडपूर्व दर्शनुंडयिन भूसुरुंडोक्करुंडु सनुदेंचि सभा मध्यंबुन् गोलुवुन्न मुकुंदुनि बोडगनि दंड-प्रणामंबाचरिंचि विनयंबुन गरंबुलु मोगिचि यिट्लनियें ॥ 642 ॥

कं. कंजविलोचन ! दानव
भंजन ! योगींद्र विमल भाव लसद्बो-
धांजन ! दीप्तिनिदर्शन
रंजित शुभमूर्ति कृष्ण ! राजीवाक्षा ! ॥ 643 ॥

ते. अवधरिंपु जरासंधु डतुल बलुडु
दनकु म्रोक्कनि धारुणीधवुल नेल्ल
वेदकि तेप्पिंचि यिरुवदि वेल नाक
बेट्टिनाडु गिरिव्रज पट्टणमुन ॥ 644 ॥

ते. वारु पुत्तेर वच्चिन वाड नेनु
नरवरोत्तम ! नृपुल विन्नपमु गाग
विन्नविंचेद नामाट विनिन मीद
ननघ नीदय वारि भाग्यंबु कोलदि ॥ 645 ॥

व. अनि धराधिपुल विन्नपंबुगा निट्लिनयें ॥ 646 ॥

उ. वारिजनाभ ! भक्तजनवत्सल ! दुष्टमदासुरेंद्र सं-
हार ! सरोरुहासन पुरारि मुखामर वंद्य पाद पं-

जरासंध से भीत राजाओं के भेजने पर विप्र का कृष्ण के पास आना

[व.] इस प्रकार प्रतिदिन रहते समय एक दिन अपूर्व दर्शन वाले एक भूसुर ने आकर सभामध्य मे विराजमान मुकुंद को देखकर दंड प्रणाम करके विनय से कर जोड़कर इस तरह कहा। ६४२ [कं.] "हे कंज विलोचन ! दानव-भंजन ! योगींद्र-विमल-भाव-लसत्-बोधांजन ! दीप्ति-निदर्शन ! रंजित शुभ मूर्ति ! कृष्ण ! राजीवाक्ष ! ६४३ [ते.] "अवधारण करो (सुनो)। अतुल बल वाले जरासंध ने उसको प्रणाम न करनेवाले सब धारुणीधवों (राजाओं) को अन्वेषण करके बुलवाकर गिरिव्रज नगर में क़ैद किया है। उनकी संख्या बीस हजार की है। ६४४ [ते.] "हे अनघ ! हे नरवरोत्तम ! उनके भेजने पर मैं आया हूँ। [उन] नृपों की प्रार्थना को मैं सुनाऊँगा। मेरी बात सुनने के बाद तुम्हारी दया और उनका भाग्य !" ६४५ [व.] यों कहकर धराधिपों की प्रार्थना के रूप में इस प्रकार कहा। ६४६ [उ.] "हे वारिजनाभ ! भक्तजनवत्सल ! दुष्ट मदयुक्त असुरेंद्रों का संहार

केरुह ! सर्वलोक परिकीर्तित दिव्य महाप्रभाव ! सं-
सारविदूर ! नंदतनुजात ! रमाहृदयेश ! माधवा ! ॥ 647 ॥

आ. आर्त जनुल मम्मु नरसि रक्षिपु म-
हात्म ! भक्तजन भयापहरण !
निन्नु मदि नुतिंचि नीकु म्रॊक्कॆदमु नी
चरणयुगमु माकु शरण मनघ ! ॥ 648 ॥

कं. बलियुर दंडिपग दु,-र्बलुलनु रक्षिप जगतिपै निज लीला
कलितुडवै युगयुगमुन, नलवड नुदयिंतुकादॆ यभव ! यनंता ! ॥ 649 ॥

कं. नीमदि दोपनि यर्थं,-बीमेदिनि यंदु गलदॆ यीश्वर ! भक्त-
स्तोम सुर भूज ! त्रिजग,-त्क्षेमंकर ! दीन रक्ष सेयु मुरारी ! ॥ 650 ॥

कं. नी पंपु सेयकुंडग, ना पद्म भवादि सुरुल केननु वशमे
श्रीपति ! शरणागतुलं, जेपट्टि निरोधमुडुग जेयुमु कृष्णा ! ॥ 651 ॥

कं. अभवुडवय्युनु जगति
ब्रभविंचुट लील गाक भवमंदुटये ?
प्रभुवुलकुं ब्रभुडवु मम्मु
सभयात्मुल नरसि कावजनु नार्तिहरा ! ॥ 652 ॥

(करनेवाले) ! सरोरुहानन, [और] पुरारिमुख [आदि] अमर-वंद्य-पाद पंकेरुह वाले ! सर्वलोक परिकीर्तित दिव्य महा प्रभाव[युक्त] ! संसार-विदूर ! नंदतनुजात ! रमाहृदयेश ! माधव ! ६४७ [आ.] आर्त जन होनेवाले हमको जानकर हमारी रक्षा करो ! महात्मा ! भक्तजनभयापहरण [करनेवाले] ! मन में तुम्हारी प्रार्थना करके तुम्हें प्रणाम करते हैं। हे अनघ ! तुम्हारे चरणयुगल ही हमारे लिए शरण्य हैं। ६४८ [कं.] हे अभव ! हे अनंत ! बलवानों को सज़ा देने [और] दुर्बलों की रक्षा करने के लिए जगति पर निजलीला-कलित होकर युग-युग में अपनी इच्छा की पूर्ति कर लेने के लिए उदित होते हो न ! ६४९ [कं.] हे मुरारे ! इस मेदिनी पर ऐसा कोई अर्थ (प्रयोजन) है जो तुम्हारे मन में नहीं सूझता ? हे ईश्वर ! भक्तस्तोम (समूह) के लिए सुर-भूज (कल्प-वृक्ष) ! त्रिजगत्-क्षेमंकर ! दीनों की रक्षा करो। ६५० [कं.] हे श्रीपते ! क्या वे पद्मभव आदि सुर भी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर सकते हैं ? हे कृष्ण ! शरणागतों को स्वीकार करके उनके बंधनों को दूर करो। ६५१ [कं.] अभव होकर भी जगत् में प्रभवित होना (पैदा होना) लीला न हो तो भव को पाना है ? तुम प्रभुओं के प्रभु हो ! हे आर्तिहर ! हम सभयात्माओं को जानकर हमारी रक्षा करो। ६५२

कं. कदनमुन नी भुजावलि
केदिरिंपग लेक पारङ्गे विक्रम सं-
पद चेंडग जरासंधुडु
पदुनेनिमिदि मार्लु धरणि पालुरु नव्वन् ॥ 653 ॥

व. इट्लु तम पडिन बन्नमुलं दलंपक सिंहंबु समद दंतावळंबुल नरिकट्टि कारिंचु चंदंबुन मम्मुं जेरपट्टि बाधिंचुचुन्न यप्पापात्मुनि मर्दिंचि कारागृह बद्धुलमगु मा निर्बंधंबुलु वापि सुत दार मित्र वर्गंबुलं गूर्चि यनन्य शरण्युलमैन मम्मु रक्षिंपुमनि विन्नविंचिरनि ब्राह्मणुंडु विन्नपंबु सेयु नवसरंबुन ॥ 654 ॥

नारदुंडु श्रीकृष्णुनितो धर्मजु राजसूयमु नेंड्रवेर्पुमनि चेप्पुट

सी. शारदचंद्रिका सारंगरुचितोड जडलुडि कैंपुचे सङ्गचि नव्व
शरदंबुदावृत सौदामिनी लता शोभ गांचन कटिसूत्रमलर
ललित पूर्णेंदुमंडल कलंकमु गति मृदु मृगाजिन रुचि मिंचु जूप
गल्प शाखाग्र संगत पुष्पगुच्छंबु लील गेलनु नक्षमाल यमर

ते. भूरि पुण्य नदी तोय पूरितमुग
दगु कमंडलुवींवक हस्तमुन दनर

[कं.] क्या युद्ध में तुम्हारी भुजावलि का सामना कर न सककर, विक्रम-संपदा के बिगड़ने पर जरासंध अठारह बार भाग नहीं गया जिससे धरणीपाल हँसें ! ६५३ [व.] इस प्रकार अपने सहे हुए अवमानों की चिंता न करके जैसे सिंह गजों को रोककर पीड़ित करता है, वैसे हमें गिरफ़्तार करके पीड़ित करनेवाले उस पापात्मा को मारकर कारागृह-बद्ध हमारे निर्बंधों को दूर करके [हमारे] सुत-दार-मित्र वर्गों से मिलाकर अनन्य शरण्य होनेवाले हमारी रक्षा करो।" इस प्रकार [उन्होंने] प्रार्थना की। यों कहकर उस ब्राह्मण के कहते समय ६५४

धर्मराज के राजसूय को संपन्न करने के लिए नारद का श्रीकृष्ण से कहना

[सी.] शारद-चंद्रिका-सारंग-रुचि (-कांति) के साथ श्वेत वर्ण के होड़ लगाकर हँसने पर, शरत्काल के अबुद से आवृत सौदामिनी-लता की शोभा से कांचन कटि-सूत्र के सुंदर लगने पर, ललित पूर्णेन्दु-मंडल कलंक की तरह मृदु मृगाजिन की रुचि अधिक होने पर, कल्पवृक्ष की शाखा के अग्र भाग पर रहनेवाले पुष्प-गुच्छ की तरह हाथ में अक्षमाला के रहने पर, [ते.] भूरि पुण्य नदी-तोय से पूरित कमंडलु के एक हस्त में रहने पर, सफ़ेद यज्ञोपवीत

वॆल्ल जन्निद मरुत शोभिल्ल वच्चॆ
नारदुंडु विवेक विशारदुंडु ॥ 655 ॥

कं. चनुदॆंचॆ नट्लु मुनि निज
तनु कांतुल नखिल दिग्वितानमु वॆलुगन्
वनजाप्तु वोलि यद्यदु-
जनमुलु गृष्णुंडु लेचि संप्रीति मॆयिन् ॥ 656 ॥

कं. विनयमुन म्रॊक्कि कनका-
सनमुन गूर्चुंडबॆट्टि समुचित विविधा-
र्चनमुल दनिपि मुरांतकु-
डनियॆन् विनयंबु वॊप नम्मुनि तोडन् ॥ 657 ॥

ते. इप्पुडॆंदुंडि वच्चिति विदुलकुनु
नखिल लोकैक संचारिवगुट जेसि
नीयॆरुंगनि यर्थंबु निखिलमंदु
नरय लेदंड्रु मिम्मॊकटडुगवलयु ॥ 658 ॥

ते. पांडुनंदनुलिप्पुडे पगिदि नॆचट-
नुन्नवारलॊ यॆरिंगिपुमन्न मौनि
कर-सरोजातमुलु मोड्चि कडक तोड
बलिकॆ गमलाक्षु जूचि सद्भक्ति मॆरसि ॥ 659 ॥

व. देवा ! विश्व निर्माण कर्तवै मायवै सकल कार्योत्पादनादि शक्ति युक्तुंडवै पावकुंडु दारुवुलदु नंतर्हित प्रकाशुंडै युन्न चंदंबुन वर्तिचुचुन्न नीदु दुरत्ययं

के शोभायमान होने पर विवेक विशारद नारद आ उपस्थित हुआ । ६५५ [कं.] अपनी तनु की कांतियों से अखिल दिकों के वितान (समूह) के प्रकाशमान होने पर इस प्रकार वनजाप्त की तरह वह मुनि आया। (उसके आने पर) वे यदुजन और कृष्ण प्रीति के साथ उठकर ६५६ [कं.] सविनय प्रार्थना करके कनकासन पर बिठाकर समुचित और विविध अर्चनाओं से तृप्त कर विनय-सहित उस मुरांतक ने उस मुनि से कहा ६५७ [ते.] "अब कहाँ से यहाँ आये हो ? कहते हैं कि अखिल लोक-संचारी होने से इस संसार में ऐसी चीज़ एक भी नहीं है जिसे तुम नहीं जानते । आपसे एक [बात] पूछनी है। ६५८ [ते.] "पांडुनंदन अब कैसे हैं ? और कहाँ है ? समझाओ" ऐसा कहने पर वह मुनि [अपने] कर-सरोजों को जोड़कर प्रयत्न से भक्ति के साथ कमलाक्ष को देखकर बोला । ६५९ [व.] "हे देव ! विश्व-निर्माण-कर्ता होकर, माया युक्त होकर [और] सकल कार्योत्पादन आदि शक्तियुक्त होकर जैसे पावक दारुओं में अंतर्हित हो प्रकाश

बयिन माया शतंबुल बॅक्कु मारुलु पॉडगंटि नदियु नाकु नद्भुतंबु गादु। अदियुनुं गाक नी संकल्पंबुन जगंबुद्भवंबै भवत्परतंत्रंबुनगु। अट्टि नीकिष्टंबैन वस्तुवु साधु तरंबुगा दॅलिय नॅव्वंडु समर्थुंडु ? ए पदार्थंबु प्रमाण मूलंबुनं दोचु नदियुनु लोक विचक्षणुंडवैन नीवु रूपंबु। मरियुनु मुक्तिमार्गंबु नॅरुंगक संसार परवशुलैन जीवुल मायांधकारंबु निवर्तिपजेय समर्थंबगु नी दिव्य लीलावतारंबुलं गलुगु कीर्तियनु प्रदीपंबु प्रज्वलिप जेसि कृप सेयुदु। अट्टि नीकु नमस्करिंचेद। अदि गावुन नी प्रपंचंबुन नी यॅरुंगनि यर्थंबुनु गलदे ? यनि कृष्णुनकु नारदुंडिट्लनियॆ ॥ 660 ॥

सी. अयिननु विनिपिंतु नवधरिंपुमु देव पांडु तनूजुंडु पारमेष्ठ्य
कामानुमोदियै काविपनुन्नाडु राजसूय महाध्वरंबु निष्ठ
ठवणिप लोक विडंबनार्थमु गाक परिकिंप दनकात्मबांधवुडवु
भक्तवत्सलुडवु परमपूरुषुडवु यज्ञरक्षकुडवु यज्ञभोक्त-

ते. वगु भवत्सेव चालदे सुगति वडय-
नैन नी मेनबाव धर्मात्मजुंडु
अतनि यज्ञंबु रक्षिप नंबुजाक्ष
वलयु विच्चेयु मचटिकि वलनु मॆरसि ॥ 661 ॥

होकर रहता है, वैसे तुम्हारे दुरत्यय होनेवाले माया शतों को अनेक बार मैंने देखा है; वह मेरे लिए अद्भुत नहीं है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे संकल्प से जग उद्भावित होकर भवत्परतंत्र होता है। ऐसे तुम्हारे लिए जो वस्तु प्रीतिकर है उसे साधुतर (अच्छी तरह) जानने के लिए कौन समर्थ है ? जो पदार्थ प्रमाण मूल से दिखाई पड़ता है, वह भी लोक-विचक्षण होनेवाले तुम्हारा रूप है। इसके अतिरिक्त मार्ग को न जानकर संसार परवश होनेवाले जीवों के मायांधकार को निवृत्त करने में समर्थ होनेवाले तुम्हारे दिव्य लीलावतारों से होनेवाली कीर्ति रूपी प्रदीप को प्रज्वलित करके कृपा करते हो। ऐसे तुमको नमस्कार कर रहा हूँ। इसलिए इस संसार में ऐसा कोई अर्थ है, जिसे तुम नहीं जानते ?" ऐसा कहकर कृष्ण से नारद ने इस प्रकार कहा। ६६० [सी.] "हे देव ! फिर भी सुनाऊँगा, सुनो; पांडुतनूज निष्ठा से पारमेष्ठ्य-कामानुमोद से राजसूय महाध्वर (महायज्ञ) करनेवाला है; यह तो केवल लोक-विडंबनार्थ है; नहीं तो देखने पर सुगति पाने के लिए तुम्हारी सेवा पर्याप्त नहीं है ? तुम उसके आत्म-बंधु हो; भक्तवत्सल हो; परमपुरुष हो; यज्ञरक्षक हो; यज्ञभोक्ता हो; [ते.] फिर भी धर्मात्मज तुम्हारा फुफेरा भाई है। हे अंबुजाक्ष ! उसके यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए; तुम वहाँ पधारो ताकि तुम प्रकाशमान बन जाओ। ६६१ [कं.] हे पद्माक्ष ! तुम्हारा नाम

कं. नी पेरु विनिन नॉडिविन, बापंबुलु दूलिपोवु पद्माक्ष जग-
द्दीपक नी दर्शनमुन, नेपारवॅ भक्तजनुलकिह पर सुखमुल् ॥ 662 ॥

म. भवदीयोज्ज्वल कीर्ति दिग्विततुलन् भासिल्लु युष्मत्पदो-
द्भव नैर्मल्य जलंबुलुत्कलिक बाताळंबुनं बारु भो-
गवती नाममुनं दनर्चि धरणि गंगानदी रूपमै
दिवि मंदाकिनियै जगत्त्रयमुनं दीपिंचु गादे हरी ! ॥ 663 ॥

कं. आ मखवेळ समस्त ध-
रा मंडलि गल्गु मेटि राजुलु मौनि-
स्तोमंबुनु भवदीय म-
हा महिममु जूचि सत्कृतार्थत बॉंदन् ॥ 664 ॥

कं. कलरनि चॅप्पिन नम्मुनि
पलुकुलकु मुदंबु नॊंदि पंकजनाभुं-
डॅल नव्वु मॊगमुनकु जॅलु-
वॊलयग वार्दिचि युद्धवुन किट्लनियॅन् ॥ 665 ॥

कं. उद्धव ! महित विवेक स-
मिद्ध वचो विभव ! कार्यमॆगति नडचुन्
वृद्ध वरानुमतबुग
बोद्धव्यमु गाग जॅप्पु पुरुषनिधाना ! ॥ 666 ॥

ते. अनघ-चारित्र ! नीवु मा यक्षि युगमु
वंटिवाडवु मनकु नवश्यमगुचु

सुनने से [और] बोलने से पाप दूर होते। हे जगद्दीपक ! क्या तुम्हारे दर्शन से भक्त जनों के इह-पर-सुख संपन्न नहीं होते ? ६६२ [म.] हे हरे ! भवदीय उज्ज्वल कीर्ति दिशाओं की विततियों में प्रकाशमान होती। युष्मत् पदोद्भव नैर्मल्य जल उत्कलिका से पाताल [लोक] में भोगवती नाम से प्रसिद्ध होकर बहता है। धरणि पर गंगानदी के रूप में [और] दिवि [पर] मंदाकिनी बनकर जगत्त्रय में दीप्त होता है न ! ६६३ [कं.] तुम [वहाँ आओ] जिससे उस मख (यज्ञ) के समय समस्त धरा-मंडलि में होनेवाले बड़े-बड़े राजा और मौनि-स्तोम (मुनि-समूह) भवदीय महा महिमा को देखकर सत्कृतार्थता पावें। ६६४ [कं.] वहाँ उपस्थित हैं।" ऐसे कहने पर उस (नारद) मुनि की बातों पर मोद पाकर पंकजनाभ ने सुंदर हास्य से अपने मुख को और प्रकाशमान बनाकर उद्धव से इस प्रकार कहा। ६६५ [कं.] "हे उद्धव ! बड़े विवेक से समिद्ध ! वचो-विभव वाले ! कार्य कैसे संपन्न होगा ? हे पुरुषनिधान ! ऐसे कहो कि वृद्धवरानुमत और बोद्धव्य हो ! ६६६ [ते.] हे अनघ-चारित्र ! तुम

जेय दगिनट्टि कार्यंबु जेप्पु नीवु
नेमि पंचिन गाविंतु निद्धचरित ! ॥ 667 ॥

श्रीकृष्णुंडुद्धवुनि यालोचन चॊप्पुन धर्मराजु पालिकि बोवुट

व. अनि सर्वज्ञुंडैन हरि यज्ञुंडु वोलें दन्नु नडिगिन बुरुषोत्तमुनि भाषणंबुलकु मनंबुन संतसिल्लि यतनि पादांबुजंबुलु दन मनंबुन निडिकॊनि वृद्धानुमतंबुगा नायॆरिंगिन तॆरंगु विन्नविंचॆद नवधरिंबुमु ।

अध्यायमु—७१

व. देवा ! देवमुनि चॆप्पिनट्लु भवदीय भक्तुंडैन युधिष्ठिरु याग पालनंबु सेयं गंकॊनुट कार्यंबु । अदियुनुंगाक निखिल दिग्विजय मूलंबगु राजसूय कृत्यंबु नंदु जरासंध मर्दनंबुनु नतनि चेत बद्धुलैन राजुलं गारागृह विमुक्तुलं गाविंचुटयुं जेकूरु नदियुनुंगाक नागायुत सत्त्वुंडुनु शताक्षौहिणी बलान्वितुंडुनु नगु मागधुनि वधियिंप मन प्रभंजन-नंदनुंडु गानि यॊंडॊरुलु समर्थुलु गारु । अट्लगुट नतंडु भूसुरुलेमि गोरिन नय्यर्थंबु वृथ सेयक

हमारे अक्षि-युग जैसे हो । ऐसा कार्य कहो जो हमारे लिए अवश्य करने योग्य है । हे इद्ध-चरितवाले ! तुम जो कुछ करने के लिए कहोगे [वह] करूँगा ।" ६६७

उद्धव के विचार के अनुसार श्रीकृष्ण का धर्मराज के पास जाना

[व.] इस प्रकार सर्वज्ञ होनेवाले हरि के उससे पूछने पर पुरुषोत्तम के भाषणों [बातों] के लिए मन में संतुष्ट होकर उनके पादांबुजों को अपने मन में रखकर, "वृद्धानुमत से जो कुछ मैं जानता हूँ, उस प्रकार निवेदन करूँगा । अवधारण करो (सुनो) ।

अध्याय—७१

[व.] "हे देव ! जैसे देवमुनि ने कहा है, भवदीय भक्त होनेवाले युधिष्ठिर का यज्ञपालन करने का प्रयत्न करना कार्य [युक्त] है । इसके अतिरिक्त निखिल दिग्विजय मूल होनेवाले राजसूयकृत्य में जरासंध-मर्दन करना तथा उससे बंदीकृत (बद्ध) राजाओं को कारागृह [से] विमुक्त करना [आदि कार्य] संपन्न होंगे; इसके अतिरिक्त नागायुत-सत्त्व और शत अक्षौहिणी बलान्वित होनेवाले मागध का वध करने के लिए हमारे प्रभंजन-नंदन (भीमसेन) को छोड़कर और कोई समर्थ नहीं है । इसलिए वह

यिच्चुंगावुन गपट विप्रवेषंबुनं जनि या जरासंधुनि नाहव भिक्ष वेडि भवत्सन्निधानंबुन नप्पवमान तनयुंडतनि वधियिचुनट्टि कार्यंबु सेत वहुलार्थ साधनंबगुननि पलिकिन विनि नारदुंडुनु यादव जनंबुलुनु सभिकुलुनु बॊगडिरि। अंत ॥ 668 ॥

सी. तरल विचित्रक स्थगित प्रभावलि दनरारु गरुड केतनमु वॆलुग
गांचन चक्र संघटित घंटा घण घण निनादमुल दिक्करुलु बॆदर
सललित मेघपुष्पक वलाहक शैब्य सुग्रीव तुरग विस्फुरण दनर
बाल सूर्य प्रभा भासमान द्युति दिग्वितानंबुल दीटुकॊनग

ते. प्रकट रुचि नॊप्पु तेरु दारुकुडु देर
नॆक्कि वॆडलॆडु नपुडु पॆंपॆनय जॆलगॆ
शंखकाहळ पटह निस्साण डिंडि-
मादि रवमुलु भरित दिगंतमुलुग ॥ 669 ॥

कं. मनुजेश्वरुनकु दालां-
कुनकुनु गुरुवृद्ध जनुलकुनु जॆप्पि प्रियं-
बुन ननुप गांचन स्यं-
दन सामज वाजि भट कदंबमु गॊलुवन् ॥ 670 ॥

ते. वंदिमागध सूत कैवार रवमु
वसुमती सुरकोटि दीवनल म्रोत

भूसुर ने जो कुछ माँगा, उस अर्थ (याचना) को वृथा किये विना देना। इसलिए कपट विप्र-वेष में जाकर उस जरासंध से आहव (युद्ध) भिक्षा माँगकर भवत्-सन्निधान में ऐसा कार्य कराओ जिससे वह पवमानतनय (भीम) के उसका (जरासंध का) वध करना वहुलार्थ-साधक होगा।" ऐसा बोलने पर नारद, यादव जन तथा सभिकों ने प्रशंसा की। तब ६६८ [सी.] तरल विचित्रक स्थगित (भरित) प्रभावलि से सुंदर लगनेवाले गरुड़केतन के प्रकाशमान होने पर, कांचन-चक्र-संघटित-घंटा के घणघण निनादों से दिशाओं के प्रतिध्वनित होने पर, सललित मेघ पुष्पक, वलाहक, शैब्य, सुग्रीव, तुरगों के विस्फुरण होने पर, बालसूर्य-प्रभा-भासमान-द्युति दिक्-वितानों में भर जाने पर, [ते.] प्रकट रूप से सुंदर लगनेवाले रथ को दारुक के लाने पर [उस पर] चढ़कर जाते समय अधिक कांति फैल गयी। शंख, काहल, पटह, निस्साण, डिंडिम आदि के रवों से दिगंत भर गये। ६६९ [कं.] मनुजेश्वर, तालांक (बलराम) [और] गुरु-वृद्ध जनों से कह (विदा ले) कर प्रेम से भेज देने पर कांचन-स्यंदन, सामज, वाजि [और] भटों [के] कदंब (समूह) के सेवा करने पर ६७० [ते.] वंदि-मागध-सूत-कैवार के रव के जब वसुमतीसुर (ब्राह्मण) कोटि के

लनु गमिपग सतुलु सौधाग्र शिखर
सीमलंदुंडि मुत्याल सेसलॉलुक ॥ 671 ॥

कं. लीलं जनि कृष्णुडु वा-
ह्यालिन् नवकुसुम फल भरानत शाखा
लोल घनसार साल र-
साल वनस्थलमुलंदु जतुरत विडिसॅन् ॥ 672 ॥

व. अट्टियॅड सरोजनाभु शुद्धांतंबुन ॥ 673 ॥

सी. विकच मरंद नवीन सौरभ -लसन्मंदार कुसुम दाममुलु बुरिमि
चारु सुगंध कस्तूरिका घनसारमिळित चंदन पंकमॅलमि नलदि
कनक कुंडल कनत्कंकण नूपुर मुद्रिका भूषणमुलु धरिंचि
यंचित मुक्ताफलांचल मृदुल दिव्यांबरमुलु चॅलुवार गट्टि

ते. यर्धचंद्रुनि नॅक सक्कॅ माडुनट्टि
यलिक फलकल दिलकमु ललर दीर्चि
पॅंपु दीपिप नुडुराज बिंब मुखुलु
नव चतुर्विध शृंगार मवधरिंचि ॥ 674 ॥

ते. जलजलोचनु कडकु नुत्कलिक तोड
दनरु शिबिकल नॅक्कि नंदनुलु दामु
गडक नेतेर प्रतिहार जनुलु वेत्र
कलितुलं पौरुलनु नॅड गलुग जडिय ॥ 675 ॥

आशीर्वचनों के शब्द का अनुगमन करने पर [तथा] सतियों के सौधाग्र शिखर-सीमाओं पर रहकर मोतियों के अक्षतों को विकीर्ण करने पर ६७१ [कं.] लीला से जाकर कृष्ण नवकुसुम-फल-भरानत शाखा लोल-घनसार-साल-रसाल वनस्थलों में वाह्यालि (बहिरंग प्रदेश में घूमना) [चतुरता] युत हो करता रहा। ६७२ [व.] तब सरोजनाभ (कृष्ण) के शुद्धांत में ६७३ [सी.] विकच-मरंद-नवीन-सौरभ-लसन्मंदार-कुसुम-दामों को (शिरोजों में) अलंकृत करके, चारु-सुगंध-कस्तूरिका-घनसार-मिलित-चंदन-पंक को शरीर पर लेप कर, कनक-कुंडल-कनत्-कंकण-नूपुर-मुद्रिका-भूषणों को धारण करके, अंचित मुक्ताफलांचल मृदुल दिव्यांबरों को अच्छी तरह पहनकर, [ते.] अर्धचंद्रमा को लज्जित करनेवाले अलिक-फलक (ललाट) पर तिलक धारण करके प्रकाशमान होने पर उडुराजबिंब-मुखियाँ (चंद्र मुखवाली रमणियाँ) नव चतुर्विध शृंगार करके ६७४ [ते.] जलजलोचन के पास सुंदर शिविका पर चढ़कर संतोष से नंदनों [और] स्वयं सयत्न अपने आने पर, वेत्रहस्त [होनेवाले] प्रतीहारियों के पौरों को [इधर-उधर]

कं. असमास्त्रुडु पुलु कडिगिन
कुसुमास्त्रमुलन् हसिंचु कोमल तनुवुल्
मिस मिस नॆरवग वेश्या-
विसरमु दासीजनंबु विभव मॆलर्पन् ॥ 676 ॥

आ. हरुल वेसडमुल गरुलनु नॆक्कि तो
नरुगुदेर वहु विधायुधमुलु
दाल्चि सुभट कोटि तगिलि रा नंतःपु-
रांगनलु सितांबुजाक्षु कडकु ॥ 677 ॥

व. वच्चिरंत ॥ 678 ॥

कं. नारदुनि माधवुडु स-
त्कारंबुन वीडुकॊलुप नतंडुनु हृदयां-
भोरुहमुन गृष्णुनकुनु
वारक म्रॊक्कुचुनु वॆस दिवंबुन करिगॆन् ॥ 679 ॥

कं. नरवरुल दूतयुनु मुर, -हरुचे नभय प्रदान मंदि धरित्री
वरुलकड केगि पल्को, -दरुवचनमु सॆप्पि सम्मदंबुन देल्चॆन् ॥ 680 ॥

व. अंत गृष्णुंडु निज कांता तनय बंधु सुहृज्जन समेतुडै कदलि
चनुनॆड ॥ 681 ॥

च. कट पट रत्न कंबळ निकाय कुटीरमुलुल्लसिल्ल नु-
त्कट पटु चामर ध्वज पताक किरीट सितातपत्र वि-

हटाने पर ६७५ [कं.] असमास्त्र के (मदन के) धनुष से कुसुमास्त्रों (पुष्प-बाणों) को लज्जित करनेवाले कोमल तनुओं के प्रकाशमान होने पर, वेश्याओं का समूह दासियों के विभव से ६७६ [आ.] हरों (घोड़ों), गाड़ियों [और] करियों (हाथियों) पर सवार होकर (रमणियों के) साथ आ जाने पर बहुविध आयुधों को लेकर सुभट कोटि के आने पर अंतःपुरांगनाएँ सितांबुजाक्ष के पास ६७७ [व.] आयीं; तब ६७८ [कं.] माधव के नारद का सत्कार करके [उनको] विदा कर देने पर वह भी हृदयांभोरुह (हृदय-कमल) में कृष्ण की वंदना करते हुए शीघ्र स्वर्ग की ओर चला गया। ६७९ [कं.] नरवरों के दूत ने भी मुरहरि से अभय प्रदान पाकर धरित्री-वरों के पास जाकर कृष्ण की बात कहकर [उन राजाओं को] संतोष से भर दिया। ६८० [व.] तब निजकांता-तनय-बंधु-सुहृज्जन-सहित हो कृष्ण के निकलकर जाते समय ६८१ [च.] कट (चटाई), पट (वस्त्र) [तथा] रत्नकंबल (दरी) से बने कुटीरों (डेरों) के आधिक्य से उत्कट पटु चामर, ध्वज, पताका, किरीट, सितातपत्र विस्फुट

स्फुट घनहेति वीधिति नभोमणि गप्पग दूर्यघोषमुल्
चटुल तिमिंगिलोर्मि रव सागर घोषमुनाक्रमिंपगन् ॥ 682 ॥

कं. करि हरि रथ सुभट समु-
त्करमुलु सेविंप मुर विदारुडु गडचेन्
सरिदुपवन दुर्ग सरो-
वर जनपद पुर पुळिंद वन गोष्ठमुलन् ॥ 683 ॥

व. इट्लु गडचि चनुचु नानर्तक सौवीर मरु देशंबुलु दाटि यिंदुमतिनि दर्शिंचि दृषद्वति नुत्तरिंचि सरस्वती नदि दाटि पांचाल मत्स्य विषयंबुलु लोनुगा गडचि यिंद्रप्रस्थ नगरंबु डायंजनि तत्पुरोपकंठ वनंबुन विडिसिन ॥ 684 ॥

पांडवुलु श्रीकृष्णु नेंदुर्कोनि तोड्कोनि पोवुट

कं. हरि राक येरिंगि धर्मजु-
डर लेनि मुदंबु तोड ननुजुलु बंधुल्
गुरुजन सचिव पुरोहित
परिचारक करि रथाश्व भटयुतुडगुचुन ॥ 685 ॥

कं. चिंदमुलु मोरय गायक, -बृंदंबुल नुतुलु सेवुल बेरयग भक्तिन्
डेंदमु दगुलग बरमा, -नंदंबुन हरिनेंदुर्कोनं जनुदेंचेन् ॥ 686 ॥

घन-करवाल की कांति के नभोमणि (सूरज) को ढँक देने पर [और] तूर्य घोषों के चटुल तिमिंगिल [युक्त] उर्मिरव के सागर-घोष पर आक्रमण करने पर ६८२ [कं.] करि, हरि, रथ [और] सुभट समूहों के सेवा करने पर मुर-विदार (कृष्ण) ने सरित्, उपवन, दुर्ग, सरोवर, जनपद, पुर, पुलिंद वन गोष्ठियों को पार किया। ६८३ [व.] इस प्रकार पार करके जाते हुए आनर्तक, सौवीर [और] मरु देशों को पार करके इंदुमति के दर्शन करके, दृषद्वति [नदी] को तर करके, सरस्वती नदी को पार करके, पांचाल, मत्स्य विषय (देश) आदि को पार करके इन्द्रप्रस्थ नगर के पास जाकर तत्पुरोपकंठ वन में ठहरे तो ६८४

पांडवों का श्रीकृष्ण का आह्वान करके ले जाना

[कं.] हरि के आगमन को जानकर धर्मज बिना किसी कसर के मोद-सहित, अनुज-बंधु-गुरु-जन-सचिव-पुरोहित-परिचारिक-करि-रथ-अश्व-भटयुक्त हो ६८५ [कं.] शंखों के बजने पर, गायक-वृन्दों की स्तुतियों के कारण उत्पन्न होनेवाली भक्ति के हृदय को स्पर्श करने पर, परमानंद से हरि को लिवा लाने गया। ६८६ [व.] इस प्रकार आकर धर्मनंदन समागत

व. अट्लु चनुदेंचि धर्मनंदनुंडु समागतुडैन सरोजनाभुनि वेंद्द तडवु गाढालिगनंबु सेसि रोमांच कंचुकित शरीरुंडै यानंदबाष्प धारा सिक्त कपोलुंडै निर्भरानंद कंदळित हृदयुंडै बाह्यंबु मरचि युंडे। अप्पुडु हरिनि वायुनंदन वासव तनूभवुलु गौगिटं जेर्चि सम्मदंबु नोंदिरि माद्रियुलु दंड प्रणामंबुलाचरिंचिरि। अंत बुंडरीकाक्षुंडु विप्र वृद्ध जनंबुलकु नमस्कारंबुलु सेसि वारलु गाविंचु विविधार्चनलं बरितुष्टुंडै केकय सृंजयादि भूविभुल मन्निंचि सूत मागधादुलकनेक पदार्थंबुलोसंगि चतुरंग वल समेतुंडै विविधमणि तोरणादि विचित्रालंकृतंबुनति वैभवोपेतंबुनैन पुरंबु ब्रवेशिंचि राजमार्गंबुनं जनुचुंड बौरकामिनुलट्टियेंड ॥ 687 ॥

सी. कोरनेलपै दोचु निरुलु ना जेलुवोंदि नोसलिपै गुरुलु तुंपेसलु गुनिय
हाटक मणिमय ताटंक रोचुलु गंड भागंबुल गंतुलिडग
स्फुरित विद्रुम निभाधरबिंबरुचि तोड दरहास चंद्रिक सरसमाड
नोंडोटितो रायु नुत्तुंग कुचकुंभमुलु मोगंबुलकुनु बुटमुलेगय

ते. बडुगु नडुमुलु वडकंग नडुगुलिडग
रवळि मट्टेलु मणि नूपुरमुलु मोरय
बोलुचु कचबंधमुलु भुजंबुल नटिप
बय्येदलु वीडियाड संभ्रममुतोड ॥ 688 ॥

सरोजनाभ से वहुत देर तक गाढ़ालिगन करके रोमांच-कंचुकित-शरीरी वनकर आनंद-वाष्पधारा-सिक्त-कपोल-युक्त हो, निर्भरानंद-कंदलित हृदय से बाह्य को भूलकर रह गया। तब हरि से वायुनंदन [और] वासव-तनूभवों ने आलिगन करके सम्मद (संतोष) प्राप्त किया। माद्रेयों ने दंड प्रणाम किये। तब पुंडरीकाक्ष विप्र वृद्ध जन को नमस्कार करके उनकी की हुई विविध अर्चनाओं से परितुष्ट होकर केकय, सृंजय आदि भूविभों का गौरव करके, सूत, मागध आदि को अनेक पदार्थ देकर, चतुरंग वल समेत हो विविधमणि-तोरण आदि विचित्र अलंकारों से अलंकृत होकर पुर में प्रवेश करके राजमार्ग से जब जा रहा था तव पुर-कामिनियाँ ६८७
[सी.] ललाट पर अलकों के ऐसे चंचल होने पर मानो अर्धचंद्र पर अँधेरियाँ व्याप्त हुई हों, हाटक मणिमय ताटंकों की रुचियों (कांतियों) के गालों पर कूद पड़ने पर, स्फुरित विद्रुम निभ-अधर बिंब रुचि से दरहास चंद्रिका के हासमय भाषण करने पर, एक-दूसरे से रगड़ लेनेवाले उत्तुंग कुच-कुंभों के उछलने पर, ऐसे कदम रखने पर [ते.] जिससे [उनकी] कृश कटियाँ कंपित हों, पैर की अँगुलियों के आभरणों और मणि नूपुरों के ध्वनित होने पर, सुंदर कच-बंधों के भुजाओं पर नाचने पर तथा संभ्रम से अंचलों के फिसल जाने पर ६८८ [व.] इस प्रकार कृष्ण-संदर्शन के

व. इट्लु कृष्ण संदर्शन कुतूहल परस्पराहूयमानलै गुरु पति सुत बंधुजनंबुलु वारिंप नतिक्रमिंचि समुन्नत भर्महर्म्य शिखराग्रंबुलेक्कि कृष्णुं जूचि तमलोनिट्लनिरि ॥ 689 ॥

सी. विश्व गर्भुंडु ना वेलयु वेल्पिल यशोदानंदुलकु ब्रिय सूनुडय्ये
ब्रह्मादि सुरलकु भाविंपगा रानि ब्रह्मंबे गोपाल बालुडय्ये
वेद-शास्त्रंबुलु वेदकि कानगलेनि गट्टि ब्रेतल ऱोल गट्टुवडियें
दिविजुलकमृतंबु दविलि यिच्चिन भक्त सुलभुंडु नवनीत चोरुडय्ये

ते. नेनय गमला सतिकि जित्तमीनि वेल्पु
गोल्ल यिल्लांड्र युल्लमुल् पल्लविंप
जेसें ननि कामिनुलु सौध शिखरमुलनु
गूडि तम लोन मुच्चटलाडिरधिप ॥ 690 ॥

व. मरियुनु ॥ 691 ॥

सी. गोपाल बालुर गूडि याडेडिनाडु ब्रेपल्लें लोपल रेगि रेगि
चल्ललम्मग बोवु सतुल कोंगुलु बट्टि मेरुगु जेक्किळ्ळनु मीटि मीटि
कलिकियै मुद्दाडि गौगिट जेर्चिन पूबोंडि कुचमुलु पुणिकि पुणिकि
पायनि यनुरक्ति दाय जेरिन यिंति अधर सुधारसंबानि यानि

कुतूहल से परस्पर आहूयमाना बनकर गुरु, पति, सुत और बंधुजनों के रोकने पर [उनका] अतिक्रमण करके समुन्नत स्वर्ण हर्म्य-शिखराग्रों पर चढ़कर कृष्ण को देखकर आपस में इस प्रकार बोलीं। ६८९ [सी.] विश्वगर्भ कहलानेवाला दैव इस भूमि पर नंद-यशोदा का सूनु बन गया; ब्रह्मा आदि सुरों के लिए भी भावनातीत ब्रह्म ही गोपाल बालक बन गया; वेद-शास्त्रों के अन्वेषण करने पर न दिखाई पड़नेवाला बालक [माँ के हाथ] मार खाकर ओखल से बंधित हुआ; दिविजों को अमृत देनेवाला भक्त-सुलभ नवनीत-चोर बन गया। [ते.] कमला सती को भी मन न देनेवाले दैव ने ग्वालिनों के मनों को संतुष्ट किया है; हे अधिप ! इस प्रकार कामिनियों ने सौध-शिखरों पर जाकर आपस में संलाप किये। ६९० [व.] और ६९१ [सी.] गोपाल बालकों के साथ खेलने के समय व्रेपल्ले (ब्रजभूमि) में विजृंभित हो-होकर, मट्ठे को बेचने जानेवाली सतियों के आँचल पकड़कर उनके चमकनेवाले गालों पर चुटकी बजा-बजाकर, चतुर बनकर चूमने के लिए आलिंगन करनेवाली युवतियों के कुचों को स्पर्श करके दूर न होनेवाली अनुरक्ति से पास आयी हुई स्त्रियों के अधर सुधारस को पी-पीकर; [ते.] उस समाधि पर अष्टांगयोगयुक्त होनेवाले योगीश्वरों के

ते. युरु समाधि-पराष्टांगयोग युक्तु-
लैन योगीश्वरुलु गान नट्टि जेंट्टि
वल्लवी-जन कल्पक-वल्लि यय्यॆ
ननुचु बॊगडिरि कृष्णु नय्यब्ज-मुखुलु ॥ 692 ॥

म. अनि यिब्भंगि सरोज-लोचनलु सौधाग्रंबुलंदुंडि य-
व्वनजाताक्षुनि दिव्य मूर्ति दम भावंबंदु गीलिंचि सं-
जनितानंदरसाब्धि मग्नलगुचुन् संप्रीति तद्भव्य की-
र्तनलं चल्लिरि नव्यलाजमुलु मंदार प्रसूनावलुल् ॥ 693 ॥

व. तदनंतरंबु शोभन पदार्थमुलु गॊनिवच्चि धरामर धरावर वणिक् पुंगवुलु दामोदरुनकु गानुक लिच्चिरि। पुण्यांगना जनंबुलु पसिडि पळ्ळेरंबुल गर्पूरनीराजनंबुलु निवाळिप नंतः पुरंबु सॊच्चॆं। अंतं गुंति भोजनंदनयुं गृष्णुनि गनि पर्यंकंबु डिगि कौगिलिप ना यदुवल्लभुंडु मेनत्तकुं ब्रणामं-बाचरिंचॆं। पांचालियु मुकुंदुनकु नभिवंदनंबॊनरिचि कुंति पंपुन गोविंदु-भामिनुलगु रुक्मिणि मॊदलगु वारिकि गंधाक्षत कुसुम तांबूलंबुलिडि ललित दुकूल मणि भूषणंबुलं बुजिंचॆं। युधिष्ठिरुंडुनु गमलनयनुनि वधू-जनुल ननुगत बंधुमित्र पुत्र सचिव पुरोहित परिचारक समुदयंबुल नुचितंबुलगु स्थलंबुल विडिदियिप नियमिंचि दिन दिनंबु नभिनवंबुलगु विविधोपचारंबुलु गाविंचुचुंडॆ ॥ 694 ॥

लिए भी अदृश्य वीर वल्लवी-जन के लिए कल्पवल्लि बन गया। उन अब्ज-मुखियों ने इस प्रकार कृष्ण की प्रशंसा की। ६९२ [म.] इस प्रकार [उन] सरोज-लोचनाओं ने सौधाग्रों पर रहकर उस वनजाताक्ष की दिव्य मूर्ति को अपने भाव में स्थिर करके संजनित आनंद-रसाब्धिमग्नाएँ बनती हुई संप्रीति से तद्भव्य कीर्तनों को गाते हुए [उस कृष्ण पर] नव्य लाजो और मदार-प्रसूनावलियों को बिखेर दिया। ६९३ [व.] इसके बाद शोभन पदार्थों को लाकर विप्र, राजा और वणिक्पुंगवों ने दामोदर को भेंट कर दिया। पुण्यांगना जनों के सोने की थालियों में कर्पूर-नीराजन से आरती उतारने पर [कृष्ण ने] अतःपुर मे प्रवेश किया। इसके बाद कुन्ती और भोजनंदना के कृष्ण को देखकर पर्यंक (शय्या) से उतरकर [कृष्ण से] आलिंगन करने पर उस यदुवल्लभ ने फूफी को प्रणाम किया। पांचाली ने मुकुंद को अभिवादन करके कुंति की आज्ञा से गोविंद की पत्नियाँ [होनेवाली] रुक्मिणी आदि को गंध, अक्षत, कुसुम [और] तांबूल देकर ललित दुकूल-मणि-भूषणों से पूजा की (सत्कार किया)। युधिष्ठिर भी कमल-नयन को, वधू जनों को, अनुगत बंधु, मित्र, पुत्र, सचिव, पुरोहित, परिचारक समुदायों को उचित स्थलों में बसा कर, नियमित करके दिन-

कं. हरियु युधिष्ठिरु समुचित
परिचर्यलकात्म नलरि पार्थुडु दानुन्
सरस विहार क्रियलनु
सुरुचिरगति गौन्नि नॅललु सुखमुंडे नृपा ! ॥ 695 ॥

अध्यायमु—७२

व. अंत ॥ 696 ॥

सी. धरणीश ! यॊकनाडु धर्मतनूजुंडु प्रविमल निज सभा भवनमंदु
हितुलु मंत्रुलु पुरोहितुलुनु सुतुलुनु मित्रुलु बंधुवुल् क्षत्रवरुलु
परिचारकुलु सूत पाठक कवि बुधवरुलुनु मुनुलुनु वरुस गौलुव
जिरलील नवरत्न सिंहासनस्थुडै कौलुवुंडि विनतुडै नलिननाभु

ते. भुवन-रक्षण-दक्षु नद्भुत-चरित्रु
यदु-कुलेश्वरु मुर-दैत्य-मद-विभेदि
नाप्तु नयवेदि जतुरुपाय-प्रवीणु
जूचि यिट्लनि पलिकॆ नस्तोक-चरित ! ॥ 697 ॥

ते. अनघ-चारित्र ! राजसूयाध्वरंबु
नॆम्मि गाविंचु वेड्क नॆम्मननुन

प्रतिदिन अभिनव विविध उपचार करने लगा। ६९४ [कं.] हे नृप, हरि युधिष्ठिर की समुचित परिचर्याओं के लिए आत्मा में खुश होकर पार्थ और स्वयं (कृष्ण) सरस विहार क्रियाएँ करते हुए, सुरुचिर गति से कुछ महीनों तक सुख से रहा। ६९५

अध्याय—७२

[व.] तब ६९६ [सी.] हे धरणीश ! एक दिन धर्मतनूज ने अपने प्रविमल सभा-भवन में हितों, मंत्रियों, पुरोहितों, सुतों, मित्रों, बंधुओं, क्षत्रवरों, परिचारकों, सूत पाठकों, कवि-बुधवरों [तथा] मुनियों के सेवा करने पर, चिर-लीला से नवरत्न सिंहासनस्थ हो विराजमान होकर नम्रता के साथ नलिन-नाभ, [ते.] भुवन-रक्षण में दक्ष, अद्भुत चरित्रवान, यदुकुलेश्वर, मुर नामक दैत्य के मद के विभेदी [तोड़नेवाले]; आप्त, नयवेदी (न्याय जाननेवाले) [और] चतुरुपाय-प्रवीण (होनेवाले कृष्ण) को देखकर इस प्रकार कहा, "[हे] अस्तोक चरित्र [वाले] ! ६९७ [ते.] [हे] अनघ-चारित्र ! मेरे मन में इच्छा हो रही है कि मैं राजसूयाध्वर को संपन्न करूँ; उसका

नॆनयुचुन्नदि यदि निर्वहिंप नीव
काक नाकात्म बंधुवुल् गलरॆ यॆव्वरु ? ॥ 698 ॥

उ. ऎव्वरु नीपदांबुजमुलॆप्पुडु गॊल्तुरु भक्ति निष्ठुलै
ऎव्वरु निन्नु ब्रेमनुतियिंतुरु भूरि विवेकशालुरै
यव्विमलात्मुलंदुदुरुदंचित शोभन नित्य सौख्यमुल्
निव्वटिलंग गृष्ण ! निनु नॆंचि भजिंचिन रित्तवोवुने ?॥ 699 ॥

धर्मराज श्रीकृष्णु ननुमतंबुन भीमादुल दिग्विजयंमुनकु बंपुट

व. अनिन गृष्णुंडु धर्मनंदनुन किट्लनियॆ ॥ 700 ॥

च. नयगुणशालि ! पांडुनृपनंदन ! नी तलपॊप्पु नी क्रतु-
क्रिय मुनि देवता पितृ सुकृत्यमुनै निखिलोग्र-शात्रव-
क्षयमुनु बांधव प्रियमु नंचित पुण्यमु नित्य कीर्तियुन्
जयमु नॊसंगु दीनि गुरुसत्तम ! वेग नुपक्रमिंपवे ! ॥ 701 ॥

कं. मनुचरित ! नी सहोदरु-
लनुपम दिव्यास्त्रवेदुलाहव भूमि
जंनकिन वैरि नृपालुर
दुनुमग जालुदुरु शौर्य दुर्दम भंगिन् ॥ 702 ॥

निर्वाह करने के लिए तुम्हारे सिवा मेरा आत्मबंधु और कौन है ? ६९८
[उ.] जो भक्तिनिष्ठ बनकर तुम्हारे पदांबुजों की सेवा सदा करते रहते हैं [और] जो भूरि विवेकशाली बनकर प्रेम से तुम्हारी स्तुति करते हैं, जिससे वे विमलात्मा उदंचित शोभन युक्त हो नित्य सुख पावें, हे कृष्ण ! तुम्हें जानकर [तुम्हारा] भजन करने से [वह कैसे] रिक्त हो जायगा ?" ६९९

श्रीकृष्ण की सलाह के अनुसार धर्मराज का भीम आदि को दिग्विजय के लिए भेजना

[व.] ऐसा कहने पर कृष्ण ने धर्मनंदन से इस प्रकार कहा । ७००
[चं.] "हे नयगुणशाली ! पांडुनृपनंदन ! जो कुछ तुम कह रहे हो, वह ठीक है । तुम्हारी क्रतु-क्रिया मुनि, देवता, पितरों के लिए सुकृत्य होकर निखिल उग्र शात्रव क्षय, बांधव प्रिय, अंचित पुण्य, नित्य कीर्ति तथा जयप्रद होगी । हे कुरु-सत्तम, इसका उपक्रम शीघ्र करो । ७०१ [कं.] हे मनुचरित, तुम्हारे सहोदर अनुपम दिव्यास्त्रविद हैं । आहव [युद्ध]-भूमि पर उनका सामना करनेवाले वैरि नृपालों को दुर्दम शौर्य के साथ मार डाल सकते हैं । ७०२ [कं.] विमत (शत्रु) नृपालों को जीतो ।

कं. गॅलुवुमु विमत नृपालुर
वॅलयुमु बुध विनुतमैन विश्रुत कीर्तिन्
निलुपुमु निखिल धरामं-
डलिनि भवच्छासनमु वृढंबुग जॅल्लन् ॥ 703 ॥

कं. नी पंचु कार्य मॉरुलं, जूपक ये जेय निन्नु जुट्टन व्रेलं
जूपग वच्चुनॆ सकल ध, रापतुलकु नीकु जेयरानिदि गलदे ? ॥ 704 ॥

व. कावुन ॥ 505 ॥

कं. विमल मति निट्टि मख रा, -जमुनकु दॅप्पिप वलयु संभारंबुल्
समकूर्पुमु नीयनुजुल, समद गति बंपु निखिल शत्रुल गॅल्वन् ॥ 706 ॥

कं. अनुमाटलु विनि कुंती-
तनयुडु मोदमुनु बॊंदि तामरसाक्षुन्
विनुतिंचि शौर्यकलितुल
यनुजुल दॅस जूचि पलिकॅ हर्षमु लोडन् ॥ 707 ॥

कं. सृंजय भूपालकुलुनु, गुंजर रथ वाजि सुभट कोट्लु निनु गॉ-
ल्वंजनुमनि सहदेवुनि, नंजक पॊम्मनियॆ दक्षिणाश जयिंपन् ॥ 708 ॥

कं. प्रकट चतुर्विध सेना-
प्रकरंबुलु गॊलुव बंचॆ बडमटि दिशकुन्
नकुलुन् विदळित रिपु भू-
पकुलुन् शौर्यंबु मॆरसि पार्थिवमुख्या ! ॥ 709 ॥

बुध-विनुत-विश्रुत कीर्ति से प्रसिद्ध बनो। निखिल धरामंडलि पर भवच्छासन को स्थिर बनाओ ताकि दृढ़ रूप से रहो। ७०३ [कं.] जो काम तुम देते हो, उसे दूसरों को दिए बिना मेरे करने पर, क्या तुमको सकल धरापति तर्जनी उठाकर दिखा सकते हैं ? ऐसा कोई काम है जो तुम नहीं कर सकते ? ७०४ [व.] इसलिए ७०५ [कं.] हे विमल मते, ऐसे मख [यज्ञ]-राज (श्रेष्ठ) के लिए [आवश्यक] वस्तुओं को मँगाओ। अपने अनुजों को शीघ्र भेजो ताकि वे निखिल शत्रुओं को जीत लें।" ७०६ [कं.] ऐसी बातों को सुनकर कुंती-तनय संतोष पाकर तामरसाक्ष की विनति करके शौर्यकलित [होनेवाले] अपने अनुजों की ओर देखकर हर्ष के साथ [इस प्रकार] बोला। ७०७ [क.] "सृंजय भूपालकों तथा कुंजर-रथ-वाजि-सुभट कोटियों के तुम्हारी सेवा करने पर तुम जाओ; दक्षिण आशा (दिशा) को जीतने के लिए बिना डरे, जाने के लिए सहदेव से कहा। ७०८ [कं.] हे पार्थिवमुख्य ! प्रकट चतुर्विध सेना-प्रकर के सेवा करने पर पश्चिम की दिशा में नकुल को [और] शत्रुओं को विदलित

कं. दुर्जन - भंजनु शौर्यो-
पार्जित विजय प्रकांड नाहव निपुणु-
न्नर्जुन महित यशोनिधि-
नर्जुनु नुत्तरपु दिशकु ननिचें नरेंद्रा ! ॥ 710 ॥

आ. महित शौर्य निधुलु मत्स्य केकय मद्र
भूतलेंद्र बल समेतमुगनु
दर्पमोप्प वंचें दूर्पु दिक्कुनकुनु-
द्दाम - निहत - वैरि - धामु भीमु ॥ 711 ॥

च. पनिचिन वारलेगि घन वाहु पराक्रम विक्रमंबुल-
न्ननुपम शौर्युलैन चतुरंत महीशुल नोर्चिकप्पमुन्
कनक विनूत्न रत्न तुरग प्रमुखाखिल वस्तु जातमुल्
गोनि चनुदेंचि धर्मजुनकुं ब्रणमिल्लि युदात्त चित्तुलै ॥ 712 ॥

च. तम तम पोयि वच्चिन विधंबुलु भूपतुलन् जयिंचुटल्
क्रममुन जेप्प नंदुल जरातनयुंडरिवेंट्टडय्ये नं-
चमर वरेण्य नंदनु डहंकृति दक्कग विन्नविंचिनन्
यमसुतुडूरकुंडे विकलात्मकुडै विनियंत गृष्णुडुन् ॥ 713 ॥

ते. धर्मनंदनु जूचि युत्कलिक तोड
वलिकें मागधु बोर जंपग नुपाय

करनेवाले भूपकों को भेजा ताकि उनका शौर्य प्रज्वलित हो जाय। ७०९ [कं.] हे नरेंद्र ! दुर्जनों का भंजन करनेवाले, शौर्य से उपार्जित विजय प्रकांड, आहव-निपुण और अर्जुन महित यशोनिधि होनेवाले अर्जुन को उत्तर दिशा में भेजा। ७१० [आ.] महित शौर्यनिधि, मत्स्य, केकय, मद्र, भूतलेंद्र बल समेत, उद्दाम-निहत वैरिधाम [होनेवाले] भीम को पूरव की ओर भेजा ताकि उनका दर्प प्रकटित हो जाय ७११ [चं.] भेजने पर, वे जाकर, घनवाहु पराक्रम विक्रम के साथ अनुपम शौर्य [रखनेवाले] चतुरंत महीशों को हराकर कर (राजस्व), कनक-विनूत्न-रत्न-तुरग-प्रमुख अखिल वस्तु-जातों (-समूहों) को लेकर आये और धर्मराजा को प्रणाम करके और उदात्त चित्त बनकर ७१२ [च.] अपने-अपने जाकर आने की विधि तथा भूपतियों को जीतने का क्रम कह चुके तो अमरवरेण्य-नंदन (अर्जुन) ने निवेदन किया कि उन (राजाओं) में जरा-तनय ने अहंकारयुक्त हो स्वीकार नहीं किया; यमसुत (धर्मज) चुप रहा; तब कृष्ण ने विकलात्मा बनकर सुनकर ७१३ [ते.] धर्मनंदन को देखकर विलास के साथ कहा, "हे नयचरित्र ! मागध से लड़ने और [उसे] मार

मॉकटि गलददि सॅप्पॅद नुद्धवुंडु
नाकु जॅप्पिन चंदंबु नयचरित्र ! ॥ 714 ॥

च. विलु मगधेश्वरुंडॅपुडु विप्रजनावलि यंदु भक्तियुन्
विनयमु गलिग यॅद्दियुनु वेडिनचो वृथ सेय किच्चुगा-
वुन विजयुंडुनुं बवन पुत्रुडु नेनुनु ब्राह्मणाकृति
जनि रणभिक्ष वेडिन वशंवदुडै यतडिच्चु गोरिकल् ॥ 715 ॥

व. अट्टियॅड ॥ 716 ॥

श्रीकृष्ण भीमार्जुनुलु जरासंधुनि वधिप बोवुट

ते. तविलि यप्पुडु मल्ल युद्धमुन वानि
बिलुकुमार्पिप वच्चुनु भीमु चेत
ननिन धर्मजुडिदि लॅस्स यनिन विप्र-
वेषमुलु दाल्चि यरिगिरि विशद यशुलु ॥ 717 ॥

व. अट्लु कृष्ण भीमार्जुनुलु ब्राह्मण वेषंबुलु दाल्चि त्रेताग्नुलुं बोलॅ दम शरीर-
तेजो विशेषंबुलु वॅलुंग नतित्वरित गति जनि गिरिव्रजंबु सॉच्चि यंदु
नतिथिपूजलु श्रद्धागरिष्ठ-चित्तुंडै काविच्चुचुन्न जरासंधुनि गनुंगॉनि
यिट्लनिरि । 718 ॥

कं. धरणीश ! यतिथिपूजा-
परुडवु नीवनुचु दिशल बलुकग विनि मे-
मरुदॅंचितिमि मदीप्सित-
मट्टु सेयक यिम्मु सुव्रताचारनिधी ! ॥ 719 ॥

डालने का एक उपाय है; उसे कहूँगा जैसे उद्धव ने मुझसे कहा । ७१४
[च.] "सुनो, मगधेश्वर सदा विप्रजनावलि पर भक्ति और विनय रखकर जो कुछ माँगा जाता है [उसे] वृथा (निराश) किए बिना देता है; इसलिए, विजय (अर्जुन), पवनपुत्र (भीम) और मैं ब्राह्मणाकृति (ब्राह्मण-वेष) में जाकर रण-भिक्षा को माँगें तो वशंवद होकर वह [हमारी] इच्छा को पूरी करेगा । ७१५ [व.] तब ७१६

श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन का जरासंध का वध करने जाना

[ते.] "उससे लगकर मल्लयुद्ध में भीम से उसे मरवा डाल सकते हैं।" (कृष्ण के) ऐसा कहने पर धर्मज ने 'ठीक है' कहा तो विशद यश वाले विप्र-वेष धारण करके चले गये । ७१७ [व.] उस प्रकार कृष्ण, भीम और अर्जुन ने जरासंध से इस प्रकार कहा । ७१८ [कं.] "हे धरणीश ! जब दिशाएँ कहती हैं कि तुम अतिथि-पूजा-पर हो, वह सुनकर

कं. अतिथि जनंबुल भक्तिन्
सततमु बूजिंचि युचित सत्कारमुलु-
न्नति नडपु सज्जनुलु शा-
श्वत कीर्तुलु धरणि वडय जालुदुरनघा ! ॥ 720 ॥

कं. परिकिंपग देहंब-
स्थिरमनि निज बुद्धि बलचि चिरतर कीर्ति-
स्फुरणं ब्रस्तुति केंक्कनि
पुरुषुडु जीवन्मृतुंडु भूरि-विवेका ! ॥ 721 ॥

कं. धारुणिलोन वदान्युल-
कीरानि पदार्थ मोक्कटनियु गलदे
कोरिन दन मेनेमुकलु
धीरुंडयि यिच्चेननि· दधीचिनि विनमे ! ॥ 722 ॥

कं. अडिगिन वृथ सेयक तन
योडलाकलि गोन्न येंरुक कोगिरमुग ने-
पंडनिच्चि कीर्ति गनेननि
पुडमिन् मुनु विनमे यल कपोतमु ननघा ! ॥ 723 ॥

कं. आर्यिद्राग्नुलु श्येनक, वायस रूपमुल दम्मु वलतिग वेडन्
धीयुतुडयि मुनु शिबि तन, कायमु गोसिच्चेनन जगंबुल विनमे ॥ 724 ॥

हम आये हैं; हे सुव्रताचारनिधे ! मदीप्सित (इच्छा) की कमी न करके दे दो। ७१९ [कं.] हे अनघ ! वे सज्जन जो भक्ति के साथ सतत अतिथि जनों की पूजा करके उचित सत्कार उन्नति के साथ करते हैं वे शाश्वत कीर्ति वाले हैं धरणि को पा सकते है। ७२० [कं.] हे भूरि विवेक वाले ! 'देखने पर देह अस्थिर है' —ऐसे निज बुद्धि मे सोचकर चिरतर कीर्ति-स्फुरण से जो पुरुष प्रशंसित नहीं होता वह जीवन्मृत है। ७२१ [कं.] क्या धारुणि मे ऐसी कोई चीज एक भी है, जिसे वदान्य दे नही सकते ? क्या हम नही सुनते कि याचना करने पर दधीचि ने धीर बनकर अपने शरीर की हड्डियों को दे दिया था ? ७२२ [कं.] हे अनघ ! मांगने पर वृथा न करके अपने शरीर को भूखे किरात को आहार के रूप में देकर पूर्वकाल में इस भूमि पर एक कबूतर ने यश को प्राप्त किया है न ? ७२३ [कं.] क्या इन जगों में हम नहीं सुनते कि इन्द्र और अग्नि स्येन और वायस के रूप में आकर शिवि से बड़ी इच्छा से प्रार्थना करने पर धीयुत बनकर पूर्वकाल में शिवि ने अपने शरीर को काट कर दिया था न ? ७२४ [आ.] यह कहने पर क्या हम नही सुनते कि

आ. धीरमतुलु रंतिदेव हरिश्चंद्र, बलुल नुंछवृत्ति ब्राह्मणुनिनि
मुन्नु चॆप्प विनमॆ सन्नुत चरितुलु, सन्ननैन नेडु नुन्नवारु ॥ 725 ॥

व. अनिन विनि जरासंधुंडु वारल रूपंबुलुनु मेघ गंभीर भाषणंबुलुनु गुण किणांकंबुलुनु महा प्रभावंबुलुनु जूचि तन मनंबुन वीरलु ब्राह्मण वेष धारुलैन राजेंद्रुलुगा नोपुदुरनि तलंचि यिम्महात्मुलु कोरिन पदार्थंब काडु प्राणंबुलैनिबु नित्तु। अदियुंगाक तॊल्लि बलींद्रुंडु विप्र व्याजंबुन नडिगिन विष्णु देवुनकु नात्मपद भ्रष्टत्वं बॆरिंगियु विचारिंपक जगत्रयबु निच्चि कीर्ति परुंडय्यॆ,. क्षत्र बंधुंडनु वाडु ब्राह्मणार्थंबु निज प्राण परित्यागंबु सेसि निर्मलंबगु यशंबु वडसॆ। अदि गावुन न नत्यंबैन कायंबु विचारणीयंबु गादु। कीर्ति वडयुट लॆस्स यनि तलंचि युदारुंडयि कृष्णार्जुन भीमुलं गनि यिट्लनियॆ ॥ 726 ॥

कं. भूरिगुणुलार! मी मदि, कोरिक यॆरिंगिपुडेमि कोरिन नैनन्
धीरत नीसगुटये का, -दारय नाशिरमु द्रुंचि यैननु नित्तुन् ॥ 727 ॥

उ. नावुडु गृष्णुडम्मगधनाथुन किट्लनु भूवरेण्य! नी
भावमु सूनृत व्रत शुभस्थिति जॆंदुटरुंग वच्चॆ, मा
कीवलॆ नाजिभिक्ष यितडिंद्र तनूभवु डेनुपेंद्रुडं
बावनि यीत डिदॆकनि वॆकॊनि यॆक्कटि पोरगा दगुन् ॥ 728 ॥

पूर्वकाल में धीर मति पाले रंतिदेव, हरिश्चन्द्र, बलि [चक्रवर्ति] उंछ वृत्ति वाले ब्राह्मण को मानते थे; [ऐसे] सन्नुत चरितवाले क्षीण होकर भी आज सजीव हैं।" ७२५ [व.] ऐसा कहने पर सुनकर जरासंध उनके रूपों को, मेघ-गंभीर भाषणों को, गुणकिणांकों (लक्षणों) को [तथा] महा प्रभावों को देखकर, अपने मन में यह सोचकर कि ये [लोग] ब्राह्मणवेषधारी राजेन्द्र हो सकते हैं, केवल उसी पदार्थ को नहीं जिसे ये महात्मा चाहेंगे, प्राण भी दे दूंगा। इसके अतिरिक्त पूर्वकाल में बलींद्र विप्र-व्याज (बहाने) से माँगने पर विष्णु देव को, आत्मपदभ्रष्टत्व को जानकर भी, आगे-पीछे न करके जगत्त्रय को देकर कीर्तिपर बन गया। क्षत्रबंधु नामक एक व्यक्ति ने ब्राह्मणार्थ निज प्राण त्याग करके निर्मल यश को पाया। इसलिए अनित्य काय विचारणीय नहीं है। कीर्ति पाना अच्छा है, ऐसा सोचकर [और] उदार बनकर कृष्ण, अर्जुन [और] भीम को देखकर इस प्रकार कहा। ७२६ [कं.] "हे भूरि गुणी, अपने मन की इच्छा को सूचित कीजिए, आप जो कुछ माँगेंगे, धीरता के साथ देना ही नहीं, अपना सिर भी काट कर दे दूंगा।" ७२७ [उ.] तब कृष्ण ने उस मगधनाथ से इस प्रकार कहा, "हे भूवरेण्य! तुम्हारा भाव सूनृत व्रत की शुभ स्थिति से युक्त है, ऐसा मालूम पड़ता है। हमें आजि भिक्षा देनी चाहिए; यह इन्द्र का तनूभव है; मैं उपेन्द्र

च. अन विनि वाडु नव्वि यहहा ! विन वितलु पुट्टॆं मुन्नन-
न्ननि मॊन नोर्वॆ जालक भयंबुन वारिति पॆक्कुमार्लु वं-
चन, मधुरापुरिन् विडिचि सागर मध्यमुनंदु डागवे
वनरुहनाभ ! नी विरुवु वाडितनंबुनु नाकु वितये ॥ 729 ॥

कं. इन्नेल सॆप्प मायल, वन्निन वोविडुव गोपवालक ! वल सं-
पन्नुनि मागध भूवरु, नन्नॆरुगवॆ तॊल्लि नंदनंदन पोरन् ? ॥ 730 ॥

उ. कान रणोर्विनन्नॆदुर गष्टमु गान दलंगु गोत्रभि-
त्सूनुडु भूरिबाहुबल दुर्दमुडय्युनु विन्न, यी मरु-
त्सूनुडु मामक प्रकट दोर्वल शक्तिकि जोडु दुल्युडौ
वीनि नॆदुर्तुनंचु जॆयि वीचॆ जरासुतुडुग्रमूर्तियै ॥ 731 ॥

श्रीकृष्ण सहायुंडगु भीमुंडु जरासंधुनितो युद्धमु चेयुट

कं. करुवलि सुतुनकु नॊक भी-
कर गद निप्पिंचि यॊक्क गद दन केलन्
धरियिंचि नलुवुरुनु प्र-
च्चरु वुरि वॆलिकेगि यचट समतल भूमिन् ॥ 732 ॥

हूँ; यह पावनि (भीम) है; इनमे से किसी एक के साथ तुम्हें अकेले लड़ना चाहिए।" ७२८ [च.] ऐसा कहने से सुनकर [और] वह हँसकर "अहह ! सुनने में आश्चर्य होता है; इसके पूर्व मेरे साथ युद्ध न कर सककर भय से कई बार भाग गये हो। क्या धोखे से मथुरापुरी को छोड़कर सागर के मध्य नही छिप गये हो ? हे वनरुहनाभ ! तुम्हारा पौरुष और तेजी, क्या मेरे लिए आश्चर्यकर विषय है ? ७२९ [कं.] इतनी बातें कहने की क्या आवश्यकता है ? चाहे तुम कितनी भी माया को फैलाओ, मैं तुमको छोड़ न दूँगा। हे गोपबालक ! मैं बलसंपन्न हूँ। मगध-भूवर हूँ। हे नंदनंदन ! क्या तुम पहले मुझे युद्ध में नही जानते ? ७३० [उ.] इसलिए रणोर्वि (युद्धभूमि) पर मेरा सामना करना कष्ट है, इसलिए हट जाओ। गोत्रभित्सून (अर्जुन) भूरि बाहुबल के कारण दुर्दम है; लेकिन [मुझसे] छोटा है; यह मरुत्सून (भीम) मामक [मेरी] प्रकट दोर्बल शक्ति को देखने से [मेरे लिए] तुल्य है। इसका सामना करूँगा।" ऐसा कहते हुए जरा-सुत ने उग्र मूर्ति बनकर हाथ को फैलाया। ७३१

श्रीकृष्ण के सहाय से भीम का जरासंध के साथ युद्ध करना

[कं.] भीम को एक गदा दिलवाकर वह खुद अपने हाथ में एक गदा लेकर चारों [मिलकर] मगध नगर के बाहर जाकर [और] वहाँ की समतल

सी. पर्वतद्वंद्वंबु पाथोधियुगळंबु मृगपति द्वितयंबु वृषभयुगमु
पावकद्वयमु दंतावळयुगळंबु दलपडु वीक नुद्दंड लील
गदिसि यन्योन्य भीकर गदाहतुल नुग्रंबुग विस्फुलिंगमुलु सॅदर
गॅरलुचु सव्य दक्षिण मंडल भ्रमणमुलनु सिंह चंक्रमणमुलनु

ते. गदिसि पायुचु बासि डग्गरुचु मिटि
कॅगसि क्रुंगुचु ग्रुंकि वे यॅगसि भूमि
वगुल नार्चि छटच्छटोद्भट महोग्र
घन गदा घट्टन ध्वनि गगन मगल ॥ 733 ॥

व. पोरनंत ॥ 734 ॥

म. गद सारिंचि जरातनूभवुडु हुंकार प्रघोषंबुल
जदलल्लाडग बाद घट्टनमुलन् सर्वंसहाभागमुं
गदलन वायुजु वेसॆ वेय नतडुग्रक्रोधदीप्तास्युडै
यदि तप्पिंचि विरोधिमस्तकमु वेयन् वाडु पोदट्टुचुन् ॥ 735 ॥

च. मडवक भीमसेनुडुनु मागधराजु नडगि लॆन्बुलुल्
विडिवडु लील नॉडॊरुल वीपुलु मूपुलुनुं बकोष्ठमुल्
नडितल लूरु जानु जघन प्रकरंबुलु बिटटु ब्रव्यगा
बिडुगुल बोलु पॆन्गदल बॆट्टुग वेयुचु वायुचुन् वॆसन् ॥ 736 ॥

भूमि पर ७३२ [सी.] मानो पर्वतद्वंद्व, पाथोधियुगल, मृगपतिद्वितय, वृषभयुग, पावकद्वय [तथा] दंतावलयुगल (दो हाथी) युद्ध कर रहे हों, [भीम और जरासंध] एक-दूसरे से लगकर भयंकर रूप मे एक-दूसरे के पास पहुँचकर अन्योन्य भीकर गदाहतियों से उग्र रूप में, जिससे विस्फुलिंग बिखर जायँ, विजृंभित होकर सव्य-दक्षिण मंडल भ्रमणों से, सिंह चंक्रमणों से [एक-दूसरे के] पास आकर, [ते.] [फिर] दूर होते हुए, दूर होकर फिर समीप आते हुए, आकाश पर उड़कर [फिर] नीचे धंस जाते हुए, धँसकर [फिर] ऊपर आकर, ऐसा चिल्लाकर मानों भूमि फट जाय, छटच्छटोद्भट महोग्र घन गदा घट्टन ध्वनि से मानो आकाश फट जाय ७३३ [व.] लड़ने पर ७३४ [म.] गदा को पसारकर जरा-तनूभव ने हुंकार प्रघोषों से, जिससे आकाश हिल जाय, [अपने] पाद-घट्टनों से सर्वंसहा भाग (भूमि-भाग) मानो हिल जाय, वायुज (भीम) पर फेंक दिया; ऐसा फेंक देने पर, उसके उग्र क्रोध-दीप्तास्य बनकर, उससे हटकर विरोधि-मस्तक पर डालने पर वह ७३५ [च.] विमुख न होकर भीमसेन ने भी मागध राजा से लगकर जैसे बाघ लड़ते हों, एक-दूसरे की पीठ को, स्कंधों को, प्रकोष्ठों (कलाई) को, सिर, ऊरु, जानु और जघन-प्रकर को जिससे वे टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ, बिजलियों के समान, बड़ी-बड़ी गदाओं से ज़ोर से मारते और दौड़ते हुए,

लय. वॆडगडरु पॆन्गदलु पॊडि पॊडिग दाक वॆनु
विड्डुगुलवनि दॊरग नुड्डुगणमु रालन्
मिड्डुगुरुलु पॊरि जदल नडर हरिवंतमुलु
वडक जडधुल् गलग बुडमि चलियिपन्
वॆडचरुव मॊत्तियुनु वडबडग नॊत्तियुनु
नॆडमगुड्लाचि तिरुगुडु वडग व्रेयन्
वडवड वडंकुचुनु सुडि वडक डासि चल-
मुड्डुगकपुडॊडॊरुलु वडि चॆडक पोरन् ॥ 737 ॥

व. इव्विधंबुन वोरुचुंड नॊडॊरुल गदा दंडंबुलु दुमुरलैनं बॆंडुवडक समद दिग्वेदंड शुंडादंड मंडित प्रचंडंबुलगु बाहुदंडंबुलप्पळिंचि मुष्टियुद्धंबुनकु डग्गरि ॥ 738 ॥

लय. काल वॆस डाचियुनु गीलॆडल द्रोचियुनु
वालुमुलु दूल वॆड केल वडि व्रेयन्
फालमुलु गक्षमुलु तालुवुलु वक्षमुलु
व्रील नॆमुकल् मॆवडु नेल दुमुरे वे
राल विपुल क्षत विलोलमगु नॆत्तुरुलु
जालुगॊनि योलि वॆनु गालुवलुगं बे-
ताल मदभूतमुलु खेलनल जेतुलनु
दाळमुलु तट्टुचु सलील गति नाडन् ॥ 739 ॥

शीघ्र ७३६ [लय.] बड़ी-बड़ी गदाओं को चूर्ण-चूर्ण करते हुए, अवनि पर बड़ी बिजलियों के गिरने पर, उडुगण के झड़ने पर, आकाश पर अग्नि-कणों के अच्छी तरह प्रकाशमान होने पर, हरि-दंतों के कंपित होने पर, जलधियों (समुद्रों) के अस्त-व्यस्त होने पर, पृथ्वी के चंचल होने पर, विना घबराहट के एक-दूसरे से लग जाने पर, एक-दूसरे से लगकर एक-दूसरे के ऊपर अस्त्रों को फेंक देने पर, अधिक कंपित होने पर भी लड़ते हुए, कंपित होते हुए विना थके एक-दूसरे से लगकर, वेग को न खोकर तब एक-दूसरे के साथ, अपनी शीघ्रता को न खोकर लड़ने पर ७३७ [व.] इस प्रकार लड़ते समय एक-दूसरे के गदादंडों के टुकड़े-टुकड़े होने पर बलहीन न होकर समद-दिक्-वेदंड (गज)-शुंडा-दंड समान मंडित-प्रचंड होनेवाले बाहुदंडों को स्पर्श करके मुष्टि युद्ध के लिए समीप आकर ७३८ [लय.] पैरों से रौंदकर, संधियों को तोड़कर जिससे धैर्य छूट जाय, बायें हाथ से मारने पर, फाल, कक्ष, तालु और वक्ष के फट जाने पर, मस्तिष्क के भग्न होकर नीचे झुकने पर, विपुल क्षत-विलोल-रक्त-नहरों के प्रवाहमान होने से बेताल जैसे मस्त भूतों के तालियाँ बजाते हुए, लीला से खेलने पर ७३९ [उ.] पार्श्व, गाल और

उ. प्रक्कलु चॅक्कुलन् मॅडलु पाणितलंबुलचे वगुल्चुचुन्
मुक्कुलु नक्कुलं जॅवुलु मुष्टि हतिन् नलियंग ग्रुद्दुचुन्
डॉक्कलु बिक्कलुन् घन कठोर पदाहति नॉचुचुन् नॅरुल्
दक्कक स्रुक्ककॉडॉरुल दार्कॉनि पेर्कॉनि पोरिरुग्रतन् ॥ 740 ॥

उ. हुम्मनि म्रोगुचुं बॅलुच हुंकृतुलिच्चुचु बासि डासि को-
कॉम्मनुचु न्नॉडळ्ळगल गुल्लल तित्तुलुगा बदंबुलं
ग्रुम्मुचु मुष्ठि घट्टनल स्रुक्कुचु नूर्पुलु संदडिपगा
सॉम्मलु वोवुचुं दॅलियुचुन् मदि जेवयु लावु जूपुचुन् ॥ 741 ॥

व. इव्विधंबुन वज्रि वज्र सन्निभंबुलगु नितरेतर मुष्टि घट्टनंबुल भिन्नांगुलै रक्त सिक्त शरीरंबुलतोडं बुष्पिताशोकंबुल वीकनु, जेगुरु गॉंडल चंदंबुननु जूपट्टि पोरुचुंड, गृष्णुंडु जरासंधुनि जन्म मरण प्रकारंबु लात्म नॅरुंगुटं जेसि वायु-तनूभवुन कलयिक लेक लावुनु जेवयु गलुगु नट्लुगा दद्गात्रंबुनंदु दन दिव्य तेजंबु निलिपि यरि निरसनोपायंबूहिंचि समीर-नंदनुंडु सूचुचुंड नॉक्क शाखाग्रंबु रॅंडुगा जीरि वेचि वानि नट्ल चीरि चंपु मनि संज्ञगा जूपिन नतंडु नाकोलु दॅलिसि यवक्र पराक्रमुंडै मागधुं बड द्रोचि वानि पदंबु पदंबुन द्रॉक्कि बाहु युगळंबुन रॅंडव पदंबु गदलकुंडं बट्टि मस्तक पर्यंतंबु बॅळपॅळ यनु चप्पुळ्ळुप्पतिल्ल मत्त दंतावळंबु ताळ वृक्षंबु

गर्दन को पाणितलों से तोड़ते हुए, नाक, वक्ष और कानों को मुष्टियों से घूँस देते हुए, पेट और पैर को घन कठोर पदाहति से पीटते हुए, क्रम को न छोड़कर [या] न थककर एक-दूसरे सें लगकर उग्र रूप से लड़े। ७४० [उ.] हुंकार करते हुए, जोर से चिल्लाते हुए, समीप आते हुए और दूर जाते हुए, अप्रमत्त रहने की चेतावनी देते हुए, शरीर में रहनेवाले खाली प्रदेशों को खाल के समान पाँवों से ठुकराते हुए और मुष्टि-घट्टनों से थकाकर जोर से साँस छोड़ने पर, संज्ञाहीन बनकर फिर सचेत होते हुए और मन में उत्साह को बढ़ाते हुए ७४१ [व.] इस प्रकार जब [वे] वज्रि वज्र सन्निभ होनेवाले इतरेतर मुष्टि-घट्टनों से भिन्नांग होकर रक्तसिक्त शरीरों से पुष्पित अशोकों की तरह [और] लाक्षाराग के पर्वतों की तरह दिखाई पड़ते हुए लड़ रहे थे। कृष्ण ने जरासंध के जन्म और मरण के प्रकारों को आत्मा में जानने के कारण वायुतनूभव के गात्र (शरीर) में अपने दिव्य तेज को भर दिया ताकि वह (भीम) न थक जाय [तथा उसे] बल और स्फूर्ति मिल सके। [इसके अलावा] अरि के निरसन [मरना] के उपाय को सोचकर, समीर-नंदन के देखते समय एक शाखाग्र को दो टुकड़ों में चीरकर [भीम को] संकेत किया कि उस (जरासंध) को भी वैसे ही चीरकर मार डालो; भीम ने वह रहस्य जानकर अवक्र पराक्रम से मागध को ढकेल करके उसके पाँव

चीरु चंदंबुन, वाद जानु जंघोरुकटि मध्योदरांस कर्ण नयनंबुलु वेरु वेरु भागंबुलुगा व्रय्यलु वापि यार्चिन पौरजनंबुलु गनुंगोनि भयाकुलुलै हाहाकारंबुलु सेसिरंत ॥ 742 ॥

कं. अनिलजुनि देवपति नं-
वनुडुनु पद्माक्षुडुनु नुदारत नालि-
गनमुलु सेसि पराक्रम-
मुन नद्भुतमंदि मोदमुन पौगडिरौगिन् ॥ 743 ॥

कारागृह विमुक्तुलगु राजुलु श्रीकृष्णुनि स्तुतिचुट

कं. वनजाक्षुडंत गरुणा, -वन निधियुनु भक्त लोकवत्सलुडुनु गा-
वुन मागधसुतु सहदे, -वुनि पट्टमु गट्टि दन्महोन्नत पदविन् ॥ 744 ॥

कं. मगधाधिनाथुनकु मु, -न्नगपडि चेरसाललनु महादुःखमुलन्
नौगुलुचु दन पादांबुज, -युगळमु र्जितिचुचुन्न युर्वीश्वरुलन् ॥ 745 ॥

व. अय्यवसरंबुन गृष्णुंडु दन दिव्य चित्तंबुन मगधराज-निरुद्धुल मरुव नवधरिपक चेरलु विडिपिंचिन ।

को [अपने] पाँव से दवाकर वाहुयुगल से दूसरे पाँव को ऐसे पकड़कर कि वह हिल न जाय, मस्तक पर्यंत ऐसे चीर डाला जिससे मेघगर्जन की तरह गर्जन ध्वनियाँ पैदा हो जायँ, मत्त दंतावल जैसे ताल वृक्ष को चीर डालता है, पाद, जानु, जंघ, ऊरु, कटिमध्य, उदर, अंस, कर्ण [और] नयनों को अलग-अलग भागों में टुकड़े-टुकड़े करके मार डाला तो पौर जनों ने [यह] देखकर [और] भयाकुल बनकर हाहाकार किए; तब ७४२ [कं.] अनिलज (भीम) से देवपतिनंदन और पद्माक्ष ने उदारता के साथ आलिंगन करके और उसके पराक्रम से आश्चर्यचकित बनकर संतोष से उसकी प्रशंसा की। ७४३

कारागार से विमुक्त राजाओं का श्रीकृष्ण की स्तुति करना

[कं.] तब वनजाक्ष ने करुणावन की निधि और भक्त-लोकवत्सल होने के कारण मागध के सुत सहदेव को राजा बनाकर उसे महान उन्नत पद पर बिठाया। ७४४ [कं.] पहले मगध के अधिनाथ के वश होकर क़ैद में महान् दुःखों का अनुभव करनेवालों और अपने पादांबुज युगल का स्मरण करनेवाले मगधराज (जरासंध) से रोके हुए राजाओं को ७४५ [व.] उस अवसर पर कृष्ण ने अपने दिव्य चित्त में न भूलकर उन्हें छुड़ाया तो,

अध्यायमु—७३

व. वारलु बॅंद्दकालंबु कारागृहंबुन वॅक्कु बाधलंबडि कृशीभूत शरीरुलगुटं जेसि रक्त मांस शून्यंबुलै त्वगस्थिमात्रावशिष्टंबुलु धूळि धूसरंबुलुनैन देहंबुलु गलिगि केश पाशंबुलु मासि जटाबंधंबुलैन शिरंबुलतो मलिन वस्त्रुलै चनुदेंचि यप्पुडु ॥ 746 ॥

सी. नवपद्मलोचनु भवबंधमोचनु भरित शुभाकारु दुरित दूरु
कंकण केयूरु कांचन मंजीरु विविध शोभितभूषु विगत दोषु
पन्नगांतक वाहु भक्त महोत्साहु नतचंद्र जूटु नुन्नत किरीटु
हरि नील निभ कायु वर पीत कौशेयु गटिसूत्रधारु जगद्विहारु

ते. हार वनमालिका महितोरु वक्षु
शंख चक्र गदा पद्म शाङ्र्गहस्तु
ललित श्रीवत्स शोभित लक्षणांगु
सुभग चारित्रु देवकीसुतुनि गांचि ॥ 747 ॥

च. भरित मुदात्मुलै विगत बंधनुलै निजमस्तमुल मुरा-
सुररिपु पादपद्ममुलु सोकग जागिलि म्रॊक्कि नम्रुलै
करमुलु मोड्चि यो परम कारुणिकोत्तम ! सज्जनार्ति सं-
हरण ! विवेकशील ! महिताश्रित-पोषण ! पाप-शोषणा ! ॥ 748 ॥

अध्याय—७३

[व.] उनके अधिक काल तक कारागृह में अनेक बाधाओं को सहकर कृशीभूत-शरीरी होने से रक्त-मांस-शून्य बनकर, त्वक्-अस्थि मात्रावशिष्ट और धूलि-धूसरित देहों के साथ, केश-पाशों के मलिन होने पर जटाबंध-युक्त शिरों से तथा मलिन वस्त्रों से आकर तब ७४६ [सी.] नव पद्म-लोचन वाले, भवबंध-मोचन करनेवाले, भरित शुभाकारवाले, दुरितों को दूर (करनेवाले), कंकण-केयूर [और] कांचन मंजीर [धारण करनेवाले] विविध भूषणों से शोभित [धारण करनेवाले], विगतदोषी, पन्नगांतक वाहन [वाले], भक्त महोत्साही, नत चक्र जूटी, उन्नतकिरीटी, हरि नील निभकाय [वाले], वरपीत कौशेय वाले, कटिसूत्रधारी, जगद्विहारी, [ते.] वन मालिका हार [से] महित उस वक्ष [वाले] शंख-चक्र-गदा-पद्म-शार्ङ्ग-हस्त [वाले], ललित श्रीवत्स शोभित लक्षणांग [वाले], सुभग चरित्रवाले [और] देवकीसुत को देखकर ७४७ [च.] भरित मुदात्मा [और] विगत बंधन [वाले] बनकर, इस प्रकार प्रणाम करके जिससे निज मस्तक मुरासुर रिपुपाद-पद्मों का स्पर्श करें, नम्र बनकर, कर (हस्त)

आ. वरद! पद्मनाभ! हरि! कृष्ण! गोविंद!, दास दुःखनाश! वासुदेव!
यव्ययाप्रमेय ! यनिशंबु गावितु, यिंदिरेश ! नीकु वंदनमुलु ॥ 749 ॥

उ. धीर विचार ! मम्मु भवदीय पदाश्रयुलन् जरासुतो-
दार निबंधनोग्र परितापमु नी करुणावलोकना-
सारमु चेत नार्चितिवि सज्जन रक्षयु दुष्ट शिक्षयु-
न्नारय नीकु गार्यमुलु यादव वंशपयोधि चंद्रमा ! ॥ 750 ॥

सी. अवधरिंपुमु मागधाधीश्वरुडु माकु वरम बंधुडु गानि पगर गाडु
प्रकटित राज्य वैभव मदांधीभूत चेतस्कुलमु मम्मु जेप्पनेल
कमनीय जल तरंगमुल कैवडि दीप शिख बोलें जूड नस्थिरमुलैन
गुरु संपदलु नम्मि परसाधन क्रियागममेदि तद्बाधकंबुलगुचु

ते. बरगु नन्योन्य वैरानुबंधमुलनु
ब्रजल गारिंचुचुनु दुष्ट भाव चित्त-
लगुचु नासन्न मृत्यु भयंबु दक्कि
मत्तुलै तिरुगुदुरु दुर्मनुजुलंत ॥ 751 ॥

च. कडपटि सेत नैहिक सुखंबुल गोल्पडि रित्त कोर्कि वें-
बडि वडि येंड मावुलनु बालिशुलै सलिलाश डायुचुं

जोड़कर, "ओ परम कारुणिकोत्तम ! सज्जन आर्ति संहरण [करने वाले] ! विवेकशील ! महित आश्रित पोषण करनेवाले ! [तथा] पाप-शोषण [करनेवाले] ७४८ [आ.] वरद ! पद्मनाभ ! हरि ! कृष्ण, गोविंद ! दास-दुःख-नाश [करनेवाले] ! वासुदेव ! अव्यय ! अप्रमेय ! इंदिरेश ! अनिश ! [सदा] तुम्हें [हम] वंदन करेंगे। ७४९ [उ.] [हे] धीर विचार वाले ! हे यादववंशपयोधिचंद्र ! भवदीय पदाश्रयी होनेवाले हमारे जरा-सुत के उदारनिबंधन के उग्र परिताप को [तुमने] अपने करुणावलोकन-सार से दूर कर दिया; सज्जन-रक्षा [और] दुष्ट-शिक्षण (दंड देना) करना, देखने पर, तुम्हारे कार्य हैं। ७५० [सी.] सुन लो ! मागधाधीश्वर हमारे परम बंधु है। लेकिन शत्रु नहीं है। [हम] प्रकटित राज्य-वैभव-मदांधी-भूत-चेतस्क है; अपने बारे में क्यों कहें ? कमनीय जलतरंगों की तरह, दीप-शिखा की तरह, देखने पर अस्थिर गुरु (बड़ी) संपदाओं पर बिश्वास करके परसाधन-क्रियागम क्या है ? [ते.] तद्बाधक होते हुए रहनेवाले अन्योन्य बैरानुबंधों से प्रजा को बाधित करते हुए, दुष्ट भाव युक्त चित्त होते हुए, आसन्न मृत्यु-भय को छोड़कर सब दुर्मनुज मत्त बनकर घूमते-फिरते है। ७५१ [च.] हे रमेश ! त्रिलोकशरण्य ! माधव ! आखिरी कार्य से ऐहिक सुखों को छोड़कर रिक्त (फल-रहित) इच्छाओं के पीछे पड़कर, मूर्ख बनकर, मृगतृष्णाओं में सलिल की आशा से जाकर

जंडु मनुजुल भवाब्धि दरि जेरगलेक नशितुरट्टि या
यिड्डमल बोंद जालमु रमेश ! त्रिलोक-शरण्य ! माधवा ! ॥ 752 ॥

उ. वेदवधूशिरोमहित वीथुल जाल नलंकरिंचु मी
पाद सरोज युग्ममु शुभस्थिति मा हृदयंबुलंदु नि-
त्योदित भक्तिमै दगिलि युंडु नुपाय मेरुंगबल्कु दा
मोदर ! भक्त दुर्भव पयोनिधि तारण ! सृष्टि कारणा ! ॥ 753 ॥

कं. अनि तनु शरणमु वेडिन
जननाथुल वलनु सूचि सदमल भक्ता-
वन चरितुडु पंकज-लो-
चनु डिट्लनु वारि तोड सदयामतियै ॥ 754 ॥

च. जनपतुलार ! मीपलुकु सत्यमु राज्य मदांध चित्तुलै
घनमुग विप्रुलं बजल गारिय बेट्टुट जेसि कादे वे-
न नहुष रावणार्जुनुलु नाशमु नोंदिरि कान धर्म पा-
लनमुन गाक निल्चुनें कुलंबु बलंबु जिरायुरुन्नतुल् ॥ 755 ॥

व. अदि गावुन मी मनंबुल देहंबनित्यंबुगा दलिसि ॥ 756 ॥

उ. मीरलु धर्ममुं दगवु मेरयु दप्पक भूजनालि पें-
पारग सौख्य संपदल नंदग ब्रोचुचु भूरि यज्ञमुल्
गौरव वृत्ति मत्परमुगा नोनरिंचुचु मामकांघ्रि पं-
केरुहमुल् भजिंचुचु नकिल्बिषुलै चरियिंपुडिम्मुलन् ॥ 757 ॥

बिगड़नेवाले मनुज-भवाब्धि को पार न सककर नाश हो जाते हैं; ऐसी बाधाओं को हम नहीं सह सकते। ७५२ [उ.] [हे] दामोदर ! [हे] भक्त-दुर्भव-पयोनिधि-तारण ! [हे] सृष्टि [के] कारण ! वेद-वधू-शिरो-महित वीथियों को अधिक अलंकृत करनेवाला आपका पाद-सरोज-युग्म शुभ स्थिति देनेवाला है; ऐसा उपाय बतलाइए जिससे वह (पाद-युग्म) हमारे हृदयों में नित्योदित भक्ति-सहित लगा रहे।" ७५३ [कं.] इस प्रकार शरण की इच्छा प्रकट करने पर [उन] जननाथों को देखकर सदमल भक्तावन चरितवाले [और] पंकजलोचन ने सदयामति बनकर उनसे इस प्रकार कहा। ७५४ [च.] "हे जनपतियो ! तुम्हारी बात सच है। राज्यमदांध चित्त [वाले] बनकर विप्रों [और] प्रजा को पीड़ित करके ही वेन, नहुष, रावण [और कार्तवीर्य] अर्जुन का नाश हुआ था। इसलिए धर्मपालन के बिना कुल, बल, चिरायु और उन्नति कहीं टिक सकती हैं ? ७५५ [व.] इसलिए [तुम लोग] अपने मनों में यह जानकर कि देह अनित्य है ७५६ [उ.] तुम लोग धर्म [और] न्याय की सीमा पार न कर, भू-जनावलि की रक्षा करते हुए जिससे वे अधिक सुख और संपदा

व. अट्लयिन मीरलु ब्रह्मसायुज्य प्राप्तुलय्येदरु, मदीय पादारविंदंबुलंदु जलिपनि भक्तियु गलुगुननि यानतिच्चि या राजवरुल मंगळस्नानंबुलु सेयिंचि विविध मणिभूषण मृदुलांबर माल्यानुलेपनंबु लोसंगि भोजन तांबूलंबुलं बरितृप्तुलं जेसि युन्नत रथाश्व सामजाधिरूढुलं गाविंचि निज राज्यंबुलकु बूज्युलं चेसि यनिचिन ॥ 758 ॥

कं. नरवरुली चंदंबुन
मुरसंहरु चेत बंधमोक्षणुलै सु-
स्थिर हर्षंबुलतो निज
पुरमुलकुं जनिरि शुभ विभूति दलिर्पन् ॥ 759 ॥

कं. हरिमंगळ गुण कीर्तन, निरतमु गाविंचुचुनु विनिर्मल मतुलै
गुरुबंधु पुत्र जाया, परिजन मलरंग गृष्ण् बद्मदळाक्षुन् ॥ 760 ॥

व. बहु प्रकारंबुलं बॊगडुचु दमतम देशंबुलकुं जनि ॥ 761 ॥

कं. नळिनदळ लोचनुडु वमु
दॆलिपिन सद्धर्म पद्धतिनि दगवरुलै
यिल परिपालिंचुचु सुख-
मुल नुंडिरि महित निज विभुत्वमु ललरन् ॥ 762 ॥

व. इट्लु कृष्णुंडु जरासंध वधंबुनु, राजलोकंबुनकु बंध मोक्षंबुनु गाविंचि वायुनंदन वासवतनयुलुं दानुनु जरासंध तनयुंडगु सहदेवुंडु सेयु विविधंबुलगु

को पावें, मत्पर होकर गौरव वृत्ति से भूरि यज्ञ करते हुए [तथा] मामक अंघ्रि पंकेरुहों की पूजा करते हुए अकिल्बिष बनकर चलते रहो। ७५७ [व.] ऐसा होने से आप लोग ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करेंगे [और] मदीय पादारविंदों में अचंचल भक्ति बनी रहेगी।" इस प्रकार आज्ञा देकर उन राजवरों से मंगल स्नान कराकर, विविध मणिभूषण-मृदुल-अंबर, माल्य [तथा] अनुलेपन देकर, भोजन [और] तांबूलों से परितृप्त बनाकर, उन्नत रथ, अश्व [और] सामजों (हाथियों) पर अधिरूढ़ बनाकर निज राज्यों में पूज्य बनाकर भेज देने पर ७५८ [कं.] नरवर इस प्रकार मुर-संहर के द्वारा बंध-मोक्षण [वाले] बनकर सुस्थिर हर्ष से निज पुरों में चले गये ताकि शुभ विभूति का अतिशय हो। ७५९ [कं.] हरि [का] निरत मंगल-गुण-कीर्तन करते हुए, विनिर्मल मतिवाले बनकर गुरु, बंधु, पुत्र, जाया [और] परिजनों के साथ पद्म-दलाक्ष कृष्ण की ७६० [व.] बहु प्रकार से स्तुति करते हुए अपने-अपने देशों में जाकर ७६१ [कं.] नलिन-दल-लोचन [वाले] ने उनको जिस सद्धर्म पद्धति को बतलाया, न्यायी बनकर इस भूमि पर उसका पालन करते हुए सुखी रहे ताकि महित निज विभुता की वृद्धि हो जाय। ७६२ [व.] इस प्रकार कृष्ण के जरासंध का वधकर,

पूजलु गैकोनि यतनि नुंड नियमिंचि यच्चोटु गदलि कतिपय प्रयाणंबुल निंद्रप्रस्थपुरंबुनकुं जनुदेंचि तद्द्वार प्रदेशंबुन विजय शंखमुलु पूरिंचिन प्रतिपक्ष भयदंबुनु बांधव प्रमोदंबुनु नगु नम्महाघोषंबु विनि पौरजनंबुलु जरातनयु मरणंबु निश्चयिंचि संतसिल्लिरि। वारिजाक्षुंडुनु भीमसेन पार्थुलतो बुरंबु प्रवेशिंचि धर्मनंदनुनकु वंदनंबाचरिंचि तम पोयिन तेरंगुनु नच्चट जरासंधुनि वधियिंचिन प्रकारंबुनु सविस्तरंबुगा नेरिंगिंचिन नतंडु विस्मय विकच लोचनंबुल नानंदबाष्पंबुलु गुरिय नम्माधवु माहात्म्यंबुनकुं दमयंदलि भक्ति स्नेह दयादि गुणंबुलकुं बरितोषंबु नोंदुचु गृष्णुनि जूचि यिट्लनियें ॥ 763 ॥

अध्यायमु—७४

सी. कमलाक्ष! सर्वलोकमुलकु गुरुडवै तेजरिल्लेडु भवदीय मूर्ति यंशांश संभवुलगु लोकपालुरु नीयाज्ञ दलमोचि निखिल भुवन परिपाल निपुणुले भासिल्लु चुन्नवारट्टि नी कोक नृपुनाज्ञ सेयु-टरय नी मायगाकदि निक्कमे येकमै यद्वितीयमै यव्ययंबु-

---

राजलोक के लिए बंध-मोक्षण करके, वायुनंदन, वासवतनय [और] स्वयं, जरासंध के तनय [होनेवाले] सहदेव के द्वारा की गई विविध पूजाओं को स्वीकार करके उसको वहाँ रहने की आज्ञा देकर, वहाँ से चलकर कतिपय प्रयाणों में इन्द्रप्रस्थपुर में आकर, तद्द्वार प्रदेश पर विजयशंखों को बजाने पर, प्रतिपक्ष-भयद [और] बांधव-प्रमोद होनेवाले उस महाघोष को सुनकर पौरजन यह निश्चय करके कि जरातनय का मरण हो गया है, संतुष्ट हुए। वारिजाक्ष के भीमसेन [तथा] पार्थ के साथ पुर में प्रवेश करके धर्मनंदन की वंदना करके अपने जाने का विधान [और] वहाँ जरासंध का वध करने का प्रकार सविस्तर समझाने पर उसने विस्मय विकच लोचनों से आनंद-बाष्पों के बरसने पर उस माधव के माहात्म्य के लिए [और] उनके ऊपर रहनेवाले भक्ति, स्नेह, दया आदि गुणों के लिए परितोष पाते हुए, कृष्ण को देखकर इस प्रकार कहा। ७६३

अध्याय—७४

[सी.] "हे कमलाक्ष! सर्वलोकों के गुरु बनकर प्रकाशमान होने वाली भवदीय मूर्ति के अंशांश से संभूत लोकपाल तुम्हारी आज्ञा को शिरसा वहन करके, निखिल भुवन-परिपाल-निपुण बनकर प्रकाशमान हो रहे हैं। ऐसे तुमको एक नृप का आज्ञा देना देखने पर तुम्हारी माया नहीं है तो फिर क्या यह सत्य है? एक अद्वितीय और अव्यय होनेवाले

ते. नेन नी तेजमुन कोंक हानि गलदे ?
चिन्मयाकार ! नी पाद सेवकुलकु
नात्म पर भेद बुद्धि येंदैन गलदे ?
पुंडरीकाक्ष ! गोविंद ! भुवनरक्ष ! ॥ 764 ॥

धर्मराजु चेसेंडु राजसूयंबुनंदु श्रीकृष्णुंडु शिशुपालुनि वधियिंचुट

व. अनि गोविंदुनि बोंगडि यद्देवु ननुमतंबुनं गुंती सुताग्रजुंडु परतत्त्व विज्ञानुलैन धरणीसुरुलनु ऋत्विजुलं गाविंचि ॥ 765 ॥

सी. सात्यवतेय कश्यप भरद्वाजोपहूति विश्वामित्र वीतिहोत्र
मैत्रेय पैल सुमंतु मधुच्छंद गौतम सुमति भार्गव वसिष्ठ
वामदेवाकृत व्रण कण्व जैमिनि धौम्य पराशराथर्व कवषु
लसित वैशंपायनासुरि भार्गव क्रतु वीरसेन गर्ग त्रिकव्य

आ. मुख्युलैन परम मुनुलनु गृपुनि गां-
गेय कुंभजांबिकेय विदुर
कुरु कुमार बंधुकुल वृद्ध धारुणी-
सुर नरेंद्र वैश्य शूद्रवरुल ॥ 766 ॥

कं. रप्पिपवारु हर्षमु, -लुप्पतिलग नेगुदेंचि युचित क्रियलं
दप्पक कनुगोनुचुंडग, नप्पुडु विध्युक्त नियतुलै भूमिसुरुल् ॥ 767 ॥

[ते.] तुम्हारे तेज की कोई हानि है ? हे चिन्मयाकार ! हे पुंडरीकाक्ष ! गोविंद ! भुवनरक्षक ! तुम्हारे पद (चरण)-सेवकों को कहीं आत्म (स्व)-पर भेद बुद्धि होती है ?" ७६४

धर्मराज से किये जानेवाले राजसूय में श्रीकृष्ण का शिशुपाल का वध करना

[व.] इस प्रकार गोविंद की प्रशंसा करके उस देव की अनुमति से कुंतीसुताग्रज पर तत्त्वविज्ञानी होनेवाले धरणीसुरों को ऋत्विक् बनाकर ७६५ [सी.] सात्यवतेय, कश्यप, भरद्वाज, उपहूति, विश्वामित्र, वीतिहोत्र, मैत्रेय, पैल, सुमंत, मधुच्छंद, गौतम, सुमति, भार्गव, वसिष्ठ, वामदेव, आकृत, व्रण, कण्व, जैमिनि, धौम्य, पराशर, अथर्व, कवषु, लसित, वैशंपायन, असुरि, भार्गव, क्रतु, वीरसेन, गर्ग, त्रिकव्य [आ.] मुख्य (आदि) परम(श्रेष्ठ)मुनियों को, कृप को, गांगेय, कुंभज, आंबिकेय, विदुर, कुरुकुमार, बंधु कुल वृद्ध धारुणीसुर नरेंद्र, वैश्य [तथा] शूद्रवरों को ७६६ [कं.] बुलवाने पर वे अमित हर्षातिरेक से आकर उचित क्रियाओं से श्रद्धा से देखते रहे तो भूमिसुर विध्युक्त नियत बनकर ७६७ [आ.] प्रयत्न-

आ. कडगि सवन भूमि गनक लांगलमुल
नर्थि दुन्नि पांडवाग्रजुनकु
नचट दीक्ष चेसि यंचित स्वर्णम-
योपकरणमुल नलोपमुगनु ॥ 768 ॥

व. इट्लु नियमंबुन समुचित क्रियाकलापंबुलु नडुपुचुंडिरप्पुडु ॥ 769 ॥

कं. सकलावनीशु लिच्चिन
यकलंक सुवर्ण रत्न हय धन वस्त्र
प्रकरंबुलु गौंदलगु का-
नुकलंदुकोनन् सुयोधनुनि नियमिंचेन् ॥ 770 ॥

सी. अर्थिजातमु गोरिनट्टि वस्तुवुलेल्ल दगवंचि यिडग राधातनूजु
सरसान्नपानादि सकल पदार्थमुल् पाकमुल् सेयिप बवन तनयु
बंकजोदरु नौद्द बायक परिचर्य दविलि काविप वासव तनूजु
सवन निमित्तंबु संचित द्रव्यंबु बेंपुतो वेग दॆप्पिप नकुलु

ते. देव गुरु वृद्ध धात्री सुरावलुलनु
नरसि पूजिप सहदेवु नखिल जनुल
बोलुचु मृष्टान्नततुल दृप्तुलनु जेय
द्रौपदिनि नियोगिंचेनु धर्मसुतुडु ॥ 771 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 772 ॥

पूर्वक सवन (यज्ञ) भूमि को कनक-लांगूलों (-हलों) से अर्थि से जोतकर-अंचित स्वर्णमय उपकरणों से बिना किसी लोप के पांडवाग्रज को वहाँ दीक्षित करके ७६८ [व.] इस प्रकार नियम से समुचिन क्रिया-कलाप चला रहे थे। तब ७६९ [कं.] सकल अवनीशों के लाकर दिए गये अकलंक सुवर्ण, रत्न, हय, धन, वस्त्र-प्रकर (समूह) आदि भेंटों को स्वीकृत करने के लिए सुयोधन को नियमित किया। ७७० [सी.] अर्थिजात (याचक समूह) की चाही हुई सभी वस्तुओं को ठीक-ठीक बाँट देने के लिए राधा-तनूज को, सरस अन्न-पान आदि सकल पदार्थों को पकवाने के लिए पवनतनय को, पंकजोदर के समीप लगातार लगकर परिचर्या करने के लिए वासव-तनूज को, सवन (यज्ञ) के निमित्त संचित द्रव्य को अधिक मात्रा में शीघ्र मंगाने के लिए नकुल को, [ते.] देव, गुरु, वृद्ध, धात्रीसुर आदि को जानकर उनकी पूजा करने के लिए सहदेव को [तथा] अखिल जनों को अच्छी तरह मृष्टान्नततियों से तृप्त करने के लिए द्रौपदी को धर्मसुत ने नियोजित किया। ७७१ [व.] उस अवसर पर ७७२ [च.] हरि, शिखि,

च. हरि शिखि दंडपाणि निकषात्मजपाशि समीर गुह्यके-
श्वर शशिमौळि पंकरुहसंभव चारण सिद्ध साध्य कि-
न्नर गरुडोरगामर गणंबुलु जच्चि मखंबु जूचि य-
च्चॆरुवडि तॊल्लि यॆव्वरुनु जेयु मखंबुलु नितयॊप्पुने ॥ 773 ॥

कं. अदिगाक यिंदिराविभु
पदमुलु सेविंचुनट्टि भाग्यमु गलुगन्
दुदि बडयरानि बहु सं-
पद लॊंव्वियु गलवॆ यनुचु प्रस्तुति सेयन् ॥ 774 ॥

व. अप्पुडु ॥ 775 ॥

च. अमर समानुलै तनरु याजक वर्गमु लोलि राजसू-
यमख विधान मंत्रमुल नग्निमुखंबुग जेसि धर्मजुं-
ग्रममुन वेलिपिप क्रतुराज समाप्ति दिनंबुनन् नृपो-
त्तमुडु गडंगि याजक सदस्य गुरु द्विजकोटि बेपुनन् ॥ 776 ॥

व. पूजिंचु नप्पुडंदग्र पूजार्हुलॆव्वरनि यडिगिन सदस्युलु दमकु दोचिन विधंबुलं बलुक वारि भाषणंबुलु वारिंचि विवेक शीलुंडुनु, चतुर वचन कोविदुंडुनु नगु सहदेवुंडु भगवंतुंडुनु, यदुकुल संभवुंडुनु नैन श्रीकृष्णुनि जूपि यिम्महात्मुनि संतुष्टुं जेसिन भुवनंबुलन्नियुं बरितुष्टि बॊंदुननि चॆप्पि धर्मजुं जूचि यिट्लनियॆं ॥ 777 ॥

दंडपाणि, निर्ऋति, पाशि (वरुण), समीर, कुबेर, शशिमौलि (शिव), पंकरुहसंभव (ब्रह्मा), चारण, सिद्ध, साध्य, किन्नर, गरुड़, उरग, अमर-गणों के आकर, मख (यज्ञ) को देखकर [तथा] आश्चर्यचकित होकर, "पहले किसी के किए हुए मख इस प्रकार शोभायमान रहे हैं ? (नहीं) ७७३ [कं.] इसके अतिरिक्त इंदिराविभु के पदों की सेवा करने का भाग्य मिलने पर ऐसी बहु संपदाएँ कुछ है जिनका अन्त विदित नहीं होता?" ऐसा कहते हुए प्रस्तुति करने पर ७७४ [व.] तब ७७५ [च.] अमरों के समान शोभायमान होनेवाला याजक वर्ग क्रम से राजसूय मख (यज्ञ) विधान के [अनुसार] मंत्रों से धर्मज के द्वारा अग्निमुख में क्रम के अनुसार [आहुतियों को] डलवाने पर क्रतुराज की समाप्ति के दिन पर नृपोत्तम (युधिष्ठिर) ने प्रयत्न करके याजक, सदस्य, गुरु, द्विजकोटि (समूह) की गौरव के साथ ७७६ [व.] पूजा करते समय "उनमें अग्र पूजा [के] अर्ह कौन है ?" इस प्रकार पूछने पर, सदस्यों के अपनी बुद्धि के अनुसार कहने पर, उनके भाषणों को रोककर विवेकशील [और] चतुर-वचन-कोविद होनेवाले सहदेव ने भगवान [और] यदुकुलसंभव होनेवाले श्रीकृष्ण को दिखाकर यह कहकर कि इस महात्मा को संतुष्ट करें तो सभी भुवन

उ. कालमु देशमुन् ग्रतुवु गर्ममु गर्तयु भोक्तयुं जग-
ज्जालमु दैवमुन् गुरुवु सांख्यमु मंत्रमु नग्नियाहुतुल्
वेळलु विप्रुलुन् जनन वृद्धि लयंबुल हेतु भूतमुल्
लीललु दानयै तग वॆलिंगॆडु नॆक्कटि तेजमीशुडुन् ॥ 778 ॥

च. इतडॆ यितंडु गन्नुलोकयिचुक मोड्चिन नी चराचर
स्थित भुवनंबुलन्नियु नशिंचु नितंडवि विच्चि चूचिनन्
विततमुलै जनिंचु प्रभविष्णुडु विष्णुडु नैन यट्टि यी
क्रतु फलदुंडु गाकॊरुडॊक्कंडट्टुलर्हुडु शिष्ट पूजकुन् ? ॥ 779 ॥

उ. ई पुरुषोत्तमुन् जगदधीशु ननंतुनि सर्वशक्तु जि-
द्रूपकु नग्र पूज वरितोषितु जेय समस्त लोकमुल्
वे परितुष्टि बॊंदु बृथिवीवर ! कावुन नीवु कृष्णुनिन्
श्रीपति बूज सेयुमॆड सेयक माटलु वेयु नेटिकिन् ? ॥ 780 ॥

कं. अनि सहदेवुडु पलिकिन
विनि यच्चटि जनुलु मनुज विभुलुनु ऋषुलुन्
मुनुकॊनि मनमुल मोदमु
दनुकग निदि लॆस्स यनिरि धर्मजुडंतन् ॥ 781 ॥

परितुष्टि को पायेगे, धर्मज को देखकर इस प्रकार कहा। ७७७ [उ.] "काल, देश, क्रतु, कर्म, कर्ता, भोक्ता, जगज्जाल, दैव, गुरु, सांख्य, मंत्र, अग्नि, आहुतियाँ, काल (समय), विप्र, जनन, वृद्धि [और] लय के हेतुभूत [होनेवाली] लीलाएँ वह स्वय बनकर, बहुत प्रकाशमान होनेवाला एकैक तेज [और] ईश भी ७७८ [च.] यही है; अगर यह [अपनी] आँखों को किंचित् मूंद लेता तो इन समस्त-चराचर स्थित वाले सभी भुवनों का नाश होगा; अगर यह उनको [आँखों को] खोलकर देखता तो वितत (अधिक) होकर जन्म लेते। प्रभविष्णु [और] विष्णु होनेवाले इस क्रतु-फलद के अतिरिक्त शिष्ट-पूजा के लिए अन्य कोई अर्ह बन सकता है? ७७९ [उ.] हे पृथिवीवर! इस पुरुषोत्तम को, जगदधीश को, अनंत को, सर्वशक्त को, चिद्रूप को अग्रपूजा से परितुष्ट करने पर समस्त लोक शीघ्र परितुष्ट हो जायेंगे। इसलिए तुम कृष्ण की- श्रीपति की पूजा करो। [इन बातों को] दूर न करो। अनेक बातें क्यों?" ७८० [कं.] इस प्रकार सहदेव के बोलने पर [उनको] सुनकर वहाँ के जनों, मनुज-विभुओं और ऋषियों आदि ने मनों में मुद (संतोष) से भरकर कहा कि यह ठीक है; तब धर्मज ने ७८१ [कं.] मुनिजनमानस (रूपी) मधुकरों [के लिए] वनजात (कमल) होनेवाले वारिजदललोचन (कृष्ण) के पदयुगल का

कं. मुनिजन मानस मधुकर, वनजातमुलैन यट्टि वारिजदळलो-
चनुपदयुगळ प्रक्षा, -ळन मोगि गाविचि तज्जलंबुलु भक्तिन् ॥ 782 ॥

कं. तानुनु गुंतियु ननुजुलु
मानुग द्रुपदात्मजयुनु मस्तकमुल वें-
पूनिन नियति धरिंचि म-
हानंदमु बोंदिरतिशय प्रीति मेयिन् ॥ 783 ॥

कं. चंचत्कांचन रुचि रो,-दंचित वस्त्रमुल नूतनार्क प्रभलन्
मिंचिन रत्नमुलं बू, -जिचेन् धर्मजुंडु कृष्णु जिष्णु सहिष्णुन् ॥ 784 ॥

व. इट्लु पूजिंचि यानंद बाष्प जलबिंदु कंदळित नयनारविंदंबुलं गोविंदुनि सुंदराकारंबु दर्शिप जालकुंडे। नट्लु पूजितुंडै तेजरिल्लु पुंडरीकाक्षु निरीक्षिंचि हस्तंबुलु निजमस्तकंबुल धरिंचि विनुतुलु सेयुचु नखिल जनंबुलु जय जय शब्दंबु लिच्चिरि। देवतलु विविध तूर्यघोषंबुल तोडं बुष्प वर्षंबुलु गुरियिंचिरय्यवसरंबुन ॥ 785 ॥

कं. दमघोष - सुतुडु तद्विभ-
वमु सूचि सहिंपकलुक वट्रिलगा बी
ठमु डिग्गि निलिचि निजह-
स्तमुलेत्ति मनोभयंबु दविकन बाडे ॥ 786 ॥

व. अप्पुंडरीकाक्षुंडु विनुचुंड सभासदुलं जूचि यिट्लनियें ॥ 787 ॥

प्रक्षालन करके भक्ति के साथ तत् जल को क्रम से ७८२ [कं.] स्वयं, कुंती, अनुज और द्रुपदात्मजा ने भी [अपने-अपने] मस्तकों पर नियम, प्रकार धारण करके अतिशय प्रीतिपूर्वक महान आनंद को प्राप्त किया। ७८३ [कं.] धर्मज ने चंचत्-कांचन-रुचि से उदंचित वस्त्रों से [तथा] नूतन अर्क (सूरज) की प्रभाओं से बढ़कर [रहनेवाले] रत्नों से जिष्णु [और] सहिष्णु [होनेवाले] कृष्ण की पूजा की। ७८४ [व.] इस प्रकार पूजा करके आनंदबाष्प-जलबिंदु [ओं से]-कंदलित नयनारविंदों से गोविंद के सुंदराकार के दर्शन न कर सकता था। उस प्रकार पूजित होकर तेजस्वी [बननेवाले] पुंडरीकाक्ष का निरीक्षण करके (देखकर) हस्तों को निजमस्तकों पर धारण करके विनुतियाँ करते हुए अखिल जनों ने जय-जय शब्द दिए। देवताओं ने विविध तूर्यघोषों के साथ पुष्प-वर्षा बरसाई। उस अवसर पर ७८५ [कं.] दमघोष के सुत ने तत्विभव को देखकर सह न सककर, क्रोध से भरकर, पीठ (आसन) से उतरकर, खड़े रहकर, निज हस्तों को उठाकर [और] मनोभय-रहित होकर ७८६ [व.] उस पुंडरीकाक्ष के सुनते समय सभासदों को देखकर इस प्रकार कहा। ७८७

कं. चालु बुरे ! यहहा ! यी, कालमु गडपंग दुरवगाहंबगु नी-
तेला तप्पॅनु नेडी, बालकु वचनमुल चेत ब्राज्ञुल बुद्धुल् ॥ 788 ॥

व. इट्लु तप्पिन तॅरंगॅट्लनिन पात्रापात्र विवेकंबु सेय नेर्चिन विज्ञान निपुणुलु-नुन्नत सत्त्वगरिष्ठुलु बहुविध तपो व्रत नियम शीलुरु ननल्पतेजुलु महदैश्वर्य शक्ति धरुलु बरतत्त्व वेदुलु नखिल लोकपाल पूजितुलु विगत पापुलु बरम योगींद्रुलु नुंडवीरिं गैकॉनक विवेक रहितुलै गोपालबालुनि बूज सेयुटकु नॅट्लु सम्मतिंचिरि ? पुरोडाशंबु काकंबुन कर्हंबगुने ? अदियुनुं गाक ॥ 789 ॥

सी. गुरुदेव शून्युंडु कुलगोत्र रहितुंडु दलिवंड्रुलॅव्वरो तडव गान-
मप्पुल बॉरलॅडु नादि मध्यावसानंबुलं दरय मानंबु लेवु
बहुरूपियै पॅक्कु भंगुल वर्तिचु वावि वर्तनमुलु वरुस लेवु
परिकिंप विगत संबंधुंडु दलपोय मा निमित्तंबुन मानिसय्यॅ

ते. बरग मुन्नु ययाति शापमुन जेसि
वासि कॅक्कदु यी यदुवंशमॅल्ल
ब्रह्मतेजंबु नॅल्ल गोल्पडिन यितडु
ब्रह्म ऋषि सेव्युडगुनॅ गोपालकुंडु ॥ 790 ॥

[कं.] "बस ! अरे रे ! अहहा ! इस काल को बिताना दुरवगाह (कठिन) होगा। आज इस बालक के वचनों से प्राज्ञों की बुद्धियाँ [भी] नीतिवाह्य कैसे हो गईं ? ७८८ [व.] ऐसे बाह्य होने का विधान कैसा है, अगर यह पूछते हो तो सुनो— पात्र-अपात्र का विवेक कर सकनेवाले विज्ञान निपुणों, उन्नत सत्त्वगरिष्ठों, बहुविध तपोव्रतनियमशीलों, अनल्प तेजस्वियों, महदैश्वर्य शक्तिधरों, परतत्त्ववेदियों, अखिल लोकपाल-पूजितों, विगत पापियों [और] परम योगींद्रों के रहने पर उनका ध्यान न करके, विवेक-रहित बनकर गोपाल बालक की पूजा करने के लिए कैसे सम्मत हुए (अपनी स्वीकृति दी) ? क्या कहीं पुरोडाश काक (कौवे) का अर्ह हो सकता है ? इसके अतिरिक्त ७८९ [सी.] गुरु-देव-शून्य है; कुल (जाति)-गोत्र-रहित है; अन्वेषण करने पर विदित नहीं होता कि [उसके] माता-पिता कौन हैं; जल में रहता है; [उसके] आदि, मध्य और अवसान को जानने का कोई मान (प्रमाण) नहीं है; बहु रूपी बनकर अनेक प्रकार से चलता है; सगाई-संबंध कुछ नहीं हैं; देखने पर विगत संबंधी है; सोचने पर हमारे कारण मनुष्य बना; [ते.] पहले प्रसिद्ध ययाति के शाप के कारण ही है न यह सारा यदुवंश समस्त ब्रह्मतेज को खोया। सारे ब्रह्मतेज को खोया हुआ यह गोपालक ब्रह्मऋषियों का सेव्य कैसे बन सकता है ? ७९० [कं.] जार है; जन्मावधि चोर है; त्रिगुणात्मक है;

कं. जारुडु जन्मावधियुनु, जोरुडु मुप्पोकलाडु सुमहित पूजा-
चार क्रियलकु नर्हुडॆ, वारक यितडनुचु नशुभ वाक्य स्फूर्तिन् ॥ 791 ॥

च. अनि तनु दूरनाडिन मुरांतकुडा शिशुपालु वाक्यमुल्
विनि मदि जीरिकिगॊनडु विश्रुत फेरवरावमात्म गं-
कॊननि मृगेंद्ररीति मुनि कोटियु राजुलु पद्मनाभु ना-
डिन यविनीति भाषलकु डॆंदमुनं गडु वंत नॊंदुचुन् ॥ 792 ॥

उ. वीनुलु मूसिकॊंचु विन विस्मयमंचु मुकुंद माधव-
श्रीनिधि वीनि नेगतिकि जेर्चॆदॊयंचु दुरात्मु दिट्टचु-
न्नानरनाथुलुन् मुनुलु नच्चट निल्वक पोव बांडु सं-
तानमुलप्रमेय बलदर्प महोद्धत रोषचित्तुलै ॥ 793 ॥

व. अप्पुडु केकय सृंजय भूपतुलुं दामुनु विविधायुध पाणुलै यदलिच निल्चिन वाडुनुं विरुतिवक यदलिच पलुकयु वालुनुं गॆकॊनि भुजागर्व दुर्वारुडै गोविंदुनि ददनुवर्तुलैनवारलं गुपितुंडै निंदिप नम्मुकुंदुंडाग्रहंबुन लेचि तनकट्टॆदुर नॆदिर्चियुन्न शिशुपालुनि रूक्षेक्षणंबुलनीक्षिचुचु नाक्षणंब तन्मस्तकंबु निशित धारा कराळंबैन चक्रंबुन नवक्र पराक्रमुंडै रुधिरंबु

सुमहित पूजाचार क्रियाओं के लिए क्या यह अर्ह है ?" [इस प्रकार] अशुभ वाक्य स्फूर्ति से बोलता रहा। ७९१ [च.] इस प्रकार अपने को गालियाँ देने पर मुरांतक ने उस शिशुपाल के वाक्यों को सुनकर मन में [उन पर] ध्यान न दिया जैसे विश्रुत फेरव (सियार) के रव (ध्वनि) पर मृगेंद्र (सिंह) ध्यान नहीं देता; मुनि-कोटि (-समूह) और राजा [लोग] पद्मनाभ के प्रति बोली हुई अविनीति की बातों के कारण [अपने] मन में अधिक दुःखित होते हुए ७९२ [उ.] कान बन्द करते हुए, 'सुनने पर विस्मय है' कहते हुए 'मुकुंद ! माधव ! श्री निधे ! इसको किस गति को प्राप्त कराओगे' कहते हुए [और] मुनि (गणों) के वहाँ न ठहरकर जाने पर, पांडु-संतानों ने अप्रमेय बल [तथा] दर्प से महोद्धत रोष चित्त [वाले] बनकर ७९३ [व.] तब केकय, सृंजय भूपतियों [और] स्वयं के विविधायुध-पाणि बनकर [और] धमकाकर खड़े रहने पर, उसके भी धैर्य न छोड़कर [और] धमकाकर ढाल व खड्ग को लेकर, भुजागर्व से दुर्वार बनकर, गोविंद की [और] तदनुवर्ती होनेवालों की कुपित होकर निंदा करने पर, उस मुकुंद के आग्रह (क्रोध) से उठकर अपने सम्मुख सामना करते हुए रहनेवाले शिशुपाल को रूक्ष-ईक्षणों से ईक्षते (देखते) हुए उसी क्षण उसके मस्तक को, निशित धारा कराल होनेवाले चक्र से, अवक्र पराक्रमी बनकर काटने पर, जिससे रुधिर प्रवाहमान हो जाय, उस महाकल-कल को आकर्णित करके चैद्य बलों [और] तदीय पक्षचर होनेवाले भूपतियों ने संभ्रम को दिखाया।

दीरगं डुनुम नस्महाकलकलंबाकर्णिचि चैद्य बलंबुलुनु ददीयपक्ष चरुलैन भूपतुलुनु भीतुलै बऽचिरय्यवसरंबुन ।। 794 ।।

कं. मुनिवरुलुनु जनपतुलुनु, गनुगोनि वॅऽगंद जैद्यु गात्रमुनंदुं-
डनुपम तेजमु वॅलुवडि, वनजोदरु देहमंदु वडि जोच्चॅं नृपा ! ।। 795 ।।

व. अनिन मुनि वरुनकु भूवरुंडिट्लनियॅ ।। 796 ।।

कं. कमलाक्षुनि निंदिंचिन, दमघोष तनूभवुंडु दारुण मलकू-
पमुनं बोंदक येक्रिय, सुमहित मति गृष्णुनंदु जोच्चॅ मुनींद्रा ! ।। 797 ।।

व. अनिन शुकयोगि राजयोगि किट्लनियॅ ।। 798 ।।

म. मधु दैत्यांतकु मीदि मत्सरमुनन् मत्तिल्लि जन्मत्रया-
वधिनेप्रोद्दु ददीय रूपगुण दिव्यध्यान पारीण धी-
निधि यौटन् शिशुपाल भूविभुडु दानिर्धूत सर्वाघुडै
विधि रुद्रादुल कंदरानि पदविन्वे पोंदॅनुर्वीश्वरा ! ।। 799 ।।

व. अंत धर्मनंदनुंडु ऋत्विग्गणंबुलनु सदस्युलनु बहुदक्षिणलं दनिपि विविधार्चनलं बूजिंचि यवबृथ स्नान क्रिया परितोषंबुन ।। 800 ।।

सी. मुरज मृदंग गोमुख शंख डिंडिम पणवादि रवमुलंबरमु निंड
गवि सूत मागध गायक वंदिवैताळिक विनुतुलंद वॅरय
वितत मर्दळ वेणु वीणारवंबुल गतुलकु नर्तकी गतुलु सॅलग
दगळ विचित्रक ध्वजपताकांकित स्यंदन गज वाजि चयमु लॅक्कि

उस अवसर पर ७९४ [कं.] हे नृप ! मुनिवरों [और] जनपतियों के देखकर [आश्चर्य] चकित होने पर चैद्य के गात्र (शरीर) से अनुपम तेज निकलकर वेग से वनजोदर (कृष्ण) की देह में घुस गया। ७९५ [व.] ऐसा कहने पर मुनिवर से भूवर ने इस प्रकार कहा। ७९६ [कं.] हे मुनींद्र ! कमलाक्ष की निंदा करनेवाला तमघोष-तनूभव दारुण (भयंकर) मलकूप को न पाकर किस क्रिया से [प्रकार] सुमहितमति [होनेवाले] कृष्ण में घुस गया ? ७९७ [व.] इस प्रकार कहने पर शुकयोगी राजयोगी से यों बोला। ७९८ [म.] हे उर्वीश्वर ! मधु दैत्यांतक पर रहनेवाले मत्सर से मस्त बनकर तीनों जन्मों में सदा तदीय रूप-गुण-दिव्य-ध्यान-पारीण-धीनिधि होने के कारण शिशुपाल-विभु ने स्वयं निर्द्धूत (नष्ट हुए) सर्व अघ [वाला] बनकर शीघ्र-ऐसे पद को पाया जो ब्रह्मा [और] रुद्र आदि की पहुँच के बाहर है। ७९९ [व.] तब धर्मनंदन ऋत्विक् गणों [और] सदस्यों को बहु दक्षिणाओं से तृप्त करके [और] विविध अर्चनाओं से पूजा करके अवबृथ स्नान-क्रिया-परितोष में ८०० [सी.] मुरज, मृदंग, गोमुख, शंख, डिंडिम [तथा] पणव आदि के रवों (शब्दों) से अंबर (आकाश) के भर जाने पर, कवि, सूत, मागध, गायक,

ते. सुत सहोदर हित पुरोहित जनंबु
कटक केयूर हार कंकण किरीट
वस्त्रमाल्यानुलेपन व्रातमुलनु
विभवमोप्पार गैसेसि वॆडल नंत ॥ 801 ॥

व. मरियु यदु सृंजय कांभोज कुरु केकय कोसल भूपाल मुख्युलु चतुर्विध सेना समेतुलै धरणि कंपिप वॆन्नंटि नडतेर ऋत्विङ्निकायंबुनु सदस्युलनु ब्रह्म घोषंबु लॊलय मुन्निडुकॊनि शोभमानानून प्रभा भासमान सुवर्णमय मालिका दिव्य मणिहारंबुलु कंठंबुन देजरिल्ल नुन्नत जवाश्वंबुलं बून्चिन पुष्परथंबु कळत्र समेतुंडै यॆक्कि यति मनोहर विभवाभिरामुंडै चनुचुं-चुंडे। अप्पुडु वारांगना जनंबुलु तम तम वारलं गूडिकॊनि ॥ 802 ॥

सी. कनकाद्रि सानु संगत केकिनुल भाति ग्रॊम्मुळ्ळु वीपुल गुनिसियाड
दरळ ताटंकमुक्ताफलांशुद्युतुल् चॆक्कुटद्दमुलतो जॆलिमि सेय
बॊलसि यदृश्यमै पोनि क्रॊम्मॆरुगुल गतुल गटाक्ष दीधितुलु दनर
मंचुपै नॆगय नुंकिचु जक्कवलन जन्नुलु जिलुगु कंचलनु नरुम

वंदि [और] वैतालिकों की विनुतियों की जगह-जगह पर वृद्धि होने पर, वितत मर्दल, वेणु [और] वीणा-रवों की गतियों के नर्तकी-गतियों के जुड़ जाने पर, तरल विचित्र ध्वज-पताकाओं से अंकित स्यंदन, गज, वाजि-चयों पर चढ़कर, [ते.] सुत, सहोदर, हित, पुरोहित जन को, कटक, केयूर, हार, कंकण, किरीट, वस्त्र, माल्य-अनुलेपन-व्रातों (-समूहों) से अलंकृत होकर ऐसे निकला जिससे [उनका] विभव बढ़ जाय। तब ८०१ [व.] और यदु, सृंजय, कांभोज, कुरु, केकय, कोसल, भूपाल मुख्यों के चतुर्विध सेना समेत होकर पीछे-पीछे ऐसे चलने पर जिससे धरणि कंपित हो जाय, ऋत्विक्निकाय [और] सदस्यों के ब्रह्मघोष के व्याप्त होने पर [उनको] सामने रखकर शोभमान अनून प्रभा भासमान सुवर्णमय मालिका दिव्य मणिहारों के कंठ में तेजस्वी बनने पर, कलत्र (पत्नी) समेत होकर, उन्नत जवाश्वों से जुते हुए पुष्प-रथ पर चढ़कर [और] अति मनोहर विभवाभिराम बनकर जा रहा था। तब वारांगना जन अपने-अपने लोगों के साथ ८०२ [सी.] कनकाद्रिसानु, संगत केकिनियों की भाँति जटा-बंधनों के पीठों पर इठलाने पर, तरल ताटंक मुक्ता फलांशुओं की द्युतियों के गाल [रूपी] मुकरों के साथ मित्रता करने पर, अदृश्य होकर भी नष्ट न होनेवाली नूतन चमकों की तरह कटाक्षों (कनखियों से देखना) की दीधितियों के व्याप्त होने पर, हिम पर उड़ने के लिए प्रयत्न करनेवाले चक्रवाकों के जोड़े की तरह कंचुकों में स्थित कुचों के [आपस में] रगड़ने पर, [ते.] महित कुच-भार से कंपित कमरों से कटिसूत्रों से प्रकाशमती

ते. महिल कुचभार कंपित मध्यलगुचु
नथि मीलनूळ्ळु मेंड्रय बय्यदलु जीर
गरसरोजात कंकण क्वणनमुलनु
जरण नूपुर घोषमुल् संदडिप ॥ 803 ॥

व. मरियु नथ्यिदुवदनलंदंद मंदगमनंबुनं जेंबु घर्मजलबिंदु संदोह कंदळित मंदहास चंद्रिका सुंदर वदनारविंदंबुल निंदिदिर रुचिर चिकुर बृंदंबुलु चिदर वंदरलै संदडि गोन नमंदानंदहृदयलै सुवर्ण शृंग संगतंबुलैन संकुमद मलयजमुख सुरभि तोयंबुलु समुदायंबुलै तम तोयंबुल बारिपयि जल्लुचु जेंदोवल कॅंदम्मि विरुल रचियिंचिन चिम्मन ग्रोवुलं दावुलु गल पूदेनियलु निंचि वावुलु देलिपि ठवलु मीड्र ग्रेवल नुंडि यिम्मुलं गनि चिम्मुचु मृग मदकुंकुम पंकंबुनु गोंकक बिकंबुल जक्कोलोलयं बंकजसन्निभंबुलगु मोगंबुल नेमरिंचि चरुमुचु नुल्लंबुलु पल्लविपं बेल्लडिरि यंदियलु गल्लुगल्लनि मोरय ग्रेळ्ळु दाटुचुं जारु चंद्रिका सार घनसार धूळीमिळित रजनी/परागंबु रागंबु रंजिल्लं गरंबुलं बुच्चिकोनि शिरंबुलं जल्लुचु जित्तंबुल नम्मत्तकाशिनुल वृत्तंबुलगु कुचंबुल कॅत्तुवत्तुमनि बित्तरिंचु पुव्वु गुत्तुलं दत्तरंबुन वेयुचु बरिहसिंचुचु नन्योन्य कर किसलय कनक करंड भरितंबगु पन्नीटं जेंगावि जिलुगु बुट्टंबलु दट्टंबुगा दोगि मर्मंबुलु बयपलुडिन

होते हुए, आँचलों को खींचने पर कर-सरोजातों के कंकणों के क्वणन और चरणों के नूपुरों के घोषों के रवों के अधिक हो जाने पर ८०३

[व.] और वे इंदुवदनाएँ जगह-जगह पर मंदगमन से उत्पन्न घर्मजलबिंदु-संदोह-कंदलितीमंदहास-चंद्रिका सुंदर, वदनारविंदों पर इंदिदिर रुचिर चिकुर बृंदों के तितर-बितर होकर ध्वनि करने पर अमंदानंदहृदया बनकर सुवर्ण शृंग संगत होनेवाले संकुमद मलयज मुख [आदि] सुरभि तोयों को, भीड़ों में अपने जलों को उन पर छिड़काते हुए, लाल कमलों के पल्लवों से रची हुई पिचकारियों में रिक्त प्रदेशों को मधु से भरकर बंधुत्व सुनाकर आधिक्य के बढ़ने पर पार्श्व भागों से साधनों को देखकर छिड़काते हुए मृगमद कुंकुम पंक को पीछे न हटकर, धैर्य के साथ धमकाते हुए, पंकज सन्निभ होनेवाले मुखों के भ्रम से छूते हुए मनों के पल्लवित होने पर अधिक रूप में पाँवों के आभूषणों के कलकल रव करने पर उछलते हुए चारु-चंद्रिका-सार-घनसार-धूली-मिलित-रजनी-पराग का राग (लाल रंग) के प्रकाशमान होने पर करों (हाथों) में पकड़कर, सिरों पर छिड़काते हुए चित्तों को उन मत्तकाशिनियों (रमणियों) के वृत्त (गोल) कुचों की बराबरी करते हैं' —यों कहनेवाले और झूमनेवाले फूलों को गुच्छों को वेग से डालते हुए, परिहास करते हुए, अन्योन्य कर किसलय कनक करंड भरित होनेवाले

नगलंबुलगु सिग्गुलकु नोप्पिदंबुलगु तमकनुइंप्पलड्डंबु सेयुचु बुरुषुलुं दामु नारामलभिराम लीला रसोक्तुलैमय नंतरंगंबुल संतसंबुनं वंतंबुलिच्चुचु वसंतंबुलाडिरव्वेळ नतुल विमानारूढुलैन यिंद्रपुरंध्री जनंबुलुं बोलं हाटक शिबिक लॅक्कि निज चेटिका जनंबुलु सेविपं जनुदेंचु भूकांत-कांता जनंबुलु तम सरसंबुलकु नर्हंबुलैन धरणीपाल वधूललामंबु लादरिंचु चॅलुलपै दमसखीजनंबुलं बुरिकोल्पि चल्लिचुचु भावगर्भितंबुलगु वारि चतुर सरसोक्तुल मंदहास चंद्रिकलु मुखकमल लीला विलास लक्ष्मि ब्रोदि सेयंजनिरिव्विधंबुन निज साम्राज्य विभवंबु पूज्यंबुगा नजातशत्रुंडु गंगाप्रवाहंबुन कारिगि यंदु निजवधूयुक्तुंडै शास्त्रोक्त प्रकारंबुन नवबृथ-स्नानं बाचरिंचें। आ समयंबुन ॥ 804 ॥

कं. अनिमिष दुंदुभि घन नि-
स्वनमुलु वीतेंचें बुष्प-वर्षमु गुरिसैन्
मुनिदेव पितृ महीसुर
विनुतुल रव मॅसगें नपुडु विमलचरित्रा ! ॥ 805 ॥

कं. नरुलेंट्टि पापुलैननु
गरमर्थिनि नॅदिदचेसि गत कल्मषुलै

गुलाबजल से लाल और सूक्ष्म वस्त्र अधिक भीगकर मर्म (स्थानों) के बाहर निकलने (दिखाई पड़ने) पर, अधिक लज्जा के अनुकूल अपने पलकों की आड़ करते हुए, पुरुष [और] स्वयं वे स्त्रियाँ अभिराम लीला रसोक्तियों के आधिक्य से अंतरंगों में संतोष के साथ प्रतिज्ञाएँ करते हुए वसंत खेली। उस समय अतुल विमानारूढ़ा होनेवाली इन्द्रपुरंध्री जनों की तरह हाटक (सुवर्ण)-शिबिकाओं में चढ़कर निज चेटिका जनों के सेवा करने पर, आनेवाली राजाओं के कांता-जन अपने सरसोक्तियों (हँसी-मजाक़ों) के लिए अर्ह होनेवाली धरणीपाल-वधू-ललामों से आदर पानेवाली सखियों पर अपनी सखी जनों को उकसाकर छिड़काते हुए, भावगर्भित होनेवाली उनकी चतुर [और] सरस उक्तियों से मंदहास चंद्रिकाओं से मुखकमल लीला-विलास-लक्ष्मी (कांति) को जमा करने गईं। इस प्रकार निज साम्राज्य विभव के पूज्य होने पर अजातशत्रु ने गंगा-प्रवाह में जाकर उसमें निज वधूयुक्त होकर शास्त्रोक्त प्रकार से अवबृथ-स्नान को आचरित किया। उस समय ८०४ [कं.] हे विमल चरित्र [वाले], अनिमिष दुंदुभियों के घन निस्वन सुनाई पड़े; पुष्पों की वर्षा हुई; तब मुनि, देव, पितृ, महीसुरों की विनुतियों का रव (शब्द) अधिक हुआ। ८०५ [कं.] चाहे नर कैसे भी पापी हो जावें, बहुत बड़ी इच्छा से जिस अवबृथ को करके गत (गया हुआ)-कल्मष बनकर चलते हैं, उस अवबृथ को

चरियिंतुरट्टि यवबृथ-
मरुदुग गाविंचिरेलमि नखिलजनंबुल् ॥ 806 ॥

आ. अंत धर्मतनयुडभिनव मृदुल दु-
कूलसुरभि कुसुम मालिकानु-
लेपनमुलु रत्नदीपित भूषणा-
वळुलु दाल्चि वैभवमुन नोप्पॆ ॥ 807 ॥

व. अंत नवबृथ स्नानानंतरंबुन मरलि चनुदेंचि ॥ 808 ॥

उ. पांडुतनूभवाग्रजुंडु पांड्यशोनिधि भासमान मा-
र्तांडनिभुंडु याजक सदस्य महीसुर मित्र बंधुरा-
ण्मंडलि बूजचेसि बुधमान्य चरित्रुडु वारिकिच्चॆनों-
डॊंडदुकूल रत्नकनकोज्ज्वल भूषण मुख्य वस्तुवुल् ॥ 809 ॥

व. अट्लु नारायण परायणुलैन देवसमान प्रकाश प्रभावंबुल सकल नर नारी-
लोकंबुलनर्घ्यरत्नमय भूषण माल्यानुलेपनबुलु धरियिंचि परमानंद
भरितात्मुलै यॊप्पि युंडिरंत ॥ 810 ॥

च. सुनिशित भक्ति दन्मखमु जूडग वच्चिन यट्टि देवता-
मुनि धरणीसुर प्रकर भूवर विड्जन शूद्रकोटि य-
ज्जनवरचंद्रु चे नुचित सत्कृतुलं बरितोष चित्तुलै
विनयमु तोड धर्मजुनि वीड्कॊनि पोवुचु बॆक्कु भंगुलन् ॥ 811 ॥

स्यात् ही (तत्क्षण) अखिल जनों ने किया। ८०६ [आ.] तब धर्मतनय अभिनव - मृदुल - दुकूल - सुरभि - कुसुम - मालिकानुलेपन [तथा] रत्नदीपित भूषणावलियाँ धारण करके वैभव से प्रकाशमान हुआ। ८०७ [व.] तब अवबृथ स्नान के अनंतर लौट आकर ८०८ [उ.] पांडुतनूभवाग्रज, पांडुयशोनिधि, भासमान मार्तांडनिभ [और] बुधमान्यचरित्र ने याजक, सदस्य, महीसुर, मित्र, बंधु, राण्मंडलि (राजाओं का समूह) की पूजा करके उनको एक-एक दुकूल, रत्न, कनक, उज्ज्वल भूषण मुख्य [आदि] वस्तुओं को दे दिया। ८०९ [व.] उस प्रकार नारागण-पारायण [होनेवाले] देवों के समान प्रकाश प्रभावों से सकल नर-नारी लोक अनर्घ्य रत्नमय भूषण माल्यानुलेपन धारण करके परमानंदभरित आत्मावाले होकर सकुशल रहे। तब ८१० [च.] सुनिशित भक्ति से तत् मख (यज्ञ) को देखने के लिए आए हुए देवता, मुनि, धरणीसुर-प्रकर, भूवर, विड्जन (वैश्य), [और] शूद्र कोटि (समूह) उस जनवरचंद्र से उचित सत्कृतियों से परितोष-चित्त [वाले] बनकर विनय से धर्मज को छोड़कर जाते हुए अनेक प्रकार से ८११ [चं.] हरि के चरण (रूपी) अंबुजात युगल का

चं. हरिचरणांबुजात-युगळार्चकुडै पॆनुपॊंदु पांडु भू-
वरसुतु राजसूयमख वैभवमुन् नुतियिंचुचुन् समा-
दरमुन नात्मभूमुलकुदारत नेगिरि धर्म सूनुडुन्
सरसिजनेत्रु दाननुप जालकयुंडुमटंचु वेडिनन् ॥ 812 ॥

व. अट्लु पांडवाग्रजु प्रार्थनं गैकॊनि दामोदरुंडु समस्त यादवुलनु कुशस्थलिकि बोवंबनिचि कतिपय परिजनंबुलुं दानुनु नतनिकिं प्रियंबुगा दन्नगरंबुन ब्रमोदंबुन नुंडेननि चॆप्पि मरियु निट्लनियॆ ॥ 813 ॥

चं. जनवर पांडुभूप तनुजातुडु दुस्तरमौ मनोरथा-
ब्धिनि सरसीरुहाक्षुडनु तॆप्प कतंबुन दाटि भूरि शो-
भनयुतुडै मनोरुजल वासि मुदात्मकुडै वॆलिगॆ न-
व्वनरुनाभु दास जन वर्युलकुं गलवे यसाध्यमुल् ॥ 814 ॥

व. अट्टियॆड ॥ 815 ॥

अध्यायमु—७५

आ. राजसूयमख वरप्रभावमुनकु
नखिल जनुलु मोदमंदिरपुडु

अर्चक (अर्चना करनेवाला) बनकर, अधिक वृद्धि पानेवाले पांडु भूवर सुत के राजसूय मख (यज्ञ) के वैभव की स्तुति करते हुए समादर-सहित आत्म-भूमियों (अपने देशों) को उदारता के साथ चले गये। धर्मसून भी सरसिज-नेत्र को, स्वयं बिदा न कर सककर [वहाँ] ठहरने की प्रार्थना की उस समय ८१२ [व.] उस प्रकार पांडवाग्रज की प्रार्थना को स्वीकार करके दामोदर समस्त यादवों को कुशस्थलि को जाने देकर कतिपय परिजन [और] [वह] स्वयं उसको [युधिष्ठिर को] प्रिय हो, उस नगर में प्रमोद से रहा; यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। ८१३ [च.] हे जनवर! पांडुभूप-तनूजात दुस्तर मनोरथाब्धि (मनोरथ रूपी सागर) को सरसीरुहाक्ष नामक नाव के कारण (द्वारा) पार करके भूरि शोभनयुत होकर, मनोरुजमुक्त तथा मुदात्मा बनकर प्रकाशमान हुए। उस वनरुहनाभ के दास जनवर्यों के लिए क्या कुछ असाध्य है? (नहीं) ८१४ [व.] उस समय ८१५

अध्याय—७५

[आ.] हे धरणीनाथ! सिवा सुयोधन के जो कलुष-मानस [और] कुलपांसन था, राजसूय मख (यज्ञ) के वर प्रभाव के लिए अखिल जनों ने

कलुषमानसुंडु कुलपांसनुडु सुयो-
धनुडौकंडु दक्क धरणिनाथ ! ॥ 816 ॥

व. अनिन विनि शुक योगींद्रुनकु बरीक्षिन्नरेंद्रुंडिट्लनियें ॥ 817 ॥

आ. अखिल जनुलकॅल्ल नानंद जनकमै
यॅनयु मखमु कुरुकुलेश्वरुनकु
गरमसह्यमैन कारण मॅय्यदि
यॅरुग बलुकु नाकु निद्धचरित ! ॥ 818 ॥

च. अनिन मुनींद्रुडिट्लनु धराधिपुतो गुरुराजु पांडुनं-
दनुल वॅसन्ननेक दुरितंबुलु निच्चलु सेयुचुंडु नै-
ननु नौकनाडु पंकरुहनाभ दया परिलब्ध भूरि शो-
भन जितदेवदैत्य नरपालक राज्य रमामहत्त्वमै ॥ 819 ॥

च. बॅलयु ननून संपदल विश्रुत कीर्तुलु मिन्नु मुट्ट बॅं-
पलरिन पांडु भूवर सुताग्रजुडंतिपुरंबु लोन नु-
ज्ज्वलमणि भूषणांशुरुचि जालमु पर्व बयोजनाभु नु-
त्कलिक भजिंचुचुन् घनसुख स्थिति भूरि मनोहराकृतिन् ॥ 820 ॥

व. उंडगनुंगोनि यदियुनुंगाक यौक्क नाडु ललिताष्टमी शशांक बिंबंबुलु विडंबिचु निंद्रनील रुचि निचयंबु नपहसिंचु कुटिल कुंतलंबुलु नटनंबु सलुपं वनरु निटल फलकंबुलुनु बुष्प चापु चापंबु रूपुनेपु मापु भ्रूयुगोपांतंबुले

मोद को पाया। ८१६ [व.] ऐसा कहने पर सुनकर शुकयोगींद्र से परीक्षिन्नरेंद्र ने इस प्रकार कहा। ८१७ [आ.] हे इद्ध (परिशुद्ध) चरित [वाले] ! मुझे यह समझाओ कि अखिल जनों के लिए आनंदजनक होनेवाले मख (यज्ञ) का सुयोधन के लिए अधिक असह्य होने का कारण क्या है ? ८१८ [च.] यों पूछने पर धराधिप से मुनींद्र ने इस प्रकार कहा। कुरु राजा पांडुनंदनों के प्रति सदा अनेक दुरित (पाप) करता था। फिर भी एक दिन पंकरुहनाभ (कृष्ण) [की] दया [से] परिलब्ध-भूरि-शोभनयुत जित देव-दैत्य-नरपालक-राज्य युक्त रमा के महत्त्व-से युक्त बनकर ८१९ [च.] प्रकाशमान अनून (अधिक) संपदाओं की विश्रुत कीर्तियों के गगनचुंबी बनने पर अधिक विकसित पांडुभूवर के सुताग्रज के अंतःपुर में उज्ज्वल मणिभूषणांशु रुचिजाल को फैलाने पर, पयोजनाभ (कृष्ण) का, उत्कंठा-सहित हो, भजन (सेवा) करते हुए घन सुख स्थिति [में] [और] भूरि मनोहराकृति [में] ८२० [व.] रहते समय, देखकर, इसके अतिरिक्त, एक दिन ललित अष्टमी के शशांक बिंबों की विडंबना करते हुए, इन्द्रनील-रुचि-निचय का अपहास करनेवाले कुटिल कुंतलों के

सौदामनी दाम रुचि स्तोमंबुल कर्णांतसीमंबुलै यंजनंबुल तोड रंजिल्लु नेत्र कंजंबुलुनु नवमल्लिका मुकुळ विभासित दंत मरीचिका निचयोद्दीपित मंदहास चंद्रिका धवळितंबुलुनु मुकुरोपमितंबुलुनै कर्णकुंडल मणि मरीचि जालंबुलु बॆरसि बहु प्रकारंबुल बर्बॆ बॊलुचु कपोल पालिकलुनु विलसित ग्रैवेयक मुक्ताफलहार निचयंबुलकिम्मु चूपक मिसमिसनि पसगल मॆरुगुलु गिरिकॊन सोटिनं वगुलुननं बॊगडंदगि मॊगंबुलकुं बुटंबुलॆगयु नुत्तुंग पीनकुच भारंबुल व्रेगु लागलेक तुगाडुचुं गरतल परिमेयंबुलगु मध्य भागंबुलुनु घन जघन मंडलावतीर्ण कांचन कांची कलाप किंकिणी कलकल निनादोल्लसितंबुलगु कटि प्रदेशंबुलुनु सल्ललित हल्लक पल्लव कांतुल मॊल्लंबुल गॊल्ललु गॊनि यभिरामंबुलै शोभिल्लु पदपाणितलंबुलुनु मलसगतुलं बदंबुलंदनरु मणि नूपुरंबुलु गोपुरंबुलं ब्रतिस्वनंबु लॊलय मॊरय नलरु चरणारविंदंबुलुनु रत्न वलय कंकणांगुळीयकादि विविध भूषण द्युति निचयंबुलुष्ण मरीचि करनिचयंबुल धिक्करिंप वॆलुंगु करकंजंबुलुनु मृगमद घनसार हरिचंदनागरु कुंकुम पंकंबुल भासुरंबुलगु वासनलु नासा-रंध्रंबुलकु वॆक्कसंबुलै पॊलयु सौभाग्यंबुलुं गलिगि चैतन्यंबु नॊंदिन

नटन करने पर, प्रकाशमान होनेवाले निटल [फाल रूपी] फलक जो पुष्पचाप [वाले मदन] के चाप को भी [सुंदरता में] हरानेवाला है, भ्रूयुगोपांत होकर सौदामनी-दाम-रुचि (कांति) स्तोम होकर, कर्णांत सीमा वाला होकर, अंजनों से रंजित नेत्र कंजों, नवमल्लिका-मुकुल-विभासित दंत (रूपी) मरीचिका [के] निचय से उद्दीपित मंदहास चंद्रिका [से] धवलित [और] मुकुरोपमित होकर, कर्ण-कुंडल-मणि-मरीचि-जालों के साथ बहु प्रकारों से सुंदर दिखाई पड़नेवाले कपोल पालिकाओं, विलसित ग्रैवेयक मुक्ताफल-हार-निचयों को स्थान न दिखाकर, उज्ज्वल कांति की चमक के घेर लेने पर, छूने मात्र से टूट जाने की प्रशंसा पाने योग्य बनकर, मुखों पर वस्त्रों को उड़ानेवाले उन्नत [तथा] पीन कुच-भारों का भार न खींच सककर, लड़खड़ाते हुए करतल परिमेय होनेवाले मध्य भागों (कमर), घन-जघन मंडलावतीर्ण कांचन-कांची-कलाप-किंकिणी-कलकल-निनादों से उल्लसित होनेवाले कटि-प्रदेशों, सल्ललित हल्लक (लाल कमल) के पल्लवों की कांतियों के आधिक्य को पर्याप्त मात्रा में लेकर, अभिराम बनकर, शोभायमान होनेवाले पद-पाणि-तलों, आलस्य से भरी हुई गतियों से पादों में प्रकाशमान मणिनूपुर गोपुरों में प्रतिस्वन (ध्वनि) करने के जैसे प्रतिध्वनित चरणारविंदों, रत्न, वलय, कंकण, अंगुलीयक आदि विविध भूषण-द्युति-निचय के उष्ण-मरीचि (सूर्य)-कर निचयों का धिक्कार करने पर, प्रदीप्त होनेवाले करकंजों, ... घनसार हरिचंदन, अगरु, कुंकुम पंकों के समान भासुर (प्रकाशमान)

माणिक्यपु बॊम्मल विधंबुन गगनमंडलंबु निर्गमिंचि वसुधातलंबुन संचरिंचु चंद्ररेखल चॆलुवुन श्रृंगाररसंबु मूर्तीभविंचि जगंबुल मोह परुचु मोहिनी देवतल चंदंबुन विलसिंचु माधव वधू सहस्रंबुल संगतिनि सौदामनी लतयुनुंबोलॆ नॊप्पुचुंडॆडु द्रुपद राजनंदन विभवंबुनु राजसूय महाध्वरोत्सवंबुनं जूचि चित्तंबुत्तल पड सुयोधनुंडु संतापानलंबुनं ग्रागु चुंडॆ, नंतनॊक्कनाडु धर्मनंदनुंडु निर्मलंबगु सभा भवनंबुनकुं जनि ॥ 821 ॥

सी. सुत सहोदर पुरोहित बांधवामात्य परिचार भटकोटि बलसि कॊलुव
गलित मागध मंजु गानंबु बाठक पठन रवंबुनु ब्रमदमॊसग
गंकण झणझणत्कारंबु शोभिल्ल सरसिजाननलु चामरमुलिडग
मय विनिर्मित सभा मध्यंबुननु भासमान सिंहासनासीनुडगुचु

ते. ननिमि-
नमर गणमुलु गॊलुव वॆंपारु
षेंद्रुकैवडि मॆंड्रसि युपेंद्रुडलर
सरस गॊलुवुन्न यत्तरि दुरभिमानि
क्रोध मात्सर्यधनुडु सुयोधनुंडु ॥ 822 ॥

उ. कांचन रत्नभूषण निकायमु दाल्चि समुज्ज्वल प्रभो-
दंचित मूर्ति नॊप्पि पणिहारुलु मुंदट ग्रंदुवाय वा-

गंध नासारंध्रों के लिए अत्यधिक होकर बढ़ने का सौभाग्य पाकर, चैतन्यवन्त होनेवाले माणिक्य के खिलौनों की तरह गगनमंडल से निर्गमित होकर वसुधातल पर संचारण करनेवाली चन्द्र-रेखाओं की तरह श्रृंगार-रस के मूर्तिमान होकर, जगों को मोहित करनेवाली मोहिनी देवता की तरह विलसित माधव वधू सहस्रों की संगति से सौदामनी-लता की तरह शोभायमान होनेवाली द्रुपदराजनंदना के विभव को राजसूय महाध्वरोत्सव में देखकर, चित्त के व्याकुल होने पर सुयोधन-संताप (-रूपी) अनल में जलता था। ८२१ तब एक दिन धर्मनंदन निर्मल सभाभवन में जाकर [सी.] सुत, सहोदर, पुरोहित, बांधव, अमात्य, परिचार-भट-कोटि के अधिक सेवा करने पर; कलित मागध मंजु गान और पाठकों का पठन रव के प्रमद (प्रमोद) देने पर; कंकणों के झण-झणत्कार के शोभायमान होने पर सरसिजाननाओं के चामरों को हिलाने-डुलाने (पंखा करने) पर; मय-विनिर्मित सभा मध्य में भासमान सिंहासनासीन होते हुए, [ते.] अमर गणों के सेवा करने पर, प्रकाशमान अनिमिषेंद्र (इन्द्र) की तरह दीप्तिमान होकर, उपेन्द्र (कृष्ण) के विराजमान होने पर, [उनके] निकट सेवा करते समय दुरभिमानी और क्रोधमात्सर्य-धनी सुयोधन ८२२ [उ.] कांचन-रत्न-भूषण-निकाय (समूह) को धारण करके, समुज्ज्वल प्रभोदंचित मूर्ति के

रिंच सहोदरुल् नृप वरेण्युलु पार्श्वमुलन् भजिप ने-
तॆंचॆनु राजसंबुन युधिष्ठिरु पालिकि वैभवोन्नतिन् ॥ 823 ॥

व. अट्लु चनुदेंचि मयमायामोहितंबैन सभास्थलंबुनंदु ॥ 824 ॥

कं. सलिलमुलु लेनि ठावुन
वलुवलु वॆस नॆगय दिगिचि वारक तोयं-
बुलुगल चोटनु जेलं
बुलु दडियग बडियॆ निजविभुत्वमु दरुगन् ॥ 825 ॥

कं. आ विधमंतयु गनुगॊनि, पावनि नव्वुटयु नचटि पार्थिवुलुनु गां-
तावलियुनु यमतनयुड्डु वाविरि जेसन्नदम्मु वारिपंगन् ॥ 826 ॥

व. दामोदरानुमोदितुलयि महारवंबुगा बरिहासंबुलु चेसिन सुयोधनुंडु लज्जावनत वदनुंडयि कुपित मानसुंडगुचु नय्यॆड निलुवक वॆलुवडि निज पुरंबुन करिगॆ नय्यवसरंबुन धीविशालुरैन सभासदुलगु नच्चटि जनंबुल कोलाहलंबु संकुलंबैन नजातशत्रुंडु चित्तंबुन विन्ननैयुंडॆ नप्पुंडरीकाक्षुंडु भूभार निवारण कारणुंडगुटं जेसि दुर्योधनु नपहासंबुनकुं गादनंडय्यॆ नंत ॥ 827 ॥

कं. हरि धर्मसुतुनिवीड्कॊनि, तरुणीहित बंधुजनकदंबमु गॊलुवं
बरि तोषमुन गुशस्थल, -पुरमुनकुं जनियॆ मोदमुन नरनाथा ! ॥ 828 ॥

सुंदर लगने पर, पणिहारों (द्वारपालकों) के आगे बढ़ने पर रोकने पर, सहोदरों [तथा] नृपवरेण्यों के पार्श्वों में सेवा करने पर राजस के साथ, वैभव की उन्नति से युधिष्ठिर के पास आया। ८२३ [व.] उस प्रकार आकर मय [की] माया [से] मोहित [होनेवाले] सभास्थल में ८२४ [कं.] ऐसे स्थलों में जहाँ सलिल (जल) नहीं था, [अपने] वस्त्रों को उठा पकड़कर, [और] जहाँ तोय (जय) था वहाँ चेल (वस्त्र) भीग गए जिससे [उसकी] विभुता कम हो गई। ८२५ [कं.] उस प्रकार वह सब देखकर पावनि (भीम) के हँसने पर, वहाँ के पार्थिवों [तथा] कांतावलि के हँसने पर, यमतनय ने, उनको रोका तो ८२६ [व.] दामोदर से अनुमोदित होकर ज़ोर से परिहास करने पर, सुयोधन लज्जा से अवनत वदन [वाला] बनकर कुपितमानस से युक्त होते हुए, वहाँ न ठहर कर, वहाँ से निकलकर निजपुर में गया। उस अवसर पर धीविशाल होनेवाले सभासद होनेवाले वहाँ के जनों के कोलाहल के अधिक होने पर अजातशत्रु [अपने] चित्त में विवर्ण बनकर रह गया। उस पुंडरीकाक्ष के भू-भार निवारण-कारण होने के कारण दुर्योधन के अपहास को नहीं रोका। तब ८२७ [कं.] हे नरनाथ ! हरि धर्मसुत से बिदा लेकर तरुणी, हित [और] बंधुजन-कदंब (-समूह) के सेवा करने पर परितोष

च. जनवरबंध मोक्षणमु जैत्यवधंबुनु पांडुराज नं-
दनमख रक्षणंबुनु नुदारत जेसिन यट्टि देवकी
तनयु चरित्र भासुर कथा पठनात्मुलु गांतुरिष्ट शो-
भन बहु पुत्र कीर्तुलनु भव्य विवेकमु विष्णु लोकमुन् ॥ 829 ॥

अध्यायमु—७६

सात्वुंडु शिव प्रसादंबुन सौभक विमानंबु वडसि द्वारका पुरि पै वच्चुट

कं. अनि शुकयोगींद्रुंड, -म्मनुजेंद्रुनि जूचि पलिकें मरियुनु श्रीकृ-
ष्णुनि यद्भुत कर्मंबुलु, विनिपितुं जित्तगिपु विमलचरित्रा ! ॥ 830 ॥

सी. वसुधेश विनु मुनु वर्दभि परिणय वेळ दुर्मद शिशुपाल भूमि-
वरुनकु बोड्पड नरुदेंचि सैनिकावलितोड दौडरि दोर्बलमु दूलि
हरि चेत निर्जितुलैन राजुल लोन जैद्युनि चेलिकाडु साल्व भूमि-
पति जरासंधादि पार्थिव प्रकरंबु विन मत्सरानल विपुल शिखल

ते. धात्रि निट मीद वीतयादवमु गाग
गडगि सेयुदुननि दुराग्रहमु तोड

[और] मोद (आनंद) से कुशस्थलि को गया। ८२८ [च.] जनवर-बंध-मोक्षण, चैत्य-वध, पांडुराज-तनय के मख (यज्ञ) की रक्षा, [ये कार्य] उदारता के साथ करनेवाले देवकीतनय का चरित्र (कथा) भासुर कथा पठनात्मा (पाठ करनेवाला) इष्ट शोभन, बहु पुत्र कीर्तियों को, भव्य विवेक को [तथा] विष्णुलोक को पायेंगे। ८२९

अध्याय—७६

साल्व का शिव-प्रसाद से सौभक विमान को पाकर द्वारका पुरी पर हमला करना

[कं.] इस प्रकार कहकर शुकयोगींद्र ने उस मनुजेंद्र को देखकर कहा। हे विमल चरित्र [वाले], और भी श्रीकृष्ण के अद्भुत कर्म सुनाऊँगा। सुनो। ८३० [सी.] [हे] वसुधेश ! सुनो। पहले वैदर्भी [के] परिणय के समय दुर्मद शिशुपाल भूमिवर की सहायता करने के लिए आकर [अपनी] सैनिकावलि के साथ [शत्रु का] सामना करके दोर्बल (बाहुबल) को खोकर हरि (कृष्ण) से निर्जित राजाओं में चैद्य का सखा साल्व, भूमिपति जरासंध आदि पार्थिव-प्रकर सुनें, मत्सर [रूपी] अनल [की] विपुल शिखाओं से [ते.] "धात्रि को आगे वीत (विगत)-यादव कर दूँगा", यों दुराग्रह से प्रतिज्ञाएँ करके, वहाँ जाकर भरित निष्ठा से तप करने

बंतमुलु पलिक यट चनि भरित निष्ठ
दपमु गाविप वूनि सुस्थलमुनंदु ॥ 831 ॥

कं. धृति वदलक् युग्र स्थिति
प्रतिदिनमुनु विडिकेंडवनिरजमशनमुगा
नति नियममुतो ना पशु-
पति शंकरु फालनयनु भर्गु नुमेशुन् ॥ 832 ॥

कं, चॆदरनि निज भक्तिनि द-
त्पद पद्ममुलात्म निलिपि पायक यीक ये
डुदित क्रिय भजियिंचिन
मदनारियु वानि भक्ति महिमकु दशुडै ॥ 833 ॥

कं. वोरन प्रत्यक्षंबै, कोरिन वर मेमियैन गॊसरक यित्तुन्
वारक वेडुमटन्ननु, ना राज तपोधनुंडु हरुनकु प्रीतिन् ॥ 834 ॥

ते. वंदनंबाचरिंचि यानंद विकच-
वदनुडै नॊसलंजलि गदिय जेचि
श्रित दयाकार ! नन्नु रक्षिंचॆदेनि
नॆरुग विनुविंपु विनुमु मदीप्सितंबु ॥ 835 ॥

ते. गरुड गंधर्वयक्ष राक्षस सुरेंद्र-
वरुलचे साध्य पडक नावलयु नॆंडल
नभ्र पथमुन दिरिगॆडुनट्टि सहित
वाहनमु नाकु दय चेयु वरद ! यीश ! ॥ 836 ॥

का प्रयत्न करके सुस्थल पर ८३१ [कं.] धृति को न छोड़कर उग्रस्थिति से प्रतिदिन मूठ भर अवनिरज (मिट्टी) को अशन (आहार) के रूप में (खाते हुए), अति नियम के साथ उस पशुपति को, शंकर को, फालनयन को, भर्ग को, उमेश को ८३२ [कं.] अस्खलित निज भक्ति से तत्पद पद्मों को [अपनी] आत्मा में स्थिर करके, न छोड़कर, एक वर्ष उदित क्रिया से भजने पर मदनारि (शिव) के उसकी भक्ति [की] महिमा [के] वश होकर ८३३ [कं.] शीघ्र प्रत्यक्ष होकर "जो कुछ भी वर माँगो, बिना किसी संकोच के दे दूँगा, निस्संदेह माँगो" ऐसा कहने पर उस राजतपोधन को, हर की प्रीति से ८३४ [ते.] वंदना करके आनंद [से] विकचवदन [वाला] बनकर ललाट पर अंजलि जोड़कर "श्रित दयाकार ! मेरी रक्षा करना चाहते हो तो अपने ईप्सित (इच्छा) को सुनाऊँगा; सुनो। ८३५ [ते.] हे वरद ! ईश ! मुझे ऐसा महित वाहन प्रदान करो जो गरुड़, गंधर्व, यक्ष, राक्षस [और] सुरेंद्र वरों के लिए [भी] असाध्य होकर, मेरी इच्छा के अनुसार अभ्रपथ (आकाश) में घूमे।" ८३६ [व.] इस प्रकार

व. अनि यभ्यर्थिचिनं ब्रसन्नुंडै हरुंडु वानि कोर्किकनुरूपंबैन विमानंबु निर्मिप मयु नियोगिचिन नतंडुनु नट्ल सेसेंदनि काम गमनंबुनु नति विस्तृतं-बुनुगा लोहंबुन निर्मिचि सौभकंबनु नामंबिडि साल्वुन किच्चिन वाडुनु परमानंदंबुनंबोंदि तद्विमानारूढुंडै यादवुल वलनि पूर्ववैरंबु दलंचि दर्पांधचेतस्कुंडै द्वारकानगरंबु पैजनि निजसेना समेतंबुगा दत्पुरंबु निरोधिचि ॥ 837 ॥

सी. सरिदुपवन सरोवरमुलु मार्यिचि बावुलु गलचि कूपमुलु चैरिचि कोटलु वैस वीट ताटमुल् गार्विचि परिखलु पूड्चि वप्रमुलु द्रोंब्ब यट्टळ्ळु धर गूल्चि यंत्रमुल् द्रुनुमाडि कांचन ध्वज पताकमुलु नरकि भासुर गोपुर प्रासाद हर्म्येंदु शालांगणमुलु भस्ममुलु सेसि

ते. विमल कांचन रत्नादि विविध वस्तु-
कोटि नॅल्लनु नंदंद कॊल्लपुच्चि
प्रजल जॅड्रपट्टि दीरलनु भंगपॅट्टि
तरिमि यिभ्भंगि बॆवकु दाधल नलंचि ॥ 838 ॥

च. मदमुन नंत बोवक विमानयुतंबुगा नभ्रवीथिकिन्
गॊंदगॊनि येपुमै नॅगसि कौकक शक्ति शिला महीरुह

अभ्यर्थना करने पर प्रसन्न होकर हर के उसकी इच्छा के अनुरूप [होनेवाले] विमान (व्योमयान) का निर्माण करने के लिए मय (देवता-शिल्पी) को नियोजित करने पर उसके (मय के) भी "वैसा ही करूंगा" बोलकर काम-गमन तथा अति विस्तृत होनेवाले (विमान को) लोहे से निर्मित करके, (उसे) सौभक नाम देकर साल्व को देने पर वह भी परम आनंद को पाकर तद्विमानारूढ़ होकर यादवों से (उत्पन्न) पूर्व वैर का स्मरण करके दर्पांध-चेतस्क बनकर, द्वारका नगर पर जाकर निज सेना समेत हो तत्पुर का निरोध करके ८३७ [सी.] सरितों, उपवनों [और] सरोवरों का नाश करके, कुओं को संक्षोभित करके [और] कूपों को खराब करके, शीघ्र ही क़िलों के रूप बदलकर, परिखाओं को भरकर [और] वप्रों को गिराकर, अट्टालिकाओं को धरा पर गिराकर, यंत्रों को काटकर, कांचन ध्वज-पताकाओं को काटकर, भासुर-गोपुर-प्रासाद-हर्म्य-इंदुशालां-गणों को भस्म करके, [ते.] विमल कांचन रत्न आदि विविध वस्तु-कोटि (समूह) को इधर-उधर बिखर और लूटकर, प्रजा को बन्दी बनाकर प्रभुओं का अपमान करके और [उनको] भगा करके इस प्रकार अनेक बाधाएँ देकर श्रमित करके ८३८ [च.] मद के कारण उससे (तृप्त होकर) न जाकर, विमानयुत हो अभ्रवीथी में अति शीघ्र से उड़ जाकर बिना किसी संकोच के शिलाओं [और] महीरुहों को [तथा] तीरों को

प्रवरमु लोलिमै गुरिसि बंधुर भूमि परागशर्करल्
ववलक चल्लुचुन् वलयु वायुवुचे दिशलावरिंचुचु ॥ 839 ॥

व. ट्टि यॆड ॥ 840 ॥

कं. चटुल पुरत्रय दनुजो-
त्कट दुष्कर वाध्यमान धारुणि गति न-
प्पुट भेदन मैंतयु वि-
स्फुट पीडं जॆंदि वगल सुडिवडुचुंडन् ॥ 841 ॥

च. कनि भगवंतुडुन् रथि शिखामणियुन्नगु रौक्मिणेयु ड-
ज्जनमुल नोडकुंडुडनि संगर कौतुक मॊप्प दिव्य सा-
धनमुल वूनि सैनिक कदंबमु गॊलव ननून मीनके-
तन रुचि प्राल नुन्नत रथस्थितुडै वॆडलॆन् रणोर्विकिन् ॥ 842 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 843 ॥

म. समधिक बाहु शौर्यजित चंड विरोधुलु वॆळ्ळिरुन्नत
क्षमगद भानुविद शुकसात्यकि सारण चारुदेष्णसां-
ब मकर केतनात्मजश्वफल्क तनूभव तत्सहोदर
प्रमुख यदूत्तमुल् विमत भंजनुलै कृतवर्म मुख्यगन् ॥ 844 ॥

कं. वारण वाजिस्यंदन, वीर भटावलुलु सनिरि विश्वमु वडकन्
घोराकृति विविधायुध, भूरिद्युतुलर्कबिंबमु गबळिपन् ॥ 845 ॥

अधिक वरसा कर, युद्धभूमि पर परागशर्करों (खंडों) को बिना छोड़े छिड़काते हुए वलय (भँवर)-वायु से दिशाओं को घेरते हुए ८३९ [व.] तब ८४० [कं.] चलित पुरत्रय दनुजोत्कट दुष्कर वाध्यमान धारुण गति से वह पट्टण सब विस्फुट पीड़ा को पाकर जब वहुत दुःखित हो रहा था। ८४१ [च.] [उसे] देखकर भगवान् (कृष्ण) [और] रथिशिखामणि होनेवाला कृष्ण उन जनों से "डरो मत" कहकर, संगर कौतुक के बढ़ जाने पर दिव्य साधनों को लेकर सैनिक-कदंब (समूह) के सेवा करने पर अनून मीनकेतन की रुचि (कांति) से प्रकाशित उन्नत रथ पर स्थित होकर (बैठकर) रणोर्वि (युद्धभूमि) में गये। ८४२ [व.] उस अवसर पर ८४३ [च.] समधिक-बाहु-शौर्यजित-चंड-विरोधी-विमतभंजन [करनेवाले] बनकर उन्नतक्षम, गद, भानुविद, शुक, सात्यकि, सारण, चारुदेष्ण, सांब, मकरकेतनात्मज, श्वफल्क, [उसके] तनूभव, तत्सहोदर प्रमुख (आदि) और कृतवर्म आदि यदूत्तम चले गये। ८४४ [कं.] वारण, वाजि (घोड़े), स्यंदन, वीर भटावलियाँ ऐसे गईं जिससे विश्व कंपित हो जाय और घोर आकृतियों से विविधायुध भूरि द्युतियाँ अर्कबिंब को निगल डालने जावे। ८४५ [व.] जाकर उस गोविंदनंदन के स्यंदन

व. चनि या गोविंदनंदन-स्यंदनंबु बल संदोहंबुनु दलकडचि यदु सैन्यंबुलु सात्व बलंबुल तोडं दाकोंनि बॅरयुनप्पुडु देव दानव संकुल समर विधंबुनं दुमुलंबय्ये नय्येड ॥ 846 ॥

म. वितत ज्याचयटंकृतुल् मदजलाविर्भूत-शुंडाल धी-
कृतुलुद्यद्भट हुंकृतुल् महित भेरी भांकृतुल् भीषणो-
द्धत निस्साण घणंकृतुल् प्रकट योधव्रातसाहंकृतुल्
कुतलंबुन् दिवि निंड म्रोसॅ रिपुसंक्षोभंबुगा भूवरा ! ॥ 847 ॥

म. हरि रिंखारथनेमि सद्भट पदव्याघट्टनोद्धूत दु-
स्तर धूळी पटल प्रभूत निबिड ध्वांत प्रविध्वंस कृ-
त्कर शातासिगदादि हेतिरुचुलाकाशंबु निंडन् विय-
च्चर दृक्कुल् मिरुमिट्लु गोल्प समरोत्साहंबु संधिल्लगन् ॥ 848 ॥

च. तलकोंनि सैनिकुल् गविसि ताकोंनि पॅकोंनि पासि डासि यं-
किलिगोनकॅम्बुलम्मुल बगिलिच नॊगिलिच तरेतरल् तलल्
नलियग नॊत्ति मॊत्ति नयनंबुल निप्पुलु राल लील नौ-
दललु ललाटमुन् घनगदाहति नॊंचि कलंचि पोरगन् ॥ 849 ॥

व. अय्यवसरंबुन प्रद्युम्नुंडु गनुंगॊनि ॥ 850 ॥

को और बल-संदोह का अतिक्रमण करके यदुसेना के सात्व की सेना का सामना करके लड़ते समय [वह युद्ध] देव-दानव-संकुल समर के समान तुमुल (घमासान) हुआ। तब ८४६ [म.] हे भूवर ! वितत ज्याचय-टंकृतियों के, मद जलाविर्भूत शुंडाल घींकृतियों के, उद्यद्भटों की हुंकृतियों के, महित भेरी भांकृतियों के, भीषणोद्धत निस्साण ध्वणकृतियों के [तथा] प्रकट योध-व्रात (-समूह की) साहंकृतियों के कुतल (भूमि) [और] दिवि में भर जाने पर ऐसा शब्द निकला कि रिपुओं में सक्षोभ हो जाय। ८४७ [म.] हरि-रिंख (-टाप), रथनेमि, सद्भटों के पदों से व्याघट्टनोद्धूत दुस्तर धूलि [रूपी] पटल (वस्त्र) से प्रभूत निबिडध्वांत प्रविध्वंसकृत कर-शातासि (हाथों के तेज खड्ग), गदा आदि के अस्त्र-रुचियों (कांतियों) के आकाश में भर जाने पर, जिससे वियच्चरों की दृष्टियों में चकाचौंध पैदा हो जाय, समर के उत्साह के बढ़ जाने पर ८४८ [च.] सैनिकों के एक-दूसरे पर विजृंभित होकर, लगकर, लड़कर, समीप जाकर, फिर दूर हटकर हड्डियों को और तीरों को तोड़कर, एक-दूसरे को बाधा देकर, सिरों को फोड़कर ताकि वे पिस जाएँ, मारकर, पीटकर, ताकि आँखों में से आग बरसे, आसानी से सिरों को, ललाट को, घन गदा की मार से झुकाकर [और] क्षुभित करके लड़ने पर ८४९ [व.] उस अवसर पर प्रद्युम्न ने देखकर ८५० [म.] अन्याय से (अविनय से) कलुषित होकर सौभपति

म. अनघंबु गलुगिंचि सौभपति माया कोट्लु चंचच्छरा-
सन निर्मुक्त निशात दिव्य महितास्त्र श्रेणिचे दत्क्षणं-
बुन लीला गतिनभ्रगुल् मनमुलन् भूषिप मार्यिचें न-
व्वनजाताप्तुडु भूरिसंतमसमुन् बारिचु चंदंबुनन् ॥ 851 ॥

व. मरियुनु ॥ 852 ॥

च. अति रथिकोत्तमुंडन नुदंचित कांचनपुंखपंचवि-
शति विशिखंबुलन्नतनि सैनिकपालुनि नोंचि युग्रुडै
शतशत कोटि कोटि निभसायकमुल् बरगिंचि साल्वभू-
पति ककुदंबु नोंचि लय भैरवु कैवडि बेंचि वेंडियुन् ॥ 853 ॥

च. पदि पदि यम्मुलन् मनुजपाल वरेण्युल नोंचि रोषमुं-
गदुरग मूडुमूडु शितकांडमुलन् रथदंति वाजुलं
जवियग नेसि योक्कोक निशात शरंबुन सैनिकावलिन्
मदमुलडंचि यिट्लतडमानुष लील बराक्रमिंचिनन् ॥ 854 ॥

कं. दुर्मानवहरु नद्भुत, कर्ममुनकु नुभय सैनिक प्रकरंबुल्
निर्मल मति नुतियिंचिरि, भर्माचलधैर्यु विगतभयु प्रद्युम्नुन् ॥ 855 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 856 ॥

उ. सांबुनि साल्व भूविभुडु सायकजालमुलेसि नोंचिनन्
जांबवती तनूभवुडु चापमु सज्यमु सेसि डासि सा-

ने माया कोटियों से युक्त चंचत् शरासनों से निर्मुक्त निशात दिव्य महितास्त्र श्रेणि से तत्क्षण में लीलागति से जिससे देवतागण आदि मनों में प्रशंसा करें, इस प्रकार मार डाला कि जैसे वनजाताप्त (सूरज) भूरि अंधकार को, जो सर्वत्र व्याप्त हो जाता है, रोक देता है। ८५१ [व.] और भी ८५२ [च.] अति रथिकोत्तम को सुंदर कांचन-पुंख-विंशति विशिखों (तीरों) से उसके सैनिक-पाल को झुकाकर [और] उग्र बनकर शत-शत कोटि-कोटि निभ (सम) सायकों (तीरों) का प्रयोग करके, साल्व भूपति के ककुत् (गर्दन) को पीड़ित करके, लय से भैरव की तरह मारकर फिर ८५३ [च.] दस-दस बाणों से मनुजपालवरेण्यों को मारकर, रोष के अधिक हो जाने पर तीन-तीन शितकांडों (तेज बाणों) से रथ, दंति, बाजियों को खूब मारकर, एक-एक निशात (तेज) शर से सैनिकाबलि के मद को दबाकर, इस प्रकार उसके अमानुष लीला से पराक्रम दिखाने पर ८५४ [कं.] दुर्मानवहर के अद्भुत कर्म की, मेरुपर्वत [सम] धैर्य [वाले] [तथा] विगत भय [वाले] प्रद्युम्न की उभय सैनिक प्रकरों ने निर्मल मति से स्तुति की। ८५५ [व.] उस अवसर पर ८५६ [उ.] सांब को साल्व

लबुंबवियेनु बाणमुल नुन्नत वक्षमु गाडनेसि शा-
तांबक विंशतिन्नतनि सौभक मल्ललनाड नेसिलन् ॥ 857 ॥

च. गदुडु महोग्रवृत्ति निजकार्मुक निर्गत विस्फुरद्विधुं-
तुद वदनाभ बाण विततुल् परगिंचि विरोधि मस्तकुल्
गुदुलुग गुच्चि यॆत्तुचु नकुंठित विक्रम केळि लोलुडै
चदल सुरल् नुतिंप रथिसत्तमुडॊप्पॆ नरेंद्र-चंद्रमा ! ॥ 858 ॥

उ. सात्यकि चंडरोषमुन साल्व महीवरु भूरि सौभ सां-
गत्यचतुर्विधोग्र बलगाढ तमःपटलंबु भासुरा
दित्य मयूखपुंज रुचि तीव्र शरंबुल मापि सैनिक-
स्तुत्य पराक्रम प्रकट दोर्बलुडै विलसिल्लॆ भूवरा ! ॥ 859 ॥

उत्साहमु भानुविंदुडुद्धतिन् विपक्ष पक्ष सैन्य दु-
र्मानिकाननलोपमान चंड कांड सं-
तानमून नेसि चूर्णितंबु सेसॆ जाप वि-
द्यानिरूढि देवता वितानमिच्च मॆच्चगान् ॥ 860 ॥

उत्साहमु चारुदेष्णुडाग्रहिंचि शत्रु भीषणोग्र दो-
स्सार दर्प मेर्पडन् निशात बाण कोटिचे
दारुण प्रताप साल्वदंडनाथ मंडलिन्
मारि रेगिनट्लु पिल्कु मार्चि पेर्चि यार्चिनन् ॥ 861 ॥

भूविभु ने सायकजाल (तीरों का समूह) डालकर मारा तो जांबवती-तनूभव ने चाप को सज्य करके (धनुष पर बाण चढ़ाकर), उसके पास जाकर साल्व को पन्द्रह बाणों से उन्नत वक्ष पर छोड़कर शातांबक-विंशति (बीस तेज़ बाण) से उसके सौभक (विमान) को डाँवाँडोल कर दिया तो ८५७ [च.] हे नरेंद्र-चंद्र, गद महोग्रवृत्ति से निज कार्मुक से निर्गत विस्फुरत् विधुंतुद (राहु) के वदन के समान आभावाले (प्रकाशमान) बाण विततों का (समूह का) प्रयोग करके, विरोधियों के मस्तकों को, गुच्छों में चुभोकर उठाते हुए, अकुंठित विक्रम केलिलोल बनकर वह रथिसत्तम ऐसा प्रकाशमान हुआ जिसकी आकाश पर सुर स्तुति करे। ८५८ [उ.] सात्यकि चंडरोष में साल्व महीवर के भूरि सौभ-सांगत्य चतुर्विधोग्रबल (रूपी) गाढ़ तम.पटल को, भासुर आदित्यमयूख-पुंजरुचि (रूपी) तीव्र शरों से दूर करके, हे भूवर! सैनिक-स्तुत्य-पराक्रम-प्रकट-दोर्बलवाला बनकर विलसित हुआ। ८५९ [उत्साह.] भानुविंद ने उद्धति से विपक्ष पक्ष सैन्य के दुर्मानि-कानन-अनल से उपमान चंड-कांड-संतान का नाश करके चूर्ण कर दिया ताकि उसकी चाप-विद्या-निरूढि की देवता-वितान प्रशंसा करे। ८६० [उत्साह.] चारुदेष्ण के, आग्रह (क्रोध) पाकर, शत्रु भीषण उग्र दोस्सार दर्प, अंत हो जाय,

कं. शुकु डायोधनविजयो, -त्सुकमति बाहाबलंबु चॊप्पड विशिख
प्रकरंबुल दनुशौर्या, -धिकुडन विद्वेषि वलतति वरिमार्चॆन् ॥ 862 ॥

उ. सारणुडॆपुमै गदिसि शात्रव वीरुलु संचलिप दो-
स्सार मॆलर्पगुंत शरशक्ति गदाक्षुरिकादि हेतुलन्
वारक वाजि दंति रथवर्गमुलं दुनुमाडि काल्वुरन्
वीरमु तोड बंपॆ जमु वीटिकि गापुर मुग्र मूर्तियै ॥ 863 ॥

कं. अक्रूरुडु ददनुजुलु न, -वक्र पराक्रममु मॆरसि वैरुल बाहा-
विक्रममुन वधियिंचिरि, चक्र प्रासादि विविध साधनमुलचेन् ॥ 864 ॥

म. कृतवर्म क्षिति नायकुंडु विशिखश्रेणि प्रमत्तार्यधि-
श्रित वर्मंबुल जिंचि मेनुल शतच्छिद्रंबुलं जेय न-
द्भुत कर्मंबनि सैनिकुल् वॊगड शत्रुल् दूलुचो संगर-
क्षितिधर्मंबु दलंचि कार्चॆ रथिकश्रेष्ठुंडु भूमीश्वरा! ॥ 865 ॥

व. अय्यवसरंबुन साल्वुंडु कोपोद्दीपितमानसुंडै युंड माया विडंबकुंबैन सौभकंबप्पुडु ॥ 866 ॥

निशात-बाण कोटि से दारुण प्रतापवाले साल्व की दंडनाथमंडलि को ऐसा मार डाला मानों महामारिप्रकोपित हुई हो। अतिशय के साथ गरजने पर ८६१ [कं.] शुक ने आयोधन (युद्ध) में विजयोत्सुक मति से, [अपने] बाहाबल के अनुसार, विशिख प्रकर से, ताकि लोग उसे शौर्याधिक कहें, विद्वेषिबल-तति का संहार किया। ८६२ [उ.] सारण ने पराक्रम के साथ (शत्रुओं से) लगकर, ताकि शात्रव वीर संचलित हो जायँ और बाहुबल का अतिशय हो जाय, उग्रमूर्ति बनकर, कुंत शर, शक्ति, गदा, क्षुरिका आदि हेतुओं (साधनों) से बिना किसी संकोच के वाजि, दंति, रथ वर्गों को काटकर, पदाति को, वीरता के साथ, यम के घर में निवास करने भेज दिया। ८६३ [कं.] अक्रूर और उसके अनुजों ने चक्र, प्रास आदि विविध साधनों से, अवक्र पराक्रम के साथ प्रकाशमान होकर [अपने] बाहा-विक्रम से वैरियों का वध किया। ८६४ [म.] हे भूमीश्वर! कृतवर्मा नामक क्षिति-नायक ने विशिख श्रेणी से प्रमत्त आर्यधिश्रित वर्मों को फाड़कर, शरीरों में शत छिद्रों को करने पर सैनिकों के इस प्रकार प्रशंसा करने पर कि अद्भुत कर्म है, शत्रुओं के गिर जाने पर उस रथिक श्रेष्ठ ने संगर-क्षिति-धर्म की चिन्ता करके [उसकी] रक्षा की। ८६५ [व.] उस अवसर पर साल्व के कोपोद्दीपित मानस [वाला] बनकर रहने पर माया-विडंबक होनेवाला सौभक तब ८६६ [सी.] एक

सी. ऒकमाटु नभमुन ब्रकटंबुगा दोचु नॊकमाटु धरणिपैनॊय्य निलुचु
नॊकमाटु शैलमस्तकमुन वर्तिचु नॊकपरि चरियिंचु नुदधि नडुम
नॊक्क तोयंबुन नॊक्कटियै युंडु नॊक्कॆड गनुगॊन बॆक्कुलगुनु
नॊकमाटु साल्व संयुक्तमै पॊडसूपु नॊकतोयमन्नियु नुडिगि तोचु

आ. नॊक्क तेप कॊरवि युडुगक त्रिप्पिन
गति महोग्रवृत्ति गानवच्चु
मरियु बॆक्कु गतुल नरिवरुल् गलगंग
दिरिगॆ सौभकंबु धीवरेण्य ! ॥ 867 ॥

व. इव्विधंबुन सौभकंबु वर्तिचुटं जेसि यदुसैन्यंबुलचेत दैन्यंबु नॊंदिन निज
सैन्यंबुल मरलं बुरिकॊल्पि साल्वुंडप्पुडु ॥ 868 ॥

कं. स्फुरदनलाभ शरंबुलु
पॊरि पॊरि बुंखानुपुंखमुलुगानेयं
दॆरलियु मरलियु मुरिसियु
विरिसियु बिरुतिवक पोरॆ वॆस यदुबलमुन् ॥ 869 ॥

कं. अय्यॆड मानमु वदलक, डय्यक मगपाडितो दृढंबुग बोरन्
दय्यमॆरुंगुनु नॆक्कटि, कय्यंबपुडय्यॆ बेरु गलयोधुलकुन् ॥ 870 ॥

बार नभ पर प्रकट रूप से दिखाई पड़ता; एक बार धरणि पर आकर ठहर जाता; एक बार शैल के मस्तक पर चलता; एक बार उदधि के बीच चलता; एक बार अकेला रहता; एक बार देखने से अनेक रूपों में दिखाई पड़ता; एक बार साल्व संयुक्त होकर दिखाई पड़ता; एक बार सबसे रिक्त होकर दिखाई पड़ता; [आ.] एक बार ऐसा दिखाई पड़ता जैसे जलती हुई लकड़ी को लगातार घुमाने से जैसे दिखाई पड़ती हो, वैसे महोग्र वृत्ति से दिखाई पड़ता है। हे धीवरेण्य ! [वह] सौभक और भी अनेक गतियों में इस प्रकार घूमता रहा जिससे अरिवर व्याकुल हो जाएँ। ८६७ [व.] इस प्रकार सौभक के घूमने से यदु-सेनाओं से (दीनता) दैन्य को प्राप्त निज सेनाओं को फिर से उकसाकर साल्व के तब ८६८ [कं.] स्फुरत् अनल की आभा (कांति) के समान होनेवाले शरों को बार-बार पुंखानुपुंखों में डालने पर, हटकर, फिरकर, व्याप्त होकर और पीछे न हटकर यदुवलों (सेनाओं) ने अतिशय के साथ युद्ध किया। ८६९ [कं.] तब उन नामी योद्धाओं में अभिमान को न छोड़कर, न थककर, शौर्य के साथ दृढ़ रहकर युद्ध करने पर, दैव ही जानता है कैसा भयंकर युद्ध हुआ। ८७० [कं.] पहले प्रद्युम्न-कुमार के घन

कं. मुनु प्रद्युम्न कुमारुनि
घन निशितास्त्रमुल चेत गड्ु नौच्चिन सा-
ल्वुनि मंत्रि द्युमन्नामुड्
सुनिशित गद चेनर्मंचि सुमहित शक्तिन् ॥ 871 ॥

च. वॅरवुनु लावु जेवयुनु वीरमु बीरमु गलिग डासि या
सरसिजनाभनंदनु बिशाल भुजांतरमु वगिल्चनन्
विरविर वोयि मेनु निडुलॅड़्क वॅट्टग जेति साधनो-
त्करमुलु देरिपै वदलि कन्नुलु मूयुचु मूर्छनौदिनन् ॥ 872 ॥

आ. समर धर्मवेदि समधिक नयवादि
दारुकुनि सुतुंड्ु धैर्ययुतुड्
रथमु दोलिकौनुचु रणभूमि वॅडलि वे
चनियॅ मूर्छदेरि शंबरारि ॥ 873 ॥

उ. सारथि जूचि यिट्लनियॅ शात्रव वीरुलु सूचि नव्वगा
देरु रण क्षितिन् वॅडल दॅच्चिचति तॅच्चिचति दुर्यशंबु पं-
केरुहनाभुडुन् हलियु गेलि कौनन् यदुवंश संभवुल्
बीरमु दप्पि यिप्पगिदि बॅल्कुरि पोवुदुरे रणंबुनन् ॥ 874 ॥

व. अनिन नंतंडतनि किट्लनियॅ ॥ 875 ॥

कं. रथि रिपुचे नौच्चिन सा-
रथियुनु सारथियु नौव्व रथियुनु गावं

निशितास्त्रों से वहुत पीड़ित साल्व के मन्त्री द्युम नामक (योद्धा) ने सुनिशित गदा से सिद्ध होकर सुमहित शक्ति से ८७१ [च.] उपाय, वल, शक्ति, वीरता और धैर्य के साथ (शत्रु के पास) जाकर उस सरसिज-नाभ के नंदन के विशाल भुजांतर को तोड़ डाला तो 'विर-विर' ध्वनि करते हुए शरीर के रोंगटों के खड़े होने पर [अपने] हाथ के साधनोत्करों को रथ पर छोड़कर आँखें वन्द करते हुए मूच्छित हो जाने पर ८७२ [आ.] समर-धर्मवेदी (जाननेवाला), समधिक नयवादी, दारुक का सुत, जो धैर्ययुत था, रथ को हाँकते हुए रणभूमि को छोड़कर जल्दी चला गया; मूर्च्छा के टल जाने पर शंबरारि ने ८७३ [उ.] सारथि को देखकर इस प्रकार कहा, "शात्रव वीर देखकर हँसें, रथ को रणक्षिति से बाहर लाये हो; (ऐसे करने से) दुर्यश को लाये हो; जिससे पंकेरुहनाथ और हलि हँसें, यदुवंश-संभव धैर्य को खोकर इस प्रकार रण में बिह्वल होकर [भाग] जायेंगे ?" ८७४ [व.] ऐसा कहने पर उसने उससे इस प्रकार कहा ८७५ [कं.] "जव रथी रिपु से मारा जाता है, तब सारथि और

बृथुसमर धर्म मिक न-
व्यथ चित्तुडवगुचु गडगु वैरुल गॆलुवन् ॥ 876 ॥

अध्यायमु—७७

व. अनिन विनि ॥ 877 ॥

उ. संचित भूरिबाहुबल शौर्युडु सारथि माटकात्म मो-
दिंचि रवि प्रकांड रुचि दीपित चापमु दाल्चि मौर्वि सा-
रिंचि गुणध्वनिन् महदरि प्रकरंबुल भीति मुंचि तो-
लिंचॆ रथंबु मेदिनि चलिंपग ना द्युमु मीद नेर्पुनन् ॥ 878 ॥

व. अट्लु डग्गरि ॥ 879 ॥

च. अरितनुवष्टबाणमुल नाग्रहवृत्ति बगिलिच नाल्गिट
दुरगमुलन् वधिंचि यॊक तूपुन सारथि द्रुंचि रॆंट नि-
ष्ठुरतरकेतु चापमुलु चूर्णमु चेसि यॊकम्मुनन् भयं-
करमुग द्रुंचॆनद्द्युमुनि कंठमकुंठित विक्रमोद्धतिन् ॥ 880 ॥

म. कनि सांब प्रमुखादि योधवरुलुत्कंठात्मुलै मीनके-
तनु नग्गिंचि सुवर्ण पुंख निशितास्त्र श्रेणि संधिंचि सा-

सारथि के पीड़ित होने पर रथि की रक्षा करना पृथु (बड़ा) समर-धर्म है। अब अव्यथ चित्त होते हुए वैरियों को जीतने का प्रयत्न करो।" ८७६

अध्याय—७७

[व.] ऐसा कहने पर सुनकर ८७७ [उ.] संचित भूरि बाहुबल शौर्य [वाले] ने सारथि की बात के लिए [अपनी] आत्मा में मोद पाकर, रवि-प्रकांड-रुचि [से] दीप्त चाप को धारण करके, मौर्वि को खींचकर गुण-ध्वनि से महत् अरि-प्रकरों को भीति में डुबोकर, रथ को चालाकी से द्युम पर ऐसे चलाया कि मेदिनी चंचल हो जाय। ८७८ [व.] उस प्रकार नज़दीक जाकर ८७९ [च.] अरि की तनु को अष्ट बाणों से आग्रह-वृत्ति से तोड़कर, चार [बाणों से] तुरगों का वध करके, एक तीर से सारथि को मारकर, दो [बाणों] से निष्ठुरतर केतु चापों को चूर्ण बनाकर एक बाण से अकुंठित विक्रम उद्धति से भयंकर रूप में उस द्युम के कंठ को काट डाला। ८८० [म.] देखकर सांब प्रमुख आदि योधवरों ने उत्कंठात्मा वाले बनकर, मीनकेतन की प्रशंसा करके, सुवर्ण-पुंख-निशितास्त्र श्रेणि को धनुष पर चढ़ाकर, साल्व की सैन्यावलि के मस्तकों को अतिशय बल के

ल्वुनि सैन्यावळि मस्तमुल् वेरवुलावुन् मीरगा नोक्क य-
त्नुन वेत्रुंचिरि ताटि पंड्लु धर दोड्तोराल्चु चंदंबुनन् ॥ 881 ॥

व. अट्टि येड ॥ 882 ॥

स्रग्धर कूलुन् गुर्रंबु लेनुंगुलु धरगेंडयुं गुप्पलै नुग्गु नूचै
व्रालुन् देरुल् हतंबै वडिवडु सुभट व्रातमुल् शोणितंबुल्
ग्रोलुन् मांसंबु नंजुल् गोरुकु नेमुकलन् गुंपुलै सोलुचुन् बे-
ताळक्रव्याद भूतोत्करमुलु जतलै ताळमुल् दट्टियाडुन् ॥ 883 ॥

व. मरियु नोक्कयेड ॥ 884 ॥

सी. खंडित शुंडाल गंडमुल् नक्रमुल् भूरितुंडंबुलु भुजग समिति
पदतलंबुलु कच्छपंबुलु दंतमुल् शुक्तुलु कुंभ निर्मुक्त मौक्तिक-
कमुलु रत्नमुलु वालमुलु जलूकमुल् मेडलु भेकंबुलु मेदडु रोंप
प्रेवुलु पवडंपु दीवेलु नरमुलु नाचु मज्जंबु फेनंबु लस्थि

आ. सैकतमुलु रक्तचयमु तोयंबुलु
नीरगु नेडल नीरलु मोरलु घन त-
रंग रवमुगा मतंगजायोधन
स्थलमु जलधि बोल्प दगें नरेंद्र ! ॥ 885 ॥

व. इव्विधंबुन यदु साल्व बलंबुलु चलंबुन बरस्पर जयकांक्षलं दलपडि पोरु
पूर्व पश्चिम समुद्रंबुल वडुवुन निरुवदि येडु दिनंबुलति घोरंबुगा बोरु-

बढ़ जाने पर एक दम ऐसे तोड़ डाला जैसे ताड़ के फलों को जल्दी-जल्दी धरा पर गिराते हैं। ८८१ [व.] तब ८८२ [स्रग्धर] घोड़े और हाथी मरकर और चूर-चूर होकर, धरा(भूमि) पर ढेरों में पड़े हुए थे; रथ गिर रहे थे; सुभट-व्रात (-समूह) हत होकर जल्दी-जल्दी गिर रहे थे; शोणित (रक्त) को पीते हुए, मांस को खाते हुए, हड्डियों को काटते हुए, भीड़ों में दौड़ते हुए वेताल [और] क्रव्याद भूतोत्कर जोड़ों में (युगल) ताल बजाते हुए खेल रहे थे। ८८३ [व.] और एक जगह पर ८८४ [सी.] हे नरेंद्र! खंडित सूंड़ों के गंडस्थल रूपी मगरों, भूरि सूंड़ रूपी भुजग समितियों, पदतल रूपी कच्छपों, दाँत रूपी शुक्तियों, कुंभों से निर्मुक्त मौक्तिक रूपी रत्नों, पूंछ रूपी जलूकों, गर्दन रूपी मेंढकों, मस्तिष्क रूपी कीचड़, आँतड़ें रूपी विद्रुम-लताओं, नस रूपी शैवाल, मज्जा रूपी फेन, अस्थियाँ रूपी [आ.] सैकतों, रक्तचय रूपी जलों, [मरकर] गिरते समय होनेवाले शब्द तरंगों के रव के समान होकर मतंगजायोधन (युद्ध)-स्थल जलधि की तुलना करने लायक बना। ८८५ [व.] इस प्रकार यदु साल्व बलों (सेनाओं) का मात्सर्य से परस्पर जय-कांक्षाओं से एक-दूसरे से लगकर

नेंड निंद्रप्रस्थपुरंबुन नुंडि द्वारका नगरंबुनकु नगधरुंडु चनुदेर मुंदरं गान-
वच्चु दुर्निमित्तंबुलं गनुंगोनि कृष्णुंडु दारुकुनि जूचि यिट्लनियें ॥ 886 ॥

शा. कंटे दारुक ! दुर्निमित्तमुलनेकंबुल् महाभीलमुन्
मिटन् मेदिनि दोचुचुन्नयवि नेंम्मिन् खांडवप्रस्थ मे-
नुंटंजैद्यहित क्षितीश्वरुलु मायोपायुलै मत्पुरिन्
गेंटिपं जनुदेर बोलुदुरु पोनी तेरु वेगंबुनन् ॥ 887 ॥

व. अनि यति त्वरित गति जनुदेंचि तत्पुरंबु डग्गरि महाबल पराक्रमंबुलं
ब्रतिपक्षंबुल तोड दलपडि पोरु यदुबलंबुलनु नभोवीथि नभेद्य माया विडंब-
नंबुन ब्रतिवीरुलेंत कालंबुनकु नेयुपायंबुननु साधिप नलविगानि सौभक
विमानंबु नंदुन्न साल्वुनि गनि तद्विमानंबु डायं दन तेरु दोल सारथिनि
नियमिचि कदियंजनु मुरांतकुनि वीक्षिचि यदु सैनिक प्रकरंबुलु परमा-
नंदंबुनं बौंदिरि। मृत प्रायंबुलै युन्न सैन्यंबुल गनुगोनि सौभक पति विक्रम
क्रिया कलापुंडगुचु नुरवडिचि ॥ 888 ॥

च. मिणुगुरुलेल्लेडं जेंदरि मिटनु मंटलु पर्व घंटिका
घणघण भूरि निस्वन निकायमुनन् हरिदंतराळमुल्

किया जानेवाला युद्ध पूर्व-पश्चिम समुद्रों की तरह सत्ताईस दिन अति घोर रूप से हुआ, युद्ध होते समय, इन्द्रप्रस्थपुर से द्वारका नगर को कृष्ण के आने पर सामने दिखाई पड़नेवाले दुर्निमित्तों (अरिष्टों) को देखकर कृष्ण ने दारुक को देखकर इस प्रकार कहा। ८८६ [शा.] "[हे] दारुक ! [क्या तुम] देखते हो, अनेक दुर्निमित्त जो महान् भयंकर हैं, आकाश और भूमि पर दिखाई पड़ रहे है; स्नेहवश [मेरे] खांडवप्रस्थ में रहने के कारण चैत्यहितू-क्षितीश्वर मायोपाय करनेवाले बनकर मत्पुरि [मेरी पुरी) को चंचल बनाने के लिये आये हुए से लगते हैं; रथ को जल्दी जाने दो।" ८८७ [वं.] इस प्रकार कहकर अति त्वरित गति से आकर तत्पुर के पास जाकर महाबल पराक्रम से प्रतिपक्षों के साथ लगकर लड़नेवाले यदुबलों को (सेनाओं को), नभोवीथि में अभेद्यमाया की विडंबना से प्रतिवीरों के बहुत समय तक किसी भी उपाय से साधित (विजित) न हो सकने के कारण सौभक विमान में रहनेवाले साल्व को देखकर उस विमान के पास जाने के लिए अपने रथ को हाँक ले जाने के लिए सारथि को नियमित करके [अपने] पास आनेवाले मुरांतक को वीक्षित करके [देखकर] यदु-सैनिक प्रकरों ने परमानद को प्राप्त किया। मृतप्राय होकर रहनेवाले सेनाओं को देखकर सौभक-पति ने विक्रम क्रिया-कलाप वाले होते हुए जल्दी करके ८८८ [च.] अग्नि-कणों के सर्वत्र तितर-बितर होकर आकाश पर ज्वालाओं को फैलाने पर, घंटिका के घणघण भूरि निस्वन-निकाय (-समूह)

वणक महोग्र शक्ति गॊनि वारक दारुकु मीद वॆव दा-
रुण गति निगिनुंडि निजरोचुलतो वडुचुवक कॆवडिन् ॥ 889 ॥

कं. वडि जनुदॆरग गनि य-
प्पुडु नगधरु डलति लील बोलॆन् दानि
बॊडि पॊडियै धर दॊरगग
नडुमन वॆस द्रुंचॆ नॊक्क नाराचमुनन् ॥ 890 ॥

च. गुरुभुजु डंत बोवक यकुंठित शूरत शत्रु सैन्यमुल्
दॆरलग नुग्रतं गॊऱवि द्रिप्पिन कॆवडि मिंट दिर्दिरं
दिरुगुचु दुर्निरीक्ष्यमगु दीपित सौभकु साल्वु जंड भा-
स्कर किरणाभ षोडश निशात शरंबुल गाड नेसिनन् ॥ 891 ॥

च. कडुवडि नलिग वाडु निज कार्मुकमुन् जलदस्वनंबु कै
वडि मॊरयिंचुचुन् वॆडद वाति शरंबुल बद्मलोचनु-
न्डॆडम भुजंबु गाड वडि नेसिन दॆंपऱि चेति शार्ङ्गमुन्
विडिचॆ रथंबुपै गगनवीथि सुरल् भयमंदि चूडगन् ॥ 892 ॥

कं. हाहायनि भूतावळि हाहाकारमुलु सेय नंतट चेऱ-
न्रा हरि गनुगॊनि यतडु, -त्साहंबुन वलिकॆ बाहु शौर्यस्फूर्तिन् ॥ 893 ॥

से घोड़ों और हाथियों के कंपित होने पर महोग्र शक्ति को प्राप्त करके विना संकोच के दारुक पर डाला तो,दारुण गति से आकाश से निज रुचि (कांति) से गिरनेवाली उल्का की तरह ८८९ [कं.] जल्दी आ जाने पर, देखकर तब नगधर ने छोटी लीला की तरह उसको एक बाण से बीच में शीघ्र ऐसे तोड़ डाला कि वह चूर-चूर होकर धरा पर बह गया। ८९० [च.] गुरुभुजाओं वाले ने उससे तृप्त न होकर अकुंठित शूरता से शत्रु-सेनाएँ घबरावें, उग्रता के साथ जलनेवाली लकड़ी को घुमाने की तरह आकाश पर मँड़राते हुए दुर्निरीक्ष्य [और] दीप्त सौभ [तथा] साल्व पर चंड भास्कर किरणों की आभा [वाले] षोडश निशात शरों को ज़ोर से डालने पर ८९१ [चं.] बड़ी तेज़ी से उसने निज कार्मुक को जलदस्वन की तरह गरजाते हुए बड़े तेज़ बाणों को पद्मलोचन की बाईं भुजा पर डाला तो साहसी (कृष्ण) ने [अपने] हाथ के शार्ङ्ग के रथ पर ऐसे छोड़ दिया कि गगनवीथि में सुर डरकर देखें। ८९२ [कं.] भूतावलि के "हा हा" कहकर हाहाकार करने पर तब [समीप] आने पर उस हरि को देखकर उसने बाहुओं की शौर्यस्फूर्ति से उत्साह के साथ इस प्रकार कहा। ८९३ [च.] "हे

च. नळिनदळाक्ष ! मत्सखुडु ना दगु चैद्युडु गोरिनट्टि को-
मलि नविनीतिमै दगवु मालि वरिंचितिवंत बोक दो-
र्बलमुन धर्मनंदनु सभास्थलि नेमरि युन्न वानि न-
च्चलमुन जंपितट्टि कलुषंबुन नेडु रणांगणंबुनन् ॥ 894 ॥

कं. तलचेंडि पारक बाहा-
बल मोप्पग नाडु दृष्टि-पथमुन धृति तो-
निलिचिन निष्ठुर विशिखा-
र्चुल मुंचि मदीय सखुनि सूडिदु दीर्तुन् ॥ 895 ॥

च. अनिन मुरांतकुंडु दरहासमु मोमुन दोंगलिप सा-
ल्वुनि गनि योरि ! लावु बलुवुं गल पोटरि वोलें ब्रेलदे-
मनिननु बाटु सन्निहितमौट यॆरुंगवु मूढचित्त ! पो-
म्मनि गद गेल द्रिप्पि यभियातुनि जत्रुवु व्रेसेनुद्धतिन् ॥ 896 ॥

व. अट्लु व्रेसिन ॥ 897 ॥

कं. पेनुमूर्छ नोंदि वेस मु-
वकुन वातनु नेत्तुरोलक गोंत वडिकि नो-
ध्यन दॆलिसि निलुवरिपक
चने वाडु नदृश्युडगुचु सौभमु दानुन् ॥ 898 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 899 ॥

नलिनदलाक्ष ! मत्सखा कहलानेवाले चैद्य ने जिस कोमली को चाहा उस कोमली को अविनीत बनकर झगड़ा कर भगा ले जाना [तुमने] चाहा। उससे तृप्त न होकर, दोर्बल से धर्मनंदन की सभास्थलि में प्रमत्त रहनेवाले को क्रोध से मार डाला। ऐसे कलुष के कारण आज रणांगण में ८९४ [कं.] सिर झुकाकर भाग न जाकर, बाहुबल अच्छा लगे, ऐसा मेरे दृष्टि-पथ में खड़े रहनेवाले [तुम्हें] निष्ठुर विशिखार्चियों में डुबोकर, इधर देखो, मदीय सखा की रक्षा करूँगा।" ८९५ [च.] ऐसा कहने पर मुरांतक ने दरहास के, मुख पर अधिक होने पर साल्व को देखकर यों कहकर कि "हे मूढ़चित्त [वाले] ! रे, बहुत बड़ा बल रखनेवाले वीर की तरह बक रहे हो; जो कुछ भी कहो, तुम नहीं जानते कि तुम्हारी मौत सन्निहित है। जाओ।" गदा को हाथ में लेकर घुमाकर उद्धति से अभियात शत्रु पर डाल दिया। ८९६ [व.] ऐसा डालने पर ८९७ [कं.] बड़ी मूर्च्छा को पाकर शीघ्र ही नाक और मुँह से खून के बहने पर, कुछ देर के बाद चैतन्य को पाकर ठहर न सककर, वह अदृश्य होकर, सौभ के साथ चला गया। ८९८ [व.] उस अवसर पर ८९९ [ते.] गगन पर से एक [व्यक्ति] आर्त

ते. गगन मंदुंडि योकडार्तुडगुचु वच्चि
नंदनंदनु पादारविंदमुलकु
वंदनमु चेसि यानकदुंदुभिनि म-
होग्रुडै पट्टि तॆच्चॆ साल्वुंडु गडगि ॥ 900 ॥

ते. देव ! मीकॆरिंगिंपगा दिविरि यिटकु
देवकीदेवि नन्नु बुत्तॆंचॆ ननग
विनि सरोरुहनाभुंडु घन विषाद-
मग्नुडय्यॆनु गुरु मीदि ममत जेसि ॥ 901 ॥

कं. नर गंधर्व सुरासुर
वरुलकु निर्जिपरानि वाडु बलुंडे-
मरुक रय हीनबलुचे
वरिकिंपग नॆट्लु पट्टुवडॆ नोको यनुचुन् ॥ 902 ॥

व. मरियुनु ॥ 903 ॥

कं. भावंबु गलग नाहा, दैवकृतं बव्वरिकिनि दप्पिपग रा-
देविधि नैननु ननि शो, -काविलमति बलुकुचुन्न नत्तरि वाडुन् ॥ 904 ॥

व. तन माया बलंबुन ग्रस्मरं दोचि कृतक वसुदेवुनि गल्पिंचि यतनि वंधिंचि-
कॊनि तॆच्चि पुंडरीकाक्ष ! निरीक्षिंपु। भवज्जनकुंडु वीडॆ। इप्पुडुनीवु
गनुंगोन वीनितल द्रुंतु। इंक नॆव्वनिकिगा मनियॆदु ? कावंगल शक्ति गल
-देनियुं गावुमनि दुरालापंबुलाडुचु मृत्यु जिह्वा कराळंबैन करवालंबु

बनते हुए आकर नंदनंदन के पादारविंदों का वंदन करके बोला कि प्रयत्न करके साल्व महोग्र होकर आनकदुंदुभि (वसुदेव) को पकड़ लाया । ९०० [ते.] हे देव ! आपको सूचित करने के लिए, इच्छा करके, देवकी देवी ने मुझे यहाँ भेज दिया। यह सुनकर सरोरुहनाभ गुरु (पिता) पर होनेवाली ममता के कारण घन विषादमग्न हो गया। ९०१ [कं.] नर, गंधर्व, सुर, असुरवरों के लिए निर्जित होने में अशक्य होनेवाला बलवान, प्रमत्त होकर रथहीन बलवान से, देखने पर, किस प्रकार पकड़ा गया। ऐसा सोचते हुए ९०२ [व.] और भी ९०३ [कं.] भाव के आने पर "अहा ! दैवकृत किसी प्रकार किसी से टाला नहीं जाता।" इस प्रकार कहकर शोक की विकलमति से बोलते समय वह ९०४ [व.] अपने मायाबल से जल्दी ढकेलकर कृतक वसुदेव की कल्पना करके उसे बाँधकर लाकर, "पुंडरीकाक्ष ! निरीक्षण करो [देखो]; भवज्जनक यही है; अब तुम्हारे देखते रहने पर इसका सिर काट डालूँगा। अब किसके लिए जीवित रहोगे ? बचाने की शक्ति हो तो बचाओ।" इस प्रकार दुरालाप

गेलंबूनि जळिपिचुचु नम्मायावसुदेवुनि शिरंबु दुनिमि तन्मस्तकंबु गोनि
वियद्वर्तियै चरियिंचु सौभक विमानंबु सोच्चें । अंत गोविंदुंडु गोंत दडवु
मनंबुन घनंबगु शोकंबुन गुंदुचुंडि यात्मसैनिकुलु देलुपं देलिवोंदि यदि
मयोदितंबैन साल्वुनि मायोपायंबनि येरिंगें । अंत दनकु वसुदेवुंडु पट्टुवडें-
ननि चेप्पिन दूतयु निम्माया कळेबरंबुनु नाक्षणंब विचित्रंबुगा मायंबै
पोयें । अनंतरंब ॥ 905 ॥

कं. मुनुलपुडु गोंदरुचटिकि
जनुदेंचि विमोहियैन जलजदळाक्षुं
गनुगोनि समधिक भक्तिन्
विनयंबुन बलिकिरंत विष्णुन् जिष्णुन् ॥ 906 ॥

सी. कमलाक्ष सर्वलोकमुलंदु सर्व मानवुलु संसार नानाविधैक
दुःखाब्धि मग्नुलै तुदि जेर नेरक विकलत्वमुन बोंदु वेळ निन्नु
दलचि दुःखंबुल दरियिंतुरट्टि सद्गुण निधिवै देवकोटि कोल्ल
बट्टु गोम्मै परब्रह्माख्य बोगडोंदि परम योगीश्वर प्रकर गूढ

ते. परचिदानंद दिव्य रूपमुन वेलुगु
दनघ ! नीवेड नीच जन्मात्म जनित
घन भय स्नेह मोहशोकंबु लेड
ननुचु संस्तुति चेसि वाररिगिरंत ॥ 907 ॥

करते हुए मृत्युजिह्वा [की तरह] कराल होनेवाले करवाल को हाथ में लेकर हिलाते हुए उस माया वसुदेव का सिर काटकर तन्मस्तक को लेकर वियत्वर्ती बनकर घूमनेवाले सौभक [अपने] विमान में घुस गया। तब गोविंद ने कुछ देर तक मन में घन (बड़े) शोक मे पड़े रहकर आत्मसैनिकों के समझाने पर चैतन्य को पाकर यह जान लिया कि वह मायोदित साल्व का मायोपाय है। तब वह दूत जिसने कहा कि वसुदेव पकड़ा गया और वह माया-कलेवर उसी क्षण विचित्र गति से अदृश्य हुए। इसके बाद ९०५ [कं.] तब वहाँ कुछ मुनि आकार विमोहित होनेवाले जलजदलाक्ष को देखकर समधिक भक्ति से विनय के साथ विष्णु और विजयी से तब बोले। ९०६ [सी.] "[हे] कमलाक्ष ! सर्व लोकों में सर्वमानव संसार नाना विधैक दुःखाब्धि [में] मग्न होकर अंत को पहुँच न सककर विकलता को पाते समय तुम्हारी चिन्ता करके ही दुःखों को पार करते हैं। वैसे, सद्गुण-निधि बनकर सारी देव कोटि के लिए आधार बनकर परब्रह्माख्य होकर, हे परम योगीश्वर! प्रकर गूढ़ [तत्त्ववाले]! [ते.] परचिदानंद दिव्य रूप में प्रकाशमान होनेवाले अनघ ! तुम कहाँ, नीच जन्मात्मजनित घन-भय, स्नेह, मोह [और] शोक कहाँ ?" इस प्रकार संस्तुति करके तब वे चले

च. हरि तनमोद घोर निशिताशुग जालमु लेयु साल्व भू-
वरु वधियिंप गोरि बहु वारिदवृष्टि वि-
स्फुरण ननून तीव्रशर पुंजमुलन् गगनंबु गप्पि क्र-
च्चर रिपुमौळि रत्नमुनु जापमु वर्ममु द्रुंचि वॅंडियुन् ॥ 908 ॥
म. वितत क्रोधमु तोड गृष्णुडु जगद्विख्यात शौर्य क्रियो-
द्धतशक्तिन् वडिद्रिप्पि मिंट मॅरुगुल् दट्टंबुगा बर्वं नु-
ग्रत जंचद्गद वैचि त्रुंचॅ वॅस जूर्णंबै धरन् राल ना
यतभूरि त्रिपुराभमुन् महित माया शोभमुन् सौभमुन् ॥ 909 ॥
व. अट्लु कृष्णुंडम्मय निर्मित माया विमानंबु निज गदाहति निर्तितलु
तुनियलै समुद्र मध्यंबुनं दोरंगं जेसिन साल्वुंडु कोरलु वॅरिकिन भुजंगंबु
गंडंगि विन्ननै विगत माया बलुंडय्युनु बोलि वोवनि बीरंबुन वसुधातलं-
बुनकु डिगि याग्रहंबुन ॥ 910 ॥
कं. करमुन पवि निभमगु भी-
कर गद धरियिंचि कदियगा जनुदेरन्
मुरहरु डुद्धति साल्वुनि
करमु गदायुक्तमुगनु खंडिचॅ नृपा ! ॥ 911 ॥

गये। ९०७ [च.] हरि (कृष्ण) अपने ऊपर घोर निशिताशुग-जाल (-समूह) को डालनेवाले साल्व भूवर का वध करने की इच्छा करके वह वारिदों से निर्गत भूरि वृष्टि विस्फुरण से अनून तीव्र शरपुंजों से गगन को ढककर शीघ्र ही रिपु मौलि-रत्न को, चाप को और वर्म (कवच) को तोड़कर, फिर ९०८ [म.] वितत क्रोध के साथ कृष्ण ने जगद्विख्यात शौर्य क्रियोद्धत शक्ति से तेज घुमाकर, जिससे आकाश पर कांतियों के बहुत फैल जाने पर, उग्र रूप में चंचत् गदा को डालकर शीघ्र ही चूर्ण होकर धरा पर गिर पड़ने पर आयत (दीर्घ) भूरि त्रिपुराभा, महित माया शोभा (युक्त) सौभ को तोड़ डाला ९०९ [व.] उस प्रकार कृष्ण के उस मय-निर्मित माया-विमान को निज गदा हति से छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर समुद्र के बीच में फेंक देने पर साल्व दाँतों के निकाले गए भुजंग की भाँति पराक्रमहीन बनकर विवर्ण तथा विगत माया बल [वाला] बनकर भी व्यर्थ न होनेवाले पराक्रम से वसुधातल पर उतरकर आग्रह (क्रोध) से ९१० [कं.] कर [हाथ] में पवि (वज्रायुध)-निभ (-सम) होनेवाले भीकर गदा को धारण करके आक्रमण करने आने पर, हे नृप ! मुरहर ने उद्धति से साल्व के गदायुक्त कर (हाथ) का खंडन किया। ९११ [कं.] उससे

कं. अंतं बोवक किनुक न, -नंतुडु विलयार्क मंडलायत रुचि दु-
दांतंबगु चक्रंबु नि, तांतंबुग बून्चि साल्व धरणिपु मीदन् ॥ 912 ॥

कं. गुरु शक्ति वैचि वॅस भा-
सुरकुंडल मकुट रत्न शोभितमगु त-
च्छिरमु वडि द्रुंचॅ निद्रुडु
वर ,कुलिशमु चेत वृत्रु वधियिंचु क्रियन् ॥ 913 ॥

अध्यायमु—७८

श्रीकृष्णुडु दंतवक्त्रुनि संहरिंचुट

व. इट्लु मायाविय़ैन साल्वुंडुनु सौभकंबुनु गृष्णुचेतं वॊलियुट गनुंगॊनि निज सखुलगु साल्व पौंड्रक शिशुपालुरकु पारलौकिक क्रियलु मैत्रि गाविंचि दंतवक्त्रुंडति भीषणाकारंबुतो नप्पुडु ॥ 914 ॥

च. पॅटपॅटबंड्लु गोट्टुचुनु बॅट्टुग म्रोयुचु गन्नु ग्रेवलं
जिटचिट विस्फुलिंगमुलु च्चिद महोद्धत पाद घट्टन-
न्नट यिटयं धरित्रि वडकाड वडिन गद केल द्रिप्पुचुन्
मिटमिट मंडु वेसविनि मिंचु दिवाकरु बोलि युग्रतन् ॥ 915 ॥

तृप्त न होकर क्रोध से अनंत ने विलयार्क-मंडलायत रुचि (कांति) से दुर्दांत होनेवाले चक्र को नितांत से (अधिक बल से) पकड़कर साल्व धरणिप (राजा) पर ९१२ [कं.] गुरु (बड़ी) शक्ति से डालकर शीघ्र ही भासुर कुंडल-मकुट-रत्न शोभित होनेवाले तच्छिर (उसके सिर) को शीघ्र ऐसे काट डाला जैसे इन्द्र [अपने] वर (श्रेष्ठ) कुलिश (वज्रायुध) से वृत्र का वध करता है। ९१३

अध्याय—७८

श्रीकृष्ण का दंतवक्त्र का संहार करना

[व.] इस प्रकार मायावी होनेवाले साल्व [और] सौभक के कृष्ण के द्वारा नष्ट किए जाने पर देखकर निज सखा होनेवाले साल्व, पौंड्रक और शिशुपाल की पारलौकिक क्रियाएँ मित्रता के वश कराकर, दंतवक्त्र के अति भीषणाकार के साथ तब ९१४ [च.] दाँतों को कटकटाते हुए, ज़ोर से गरजते हुए, आँखों के कोनों से टपटप विस्फुलिंगों के बरसने पर, महोद्धति से पादघट्टन करते हुए, धरित्री के काँपने पर वेग से गदा को [अपने] हाथ में घुमाते हुए, भयंकर-गर्मी के साथ जलनेवाले दिवाकर की तरह उग्रता से ९१५

च. वडि जनुदेर जूचि यदुवल्लभु डुल्लमु पल्लविप न-
प्पुडु गद गेलबूनि रथमुन् रथमॊप्पग डिगि युग्रतं
गडगि विरोधिकिन्नॆदुरुगा जन वाडतिनीचवर्तियै
यडरुचु नट्टहास मुखुडै वलचे गद द्रिप्पुचुन् हरिन् ॥ 916 ॥

व. कनुंगॊनि परिहासोक्तुलुगा निट्लनियॆ। नीवु मदीय भाग्यंबुनं जेसि नेडु ना दृष्टि-पथंबुनकु गोचरुंडवैतिवि। मित्रद्रोहिवैन निन्नु मातुलेयुंडवनि मन्निपक देहंबुनंदु वर्तिचु नुग्रव्याधि नौषधादि क्रियल निर्वर्तिपं जेयु चिकित्सकुनि चंदंबुन बंधुरूपशात्रवुंडवु गावुन निन्नु दंभोळि संरंभ गंभीरंबैन मदीय गदा दंडहति बरेत निवासंबुनकनिचि मुन्नु नीचेत निहतुलैन नादु सखुल ऋणंबु दीर्तुननि दुर्भाषलाडुचु डग्गरि ॥ 917 ॥

च. पॆनुगद बूनिच कृष्णु तल वॆट्टुग मॊत्तिन नंकुशाहति-
गनलॆडि गंधसिंधुरमु कैवडि सिंधुर भंजनुंडु पॆं-
पुन पवि भासमान गदबूनि महोग्रत द्रिप्पि दंतव-
क्त्रुनियुरमु बगिल्चिन गुदुल्कॊनुचुन् रुधिरंबु ग्रक्कुचुन् ॥ 918 ॥

व. तत्क्षणंब पर्वताकारंबगु देहंबुतो नीरलुचु नेलंगूलि केशपाशंबुलु चिक्कुवडं दन्नुकॊनुचु प्राणंबुलु विडिचे। अप्पुडु निखिल भूतंबुलु नाश्चर्यंबु नॊंद

[च.] जल्दी आ जाने पर देखकर यदुवल्लभ के मन के पल्लवित होने पर, तब गदा को हाथ में लेकर रथ से जल्दी उतरकर उग्रता से, प्रयत्न करके विरोधी के सामने जाने पर, उसने अति नीच होकर गरजते हुए अट्टहास-मुखी बनकर अपने हाथ से गदा को घुमाते हुए हरि को ९१६ [व.] देखकर परिहासोक्तियों से इस प्रकार कहा। तुम मदीय भाग्य के कारण आज मेरे दृष्टि-पथ में गोचर हुए। मित्र-द्रोही होनेवाले तुमको मातुलेय का गौरव न देकरके, देह में वर्तमान उग्रव्याधि को औषधादि क्रियाओं से निवृत्त करनेवाले चिकित्सक की तरह, बंधुरूप शात्रव हो; इसलिए दंभोलि (वज्रायुध) संरंभ गंभीर होनेवाली मदीय गदा-दंड-हति से परेत-निवास (यमलोक) को भेजकर, पहले तुमसे निहत अपने सखाओं के ऋण से विमुक्त हो जाऊँगा।" ऐसा कहते हुए दुर्भाषाएँ बोलते हुए समीप जाकर ९१७ [च.] बड़ी गदा को लेकर कृष्ण के सिर पर जोर से मारा तो अंकुश से आहत होकर क्रोधित होनेवाले गंध-सिंधुर की तरह सिंधुर-भंजन ने अतिशय से पवि (वज्र) [के समान] भासमान गदा को लेकर महोग्रता के साथ घुमाकर दंतवक्त्र के उर को तोड़ डाला तो नीचे गिरते हुए रुधिर को उगलते हुए ९१८ [व.] उसी क्षण पर्वताकार में होनेवाली देह के साथ गिरते हुए जमीन पर (ढेर होकर) गिरकर केश-पाशों के उलझने पर हाथ-पैर पीटते हुए प्राणों को छोड़ दिया। तब निखिल भूत

दद्गात्रंबुन नुंडि योक्क सूक्ष्म तेजंबु वॅलुवडि गोविंदुनि देहंबु प्रवेशिचॅ
नय्यवसरंबुन नग्रजु मरणंबु गनुंगॉनि कुपितुंडै गनुंगवल निप्पुलुप्पतिल्ल
विदूरथुंडु कालानल ज्वालाभील करालंबैन करवालंबुनु वलकयुं गेलं दाल्चि
दामोदरुदॅसकु गवयुटयुं गनुंगॉनि ॥ 919 ॥

च. जलरुह लोचनुंडु निजसाधनमै तनरारु चक्रमुन्
वलनुग बून्चि वैव नदि वारक वानि शिरंबु द्रुंचॅ न-
व्वलियुडु सौभ साल्व शिशुपाल सहोदर तत्सहोदरा-
वलुल वधिंचि तत्कुलमु वारि ननेकुल द्रुंचॅ नी गतिन् ॥ 920 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 921 ॥

कं. नरमुनि योगि सुरासुर, गरुडोरग सिद्ध साध्य गंधर्व नभ-
श्चर किन्नर किंपुरुषुलु, हरि महिम नुतिंचिरद्भुतानंदमुलन् ॥ 922 ॥

व. मरियुनप्सरोजनंबुलु नृत्यंबुलु सलुप, वेल्पुलु कुसुम वर्षंबुलु गुरिय, देवतूर्यंबु-
-लवार्यंबुलै मोरय, यदुवृष्णि प्रवरुलु सेविंप, परमानंदंबुनं बॊंदि निज
विजयांकितंबुलैन गीतंबुलु वंदि जनंबुलु संकीर्तनंबुलु सेय नति मनोहर
विभवाभिरामंबुनु नूतनालंकारंबुनुनैन द्वारका नगरंबु शुभ मुहूर्तंबुनं
ब्रवेशिपंजनुनॅड ॥ 923 ॥

आश्चर्यचकित हो जाएँ, तद्गात्र से एक सूक्ष्म तेजस् निकलकर गोविंद की देह में प्रविष्ट हुआ। उस अवसर पर अग्रज के मरण (मृत्यु) को देखकर कुपित होकर, आँखों के कोनों से आग के बरसने पर, विदूरथ के कालानल ज्वाला-भील-कराल होनेवाले करवाल को [और] ढाल को हाथ में लेकर दामोदर की ओर जाते हुए देखकर ९१९ [च.] जलरुहलोचन ने अपना साधन होकर प्रकाशमान होनेवाले चक्र को युक्ति से पकड़कर डाला तो उसने बिना किसी संकोच के उसके सिर को काट डाला। उस बलवान ने सौभ, साल्व, शिशुपाल-सहोदर [और] तत्सहोदरावलियों का वध करके उस कुल के अनेकों को इस प्रकार मार डाला। ९२० [व.] उस अवसर पर ९२१ [कं.] नर, मुनि, योगी, सुर, असुर, गरुड़, उरग, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, नभश्चर, किन्नर, किंपुरुष ने अद्भुत आनंद में हरि की महिमा की स्तुति की ९२२ [व.] और अप्सराजनों के नृत्य करने पर, देवताओं के कुसुमों की वर्षा बरसाने पर, देवतूर्यों के अवार्य होकर बजने पर, [और] यदु-वृष्णि-प्रवरों के सेवा करने पर, परमानंद को पाकर, निजविजयांकित गीतों को वंदिजनों के संकीर्तन करने पर, अति मनोहर विभवाभिराम [तथा] नूतनालंकार होनेवाले द्वारका नगर में शुभ मुहूर्त में प्रवेश करने के लिए चलते समय ९२३ [कं.] पुरसतियों के पुष्पों [और] लाजों को

कं. पुरसतुलु विरुलु लाजलु
गुरु सौधाग्रमुल नुंडि कुरियग विकचां-
बुरुहाक्षुं डंतःपुर-
वरमथि जोच्चि वैभवं बलरारन् ॥ 924 ॥

व. अट्लु सनि योगीश्वरुंडुनु षड्गुणैश्वर्य संपन्नुंडुनु निखिल जगदीश्वरुंडुनुनैन पुरुषोत्तमुंडु सुखंबुंडे नंत ॥ 925 ॥

बलरामुंडु तीर्थयात्रकु जनुट

कं. कौरव पांडव पृथु समर-
रारंभ मेंरिगि तीर्थयात्र नेपमुगा
सीरांकु डुभयकुलुलकु
नारय समुडगुट जेसि यरिगें नरेंद्रा ! ॥ 926 ॥

व. अट्लु चनि मोदलं ब्रभासतीर्थंबुन नवगाहंबु सेसि यंदु देवर्षि पितृ तर्पणंबुलु संप्रीति गाविंचि विमल तेजो घनुलगु भूसुर प्रवरुलु दनतो नरुगुदेरं गदलि चनि क्रमंबुन सरस्वतियु बिंदु सरोवरंबुनु वज्र तीर्थंबुनु विशाला नदियु सरयुवुनु यमुनयु जाह्नवी तीर्थंबुनं गनुंगोनुचु नचट नचट नवगाहन देवर्षि पितृ तर्पण ब्राह्मण संतर्पणंबुलनु भूसुरयुक्तुंडै नडपुचुं जनि सकल लोक-स्तुत्यंबुनु निखिल मुनि शरण्यंबुनगु नैमिशारण्यंबु सोच्चि यंदु दीर्घ सत्रंबु

गुरु (बड़े) सौधाग्रों पर से बरसाने पर, विकचांबुरुहाक्ष (कृष्ण) अंतःपुर-वर में शोभायमान होकर प्रवेश करके, वैभव के बढ़ जाने पर ९२४ [व.] उस प्रकार जाकर योगीश्वर, षड्गुणैश्वर्यसंपन्न [और] निखिल जगदीश्वर होनेवाला पुरुषोत्तम सुख से रहा। तब ९२५

बलराम का तीर्थयात्रा के लिए जाना

[कं.] हे नरेंद्र ! कौरव-पांडव पृथु समर के आरंभ को जानकर तीर्थयात्रा के बहाने से बलराम उभयों से लिए समान होने के कारण, चला गया। ९२६ [व.] वैसे जाकर पहले प्रभासतीर्थ में अवगाहन (स्नान) करके, उसमें देव-ऋषि-पितृ तर्पण संप्रीति से करके, विमलतेजोधनी [होनेवाले] भूसुर प्रवरों के साथ आने पर चलकर, जाकर क्रम से सरस्वती, बिंदुसरोवर, वज्रतीर्थ, विशाला नदी, सरयू ,यमुना [और] जाह्नवी तीर्थ को देखते हुए, कहीं-कहीं अवगाहन, देवर्षि-पितृ-तर्पण, ब्राह्मण-संतर्पण, भूसुरयुक्त होकर चलाते हुए जाकर, सकललोकस्तुत्य और निखिल मुनिशरण्य [होनेवाले] नैमिशारण्य में प्रवेश करके उसमें दीर्घ सत्र को चलानेवाले

नडुपुचुन्न मुनिजनंबुलं गनुंगोनिन वारनु प्रत्युत्थानंबु सेसि रामुनकु विनतुलै यासन पूजा विधानंबुलु गाविंचिन नतंडुनु प्रमुदित मानसुंडगुचु सपरिवारंबुगा गूर्चुन्न यॆड ॥ 927 ॥

क. आनॆड्डि दनु गनि प्रत्यु, -त्थान नमस्कार विधुलु दगनडपक बॆं-
पूनिन पीठमु पै ना, -सीनुंडगु सूतु शेमुषी विख्यातुन् ॥ 928 ॥

व. कनुंगोनि यतनि समीपंबुननुन्न विप्रवरुलं जूचि रामुंडु रोषिंचि वीडु नन्नुं गनिलेवकुंडुटकु हेतु वॆय्यदियॊको ! ई प्रतिलोम जातुंडु मुनिगण सभास्थलंबुन दानॊक्क मुख्युंड पोलॆं दुरभिमानंबुन शक्ति ननुसनि वलन गॊन्नि कथलु गाथलुगा नरचि विद्वद्गण्युनि विधंबुन विर्रवीगंडुनु । नीचात्मुंडभ्यसिंचु विद्यलॆल्लनु मनंबुन विचारिंचि चूचिन मद कारणंबुलु गानि सत्त्वगुणगरिष्ठंबुलु गावु । धर्म संरक्षणंबु सेय नवतरिंचिन माकु निट्टि दुष्ट मर्दनंबवश्य कर्तव्यंबनि तलचि हस्तंबुन धरिंचिन कुशाग्रंबुन नासूतुनि वधिंचिन नक्कडि मुनींद्रुलॆल्ल हाहाकारंबुतोडं दालांकुनि जूचि यिट्लनिरि ॥ 929 ॥

कं. अनघा! यितनिकि ब्रह्मा, -सनमे मिच्चुटनु नीवु चनुदे नितडा-
सनमु दिगडय्यॆ नितयु, मुनु नीमदि नॆरुग नर्थमु गलदे हली ! ॥ 930 ॥

मुनिजनों को देखा तो उन्होंने प्रत्युत्थान करके राम (वलराम) की विनति करके आसन-पूजा-विधान किया तो उसके प्रमुदित मानस होते हुए, सपरिवार बैठने पर ९२७ [कं.] उस प्रकार उसे देखकर प्रत्युत्थान, नमस्कार विधियों का आचरण न करके उन्नत पीठ (आसन) पर आसीन होनेवाले शेमुषी विख्यात सूत को ९२८ [व.] देखकर उसके समीप रहनेवाले विप्रवरों को देखकर राम क्रोध पाकर, "इसके मुझे देखकर न उठने का हेतु क्या हो सकता है ? यह प्रतिलोम-जात मुनिगण युक्त सभास्थल में स्वयं एक मुखिया की तरह दुरभिमान से शक्ति के पोल से कुछ कथाओं [और] गाथाओं को सीखकर विद्वद्गण्य की तरह गर्व करता है । नीचात्मा के द्वारा अभ्यस्त सभी विद्याएँ, मन में विचार करके देखें तो सभी मद-कारण हैं, लेकिन सत्त्वगुणगरिष्ठ नहीं हैं; धर्माचरण करने के लिए अवतरित हमको इस प्रकार के दुष्ट का मर्दन अवश्य कर्तव्य है ।" इस प्रकार सोचकर [अपने] हस्त में धारण किए हुए कुशाग्र से उस सूत का वध किया तो वहाँ के सब मुनींद्रों ने हाहाकारों के साथ तालांक (बलराम) को देखकर इस प्रकार कहा । ९२९ [कं.] "हे अनघ ! इसको हमने ब्रह्मासन दिया, इस कारण तुम्हारे आने पर यह आसन से नहीं उतरा । क्या ऐसी कुछ बात है, हे हली ! जो तुम पहले से नहीं जानते हो ? ९३० [कं.] हे दुर्जन-

कं. ऐरिगॆरिगि ब्रह्महत्या, -दुरितंबुन नी मनंबु दूकॊनॆ वापो-
त्तरण प्रायश्चित्तमु, दीरकॊनि काविपुमय्य ! दुर्जन हरणा ! ॥ 931 ॥

व. अद्दियुनुं गाक परम पावनुंडवैन नीवु धर्मंबु दप्पिन नॆव्वरु मान्पंगलरु ? कावुन प्रायश्चित्तंबु गैकॊनि नडवकुन्न धर्मंबु निलुवदु। अट्लु गावुन दीनिकि प्रतिकारंबु पुट्टिंपुमनिन, नतंडु वाररलं गनुंगॊनि तामसंबुन निट्टि पापंबु सेयंबडियॆ। दीनिकि मुख्य पक्षंबुन प्रतिकृति यॆरिंगिपुडु, वीनिकि नायुवुनु वहु सत्त्वंबु नॊसंगिन मीकिष्टंबगु नेनट्लु ना योगमायचे गाविंतुनन, नम्मुनुलु नी यस्त्र माहात्म्यंबुनकु मृत्युवुनकु माकु नॆव्विधंबुन वैकल्यंबु नॊद-कुंडुनट्लु गाविपु मनिन नतंडंदरं जूचि यप्पुडु ॥ 932 ॥

कं. धात्रीवर ! समधिक चा-
रित्रुडु हलपाणि पलिकॆ धृति नात्मावै-
पुत्रक नामासि यनु प-
वित्रश्रुति वाक्य सरणि विशदंबगुटन् ॥ 933 ॥

कं. ई सूतसूनु डिपुड् म-
हासत्त्वमु नायुवुनु ननामयमुनु वि-
द्यासामर्थ्यमु गलिगि सु-
धी-सत्तमुलार ! यी क्षितिन् विलसिल्लुन् ॥ 934 ॥

व. अनि सूतुं बुनर्जीवितुंगा जेसि मुनुलं जूचि यिट्लनियॆ ॥ 935 ॥

हरण ! जान-बूझकर तुम्हारा मन ब्रह्महत्या-दुरित में लग गया है; प्रयत्न करके पापोत्तरण-प्रायश्चित्त करो। ९३१. [व.] इसके अतिरिक्त परम पावन होनेवाले तुम अगर धर्म से विचलित होते तो कौन रोक सकता है ? इसलिए प्रायश्चित्त करके नहीं चलते तो धर्म न टिकता। इसलिए इसके प्रतीकार की सृष्टि करो।" ऐसा कहने पर उसने उनको देखकर "तामस में ऐसा पाप किया गया है; इसके मुख्य पक्ष में प्रतिकृति सूचित कीजिए। इसको आयु बहुसत्त्व दूँ तो अगर आपको पसन्द है तो मैं वैसे ही अपनी योगमाया से करूँगा।" ऐसा कहने पर उन मुनियों ने कहा, "ऐसा करो कि तुम्हारे अस्त्र-माहात्म्य को, मृत्यु को [और] हमको किसी प्रकार का वैकल्य न होने पावे।" ऐसा कहने पर उसने सबको देखकर तब ९३२ [कं.] हे धात्रीवर! समधिक-चारित्र युक्त होनेवाला हलपाणी बोला, "धृति से 'आत्मावै पुत्रक नामासि' नामक पवित्र श्रुति की वाक्य-सरणि के विशद होने के कारण ९३३ [कं.] हे सुधीसत्तम ! यह सूत-सून (पुत्र) अब महा सत्त्व, आयु, अनामय और विद्या-सामर्थ्य पाकर इस क्षिति पर विलसित होगा।" ९३४ [व.] इस प्रकार कहकर सूत को पुनरुज्जीवित करके

ते. एनॅरुंगक चेसिन यी यवज्ञ
शांति वॉदग नेदि यभीष्टंबु सोकु
दानि गाविंतु ननिन मोदंबु नॉदि
पलिकिरत्तापसुलु हलपाणि जूचि ॥ 936 ॥

च. हलधर ! यिल्वलुंडनु सुरारितनूजुडु पल्वलुंडु ना
गलडॉक दानवुंडु बलगर्वमुनं ब्रतिपर्वमंदु न-
च्चलमुन वच्चि मा सवन शालल मूत्रसुरास्र पूय वि-
ट्पललमुलोलिमै गुरिसि पाडर जेयुनु यज्ञ वाटमुल् ॥ 937 ॥

व. कावुन ना दुष्ट दानवु द्रुंचुटय माकुं गरंबु संतसंबगु । अंत नीवु विमल चित्तुंडवै भारत वर्षंबुनं गल तीर्थंबुलु द्वादश मासंबुलवगाहनंबु सेयुमु । अट्लयिन सर्वपाप निष्कृति यगुननि पलुकु नंत बर्व समागमंबैन ॥ 938 ॥

अध्यायमु—७९

सी. मुनुलु यज्ञ क्रियोन्मुखुलौट गनुगॉनि पटॅतेंचि यसुरतद्भवनमुलनु
रक्त विण्मूत्र सुरा मांसजालंबु निंचि हेयंबु गाविंचि पॅलुच
बॅंधूळि राजुनु बॅल्ललु नुरलॅंडु चक्रानिलमु वीचि चदल नपुडु
काटुक कॉंड संगति बॉल्चु सेनु ताम्रश्मश्रु केश समाजमुलुनु

मुनियों को देखकर इस प्रकार कहा। ९३५ [ते.] "अनजान में की गई इस अवज्ञा से शांति को पाने के लिए आपका अभीष्ट क्या है? मैं वह करूँगा।" ऐसा बोलने पर वे तापसी मोद पाकर हलपाणि को देखकर यों बोले। ९३६ [च.] "हे हलधर! इल्वल नाम के सुरारि का तनूज पल्वल नामक एक दानव है! वह बल-गर्व से प्रति पर्व में आकाश-मार्ग से आकर हमारी सवन (यज्ञ)-शालाओं पर मूत्र, सुरा, अस्र (रक्त), पूय (पीब) और विट् (मल) पलल (मांस) एक के बाद एक को फेंककर यज्ञ-वाटिकाओं को अशुद्ध कर देता है। ९३७ [व.] इसलिए उस दुष्ट दानव को मार डालना हमारे लिए अधिक इष्ट है। इसके अनन्तर, तुम विमलचित्त [वाले] बनकर भारतवर्ष में होनेवाले तीर्थों में द्वादश मास अवगाहन (स्नान) करो। ऐसे करने से सर्वपापों की निष्कृति होगी।" ऐसा बोलने पर पर्व-समागम होने पर ९३८

अध्याय—७९

[सी.] मुनियों का यज्ञ-क्रियोन्मुख होना देखकर, आकर असुर तद्भवनों को रक्त से, विण्मूत्र (मल-मूत्र) से, सुरा (मद्य) से [और]

ते. नव्य चर्मांबरमु भूरि नासिकयुनु
गट्टकु मिडिग्रुड्लु निप्पुलु ग्रक्क दृष्टि
व्रेलु पॆदवुलु दीर्घ कराळ जिह्वि-
कयुनु मुडिवड्ड बॊमलुनु गलुगु वानि ॥ 939 ॥

महास्रग्धर. कनियॆं दालांकु डुद्यत्कट चटुल नटत्काल दंडाभ शूलुन्
जन रक्तासिक्त तालुन् समधिक समरोत्साहलोलुं गठोरा-
शनि तुल्योदग्र दंष्ट्राजनित शिखिकणाच्छादिताशांतराळुन्
हनन व्यापार शीलुन्नति दृढ घन मस्तास्थिमालुं गराळुन् ॥ 940 ॥

उ. वॆंडियु ग्रॊम्मॆरुंगुलुडु वीथि वॆलुगंग नुल्लसद् गदा-
दंडमु गेल द्रिप्पुचु नुदारत रा बलभद्रुडा सुरो-
द्दंड विघातुलौ मुसल दारुण लांगलमुल् दलंप मा-
र्तांड निभंबुलै यॆदुर दत्क्षणमात्रन तोचिनन् वॆसन् ॥ 941 ॥

व. अट्लु सन्निहितंबुलैन कार्यसाधनंबुलगु निजसाधनंबुलु धरियिंचि यप्पुडु ॥ 942 ॥

मांस-जाल (समूह) से भरकर हेय बनाकर, बड़ी धूलि को, पत्थरों को, मिट्टी के बड़े-बड़े पत्थरों को लुढकानेवाले चक्रानिल को बहाकर, आकाश पर, तब काजल के पहाड़ की तरह शरीर, ताम्रश्मश्रु केश जाल [ते.] नव्य चर्मांबर, भूरि नासिका, कठिन [और] बड़ी-बड़ी आँखों की पुतलियाँ, आग को बरसाती हुई दृष्टि, लटकनेवाले ओठ, दीर्घ कराल जिह्विका [और] उलझे हुए भौंहें धारण करनेवाले को ९३९ [महास्रग्धर] उद्यत्-कट-चटुल-नटत्-काल-दंडाभ-शूल को धारण करनेवाले को, जन के रक्त से सिक्त तालु वाले को, समधिक समर के उत्साह लोल को, कठोर अशनि-तुल्य उदग्र दंष्ट्राओं से जनित शिखिकणों से आच्छादित आशांत (दिगंत)-राल [वाले] को, हनन व्यापारशील को, उन्नति दृढ़ घन मस्त अस्थिमाला को धारण करनेवाले को [तथा] कराल को तालांक ने (बलराम ने) देखा। ९४० [उ.] [उस असुर के] फिर नई-नई कांतियों के उडुवीथी (आकाश) पर प्रकाशमान होने पर उल्लसत गदा-दंड को हाथ में घुमाते हुए, उदारता के साथ आने पर, बलभद्र ने असुरों के लिए उद्दंड विधान करनेवाले मुसल [और] दारुण लांगलों का स्मरण करने पर (उन आयुधों के) मार्तांड-निभ होकर [उसके] सामने वे आयुध तत्क्षण आ गये तो जल्दी ९४१ [व.] उस प्रकार सन्निहित होनेवाले [और] कार्य-साधन होनेवाले निज साधनों को धारण करके तब ९४२ [च.] गगन पर चरने

च. गगनमुनं जरिंचु सुरकंटकु कंठमु चेति नागटं
दगिलिचि रोकलॅत्ति बॅंडिदंबडरन् नडुनॅत्तिमोत्तिनन्
भुग भुग नॅत्तुरोल्क निल वोरगिलंबडॆ वज्र धारचे
वॅगि धर गूलु भूरि जगतीधरमुं बुरुडिप वॅद्दुगान् ॥ 943 ॥

व. अट्लु पल्वलुंडु मडिसिन ॥ 944 ॥

कं. मुनिवरुलु कामपालुनि
विनुतिंचिरि वेयु वेल विधमुल वृत्रुं
बुनिमिन यिद्रुनि नमरुलु
विनुतिंचिन रीति नपुडु विमलचरित्रा ! ॥ 945 ॥

ते. अंत नभिषिक्तु जेसि यत्यंत सुरभि
मंजुलाम्लान कंजात मालिकयुनु
नंचिताभरणमुलु दिव्यांबरमुलु
नर्थिनिच्चिन दाल्चि या हलधरुंडु ॥ 946 ॥

कं. देवेंद्रुबोलि योप्पॅनु
धीविलसितुडगुचु मूनिततिन् वीड्कॊनि तन्
सेविंचुचु गतिपय वि-
प्रावलि चनुदेर गौशिकाख्यंबुनकुन् ॥ 947 ॥

व. चनि यम्महानदि गृतस्नानुंडै यच्चोटु वासि सरयुवुनंबु ग्रुंकुलिडि प्रयाग नवगाहनंबु सेसि देवर्षि पितृतर्पणंबुलाचरिंचि पुलस्त्याश्रमंबु सोच्चि—

वाले (चलनेवाले) सुर-कंटक के कंठ को [अपने] हाथ के हल से लगाकर, मूसल को उठाकर बड़े ज़ोर से सिर पर बीच में मारा तो 'भुग-भग' (शब्द) से खून के उगलने पर वज्र की धारा से कटकर धरा पर गिरनेवाले भूरि जगतीधर की तरह अधिक शब्द से भूमि पर पेट के बल गिर पड़ा । ९४३ [व.] उस प्रकार पल्वल के मर जाने पर ९४४ [कं.] हे विमल-चरित्र वाले ! मुनिवरों ने कामपाल (बलराम) की, हज़ारों विधियों (प्रकारों) से, इस प्रकार विनुति की जैसे वृत्र को मारनेवाले इन्द्र की अमरों ने विनुति की । ९४५ [ते.] तब अभिषिक्त बनाकर अत्यंत सुरभि, मंजुल, अम्लान कजात-मालिका को, अंचित आभरणों को, दिव्य अंबरों (वस्त्रों) को, इच्छानुसार देने पर [उनको] धारण करके वह हलधर ९४६ [कं.] देवेंद्र की तरह विराजमान हुआ । धीविलसित होते हुए मुनि-तति (-समूह) को छोड़कर, उसकी सेवा करते हुए कतिपय विप्रावलि के आने पर कौशिकाख्य [नदी] को ९४७ [व.] जाकर, उस महानदी में स्नान करके उस प्रदेश को छोड़कर, सरयू में स्नान करके, प्रयाग में

गोमतिनि दर्शिंचि गंडकी नदि नुत्तरिंचि विदळित भवपाशयगु विपाशयं्दु दोगि शोण नदंबुन नाप्लावितुंडै गयनाडि गंगासागर संगमंबु दर्शिंचि महेंद्रनगरंबुन करिगि ॥ 948 ॥

कं. रामुडु गनुगॊनॆ भार्गव, -रामुन् रजनीश कुलधरावर नग सु-
त्रामुन् सन्नुत सुगुण, -स्तोमुं गारुण्य-सीमु सुजन-ललामुन् ॥ 949 ॥

आ. कनि नमस्करिंचि कौतुकं बलराल
नतनि वीडुकॊनि हलायुधुंडु
गॊमरु मिगिलि सप्त गोदावरिकि नेगि
यंदु दीर्थमाडि यचट गदलि ॥ 950 ॥

व. वेणि पंपासरस्सुलं जूचि भीमनदि केगि यंदु गुमार स्वामिनि दर्शिंचि श्रीशैलंबुनकुं जनि वेंकटाचलंबु दर्शिंचि कामकोटि शक्तिनि वीक्षिंचि कांचीपुरंबु गांचि कावेरिकि जनि यम्महावाहिनि नवगाहनंबु सेसि ॥ 951 ॥

स्रग्धर. सेविंचॆन् रंगधाममुन् श्रित निवह पयस्सिधु संपूर्ण सोमुं
गावेरी मध्य सीमुन् घनकलुष महाकालकूटोग्र भीमुन्
देवारि श्रीविरामुन् दिविज विनुत संदीपितानंत नामुन्
धीविज्ञानाभिरामुं द्रिभुवन विलसद्देवता सार्वभौमुन् ॥ 952 ॥

अवगाहन करके, देव, ऋषि, पितृ-तर्पण का आचरण करके, पुलस्त्य के आश्रम में जाकर, गोमती के दर्शन करके, गंडकी नदी को पार करके, विदलित भवपाशा होनेवाली विपाशा में डूबकर, शोण-नद में आप्लावित होकर, गया में स्नान करके, गंगा-सागर संगम के दर्शन करके [और] महेंद्र नगर को जाकर ९४८ [कं.] [बल] राम ने रजनीश-कुल-धरावर (रूप) नग (पर्वत) के लिए सुत्राम (इन्द्र), सन्नुत सुगुण स्तोम, कारुण्य सीम [तथा] सुजन ललाम [होनेवाले] भार्गव राम को देखा। ९४९ [आ.] देखकर नमस्कार करके कौतुक के बढ़ जाने पर हलायुध उससे बिदा होकर अधिक उत्साह से सप्त गोदावरी को जाकर उसमें स्नान करके, वहाँ से चलकर ९५० [व.] वेणी पंपासरों को देखकर भीम नदी को जाकर वहाँ कुमार स्वामी के दर्शन करके श्रीशैल को जाकर, वेंकटाचल के दर्शन करके, कामकोटि शक्ति का वीक्षण करके, कांचीपुर को देखकर, कावेरी में जाकर [और] उस महावाहिनी में अवगाहन करके ९५१ [स्रग्धर] श्रित निवह पयस्सिधु संपूर्ण सोम, कावेरी-मध्य सीम, घन कलुष महाकाल कूटोग्र भीम, देवारि श्रीविराम, दिविज विनुत, संदीपितानंत नाम, धी विज्ञानाभिराम, त्रिभुवन विलसद्देवता-सार्वभौम, रंगधाम की सेवा

व. अच्चोट्टु वासि वृषभाद्रि नॅक्कि हरिक्षेत्रंबु द्रॉक्कि मधुरापुरंबुन करिगि सेतुबंधनंबु गॅट्टि यच्चट बदिवेल पाडि मॉदवुल भूसुरुल किच्चि रामेश्वरुनि दर्शिंचि ताम्रपर्णिकि जनि मलयाचलं बॅक्कि यगस्त्युनि गनि नमस्करिंचि दक्षिणसमुद्रंबु दर्शिंचि कन्याख्य दुर्गादेवि नुपासिंचि पंचाप्सरसंबनु तीर्थंबुन नाप्लवनंबाचरिंचि गोकर्णंबुन निंदुमौळिनि दर्शिंचि द्वीपवतियैन कामदेविनि वीक्षिंचि दाटि बयोष्णिनि दर्शिंचि निर्विंध्यंबु गडचि दंडकावनंबुन करिगि माहिष्मतीपुरंबु वसियिंचि मनुतीर्थंबाडि क्रम्मर प्रभासतीर्थंबुनकु वच्चि यच्चटि ब्राह्मण जनंबुल वलन बांडव धार्तराष्ट्रुल भंडनंबुनंदु सकल राजलोकंबु परलोकगतुलगुटयु वायुनंदन सुयोधनुलु गदायुद्ध सन्नद्धुलै युंडुटयु नॅरिगि वारल वारिंचु तलंपुन नच्चटिकि जनि ॥ 953 ॥

ते. धर्मनंदनु दनकु वंदनमु सेयु
कृष्णु नरु माद्रि सुतुल वीक्षिंचि येमि
पलुककुग्र गदा दंड पाणुलगुचु
ग्रोधमुन बोरु भीम दुर्योधनुलनु ॥ 954 ॥

व. चूचि वारल डायंजनि यिट्लनियॅ ॥ 955 ॥

की। ९५२ [व.] उस प्रदेश को छोड़कर, वृषभाद्रि पर चढ़कर, हरि-क्षेत्र को छूकर (जाकर), मथुरापुर में जाकर सेतुबंधन को देखकर, वहाँ दस हज़ार नई ब्याई हुई गायों को भूसुरों को [दान में] देकर, रामेश्वर के दर्शन करके, ताम्रपर्णि को जाकर, मलयाचल पर चढ़कर, अगस्त्य को देखकर, नमस्कार करके, दक्षिण समुद्र के दर्शन करके, कन्याख्या दुर्गादेवी की उपासना करके पंचाप्सरस नामक तीर्थ में आप्लावन करके, गोकर्ण में इंदुमौलि के दर्शन करके, द्वीपवती होनेवाली कामदेवी को वीक्षित करके तापि [तथा] पयोष्णि के दर्शन करके, निर्विंध्य को पार करके, दंडकावन में जाकर, माहिष्मतीपुर में वसकर, मनुतीर्थ में स्नान करके, फिर प्रभास तीर्थ को आकर वहाँ के ब्राह्मण जनों से यह जानकर कि पांडवों [और] धार्तराष्ट्रों के भंडन (युद्ध) में सकल राजलोक परलोक-गत हुए हैं [और] वायुनंदन [तथा] सुयोधन गदा-युद्ध-सन्नद्ध हुए हैं, उनको रोकने के विचार से वहाँ जाकर ९५३ [ते.] अपने को वंदन करनेवाले धर्मनंदन को, कृष्ण, नर (अर्जुन) [और] माद्रि-सुतों को वीक्षित करके, कुछ न बोलकर उग्र गदा-दंड-पाणि होते हुए, क्रोध में लड़नेवाले भीम-दुर्योधनों को ९५४ [व.] देखकर [और] उनके पास जाकर ९५५ [सी.] "हे

सी. वीर पुंगवुलार ! विनुडु मी लोपल भूरि भुजा सत्त्वमुन नोकंडु
प्रकटिताभ्यास संपद्विशेषंबुन नोक्कंडु नधिकुडै युंट जेसि
समबलुलट्टुगान चर्चिपगा निद्दु जयमोक्कनिकि लेदु समरमंदु
गानयूरक पोरगा नेलमीकनि वारिप नन्योन्य वैरमुलनु

ते. नडरि तोल्लिटि दुर्भाषलात्मलंदु
दलचि तद्भाषणमुलपथ्यमुलु गाग
मोक्कलंबुन बोर ना मुष्टिकासु
रारि वीक्षिचि वीरि शुभाशुभमुलु ॥ 956 ॥

व. ऐट्लु गावलयु नट्ल यय्येडुं गाकयनि यच्चोट निलुवक युग्रसेनादि बंधु-प्रकरंबुलु परितोषंबुन नेदुर्कोन द्वारकापुरंबु सोच्चि यंदुंडि मगिडि नैमि-शारण्यंबुनकुं जनि यंदुल मुनिपुंगवुलनुमतिप नच्चट नोक्क मखंबु गाविचि बहु दक्षिणलोसगि यचित ज्ञान परिपूर्णुलगुनट्लगा वरंबिच्चि रेवतियुनुं दानुनु बंधुज्ञाति युतंबुगा नवभृथस्नानं बाचरिंचि यनंतरंब ॥ 957 ॥

च. विलसित माल्य चंदन नवीन विभूषण रत्न वस्त्रमुल्
पोलुपुग दालिच यंचित विभूति दलिर्चेनु बूर्णचंद्रिका-
कलित सुधांशुरेख नेसकं बॅसगन् निजबंधु लोचनो-
त्पलचयमुल्लसिल्ल बरि पांडुर चारु यशोविलासुडै ॥ 958 ॥

वीर पुंगव! सुनो; तुम [दोनों] में भूरि भुजासत्त्व से एक, प्रकटित अभ्यास संपद्विशेष से एक अधिक हैं। इसलिए तुम दोनों समबल वाले हैं; इसलिए चर्चा करने से तुममें समर में जय एक की भी नहीं है; इसलिए वृथा क्यों लड़ते हो?" ऐसा कहकर रोक देने से [ते.] अन्योन्य वैरों को अतिशय रूप में पहले की दुर्भाषाओं को आत्माओं में सोचकर तद्भाषणों के अपथ्य होने पर शौर्य के साथ लड़ने पर, वह मुष्टिकासुरारि देखकर "इनके शुभ [और] अशुभ ९५६ [व.] जैसे होने को हैं वैसे होंगे" यों कहकर वहाँ न ठहर कर उग्रसेन आदि बंधु-प्रकरों के परितोष से अगवानी करने पर द्वारकापुर में प्रवेश करके, वहाँ से फिर नैमिशारण्य में जाकर, वहाँ के मुनि-पुंगवों के अनुमति देने पर वहाँ एक मख [यज्ञ] को संपन्न करके, बहु (अनेक) दक्षिणाएँ देकर ऐसा वर देकर ताकि वे अंचित ज्ञान-परिपूर्ण बने, रेवती [और] वह स्वयं बंधु ज्ञातियुत होकर अवभृथ स्नान करके, अनंतर ९५७ [च.] विलसित माल्य, चंदन, नवीन विभूषण रत्न वस्त्रों को अच्छी तरह धारण करके अंचित विभूति से अधिक प्रकाशमान हुआ। पूर्णचंद्रिका-कलित-सुधांशु रेखा के बढ़ने पर बिजृंभित होकर निजबंधुओं के लोचन रूपी उत्पलचय के विकसित होने पर अधिक पांडुर (श्वेत) चारु (सुंदर) यशोविलास वाला बनकर, ९५८ [व.] इस प्रकार अनंत, अप्रमेय

व. इव्विधंबुन ननंतुंडु नप्रमेयुंडुनु माया मानुष विग्रहुंडुनु बलशालियुनैन बलदेवुंडति वैभवंबुन निजपुरंबु प्रवेशिंचि सुखंबुंडेननि चेप्पि यिट्लनिये ॥ 959 ॥

कं. हलधरु डमर्त्य चरितु-
डलघु भुजाबलु डीनर्चु नद्भुत कर्म-
बुलु पेक्कु नाल्गु मोमुलु
गल मेटियु लेक्क वेट्ट गलडे नरेंद्रा ! ॥ 960 ॥

अध्यायमु—८०

कुचेलोपाख्यानमु

च. अनिन मुनींद्रु गन्गोनि धराधिपुडिट्लनु बद्मपत्रलो-
चनुनि यनंत वीर्यगुण संपद वेमरु विन्ननैननं
दनियदु चित्त मच्युत कथा विभवं बोकमाटु वीनुलन्
विनिन मनोजपुष्प शरविद्धुडुनैन विराममोंदुने ? ॥ 961 ॥

व. अदियुनु गाक ॥ 962 ॥

च. हरि भजियिंचु हस्तमुलु हस्तमुलच्युतु गोरि म्रोक्कु त-
च्छिरमु शिरंबु, चक्रधरु जेरिन चित्तमु चित्त मिंदिरा-
वरुगनु दृष्टि दृष्टि, सुरवैरि नुतिंचिन वाणि वाणि, य-
क्षरु कथलानु कर्णमुलु कर्णमुले विलसिल्लु बो भुविन् ॥ 963 ॥

माया मानुष विग्रह वाला [तथा] बलशाली होनेवाला बलदेव अतिवैभव से निज पुर में प्रवेश करके सुख से रहा। इस प्रकार कहकर [आगे] यों कहा। ९५९ [कं.] हे नरेंद्र ! अमर्त्य चरित्र वाले, [और] अलघु भुजा-बल वाले हलधर के किये जानेवाले अद्भुत कर्म अनेक हैं। चार मुख वाला ब्रह्मा भी उन (कर्मों) को गिन सकता है। ९६०

अध्याय—८०

कुचेल का उपाख्यान (सुदामा की कथा)

[च.] ऐसा कहने पर मुनींद्र को देखकर धराधिप ने इस प्रकार कहा; पद्मपत्र-लोचन की अनंत वीर्य गुण संपदा (के बारे में) अनेक बार सुनने पर भी चित्त तृप्त नहीं होता। अच्युत कथा-विभव (के बारे में) एक बार कानों से सुनने पर क्या मनोज पुष्पशर-विद्ध भी विराम (आराम) पा सकता है ? ९६१ [व.] इसके अतिरिक्त ९६२ [च.] हरि का भजन करनेवाले

कं. हरिपाद तीर्थ सेवा
परुडै विलसिल्लुनट्टि भागवतुनि वि-
स्फुरितांगमुलंगमु ला
परमेश्वरु नॆरुग नाकु बलुकु मुनींद्रा ! ॥ 964 ॥

सी. अनुडु वेद व्यास तनयुडा यभिमन्यु तनयुनि जूचि यिट्लनियॆ ब्रीति
जनवर ! गोविंद सखुडु कुचेलुंडु ना नॊप्पु विप्रुंडु मान धनुडु
विज्ञान रागादि विरहित स्वांतुंडु शांतुंडु धर्म वत्सलुडु घनुडु
विजितेंद्रियुडु ब्रह्म वेत्त दारिद्र्यंबु वाधिप नॊरुल गार्पण्यवृत्ति

ते. नडुग बोवक तनकु दा नब्बिनट्टि
कासु पदिवेल निष्कमुल् गा- दलंचि
यात्म मोदिंचि पुत्र दाराभिरक्ष
यॊक विधंबुन नडपुचु नुंडुनंत ॥ 965 ॥

सी. ललित पतिव्रता तिलकंबु वंशाभिजात्य तद्भार्य दुस्सह दरिद्र
पीडचे गडुनॊच्चि पॆदवुलु दडुपुचु शिशुवुलाकटि चिच्चुचे गृशिंचि
मलमल माड्चु मानसं बॆरियंग वट्टॆंडोरॆमु माकु वॆट्टुमनुचु
वत्र भाजन धृत पाणुलॆन तनु जेरि वेडिन वीनुलु सूडिनट्ल

हस्त ही हस्त हैं, अच्युत की इच्छा करके (भक्ति से) झुकनेवाला सिर ही सिर है; चक्रधर के निकट पहुँचनेवाला चित्त ही चित्त है; इंदिरावर को देखनेवाली दृष्टि ही दृष्टि है; मुरवैरि की स्तुति करनेवाली वाणी ही वाणी है; अक्षर की कथाएँ जिन कर्णों में लगती हैं (प्रवेश करती है), वे ही कर्ण भुवि पर कर्ण कहलाने योग्य हैं। ९६३ [कं.] हे मुनींद्र ! हरिपाद तीर्थ सेवा-पर (सेवा में लगकर) होकर विलसित होनेवाले भागवत (भक्त) के विस्फुरित अंग ही अंग हैं; ऐसे बोलो कि मैं उस परमेश्वर को जान लूं। ९६४ [सी.] ऐसा कहने पर वेदव्यास के तनय (पुत्र) ने उस अभिमन्यु-तनय को देखकर प्रीति से इस प्रकार कहा, हे जनवर ! गोविंद का सखा कुचेल नामक एक मानधनी विप्र रहता था। [वह] विज्ञान, राग (अनुराग) आदि से विरहित, स्वांत, शांत, धर्मवत्सल [तथा] घन (बड़ा) विजितेंद्रिय, ब्रह्म-वेत्ता था। दारिद्र्य के पीड़ित करने पर दूसरों से कार्पण्य भाव से (भिक्षा) माँगने न जाकर [ते.] आपसे आप जो [पैसा] मिलता था, उसे दस हज़ार निष्क (सिक्के) समझ कर, आत्मा में मुदित होकर पुत्र, दारा की अभिरक्षा एक तरह (किसी न किसी तरह) करता रहता था तो ९६५ [सी.] तद्भार्या (उसकी भर्या) जो ललित, पतिव्रता-तिलक और वंशाभि-जात्या थी, दुस्सह दरिद्र पीड़ा से बहुत पीड़ित होकर, [अपने] ओठों को

ते. यैन नौंकनाडु वगचि निजाधिनाथु
जेरि यिट्लनि पलिकॅनो जीवितेश !
तट्टु मुट्टाडु निट्टि पेदरिकमिट्लु
नॅप दीनिकुपाय मूहिपवैति ॥ 966 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियॅ ॥ 967 ॥

ते. बाल सखुडैन यप्पद्मपत्रनेत्रु
गान नेगि दारिद्र्यांधकारमग्नु-
लैन ममु नुद्धरिपुमु हरिकृपा क-
टाक्ष-रवि-दीप्ति वडसि महात्म ! नीवु ॥ 968 ॥

व. मरियुनु ॥ 969 ॥

च. वरदुडु साधु भक्त जनवत्सलुडार्त शरण्युडिंदिरा-
वरुडु दयापयोधि भगवंतुडु कृष्णुडु दा गुशस्थली-
पुरमुन यादव प्रकरमुल् भजियिपगनुन्नवाडु नी
वरिगिन निन्नु जूचि विभुडप्पुड यिच्चु ननून संपदल् ॥ 970 ॥

म. कललोनं दनु मुन्नॅरुंगनि महा कष्टात्मुडैनट्टि दु-
र्बलुडापत्समयंबुनन् निज पदाब्जातंबुलुल्लंबुलो-
दलपन्नंतन मॅच्चि यातिहरुडै तन्नैन निच्चुन् सुनि-
श्चल भक्तिन् भजियिंचु वारिकिडडे संपद्विशेषोन्नतुल् ॥ 971 ॥

(लाला-जल से) आर्द्र करते हुए, शिशुओं के भूख की अग्नि से कृश होकर चट-चट जलते हुए, अपने मन की बात समझाने के लिए हमें मुट्ठी भर अन्न खिलाओ, ऐसा कहते हुए पत्र-भाजन-धृत-पाणी बनकर उसके पास जाकर प्रार्थना करने पर [ते.] कान भर गये तो एक दिन रोकर निज नाथ के पास जाकर यों बोली, "हे जीवितेश ! यह दारिद्र्य हमें घेरकर इस प्रकार (सता रहा है); इसे दूर करने का उपाय तुम नहीं सोच रहे हो।" ९६६ [व.] इस प्रकार कहकर फिर यों बोली। ९६७ [ते.] "हे महात्मा! तुम [अपने] बालसखा होनेवाले उस पद्मपत्रनेत्र (कृष्ण) को देखने जाकर दारिद्र्यांधकार में मग्न [होनेवाले] हमारा उद्धार करो, हरि-कृपा-कटाक्ष [रूपी] रवि [की] दीप्ति [को] पाकर [उद्धार करो] ९६८ [व.] और ९६९ [च.] वरद, साधुभक्त जन वत्सल, आर्त शरण्य, इंदिरावर, दयापयोधि [और] भगवान होनेवाला कृष्ण स्वयं कुशस्थली पुर में, यादव-प्रकरों के [उसकी] सेवा करने पर रहता है; तुम्हारे जाने पर, तुम्हें देखकर, वह विभु तब अनून संपदाओं को दे देगा। ९७० [म.] चाहे स्वप्न में ही क्यों न हो पहले उसको न जाननेवाला महा कष्टात्मा होनेवाले दुर्बल के आपतसमय में उसके पादाब्जातों की मन में

कं. अनि चॆप्पिन नम्मानिनि
सुनयोक्तुल कलरि भूमिसुरुडा कृष्णुं
गननेगुट यिह पर सा-
धनमगुननि मदि दलंचि तन सति तोडन् ॥ 972 ॥

तॆ. नीवु चॆप्पिन यट्ल राजीवनेत्रु
पाद पद्मंबु लाश्रयिपंग जनुट
परम शोभनमा चक्रपाणि किपुडु
गानुकेमैन गॊंपोव गलदॆ मनकु ॥ 973 ॥

तॆ. अनिन नय्यति, यौगाक यनुचु विभुनि
शिथिल वस्त्रंबु कॊंगुन बृथुक तंडु-
लमुल नीक कॊंचि मुडिचि नॆय्यमुन ननुप
जनियॆ गोविंद दर्शनोत्साहि यगुचु ॥ 974 ॥

व. अट्लु चनुचु दन मनंबुन ॥ 975 ॥

सी. द्वारका नगरंबु नेरीति जॊत्तुनु भासुरांतःपुरवासियैन
यप्पुंडरीकाक्षु नखिलेशु नॆव्भंगि दर्शिपगलनु तद्द्वारपालु-
रॆक्कडि विप्रुड विदेल वच्चॆदवनि यड्डपॆट्टिरे नपुडु वारि
केमैन बरिदान मिच्चि चॊच्चॆद नन्न नूहिप नर्थशून्युंडनेनु

चिंता करने पर, तृप्त होकर, आर्तिहर बनकर अपने को भी दे देगा। सुनिश्चल भक्ति से भजन करने (सेवा करने) वालों को क्या संपद्विशेषोन्नतियों को नहीं देता ?" ९७१ [कं.] ऐसा कहने पर उस मानिनी की सुनयोक्तियों से संतुष्ट होकर भूमिसुर ने यों मन में सोचकर कि उस कृष्ण को देखने के लिए जाना इह-पर साधक होगा, अपनी सती (पत्नी) से ९७२ [ते.] "जैसे तुम कहती हो, राजीवनेत्र के पादपद्मों के आश्रय में जाना परम शोभन है। उस चक्रपाणि के लिए ले जाने के लिए हमारे पास कुछ भेंट है ?" ९७३ [ते.] इस प्रकार कहा तो उस स्त्री के 'हाँ' कहकर विभु के शिथिल वस्त्र के दामन में पृथुल तंडुल (भुने हुए चावल) कुछ बाँधकर स्नेह-सहित भेज देने पर (कुचेल) गोविंद दर्शनोत्साही होते हुए चला गया। ९७४ [व.] वैसे जाते हुए अपने मन में, ९७५ [सी.] "द्वारका नगर में कैसे प्रवेश करूँगा ? भासुरांतःपुरवासी होनेवाले उस पुंडरीकाक्ष के, अखिलेश के किस प्रकार दर्शन करूँगा ? उसके द्वारपालक अगर पूछे कि तुम कहाँ के विप्र हो ? यहाँ क्यों आये हो ? और रोक दें तो उन्हें कुछ परिदान (रिश्वत) देकर अन्दर जाना चाहूँ तो सोचने पर मैं अर्थशून्य हूँ। [ते.] फिर भी मेरा भाग्य उसकी (कृष्ण की)

ते. नैन ना भाग्य मतनि दयार्द्र दृष्टि
गाक तलपोयगा नौडु गलदे यात-
डेल नन्नु नुपेक्षिंचु नेटि माट-
लनुचु ना द्वारकापुर मतडु सोच्चि ॥ 976 ॥

व. इट्लु प्रवेशिंचि राजमार्गंबुनं जनि चनि कक्ष्यांतरंबुलु गडचि चनि मुंदट ॥ 977 ॥

सी. विशदमै योप्पु षोडश सहस्रांगना कलित विलास संगति दनर्चि
महनीय तपनीय मणिमय गोपुर प्रासाद सौध हर्म्यमुलु सूचि
मनमु ब्रह्मानंदमुनु बोंद गडु नुब्बि संतोष बाष्पमुल् जडिगोनंग
प्रकटमै विलसिल्लु नोक वधूमणि मंदिरमुन नितुलु चामरमुलु वीव

ते. दनरु मृदु हंसतूलिका तल्पमंदु
दानु प्रिययुनु बहुविनोदमुल दनरि
महित लावण्य मन्मथ मन्मथुंडु
ननग जूपट्टु पुंडरीकायताक्षु ॥ 978 ॥

सी. इंदीवर-श्यामु वंदित-सुत्रामु करुणालवालु भासुरकपोलु
कौस्तुभालंकारु कामित-मंदारु सुरुचिर-लावण्यु सुरशरण्यु
हर्यक्ष निभ मध्यु नखिल-लोकाराध्यु घन-चक्रहस्तु जगत्प्रशस्तु
खगकुलाधिपयानु कौशेय-परिधानु बन्नगशयनु नब्जातनयनु

दयार्द्रदृष्टि के अनुसार न हो तो दूसरा क्या है? वह मेरी उपेक्षा क्यों करेगा? ये कैसी बातें हैं ?" यों सोचते हुए वह द्वारकापुर में प्रवेश किया ९७६ [व.] ऐसा प्रवेश करके, राजमार्ग से जा जाकर कक्ष्यांतरों को (प्राकारों को) पार कर जाकर सामने ९७७ [सी.] विशद होकर शोभायमान होनेवाली षोडश सहस्रांगनाकलित विलास-संगति से अतिशय होकर महनीय तपनीय मणिमय गोपुर-प्रासाद-सौध-हर्म्यों को देखकर, मन के ब्रह्मानंद में मग्न होकर अधिक संतोष से, संतोष-बाष्पों की वर्षा होने पर प्रकटित होकर विलसित होनेवाले एक वधूमणि-मंदिर में स्त्रियों के चामरों को हिलाने पर, [ते.] सुंदर मृदुहंसतूलिकातल्प पर वह स्वयं और उसकी प्रिया बहुविनोदों में मग्न होकर स्यात् महित लावण्य-मन्मथ-मर्मय हो, ऐसे दिखाई पड़नेवाले पुंडरीकायताक्ष को ९७८ [सी.] इंदीवरश्याम, वंदित सुत्राम, करुणालवाल, भासुर कपोल, कौस्तुभालंकार, कामित मंदार, सुरुचिर लावण्य, सुरशरण्य, हर्यक्षनिभमध्य, अखिल लोकाराध्य, घन-चक्र-हस्त, जगत्प्रशस्त, खगकुलाधिप-यान, कौशेय-परिधान, पन्नगशयन, अब्जात-नयन, [ते.] मकरकुंडल सद्भूष, मंजुभाष[ण], निरुपमाकार, दुग्ध-सागर

ते. मकरकुंडल सद्भूषु मंजुभाषु
निरुपमाकारु दुग्ध सागर विहारु
भूरि गुणसांद्रु यदुकुलांबोधि-चंद्रु
विष्णु रोचिष्णु जिष्णु सहिष्णु गृष्णु ॥ 979 ॥

म. कनि डायं जनुनंत गृष्णुडु दळत्कंजाक्षुडप्पेद वि-
प्रुनि नश्रांत दरिद्र पीडितु गृशी भूतांगु जीर्णांबरुन्
घनतृष्णातुर चित्तु हास्य निलयुन् खंडोत्तरीयुं गुचे-
लुनि नल्लंतनें चूचि संभ्रम विलोलुंडै दिगें दल्पमुनन् ॥ 980 ॥

कं. करमथि नेंदुरुगा जनि, परिरंभणमाचरिंचि बंधुस्नेह
स्फुरणं दोड्तेंच्चि समा, -दरमुन गूर्चुंड बेट्टें दन तल्पमुनन् ॥ 981 ॥

ते. अट्लु गूर्चुंड बेट्टि नेय्यमुन गनक
कलश सलिलंबुचे गाळ्ळु गडिगि भक्ति
दज्जलंबुलु दनदु मस्तमुन दाल्चि
ललित मृगमद घनसार मिळितमैन ॥ 982 ॥

ते. मलयजमु मेन जोंल्लिवल्ल नलदियंत
श्रममु वायंग दाळवृंतमुल विसरि
बंधुरामोद कलित धूपंबु लोसगि
मिंचु मणिदीपमुल निवाळिंचि मडिगु ॥ 983 ॥

विहार, भूरिगुण सांद्र [और] यदुकुलांबोधिचंद्र होनेवाले विष्णु, रोचिष्णु, जिष्णु [तथा] सहिष्णु कृष्ण को ९७९ [म.] देखकर समीप जाने पर, दलत्कंजाक्ष कृष्ण उस निर्धन विप्र कुचेल को जो अश्रांत दरिद्र पीड़ित था, कृशीभूतांग था, जीर्णांबर (वाला) था, घन तृष्णातुर चित्त [वाला था], हास्य [का] निलय था, [और] खंडोत्तरीय [को धारण करनेवाला] था, दूर पर ही देखकर संभ्रमविलोल होकर तल्प से उतरा। ९८० [कं.] बड़ी इच्छा से आगे जाकर, परिरंभण (आलिंगन) करके [और] बंधु स्नेह स्फुरण से लिवा लाकर समादर के साथ अपने तल्प पर बिठाया। ९८१ [ते.] उस प्रकार बिठाकर स्नेह-सहित कनक-कलश-सलिल से पैर धोकर, भक्ति से तत् जल को अपने मस्तक पर धारण करके, ललित मृगमद घनसार-मिलित ९८२ [ते.] मलयज (चंदन) को शरीर पर ऐसे लगाकर ताकि वह उभर जाय, तब श्रम को दूर करने के लिए तालवृंत से हवा करके, बंधुरामोद कलित धूप देकर उत्तम मणि दीपों से आरति उतारकर, और ९८३ [व.] सुरभि कुसुम-मालिकाओं को शिखा-बंधन में बाँधकर,

व. सुरभि कुसुम मालिकलु सिगमुडि डुरिमि, कर्पूर मिळित तांबूलंबु निडि, धेनुवु नोसंगि, सादरंबुगा स्वागतंबडिगिन नप्पुडव्विप्रुंडु मेनंबुलकांकुरंबु लंकुरिप नानंद बाष्प जल बिंदुसंदोहुंडय्ये। अप्पुडंबुज लोचनुंडु मन्निचु नंगनामणियगु रुक्मिणि कर कंकण रवंबुलीलयं जामरलु वीवं दज्जात वातंबुन घर्मसलिलंबु निवारिंचुचुंड जूचि, शुद्धांत कांता निवहं बु तम मनंबुन नद्भुतंबंदि यिट्लनिरि ॥ 984 ॥

उ. एमि तपंबु सेसें नोको यी धरणीदिविजोत्तमुंडु तोल्
प्रामुन योगि विस्फुरदुपास्यकुंडै तनरारु नीजग-
त्स्वामि रमाधिनाथु निजतल्पमुनन् वसियिंचि युन्न वा-
डी महनीय मूर्ति कॅनये मुनिपुंगवुलेंतवारलुन् ? ॥ 985 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 986 ॥

च. तन मृदु तल्पमंदु वनितामणियैन रमा ललाम पॉं-
दुनु नॅडगा दलंपक यदुप्रवरुंडेदुरेगि मोदमुं
दनुकग गौगिलिंचि युचित क्रियलं बरितुष्टु जेयुचुन्
विनयमुनन् भजिंचे धरणीसुरुडेंतटि, भाग्यवंतुडो ! ॥ 987 ॥

व. अनु नय्यवसरंबुन ॥ 988 ॥

कर्पूर-मिलित तांबूल देकर, धेनु (गाय) को देकर, सादर स्वागत कहने पर तव वह विप्र [अपने] शरीर पर रोंगटों के खड़े होने पर आनंद-बाष्प जलबिंदु-संदोहयुक्त वन गया। तब पद्मलोचन से सम्मानिता अंगनामणि रुक्मिणी के चामरों को ऐसे हिलाने पर ताकि करकंकण रव मधुर लगे, तत् (चामर)-जात वायु से घर्मसलिल (-पसीने) को दूर करती रही तो देखकर शुद्धांतकांतानिवहों (समूह) ने अपने मनों में अद्भुत पाकर इस प्रकार कहा, ९८४ [उ.] "न जाने इस धरणी-दिविजोत्तम ने पूर्व जन्म में कौन सा तप किया है ! [यह] योगि-विस्फुरत्-उपास्य बनकर प्रकाशमान होनेवाले इस जगत्-स्वामी रमाधिनाथ के निज तल्प पर बैठा हुआ है। मुनिपुंगव कितने भी बड़े हों, इस महनीय मूर्ति की समानता (बराबरी) कर सकते हैं ? ९८५ [व.] इसके अतिरिक्त ९८६ [च.] अपने मृदु तल्प पर रहनेवाली वनितामणि रमाललामा की उपस्थिति की भी चिन्ता न करके यदुप्रवर ने सामने जाकर, इस प्रकार आलिंगन करके ताकि उसे मोद हो, उचित क्रियाओं से परितुष्ट करते हुए विनय से पूजा की। न जाने [यह] धरणीसुर कैसा भाग्यवान है !" ९८७ [व.] ऐसा बोलने के अवसर पर ९८८ [कं.] मुर-संहर

कं. मुरसंहरुडु कुचेलुनि
करमु गरंबुन दॆमलिच कडकन् मनमा
गुरु गृहमुन वर्तिचिन
चरितमुलनि कॊन्नि नुडिवि चतुरत मरियुन् ॥ 989 ॥

सी. ब्राह्मणोत्तम ! वेद पाठन लब्ध दक्षत गल चारु वंशंबु वलन
बरिणयंबैनट्टि भार्य सुशीलवर्तनमुल दग भवत्सदृश यगुनॆ ?
तलप गृहक्षेत्र धन दार पुत्रादुलंदु नो चित्तंबु चॆंदकुंट
तोचुचुन्नदि येनु द्दुदि लोक संग्रहार्थंबु कर्माचरणंबु सेयु

ते. गति मनंबुल गान मोहितुलु गाक
नर्थिमै युक्त कर्मंबु लाचरिंचि
प्रकृति संबंधमुलु बासि भव्य निष्ठ
दविलि युंदुरु कॊंदरुत्तमुलु भुविनि ॥ 990 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियॆ ॥ 791 ॥

कं. ऎरुगुदुवॆ मनमु गुरु मं-
दिरमुन वसियिंचि यतडु तॆलुपग वरुस-
न्नॆरुगग वलसिन यर्थमु-
लॆरिगि परिज्ञान महिम लॆरुगुट लॆल्लन् ? ॥ 992 ॥

व. अनि मरियु गुरु प्रशंस सेयंदलंचि यिट्लनियॆ ॥ 993 ॥

ते. तिविरि यज्ञान तिमिर प्रदीपमगुचु
नव्ययंबैन ब्रह्मंबु ननुभविंचु

कुचेल के हाथ में अपना हाथ रखकर प्रयत्न के साथ अपने गुरुगृह में रहने के चरित (विषय) कुछ चतुरता से कहकर फिर ९८९ [सी.] "[हे] ब्राह्मणोत्तम ! वेद-पाठन लब्ध दक्ष चारु वंश से परिणीत भार्या सुशील आचरणों से क्या भवत्सदृश बन सकती है ? सोचने पर ऐसा लगता है कि गृह-क्षेत्र-धन-दारा-पुत्र आदि में तुम्हारा चित्त न लगता है। जैसे मैं आखिर लोक-संग्रहार्थ कर्माचरण करता हूँ [ते.] मन में काम-मोहित न बनकर, इच्छा से युक्त कर्मों का आचरण करके प्रकृति-संबंध छोड़कर, कुछ उत्तम भुवि पर भव्य निष्ठा में लगे रहते हैं।" ९९० [व.] ऐसा कहकर फिर इस तरह कहा। ९९१ [कं.] "क्या तुम जानते हो (तुम्हें स्मरण है) कि हम गुरु [के] मंदिर (घर) में रहकर, उनके समझाने (कहने) पर, लगातार जानने योग्य अर्थों (चीज़ों) को जानकर परिज्ञान महिमाओं को सबको [तुम जानते हो] ?"९९२ [व.] और फिर गुरु प्रशंसा करने की इच्छा करके इस प्रकार कहा; ९९३ [ते.] "फिर प्रयत्न

भरित सत्त्वुंडु सत्कर्म निरतुडतुल
भूसुर श्रेष्ठुडनघुंडु बुधनुतुंडु ॥ 994 ॥

व. अम्महात्मुनि वलन सकल वर्णाश्रमंबुल वारिकि नेनु विज्ञान प्रदुंड-नगु गुरुंडनै युंडियु गुरु भजनंबु परम धर्मंबनि याचरिंचिति नदि गावुन ॥ 995 ॥

कं. भूसुरुलकॅल्ल मुख्युड, -नै सकल कुलाश्रमंबुलंदुनु नॅपुडुन्
धीसुज्ञान प्रदुडन, देशिकुडन नॊप्पुचुंदु धृति नॅल्लॅडलन् ॥ 996 ॥

ते. अट्टि वर्णाश्रमंबुल यंदु नर्थ
कुशलुलगुवारु निखिलैक गुरुडनैन
नावु वाक्यंबुचे भवार्णवमु पॅलुच
दाटुदुरु मत्पदांबुज ध्यानपरुलु ॥ 997 ॥

व. अदियुनुंगाक सकल भूतात्मकुंडनैन येनु दपोव्रत यज्ञ दान शम दमादुलचे संतसिपनु, गुरु जनंबुल वरम भक्ति सेविंचु वारलं बरिणमितु ननि चॅप्पि मरियु मनमु गुरु मंदिरंबुननुन्न यॅड नॊक्कनाडु गुरुपत्नी नियुक्तुलमै यिंधनार्थंबडविकि जनिन नय्यवसरंबुन ॥ 998 ॥

सी. घुम घुमाराव संकुल घोर जीमूत पटल संछन्नाभ्र भागमगुचु
जटुल झंझानिलोत्कट समुद्धूत नाना विधजंतु संतानमगुचु
जंड दिग्वेदंड तुंड निभाखंड वारिधारापूर्ण वसुधमगुचु
विद्योतमानोग्र खद्योत किरणजिद्विद्युद्द्युतिच्छटा विभवमगुचु

करके अज्ञान तिमिर [के लिए] प्रदीप होते हुए, अव्यय ब्रह्म का अनुभव करनेवाला भरित सत्त्व, सत्कर्म-निरत, अतुल भूसुरश्रेष्ठ, अनघ [और] बुधनुत [था] ९९४ [व.] उस महात्मा से सकल वर्णाश्रम वालों के लिए मैं विज्ञानप्रद होनेवाला गुरु बनकर रहते हुए भी गुरु-भजन (सेवा) को परम धर्म मानकर [मैंने उसका] आचरण किया। इसलिए ९९५ [कं.] सभी भूसुरों के लिए मुख्य बनकर सकल कुलाश्रमों में सदा धी-सुज्ञानप्रद होनेवाला देशिक (गुरु) कहलाकर धृति से सभी जगहों में प्रकाशमान होता हूँ। ९९६ [ते.] ऐसे वर्णाश्रमों में अर्थकुशल होनेवाले [लोग] निखिलैक गुरु होनेवाले मेरे वाक्य से मत्पदांबुज ध्यान कर (मग्न) होकर भवार्णव को शीघ्र पार करते हैं। ९९७ [व.] इसके अतिरिक्त सकल भूतात्मा होनेवाला मैं तपोव्रत, यज्ञ, दान, शम, दम आदि से संतुष्ट नहीं होता; परम भक्ति से गुरुजनों की सेवा करनेवालों को संतुष्ट करूँगा।" यों कहकर और "जब हम गुरु-मंदिर (गृह) में रहते थे, एक गुरु-पत्नी से नियुक्त होकर इंधनार्थ जंगल में गए तो उस अवसर पर ९९८ [सी.] घुम-घुमाराव-संकुल घोर जीमूत-पटल-संछन्न आकाश होते हुए,

ते. नडरि जडि गुरियग निनुडस्तमिप
भूरि नीरंध्र निविडांधकार मेचि
सूचिका भेद्यमै वस्तु गोचरंबु
गानि यट्लुंड मनमु नव्वान दडिसि ॥ 999 ॥

आ. वयलु गॉदियु वॅनुमिक्कु पल्लमुलुनु
रहित सहित स्थलंबु लेर्पडुप राक
युन्न यत्तरि मनमु नॉंडोरुल चेतु-
लूतगा गोनि नडचुचु नुंडुनंत ॥ 1000 ॥

कं. विस विस नॅप्पुडु नुडुगक
विसरॅडि वलिचेत वडकु विडुवक मनमुं
वसचॅडि मार्गमु गानक
मसलिति मंतटनु नंशुनंतुडु पॉडिचॅन् ॥ 1001 ॥

कं. तॅल तॅलवारॅडिवेळ
गलकलमनि पलिकॅ वक्षिगणमॅल्लॅडलन्
मिलमिलनि प्रॉद्दु पॉडुपुन
धळधळमनु मॅरुगु दिग्वितानमु निडॅन् ॥ 1002 ॥

कं. अप्पुडु सांदीपनि मन, चॉप्परयुचु वच्चि वान सोकुननु वलि
इॅप्पिडिलुट गनि खेदं,-बुप्पतिलं वलिकॅ नकट यो वटुलारा! ॥ 1003 ॥

चटुल झंझानिल उत्कट समुद्धूत नानाविध जंतु-सतानयुक्त होते हुए, वसुधा के चंड दिक् वेदंड-तुंड-निभा-खड-वारिधारा-पूर्ण होते हुए, विद्योतमान उग्र खद्योत किरणजित विद्युत् द्युतिच्छटा विभवयुक्त होते हुए [ते.] अतिशय होकर पानी के बरसने पर, सूरज के अस्त (डूब) होने पर, भूरि नीरध्र निबिड अंधकार के अधिक सूचिका-भेद्य होकर ऐसा अँधेरा होने पर कि वस्तु गोचर न हो, हम उस पानी (वर्षा) में भीगकर ९९९ [ते.] बाहर नीची और ऊँची जगह का, अंबु-रहित तथा सहित स्थल का भेद न विदित होते समय हम '[दोनों] एक-दूसरे के हाथ के आधार से चलते समय १००० [कं.] वेग को कभी न छोड़कर, बहती हुई हवा के कारण कंपन को न छोड़कर मन के स्थैर्य के अभाव में मार्ग को न देखकर [हम] चले; इतने में अंशुमान (सूरज) निकला १००१ [कं.] पौ फटते समय, पक्षीगण ने सर्वत्र कल-कल रव मचाया, प्रकाशमान सूरज के निकलने पर चकाचौंध पैदा करनेवाली कांति दिग्वितान में भर गई। १००२ [कं.] तब सांदीपनि हमारा पता लगाते हुए आकर वर्षा के जोर के कंपन से बचे हुए [हमें] देखकर खेद के उभर आने पर बोले, '[हे] वटू ! १००३ [च.] हाय ! इस प्रकार हमारे लिए आकर

च. कटकट ! यिट्लु मा कोरकु गा जनुदेंचि महाटविन् समु-
त्कट परिपीड नोंदितिरि गावुन शिष्युलु मा ऋणंबु नी-
गुट किदि कारणंबु सलकूरेंडिबो यिटमीद मीकु वि-
स्फुट घनबंधु दार बहुपुत्रविभूति जयायुरुन्नतुल् ॥ 1004 ॥

कं. अनि गारविंचि यायन
मनलं दोड्कोनुचु नात्ममंदिरमुनकुं
जनुदेंचुटलेल्लनु नी
मनमुन दलते यटंचु मरियुं बलिकेन् ॥ 1005 ॥

व. अनघा ! मनमध्ययनंबु सेयुचु नन्योन्य स्नेह वात्सल्यंबुलं जेयु कृत्यंबुलु मरववु गदा यनि यवि येल्ल दलंचि याडु माधवु मधुरालापंबुलु विनि यतनि गनुंगोनि कुचेलुंडिट्लनिये ॥ 1006 ॥

कं. वनजोदर ! गुरु मंदिर-
मुन मनमु वसिचु नाडु मुदमुन गावि-
पनि पनुलेव्वियु गलवे ?
विनुमवि यट्लुंड निम्मु विमल चरित्रा ! ॥ 1007 ॥

कं. गुरुमति दलपग द्विजग-
द्गुरुड वनंदगिन नीकु गुरुडनगा नों-
डोरुडेव्वडितयुनु नी
करयंग विडंबनंबयगु गादे हरी ! ॥ 1008 ॥

महाटवी में समुत्कट परिपीड़ा को [तुम लोगों ने] पाया। इसलिए [तुम] शिष्यों ने हमारा ऋण इस प्रकार चुका दिया। अब तुम [दोनों] को विस्फुट धन, बंधु, दारा, बहु पुत्र, विभूति (संपदा), जय, आयु [और] उन्नतियाँ मिल जाएँ।' १००४ [कं.] इस प्रकार गौरव करके उनका हमें साथ लेकर आत्ममंदिर (गृह) को जाना [और] यह सब क्या [तुम] अपने मन में सोचते हो (याद करते हो) ?" ऐसा कहते हुए और बोला। १००५ [व.] "हे अनघ ! हम जब अध्ययन करते थे, अन्योन्य स्नेह वात्सल्य से जो कृत्य करते थे, क्या उन्हें भूलते तो नहीं हो !" इस प्रकार कहकर उन सबको याद करके बोलनेवाले माधव के मधुरालापों को सुनकर [और] उसे देखकर कुचेल ने इस प्रकार कहा १००६ [कं.] "[हे] वनजोदर ! हे विमल-चरित्र ! जब हम गुरु-मंदिर (-गृह) में रहते थे, ऐसे काम कुछ थे जिन्हें हमने मुद (मोद) से नहीं किया ? सुनो, उन्हें वैसे रहने दो। १००७ [कं.] [हे] हरे ! गुरु (बड़ी) मति से सोचने पर त्रिजगद्गुरु कहने योग्य तुम्हें गुरु और एक कौन है ? यह भी तुम्हारे लिए जानने के लिए विडंबना तो नहीं होगी ? १००८

अध्यायमु—८१

व. अनि साभिप्रायंबुगा वलिकिन पलुकुलु विनि समस्त भावाभिज्ञुंडैन पुंडरीकाक्षुंडु मंदस्मित सुंदर वदनारविंदुंडगुचु नर्तनि जूचि नी विच्चटिकि वच्चुनप्पुडु नायंदुल भक्ति जेसि नाकुनुपायनंबुगा नेमि पदार्थंबु देच्चिचिति वप्पदार्थंबु लेशमात्रंबैन वदिवेलुगा नंगीकरिंतु नट्लु गाक नीचवर्तनुंडै मद्भक्ति दगुलनि दुष्टात्मुंडु हेमाचलतुल्यंबैन पदार्थंबु नोसंगिन नदि ना मनंबुनकु सम्मतंबुगादु गावुन ॥ 1009 ॥

कं. दळमैन पुष्पमैननु
फलमैननु सलिलमैन वायनि भक्ति
गोलिचिन जनुलर्पिचिन
नॆलमिन् रुचिरान्नमुगनॆ येनु भुजितुन् ॥ 1010 ॥

कं. अनि पद्मोदरुडाडिन
विनयोक्तुलकात्म नलरि विप्रुडु दार्दे-
च्चिचन् यडुंकुलु दग नर्पि-
पनुनेरक मोमु वांचि पलुकक युन्नन् ॥ 1011 ॥

व. अव्विप्रुंडु चनुदेंचिन कार्यंबु कृष्णुंडु दन दिव्य चित्तंबुन नॆरिगि यितंडु पूर्वभवंबुन नैश्वर्यकामुंडै ननु सेविपंडैन निक्कुचेलुंडु निजकांता

अध्याय—८१

[व.] इस प्रकार साभिप्राय बोली हुई बातें सुनकर समस्त भावाभिज्ञ पुंडरीकाक्ष मंदस्मित वदनारविन्द होते हुए उसको देखकर, "तुम यहाँ आते समय मुझ पर होनेवाली भक्ति से मेरे लिए उपायन (भेंट) के रूप में कौन-सा पदार्थ लाये हो? वह पदार्थ चाहे लेशमात्र ही क्यों न हो, [उसे] दस हजार [अधिक] के रूप में अंगीकृत कर लूँगा। ऐसा न होकर नीच वर्तन होकर मेरी भक्ति में न लगकर रहनेवाला दुष्टात्मा हेमाचल-तुल्य पदार्थ ही क्यों न दे, वह मेरे मन को सम्मत नहीं है। इसलिए १००९ [कं.] "चाहे दल (पत्त) हो, चाहे पुष्प हो, चाहे फल हो, चाहे सलिल, भक्ति को न छोड़कर [मेरी] सेवा करनेवाले लोग अगर अर्पित करते हों तो संतोष (आनन्द) के साथ [उसे] रुचिरान्न समझकर मैं भोजन करता हूँ।" १०१० [कं.] इस प्रकार पद्मोदर की विनय से कही हुई उक्तियों (बातों) के लिए आत्मा में संतोष पाकर विप्र के अपने लाये हुए चुड़वे को [कृष्ण को] अर्पित न कर सककर, मुख को झुकाकर मान रहने पर १०११ [व.] उस विप्र के आने का कार्य [कारण]

मुखोल्लासंबु कोरकु नायोद्दकु जनुदेंचिन वाडितनिकि निद्रादुलकुं बडयरानि बहु विधंबुलैन संपद्विशेषंबुलीक्षणंबु योडगूर्पवलयुनिनि तलंचि यतंडु जीर्ण वस्त्रंबु कोंगुन मुडिचि तेच्चिन यडुकुल मुडिय गनि यिदि येमि यनि योय्यन नम्मुडिय दन करकमलंबुल विडिचि यय्यडुकुलु गोन्नि पुच्चिकोनि यिविय सकल लोकंबुलनु नन्नुनु परितृप्ति बोंदिप जालुननि यप्पुडु ॥ 1012 ॥

कं. मुरहरुडु पिडिकेडडुकुलु
गरमोप्पग नारगिंचि कौतूहलियै
मरियुनु बिडिकेडु गोन्न द-
त्करमप्पुडु वट्टि कमल करकमलमुलन् ॥ 1013 ॥

क. सोंपारग नितनिकि बहु
संपदलंदिप निविय चालुनु निक भ-
क्षिपग वलदु त्रिजग-
त्संपत्कर ! देवदेव ! सर्वात्म ! हरी ! ॥ 1014 ॥

व. अनि यिट्लु वारिंचे, नक्कुचेलुंडुनु नारात्रि गोविंदु मंदिरंबुन दनकु हृदयानंद करंबुलगु विविण पदार्थंबुलनुभविंचि मृदुल शय्या तलंबुन निद्रिंचि तन मनंबुन दन्नु समधिक स्वर्गभोगानुभवुंगा दलंचुचु मरुनाडरुणोदयबुन मेल्कनि कालोचित कृत्यंबुलु दीर्चि यिदिरारसणुंडु वन्नु गोंत

कृष्ण अपने दिव्य चित्त में जानकर, "यह पूर्वभव (जन्म) में ऐश्वर्यकामी होने पर भी [मेरी] सेवा नहीं करता था; फिर भी यह कुचेल निजकांता-मुखोल्लास के लिए मेरे पास आया है। इसे ऐसे बहुविध संपत्विशेष इसी क्षण देने चाहिए जो इन्द्र आदि के लिए भी अलभ्य हों।" यों सोचकर वह जीर्णवस्त्र के दामन में बाँधकर लाये हुए पृथुल तंडुलों की गठरी को देखकर 'ये क्या हैं ?' कहकर, शीघ्र उस गठरी को अपने कर-कमलों से खोलकर उन तंडुलों में से कुछ लेकर (खाकर) 'ये ही सकल लोकों को और मुझे भी परितृप्त करने के लिए काफी हैं' यों कहकर तब १०१२ [क.] मुरहर ने मुट्ठी भर पृथुल तंडुलों को बड़ी प्रीति से खाकर कौतूहल से युक्त बनकर और [एक] मुट्ठी भर ले लिया तो कमला ने तब [कृष्ण के] करकमलों को पकड़कर १०१३ [कं.] "हे त्रिजगत् संपत् कर ! देवदेव ! सर्वात्मा ! हरे ! इसे समृद्ध बहु संपदाओं को देने के लिए ये (मुट्ठी भर तंडुल जो खाये गये) पर्याप्त हैं; और अधिक न भक्षण करो।" १०१४ [व.] यों कहकर रोका। उस कुचेल ने उस रात को गोविन्द के मन्दिर (गृह) में अपने को हृदयानंद-कर होनेवाले विविध पदार्थों का अनुभव करके (भोजन करके) मृदुल शय्या-तल पर सोकर अपने

दव्वनिपि यामंत्रितुंजेय जनुचु नंदनंदन संदर्शनानंद लोलात्मुंडयि तन मनंबुन निट्लनियॆ ॥ 1015 ॥

कं. ना पुण्यमरय नॅट्टिदो, यापुण्य निधि प्रशांतु नच्चुतु नखिल
व्यापकु ब्रह्मण्युनि जि, -द्रूपकु बुरुषोत्तमुनि वरं गनुगॊंटिन् ॥ 1016 ॥

सी. परिकिंप गृपण स्वभावुंड नॆनॆट्टि ये नेड ! निखिलावनीश्वरियगु
यिंदिरा देविकि नॆनयंग नित्य निवासुंडॆ यॊप्पु नव्वासुदेवु
डॆड ! नन्नर्थिमैं दोड बुट्टिन वानि कैवडि गौगिट गदिय जेर्चि
दैवंबुगा नन्नु भाविंचि निजतल्पमुन नुंचि सत्क्रियल् पूनि नडपि

ते. चारु निज वधूकर सरोजात कलित
चामरानिलमुन गतश्रमुनि जेसि
श्रीकुचालिप्त चंदनांचित कराब्ज-
तलमुलनु नड्गुलॊत्तॆ वत्सलत मॆरसि ॥ 1017 ॥

व. कावुन ॥ 1018 ॥

उ. श्रीनिधि यिट्लु नन्नु बचरिंचि घनंबुग वित्तमेमियु-
न्नीनि तॆरंगु गानवडॆ नॆन्न दरिद्रुडु संपदंधुडै
कानक तन्नु जेरडनि काक्षि श्रितार्ति हरुंडु सत्कृपां-
भोनिधि सर्ववस्तु परिपूर्णुनिगा ननु जेयकुंडुने ? ॥ 1019 ॥

मन में अपने को समधिक स्वर्ग भोगों का अनुभव करनेवाला कहते हुए दूसरे दिन अरुणोदय के समय जागकर कालोचित कृत्यों से निवृत्त होकर इन्दिरारमण के उसे कुछ दूर भेजकर आमंत्रित करने पर, जाते हुए नंदनन्दन-संदर्शनानन्द-लोलात्मा बनकर अपने मन में इस प्रकार कहा। १०१५ [कं.] "मैं नहीं जानता कि मेरा पुण्य कैसा है, उस पुण्य-निधि, प्रशांत, अच्युत, अखिल व्यापक, ब्रह्मण्य, चिद्रूप, पुरुषोत्तम [तथा] पर [होनेवाले] को देखा। १०१६ [सी.] देखने पर कृपण स्वभाववाला मैं कहाँ ? निखिल अवनीश्वरी होनेवाली इन्दिरादेवी के साथ नित्यनिवासी बनकर शोभायमान होनेवाला वह वासुदेव कहाँ ? अपनी इच्छा से सहोदर की तरह मुझसे आलिंगन करके, मुझे दैव मानकर निजतल्प पर बिठाकर सत्क्रियाएँ करके [ते.] चारु निज वधूकर सरोजात-कलित चामर [के] अनिल [मुझे] गतश्रम करके [और] श्री (लक्ष्मी) कुचों पर आलिप्त चंदन [से] अंचित कराब्जों से, वत्सलता के साथ मेरे पाँवों को दबाया। १०१७ [व.] इसलिए १०१८ [उ.] श्रीनिधि (कृष्ण) ने इस प्रकार मेरी अधिक सेवा करके ऐसा लगता है कि धन कुछ भी नहीं दिया। सोचने पर इस प्रकार विदित होता है कि 'निर्धन संपत [से]

व. अनि तन मनंबुन वितर्किचुचु निजपुरंबुनकुं जनि चनि मुंदट ॥ 1020 ॥

सी. भानुचंद्र प्रभा भासमान स्वर्ण चंद्र कांतोपल सौधमुलुनु
गलकंठ शुक नीलकंठ समुत्कंठ मानित कूजितोद्यानमुलुनु
फुल्लसितांभोज हल्लक कल्हार कैरवोल्लसित कासारमुलुनु
मणिमय कनक कंकण मुखाभरण विभ्राजित दास दासी जनमुलु

ते. गलिगि चेलुवोंदु सदनंबु गांचि विस्म-
यमुनु पोंदुचु नॅट्टि पुण्यात्मुडुंडु-
निलयमोक्को यपूर्वमै नॅगडें महित
वैभवोन्नत लक्ष्मी निवासमगुचु ॥ 1021 ॥

व. अनि तलपोयुचुन्न यवसरंबुन ॥ 1022 ॥

ते. दिविज वनितल बोलेंडु तॅरवलपुडु
डायनेतेंचि यिवु विच्चेयुडनुचु
विमल संगीत नृत्य वाद्यमुलु सॅलग
गरिम दोड्कोनि चनिरंतिपुरमुनकुनु ॥ 1023 ॥

व. इट्लु चनुदेर ततनि भार्ययैन सतीललामंबु दन मनंबुन नानंदरसमग्न यगुचु नप्पुडु ॥ 1024 ॥

अंधा बनकर कुछ न देखकर, अपने को नहीं मिला' ऐसा सोचकर [मुझे धन नहीं दिया।] नहीं तो आश्रितों की आर्ति को दूर करनेवाले [तथा] सत्कृपांभोनिधि [कृष्ण] क्या मुझे सर्ववस्तुपरिपूर्ण नहीं बनाता ?" १०१९ [व.] इस प्रकार अपने मन में वितर्क करते हुए निज पुर में जा-जाकर सामने १०२० [सी.] भानुचंद्र-प्रभा-भासमान [तथा] स्वर्ण-चंद्रकांतोपल सौधों को, कोयल, शुक [और] नीलकंठों के समुत्कंठ मानित [तथा] कूजित उद्यानों को, फुल्ल (विकसित) सितांभोज, हल्लक, कल्हार, कैरवों से उल्लसित कासारों को, मणिमय कनक-कंकण मुख [आदि] आभरणों से विभ्राजित दास [और] दासी जनों को, [ते.] साथ लेकर विराजित सदन को देखकर विस्मित होते हुए 'किस पुण्यात्मा के रहने का है यह निलय ? अपूर्व होकर महित वैभवोन्नत लक्ष्मी-निवास होते हुए वर्धमान होता है'। १०२१ [व.] यों सोचने के अवसर पर १०२२ [ते.] दिविज वनिताओं के समान रहनेवाली स्त्रियाँ तब [कुचेल के] पास जाकर 'इधर पधारिए' कहते हुए विमल संगीत नृत्य-वाद्यों के बजने पर सादर लिवा लेकर अंतिपुर को ले गई। १०२३ [व.] ऐसा आने पर उसकी भार्या (पत्नी) होनेवाली सतीललामा अपने मन में आनन्द-रसमग्ना होती हुई तब, १०२४ [सी.] अपने विभु (पति) के आगमन

सी. तनविभु राक मुंदट गनि मनमुन हर्षिंचि वैभवंबलर मनुज-
कामिनीरूपंबु गैकॊन्न यिंदिरा-वनित चंदंबुन दनरुचुन्न
कलकंठि तनवालु गन्नुल क्रॆवल नानंद वाष्पंबुलंकुरिंप
नतनि पादंबुलकात्मलो म्रॊक्कि भावंबुन नालिंगनंबु सेसॆ

ते. ना धरादेवुडतुल दिव्यांबराभ-
रण विभूषितलं रतिराजु साय-
कमुल गति नॊप्पु परिचारिकलु भजिंप
ललित सौभाग्ययगु निज ललन जूचि ॥ 1025 ॥

कं. आ नारी रत्नंबुनु, दानुनु ननुरागरसमु वळ्ळीसग नि-
त्यानंदमु नॊंदुचु नॆं, -पूनिन हरिलब्ध वैभवोन्नति मॆरयन् ॥ 1026 ॥

सी. कमनीय पद्मरागस्तंभकंबुलु गोमरारु पटिकंपु गुड्यमुलुनु
मरकत नवरत्नमय कवाटंबुलु गीलित हरि नील जालकमुलु
दीपित चंद्रकांतोपल वेदुलु नंचित विविध पदार्थमुलुनु
दगु हंस तूलिका तल्पंबुलुनु हेम लालित शयन स्थलमुलु बनरु

ते. समधिकोत्तुंगभद्र पीठमुलु सिरुलु
मानितोन्नत चतुरंतयानमुलुनु
वलयु सद्वस्तु परिपूर्ण वाटिकलुनु
गलिगि यॊप्पुचुंडु मंदिरंबलमि जॊच्चि ॥ 1027 ॥

के बारे में पहले देखकर मन में हर्ष पाकर वैभव के बढ़ जाने पर मनुज-कामिनी (स्त्री) रूप को ली हुई इन्दिरावनिता ने की तरह प्रकाशमान कलकंठी अपनी कनखियों में आनन्द-वाष्पों के अंकुरित होने पर, उसके पाँवों को आत्मा में नमस्कार करके, भाव में आलिंगन किया। [ते.] वह धरादेव अतुल दिव्यांबराभरण-विभूषिता बनकर, रतिराजा के सायकों (तीरों) की तरह शोभायमान परिचारिकाओं के सेवा करने पर, ललित सौभाग्यवती होनेवाली अपनी ललना (पत्नी) को देखकर १०२५ [कं.] उस नारी-रत्न के और स्वयं उसके अनुराग रस के पल्लवित होने पर नित्यानंद को पाते हुए अतिशय हरि-लब्ध-वैभव की उन्नति से प्रकाशमान होने पर १०२६ [सी.] कमनीय पद्मरागों के स्तम्भों से, मनोज्ञ स्फटिक कुड्यों से, मरकत नवरत्नमय कवाटों से, बद्ध हरिनीलजालकों से, दीप्त चंद्रकांतोपल वेदियों से, अचित विविध पदार्थों से युक्त, हंस-तूलिका-तल्पों [और] हेम-लालित शयनस्थलों से प्रकाशमान, [ते.] समधिक उत्तुंग भद्रपीठों से, संपदाओं से, मानित उन्नत पालकियों से [और] आवश्यक सद्वस्तुओं से परिपूर्ण वाटिकाओं से शोभायमान मंदिर (गृह) में संतोष

व. सुखंबुन नुंडुनट्टियेडं दनकु मनोविकारंबुलु वीडमकुंड वर्तिचुचु निर्मलंबगु तममनंबुन निट्लनु, नितकालंबत्यंत दुरंतंबगु दारिद्र्यदुःखार्णवंबुन मुनिगि-युन्न नाकुं गडपट गलिगिन विधंबुन निप्पुडु ॥ 1028 ॥

आ. अंत्र प्रोत्तलैन मिट्टि संपदलु ना
कब्बुटेल्ल हरि दयावलोक-
नमुन जेसि गादे नळिनाक्षु सन्निधि
कथिनगुचु नेनु नरुगुटयुनु ॥ 1029 ॥

कं. ननु ना वृत्तांतंबुनु
दनमनमुन गनियु नेमि दडवक ननु वी-
ड्मनि यीसंपदलेल्लनु
नीनरग नीडगूर्चि नन्नु नीडयनि जेसेन् ॥ 1030 ॥

व. अट्टि पुरुषोत्तमुंडु भक्ति निष्ठुलैन सज्जनुलु लेशमात्रंबगु पदार्थंबैन भक्ति पूर्वकंबुगा समर्पिचिन नदियु कोटि गुणितंबुगा गैकोनि मन्निचुटकु निदिय दृष्टांतंबु गादे ? मलिन देहुंडुनु जीर्णांबरुंडुननि चित्तंबुन हेयंबुगा बाटिपक ना येनुन्न यडुकुलादरंबुन नारगिचि नन्नुं गृतार्थुनि जेयुट यतनि निर्हेतुक दयय कादे ?अट्टि कारुण्य सागरुंडैन गोविंदुनि चरणारविंदंबुल यंदुल भक्ति

के साथ प्रवेश करके १०२७ [व.] सुख से रहते समय, ऐसा रहते हुए कि उसको मनोविकार न लगे, अपने निर्मल मन में इस प्रकार कहता। "इतने काल तक अत्यंत दुरंत दारिद्र्य-दुःखार्णव में डूबकर रहनेवाले मुझे अंत में संभवित विधि में अब १०२८ [आ.] सोचने पर इस प्रकार की नई संपदाओं का मुझे प्राप्त होना क्या हरि के दयावलोकन से नहीं ? नलिनाक्ष की सन्निधि में इच्छा से मेरा जाना भी [उसकी दया के अवलोकन से नहीं ?) १०२९ [कं.] मुझे [और] मेरे वृत्तांत को [भी] अपने मन में देखकर (जानकर) भी, कुछ भी प्रस्तावित न करके मुझसे जाने के लिए कहकर, इन सारी संपदाओं को मुझे देकर मुझे राजा बनाया। १०३० [व.] उस प्रकार के पुरुषोत्तम के भक्तिनिष्ठ सज्जनों का लेशमात्र पदार्थ ही क्यों न हो, भक्तिपूर्वक समर्पित करने से, उसी को करोड़ गुना के रूप में ग्रहण करके क्षमा करने के लिए क्या यह दृष्टांत नहीं है ? मलिनदेही, जीर्णांबर [धारी] कहकर चित्त में हेय न मानकर मेरे पास रहनेवाले पृथुक तंडुलों को आदर के साथ खाकर मुझे कृतार्थ बनाना क्या उसकी निर्हेतुक दया नहीं है ? वैसे कारुण्य सागर होनेवाले गोविंद के चरणारविंदों में भक्ति प्रतिभव (जन्म) में हो जांय" कहकर, उस पुंडरीकाक्ष की भक्ति में लगकर पत्नी-समेत होकर निखिल

प्रति भवंबुनु गलुगुं गाक यनि यप्पुंडरीकाक्षुनि यंबुल तात्पर्यंबुनं दगिलि पत्नी समेतुंडै निखिल भोगंबुल यंदु नासक्ति वीरयक रागादि विरहितुंडुनु निर्विकारुंडुनुनै यखिल क्रियलंदु ननंतुनि यनंत ध्यान सुधारसंबुनं जौक्कुचु विगत बंधनुंडयि यपवर्ग प्राप्ति नौंदॆ, मरियुनु ॥ 1031 ॥

आ. दैव दॆवु डखिल भावज्ञडाश्रित
वरदुडयिन हरिकि धरणिसुरुलु
दैवतमुलु गान धारुणि-दिविजुल
कंटॆ दैवमॊकडु गलडॆ भुविनि ? ॥ 1032 ॥

कं. मुरहरुडिट्लु कुचेलुनि
जरितार्थुनि जेसिनट्टि चरितमु विनु स-
त्पुरुषुलकिह परसुखमुलु
हरि भक्तियु यशमु गलुगु नवनीनाथा ! ॥ 1033 ॥

व. अनि मरियु बराशर पौत्रुन कर्जुन पौत्रुंडिट्लनियॆ ॥ 1034 ॥

अध्यायमु—८२

श्रीकृष्णुडु सकुटुंबमुगा ग्रहण स्नानमुनकु बोवुट

आ. दुष्ट शिक्षणंबु दुरित संहरणंबु
शिष्ट रक्षणंबु सेय दलचि

भोगों में आसक्ति न रखकर, राग आदि से विरहित [तथा] निर्विकार होकर अखिल क्रियाओं में अनंत के अनंत-ध्यानसुधारस का आस्वादन करते हुए विगत बंधन [वाला] बनकर अपवर्ग (मोक्ष) को पाया। और भी १०३१ [आ.] देव-देव, अखिल भावज्ञ [तथा] आश्रित वरद होने वाले हरि को धरणीसुर (ब्राह्मण) दैवत (देवता) हैं; इसलिए भुवि पर धारुणी-दिविजों (ब्राह्मणों) से बढ़कर अन्य दैव कोई है ? १०३२ [कं.] मुरहर के इस प्रकार कुचेल को चरितार्थ बनाने के चरित (कथा) को सुननेवाले सत्पुरुषों को, हे अवनीनाथ ! इह [तथा] पर सुख, हरि-भक्ति [और] यश मिलेंगे। १०३३ [व.] इस प्रकार कहकर फिर पराशर-पौत्र से अर्जुन के पौत्र ने इस प्रकार कहा। १०३४

अध्याय—८२

श्रीकृष्ण का सपरिवार ग्रहण-स्नान के लिए जाना

[आ.] दुष्ट शिक्षण, दुरित-संहरण और शिष्ट रक्षण करने की इच्छा से भुवि पर मनुज होते हुए पैदा होनेवाले श्रीकृष्ण का पूरा

भुविनि मनुजुडगुचु बुट्टिन श्रीकृष्णु
विमल चरितमेल्ल विस्तरिंपु ॥ 1035 ॥

व. अनिन शुकुंडिट्लनियें ॥ 1036 ॥

सी. धरणीश ! बलुडुनु सरसिजोदरुडु नवोन्नत सुखलील नुंडुनंत
चटुलोग्र कल्पांत समयमंदुनु बोलें दृगसह्यमै समुद्दीप्तमगुचु
राजिल्लु सूर्योपरागंबु चनुदेंचुटेंरिगि भूजनुलेल्ल वरुस गदलि
मुनु जमदग्नि रामुडु पूनि युध्येडु माऱुलु घन बलोदारुडगुचु

ते. निज भुजादंड मंडित निबिड निशित
चटुल दंभोळि रुचिर भास्वत् कुठर
महित धारा विनिर्भिन्न मनुजपाल
देह निर्मुक्त रुधिर प्रवाहमुलनु ॥ 1037 ॥

ते. एनु मडुवुलु गाविंचें नेंचट नेनि
नट्टि पावन सुक्षेत्रमगु शमंत-
पंचकंबुनकपुडु संभ्रममु तोड
जनिरि बल कृष्णुलुनु संतसंबेलर्प ॥ 1038 ॥

व. इट्लु निष्कर्मुलैन रामकृष्णुलु लोक धर्मानुपालन प्रवर्तनुलै द्वारकानगर रक्षणंबुनकु प्रद्युम्न गद सांब सुचंद्र शुक सारणानिरुद्ध कृतवर्मादि योधवरुल

विमल चरित्र (कथा) विस्तृत सुनाओ। १०३५ [व.] ऐसे कहने पर शुक ने इस प्रकार कहा। १०३६ [सी.] हे धरणीश ! बल (राम) और सरसिजोदर (कृष्ण) जब नव उन्नत सुख लीला करते रहते थे, चटुल उग्र कल्पांत समय में होने की तरह दृक् [के लिए] असह्य होकर समुद्दीप्त होते हुए प्रकाशमान होनेवाले सूर्योपराग के (राहुग्रस्त सूर्यग्रहण के) आगमन को जानकर सभी भू-जन क्रम से चलकर, पहले जमदग्नि राम ने प्रयत्न करके इक्कीस बार घनबलोदार होते हुए [ते.] निजभुजा-मंडित निबिड निशित चटुल दंभोलि (वज्रायुध) [की तरह] रुचिर भास्वत् कुठार की महित धारा से विनिर्भिन्न मनुजपालों की देहों से निर्मुक्त रुधिर-प्रवाहों से १०३७ [ते.] सात सरोवर बनाये। कहीं भी हो वैसे पावन सुक्षेत्र होनेवाले शमंत पंचक को, तब बलराम और कृष्ण भी संतोष के बढ़ने पर संभ्रम के साथ चले गये। १०३८ [व.] इस प्रकार निष्कर्म (कर्म-रहित) होनेवाले [बल] राम और कृष्ण लोकधर्मानुपालन के प्रवर्तक बनकर द्वारका नगर-रक्षण के लिए प्रद्युम्न, गद, सांब, सुचंद्र, शुक, सारण, अनिरुद्ध, कृतवर्मा आदि योद्धावरों को नियमित करके, वे (स्वयं) अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि सकल

निर्यमिंचि तामु नक्रूर वसुदेवोग्रसेनादि सकल यादवुलु गांता समेतुलै स्रक्चंदनाभरण वस्त्रादुलु धरियिंचि शोभनाकारंबुलतोड बुष्पक विमानंबुलनं बोलुचु नरदंबुलनु मेघंबुल ननुकरिंचु गजंबुलनु मनो वेगंबुलैन तुरंगंबुल नेक्कि वियच्चरुलं बुरुडिंचु पुरुषुलु दम्मु सेविपं. जनि यप्पुण्य तीर्थंबुल नवगाहनंबु सेसि युपवसिंचि यनंतरंब ।। 1039 ।।

कं. भूसुरवरुलकु ननुपम, बासोलंकार धेनु वसुरत्न धरि-
त्री सुमहित बस्तुवुलुलु, -ल्लासंबुन दानमिच्चि लालितुलगुचुन् ।।1040।।

कं. पुनरवगाहनमुलु पें, -पोनरं गाविंचि वंधुयुक्तधुगा भो-
जन कृत्यंबुलु तीर्चि स, -दनुरागमुलुल्लसिल्ल नच्चोट दगन् ।। 1041 ।।

कं. घन शाखाकीर्णमुलै, यिन रश्मुलु दूरनीक येसकं बॅसगन्
ननिचिन पोन्नल नीडल, ननिचिन वेडुकल नंदनंदन मुख्युल् ।। 1042 ।।

कं. तनरिन पल्लव रुचिरा, -सनमुल नासीनुलगुचु सत्सुख गोष्ठि
बॅनुपोंदग नट बसियिं, -चिनचो बत्पुण्य तीर्थ सेवारतुलै ।। 1043 ।।

व. मुन्न चनुदेंचियुन्न मत्स्योशीनर कोसल विदर्भकुरु सृंजय कांबोज केकय मद्र कुंत्यारट्ट केरळादि भूपतुलुनु मरियुं दक्किन राजवरुलुनु हितुलुनु नंद गोपादि गोपालुरुनु गोपिका जनंबुलुनु धर्मराजानुगतुलै वच्चिन

यादवों के कांता-समेत होकर स्रक् (फूलों की मालाएँ), चंदन, आभरण, वस्त्र आदि धारण करके शोभनाकार-सहित पुष्पक विमान के समान होनेवाले रथों, मेघों का अनुकरण करनेवाले गजों, मनोवेगयुक्त तुरंगों पर चढ़कर वियच्चरों (देवताओं) के समान होनेवाले पुरुषों के उनकी सेवा करने पर, जाकर उन पुण्यतीर्थों में अवगाहन करके, उपवास करके, इसके बाद १०३९ [कं.] भूसुरवरों को अनुपम वास (वस्त्र), अलंकार, धेनु, वसु, रत्न, धरित्री सुमहित वस्तुओं को उल्लास से दान देकर लालित होते हुए, १०४० [कं.] पुनः (फिर) अवगाहन आधिक्य के साथ करके वंधुयुक्त हो, भोजन कृत्यों को पूरा करके सदनुरागों के अधिक होने पर, उस जगह पर अधिक १०४१ [कं.] घन शाखाकीर्ण होकर, इन (सूरज) की रश्मियों (किरणों) को न घुसने देकर, अतिशय रूप में वढ़कर [और] पुष्पित पुन्नागों की छायाओं में अधिक आनंद में नंदनंदन (कृष्ण) मुख्य १०४२ [कं.] शोभायमान पल्लवों की रुचि (कांति) युक्त आसनों पर आसीन होते हुए, सत्सुख-गोष्ठि की वृद्धि होने से वहाँ रहने पर तत् पुण्यतीर्थ की सेवारत होकर १०४३ [व.] पहले ही आये हुए मत्स्य, उशीनर, कोसल, विदर्भ, कुरु, सृंजय, कांबोज, केकय, मद्र, कुंति, आरट्ट, केरल आदि भूपतियों और दूसरे राजवरों, हितों, नंद-गोप आदि गोपालों, गोपिकाजनों, धर्मराजा के अनुगत

भीष्म द्रोण धृतराष्ट्र गांधारी कुंती पांडव तद्दार निवह संजय विदुर कृप कुंतिभोज विराट भीष्मक नग्नजिद् द्रुपद शैब्य धृष्टकेतु काशिराज दमघोष विशालाक्ष मैथिल युधामन्यु सुशर्मलुनु सुपुत्रकुंडैन बाह्लिकुंडुनु मोदलुगा ननेकुलु नुग्रसेनादि यादव प्रकरंबुलं बूजलं दृप्तुलं जेसिन वारुनु बमुदितात्मुलैरि अय्येड ॥ 1044 ॥

आ राजुलु गांचिरि निज, नारीयुतुलगुचु नंगना परिवारुन्
धीरुन् दानव कुल सं-, हारुन् गोपी मनोविहारुनुदारुन् ॥ 1045 ॥

व. कनि यम्माधव बलदेवुलु सेयु समुचित पूजा विधानंबुल बरितृप्तुलै यम्मुकुंदु-सान्निध्यंबु गलिगि तदीय संपद् विभवाभिरामुलै विलसिल्लुचुन्न युग्रसेनादि यदु वृष्णि पुंगवुलं जूचि वारल तोड ना राजवरुलु माधवुंडु विन निट्लनिरि ॥ 1046 ॥

म. मन शास्त्रंबुलु वाक्कुलुन् मनमुलुन् मांगल्यमुं बोंदि पा-
वनमै योप्पॅडिने रमाविभुनि भास्वत्पादपंकेज से-
चन तोयंबुल ने महात्मुनि पदाब्जातंबुलॅदेनि सो-
किन चोटॅल्लनु मुक्ति हेतुवगु नो कृष्णुंडॅ पो चूडगन् ॥ 1047 ॥

च. सनकसनंदनादि मुनिसत्तमुलंचित योगदृष्टिचे-
बनिवडि यात्मलन् वॅदकि पट्ट नगोचरमैन मूर्ति यि-

होकर आये हुए भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती, पांडव, तद्दारा (उनकी पत्नियों का) निवह (समूह), संजय, विदुर, कृप, कुंतिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित, द्रुपद, शब्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मैथिल, युधामन्यु, सुशर्मा [तथा] सपुत्रक, बाह्लिक आदि अनेकों के उग्रसेन आदि यादवप्रकरों को पूजाओं से तृप्त बनाने पर वे भी प्रमुदितात्मा बन गये। तब १०४४ [कं.] उन राजाओं ने अपनी नारियों से युक्त होकर, अंगना-परिवार [वाले], धीर दानवकुल का संहार [करनेवाले] गोपीमनोविहार [करनेवाले] तथा उदार [कृष्ण] को देखा। १०४५ [व.] देखकर उन माधव [तथा] बलदेव के किये हुए समुचित पूजा-विधानों से परितृप्त होकर उस मुकुंद के सान्निध्य को पाकर, तदीय संपदा से विभवादभिराम बनकर विलसित होनेवाले उग्रसेन आदि यदु वृष्णिपुंगवों को देखकर उनसे उन राजवरों ने ऐसे कहा ताकि माधव सुने। १०४६ [म.] "हमारे शास्त्र, वाक्, मन, मांगल्य को पाकर पावन (पवित्र) होकर शोभायमान होनेवाले जिस रमाविभु के भास्वत् पादपंकेज-सेचन जल से, जिस महात्मा के पदाब्जात जहाँ-जहाँ स्पर्श करते हैं, वहाँ-वहाँ मुक्तिहेतु होते हैं और यही कृष्ण देखने पर (मुक्ति-हेतु है) १०४७ [च.] सनक-सनंदन आदि मुनिसत्तमों के अंचित योगदृष्टि से आवश्यकता आ पड़ने पर

ट्लनवरतंबु मांस-नयनांचल गोचरुडय्यॆ नट्टॆ! यॆ-
मन नगु वीरि पुण्यमुन कादट नॆंट्टि तपंबु सेसिरो! ॥ 1048 ॥

म. निरयं स्वर्गमुलात्म गॆकॊनक ता निर्वाण मूर्तैन यी
हरि जूडन् हरि तोड बल्क हरि मेनंटन् हरि बाडगा
हरितो नेग सहासनास्तरण-शय्यावासुलै युंडगन्
हरि बंधुत्व सखित्वमुल् गलुगु भाग्यंबॆट्लु सिद्धिंचॆनो! ॥ 1049 ॥

ते. अनुचु यादव वृष्णि भोजांधकुलुनु
हरि दया लब्ध निखिलार्थुलगुचु नुन्न
मनिकि दम चित्तमुल बलु माऱु वॊगडि
परिणमिंचिरि यंत नप्पांडुमहिषि ॥ 1050 ॥

व. अप्पुडु ॥ 1051 ॥

कं. तन सुतुलकु गांधारी-
तनयुलु गाविंचु नपकृतंबुलकात्मन्
घनमुग नॆरियुचु नच्चट
गनुगॊनॆ वसुदेवु विगत कल्मष भावुन् ॥ 1052 ॥

व. अट्लु गनुंगॊनि यतनितो निट्लनियॆ ॥ 1053 ॥

कं. ओ यन्न! पांडु तनयुलु
नी यल्लुंड्रडवुलंदु नॆरि मृगमुललो

[अपनी] आत्माओं में ढूंढ़ पकड़ने पर भी अगोचर मूर्ति इस प्रकार अनवरत मांसनयनांचलगोचर हुआ है। इनके पुण्य के बारे में क्या कह सकते हैं? न जाने प्रेम से कैसा तप किया! १०४८ [म.] निरय (नरक) और स्वर्ग के बारे में आत्मा में न सोचकर स्वयं निर्वाणमूर्ति होनेवाले इस हरि को देखने के लिए, हरि से बोलने के लिए, हरि के शरीर का स्पर्श करने के लिए, हरि के बारे में गाने के लिए, हरि के साथ जाने, सहासनास्तरण शय्यावासी बनकर रहने के लिए [और] हरि का बंधुत्व [तथा] सखात्व पाने का भाग्य, न जाने कैसे सिद्ध (प्राप्त) हुआ है।" १०४९। [ते.] इस प्रकार कहते हुए, यादव, वृष्णि, भोज [और] अंधक हरिदयालब्ध निखिलार्थ [वाले] बनते हुए रहनेवाले जीवन के लिए, अपने चित्तों में अनेक बार प्रशंसा करके संतुष्ट हुए। तब वह पांडुमहिषी १०५० [व.] तब १०५१ [कं.] अपने सुतों को गांधारी [के] तनयों के किये हुए अपकृतियों (अपकारों) के लिए [अपनी] आत्मा में अधिक चिंतित होते हुए वहाँ विगतकल्मष भाव [वाले] वसुदेव को देखा। १०५२ [व.] वैसे देखकर उससे इस प्रकार कहा। १०५३ [कं.] "हे भाई, पांडु [के] तनय तुम्हारे भानजे हैं। [वे] जंगलों

बायनि यिड्डुमुल वड गरु-
णायत्तुलरगुचु मीरलरयग वलदे ? ॥ 1054 ॥

व. अनि वहुप्रकारंबुल संतापिंचुचु मरियु निट्लनियें ॥ 1055 ॥

कं. अति बलवंतपु विधि दा-
प्रतिकूलंबैन गलरॆ बंधुवुलनुचुन्
धृति गलग बाष्प जलपू-
रित लोचनयगु सहोदरिं जूचि यनॆन् ॥ 1056 ॥

सी. तल्लि ! नीकेल संतापिप मनग्रुन दलपक विधि नेल सॊलसॆदित
यखिल नियामकुंडगु नीश्वरुड्ड माय यवनिकांतरुडॆन यट्टि सूत्र-
धारुनि कैवडि दगिलि नटिपंग मनुजुलु कीलु बॊम्मलु दलंप
गावुन विधि सेत गडच्चि वर्तिपंग देवतलकुनॆन दीरदट्लु

ते. क्रोध चित्तुडु कंसुंडु बाध पशुप
निलयमुलु दप्पि नेमडवुल जरिप
घन कृपानिधि यी हरि गलुगवट्टि
कोरि माकिड्लु ग्रम्मर जेर गलिगॆ ॥ 1057 ॥

व. अनि यूरडिलं वलुकु नवसरंबुन ॥ 1058 ॥

में [और] भयंकर मृगों [के बीच] में जब लगातार कष्ट उठाते है, तुम लोगों को करुणायत्त होकर क्या [उनके बारे में] नहीं जान लेना चाहिए ?" १०५४ [व.] इस तरह अनेक प्रकारों से संताप करते हुए फिर इस प्रकार कहा। १०५५ [कं.] "अति बलवती है विधि; जब वह प्रतिकूला होती है तब (कहीं) बंधु होते हैं ?" उसे धृति (धैर्य) मिले, बाष्पपूरित लोचना होनेवाली, सहोदरी को देखकर [वसुदेव ने] कहा १०५६ [सी.] "माई! तुम अपने मन में क्यों संतप्त हो रही हो? विधि की चिंता न करके इतना कष्ट क्यों सहती हो? अखिल नियामक होनेवाला ईश्वर जब माया [रूपी] जवनिकांतर होता है, वैसे सूत्रधार की तरह [होनेवाले परमात्मा के सूत्र में लगकर] नटन करने के लिए, सोचने पर, मनुज यांत्रिक खिलौने हैं; इसलिए विधि के कार्य के विरुद्ध चलने के लिए, देवताओं के लिए भी अनिवार्य है। [ते.] क्रोध चित्त वाले कंस के पीड़ित करने पर [अपने] निलयों (स्थानों) को छोड़कर हमारे जंगलों में घूमने-फिरने पर घन कृपानिधि होनेवाले इस हरि के होने के कारण, फिर हम अपने घर आ सके हैं।" १०५७ [व.] इस प्रकार समझाते हुए बोलने के अवसर पर १०५८ [कं.] मंदरधर को देखने की इच्छा मनों में होने पर नंद-यशोदा, गोपकबृन्द

कं. नंद यशोदलु गोपक
बृंदंबुलु गोपिकलुनु विरिगोनि परमा-
नंदंबुन जनुदेंचिरि
मंदरधरु जूचु वेडुक मनमुल वोडमन् ॥ 1059 ॥

व. इट्लु सनुदेंचि ॥ 1060 ॥

कं. अति चिरकाल समागतु
नतनि निरीक्षिंचि वृष्णि यादव भोज
प्रतसुलु नेदुरेगि समु-
न्नतितो नालिंगनमुलु नडपिरि वरुसन् ॥ 1061 ॥

कं. वसुदेवुडु वारिकि सं-
तसमुन गाविंचे समुचित क्रियलंतन्
मुसलियु हरियुन् ग्रोविकरि
वेंस नंदयशोदलकुनु विनयंबेसगन् ॥ 1062 ॥

व. अट्लु नमस्कृतुलु सेसि यालिंगनंबुलु गाविंचि नयनारविंदंबुल नानंद-बाष्पंबुलु दोरग नट्लेनि स्नेहंबुलु चित्तंबुल नत्तमिल्ल नेमियुं बलुककुंडिरि। अंत नय्यशोदादेवि रामकृष्णुल निजांकपीठंबुलनुनिचि यक्कुनं गवियं दिगिचि चेक्कुलु मुद्दुगोनि शिरंबुलु मूर्कोनि चिबुकंबुलु पुडुकुचु बुनः पुनरालिंगनंबु गाविंचि परमानंदंबुनं बोंदुचु नुन्नंत नदंपयि ॥ 1063 ॥

च. स्थिरमति तोड रोहिणियु देवकियुं दग नंद गोप सुं-
दरि गनि कौगिलिंचुकोनि तत्कृतुलेल्ल दलंचि यिति नी

गोपिकाएँ समूहों में परमानंद से आये। १०५९ [व.] ऐसे आकर, १०६० [कं.] अति चिरकाल [के अनंतर] समागत उसका निरीक्षण करके (कृष्ण को देखकर) वृष्णि, यादव, भोज-प्रततियों ने सामने जाकर समुन्नति-सहित एक-एक करके आलिंगन किये। १०६१ [कं.] वसुदेव ने उनको आनन्द से समुचित क्रियाएँ करायीं। तब मुसली (बलराम) और हरि ने शीघ्र अधिक विनय के साथ नंद और यशोदा को नमस्कार किये। १०६२ [व.] उस प्रकार नमस्कृतियाँ करके, आलिंगन करके नयनारविंदों से आनंद-वाष्पों के बहने पर, रहस्यहीन स्नेहों के चित्तों में व्याप्त होने पर, कुछ न बोलकर [चुप] रह गये। तब वह यशोदा देवी राम और कृष्ण को निजांकपीठों पर बिठाकर, वक्ष से लगाकर [और] उतार कर, गालों को चूमकर, सिरों का आघ्राण करके, चिबुकों को फेरते हुए पुनःपुनः आलिंगन करके परमानंद को प्राप्त करते हुए रह गई तो तब १०६३ [च.] स्थिर मति से रोहिणी और देवकी अच्छी

वरुडुनु नीवु बंधुजन वत्सलतन् मुनु जेयु सत्कृतुल्
मऱवग वच्चुने तलप माकिकनॅन्नटिकि दलोदरी ! ॥ 1064 ॥

कं. जननंबंदिन मॉदलुग, घन मोहमुतोड बॅंचु कतमुन दमकुन्
जननी जनकुलु वीरनि, मनमुन दलपोयलेवु मसु नी तनयुल् ॥ 1065 ॥

कं. अंटिन प्रेमनु वीरिं, गंटिकि ऱॅप्पइडभैन गति बॅंपग मा-
कंटॅन्नेनरौटनु मी, यिटन् वसियिंचि युंडिरिलि दिनंबुल् ॥ 1066 ॥

व. अनि यिट्लु प्रियालापंबुलु वलुकुचुंडु नयसरंबुन गोपाल सुंदरुलमंदानंद कंदळित हृदयलयि हृदयेश्वरुंडयिन गोविंदुंडु चिरकाल समागतुडगुट जेसि यतनिं जूचु तलंपुलुल्लंबुल वॅल्लिगोनं जेरि ॥ 1067 ॥

च. नलिनदळाक्षु जूचि नयनंबुलु मोड्चगजालकात्मलन्
वलचि तदीय मूर्ति विभवंबु दलंचुचु गौगिलिंचुचुं
बुलकलु मेन जाडुकोन बोट्लु चॉदिकिरि ब्रह्मनुन्मनं-
बुल गनि चॉवकु योगिजनमुं बुरणिपग मानवेश्वरा ! ॥ 1068 ॥

च. पॉलतुल भावमात्म गनि फुल्ल सरोरुहलोचनुंडु वा-
रल नपुडेकतंबुनकु रम्मनि तोड्कॉनिपोयि यंदु न-

तरह नंद-गोपसुन्दरी को देखकर, [उससे] आलिगन करके सब तत्कृतियों का स्मरण करके, "हे स्त्री ! तुम्हारे वर (पति) [और] तुम बंधुजनवत्सलता से जो सत्कृतियाँ पहले कर चुकीं, उन्हें क्या हम भूल सकती हैं ? हे तलोदरी ! [उनके बारे में] सोचने पर हम कभी उन्हें भूल सकती हैं ? १०६४ [कं.] जन्म लेने से लेकर घन मोह के साथ पालन-पोषण करने के कारण तुम्हारे पुत्रों ने ऐसा न समझा कि हम उनके जननी-जनक हैं। १०६५ [कं.] लगे हुए प्रेम के कारण इनको आँख की पलक की तरह पालन-पोषण करने से, हमसे भी बढ़कर प्रेम दिखाने पर [वे] इतने दिन आपके घर में बसे।" १०६६ [व.] यों कहकर प्रियालाप करने के अवसर पर गोपाल-सुन्दरियाँ अमंदानंद कंदलित हृदय वाली बनकर [अपने] हृदयेश्वर गोविंद के चिरकाल [के बाद] समागत होने से उसे देखने की इच्छाएँ मन में प्रवाहित होने से १०६७ [च.] हे मानवेश्वर ! नलिनदलाक्ष को देखकर नयनों को बन्द न कर सक कर आत्माओं में प्रेम करके, तदीय मूर्ति के विभव की चिंता करते हुए, आलिगन करते हुए, शरीर पर रोंगटे खड़े होने पर, रमणियाँ इस प्रकार आनंदित हुईं जिस प्रकार ब्रह्म को मन में देखकर योगीजन आनंदित होते हैं। १०६८ [च.] [उन] वनिताओं के भाव को आत्मा में जानकर फुल्ल सरोरुहलोचन ने उन्हें तब एकांत में आओ बोलकर ले

अध्यायमु—८३

उ. धर्मतनूभवुं गनि पदंबुलकुन्नतुडै सपर्यलन्
निर्मल भक्तिमै नडपि नीवुनु दम्मुलु बंधुकोटि स-
त्कर्म चरित्रुलै तगु सुखंबुल नोप्पुचुनुन्न वारे ना-
र्नमिलि बांडवाग्रजुडु नम्मधुसूदनु तोड निट्लनुन् ।। 1076 ।।

कं. सरसिजनाभ ! भवत्पद-
सरसीरुह माश्रयिंचु जनुलति सौख्य
स्फुरणं बोलुपारुचु भुवि
जरियिपरे भक्त-पारिजात ! मुरारी ! ।। 1077 ।।

व. अदियुनुं गाक ।। 1078 ।।

सी. सुमहित स्वप्न सुषुप्ति जागरमुलन् मूडवस्थल वासि बाडि मिगिलि
वेलिनुंडु लोनुंडु विश्वमै युंडुदु विश्वंबु नीयंदु वेलुगुचुंडु
भवदीय महिमचे बाटिल्लु भुवनंबुलुदयिंचु नोकवेळ नुडिगि मडुगु
संचिताखंडित ज्ञानिवै योप्पुचु नविहतयोग मायात्म दनरि

ते. दुरितदूरुलु नित्यमुक्तुलकु जेंद
नलवियै पेंपु दीपिंतु वंबुजाक्ष !

अध्याय—८३

[उ.] धर्मतनूभव को देखकर चरणों को विनति करके सपर्याओं से निर्मल भक्तियुक्त होकर "[क्या] तुम और [तुम्हारे] छोटे-भाई बंधु-कोटि (समूह) सत्कर्म-चरित्र [वाले] बनकर बड़े सुखों से प्रकाशमान हैं ?" कहने पर कांक्षायुक्त होकर पांडवाग्रज ने उस मधुसूदन से इस प्रकार कहा। १०७६ [कं.] "हे सरसिजनाभ ! हे भक्तपारिजात मुरारी ! भवत्पद [रूपी] सरसीरुहों का आश्रय लेनेवाले लोग अति सौख्य-स्फुरण से शोभायमान होते हुए भुवि पर नहीं चलते ? १०७७ [व.] इसके अतिरिक्त १०७८ [सी.] सुमहित स्वप्न, सुषुप्ति [और] जागृति नामक तीनों अवस्थाओं को छोड़कर अतिशय रूप में बाहर [और] अन्दर रहते हो। तुम विश्व बनकर रहते हो। विश्व तुममें प्रकाशमान होकर रहता है। भवदीय महिमा से प्रवर्तमान भुवनों का कभी-कभी उदय होता है; कभी-कभी [वे] दबकर रह जाते हैं। संचित अखंडित ज्ञानी बनकर प्रकाशमान होते हुए अविहत योग-माया से आत्मा में भरकर, [ते.] दुरितदूरों [व] नित्य मुक्तों के लिए प्राप्य होने योग्य बनकर, हे अंबुजाक्ष ! अधिक दीप्तिमान हो;

घन कृपाकर ! निखिल विकार दूर !
नीकु म्रोक्केद सर्वलोकैकनाथ ! 1079 ॥

कं. अनि विनुतिच्चिन नच्चटि
जन पालक बंधु मित्र सकल जनंबुल्
विनि यनुरागिल्लिरि नें-
म्मनमुलनानंद जलधि मग्नुलु नगुचुन् ॥ 1080 ॥

ते. अट्टि यॊप्पगु वेळ नॆय्यंबु मॆरसि
यॊक्क चोटनु संतोष युक्तुलगुचु
दानवांतक सतुलुनु द्रौपदियुनु
गूडि तम लोन मुच्चटलाडुचुंडि ॥ 1081 ॥

लक्षणयनु श्रीकृष्णुनि यष्टमभार्य द्रौपदी देविकि दन विवाह वृत्तांतंबु वॆप्पुट

व. अट्टियॆड गृष्ण कथा विशेषंबुलु परितोषंबुन नुग्गडिंचुचु प्रसंग वशंबुन ना रुक्मिणीदेवि मोदलगु श्रीकृष्णु भार्यलं गनुंगॊनि पांचालि यिट्लनियॆ। मिम्मु बुंडरीकाक्षुंडु विवाहंबयिन तॆरंगुलु विनिपिंपुडनिन वारुनु दम परिणयंबुल तॆरंगुलु मुन्नु ने नीकुं जॆप्पिन विधंबुन विनिपिंचिरंदु सविस्तरं बुगा दॆलियंदलुकनि मद्रराज कन्यका विवाह वृत्तांतं बामानिनि

हे घन कृपाकर ! निखिल विकारों से दूर [होनेवाले] ! सर्वलोकैकनाथ ! तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ।" १०७९ [कं.] ऐसा प्रार्थना करने पर वहाँ के जनपालक, बन्धु, मित्र, सकल जन अपने मनों में आनंद-जलधि-मग्न होते हुए, सुनकर, अनुरंजित हुए। १०८० [ते.] ऐसे सुहावने समय पर स्नेह के बढ़ जाने पर, एक जगह पर संतोषयुक्ता होकर कृष्ण की सतियाँ और द्रौपदी भी एकत्रित होकर आपस में इधर-उधर की बातें करते हुए। १०८१

लक्षणा नामक श्रीकृष्ण की अष्टम पत्नी का द्रौपदी देवी को अपने विवाह का वृत्तांत समझा देना

[व.] उस समय पर कृष्णकथा विशेषों को परितोष से बोलते हुए प्रसंग-वश उस रुक्मिणीदेवी आदि श्रीकृष्ण की पत्नियों को देखकर पांचाली ने इस प्रकार कहा। "आप लोगों से पुंडरीकाक्ष के विवाह कर लेने का विधान सुनाइए।" ऐसा कहने (पूछने) पर उन्होंने परिणय [होने] के विधान पहले जैसे मैंने तुमको सुनाया वैसे सुनाये। उनमें सविस्तर न समझाये गये मद्रराजकन्या के विवाह के वृत्तांत को उस मानिनी ने पांचाली से जिस

पांचालिकि जॆप्पिन विधंबु विनुमनि शुकुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुन किट्लनियें ॥ 1082 ॥

सी. पांचालितो मद्रपति-सुत यिट्लनु संगीत विद्या विशारदुंडु मारुडु चेति वीणास्वन कलित मैनट्टि गोविंद कथामृतंबु दविलि ये ग्रोलि चित्तमु तन्मयत्वंबु नोंदि मोदिंचुचुनुंडु नंत दुहितृ वत्सलुडु मद्गुरुडु दा नदि विनि सदुपायमोक्कटि मदि दलंचि

ते. चदल नॆव्वंगिनैन गोचरमु गाक
वारि मध्यमुलो नभिव्याप्ति दोचु
मत्स्य यंत्रंबु कल्पिंचि मनुजलेंत-
वारिकैननु दिव्व मोवंगरानि ॥ 1083 ॥

ते. धनुवु पवि चंड निष्ठुरास्त्रंबु नचट
नंचितंबैन गंध पुष्पाक्षतलनु
बूज गाविंचि युनिचि येपुरुषुडैनि
निद्ध बलमुन नीचाप मॆक्कुवॆट्टि ॥ 1084 ॥

कं. ई सायकंबु नारि, वोसि वेसन् मत्स्य यंत्रमुन् धर गूलन्
वेसिन शौर्यधुरीणुडु, ना सुत वरियिंचु ननि जनंबुलु विनगन् ॥ 1085 ॥

कं. चाटिंचिन नव्वार्तकु, वाटिंचिन संभ्रमबुलु बाणासन मौ-
र्वीटंकार महारव, पाटित शात्रवुलु बाहुबल संपन्नुल् ॥ 1086 ॥

प्रकार कहा, सुनो, इस प्रकार कहकर शुक ने परीक्षिन्नरेंद्र से इस प्रकार कहा। १०८२ [सी.] पांचाली से मद्रपतिसुता इस प्रकार बोलती है, "संगीत-विद्या-विशारद [होनेवाले] नारद के हाथ की वीणा के स्वन से कलित होनेवाले गोविन्द-कथामृत को सुनकर, पीकर (आनंदित होकर) चित्त के तन्मयत्व को पाकर [मेरे] मोद पाते समय दुहितृवत्सल [होनेवाले] मद्गुरु (मेरे पिता) स्वयं यह सुनकर, एक सदुपाय को मन में सोचकर [ते.] आकाश पर किसी प्रकार गोचर न होकर वारि (पानी) के मध्य अभिव्याप्त होनेवाले मत्स्य यंत्र की कल्पना करके, मनुज कितने भी बड़े हों, उनकी पहुँच के बाहर होकर, उनसे ढोये न जा सकनेवाले। १०८३ [ते.] धनुष की, जो पवि (वज्र)-चंड निष्ठुरास्त्र को वहाँ अंचित गन्ध, पुष्प, अक्षतों से पूजा करके, रखकर, कोई भी पुरुष हो, शुद्ध बल से इस चाप (धनुष) को चढ़ाकर १०८४ [कं.] इस सायक (बाण) को चढ़ाकर शीघ्र मत्स्य-यंत्र को धरा पर गिरा देगा [वह] शौर्यधुरीण मेरी सुता को वरेगा — यों जन सुनें, ऐसी १०८५ [कं.] घोषणा करने पर उस वार्ता को सुनकर संभ्रम से बाणासन, मौर्वी-टंकार, महारव-पाटित शत्रु (महान् शब्द को चीर डालनेवाले शत्रु) और

कं. सुंदर तनुलु तदुत्सव, -संदर्शन कुतुकुलमित सैन्युलु भू भृ-
न्नंदनु लेतेंचिरि जन, -नंदित यशुलगुचु मद्र नगरंबुनकुन् ॥ 1087 ॥

कं. चनु देंचिन वारिकि म-
ज्जनकुडु विविधार्चनमुलु सम्मति गावि-
ंचिन ना बाहु बलाढ्युलु
धनुवुं जेरंग नरिगि धैर्य स्फूर्तिन् ॥ 1088 ॥

व. इट्लु डग्गरि यद्धनुवुं गनुंगोनि ॥ 1089 ॥

उ. कोंदरु पूनलेक चन गोंदरु पूनि कदल्प लेकपो
गोंदरोकिंत येत्त नोंक कोंदरु मोपिड लेक ववकगा
गोंदरोकिंत येक्किडुचु गोरि नृपालकुलिट्लु सिग्गुनं
जेंदि तलंगि पोवुचुनु सी यिट केगुट नीति तप्पनन् ॥ 1090 ॥

व. अट्टियेड ॥ 1091 ॥

कं. भीमुडु राधेयुडु नु, -द्दाम गति ब्रॅवकु ब्रोचि तग नस्लीनं
बेमरुक तिरुगु चुंटयु, दामेमियु नेरुग लेक दलगिन पिदपन् ॥ 1092 ॥

कं. अमरेंद्र तनयु डन्स,-त्स्यमु नेय नुपाय मेरिगि तगनेसियु मी-
नमु द्रुंपलेक सिग्गुन, विमुखुंडै चनियें नंत विकलुंडगुचुन् ॥ 1093 ॥

बाहुबलसंपन्न, १०८६ [कं.] सुंदर तन (शरीर) वाले, तदुत्सव का संदर्शन करने के उत्सुक, अमित सेना वाले भूभृतनंदन (राजा लोग) जननंदित यश [वाले] होते हुए मद्रनगर में आये। १०८७ [कं.] आये हुए उनको मेरे जनक की सम्मति से विविध अर्चनाएँ करने पर वे बाहुबलाढ्य धैर्य [और] स्फूर्ति से धनुष के पास जाकर, १०८८ [व.] इस प्रकार पास जाकर उस धनुष को देखकर, १०८९ [उ.] कुछ लोगों के पकड़ न सककर जाने पर, कुछ लोगों के पकड़कर हिला न सककर जाने पर, कुछ लोगों के थोड़ा उठाने पर, और कुछ लोगों के [धनुष के] भार को सह न सककर, बाकी लोगों में से कुछ के धनुष उठाकर ज्या चढ़ाकर, इच्छा करके नृपालकों के इस प्रकार लज्जित होकर, हट जाते हुए, कहने पर कि छि: यहाँ आना नीति का दोष है। १०९० [व.] ऐसे समय पर, १०९१ [कं.] भीम और राधेय (कर्ण) के उद्दाम गति से धनुष पर ज्या चढ़ाकर प्रयत्न करने पर, उस मीन के लगातार घूमते रहने से, उनके कुछ न जान सकने पर, हट जाने के बाद १०९२ [कं.] अमरेंद्र-तनय उस मत्स्य को गिरा देने का उपाय जानकर, बाण छोड़कर भी, मीन को गिरा न सककर, लज्जा से, विमुख होकर और विकल होते हुए चला गया। १०९३ [व.] इस प्रकार सकल राजकुमार, अपने-अपने प्रयत्नों के विफल हो जाने

व. इट्लु सकल राजकुमारुलुं दम तम प्रयत्नंबुलु विफलंबुलैन मुखार-
विदंबुलु मुकुळिंचि दैन्यंबुन विन्ननै चूचुचुन्न येड ॥ 1094 ॥

च. सरसिज-पत्त्र-लोचनुडु चापमु सज्यमु सेसि युल्लस-
च्छर मरि वोसि कार्मुक विशारदुडै यलवोक वोलें खे-
चरमगु मीनमुं दुनिमें सत्वरतन् सुर सिद्ध साध्य खे-
चर जय शब्द मॊप्प वलुचं गुरिसें दिवि नुण्पवर्षमुल् ॥ 1095 ॥

व. अय्यवसरंबुन नेनु परितुष्टांतरंगनै परमानंद विकच वदनारविंद नगुचु
निंदिदिर सन्निभंबुलगु चिकुर बृंदंबुलु विलसदलिक फलकंबुनं दळुकु
लॊलुकु घर्मजल कणंबुलं गरंगु मृग मद तिलकंबुद्दसलुन मसलु कॊनिनं गर
किसलयंबुन नोत्तरिचुचु मिसमिस मनु मॆरुंग गमुलु गिरिकॊन नॆरि गौनु
वडवड वडंक नप्पुडु मंद गमनंबुन ॥ 1096 ॥

च. ललित पदाब्ज नूपुर कलध्वनितो, दरहास चंद्रिका
कलित कपोल पालिकल गप्पु सुवर्ण विनूत्न रत्न कुं-
डलरुचुलॊप्प गंकण झणंकृतुलिंपॆसलार रंग भू-
तलमुन कॆगुदॆंचि मुख तामरसं बपुडॆत्ति चूचुचुन् ॥ 1097 ॥

च. नरपतुलं गनुंगॊनि मनंबुन वारि वृणीकरिंचि म-
रकर जलजात दिव्य मणि कांचन मालिक नम्मुरारि कं-

पर [और] मुखारविंदों के मुकुलित होने पर दैन्य से विवर्ण होकर देखते रहे तो १०९४ [चं.] सरसिजपत्रलोचन (कृष्ण) ने चाप को चढ़ा कर उल्लसत् शर का संधान करके कार्मुक विशारद बनकर लीला के समान (आसानी से) शीघ्र खेचर होनेवाले मीन को मार डाला; सुर, सिद्ध, साध्य [और] खेचरों के जयकार शब्द करने पर स्वर्ग में अधिक पुष्प-वर्षा हुई। १०९५ [व.] उस अवसर पर मैं परितुष्टांगा बनकर परमानंद से विकचवदनारविंदा होती हुई इंदिदिरसन्निभ (भ्रमरों के समान) होनेवाले चिकुर-वृन्दों (केशजालों) के विलसत् अलिक (ललाट)-फलक पर प्रकाशमान घर्मजलकणों (पसीने) से पिघलनेवाले मृगमदतिलक के प्रवाहित होने पर कर-किसलय से हटाये जानेवाले उज्ज्वल कांति-समूहों से घिरी हुई सुंदर कटि के अधिक कंपित हो जाने पर, तब मंदगमन से १०९६ [च.] ललित पदाब्ज नूपुर कलध्वनि से, दरहासचंद्रिका-कलित कपोल-पालिकाओं (गालों) को ढँक देनेवाले सुवर्ण-विनूत्न-रत्न-कुंडल-रुचि (कांति) के अधिक हो जाने पर, कंकण-झणंकृतियों के अधिक बढ़ जाने पर, भूतल पर आकर मुखतामरस (कमल) को तब उठाकर देखते हुए १०९७ [च.] नरपतियों को देखकर, मन में

धरमुन लीलमै निडि पदंपडि नव्य मधूक दाम मा-
हरि कबरि दगिलिंचिति नयंबुन गप्पुल लज्ज दैरगन् ॥ 1098 ॥

व. अप्पुडु ॥ 1099 ॥

च. कौलदिकि मीरगा डमरु गोमुख डिंडिम मड्डु शंख का-
हळ मुरळी मृदंग पणवानक दुंदुभि ढक्क कांस्य म-
र्दळ मुरजा रजादि विविध ध्वनुलेपुन भूनभोंतरं-
बुल जॅलगॅन् नटी नटनमुल् दनरारॅ मनोहराकृतिन् ॥ 1100 ॥

व. अंत ॥ 1101 ॥

च. अमरगणंबु दोलि युरगारि सुधाकलशंबु गॉन्न चं-
दमुन समस्त शत्रु वसुधावर कोटि दृणीकरिंचि य-
क्कमल विलोचनुंडु ननु गौगिट नॉप्पग जेर्चि सिंह चं-
क्रमण मॅलर्प गॉंचु जनॅ गांचन चारु रथंबु मीदिकिन् ॥ 1102 ॥

व. अट्लु रथारोहणंबु सेसिन ॥ 1103 ॥

च. तुरग चतुष्कमुन् विमत दुर्गम शूरत बून्चि दारुकुं
डरदमु ड़ॉप्प शत्रुनिकरांध तमःपटल प्रचंड भा-
स्कर रुचि नॉप्पु नट्टि निज कार्मुक मुक्त गुण प्रघोष सं-
भरित दिगंतरंबुगनु पद्म दळाक्षुडु वोवु चुंडगन् ॥ 1104 ॥

उनको तृणीकृत करके (धिक्कार करके) मत् (अपने) कर-जलजात दिव्य मणि-कांचन-मालिका को उस मुरारि के कंधर (गले) में लीला से डालकर, इसके बाद, नव्य मधूक-दाम को उस हरि की कबरी (जूड़े) में, स्नेह से और आँखों के लज्जित होने पर, लगा दिया। १०९८ [व.] तब १०९९ [च.] अधिक वेग से डमरू, गोमुख, डिंडिम, मड्डु (लोहे का गोला), शंख, काहळ, मुरली, मृदंग, पणवानक, दुंदुभि, ढक्का, कांस्य मर्दल, मुरजा [और] रजा आदि विविध ध्वनियों के ज़ोर से भू-नभोंतरों में बजने पर, मनोहराकृति से नटी-नटन (नृत्य) प्रकाशमान हुए। ११०० [व.] तब ११०१ [च.] अमरगण को हटाकर उरगारि (गरुत्मान्) ने जिस प्रकार सुधाकलश को पाया, उसी प्रकार समस्त शत्रु-वसुधाबर-कोटि (समूह) का तिरस्कार करके वह कमल-विलोचन मुझसे कसकर आलिंगन करके, सिंह-चंक्रमण विधि से [मुझे] कांचन चारु (सुंदर) रथ पर ले गया। ११०२ [व.] उस प्रकार रथारोहण करने पर ११०३ [च.] तुरग-चतुष्क को विमत दुर्गम शूरता से जुत करके दारुक ने रथ को सिद्ध किया तो शत्रुनिकर [रूपी] अंधतमःपटल [के लिए] प्रचंड भास्कर-रुचि [से] प्रकाशमान होनेवाले निज कार्मुकयुक्त गुण प्रघोष से संभरित दिगंतर होते हुए, पद्मदलाक्ष (कृष्ण) के जाते समय ११०४

व. अट्टियेंड संकल राजलोकंबुनु गृष्णुनि विभवंबुनकु जूपोपक यसंख्यं-
बुलगु मूकलुगट्टि यम्महात्मुनि माहात्म्यंबु दॆलियक दर्पांधुलै
कडंगि ॥ 1105 ॥

उ. भाव भव प्रसून शर वाधित मानसुलै समस्त धा-
त्रीवर नंदनुल् बलुपु दॆंपुनु बॆंपुनु सॊंपु नेर्पडन्
दॆव किरीट रत्न रुचि दीपित पाद सरोजुडैन रा-
जीव दळाक्षु दाकिरि विशृंखल वृत्ति नति प्रयत्नुलै ॥ 1106 ॥

व. अंत ॥ 1107 ॥

च. सरसिज लोचनुंडु निज शार्ङ्ग शरासनमुक्त हेम पुं-
ख रुचिर शात नायक निकायमुलन् रिपु कोटि नेसि सिं-
धुर रिपु विक्रम प्रकट दोर्वलुडै विलसिल्लि यीर्ते दु-
स्तर चलितान्य सैन्यमुनु सज्जन मान्यमु बांचजन्यमुन ॥ 1108 ॥

उ. आ तरि भूरि बाहु बलुलैन विरोधि नरेश्वरुल् मृग-
व्रातमु लॊक्क पॆट्ट मृगराज किशोरमुपै नॆदिर्चिन-
ट्लातुरलै चतुर्विध समिद्ध बलंबुल तोड गूडि नि-
र्धूत कळंकुडैन नवतोयज नेत्रुनि जुट्टु मुट्टिनन् ॥ 1109 ॥

च. अलिगि मुरांतकुंडु गुलिशाभ शरंबुल नूत्न रत्न कुं-
डलमुलतो शिरंबुलु रणन्मणि नूपुर राजितो वदं-

[व.] तब सकल राजलोक कृष्ण के विभव को देखकर सह न सककर असंख्य समूह बनकर उस महात्मा के माहात्म्य को न जानकर [और] दर्पांध बनकर प्रयत्न करके ११०५ [उ.] भावभव के प्रसूनशर-बाधित मानस [वाले] बनकर, समस्त धात्रीवर-नंदनों ने बल, साहस और सौंदर्य के रहने पर देव-किरीट-रत्न-रुचि-दीप्त-पाद-(चरण) सरोज होने वाले का, विशृंखलवृत्ति से अति प्रयत्न करके सामना किया। ११०६ [व.] तब ११०७ [च.] सरसिजलोचन ने निज शार्ङ्ग शरासन [से] मुक्त हेम पुंख रुचिर शात-शायक (-बाण) निकायों को (समूहों को) रिपु कोटि पर डालकर फिर रिपु-विक्रम प्रकट दोर्बल (वाला) बनकर [और] विलसित होकर दुस्तरचलित अन्य (शत्रु) सैन्य [वाले] [तथा] सज्जन से मान्य पांचजन्य को फूंका (बजाया)। ११०८ [उ.] तब भूरि बाहुबल वाले विरोधी नरेश्वरों ने, जैसे मृगव्रात (जंतुओं का समूह) एक साथ मृगराजकिशोर का सामना करता है, इतर (शत्रु) बनकर चतुर्विध समिद्ध बलों को साथ लेकर निर्धूत कलंक होनेवाले नवतोयज नेत्र (कृष्ण) को घेर लिया तो ११०९ [च.] क्रुद्ध होकर मुरांतक ने

बुलु गटकांगुळीयक विभूषण चाप शरालि तोड जे-
तुलु निल गूलग विजय दोहलियै तुनुमाडॆ वॆडियुन् ॥ 1110 ॥

हत शेषुलु चौदकाकुल
गति दूल निशात पवन कांडमुल समु-
द्धति नेसि तोलि विजयो-
न्नतुडयि निजनगरि कॆगॆ नगधरुडंतन् ॥ 1111 ॥

व. अट्लु महित मंगळालंकृतंबुनु नति मनोहर विभवाभिरामंबुनगु द्वारका-
नगरंबुन कचदेंचिन मज्जनकुडुनु प्रियंबुन तोडन सनुदेंचि ॥ 1112 ॥

व. रणित विनूत्न रत्न रुचिर स्फुट नूपुर हार कर्ण भू-
षण कटकांगुळीयक लसत्परिधान किरीट तल्प वा-
रण रथ वाजि हेति निकरंबुलनुं बरिचारिका तति
ब्रणुत गुणोत्तरुंडयिन पद्मदळाक्षुन किच्चॆ नॆम्मतोन् ॥ 1113 ॥

व. इट्लु महनीय तेजोनिधियैन माधव दया परिलब्ध निखिल वस्तु विस्तारुं-
डय्युनु निजाधिकार शुद्धि कॊरकु मरलं गन्यारत्नंबुनु, विनूत्न रत्न
व्रातंबुनु समर्पिंचेननि भूसुर विसरंबुलु विनुतिंप मार्तांड्रयैन बृहत्सेनुंडु
नन्नुनु, समस्त वस्तुवुलनु गृष्णुनकु समर्पिंचि क्रमंबुन सकल यादवुलनं
बूजिंचि मरलि निज पुरंबुनकु जनियॆ ।

कुलिशाभशरों से नूतन रत्नकुंडलयुक्त शिरों को, रणन्मणि-नूपुर-राजि से पदों को कटक अंगुलीयक विभूषण चाप-शरालि से हाथों को, भूमि पर गिर पड़े, ऐसा विजयोत्साही बनकर मार डाला। फिर १११० [कं.] हत शेषों के सूखे पत्तों की तरह गिर जाने पर निशात पवनसमूहों की तरह समुद्धति से दूर भगा देकर, विजयोन्नत होकर तब नगधर निज नगरी को चला गया। ११११ [व.] उस प्रकार महित मंगलाकृत [तथा] अति मनोहर विभवाभिराम [होनेवाले] द्वारका नगर में आ जाने पर मत् (मेरे) जनक ने भी प्रेम से साथ तुरंत आकर, १११२ [व.] रणित विनूत्न रत्न-रुचिर-स्फुट नूपुर, हार, कर्ण-भूषण, कटक, अंगुलीयक, लसत् परिधान, किरीट तल्प, वारण, रथ, वाजि, हेति निकरों को [तथा] परिचारिकातति (समूह) को प्रणुत गुणोत्तर होनेवाले पद्मदलाक्ष को स्नेह के साथ दिया। १११३ [व.] इस प्रकार महनीय तेजोनिधि होनेवाले माधव की दया से परिलब्ध निखिल वस्तु विस्तार वाला होकर भी निज अधिकार की शुद्धि के लिए फिर से कन्यारत्न को [और] विनूत्न रत्न-व्रात (-समूह) को समर्पित किया। इस प्रकार भूसुर समूहों के विनुति करने पर मेरे पिता होनेवाला बृहत्सेन मुझे [और] समस्त वस्तुओं को कृष्ण को समर्पित करके क्रम से सकल यादवों की पूजा करके लौटकर निज पुर में गया।

अध्यायमु—८४

व. अनि चॅप्पिन गुंतियु गांधारियु कृष्णयु नखिल नृपाल कांताजनंबुनु गोपिकलुं दम तम मनंबुल सर्व भूतांतर्यामियु लीला मानुष विग्रहुंडुनुं—पुंडरीकाक्षु चरणारविंद स्मरणानंद परवशलै कृष्णुं ब्रशंसिचि रंत ॥ 1114 ॥

च. बलवदराति मर्दनुल बांडुर नील निभ प्रभांगुलं
गलित निजाननांबुज विकास जितांचित पूर्णचंद्र मं-
डलुल बरेशुलन् नर विडंबनुलं गरुणापयोधुलन्
विलसदलंकरिष्णुल नवीन सहिष्णुल रामकृष्णुलन् ॥ 1115 ॥

नारदादि महर्षुलु श्रीकृष्ण दर्शनंबु चेसिकौनि वसुदेवुनिचे क्रतुवु चेयिचुट

व. संदर्शिचु तलंपुल दम हृदयारविंदंबुल प्रेमंबु संदडिनीन नप्पुडु ॥ 1116 ॥

उ. धीरमतिन् द्वित त्रितक दैवल सात्यवतेय कण्वुलुन्
नारद गौतम च्यवन नाकुज गार्ग्य वसिष्ठ गालवां-
गीरस कश्यपासित सुकीर्ति मृकंडुज कुंभसंभवां-
गीरुलु याज्ञवल्क्य मृग शृंग मुखाखिल तापसोत्तमुल् ॥ 1117 ॥

अध्याय—८४

[व.] ऐसा कहने पर कुंती, गांधारी, कृष्णा, अखिल नृपाल-कांताजन और गोपिकाओं ने अपने-अपने मनों में सर्वभूतांतर्यामी [और] लीला-मानुष विग्रह [धारी] होनेवाले पुंडरीकाक्ष के चरणारविंद-स्मरणानंद से परवशा बन कर, कृष्ण की प्रशंसा की। तब १११४

नारद आदि महर्षियों का श्रीकृष्ण के दर्शन करके वसुदेव से क्रतु कराना

[च.] बलवत् अराति मर्दनों को, पांडुरनील निभ प्रभांगों को, कलित निजाननांबुज विकास-जित अंचित पूर्णचंद्रमंडलों को, परेशों को, नर विडम्बनों को, करुणापयोधियों को, विलसत् अलंकरिष्णों को, नवीन सहिष्णों को, राम-कृष्णों को १११५ [व.] संदर्शन करने की इच्छा से अपने हृदयारविंदों में प्रेम के भर जाने पर, तब १११६ [उ.] धीर मति से द्वित, त्रितक, देवल, सात्यवतेय, कण्व, नारद, गौतम, च्यवन, नाकुज, गार्ग्य, वसिष्ठ, गालव, अंगीरस, कश्यप, असित, सुकीर्ति, मृकंडुज, कुंभ-सभव, अंगीर, याज्ञवल्क्य, मृगशृंगमुख [आदि] अखिल तापसोत्तमों के १११७ [व.] आने पर

व. चनुदेंचिन गृष्णुंडु वारलकु ब्रत्युत्थानंबु सेसि वंदनंबु लाचरिंचि विविधार्चनलु गाविंचि यिट्लनियें ॥ 1118 ॥

सी.. सन्मुनीश्वरुलार ! जन्म भाक्कुलमैन माकु निच्चोट सम्मतिनि देव
निकर दुष्प्रापुलु निरुपम योगींद्रुलैन मी दर्शनंबब्बे गादे
धृति मंदभाग्युलिंद्रिय परतंत्रुलुनैन मूढात्मुलकनघुलार !
भवदीय दर्शन स्पर्शन चिंतन पादार्चनलु दुर्लभंबुलय्यु

ते. नेडु माकिट सुलभमै नॅगडॅ . गादे ?
जगतिपै तीर्थभूतुलु साधुमतुलु
मिम्मु दर्शिचुटय चालु नॅम्मितोड
वेर तीर्थंबुलवनिपै वॅदकनेल ? ॥ 1119 ॥

व. अदियुनुं गाक युदकमयंबुलैन तीर्थंबुलुनु मृच्छिलामयंबुलैन देवगणंबुलुनु दीर्थ देवता रूपंबुलु गाकुंडुट लेदु । ऐन नवि चिरकाल सेवनार्चनलं गानि पावनंबु सेयवु । सत्पुरुषुलु दर्शन मात्रंबुनं बावनंबु सेयुदुरनि वॅंडियु ॥ 1120 ॥

सी. आदित्य चंद्राग्नि मेदिनी तारांबुमारुताकाश वाङ्मनमु लोलि
परिकिंप दत्तदुपासलंबुल बुनीतमुलु सेयग समर्थमुलु गावु
सकलार्थ गोचर ज्ञानंबु गल महात्मकुलु दारु मुहूर्त मात्र सेव
जेसि पावनमुलु सेयुदुरदियु नट्लुंडॅ धातुत्रय युक्तमैन

कृष्ण ने उनको प्रत्युत्थान करके, वन्दना करके [और] विविध अर्चनाएँ करके इस प्रकार कहा । १११८ [सी.] "हे सन्मुनीश्वर ! जन्मभाक् होनेवाले हमको इस प्रदेश पर सम्मति से देवनिकर के लिए दुष्प्राप्य [तथा] निरुपम योगींद्र होनेवाले आपने दर्शन दिए; धृति से मंदभाग्य [और] इंद्रिय परतंत्र होनेवाले मूढात्माओं को, हे अनघ, भवदीय दर्शन, स्पर्शन, चिंतन [तथा] पादार्चना दुर्लभ है; [ते.] फिर भी आज हमारे लिए यहाँ सुलभ होकर प्राप्त हुए हैं ! जगति पर तीर्थभूत, साधुमति वाले प्रेम से आपके दर्शन करते हैं तो पर्याप्त हैं; अवनि पर अन्य तीर्थों का अन्वेषण क्यों करें ? १११९ [व.] इसके अतिरिक्त उदकमय होनेवाले तीर्थ, मृत् (मिट्टी), शिलामय होनेवाले देवगण, तीर्थ देवता रूप [क्रम से] नहीं बन सकते । फिर भी वे चिरकालसेवनार्चनों के बिना पावन नही बना सकते । सत्पुरुष दर्शनमात्र से पावन करते है; फिर ११२० [सी.] आदित्य, चंद्र, अग्नि, मेदिनी, तारे, अंबु (जल), मारुत, आकाश, वाक्, मन, [इनको] एक-एक करके देखने से तत्-तत् की उपासनाएँ करने से पुनीत (पवित्र) करने में समर्थ नही है; सकलार्थ गोचर ज्ञान होनेवाले महात्मा,

ते. कायमंदात्म बुद्धियु गामिनीकु-
मारुलंदु स्वकीयाभिमानमुनुनु
दिविरि जलमुन दीर्थबुद्धियुनु जेयु
नट्टि मूढुंडु पशु मार्गुडनग बरगु ॥ 1121 ॥

व. अनि यिव्विधंबुनं गृष्णुंडाडिन साभिप्रायंबुलगु वाक्यंबुलु विनि यम्मुनींद्रुलु विभ्रांतहृदयुलै यूरकुंडि मुहूर्त मात्रंबुन कम्महात्मु ननुग्रहंबु वडसि मंदस्मित मुखुलै यप्पुंडरीकाक्षुनकिट्लनिरि देवा! नेमुनु दत्त्व विदुत्तमुलयिन ब्रह्मरुद्रादुलुनु भवदीय माया विमोहितुलमै युंदुमु। निगूढंबयिन नी यिच्छ चेत मम्मु ननुग्रहिंचितिवि। भवदीय चरित्रंबुलु विचित्रंबुलिम्मेदिनि योंडकटि यय्युनु बहुरूपंबुल गानंबडु विधंबुन नीवु मोंदल गारण रूपंबुन नेकंबय्युनु ननेक रूपंबुलु गैकोंनि जगदुत्पत्ति स्थिति लयंबुलकु हेतुभूतंबु ना नद्भुत कर्मंबुलं दगिलि लीलावतारंबुलु गैकोंनि दुष्ट जन निग्रहंबुनु शिष्ट जन रक्षणंबुनु गाविंचुचुंडुवदियुनुंगाक वर्णाश्रम धर्मंबुलंगीकरिंचि पुरुषरूपंबुन वेदमार्गंबु विदितंबु सेसिन ब्रह्मरूपिवि, तपस्स्वाध्याय नियमंबुल चेत नी हृदयंबु परिशुद्धंबु गावुन ब्रह्म स्वरूपंबैन वेदंबुनंबु व्यक्ताव्यक्त स्वरूपंबुलेपंडगा नुंडुदु गावुन ब्राह्मण कुलंबु नॆल्ल ब्रह्म कुलाग्रणिवै रक्षिंचिन महानुभावुंडवु, माया जवनिकांतरितुंडवैन

आप, मुहूर्त मात्र सेवा करने से पावन बना देते है; उसको ऐसे रहने दीजिए। मातृत्वयुक्त [ते.] काय (शरीर) में आत्मबुद्धि, कामिनी-कुमारों में स्वकीयाभिमान (रखनेवाला), इच्छा करके जल में तीर्थ-बुद्धि रखनेवाला मूढ़ पशुमार्ग (तुल्य) कहलाता है।" ११२१ [व.] इस प्रकार कृष्ण के कहने पर साभिप्राय होनेवाले [उन] वाक्यों को सुनकर वे मुनींद्र विभ्रांत हृदय वाले बनकर मौन रहकर, मुहूर्त मात्र में उस महात्मा के अनुग्रह को पाकर, मंदस्मितमुख [वाले] बनकर उस पुंडरीकाक्ष से इस प्रकार बोले, "हे देव! हम और तत्त्वविद्-उत्तम होनेवाले ब्रह्मा, रुद्र आदि भी भवदीय माया से विमोहित बनकर रहते हैं। निगूढ़ होनेवाली अपनी इच्छा से [तुमने] हमें अनुगृहीत किया। भवदीय चरित्र (लीलाएँ) विचित्र है। यद्यपि यह मेदिनी (भूमि) एक है, फिर भी जिस प्रकार बहुरूपों में दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार तुम पहले कारण-रूप में एक होकर भी अनेक रूप लेकर जगत के उत्पत्ति-स्थिति-लय के लिए हेतुभूत नामक अद्भुत कर्मों में लगकर लीलावतार ग्रहण करके दुष्टजन-निग्रह और शिष्टजन रक्षण करते हो। इसके अतिरिक्त, वर्णाश्रम-धर्मों को अंगीकृत करके पुरुष-रूप में वेद्मार्ग को विदित करनेवाले ब्रह्मा हो। तपस्स्वाध्याय नियमों के कारण तुम्हारा हृदय परिशुद्ध है; इसलिए ब्रह्मस्वरूप होनेवाले वेद में व्यक्ताव्यक्त स्वरूपों

निन्नु नीभूपालवर्गंबुनु नेमु दर्शिपं गंटिमि, मा जन्म विद्या तपो महिमलु सफलंबुलय्यें, नीकु नमस्करिचेंदमनि बहु विधंबुल गृष्णु नभिनंदिचि यम्मुरांतकुनिचेत नामंत्रणंबु वडसि तम तम निवासंबुलकु बोवंदलंचु नवसरंबुन ॥ 1122 ॥

सी. अम्मुनीश्वरुलकु नानकदुंदुभि यति भक्ति वंदनंबाचरिंचि
तापसोत्तमुलार! धर्मतत्त्वज्ञुलु मन्निचि विनुडु ना विन्नपंबु
सत्कर्म विततिचे संचित कर्मचयंबु नापेंडु नुपायंबु नाकु
घन दयामति जेप्पुडनिन नम्मुनिवरुल भूवरुल् विन वसुदेवु जूचि

ते. यॅलमि बलिकिरि निखिल यज्ञेशुडैन
कमल लोचनु गूर्चि यागंबु सेयु
कर्ममुन बायु नॅट्टि दुष्कर्ममैन
निदियॅ धर्मंबु गाग नी मदि दलंपु ॥ 1123 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1124 ॥

कं. देवर्षि पितृ ऋणमुलु, भूवर मखवेदपाठ पुत्रुल चेतन्
बाविरि नीगनि पुरुषुडु, पोवु नधोलोकमुनकु बुण्यच्युतुडै ॥ 1125 ॥

व. अट्लगुटं जेसि नीवुनु ॥ 1126 ॥

के बनने पर तुम रहते हो। इसलिए समस्त ब्राह्मण की ब्रह्मकुलाग्रणी बन कर रक्षा करनेवाले महानुभाव हो। मायाजवनिकांतरित होनेवाले तुम्हें [और] इस भूपाल वर्ग के हम दर्शन कर सके हैं। हमारे जन्म, विद्या, तप [तथा] महिमाएँ सफल हो गई हैं। तुम्हारे लिए नमस्कार करते हैं।" इस प्रकार बहुविधों में कृष्ण का अभिनंदन करके,उस मुरांतक से आमंत्रण (बिदाई) पाकर अपने-अपने निवासों को जाना चाहते समय ११२२ [सी.] उन मुनीश्वरों को आनकदुंदुभि (वसुदेव) ने अतिभक्ति से वंदना करके, "हे तापसोत्तम! धर्मतत्त्वज्ञ [होनेवाले आप] क्षमा करके मेरी प्रार्थना सुनिए; [अपनी] घन दयामति से मुझे ऐसा उपाय सूचित कीजिए जिससे सत्कर्म-वितति से संचित कर्मचय का नष्ट हो जाय।" यों कहा तो उन मुनिवरों ने, ताकि भूवर सुने, वसुदेव को देखकर संतोष के साथ कहा, [ते.] "निखिल यज्ञेश होनेवाले कमललोचन के प्रति याग (यज्ञ) करो; कैसा भी दुष्कर्म हो, कर्म से वह टल जाता है। यही धर्म है, इसलिए अपने मन में सोचो। ११२३ [व.] इसके अतिरिक्त ११२४ [कं.] हे भूवर! जो पुरुष देव, ऋषि [और] पितृऋण, मख (यज्ञ), वेदपाठ और पुत्रों से क्रम से निर्वर्तित नहीं करता, वह पुण्यच्युत होकर अधोलोक में जाता है। ११२५ [व.] इसलिए तुम भी ११२६ [कं.] हे धरणीवर!

कं. वर तनयाध्ययनंबुल
दरियिंचिति ऋण युगंबु दडयक
धरणीवर देवऋणमु सवना-
चरणुडवै योगुटोप्पु सम्मति तोडन् ॥ 1127 ॥

कं. अनवुडु नव्वसुदेवुडु
मुनिवरुलकु ननियें विनयमुन मीरलु चें-
प्पिनयट्ल मखमु सेसेद
दिनकर-निभुलार ! मीरु दीर्पग वलयुन् ॥ 1128 ॥

व. अनि यभ्यर्थिंचि यम्मुनींद्रल याजकुलुगा वरिंचि यप्पुण्य-तीर्थोपांतंबुन महेंद्रामित वैभवंबुन नष्टादश भार्यासमेतुंडै दीक्ष गैकोनि यम्महाध्वरंबु वेदोपदिष्ट विधि वरिसमाप्तिंचि ऋत्विङ्निकायंबुल बहु दक्षिणल दनिपि भार्यासमेतुंडै यवभृथस्नानंबाचरिंचि विविधमणि विभूषण विचित्रांबर सुरभि कुसुमानुलेपनंबुलु धरिंचि निखिलभूदेव मुनिबंधु राज लोकंबुल-नुचित सत्कारंबुल प्रीतुलं गाविंचिन वारुनु कृष्णानुमति नात्म निवासं-बुलकु जनिरि । अंदु ॥ 1129 ॥

उ. आ तरि नुग्रसेन वसुधाधिप पंकजनाभ मुष्टिका-
रातुलु दम्मु नर्थि मधुर प्रिय भाषल निल्व वेडिनं
गौतुकमात्म निव्वटिलगा वसियिंचिरि गोप गोपिका
व्रातमु तोड नच्चट धरावर नंद यशोदलिम्मुलन् ॥ 1130 ॥

वरतनय [और] अध्ययनों से तुम कृतयुग को तार गये (पार कर चुके) हो। विना विलंब किये सम्मति से सवनाचरण (यज्ञकर्ता) बनकर, देवऋण से निवर्त (निवृत्त) होना अच्छा होगा।" ११२७ [कं.] ऐसा कहने पर उस वसुदेव ने मुनिवरों से विनय के साथ कहा, "जैसे आप कहते हैं, वैसे ही मैं मख (यज्ञ) करूँगा। हे दिनकर-निभ ! आपको कराना चाहिए।" ११२८ [व.] इस प्रकार अभ्यर्थना करके उन मुनींद्रों को याजकों के रूप में वरण करके (नियमति करके) उस पुण्यतीर्थोपांत में महेंद्रामित वैभव से अष्टादश भार्या-समेत बनकर, दीक्षित होकर, उस महा अध्वर को वेदोपदिष्ट विधि से परिसमाप्त करके, ऋत्विक्-निकायों को (समूहों को) बहु दक्षिणाओं से तृप्त करके, भार्या-समेत होकर, अवभृथ स्नान का आचरण करके, विविधमणि विभूषण, विचित्रांबर, सुरभि-कुसुमानुलेपन धारण करके, निखिल भूदेव, मुनि, बंधु, राजलोकों को उचित सत्कारों से प्रीत (संतृप्त) बनाया तो वे भी कृष्ण की अनुमति से आत्मनिवास को चले गये। उनमें ११२९ [उ.] उस समय उग्रसेन वसुधाधिप, पंकजनाभ [और] मुष्टिकाराति के उनसे प्रार्थना करके मधुर प्रिय भाषणों से ठहर जाने

कं. हरि नयमुल हरि प्रियमुल
हरि मधुरालापमुलनु हरि कथल मनो-
हर लील दगिलि नंदुडु
निरुपम गति नचट मूडु नॅललुंडॆ नृपा ! ॥ 1131 ॥

च. जलरुहलोचनादि यदुसत्तमुलंदरु नन्निभंगुलं
गलित विभूषणांबर निकायमुलिच्चि बहूकरिंचि वी-
ड्कॊलिपिन नंदमुख्युलु मुकुंद पदाब्ज मरंदपान स-
ल्ललित निजात्म षट्पदमुलन् मरलिचुचु नॆट्ट केलकुन् ॥ 1132 ॥

व. चनि चनि ॥ 1133 ॥

आ. मरलि मरलि कृष्ण ! माधव ! गोविंद !
पद्मनाभ ! भक्त-पारिजात !
देवदेव ! यनुच दिविरि चूचुचु मथु-
राभिमुखुलु नगुचु नरिगिरंत ॥ 1134 ॥

कं. क्रमसुन नच्चट प्रावृ-
ट्समयंबगुटयुनु बंधुजन यादव व-
र्गमु लोलि गॊलुव सुरगण
नमितुलु बलकृष्णुलात्म नगरंबुनकुन् ॥ 1135 ॥

व. वच्चि सुखंबुंडुनंत ॥ 1136 ॥

की प्रार्थना करने पर, आत्मा में कौतुक के बढ़ जाने पर गोप-गोपिका-व्रात (समूह) सहित, धरावर, नंद और यशोदा वहाँ सुखपूर्वक ठहरे । ११३० [कं.] हे नृप ! हरि के नयनों में, हरि के प्रियों में, हरि के मधुरालापों में, हरि की कथाओं में [तथा] मनोहर लीलाओं में लग्न होकर नंद निरुपम गति से वहाँ तीन महीने ठहरा । ११३१ [च.] जलरुहलोचन आदि सभी यदुसत्तमों के सब तरह से कलित विभूषण, अंबर, निकायों को (समूहों को) देकर, बहूकृत करके, विदा देने पर, नंद-मुख्य (आदि) मुकुंद-पदाब्ज-मरंद-पान [में] सल्ललित निजात्म-षट्पदों को किसी न किसी तरह लौटाते हुए ११३२ [व.] जा-जाकर ११३३ [आ.] मुड़-मुड़कर 'कृष्ण ! माधव ! गोविंद ! पद्मनाभ ! भक्त-पारिजात ! देवदेव ! कहते हुए पीछे मुड़कर देखते हुए मथुराभिमुख होते हुए तब चले गये । ११३४ [कं.] क्रम से वहाँ प्रावृट-समय होने के कारण बंधुजन, यादववर्ग के एक-एक करके सेवा करने पर सुरगण से नमित बल [राम] और कृष्ण आत्म नगर को ११३५ [व.] आकर सुख से रहे । तब ११३६

अध्यायमु—८५

श्रीकृष्ण बलभद्रुलु मृतुलैन तम सहोदरुल दॆच्चि देवकीदेविकि गनबरचुट

सी. अवनीश ! यॊक्कनाडानक दुंदुभि भार्य पद्माक्षुडु बलुडु दॊल्लि
शरधि लो जॊच्चिन गुरुतनूभवुनि मरलंग दॆच्चिन महिमलॆल्ल
जनमुलु दमलोन सन्नुतुल् सेयंग विनि तन सुतुलु दुर्वृत्तुडैन
कंसुचे निहतुलै कालुनि पुरि नुन्न वारि नंदरु जूड गोरि कृष्ण

ते. बलुल कडकेगि कन्नुल बाष्प कणमु-
लॊलुक नो राम ! राम ! नित्योन्नतात्म
परम पावनमूर्ति ! यो मुरविभेदि !
यिदिरानाथ ! योगीश्वरेश ! कृष्ण ! ॥ 1137 ॥

कं. मुरकंस चैद्य पौंड्रक
नरक जरातनय यवन नर नायकुलं
दुरितात्मुल बॊरिगॊनि भू-
भर मुडिपिन यट्टि मेटि बलुलु दलंपन् ॥ 1138 ॥

आ. जनन वृद्धि विलय संगति निखिलंबु
बॊंद जेयु परमपुरुषुलार !
मीकु लीललौट मीरनि नम्मिन
दान नेनु विनुबुदारलार ! ॥ 1139 ॥

अध्याय—८५

श्रीकृष्ण और बलभद्र का अपने मृत सहोदरों को लाकर देवकीदेवी को दिखा देना

[सी.] हे अवनीश ! एक दिन आनकदुंदुभि (वसुदेव) की पत्नी पद्माक्ष और बल (राम) के पहले शरधि (समुद्र) में घुसे हुए गुरु के तनूभव को निकाल लाने की महिमाओं को सब जनों के आपस में स्तुति करने पर सुनकर अपने सुतों को जो दुर्वृत्त कंस से निहत होकर काल(यम) की पुरी में थे, उन सबको देखने की इच्छा करके [ते.] कृष्ण [और] बल [राम] के पास जाकर, आँखों से वाष्पकणों के बहने पर "ओ राम ! राम ! नित्योन्नतात्मा ! परमपावन मूर्ते ! हे मुर-विभेदे ! इंदिरानाथ ! योगीश्वरेश ! कृष्ण ! ११३७ [कं.] मुर, कंस, चैद्य, पौंड्रक, नरक, जरातनय, यवन नरनायकों को, दुरितात्माओं को मार डालकर भू-भार को दूर करनेवाले बड़े बली, सोचने पर ११३८ [आ.] जनन, वृद्धि, विलय, संगति, निखिल को प्राप्त करानेवाले हे परमपुरुष ! तुम्हारे लिए लीलाएँ

व. अनि यनेक विधंबुल विनुतिचुचु निट्लनियॆ । मीरलु महानुभावुलरु । मीरु तॊल्लि यनेक कालंबु चनिन क्रिंदट मृतुंडै दंडधरु मंदिरंबुननुन्न गुरु-कुमारुनि मी महा प्रभावंबुलु लोकंबुल बरिपूर्णंबुलै प्रकाशिंप नक्कालुनि चॆंतनुंडि मगुडं दॆच्चि गुरु दक्षिणगा नॊसंगितिरि । इव्विधंबुनं गंसुनि चेत हतुलैन मत्पुत्रुल नंदर मरलं दॆच्चि ना मनंबुन नुन्न दुःखंबु निवारिंप वलयुननि देवकीदेवि प्रार्थिच्चिनं दम तल्लि याडिन मृदु मधुर वाक्यं-बुलत्यादरंबुन नादरिंचि यप्पुडु बलकृष्णुलु दम योगमाया महत्त्वंबुन सुतलंबुकुं जनिरट्टियॆड ॥ 1140 ॥

म. कनियॆन् दानवु डिंद्रसेनुडु दळत्कंजाक्षुलन् दक्षुलन्
घनसारांबुदवर्णुलन् निखिल लोकैक प्रभापूर्णुलं
दनरारन् हलचक्र पाणुलनु भक्तत्राणुलन् नित्य शो-
भन वर्धिष्णुल राम कृष्णुल जय भ्राजिष्णुलन् जिष्णुलन् ॥ 1141 ॥

च. कनि हित कोटितो नॆदुरुगा जनुदॆंचि मनोनुराग सं-
जनित कुतूहलुंडगुचु जागिलि म्रॊक्कि समग्र कांचना-
सनमुल नुंचि तच्चरण सारस सेचन सर्वलोक पा-
वन सलिलंबुलौदल ध्रुवंबुग दाल्चि सुभक्ति युक्तुडै ॥ 1142 ॥

हैं; तुम पर विश्वास करनेवाली हूँ । हे उदार ! सुनो ।" ११३९ [व.] इस तरह अनेक प्रकार विनति करते हुए यों बोली, "तुम महानुभाव हो । तुम पहले बहुत काल के बीत जाने पर मृत होकर दंडधर (यम) के मंदिर में रहनेवाले गुरुकुमार हो । तुम्हारे महाप्रभाव लोकों में परिपूर्ण होकर प्रकाशित होने पर उस काल (यम) के पास से वापस लाकर गुरुदक्षिणा के रूप में दे दिया । इस प्रकार कंस से हत मत्पुत्रों को सबको फिर लाकर, मेरे मन में रहनेवाले दुःख का निवारण करना चाहिए ।" इस प्रकार कहकर देवकी देवी के प्रार्थना करने पर अपनी माता के कहे हुए मृदु मधुर वाक्यों का अत्यंत आदर के साथ आदर करके, तब बल [राम] और कृष्ण अपनी योगमाया के महत्त्व से सुतल में गये । तब ११४० [म.] इन्द्रसेन दानव ने दलत्कंजाक्ष, दक्ष, घनसारांबुद वर्ण, निखिललोकैकप्रभापूर्ण, हल [और]चक्रपाणि, भक्तत्राण, नित्यशोभनवर्धिष्णु, जय-भ्राजिष्णु और जिष्णु [होनेवाले] राम-कृष्णों को तृप्ति के साथ देखा । ११४१ [च.] देखकर हितकोटि के साथ सामने आकर मनोनुराग-संजनित कुतूहल [वाला] बनते हुए, साष्टांग दंड प्रणाम करके समग्र कांचन आसनों पर बिठाकर, तच्चरण-सारस-सेचन-सर्वलोक-पावन-सलिल को सिर पर ध्रुव-सहित (अच्छी तरह) सुभक्तियुक्त होकर धारण करके ११४२ [सी.] उन विश्वरूपकों को सुरभि, कालागरु, हरिचंदन,

सी. सुरभि कालागरुहरिचंदनैलादि धूपंबु ला विश्वरूपकुलकु
गांचन पात्र संगत रत्न कर्पूर दीपंबु ला जगद्दीपकुलकु
वायसापूपान्न पक्व पलादि नैवेद्यंबुला वेद वेद्युलकुनु
दनरु विनूत्न रत्नप्रभा भासिताभरणंबु ला दैत्य हरणुलकुनु

ते. मिल मिलनि मंचुतो वोलुपलरु बहु वि-
धांबरंबुलु नील पीतांबरुलकु
सललित कुसुम मालिका मलय जानु
लेपनंबुलु भूरि निर्लेपुलकुनु ॥ 1143 ॥

व. समर्पिचि यप्पुंडरीकाक्षुनि चरणारविंदंबुलोत्तुचु नानंद बाष्प पूरंबु तोरंबुगा रोमांच कंचुकित शरीरुंडगुचुं गरकमलंबुलु फाल भागंबुनं गदियिंचि यिट्लु विनुतिंचे ॥ 1144 ॥

उ. धीयुतुडै नमो भगवते हरये परमात्मने मुकुं-
दाय समस्त भक्त वरदाय नमः पुरुषोत्तमाय कृ-
ष्णाय मुनींद्रवंद्य चरणाय सुरारि हराय सांख्य यो-
गाय विनील भास्वदलकाय रथांगधराय वेधसे ॥ 1145 ॥

व. अनि यभिनंदिंचि यिट्लनियें ॥ 1146 ॥

उ. राजस तामसात्मुलकु रादु गदा निनु गान नव्य पं-
केज दळायताक्ष ! मुनिगेय पवित्र चरित्र ! विस्फुर-
द्राज कळाधराज सुर राज मुखामर मौळि रत्न वि-
भ्राजित पादपीठ ! भव बंध विमोचन ! पद्मलोचना ! ॥ 1147 ॥

ऐलादि, धूप, उन जगद्दीपकों को कांचन पात्र, संगत रत्न, कर्पूर-दीप, उन वेद-वेद्यों को पायस, अपूप, अन्न, पक्व फल आदि नैवेद्य, उन दैत्य-हरों को प्रकाशमान विनूत्न रत्नप्रभाभासित आभरण, नील [और] पीत अंबर (वस्त्र) धारण करनेवालों का [ते.] प्रकाशमान हिम से उपमित बहुविध अंबरों को, और उन भूरि निर्लेपकों को सललित कुसुममालिका मलयज-अनुलेपनों को ११४३ [व.] समर्पित करके उस पुंडरीकाक्ष के चरणारविंदों को दबाते हुए, आनंदबाष्प पूरों के अधिक होने पर रोमांच-कंचुकित शरीरी बनते हुए कर-कमलों को फाल भाग पर रखकर इस प्रकार धीयुत होकर विनती की। ११४४ [उ.] "नमो भगवते, हरये, परमात्मने, मुकुंदाय, समस्त भक्त वरदाय, नमः पुरुषोत्तमाय कृष्णाय, मुनींद्रवंद्य-चरणाय, सुरारि-हराय, सांख्ययोगाय, विनीलभास्वत अलकाय, रथांगधराय, वेधसे।" ११४५ [व.] यों अभिनंदन करके इस प्रकार कहा। ११४६ [उ.] "राजस [और] तामस आत्माओं को तुम्हें देखने का भाग्य नहीं मिलता न! नव्य पंकेजदलायताक्ष! मुनिगेय पवित्र चरित्र[वाले]! विस्फुरत्

म. मदि नूहिंपग योगिवर्युलु भवन्माया लताबद्धुलै
यिदमित्थम्मनलेरु तामसुलमै येपारु मा बोटि दु-
र्मदुलेरीति नॅरुंग जालुदुरु सम्यग्ज्ञान धीयुक्ति नी
पदमुल् चेरॅडि त्रोव जूपि भवकूपंबुं दरिंपिपवे ॥ 1148 ॥

उ. बैरमु चेत जेदि नृप वर्गमु गाममु चेत गोपिकल्
मीरिन भक्ति नाश्रितुलु मिम्मु नहर्निशमुन् मनंबुलं
दारग नीक रूप गुण तत्परुलै निमुवोंदु कैवडिन्
भूरि विवेक सत्त्व गुणमुल् गल देवतलंद नेर्तुरे ? ॥ 1149 ॥

कं. कान भवत्पद पद्म, ध्यानंबुन गानि शास्त्र तत्त्वंबुलचे
गानरु श्रुति संवेद्यं, -बैन भवत्पदमु चिन्मयाकार ! हरी ! ॥ 1150 ॥

व. देवा ! येनरुंडैननेमि श्रद्धा गरिष्ठ चित्तुंडयि निन्नु सेविंचु नट्टि महात्मुंडु विधि चोदितंबयिन प्रमाणंबु वलन विमुक्तुंडयि वर्तिंचुनट्लु गावुन योगीश्वरेश्वरुंडवैन नी वीशितव्युलमैन मम्मु निष्पापुलं जेयुमनि नुतिंचि मरियु निट्लनियें ॥ 1151 ॥

मत्त. कंटि गंटि भवाब्धि दाटग गंटि मुक्ति निधानमुन्
गंटि नी करुणावलोकमु गंटि बापमु वोड मु-

राजकला धराजसुर राजमुखामर मौलिरत्न ! विभ्राजित पाद पीठ भवबंध विमोचन ! पद्मलोचन ! ११४७ [म.] मन में कल्पना करने से योगिवर्य भवन्मायालताबद्ध होकर नहीं कह सकते कि इदमित्थम् है। तामसी होकर रहनेवाले हमारे जैसे दुर्मद [वाले] किस प्रकार [तुम्हें] जान सकते है ? सम्यक् ज्ञान धीयुक्ति [से] तुम्हारे पदों के [पास] पहुँचने का मार्ग दिखाकर भवकूप से पार उतारो। ११४८ [उ.] वैर से चेदि नृपवर्ग, काम (पाने की इच्छा) से गोपिकाएँ, अमित भक्ति से [तुम्हारे] आश्रित, तुम्हें अहर्निश मन से दूर न हटाकर, रूप-गुण-तत्पर होकर जैसे तुम्हें पाते हैं, वैसे भूरि विवेक सत्त्वगुणी देवता [भी] पा सकते हैं ? ११४९ [कं.] हे चिन्मयाकार हरी ! इसलिए, भवत्पदपद्मध्यान को छोड़कर और किसी मार्ग से [या] शास्त्र-तत्त्वों से श्रुति संवेद्य होनेवाले भवत्पद को नहीं देख [पा] सकते। ११५० [व.] [हे] देव ! चाहे जो कोई भी नर हो, श्रद्धागरिष्ठ चित्त [वाले] बनकर तुम्हारी सेवा करने वाला महात्मा विधिचोदित प्रमाण से विमुक्त होकर रहता है। इसलिए योगीश्वर होनेवाले तुम ईशितव्य (राजा) होनेवाले हमें निष्पापी बनाओ।" इस प्रकार प्रार्थना करके फिर इस प्रकार कहा। ११५१ [मत्त.] "हे महात्मन् ! हे ईश्वर ! भवाब्धि को पार करने का मार्ग

वच्चिंटि तामरचूलियुं वींडगाननट्टि महात्म ! ना
यिंटिकि जनुदेंचितीश्वर ! येगृतार्थत वोंदितिन् ॥ 1152 ॥

व. देवा ! येनु भवद्दासुंड नेदि पंचिनं जेयुदु निच्चटिकि मीरलु विजयंबु चेसिन कार्यंबानतीयवलयुननि करंबुलु मोगिचि विन्नविंचिनं बुंडरीकाक्षुंडतनि वाक्यंबुलकु संतसिल्लि यिट्लनिये ॥ 1153 ॥

सी. बलिदैत्य ! विनु मुन्नु प्रथम युगंबुन ना मरीचिकि भार्ययैन वर्ष-
यनु नितिवलन नंदनुलार्वुरुद्भवमैरि वारोक्क नाडब्जभवुडु
दन पुत्रि पै मोहमुन गूडि रतिकेळि योनरिप मोरि नव्वुटयु ग्रोध-
मंदि यासुर योनियंदु बुट्टुंडनि घनशाप मिच्चें नव्वनजजुंडु

ते. तन्निमित्तमुननु वारु तगिलि हेम
कशिपुनकु बुट्टिरंत नाकौकसार्थ-
मोदव वीरल देंचि यय्योगमाय
यडरि देवकि गर्भंबुनंदु जोनुप ॥ 1154 ॥

कं. वीरकोनि कंसुडु दोड्तो
वीरिगोनें दत्पुत्र शोकमुन दन चित्तं-
बेरियग देवकि वारल
दरिसिपग गोरि पनुप दगनसुरेंद्रा ! ॥ 1155 ॥

देखा; देखा मुक्तिनिधान को; देखा तुम्हारे करुणावलोकन को; देखा पाप को जाते हुए; जिसे ईश्वर (शिवजी) तथा ब्रह्मा [भी] नहीं देख सकते, ऐसे तुम मेरे घर आये; मैं कृतार्थ हुआ। ११५२ [व.] हे देव ! मैं भवद्दास हूँ। जो आज्ञा देते हो, उसका पालन करूँगा। आज्ञा कीजिए (कहिये) कि आपके यहाँ आने का कारण क्या है ?" इस प्रकार कर (हाथ) मुकुलित करके प्रार्थना करने पर पुंडरीकाक्ष ने उसकी बातों से संतुष्ट होकर यों कहा। ११५३ [सी.] हे बलि दैत्य ! सुनो; पहले (पूर्वकाल में) प्रथम युग में उस मरीचि की पत्नी होनेवाली वर्षा नामक स्त्री से छः नंदनों का उद्भव हुआ (पुत्र उत्पन्न हुए)। उनके एक दिन अब्जभव को देखकर जिसने अपनी पुत्री से मोहित होकर रतिकेलि की, हँसने पर उस वनजज ने क्रोधित होकर घनशाप दिया कि (तुम लोग) असुर योनि में पैदा हो जाओ। [ते.] इसलिए वे हेमकशिपु को पैदा हुए। तब नाकौकसार्थ को देने पर, उस योगमाया ने उन्हें लाकर प्रयत्न से देवकी-गर्भ में प्रवेश कराया तो, ११५४ [कं.] [यह] जानकर कंस ने उन्हें एक-एक करके मार डाला। तत्पुत्र शोक से अपने चित्त के दुःखित होने पर, देवकी के उन्हें देखने की

कं. वच्चितिमि वारि ग्रम्मइ
दॆच्चॆदमनि तल्लि कोर्कि दीर्पग निपुडे-
मिच्चटिकिदे नीकड वीर
पॊच्चमु लेकुन्न वारॆ पो वीरनघा ! ॥ 1156 ॥

कं. वीरल दोकॊनि यिपुडे, धारुणिकिन्नेगि जननि तापमु वापन्
वीरलु नंतट शापमु, दीरि मदीय प्रसाद धीयुतुलगुचुन् ॥ 1157 ॥

कं. पॊलुपुग सुगति बॊंदग
गलरनि हरि यानतिच्चि करुणान्वितुडै
बलिचेननुमति गॊनि वा-
रल दोकॊनि वच्चॆ निद्धरामंडलिकिन् ॥ 1158 ॥

व. अट्लु वारलं दोडि तॆच्चि तल्लि किट्लनियॆ ॥ 1159 ॥

कं. कनुगॊनुमु वीरॆ नी नं, -दनुलनि जनयित्रि कड मुदंबुन वारि-
न्नुनिचिन नद्देवकियुनु, घन पुत्र स्नेह मोह कलितात्मकयै ॥ 1160 ॥

कं. चन्नुलु विरगन जेपग, गन्नुल नानंद बाष्प कणमुलु वॊरगन्
ग्रन्नन गौगिट निडिननु, गन्नन्नलु वच्चिरनुचु गौतुकमॊप्पन् ॥ 1161 ॥

व. अट्लु कौगिटं जेर्चि निजांक पीठंबुन नुनिचि शिरंबुलु मूर्कॊनि चिबुकंबुलु पुणुकुचुं ब्रेमातिशयंबुन मेनं बुलकलॊलयं जन्निच्चिनं वारनु वैष्णव

इच्छा करके [हमें] भेजने पर, हे असुरेंद्र! युक्त (उचित) समझकर ११५५ [कं.] [हम] आये हैं। हे अनघ! 'उनको शीघ्र ही वापस लायेंगे' यों माँ की इच्छा की पूर्ति करने के लिए यहाँ अब आये हैं। तुम्हारे पास बिना किसी भेद के ये [लोग] रहते हैं। ११५६ [कं.] इनको ले जाकर अभी धारुणि को (भूलोक को) जाकर, जननी के ताप को दूर करने पर, ये तब शापमुक्त होकर, मदीय प्रसाद से धीयुत होते हुए ११५७ [कं.] अच्छी तरह सुगति को प्राप्त कर सकेंगे। इस तरह कहकर, करुणान्वित बनकर, बलि से अनुमति लेकर, उनको इस धरामंडली पर लिवा लाया। ११५८ [व.] इस प्रकार उनको लिवा लाकर माँ से यों कहा। ११५९ [कं.] "देखो, ये ही तुम्हारे नंदन हैं।" इस तरह कहकर जनयित्री से पास मोद से उनको रखा तो वह देवकी भी घन-पुत्र-स्नेह-मोहकलितात्मका बनकर ११६० [कं.] स्तनों में स्तन्य के शीघ्र उफान आने पर, आँखों से आनंदबाष्पकणों के प्रवाहित होने पर, शीघ्र उनसे आलिगन करने पर, "जिनको मैंने जन्म दिया वे पुत्र आये हैं" ऐसे कहते हुए, कौतुक के बढ़ जाने पर ११६१ [व.] इस प्रकार आलिगन करके निजांक पीठ पर बिठाकर, सिरों को चूमकर, चिबुकों को स्पर्श करते

साया मोहितुल स्तन्यपानंबु सेयुचु भगवंतुंडयिन रथांगपाणि यंगसंगंबुन विगत कल्मषुलै विधि शाप सागरंबु हरि दया कटाक्षंबनु नावचेतं दरिंचि स्वरूपंबुलु धरिंचि कृष्णुनकु दल्लि दंड्रुलकु वंदनंबाचरिंचि गगन पथंबुन निज स्थानंबुन करिगिरंत ॥ 1162 ॥

कं. चच्चिन बालुर ग्रम्मर
वॆंचुट कडु जित्रमनुचु देवकि मदिलो
नच्चॆरुवडि यिदि यंतयु
नच्चपु हरि माय गाक यनि तलचॆं नृपा ! ॥ 1163 ॥

कं. परमात्मुडखिल जगदी-
श्वरुडगु कृष्णुंडु सेयु सत्कृत्यंबुल्
परिकिंप नॆन्न बॆक्कुलु
धरणीवर ! यनिन राजु दा मुनिकनियॆन् ॥ 1164 ॥

अध्यायमु—८६

सुभद्रा परिणयमु

सी. मुनिनाथ ! पार्थुंडु वनजनाभुनि सहोदरि सुभद्रनु नॆविधमुन बॆंड्लि
यय्यॆनु नाविधंबंतयु नाकुनु दॆलियंग नॆरिंगिपु धीविशाल !
यनवुडु नाव्यासतनयु डातनि जूचि विनवय्य नृप ! देव विभुनि मुतुडु
मुनु तीर्थयात्रा समुत्सुकुंडयि चनि रमण प्रभासतीर्थमुन नुंडि

हुए प्रेमातिशय से, जिससे शरीर पर रोंगटे खड़े हो जायँ, स्तन्य पिलाने पर, वे भी वैष्णव-माया-मोहित होकर, स्तन्यपान करते हुए, भगवान होनेवाले रथांगपाणि के अंग-संग से विगत-कल्मष (वाले) होकर विधिशाप-सागर को हरि-दयाकटाक्ष नामक नाव से पार कर, स्वरूप धारण करके [और] माता-पिता को वंदना करके गगनपथ से निजस्थान को गये। तब ११६२ [कं.] हे नृप ! मृत बालकों को फिर लाना अति चित्र है, यों कहते हुए देवकी ने मन में आश्चर्य करके यह सब बिलकुल हरि की माया है—ऐसे सोचा। ११६३ [कं.] हे धरणीवर ! परमात्मा [और] अखिल जगदीश्वर होनेवाले कृष्ण के किये जानेवाले सत्कृत्य, देखने पर [और] गिनने पर, अनेक हैं। ऐसा कहने पर राजा (परीक्षित) ने उस मुनि से कहा। ११६४

अध्याय—८६

सुभद्रा-परिणय

[सी.] हे मुनिनाथ ! हे धी विशाल ! वह सब कुछ मुझे समझाओ कि पार्थ ने वनजनाभ की सहोदरी सुभद्रा से किस प्रकार विवाह कर लिया है।

ते. यातलोदरि तोडि नेरयंबु कलिमि
जूड गोरुचु रामुंडु सुंदरांगि
गौरवेंद्रुनिकी समकट्टे ननुचु
दनकु नेरुगरा नापुरंदर सुतुंडु ॥ 1165 ॥

व. अट्लु सुभद्रा दर्शनोत्साहंबु दन मनंबुन संदडिगोनं द्रिदंडि वेषंबु धरिंचि द्वारकापुरंबुनकुं जनुदेंचि यप्पौर जनंबुलु भक्ति स्नेहंबुल ननिशंबुबूजिपं-दन मनोरथसिद्धि यगुनंतकुं गनुपेट्टुकोनि वान कालंबु चनु नंतकु नप्पट्टणंबुन नुंडु समयंबुन ॥ 1166 ॥

कं. रामुडु तत्कपटाकृति, दामदि देलियंग लेक तग नोकनाडा
भूमीवर तापसु बो, -रामि गनि यात्म मंदिरमुनकु देच्चेन् ॥ 1167 ॥

आ. तेच्चि भिक्षसेय देवेंद्रतनयुंडु, गुडुचुचुंडि यचट गोरि मेलगु
नसमबाण मोहनास्त्रंबु कैवडि, वीर मोहिनन विहार लील ॥ 1168 ॥

व. अट्लु सुभद्रविहरिंचुचुन्न समयंबुन ॥ 1169 ॥

च. जलरुह-पत्र-नेत्रु ननुसंभव चारु वधूललाम स-
ल्ललित विहार विभ्रम विलासमुलात्मकु विवु सेय न-
ब्बलरिपु नंदनुंडु गनि भावज सायक बाध्यमान वि-
ह्वल हृदयाब्जुडै निलिपे नत्तरुणीमणियंदु जित्तमुन् ॥ 1170 ॥

ऐसा पूछने पर उस व्यासतनय ने उसे देखकर [कहा] हे नृप ! सुनो। देवविभु का सुत [एक बार] पहले तीर्थयात्रा करने का समुत्सुक बनकर जाकर प्रीति से प्रभास तीर्थ में रहकर, [ते.] उस तलोदरी (सुभद्रा) के साथ मित्रता स्थापित करने की ताक में रहा तो यह जानकर कि राम (बलराम) [उस] सुंदरांगी को कौरवेंद्र को [विवाह में] देने के लिए तैयार हुआ, वह पुरंदर-सुत ११६५ [व.] उस प्रकार सुभद्रा-दर्शनोत्साह के उसके मन में बढ़ जाने पर, संन्यासी का वेष धारण करके द्वारकापुर में जाकर उन पौरजनों के भक्ति [और] स्नेह के साथ अनिश (सदा) पूजा करने पर, जब तक उसके मनोरथ की सिद्धि नहीं होती तब तक प्रतीक्षा करते समय, वर्षाऋतु के चले जाने तक उस नगर में रहते समय ११६६ [कं.] राम तत् कपट आकृति को अपने मन में जान न सककर, एक दिन स्नेह के साथ उस भूमिवर-तापस को आत्ममंदिर में लाया। ११६७ [आ.] लाकर भिक्षा देते समय देवेंद्र-तनय भोजन करते हुए, वहाँ इच्छा से मचलती हुई, कामदेव के मोहनास्त्र की तरह, मानो वीरमोहनी हो, विहार लीला में थी ११६८ [व.] उस प्रकार विहार करते समय ११६९ [च.] जलरुहपत्र-नेत्र की अनुसंभवा (अनुजा), चारु [सुंदर] वधूललामा के सल्ललित विहार-विभ्रम-विलासों ने आत्मा को

उ. आ तरुणी शिरोमणियु नर्जुनु नर्जुन चारु कीर्ति वि-
ख्यातुनि निंद्रनंदनु नकल्मष मानसु गामिनी मनो-
जातुनि जूचि पुष्प शर सायक जर्जरितांतरंगयै
भीतिलि यॆंडॆ सिग्गु मुरिपॆंबुनु मोहमु देरु चूपुलन् ॥ 1171 ॥

व. अट्लानृपसत्तम मत्तकाशिनुलॊंडॊरुल चित्तंबुलु चित्तजायत्तंबुलै कोर्कुलु वत्तरिपं दालमुलु वीड सिग्गुनं जिट्टुमुट्टाडुचुन्न यंत नॊक्कनाडु देवता-महोत्सव निमित्तंबत्तलोदरि पुरंबु वॆलुपलिकि नरुगुदॆंचिन नर्जुनुंडु कृष्ण देवकी वसुदेवुल यनुमतंबु वडसि तानुनु दोडन चनि यप्पुडु ॥1172॥

सी. सांद्र शरच्चंद्र चंद्रिका स्फूर्तिचे राजिल्लु पूर्णिमा रजनि वोलॆ
बूर्णेंदु विवावतीर्णमै यिल मीद भासिल्लु हरिण डिंभंबु वोलॆ
सुललित मेघमंडलमुनु नॆडबासि वसुध ग्रम्मरु तटिद्वल्लि वोलॆ
माणिक्य रचित सन्महित चैतन्यंबु पॊंदिन पुत्तडि बॊम्म वोलॆ

तॆ. ललित विभ्रम रुचि कळा लक्षणमुल
बॊसगरूपॆन श्रृंगार रसमु वोलॆ
नर्थि जरियिंचुचुन्न पद्मायताक्षि
प्रकट सद्गुण भद्र सुभद्र जूचि ॥ 1173 ॥

प्रीति पहुँचाई तो उस वलरिपु-नंदन ने देखकर भावज-सायकों-(वाणों) से बाध्यमान विह्वल-हृदयाब्ज बनकर उस तरुणीमणि पर अपना चित्त संलग्न किया। ११७० [उ.] वह तरुणीशिरोमणि भी अर्जुन को, अर्जुन [श्वेत] कीर्ति [से] विख्यात, इंद्रनंदन, अकल्मष-मानस, कामिनी-मनोजात को देखकर, पुष्पशरसायकों से जर्जरित अंतरंगा [हृदया] होकर, लज्जा, लाड़, मोहयुक्त दृष्टियों से भीत रही। ११७१ [व.] उस प्रकार वह नृपसत्तम [तथा] मत्तकाशिनी (सुभद्रा) आपस के चित्तों के चित्तजायत्त होकर इच्छाओं के प्रोद्वल से सहन-शक्ति को खोकर लज्जा से स्खलित हो रहे थे, तब एक दिन देवता महोत्सव के निमित्त वह तलोदरी पुर के बाहर चली गयी तो अर्जुन कृष्ण तथा देवकी-वसुदेव की अनुमति पाकर वह भी स्वयं [सुभद्रा के] साथ जाकर, तब ११७२ [सी.] सांद्र शरच्चंद्र-चंद्रिका-स्फूर्ति से विराजिता पूर्णिमा की रजनी की तरह, पूर्णेंदु विवावतीर्ण होकर भूमि पर भासमान हरिण के शिशु की तरह, सुललित मेघ-मंडल को त्यागकर वसुधा पर घूमनेवाली तटिद्वल्ली की तरह, माणिक्य-रचित [तथा] सन्महित चैतन्य को पानेवाले स्वर्ण खिलौने की तरह, [ते.] ललित विभ्रम रुचिकला लक्षणों के प्रकाशमान होने पर सुन्दर रूप होनेवाले श्रृंगाररस की तरह, इच्छायुक्त हो विचरण करनेवाली पद्मायताक्षी, प्रकट सद्गुणभद्रा सुभद्रा को

व. अप्पुडु डायंजनि यरदंपु पै निडुकौनि पोवुचुंड गनुंगौनि यदु बलंबुलु मदंबुन नंदंदाकिन नप्पुडय्याखंडल नंदनुंडु प्रचंड गांडीव कोदंड निर्मुक्त कांडंबुलं द्रूलिचि यखंड बाहुदंड विजय प्रकांडुंडयि खांडव प्रस्थपुरंबुन करिगॆं। अट बलभद्रुंडव्वार्त विनि विलय समय समीर सखुनि कैवडि बट्टरोष भीषणाकारुंडयि क्रोधिचिनं गनि कृष्णुंडादिगा गल बंधुजनंबु-लतनि चरणंबुलकुं ब्रणमिल्लि मृदुमधुर भाषणंबुल ननुनयिंचि योडंबडु-नट्लुगा नाडिन नतंडुनु संतुष्टुंडयि मनंबुन गलंक देरि यप्पुडु ॥ 1174 ॥

कं. करुलं देरुल नुत्तम, हरुलन् मणि हेम भूषणांबर भृत्यो-
त्कर दासिका जनंबुल, नरणंबुग निच्चि पंपॆ ननुजकु ब्रीतिन् ॥ 1175 ॥

व. इट्लु कृष्णुनकभिमतंबुगा नर्जुन सुभद्रलकरणंबिच्चि पंपॆ ननि शुक-योगींद्रुडु मरियु निट्लनियॆ ॥ 1176 ॥

श्रीकृष्णुडु ऋषि समेतुंडयि मिथिला नगरंबुनकु बोवुट

सी. नरनाथ! विनु भुवन प्रसिद्धंबुग दीपिंचु नद्दि विदेह देश-
मंबु भूकांतकु नानन दर्पणंबन दनर्चिन मिथिलनु पुरमुन
गलडु श्रीहरिपादकंजात भक्तुंडु गळित रागादि विकारुडमल
चरितुडक्रोधुंडु शांतुंडु निगमार्थ कोविदुंडगु श्रुतदेवुडनॆडि

देखकर ११७३ [व.] तब समीप जाकर, रथ पर बिठाकर जाते समय, देखकर यदुबलों के मदयुक्त हो, सामना करने पर वह आखंडल-नंदन प्रचंड गांडीव कोदंड [से] निर्मुक्त कांडों [बाणों] से [शत्रुओं को] हटाकर, अखंड बाहुदंड विजय प्रकांड बनकर, खांडवप्रस्थपुर को गया। वहाँ बलभद्र वह वार्त्ता सुनकर विलय समय के समीरसखा (अग्नि) की तरह पटु रोष भीषणाकार वाला बनकर क्रोधित हुआ तो [उसे] देखकर कृष्ण आदि बंधु जनों के उसके चरणों को प्रणाम करके, मृदु मधुर भाषणों से अनुनय-विनय करके समझा देने पर उसने भी संतुष्ट होकर मन में शांत होकर तब ११७४ [कं.] करियों (हाथियों), रथों, उत्तम हरियों (घोड़ों) [तथा] मणि-हेम-भूषणांबर भृत्योत्कर दासिकाजनों को अनुजा को प्रीति से दहेज के रूप में देकर भेजा। ११७५ [व.] इस प्रकार कृष्ण के अभिमत के अनुसार अर्जुन [और] सुभद्रा को दहेज देकर भेजा —इस प्रकार कहकर शुकयोगींद्र ने यों कहा। ११७६

श्रीकृष्ण का ऋषि-समेत होकर मिथिला नगर को जाना

[सी.] हे नरनाथ! सुनो। भुवन [में] प्रसिद्ध होकर दीप्त होनेवाले विदेह देश में भूकांता के लिए आनन-दर्पण कहलाने योग्य मिथिला

ते. भूसुरोत्तमु डोकडनिच्छा समाग-
तंबु तुषमैन हेमशैलंबुगाग
दलचि परितोषमंदुचु दनगृहस्थ -
धर्ममुन नुंडे समुचित कर्मुडगुचु ॥ 1177 ॥

उ. आ पुरि नेलुवाडु बहुळाश्वुडु ना नुति कॅक्किनट्टि धा-
त्रीपति या धरासुरुनि रीतिनि निष्कलुषांतरंगुडै
ये पनुलंदु धर्मगति नेमर कथि जरिंचुचुंडे ल-
क्ष्मी पति वारिपै गरुण सेसि प्रसन्न मुखांबुजातुडै ॥ 1178 ॥

व. अट्लु कृष्णुंडु वारलं जूचु वेड्क निज स्यंदनारूढुंडयि नारद वामदेवात्रि कृष्ण राम सितारुण दिविज गुरु कण्व मैत्रेय च्यवनुलुनु नेनुनु मोंवलेन मुनुलनुगमिपं जनुचु दत्तद्देश निवासुलगु नानर्त धन्व कुरु जांगल बंग मत्स्य पांचाल कुंति मधु केकयकोसलादि भूवरुलु विविध वस्तु प्रचयंबुलु गानुक-लिच्चि सेविंप ग्रहमध्य गतुंडयि दीपिंचु सूर्युनि बोलि यप्पुंडरीकाक्षुंडु मंदस्मित सुंदर वदनारविंदुंडगुचु वारलं गरुणार्द्र दृष्टि जूचि योगक्षेमंबुलरसि सादर भाषणंबुल नादरिंचुचु गतिपय प्रयाणंबुलं जनि चनि विदेह नगरंबु डायं जनुदयु ना बहुळाश्वुंडनु जनकुंडु नम्माधवुराक

नामक पुर में श्रीहरि पाद-कंजात भक्त, गलित रागादि विकारी, अमल चरित वाला, अक्रोधी, शांत, निगमार्थ-कोविद होनेवाला श्रुतदेव नामक [ते.] एक भूसुरोत्तम अनिच्छा से समागत-तुष (भूसा) होने पर भी [उसे] हेम शैल [के समान] मानकर परितोष पाते हुए, समुचित कर्मी होते हुए गृहस्थ-धर्म में रहा। ११७७ [उ.] उस पुर का पालन करनेवाला बहुलाश्व नामक प्रसिद्ध धात्रीपति उस धरासुर की भाँति निष्कलुषांतरंग [वाला] होकर किसी भी काम में धर्मगति से सावधानी के साथ इच्छापूर्वक रहता था; लक्ष्मीपति उन पर करुणा करके प्रसन्नमुखांबुजात होकर [रहने लगा]। ११७८ [व.] उस प्रकार कृष्ण उनको देखने के कुतूहल से निजस्यंदनारूढ़ होकर नारद, वामदेव, अत्रि, कृष्ण, राम, सित, अरुण, दिविज, गुरु, कण्व, मैत्रेय, च्यवन, मैं (शुक) आदि मुनियों के अनुगमन करने पर जाते हुए, तत् तत् देश निवासी होनेवाले आनर्त धन्व, कुरुज, अंग, लवंग, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कोसल आदि भूवर विविध वस्तु प्रचयों को भेंटें देकर सेवा करने पर, ग्रहमध्यगत होकर दीप्तिमान होनेवाले सूर्य की तरह वह पुंडरीकाक्ष मंदस्मित सुंदर वदनारविंद होते हुए उनको करुणार्द्र दृष्टि से देखकर, योग [और] क्षेम जानकर सादर भाषणों से आदर करते हुए, कतिपय प्रयाणों से जा-जाकर विदेहनगर के पास जाने पर, वह बहुलाश्व नामक जनक उस माधव के आगमन के बारे में सुनकर मन में

बिनि मनंबुन हर्षिंचुचु विविध पदार्थंबुलु कानुकलुगा गोनि तानुनु श्रुत देवुंडुनु नेदुरुगा जनुदेंचि यप्पुडु ॥ 1179 ॥

उ. आ मुनि कोटिकिन् विनयमारग वंदनमाचरिंचि या
तामरसाभ लोचनुडुदार चरित्रुडु पाप गोत्र सु-
त्रामुडु भक्त लोक शुभदायकुडैन रमेशु सद्गुण-
स्तोमुनि पाद पद्ममुलु सोकग म्रोक्कि विनम्रुले तगन् ॥ 1180 ॥

च. करमुलु मोड्चि यो परम कारुणिकोत्तम नीवु नी मुनी-
श्वरुलुनु मद्गृहंबुनकु वच्चि ममुं गृप सेसि यिच्चटन्
गरमनुरक्ति बूजनलु गैकोनुडंचु नुतिंचि वेड ना
हरि मनमंदु वारि विनयंबुल कॆंतो प्रमोदमंदुचुन् ॥ 1181 ॥

च. तिरमुग वारि यिष्टमुलु दीर्प दलंचि मुरासुरारि यों-
डोरुल नॆरुंगकुंड मुनि यूथमु दानुनु नेगॆ वारि मं-
दिरमुल केक कालमुन धीरत ना धरणीवरुंडु वा-
रिरुह दळायताक्षु मुनिबृंदमुलं गनकासनंबुलन् ॥ 1182 ॥

सी. कूचुंड नियमिंचि कौमरारु कांचन कलधौत कलशोदकमुल चेत
बादमुल् गडिगि तत्पावन जलमुलु दानुनु सतियु बांधव जनंबु
गरमर्थि निजमस्तकंबुल धरियिंचि विविधार्चनमुलु सद्विधि नोनर्चि
मणिभूषणांबर माल्यानुलेपन राजित धूप नीराजनमुलु

हर्ष पाते हुए विविध पदार्थों को भेंटों के रूप में लेकर, वह स्वयं [और] श्रुतदेव सामने जाकर तब ११७९ [उ.] उस मुनिकोटि को बिनय के साथ वन्दना करके उस तामरसाभलोचन, उदार चरित्र, पर्वत इन्द्र, भक्तलोक [को] शुभदायक होनेवाले रमेश के, सद्गुणस्तोम के पाद-पद्मों को छूते हुए नमस्कार करके बहुत बिनम्र होकर ११८० [च.] कर (हाथ) मुकुलित करके, "ओ परम कारुणिकोत्तम ! तुम और ये मुनीश्वर मद्गृह में पधार कर, हम पर कृपा करके यहाँ बड़ी अनुरक्ति से पूजाएँ स्वीकृत करो ।" यों कहते हुए स्तुति करके प्रार्थना करने पर, वह हरि मन में उनके विनय के लिए बहुत मोद पाते हुए ११८१ [च.] स्थिर रूप से उनके इष्टों की पूर्ति करने की इच्छा से मुरासुरारि एक-दूसरे के जाने बिना मुनियूथ (समूह) और वह स्वयं एक ही (समय) काल में उनके मंदिरो (गृहों) में गये । धीरता के साथ उस धरणीवर ने वारिरुह-दलायताक्ष को [और] मुनिबृंदों को कनकासनों पर ११८२ [सी.] बिठाकर, प्रकाशमान कांचन-कलधौत कलशोदकों से, पादों (चरणों) को धोकर तत्पावन जलों को वह स्वयं [और] सती [और] बांधव जन बड़ी इच्छा से निज मस्तकों पर धारण करके, विविध अर्चनाएँ

ते. भक्ति गाविंचि परिमृष्ट बहु विधान्न
पायसापूप परिपक्व फलमु लोलि
नारगिपग जेसि कर्पूर मिळित
ललित तांबूलमुलु नॅय्यमलर नौसगँ ॥ 1183 ॥

व. इट्लु समर्पिचिन यनंतरंब यम्मिथिलेश्वरुंडयिन जनकुंडु परमानंदंबुनु बॊंदि ॥ 1184 ॥

च. हरिपद पद्म युग्ममु निजांक तलंबुन जेर्चि यॊत्तुचुं
बुरुष-वरेण्य ! यी निखिल भूत गणावळि यात्मलंबु सु-
स्थिर मति गर्म साक्षिवि सुधीवर ! नीपद भक्त कोटि तो-
नरय नुमाधिनाथ चतुरास्युलु बोलरटंडुरॅप्पुडुन् ॥ 1185 ॥

व. अट्टि लोक विदितंबयिन भवद्वाक्यंबु निक्कंबुगा भवदीय पादारविंदंबुलंबु नॊकनॊक वेळ लेशमात्र ध्यानंबु गल ना गृहंबुनकर्किचनुंडनि चित्तंबुनंवलंपक भक्तवत्सलुंडवगुटं जेसि विजयंबु चेसितिवि। भवत्पाद पकेरुह सेवारति दगिलिन महात्मुलु त्वद्ध्यानंबु वदलं जालुदुरे निरंतरंबुनु शांत चित्तुलै निष्किंचनुलैन योगींद्रुलकु नीवलनं गोरिक गलवारलकु निन्नुन नित्तुवु गदा यनि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 1186 ॥

सत् विधि से संपन्न करके, मणि, भूषण, अंबर, माल्य, अनुलेपन, राजित धूप नीराजनों को [ते.] भक्ति के साथ देकर, परिमृष्ट बहुविध अन्न, पायस, अपूप परिपक्व फलों को एक के बाद एक खिलाकर, स्नेहयुक्त होकर, कर्पूरमिलित ललित तांबूल दिये। ११८३ [व.] इस प्रकार समर्पित करने के अनंतर वह मिथिलेश्वर होनेवाला जनक परमानंद पाकर ११८४ [च.] हरिपद पद्मयुग्म [को] निजांकतल में रखकर दबाते हुए, "हे पुरुषवरेण्य ! इस निखिल भूतगणावलि की आत्माओं में सुस्थिर मति से स्थित कर्मसाक्षी हो। हे सुधीवर ! तुम सत्य कहते हो कि जानने पर उमाधिनाथ [और] चतुरास्य भी तुम्हारे पदों की, भक्त-कोटि से तुलना करने अयोग्य हैं। ११८५ [व.] ऐसे लोकविदित होनेवाला भवद्वाक्य निश्चित रूप से भवदीय पादारविंदों में एक न एक समय लेशमात्र ध्यान रखनेवाले मेरे गृह में [मुझे] मन में अकिंचन न कहकर भक्तवत्सल होने के कारण पधारे हो। क्या भवत्पादपंकेरुह सेवा-रति में लगे हुए महात्मा त्वत् ध्यान को छोड़ सकते हैं ! निरंतर शांत चित्त होकर, निष्किंचन होनेवाले योगींद्रों को तुमसे इच्छा रखनेवालों को अपने को भी देते हो न।" यों कह कर फिर इस प्रकार कहा। ११८६

ते. कृष्ण ! परमात्म ! यदुकुल क्षीरवार्धि
पूर्णचंद्रम ! देवकीपुत्र ! सुजन
विनुत ! नारायणाच्युत ! वेदवेद्य !
भक्त जनपोष परितोष ! परमपुरुष ! ॥ 1187 ॥

उ. श्री पुरुषोत्तमाख्य ! यदुसिंह किशोरक ! भक्तलोक र-
क्षापरतंत्र ! नीवु मुनि संघमु गोन्नि दिनंबुलुंडवे
नी पद-पद्म-रेणुवुलु नॅम्मि मदीय गृहंबु सोकिनं
दापसवंद्य ! ये निपुड धन्युड नय्येद ,गाद माधवा ! ॥ 1188 ॥

व. अनि यय्यर्थिचिनं ,ब्रसन्नुंडयि यप्पुंडरीकाक्षुंडु निमिकुल प्रदीपकुंडयिन जनक चक्रवर्ति गरुणिंचि यम्मिथिलानगरंबुन बौरजनंबुलकु नुन्नत शोभनंबुलु गाविंचुचु गोन्नि दिनंबुलुंडेनंत ॥ 1189 ॥

म. श्रुत देवुंडुनु मोदियै मुनिजन स्तोमंबुतो निंदिरा-
पति दोकोंचु निजालयंबुनकु नोंप्पन्नेगि यच्चोट स-
म्मति दर्भास्तरणंबुलन्निनिचि सम्यग् ज्ञान पारीणुडै
सतियुं दानु वदाब्जमुल् गडिगि चंचद् भक्ति दत्तोयमुल् ॥ 1190 ॥

च. शिरमुल दालिच नव्य तुलसीदळ दाम कुश प्रसून वि-
स्फुरदरविंद मालिकल बूजलोनर्चि गृहांधकूप सं-
चरणुडनैन नाकडकु जक्कि तनंतनॅ वच्चुनट्टि सु-
स्थिर मति ने तपंबु मुनु सेसितिनो यनि संतसिंचुचुन् ॥ 1191 ॥

[ते.] "कृष्ण ! परमात्मा ! यदुकुल क्षीरवार्धि [के लिए] पूर्णचंद्र ! देवकीपुत्न ! सुजन-विनुत ! नारायण ! अच्युत ! वेद-वेद्य ! भक्त-जनपोष ! परितोष ! परमपुरुष ! ११८७ [उ.] श्री पुरुषोत्तमाख्य यदुसिंह किशोरक ! भक्तलोकरक्षापरतंत्र ! तुम [और] मुनिसंघ कुछ दिन और रहो । तुम्हारे पदपद्मरेणुओं के स्नेह के साथ मदीय गृह में लग जाने से, हे तापस-वंद्य ! हे माधव ! मैं अब धन्य बन जाऊँगा ।" ११८८

ते. मरियु दत्पाद तीर्थंबु मंदिरमुन
गलय जिलिकिंचि संप्रीति गडलुकॊनग
पत्र फल पुष्प तोयमुल् भक्ति नॊसगि
हरि मुरांतकु मूर्ति निजात्म निलिपि ॥ 1192 ॥

ते. मानितंबुग विश्व निदान मूर्ति-
यॆन कृष्णुंडु तन यिंट नारगिंचॆ
दन मनोरथ सिद्धियु दनकु नब्बॆ
ननुचु बैपुट्टमल्लार्चि याडुचुंडॆ ॥ 1193 ॥

च. तरुणियु दानु बुत्रुलु बरुसपडि कृष्णु भजिंचुचुंडि त-
च्चरणयुगंबु नंकपीठमुन जाचिन मॆल्लन मॊत्तुचुन् रमा-
वरु गनि पल्कॆ भक्तजन वत्सल नामक भाग्यमॆट्टिदो-
हर चतुरास्युलुन्नॆरुग नट्टि निनुं गनुगॊंटि नॆम्मितोन् ॥ 1194 ॥

कं. मुनियोगि मानसस्फुट, -वनजंबुल नॆल्ल प्रॊद्दु वर्तिंचु भव-
द्घन दिव्य मूर्ति ना लो,-चन गोचरमय्यॆ गादॆ सर्वात्म ! हरी! ॥1195॥

व. दॆवा ! नीसच्चरित्रंबुलु कर्णरसायनंबुलुगा नाकर्णिंचुचु नीकुं बूज-
लॊनर्चुचु नीचरणारविंदंबुलकु वंदनंबुलु सेयुचु नी दिव्य नाम संकीर्तनंबुलु
सेयुचुं दम शरीरंबुलु भवदधीनंबुलुगा मॆलंगु निर्मल बोधात्मुलगु वारि

करनेवाले मेरे पास चक्रि आप से आप आये सुस्थिर मति से, न जाने, मैंने ऐसा कौन सा तप किया है—यों कहकर संतुष्ट होते हुए ११९१ [ते.] और तत् पादतीर्थ को [अपने] मंदिर (गृह) में सर्वत्र छिड़काकर संप्रीति के बढ़ जाने पर, पत्र-फल-पुष्प-तोयों को भक्ति से देकर, हरि को, मुरांतकमूर्ति को, निजात्मा में स्थिर करके ११९२ [ते.] "मानकर विश्वनिदान मूर्ति होनेवाले कृष्ण ने मेरे घर में भोजन किया है; मेरे मनोरथ की सिद्धि मुझे प्राप्त हुई है।" ऐसे कहते हुए ऊपर के वस्त्र हिलाते हुए खेल रहा था। ११९३ [च.] तरुणि, वह स्वयं और पुत्र एक के बाद एक कृष्ण का भजन करते हुए, उसके चरणों को अंक-पीठ पर फैलाने पर धीरे-धीरे दबाते हुए रमावर को देखकर बोला, "हे भक्तजन-वत्सल ! नहीं जानता कि मेरा भाग्य कैसा है ! जिसे हर (शिवजी) और चतुरास्य [भी] नहीं जानते वैसे तुम्हें स्नेह के कारण [मैंने] देखा। ११९४ [कं.] "हे सर्वात्म हरे ! मुनि योगिमानस स्फुट-वनजों में सदा वर्तमान होनेवाली भवत् घन दिव्य मूर्ति मेरे लोचनों में गोचरित हो गई है न ! ११९५ [व.] हे देव ! तुम्हारे सच्चरित्रों को कर्ण-रसायनों के रूप में आकर्णन करते हुए (सुनते हुए) तुम्हारी पूजाएँ करते हुए,

चित्तंबुलनु दर्पणंबुल गाडंबडु चुंबुवु, कर्म विक्षिप्त चित्तुलैन वारि हृदयंबुल नुंडियु दूरगुंड वगुदुवनि मरियु निट्लनियें ॥ 1196 ॥

सी. नीकु म्रोक्केद गृष्ण! निगमांत संवेद्य! लोकरक्षक !भक्त लोक वरद!
नी पादसेवन निरतुनि नन्नु ने पनि बंपंदानतिम्मनिन गृष्णु
डॅलनव्वु मोमुन ग्रॅमुवोंद ना विप्रु कर मात्म करमुन गदिय जेचि
पाटिंचि यतनितो बलिकॅ दपश्शक्ति वरलिन यम्मुनिवर्युलॅपुडु

ते. दम पदांबुज रेणु वितानमुलनु
दविलि लोकंबुलनु बवित्रंबु सेयु
वारु ननु गूडि यॅप्पुडु वलयुनॅडल
करुगुदेंतुरु नी भाग्य गरिम निटकु ॥ 1197 ॥

व. चनुदेंचिरि। पुण्यस्थलंबुलनु विप्रुलुनु देवतलुनु संस्पर्शन दर्शनार्चनंबुलं ब्राणुलनु समस्त किल्बिषंबुल बाय जेयुदुरु। अदियुनुंगाक ब्राह्मणुंडु जनन मात्रंबुन जीवकोटियंदु घनुंडे युंडु। जपतपोध्यानाध्ययनाध्यात्ममुलं जतुरुडै मत्कलाश्रयुंडग्यनेनि यतंडुत्तमुंडै वॅलुंगु नतनि जॅप्पनेल यनि वॅंडियु निट्लनियें ॥ 1198 ॥

तुम्हारे चरणारविंदों की वंदना करते हुए, तुम्हारे दिव्य नाम-संकीर्तन करते हुए, अपने शरीरों को भवदधीन होकर चलनेवाले निर्मल बोधात्मा होनेवालों के चित्तों रूपी दर्पणों मे दिखाई पड़ते ही। कर्मविक्षिप्त चित्त होनेवाले उनके हृदयों में से दूर नही होते।" ऐसा कहकर फिर यों कहा। ११९६ [सी.] "हे कृष्ण, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे निगमांत-संवेद्य! लोकरक्षक! भक्तलोकवरद! तुम्हारी पाद-सेवा में निरत होनेवाले मुझे किस काम पर भेज दोगे? आज्ञा दो।" ऐसा कहने पर, मुस्कुराहट मुख पर विराजमान होने पर कृष्ण ने 'उस विप्र के कर (हाथ) को अपने हाथ में लेकर, [उसकी बातो को] मानकर उससे इस प्रकार कहा, "तपश्शक्ति से संपन्न वे मुनिवर्य सदा [ते.] अपने पदांबुज-रेणु-वितानों से लगकर लोकों को पवित्र बनानेवाले मेरे साथ रहकर, जहाँ चाहे वहाँ जाते हैं। तुम्हारे अहोभाग्य के कारण यहाँ ११९७ [व.] आये। पुण्यस्थल, विप्र, देवता लोग, संस्पर्शन, दर्शन [और] अर्चनाओं से प्राणियों को समस्त किल्बिषों से दूर करेंगे। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण जनन मात्र से जीवकोटि में घन (श्रेष्ठ) रहता है। जप, तप, ध्यान, अध्ययन, आध्यात्मों में चतुर बनकर मत्कलाश्रय होता है तो वह उत्तम बनकर प्रकाशमान होता है। उसके बारे में क्या कहना?" इस प्रकार कहकर फिर इस तरह कहा। ११९८ [कं.] "हे इद्ध-चरित्र वाले!

कं. नामदि विप्रुलपै गल, प्रेममु ना तनुवु नंदु बॅट्टनि कतनन्
भूमीसुरुलर्हुलु नी, वी मुनुलं बूज सेयु मिद्ध चरित्रा ! 1199।

कं. इदियेनाकिष्टमु ननु, बदिवेल विधंबु लॉलय भजियिंचुट ना
मदि किपगुनटु गावुन, वदलनि भक्तिन् भजिपु वसुधामरुलन् ॥1200।

कं. अनि सर्वलोक विभुडगु, वनजोदरुडानतिच्चु वाक्यंबुल जा-
डन भूमीसुरुडम्मुनि, -जनुलकु सद्भक्ति बूज सलिपॅन्वरुसन् ॥ 1201।

च. अॅमयग गृष्णुडंत मिथिलेश्वर भूसुरुलं गृपावलो-
कनमॉलयन्ननून सुभगस्थिति बॉदग जेसि वारि वी-
ड्कॉनि रथमॅक्कि दिव्य मुनि कोटियु दानुनु वच्चॅ ग्रम्मरन्
जनवर ! मोक्षदंबगु कुशस्थलिकि ब्रमदांतरंगुडै ॥ 1202 ॥

अध्यायमु—८७

श्रुतिगीतलनु परमतत्त्वार्थ प्रतिपादकमैन पुरातनेतिहासमु

व. अनि चॅप्पिन बादरायणिकि नभिमन्यु नंदनुंडिट्लनियॅ। मुनींद्रा ! घट पटादि वस्तुजातंबु भंगि निर्देशिप नहँबु गाक सत्त्वादिगुण शून्यंबैन ब्रह्मं-बुनंदु सत्त्वादि गुण गोचरंबुलैन वेदंबु लॅक्रमंबुन वर्तिचुनट्टि चंदंबु

मेरा मन विप्रों पर होनेवाले प्रेम से युक्त है। मेरी तनु में न रखने के कारण, विप्र अर्ह है। तुम इन मुनियों की पूजा करो। ११९९ [कं.] यही मुझे इष्ट है। मुझे दस हज़ार विधियों में मिलकर भजन करना मेरे मन को अच्छा लगता है। बिना भक्ति छोड़े ब्राह्मणों का भजन करो (सेवा करो)।" १२०० [कं.] इस प्रकार सर्वलोकविभु होनेवाले वनजोदर के आज्ञा देने पर, उन वाक्यों के अनुसार भूमिसुर ने उन मुनिजनों की, क्रम से, सद्भक्ति से पूजा की। १२०१ [च.] हे जनवर ! तब कृष्ण अच्छी तरह मिथिलेश्वर [और] भूसुरों से [अपने] कृपावलोकन से अनून सुभग स्थिति को प्राप्त कराकर, उनसे विदा लेकर, रथ पर चढ़कर, दिव्य मुनि कोटि और वह स्वयं फिर प्रमदांतरंग होकर मोक्षद होनेवाली कुशस्थलि को लौट आया। १२०२

अध्याय—८७

श्रुतिगीत नामक परमतत्त्वार्थ प्रतिपादक होनेवाला पुरातन इतिहास

[व.] ऐसे कहे हुए बादरायणी से अभिमन्यु-नंदन ने इस प्रकार कहा। "हे मुनींद्र ! घट, पट आदि वस्तु जात (समूह) की तरह निर्देशित

नार्कोरिगिपु मनिन भूवरुनकु मुनिवरुंडिट्लनियें। सकल चेतना चेतनां-तर्यामियैन सर्वेश्वरुंडु सर्वशब्द वाच्युंडु गावुन सकल जंतु निवहंबुलकु बुद्धींद्रिय मनः प्राण शरीरंबुलनु सृजियिंचि चेतन वर्गंबुनकु ज्ञान प्रदुंडगु। कावुन सकल निगम समूहंबुलुनु दत्स्वरूप गुण वैभव प्रतिपादकंबुलु। काबुन मुख्यंबै प्रवर्तिंचु। श्रुतिस्तोत्रंबु उपनिषत्तुल्यंबु ननेक पूर्व ऋषि परंपरायातंबुनुनैन दीनिनि श्रद्धायुक्तुंडै यॆव्वंडनुसंधिंचु नतनिकि मोक्षंबु सुलभंबु। दीनिकिं नारायणाख्यातंबगु नॊक्क युपाख्यानंबु गलदु विनिपिंतु विनुमु। भगवत् प्रियुंडैन नारदुं डॊक्कनाडु नारायणाश्रमंबुनकुं जनि ऋषि-गण समेतुंडैन नारायण ऋषिं गनुगॊनि नावु नन्नडिगि नट्ल यम्महात्मुनि नडिगिन नतंडु मुन्नीयर्थंबु श्वेतद्वीपवासुलैन दिव्य योगींद्रुलु प्रश्न सलिपिन वारलकु सनंदनुंडु चॆप्पिन प्रकारंबु नीकॆरिंगिंचेदनिन चॆप्पं दॊडंगॆ। शयानुंडयिन राजश्रेष्ठुनि दत्पराक्रम दक्षतादि चिह्नंबुलनु नुतियिंचु वंदिजनंबुल चंदंबुन जगदवसान समयंबुन ननेक शक्ति युक्तुंडयि योगनिद्रावशुंडयिन सर्वेश्वरुनि वेदंबुलु स्तोत्रंबु सेय विधंबु नारायणुंडु नारदुनकुं जॆप्पिन तॆरंगुन विनुमनि यिट्लनियॆ ॥ 1203 ॥

करने के लिए अर्ह न होनेवाले सत्त्व आदि गुणशून्य होनेवाले ब्रह्म में सत्त्व आदि गुण गोचर होनेवाले वेद जिस क्रम में वर्तमान रहते हैं, उस क्रम को मुझे समझाओ।" ऐसा कहने पर भूवर से मुनिवर ने इस प्रकार कहा। सकल चेतनों [तथा] अचेतनों का अतर्यामी होनेवाला सर्वेश्वर सर्वशब्दवाच्य है, इसलिए सकल जंतु-निवह के लिए बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण [और] शरीर का सृजन करके चेतन वर्ग के लिए ज्ञानप्रद होता है। इसलिए सकल निगमसमूह तत्स्वरूप गुणवैभव [के] प्रतिपादक होते हैं। इसलिए श्रुति-स्तोत्र-मुख्य होकर प्रवर्तमान होता है। उपनिषद् तुल्य [तथा] अनेक पूर्व ऋषि परंपरायात होनेवाले इसका श्रद्धायुक्त होकर जो अनुसंधान करता है उसे मोक्ष सुलभ होता है। उसके (संबंध में) नारायणाख्यात होनेवाला एक उपाख्यान है। (उसे) सुनाऊँगा; सुनो। भगवत्प्रिय होने वाले नारद के एक दिन नारायणाश्रम को जाकर ऋषिगण समेत होनेवाले नारायण ऋषि को देखकर, जैसे तुमने मुझसे पूछा वैसे उस महात्मा से पूछने पर वह पहले (इसके पूर्व) इस अर्थ (विषय) को श्वेतदीपवासी होनेवाले दिव्य योगींद्रों के प्रश्न करने पर उनसे सनंदन ने जैसे कहा, वैसे तुम्हें समझा दूँगा; यों कहकर बोलने लगा। शयान होनेवाले (शय्या पर सोनेवाले) राजश्रेष्ठ की, तत्पराक्रम [और] दक्षता आदि चिह्नों की स्तुति करनेवाले वंदिजनों की तरह जगत के अवसान समय पर अनेक शक्तियुक्त होकर योगनिद्रावश होनेवाले सर्वेश्वर का वेदों के स्तोत्र करने का विधान

सी. जय जय हरिदेव ! सकल जंतुवुलकु ज्ञान प्रदुंडवु गान वारि
वलन दोषंबुलु गलिगिन सुगुण संतानंबुगा गोनि ज्ञान शक्ति
मुख्य षड्गुण परिपूर्णतं जेसि मा यात्म विशिष्टुंडवगुचु गार्य-
कारणात्मकुडवै कडगि चरिंचुचुनुन्न नीयंदु बयोरुहाक्ष !
ते. तिविरि याम्नायमुलु प्रवर्तिचु गान
बकट त्रिगुणात्मकंबैन प्रकृति तोडि
योग मितयु मान्पवे योगिमान
सांबुजात-मधुव्रत ! यनि नुतिचि ॥ 1204 ॥
व. अदियुनुं गाक ॥ 1205 ॥
सी. परम विज्ञान संपन्नुलै नट्टि योगींद्रुलु महित निस्तंद्रलील
बरिदृश्यमानमै भासिल्लु निम्मही पर्वत मुखर प्रपंचमेल्ल
बरग ब्रह्म स्वरूपबु गाग दॅलियुचुरॅलमि नीवुनु जगद्विलयवेळ
नव शिष्टुडवु गान ननघ! नीयंदु नो विपुल विश्वोदय विलयमुलगु
ते. घट शरावावुलगु मृद्विकारमुलु मृ-
दात्मकंबैन यट्लु पद्मायताक्ष !
तगिलि कारण रूपंबु दाल्चि लील
गडगु नीयंदु बुद्धि वाक्कर्ममुलनु ॥ 1206 ॥

नारायण के नारद से कहने की पद्धति से सुनो। यों कहकर इस प्रकार बोला। १२०३ [सी.] "जय जय हरिदेव ! सकल जंतुओं के लिए ज्ञानप्रद हो; इसलिए उनसे दोष होते तो सुगुण संतान की तरह लेकर, ज्ञान, शक्ति मुख्य षड्गुणपरिपूर्णता के कारण हमारे आत्मविशिष्ट होते हुए कार्यकारणात्मा बनकर प्रयत्न के साथ चलनेवाले तुममें, हे पयोरुहाक्ष ! [ते.] प्रयत्न से आम्नाय प्रवर्तित होते हैं; इसलिए, हे योगिमानसांबुजात मधुव्रत ! प्रकटित त्रिगुणात्मक होनेवाली प्रकृति के साथ इस योग (मिलन) को रोक दो।" इस प्रकार स्तुति करके १२०४ [व.] इसके अतिरिक्त १२०५ [सी.] परम विज्ञानसंपन्न होनेवाले योगींद्र-महित निस्तंद्र लीला से परिदृश्यमान होकर भासमान होनेवाला यह सारा संसार देखने पर ब्रह्मस्वरूप के रूप में संतोषपूर्वक मानते हैं; तुम भी जगत के विलय के समय अवशिष्ट होते हो; इसलिए हे अनघ ! तुममें इन विपुल विश्वों के उदय और विलय होनेवाले [ते.] घटशरावादी होनेवाले मृद्विकार जैसे मृदात्मा होते हैं, हे पद्मायताक्ष ! लगकर कारण रूप धारण करके लीला से तुममें, प्रयत्नपूर्वक बुद्धि, वाक् और कर्मों को १२०६ [कं.] अभ्यास

कं. अलवड जेयुचु नुंडुरु,वलकोनि यिल बॅट्ट वडिन पद विन्यासं-
बुलु पतन कारणमुगा, नलवुन सेविंचुचुनु गृतार्थुलु नगुचुन् ॥ 1207 ॥

कं. लीलं प्राकृत पूरुष
कालादिक निखिलमगु जगंबुलकॅल्लन्
मालिन्य निवारक मगु
नी ललित कथा सुधाब्धिनि ग्रुंकितगन् ॥ 1208 ॥

च. भरित निदाघ तप्तुडगु पांथुडु शीतल वारि ग्रुंकि दु-
ष्करमगु तापमुं दॊरगु कैवडि संसरणोग्रतापमुन्
वॅरवुन बायुचुंडुदुरु निन्नु भजिंचु महात्मकुल् जरा-
मरण मनो गुणंबुल क्रमंबुन बायुट सॅप्प नेटिकिन् ? 1209 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1210 ॥

सी. अनयंबु देहि नित्यानित्य सद्विलक्षणमुन बंच कोशव्यवस्थ
नभिवृद्धि बॊरयुचु नंदुलोपल नुन्न प्राणान्न बुद्धि विज्ञान मयमु-
लनु चतुष्कोशंबुलव्वल वॅलुगॊंदु नानंद मयुडवु गान देव !
सुरुचिर स्वप्रकाशुंडवु नी परिग्रहमु गल्गुट जेसि कादे प्रकृति

ते. महदहंकार पंचतन्मात्र गगन
पवन तेजोंबु भू भूतपंचकादि
कलित तत्त्वमुल् ब्रह्मांड कार्य करण-
मंदु नॅपुडु समर्थंबुलगुट जूड ॥ 1211 ॥

करते रहते हैं; अतिशय रूप में इस भूमि पर रखे हुए पद-विन्यासों को पतन के कारण मानते हुए परिश्रम करके सेवा करते हुए [और] कृतार्थ होते हुए १२०७ [कं.] हे प्राकृत पूरुष ! लीला से कालादिक निखिल होनेवाले सब जगों के लिए मालिन्य-निवारक होनेवाली तुम्हारी ललित कथा-सुधाब्धि में अच्छी तरह स्नान करके १२०८ [च.] भरित निदाघ-तप्त होनेवाला पथिक शीतल वारि (जल) में डूबकर दुष्कर ताप को जैसे दूर करता है वैसे ही तुम्हारी सेवा करनेवाले महात्मा संसरणोग्रताप को उपाय से दूर करते हैं। जरा, मरण, मनोगुणों से क्रम से दूर होने के बारे में कहने की क्या आवश्यकता है ? १२०९ [व.] इसके अतिरिक्त १२१० [सी.] देही सतत नित्य, अनित्य सद्विलक्षण से पंचकोशों की व्यवस्था से अभिवृद्धि को पाते हुए उसमें रहनेवाली प्राणान्न बुद्धि और विज्ञानमय नामक चतुष्कोश दूर प्रकाशमान होनेवाले आनंदमय हो; इसलिए हे देव ! सुरुचिर स्वप्रकाश हो; तुम्हारे परिग्रह के कारण ही है न प्रकृति का [ते.] महत् अहंकार पंचतन्मात्र, गगन, पवन, तेज, अंबु

कं. कोरि शरीरुलु भवदनु, -सारंबुन निह् परैक सौख्यंबुल बॆं-
पारग नंदुचु नुंदुरु, धीर जनोत्तमुलनंग दिविजारि हरा ! ॥ 1212 ।

आ. निन्नु ननुसरिंपनेरनि कुजनुलु
पवनपूर्ण चर्म भस्त्र समिति
योज जेयु चुंदुरुच्छ्वसनंबुलु
बलसि यात्म देह भजनुलगुचु ॥ 1213 ॥

सी. देवा ! कॊंदरु सूक्ष्म दृक्कुलैनट्टि महात्मकुलुदरस्थुडयिन वह्नि-
गा मदि दलतुरु कॆकॊनि मरिकॊंदरारुणुलनु पेर नमरु ऋषुलु
लील सुषुम्न नाळी मार्ग गतुडवै हृत्प्रदेशमुन जरिंचुचुन्न-
रुचि दहराकाश रूपिगा भाविंतुरट्टि हृत्पद्मंबुनंदु वॆडलि

ते. वितत मूर्धन्य नाडिका गतुल नोलि
ब्रह्मरंध्रंबु जॊच्चि परम पुरुष
सुमहितानंदमय परंज्योतिवैन
योशु निनुबॊंदि मरि पुट्टरिल महीश ! 1214 ॥

व. मरियु विविध काष्ठांतर्गतुंडयिन वायुसखुंडु तद्गत दोषंबुनं बॊंरयक
नित्य शुद्धुंडयि तरतम भावंबुन वर्तिचु चंदंबुन स्वसंकल्प कृतंबुलैन
विचित्र शरीरंबुलंदु नंतर्यामिवै प्रवेशिचि तत्तद्विचित्र योनिगतंबैन हेयं

(जल), भू, भूत पंचक आदि तत्त्वों के ब्रह्मांड कार्य-करण में, देखने पर, सदा समर्थ होना १२११ [कं.] हे दिविजारिहर ! इच्छा करके शरीरी भवदनुसार इह-परैक सौख्यों को अधिक पाते रहते है, ताकि धीर जनोत्तम कहलावें । १२१२ [आ.] तुम्हारा अनुसरण न कर सकनेवाले कुजन पवन पूर्ण चर्म-भस्त्र समिति की तरह, आत्मदेहभजन करनेवाले होते हुए, उच्छ्वसन करते रहते हैं । १२१३ [सी.] हे देव ! कुछ सूक्ष्मदृक् होनेवाले महात्मा उदरस्थ होनेवाले वह्नि की तरह अपने मन में भावना करते हैं; और कुछ 'आरुण' नाम से प्रसिद्ध ऋषि लीला से सुषुम्ना नाड़ी मार्गगत होकर हृत्प्रदेश में चलनेवाले रुचित् अहराकाशरूप की तरह [तुम्हारी] भावना करते है; ऐसे हृत्पद्म से निकलकर [ते.] वितत मूर्धन्य नाड़िता गति से क्रम से ब्रह्मरंध्र को प्राप्त कर (पहुँच कर), हे परमपुरुष, महीश ! सुमहित आनंदमय परंज्योति होनेवाले तुम्हें, ईश को, पाकर, इस भूमि पर फिर पैदा नही होते । १२१४ [व.] और विविध काष्ठांतर्गत होनेवाला वायुसखा तद्गत दोष को न पाकर नित्यशुद्ध होकर तरतम भाव से वर्तमान होने की तरह स्वसंकल्पकृत होनेवाले विचित्र शरीरों में अंतर्यामी होकर प्रवेश करके, तत्तत् विचित्रयोनिगत होनेवाले हेयों मे न लगकर

बुलं बौरयक सकलात्मसमंबै येकरसंबै ब्रह्मंबयिन निन्नु नैहिकामुष्मिक फलसंगमंबुलेक विगत रजोगुणंबुलु गलिगि कोंदरु भजियिंचुचुंडुदुरु। अदियुनुं गाक देवा! भवदीय संकल्पाधोनंबुलयिन शरीरंबुलं बवेशिंचियुन्न जीव-समूहंबु नीकु शेषभूतंबनि तेलिसि कोंदरु भवनिवारकंबयिन श्रीमत्त्वच्चरणारविंदंबुलु सेविंचि कृतार्थुलगुदुरु। मरियुनु ॥ 1215 ॥

सी. अनघ! दुर्गममैन यात्मतत्त्वंबु ब्रवर्तिंचु कोरकु दिव्यंबुलैन
यंचित रामकृष्णाद्यवतारमुल् भजियिंचियुन्न नी भव्य चरित-
मनु सुधांभोनिधि नवगाहनमु सेसि विश्रांत-चित्तुलै वेलयुचुंडि
मोक्षंबु बुद्धि नपेक्षिंप नोल्लरु मरियु गोंदरु भवच्चरण पंक-

आ. जमुल दगिलि पुण्यतमुलैन हंसल
वडुवु नोंदि भागवत जनमुल
नोनरु वारु प्रकट योगिजन प्राप्य-
मैन मुक्ति गोररात्मलंदु ॥ 1216 ॥

उ. कोंदरु नी शरीरमुलकुंठित भक्ति भवद्वशंबुलै
चेंदग नी पदाब्जमुलु सेरि भजिंचुचु दत्सुखात्मुलै
युंदुरु कोंदरी तनुवुलोलि धरिंचि भवत्पदाब्जमुल्
पोंदुग गोल्वलेक निल बुट्टुचु जच्चुचुनुंदुरव्यया! ॥ 1217 ॥

सकलात्मसम होकर, एकरस होकर, ब्रह्म होनेवाले तुमको, ऐहिक [और] आमुष्मिक फल का संग न पाकर, विगत रजोगुणवाले होकर कुछ लोग तुम्हारा भजन (तुम्हारी सेवा) करते रहते हैं। इसके अलावा हे देव! भवदीय संकल्प के अधीन होकर शरीरों में प्रवेश करके रहनेवाला जीवसमूह तुम्हें शेषभूत जानकर कुछ लोग भव-निवारक होनेवाले श्रीमत् तव चरणारविंदों की सेवा करके कृतार्थ हो जाते हैं। और भी १२१५ [सी.] हे अनघ! दुर्गम होनेवाले आत्मतत्त्व को प्रवर्तित करने के लिए दिव्य होनेवाले अंचित राम, कृष्ण आदि अवतारों को धारण किए हुए तुम्हारा भव्य चरित नामक सुधांभोनिधि में अवगाहन करके, विश्रांतचित्त होकर रहते हुए, वे अपनी बुद्धि से मोक्ष को नहीं चाहते। और कुछ लोग भवच्चरणपंकजों से लगकर [आ.] पुण्यतम हंसों की तरह भागवत-जन कहलानेवाले, प्रकट योगिजनों के लिए प्राप्य होनेवाली मुक्ति को अपनी आत्माओं में नहीं चाहते। १२१६ [उ.] हे अव्यय! कुछ [लोग] तुम्हारे शरीर को [होनेवाली] अकुंठित भक्ति से भवद्वश होकर पाने के लिए, तुम्हारे पदाब्जों के पास आकर [उनकी] सेवा तथा उस सुख से युक्त आत्मावाले बनकर रहते हैं। कुछ लोग इन तनु (शरीरों) को लगातार धारण करके, भवत्पदाब्जों की सेवा अच्छी तरह कर न सककर, इस भूमि पर जन्म लेते और मरते

च. यम नियमादि योग महितात्मकुलैन मुनींद्रुलुन् विरो-
धमुन दलंचु चैद्यवसुधावरमुख्य नृपुल् फणींद्र भो-
गमुलन नोप्पु बाहुवुलु गलिगन निन्नु भजिंचु गोपिकल्
क्रममुन नेम्मुनुन् सरिय कामे भवत्कृपकंबुजोदरा ! ॥ 1218 ॥

म. अरविंदाक्ष ! भवत्स्वरूपमिल प्रत्यक्षंबुनं गान नें-
व्वरिकि बोलदु शास्त्र गोचरुडवै वर्तितु वी सृष्टि मुं-
दर सद्रूपुडवैन नी वलनने धात्राद्यमर्त्युल् जनिं-
चिरि निन्नितकु मुन्नेरुंग गलमे चिंतिपनेमच्युता ! ॥ 1219 ॥

व. अट्टि निन्नु परमाणु-कारण-वादुलैन कण्व गौतमादुलुनु प्रकृति कारण वादुलयिन सांख्युलुनु देहात्मवादुलयिन बौद्धुलुनु विविधंबुलैन कुतर्कंबुल चेतं बरस्पर व्याहतंबुलैन मतंबुलु दमतम तर्क वादंबुल समर्थिचुचु निन्नुं देलियलेरु। महाभाग्यवंतुलयिन योगींद्रुलकु नीवु प्रत्यक्षंबैन निवियन्नियु नसत्यंबुलनि कानवच्चु, वेंडियु गोंदरु सचराचर वस्तुजातंबुलकु नंतर्यामिवै सर्वंबुनु नीव यगुट देलियलेक नित्यंबनियु ननित्यंबनियु विपरीत बुद्धि देलियुदुरु गानि भवदीय दिव्य तत्त्वंबु निक्कंबुग देलिय जालरु। कोंदरु जगच्छरीरुंडवुगान जगद्रूपकुंडवैन निन्नु गटक मकुट कर्णिकादि विविध भूषण भेदंबुलं गनकंबु निजस्वरूपंबु विडुवक वर्तिंचु

रहते हैं। १२१७ [च.] हे अंबुजोदर ! यम, नियम आदि से योग-महितात्मा होनेवाले मुनींद्र [और] विरोध (शत्रुता) से [तुम्हारा] स्मरण करनेवाले चैद्य-वसुधावर (-राजा) मुख्य (आदि) नृप फणींद्र भोग कहलानेवाले बाहुओं को धारण करनेवाले, तुम्हारी सेवा करनेवाली गोपिकाएँ, क्रम से हम, तुम्हारी कृपा को [प्राप्त करने के लिए] समान नहीं हैं ! १२१८ [म.] हे अरविंदाक्ष ! भवत्स्वरूप तो इस भूमि पर प्रत्यक्ष में देखने पर किसी के वश नही होता; शास्त्रगोचर होकर इस सृष्टि के सामने वर्तमान हो; सद्रूप होनेवाले तुम्हारे ही कारण धाता (ब्रह्मा) आदि अमर्त्य उत्पन्न हुए; तुमको इसके पहले, हे अच्युत! सोचने पर हम जान सकते थे? १२१९ [व.] ऐसे तुम्हें परमाणु कारणवादी होनेवाले कण्व, गौतम आदि, प्रकृति कारणवादी होनेवाले सांख्य, देहात्मावादी होनेवाले बौद्ध विविध कुतर्कों से परस्पर व्याहत होनेवाले मतों का अपने-अपने तर्कवादों से समर्थन करते हुए तुम्हें नही जान सकते। महाभाग्यवान होनेवाले योगींद्रों को तुम प्रत्यक्ष होते तो ये सब असत्य हो सकते; फिर भी कुछ लोग सचराचर वस्तुजातों के लिए अतर्यामी होकर सर्वस्व तुम ही हो —यह बात न जान सककर, नित्य [और] अनित्य कहकर विपरीत बुद्धि से जानते हैं, लेकिन भवदीय दिव्य तत्त्व को सचमुच नहीं जान सकते। कुछ लोग, तुम जगत्-शरीरी हो,

चंदंबुन जगद्विकारानुगतुंडवय्युनु निखिल हेय प्रत्यनीक कल्याण गुणात्मकुंडवै युंडुवनि यात्म विदुलघिनवारु तॆलियुदुरदियुनं गाक ॥1220॥

म. वनजाताक्ष! भवत्पदाब्जयुगसेवासक्तुलैनट्टि य-
ज्जनमुल् मृत्युशिरंबु दन्नि घन संसारांबुधिन् दाटि पा-
वनुलै लोकमुलं बुनीतमुलुगा वर्तिचुचुन् नित्य शो-
भनमै यॊप्पॆडि मुक्ति बॊंदुदुरु शुंभद्वैभवोपेतुलै ॥ 1221 ॥

म. मिमु सद्भक्ति भजिपनॊल्लकिल दुर्मेधं बवर्तिचु नी-
चमति व्रातमु नेर्पुनं बसुल बाशश्रेणि बंधिचु चं-
दमुनं बॆक्कगु नाम रूपमुल चेतन् वारि बंधिंचि दु-
र्गम संसार पयोधि द्रोतुवु दळत्कंजात-पत्रेक्षणा! ॥ 1222 ॥

व. देवा! कर्ममूलंबुलयिन पाणि पादंबुलु लेनि वाडवय्युनु स्वतंत्रुडवु गावुन ब्रह्मादुलु भवत्परतंत्रुलै युंडुदुरु। स्थिर चर रूपंबुलु गल चेतन कोटिकि नीवु सर्वविध नियंतवु गावुन नीकृपावलोकनंबुलु गल वारिकि मोक्षंबु करस्थितंबयि युंडु भवत्कृपावलोकनंबुलेनि कष्टात्मुलु दुर्गति गूलुदुरु। अट्टि जीवुलु देव तिर्यङ्मनुष्य स्थावरादि शरीरंबुलु सॊच्चि यणु रूपुलैयुंडुरंदुनु नी वंतरात्मवगुचुनुंडु मरियुनु ॥ 1223 ॥

इसलिए जगद्रूपक होनेवाले तुम्हें कटक-मकुट-कर्णिकादि विविध भूषण भेदों से कनक (सुवर्ण) के निज स्वरूप न छोड़कर, प्रवर्तमान होने की भाँति जगद्विकारानुगत होकर भी निखिल हेय प्रत्यनीक कल्याण गुणात्मा होकर रहते हो —इस प्रकार, आत्मविद् होनेवाले जानते हैं। इसके अतिरिक्त १२२० [म.] हे वनजाताक्ष! भवत् पदाब्जयुग के सेवासक्त होनेवाले वे जन मृत्यु[के]सिर को लात मारकर, घन संसारांबुधि को पारकर, पावन होकर, लोकों में पुनीत रहकर, अत्यधिक वैभव से युक्त रहकर, नित्य शोभायमान होकर रहनेवाली मुक्ति को पाते हैं। १२२१ [म.] हे दलत्कंजात-पत्रेक्षण! सद्भक्ति से आपकी सेवा करने की इच्छा न रखकर, इस भूमि पर दुर्मेधा से प्रवर्तमान नीच मतिवाले के (समूह) को कुशलतापूर्वक पशुओं को पाशों से बाँधने के समान, अनेक नाम और रूपों से उनको बाँधकर दुर्गम संसार-पयोधि में ढकेल देते हो। १२२२ [व.] हे देव! कर्ममूल होनेवाले पाणि [व] पाद-रहित होकर भी, स्वतंत्र हो, इसलिए ब्रह्म आदि भवत्परतंत्र होकर रहते हैं। स्थिर-चर रूप रखनेवाली चेतन-कोटि के लिए तुम सर्वविध नियंता हो, इसलिए जिन लोगों पर तुम्हारा कृपावलोकन पड़ता है, उनको मोक्ष करस्थित होना है। जिन पर भवत्कृपावलोकन नहीं पड़ता वे कष्टात्मा दुर्गति में पड़ जाते हैं। वैसे जीव देव, तिर्यक्, मनुष्य, स्थावर आदि शरीरों में घुसकर अणु रूप बनकर रहते हैं,

कं. मदि दलपोयग जलबु-
दबुदमुलु धरबुट्टि पॊलियु पोलिक गल यी
त्रिदशादि देहमुललो
वदलक वर्तिचु नात्मवर्गमु नोलिन् ॥ 1224 ॥

आ. प्रळयवेळ नीवु भरियियितुवंतकु
गारणंबवगुट गमलनाभ !
भक्त पारिजात भवभूरि-तिमिर-दि-
नेश ! दुष्ट-दैत्यनाश ! कृष्ण ! ॥ 1225 ॥

च. अनघ ! जितेंद्रिय स्फुरणुलय्युनु जंचलमैन मानसं-
बनु तुरगंबु बोध महितात्म विवेकपु नूलित्राट न-
ल्लन गुदियंग बट्टनु दलंचुचु मुक्तिकुपाय लाभ मे-
यनुवुन लेमिकिन् वगलनंदंडु नात्मलुवो तलंपगन् ॥ 1226 ॥

च. गुरुपद पंकजातमुलु गॊल्वनि वारलुबो महाब्धि नि-
स्तरणकु गर्णधार रहितंबगु नावनु संग्रहिचु बे-
हरि गति भूरि दुस्तर भवांबुधि लोन मुनुंगुचुंदुरं-
बुरुहदळाक्ष ! नीवु परिपूर्णुडवै तन रारगा नॊगिन् ॥ 1227 ॥

ते. पुत्र दार गृहक्षेत्र भूरि विषय
घन सुखासक्तुडगुचु नेमनुजुडेनि

उनमें भी तुम अंतरात्मा होते हुए रहते हो। और भी १२२३ [कं.] मन में सोचने पर जल के बुद्बुदों के धरा पर पैदा होकर नष्ट होने की तरह आत्म-वर्ग क्रम से इन त्रिदश आदि देहों में विना छोड़े प्रवर्तमान होता है। १२२४ [आ.] हे कमलनाभ! भक्तपारिजात! संसार के भूरि तिमिर [के लिए] दिनेश! दुष्टदैत्यनाश! कृष्ण! प्रलय की वेला (समय) में तुम सबके कारण होने से भार वहन करते हो। १२२५ [च.] हे अनघ! जितेंद्रिय-स्फुरण होकर भी चंचल होनेवाले मन रूपी तुरंग को, हे महितात्मा! जान बूझकर विवेक रूपी सुतली से धीरे-धीरे बाँधने की चिंता करते हुए, मुक्ति के लिए उपाय-लाभ किसी भी प्रकार न रहने से, सोचने पर आत्माएँ रोती रहती हैं। १२२६ [च.] हे अंबुरुहदलाक्ष! परिपूर्ण होकर तुम्हारे, क्रम से, विराजमान रहने पर भी गुरुपदपंकजातों की सेवा न करनेवाले, निश्चय ही महाब्धि का निस्तरण करने (पार करने) के लिए, कर्णधार-रहित होनेवाली नाव को संगृहीत व्यापारी की तरह भूरि दुस्तर भवांबुधि मे डूबते रहते हैं। १२२७ [ते.] पुत्र, दारा, गृह, क्षेत्र, भूरि विषय, धन सुख से आसक्त होते हुए कोई भी मनुज हो, अपनी इच्छा

नथि जरियिचुवाडु भवाब्धि लोन
जेंदि यॆन्नाळ्ळकुनु दरि जेरलेडु ॥ 1228 ॥

सी. जगतिपै बहुतीर्थ सदनंबुलन गलिग बुण्यानुवर्तन स्फुरितुलगुचु
बाटिंचि नी यंदु बद्ध मत्सरमुलु लेक भक्तामरानोकहंब-
वगु भवत्पादाब्ज युगळंबु सेविंचि भव पाशमुल नॆल्ल बारद्रोलि
सममतुलै यदृच्छालाभतुष मेरु .सममुगा गैकॊनि साधुलगुचु

ते. बाद तीर्थंबु गल महाभागवत ज-
नोत्तमोत्तमुलैनट्टि योगिवरुल
वारकॆप्पुडु सेविंचु वाडु पॊंदु
न्रविमलानंदमय मोक्षपदमु मरियु ॥ 1229 ॥

व. सत्तैन प्रकृतिवलन नुत्पन्नंबैन यी जगत्तु सत्तु गावलयु। अदि यॆट्लननिनं गनकोत्पन्नंबुलैन भूषणंबुलुकनक मयंबुलयि कानंबडु चदंबुननि ,सांख्युंडु पलिकिन विनि यद्वैतवादि यिट्लनु। अॆय्यदि युत्पन्नंबु गाददि सत्तुनु गादनु व्यतिरेक व्याप्ति नियमंबु नित्य सत्यंबयिन ब्रह्मंबुनंदु दर्कहतंबगु गावुनं ब्रपंचंबु मिथ्ययनि निरूपिंचिन, ना प्रपंचंबु ब्रह्मविशेषणंबयि कार्य-कारणावस्थलु गलिगियुन्न यंत मात्रंबुन मिथ्य गानेरदु। आ प्रपंचंबुनकु गार्यकारणावस्थलु नित्यंबुलु गावुन नवस्थाद्वय युक्तंबैन प्रपंचंबु नित्यंबनिन, वॆंडियु नद्वैति यिट्लनु। बहुग्रंथ प्रतिपादितंबयिन जगन्-

से (मनमाना) चलनेवाला भवाब्धि में डूबकर कभी भी तीर पर न पहुँच सकता। १२२८ [सी.] जगति पर बहुतीर्थ-सदन कहलानेवाले पुण्यानुवर्तन का स्फुरण होते हुए, प्रयत्न करके तुममें बद्ध मात्सर्य न रखकर, भक्तों के लिए अमरानोकह (कल्पवृक्ष) होनेवाले भवत् पदाब्जयुगल की सेवा करके सब भवपाशों को हटाकर, सममत बनकर, यदृच्छालाभ से तुष (संतुष्टि) को मेरु के समान स्वीकार करके साधु बनते हुए, [ते.] पाद तीर्थ रखनेवाले महाभागवत-जनोत्तमोत्तम होनेवाले योगिवरों की सेवा, बिना छोड़े, सदा करनेवाला प्रविमलानंदमय मोक्ष पद को प्राप्त करेगा। और भी १२२९ [व.] सत् होनेवाली [इस] प्रकृति से उत्पन्न इस जगत् का सत् होना चाहिए। वह कैसा कहोगे तो, कनकोत्पन्न भूषणों के कनकमय होकर दिखाई पड़ने की तरह इस प्रकार सांख्य के बोलने पर सुनकर अद्वैतवादी इस प्रकार कहता है— जो उत्पन्न नहीं होता, वह सत् भी नहीं है। व्यतिरेक-व्याप्ति वाला नियम नित्य-सत्य होनेवाले ब्रह्म में तर्कहत होता है। इसलिए प्रपंच (संसार) मिथ्या है, ऐसा निरूपण करने पर वह प्रपंच (संसार) ब्रह्म-विशेषण होकर कार्य-कारण-अवस्था (दशा)-ओं को धारण करने मात्र से मिथ्या नहीं हो सकता। उस प्रपंच (संसार) के लिए कार्य-कारण-अवस्थाएँ नित्य है; इसलिए अवस्थाद्वययुक्त होनेवाला प्रपंच

मिथ्यात्वंबुलेमि येंट्लनिन नदियुनुं गर्मवशुलैन जडुल नविद्या प्रतिपादकंबयि कुतर्कसमेतंबैन भारति यंधपरंपरा व्यवहारंबुनं जेसि भ्रमियिंचु गारणावस्थयंदुनु ब्रह्म विशेषणंबैन सूक्ष्म रूपंबुनं ब्रपंचंबु सत्तैयुंडु, सत्यंबु बाधा योग्यंबु गावुन नीकु शेषंबयि युंडु, गावुन नीवु देहगतुंडैन देहियंदु नंतर्यामिवय्युं गर्म फलंबुलं बोरयक कर्मफल भोक्तवैन जीवुलकु साक्षि-भूतंबवै युंदुवट्टि निन्नु नज्ञुलैन मानवुलु निजकंठलग्नंबयिन कंठिकामणि नित्य सन्निहितंबयि वेलुगुचुंडिननु गानक वर्तिचु तेरंगुन हृदय पद्म मध्यंबुन ननंत तेजोविराजमानुंडवै प्रकाशिंचु निन्नुं देलिय लेरु। सकल ब्रह्मांड नायकुंडवैन नी यंदु श्रुतुलु मुख्यवृत्ति न्रवर्तिचुननि श्रुत्यधिदेवतलु नारायणु नभिनंदिंचिन तेरंगुन सनंदनुंडु महर्षुल कॅरिंगिंचिन प्रकारंबनि नारायणर्षि नारदुनकुं जेप्पिन नम्महात्मुंडु मज्जनकुंडयिन वेदव्यास-मुनींद्रुनकु नुपन्यसिंचे नय्यर्थंबु नतंडु नाकुं जेप्पिन विधंबुन नीकुं जेप्पिति, नी युपाख्यानंबु सकल वेदशास्त्र पुराणेतिहास सारंबुपनिषत्तुल्यंबु दीनि वठिंचुवारुनु, विनुवारुनु विगत कल्मषुलं यिह पर सौख्यंबुल नोंदि वर्तितुरनि चेप्पिन शुकयोगींद्रुनकु राजेंद्रुंडिट्लनियें ॥ **1320** ॥

(संसार) नित्य है, ऐसा कहने पर, फिर अद्वैती इस प्रकार कहता है : बहु-ग्रंथों में प्रतिपादित होनेवाला जगन्मिथ्यात्व नहीं है, यह कैसा कहोगे तो वह भी कर्मवश होनेवाले जड़ों का अविद्या-प्रतिपादक होकर, कुतर्क समेत होने वाली भारती अंधपरंपरा के व्यवहार के कारण भ्रमण करनेवाली कारणावस्था में ब्रह्म विशेषण होनेवाले सूक्ष्म रूप में प्रपंच (संसार) सत् होकर रहता है। सत्य बाधा योग्य है, इसलिए तुम्हारे लिए शेष होकर रहता है। इसलिए तुम देहगत होनेवाले देही में अंतर्यामी होकर भी कर्मफलों का अनुभव न कर, कर्मफलभोक्ता होनेवाले जीव के लिए साक्षीभूत होकर उसमें रहनेवाले तुम्हें अज्ञमानव निजकंठ लग्न होनेवाली कंठिकामणि के नित्य सन्निहित होकर प्रकाशमान होने पर भी, न देखकर रहने की तरह हृदय पद्म के मध्य अनंत तेजोविराजमान होकर प्रकाशित तुम्हें नहीं जान सकते हैं। सकल ब्रह्मांडनायक होनेवाले तुममें श्रुतियाँ मुख्यवृत्ति से प्रवर्तमान होती हैं —इस प्रकार श्रुत्यधिदेवताओं के नारायण का अभिनंदन करने के प्रकार को सनंदन के महर्षियों को समझाने का यह प्रकार है— इस तरह नारायणर्षि के नारद से कहने पर उस महात्मा ने मज्जनक (मेरे जनक) होनेवाले वेदव्यास मुनींद्र को भाषण दिया। उस अर्थ (विषय) को उसने मुझसे जैसे कहा, वैसे तुमसे मैंने कहा। यह उपाख्यान सकल वेद-शास्त्र-पुराणेतिहास [का] सार है [और] उपनिषत्-तुल्य है। इसका पठन करनेवाले, सुननेवाले विगत कलमष बनकर इह-पर सौख्यों को पाकर रहते हैं —ऐसा कहने पर शुकयोगींद्र से राजेंद्र ने इस प्रकार कहा। १२३०

अध्यायमु—८८

परीक्षित्तुनकु शुकयोगि विष्णु सेवा प्राशस्त्यंबु चॆप्पुट

म. मुनिनाथोत्तम ! देव मानवुललो मुक्कंटि सेविंचु वा-
रनयंबुन् बहु वस्तु संपदल सौख्यानंदुलैयुंड न-
ब्बनजाताक्षु रमामनोविभुनि शश्वद भक्ति सेविंचु स-
द्घनपुण्युल् गडु बेदलौकतमु जक्कन ना कॆरिंगिपवे ॥ 1231 ॥

सी. नावुडु शुकयोगि नरनाथु गनुगॊनि विनु सॆरिंगितु दद्विधमु दॆलिय
घन शक्तिसहितुंडु कालकंधरुडु दा विनुतगुणत्रयान्वितुडु गान
रागादियुक्तमै राजिल्लु संपदलातनि गॊलुचु वारंदुचुंदु-
रच्युतु बरमु ननंतु गुणातीतु बुरुषोत्तमुनि नादि पुरुषु ननघु

ते. नधि भजियिंचु वारु रागादि रहितु-
लगुचु दीपितुरॆंतयु ननघचरित !
धर्मनंदनुडश्वमेधंबु सेसि
पिदप सात्त्विक कथनमुल् प्रीति तोड ॥ 1232 ॥

उ. नारद संयमींद्रुवलनन् विनुचुंडि यनंतरंबु पं-
केरुहनाभु जूचि यडिगॆं दग निप्पुडु नीवु निन्नु नि-
डारिन भक्तिमै नडिगि नट्ल यतंडनु मंदहास वि-
स्फार कपोलुडै पलिकॆ बाडुतनूभवु तोड जॆच्चॆरन् ॥ 1233 ॥

अध्याय—८८

परीक्षित से शुकयोगी का विष्णु-सेवा-प्राशस्त्य को कहना

[म.] हे मुनिनाथोत्तम ! देव [तथा] मानवों में शिवजी की सेवा करनेवाले सदा बहुवस्तुसंपदाओं और सौख्य [तथा] आनंद से रहते हैं तो उस वनजाताक्ष, रमामनोविभु की शाश्वत भक्ति से सेवा करनेवालों के, सद्घन पुण्य करने पर भी, बहुत गरीब होकर, रहने का कारण, प्रमाण-पूर्वक मुझे समझाओ। १२३१ [सी.] ऐसा कहने पर शुकयोगी नरनाथ को देखकर, सुनो, तत्विध (प्रकार) समझा दूंगा। घन शक्ति-सहित कालकंधर (शिव) के स्वयं विनुत गुणत्रयान्वित होने से, रागादियुक्त होकर विराजमान संपदाओं को उसकी सेवा करनेवाले प्राप्त करते हैं। अच्युत, पर (तत्त्व वाले), अनंत, गुणातीत, पुरुषोत्तम, आदिपुरुष [तथा] अनघ की [ते.] सेवा करनेवाले रागादि-रहित होते हुए, हे अनघचरित्र ! अधिक दीप्तिमान होते हैं। धर्मनदन अश्वमेध करके बाद को सात्त्विक कथनों को प्रीति के साथ १२३२ [उ.] नारद संयमींद्र से सुनते रहकर, अनंतर

सी. वसुमतीनाथ ! यॆव्वनिमीद नाकनु ग्रहबुद्धि वॊडमु ना घनुनि वित्त-
मंतयु ग्रममुन नपहरिंचिन वाडु धनहीनुडगुचु संतापमंद
बिड्डुतुरु बंधुलव्विधमुन नॊंटरियै चेयुनदि लेक यखिल कार्य-
मारंबुलुडिगि मद्भक्तुलतो मैत्रि नॆऱपुचु विज्ञान निरतुडगुचु

ते. विबप वाडव्ययानंद पदमयात्म
वरग श्रीविष्णु लोक संप्राप्ति नॊंदु
गान मत्सेव मिगुल दुष्करमटंचु
वदलि भजियियितुरितर देवतल नॆपुडु ॥ 1234 ॥

कं. सेविप वारु दमकुं
गाविंचिन शोभनमुलु गनि निजमुलुगा
भाविंचि वारि मऱतुरु
भावमुल गृतघ्न वृत्ति पनि तम पनिगन् ॥ 1235 ॥

कं. मॆलगुचुनुंदुरु दीनिकि
गलदॊक यितिहासमिपुडु गैकॊनि नीकुं
दॆलियग जॆप्पॆद दानन
यलवडु नी वडुगु प्रश्नकगुनुत्तरमुन् ॥ 1236 ॥

(बाद को) पंकेरुहनाभ को देखकर पूछा, जैसे अब तुमने मुझसे संपूर्ण भक्ति के साथ पूछा, वह भी मंदहास से विस्फार-कपोल वाला बनकर, शीघ्र ही पांडुतनूभव से कहने लगा। १२३३ [सी.] "हे वसुमतीनाथ! जिस पर मेरी अनुग्रह-बुद्धि होगी, उस घन के सारे वित्त का क्रम-क्रम अपहरण करने पर, उसके धनहीन बनकर संतप्त होने पर, सब बंधु उसे छोड़ देते; इस प्रकार अकेला होकर कुछ न कर सककर अखिल कार्य-भार त्याग कर मद्भक्तों से मित्रता करते हुए विज्ञाननिरत होते हुए, [ते.] इसके बाद वह अव्ययानंद पदमय आत्मा से श्रीविष्णुलोक को प्राप्त करेगा। इसलिए मत्सेवा को बहुत दुष्कर कहते हुए [उसे] छोड़कर सदा दूसरे देवताओं का भजन करते (सेवा करते) है। १२३४ [कं.] [इस प्रकार] सेवा करने पर वे (दूसरे देवताओं के) दिये गये संपदाओं को देखकर उन्हें सच मानकर, [अपने] भावों में कृतघ्न वृत्ति को अपना काम समझ कर, उनको (उन देवताओं को) भूल जाते हैं। १२३५ [कं.] [इस प्रकार] चलते है। इसके [प्रमाण] के लिए एक इतिहास (कथा) है। उसे अब तुम्हें समझा दूंगा। उससे तुम्हारे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर [तुम्हें] मिल जायगा। १२३६

शिवद्रोहंबु सेयंबूनिन वृकासुरंडु विष्णुमायचे मडियुट

कं. शुकुडनु दैत्युनि तनयुडु
वृकुडनु वाडोकडु दुर्विवेकुडु सुजन-
प्रकरमुल नलप दॆरुवुन
नॊकनाडोदिगुंडि दिव्य योगि गडकन् ॥ 1237 ॥

व. कनुंगोनि ॥ 1238 ॥

कं. करमुलु मुकुळिंचि मौनी-
श्वर ! नारद ! ललित-धीविशारद ! नन्नुं
गरुणिंचि यानती शुभ-
करुलगु हरि हर हिरण्यगर्भुल लोनन् ॥ 1239 ॥

आ. कडगि कॊलुव शीघ्र कालंबुलोनन
यिष्टमैन वरमुलिच्चु नट्टि
देवमॆव्वडनिन दानवु गनुगोनि
मुनिवरुंडु पलिकॆ मुदमु तोड ॥ 1240 ॥

व. विनुमु दुर्गुण सुगुणंबुललो नॊक्कटि यॆच्चटंगलुगु नच्चट ना क्षणंब कोप प्रसाद फलंबुलु चूपु वाडम्मुव्वुरयंदु फाललोचनुंडु। इव्विधंबु दॆलिसिन वारै बाणासुर दशकंधरुलु समग्र भक्तियुक्तुलै सेविंचि यसमान साम्राज्य वैभवंबुलनॊंदि प्रसिद्धुलैरि। अट्लु गावुन नीवु नम्महात्मुनि सेविंपुमु। अतनि वलन नभिमत फलंबुलु वेगंब प्राप्तंबय्यॆडिननि चॆप्पिन नतंडाक्षणंब ॥ 1241 ॥

शिव-द्रोह करने का प्रयत्न करनेवाले वृकासुर का विष्णुमाया से मर जाना

[कं.] शुक नामक दैत्य का तनय वृक नामक एक (दैत्य), जो दुर्विवेकी था, सुजन-प्रकरों (समूहों)को कष्ट देने के लिए, मार्ग में एक दिन छिपकर रहकर, प्रयत्न करके दिव्य योगी को १२३७ [व.] देखकर १२३८ [कं] कर (हाथ) मुकुलित करके, "मुनीश्वर ! नारद ! ललित-धी-विशारद ! मुझ पर करुणा करके समझा दो [कि] शुभ कर होनेवाले हरि, हर, हिरण्यगर्भों में १२३९ [आ.] प्रयत्नपूर्वक सेवा करने पर शीघ्र काल में वांछित वर देनेवाला देव कौन है ?" ऐसा पूछने पर दानव को देखकर मुनिवर ने मोद-सहित कहा, १२४० [व.] "सुनो। दुर्गुण-सुगुणों में एक जहाँ रहता है, वहाँ कोप और प्रसाद का फल दिखानेवाला उन तीनों में फाललोचन है। यह बात जानकर बाणासुर और दशकंधर समग्र भक्ति-युक्त होकर, सेवा करके, असमान साम्राज्य वैभवों को पाकर प्रसिद्ध हुए।

सी. दीपिंचु केदार तीर्थंबुनकु नेगि यति साहसात्मकुंडयिन यसुर-
लोकमुल् वॆरगंद ना कालकंधरु वरदुनि नंबिकावरुनि गूर्चि
तन मेनिकंडलुद्दंडुडै खंडिंचि यग्नि काहुतुलुगा नलर वेल्चि
दर्पकाराति प्रत्यक्षंबु गाकुन्न जडियक सप्तवासरमु नंदु

ते. दूनि तत्तीर्थमुन गृतस्नानुडगुचु
वॆडलि मृत्युवु कोरु ना वॆलयुनट्टि
गंड्र गॊड्डंट दन मस्तकंबु द्रुनुमु-
कॊनग दूनिन नय्यग्नि-कुंडमुननु ॥ 1242 ॥

कं. अरुदुग वॆलुवडि रुद्रुडु
करुण दलिर्पंग वानि करमात्म करां-
बुरुहमुन बट्टि तॆगुवकु
जॊरवलवदु मॆच्चु वच्चॆ सुमहित चरिता ! ॥ 1243 ॥

कं. नी मदि बॊडमिन कोरिक
लेमैननु वेडु मिपुड यिच्चॆद ननिनं-
दा मनमुन संतसपडि
या मनुजाशनुडु हरु पदांबुजमुलकुन् ॥ 1244 ॥

ते. वंदनंबाचरिंचि यो यिंदुमकुट !
फाललोचन ! वरद ! मत्पाणितलमु

इसलिए तुम उस महात्मा की सेवा करो। उससे अभिमत फल शीघ्र ही प्राप्त हो जायेंगे।" ऐसा कहने पर वह उसी क्षण १२४१ [सी.] दीप्त केदार तीर्थ में जाकर, ताकि [सब] लोक चकित हों, अति साहसात्मा [वह] असुर उस कालकंधर (शिव), वरद, अंबिका-वर को उद्दिष्ट करके अपने शरीर के मांस को खंडन करके (काटकर) अग्नि के लिए आहुति देकर, दर्पकाराति (शिव) के प्रत्यक्ष न होने पर, निडर होकर, सप्त वासर को, [ते.] अपनी इच्छा से तत्तीर्थ (उस तीर्थ) में कृतस्नान बनते हुए जाकर, मृत्यु को चाहने वाले परशु से अपना मस्तक काटने के प्रयत्न मे रहने पर, उस अग्निकुंड में से १२४२ [क.] अद्भुत रीति से रुद्र निकलकर अतिशय करुणा से उसके कर (हाथ) को आत्मकरांबुरुह मे रखकर, "हे सुमहित चरित [वाले] ! साहस मत करो; मैं संतुष्ट हुआ। १२४३ [कं.] अपने मन में जो इच्छा है, उसे बोल दो; अभी पूरा कर दूँगा।" ऐसा कहने पर अपने मन में संतोष पाकर, वह मनुजाशन (असुर) हर के पदांबुजों को १२४४ [ते.] वंदना करके, "हे इंदुमकुट [वाले]! फाललोचन ! वरद ! ऐसा वर दो कि मैं मत्पाणितल को जिसके सिर पर रखूँ, उसका मस्तक (सिर) एक

नेनु नॆव्वनि तलमीद निडिन वानि
मस्तकमु नूरु व्रय्यलै मडियनीवॆ ॥ 1245 ॥

कं. अनि वेडिन नम्माटलु
विनि मदनाराति नव्वि विबुधाहितु को-
रिन वरमु दडयकिच्चिन
दनुजुडु तद्वर परीक्ष दा जेयुटकुन् ॥ 1246 ॥

व. आ क्षणंब वरदान गर्वंबुन नुद्वृत्तुंडै कडंगि ॥ 1247 ॥

कं. आ हरु मस्तकमुन गडु
साहसमुन जेयि वॆट्ट जडियक कदिय-
न्नोहो ! तन मॆच्चुलु दन
काहा पॆवच्चॆ ननुचु नभवुडु भीतिन् ॥ 1248 ॥

कं. दनुजुडु दन वॆनुवॆंट
जनुदे मुल्लोकमुलुनु संत्रासमु गै-
कॊनि पार सुरलु मनमुल
दनिकिरि दानिकिनि व्रतिविधानमु लेमिन् ॥ 1249 ॥

व. अट्लु चनि चनि ॥ 1250 ॥

सी. निरुपमानंदमै निखिल लोकमुलकु नवलयै यमृत पदाख्य दनरि
दिनकर चंद्र दीधितुलकु जॊरराक सललित सहज तेजमुन वॆलुगु
समधिकंबगु शुद्ध सत्व गरिष्ठमै करमॊप्प योगींद्र गम्यमगुचु
हरि पद ध्यान परायणुलैन तद्दासुल कलरु निवासमगुचु

सौ टुकड़ों में फटकर वह मर जाय।" १२४५ [कं.] ऐसी प्रार्थना करने पर उन बातों को सुनकर मदनाराति (शिव) के हँसकर विबुधाहित (असुर) ने जो वर माँगा, तुरंत उसे देने पर, उस दनुज के तद्वर [की] परीक्षा करने के लिए १२४६ [व.] उसी क्षण वरदान के गर्व से उद्वृत्त (धृष्ट) बनकर प्रयत्नपूर्वक १२४७ [कं.] उस हर के मस्तक पर बड़े साहस से हाथ रखने के लिए, निडर होकर, समीप आ जाने पर, 'हा, हा, मेरी प्रशंसा करना उलटे मेरे विरुद्ध ही परिणत हो रहा है' यों कहते हुए अभव (शिव) भीति से १२४८ [कं.] दनुज के अपने पीछे-पीछे आने पर तीनों लोकों में संत्रस्त होकर(डरकर)भाग जाने पर, उसके लिए प्रतिविधान (प्रतिक्रिया) न होने से, सुर (देवतागण) मन में तप्त हुए (भयभीत हुए)। १२४९ [व.] वैसे जा-जाकर १२५० [सी.] निरुपमानंद होकर, निखिल लोकों से दूर होकर, अमृत पदाख्य हो प्रकाशमान होकर, दिनकर,चंद्र की दीधितियों के लिए प्रवेश करने में अशक्य होकर, सललित सहज तेज से प्रकाशमान

ते. प्रविमलानंत तेजो विराजमान
दिव्य मणि हेम कलित संदीप्त भव्य
सौध मंडप तोरणस्तंभ विपुल
गोपुराकीर्ण सरमु वैकुंठपुरमु ॥ 1251 ॥

व. कनुंगोनि यम्महास्थानंबु डायं जनुटयु नप्पुंडरीकाक्षुंडखंड वैभवंबुनं गुंडलीश्वर भोग तल्पंबुनं बरमानंद कंदळित हृदयारविंदुंडै यिंदिरानयन चकोरंबुल निज मंदहास सांद्र चंद्रिका वितति देल्चुचु नार्त भक्त जन-रक्षणंबु पनिगा मेलंगुचु विविध विनोदंबुलं गलिगि युंडियु फाललोचनुं-डद्दनुजपालुनकुं दलंपक यिच्चिन वरंबु तन तलमीद वच्चिनं गलंगि चनुदेंचुट तन दिव्य चित्तंबुन नेरिंगि यक्कालकंधरुनि यवस्थ निवारिंपं दलंचि यय्यिंदिरा देवि तोडि विनोदंबु चालिंचि यप्पुडु ॥ 1252 ॥

सी. तापिंछ रुचि तोड द्रस्तरिंचेडु मेनु बसिडि मुंजियु दगु पट्टु गोडुगु
धवळांशु रुचि जन्निदंबुनु दिन्ननि वंडंबु जेत गमंडलुवुनु
बसुपु गोचियु जिन्नि पट्टॅवर्धनमुनु राजितंबैन मृगाजिनंबु
दूलाडु सिगयुनु व्रेलु माऱट गोचि वेलिमि बोट्टनुं व्रेळ्ळ दर्भ

होते हुए, समधिक शुद्ध सत्त्वगरिष्ठ होकर अधिक सुंदर लगने पर, योगींद्र-गम्य होते हुए, हरि-पदध्यान-परायण होनेवाले तद्दासों के लिए सुंदर निवास होते हुए, [ते.] प्रविमल अनंत तेजोविराजमान, दिव्यमणि, हेमकलित, संदीप्त, भव्य सौध, मंडप, तोरणस्तंभ [और] विपुल गोपुराकीर्णसर [होने-वाले] वैकुंठपुर [को], १२५१ [व.] देखकर उस महास्थान को जाने पर, वह पुंडरीकाक्ष अखंड वैभव से कुंडलीश्वर (आदिशेष) के भोगतल्प पर परमानंद-कंदलित हृदयारविंद वाला बनकर इंदिरानयन रूपी चकोरों को निज मंदहास की सांद्र-चंद्रिका-वितति से संतुष्ट करते हुए,आर्त भक्तजन-रक्षण को [अपना] कर्तव्य मानकर करते हुए, विविध विनोदों में सलग्न होकर रहते हुए भी, फाललोचन के उस दनुजपाल को, विना सोचे, दिए हुए वर के अपने (शिव के) सिर पर आने पर, चकित होकर [शिवजी का] आना अपने दिव्य चित्त में जानकर, उस कालकंधर की अवस्था (दशा) का निवारण करने की इच्छा से, उस इंदिरादेवी के साथ विनोद को रोककर, तब १२५२ [सी.] मोरपंख रुचि (कांति) का परिहास करनेवाला शरीर, सुवर्णमय मुंज, सुंदर रेशमी छतरी, धवलांशु रुचि [युक्त] यज्ञोपवीत, दीर्घ दंड, हाथ में कमंडलु, हल्दी [रंग का] कौपीन, छोटा तिलक, राजित मृगाजिन, हिलनेवाली शिखा, उसके प्रतिरूप में कौपीन, रक्षा (तावीज), अंगुलियों में दर्भा के दीप्त होने पर, [ते.] संदीप्त हव्यवाहन (अग्निहोत्र)

आ. निजमु पलिकॅनेनि नॅरि दन तलमीद
नी करंबु मोपनीक तलगि
वच्चु नोट्टु नितनि वलन नत्ययमुन
दगुलनेमि गलदु ? दनुजवर्य ! ॥ 1256 ॥

आ. अशुचि यगुचु नतनि नंटग बनि गादु
कालु जेयि गडिगि कडक वार्चि
यतनि वेंट नेड्क नरुगुदुवे नीवु
नवल नट दगुनु नसुरनाथ ! ॥ 1257 ॥

म. अति दुश्शंकलु मानि पॉम्मननिन दैत्याराति माया विमो-
हितुडै विस्मृति नॉंदि तामसमुचे नेपारि वाहात्म पा-
णितलंबुनन् दन नॅत्ति मोपिकॉनि तानेलन् वॆसंगूलॆ वि-
श्रुतदंभोळि हतिन् वडिबडु महाक्षोणीधरंबो यनन् ॥ 1258 ॥

व. अट्लु तन तल नूरु व्रय्यलयि नेलंगूलिन यसुरं गनि यप्पुडु ॥ 1259 ॥

कं. सुरलसुरांतकु मीदन्, वरमंदार प्रसून वर्षमु लॉलि
गुरिसिरि तुमुलंबै दिवि, मॉरसॆन् सुरदुंदुभि प्रमुखतूर्यंबुल् ॥ 1260 ॥

कं. पाडिरि गंधर्वोत्तमु-
लाडिरि दिवि नप्सरसलु नन्योन्यमुगन्

दनुजवर ! अगर सत्य बोला होता तो पराक्रम से अपने सिर पर तुम्हारे कर (हाथ) को न रखने देकर [इस प्रकार] दूर हटकर आना अपजय है। इस (शिव) के [वचनों के]कारण विश्वास करने से क्या होगा ? १२५६ [आ.] अशुचि होकर उसको छूने से काम नही बनता। पैर [और] हाथ धोकर प्रयत्नपूर्वक संध्या (प्रार्थना) करके उसके साथ जाते तो, उसके बाद, हे असुरनाथ ! उसे छू सकते हो। १२५७ [म.] अति दुश्शंकाओं को छोड़कर जाओ।" ऐसा कहने पर दैत्याराति (विष्णु) की माया से विमोहित होकर, विस्मृति पाकर, तामसयुक्त हो, अतिशय से वह (असुर) आत्मपाणितल को अपने सिर पर रखकर, वह स्वयं भूमि पर इस प्रकार शीघ्र गिर पड़ा मानो विश्रुत दंभोलि (वज्र)-हति (मार) से महाक्षोणी-धर (महान् पर्वत) शीघ्र गिर पड़ता हो। १२५८ [व.] उस प्रकार अपने सिर के एक सौ टुकड़े बनकर भूमि पर गिरे हुए असुर को देखकर तब १२५९ [कं.] सुरों नेअसुरांतक पर एक-एक करके वर मंदार-प्रसूनों को बरसाया। दिवि [में] जोर से सुरों के दुंदुभि आदि तूर्य बज गये। १२६० [कं.] हे विमल चरित्र [वाले] ! गंधर्वोत्तमों ने गाया। दिवि [में] अप्सराओं ने नाट्य किया। ग्रह अन्योन्य एकत्रित हुए। सब मुनि

कूडिरि ग्रहमुलु भयमुल
वीडिरि मुनिकोट्लुलंत विमल चरित्रा ! ॥ 1261 ॥

कं. मुरहरुडेंल नव्वॉलयग
बुरहरु दग जूचि पलिकॅ भूतेश्वर ! यी
नरभोजनुंडु नी कि-
त्तरि मॅग्गॉनरिप दलचि ताने पॉलिसॅन् ॥ 1262 ॥

व. अदि यट्टिद कादॆ ? इज्जगंबुन नधिकुंडैन वानिकि नपकारंबु गाविंचिन मानवुनकु शुभंबु गलुगुने ? अदियुनुं गाक जगद्गुरुंडवगु नी कवज्ञदलंचु कष्टात्मुंडु वॉलियुटॅ जॅप्प नेल ? इट्टि दुष्ट चित्तुल किट्टि वरंबुलिच्चुट कर्जंबु कादनि यप्पुरांतकु वीड्कॉलिपिन नंतडु मुरांतकुनि ननेक विधंबुल नभिनंदिंचि निज मंदिरंबुनकुं जनियॆननि चॆप्पि यिट्लनियॆ ॥ 1263 ॥

अध्यायमु—८९

कं. मानवनायक ! यी या-
ख्यानंबुं जदुव विनिन घनपुण्युलु नि-
त्यानंद सौख्यमुल पॆं-
पूनुदुरट मीद मुदित नॊंदुदुरॆलमिन् ॥ 1264 ॥

कोटियों (समूहों) ने भय को छोड़ दिया। १२६१ [कं.] मुरहर ने अधिक हँसी से पुरहर को अच्छी तरह देखकर [इस प्रकार] कहा, "हे भूतेश्वर ! यह नरभोजन [करनेवाला असुर] तुम्हारा इस प्रकार अपकार करने की इच्छा करके वह स्वयं मर गया। १२६२ [व.] यह ऐसा ही होता है ! इस जग में अधिक होनेवाले (बड़े) का अपकार करने से मानव का शुभ होता है ? इसके अतिरिक्त जगद्गुरु होनेवाले तुम्हारी अवज्ञा करने का विचार करनेवाले कष्टात्मा के मर जाने के बारे में क्या कहना ? ऐसे दुष्टात्माओं को इस प्रकार वर देनेवाला कार्य [ठीक] नहीं है।" यों कहकर उस पुरांतक को बिदा करने पर वह मुरांतक का अनेक प्रकार अभिनंदन करके निजमंदिर को (गृह को) गया। इस तरह कहकर [फिर] ऐसा बोला। १२६३

अध्याय—८९

[कं.] हे मानव-नायक ! इस आख्यान को पढ़ने, सुनने से पुण्यात्मा लोग नित्य आनंद सौख्यों से वृद्धि पाते [और] इसके बाद संतोषयुक्त

व. अनि चॆप्पि शुकयोगींद्रुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुन किट्लनियॆ ॥ 1265 ॥

भृगु महर्षि त्रिमूर्तुल प्राशस्त्यंबु शोधिंचुटकु बोवुट

कं. जननायक ! यिक बुरा-
तन वृत्तंबॊकटि नीकु दग नॆऱिंगितुन्
विनुमु तपोमहिमल जॆं-
दिन मुनि जनमुलु सरस्वती नदि पॊंतन् ॥ 1266 ॥

कं. वितत क्रियलॊप्पग स-
त्क्रतुवुल नॊनरिंचुचट गॆकॊनि लक्ष्मी-
पति भव पितामहुललो
नतुलितमुग नॆव्वरधिकुलनि तमलोनन् ॥ 1267 ॥

व. इट्लु तल पोसि तन्महत्त्वंबंतयुं दॆलिसि रम्मनि भृगु महामुनि नम्मुव्वुर वेल्पुल कडकुं बंपिन नत्तापसोत्तमुंडु चनि चनि मुंदट ॥ 1268 ॥

कं. जलरुह संजात सभा-
स्थलमुन कॊगि नेगि यतनि सत्त्वगुणंबु
दॆलियुटकै नुति वंदन-
मुलु सेयक युन्न नजुडु मुस मुस यनुचुन् ॥ 1269 ॥

कं. मनमुन गलगुचु भृगु दन, तनुजातुंडनुचु बुद्धि दलचिन वाडै
घन रोष स्फुरिताग्नि,-न्ननयमु शांतोदकमुल नल्लन यार्चॆन् ॥ 1270 ॥

होकर मुक्ति को पायेंगे । १२६४ [व.] इस प्रकार कहकर शुकयोगींद्र ने परीक्षिन्नरेंद्र से इस तरह कहा । १२६५

भृगु महर्षि का त्रिमूर्तियों के प्राशस्त्य का शोध करने जाना

[कं.] हे जननायक ! अब मैं तुम्हें एक पुरातन वृत्तांत अच्छी तरह समझा दूंगा; सुनो । तपोमहिमाओं को पाये हुए मुनिजन सरस्वती नदी के पास १२६६ [कं.] वितत क्रियाओं से अच्छी तरह सत्क्रतुओं को वहाँ संपन्न करते हुए लक्ष्मीपति, भव (शिव) तथा पितामह (ब्रह्मा) —इन तीनों में अतुलित रूप से कौन अधिक हैं, यों अपने मनों में १२६७ [व.]इस प्रकार सोचकर उनके महत्त्व से सबको जानकारी देने के लिए भृगु महामुनि को उन तीनों देवताओं के पास भेजने पर,वह तापसोत्तम जा-जाकर, प्रथमत: १२६८ [कं.] जलरुहसंजात (ब्रह्मा) के सभास्थल में क्रम से जाकर उसके सत्त्व गुण को जानने के लिए स्तुति [या] वंदना न करके रहा तो अज ने गुर्राते हुए १२६९ [कं.] मन में क्रोधित होते हुए भृगु को

च. महित तपोधनुंडु मुनि-मंडनु डय्येड बासि वेंडियु-
न्नहिपति-भूषु गान रजताद्रिकि नेगिन नग्गिरींद्रपै
दुहिन-मयूख-शेखरुडु दुर्गयु दानुनु विश्रमिचुचुन्
द्रुहिण-तनूभवुंडु सनुवेंचुटकात्मन्नमोदमंदुचुन् ॥ 1271 ॥

कं. कनुगोनि भ्रातृस्नेहं, -बुन गौगिट जेर्चु ननुचु मुक्कंटि रयं-
बुन नेंदुरेगिन मुनि रु,- द्रुनि यंदुल सत्त्व गुण मेंरुंगुट कोरकें ॥ 1272 ॥

व. अतनि गैकोनक यूरकुंडिन ॥ 1273 ॥

उ. आ निटलांबकुंडु कमलासन-नंदनु जूचि भूरिका-
लानल रोष वेग भयदाकृति दाल्चि पटुस्फुलिंग सं-
तानमुलोल्क शूलमुन दापस मुख्यु नुरंबु व्रेयगा
बूनिन बार्वती-रमणि बोरन नड्डमु वच्चि चेच्चेरन् ॥ 1274 ॥

कं. तन विभु पादमुलकु वं-
दनमुं गाविंचि समुचित प्रियमुल न-
य्यनलाक्षुनि कोपमु मा-
न्पिन नम्मुनिनाथु डचट निलुवक चनियेन् ॥ 1275 ॥

अपना तनुजात (पुत्र) समझते हुए, मन में सोचकर घनरोषस्फुरिताग्नि को अत्यंत शांतोदकों से धीरे-धीरे बुझा दिया। १२७० [च.] महित तपोधन [तथा] मुनिमंडन उस प्रदेश को छोड़कर फिर अहिपतिभूष (शिवजी) को देखने के लिए रजत-अद्रि पर गया तो उस गिरींद्र पर तुहिनमयूख-शेखर दुर्गा के साथ स्वयं विश्राम करते हुए, द्रुहिणतनूभव (भृगु) के आने के कारण [अपनी] आत्मा में प्रमोदित होते हुए १२७१ [कं.] देखकर, भ्रातृस्नेह से आलिंगन करेगा, ऐसा सोचते हुए त्रिनेत्र (शिव) के शीघ्र सामने जाने पर, मुनि रुद्र के सत्त्वगुण को जानने के लिए १२७२ [व.] उससे न मिलकर चुप रहा तो १२७३ [उ.] वह निटलांबक (शिव) कमलासननंदन (भृगु) को देखकर भूरि कालानल (प्रलयाग्नि) रोष वेग से भयंकर आकृति को धारण करके, पटुस्फुलिंग-संतान (-समूह) के गिर जाने पर शूल को [उस] तापसमुख्य के उर पर डालने के लिए सिद्ध हुआ तो पार्वती रमणी ने शीघ्र बीच मे आकर तुरंत १२७४ [कं.] अपने विभु के पाँवों की वंदना करके, समुचित प्रिय [भाषणों] से उस अनलाक्ष (शिव) के कोप को दूर किया तो वह मुनिनाथ वहाँ न ठहरकर चला गया। १२७५ [सी.] शोभायमान होनेवाले वैकुंठपुर में इच्छा से

सी. पोलुपोंदु वैकुंठ पुरमुनकथितो; जनि यंदु समधिकैश्वर्यमोप्प
गमलाक-पर्यंक-गतुडै सुखिंचु नवकौस्तुभ-भूषु वक्षस्स्थलंबु
दन पादमुन विट्टु दन्नें दन्निन वान्पु डिगि वच्चि मुनि जूचि नगधरुंडु
पदमुल कॆरगि यो परम तपोधन! यी गति नी वच्चुटॆरुग लेक

ते. युन्न ना तप्पु मन्निंचि नन्नु गरुण
जूचि यी दिव्य मणि मय स्फूर्ति दनरु
रुचिर सिंहासनंबुन गूर्चुंडु दिव्य
तापसोत्तम! यभय प्रदान निपुण! ॥ 1276 ॥

कं. अलघु पवित्र! भवत्पद, जलमुलु ननु नस्मदीय जठरस्थ जगं-
बुल लोकपालुरनु बॊलु, -पलरग बुण्युलनु जेयु ननघ चरित्रा! ॥1277॥

व. मुनींद्रा! भवदीय पादाब्ज हति मद्भुजांतरंबुनकु भूषणंबय्यें। भवदा-
गमनंबु मा बोंटि वारिकि शुभावहंबगुंगादॆ, येनु धन्युंडनैति मनि मृदु
मधुरालापंबुल ननुनयिंचिन नम्मुनिवरुंडु लक्ष्मीनाथ संभाषणंबुलकु
जित्तंबुनं बरमानंदंबु नॊंदि यम्मुकुंदु ननंत-कळ्याण-गुण-निधि नभि-
नंदिंचि यानंद बाष्प धारासिक्त कपोलुंडगुचु दद्भक्ति पारवश्यंबुन नॊंडु
वलुकनेरक यतनि चेत नामंत्रणंबु वडसि मरलि सरस्वती तीरंबुननुन्न
मुनुल सन्निधिकि जनुदॆंचि वारलं गनुंगॊनि ॥ 1278 ॥

जाकर उसमें समधिक ऐश्वर्ययुक्त हो, कमलांकपर्यंकगत होकर, सुख से रहनेवाले उस कौस्तुभ-भूषण वाले के वक्षस्थल पर अपने पांव से जोर से लात मारी, तो पर्यंक से उतरकर आकर मुनि को देखकर वह नगधर ने [भृगु के] पांवों पर पड़कर, "ओ परम तपोधन! इस प्रकार तुम्हारा आना न जान सककर रहनेवाले [ते.] मेरे दोष को क्षमा करके, मुझ पर करुणा करके, इस दिव्य मणिमय स्फूर्ति से प्रकाशमान रुचिर सिंहासन पर, हे दिव्य तापसोत्तम! अभय-प्रदान-निपुण! बैठो। १२७६ [कं.] हे अलघु पवित्र! [अपने] भवत्पदजलों से मुझे [तथा] अस्मदीय जठरस्थ जगों के लोकपालों को अच्छी तरह, हे अनघ चरित्र वाले! पुण्य वाले बनाया न! १२७७ [व.] हे मुनीद! भवदीय पादाब्ज-हति (लात) मेरे भुजांतर के लिए भूषण बन गई। भवदागमन हमारे जैसों को शुभावह होता है न! मैं धन्य हुआ।" इस प्रकार मृदु मधुर आलापों से अनुनय-विनय किया तो वह मुनिवर लक्ष्मीनाथ के संभाषणों के लिए चित्त में परम आनंद पाकर उस मुकुंद का, अनंत कल्याण गुणनिधि का अभिनंदन करके, आनंद-बाष्प-धारासिक्त कपोल (वाला) बनते हुए तद्भक्तिपारवश्य में [और] कुछ न बोल सककर उससे आमंत्रण पाकर, फिर सरस्वती नदी तीर पर रहनेवाले मुनियों को सन्निधि में जाकर

सी. मुनि नायकुल तोड दन पोयिवच्चिन तेरगुलु दनमदि दृष्टमैन
मूडु मूर्तुल विधंबुनु नेरिगिंचिन विनि-वारु मनमुल विस्मयंबु
नंदि चित्तंबुल संदेहमुनु बासि चिन्मयाकारुडु श्रीसतीशु-
डनुपमु डनवद्यु डखिल कल्याण गुणाकरु डादि मध्यांतरहितु-

ते. डै तनर्चिन पुंडरीकाक्षु डोकड
काक गणुतिप देवमोक्करुडु वेरु
कलडे यनु बुद्धि विज्ञान कलितुलगुचु
हरि पदाब्जात युगळंबु नर्थि गोलिचि ॥ 1279 ॥

व. अट्लु सेविंचि यव्ययानंदंबयिन वैकुंठधामंबु नोंदिरनि चेप्पि वेंडियु निट्लनियें ॥ 1280 ॥

श्रीकृष्णुंडु मृतुलयिन विप्रसुतुल देच्चुट

सी. नरनाथ ! योकनाडु नलिनायताक्षुंडु पोलुचु कुशस्थली-पुरमुनंदु
सुखमुंड नोवक भूसुरवर्यु भार्यकु बुत्रुंडु जन्मिंचि पुट्टिनपुड
मृतुडैन घन शोक विततिचे ग्रागुचु ना डिभकुनि गोंचु नवनिसुरुडु
चनुदेंचि येलुच राजद्वारमुन बेट्टि कन्नुल बाष्पांबुकणमुलोलुक

उनको देखकर १२७८ [सी.] मुनिनायकों से अपने जाकर आने के विधान को, अपने मन में दृष्ट होने के रूप में तीनों मूर्तियों के प्रकारों को समझाने पर, सुनकर वे मन में विस्मित होकर चित्तों में संदेह को छोड़कर 'चिन्मयाकार, श्री सतीश अनुपम, अनवद्य, अखिल कल्याण गुणाकर, आदि-मध्यांत-रहित होकर [ते.] शोभायमान होनेवाला पुंडरीकाक्ष के अतिरिक्त, गणना करने के लिए और एक देव कोई अलग है ?' इस प्रकार की बुद्धि और विज्ञान-कलित होते हुए हरिपदाब्जात युगल की इच्छापूर्वक सेवा करके १२७९ [व.] [उस] प्रकार सेवा करके अव्ययानंद होनेवाले वैकुंठधाम को प्राप्त कर चुके। इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। १२८०

श्रीकृष्ण का मृत विप्रसुतों को लाना

[सी.] हे नरनाथ ! एक दिन नलिनायताक्ष के शोभायमान कुशस्थलीपुर में सुख के साथ रहते समय एक भूसुरवर की पत्नी का पुत्र जन्म लेकर, पैदा होते ही [उस पुत्र के] मृत होने पर घन-शोक-वितति (-आधिक्य) से तप्त होते हुए, उस डिभक (बालक) को लेकर [वह] भवनिसुर आकर आग्रह (क्रोध) से राजद्वार के पास रखकर, आँखों में से बाष्पांबु कणों के छलकने पर [ते.] 'बाप रे ! क्या विधि का इस प्रकार मुझे

ते. बापुरे विधि ननु दुःखपरुपदगुनॆ
यनुचु दूरुचु दनु दिट्टिकॊनुचु वगल
डॆंदमंदंद यॆरिय नाक्रंदनंबु
सेयुचुनु वच्चि या विप्रशेखरुंडु ॥ 1281 ॥

सी. अधिक शोकंबुन नलमट बॊंदुचु नच्चटि जनुलतो ननियॆ वॆलुच
ब्राह्मण विद्वेषपरुडयि तग शास्त्र पद्धति नडपक पापवर्ति-
यै क्षत्रबंधुवुनगुवानि दुरितंबु चेत मत्पुत्रुंडु जातमैन
यप्पुड मृतुडय्यॆ नवकट हिंसकु रोयक यॆप्पुडन्यायकारि

ते. यगुचु विषयानुगतचित्तुडैन यट्टि
राजु देशंबु ब्रजलु निराशुलगुचु
दुःखमुल जाल बॊंदुचुंदुरनि मिगुल
नेड्चुचुनु नट निल्वक येगॆ नपुडु ॥ 1282 ॥

व. इव्विधंबुन मरियुनु तन सुतुलु मृतुलयिन वारलं गॊनि वच्चि यव्विप्रुंडु राजु मॊगसालं बॆट्टि रोदनंबु सेयुचु नॆप्पटि यट्ल कॊन्नि गाथलु सदिवि वापोवुचुंडॆ। अव्विधंबुन मृतुंडैन वानि नॆत्तिकॊनि वच्चि यॆप्पटि विधंबुनं बलवरिंचुचुन्न या ब्राह्मणुनि गनि यर्जुनुं डिट्लनियॆ ॥ 1283 ॥

कं. ई पगिदि नीवु वगलन्, वापोवग जूचि यकट वारिपंगा
नोपिन विलुकाडॊक्कं,-डी पुरि लेडय्यॆ नय्य! यिदि पापमगुन् ॥ 1284 ॥

दुःखित बनाना युक्त है ?' यों कहते हुए, गालियाँ देते हुए [और] अपने को कोसते हुए, रोकर, हृदय के परितप्त होने पर आक्रंदन करते हुए आकर उस विप्रशेखर ने १२८१ [सी.] अधिक शोक से थक जाते हुए वहाँ के लोगों से [इस प्रकार] कहा, "अधिकतर ब्राह्मण-विद्वेष-पर होकर अच्छी तरह शास्त्र-पद्धति से न चलाकर पापवर्ती बनकर क्षत्रबंधु होनेवाले के दुरित (पाप) से मत्पुत्र जन्म लेते ही मृत हुआ। ओह, हिंसा से द्वेष न प्रकट करके, सदा अन्यायकारी होते हुए [ते.] विषयानुगत चित्त होने वाले राजा के देश में प्रजा निराश होते अनेक दुःखों को पाती है।" ऐसा [कहते हुए] बहुत रोते हुए वहाँ न ठहर कर तब चला गया। १२८२ [व.] इस प्रकार और भी आपके सुतों को, जो मृत हुए हैं, लेकर, आकर वह विप्र राजा के प्रांगण में रखकर रोदन करते हुए, सदा के जैसे कुछ गाथाओं को पढ़कर रोता रहा। उस प्रकार मृत को लाकर सदा की तरह रोते हुए ब्राह्मण को देखकर अर्जुन ने इस प्रकार कहा, १२८३ [कं.] "इस प्रकार तुम्हारे रोने पर, दुःखित होने को देखकर ओह ! रोक सकनेवाला तीरंदाज़ एक भी इस पुर में नहीं है। यह तो पाप होगा न। १२८४

सी. पुत्रुल गोल्पोयि भूरि शोकंबुन वनट बोंदुचु विप्रवरुलु चाल
ने राजु राज्यमंदेनि वसिपुदुरा राजु दलपोय नवनिमीद
नटुनिगा नात्म नॅन्नंदगु नी पुत्र ने व्रतिकिचेंद निपुडु पूनि
यटु सेयनैति ने ननलंबु सोच्चेंदननि भूसुरुडु वॅरगंद बलुक

ते. नतडु गडु व्रेगुमाटलिट्लाड दगुनॅ
भूरि विक्रम शालि रामुंडु मेटि
बलुडु हरियुनु शौर्य संपन्नुलनग
दनरु प्रद्युम्नुडतनि नंदनुडु मरियु ॥ 1285 ॥

ते. विनुत बलुलैन यादव वीरवरुलु
गलुग वारलचे गानि कार्य मीवु
चक्क बॅट्टुट यॅट्लु नी चनॅडि त्रोव
बोम्मु नावुडु नय्यिंद्र पुत्रुडपुडु ॥ 1286 ॥

कं. मनमुन दुरहंकारमु
घनमुग बोडमुटयु नपुडु कव्वडि विप्रुं
गनुगोनि यच्चटि जनमुलु
विनगा निट्लनियॅ रोष विह्वलमतियै ॥ 1287 ॥

म. बलुडंगानु मुरासुरांतकुडगा प्रद्युम्नुडंगानु ने-
दॅलियं दत्तनयुंड गाननि विरोधि व्रातमुन् भीषणो-

[सी.] पुत्रों को खोकर भूरि शोक से दुःखित होते हुए विप्रवर जिस राजा के राज्य में अधिकता से रहते है, उस राजा को, सोचने पर, अवनि पर, आत्मा-में नट माना जा सकता है। तुम्हारे पुत्र को अब मैं जीवित बनाऊँगा। प्रयत्न करके वैसा न कर सका तो अनल मे प्रवेश करूँगा।" ऐसा कहने पर ताकि [वह] भूसुर आश्चर्य-चकित हो, [ते.] वह (ब्राह्मग) बोलने लगा, "बड़ी-बड़ी बातें बोलने लायक हैं ? भूरि विक्रमशाली राम, बृहत् बली हरि, शौर्यसंपन्न कहे जानेवाले प्रद्युम्न और उसका पुत्र १२८५ [ते.] विनुत बली यादव वीरों के रहते हुए, उनसे जो काम नहीं बन सका तुम कैसे कर सकते हो ? अपनी राह तुम जाओ।" —ऐसा बोला तो उस इन्द्रपुत्र ने तब १२८६ [कं.] मन में दुरहंकार के अधिक होने से तब अर्जुन ने विप्र को देखकर वहाँ के लोगों के सुनते रहने पर शेष विह्वल मति से इस प्रकार कहा १२८७ [म.] "मै न बल (राम) हूँ, न मुरासुरांतक। न प्रद्युम्न हूँ, न उसका तनय हूँ। लोग जान लें कि मैं अनि (युद्ध) में विरोधि-व्रात (-समूह) को भीषण [और] उज्ज्वल गांडीव-धनुर्विमुक्त निशितास्त्रश्रेणि से शवों के

ज्ज्वल गांडीव धनुर्विमुक्त निशितास्त्र श्रेणिचे बोन्गु पॆं-
टलु गाविचु पराक्रम-प्रकट-चंड-स्फूर्ति ने बार्थुडन् ॥ 1288 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1289 ॥

च. बलिमि पुरांतकुं दॊडरि बाहु बिजृंभण मॊप्प नॆक्कटि
दलपडि पोरि नट्टि रणधैर्युनि नन्नु नॆरुंगवक्कटा !
पॆलुकुर मृत्यु देवतनु बिक्रमडंचि भवत्तनूजुल-
न्नलवु जलंबु जूपिकॊनि याडग निप्पुड तॆच्चि यिच्चॆदन् ॥ 1290 ॥

व. अनि नम्मं बलिकिन यर्जुनु प्रतिज्ञकु भूसुरुंडु मनंबुन नूरडिल्लि यतनि नभिनंदिचुचु निजमंदिरंबुनकुं जनि कॊन्निदिनंबुलुंडुनंत भार्यकुं बसूति वेदनासमयंबयिनं जनुदॆंचि विव्वच्चुं गनि तद्विधं बॆरिंगिंचिन नय्यिंद्र नंदनुंडप्पुडु ॥ 1291 ॥

च. ललित विशिष्ट संचित जलंबुल नाचमनंबु सेसि सु-
स्थलमुन निलिचि रुद्रुनकु सम्मति म्रॊक्कि महास्त्र शस्त्र नि-
र्मल शुभमंत्र देवतल मानसमंदु दलंचि गांडिवं
बलवडनॆक्कु द्रोचि बिगियं गदियिंचि निषंगयुग्ममुन् ॥ 1292 ॥

व. इव्विधंबुन गट्टायितंबयि यप्पुडु ॥ 1293 ॥

ढेर लगानेवाला, पराक्रम से प्रकट चंडस्फूर्ति से [युक्त] पार्थ हूँ। १२८८ [व.] इसके अतिरिक्त १२८९ [च.] बल से पुरांतक (शिव) का सामना करके, अधिक बाहुविजृंभण करके, अकेले, उस [शिव] के साथ लड़ा हुआ विराजित धैर्य [वान] मुझे, आप न जानते ! ताकि मृत्युदेवता बिह्वल हो जाय, उसके गर्व को दूर करके भवत् तनूजों को [अपना] बल और मात्सर्य दिखाकर, ताकि [लोग मेरी] प्रशंसा करें, अभी लाकर दूँगा।" १२९० [व.] इस प्रकार बोलने पर ताकि विश्वास हो जाय, अर्जुन की प्रतिज्ञा को [सुनकर] भूसुर मन में शांत होकर, उसका अभिनंदन करते हुए निज मंदिर को जाकर कुछ दिन रहने पर, पत्नी के प्रसूति-वेदना-समय के आने पर, आकर अर्जुन को देखकर, उस बात को समझाने पर वह इन्द्रनंदन तब १२९१ [च.] ललित विशिष्ट संचित जल का आचमन करके, सुस्थल पर खड़े होकर, सम्मति से रुद्र (शिव) की प्रार्थना करके, महास्त्र-शस्त्र के निर्मल शुभ मंत्र देवताओं का मन में स्मरण करके; गांडीव को अच्छी तरह संधान करके, ठीक बांधकर, निषंगयुग्म को १२९२ [व.] इस प्रकार सिद्ध होकर तब १२९३ [सी.] भूसुर के साथ संतोष के साथ

सी. भूसुरवंट निम्मुल नेगि सूतिका भवनंबु चुट्टुनु वाण बितति
नरिकट्टि दिक्कुलु नाकाशपथमु धरातलंबॅल्ल नीरंध्रमुगनु
शर पंजरमु गट्टि शौर्यंबु दीपिप गड्डु नप्रमत्तुडै काचि युन्न
यॅड नम्महीसुरु नितिकि बुत्रुंडु जनियिंचॅ नप्पुडच्चटि जनंबु

ते. पोयॅ बोयॅ गदे यनि बोब्बलिडग
बोंदि तोडन याकाशमुनकु माय
जॅंदॅ नप्पुड दुःखंबु नोंदि भूमि-
सुरुडु विलपिंचुचुनु मुरहरुनि कडकु ॥ 1294 ॥

व. अप्पुडु चनि ॥ 1295 ॥

कं. मुंदर निल्चि मुकुंद! स, -नंदनमुनि विनुत! नंदनंदन! परमा
नंद! शरदिंदु चंदन, कुंद यशस्सांद्र! कृष्ण! गोविंद! हरी ! ॥ 1296 ॥

व. अवधरिंपुमु देवा ! यर्जुनुंडनेडि पौरुषहीनुंडाडिन वृथा जल्पंबुलु नम्मि पुत्रु गोल्पुवडि वेलनैन नन्नु नेमंदु ? निखिल विश्वोत्पत्ति स्थितिलयंबुलकु प्रधान हेतुभूतुंडवयिन नीवु समर्थुंडवय्यु वारिपं जालक चूचुचुंड नीवक मनुष्य मात्रुंडु दोर्पं जालॅडिवाडु गलडे ? अनि वॅंडियु ॥ 1297 ॥

कं. ऍक्कडि पांडुतनूभवु
डॅक्कडि विलुकाडु वोनिकॅक्कडि सत्यं-
बॅक्कडि गांडीवमु दन-
कॅक्कडि दिव्यास्त्र समिति येमन वच्चुन् ॥ 1298 ॥

जाकर सूतिका-भवन के चारों ओर बाण-वितति से रोककर, दिशाओं को, आकाश-पथ को, सारे धरातल को नीरंध्र बना कर, शरों का जाल बाँधकर, ताकि शौर्य दीप्तिमान हो, अधिक अप्रमत्त हो, रखवाली करने पर, उस महीसुर की स्त्री के पुत्र का जन्म हुआ; तब वहाँ के लोगों के [ते.] "गया-गया" कहकर चिल्लाने पर और कहने पर कि शरीर के साथ आकाश में गया और अदृश्य हुआ, तब दुःखित होकर, भूमिसुर विलाप करते हुए मुरहरि के पास १२९४ [व.] तब जाकर १२९५ [कं.] सामने खड़े होकर "मुकुंद! सनंदन-मुनि-विनुत नंद-नंदन! परमानंद! शरदिंदु-चंदन ! कुंद यशस्सांद्र ! कृष्ण ! गोविंद ! हरे ! १२९६ [व.] सुनो हे देव ! अर्जुन नामक पौरुषहीन के कहे हुए वृथा जल्पों पर विश्वास करके, पुत्र को खोकर पागल बने हुए मुझे क्या कहें ! निखिल विश्वोत्पत्ति-स्थिति-लयों का प्रधान हेतुभूत होनेवाले तुम समर्थ होकर भी रोक न सककर देखते रहे, तो एक मनुष्यमात्र दूर कर सकता है !" यों कहकर फिर १२९७ [कं.] "कहाँ का पांडुतनूभव है ? कहाँ का धनुर्धारी है ? वह

कं. अनि तनु नोडंक निंदि-
चिन विनि यय्यर्जुनुंडु चिडिमुडि पडुचुं
दन विद्य महिम पॆंपुन
जनियॆन् वॆस दंडपाणि सदनंबुनकुन् ॥ 1299 ॥

कं. चनि यंदु धारुणीसुर-
तनयुलु लेकुंट दॆलिसि तडयक यिंद्रा-
ग्नि निर्ऋति वरुण समीरण
धनदेशानालयमुलु दग वरिकिंचॆन् ॥ 1300 ॥

व. वॆंडियु ॥ 1301 ॥

च. नर सुर यक्ष किंपुरुष नाग निशाचर सिद्ध साध्य खे-
चर विहगेंद्र गुह्यक पिशाच निवासमुलंदु रोसि भू-
सुर सुतुलेगि नट्टि गति चॊप्पडकुंडुट जूचि क्रम्मरन्
धरणिकि नेगुदॆंचि वॆडिदंबुग नग्नि सॊरंगबूनिनन् ॥ 1302 ॥

व. अव्विधंबंतयु नॆरिंगि यम्मुरांतकुंडु विप्रनंदनुल नीकुं जूपॆदननि यनलंबु सॊरकुंड निवारिंचि यप्पुडु ॥ 1303 ॥

उ. सुंदर दिव्य रत्न रुचि शोभितमै तनरारु कांचन-
स्यंदन मंबुजाप्तुडुदयाचलमॆक्कु विधंबु दोप बो-
रंदरि दानु नॆक्कि तनु रश्मुलु दिग्विततिन् वॆलुंग गो-
विंदुडुबार लोल जनॆ विप्रतनूज गवेषणार्थियै ॥ 1304 ॥

कैसा सत्यवान है ? कहाँ का गांडीव है ? उसकी दिव्यास्त्र-समिति कहाँ की है ? क्या कह सकते है ?" १२९८ [कं.] इस प्रकार उसकी निंदा, निडर होकर करने पर, सुनकर वह अर्जुन जल्दबाजी करते हुए, अपनी विद्या के बल से शीघ्र दंडपाणि (यम) के सदन को गया। १२९९ [कं.] जाकर वहाँ धारुणीसुर-तनयों को न देखकर, बिना देर किए इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, वरुण, समीरण, धनद, ईशान के आलयों को अच्छी तरह देखा। १३०० [व.] फिर १३०१ [चं.] नर, सुर, यक्ष, किंपुरुष, नाग, निशाचर, सिद्ध, साध्य, खेचर, विहगेंद्र, गुह्यक, पिशाच-निवासों में अन्वेषण कर भूसुर-सुतों के जाने की गति (मार्ग) का पता न लगने पर, फिर धरणी को आकर, धैर्य से अग्नि में प्रवेश करने का प्रयत्न करता रहा तो १३०२ [व.] वह सब विधान जानकर वह मुरांतक "विप्रनंदनों को तुम्हें दिखाऊँगा" —यों कहकर अनल मे प्रवेश करने से रोककर तब १३०३ [उ.] सुंदर दिव्य रत्नरुचि शोभित होकर प्रकाशमान होनेवाले कांचन-स्यंदन [पर] जैसे अंबुजाप्त (सूर्य) उदयाचल पर चढ़ता है, वैसे वह स्वयं और

च. चनि पुर गोष्ठ दुर्ग वन जानपदाचल पट्टण प्रभू-
त नद नदी सरोवरयुत क्षिति नंतयु दाटि सप्त वा-
रि निधुल दीवुलं गुलगिरि प्रकरंबुल नुत्तरिंचि मे-
रु नगमु नाक्रमिंचचु मरुद्गति तो रथमेग नत्तरिन ॥ 1305 ॥

च. मसलक भूरि संतमस मंडलमु दरियंग जोच्चि सा-
हसमुन बोव बोवग भयंकरमै मदि गोचरिंपमिन्
वसमरि मोकरिल्लि रथ वाजुलु मार्गमु दप्पि निल्चिनन्
बिसरुह-पत्रलोचनु डभेद्यतमः पटलंबु वापगन् ॥ 1306 ॥

सी. बालभानु प्रभा भासमान द्युति गरमोप्पु निज रथांगंबु वनुप
नम्महास्त्रंबेगि चिम्म चीकटि नेल्ल नडिनुडि नंदंद नडिकि वेचि
यग्र भागंबुन नतुलित गति नेग ना मार्गमुन निजस्यंदनंबु
गडुवडि दोलि या कडिदि तमोभूमि गडव मुंदरिकड गान राक

ते. मिदकुटंवुग दृष्टि मिरुमिट्लु गोनग
जवल वेलुगोंदु दिव्य तेजंबु सूचि
मोनसि गांडीवि कन्नुलु मूसिकोनुचु
नातम भयमंदि कोंत दव्वरिगि यरिगि ॥ 1307 ॥

पौरंदरि (अर्जुन) चढ़कर, शरीर की रश्मियों के दिग्वितति में प्रकाशमान होने पर, गोविंद उदार लीला से विप्र के तनूज का गवेषणार्थि बनकर गया। १३०४ [चं.] जाकर पुर, गोष्ठ, दुर्ग, वन, जानपद, अचल, पक्कण (भीलों का गाँव), प्रभूत नद, नदी, सरोवरयुत सारी क्षिति को पार कर, सप्त-वारि-निधियों के द्वीपों को, कुलगिरि-प्रकरों को पार करके, मेरु नग को आक्रमित करते हुए, रथ तब मरुत् (वायु) की गति से चला। १३०५ [च.] पीछे न रहकर भूरि-संतमस (-अंधकारयुक्त) मंडल के निकट जाकर, साहस के साथ आगे बढ़ने पर मन में भयंकर लगकर गोचरित होने पर विनय से घुटने टेककर रथ के वाजी भटककर खड़े हुए तो, पद्मलोचन कृष्ण अभेद्य तमःपटल को दूर करने के लिए १३०६ [सी.] बालभानु की प्रभा की द्युति से अधिक शोभायमान निज-रथांग (पहिया) को भेजने पर वह महास्त्र जाकर, पूरे गाढ़ अंधकार को व्याकुल बनाकर, जहाँ-तहाँ काटकर अग्रभाग में अतुलित गति से जाने पर, उस मार्ग में निजस्यंदन को अधिक वेग से हाँककर, उस घोर तमोभूमि को पार करने पर आगे न देख सककर, [ते.] दृष्टि में अधिक चकाचौंध के होने पर, आकाश पर प्रकाशमान होनेवाले दिव्य तेज को देखकर, प्रयत्न के साथ गांडीवि (अर्जुन) आँखें बन्द करते हुए आत्म-भय पाकर कुछ दूर जा-जाकर १३०७ [ते.] प्रयत्न के साथ दुर्वार मारुत से उत्कट विधूत

ते. कडगि दुर्वार मारुतोत्कट विधूत
चटुल सर्वंकषोर्मि भीषण गभीर
वारि पूरंबु सोच्चिच तन्नीर मध्य
भागमुन गोटि सूर्य प्रभलु वेलुंग ॥ 1308 ॥

व. अट्टि सरियुं जारु दिव्यमणि सहस्रस्तंभाभिरामंबुनु नालंबित कमनीय नूत्न रत्न मालिकालंकृतंबुनु भानु शशि मयूखागम्यंबुनु ननंत तेजोविराजितंबुनु बुनरावृत्ति रहित मार्गंबुनु नित्यैश्वर्य दायकंबुनु नव्ययंबुनु नत्युन्नतंबुनु .ननून विभवंबुनु बरम योगींद्र गम्यंबुनु बरम भागवतनिवासंबुनुनै योप्पु नद्दिव्यधामंबु नंदु ॥ 1309 ॥

सी. सांद्र शरच्चंद्र चंद्रिका कर्पूर नीहार हाराभ देहममर
निंदिदिरेंदीवरेंद्र नीलद्युति गरमोप्पु मेचक कंठसमिति
यरुणांशुबिंब भासुर पद्म राग बिन्यस्त सहस्रोरुमस्तकमुलु
विवृताननोद्गत विष धूम रेखल लील जूपट्टिन नालुकलुनु

ते. गलित सायंतन ज्वलज्ज्वलन कुंड-
मुल विडंबिंचु वेडि चूपुलुनु गलिगि
भूरि कलधौत गिरि निभाकार ममर
वरगु भोगींद्रभोग तल्पंबुनंदु ॥ 1310 ॥

व. सुखासीनुंडै युन्न वानि डायंजनि यप्पुडु ॥ 1311 ॥

चटुल सर्वंकष उर्मियों से भीषण गंभीर वारिपूर (समुद्र) में घुसकर, तन्नीर (उस जल) के मध्य भाग में करोड़ सूर्यप्रभाओं के प्रकाशमान होने पर १३०८ [व.] और चारु दिव्य मणि सहस्र स्तंभाभिराम, आलंबित कमनीय नूत्न रत्नमालिकाओं से अलंकृत, भानु-शशि की मयूखगम्य, अनंततेजोविराजित, पुनरावृत्ति-रहित मार्ग [दर्शक], नित्यैश्वर्यदायक, अव्यय, अत्युन्नत, अनूनविभव [युक्त], परमयोगीद्रगम्य [और] परम भागवत निवास होकर शोभायमान [होनेवाले] उस दिव्य धाम मे १३०९ [सी.] सांद्र शरच्चंद्रचंद्रिका कर्पूर-नीहार-हाराभ देह से युक्त, इंदिंदिर इंदीवरेंद्र-नील-द्युति से सुंदर मेचक (काली) कंठ समिति (भाग) से, अरुणांशुबिंब-भासुर पद्मराग-विन्यस्त सहस्र उरु (बड़े) मस्तकों से, विवृत आनन [से] उद्गत विषधूम रेखाओं की .तरह दिखाई पड़नेवाली जीभों से, [ते.] कलित सायंतन ज्वलत-ज्वलन-कुंडों की विडंबना करनेवाली गरम दृष्टियों से, भूरि कलधौत गिरि निभाकार से शोभायमान होनेवाले भोगींद्र के भोग-तल्प पर १३१० [व.] सुखासीन होकर रहनेवाले के पास जाकर तब १३११ [सी.] सजल नीलांबुद श्यामायमान,

सी. सजल नीलांबुद श्यामायमानांगु नाश्रितावनमुदितांतरंगु
सनकादियोगि हृद्वनजमदाळींद्रु मुखपद्म रुचि जित पूर्णचंद्रु
गमनीय निखिल जगद्धित चारित्रु ब्रत्यूष संफुल्ल पद्मनेत्रु
निंदिरा हृदयारविंदारुणोल्लासु श्रीकर पीत कौशेयवासु

ते. हार कुंडल कटक केयूर मकुट
कंकणांगद मणिमुद्रिका विनूत्न
रत्न नूपुर कांची विराजमानु
भव महार्णव शोषु सद्भक्तपोषु ॥ 1312 ॥

व. मरियु सुनंदादि परिजन संतत सेवितु नानंद कंदळितहृदयारविंदु
नरविंदवासिनी वसुंधरासुंदरी समेतु नारद योगींद्र संकीर्तनानंदितु नव्ययु
ननघु ननंतु नप्रमेयु नजितु नविकारु नादि मध्यांतरहितु भव विलयातीत
गरुणासुधा समुद्रु नच्युतु महानुभावु बरमपुरुषु बुरुषोत्तमु निखिल जग-
दुत्पत्ति स्थिति लय कारणु जिद जिदीश्वरु नष्टभुजु गौस्तुभ श्रीवत्स वक्षु
शंख चक्र गदा पद्म शार्ङ्गादि दिव्यसाधनु सर्वशक्ति सेवितु बरमेष्ठिजनकु
नारायणुं गनुंगोनि दंड प्रणामंबुलु सेसि करकमलंबुलु मोगिचि भक्ति
पूर्वकंबुगा नभिनंदिंचिन नय्यादिदेवुंडुनु वारलं गरुणावलोकनंबु निगुड
नवलोकिंचि दरहासपूर्वंबु तोरंबुगा सादरंबुग निट्लनियॆ ॥ 1313 ॥

आश्रितावन-मुदितांतरंग, सनकादि योगिहृत्-वनज [के लिए] मद [पूर्ण] अलींद्र, मुखपद्मरुचि से जितपूर्णचंद्र, कमनीय निखिल जगद्धित चरित्र [वाले], प्रत्यूष संफुल्ल पद्मनेत्र [वाले], इन्दिरा-हृदयारविंद [के लिए] अरुणोल्लास (सूरज), श्रीकर पति, कौशेय-वास [धारण करनेवाले], [ते.] हार-कुंडल-कटक-केयूर-मकुट-कंकण, अंगद, मणि-मुद्रिका-विनूत्न, रत्ननूपुर कांची से विराजमान [होनेवाले], मन[रूपी] महार्णव को शोषित करनेवाले [तथा] सद्भक्तों का पोषण करनेवाले को १३१२ [व.] और सुनन्द आदि परिजन [से] संतत सेवित, आनन्द-कंदलित हृदयारविंदवाले, अरविंदवासिनी-वसुंधरा-सुन्दरी-समेत, नारद योगींद्र संकीर्तन [से] आनन्दित, अव्यय, अनघ, अनन्त, अप्रमेय, अजित, अविकार, आदि-मध्यांत-रहित, भव, विलयातीत, करुणा [रूपी] सुधा [के] समुद्र, अच्युत, महानुभाव, परम पुरुष, पुरुषोत्तम, निखिल जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय-कारण [होनेवाले] चित् [तथा] अचित् के [ईश्वर], अष्टभुज, कौस्तुभ और श्रीवत्स वक्ष [वाले] शंख, चक्र, गदा, पद्म, शाङ्र्गादि दिव्य साधन [वाले], सर्वशक्ति [यों से] सेवित् [तथा] परमेष्ठि के जनक [होनेवाले] नारायण को देखकर दंड प्रणाम करके करकमल मुकुलित करके भक्तिपूर्वक अभिनन्दन (प्रार्थना) करने पर, उस आदिदेव ने उनको करुणावलोकनों को [दृष्टियों को] फैलाकर अवलोकन

कं. धरणिकि वेगगु दैत्युल
वीरि वीरि वधियिंचि धर्ममुन् निलुपुटकै
धर जनियिंचितिरिरुवुर
नर नारायणुलनंग ना यंशमुनन् ॥ 1314 ॥

कं. आरूढ नियति तो वें, -पारिन सिमु निम्मुनींद्रुलयि जूड
गोरिन मी वच्चुटकै, धारुणिसुर सुतुल निटकु दग देवलसेन् ॥ 1315 ॥

कं. अनि या डिंभकुलनु दो-
कोनि पोंडनि यिच्चि वीडुकोलिपिन वारल्
विनतुलयि पेक्कु विधमुल
विनुतिचुचु नचटु वासि विप्रुनि सुतुलन् ॥ 1316 ॥

व. तोड्कोनि संप्राप्त मनोरथुलयि यव्वालकुल दत्तद्वयोरूपंबुल तोड देच्चि
या ब्राह्मणुनकु समर्पिचिन नतंडु संतुष्टांतरंगुंडय्ये नय्यवसरंबुन ॥ 1317 ॥

च. अनिमिष-नाथ-नंदनुडहर्पति तेजुडु कृष्णु तोड दा-
जनि यचट गनुगोनिन सर्वशरण्युनि पुंडरीक-ने-
त्रुनि निजधाम वैभव समृद्धिकि दन्महनीय मूर्तिकिन्
मनमुन मोदमंदि पलुमारुलु सन्नुति चेसे भूवरा! ॥ 1318 ॥

ते. वारिजाक्षुनि भक्तमंदारु ननघु
गृष्णु निखिलेशु नेशवु जिष्णु वरमु

करके, दरहासपूर को अधिक करके, सादर इस प्रकार कहा। १३१३ [कं.] "धरणि के लिए भार होनेवाले दैत्यों का बार-बार वध करके धर्म को खड़ा करने के लिए मेरे अंश से धरा पर नर-नारायण नामक दो (पुरुष) पैदा हो गये। १३१४ [कं.] आरूढ़ नियति से शोभायमान होनेवाले तुमको, इन मुनींद्रों के देखने की इच्छा करने पर, तुम दोनों के [यहाँ] आने (बुलाने) के लिए, धारुणीसुर (ब्राह्मण) [के] सुतों को यहाँ लाना, पड़ा।" १३१५ [क.] यों कहकर— "उन डिंभकों को (बालकों को) ले जाओ।" कहकर [और] देकर विदा कर देने पर, वे विनीत होकर, अनेक प्रकार विनतियाँ करते हुए उस प्रदेश को छोड़कर, विप्रसुतों को १३१६ [व.] लेकर संप्राप्त मनोरथी बनकर उन बालकों को तत्तद्वयो-रूपों से लाकर, उस ब्राह्मण को समर्पित करने पर, वह संतुष्टांतरंग [वाला] बन गया। उस अवसर पर १३१७ [च.] हे भूवर! अनिमिषनाथ-नंदन (अर्जुन) ने अहर्पति (सूर्य)-तेज [वाले] कृष्ण के साथ स्वयं जाकर वहाँ देखे हुए सर्वशरण्य, पुंडरीक नेत्र वाले के निज धाम-वैभव की समृद्धि [तथा] उस महनीय मूर्ति के लिए मन में मोद पाकर अनेक बार स्तुति की। १३१८ [ते.] वारिजाक्ष, भक्तमंदार, अनघ, कृष्ण, निखिलेश,

विनुति सेयुचु दत्पाद वनजमुलकु
वंदनमु लाचरिंचि यानंदमोंदॆ ॥ 1319 ॥

व. अंत ॥ 1320 ॥

म. हरि सर्वेशु डनंतु डाद्युड भवुं डाम्नाय संवेदि भू-
सुर मुख्य प्रजलन् समस्त धन वस्तु श्रेणि नॊप्पारगा
बरिरक्षिंचुचु धर्ममुन् निलुपुचुं बापात्मुलं द्रुंचुचुं
बरमोत्साहमॆलर्प भूरि शुभ विभ्राजिष्णुडै द्वारकन् ॥ 1321 ॥

कं. जनविनुतमुगा वेवकु स-
वनमुलु दनु दान गूर्चि वैदिकयुक्ति
न्नोनरिंचुचु ननुरागमु
मनमुन दळुकॊत्त दैत्यमर्दनु डॆलमिन् ॥ 1322 ॥

अध्यायमु—९०

लीलामानुषविग्रहुंडगु श्रीकृष्णुनि वंशानुक्रम वर्णनमु

व. अट्लु कृष्णुंडु द्वारकानगरंबुन बूज्यंबगु राज्यंबु सेयुचु बुरंदर विभवबुन निरवोंदि कनक मणिमय विमान मंडप गोपुर प्रासाद सौध चंद्रशालांगणादि विविध भवनंबुलंदुनु रंगदुत्तुंग तरंग डोला विलोल कलहंस चक्रवाक

केशव, जिष्णु, पर [मात्मा] की विनति करते हुए, तत्पादवनजों की वंदना करके आनंदित हुआ। १३१९ [व.] तब १३२० [म.] हरि, सर्वेश, अनंत, आद्य, अभव, आम्नाय-सवेदी, भूसुर मुख्य (आदि) प्रजा की, समस्त धनवस्तु श्रेणी की अच्छी तरह रक्षा करते हुए, धर्म की स्थापना करते हुए, पापात्माओं का नाश करते हुए, परम उत्साह के बढ़ जाने पर भूरि शुभ विभ्राजिष्णु बनकर, द्वारका को १३२१ [क.] जनविनुत हो वैदिकयुक्ति से वह स्वयं अनेक सवन (यज्ञ) करके, मन में अनुराग के भर जाने पर, दैत्य-मर्दन संतोष के साथ रहा। १३२२

अध्याय—९०

लीलामानुषविग्रह [धारी] श्रीकृष्ण का वंशानुक्रम-वर्णन

[व.] उस प्रकार कृष्ण द्वारका नगर में पूज्य होनेवाले राज्य का पालन करते हुए, पुरंदर के[-सम] विभव से स्थिर रहकर, कनकमणिमय विमान-मंडप, गोपुर, प्रासाद, सौध, चंद्रशालांगणादि विविध भवनों में, रंगत्

कारंडव सारस क्रौंचमुख जलविहंग विलसदुच्चलित गरुदनिल दरदमल कमल कुमुद कल्हार संदोह निष्यंद मकरंद रसपान मदबदिंदिरकुल गायक झंकार निनदंबुलुनु, निरंतर वसंत समय समुचित पल्लवित कोरकित बालरसाल जाल लालित किसलय विसर खादन जात कुतूहलायमान कषाय कंठ कलकंठ कलरव मृदंग घोषंबुलुनु, निशित निज चंचू पुट निर्दळित सकल जन नयनानंद सुंदर नंदित माकंद परिपक्व फल रंध्र विगळित मधुर रसास्वादन मुदित राजकीर शारिका निकर मृदुमधुर वचन रचनावश्यकृत्यंबुलुनु नमर बुर पुरंध्रीजन पीन पयोधर मंडल विलिप्त ललित कुंकुम पंक संकुल सौगंध्यानुबंध बंधुर गंधानुमोदितंबुनु, जंदनाचल सानुदेश संजात मंजुल माधवीलता निकुंज पुंज मंजुल किंजल्क रंजित निवास विसर विहरमाण शबरिका कबरिका परिपूर्ण सुरभिकुसुम-मालिका परिमळ वहंबुनु, गळिंद कन्यका कल्लोल संदोह परिस्पंद कंदळित मंदगमनंबुनगु मंदानिल विदूषकुनिचे बोधिताभ्यासित ललित-लगु नेलालता नटी वितान नटनंबुलचे विराजितंबुलगु कासार तीर भासुरोद्यानंबुलंदुनु, जारुघनसार पटीर बाल रसाल साल नीप तापिंछ जंबू जंबीर निंब कदंब प्रमुख मुख्य शाखि शाखाकीर्ण शीतलच्छाया विरचित विमल चंद्रकांतोपल वेदिकास्थलंबुलंदुनु, नुदंचित पिंछ बिभासित बाल नीलकंठ केकारवाकलित कृतक महीधरंबुलंदुनु, ललित

उत्तुंग-तरंग-डोला-विलोल, कलहंस-चक्रवाक-कारंडव-सारस-क्रौंचमुखादि जल-विहग-विलसत् उच्चलित गरुत् अनिल-दरत्-अमल-कमल-कुमुद-कल्हार-संदोह-स्रवित मकरंद-रसपान-मदवत् इंदिंदिरकुलगान के झंकार-निनदों को, निरंतर वसंत समय समुचित पल्लवित कोरकित बाल-रसाल-जाल-लालित किसलय विसर-खादन-जात कुतूहलायमान कषाय कंठ कलकंठ-कलरव के मृदंगघोष, निशित निज चंचु पुट निर्दलित सफल जन नयनानंद सुंदर नंदित माकंद परिपक्व फलरंध्र-विगलित मधुरसास्वादन से मुदित राजकीर-शारिका-निकर, मृदु मधुर वचनरचनावश्य कृत्य, अमरपुर पुरंध्रीजन पीन पयोधर मंडल पर विलिप्त ललित कुंकुम पंक संकुल सौगंध्यानुबंध बंधुर गंधानुमोदित, चंदनाचल सानुदेश संजात मंजुल माधवी लता निकुंज पुंज के मंजुल किंजल्क रंजित निवास, विसर विहरमाण शबरिका कबरिका परिपूर्ण सुरभि कुसुम-मालिका परिमलवह, कलिंद-कन्यका कल्लोल संदोह परिस्पंद कंदलित-मंदगमन होनेवाले मंदानिल रूपी विदूषकसे पोषिताभ्यासित ललिता होनेवाली एला-लता नटी वितान नटनों से विराजित होनेवाले कासारतीर,भासुर उद्यानों में, चारु घनसार पटीर बाल रसाल साल नीप तापिंछ जंबू जंबीर निंब कदंब प्रमुख मुख्य शाखी शाखाकीर्ण शीतलच्छाया-विरचित विमल चंद्रकांतोपल वेदिका स्थलों में, उदंचित पिंछ विभासित बाल नील कंठ केका के रव से कलित

मणिवालुकानेक पुलिनतलंबुलंदुनु, गप्पुरंपु दिप्पलनु गरुवेरु चप्परंबुलनु विरचित दारु यंत्र निबद्ध कलश निर्यत्पयोधाराशीकर परंपरा संपादित निरंतर हेमंत समय प्रदेशंबुलंदुनु निदिरारमणुंडु षोडश सहस्र वधूयुक्तुंडै यंदरु कन्निरूपुलै ललित सौदामिनी लता समेत नील नीरदंबुल विडंबिंचुचु गरेणुका कलित दिग्गजंबु नोज राजिल्लुचु सलिल केळी विहारंबुलु मोदलुगा ननेक लीला विनोदंबुलु सलुपुचु नंतःपुरंबुन गोलुवुन्न यवसरंबुन विविध वेणु वीणादि वाद्यंबुलनु, मंजुल गानंबुलनु, गविगायक सूत वंदि-मागध जन संकीर्तनंबुलनु नट नटी जन नाट्यंबुलनु, विदूषक परिहासोक्तुलनु, सरस सल्लाप मृदुमधुर भाषणंबुलनु गोद्दुपुच्चुचु नानंद रसाब्धि नोललाडुचुंडे नंत ॥ 1323 ॥

म. अरविंदाक्ष पदांबुजात युगळध्यानानुराग क्रिया
सरसालाप विलोक नानुगत चंचत्सौख्य केळी रति
दरुणुल् नूरु बदारु वेलु महितोत्साहबुनं जोक्कि त-
त्परलै योंडु दलंपकुंडिरिल विभ्रांतात्मलै भूवरा ! ॥ 1324 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1325 ॥

म. हरि नामांकितमैन गीत मोक्कमाटालिंचि मूढात्मुलुन्
विरति बोंदग जालकुंडुरट या विश्वात्मु नोक्षिंचुचुं

कृतक महीधरों में, ललित मणिवालुकानेक पुलिन तलों में, कर्पूर की चट्टानों में, ह्रीबेरों के वितानों मे, विरचित फव्वारों के निबद्ध कलश निर्यत् पयोधारा शीकर-परंपरा-संपादित निरंतर हेमंत समय प्रदेशो मे, कृष्ण षोडश सहस्र वधूयुक्त होकर, सबको सब रूपो में ललित सौदामिनी लता समेत नील नीरदों की विडंबना करते हुए, करेणुका कलित दिग्गजों के बल से विराजमान होते हुए सलिल केली विहार आदि अनेक लीला विनोद करते हुए अतःपुर की सभा में रहते समय, विविध वेणु-वीणादि वाद्यों को, मंजुल गानों को, कवि गायक सूत वंदि मागध जन के संकीर्तनों को, नट-नटी जन [के] नाट्यों को, विदूषक [के] परिहासोक्तियों को [तथा] सरस सल्लाप मृदु मधुर भाषणों से समय को बिताते हुए आनद-रसाब्धि मे निमग्न रहा। तब १३२३ [म.] हे भूवर ! अरविंदाक्ष पदांबुजात युगल के ध्यानानुराग-क्रिया-सरसालाप विलोकनानुगत चंचत् सौख्य केली रति में एक सौ सोलह हज़ार तरुणियाँ महित उत्साह में मग्न होकर तत्परा रहकर, विभ्रांतात्माएँ बनकर इस भूमि पर और कुछ भी सोच न सकती थीं १३२४ [व.] इसके अतिरिक्त १३२५ [म.] हे भूवल्लभ ! कहते है कि हरि-नामांकित होनेवाले गीत को एक बार सुनकर मूढ़ात्मा भी विरति को

वरिरंभिचुचु नंटुचुन् नगुचु संभाषिचुचुन्नंडु सुं-
दरुलानंद निमग्नलौट किल जोद्यंबेमि भूवल्लभा ! ॥ 1326 ॥

व. अनि चॅप्पि मरियु निट्लनियॅ ॥ 1327 ॥

उ. वारक कृष्णु डिप्पगिदि वैदिक युक्ति गृहस्थ धर्म मे-
पारग वूनि धर्ममुनु नर्थमु गाममुनंदु जूपुचुं
गोरिक मीर सज्जनुलकुन् गति दान यनंग नौप्पि सं-
सारि गतिन् मॅलंगॅ नृपसत्तम ! लोक विडंबनार्थमै ॥ 1328 ॥

सी. हरि यिट्लु गृहमेधि यगुचु शतोत्तर षोडश साहस्र सुंदरुलनु
मुनु नीकु नॅरुग जॅप्पिन रीति नंदर कन्निरूपमुलु दा नर्थि दाल्चि
कैकौनि यौक्कॊक्क कामिनीमणि यंदु रमण नमोघ वीर्यमुन जेसि
पदुरेसि कौडुकुल,वडसॅ रुक्मिण्यादि पट्ट महिषुलनु संभवमु गन्न

ते. नंदनुल लोन धरणि नॅन्नंग बाहु-
बल पराक्रम विनय संपद्विशेष
मानितात्मुलु पदुनॅनमंड्रु वारि
नॅरुग विनिर्पितु विनुमु राजेंद्र-चंद्र ! ॥ 1329 ॥

व. अनि मरियु निट्लनु, वारलु प्रद्युम्नानिरुद्ध दीप्तिमद्भानु सांबु बृहद्भानु
मित्रविंद वृकारुण पुष्कर देवबाहु श्रुतदेव सुनंदन चित्रबाहु वरूध कवि

न पा सकते। उस विश्वात्मा को देखते हुए, परिरंभण करते हुए स्पर्श करते हुए, हँसते हुए, संभाषण करते हुए रहनेवाली सुंदरियों के आनंद-निमग्ना बनकर रहने में यहाँ क्या आश्चर्य है ? १३२६ [व.] यों कहकर फिर ऐसे बोला। १३२७ [उ.] हे नृपसत्तम ! सदा कृष्ण इस प्रकार वैदिक युक्ति से गृहस्थ धर्म को अच्छी तरह स्वीकार करके, धर्म [और] अर्थ को काम (रति) में दिखाते हुए, इच्छाओं से बढ़कर, ऐसी चिंता कराते कि सज्जनों की गति वही है, सांसारिक की तरह लोक-विडंबनार्थ रहता था। १३२८ [सी.] हे राजेंद्रचंद्र ! हरि इस प्रकार गृहमेधी होते हुए शतोत्तर षोडश सहस्र सुंदरियों को, जैसे मैंने पहले तुमको समझा दिया, सबको सब रूपों से इच्छापूर्वक धारण करके, ग्रहण कर, एक-एक कामिनीमणि में रमण करने से अमोघ वीर्य को छोड़कर दस-दस पुत्रों को पाया। रुक्मिणी आदि पट्टमहिषियों के गर्भों से संभवित [ते.] नन्दनों में धरणी पर गिनने लायक बाहुबलपराक्रम, विनयसंपत्विशेष मानितात्मा अठारह हैं; उनको समझाकर सुनाऊँगा; सुनो। १३२९ [व.] यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। वे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्ति मद्भानु, सांब, बृहद्भानु, मित्रविंद, वृकारुण, पुष्कर, देवबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन,

न्यग्रोधनामंबुलं ब्रसिद्धुलैरि। वेंडियु द्रिवक्र यंदु संभविचिन युपश्लोकुडनु वाडु दन जनकुंडैन कृष्णु पादारविंद सेवाव्रतुंडगुचु नारद योगींद्रुनकु शिष्युंडै यखंडित दिव्य ज्ञान बोधात्मकुंडगुचु स्त्री शूद्रदास जन संस्कारंबै स्मरण मात्रंबुन मुक्ति संभविचुनट्टि सात्वत तंत्रंबुनु वैष्णव स्मृति गल्पिचें। इट्लु मधुसूदन नंदनुलु बहु प्रजलुनु नधिकायुरुन्नतुलुनु ननल्प वीर्यवंतुलुनु ब्रह्मण्युलुनै विख्याति नोंदिरि। वारिनि लेक्क पेट्ट बदिवेल वत्सरंबुलकैनं दीरदु। मुन्नु नी कॅरिंगिचिनट्लु तत्कुमारुलकु विद्या विशेषंबुल नियमिचु गुरुजनंबुलु मूडु कोट्लु नेनुबदेनिमिदि वेलनूर्गुरनं गलिगियुंडु नवकुमारुल लेक्किंप नेव्वरिकि नशक्यंबु। अदियुनुं गाक योक्क विशेषंबु जेप्पेद विनुमनि यिट्लनियें ॥ 1330 ॥

कं. नरवर! देवासुर सं,-गरमुन मुन्नु निहतुलैन क्रव्याद समु-
त्करमु नरेश्वरुलै द्वा,-परमुन जनियिंचि प्रजल बाधल बरुपन् ॥1331॥

कं. हरि तद्वधार्थमै नि,-र्जरुलनु यदुकुलमुनंदु जनियिंपिपं
धर नूटोक्क कुलंबै, परगिरि वारिनि गणिप ब्रह्मकु वशमे? ॥1332॥

व. अट्टि यन्वयंबुनंदु माधवुनकु रुक्मिणीदेवियंदु बितृ समुंडुनु समग्र भुजा-विजृंभणुंडुनुनै प्रद्युम्नुंडु जनियिंचें। अतनिकि रुक्मि कूतुरु शुभांगिवलन

चित्रबाहु, वरूध, कवि, न्यग्रोध नामों से प्रसिद्ध हुए। फिर त्रिवका में संभवित उपश्लोक नामक (पुत्र) ने अपने जनक कृष्ण के पादारविंद-सेवाव्रत में लगकर, नारद योगींद्र का शिष्य बनकर, अखंडित दिव्य ज्ञान बोधात्मा होते हुए स्त्री शूद्र दास जन संस्कार होकर स्मरण मात्र से मुक्ति के संभवित होनेवाली सात्वत तंत्र नामक वैष्णवस्मृति की कल्पना (सृष्टि) की। इस प्रकार मधुसूदन नंदन [और] बहु प्रजा अधिक आयु [तथा] उन्नत अनल्प वीर्यवान, [और] ब्रह्मण्य बनकर विख्यात हुए। उनको गिनने के लिए दस सहस्र वर्ष भी पर्याप्त नहीं होते। जैसे पहले तुमको समझाया तत्कुमारों को विद्याविषयों का नियमन करनेवाले गुरुजन तीन करोड़ अट्ठासी हज़ार सौ हो सकते हैं। उन कुमारों को गिनना किसी भी के लिए अशक्य होगा। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात कह दूँगा। सुनो। यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। १३३०
[कं.] हे नरवर! देवासुर-संगर में पहले निहत राक्षसों ने समुत्कर नरेश्वर-बनकर प्रजा की बाधाओं को बढ़ाने के लिए द्वापर में जन्म लिया; १३३१
[कं.] हरि ने तद्वधार्थ निर्जरों को यदुकुल में पैदा कराया तो, धरा पर एक सौ एक कुल (जाति) होकर प्रसिद्ध हुए। उनकी गणना करना ब्रह्मा के वश है? १३३२ [व.] वैसे अन्वय (वंश) में माधव के, रुक्मिणी देवी में, पितृसम [और] समग्र भुजा-विजृंभण होनेवाले प्रद्युम्न का जन्म हुआ।

ननिरुद्धुंडुदयिंचें। अतनिकि मौसलावशिष्टुंडैन वज्रुडु संभविंचें। अतनिकि प्रतिबाहुंडु पुट्टें। वानिकि सुबाहुंडु जन्मिचें। अतनिकि नुग्रसेनुडु प्रभविंचें। तनिकि श्रुतसेनुडु गलिगें। इट्लु यदुवृष्णि भोजांधकवंशंबुलु परम पवित्रंबुलै पुंडरीकाक्ष निरीक्षण शय्यासनानुगत सरसालाप स्नानाशन क्रीडा विनोदंबुल ननिशंबु जेंदुचु सर्व देवतार्थंबु समस्तंबैन क्रतुवु लोनरिंचुचु बरमानंदकंदळित चित्तुलै युंडिरनि चेप्पि वेंडियु ॥ 1333 ॥

म. परमोत्साहमु तोड माधवुडु शुंभल्लील बूरिंचु न-
म्मुरळीगानमु वीनुलं जिलिकिनन् मोदिंचि गोपाल सुं-
दरुलेतेंतुररण्य भूमुलकु दद्दास्यंबु गामिंचि य-
क्करुणा वार्धि भजिपकुंडुरे बुधुल् कौरव्यवंशाग्रणी ! ॥ 1334 ॥

म. मति नेव्वानि यमंगळघ्नमगु नामंबर्थि जिंतिंचि स-
न्नुति गाविंचिन विन्न मानवुलु धन्युल् भूरि संसार दु-
ष्कृतुलं ब्रोतुरु काल चक्र महितास्त्रंबट्टि याकृष्णु डी
क्षिति-भारंबुडुगंग जेयुटविये चित्रंबु भूवल्लभा ! ॥ 1335 ॥

व. इव्विधंबुन गोपिकामनोजातुंडैन कृष्णुंडु लीला-मानुष-विग्रहुंडै निज

उसके रुक्मि की बेटी शुभांगी से अनिरुद्ध का उदय हुआ। उसके मौसलावशिष्ट होनेवाला वज्र संभव हुआ (पैदा हुआ)। उसके प्रतिबाहु पैदा हुआ। उसके सुबाहु का जन्म हुआ। उसके उग्रसेन का प्रभव हुआ। उसके श्रुतसेन हुआ। इस प्रकार यदुवृष्णि भोजांधक वंश परमपवित्र होकर पुंडरीकाक्ष का निरीक्षण (देखना), शय्या, आसन, अनुगत सरसालाप, स्नान, अशन, क्रीड़ा विनोदों से अनिश (सदा) प्राप्त करते हुए, सर्व देवतार्थ, समस्त क्रतु करते हुए परमानंद-कंदलित चित्त बनकर रहे। इस प्रकार कहकर फिर १३३३ [म.] हे कौरव्य-वंशाग्रणी ! परमोत्साह से माधव के शुंभत् (महत्) लीला से फूँकनेवाले उस मुरली-गान को कानों में भर देने पर मोद पाकर गोपाल सुंदरियाँ अरण्य भूमि को आती थी। तद्दास्य की कामना करके बुध उस करुणावार्धि का भजन (सेवा) किये विना रहते? (वही) १३३४ [म.] मति (मन) में जिसके अमंगलघ्न होनेवाले नाम की इच्छा करके, चिन्ता करके, सन्नुति (प्रार्थना) करने पर सुननेवाले मानव धन्य [होते हैं], भूरि ससार दुष्कृतियों को दूर करते हैं, उस कालचक्र महितास्त्र [ग्रहण करनेवाले] कृष्ण का इस क्षिति के भार को दूर करना, यही है चित्र। १३३५ [व.] इस प्रकार गोपिका-मनोजात कृष्ण लीला-मानुष-विग्रह बनकर निज राजधानी द्वारकापुर

राजधानियैन द्वारकापुरंबुन नमानुष विभवंबुलगु सौख्यंबुलं बोंदलु चुंडेमनि चॅप्पि मरियु निट्लनियॅ ॥ 1336 ॥

म. 'मनुजेंद्रोत्तम! येनु नीकु द्रिजगन्मांगल्यमै योप्प जॅ-
प्पिन यी कृष्ण कथा सुधारसमु संप्रीतात्मुलै भक्ति ग्रो-
लिन पुण्यात्मुलु गांतुरिबु सुखमुल् निर्धूतसर्वाघुलै
यनयंबं दुदि गांतुरच्युत पदंबैनट्टि कैवल्यमुन् ॥ 1337 ॥

कं. अनि यिट्लु बादरायणि
मनमुन रागिल्ल नभिमन्युवुनकु जॅ-
प्पिन विधमुन सूतुडु मुनि-
जनुल कॅरिगिप वारु सम्मति तोडन् ॥ 1338 ॥

कं. सूतुनि बहुविधमुल सं-
प्रीतुनि गाविंचि महिम बॅंपारुचु वि-
ख्यातिकि नॅक्किन कृष्ण क-
थातत्परुलैरि बुद्धि दरुगनि भक्तिन् ॥ 1339 ॥

च. सरसिजपत्रनेत्र! रघुसत्तम! दुष्टमदासुरेंद्र सं-
हरण! दयापयोधि! जनकात्मभवानन पद्ममित्र! भा-
स्कर कुलवार्धिचंद्र! मिहिकावसुधाधर सूति सन्नुत
स्फुरितचरित्र! भक्तजन पोषण भूषण! पापशोषणा! ॥ 1340 ॥

में अमानुष विभव होनेवाले सौख्यों को पाता था। इस प्रकार कहकर फिर इस तरह बोला। १३३६ [म.] हे मनुजेंद्रोमत्त! मैंने तुम्हें जिस त्रिजगन्मांगल्य होकर प्रकाशमान होनेवाले कृष्ण-कथा-सुधारस को सौंप दिया, उसे संप्रीतात्मा बनकर भक्ति से आस्वादन करनेवाले पुण्यात्मा इस [लोक] में सुखों को प्राप्त करेंगे। निर्धूत-सर्वाघ बनकर अनय (सदा) अच्युत पद होनेवाले कैवल्य के अन्त को देखेंगे। १३३७ [कं.] इस प्रकार बादरायणि मन में राग के उत्पन्न होने पर परीक्षित को जिस प्रकार सुनाया, उसी प्रकार सूत के मुनिजनों को समझाने पर वे सम्मति से १३३८ [कं.] सूत को बहु विधियों से संप्रीत बनाकर, महिमा के बढ़ जाने पर विख्यात, बुद्धि मे कभी न घटने वाली भक्ति से, कृष्णकथातत्पर बन गये। १३३९ [च.] सरसिजपत्र-नेत्र! रघुसत्तम! दुष्टमदासुरेंद्र-संहरण (करनेवाले)! दयापयोधि! सीता-मुख के पद्ममित्र! भास्कर रविकुलवार्धिचंद्र! मिहिका वसुधाधरसूतिसन्नुत! स्फुरित-चरित्र! भक्तजनपोषण! भूषणपापशोषण! १३४०

कं. मारीच भूरि माया-
नीरंध्र महांधकार नीरेज हिता !
क्ष्मारमण विनुत पादां-
भोरुह महितावतार ! पुण्यविचारा ! ॥ 1341 ॥

मा. शरधिमद विरामा ! सर्वलोकाभिरामा !
सुररिपु विषभीमा ! सुंदरीलोक कामा !
धरणिवर ललामा ! तापसस्तोत्र सीमा !
सुरुचिर गुणधामा ! सूर्यवंशाब्धि सोमा ! ॥ 1342 ॥

गद्य. इदि श्री परमेश्वर करुणाकलित कविता विचित्र केसन मंत्रि पुत्र सहज पांडित्य पोतनामात्य प्रणीतंबन श्रीमन्महाभागवतंबनु महापुराणंबुनंदु प्रद्युम्न जन्मंबुनु शंबरोद्योगंबुनु सत्राजित्तुनकु सूर्युंडु शमंतकमणि निच्चुटयु दन्निमित्तबुनं प्रसेनुनि सिंहंबु वधियिंचुटयु दानि जांबवतुंडु दुनिमि माणिक्यंबु गोनि पोवुटयु गोविंदुंडु प्रसेनुनि दुनिमि मणि गोनि पोयेननि सत्राजित्तु कृष्णुनंदु निंद नारोपिंचुटयु गृष्णुंडु तन्निमित्तंबुन जांबवंतुनि दोडरि मणियुक्तंबुगा जांबवति गोनि वच्चि विवाहंबगुटयु सत्राजित्तुनकु मणि निच्चुटयु सत्यभामा परिणयंबुनु पांडवुलु लाक्षा गृहंबुन दग्धुलैरनि विनि वासुदेवुंडु बलभद्र सहितुंडयि हस्तिनापुरंबुन करुगुटयु नक्रूर कृतवर्मल यनुमतंबुन शतधन्वुंडु सत्राजित्तुं जंपि मणि गोनिपोवुटयु

[कं.] मारीच भूरि माया नीरंध्र महांधकार के नीरेजहित (सूर्य)! क्ष्मारमण-विनुत पादांभोरुह ! महितावतार ! पुण्य विचार [वाले] ! १३४१. [मा.] शरधिमद विराम ! सर्वलोकाभिराम ! सुररिपुविप भीम ! सुंदरी लोककाम! धरणिवर ललाम ! तापसस्तोत्र सीमा ! सुरुचिर गुणधाम ! सूर्यवंशाब्धिसोम ! १३४२ [गद्य] यह श्री परमेश्वरकरुणाकलित कविता विचित्र केसन मंत्रि-पुत्र सहज पांडित्य वाले पोतनामात्य [से] प्रणीत श्रीमन्महा भागवत नामक महापुराण में प्रद्युम्न-जन्म, शंबरोद्योग, सत्राजित को सूर्य का स्यमंतक मणि देना, इसके निमित्त प्रसेन का सिंह द्वारा वध होना, उसको मार डालकर जांबवान का माणिक्य को लेकर जाना, 'गोविंद प्रसेन की हत्या करके मणि को ले गया' इस प्रकार सत्राजित का कृष्ण पर निंदा का आरोपण करना, कृष्ण का इसके निमित्त जांबवान को मार डालकर मणियुक्त जांबवती को लाकर [उससे] विवाह कर लेना, सत्राजित को मणि देना, सत्यभामा-परिणय, पांडव लाक्षागृह में दग्ध हुए —यह सुनकर वासुदेव का बलभद्रसहित होकर हस्तिनापुर जाना, अक्रूर [और] कृतवर्मा की अनुमति से शतधन्वा का सत्राजित को मार डालकर मणि ले जाना,

ददर्थंबासत्यभाम करिनगरंबुन केगि कृष्णुनकु विन्नविंचिन नतंडु मरलि चनुदेंचि शतधन्वुं द्रुंचुटयु बलभद्रुंडु मिथिलानगरंबुनकु जनुटयु नंदु दुर्योधनुंडु रामुनि वलन गदा विद्यनभ्यसिंचुटयु गृष्णुंडु सत्राजित्तुनकुं बरलोक क्रियलु नडुपुटयु शमंतक मणि दाचिन वाडयि यक्रूरुंडु भयंबुन द्वारकानगरंबु विडिचि पोयिन नतनि लेमि ननावृष्टियैनं गृष्णुं डक्रूरुनि मरल रप्पिंचुटयु दाम।दरुंडिंद्रप्रस्थपुरंबुन करुगुटयु नंदर्जुन समेतुंडयि मृगया विनोदार्थंबरण्यंबुनकुं जनि काळिंदि गोनि वच्चुटयु खांडव दहनंबुनु नग्निपुरुषुंडर्जुनुनकु नक्षय तूणीर गांडीव कवच रथ रथ्यंबुल निच्चुटयु मयुंडु धर्मराजुनकु सभगाविंचि यिच्चुटयु नगधरुंडु मरलि निज नगरंबुन करुदेंचि काळिंदिनि विवाहंबगुटयु मित्रविंदा नाग्नजिति भद्रा मद्रराजकन्यलं ग्रमंबुन गरग्रहणं बगुटयु नरकासुर युद्धंबुनु दद्गृहंबुन-नुन्न राजकन्यकलं बदाऱु वेलं देच्चुटयु स्वर्ग गमनंबु नदितिकि गुंडलंबु लिच्चुटयु बारिजातापहरणंबुनु बदाऱुवेल राज कन्यकलं बरिणयंबगुटयु रुक्मिणीदेवि विप्रलंभंबुनु रुक्मिणि स्तोत्रंबुनु गृष्ण कुमारोत्पत्तियु दद्गुरु-जनसंख्ययु ब्रद्युम्नु विवाहंबु ननिरुद्ध जन्मंबुनु दद्विवाहार्थंबु कुंडिन नगरं-बुनकुं जनुटयु रुक्मि बलभद्रुल जूदंबुनु रुक्मि वधयु नुषा कन्य यनिरुद्धुनि

तदर्थ उस सत्यभामा के करिनगर में जाकर कृष्ण से विनती करने पर कृष्ण का लौट आकर शतधन्वा को मार डालना, बलभद्र का मिथिला नगर में जाना, उसमें दुर्योधन का राम से गदा-विद्या का अभ्यास करना, कृष्ण का सत्राजित की परलोक-क्रियाएँ संपन्न करना, स्यमंतक मणि को छिपाकर अक्रूर भय से द्वारका नगर को छोड़कर चला गया तो उसके न रहने से अनावृष्टि हुई तो कृष्ण का अक्रूर को फिर बुलवाना, दामोदर का इंद्रप्रस्थपुर में जाना, उसमें अर्जुन-समेत होकर मृगया-विनोदार्थ अरण्य में जाकर कालिन्दी को लेकर आना, खांडवदहन, अग्निपुरुष का अर्जुन को अक्षय तूणीर, गांडीव, कवच, रथ [और] रथ्य देना, मय का धर्मराज को सभा बनवाकर देना, नगधर का फिर निजनगर में आकर कालिंदी से विवाह कर लेना, मित्रविंदा, नाग्नजिति, भद्रा, मद्रराज-कन्याओं से क्रम से कर ग्रहण कर लेना, नरकासुर-युद्ध, तत्गृह में रहने वाली सोलह सहस्र राजकन्याओं को लाना, स्वर्ग-गमन, अदिति को कुंडल देना, पारिजातापहरण, सोलह सहस्र राजकन्याओं से परिणय कर लेना, रुक्मिणीदेवी का विप्रलंभ, रुक्मिणी का स्तोत्र, कृष्ण की कुमारोत्पत्ति, तद्गुरुजनसंख्या, प्रद्युम्न का विवाह, अनिरुद्ध का जन्म, तद्विवाहार्थ कुंडिन नगर में जाना, रुक्मि [और] बलभद्र का जुआ, रुक्मि का वध, उषा कन्या का अनिरुद्ध को स्वप्न में देखकर मोहित होना, तन्निमित्त चित्ररेखा

स्वप्नंबुनं गनि मोहिंचुटयु दन्निमित्तंबुन जित्ररेख सकल देश राजुल बाटंबुन लिखिंचि चूपि यनिरुद्धनि वॆच्चुटयु बाणासुर युद्धंबुनु नृगोपाख्यानं बुनु बलभद्रुनि घोषयात्रयु गाळिंदी भेदनंबुनु गृष्णुंडु पौंड्रक वासुदेव काशीराजुल वधियिंचुटयु गाशिराज पुत्रुंडयिन सुदक्षिणुं डभिचारहोमंबु गाविंचि कृत्यं बडसि कृष्णु पालिकि बुत्तॆंचिन सुदर्शनंबु चेत गृत्यनु सुदक्षिण सहितंबुगा गाशीपुरंबुनु भस्मंबु सेयुटयु बलरामुंडु रैवत नगंबुनंबु द्विविदुंडनु वनचरुनि वधियिंचुटयु सांबुंडु दुर्योधनु कूतुरगु लक्षण नॆत्तिकॊनि वच्चिन गौरवुलतनि गॊनिपोयि चॆरबॆट्टुटयु तद्वृत्तांतंबंतयु नारदु वलन विनि बलुंडु नाग नगरंबुनकु जनुटयु गौरवु लाडिन यगौरव वचनंबुलकु बलरामुंडु कोपिंचि हस्तिनापुरंबुनु गंग बडद्रोय गमकिंचुटयु गौरवुलु भयंबुन नंगनायुक्तंबुगा सांबुनि दॆच्चि यिच्चुटयु बलभद्रुंडु द्वारकानगरंबुनकु वच्चुटयु नारदुंडु हरि पदारु वेल कन्यकल नॊक मुहूर्तंबुननंदरु कन्निरूपुलै विवाहंबय्यॆननि विनि तत्प्रभावंबु तॆलिय गोरि यरुगुवॆंचुटयु दन्माहात्म्यंबु सूचि मरल चनुटयु जरासंधुनि चेत बद्धुलैन राजुलु कृष्णु पालिकि दूतं बुत्तॆंचुटयु नारदागमनंबुनु धर्मराजु राजसूया-रंभमुनु दिग्विजयंबुनु जरासंधवधयुनु राजबंध मोक्षंबुनु राजसूयंबु नंर

का सकल देश राजाओं को चित्र में लिखकर और दिखाकर अनिरुद्ध को लाना, वाणासुर-युद्ध, नृगोपाख्यान, वलभद्र की घोष-यात्रा, कालिंदी का भेदन, कृष्ण का पौंड्रक वासुदेव और काशी राजा का वध करना, काशी राजा का पुत्र सुदक्षिण के अभिचार-होम करके कृत्या को पाकर कृष्ण के पास भेज दिया तो सुदर्शन से कृत्या को सुदक्षिणा-सहित काशीपुर को भस्म करना, बलराम का रैवतनग पर द्विविद नामक वनचर का वध करना, सांब के दुर्योधन की बेटी लक्षणा को उठा लाने पर कौरवों का उसको ले जाकर कारागार में रखना, तद्वृत्तांत सब नारद से सुनकर बल का नागनगर में जाना, कौरवों के कहे हुए अगौरव वचनों को बलराम का कुपित होकर हस्तिनापुर को गंगा में ढकेल देने का प्रयत्न करना, कौरवों का भय से अंगनायुक्त सांब को लाकर देना, बलभद्र का द्वारका नगर में आना, नारद का यह सुनकर कि हरि ने सोलह सहस्र कन्याओं को एक ही मुहूर्त (समय) में सबसे सब (भिन्न) रूपों से विवाह कर लिया, तत्प्रभाव को जानना चाहकर आना, तन्माहात्म्य को देखकर लौट जाना, जरासंध से बद्ध राजाओं का कृष्ण के पास दूत को भेज देना, नारद का आगमन, धर्मराजा का राजसूयारंभ, दिग्विजय, जरासंध-वध, राजबंध-मोक्ष, राजसूय को संपन्न करना, शिशुपाल-वध, अवबृथ, राजसूय-वैभव-दर्शन [से]

वैकुंटयुनु शिशुपाल वधयु नवमृथंबुनु राजसूय वैभव दर्शनासहमान मानसुंडयि सुयोधनुंडु मय निर्मित सभामध्यंबुन गट्टिन पुट्टंबुलु दडियं ब्रेळ्ळुटयु दन्निमित्त परिभवंबु नोंदि राराजु निजपुरि करुगुटयु कृष्णुंडु धर्मराज प्रार्थितुंडयि यादवुल निलिपि कोन्नि नेललु खांडव प्रस्थंबुन वसियिंचुटयु साल्वुंडु तपंबु चेसि हरुनि मेप्पिंचि सौभकाख्यंबगु विमानंबु बडसि निजसैन्य समेतुंडै द्वारकानगरंबु निरोधिचुटयु यादव साल्व युद्धंबुनु कृष्णुंडु मरलि चनुदेंचि साल्वु वरिमार्चुटयुनु दंतवक्त्र वधयुनु विदूरथ मरणंबुनु कृष्णुंडु यादव बल समेतुंडै क्रम्मर निजपुरंबुनकु जनुटयु गौरव पांडवुलकु युद्धंबगुननि बलदेवुंडु तीर्थयात्र चनुटयुनंडु जाह्नवी प्रमुख नदुलं गृतस्नानुंडयि नैमिशारण्यंबुनकुं जनुटयु नच्चटि मुनुलु पूजिपं बूजितुंडयि तत्समीपंबुन नुन्नतासनंबुन नुंडि सूतुंडु दन्नुंगनि लेवकुन्न नलिगि रामुंडु कुशाग्रंबुन नतनि वधिंचुटयु ब्रह्महत्या दोषंबु गलिगेननि मुनुलु पलिकिन सूतुं बुनर्जीवितुं जेयुटयु नम्मुनुलकुं ब्रियंबुगा गामपालुं डिल्वलसुतुंडगु पल्वलुं बरिमार्चुटयु वारि चेत ननुमतुंडै हलधरुंडु तत्समीप तीर्थंबुल स्नातुंडयि गंगा सागर संगमंबुनकुं जनुटयु महेंद्रनग प्रवेशंबुनु

असहमान मानस [वाला] बनकर सुयोधन-मय-निर्मित सभामध्य पहने हुए वस्त्रों के भीग जाने पर गिर पड़ना, तन्निमित्त परिभव पाकर राजाधिराजा का निज पुरि को जाना, कृष्ण का धर्मराज [से] प्राथित होकर यादवों को ठहराकर कतिपय मास खांडवप्रस्थ में निवास करना, साल्व का तप करके हर को सन्तुष्ट करके सौभकाख्य विमान को पाकर निज सेना-समेत होकर द्वारका नगर का निरोध करना, यादव-साल्व-युद्ध, कृष्ण का लौट आकर साल्व को मार डालना, दंतवक्त्र का वध, विदूरथ का मरण, कृष्ण का यादव-बल समेत हो फिर निज पुर में जाना, यह जानकर कि कौरव और पांडवों का युद्ध होगा, बलदेव का तीर्थयात्रा के लिए जाना, उसमें जाह्नवी प्रमुख नदियों में कृतस्नान होकर, नैमिषारण्य को जाना, वहाँ के मुनियों के पूजा करके पर, पूजित होकर, तत्समीप में उन्नतासन से सूत के उसको देखकर न उठने पर क्रोधित होकर राम का कुशाग्र से उसका वध करना, मुनियों के बोलने पर कि ब्रह्महत्या [का] दोष लग गया है, सूत को पुनर्जीवित बनाना, उन मुनियों को प्रिय करने के लिए कामपाल का इल्वल के सुत पल्वल को मार डालना, उनसे अनुमति पाकर हलधर का तत्समीप के तीर्थों में स्नात बनकर गंगासागर संगम में जाना, महेंद्र-नग-प्रवेश, परशुराम के दर्शन, सप्त गोदावरी में स्नान करना और मध्य देश में रहनेवाले तीर्थों में स्नान करके श्रीशैल [तथा] वेंकटाचल

बरशुराम दर्शनंबुनु सप्त गोदावरि ग्रुंकुट्यु मरियु मध्य देशंबुनं गल तीर्थंबुलाडि श्रीशैल वेंकटाचलंबुलु दर्शिचुट्यु समुद्र कन्या दुर्गा देवुल नुपासिचुट्यु नंदु ब्राह्मण जनंबु वलनं बांडव धार्तराष्ट्र भंडनंबुन सकल राजलोकंबुनु मृति नौंदिरनि विनुट्यु वायुनंदन सुयोधनुलु गदायुद्ध सन्नद्धुलगुट विनि वारिनि वारिंचुटकै रौहिणेयुंडंदुल करुगुट्यु नचट वारिचे बूजितुंडयि वारिनि वारिप लेक मगिडि द्वारक करुगुट्यु गौन्नि वासरंबुलकु मरल नैमिशारण्यंबुनकु बोयि यचट यज्ञंबु चेसि रेवतियुं दानुनु नववृथंबाडि निज पुरंबु केतेंचुट्यु गुचेलोपाख्यानंबुनु सूर्योपरागंबुनं गृष्णुंडु रामुनितो जेरि पुर रक्षणंनकु प्रद्युम्नादि कुमारुल निलिपि षोडश सहस्रांगना परिवृतुंडयि यक्रूर वसुदेवोग्र सेनादि यादव वीरुलु तोडरा शमंत पंचक तीर्थंबुन करिगि कृत स्नानुडयि वसियिंचि युंडुट्यु बांडव कौरवादि सकल राजलोकंबुन दत्तीर्थंबुनकु वच्चुट्यु गुंतीदेवि दुःखंबुनु नंद यशोदा सहितुलैन गोप गोपिका जनंबुलु चनुदेंचुट्यु गुशल प्रश्नादि संभाषणंबुलुनु मद्रकन्या द्रौपदी संभाषणंबुनु सकल राजलोकंबुनु शमंत पंचक तीर्थंबुन स्नातुलै रामकृष्णादि यादव वीरुल नामंत्रणंबु चेसि निज नगरंबुनकुं बोवुट्यु गृष्णुनि दर्शिचुटकु मुनींद्रुलेतेंचुट्यु वारि यनुमतिनि वसुदेवुंडु

के दर्शन करना, समुद्र-कन्या [और] दुर्गादेवी की उपासना करना, वहाँ के ब्राह्मण जनों से यह सुनना कि पांडव-धार्तराष्ट्र-भंडन (युद्ध) में सकल राजलोक की मृत्यु हो गई है, यह सुनकर कि वायुनंदन और सुयोधन गदा युद्ध-सन्नद्ध हुए है, उनको रोकने के लिए रौहिणेय का वहाँ जाना, वहाँ उनसे पूजित होकर उनको रोक न सककर फिर द्वारका को जाना, कुछ वासरों (दिनों) के बाद फिर नैमिशारण्य में जाकर वहाँ यज्ञ करके रेवती [और] वह स्वयं अववृथ (स्नान) करके निजपुर को आना, कुचेलोपाख्यान, सूर्योपराग के समय कृष्ण का राम से मिलकर पुर-रक्षण के लिए प्रद्युम्नादि कुमारों को खड़ा करके षोडश सहस्रांगना परिवृत होकर अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि यादव वीरों के साथ आने पर शमंत पंचक तीर्थ में जाकर कृतस्नान होकर रहना, पांडव-कौरव आदि सकल राजलोक का तत्तीर्थ को आना, कुंतीदेवी का दुःख, नंद-यशोदा-सहित गोप-गोपिकाजनों का आना, कुशल-प्रश्न आदि संभाषण, मयकन्या-द्रौपदी संभाषण, सकल राजलोक का शमंत पंचक तीर्थ में स्नात होकर राम-कृष्ण आदि यादव वीरों को आमंत्रित करके निज नगर में जाना, कृष्ण के दर्शन करने मुनींद्रों का आना, उनकी अनुमति से वसुदेव का याग करना, नंद-यशोदा आदि गोपिका-निवहो को निज पुर को भेज कर उग्रसेन आदि

यागंबु नेऱवेर्चुटयु नंद यशोदादि गोपिका निवहंबुल निजपुरंबुनकनिचि युग्रसेनादि यादव वीरुलुं दानुनु माधवुंडु पुरप्रवेशंबु सेयुटयु तोल्लि कंसुनिचेत हतुलै बलिपुरंबुननुन्न देवकी सुतुल रामकृष्णुलु योगमाया बलंबुन देच्चि यामे किच्चुटयु नर्जुनुंडु सुभद्रनु विवाहंबगुटयु गृष्णुंडु मिथिलानगरंबुनकरुगुटयु श्रुतदेवजनकुल चरित्रंबुनु वारलतो ब्राह्मण-प्रशंस सेयुटयु गृष्णुंडु मर्रलि तनपुरंबुनकरुगुदेंचुटयु श्रुति गीतलुनु हरि-हर ब्रह्मल तारतम्य चरित्रंबुनु गुशस्थलिनुंडु ब्राह्मणुनि चरित्रंबुनु ततनि तनयुलु परलोकंबुनकुं बोयिन गृष्णार्जुनुलु तम योग बलंबुन वारिदेच्चि यविप्रुनकिच्चुटयु गृष्णुंडर्जुनुनि वीड्कोनि द्वारककरुगुटयु नंदु माधवुं डच्चै प्रदेशंबुल सकल भार्या परिवृतुंडयि विहरिंचुटयु यादव वृष्णि भोजांधक वंश चरित्रंबुनु ननु कथलु गल दशमस्कंधमु नंदु नुत्तर भागमु संपूर्णमु ॥ 1343 ॥

यादव वीर, स्वयं माधव का पुर-प्रवेश करना, पूर्वकाल में कंस से हत होकर बलि [के] पुर में होनेवाले देवकीदेवी के सुतों को राम और कृष्ण का योगमाया-बल से लाकर उसको देना, अर्जुन का सुभद्रा से विवाह कर लेना, श्रीकृष्ण का मिथिला नगर जाना, श्रुत [और] देव-जनक का चरित्र (वृत्तांत), उनसे ब्राह्मण-प्रशंसा करना, कृष्ण का फिर अपने पुर को जाना, श्रुतिगीताएँ, हरि, हर [और] ब्रह्मा का तारतम्य-चरित्र (कथा), कुशस्थली में रहनेवाले ब्राह्मण का चरित्र (वृत्तांत), उसके तनयों (पुत्रों) के परलोक को जाने पर कृष्ण और अर्जुन का अपने योगबल से उनको लाकर उस विप्र को देना, कृष्ण का अर्जुन से बिदा लेकर द्वारका को जाना, उसमें माधव का इधर-उधर के प्रदेशों में सकल भार्या-परिवृत होकर विहार करना [और] यादव, वृष्णि, भोजांधक-वंश-चरित्र (कथा) —इन कथाओं से युक्त दशम स्कंध का उत्तर भाग सम्पूर्ण हुआ । १३४३

ॐ

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(एकादश स्कन्धमु)

कं. श्री सीतापति! लंके, -शासुर संहार चतुर ! शाश्वतनुत! वा-
णी पत्यधिभूभव ! वृ, -त्रासुरिपु देवजाल ! रामनृपाला ! ॥ 1 ॥

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनिश्रेष्ठुलकु निखिलपुराण व्याख्यानवैखरी समेतुंडैन सूतुंडिट्लनियें। अट्लु प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुंडय्या जन्म कर्म व्याधि विमोचनंबुनकुं गारणंबगु दिव्यौषधंबु गावुन, श्रीमन्नारायण कथामृतंबु ग्रोलुमनि यिट्लनियें ॥ 2 ॥

(एकादश स्कन्ध)

[कं.] हे श्री सीतापति ! लंकेश्वर (रावण) और असुरों के संहार में चतुर ! शाश्वतनुत (सदा स्तुत्य) ! वाणी (सरस्वती) के पति (ब्रह्मा) के जन्मदाता ! वृत्रासुर के शत्रु— इन्द्र आदि देवताओं के रक्षक ! हे, राम नृपाल (राजा राम) ! [तुम्हें नमस्कार] । १ [व.] महनीय गुणों से महिमान्वित उन मुनि-पुंगवों से निखिल (समस्त) पुराणों के व्याख्यान में चतुरवक्ता सूत ने यों कहा : उस प्रकार प्रायोपवेश करनेवाले परीक्षित नरेन्द्र से शुकयोगींद्र ने समझाकर कहा : श्रीमन्नारायण का कथामृत वह दिव्य औषध है जो प्रत्येक जन्म के कर्म रूपी व्याधि (रोग) के विमोचन (निवारण) का कारण बनती है, अतः तुम उस (अमृत) का पान करो । फिर [उस योगी ने] यों कहा : २

अध्यायमु—१

ऋषिशापंबुन मुसलंबुद्भविंचुट

म. बलवत्सैन्यमुतोड गृष्णुंडु महा बाहाबलोपेतुडै
कलनन् राक्षस वीरवर्युल वडिन् खंडिंचि भूभार मु-
ज्ज्वलमै यूंडग नक्षकेळि कतनन् गौरव्यु तोडतोन त-
द्बलमुल् पांडवसैन्यमुन्नडचें भूभागंबु कंपिपगन् ॥ 3 ॥

व. अंत ॥ 4 ॥

कं. मुनिबरुलु संतसिल्लिरि, यनयमु नंदादुलकुनु हर्षंबय्येन्
दन निज भक्तुलु यादव, घनवीर समूहमपुडु गडु नौप्पंसगन् ॥ 5 ॥

म. विदितुंडै सकलामरुल् गौलुव नुर्वीभारमुन् मान्पि दु-
र्मदसयुक्त वसुंधराधिपतुलन् मर्दिंचि कंसादुलन्
बुदिमुट्टन् वधियिंचि कृष्णु डतिसंतुष्टात्मुडै युन्नचो
यदुसैन्यंबुलु भूमि मोवग नसह्यंबय्यें नत्युग्रमै ॥ 6 ॥

सी. ईरीति गृष्णुंडु नेपार बूतना शकट तृणावर्त सात्व वत्स
चाणूर मुष्टिक धेनु प्रलंबक दैत्याघ शिशुपाल दंतवक्त्र
कंस पौंड्रादिक खंडनंबोनरिंचि यटमोद गुरुबलंबणचि मद्रियु
धर्मजु नभिषिक्तु दनरगा जेसिन नतडु भूपालनंबमर जेसें

अध्याय—१

ऋषियों के शाप के कारण मूसल का उत्पन्न होना

[म.] कृष्ण ने महान बाहुबल के साथ, शक्तिशाली सेना लेकर राक्षस वीरवर्यों को खंडित किया, फिर भी भूभार के दुर्भर होने के कारण, जुए के खेल के द्वारा कौरवों को, साथ-साथ उनकी सेना को और पांडवों की सेना को भी विनष्ट कर दिया जिसे देख भूभाग काँप उठा। ३ [व.] तब··· ४ [कं.] मुनिवर संतुष्ट हुए; नंद आदि को अत्यंत हर्ष हुआ तथा उसके भक्त यादव-वीरसमूह का बड़ा उत्कर्ष रहा। ५ [म.] प्रसिद्ध होकर, समस्त अमरों (देवताओं) से पूजित होते हुए, भूमि का भार उतार कर, दुर्मद (मदमस्त) वसुंधराधिपतियों (राजाओं) का मर्दन और कंस आदि का समूल वध करके कृष्ण जब अति संतुष्टात्मा हुआ था तब यादवों की सेनाएँ अति उग्र हुईं, उनका भार सहना भूमि को दूभर हो गया। ६ [सी.] इस प्रकार प्रबल होकर, कृष्ण ने पूतना, शकट,

ते. भक्तुलगु यादवेंद्रुल वरग जूचि
यन्यपरिभव मेरुगरी यदुबुलनुचु
वीरि बरिमार्प ने दक्क वेरोकंडु
दैवमिक लेडु त्रिभुवनांतरमुनंदु ॥ 7 ॥

व. अनि वितर्किचि, जगदीश्वरुंडत्युन्नत वेणुकाननंबु वायुवशंबुन नोरसि कोन, ननलं बुद्भवंबै वह्निचुचंदंबुन, यदुबलंबुल कन्योन्य वरानुबंधंबु गल्पिचि, हतंबोनर्चेद ननि, विप्रशापंबु मूलकारणंबुगा दलंचि, यदुबलंबुल नडंचे। अनि पलिकिन, मुनिवरुनकु राजेंद्रुंडिट्लनिये ॥ 8 ॥

कं. हरि पादकमल सेवा, -परुलगु यादवुल केट्लु ब्राह्मण शाप-
स्फुरणंबु संभविंचेनो, यरयग संयमिवरेण्य! यानतियीवे ॥ 9 ॥

कं. अनिन जनपालुनकु नि, -ट्लनि संयमिकुलवरेण्युडतिमोदमुतो
विनुमनि चेप्पग दोणगेनु, घनतर गंभीर वाक्प्रकाश स्फुरणन् ॥ 10 ॥

तृणावर्त, साल्व, वत्स, चाणूर, मुष्टिक, धेनु, प्रलंबक, अघ दैत्य, शिशुपाल, दंतवक्त्र, कंस, पौंड्रक आदि का खंडन (नाश) करने के पश्चात् कुरुबल (कौरव-सेना) को दबाया और धर्मराज को [राज्य में] अभिषिक्त किया तो वह भलीभाँति भूपालन करता रहा। [ते.] उन यादव राजाओं को, जो अपने भक्त हैं, अच्छी तरह देखकर कृष्ण ने कहा। "ये यादव लोग अब तक किसी अन्य से पराभूत नहीं हुए, इन्हें खंडित (इनका नाश) करनेवाला दैव तीनों लोकों में मुझे छोड़ अन्य कोई नहीं है।" ७ [व.] यों वितर्क करके, जगदीश्वर (कृष्ण) ने सोचा कि बहुत बड़ा बाँसों का वन, वायु के वश होनेवाले घर्षण से उत्पन्न अग्नि के कारण जल जाता है, [उसी प्रकार] यादवों के बीच में परस्पर वैर उत्पन्न करने से मैं उन सबका नाश करूँगा। विप्रशाप को इसका कारण बनाकर यादवों के समूह को विनष्ट कर दूँगा। ऐसा बताने पर मुनिवर से राजेंद्र ने यों कहा। ८ [कं.] "हे संयमि-वरेण्य (मुनिश्रेष्ठ)! हरि-पाद-कमल की सेवा में तत्पर यादवों को ब्राह्मण-शाप किस प्रकार संभव हुआ? समझाकर मुझे आदेश (बता) दीजिए।" ९ [कं.] यों पूछनेवाले जनपाल (राजा) से संयमी, कुलवरेण्य [शुक] हर्ष के साथ घनतर, गंभीर-वाक्चातुर्य दिखाते हुए यों कहने लगे— [हे राजन्!] सुनो: १०

विश्वामित्र वसिष्ठ नारदादुलु श्रीकृष्णु दर्शनमुनकु वच्चुट

व. निरुपम सुंदरंबैन शरीरंबु धरियिंचि, समस्त कर्मतत्परुंडै, परमेश्वरुंडु, यदुवुल नडंगिपं दलंचु समयमुन, जटा वल्कल कमंडलु धारुलुनु, रुद्राक्ष भूति भूषणमुद्रा मुद्रितुलुनु, कृष्णाजिनांबरुलुनु, नगु विश्वामित्रासित कण्व दुर्वासो भृग्वांगिरः काश्यप वामदेव वालखिल्यात्रि वसिष्ठ नारदादि मुनिवरुलु स्वेच्छा विहारंबुन द्वारकानगरंबुनकरुगुदेंचि यंदु ॥ 11 ॥

सी. घनुनि श्रीकृष्णुनि गौस्तुभाभरणुनि गर्णकुंडल युग्म घनकपोलु
बुंडरीकाक्षु नंभोधरश्यामुनि गलित नानारत्न घन किरीटु
नाजानुबाहु निरर्गळायुधहस्तु श्रीवक्षु बीतकौशेयवासु
रुक्मिणी नयनसरोज दिवाकरु, ब्रह्मादि सुरसेव्य पादपद्मु

ते. दुष्टनिग्रह शिष्ट संतोषकरुणु
गोटिमन्मथ लावण्य कोमलांगु
नार्तजन रक्षणैक विख्यातचरितु
गनिरि करुणासमुद्रुनि घनुलु मुनुलु ॥ 12 ॥

क. वच्चिन मुनिसंघमुलकु
विच्चलविडि नर्घ्य पाद्य विधुलोनरिपन्

विश्वामित्र, वशिष्ठ, नारद आदि का श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए आना

[व.] निरुपम (असमान) सुंदर शरीर धारण कर, समस्त कर्मतत्पर होकर, परमेश्वर जिस समय यादवों का नाश करने का विचार कर रहा था, उस समय, जटा, वल्कल, कमंडल धरकर, रुद्राक्ष, विभूति, भूषण, मुद्रा आदि से मुद्रित, कृष्णाजिन पहने विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, आंगिरस, काश्यप, वामदेव, वालखिल्य, अत्रि, वशिष्ठ, नारद आदि मुनिवर स्वेच्छा-विहार करते हुए, द्वारकानगर पहुँचे। वहाँ ११ [सी.] उन महानुभाव मुनियों ने महान् श्रीकृष्ण को देखा जो कौस्तुभ [मणि] से अलंकृत था, जिसके कर्ण-कुंडलों की जोड़ी से युक्त कपोल थे, जो पुंडरीकाक्ष (कमल-नयन) था, अभोधरश्याम (मेघश्याम) था और जो नाना-रत्न-घटित-किरीट धारी था, जो आजानुबाहु, अजेय-आयुध-हस्त था, जो श्रीवक्ष (लक्ष्मी को वक्ष पर धारण किये) था, पीतांबरधारी था, रुक्मिणी-नयन-सरोज-दिवाकर (रुक्मिणी के नेत्र रूपी कमलों को विकसित करनेवाला सूर्य) था, ब्रह्मादि-सुरसेव्य-पाद-पद्म वाला था, [ते.] दुष्टशिक्षण और शिष्टरक्षण करनेवाला था, करोड़ों कामदेवों के लावण्य की अपेक्षा कोमल बने शरीर वाला था, आर्त (दुखी) जनों का एकमात्र रक्षक तथा विख्यात चरित्र वाला था। १२ [कं.] आगत मुनिसंघ को भरपूर अर्घ्य-पाद्य देकर,

मॅच्चगु कनकासनमुल
नच्चुग गूचुंडि वनरुहाक्षुनितोडन् ॥ 13 ॥

कं. जनमुलु निनु सेविपनि, दिनमुलु व्यर्थंबुलगुचु दिरुगुचुनुंडुन्
तनुवुलु निलुकड गावट, वनमुललोनुन्न नेन वनरुहनाभा ! ॥ 14 ॥

कं. तरणंबुलु भवजलधिकि, हरणंबुलु दुरितलतलकागममुल का-
भरणंबुलार्तजनुलकु, शरणंबुलु नी पदाब्ज संस्मरणंबुल् ॥ 15 ॥

मत्त. ऑवकवेळनु सूक्ष्मरूपमु नोंदुदी वणुमात्रमै
यॉवक वेळनु स्थूलरूपमु नोंदुदंतयु नीवय
पॅवकुरूपुलु दाल्तु नीदगु पॅपु माकु नुतिपगा
नवकजंवगुचुन्न देमन नंबुजाक्ष ! रमापती ! ॥ 16 ॥

कं. श्रीनायक ! नी नाममु, नाना भवरोग दुःख नाशमुनकु वि-
ज्ञाणंबगु .नौषधमिदि, गानरु दुष्टात्मुलकट ! कंजदळाक्षा ! ॥ 17 ॥

व. अनि, यनेकविधंबुलं ब्रस्तुतिचिन, मुनिवरुलं गरुणाकटाक्ष वीक्षणंबुल निरीक्षिचि, पुंडरीलाक्षुंडिट्लनियॆ। मदीयध्यान नामस्मरणंबुलु भवरोग हरणंबुलुनु, ब्रह्मरुद्रादि शरणंबुलुनु, मंगळकारणंबुलुनुनगु।

[कृष्ण ने] विधिपूर्वक सत्कार किया तो वे लोग प्रशस्त कनकासनों पर सुख से बैठकर वनरुहाक्ष (कमलनयन) से [यों बोले] १३ [कं.] लोग जिन दिनों तुम्हारी सेवा (पूजन) नहीं करते, उनके वे दिन व्यर्थ होकर बीत जाते हैं; हे वनरुहनाभ (कमलनाभ) ! वन में वास करते रहने पर भी, शरीर चिरस्थायी नहीं होते। १४ [कं.] तुम्हारे पदाब्जों (चरणकमलों) के संस्मरण भवजलधि (संसार-समुद्र) को [पार करने] के लिए तरण (नाव) हैं; दुरितलताओं (पाप-जाल) का हरण (दूर) करनेवाले हैं; आगमों (शास्त्रों) को [शोभित करनेवाले] भूषण हैं; तथा आर्त (दुःखी) जनों के लिए शरण [स्थान] हैं। १५ [म. को.] हे अंबुजाक्ष (कमललोचन) ! हे रमापती ! तुम कभी अणुमात्र बनकर सूक्ष्म रूप धारण करते हो और कभी समस्त तुम्हीं होकर स्थूल रूप लेते हो, यों अनेक रूप धरते हो। तुम्हारी महिमा का कीर्तन करना हमारे लिए आश्चर्यप्रद हो रहा है। क्या कहें ? १६ [कं.] हे श्रीनायक (लक्ष्मीपति) ! तुम्हारा नाम नाना प्रकार के सांसारिक रोग और दुःखों के नाश (निवारण) के लिए उपयुक्त औषध है; हे कंजदलाक्ष (कमलनेत्र) ! दुःख [का विषय] है कि दुष्टात्मा लोग इसे नहीं देखते (जानते)। १७ [व.] यों अनेक रीतियों से प्रस्तुति करने पर, उन मुनिवरों को करुणा-कटाक्ष-वीक्षणों से (करुणा भरी दृष्टियों से) देखकर पुंडरीकाक्ष (कृष्ण) ने यों कहा— "मेरा

अनि, मरियु, ना रूपंबुलयिन मेदिनीसुरुल परितापंबपहरिंचु पुरुषुल नैश्वर्य समेतुलगा जेयुदु। अनि, योगीश्वरेश्वरुंडानतिच्चि, यनंतरंबु मीर लिच्चटिकि वच्चिन प्रयोजनं बेमि? अनिन, वारलु भवदीय पादारविंद संदर्शनार्थंबु कंटे मिक्किलि विशेषंबोंडेदि? अनि, वासुदेव वदनाब्जामृतंबु निजनेत्र चकोरकंबुलं ग्रोलि, यथेच्छाविहारुलै, द्वारका-नगरंबुन कनतिदूरंबुन नुंडु पिंडारकंबनु नोक्क पुण्यतीर्थंबुन करिगिरि। अंत ॥ 18 ॥

कं. दर्पिंचि यादवुलु दम, नेर्पुन गोमराह सांबु नेलतुक रूपं-
बेर्पड श्रृंगारिंचुक, कर्पूर सुगंधिपोलिक गाविंचिरोगिन् ॥ 19 ॥

उ. मूकलु गूडि यादवुल मुंदट बेट्टुक याच्चि नव्वुचुन्
बोकल बोवुचुन् मुनिसमूहमु कोय्यन सागि म्रोक्कुचुन्
ब्राकटमैल यी सुदति भारपु गर्भमुनंदु बुत्रुडो
येकतमंदु बालकियो येर्पड जेप्पुडटन्चनुग्रुलै ॥ 20 ॥

कं. यदुडिंभकुलनु गनुगोनि, मदयुतुलै वच्चिरनुचु मदिलो रोषं-
बोदवि कनुगोनल निप्पुलु, सेंदरग हास्यंबु चतुनें चेयग ननुचुन् ॥ 21 ॥

ध्यान और नामस्मरण भवरोग-हरण (संसार के रोगों को हरनेवाला) है; ब्रह्मा, रुद्र आदि [देवों] के लिए भी शरण देनेवाले हैं, तथा मंगल (शुभ) के कारण हैं। मेदिनीसुर (ब्राह्मण) मेरे ही स्वरूप हैं, उनका परिताप हरनेवाले पुरुषों को मैं ऐश्वर्यशाली कर दूंगा।" इस प्रकार आज्ञा देकर (कह कर), पश्चात् योगीश्वरेश्वर (कृष्ण) ने उनसे पूछा कि तुम लोग यहाँ किस प्रयोजन से आये हो? इस पर उन मुनियों ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पादारविंद (चरण-कमलों) के दर्शन से बढ़कर विशेष प्रयोजन और क्या हो सकता है? ऐसा कहकर वे लोग वासुदेव के वदनाब्ज (मुखकमल) का अमृत अपने नेत्र रूपी चकोरों द्वारा पान करके, यथेच्छा-विहार करते हुए पिंडारक नामक एक पुण्यतीर्थ जा पहुँचे जो द्वारकानगर के समीप था। अनंतर''' १८ [कं.] यादवों ने घमंडी बनकर, चतुरता से, युवक सांब को वनिता-वेष धारण कराकर, श्रृंगार करके, उसे क्रम से अत्यंत कर्पूर-सुगंधी (मनोज्ञ युवती) के समान सुसज्जित किया। १९ [उ.] फिर वे यादव लोग भीड़ लगाकर, उस सांब को आगे रख, हँसते चिल्लाते हुए, कपटी चाल चलकर, मुनिसमूह के समीप पहुँचे और झट से साष्टांग दंडवत कर [उनसे] पूछा— "आपके सम्मुख प्रस्तुत इस युवती के भारी गर्भ में, आपके मत से, पुत्र है अथवा पुत्री है, स्पष्ट कहिये।" [उनके यों पूछने पर] उग्र (क्रुद्ध) होकर २० [कं.] उन यादव छोकरों को देख, उन मुनियों ने मन में विचारा कि ये लोग मदमस्त होकर

कं. वालायमु यदुकुल नि, -र्मूलकरंबयिनयट्टि मुसलंबीकटी
वालिक्कुदयिंचूनु वी, डालस्यमुलेदटंचु नट पल्कुटयुन् ॥ 22 ॥

व. मदोद्रेकुलयिन यादववालकुलु मुनिशाप भीतुलै, वडवड वडंकुचु, सांब कुक्षि निबद्ध चेलग्रंधि विमोचनंबु जेयु समयंबुन, मुसलंबीकटि भूतल पतितंबैन, विस्मयंबु नौंदि, दानि गोनि चनि, देवकीनंदनु सन्निधानंबुनं बेट्टि, येरिंगिचिन, नतंडात्म कल्पित मायारूपंबगुट नेरिंगियु, नेरुंगनि विधंबुन वारलं जूचि यिट्लनियें ॥ 23 ॥

कं. मदि चॅडि कन्नुं गानक, मदयुतुलै मुनुल गल्ल माटल जॅनयं
गदिसि कुलक्षय कारण, विदितंबगु शापमोंदु वॅर्रलु गलरे ? ॥ 24 ॥

कं. धरणीसुर शापमुनकु, हरिहर ब्रह्मादुलैन नड्डमु गलरे ?
नरुलनग नेंतवारलु, करमरुदुग बूर्वजन्म कर्ममु द्रोवन् ॥ 25 ॥

व. अदि गावुन, यतिनिंदा परत्वंबुन यदुवंशनाशंबगु । संदियंबु लेदु । अनि परमेश्वरुंडु वारलं जूचि, समुद्रतीरंबुन नोक महापर्वतंबुन्नदि, अंदु नुंडु नत्युच्छ्रय विशाल भीषणंबगु पाषाणंबुन मी भुजाबलंबु चेत नी मुसलंबु द्रिविचि, दीनि चूर्णंबु महार्णव कबंधंबुल गलिपि रंडु । पोंडु, अनि

आये है; फिर रोष में आकर आँखों से चिनगारियाँ बरसाते हुए उन्होंने कहा— "कहीं ऐसी हँसी की जाती है ? २१ [कं.] निश्चय ही एक ऐसा मूसल जो यदुकुल का निर्मूल कर देगा, इस बालिका को उत्पन्न होगा, जाओ अब देर नहीं होगी ।" यों कहने पर २२ [कं.] मद से उद्रिक्त यादव बालकों ने मुनिशाप से भयभीत हो, थरथर काँपते हुए सांब के पेट पर बँधी साड़ी की गाँठ खोल दी । तुरंत एक मूसल भूतल पर गिर पड़ा तो विस्मित हो, उसे लेकर उन लोगों ने देवकीनंदन के सन्निधान (समक्ष) में रख दिया और सारा वृत्तांत कह सुनाया । उसने यह जानते हुए भी कि यह मेरी माया से कल्पित रूप है, अनजान के समान उन्हें देख यों कहा : २३ [क] "बुद्धि खोकर, मद के कारण आँख के अंधे बन, झूठी बातों से मुनियों का विरोध करने जाकर कुलक्षय-कारक के रूप में विदित शाप लेनेवाले बावले कहीं होंगे क्या ? २४ [कं.] धरणीसुरों (ब्राह्मणों) के शाप को जब हरि, हर, ब्रह्मा आदि भी नहीं रोक सकते, तब नरों की क्या बात ! पूर्वजन्म के कर्म को टाल सकनेवाले बहुत ही विरल हैं । २५ [व.] अतः यति (मुनि)-निंदा-परत्व के कारण यदुवंश का नाश होनेवाला है । इसमें संदेह नहीं ।" यों कहकर जगत्प्रभु कृष्ण ने उन्हें आज्ञा दी कि समुद्र के तीर पर एक महापर्वत है, उसमें बहुत ही ऊँचा और चौड़ा एक भीषण चट्टान है, उससे [और] अपने भुजबल से इसे चूर्ण करके

जगद्विभुंडेन कृष्णुंडानतिच्चिन, वारुनु नट्ल चेसि, तत्कीलितंबैन लोहखंडंबुनु सरकुगोनक, सागरंबुनं बडवैचिन, नोक्क झषकंबु ग्रसिंचिन, दानि नोक्क लुब्धकुंडु, जालमार्गंबुन बट्टिकोनि तदुरगतंबैन लोहखंडंबु देच्चि, बाणाग्रंबुन मुल्किगा नोनर्चें। अनियु तत्कथा वृत्तांतंबु सेप्पिन, बादरायणि गनुंगोनि, राजेंद्रुंडिट्लनियें ॥ 26 ॥

वसुदेवुनकु नारदुंडु विदेहार्षभ संवादमनु पुरातन पुण्यकथनु देल्पुट

कं. चित्तंबेक्रिय निलुचुं जित्तजगुरु पादपद्म सेव सदा य-
त्युत्तम मनि वसुदेवुडु, चित्तमु दग निलिप येट्लु चेंवेमुनींद्रा ! ॥ 27 ॥

व. अनि यडिगिन, वारलुकुन शुकयोगींद्रुंडिट्लनियें ॥ 28 ॥

अध्यायमु—२

कं. विनुमु नृपालक सेप्पेद
घनमै विलसिल्लु पूर्वकथ गलवदियुन्
मुनु द्वारक केलेंचियु,
नोनरग नारदुडु कृष्णु नोय्यन गांचेन् ॥ 29 ॥

समुद्र के जल में मिलाकर आओ, जाओ। यह आज्ञा पाकर उन लोगों ने वैसा ही किया। मूसल की नोक पर एक लोहखंड (टुकड़ा) जो लगा हुआ था, उसकी परवाह न करके उन लोगों ने उसे भी समुद्र में फेंक दिया। उसे जब एक मछली निगल गयी, तो उस मछली को जाल-मार्ग से (जाल से) एक लुब्धक (मछियारा) पकड़कर ले गया। फिर उसके उदरगत लोहे की अनी को बाण के अग्रभाग में जोड़ लिया। यों कहकर बादरायणी ने उस कथा का बृत्तांत सुनाया तो राजेंद्र ने मुनि से पूछा : २६

नारद का 'विदेहार्षभ-संवाद' नामक पुरातन पुण्यकथा वसुदेव को सुनाना

[कं.] "हे मुनींद्र! [मनुष्य का] चित्त कैसे स्थिर रहता है? चित्तजगुरु (कामदेव के पिता, हरि) के पादपद्म की सेवा अत्युत्तम समझता हुआ वसुदेव अपना चित्त स्थिर करने में किस प्रकार सफल हुआ? सुना दो।" २७
[व.] यों पूछने पर राजा से शुकयोगींद्र ने यों कहा : २८

अध्याय—२

[कं.] "हे नृपालक (राजा)! सुनो; उसकी एक बहुत प्रसिद्ध पूर्वकथा है। पूर्व में नारद [एक समय] द्वारका पहुँचकर सीधे कृष्ण

व. देवमुनि कृष्ण संदर्शनार्थंबरुगुदेंचि, तद्गृहाभ्यंतरमुन करिगिन, वसुदेवुंडु मुनींद्रुनि नर्घ्य पाद्यादि विधुलं बूजिंचि, कनकासनासीनुं गाविंचि, युचित कथा विनोदंबुलं बोद्दु पुच्चुचु निट्लनिये। ए नरुंडु नारायण चरण सरसीरुह भजन पारायणत्वंबु निरंतरंबु नोंदडट्टि वानिकि मृत्युवु सन्निहितंबै युंडु। नी दर्शनंबुनं गृतार्थुंडनैति। अच्युतानंत गोविंदादि नामस्मरणैकाग्रचित्तुलैन मीवंटि पुण्यपुरुषुल समागमंबुन लोकुलु सुखाश्रयुलै युंडुदुरु। देवता भजनंबु सेयुवारिनि गीर्वाणुलु ननुग्रहितुरु। अट्लु सज्जनुलुनु, दीनवत्सलुलु नगुवारलु पूजनादि क्रियलचे ना देवतलनु भक्ति सेयुदुरु। कावुनं श्रीमन्महाभागवत कथासमूहंबुलंगल धर्मंबुलडिगॆद। ए ये धर्मंबुलु श्रवण सुखंबुलुगा विनिन, दंडधर किंकर ताडनंबुलं बडक, मुकुंद चरणारविंद वंदनाभिलाषुलै, परमपद प्राप्तुलगुदु,-रा धर्मंबुलानतिम्मु। तोल्लि गोविंदुनि बुत्रुनि गा गोरि, मुक्ति मार्गंबेरुंगलेक देवतामायं जेसि, चिक्कि, चित्तव्यसनांधकारंबगु संसारंबुनं दगुलुवडि युन्नवाड। हरिकथामृतंबु वॆल्लि गोल्पुमु अट्लैन सुखंबु गल्गु। अनिन, वसुदेवकृत प्रश्नुंडैन नारदुंडु वासुदेव कथाप्रसंग सल्लाप हर्षसमेतुंडै, संतसंबंद निट्लनिये॥ 30 ॥

के दर्शन किए। २९ [व.] देवमुनि कृष्ण-संदर्शनार्थ आकर उसके गृहाभ्यतर में (घर के भीतर) गया तो वसुदेव ने अर्घ्य-पाद्य आदि से विधिपूर्वक मुनींद्र को पूजकर, कनकासन पर बिठाकर, योग्य कथा-विनोद में समय बिताते हुए यों कहा, "जो नर नारायण-चरण-सरसीरुह (-कमल) के भजन में निरतर परायणता (लगन) नहीं रखता, मृत्यु उसके सन्निहित (समीप) रहती है। तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ; अच्युत, अनंत, गोविंद आदि नामों के स्मरण में एकाग्रचित्त रहनेवाले तुम जैसे पुण्यपुरुषों के समागम (संगति) से लोग सुखाश्रयी (सुखी) रहते हैं। देवता-भजन करनेवालों पर गीर्वाण (देवता) लोग अनुग्रह करते हैं। वैसे सज्जन और दीनवत्सल (दयालु) जन पूजन आदि क्रियाओं से देवताओं की भक्ति करते हैं। अतः [मैं तुमसे] श्रीमन्-महाभागवत के कथासमूह में वर्णित धर्मों के विषय में पूछता हूँ। जिन धर्मों को श्रवणसुखद बनाकर सुनने पर दंडधर (यम) के किंकरों (भटों) का ताडन (मार) सहे बिना, मुकुंद-चरणारविंद-वंदनाभिलाषी होकर लोग परमपद (मोक्ष) प्राप्त करेंगे, उन धर्मों को समझाओ। पूर्व में मैंने गोविंद को पुत्र के रूप में पाने की कामना की थी, मुक्तिमार्ग जान नहीं सका; देवमाया के वश में आकर चित्त-व्यथा (-दुख) रूपी अंधकार-युक्त संसार में फँसा हुआ हूँ। मुझ पर हरिकथा रूपी अमृत बरसाओ जिससे मुझे सुख हो।" इस प्रकार वसुदेव से प्रश्न पूछे जाने पर, नारद ने वासुदेव-कथा-प्रसंग बखान करने

कं. ननु नीवु सेयु प्रश्नमु
जनसन्नुत ! वेदशास्त्र सारांशंबे
घनमगु हरि गुणकथनमु,
बिनुमनि विनुपिंप दीणगॆ वेडुक दलिर्पन् ॥ 31 ॥

कं. अति पापकर्मुलैननु
सततमु नारायणाख्य शब्दमु मदिलो
बिततंबुग वठियिंचिन
चतुरुल गॊनियाड गमल-संभवु वशमे ! ॥ 32 ॥

व. अट्लु गावुन परमेश्वर भक्तिजनकंबै, कैवल्यपदप्राप्तिकरंबै, यॊप्पुचुन्न विदेहर्षभ संवादंबु ना परगु नॊक पुरातन पुण्यकथा विशेषं बॆरिगिंचॆद । सावधान मनस्कुंडवै याकर्णिंपुमु । अनि यिट्लनियॆ ॥ 33 ॥

ते. बिनुमु स्वायंभुवुंडनु मनुवुनकुनु
रमण नुदयिंचॆ नट प्रियव्रतुडनंग
दनयुडातनि काग्नीध्रुडनग सुतुडु
जातुडय्यॆनु भुवन विख्यातुडगुचु ॥ 34 ॥

व. आ यग्नीध्रुनकु नाभियनु प्राज्ञुंडगु तनूभवुंडुदयिंचि, वलिचक्रवर्तितो मैत्रि जेसि, धरणीभारंबु पूनि, याज्ञापरिपालनंबुन नहित राजन्य राज्यंबुल स्ववशंबुलु गाविचुकॊनि युंडॆ । अंत ना नाभिकि सत्पुत्रुंडैन

का हर्ष पाकर [वसुदेव को] संतुष्ट करते हुए यों कहा, ३० [कं.] "हे जन-सन्नुत (-प्रशंसित) ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया, वह वेद का सारांश है, हरि का महान् गुण-कथन है, सुनो" —ऐसा कहकर उत्कंठा बढ़ाते हुए [नारद] सुनाने लगा : ३१ [कं.] "अत्यंत पापकर्म करनेवाले होने पर भी जो लोग सदा नारायण के नाम-शब्द का मन में विस्तृत रूप से पाठ करते रहते हैं, उन चतुरों की प्रशंसा करना कमलसंभव (ब्रह्मा) के भी वश की बात है ? (नहीं है) । ३२ [व.] अतः परमेश्वर की भक्ति उत्पन्न करनेवाला, कैवल्य (मुक्ति) पद प्राप्त करानेवाला 'देवर्षभ-संवाद, के नाम से प्रसिद्ध एक पुरातन पुण्य-कथा-विशेष सुनाऊँगा, सावधान-मनस्क (श्रद्धालु) होकर सुनो" —[यों] कहकर इस प्रकार कहा । ३३ [ते.] सुनो ! स्वायंभुव नामक मनु का प्रियव्रत के नाम से एक आह्लादकारी पुत्र उत्पन्न हुआ; उसके अग्नीध्र कहलानेवाला भुवन-विख्यात (-प्रसिद्ध) पुत्र हुआ । ३४ [व.] उस अग्नीध्र के नाभि नामक एक प्राज्ञ

ऋषभुंडु पुट्टॅ। अतंडु हरिदासुंडै सुतशतकंबु बडसॅ। अंदग्रजुंडैन भरतुंडनु महानुभावुंडु नारायण परायणुंडै, यिह लोक सुखंबुलं बरिहरिंचि, जन्मत्रितयंबुन घोरतपं बाचरिंचि, निर्वाण सुखपारवश्यंबुन सकलबंध विमुक्तुंडै, वासुदेव पदंबुनुं बॉदॅ। अतनि पेर भारतवर्षंबनु भूखंड नाम व्यवहारंबु नॅगडि, जगंबुलं ब्रसिद्धंबय्यॅ। मरियु नंदु दॉम्मंड्रु कुमारुलु बल पराक्रम प्रभाव रूप संपन्नुलै, नवखंडंबुलकु नधिष्ठातलैरि। वॅंडियु, वारललो नॅनुबदि यॉक्कंड्रु कुमारुलु नित्यकर्मानुष्ठान परतंत्रुलयि विप्रत्वं बंगीकरिंचिरि। अंदु गॉंदरु शेषिंचिन वारलु, कवि हर्यंतरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन हविर्होत्र द्रमीळ चमस करभाजनुलनं बरगु तॉम्मंडुगुरूर्ध्वरेतस्कुलयि, ब्रह्मविद्या विशारदुलगुचु, जगत्रयंबुनुं बरमात्म स्वरूपंबुगा वॅलियुचु, मुक्तुलै, यव्याहत गमनुलगुचु, सुर सिद्ध साध्य यक्ष गंधर्व किन्नर किंपुरुष नागलोकंबुलंदु स्वेच्छाविहारंबु सेयुचु निरंतरानंदंबु बडसियुंड, नॉक्कनाडु ॥ 35 ॥

कं. जगदेकनाथु गुणमुल
मिगुलग संस्मरणतोड मीड्रिन भक्तिन्
बगलुनु रात्रियु संध्यलु
दगिलि जितेंद्रियुलु नयिन तपसुलु धात्रिन् ॥ 36 ॥

हुए, शत्रु राजाओं को अपने अधीन कर रखा था। पश्चात् उस नाभि के ऋषभ नामक सत्पुत्र जन्मा। उसने हरिदास बनकर सुतशतक (सौ पुत्रों) को जन्म दिया। उनमें अग्रज (ज्येष्ठ) भरत नामक महानुभाव ने नारायण-परायण (-लीन) होकर, इहलोक (भूलोक) का सुख त्याग कर, तीन जन्मों में घोर तप किया; फिर उसने निर्वाण (मोक्ष) सुख में परवश हो, सकल-बंध-विमुक्त होकर, वासुदेव पद प्राप्त किया। उसके नाम पर भूखंड भारतवर्ष नाम पाकर व्यवहार में आया और समस्त जग में प्रसिद्ध हुआ। [ऋषभ के पुत्रशतक में से] नौ कुमार बल, पराक्रम, प्रभाव और रूप से संपन्न होकर नौ खंडों के अधिष्ठाता (अधिपति) हुए। शेष पुत्रों में से एक्यासी कुमारों ने नित्यकर्मानुष्ठान-परतंत्र होकर विप्रत्व (ब्राह्मण-वृत्ति) स्वीकार किया। बाकी बचे, कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, हविर्होत्र, द्रमील, चमस, करभानुज नामक नौ पुत्र ऊर्ध्वरेतस्क और ब्रह्मविद्या-विशारद होकर, जगत्त्रय (तीनों लोकों) को परमात्म-रूप समझते हुए, विमुक्त बन अव्याहत-गमन से (बिना अवरोध चलकर) सुर, सिद्ध, साध्य, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष तथा नागलोकों में स्वेच्छाविहार करते हुए निरंतर (सदा) आनंद भोगते रहे। तब एक दिन… ३५ [कं.] जगत् के एक मात्र नाथ (भगवान) के गुणों के निरंतर संस्मरण के साथ दिन-रात और संध्या समय भी

कं. ऊहिप वेहुनि गेहमु
मोहविवर्जितुल वुण्य
नेतेंचिनचो
विदुलुडयिन
यज्ञातमंदु
वेंडलि
यदुकों नि
मुनिसंघमुलन् ॥ 37 ॥

ते. अर्घ्य पाद्यादि विधुलनु नर्थितोड
बूज गाविंचि वारल वोलुपु मिगुल
नुचित पीठंवुलंदुल नुनिचि यलमि
नव मुनिश्रेष्ठुलनु भूमिनायकुंडु ॥ 38 ॥

क. वारल किट्लनु मीरलु, गारवमुन विष्णुमूर्ति गयिकोन्न महा-
भूरि तपोधनवर्युलु, सारहीनंवुलयिन संसारमुलन् ॥ 39 ॥

कं. एरीति गडव नेर्तुरु, क्रूरुलु बहु दुःख रोग कुत्सित बुद्धुल्
नीरसुलु नरुलु गावुन, नारय सुज्ञानबुद्धि नामति यीरे ॥ 40 ॥

ऋषभकुमारुंडगु कवि विदेहुनकु परमार्थोपदेशमु चेयुट

व. मरियु, सकल जंतुसंतानंबुकंटें मानुषाकारंबु नोंदुट दुर्लभंबु। अंतकंटें नारायण चरणयुगळ स्मरण परायणुलगुट दुष्करंबु। कावुन नात्यंतिकं-

अतिशय भक्ति में लीन रहकर भूतल पर जितेंद्रिय बने हुए वे तपस्वी लोग ३६ [कं.] पुण्यवान् विदेह [राजा जनक] के रचे यज्ञ के अंत में वहाँ पहुँच गये; तब राजा ने घर से बाहर निकल कर, मोहवर्जित उस पुण्य मुनि-संघ की अगुवानी की। ३७ [ते.] और, अर्घ्य, पाद्य आदि से विधि-पूर्वक प्रार्थना कर उनका पूजन किया; उन नौ मुनिश्रेष्ठों को भूमिनायक (राजा) ने संतोष के साथ योग्य आसनों पर बिठाया। ३८ [कं.] [फिर] उनसे यों कहा : "तुम लोग प्रेम के साथ विष्णुमूर्ति को अपनानेवाले महान् तपोधन-वर्य (-श्रेष्ठ) हो, नर जो नीरस (प्रेमहीन), क्रूर, बहुत से रोग और दुःखों के साथ कुत्सित (निकृष्ट) बुद्धिवाले [होते हैं] ३९ [कं.] अपने ज्ञान और सुबुद्धि से सोचकर तुम लोग मुझे विदित करो कि ऐसे वे नर इस सारहीन संसार को किस रीति से पार कर सकते हैं ? ४०

ऋषभकुमार कवि का विदेह को परमार्थ का उपदेश करना

[व.] समस्त जंतुसंतान की अपेक्षा मनुष्य का आकार (शरीर) पाना दुर्लभ है। उससे बढ़कर नारायण-चरण-युगल-स्मरण-परायण होना दुष्कर है। अतः आत्यंतिक क्षेम (शुभ) [के विषय में] पूछना पड़ रहा है; प्रपत्तिनिष्ठों (शरणागत भक्तों) को परमेश्वर-सारूप्य किस प्रकार प्रदान

बन क्षेमंबगुवलसे । परमेश्वरुंडु प्रपत्तिनिष्ठुलकु सारूप्यं बॆट्लॊसंगु नत्तेरंगानतिडु । अनिन विनि, विदेहभूपालुनकु हरिकथामृत पानाति-परवशुलयिन मुनिसमाजंबुनंदु गवि यनु महानुभावुं डिट्लनि चॆप्प दॊणगं । अरिषड्वर्गंबुनंदु नेषणत्रयंबुचेतं वगुलुबडि, मात्सर्यंबुगत चित्तुं डगुनट्टि वानि कॆव्विधंबुन नच्युत पादारविंद भजनंबु संभविंचु ? विश्वंबुनं नात्मकु वेरुगा भाविंचु वानिकि भीरुत्वं बॆट्लु लेडु ? अविद्यांधकार मग्नुलकु हरिचिंतनं बॆट्लु सिद्धिंचु ? अट्टि नरुंडु तॊंटि कळेबरंबु विडिचि, परतत्वं बॆव्वंगि गेरु ? मुकुळीकृत नेत्रुंडैन नरुंडु मार्गभ्रमणंबुन बॊट्रुपाटुबडिचनु चंदंबुन, विज्ञान विमलहृदय भक्तिभावमावशंबु लेकुन्न बरम पदंबु बॊरि कॆव्विधंबुनं गलुगु ? अनि यडिगितिवि गावुन जॆप्पॆद । सावधानुंड वेयाकर्णिपुमु ॥ 41 ॥

कं. करण त्रयंबु चेतनु
नरुडे कर्मंबु सेयु नय्यै वेळन्
हरिकर्पण मनि पलुकुट
परुवडि सुज्ञानमंडु परम मुनींद्रुल् ॥ 42 ॥

व. ज्ञानाज्ञानंबुलंदु संकलितुंडैन स्मृतिविपर्ययंबु नॊंदु । अट्लु गावुन गुरुदैवतात्मकुंडै बुद्धिमंतुंडैन मर्त्युंडु, श्रीवल्लभु नुत्तमोत्तमुनिगा जित्तंबुन

करते है ? वह प्रकार मुझे बता दो ।" यह सुन हरि-कथामृत का पान कर अत्यंत परवश हुए उस मुनिसमाज में [स्थित] कवि नामक महानुभाव विदेहराजा से यों कहने लगा, "हे राजन् ! तुमने प्रश्न किया कि एषणात्रय (दारेषणा, धनेषणा, पुत्रेषणा) के वश होकर, अरिषड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य नामक शत्रुओं) के हाथ फँसे मात्सर्ययुक्त-चित्तवाले मनुष्य को अच्युत पादारविंद-भजन किस प्रकार संभव होगा ? विश्व को आत्मा से पृथक् कहकर भावना करनेवाले को भीरुता किस उपाय से नहीं होगी ? अविद्या के अंधकार में मग्न लोगों को हरिचिंतन क्योंकर प्राप्त होगा ? वैसा नर पूर्व कलेवर (शरीर) छोड़कर, किस रीति से परतत्व को पहुँचेगा ? मुकुलीकृतनेत्र (बंद आँखों वाला) नर जिस प्रकार मार्ग में चलते समय, भटक जाता है, उसी प्रकार विज्ञान, विमलहृदय, भक्ति-भावना के बल के न होने पर, इन लोगों को किस प्रकार परमपद (मोक्ष) मिल सकेगा ? तुम्हारे किये इन प्रश्नों का उत्तर मैं दे रहा हूँ, सावधान होकर श्रवण करो । ४१ [कं.] करणत्रय (त्रिकरण : मन्-वाक्-काय) से नर जब भी जो भी कर्म करेगा, तभी उसका "कृष्णार्पण" कहना, परममुनींद्र कहते हैं कि सुज्ञान है । ४२ [व.] [मनुष्य] यदि ज्ञान और अज्ञान में संकलित हो जाय (लग जाय) तो उसकी स्मृति में विपर्य (भेद)

र्मेचि, सेविंपवलयु। स्वप्नमनोरथेच्छाद्यवस्थलयंदु सर्वसंकल्प नाशं-बगुटं जेसि, बानि गुदियंबट्टि, निरंतर हरिध्यानपरुंडैन वानिकि गैवल्यंबु सुलभंबुनं गरतलामलकंबैयुंडु ॥ 43 ॥

सी. सततंबुनु गृष्ण संकीर्तनंबुलु वीनुल किंपुगा विनगवलयु
हरिनाम कथनंबु हर्षंबु तोडुत बाटल नाटल बरगवलयु
नारायणुनि दिव्य नामाक्षरंबुलु हृद्वीथि सततंबु नेंप्रवलयु
गंजाक्षु लीललु गांतारमुलनैन भक्तियुक्तंबुगा बाडवलयु

ते. वेट्रिमाड्किनि लीलतो विश्वमयुनि
नोडुवुचुनु लोकबाह्यत नोंदवलयु
नितयुनु विष्णुमय मनि येंरुगवलयु
भेद मोंनरिंपवलवबु मेदिनीश ! ॥ 44 ॥

ऋषभकुमारुलगु हरियु नंतरिक्षुंडुनु सेसेंडु भागवत स्वरूपोपदेशमु

व. अनिन विदेहभूपालुंडु, भागवतधर्मंबेद्दि, ये प्रकारंबुनं बर्तिंचु ? अट्टि भागवतचिह्नंबुलेव्वि ? इंतयु नेंरिंगिंप मीर यर्हुलरु। अनिन, वंदुलो हरि यनु महात्मुंडिट्लनियें ॥ 45 ॥

उत्पन्न होता है; अतः बुद्धिमान मनुष्य को गुरु-देवतात्मक होकर श्रीवल्लभ (विष्णु) को अपने चित्त में उत्तमोत्तम समझकर भजन करना चाहिए। तब उसकी स्वप्न, मनोरथ (कामना), इच्छा आदि अवस्थाओं में समस्त संकल्पों का नाश हो जाता है; मनोरथ आदि का निग्रह करके (दबाये रखकर) निरंतर हरिध्यानमग्न होने पर नर को कैवल्य (मोक्ष) सरलता से करतलामलक (हथेली का आँवला, सुलभ साध्य) हो जाता है। ४३
[सी.] हे मेदिनीश (राजन्)! [मोक्षकामी को] कृष्ण का संकीर्तन (गुणगान) कर्णपेय बनाकर लगातार सुनते जाना चाहिए; हर्ष के साथ हरिनाम का उच्चारण करते हुए नृत्य-गान में लग जाना चाहिए; नारायण के दिव्य नाम के अक्षरों को हृदयवीथी में सतत अंकित कर लेना चाहिए; कंजाक्ष (कमलाक्ष-कृष्ण) की लीलाएँ वनों में भी भक्ति के साथ गाते जाना चाहिए; [ते.] विश्वमय (भगवान) का कथन उत्साह से उन्मत्त की भाँति दुहराते हुए लोक (संसार) से अलग रह जाना चाहिए; सब कुछ विष्णुमय मानना चाहिए, भेद नहीं करना चाहिए।" ४४

हरि तथा अंतरिक्ष नामक ऋषभकुमारों का दिया भागवत के स्वरूप का उपदेश

[व.] इतना कहने पर विदेह भूपाल (राजा निमि) ने कहा (पूछा)— "भागवत धर्म क्या है? भागवत का प्रवर्तन (व्यवहार) किस

ते. सर्वभूतलयंदॆन सरसिजाक्षु-
डतडॆ तन यात्मयंदुंडु ननॆडिवाडु
शंख चक्र धरुंडॆचु जनॆडुवाडु
भक्तिभावाभिरतुडु वो भागवतुडु ॥ 46 ॥

कं. वर्णाश्रम धर्मंबुल, निर्णय कर्ममुल जॆडक निखिल जगत्सं-
पूर्णुडु हरि यनु नातडॆ, वणिपग भागवतुडु वसुधाधीशा ! ॥ 47 ॥

व. इट्लु सर्वसंगपरित्यक्तुंडै, निखिलांतरात्मकुंडॆन परमेश्वरुंडरुणगभस्ति किरण सहस्रंबुल लोकत्रयंबुनु पावनंबु चेयुचंदंबुन, नंदनंदनुनि चरणारविंद रजःपुंजंबुलचेतं बवित्रंबु सेयुचु, सुरासुर जेगीयमानंबॆन जनार्दन पादारविंदंबुनकु वंदनाभिलाषुडै, भक्तियु लवमात्रंबुनु जलिपनीक, सुधाकरोदयंबुन दिवाकर जनित तापंबु निवारणंबैन भंगि, नारायणांघ्रि नख मणि चंद्रिका निरस्त हृदय तापुंडु, नात्मीय भक्ति रचनानुबंध बंधुरुंडुनुनै, वासुदेव चरणसरोरुह ध्यानानंद परवशुंडगु

तरह का होगा ? उस भागवत के चिह्न (लक्षण) कौन-कौन से हैं ? इन सबकी जानकारी देने के लिए आप लोग ही योग्य हैं।" यों पूछने पर हरि नामक महात्मा ने यों कहा (उपदेश दिया):— ४५ [ते.] "सर्वभूतों (प्राणियों) में जो सरसिजाक्ष (कमललोचन भगवान) रहता है, वही अपनी आत्मा में भी रहता है, अपने में और सर्वभूतों में उसी शंख-चक्रधारी-विष्णु का निवास है", इस प्रकार की भक्ति-भावना में [जो नर] अभिरत रहता है, वही भागवत है। ४६ [कं.] हे वसुधाधीश (भूपति) ! जो नर वर्णाश्रम धर्म और अपने निर्णीत कर्मों का अतिक्रम किये बिना यह विश्वास रखता है कि हरि ही निखिल जगत् में परिपूर्ण होकर रहता है, उसी को भागवत (भक्त) कहकर वर्णन किया जा सकता है। ४७ [व.] जो भागवत सर्वसंग-परित्यागी (सबके साथ संबंध छोड़े) रहता है, समस्त का अंतरात्मा परेश्वर जिस प्रकार सहस्रों अरुण-रवि-किरणों द्वारा लोकत्रय को पवित्र बनाता है, उसी प्रकार जो भागवत-भक्त नंदनंद (कृष्ण) के चरणारविंद की रज.पुंज (धूलि-समूह) रूपी भक्ति से लोक का मानस परिशुद्ध करता रहता है; सुरासुरों (देव-दानवों) से जेगीयमान (कीर्तित) जनार्दन के पादारविंदों की वंदना की अभिलाषा जो रखता है, जो अपनी भक्ति को लेशमात्र भी विचलित होने नहीं देता; सुधाकर (चंद्रमा) के उदय से दिवाकर-जनित-ताप (सूरज की धूप की गरमी) जिस प्रकार निवारित (दूर) होता है, उसी प्रकार नारायण के चरण-नख-मणि-चंद्रिका से जिसके हृदय का ताप शांत होता है; जो परमात्मा की भक्ति-रूपी बंधन में बँध गया हो; और जो वासुदेव-चरण-सरोरुह (-कमल)-ध्यान के

नतंडु, भागवत प्रधानुंडु। अनि यॅड्रिगिंचिन, विनि विदेहुं-डिट्लनियॆ ॥ 48 ॥

अध्यायमु—३

कं. गजराज-वरदु गुणमुलु, त्रिजगत्पावनमुलगुट वेटपडंगा
सुजन मनोरंजकमुग, विजितेंद्रिय ! विनग नाकु वेड्क पुट्टॆन् ॥ 49 ॥

व. अनिन विनि, यंतरिक्षुंडनु ऋषिश्रेष्ठुंडिट्लनियॆ ॥ 50 ॥

कं. परमब्रह्ममनंगा, वरतत्त्वमनंग नरमपदमनगनु नी-
श्वरुडन गृष्णुडन जग, -द्भरितुडु नारायणुंडु वा वॆलुगॊंदुन् ॥ 51 ॥

व. अव्यक्त निर्गुण परब्रह्मंबुनंदु दनकु विपर्ययंबुगा जननंबैन ज्ञानंबॆ विष्णुमाय यनंबडु। परमेश्वरुंडट्टि मायचेत जगंबु निर्मिंचि, निश्चितुंडैयुंडु। इंद्रियार्थ भ्रमणंबु सेयॆडु दुर्मतुलकु सुषुप्त्याद्यवस्थलु वरुसनु गलुगुट गाक, परमेश्वरुनि बॊंदरानियनु नालुगव यवस्थयु गलुगु। स्वप्नंबुनंदु ग्राह्य ग्राहक ग्रहणंबुलनु त्रिविध भेदंबुलुं गलिगियुंडु। ई चंदंबुन नविद्यांधकार संवृतंबै, मूडु विधंबुल वर्यवसिंचु मनोरथंबु स्वप्नावस्थयंदणगिन क्रिय,

---

आनंद में परवश हो रहता है, वैसा भागवत भागवतों का मुखिया (प्रधान) है।" इस प्रकार समझाने पर विदेह [राजा] ने यों कहा : ४८

अध्याय—३

[कं.] "हे विजितेंद्रिय [मुनियो] ! गजराज-वरद (विष्णु) के गुण त्रिजगत्-पावन हैं, अतः उन्हें स्पष्ट रूप से, सज्जनों के मन को रंजित करने के ढंग से, सुनने की मुझे उत्सुकता हो रही है।" ४९ [व.] यह सुन अंतरिक्षनामी ऋषिश्रेष्ठ ने यों कहा। ५० [कं.] परब्रह्म कहो, परतत्त्व कहो, परमपद कहो, ईश्वर कहो, अथवा कृष्ण कहो— [इन नामों से] वही नारायण जग में पूर्ण रहकर प्रकाशमान रहता है। ५१ [व.] अव्यक्त, निर्गुण परब्रह्म में, उससे विपर्यय (भिन्न) होकर जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही विष्णुमाया कहलाता है। परमेश्वर उस माया के द्वारा जगत का निर्माण करके निश्चित हो रहता है। इंद्रियार्थ (विषयभोग) में भ्रमण करते रहनेवाले दुर्मतियों (मूढ़ों) को सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ क्रमशः प्राप्त होती हैं; इतना ही नहीं, उनकी एक चतुर्थ अवस्था भी होती है, जिसमें परमेश्वर की प्राप्ति उन्हें हो नहीं सकती। स्वप्न [की अवस्था] में ग्राह्य, ग्राहक, ग्रहण नामक त्रिविध भेद रहता है। यों अविद्या के अंधकार से संवृत होकर (घिरे रहकर) तीन प्रकार से परिणाम पानेवाला मनोरथ

द्रिविधंबगु माययु, नात्मयंदु लीनंबगु। परमेश्वरुंडु मॊदलं बृथिव्यादि महाभूतमयंबैन सृष्टिनि गलुग जेसि, यंदु बंचभूतात्मकंबैन यात्म-केकादशेंद्रियंबुलचेत भेदंबु पुट्टिंचुचु, गुणंबुलचेत गुणंबुलंगीकरिंचुचु, नात्मयंदु प्रद्योतित गुणंबुल वलन गुणानुभावंबु चेयनुन्न वाडयि, सृष्टिनात्मीयंबुगा भाविंचुनु। देहि, कर्ममूलंबुन नैमित्तिक कर्मंबु लाचरिंपुचु, दत्फलं बंगीकरिंचि, दुःखैकवशुंडै वर्तिंचु। यॆवकु दुःखंबुलं बडि, यी देहि, कर्मफल प्राप्तुंडगुचु, भूतसंप्लव पर्यंतंबु परवशुंडै, जन्ममरणंबुलं बॊरलुचुंडु। अंत्यकालंबासन्नंबैन, द्रव्य गुण स्वरूपंबगु जगंबु ननादिनिधनंबगु कालंबु प्रकृति बॊंदिंचुनु। अटमीद शतवर्षंबुलु वर्षंबु लेमिचे नत्युग्र लोकलोचनु तेजबुन सकललोकंबुलु दहिंपबडु। अंत नधोलोकंबुन नुंडि संकर्षणमुखजनितानलं बूर्ध्वशिखाजालंबुल वायु सहायंबै, दिक्कुलयंदॆल्ल व्यर्तिंचु। अटमीद संवर्तक बलाहक गणंबुलु शतसंवत्सरंबुलु सलिलधारापातंबुगा वर्षंबुलु गुरियु। अंदु विराड्रूपंबु लीनंबगु। अंत नीश्वरुंडु निधनाग्नि रूपंबुन नव्यक्तंबु नवेशिंचु। तदनंतरंब धरणीमंडलंबु वायुहृत गंधंबै, कबंधरूपंबु दाल्चु। आ जलंबु हृतरसंबै, तेजोरूपंबु नॊंदु। आ तेजंबु

जिस प्रकार स्वप्नावस्था में दब जाता है, उसी प्रकार माया भी आत्मा में लीन हो जाती है। परमेश्वर प्रथमतः पृथ्वी आदि महाभूतों से भरी सृष्टि रचता है, फिर पंचभूतात्मक आत्मा मे एकादश (ग्यारह) इंद्रियों द्वारा भेद उत्पन्न करता है, गुणों (सत्त्व, रज, तम) से गुणों को स्वीकार करते हुए, आत्मा में प्रद्योतित (प्रकाशित) गुणों के कारण गुणानुभव करता हुआ सृष्टि को आत्मीय होने की भावना करता है। देही अपने कर्म के कारण [नित्य ही] नैमित्तिक कर्म करता जाता है, फिर उनका फल पाकर दुःखों के वशवर्ती रहता है। यों अनेकों दुखों में फँसकर यह देही कर्मफल पाता हुआ समस्त भूतो के संप्लावन (डूब जाने) तक पराधीन हो, जन्म-मरणों में लुढ़कता जाता है। अन्त्यकाल (प्रलय) के आसन्न होने पर इस द्रव्य-गुण-स्वरूपी जग को आद्यंत-रहित काल प्राकृत (मूल) दशा में पहुँचा देता है। तब सौ साल तक वर्षा के अभाव के कारण अत्युग्र (भयंकर) लोकलोचन (सूर्य) के तेज में (अग्नि) में समस्त लोक जल जाते हैं। फिर अधोलोक (पाताल) से संकर्षण के मुख से निर्गत ऊर्ध्व-शिखाजाल (ऊपर उठती लपटें) वायु की सहायता से दशों दिशाओं में व्याप्त हो जाता है। उपरांत, संवर्तक और बलाहक नामक [मेघ] गण सौ वर्ष तक सलिलधारा बरसाते है। उसमें यह विराट् रूप (विश्व) डूब जाता है। तब ईश्वर इंधन में अग्निवत् अव्यक्त में प्रवेश करता है। तदनंतर, जब भूमंडल की गंध को वायु हर लेती है तो वह जल का रूप

तमोनिरस्तंबै, वायुवंदणंगु। आ गंधवहुंडुनु स्पर्शविरहितुंडै, याकाशंबुनंदु संक्रमिंचु। आ विष्णुपदंबुनु विगतशब्दगुणंबु गलदियै, यात्मयंदणंगु। इंद्रियंबुलुनु, मनंबुनु, बुद्धियु, विकारंबुलतोड नहंकारंबु ब्रवेशिंचु। आ यहंकारंबु स्वगुणयुक्तंबै, परमात्मनु जेरु। इट्लु त्रिवर्णात्मकयै, सर्ग स्थिति लयकारिणियगु माय यिट्टिदि यनि, तत्स्वरूप माहात्म्यंबुलु विवरिंचिन, नरपालुं डिट्लनियें ॥ 52 ॥

उ. ज्ञानविहीनमैन नरसंघमु गानगरानि माय दा
लोन नडंचि यॆट्लु हरि लोकमु जेंदुदुरंतयुं दगन्
भूनुत! सत्यवाक्य गुणभूषण! यिक्कथ वेड्कतोडुतन्
नूनुक चॆप्पुमन्ननु प्रबुद्धुडु निट्लनु गारवंबुनन् ॥ 53 ॥

ऋषभकुमारुललो प्रबुद्ध पिप्पलादुलुगु सॆप्पॆडु परमार्थोपदेशमु

व. सूर्योदयास्तमयंबुलं ब्रतिदिनंबु नायुवु क्षयंबु नॊंद, देह कळत्र मित्र भ्रातृ ममत्व पाशबद्धुलै विडिवडु नुपायंबु गानक, संसारांधकारमग्नुलै, गतागतकालंबुल नॆरुंगक, दिवांधंबुलगु जंतुजालंबुल भंगि, जन्म जरारोग विपत्ति मरणंबु लंदियु, शरीरंब मेलनुचु प्रमोद मोह मदिरापानमत्तुल,

---

धारण करता है; उस जल में से जब रस निकाल दिया जाता है तो वह तेज के रूप में बदल जाता है; वह तेज तम (अंधकार) से निरस्त (नष्ट) होकर वायु में मिल जाता है, वह गंधवह (वायु) स्पर्श गुण खोकर, आकाश में लीन होता है; वह विष्णुपद (आकाश) शब्दगुण-रहित होकर आत्मा में मिल जाता है। इंद्रिय, मन और बुद्धि विकारों के साथ अहकार में प्रवेश करती है। वह अहंकार स्वगुण से युक्त होकर परमात्मा मे पहुँचता है। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और लय (नाश) करनेवाली माया त्रिवर्णात्मक है। यों माया का स्वरूप और उसकी महिमा का विवरण बतलाने पर नरपाल (निमि राजा) ने ऐसा कहा : ५२ [उ.] "हे भूनुत! (जगद्वंद्य), सत्यवाक्य गुणभूषण! मुझे इसकी कथा उत्साह और लगन के साथ कहकर समझाओ कि ज्ञान-विहीन नरसघ (मनुष्य-समाज) उस अगोचर माया को अपने अन्दर दबा देकर हरिलोक में कैसे पहुँचेगे?" —[राजा के] यों पूछने पर प्रेम के साथ यों कहने लगा : ५३

ऋषभकुमारों में से प्रबुद्ध और पिप्पल का दिया हुआ परमार्थ का उपदेश

[व.] "सूर्योदय और सूर्यास्त के साथ-साथ प्रतिदिन मनुष्य की आयु क्षीण होती जाती है; फिर भी जो लोग देह-कलत्र (-स्त्री)-मित्र-भ्रातृ जनों पर ममता रख उस पाश (बंधन) में बँधे रहते और उससे छुटकारा पाने

विषयासक्ततं जिक्कि तम्मुदारॅरुंगक युंडि, विरक्तिमार्गंबु दॅलियक वर्तिचु मूढुलगु जनंबुल पोंतलं बोवक, केवल विष्णुभक्ति भावंबु गल सद्गुरुलं ब्रतिदिनंबुनु भजियिंचि, सात्त्विकंबु, भूतदययुनु, हरिकथामृत-पानंबुनु, ब्रह्मचर्य व्रतंबुनु, विषयंबुल मनंबु चेरकुंडुटमु, साधुसंगबुनु, सज्जनमैत्रियु, विनयसंपत्तियु, शुचित्वंबु, तपंबुनु, क्षमयु, मौनव्रतंबुनु वेद शास्त्राध्ययन तदर्थानुष्ठानंबुनु, नहिंसयु, सुखदुःखादि द्वंद्वसहिष्णुतयु नीश्वरुनि सर्वगतुनिगा भाविचुटयु, मुमुक्षुत्वंबुनु, जनसंग-वर्जनंबुनु, वल्कलादि धारणंबुनु, यदृच्छालाभ संतुष्टियु, वेदांत शास्त्रार्थ जिज्ञासुत्वंबुनु, देवतांतर निंदा वर्जनंबुनु, गरणत्रय शिक्षणंबुनु, सत्यवाक्यतयु, शमदमादि गुणविशिष्टत्वंबुनु, गृहाराम क्षेत्र कळत्र पुत्र वित्ताबुल हरिकर्पणंबु सेयुटयु, नितरदर्शन वर्जनंबु सेयुटयुनु, भागवतोत्तम धर्मंबुलु। अनि चॅप्पि यिट्लनिपॅ ॥ 54 ॥

कं. हरिदासुल मित्रत्वमु, मुररिपुकथ लॅन्नि कोनुचु मोदमुतोडन्
भरिताश्रु पुलकितुंडयि, पुरुषुडु हरिमाय गॅलुचु भूपवरेण्या ! ॥ 55 ॥

का उपाय न पाकर संसार के अंधकार में मग्न हो, गतागत (भूत-भविष्यत्) काल न जानने के कारण दिवांध (उल्लू) आदि जंतुजाल की भाँति, जन्म, जरा (वृद्धावस्था), रोग, विपद् और मरण के वश होते रहते हैं, और इस शरीर ही को उत्तम मान, प्रमोद, मोह और मदिरापान में मस्त हो, विषयासक्ति में फँसकर अपने आप को न जानकर, विरक्ति मार्ग से अनजान रहते हैं। ऐसे मूढ़ों के समीप नहीं जाते, केवल विष्णुभक्ति-भाव से भरे सद्गुरुओं की ही सेवा प्रतिदिन करते हैं। सात्त्विक वृत्ति, भूतदया, हरिकथामृत-पान, ब्रह्मचर्य-व्रत, विषयों (सुखभोग) को मन में जगह न देना, साधुओं की संगति, सज्जन-मैत्री, विनय-संपत्ति, शुचिता, तप, क्षमा, मौनव्रत, वेदशास्त्राध्ययन, तदर्थानुष्ठान [वेद-शास्त्रों में बताए अर्थों (विषयों) का आचरण], अहिंसा, सुख-दुख आदि द्वंद्वों की सहिष्णुता, ईश्वर के सर्वगत होने की भावना, मुमुक्षत्व, जनसंग-वर्जन, वल्कलादि धारण, यदृच्छा-लाभ-संतोष, वेदांतशास्त्रार्थ-जिज्ञासा, अन्य देवता-निंदा-वर्जन, त्रिकरण (मन-वचन-कार्य) का शिक्षण, सत्यवाक्‌परता, शम-दम आदि गुणविशिष्टता, गृह-आराम (वन)-क्षेत्र (खेत)-कलत्र (स्त्री)-पुत्र-वित्त (धन) आदि का हरि (भगवान्) को अर्पण करना, इतर-दर्शन-वर्जन —ये सब परम भागवतों के धर्म है।" —यों बताकर उन्होंने फिर इस प्रकार कहा : ५४ [कं.] "हे भूपवरेण्य (राजोत्तम) ! जो पुरुष हरिदासों से मित्रता करते हुए, मुररिपु (विष्णु) की कथाओं का मनन कर आनंद से भरित आँसू बहाकर पुलकित होता है, वह हरिमाया को

व. अनिन राजेंद्रुंडु वारलकिट्लनियें। भागवतुलारा! सकललोक नायकुंडगु, नारायणुडनं बरगिन परमात्मुनि प्रभावंबु विनवलतु। आनतिंडु। अनिन, पिप्पलाह्वयुंडिट्लनियें ॥ 56 ॥

सी. नरवर! विनु जगन्नाथुनि चारित्रमेंट्रिगितु नी मदि किपु मिगुल
लसदुद्भव स्थिति लयकारणंबयि देहेंद्रियादुल दिरमु गाग
जीनुपु नेप्पुडु परंज्योति स्वरूपंबु ज्वाललनलुनंडु जननि पगिदि
निंद्रियंबुलु नात्म नेनयवु शब्दंबु पोरयक सुस्थिरंबु बोंदु सत्य

ते. मनग सत्वरज स्तमोमयगुणंबु
महदहंकार रूपमै महिम वेलयु
जेतनत्वंबुगल दीनि जीवमंडु-
रिदिय सदसत्स्वरूपमै येन्नदगुनु ॥ 57 ॥

व. दीनिकि वेक्कनदि परमात्मगा नेंरिगि, कमल संभवादुलु नुतियिंतुरु। इट्टि परमात्म, स्थावर जंगमंबुल नधिष्ठिंचि, वृद्धिक्षयंबुलं बोंदक, निमित्तमात्रंबुनं वरु लतादुलंदु जीवंबुलेक, तदंतरस्थुंडै वर्तिंचु। अंत सर्वेंद्रियावृतंबैन याकारंबु नष्टंबैन, मनंबुनु वासि, श्रुति विरहितुंडै,

जीत लेगा।" ५५ [व.] यह सुन राजेंद्र ने उनसे कहा: "हे भागवत! सकललोक-नायक और नारायण कहलानेवाले परमात्मा का प्रभाव मैं सुनना चाहता हूँ, आज्ञा दीजिए।" इस पर पिप्पल नामक (ऋषि) ने यों कहा: ५६ [सी.] "हे नरवर! जगन्नाथ (भगवान्) का चरित मनोहर रूप में तुम्हें बता दूँगा, सुनो। वह जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय (नाश) का कारण बना हुआ है। वह अपना परंज्योति-रूप से [प्राणियों की] देह, इंद्रिय आदि में स्थिर रूप से भरा रहता है। जिस प्रकार ज्वालाओं में अग्नि [मन आदि] इंद्रियाँ आत्मा की अनुरूपता (समता) पा नहीं सकतीं। शब्द [अर्थात् वेद] सत्यस्वरूप होते हुए भी आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं कर सकते, इसमें वे कुंठित हो जाते हैं। [ते.] सत्त्व, रज, तम रूपी गुण महदहंकार के रूप में महिमान्वित होता है, चेतनतायुक्त होकर वह जीव कहलाता है और वही [आत्मा का] सदसद्-स्वरूप माना जाता है। ५७ [व.] परमात्मा को इससे अधिक (बढ़कर) जानकर कमल-संभव (ब्रह्मा) आदि उसकी स्तुति करते हैं। ऐसा परमात्मा स्थावर और जंगमों (अचेतन-चेतनों) में अधिष्ठित होकर भी, वृद्धि और क्षय को नहीं पाता; वह तरु-लता आदि में, जीव (चैतन्य) रहित हो निमित्त मात्र से अंतर्भूत होकर रहता है। समस्त इंद्रियों से आवृत (घिरा हुआ) आकार जब नष्ट हो जाता है, तब जीवात्मा मन को छोड़ देता है और ज्ञान (स्मृति) शून्य हो घूमता रहता है।

तिरुगुचुंडु। निर्मलज्ञानदृष्टि गलवानिकि भानुप्रभाजालंबु तोचिनक्रियनु, सुज्ञानवंतुंडु हरिभक्तिचेत गुणकर्मार्थंबुलैन चित्तदोषंबुलु भंजिंचि, भगवत् सदनंबु चेरु। अनिन, विनि, राजिट्लनियें ॥ 58 ॥

कं. पुरुषुंडेये कर्म, परुवडि गाविंचि पुण्यपरुडै मनु दा
दुरितमुल दीरगि मुररिपु, चरणयुगंबट्लु चेरु सन्मुनिवर्या ! ॥ 59 ॥

ऋषभ कुमारुललो नाविर्होत्र द्रमीळुलु तॆलुपु परमार्थोपदेशमु

व. अनिन विनि, यंदाविर्होत्रुंडिट्लनियें। कर्माकर्म प्रतिपादकंबुलगु श्रुति वादंबुललौकिक वर्णितंबुलु। अट्टि याम्नायंबुलु सर्वेश्वर स्वरूपंबुलु गान विद्वांसुलुनेरुंगलेरु। अनि कर्माचारंबु लनंबडु। मोक्षंबुकोरकु नारायण भजनंबु परमपावनंबु। वेदोक्तंबुल नाचरिंपक, फलंबुलकु वांछसेयुवारलनेक जन्मायुतंबुलं वडयुदुरु। मोक्षंबु नपेक्षिंचुवाडु विधिचोदित मार्गंबुन हरिं बूजिंपवलयु। अट्टि पूजाप्रकारं बॆट्लनिन, पवित्र गात्रुंडै, जनार्दनु सन्निधि बूतचित्तुंडै, विध्युक्त प्रकारंबुन

निर्मल दृष्टि रखनेवाले को जिस प्रकार भानुप्रभाजाल (सूर्य का प्रकाश) गोचर होता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् नर हरिभक्ति के द्वारा गुण-कर्मों से उत्पन्न चित्त के दोषों का निर्मूलन करके भगवान् के सदन (निलय) को प्राप्त करता है।" [इस प्रकार] कहने पर, सुनकर राजा [निमि] ने यों कहा (पूछा): ५८ [कं.] "हे सन्मुनिवर्य ! [कृपया यह बताओ कि] पुरुष, कौन-कौन से कर्म क्रमानुसार करके पुण्यवान बन जीवन बिताता हुआ, पापों से विमुक्त हो [अंत में] मुररिपु (विष्णु भगवान) के चरणद्वय का आश्रय प्राप्त करता है ?" ५९

आविर्होत्र-द्रमील नामक ऋषभकुमारों का दिया परमार्थ का उपदेश

[व.] कहने पर सुनकर, आविर्होत्र ने यों कहा, "श्रुतिवाद (वेद) कर्म-अकर्म-प्रतिपादक हैं, वे अलौकिक-वर्णित हैं (लौकिक-पुरुष द्वारा वर्णित नहीं हैं)। वे आम्नाय सर्वेश्वर-स्वरूपी है, अतः विद्वान् भी उन्हें [ठीक-ठीक] नहीं जान सकते। वे कर्माचार कहलाते हैं। मोक्ष के लिए नारायण का भजन परम-पावन है। वेदोक्त कर्माचरण किए बिना फलों की वांछा करनेवाले लोग अनेक (हज़ारों) जन्म लेते हैं। मोक्ष की अपेक्षा (अभिलाषा) रखनेवालों को विधिचोदित (विधियुक्त) मार्ग पर चलकर हरि की पूजा करनी चाहिए। वैसी पूजा का प्रकार (विधान) यों होगा —पवित्र-गात्र (निर्मल शरीर वाली) होकर, जनार्दन की सन्निधि (सामने) में पूत (पवित्र) चित्त से विधियुक्त प्रकार चक्रधर (भगवान्)

८४७

जक्रधरुनि ध्यानिंचि, गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्यंबुलु समर्पिंचि, साष्टांग दंडप्रणामंबु लाचरिंचि, भक्ति भावना विशेषुंडगु नतंडु हरि जेरु। अनि चॅप्पिन, विनि, विदेहुंडिट्लनियें। ईश्वरुं डॅये कर्मंबुल नाचरिंचॅ नंतयु नॅरिंगिपुमु। अनिन द्रमीळुं डिट्लनियॅ ॥ 60 ॥

अध्यायमु—४

कं. तारल नॅन्नग वच्चुनु, भूरेणुव लॅक्क पॅट्ट वोलुनु धात्रिन्
नारायण गुणकथनमु, लारय वर्णिप लेरु हर ब्रह्मादुल् ॥ 61 ॥

व. इट्लु गावुन नात्मसृष्टंबैन मनंबुन, बंचभूत निकरंबनु पुरंबोनरिंचि, यंदु निजांशंबुन ब्रवेशिंचि, सगुण निष्ठुंडै, नारायणाभिधानंबुन गल ऋषीश्वरुंडगु परमेश्वरुंडु वॅलुगोंदनु। अतनि दशेंद्रियंबुलचेत बालितंबुलैन देहंबुलु धरियिंचि, जगद्रक्षकत्व संहारकत्वादि गुणंबुलु गलुगुट जेसि, गुणनिष्ठुंडै, रजस्सत्त्वतमोगुणंबुल ब्रह्म विष्णु रुद्रमूर्तुलनं बरगि, त्रिगुणात्मकुंडनंबडु नारायणाख्युनि चरित्रं बॅरिंगिचॅद। आकर्णिपुमु ॥62॥

कं. धर्मुंडु दक्षपुत्रिक, निर्मलमति वॅंड्लि याडि नॅरि बुत्रुनि स-
त्कर्मुनि नारायणऋषि, नर्मिलि गनॅ नतडु बदरिकाश्रममंदुन् ॥ 63 ॥

का ध्यान करके, गंध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित कर, साष्टांग-दंड-प्रणाम पूर्वक जो नर विशेष भक्ति-भावना-युक्त होता है, वह हरि के पास पहुँचता है।" यह कथन सुनकर विदेह ने यों कहा, "ईश्वर ने कौन-कौन से कर्म किये ? वह सब मुझे बताओ।" तब द्रमील ने इस प्रकार कहा : ६०

अध्याय—४

[कं.] ताराओं को गिन सकते हैं, भूरेणुओं (धूलकणों) को भी गिना जा सकता है, किन्तु इस भूमि पर शिव और ब्रह्मा भी नारायण के गुणों का न कथन कर सकते हैं, न समझकर वर्णन कर सकते हैं। ६१ [व.] अपने आप रचे मन में [परमेश्वर] पंचभूत-निकर (-समूह) से एक पुर (नगर) बनाकर, उसमें अपने अंश से प्रविष्ट हुआ, यों सगुण-निष्ठ होकर वह परमेश्वर जो ऋषीश्वर था, नारायण के नाम से प्रकाशमान रहा। अपनी दस इंद्रियों से शासित देह धारण कर जगद्रक्षकत्व और संहारकत्व आदि गुणों से युक्त हो गुणनिष्ठ हुआ। रजस्सत्वतमोगुणों के कारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र मूर्तियों के नाम से जो त्रिगुणात्मक बन गया, उस नारायण का चरित्र बखान करूँगा। ध्यान से सुनो। ६२ [कं.] धर्म ने दक्षपुत्रिका [जिसका नाम] निर्मलमति [है] से ब्याह कर, अनंतर

ते. अट्टि नारायणाह्वयुंडैन मौनि
बदरिकाश्रममंदु नपार निष्ठ
दपमु गाविंप वलभेदि दलकि मदिनि
मीनकेतनु दिविजकामिनुल बनिचे ॥ 64 ॥

व. वारु नारायणाश्रमंबुनकु नतनि तपोविघ्नंबु सेय वच्चुनप्पुडव्वनंबु, साल रसाल बिल्व कदळी खर्जूर जंबु जंबीर चंदन पुन्नाग मंदारादि विविध वृक्ष निबिडंबुनु, पुष्प फल भरित शाखावनम्र तरुलतावृंदंबुनु, माधवीकुंज मंजरीपुंज मकरंदपान मत्त मधुकर निकर झंकाररव मुखरित हरिदंतरंबुनु, कनककमल कल्हार विलसत्सरोविहरमाण चक्रवाक बक क्रौंच मराळ दंपति मंडल मंडितंबुनु, मृणाळभोजनासक्त सारसचय चंचूपुट विपाटित कमलमुकुळ केसरविसर वितत प्रशस्त सरोवरंबुनुनै, वॅलयु। अव्वनंबुन निंदुवदनलंदंद मंदगमनंबुलं जेंदु घर्मजलबिंदु बृंदंबुलु नखांतंबुल नोसरिपुच्चु डायं जनुनप्पुडु ॥ 65 ॥

चं. मदनुनि बाणजालमुन मग्नत नॊंदक धैर्यवंतुडै
मुदितल वाडिचूपुलकु मोहमु नॊंदक निश्चलात्मुडै

बदरिकाश्रम में सत्कर्मी, नारायण ऋषि नामक प्रिय पुत्र को जन्म दिया। ६३ [ते.] नारायण नामक वह मुनि बदरिकाश्रम में अपार निष्ठा से जब तपस्या कर रहा था तो इंद्र ने मन में डरकर मीनकेतन (कामदेव) और दिविजकामिनियों (अप्सराओं) को भेज दिया। ६४ [व.] तप में विघ्न डालने के लिए वे जब नारायण के आश्रम में आयीं तो वह वन साल, रसाल, बिल्व, कदली, खर्जूर, जंबु, जंबीर, चंदन, पुन्नाग, मदार आदि विविध वृक्षों से भरा हुआ था। तरु (वृक्ष) लताओं की शाखाएँ फल-फूलों से लदकर झुकी थीं; माधवी कुंजों के मंजरी-पुंज का मकरंद पीकर मत्त हुआ मधुकर-निकर (भौंरों का झुंड) गगन-मंडल को झंकार-रव से मुखरित कर रहा था। कनक-कमल, कल्हारों से शोभायमान सरोवरों में विहार करता हुआ चक्रवाक-बक-क्रौंच-मराल-दंपति-मंडल उस वन को सुंदर बना रहा था। मृणाल-भोजनासक्त सारसचय (हंस समूह) अपने चंचुपुटों में रखकर, कमल-मुकुलों (कलियों) को जब चीर रहा तो उनसे गिरनेवाला केसर-समूह जल में व्याप्त होकर, सरोवरों को प्रशस्त बनाता रहा। इस प्रकार के वन में वे इंदुवदना (चंद्रमुखी) अप्सराएँ मंदगमन से चल कर, [अपने मुखों पर छाये] घर्मबिंदुओं (पसीने की बूंदों) को नखाग्रों से गिराते (हटाते) हुए, जब [तपस्वी के] पास पहुँच गयी, तब ६५ [च.] वह मौनी मदन (कामदेव) के बाण-जाल में मग्न न होकर, धैर्यवान् बना रहा; रमणियों के

हृदयमुनदु नच्युतु रमेशु ननंतु जगन्निवासुनिन्
वदलक भक्ति निल्पुकॉनि वारिकि निट्लनॅ मौनि पॅपुनन् ॥ 66 ॥

कं. जंभारि पंपुननु मी, -रंभोरुह वदनलार ! यरुदॅंचिति रा-
शुंभद्विहार वांछा, -रंभंबुन दिरुगुडनिन लज्जिचि वॅसन् ॥ 67 ॥

सी. देवमौनीश ! नी दिव्यचारित्रंबु, नॅरिंगि सन्नुति सेय नॅव्वडोपु
बुत्र मित्र कळत्र भोगादुलनु मानि तपमु गाविचु सद्धर्मुलकुनु
विघ्नमुल् चॅंदुने विश्वेशु गॉल्चिन यतनिकि नंतरायंबु गलदॅ
कामंबु क्रोधंबु गलिगिन तपमुलु पल्वलोदकमुल भंगि गावॅ

ते. निन्नु वर्णिप नलविये निर्मलात्म !
रमण लोगॉनु मा यपराधमनुचु
सन्नुतिचिन नतडु प्रसन्नुडगुचु
दनदु सामर्थ्यमॅरिंगिप दलचि यपुडु ॥ 68 ॥

व. अम्मुनीश्वरुंडु परमाश्चर्य निधानंबुगा निज तनूरुहंबुल वलनं ब्रिकोटि कन्यका निवहंबुलनुद्भविपं जेसिन, गंधर्व विबुध कामिनी समुदयंबुलु परमाद्भुत भयंबुलु मनंबुलं बॉडम सन्नुतिचि, यव्विलासिनी समूहंबुलो नूर्वशियनु दानि गॉनि चनि, पाकशासनु सभाभवनंबुनं बॅट्टि, तद्वृत्तांतं-

पैने कटाक्षों से मोहित न होकर निश्चलात्म बना रहा; अपने हृदय में अच्युत, रमेश, अनंत और जगन्निवास [परमात्मा] की अविरत भक्ति स्थिर करके, उसने उनसे गौरवपूर्वक यों कहा : ६६ [कं.] "हे अंभोरुह-वदनी (कमल-मुखी) वनिताओ ! जंभारि (इंद्र) के आदेश से तुम लोग यहाँ आयी हो न ? अपनी स्वेच्छाविहार की कामना लेकर अब तुम भ्रमण करो"। यों कहने पर, लज्जित होकर उन्होंने झट [यों कहा] ६७ [सी.] "हे देवमुनीश ! तुम्हारा दिव्य-चरित जानकर, उसकी स्तुति करना किसके लिए साध्य (संभव) होगा ? पुत्र, मित्र, कलत्र (स्त्री), [सुख] भोग आदि छोड़कर तप करनेवाले सद्धर्मियों को विघ्नबाधा क्यों होगी ? विश्वेश के सेवक को रुकावट कैसे होगी ? काम और क्रोध के साथ किया जानेवाले तप पल्वलोदक (ढाबर-जल) के समान निरुपयोगी ही होगा। [ते.] हे निर्मलात्मा ! तुम्हारा वर्णन करना [किसी के] वश की बात नहीं है; प्रीति के साथ हमारा अपराध क्षमा करो।" —यों सन्नुति (स्तोत्र) करने पर प्रसन्न होकर, उसने अपना सामर्थ्य दिखाना चाहा। तब ६८ [व.] उस मुनीश्वर ने अपने शरीर के रोमों से तीन करोड़ कन्याओं का समूह उत्पन्न किया जो अत्यंत आश्चर्यजनक कार्य था। इसे देख देव-गंधर्व-कामिनी-समुदाय के मन में आश्चर्य और भय उत्पन्न हुआ। उन्होंने मुनि की स्तुति करके उन

बंतयु निर्विचिन, नाश्चर्ययुक्त हृदयुंडै, सुनासीरुंडूरकुंडे। इट्टि नारायण मुनीश्वरु चरित्रंबु विनुवारलु, परग कल्याणगुणवंतुलगुदुरु। अनि चॅप्पिन ॥ 69 ॥

ते. ऋषभुनकु नात्मयोग मी रीति जॅप्पि
यच्युतुडु भूमिभारमु नडप नंत
सौरिदि नवतारमुलु दाल्चि सॉंपुमीर
रात्रिचरुलनु जंपॅ नीरसमुतोड ॥ 70 ॥

व. अट्टि परमेश्वरुनि लीलागृहीतंबुलगु, मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, राम, रघुराम, राम, बुद्ध, कल्क्याद्यवतारंबुलनेकंबुलु गलवु। शेषभाषापतुलकैन वर्णिप नलवि गादु। मरियुनु ॥ 71 ॥

सर्व. सी. नव विकच सरसिरुह नयनयुग! निजचरण
गगनचरनदि! जनित निगमविनुत!
जलधिसुत कुचकलश ललित मृगमद रुचिर
परिमळित निजहृदय! धरणिभरण!
द्रुहिणमुख सुरनिकर विहित नुतिफलित गुण!
कटिघटित रुचिरतर कनकवसन!
भुजगरिपु वरगमन! रजतगिरिपति विनुत!
सतत वृतजप नियमसरणि चरित!

विलासिनियों के समूह में से ऊर्वशी नामक कामिनी को अपने साथ ले जाकर इंद्र की सभा में प्रस्तुत किया और सारा वृत्तांत कह सुनाया। इस पर सुनासीर (इंद्र) का हृदय आश्चर्य से भर गया तो वह चुप रह गया। इस नारायण मुनीश्वर का चरित्र जो लोग सुनेंगे वे परम कल्याण गुण प्राप्त करेंगे।" इस प्रकार कहने के बाद ६९ [ते.] ऋषभ [द्रमील] ने [राजा को] आत्मयोग सुनाया। फिर उसने कहा— "भूमि का भार उतारने के निमित्त अच्युत ने एक-एक करके अनेक अवतार लिये और कठोरता से समस्त रात्रिचरों (राक्षसों) का नाश किया। ७० [व.] मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम (परशुराम), रघु राम, राम (बलराम), बुद्ध, कल्कि आदि अवतार अनेक हैं जिन्हें इस परमेश्वर ने लीला से ग्रहण किया था, शेष और भाषापति (ब्रह्मा) के लिए भी उनका वर्णन करना शक्य नहीं है। और भी ७१ [सर्व लघु. सी.] नव-विकच-सरसिरुह-नयनयुग! (टटके खिले कमल-समान नेत्रद्वय वाले); निजचरण-गगनचर-नदी-जनित! (अपने चरण से सुरनदी-गंगा को उत्पन्न करनेवाले); निगम-विनुत! (वेदों से सस्तुत्य होनेवाले); जलधिसुत-

ते. तिमि ! कमठ ! किटि ! नृहरि ! मुदित बलिनिहि-
त पद ! परशुधर ! दशवदन विदळन !
मुरमथन ! कलिकलुष सुमुदप हरण !
करिवरद ! मुनि नर सुर गरुड विनुत ! ॥ 72 ॥ [1]

व. इव्विधंबुनं ब्रवर्तिल्लिन श्रीमन्नारायणमूर्ति लीलाविलासंबुलनंतंबुलु गलवु। मनो वाक्काय कर्मंबुल हरिपूजनंबु सेयक, विपरीत गतुलं दिरुगुचुंडु जडुलकॆव्विधंबुन गति गलुगु ? अनिन, नप्पुडमिरेंडप्परम-पुरुषुलं जूचि, यट्टि जडुलु मुक्तिनोंदु नुपायं बॆट्टुलु, अंतयु नॆरिंगिपुमु । अनिन चमसुं [च्यवनु] डिट्लनियॆ ॥ 73 ॥

कुचकलश-कलित-मृगमद-रुचिर-परिमलित-निज-हृदय ! [लक्ष्मी के कुच-कलश में लगी कस्तूरी के परिमल से सुवासित हृदय (वक्ष)वाले]; धरणि-भरण ! (भूमि का भरण करनेवाले); ब्रह्मा आदि देवगण से स्तुत्य गुणों वाले ! कटिघटित-रुचिरतर-कनक-वसन ! (कमर में बँधे सुंदर-पीतांबरवाले); भुजग-रिपुवर-गमन ! (सर्पशत्रु-गरुड पर गमन करने वाले); रजतगिरिपति-विनुत ! (कैलास-नाथ अर्थात् शिव से संपूजित देव); जप-तप-नियम-निर्धारक-चरित्र वाले ! [ते.] मत्स्य ! कूर्म ! वराह ! नृसिह ! प्रसन्न-चित्त बलि के सिर पर रखे चरण वाले ! परशुधर ! दशवदन-रावण को दलित करनेवाले ! मुरहरि ! कलि-कलुष-हरि ! करि-वरद (गजेंद्ररक्षक) ! मुनि, नर, सुर (देवता), गरुड़ आदि से पूजित ! ७२ [व.] ऐसे-ऐसे सम्बोधनों से संकीर्तित श्रीमन्नारायणमूर्ति के लीला-विलास अनंत है। मन-वचन-कर्म से जो लोग हरि की पूजा किये बिना, विपरीत मार्गों पर चलनेवाले मूढ़ जनों को सद्गति कैसे प्राप्त होगी ? —यों कहने पर राजा ने उन परमपुरुषों (मुनियों) को देखकर कहा, "वैसे मूढ़ों को मुक्ति (मोक्ष) दिलाने का उपाय कौन सा है, मुझे सविस्तर बता दो।" यों पूछे जाने पर चमस (च्यवन) मुनि ने यों कहा (सुनाया) : ७३

1 सर्वलघु छंद में सभी अक्षर लघु होते हैं।

अध्यायमु—५

ऋषभकुमारुलगु चमस करभाजनुलु सेसॅडु परमार्थोपदेशमु

सी. हरि मुख बाहूरु वर पदाब्जमुलंदु वरुस जतुर्वर्ण वर्गसमिति
जनियिंचॅ नंदुलो सतुलुनु शूद्रुलु हरि दलंतुरु कलिहायनमुल
वेद शास्त्र पुराण विख्यातुलयि कर्म कर्तलै विप्रुलु गर्वमॅसगि
हरिभक्तिपरुलनु हास्यंबु सेयुचु निरयंबु नॊंदुट निजमु गाॅव

ते. मृदुल पक्वान्नमुलनु वा मॅसग गोरि
जीवहिंसकु जनुवानि जॅंदु नघमु
हरि नुतिपक स्त्रीलोलुडैनवाडु
नरकवासुंडुनगुचुंडु ननवरतमु ॥ 74 ॥

व. अट्लु गावुन, गृह क्षेत्र पुत्र कळत्र धन धान्यावुलंदु मोहितुंडयि, मुक्ति मार्गंबुलप्रत्यक्षंबुलनि, निंदिंचुवाडुनु, हरिभक्ति विरहितुंडुनु, दुर्गति गूलुडुरु। अनि मुनिवरुंडानतिच्चिन, विदेहुंडिट्लनियॆ ॥ 75 ॥

आ. ए युगंबुनंदु नेरीति वर्तिंचु
नॆट्टि रूपुवाडु नॆव्विधमुन

अध्याय—५

ऋषभकुमार चमस और करभाजन का दिया परमार्थोपदेश

[सी.] "हरि के मुख, बाहु, ऊरु (जाँघें) तथा पदाब्जों (चरण-कमलों) से क्रमशः चतुर्वर्ग के जन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) उत्पन्न हुए। उनमें स्त्रियाँ और शूद्रजन हरि का स्मरण करते रहते हैं, परंतु विप्र (ब्राह्मण) लोग कलियुग में वेद, शास्त्र, पुराण आदि में विख्यात होकर, गर्व से भर जायेंगे और हरि के भक्तों की हँसी उड़ाते हुए निश्चय ही नरक भोगेंगे। [ते.] मृदु पक्वान्न खाने की इच्छा से जीव-हिंसा करनेवाले को पाप लगेगा; हरि का भजन छोड़ स्त्रीलोल (आसक्त) हो रहनेवाला सर्वदा, नरकवासी बन जायगा। ७४ [व.] अतः गृह, क्षेत्र, पुत्र, कलत्र (स्त्री) धन और धान्य आदि में मोह रखकर मुक्तिमार्ग को अप्रत्यक्ष (संदेहास्पद) कहकर निंदा करनेवाला तथा हरिभक्ति-विरहित जन [अंत में] दुर्गति में जा गिरेगा।" —मुनि के यों समझाने पर विदेह राजा ने फिर यों कहा (पूछा): ७५ [आ.] "अव्यय, विश्व का स्वामी, विष्णु [भगवान] किस-किस युग में किस-किस प्रकार से व्यवहार करता है? उसका रूप कैसा होता है? मुनि और देवगण ने पूर्व में उसकी सन्नुति किस रीति से की

मुनु नुतिपवडॆनु मुनिदेव गणमुचे
विष्णुडव्ययुंडु विश्वविभुडु ? ॥ 76 ॥

व. अनिन विनि, यंडु गरभाजनुंडिट्लनियॆ। नानावतारंबुलनु, नानारूपंबुलनु, बहुविध वर्णंबुलनुं गलिगि, राक्षसुलनु संहरिंचि, दुष्टजन निग्रहंबुनु, शिष्टजन परिपालनंबुनु नेयुचुं, गृतयुगंबुन शुक्लवर्णुंडै, चतुर्बाहुंडै, जटा वल्कलकृष्णाजिनोत्तरीय जपमालिका दंडकमंडलुधरुंडै, हरि, निर्मल तपो-ध्यानानुष्ठान गरिष्ठुलैन पुरुषश्रेष्ठुलचेत हंसुंडु, सुपर्णुंडु, वैकुंठुंडु, धर्मुंडु अमलुंडु, योगीश्वरुंडु, ईश्वरुंडु, पुरुषुंडु, अव्यक्तुंडु, परमात्मुंडु अनु दिव्यनामंबुलं बसिद्धि वहिंचि, मोदटि युगंबुन गणुतिपंबडु। त्रेतायुगंबुन रक्तवर्णुंडै, बाहुचतुष्कमेखलात्रय विशिष्टुंडै, हिरण्यकेशुंडुनु, वेदत्रय स्वरूपुंडुनु, स्रुक्-स्रुवाद्युपलक्षण शोभितुंडुनुनै, विष्णु यज्ञ पृश्निगर्भ सर्वदेवोरुक्रम वृषाकपि जयं तोरुगायाख्यल ब्रह्मवादुलचेत नुतियिपंबडु। द्वापरंबुन श्यामल देहुंडुनु, पीतांबर धरुंडुनु, बाहुद्वयोपशोभितुंडुनु, दिव्यायुध धरुंडुनु, श्रीवत्स कौस्तुभ वनमालिका विराजमानुंडुनु, महाराजोपलक्षणुंडुनुनै, जनार्दन वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्ध ऋषि पुरुष महात्म विश्वनारायण विश्वरूप सर्वभूतात्मकादि

थी।" ७६ [व.] यह सुन उन मुनियों को करभाजन ने ऐसा समझाया। नाना (विविध) अवतारों में, विविध रूप, विविध वर्ण धरकर राक्षसों का संहार कर, [परमेश्वर] दुष्टजनों का निग्रह और शिष्टजनों का परिपालन करता रहता है, कृतयुग में हरि शुक्ल (सफ़ेद) वर्ण, चतुर्बाहु, जटा-वल्कल-कृष्णाजिन-उत्तरीय-जपमालिका-दंड और कमंडल धारण करता है। निर्मल-तप-ध्यान-अनुष्ठानों से गरिष्ठ (श्रेष्ठ) बने हुए पुरुषश्रेष्ठों द्वारा हरि उस प्रथम युग में 'हंस', 'सुपर्ण', 'वैकुंठ', 'धर्म', 'अमल', 'योगीश्वर', 'ईश्वर', 'पुरुष', 'अव्यक्त', 'परमात्मा' [आदि] दिव्य नामों से संबोधित हो, संपूज्य होता है। त्रेतायुग में भगवान रक्तवर्ण में, बाहुचतुष्क (चतुर्भुज), मेखलात्रय से विशिष्ट होकर हिरण्यकेश (सुनहले केश) और वेदत्रय (तीन वेद) के स्वरूप में विराजता, और स्रुक्, स्रुवा आदि उपलक्षणों से शोभित होता रहता। ब्रह्मवादी [ऋषि-मुनि] लोग उसे— "विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय" के नामों से पूजते हैं। द्वापर युग में वह श्यामलदेही, पीतांबरधारी होकर बाहुद्वय से शोभित रहता है, दिव्य आयुध (अस्त्र) धर कर श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमालिका से विराजमान रहता, और महाराज-लक्षणों से युक्त हो, "जनार्दन, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, ऋषि, पुरुष, महात्मा, विश्व, नारायण, विश्वरूप, सर्वभूतात्मक" आदि नामों से

नामंबुल बॆलसि, मूर्धाभिषिक्तुलचेत सन्नुतिपंबडु। कलियुगंबुन गृष्ण वर्णुंडुनु, गृष्णनामकुंडुनै, भक्त संरक्षणार्थंबु पुंडरीकाक्षुंडु, विविध यज्ञंबुलचे संकीर्तनाबुलचेतं ब्रस्तुतिपंबडु। हरि राम नारायण नृसिंह कंसारि नळिनोदरादि वहुविध नाममुलचे ब्रह्मवादुलुनु, मुनींद्रुलुनु, नुतिंयिपुदुरु। मरियुनु ॥ 77 ॥

ते. द्रविडदेशंबुनंदुल ताम्रपर्णि
सत्यजा कृतमालादि सकलनदुल
नॆव्वडेनियु भक्तितो नेगि यचट
बॊदलि तर्पणमॊगि जेय बुण्य मॊंदवु ॥ 78 ॥

व. इव्विधंबुनं ब्रशंसिपं दगिन कावेर्यादि महानदी पावन जलस्नान पान दानंबुलनु, विष्णुध्यान कथा सुधारसानुभवंबुलन्निरूढुलगु भागवतोत्त-मुलु गलिगिरेनियुं, जॆडनिपदंबु बॊंदुदुरु। अनि, ऋषभकुमारुलु भगवत् प्रतिबिंबंबुलयिन, भगवद् भक्ति धर्मंबुलुपदेशिंचि, यंतर्धानंबु नॊंदिरि। मिथिलेश्वरुंडुनु सुज्ञानयोगंबंगीकरिंचि, निर्वाणपदंबु नॊंदॆ। ई युपाख्यानंबु व्रासिन, बठिंचिन, विनिन, नायुरारोगैश्वर्यंबुलु गलिगि, पुत्र पौत्रवंतुलयि, सकल कलिकल्मष रहितुलै, विष्णुलोक निवासुलगुदुरु। अनि, नारदुंडु वसुदेवुनकुं जॆप्पि, मरियु ॥ 79 ॥

प्रसिद्ध होकर मूर्धाभिषिक्तों (राजाओं) से सन्नुत (कीर्तित) होता है। कलियुग में पुंडरीकाक्ष (भगवान) कृष्ण (काला) वर्ण और कृष्ण नाम धर कर, भक्तों के संरक्षण के निमित्त विविध यज्ञों और संकीर्तनों द्वारा संस्तुत्य होता है। 'हरि', 'राम', 'नारायण', 'नृसिंह', 'कंसारि', 'नलिनोदर', (कमलनाथ) आदि वहुविध नामों से ब्रह्मवादी, मुनींद्र, उसकी नुति (स्तुति) करते है। और ७७ [ते.] द्रविड़ देश में स्थित ताम्रपर्णी, सह्यजा (कावेरी), कृतमाला आदि समस्त नदियों की जो नर भक्तिपूर्वक यात्रा करता है, वहाँ रहकर तर्पण करता है, वह पुण्य प्राप्त करता है। ७८ [व.] यों प्रशंसनीय कावेरी आदि महानदियों के पावन जल के स्नान, पान और दानों में तथा विष्णु-ध्यान-कथा-सुधारसानुभव में निमग्न भागवतोत्तम शाश्वत [मोक्ष] पद प्राप्त करेंगे। —इस प्रकार ऋषभकुमारों ने, जो भगवत्-प्रतिबिंब परमपुरुषों के समान थे, विदेह जनपाल (राजा) को निःश्रेयस् (मोक्ष) पद की प्राप्ति करानेवाले भगवद्-भक्ति-धर्मों के उपदेश दिए, अनंतर वे अंतर्धान हुए। मिथिलेश्वर भी वह सुज्ञानयोग अपनाकर निर्वाण पद को पहुँच गया। इस उपाख्यान को लिखने, पढ़ने और सुननेवाले आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य पाकर

सी. कमलाक्षु पदभक्ति कथनमुल् वसुदेव ! विनि यघंबुल बासि वलसितीवु
भुवन प्रसिद्धिगा वॊलुपॊंदु सत्कीर्ति कैवल्य लक्ष्मियु गलुगु मीद
नारायणुंडु नी नंदनुं डनु [मोहमॆडलिच्चि विष्णुगा नॆङिगि कॊलुवु
मतडु नी तनयुडै यवतरिंचुट जेसि सिद्धिंचॆ देहसंशुद्धि नीकु

ते. सरस सल्लाप सौहार्द सौष्ठवमुन
बावनंबैति शिशुपाल पौंड्र नरक
मुर जरासंध यवनुलु मुदमुतोड
वासुदेवुनि जॆंदिरि वैरुलय्यु ॥ 80 ॥

कं. दुष्टजन निग्रहंबुनु, शिष्ट प्रतिपालनंबु सेयन् हरि दा
सृष्टि नवतारमॊंदॆनु, स्रष्टृमुखानेक दिविजसंघमु वॊगडन् ॥ 81 ॥

ब्रह्मादि देवतलु श्रीकृष्णुनि वैकुंठमुनकु बिलुव वच्चुट

व. अट्लु गावुन लोकरक्षणार्थंबु कृष्णुंडवतारमॆत्ते। अनि, हरि भक्ति-
परंबुलगु नुपाख्यानंबुलु नारदुंडुपन्यसिंचिन विनि, बिस्मितचित्तुलै, देवकी-
वसुदेवुलु कृष्णुनि बरमात्मुनिगा विचारिंचिरि। अनि, शुकुंडु राजुनकुं

पुत्र-पौत्रवान होकर, सकल-कलि-कलमष (पाप) से मुक्त हो [अंत में] विष्णु-लोक-निवासी बन जायेंगे। —इस प्रकार नारद ने वसुदेव को कह सुनाया। अनंतर उस मुनि ने फिर से यों कहा। ७९ [सी.] हे वसुदेव ! कमलाक्ष की पदभक्ति का कथन सुनकर तुम पापों से बिमुक्त हुए हो; आगे तुम्हें भुवन (लोक) में प्रसिद्ध होकर बढ़नेवाली सत्कीर्ति और कैवल्य-लक्ष्मी (-भाग्य) प्राप्त होगी; यह मोह छोड़कर कि नारायण तुम्हारा पुत्र है, उसे विष्णु जानकर भजन करो; उसके तुम्हारा पुत्र होकर अवतार लेने के कारण से देह-संशुद्धि तुम्हें प्राप्त हुई; [ते.] उसके साथ किये सरस-सल्लाप-सौहार्द-सौष्ठव से तुम पवित्र हुए हो; बैरी होकर भी शिशुपाल, पौंड्र, नरक, मुर, जरासंध और यवन [आदि] संतोषपूर्वक वासुदेव के अपने जन हो गये। ८० [कं.] दुष्टजनों का निग्रह और शिष्टजनों का प्रतिपालन करने के निमित्त हरि ने इस लोक में अवतार लिया, ब्रह्मा आदि दिविज संघ (देवसंघ) ने उसकी कीर्ति गायी है। ८१

ब्रह्मा आदि देवों का श्रीकृष्ण को वैकुंठ में बुलाने के लिए आना

[व.] इस विधि लोकरक्षणार्थ कृष्ण ने अवतार लिया। —यों कहकर नारद ने हरिभक्तिपरक उपाख्यानों का वर्णन किया; उन्हें सुनकर देवकी और वसुदेव विस्मित-चित्त वाले हुए और कृष्ण को परमात्मा

जॆप्पिन, नतंडुनु, "मुनींद्रा ! यदुवुल नॆ प्रकारंबुन हरि हरियिंचॆं। सपरिवारुलगु ब्रह्म रुद्रेंद्र दिक्पालक मुनींद्रुलु द्वारका नगरप्रवेशंबॆट्लु चेसिरि। एमय्यॆं। मरियुं बरमेश्वर कथामृतंबु वीनुललरं जविगॊनियु निकं दनिवि सनदु। भक्तरक्षकुंडगु हरि चारित्रं बे रीति जागॆं। तर्वाति वृत्तांतंबंतयु नॆरिंगिंपुमु। अनिन शुकुंडिट्लनियॆं ॥ 82 ॥

अध्यायमु—६

कं. सुर गरुड खचर विद्या-
धर हर परमेष्ठिमुख सुधाशनुलु मुनुल्
सरसिजनयनुनि गनुगॊन
नरुदॆंचिरि द्वारवतिकि नति मोदमुनन् ॥ 83 ॥

कं. कनि परमेशुनि यादव
वनशोभित पारिजातु वनरुहनेत्रुं
जनकामित फलदायकु
विनुतिंचिरि दिविजुलपुडु वेदोक्तुलतोन् ॥ 84 ॥

ते. अखिललोकेश ! सर्वेश ! यभव ! नीवु
नुदयमंदुट भूभारमुडुपु कॊरकु

कहकर विचारा। इस प्रकार शुक ने [परीक्षित] राजा को सुनाया तो उसने यों कहा, "हे मुनींद्र ! हरि ने यादवों को कैसे हर लिया (विनष्ट किया) ? ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, दिक्पालक और मुनींद्रों ने द्वारकानगर में किस तरह प्रवेश किया ? तब क्या हुआ ? परमेश्वर का कर्णमधुर कथामृत का आस्वादन करके भी मुझे तृप्ति न हुई। भक्तरक्षक हरि का सारा चरित आगे कैसा रहा, अनंतर का सारा वृत्तांत मुझे बता दो।" इस पर शुक ने यों कहा। ८२

अध्याय—६

[कं.] सुर, गरुड़, खचर, विद्याधर, शिव, ब्रह्मा आदि सुधाशन (देवगण) और मुनि सरसिजनयन (कमलनेत्र—कृष्ण) को देखने के लिए अत्यंत हर्ष के साथ द्वारावती नगर पहुँच गये। ८३ [कं.] यादव-वन-शोभित-पारिजात, वनरुह-नेत्र वाले, कामित-जन-फलदायक, उस परमेश्वर (कृष्ण) को देखकर, दिविजों (देवताओं) ने वेद की उक्तियों (वचनों) से उसकी स्तुति गायी। ८४ [ते.] "हे अखिलेश्वर ! हे सर्वेश ! हे अभव ! भूभार उतारने के निमित्त अवतार लिये तुम्हें [अब तक] एक सौ

बंच विशोत्तर शताब्द परिमितबु-
नर्थ्यं विच्चेयु वैकुंठ हर्म्यमुनकु ॥ 85 ॥

व. अनिन, गमलभव भवमुख निखिल सुरगणंबुल वचनंबुलिय्यकोनि, कृष्णुंडु वारलतोड यादवुल कन्योन्य वैरानुबंधंबुलु गल्पिचि, वारल हतंबु गाविचि, भूभारंबडंचि, यिदे वच्चेदं बोंडनि चेप्पि, वीड्कोलिपिन गमलासनादि बृंदारकुलु निजस्थानंबुलकुं जनिरि। अंत ॥ 86 ॥

श्रीकृष्णुंडु दुर्निमित्तंबुलं गनि यादवुलनु प्रभासतीर्थंमुनकु बंपुट

सी. काक घूकंबुलु कनक सौधमुललो बगलु वापोयेंडि बहुविधमुल
नश्ववालंबुल ननल मुद्भव मय्ये नन्नंबु मोलिचें महाद्भुतमुग
शुक शारिकलु रात्रि सोगसें विस्वरमुल जंतुवु वेडोक्क जंतु गनियें
नोगि वौरगृहमुल नुल्कलु नुदयिचें बेरसें गाधिरि रविबिंबमुनु

ते. गान नुत्पातमुलु चाल गानबडियें
नरय निवुंडवलवदु यदुवुलार!
तडयकिपुड प्रभास तीर्थमुन करुगु-
डनुचु श्रीकृष्णुडेंत्तयु नानतिच्चें ॥ 87 ॥

पचीस वर्ष हुए; अब तुम वैकुंठ के निवास में आ जाओ।" ८५
[व.] कमलभव (ब्रह्मा) और भव (शिव) आदि सकल देवताओं के ये बचन सुन कृष्ण ने [उनकी प्रार्थना] मान ली। उसने देवों से यों कहा : "यादवों में अन्योन्य वैर-संबंध (कलह) कल्पित करके, उनके विनाश द्वारा भूमि का भार उतारूँगा, उसके बाद [वैकुंठ में] चला आऊँगा। तुम लोग लौट जाओ।" यों कहकर विदा किया तो कमलासन (ब्रह्मा) आदि बृंदारक-(-देवता) लोग स्वस्थानों को लौट गये। अनंतर ८६

दुर्निमित्त (दुश्शकुन) देखकर श्रीकृष्ण का यादवों को प्रभासतीर्थ में भेज देना

[सी.] "काक और घूक (कौए और उल्लू) सुनहले भवनों के अंदर घुसकर दिन में ही अनेक प्रकार से चीख मारने लगे; घोड़ों की पूँछों में से आग निकलने लगी; धान अद्भुत (विचित्र) रीति से उपजा; शुक-शारिकाएँ रात के समय विकृतस्वरों से चिल्ला कर मूर्च्छित हुईं; जानवरों ने दूसरी जाति के जंतुओं को जन्म दिया; नगर के घरों में उल्काओं का उदय हुआ; रविबिंब में काला रंग आ गया; [ते.] यों अनेक उत्पात दिखाई दिये, अतः हे यादव लोगो! तुम लोगों को अब यहाँ रहना उचित नहीं, विलंब किये बिना प्रभासतीर्थ को चले जाओ"—यों कहकर कृष्ण ने उन्हें आज्ञा

कं. नारायणु वचनमुलकु, ऒप्पारं बगु सम्मदमुन बलमुलतोडन्-
दार सुत मित्रयुतुलै, वारण हय समितितोड वडि नॆगिरिंगिन् ॥ 88 ॥

श्रीकृष्णमूर्ति युद्धवुनिकि परमार्थोपदेशमु चेयुट

व. अंत ॥ 89 ॥

कं. ज्ञानमुन नुद्धवुडु दन
मानसमुन नॆरिंगि श्रीरमाधिप ! हरि ! यो
दीनजन कल्पभूजम ! श्रीनायक !
दिक्कु नीवॆ श्रितभयहरणा ! ॥ 90 ॥

व. इट्लु नुतियिंचि, देवा ! नीवु-यदुक्षयंबु गाविंचि, चन नेमे विधंबुन निर्वहिंतुमु। नी सहचरुलमै, गडपिन मज्जन भोजन शयनासनादि कृत्यंबुलु मरव वच्चुने। अनि युद्धवुंडाडिन वासुदेवुंडिट्लनियॆ।

अध्यायमु—७

व. ब्रह्मादि देवता प्रार्थनंबुनं जेसि, धात्रीभारंबु निवारिंचिति। इंक द्वारकानगरंबु नेंडुकु सप्तम दिवसंबुन समुद्रुंडु मुंपंगलवाडु। यदु

दी। ८७ [कं.] नारायण के [आज्ञा-] वचन मानकर वे लोग संतोषपूर्वक, दारा-सुता-मित्रयुत हो, वारण (हाथी), हय (घोड़े) आदि के समिति (समूह) को साथ लेकर तुरंत चल पड़े। ८८

श्रीकृष्ण का उद्धव को परमार्थोपदेश करना

[व.] अनंतर ८९ [कं.] उद्धव ज्ञान के द्वारा मन में सब कुछ जानकर कृष्ण की स्तुति करने लगा : "श्री रमाधिप (लक्ष्मीपति) ! हे हरि ! हे दीन-जन-कल्पवृक्ष ! हे श्रीनायक ! हे श्रित-भय-हरण ! तुम्ही हमारे रक्षक हो।" ९० [व.] यों प्रार्थना करके कहा—"हे देव ! यादवों को नष्ट करके यदि तुम चले जाओगे तो हम लोग किस प्रकार निर्वाह कर सकेंगे ! तुम्हारे सहचर होकर, मज्जन (स्नान), भोजन, शयन आदि कृत्य हमने अब तक जो किये, उन्हें कैसे भुला सकेंगे ?"—उद्धव के इस कथन पर वासुदेव ने यों उत्तर दिया :

अध्याय—७

[व.] ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना मान मैंने धात्री (भूमि) भार का निवारण किया; आज से सातवें दिन समुद्र इस द्वारकानगर को डुबा

क्षयंबुनु गागलयदि। अंतट गलियुगंबु प्राप्तंबय्येडि। अंदु मानवुलु धर्मविरहितुलुनु, नाचारहीनुलुनु, नन्यायपरुलुनु, नतिरोषुलुनु, मंदमतुलुनु, नल्पतरायुवुलुनु, बहुरोग पीडितुलुनु, निष्फलारंभुलुनु, नास्तिकुलुनै, योंडोरुल मेच्चक युंदुरु। कावुन नीवु सुहृद्बांधव स्नेहंबु वर्जिंचि, यिंद्रिय सौख्यंबुल बोरयक, क्षोणितलंबुनं गल पुण्यतीर्थविगाहनंबु सेयुचु, मानस वागक्षि श्रोत्र घ्राणेंद्रिय गृह्यमाणंबगु वस्तुजातंबु नश्वरंबुगा नेरुंगुमु। पुरुषुंडु नानार्थ कामंबुल नंगीकरिंचि, निज गुण दोषंबुल मोहितुंडय्युंडु। कावुन हस्तिपकुंडु गंधनागंबुलनु बंधिंचु चंदंबुन, निंद्रियंबुलनु मनो विकारंबुलनु निग्रहिंचि, यीषणत्रयंबुनु वर्जिंचि, मोदखेदंबुल समुंडवुगा वर्तिंपुचु, नी जगंबंतयु नात्माधिष्ठितंबुगा नेरिंगि, मायादुल नात्म तत्वाधीनंबुलुग देलियुचु, ज्ञानविज्ञान युक्तुंडवै, यात्मानुभव संतुष्टुंडवै, विश्वंबुनु नन्नुगा भाविंचि, वर्तिंपवलयु। अनि, वासुदेवुं डानतिच्चिन, नुद्धवुंडु भक्तिविनयंबुलं गरंबुलु मोगिड्चि, महात्मा! सन्यस्त लक्षणंबु दुष्करंबु। पामरुलगुवाराचरिंपलेरु। नी मायचेत भ्रांतुलै, चेयुनदि तेलियनि सांसारिकुलु भवाब्धि गडचि, येट्लु मुक्ति वडयुदुरु।

देगा; यादवों का क्षय भी होने जा रहा है; तब कलियुग का आरंभ होगा। उस युग में मनुष्य, धर्मविरहित, आचारहीन, अन्यायी, अतिरोषी (क्रोधी), मंदमती, अत्यंत अल्पायुवाले, बहु-रोगपीड़ित, निष्फलारंभ वाले (असफल), और नास्तिक होकर एक-दूसरे का विरोध करते रहेंगे। इसलिए तुम सुहृत्-(मित्र) बांधव-स्नेह छोड़कर, इंद्रियसुखों में न लगकर, भूमंडल पर के पुण्यतीर्थों (नदियों) में अवगाहन (स्नान) करते हुए, यह समझते रहो कि मानस(मन), वाक्, अक्षि(आँख),श्रोत्र (कान)और घ्राणेंद्रिय(नाक) द्वारा ग्रहण (अनुभव) किया जानेवाला वस्तुसमुदाय सब नश्वर है। पुरुष नाना प्रकार के अर्थकाम भोग कर, अपने गुण और दोषों में विमोहित रहता है। अतः जिस प्रकार महावत गंधगज को बाँधकर रखता है, उसी प्रकार इंद्रियों और मनोविकारों का निग्रह करके, ईषणत्रय का वर्जन कर, मोद और खेद (सुख-दुःख) में सम होकर व्यवहार करते रहो। इस समस्त जग को आत्माधिष्ठित जानकर, माया आदि को आत्मतत्व के अधीन समझते हुए, ज्ञानविज्ञान युक्त हो, आत्मानुभव से संतुष्ट बनकर तुम्हें यह भावना करते रहना चाहिए कि यह विश्व मेरा ही रूप है। इस प्रकार वासुदेव के आज्ञा देने पर उद्धव ने भक्ति और विनय के साथ हाथ जोड़ कर यों विनती की : "हे महात्मन्! संन्यासवृत्ति दुष्कर है, पामरजन उसका आचरण नहीं कर सकते। तुम्हारी माया के कारण भ्रांत होकर कर्तव्यकर्म न जाननेवाले सांसारिक लोग किस तरह यह भवसागर पार

मृत्युंडनैन नामीदि यनुग्रहंबुनंजेसि यानतिम्मु। ब्रह्मादि देवता समुदयंबुनु बाह्य वस्तुयुल भ्रांतुलै, पर्यटनंबु सेयुदुरु। नी भक्तुलैन परमभागवतुलु नम्मायातिरसनंबु सेयुदुरु। गृहिणी गृहस्थुलकैन, यतुलकैननु, नित्यंबुनु नी नाम स्मरणंबु मोक्ष साम्राज्यप्रदंबु। कावुन परमेश्वर! नीदु चरणंबुल शरणंबु नॊंदॆद। कृपारसंबु नापै निगुडिंपुमु। अनि, प्रियसेवकुंडैन युद्धवुंडु वलिकिन, नतनिकि गंसमर्दनुंडिट्लनियॆ। अट्लु पुरुषुनकात्मकु नात्मयै गुरुवनि यॆरुंगुमु। कुपथंबुलकुं जनक, सन्मार्गवर्तियै, परमंबयिन मन्निवासंबुनकुं जनुमु। सर्व मूलशक्तिसंपन्नुंडनैन नन्नु सांख्ययोगपरुलु निरंतर भावंबुलंदु पुरुषभावंबुगा भाविंचि, तलंपुचुंदुरु। मरियु, नेक, द्वि, -त्रि चतुष्पाद बहुपाबापादंबुलुनै युंडु जीवजालंबुललोन द्विपादंबुलु गल मनुष्युलु मेलु। वारललो निरंतर ध्यानगरिष्ठुलैन योगींद्रुलुत्तमुलु। वारललो सदेहपरुलके नग्राह्युंडगु नन्नु, सत्वगुण ग्राह्युनिगा नॆरिंगि, निज चेतः पंकजंबुनंदु जीवात्म परमात्मलनेकंबुगा जेसि, शंख चक्र गदा खड्ग शार्ङ्ग कौमोदकी कौस्तुभाभरण युक्तुंगा दलंपुचुनुंडु वारलु, परमयोगींद्र-

---

कर मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे? मुझ भृत्य (सेवक) पर अनुग्रह दिखाकर आज्ञा दो। ब्रह्मा आदि देवसमुदाय भी बाह्यवस्तुओं के भ्रम में पड़कर भटकते रहते हैं; तुम्हारे भक्त जो परमभागवत हैं, उस माया का तिरस्कार करेंगे। चाहे गृहस्थ हो, या गृहिणी हो अथवा यती हो, उनके लिए तुम्हारे नाम का स्मरण मोक्ष-साम्राज्य-प्रद है। अतः हे परमेश्वर! तुम्हारे चरणों की शरण लेता हूँ, मुझ पर कृपारस बरसाओ।" प्रिय सेवक, उद्धव की इस विनती पर कंसमर्दन (कृष्ण) ने उससे यों कहा: "पुरुष की आत्मा के लिए आत्मा ही को गुरु समझो; कुपथों (दुष्टमार्गों) में न चलकर, सन्मार्गवर्ती होओ, तद्द्वारा मेरे परम-निवास पहुँच जाओगे। सर्वमूलशक्ति-सम्पन्न मुझको सांख्ययोगी लोग अपनी निरंतर भावना में पुरुष भाव से ध्यान करते रहते हैं। और एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद, चतुष्पाद, बहुपाद तथा पाद-रहित जीव-जंतुओं में द्विपादवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं; उनमें निरंतर ध्यान-गरिष्ठ-योगींद्र उत्तम हैं। संदेह करनेवालों के लिए मैं अग्राह्य (न मिलनेवाला) हूँ। सत्त्वगुण वालों के लिए मुझे ग्राह्य जानकर जो लोग अपने मनःकमल में जीवात्मा और परमात्मा को एक बनाकर, शंख-चक्र-गदा-खड्ग-शार्ङ्ग-कौमोदकी-कौस्तुभ-आभरण विभूषित रूप में ध्यान करते रहते हैं, वे लोग परम योगींद्र और परमज्ञानी हैं।" इस प्रकार समझाने

लनियुनु, परम ज्ञानुलनियुनु जॆप्पि मरियु, नवधूत यदु संवादंबनु पुरातनेति
हासंबु गलदु। चॆप्पॆद नाकर्णिपुमु ॥ 91 ॥

अवधूत यदु संवादमु

उ. पंकजनाभुडुद्धवुनि पै गल कूर्मिनि जॆप्पॆ नॊप्प नॆं-
बंकिलि लेक यन्नि दिशलंदु जरिंचुचु नित्यतृप्तुडै
शंकर वेषधारि यॊक संयमि या यदुराजु जेर ने
वंकनु नुंडि वच्चि तन वानिकि निट्लनॆ नर्थि नेर्पडन् ॥ 92 ॥

कं. अवधूत वल्कॆ नंतट
नविमल विज्ञाननिपुण भव्युलु गुरुवुल्
तविलिन निरुवदि नलुवुरु
नवनिन् विज्ञानिनैतिननि पल्कुटयुन् ॥ 93 ॥

व. अंत यदु प्रवरुंडिट्लनियॆ। देहि लोभमोहादुल वर्जिंचि, जनार्दनुनि
नॆविधंबुन जेरवच्चु ? नॆरिंगिपुमु। अनिन, नतंडिट्लनियॆ ॥ 94 ॥

सी. परधन परदार परदूषणादुल बरवस्तु चिंत दा बरिहरिंचि
मुदिमिचे रोगमुलुदयिपकटमुन्न तनुवु चंचलतनु दगुलकुंड
बुद्धि संचलतचे बॊंदलक यटमुन्न श्लेष्मंबु गळमुन जेरकुंड
शक्तियुक्तुलु मदि सन्नगिल्लक मुन्न भक्तिभावनचेत बॊडुबडुचु

के बाद [हरि ने] फिर से यों कहा, "अवधूत-यदु-संबाद नामक एक पुरातन इतिहास है, उसे सुनाऊँगा, सुनो।" ९१

अवधूत-यदु-संवाद

[उ.] पंकजनाभ (कृष्ण) ने उद्धव पर के अनुराग के कारण उसे [यह इतिहास] सुनाया। एक शंकरवेषधारी (दिगम्बर अवधूत), संयमी, जो नित्यतृप्त होकर बिना किसी रुकावट के सब जगह घूमता रहता था [एक समय] यदुराजा के पास आया तो उसने उस अर्थी से पूछा कि तुम किस दिशा से आ रहे हो ? ९२ [कं.] इस पर अवधूत ने उत्तर दिया कि मेरे चौबीस गुरु ऐसे हैं जो विमल-विज्ञान-निपुण और भव्य हैं, उनसे मैं विज्ञानी बना हूँ। ९३ [व.] यह उत्तर सुनकर यदुश्रेष्ठ ने कहा— "लोभ, मोह आदि छोड़कर देही जिस उपाय से जनार्दन को पहुँच सकता है, वह मुझे बता दो।" इस पर उस [अवधूत] ने यों सुनाया : ९४ [सी.] हे अनघ-(पुण्य) चरित वाले राजा ! जो मनुष्य परधन, परदारा (परस्त्री), परदूषण (निंदा), परवस्तु-चिंता छोड़ देता है, बुढ़ापे के

ते. दैत्य भंजनु दिव्य पादारविंद
भजन निज भक्ति भावन ब्राज्ञुडगुचु
नव्ययानंदमुनु बोंदु ननुदिनंबु
नतडु गर्मविमुक्तुडौ ननघचरित ! ॥ 95 ॥

उ. दारलयंबु बुत्र धन धान्यमुलंदु ननेक भंगुलं
गूरिमिचेयु मर्त्युडतिघोर वियोगज दुःखमग्नुडै
नेरुपु दक्कि चिक्कुपडि नीति विवेकहीनुडै मनो-
भारमुतो गपोतपति भंगि निजंबुग बोवु नष्टमै ॥ 96 ॥

व. इंदुकोक्क यितिहासंबु गलदु। महारण्यंबुन नोक्क कपोतंबुदार समेतंबुगा नोक्क निकेतनंबु निर्मिचि, यन्योन्य मोहातिरेकंबुन गोंत-कालंबुनकु संतान समृद्धिगलदियै, यपरिमितंबुलैन पिल्ललु विरुगाडुचुंड, गोन्निमासंबुलु भोगानुभवंबुनं बोरलुचुंडं, गालवशंबुन नोक्क लुब्धकुं-डुरुलोड्डिन, नंदु दारापत्यंबुलुःदगुलु पडिन, धैर्यंबु वदलि, मोहातिरेकंबुनं गपोतंबु गळत्र पुत्र स्नेहंबुनं दानु नंदु जोच्चियु, नधिक चिंता-भरंबुनं गृशीभूतं वय्यॆ। कावुन नति तीव्रंबैन मोहंबु गोरगादु।

कारण रोग उत्पन्न होने के पूर्व ही शरीर को चंचलता से बचा लेता है, बुद्धि में चंचलता बढने के पहले ही [स्थिर कर लेता है], कंठ में श्लेष्म का प्रवेश करके, श्वास को रोकने से पहले, मन में शक्ति और युक्ति के क्षीण होने के पहले, भक्तिभाव से ज्ञानी बनता है [ते.] राक्षसांतक के दिव्य-पादारविंद (चरण-कमल) के भजन और भक्तिभावना के द्वारा प्राज्ञ (चतुर) बन जाता है, और रीति से अनुदिन (सदा) अव्यय आनंद प्राप्त करता है, वह कर्म (बंधन) से विमुक्त होता है। ९५ [उ.] वह मर्त्य (मानव) जो दारा (स्त्री), पुत्र, धन-धान्य पर अनेक प्रकार की ममता रखता है, वह अतिघोर (भयंकर) वियोग-दुःख में मग्न होकर, सामर्थ्य खोकर, उलझकर, नीति, विवेक से हीन बन, मनोभार (व्यथा) से वास्तव में, कपोतपति (कबूतर) की भाँति विनष्ट हो जाता है। ९६ [व.] उस [कपोत] का एक इतिहास (कथा) है, [कहता हूँ] सुनो। महारण्य में एक कपोत अपनी स्त्री-समेत एक निकेत (घर, घोंसला) बनाकर, अन्योन्य (परस्पर) मोहातिरेक से रहने लगा; कुछ समय बीतने के बाद उसकी संतान की समृद्धि हुई, असंख्य बाल-बच्चों के साथ घूमते-घामते कुछ मास तक [सुख] भोगानुभव में ऊभ-चूभ होता रहा। कालवश एक बहेलिये ने फंदा डाला तो उसमें उसकी स्त्री और बच्चे फँस गये। तब धीरज खोकर, मोहातिरेक में वह कपोत भी कलत्र और पुत्रों पर के स्नेह के वश होकर, आप भी जा फँसा और अत्यंत चिंताभार से कृश हो चला। अतः अतितीव्र मोह

अट्लुगान, निरंतर हरि ध्यानपरुंडै, भूमि पवन गगन जल कृपीटभव सोम सूर्य कपोत तिलित्स जलधि शलभ द्विरेफ गज मधुमक्षिका हरिण पाठीन पिंगळा कुरर डिंभक कुमारिका शरकृत्सर्प लूता सुपेशकृत्तुल समुदयंबु नुंडि वानि गुणंबुलेंरिगिकोनि, योगींद्रुलु मेलंगुदुरु। अनिन ॥ 97 ॥

अध्यायमु—८

कं. इवि देलियवलयु नाकु
 नविमलमति बानि देलिय बलुकु मनंगन्
 विवरमु विनुमनि कृष्णुडु
 सविनयु डगु नुद्धवुनिकि जय्यन चंप्पेन् ॥ 98 ॥

व. इव्विधंबुन, भूमिवलन संरणयु, गंधवहुनिवलन बंधुरंबगु परोपकारंबुनु, विष्णुपदंबुवलन गालसृष्ट गुणसांगत्यंबु लेमियु, नुदकंबु वलन नित्य-शुचित्वंबुनु, नग्निवलन निर्मलत्वंबुनु, निशाकर प्रभाकरुल वलन नधिकाल्प समत्व जीवग्रहण मोक्षणंबुलुनु, गपोतंबुवलन गळत्र पुत्र स्नेहंबुनु,

---

हितकर नहीं है। इसलिए योगींद्र हरि के ध्यान में निरंतर मग्न होकर, भूमि, पवन, गगन, जल, कृपीटभव (अग्नि), सोम (चंद्र), सूर्य, कपोत, अजगर, समुद्र, शलभ (टिड्डी), द्विरेफ (भौरा), गज, मधुमक्खी, हिरन, मछली, वेश्या, टिट्टिभ, अर्भक (बच्चा), कुमारी, बहेलिया, सर्प, लूता (मकड़ी), ततैया आदि के समुदाय के गुणों को जानकर (सीखकर) तदनुसार योगीन्द्र आचरण करते हैं।" इतना कहने पर ९७

अध्याय—८

[कं.] उद्धव ने कहा— "मुझे उनके गुण-स्वभाव स्पष्ट जानना है, अतः विमल मति से स्पष्ट करके समझाओ।" तब कृष्ण ने उस विनीत उद्धव को "सुनो" कहकर झट समझाया : ९८ [व.] इस प्रकार पृथ्वी से क्षमा, गंधवह (पवन) से बंधुर (घना) परोपकार; विष्णुपद (आकाश) से काल के द्वारा उत्पन्न गुण-सगति का न होना; उदक (पानी) से नित्य शुचित्व (शुद्ध रहना); अग्नि से निर्मलता; निशाकर-प्रभाकरों (चंद्र और सूर्य) से [क्रमशः] आधिक्य में और अल्पत्व में समभाव रखना तथा निस्संग होकर लेना और देना; कपोत (कबूतर) से स्त्री पुत्र आदि पर के स्नेह [की निरुपयोगिता]; अजगर से स्वयं प्राप्त आहार ग्रहण [और निर्व्यापारता]; वननिधि (समुद्र) से उत्साह और शोषण (वृद्धि और क्षय)

नजगरंबुवलन स्वेच्छासमागताहारंबुनु वननिधिवलन नुत्साह, शोषणं-बुलुनु, शलभंबुवलन शक्त्यनुकूल कर्माचरणंबुनु, भृंगंबुवलन सार मात्र-ग्रहण विशेषंबुनु, स्तंबेरमंबु वलनं गांता वैमुख्यंबुनु, सरघवलन निरंतर सारसंग्रह गुणंबुनु, हरिणंबुवलन जितापरत्वंबुनु, जलचरंबुवलन जिह्वा-चापल्यंबुनु, बिंगळवलन यथालाभ संतुष्टियु, गुररंबुवलन मोह परित्यागंबुनु, डिंभकुवलन विचारपरित्यागंबुनु, कुमारिकवलन संग त्यागंबुनु, शरकारुनिवलनं दवेकनिष्ठयु, दंदशूकंबुवलनं बरगृहवासंबुनु, नूर्णनाभिवलन संसारपरित्यागंबुनु, कणुंदुरुवलन लक्ष्यगत ज्ञानंबु बिडु-वकुंडुटयु, ननंगल वीनि गुणंबु लेंरिंगि, काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यंबुलनु नरिषड्वर्गंबुल जयिंचि जरामरण विरहितंबुगा वायुवु वशंबु चेसि, गात्र पवित्रत्वंबु कोरकु षट्कर्मनिरतुंडै, पुर नगर ग्रामंबुलु परित्यजिंचि, पर्वतारण्यंबुल संचरिंपुचु, शरीरधारणार्थंबु नियमित स्वल्प-भोजनुंडै, खेद मोदंबुलु सरियका भाविंचि, लोभमोहंबुलु वर्जिंचि, निर्जितेंद्रियुंडै नन्नेकानि योंडेरुंगक, यात्मनिष्ठचे बवित्रांतःकरणुंडैन योगि नायंदु गलयु । कावुन ॥ 99 ॥

में समभाव रखना; शलभ (टिड्डी) से शक्त्यनुसार कर्माचरण; भृंग (भौंरे) से सारमात्र-ग्रहण करना; हाथी से कांता (स्त्री) वैमुख्य; मधुमक्खी से निरंतर सारसंग्रह-गुण; हिरन से [संसार के बंधन में फँस जाने की] चिंतापरता; मछली से जिह्वाचापल्य [से हानि] जान लेना; पिंगला (वेश्या) से यथालाभ संतोष (आशा-परित्याग); कुरर (टिट्टिभ) से मोहपरित्याग; डिंभक (बच्चे) से चिंतापरित्याग; कुमारिका से संग-परित्याग; शरकार (बाण चलानेवाले, बहेलिया) से तदेकनिष्ठा; दंदशूक (साँप) से [स्वगृहवांछा छोड़] परगृहनिवास में सुखी होना; मकड़ी से (आत्मसृष्ट) संसार-परित्याग; ततैये से अपने लक्ष्य-साधन का ज्ञान न छोड़ना —इन सब गुण-स्वभावों को समझकर जो मनुष्य काम, क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य नामक अरिषड्वर्ग (छः शत्रुओं) को जीतकर, जरा (वृद्धाप्य) मरण-रहित होने के लिए प्राण को वश में रखकर, शरीर को पवित्र करने के निमित्त षट्कर्मनिरत होता है, और पुर, नगर, ग्रामों को छोड़कर पर्वत और अरण्यों में संचार करता रहता है, तथा शरीर-धारण के निमित्त नियमित स्वल्प भोजन करते हुए, खेद (दुःख) और मोद को समभाव से प्राप्त करता है, और जो लोभ और मोह त्यागकर जितेंद्रिय होता है, मुझे छोड़ अन्य का चिंतन न करते हुए, आत्मनिष्ठा से अपना अंतःकरण पवित्र बना लेता है, ऐसा योगी मुझमें आकर मिल जाता है। अतः ९९ [कं.] जो मोहवश धनकांक्षा के प्रभाव में

कं. मोहितुडै वसुकांक्षा-
वाहिनिलो जिक्कि क्रूरवशुडै यॆव्वं-
डूहापोह लॆक्कंगक
देहमु नलगंग जेयु दीनत नोंदुन् ॥ 100 ॥

व. इंदुकु बुरातनवृत्तांतंबु गलदु। सावधानचित्तुंडवै विनुमु। मिथिला नगरंबुन बिंगळ यनु गणिकारत्नंबु गलदु। दानिवलन नौंत परिज्ञानंबु गौंटि। अदॆट्लनिन, नम्मानिनि वसुकांक्षंजेसि, यात्मसखुनि मोसंगि, धनंबिच्चुवानि जेकॊनि, निज निकेतनाभ्यंतरंबुनकुं गॊनि, चनि, रात्रि निद्रलेकुंडुचुं, बुटभेदन विपणि मार्गंबुल बर्यटनंबु सलुपुचु, निद्रालस्य-भावंबुन जडुनु वडि, यर्थापेक्षं दगिलि, तिरिगि, यलसि, यात्मसुखंबु सेयु नातंडे भर्तयनि चिंतिंचि, नारायणु निट्लु चिंतिप, नतनि कैवल्यंबु चेरवच्चु ननि विचारिंचि, निज शयनादि स्थानंबुलु वर्जिंचि वेगिन वासुदेव चरणारविंद वंदनाभिलाषिणियै, देहंबु विद्युत्प्रकारंबनि चिंतिंचि, परमतत्वंबुनंदु जित्तंबु गीलुकॊलिपि, मुक्तुरालय्यॆ। अनि यॆरिंगिंचि ॥ 101 ॥

उलझकर, क्रूरता सहते हुए, ऊहापोह छोड़कर अपने शरीर को पीड़ित करता है, वह दीनता भोगता है। १०० [व.] इसका एक पुराना वृत्तांत (कथा) है, सावधान-चित्त हो सुनो : मिथिला नगर में पिंगला नाम की एक वेश्यारत्न थी, उसके कारण से मैंने परिज्ञान प्राप्त किया। वह यों है : वह मानिनी (स्त्री) धन के लालच में पड़कर, अपने आत्मीय सखा (प्रिय) को वंचित कर, अधिक धन देनेवाले को अपने निवासगृह के भीतर ले जाकर, निद्रा छोड़ रात भर भोग करती रहती थी, वह नगर के विपणिमार्गों में (बाजारों में) घूमती-घामती, निद्रालस भाव से स्तब्ध (जड़ीभूत) हो जाती; अर्थ (द्रव्य) की अपेक्षा में फँसकर भटकती हुई थकित होती। [अंत में] उसने विचारा कि जो आत्मा को सुख देगा वही मेरा पति है। उसने नारायण को वैसा व्यक्ति समझकर उस कैवल्य-पद को प्राप्त करने का विचार किया। फिर उसने अपने शयन और निवास-गृह त्यागकर शीघ्र ही वासुदेव चरणारविंद की अभिलाषा करती हुई, देह को विद्युत् के समान (क्षणिक) जान, परतत्व में चित्त को स्थिर करके मुक्ति प्राप्त की थी। यों समझाकर [फिर कहा]। १०१

अध्यायमु—९-१६

कं. देहमु नित्यमु गादनि
मोहमु दॆग गोलि शुद्ध मुनिवर्तनुडै
गेहमु वॆलुवडि नरुडु-
त्साहमुनं जॆंदु मुक्तिसंपद ननघा ! ॥ 102 ॥

व. मरियु, नॊक्क पुरातन पुण्यकथ विनुमु, कनकावतीपुरंबुन नॊक्क धरासुरुनि गन्यकारत्नबु गलदु। अव्वधूतिलकंबु रत्नसमेतंबुलगु कंकणंबुलु धरियिंचि, बंधुजनंबुलकु नातिथ्यंबु गाविचुकॊरकु, शालितंडुलंबुलनु रहस्यंबुगा मुसलंबु जेकॊनि दंचुनप्पुडु, कंकणंबुलति रावंबुगा म्रोयुचुंड, नप्परमपतिव्रत यंदुकु नसह्यपडि, यन्नियु डुलिचि, यॊक्कटि निलिपॆ। अट्लेकचित्तंबुनं दत्तरपडक भगवदायत्तंबैन येकचित्तंबुनं ब्रसन्नचित्तुलै, नरुलु मुक्तुलगुदुरु। अट्लु गान, नविद्याविद्यलु ना मायगा विचारिंचि, केवल पशुमार्गुलुगाक षड्गुणैश्वर्य संपन्नुलैन योगींद्रुल पगिदि, सुखंबु गोरक युंडुवारलु मुक्तुलगुदुरु। सर्वंबुनु विष्णुमायगा दॆलियुमु। अनि युद्धवुनिकि जॆप्पिन, नतंडु, देवा ! नी रूपंबेलागुनं गानवच्चु। अनिन, नतंडिट्लनियॆं। भक्तिभावना परायणुंडै, कृपापरतंत्रुंडै, मितभाषणुंडै,

---

अध्याय—९-१६

[कं.] हे अनघ (निष्पाप) ! देह नित्य (शाश्वत) नहीं है —यह जानकर, मोह छोड़कर, मुनि का शुद्ध वर्तन अपनाकर, जो घर से निकल पड़ेगा वह नर उत्साहपूर्वक मुक्ति की संपत्ति प्राप्त करेगा। १०२
[व.] एक और पुरातन पुण्यकथा है, उसे सुन लो, "कनकावतीपुर में एक ब्राह्मण के एक कन्यारत्न थी। वह वधूतिलक रत्न लगे कंकण पहनकर, [आगत] बंधुजनों को आतिथ्य देने के निमित्त मूसल लेकर एकांत में धान कूट रही थी, उस समय उसके कंकण जोर से वजने लगे तो उस परम पतिव्रता को यह बुरा लगा; घृणा से उसने एक को रखकर शेष सब कंकण उतार लिये। उसी प्रकार नर यदि एकचित्त होकर, बिना चंचलता के मन को भगवान् में लग्न कर प्रसन्न होंगे तो वे विमुक्त होंगे। अत: विद्या और अविद्या (अज्ञान) को मेरी माया जानकर, केवल पशुओं के मार्ग में न चलकर, षड्गुणैश्वर्य-संपन्न योगींद्रों के समान जो लोग सुखों की इच्छा छोड़े रहते हैं, मुक्त हो जायेंगे।" कृष्ण ने उद्धव से जब कहा कि तुम सब कुछ विष्णुमाया समझ लो, तब उसने पूछा कि— "हे देव ! तुम्हारा रूप किस प्रकार देखा जा सकता ?" इस पर कृष्ण ने यों कहा; "भक्तिभावना-परायण होकर, [मेरी] कृपापरतंत्र हो, मितभाषण करते हुए, असत्य

बौंकक, कर्मंबुल नदर्पणंबुगा जेसिन यतंडु भागवतुंडु। मत्कथलुनु मज्जन्मकर्मंबुलुनु विनुचु, मत्सेवकुलयिन भागवतुलं जूचि, तन गृहंबुनकुं गोनिपोयि, मज्जन पूजन भोजन शयन विनय ध्यानंबुलं बरितुष्टुलं जेसिन यतंडुनु भागवतुंडनंबडु। इट्लैतकालंबु जीविंचु नंतकालंबु नडपु नतंडु मद्रूपमुन वैकुंठनिलयंबु नोंदु। अदियुनुं गाक, गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्यंबुल लक्ष्मीसमेतुंडनै, शंख चक्र गदा शाङ्र्गादि युक्तुंडनैन नन्नु शुक सनकादि योगींद्रुलु, नंबरीष विभीषण रुक्मांगदुलु मोदलुगागल भागवतुलु, शास्त्राचार चोदितुलु गाक, भक्तिभावना विशेषंबुन नप्रमत्तुलै, नित्यंबुनु जितनायुक्तुलैनन्नेरिंगिरि । मधुरानगरंबुनकु हलायुध समेतुंडनै ये नरुगुचो गोपिकलोपिकलु लेक भक्तियोगंबुनं जितिंचि, मुक्तलैरि। इदि भक्तियोग प्रकारंबु। अनि युद्धवुलिकि जेप्पिन ॥ 103 ॥

कं. ध्यानंबेक्रिय निलुचुनु
ध्यानंबे रीति दगु नुदात्त चरित्रा!
ध्यान प्रकारमंत य-
नूनंबुग जेप्पुमय्य! युर्वीरमणा! ॥ 104 ॥

व. अनि यडिगिन, नय्यादवेंद्रुंडिट्लनि पलुकं दोणंगे। दारु मध्यभागंबुन ननलंबु सूक्ष्मरूपमुन वर्तिचुचंदंबुन, नंदंबै, सकल शरीरुलयंदु नच्छेद्युंडुनु,

---

छोड़कर जो नर अपने सब कार्य मुझे अर्पण करेगा वह भागवत बन जायगा। मेरी कथाएँ और मेरे जन्म-कर्म श्रवण करते हुए, मेरे सेवक बने हुए भागवतों को देखकर जो पुरुष उन्हें अपने घर ले जाकर, उन्हें मज्जन (स्नान), पूजन, भोजन-शयन-विनय-ध्यानों से परितुष्ट करेगा, वह भी भागवत कहलाएगा। जब तक जीएगा तब तक इसी भाँति आचरण करनेवाला मेरे रूप में वैकुंठ-निलय (-आवास) प्राप्त करेगा। लक्ष्मी-समेत हो, शंख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग आदि से युक्त रहनेवाले मुझको गंध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य अर्पण करके, शुक-सनक आदि योगींद्रों तथा अंबरीष, विभीषण, रुक्मांगद आदि भागवत लोगों ने शास्त्रोक्त आचार से नहीं, वरन् भक्तिभावना विशेष से, अप्रमत्त हो, सद्यः चिंतन करके मुझे जान लिया। जब हलायुध (बलराम) समेत मैं मथुरानगर जाने लगा तो गोपिकाएँ अधीर बन भक्तियोग के द्वारा मेरा चिंतन करके मुक्त हुई थीं। यही भक्तियोग की रीति है।" —उद्धव को यों समझाने पर······ १०३
[कं.] "हे उदात्त-चरित वाले! ध्यान किस प्रकार स्थिर रहता है, कैसा ध्यान उचित है? हे उर्वीरमण (पृथ्वी के पति)! ध्यान का प्रकार सविस्तर मुझे बता दो।" १०४ [व.] उसने जब यह प्रश्न किया तो यादवेंद्र (कृष्ण) उसे यों बताने लगा: "जिस प्रकार लक्कड़ के भीतर अनल

नदाह्यंडुनु, नशोष्यंडुनुनैन जीवुंडु वसियिंचियुंडु। अनिन, नुद्धवुं-डिट्लनियें। सनक सनंदनादि योगींद्रुलकु योगमार्गंबे रीति नानतिच्चितिवि। अदि ये विधंबानतीवे। अनि, यभ्यर्थिचिन, ननतं-डिट्लनियें। वारलु चतुर्मुखु नडिगिन, ननंडु नेनुनु ·वॅलियनेरननिन, वारलु विस्मयंबंदुचुंड, ने नासमयंबुन हंस स्वरूपुंडनै, वारल कॅरिंगिचिन तॅरंगु विनुमु। पचेंद्रियंबुलकु वृण्टंबैन पदार्थं बनित्यंबु। नित्य बुष्टि ब्राह्मंबनि तॅलियवलयु। देहि कर्माजित देहुंडै, संसार ममतल निर्रसिचि, निश्चल ज्ञानयुक्तुंडै, मत्पद प्राप्तुंडगु। स्वप्नलब्ध पदार्थंबु निजबुगानिक्रिय गर्मानुभव पर्यंतंबु कळेबरबु वर्तिचु। अनि, सांख्य-योगंबुन सनकादुलकु नॅरिंगिचिन विनि, ब्रह्म मोदलैन देवतलॅरिंगिरि। वारलवलन भूलोकंबुनंदु ब्रासद्धंबय्यें। अदि गावुन नीवुनु नॅरिंगिकॉनि पुण्याश्रमंबुलकु जनुमु। अस्मदीय भक्तियुक्तुलनु हरिपरायणुलनु निर्रसिपक, यट्टि भागवतुल चरण रजः पुंजंबु तन शरीरंबु सोकजेयु नतंडुनु, मुद्राधारणपरुलकुनु हरि दिव्यनामंबुनु धरियिंचु वारलकुनु नम्नोदकंबुलु निडु नतंडुनु, वासुदेवभक्तुलं गनि हर्षिचुवाडुनु, भागवतुलु।

(अग्नि) सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है, उसी प्रकार समस्त देहियों में जीव वास करता है, जो सुंदर, अच्छेद्य (जो काटा नहीं जा सकता), अदाह्य (जो जलाया नहीं जा सकता), और अशोष्य (जो सुखाया नहीं जा सकता) है।" इस पर उद्धव ने कहा— "सनक, सनंद आदि योगींद्रों को तुमने योगमार्ग जिस रीति से व्यक्त किया, उसी रीति से मुझे भी बता दो।" इस अभ्यर्थना पर उस (कृष्ण) ने कहा : "उन लोगों ने चतुर्मुख (ब्रह्मा) से पूछा तो उसने उत्तर दिया कि मैं भी नहीं जानता हूँ, जब वे लोग विस्मित हो रहे थे तो मैं उस समय हंस के रूप में उपस्थित होकर उन्हें जैसे जताया वैसे ही तुम्हें भी जताऊँगा, सुनो— पंचेंद्रियों को जो कुछ गोचर होता है वह पदार्थ सब अनित्य है; नित्य (शाश्वत) दीखनेवाले को ब्रह्म जानना चाहिए; अपने कर्म के अनुसार शरीर प्राप्त करनेवाला देही (प्राणी) जब संसार पर ममता त्यागकर निश्चल ज्ञानयुक्त होता है, तब वह मेरा पद पाता है। स्वप्न में प्राप्त पदार्थ सत्य नहीं होता (जब तक स्वप्न रहता है, तभी तक वह सत्य दीखता है), उसी प्रकार कर्म का अनुभव (भोग) जब तक होता रहता है तब तक कलेवर (शरीर) रहता है। यह सांख्ययोग जब मैंने सनक आदि [योगियों] को समझाया तब ब्रह्मा आदि देवताओं ने भी उसे जान लिया; उनके द्वारा वह योग भूलोक में प्रसिद्ध हुआ। तुम भी उसे सीखकर पुण्याश्रमों में जाओ। मेरी भक्ति-युक्ति का तथा हरिपरायणों का तिरस्कार किये बिना, उन भागवतों का चरण-रजःपुंज अपने शरीर में लगा लेनेवाला, मुद्राधारियों और हरि का

अनि चॅप्पि, मरियु, सर्वसंगपरित्यागंबु चेसि, यॅवॅड्नगक, नन्ने तलंचु मानवुनकु भुक्ति मुक्ति प्रदायकुंडनै, युंडुदु। अनि यानतिच्चिन नुद्धवुंडु, ज्ञानमार्गं बेरीति यानतीयवलयु अनिन, हरि यिट्लनियॅ एकांतमानसुंडै, हस्ताब्जंबुलूरुद्वयंबुन संधिंचि, नासाग्रंबुनु नीक्षणंबु निलिपि, प्राणायामंबुन नन्नु हृदयगतुंगा दलंचि, यष्टादश [धारणा]योग-सिद्धुलॅरिंगि, यंदु नणिमादुलु प्रधानसिद्धुलुगा दॅलिसि, यिंद्रियंबुल बंधिंचि, मनंबात्मयंदु जेर्चि, यात्म नात्मतो गीलिंचिन ब्रह्मपदंबु बॊंदु भागवतश्रेष्ठु लितर धर्मंबुलु मानि, नन्नुं गांतुरु। तॊलिलि पांडुनंदनुंडगु नर्जुनुंडु युद्धरंगंबुन विषादंबु नॊंदि यिट्ल यडिगिन, नतनिकि ने जॅप्पिन तॆरंगु नॅरिंगिंचॆद। भूतंबुलंदु नाधारभूतंबुनु, सूक्ष्मंबुल यंदु जीवुंडुनु, दुर्जयंबुलयंदु मनंबुनु, देवतलयंदु पद्मगर्भुंडुनु, वसुवुलयंदु हव्यवाहनुंडुनु, नादित्युलयंदु विष्णुवुनु, रुद्रुलंदु नीललोहितुंडुनु, ब्रह्मलयंदु भृगुवुनु, ऋषुललोन नारदुंडुनु, धेनुवुलयंदु गामधेनुवुनु, सिद्धुललोनं गपिलुंडुनु दैत्युललो बह्लादुंडुनु, ग्रहंबुललो गळानिधियुनु, गजंबुललो नैरावतंबुनु, हयंबुललो नुच्चैश्रवंबुनु, नागंबुललोन वासुकियुनु, मृगंबुललोन गेसरियुनु, नाश्रमं-

---

दिव्यनाम धारण करनेवालों को अन्न और उदक देनेवाला (खिलाने-पिलानेवाला) तथा वासुदेव के भक्तों के दर्शन से हर्षित होनेवाला —ये सब परम-भागवत हैं। सर्वसंग-परित्याग करके जो मानव अन्यभाव के बिना मेरा ही मनन करता है, उसे मैं भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करूँगा।" यों समझाने पर उद्धव ने कहा ज्ञानमार्ग कैसा होगा, [कृपया] समझाओ। तब हरि कहने लगा : "मन को एकाग्र रखकर, हस्ताब्जों को जाँघों पर सटाकर, दृष्टि नासाग्र में स्थिर करके, प्राणायामपूर्वक मुझे हृदयस्थ समझ, धारणादि अष्टादश योगसिद्धियों तथा अणिमादि सिद्धियों को समझते हुए जो भागवतश्रेष्ठ इंद्रियनिरोध के द्वारा मन को आत्मा में लग्न करता है और आत्मा को आत्मा से संधान करता है, वह ब्रह्मपद को पहुँचता है। ऐसे लोग इतर (अन्य) धर्म त्यागकर मेरा दर्शन पायेंगे। पूर्व में पांडुनंदन-अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में विषाद करते हुए ऐसा ही प्रश्न किया तो मैंने उसे जो बोध दिया उसका प्रकार तुम्हें बता दूँगा। भूतों में आधार भूत तत्त्व, सूक्ष्मों में जीव, दुर्जयों (अजेय पदार्थों) में मन, देवताओं में पद्मगर्भ (ब्रह्मा), वसुओं में हव्यवाहन (अग्नि), आदित्यों में विष्णु, रुद्रों में नीललोहित (शिव), ब्रह्माओं में भृगु, ऋषियों में नारद, धेनुओं में कामधेनु, सिद्धों में कपिल, दैत्यों में प्रह्लाद, ग्रहों में कलानिधि (चंद्र), गजों में ऐरावत, हयों (घोड़ों) में उच्चैश्रवा, नागों में वासुकी, मृगों में केसरी, आश्रमों में गृहस्थाश्रम, वर्णों में ऊँकार, नदियों में गंगा, सागरों में दुग्ध

वुलंदु गृहस्थाश्रमंबुनु, वर्णंबुललोन नोंकारंबुनु, नदुलयंदु गंगयुनु, सागरंबुललो दुग्धसागरंबुनु, नायुधंबुललो गार्मुकंबुनु, गिरुलयंदु मेरुवुनु, वृक्षंबुललो नश्वत्थंबुनु, नोषधुललोन यवलुनु, यज्ञंबुलयंदु ब्रह्मयज्ञंबुनु, व्रतंबुलंदहिंसयु, योगंबुलंदु नात्मयोगंबुनु, स्त्रीललोन शतरूपयुनु, भाषणंबललोन सत्यभाषणंबुनु, ऋतुवुलंदु वसंतागमंबुनु, मासंबुललो मार्गशीर्षंबुनु, नक्षत्रंबुललो नभिजित्तुनु, युगंबुलयंदु गृतयुगंबुनु, भगवदाकारंबुलंदु वासुदेवुंडुनु, यक्षुललो गुवेरुंडुनु, वानरुलयं दांजनेयुंडुनु, रत्नंबुलयंदु वद्मरागंबुनु, दानंबुललो नन्नदानंबुनु, दिथुलयं देकादशियु, नरुलयंदु वैष्णवुंडै भागवतप्रवर्तनं बर्वतिचुवाडुनु, निवि यन्नियु मद्विभूतुलुगा नेंऱुगुमु। अनि, कृष्णुंडुद्धवुनकुपन्यसिचिन, वेंडियु नतंडिट्लनियॆ ॥ 105 ॥

अध्यायमु—१७-२८

कं. वर्णाश्रम धर्मंबुलु, निर्णयमुग नानतिम्मु नीरजनाभा !
कर्ण रसायनमुग नवि, वणिपुमु विनॆद नेडु वनरुहनेत्रा ! ॥ 106 ॥

व. अनिन गृष्णुंडु नालुगु वर्णंबुल युत्पत्तियु, नालुगाश्रमंबुल किट्टिट्टि वर्णंबुलनियुनु, नालुगु वेदंबुलं जॆप्पिन धर्मंबुलुनु, प्रवृत्ति निवृत्ति हेतुवुलगु

(क्षीर)-सागर, आयुधों (शस्त्रों) में कार्मुक (धनुष), गिरियों (पर्वतों) में मेरु, वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल), ओषधियों में यव, यज्ञों में ब्रह्मयज्ञ, व्रतों में अहिंसा, योगों में आत्मयोग, स्त्रियों में शतरूपा, भाषणों में सत्यभाषण, ऋतुओं में वसंतागम, मासों में मार्गशीर्ष, नक्षत्रों में अभिजित्, युगों में कृतयुग, भगवदाकारों में वासुदेव, यक्षों में कुबेर, वानरों में आंजनेय, रत्नों में पद्मराग, दानों में अन्नदान, तिथियों में एकादशी. और नरों में भागवत व्रत का अनुष्ठान करनेवाला वैष्णव —इन सबको मेरी ही विभूतियाँ जान लो"। —इस प्रकार कृष्ण ने जब बखान किया तो उद्धव ने फिर से यों कहा : १०५

अध्याय—१७-२८

[कं.] "हे नीरजनाभ (कमलनाभ) ! वर्णाश्रम धर्म क्या हैं ? मुझे सुनिश्चित रूप से बता दो; हे वनरुहनेत्र (कमलनयन) ! आज कर्णमधुर बना कर उनका वर्णन करो, मैं सुनूंगा।" १०६ [व.] इस कथन पर कृष्ण ने [उद्धव को] चार वर्णों की उत्पत्ति, उन वर्णों के लिए नियत आश्रम, चारों वेदों में कथित धर्म, प्रवृत्ति के हेतुभूत पुराणेतिहास और धर्मशास्त्र,

पुराणेतिहास धर्मशास्त्रंबुलुनु, वैराग्य विज्ञानंबुलुनु, निन्नि मीदलुगा गल-वन्नियु नॆऱिगिंचि, "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" अनु-नुपनिषत्तुल्यंबगु गीतावचन प्रकारंबुन, नॆव्वडेनियु नायंदुल मति दगिलि वर्तिचुवाडु नेननि पलुकंबडु। पॆक्कु विधंबुल वादंबु लेल? अॆंदुनु दगुलुवडक ना मीद तलंपु गलिगि वर्तिपुमु। अनिन, नुद्धवुं-डिट्लनियॆ ॥ 107 ॥

कं. तॆलियनिवि कॊन्नि चॆप्पिति
तॆलियगगलवॆल्ल निक दॆलुपुमु कृष्णा!
वल नॆऱिगि तॆलियवलयुनु
नलिनासनजनक! भक्त नतपद युगळा! ॥ 108 ॥

व. अनि युद्धवुंडडिगिन, बुंडरीकाक्षुंडु नी प्रश्नंबुलु दुर्लभंबुलैननु, विनुमु। नियम शम दमादुलु तपंबुलनंबडु। सुख दुःखंबुलु स्वर्गनरकंबुलनंबडु। अवि यॆव्वि यनिन, मौनव्रत ब्रह्मचर्य क्षमा जपतपंबुलुनु, नतिथि सत्कारं-बुलुनु, नरहितंबुनु, निवि मीदलयिनवि नियमंबुलु। इंद्रिय निग्रहंबुनु, शत्रु मित्र समत्वंबुनु, शमंबन वरगु। मूढजनुलकु ज्ञानोपदेशार्थंबुग गाम्यत्यागंबुनु, समदर्शनंबुनु, वैष्णव समूहंमूलंदु भक्तियु, प्राणायामंबुन जित्तशुद्धि नॊंदि, नित्य तृप्तुडौटयु दमंबु। इट्टि नियमादि गुण

वैराग्य-विज्ञान इत्यादि सभी विषय समझा दिये; फिर कहा— "उपनिषदों के समान गीता का यह जो वचन है कि "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज" —इसके अनुसार जो नर मुझमें मन लगाकर वर्तन करेगा, वह मुझसे अभिन्न कहलायेगा। कई वादों (तर्कों) से क्या काम? तुम और किसी में लग्न न होकर [केवल] मुझ पर ही ध्यान रखकर चलते रहो।" यह सुन उद्धव ने कहा १०७ [कं.] "हे कृष्ण! मैं जो नहीं जानता था, वह सब तुमने समझा दिया, अब और जो कुछ जानने योग्य है, सब समझा दो; हे कमलासन-जनक (ब्रह्मा के पिता)! भक्तनतपदयुगल! (भक्त-वंदित-चरण वाले!) उपाय से सब कुछ समझ लेना होगा।" १०८ [व.] उद्धव के यों पूछने पर, पुंडरीकाक्ष (कमलनेत्र) ने उत्तर दिया— "तुम्हारे प्रश्न यद्यपि कठिन है, फिर भी सुनो [उत्तर देता हूँ] शम-दम आदि नियम तप कहलाते हैं; सुख को स्वर्ग और दुःख को नरक कहा जाता है; वे [नियम] ये हैं : मौनव्रत, ब्रह्मचर्य, क्षमा, जप-तप, अतिथि-सत्कार, परहित (परोपकार), इंद्रय-निग्रह, शत्रु-मित्र-समता —ये शम कहलाते है। कामनाओं का त्याग जिससे मूढ़ जनों को ज्ञान का उपदेश मिले, सम-दर्शन, वैष्णव-समूह के प्रति भक्ति, प्राणायाम द्वारा चित्तशुद्धि प्राप्त करना, नित्यतृप्ति —ये गुण दम कहे जाते हैं। ऐसे नियमों और गुणों के साथ रह

सहित्वंबुनु, मद्भक्ति साहित्यंबुनु, ननुनॆरिय सुखंबु। नन्नॆरुंगक तमोगुणंबुनं बरगुटये दुःखंबनंबडु। बंधु, गुरु जनंबुलनियॆडु भेदबुद्धि नॊंदि, शरीरंबु निज गृहंबुगा भाविंचिनवाडॆ दरिद्रुंडु। इंद्रिय निरसनुंडुनु, गृपण गुण विरक्तुंडुनैन वाडे यीश्वरुंडु। नायंदु दलंपु निलिपि, कर्मयोगंबुनंदुनु, भक्तियोगंबुनंदुनु, वात्सल्यंबु गलिगि, जनकादुलु कैवल्यंबु जॆंदिरि। भक्तियोगंबुनं जेसि शबरी प्रह्लाद मुचुकुंदादुलु परमपद प्राप्तुलैरि। अदि गावुन, निदि यॆरिंगि, निरंतर भक्तियोगंबधिकंबुगा मनंबुन निलुपुमु। मृण्मयंबैन घटंबुन जलंबुलु जालुगॊनु तॆरंगुन, दिनदिनंबुनकु नायुवु क्षयंबै, मृत्युवु सन्निहितंबै वच्चु। कावुन, निदि यॆरिंगि, निरंतरंबुनु नन्नॆमरक तलंचु नतंडु नाकुं ब्रियुंडु ॥ 109 ॥

कं. गर्भंबुन बरिज्ञानमु, निर्भरमै युंडु जीवुनिकि दुदि नत डा-
विर्भूतुडैन जॆंडु नं-तर्भावंबुननु बोधमंतयु ननघा ! ॥ 110 ॥

व. अट्लु गावुन, जनुंडु बाल्य कैशोर कौमार वयोविशेषंबुल वॆनुकनैन न-न्नॆरिगॆनेनि, गृतकृत्युंडगु। संपद्गर्वांधुडैन, नंधकार कूपंबुनं बडु।

कर मेरी भक्ति से युक्त होना ही सुख है। मुझे न जानकर तमोगुण में लीन रहना ही दुःख है। बंधुजनों और गुरुजनों को भेदबुद्धि से देखकर, अपने शरीर को निज [निवास] गृह [समझ) विचारनेवाला ही दरिद्र है। इंद्रियों को तिरस्कृत करके कृपणता से विरक्त हो रहनेवाला ही ईश्वर है। मुझमें चित्त स्थिर करके, कर्मयोग और भक्तियोग के प्रति प्रेम रखने से राजा जनक आदि ने कैवल्य प्राप्त किया था। भक्तियोग के अवलंबन से शबरी, प्रह्लाद और मुचुकुंद आदि परमपद को प्राप्त हुए थे। अतः इसे समझकर मन में निरंतर भक्तियोग अधिकाधिक साधते रहो। मृण्मय घट में से जल जिस प्रकार चूता जाता है, उसी प्रकार आयु क्षीण होकर, मृत्यु सन्निहित (समीप) आ जायगी। अतः इस बात को समझ कर जो नर मुझे न भूलकर निरंतर मेरा ध्यान करता रहता है, वह मुझे प्रिय है। १०९ [कं.] हे अनघ (निष्पाप) ! जीव जब [माता के] गर्भ में रहता है, तब उसमें परिज्ञान भरा रहता है, किंतु जैसे ही वह [भूमि पर] जन्मता है, उसके अंतर्भूत समस्त बोध और भाव नष्ट हो जाता है। ११० [व.] अतः जन यदि बाल्य, कैशोर, कौमार आदि विशेषों (विशिष्ट अवस्थाओं) के बाद जब कभी भी मुझे जान ले तो वह कृतकृत्य (सफल) हो जाता है। यदि वह अपनी संपत्ति के गर्व में अंधा बनता है तो अंधकारकूप में गिरेगा। यदि ऐसे नर को दरिद्र बना

वानिनि दरिद्रुनिगा जेसिनये, यस्मत्पादारविंद वंदनाभिलाषिये मुक्तुं-डगु। अट्लु गावुन देहाभिमानंबु वर्जिंचि, येहिकामुष्मिक सुखंबुलं गोरक, मनंबु गुदियिंचि, येप्रोद्दुन्नन्नु दलंचु वाडु वैकुंठपद प्राप्तुंडगु। नेनु नतनि विडुवंजालक, वेंटनरुगुदु। नारदादि मुनुलु भक्ति भावंबुनं जेसि, नास्वरूपंबै मनिरि। अनि युद्धवुनकुं जेप्पिन, मुद्धवुं-डिट्लनियें ॥ 111 ॥

कं. अय्या ! देव ! जनार्दन !, नेय्यंबुन सृष्टिकर्त नेर्परियै ता
नीय्यन नडपुनु नेव्वडु, चय्यन नेरिगिंपु नाकु सर्वज्ञनिधी ! ॥ 112 ॥

व. अमुटयु, हरि युद्धवुनकुं जेप्पें। इट्लु मत्प्रेरितंबुले, महदादि गुणंबुलु कूडि, यंडंबै, युद्भविंचें। आ यंडंबुवलन ने नुद्भविंचितिनि। अंत ना नाभिविवरंबुन ब्रह्म युदयिंचें। अंत सागरारण्य नदीनद संघंबुलु मोदलुगा गल जगन्निर्माणंबु नतनि वलनं गल्पिंचितिनि। अंत शतानंदुनक, शताब्दंबुलु परिपूर्णंबयिन, धात्रि गंधंबंदडंगुनु। आ गंधं-बुदकंबुनं गलयुनु। उदकंबु रसंबुन लीनंबगुनु। आ रसंबु तेजोरूपं-बगुनु। आ तेजंबु रूपंबुन संक्रमिंचुनु। आ रूपंबु वायुवंदु गलयु। वायुवु स्पर्श गुण संग्राह्यंबैन, ना स्पर्शगुणंबाकाशंबुनलयंबगुनु। आ

दिया जाय तो वह ज्ञानी बनकर अस्मत् पादारविंद-वंदनाभिलाषी होकर मुक्त हो जायगा। अतः देहाभिमान छोड़कर, ऐहिक और आमुष्मिक सुखों की अभिलाषा न करके, मन को दबाए रखकर सब काल मेरा चिंतन करनेवाला वैकुंठ का पद प्राप्त करेगा। मैं उसे छोड़ नहीं सकता, उसके पीछे-पीछे ही चलूंगा। नारद आदि मुनि लोग भक्ति-भाव के बल से मेरे ही स्वरूप के होकर शोभित हुए।" यों समझाने पर उद्धव ने [कृष्ण से] ऐसा कहा : १११ [कं.] "हे देव ! हे जनार्दन ! हे आर्य। वह कौन है जो चतुर होकर स्नेहपूर्वक सृष्टि करता है और उसे सिधाई से [निर्विघ्न] चलाता है ? हे सर्वज्ञनिधि ! यह [रहस्य] मुझे शीघ्र बता दो।" ११२ [व.] यों कहने पर हरि उद्धव को [इस प्रकार] बताने लगा : "मेरी प्रेरणा से महत् आदि गुण [आपस में] मिलकर अंड के रूप में उद्भव (उत्पन्न) हुए; उसी अंड से मैं भी निकल आया। तब मेरी नाभि के बिल से ब्रह्मा का उदय हुआ; उस [ब्रह्मा] के द्वारा [मैंने] सागर, अरण्य, नदी-नद-संघ आदि समस्त जग का निर्माण कराया; जब ब्रह्मा के सौ वर्ष पूरे बीतेंगे तब यह धात्री (भूमि) गंध में समायेगी; वह गंध उदक (जल) में मिल जायगी; उदक रस में लीन होगा; वह रस तेज बन जायगा, वह तेज रूप में संक्रमित होगा (प्रवेश करेगा); वह रूप वायु में मिल जायगा; वायु स्पर्शगुण से ग्रहीत होगा, उस स्पर्शगुण का

याकाशंबु शब्दतन्मात्रलचे ग्रसियिपंबडिन, निद्रियंबुलु मनोवैकारिक गुणंबुलं गूडि, यीश्वरुनि वॊंदि, यीश्वररूपंबु दाल्चु। एनु रजस्सत्व तमोगुण सहितुंडनै, त्रिमूर्तुलु वहिंचि, जगदुत्पत्ति स्थिति लय कारणुंडनै वर्तिचुदु। कावुन नी रहस्यंबु नीकु नुपदेशिंचिति। परम पावनुंडवु वरमभक्तियुतुंडवु गम्मनि चॆप्पॆ। अंत ॥ 113 ॥

अध्यायमु—२९

ते. रूपु लेनि नीकु रूढिगा योगुलु, रूपु निलिप निन्नु रुचिर भक्ति
गॊलिचियुंड वारि कोर्कॆल निच्चॆद, वॆमिलागु माकु नॆरुग बलुकु ॥114॥

व. अनि युद्धवुंडडिगिन, नारायणुंडिट्लनियॆ। नेनु सर्ववर्णंबुलगु समंबयिन पूजाप्रकारंबॆरिंगिचॆद। आचारंबुनं जेसि, यॊक्क स्वरूपंबुनु, बाषाण मृण्मय दारुवुलं गल्पिंचि, नानारूपंबुगा निल्पकॊनि, कॊंदरु पूजितुरु। कांस्य, त्रपु, रजत, कांचन, प्रतिमाविशेषंबुलुत्तमंबुलु। इट्लु ना रूपंबुलंदु सद्भावंबुंचि, कॊल्चिन वारलकु नॆ प्रसन्नुंडनगुदुनु। ई लोकंबुन मनुष्युलकु ध्यानंबु निलुव नेरदु। कावुनं प्रतिमा विशेषंबुलनेकंबुलु गलवु। वानियंदु सौंदर्यसारंबुलुनु, मनोहरंबुलुनैन रूपंबुल

आकाश में लय होगा और वह आकाश शब्द-तन्मात्राओं से ग्रसित होकर इंद्रियों, मन और विकार-गुणों के साथ मिलकर ईश्वर में लीन हो, ईश्वर का रूप धारण कर मैं रजस्सत्त्वतमोगुण-सहित होकर त्रिमूर्तियों का रूप ग्रहण करता हूँ और जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण बना रहता हूँ। इस रहस्य का तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ, [इसे पाकर] तुम परमपावन और परमभक्तियुत बन जाओ।" अनंतर ··· ११३

अध्याय—२९

[ते.] "जब कि तुम्हारा [कोई] रूप ही नहीं है, योगीजन रूप बिठाकर, भक्तिपूर्वक तुम्हें भजते हैं और तुम उनकी अभिलाषाओं की पूर्ति करते हो —यह कैसे होता है ? मुझे समझाकर कहो।" ११४ [व.] उद्धव के यों प्रश्न करने पर नारायण ने यों कहा— सब वर्णवालों को समान रूप से लागू होनेवाला पूजा प्रकार तुम्हें जता रहा हूँ : कुछ लोग अपने आचार के अनुकूल विधान से पाषाण (पत्थर), मृत् (मिट्टी) और दारु (लकड़ी) में मेरे रूप और आकार बनाकर पूजा करते है; इनमें कांस्य (कांसा), जस्ता, चाँदी और सोना —इनसे बनी प्रतिमाएँ (मूर्तियाँ) उत्तम हैं; इस प्रकार मेरी प्रतिमाओं (रूपों) में मेरी भावना करके भजन करनेवालों

ने नुंडु। कावुन दुग्धार्णव शायिगा भाविंचि, धौतांबराभरण माल्यानुलेपंबुलनु, दिव्यान्नपानंबुलनु, षोडशोपचारपूजा प्रकारंबुलनु, राजोपचारंबुलनु, बाह्यपूजाविधानंबुलनु नाचरिंचि, मनस्संकल्पितंबुलयिन पदार्थंबुलु समर्पिंचि, नित्यंबुनु नाभ्यंतर पूजाविधानंबुल बरितुष्टुंनि जेसि, दिव्यांबराभरण माल्यानुशोभितुंडुनु, शंख चक्र किरीटाद्यलंकार भूषितुंडुनु, दिव्यमंगळ विग्रहुंडनुंगा दलंचि, ध्यानपरवशुंडयिन यतंडु नायंदुलं गलयु। उद्धवा! नीवु नी प्रकारंबु गरिष्ठनिष्ठातिशयंबुन योगनिष्ठुंडवै, बदरिकाश्रमंबु जेरि मत्कथितंबैन सांख्ययोगंबंनरंगंबुन निलुपुकोनि, कलियुगावसान पर्यंतंबु वर्तिपुमु। अनि यप्परमेश्वरुं-डानतिच्चिन, नुद्धवुंडु नानंदभरितातरंगुंडै, तत्पादारविंदंबुलु हृदयंबुनं जेर्चिकोनि, पावनंबयिन बदरिकाश्रमंबुनकु नरिगें। अनि शुकुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुनकुं जेप्पुटयुनु ॥ 115 ॥

कं. चेप्पिन विनि राजेंद्रुंडु
चोप्पड श्रीकृष्णुकथलु चोद्यमु गागन्
जेप्पिन दनियदु चित्तं-
बोप्पुग मुनिचंद्र! नाकु नुत्तमुलोप्पन् ॥ 116 ॥

पर मैं प्रसन्न रहूँगा। इस लोक में मनुष्यों का ध्यान निश्चल नहीं रहता, इस कारण से अनेक प्रकार के प्रतिमाविशेष [बनते] हैं, उनमें सुंदर और मनोहर रूपों में से मैं विद्यमान रहता हूँ। इसलिए क्षीरसागर-शायी के रूप में भावना करके धौतवस्त्र, आभरण, माल्यानुलेपन, दिव्य-अन्नपान समर्पित करके षोडष (सोलह) उपचार पूजा-विधान के अनुसार, राजोपचार और बाह्यपूजा रचकर मनस्संकल्पित पदार्थ अर्पण करते हुए, आभ्यंतर पूजा से मुझे परितुष्ट किया जाता है। मुझे दिव्यांबराभरण-माल्यानुशोभित, शंख-चक्र-किरीटाद्यलंकार-भूषित, दिव्यमंगलविग्रह (मूर्तिवाले) के रूप में ध्यान करते हुए जो परवश (तल्लीन) हो रहता है, वह मुझमें मिल जाता है। हे उद्धव! तुम इस प्रकार से गरिष्ठ-निष्ठापूर्वक योगनिष्ठ होकर, बदरिकाश्रम जाकर, मेरा बताया सांख्ययोग अंतरंग (हृदय) में स्थिर करके, कलियुग के अंत तक जीवन व्यतीत करते रहो।" यों परमेश्वर ने जब आज्ञा दी तो उद्धव ने आनंद-भरित-अंतरंगवाला हो, भगवत्-पादारविंदों को हृदय में स्थिर करके, पावन बदरिकाश्रम को प्रस्थान किया। यह वृत्तांत शुक ने परीक्षिन्नरेंद्र को सुनाया। तब। ११५

[कं.] सुनकर राजेंद्र ने कहा— "हे मुनिचंद्र! तुमने श्रीकृष्ण की कथाएँ आश्चर्य उपजाते हुए, मुनियों को भी संतोषदायक रीति से कह सुनायीं, फिर भी मेरे चित्त को तृप्ति नहीं हुई। ११६

अध्यायमु—३०

यादवु लन्योन्य फलहंबुन मडिय श्रीकृष्ण बलरामुलु वैकुंठंबुन करुगुट

ते. अंतटनु गृष्णुडेमय्यें नरसि चूड
यदुकुलेंद्रुलु वर्तिचिरेपडंग
द्वारका पट्टणं बेविधमुननुंडे
मुनिजन श्रेष्ठ ! यानती मुदमुतोड ॥ 117 ॥

व. अनिन राजुनकु शुकुंडिट्लनियें। वासुदेवुं, डन्याय प्रवर्तकुलगु दुष्टुल संहरिंचि, न्यायप्रवर्तकुलगु शिष्टुल वरिपालनंबु चेसि, बलराम समेतंबुगा द्वारकानगरंबु वेडलिन गनि, यादवुलु दमलो रामु मदिरापान मत्तुलै, मत्सरंबुन नुत्साहफलहंबुनकुं गमकिंचि, करितुरग रथ पदाति बलंबुलतो ननर्गळंबुगा युद्धसन्नद्धुलै, युद्धंबुनकुं जोच्चि, मुनिशाप कारणंबुन नुत्तुंगंबुलैन तुंग समूहंबुलं बडलु वडवोडुचु-चूनं बाकु नप्पुडु, नवियुनु वज्रायुध समानंबुलै ताकिन, भंडनंबुनं गडिकंडंबुलै चीरगु कबंधंबुलुनु, विकलंबुलैन यंगंबुलुनु, विभ्रष्टंबुलैन रथंबुलुनु, विकटंबु लैन शकटंबुलुनु, व्रालेडि यश्वंबुलुनु, स्त्रोगॅडि गजंबुलुनै, यय्यायोधनंबुन नंदरुं बोलियुटकु नगि, नगधरुंडुनु, रामुंडुनुं जनि चनि, यंत नीलांबरुंडु

अध्याय—३०

अन्योन्य कलह से यादवों का नाश होने पर, श्रीकृष्ण और बलराम का वैकुंठ को लौट जाना

[ते.] "हे मुनिजनश्रेष्ठ ! तब कृष्ण का क्या हुआ ? यादवों ने कैसा व्यवहार किया ? द्वारका पट्टण किस दशा में रहा ? यह सब सहर्ष मुझे सुनाओ।" ११७ [व.] इस पर शुक ने राजा से यों कहा, "वासुदेव अन्यायी दुष्टों का संहार तथा न्यायी शिष्टजनों का पालन (रक्षण) करके, बलराम समेत द्वारका नगर छोड़ चले गये; यह देखकर यादव लोग मदिरापान-मत्त होकर मत्सर के साथ आपस में कलह के उत्साह से करि (हाथी)-तुरग-रथ-पदाति बल लेकर अनर्गल (अबाध) युद्ध करने को सन्नद्ध हो गये। युद्ध में वे लोग नागरमोथा, जो मुनिशाप के कारण ऊँचा बढ़ा हुआ था और वज्र के समान चोट करता था, हाथ में लेकर, एक-दूसरे को मार-मार कर झुंड के झुंड नीचे गिरे। कटे हुए रुंडों (धड़ों), विकल अंगों, विभ्रष्ट-रथों, टूटे हुए शकटों, गिरे हुए घोड़ों, ढेर हुए गजों से युद्धभूमि पट गयी। यों सब यादवों को विनष्ट देखकर मन में हंसकर नगधर (कृष्ण)

वेरोक त्रोवं, योगमार्गंबुन ननंतुनि गलसॅ। अप्परमेश्वरंडुनु मरियोक मार्गंबुनं जनि, योक्क निकुंज पुंजंबु चाटुन विश्रमिंचुचुं जेसि, चरणंबुवेरोक चरणंबुमीद संघटिंचि, चंचलंबुगा विनोदंबुलु सलुपु समयंबुन, नोक्क लुब्धकुंडु मृगवधार्थंबुगा वच्चि,दिक्कुलु निक्कि निरीक्षिपुचुंड, वृक्षंबु चाटुन नप्परमपुरुषुनि चरणंबु हरिणकर्णंबु गावोलु नति, दानि गनि, शरंबु शरासनंबुनंदु संधानंबु चेसि, वेसिन, नतंडु हाहारवंबुनं गदलुचुंड न-प्परमेश्वरुनि सन्निधानंबुनकु वच्चि, जगन्नाथुंगा दॅलिसि, भयंबुन, महापराधुंडनु, पापचित्तुंडनु, कुटिल प्रचारुंडननि, यनेकविध दीनालापंबुलं बलुकुचु, बाष्पजल धारासिक्त वदनुंडैन, सरोजनेत्रुंडु वानि गरुणिंचि यिट्लनियॅ। नी वेल जालिनबडेदु। पूर्वजन्म कर्मंबु-लॅंतवारिकिनैन ननुभाव्यंबुलु गानि, पुरकपोलवेरवु। नीवु निमित्तमात्रुंड वितिय। अनि वानिकि दॅलिपिन, वाडु महापराधुलैन वारुरक पोवरु। देव ब्राह्मण गुरु द्रोहुलकु निष्कृव नॅट्लगु? अनि पवित्रांतःकरणुंडै, प्रायोपवेशंबुनं बाणंबुलु वर्जिंचि, वैकुंठ पदप्राप्तुंडय्यॅ। अप्पुडु ॥ 118 ॥

और नीलांबर (वलराम) वहाँ से चल पड़े। वलराम एक अलग रास्ते चल कर योगमार्ग से अनंत [ब्रह्म] में लीन हो गया। परमेश्वर (कृष्ण) दूसरे मार्ग से चलकर एक निकुंज (झाड़ी) की ओट में विश्राम करते हुए एक चरण को दूसरे चरण पर रख हिलाते हुए विनोद करने लगा। उस समय एक लुब्धक (शिकारी) मृगया के लिए वहाँ पहुँच इधर-उधर दिशाएँ ताकने लगा तो उसे एक वृक्ष की आड़ में उस परमपुरुष का चरण जो हिल रहा था, दिखाई दिया, उसे उसने हिरण का कान समझा, झट से उसने धनुष पर संधान कर एक वाण से मारा। चोट खाकर जब कृष्ण हाहाकार करने लगा तो लुब्धक परमेश्वर के सन्निधान में आकर जाना कि वह जगन्नाथ कृष्ण है, हिरन नहीं, वह अत्यंत भय से, अपने को महा-अपराधी, पापचित्त और कुटिलवर्तनवाला कहकर दीनालाप करते हुए वाष्पजलधारा-सिक्त-वदन [से युक्त] हुआ। तब सरोजनेत्र (कृष्ण) ने उस पर करुणा करके यों कहा: "तुम क्यों खेद करते हो ? पूर्वजन्म के कर्म महान व्यक्तियों के लिए भी अनुभाव्य (भोग्य) हैं, वे व्यर्थ नहीं जाते, तुम केवल निमित्त मात्र हो। इतना ही है।" यों समझाने पर [भी] वह बोला— "महान अपराध करनेवाले [विना दंड पाये] यों ही वचकर नहीं जाते, देव, ब्राह्मण, गुरु के प्रति द्रोह करनेवालों को ठिकाना कैसे मिलेगा ?" इस प्रकार पवित्र अंतःकरण से उसने प्रायोपवेश (आमरण उपवास) करके प्राण छोड़ दिये, और [अंत में] वैकुंठ पद प्राप्त किया। तब अनंतर। ११८ [कं.] दारुक ने अचरज

कं. दारुकुडु गनियें नंतट, जारु निरूढावधानु सर्वज्ञु हरिन्
मेघसमधीरु दनुजधि, -दारुनि नेकांतपरुनि वद्दयु वेड्कन् ॥ 119 ॥

व. कनि, यत्यंत भयभक्ति ताप्पर्यंबुल मुकुळित करकमलुंडै, यिट्लनियें ॥ 120 ॥

ते. निन्नु जूडनि कन्नुलु निष्फलमुलु
निन्नु नोंडुवनि जिह्व बा नीरसंबु
निन्नु गाननि दिनमुलु निंद्यमुलगु
गन्नुलनु जूचि मम्मुनु गार्रविपु ॥ 121 ॥

व. अनुचु, ना दारकुंडु निर्वेदनपरुंडै, यिट्लनि विन्नविंचें। यादव समुद्रं-बडंगें। बंधु गरु मित्र जनंबुलक्कडक्कडं बोयिरि। द्वारककुं बोयि, सुहृज्जनंबुलं गूडि, ये नुंडु। अनि पलुकु नवसरंबुन, दिव्यायुधंबुलुनु, दिव्य रथ रथ्यंबुलुनु, नंतर्धानंबु नोंदे। नारायणुंडुनु वानितो अक्रूर विदुरुलकु नी वृत्तांतंबंतयु जेप्पुमु। सव्यसाचि गनि, स्त्री बाल गुरु वृद्ध जनंबुल गरिपुरंबुनकु गोनि चनुमनुमु। पोम्मु। अनिन, वाडुनु मरलि चनि, कृष्णुनि वाक्यंबुलु सविस्तरंबुगा जेप्पे। अट्लु चेय, नक्षणंब द्वारकानगरंबु परिपूर्णजलंबै मुनिगें। अंत, नेव्वरिकि जनराक युंडे।

के साथ उस हरि (कृष्ण) को देखा जो सुंदर, प्रसिद्ध चरित्र वाला, सर्वज्ञ, मेघसमान धीर, दनुजों का नाशक था और अब एकांत में पड़ा हुआ था। ११९ [व.] देखकर अत्यंत भय, भक्तिभाव से कर-कमल मुकुलित कर यों कहा। १२० [ते.] "वह नेत्र जो तुम्हें नहीं देखते निष्फल (व्यर्थ) हैं, वह जिह्वा जो तुम्हारी स्तुति नहीं करती नीरस (शुष्क) है, वे दिन जब तुम्हारे दर्शन नहीं होते तो निंद्य (निंदनीय) हैं। आंखों से देखकर मुझे अपनाओ।" १२१ [व.] यों कहते हुए दारुक निर्वेदन (अनुताप) के वशीभूत हुआ, उसने फिर इस प्रकार विनती की— "यादवों का समुद्र थम गया; बंधु, गुरु, मित्रजन कहीं इधर-उधर चले गये; अब द्वारका जाकर मैं सुहृदों से क्या कहूँ?" इस प्रकार कहते समय [कृष्ण के] दिव्य अस्त्र-शस्त्र, दिव्य रथ और घोड़े अंतर्धान (अदृश्य) हुए। नारायण ने उसे बता दिया "तुम जाकर अक्रूर और विदुर को यह सारा वृत्तांत सुनाओ; सव्यसाची अर्जुन से मिलकर कहो कि वह स्त्री, बाल, गुरु और वृद्धजनों को करिपुर (हस्तिनापुर) लिवा ले जाय। जाओ।" इस पर वह लौट चला और कृष्ण का कथन सविस्तर लोगों को सुनाया। उस रीति से जब काम समाप्त हुआ, उसी क्षण द्वारकानगर परिपूर्ण जलमय हो डूब गया, तब वह सबके लिए दुर्गम [बन गया] था।

अध्यायमु—३१

व. अप्परमेश्वरुंडुनु शतकोटि सूर्य दिव्यतेजो विभासितुंडै वडलि, नारदादि मुनिगणंबुलुनु, ब्रह्मरुद्रादि देवतलुनु, जयजय शब्दंबुलतोडं गवलि निजपदंबुन,करिगॆ। नारायण विग्रहंबु जलधि प्रांतंबुन जगन्नाथस्वरूपंबै युंडॆ। अनि शुकुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुनकुं जॆप्पॆ। अनि चॆप्पि ॥ 122 ॥

कं. ई कथ विन्ननु व्रासिन
श्रीकरटंबुग लक्ष्मि यशमु भाग्यमु गल्गुगुन्
जेकॊनि यायुवु घनुडै
लोकमुलो नुंडु नरुडु लोकुलु वॊगडन् ॥ 123 ॥

कं. राजीवसदृशनयन ! वि-
राजित शुभदाभिधेय ! राजविनुत ! वि-
भ्राजितकीर्ति लतावृत !
राजीवभवादि जनक ! रघुकुलतिलका ! ॥ 124 ॥

मालिनि धरणिदुहितृरंता ! धर्ममार्गावगंता !
निरुपम नयवंता ! निर्जराराति हंता !
गुरु बुध सुखकर्ता ! कोसल क्षोणिभर्ता !
सुरमय परिहर्ता ! सूरि चेतोविहर्ता ! ॥ 125 ॥

अध्याय—३१

[व.] वह परमेश्वर भी शतकोटि-सूर्य-दिव्य-तेज से विभासित हो, नारद आदि मुनि-गणों, ब्रह्मा-रुद्र आदि देवताओं और उनके किये जय-जयकार शब्दों के साथ, अपने निजपद (निवास) को जा पहुँचा। नारायण का विग्रह (मूर्ति) समुद्र के प्रांत (प्रदेश) में जगन्नाथ के स्वरूप में रह गया। इस प्रकार शुक ने परीक्षिन्नरेंद्र को सुनाया। १२२ [कं.] जो नर यह कथा सुनेगा अथवा लिखेगा उसे निश्चय ही लक्ष्मी (संपत्ति), यश, तथा भाग्य प्राप्त होगा; वह दीर्घायु होकर लोगों की प्रशंसा पाता हुआ लोक में जीवित रहेगा। १२३ [कं.] हे राजीव (कमल) सदृश नयन वाले ! विराजित-शुभदाभिधेय (शुभप्रद नामों से विराजमान रहनेवाले) ! राजविनुत (राजाओं से प्रशंसित) ! विभ्राजित कीर्ति,-लतावृत (प्रकाशमान कीर्तिरूपी लता से घिरे हुए) ! राजीवभवादि-जनक (ब्रह्मा आदि के पिता) ! हे रघुकुल-तिलक (रघुवंश-भूषण-राम) ! १२४ [म.] हे धरणि-दुहितृ-रंता (भू-पुत्री सीता से क्रीडा करनेवाले) !

गद्य इदि श्रीपरमेश्वर करुणाकलित कविताविचित्र केसनमंत्रि पुत्र सहज पांडित्य पोतनामात्य प्रियशिष्य वॅलिगंदल नारायणाख्य प्रणीतंबैन, श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबुनंदु गृष्णुंडु भूभारंबु वापि, यादवुल कन्योन्य वैरानुबंधंबु गल्पिंचि, वारल हतंबु गाविंचुटयु, विदेहर्षभ संवादंबुनु, नारायणमुनि चरित्रंबुनु, नालुगुयुगंबुल हरि नालुगुवर्णंबुल वर्तिंचुटयु, ब्रह्मादि देवतलु द्वारकानगरंबुनकुं जनि, कृष्णुं ब्रार्थिंचि, निजपदंबुनकु रम्मनुटयु, नवधूत यदु संवादंबुनु, नुद्धवुनकु गृष्णुंडु नानाविधंबुलैन युपाख्यानंबु लॅरिंगिंचुटयु, नारायण प्रकारंबंतयु दारुकुं-डॅरिंगि वच्चि, द्वारकावासुलकुं जॅप्पुटयु, गृष्णुडु दन दिव्य तेजंबुतो बरमात्मं गूडुटयु ननु कथलु गल येकादश स्कंधमु संपूर्णंबु ॥ 126 ॥

धर्ममार्गाविगंता (धर्ममार्गगामी)! निरुपम-नयवंता (असमान-नीतिमान्)! निर्जराराति-हंता (देवताओं के शत्रु-राक्षसों का अंत करने वाले)! गुरु-बुध-सुखकर्ता (गुरुजनों और बुद्धिमानों को सुख देनेवाले)! कोसल-क्षोणि-भर्ता (कोसल देश के राजा)! सुर-भय-परिहर्ता (देवों का भय दूर करनेवाले)! सूरि-चेतो-विहर्ता (विद्वानों के चित्त में विहार करनेवाले)! [तुम्हें नमस्कार।] १२५ [गद्य] यह श्री परमेश्वर-करुणाकलित-कविता-विचित्र, केसन मंत्रीपुत्र, सहज-पांडित्य से युक्त पोतनामात्य के प्रिय शिष्य वॅलिगंदल नारायण नामक [कवि द्वारा] प्रणीत श्रीमहाभागवत महापुराण में— कृष्ण का भूभार उतार कर, यादवों में अन्योन्य बैरानुबंध उपजाकर उनका नाश करना; विदेहर्षभ-संवाद; नारायण मुनि का चरित; चार युगों में चार वर्णों से हरि का वर्तन (आचरण) करना; ब्रह्मा आदि देवों का द्वारका नगर आकर कृष्ण से अपने निजपद पर लौट आने की प्रार्थना करना; अवधूत-यदु-संवाद; कृष्ण का उद्धव को अनेक प्रकार के उपाख्यान बताना; नारायण का सारा वृत्तांत जानकर दारुक का द्वारकावासियों को सुनना; कृष्ण का अपने दिव्य तेज के साथ परमात्मा में जा मिलना —आदि कथाओं से युक्त एकादश-स्कंध संपूर्ण हुआ। १२६

ॐ

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(द्वादश स्कन्धमु)

भविष्यन्नरपालराज्य परिपालन कालनिर्णयानुवर्णनमु

कं. श्रीमरुदशनपति शयन !
कामित मुनि राजयोगि कल्पद्रुम ! भू-
काम ! घनजनक वर नृप
जामातृवरेश ! रामचंद्रमहीशा ! ॥ 1 ॥

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनिश्रेष्ठुलकु निखिल पुराणव्याख्यान वैखरीसमेतुं-डयिन सूतुंडिट्लनियें। अट्लु परीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुंडु वासुदेव निर्याणपर्यंतंबु तज्जन्मकर्मंबुलु सेप्पिन विनि, संतसंबंदि, यन्नरपाल-पुंगवुंडु, महात्मा ! नारायण कथाप्रपंचंबुनु, तद्गुणंबुलुनु, नाचारविधियुनु, जीवात्मभेदंबुनु, हरिपूजा विधानंबुनु, ज्ञानयोग प्रकारंबुनु, सेदलयिनवि

(द्वादश स्कन्ध)

भविष्यत् के राजाओं के शासन का काल-निर्णय का अनुवर्णन

[कं.] हे शुभदायक मरुत्-अशन-पति (शेषनाग)-शयन ! मुनि तथा राजयोगियों का अभीष्ट पूरा करनेवाले कल्पवृक्ष ! भुवनमोहन ! जनक राजा के उत्तम जामाता ! हे राजा रामचंद्र ! (तुम्हें नमस्कार।) ।

[व.] महनीय-गुण-गरिष्ठ मुनिश्रेष्ठों से निखिल पुराण-व्याख्यान-वैखरीयुक्त सूत ने यों कहा— "राजा परीक्षित को शुकयोगीद्र ने वासुदेव की कथा का जन्म से लेकर निर्वाण पर्यंत उसके कृत्यों का जो वर्णन किया था, उसे सुनकर, आनन्द पाकर उस नरपाल-पुंगव ने कहा, "हे महात्मा ! तुमने नारायण-कथा-प्रपंच, उसके गुण, आचार-बिधि, जीवात्म-भेद, हरिपूजा-बिधान, ज्ञानयोग-प्रकार आदि विषय समझाकर, मुझे ज्ञानवान्

वेरिंगिचि, ज्ञानवंतुंगा जेसि, मन्निचितिवि। इंक भाविकार्यमुलन्नि
नेरिंगिपुमु। अनिन शुकयोगींद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 2 ॥

अध्यायमु—१

कं. नरवर ! यी प्रश्नमुनकु
सरि चॆप्पगरादु नादु सामर्थ्यमुचे
वरिकिंचि नीकु जप्पॆद
गरमॊप्पग भावि कालगतुलन् वरुसन् ॥ 3 ॥

व. अंदु राजुल प्रकारं बॆरिंगिचॆद। बृहद्रथुनकुं बुरंजयुंडु बुट्टनु। वानिकि शुनकुंडनॆडुवाडु मंत्रियै, पुरंजयुनि जंपि, तानु राज्यं बेलुचुंड, नंत गॊंतकालं-बुनकतनिकि गुमारुंडुदयिंचिन, वानिकि प्रद्योतननामं बिडि, यतनिकि बट्टंबु गट्टनु। आ भूभुजुनकु विशाखयूपुंडुदयिंच गलडु। आतनिकि नंदिवर्धनुंडु जनियिंचु। ई येनुरु नूट मुप्पदियॆनिमिदि संवत्सरंबुलु वसुंधरापरिपालनंबुनं बॆंपु वडयुदुरु। तदनंतरंब, शिशुनामुंडनु पार्थिवुंडुदयिंचु। आ मूर्धाभिषिक्तुनकु गाकवर्णुंडु जनियिंचु। आ राजन्युनकु क्षेमधर्मुंडुदयिंच गलडु। आ पृथ्वीपतिकि क्षेत्रज्ञुंडनु, नतनिकि विधिसारुंडनु, विधिसारुनकजातशत्रुंडनु, ना भूपालुनकु दर्भकुंडनु, दर्भकुनिकि नजयुंडनु, नतनिकि नंदिवर्धनुंडनु, नतनिकि

बनाया और सम्मानित किया; अब भविष्यत् में होनेवाले समस्त कार्य जताओ।" —इस पर शुकयोगींद्र ने यों कहा : २

अध्याय—१

[कं.] "हे नरवर ! इस प्रश्न का समाधान ठीक-ठीक दिया नहीं जा सकता, फिर भी अपनी सामर्थ्य के बल परखकर भविष्यत्काल की गतियाँ क्रम से बता दूँगा। ३ [व.] उनमें [प्रथमत:] राजाओं का क्रम व्यक्त करूँगा। बृहद्रथ का पुरंजय उत्पन्न होगा। शुनक नामक उसका मंत्री उसे मारकर स्वयं राज्य का शासन चलाता रहेगा। कुछ काल के अनंतर उसका प्रद्योत नामक पुत्र होगा तो उसे राजगद्दी दी जायेगी। उस राजा का विशाखयूप और उसका नंदिवर्धन उत्पन्न होंगे। ये पाँचों एक सौ अड़तीस वर्ष तक वसुंधरा का परिपालन करके प्रसिद्ध होंगे। अनंतर, शिशुनाभ नामक पार्थिव का उदय होगा। उस मूर्धाभिषिक्त का काकवर्ण जन्मेगा; उस राजन्य का क्षेमवर्म उत्पन्न होगा, उस पृथ्वी-पति का क्षेत्रज्ञ, उसका विधिसार, विधिसार का अजातशत्रु, और उस भूपाल

महानंदियु ननंगल शैशुनाभुलु पदुगुरु नरपालकुलुद्भविंचि, षष्ट्युत्तर त्रिशतहायनंबुलु कलिकालमंदु धरातलंबेलेंदरु। अंतट महानंदिकि शूद्रस्त्री गर्भंबुन नतिबलशालियैन महापद्मपतियनु नंदुंडुदयिंचु। अतनितो क्षत्रियवंशंबणगिपोगलदु। आ समयंबुन नरपतुलु शूद्रप्रायुलै धर्मविरहितुलै, तिरुगुचुंड, महापद्मुनकु सुमाल्युंडु मोदलयिन यैनमंड्रु कुमारुलुदयिंचेदरु। वारु नूरु संवत्सरंबुलु क्षोणीतलंबेलेदरु। अंतट गार्मुकुंडु मोदलुगा राजनवकंबु नंदाख्यलं जनियिंचु। आ नवनंदुलनोक भूसुरोत्तमुंडुन्मूलनंबु सेयु। अप्पुडु वारु लेमिनि मौर्युलु गोंतकालंबो जगतीतलंबु नेलुदुरु। अत्तरि ना भूदेवुंडु चंद्रगुप्तुंडनु वानि नंदराज्यमुनंदु नभिषिक्तुनिगा जेयगलडु। अंत ना चंद्रगुप्तुनकु वारिसारुंडुनु, वानिकि नशोक वर्धनुंडुनु, नतनिकि सुयशस्सुनु, वानिकि संयतुंडुनु, नम्महनीयुनकु शालिशूकुंडुनु, नतनिकि सोमशर्मुंडुनु, वानिकि शतधन्वुंडुनु, नव्वीरुकु बृहद्रथुंडुनुदयिंचेदरु। मौर्युलतो जेरिन यी पदुगुरुनु, सप्तत्रिंशदुत्तर-शताब्दंबुलु निष्कंटकंबुगा भूपरिपालनंबु सेसेदरु। आ समयंबुन बृहद्रथुनि सेनापतियगु पुष्यमित्रुडु, शुंगान्वयुडतनि वधिंचि, राज्यंबु गैकोनु। अतनिकि नग्निमित्रुंडनु नरपति पुट्टगलवाडु। वानिकि सुज्येष्ठुंडुनु,

---

का दर्भक, दर्भक का अजय, और उसका नंदिवर्धन, उसका महानंदी नामक दस शैशुनाग राजा उत्पन्न होकर तीन सौ साठ वर्ष कलिकाल में राज्यपालन करेंगे। अनंतर महानंदी का शूद्र स्त्री के गर्भ में अतिबलशाली महापद्मपति नामक नंद उत्पन्न होगा। उसके साथ क्षत्रिय-वंश का अंत हो जायगा। उस समय के नरपति शूद्रप्राय और धर्म-विरहित हो कर विचरते रहेंगे। महापद्म के सुमाल्य आदि आठ कुमार होंगे जो एक सौ वर्ष तक क्षोणितल का शासन करेंगे। अनंतर कार्मुक आदि नौ राजा नंदों में उत्पन्न होंगे। उन नवनंदों का एक भूसुरोत्तम (ब्राह्मण) उन्मूलन कर देगा। तब उनकी जगह मौर्य लोग कुछ काल तक जगतीतल पर राज्य करेंगे। उस समय वह भूदेव (ब्राह्मण) चंद्रगुप्त कहलानेवाले को नंदराज्य पर अभिषिक्त करेगा। उस चंद्रगुप्त का वारिसार, उसका अशोकवर्धन, उसका सुयस, उसका संयत, उस महनीय का शालिशूक, उसका सोमशर्मा, उसका शतधन्वा, उस वीर का बृहद्रथ [क्रमशः] पुत्र उत्पन्न होंगे। मौर्यों से मिले हुए ये दस राजा लोग एक सौ सैंतीस वर्ष निष्कंटक रूप से भूपालन करेंगे। उस समय बृहद्रथ का सेनापति शुंग-वंशी पुष्यमित्र उसका वध करके, राज्य छीन लेगा। उसका अग्निमित्र नाम का नरपति पैदा होगा। उसका सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठ का वसुमित्र, उसका भद्रक, भद्रक का पुलिंद, उस शूर का घोष, उसका वज्रमित्र, उसका भागवत और उसका देवहूति जन्मेंगे। ये दस शुंग राजा

सुज्येष्ठुनकु वसुमित्रुंडुनु, नतनिकि भद्रकुंडुनु, भद्रकुनकु बुळिंदुंडुनु, ना शूद्रुनकु घोषुंडुनु, वानिकि वज्रमित्रुंडुनु, अतनिकि भागवतुंडुनु, वानिकि देवहूतियु जनियिंदरु। ई शुंगुलु पदुगुरु द्वादशोत्तरशत हायनंबु-लुर्वीपतुलय्येदरु। अंतमीदट नल्पगुणुलैन कण्वुलु भूमिनि बालितुरु। शुंगकुल कंजातुंडयिन देवहूतिनि गच्चडुनु, नमात्युंडुनगु वसुदेवुंडनुवाडु वधियिंचि, राज्यंबेलु। वानिकि भूमित्रुंडुनु, ना महानुभावुनकु नारायणुंडुनु गलिगेदरु। कण्ववंशजुलयिन वीरलु मूंडूट नलुबदेनु संवत्सरंबुलु मेदिनीतलंबेलुदुरु। मख्यियुनु ॥ 4 ॥

कं. चतुरत नी क्षिति नेलियु
मति मोहमु विडुवलेक मानवनाथुल्
सततमु दमकी कालं-
बतिचंचलमगुट नेरुगरय्य ! महात्मा ! ॥ 5 ॥

कं. नरपतुल महिममंतनु
नुरगाधिपुडैन नोडुव नोपडु धात्रि
जिरकालमेलि यिदे
परुवडि नणगुदुरुधारु भ्रांतुलुनगुचुन् ॥ 6 ॥

कं. गजतुरगादि श्रीलनु
निजममि नम्मंगराडु नित्यमुनु हरिन्
गजगिजलेक तलंचिन
सुजनुलकुनु नतनियंदु जोरगावच्चुन् ॥ 7 ॥

एक सौ बारह वर्ष उर्वीपति (राजा) बनेंगे। अनंतर अल्प-गुणवान् कण्व लोग भूमि पर शासन करेंगे। शुंग कुल में कमल-समान देवहूति का वध करके उसका अमात्य कण्ववंशी वसुदेव राज्य करेगा। उसका भूमित्र और उस महानुभाव का नारायण होंगे। ये कण्ववंशज राजा तीन सौ पैंतालीस वर्ष मेदिनीतल पर शासन करेंगे। और…४ [कं.] हे महात्मा! ये राजा लोग चतुरता से राज्य-शासन चलाते रहेंगे, फिर भी अपनी मोह-बुद्धि छोड़ न सकेंगे, वे लोग यह मान बैठेंगे कि समय सदा अनुकूल रहेगा, वे जान न सकेंगे कि काल अतिचंचल है। ५ [कं.] इन नरपतियों की महिमा पूरी तरह से उरगाधिप शेषनाग भी कह न सकेगा, ये लोग चिरकाल तक शासन चलाने के बाद भ्रांत होकर यहीं पर क्रम से दब मरेंगे। ६ [कं.] गज, तुरग आदि संपत्ति को सत्य (शाश्वत) कहकर मानना नहीं चाहिए; विकलता छोड़कर, नित्य हरि का चिंतन करने पर सज्जनों को उस [परमेश्वर] में प्रवेश मिल सकता है। ७ [व.] कण्ववंशी

व. मट्रियुनु, गण्ववंशजुडगु सुशर्मुडनु राजुदयिंचिन, वानि हिंसिंचि, तद्भृत्युं-डंध्रजातीयुंडयिन वृषलुंडधर्म मार्गवर्तियै, वसुमती चक्रंबवक्रुंडै येलु। अंत वानि यनुजुंडु कृष्णुंडनुवाडु राजै, निलुचु। आ महामूर्तिकि शातकर्णुडुनु, वानिकि पौर्णमासुंडुनु, नतनिकि लंबोदरुंडुनु, वानिकि शिबिलकुंडुनु, नतनिकि मेघस्वातियुनु, वानिकि दंडमानुडुनु, वानिकि हालेयुंडगु नरिष्टकर्मयु, नतनिकि दिलकुंडुनु, नतनिकि बुरीष सेतुंडुनु, वानिकि सुनंदनुंडुनु, ना राजशेखरुनकु वृकुंडुनु, वृकुनकु जटापुंडुनु, जटापुनकु शिवस्वातियुनु, वानिकि नरिंदमुंडुनु, ना भूमीशुनकु गोमतियुनु, वानिकि बुरीमंतुंडुनु, नतनिकि देवशीर्षुडुनु, वानिकि शिवस्कंदुंडुनु, नतनिकि यज्ञशीलुंडुनु, ना भव्युनकु श्रुतस्कंदुंडुनु, वानिकि यज्ञशत्रुडुनु, वानिकि विजयुंडुनु, विजयुनकु जंद्रबीजुंडुनु, नतनिकि सुलोमधियुनु, निट्लु पेक्कंड्रु दयिंचि नन्नूट येबदियारु संवत्सरंबुलु धात्रि बालिंचेदरु। अंतट नाभीरुलेडुगुरु, गर्दभुलु पदुंड्रुनु, गंकवंशजुलु पदार्गुरु, यवनुलेनमंड्रु, बर्बरुलु पदुनलुगुरु देशाधीशुलै येलेंदरु। मट्रियुन् मुरुंडुलु पदुमुग्गुरुनु, बदुनलुगुरु मौनुलुनु, वेय्यिन्नि तोम्मन्नूट तोम्मिदि हायनंबुलु गर्वांधुलै येलेंदरु। अटमीद ना मौलिवंशजुलगु पदुनोकंडु मंदि त्रिशतपुतंबुन

सुशर्मा का राज्य करते समय उसे मारकर उसका भृत्य आंध्रजातीय वृषल अधर्म-मार्गवर्ती हो वसुमतीचक्र (भूचक्र) का अवक्र रीति से शासन करेगा। तब उसका अनुज कृष्णनामी [व्यक्ति] राजा बन जायगा। उस महामूर्ति का शातकर्ण, उसका पौर्णमास, उसका लंबोदर, उसका शिबिलक, उसका मेघस्वाती, उसका दण्डमान, उसका हालेय कहलानेवाला अरिष्टकर्म, उसका तिलक, उसका पुरीषसेतु, उसका सुनंदन, उस राजा का वृक, वृक का जटायु, जटायु का शिवस्वाति, उसका अरिंदम, उस भूमीश का गोमति, उसका पुरीमंत, उसका देवशीर्ष, उसका शिवस्कंद, उसका यज्ञशील उस भव्य का श्रुतस्कंद, उसका यज्ञशत्रु, उसका विजय, विजय का चंद्रबीज, उसका सुलोमधि इस प्रकार पुत्र होकर उत्पन्न होंगे। ये अनेक राजा चार सौ छप्पन वर्ष धात्री का पालन करेंगे। उसके बाद सात आभीर, दस गर्दभ, सोलह कंकवंशज, आठ यवन, चौदह बर्बर राजा लोग देश के अधीश होकर शासन करेंगे। फिर, तेरह मुरुंड, चौदह मौनी राजा लोग एक हज़ार नौ सौ नौ वर्ष तक गर्वांध होकर राज्य करते रहेंगे। उसके अनंतर मौलिवंशीय ग्यारह नरेश तीन सौ वर्ष मत्सर के साथ शासन करेंगे। उस समय कैलिक नामक यवन लोग भूपति बनेंगे। उनमें भूतनंद, यवनभंगिर, शिशुनंद, उसका भाई यशोनंद, प्रवीरक —ये लोग वीर बनकर एक सौ छः वर्ष राज्य करेंगे। तब उनके तेरह कुमार

वत्सरंबुलु मत्सरंबुन नेलेंदरु। आ समयंबुन गैलिकिलुलनु यवनुलु भूपतुलगुदुरु। अंदु भूतनंदंडुनु, यवभंगिरुंडुनु, शिशुनंदंडुनु, दद्भ्रातयगु यशोनंदुंडुनु, प्रवीरकुंडुनु, वीरलु वीरलै, पडुत्तरशत हायनंबुलेलेंदरु। अंत ना राजुलकु वदुमुग्गुरु कुमारुलुदयिंचि, यंदु नार्गुरु बाह्लिक देशाधिपतुलय्येंदरु। कडम येड्गुरुनु कोसलाधिपतुलय्येंदरु। अंत वैडूर्यपतुलु निषधाधिपतुलै युंडेदरु। पुरंजयुंडु मगधदेशाधिपतियै पुट्टु। अंत नतंडु पुळिंद यदु मद्रदेशवासुलगु हीनजाति जनुलु ब्रह्मज्ञान हीनुलै, हरिभक्ति विरहितुलैयुंड, वारिकि धर्मोपदेशंबु चेसि, नारायण भक्ति नित्यंबु नुंडुनट्लुगा जेसि, बल पराक्रमवंतुंडै, क्षत्रिय वंशंबुलडंचि, पद्मावतीनगर परिपालकुंडै, गंगानदि मोदलु प्रयागवरकुगल भूमि नेलगलडु। सौराष्ट्र, अवंति, आभीर, अर्बुद, माळवदेशाधिपतुलु व्रात्यब्राह्मणुलयि, शूद्रप्रायुलै युंडगलरु। वारु सिंधुतीरंबुलनु, चंद्रभागा प्रांतंबुल, गांची काश्मीर मंडलंबु नेलेंदरु। मरियु नत्तरि शूद्रुलुनु, म्लेच्छुलुनु, ब्रह्मतेजोहीनुलयिन ब्राह्मणुलुनु भूभागंबुलं बरिपालितुरु। मरियु, वीरलु राजरूपुलयिन म्लेच्छुलं, धर्मसत्यदयाहीनुलै, क्रोध-मात्सर्यंबुल, स्त्रीबाल गोद्विजातुल वधियिप रोयक, परधन परस्त्रीपरुलै, रजस्तमो गुणरतुलै, यल्प जीवुलै, यल्प बलुलै, हरिचरणारविंद मकरंद रसास्वादुलु गाक, तमलो नन्योन्य वैरानुबंधुलै, संग्रामरंगंबुल हतुलय्येंदरु।

उत्पन्न होंगे जिनमें से छः वाह्लीक देश के अधिपति बनेंगे। शेष सात कोसल के अधिपति होंगे। उसके अनंतर वैडूर्यपति निषध देश के अधिपति रहेंगे। फिर पुरंजय जन्म लेकर, मगध का अधिपति बनेगा। वह पुलिंद, यदु, मद्र देशवासी हीनजाति जनों को जो ब्रह्मज्ञान-हीन और हरिभक्त-विरहित रहेंगे, धर्मोपदेश देकर उन्हें नारायण-भक्ति-परायण बना देगा और बल-पराक्रमवान होकर क्षत्रियवंशों को दबाकर, पद्मावती नगर-पालक बन गंगानदी से लेकर प्रयाग तक की भूमि पर राज करेगा। सौराष्ट्र, अवंती, आभीर, अर्बुद, मालव देशों के अधिपति व्रात्य ब्राह्मण होकर और शूद्र-प्राय (-समान) होकर रहेंगे। वे लोग सिंधुतीर और चंद्रभागा प्रांतों को तथा कांची, काश्मीर मंडलों पर शासन चलायेंगे। उन दिनों में शूद्र, म्लेच्छ तथा ब्रह्म-तेजो-विहीन ब्राह्मण भूभागों पर अपना राज्य चलाते रहेंगे। ये लोग राजाओं के रूप में म्लेच्छ बन, धर्म-सत्य-दया-हीन हो, क्रोध-मात्सर्य से स्त्री-बाल-गो-द्विजाति-वध से विरत हुए बिना, परधन, परस्त्री-परायण हो, रजस्तमोगुणों से युक्त हो, अल्पजीवी और अल्पबली बनकर, हरि-चरणारविंद-मकरंदरसास्वादी न होकर, अन्योन्य वैर-भाव से संग्राम-रंगों

आ समयंबुनं ब्रजलु तच्छील वेषभाषादुल ननुसरिंचि युंडेदरु।
कावुन ॥ 8 ॥

अध्यायमु—२

कं. दिनदिनमुनु धर्मंबुलु
ननयमु धर नडगिपोवु नाश्चर्यमुगा
विनु वर्ण चतुष्कमुलो
नॅनयग धनवंतुडैन नेलु धरित्रिन् ॥ 9 ॥

कं. बलवंतुडैन वाडे
कुलहीनुंडैन दौड्डु गुणवंतुडगुन्
गलिमियु वलिमियु गलिगिन
निललोपल राजतंडे येमनवच्चुन् ॥ 10 ॥

व. अट्लुगान, जनंबुलु लोभुलै, जारत्व चोरत्वादुलचेत द्रव्यहीनुलै, वन्यशाक-मूल फलंबुलनु भुजिपुचु, वनगिरि दुर्गंबुलं गृशीभूतुलै, दुर्भिक्ष शीतवातातप क्षुधातापंबुल चेत भयपडि, धैर्यहीनुलै, यल्पायुष्कुलु, नल्पतर शरीरुलु-नैयुंड, राजुलु चोरुलै, संचरिंपुचु, नधर्म प्रवर्तनुलै, वर्णाश्रमधर्मंबुलु वदलि, शूद्रप्रायुलै, युंडेदरु। अंत नोषधुलल्पफलदंबुलु, मेघंबुलु

(युद्धक्षेत्रों) में निहत हो जायेंगे। उस समय की प्रजा-राजाओं के शील-वेष-भाषा आदि के अनुसार ही व्यवहार करती रहेगी। अतः ८

अध्याय—२

[कं.] सुनो ! लोक में आश्चर्यजनक रूप से धर्म दिन पर दिन घटते जायेंगे, चारों वर्णों में जो कोई अधिक धनवान होगा वही धरित्री का शासन करेगा। ९ [कं.] कुलहीन होने पर भी यदि कोई बलवान रहे तो वही बड़ा गुणवान समझा जायेगा, धन और बल रहा तो पृथ्वी पर वही राजा बनेगा, [उसके विरुद्ध] कुछ भी कहा नहीं जा सकेगा। १० [व.] अतः [एक तरफ़] लोग लोभी बन, जारत्व-चोरत्व के कारण द्रव्यहीन हो, वन्य-शाक-मूल-फल खाते हुए, वन-गिरि-दुर्गों में रहते हुए कृशीभूत हो, दुर्भिक्ष (अकाल) शीत-वात-आतप (धूप) और क्षुधा (भूख) के ताप से भयभीत हो, धैर्यहीन होकर अल्पायुष्क तथा अल्प-शरीरी बने रहेंगे; तो [दूसरी तरफ़] राजा लोग चोर बन घूमते हुए अधर्म-वर्तन वाले हो, वर्णाश्रम-धर्म छोड़कर, शूद्रप्राय बने रहेंगे। औषध अल्पफलदायक, मेघ जल-शून्य, सस्य (धान) निस्सार (सारहीन)

जलशून्यंबुलु, सस्यंबुलु निस्सारंबुलु नगुनु। इट्लु धर्ममार्गंबु लेकयुन्नयेंड मुकुंदुंडु दुष्टनिग्रह शिष्टपरिपालनंबु कोरकु, शंबल ग्रामंबुन विष्णुयशंबनु विप्रुनकु पुत्रत्वंबु नोंदि, कल्क्यावतारंबै, देवताबृंदंबुलु निरीक्षिप, देवदत्त घोटकारूढुंडै, दुष्ट म्लेच्छ जनंबुल दन मंडलाग्रंबुन खंडीभूतुलंजेयु। अप्पुडु, धात्री मंडलंबु विगत क्रूरजन मंडलंबै, तेजरिल्लुनु। अंत नरुलु विष्णुध्यान वंदन पूजादि विधानासक्तुलै नारायण परायणुलै, वर्तिल्लेदरु। इट्टुला कल्क्यवतारंबुन निखिल जनुलु धन्युलय्येदरु। अंतट गृतयुग-धर्मंबै नडचुचुंडु। चंद्र भास्कर शुक्र गुरुवुलेकराशिगतुलयिनं गृतयुगंबै तोचु। राजा! गतवर्तमान भाविकालंबुलु, भवज्जन्मंबु मोदलु पंचदशा-धिकोत्तर शतसहस्र हायनंबुलै, नंदाभिषेक पर्यंतंबु नुंडु। अंत नारायणुं-डखिल दुष्टराजध्वंसंबु गाविंचि धर्मंबु निलिपि, वैकुंठ निलयुंडगु। अनि चेप्पिन ॥ 11 ॥

कं. मुनिनाथ! ये विधंबुन
घनतरमुग जंद्रसूर्य ग्रहमुल जाडल्
चनु गालवर्तन क्रम-
मोनरग नेंङ्रिगिपवय्य! मुदमु दलिर्पन् ॥ 12 ॥

व. अनिन, नट्लकाकयनि चेप्प दोडंगे। विनुमु। सप्तर्षि मंडलांतर्गतंबु-लयिन, पूर्वऋक्षद्वय सममध्यंबुनंदु, निशासमयंबुन, नोक्क नक्षत्रंबु

रह जायेंगे। यों लोक जब धर्ममार्ग से भ्रष्ट हो रहेगा, तब मुकुंद (भगवान) दुष्टनिग्रह और शिष्ट-रक्षण के निमित्त शंबल ग्राम में विष्णुयश नामक विप्र (ब्राह्मण) का पुत्र बन कल्क्यवतार ग्रहण करेगा और देववृंद के देखते रहने पर, देवों के दिए घोड़े पर आरूढ़ हो, दुष्ट म्लेच्छ जनों को अपने खड्ग की धार पर उतार देगा। उस समय धात्रीमंडल विगत-क्रूर-जन-मंडल होकर चमक उठेगा (शोभायमान रहेगा)। तब मनुष्य विष्णु के ध्यान-वंदन-पूजा आदि विधान में आसक्त हो नारायण-परायण बन वर्तन करेंगे। इस प्रकार उस कल्क्यवतार के कारण निखिल जन धन्य बनेंगे। तब कृतयुग का धर्म चलने लगेगा। चंद्र, सूर्य, शुक्र, गुरु के एकराशिगत होने पर कृतयुग दिखाई पड़ेगा। हे राजेंद्र! गत-वर्तमान और भाविकाल का बिवरण मैंने तुमको बता दिया। तुम्हारे जन्म से लेकर नंदाभिषेक पर्यंत एक हजार एक सौ पंद्रह वर्ष व्यतीत होंगे। तब नारायण दुष्ट राजाओं का ध्वंस करके, धर्म को प्रतिष्ठित कर बैकुंठ-निलय लौटेगा। इतना कहने पर [राजा ने पूछा]: ११ [कं.] "हे मुनिनाथ! चंद्र सूर्य आदि ग्रहों का संचार किस प्रकार से होता है? काल-वर्तन का क्रम कैसा होगा? मुझे बता दो जिससे मेरा आनन्द बढ़े।" १२ [व.] कहने

गानुर्विचिन, नाकालंबु मनुष्यमानंबुन शतसंवत्सर परिमितंबय्येनेनि, ना समयंबुन जनार्दनुंडु निजपदंबुनं बोंदलु। आ वेळनँ धात्रीमंडलंबु कलिसमाक्रांतंबगु। कृष्णुंडेंतकालंबु भूमियंदु ब्रवर्तिंचु, नंतकालंबु कलि समाक्रांतंबु गाडु। मघा नक्षत्रंबंदु सप्तर्षुलु ने घस्रंबुन जरियिंतु-राघस्रंबुन गलि प्रवेशिंचि वेयु निन्नूरु वर्षंबुलुंडु। अंत ना ऋषि संघंबु पूर्वाषाढकरिगिनं, गलि प्रवृद्धंबुनोंदु। ए दिवसंबुन हरि परमपद प्राप्तुंडय्यं नद्दिवसंबुनंद कलि प्रवेशिंचि, दिव्याब्द सहस्रंबुलु चनिन यनंतरंब, नालुगव पादंबुन गृतयुग धर्मंबु प्राप्तंबगु ॥ 13 ॥

च. नरवर! तोंटभूपतुल नामगुणंबुलु वृत्त चिह्नमुल्
सिरियुनु रूपसंपदलु चेन्नगु राज्यमुलात्म वित्तमुल्
वरुस नणंगे गानियट वारल कीर्तुलु निर्मलंबुलै
युरवडि भूमिलो निलिचि युन्नवि नेड्डनु राजशेखरा! ॥ 14 ॥

व. शंतनु ननुजुंडगु देवापियु, निक्ष्वाकुवंशजुंडगु मरुत्तुनु, योगयुक्तुलै, कलापग्राम निलयुलै, कलियुगांतंबुनंदु वासुदेव प्रेरितुलै, प्रजल नाश्रमाचारंबुलु दप्पकुंड नडपुचु, नारायण स्मरणंबु नित्यंबुनुं जेसि

पर, ऐसा ही हो कहकर, [मुनि] कहने लगा— "सुनो; सप्तर्षिमंडल प्रथम मे उदित होनेवाले दो नक्षत्रों के ठीक मध्य में, रात के समय यदि एक और नक्षत्र दिखाई देता रहे तो वह काल मानव-काल-मान में सौ वर्ष परिमित होगा तो उस समय जनार्दन अपने निजपद (आवास) में [जाकर] विराजमान रहेगा। उसी समय भूमंडल कलि (युग) से आक्रांत होगा। कृष्ण जितने दिन तक भूलोक में रहेगा तब तक कलि का प्रवेश न होगा। सप्तर्षि मघानक्षत्र में जिस दिन प्रवेश करेंगे, उसी दिन कलि प्रविष्ट होकर एक हज़ार दो सौ वर्ष तक रहेगा। वह ऋषिसंघ जैसे ही पूर्वाषाढ में प्रवेश करेगा वैसे ही कलि प्रवर्धमान होने लगेगा। जिस दिन हरि (कृष्ण) परमपद को प्राप्त हुए उसी दिन कलि का प्रवेश हुआ; एक हज़ार दिव्याब्द (देवमान में) बीतने पर [कलि के चतुर्थपाद में] कृतयुग का धर्म फिर से चलने लगेगा। १३ [च.] हे नरवर! पूर्व के भूपतियों (राजाओं) के नाम, गुण, वृत्त, चिह्न, ऐश्वर्य, रूप-संपत्ति, सुंदर राज्य, आत्म-धन, सब क्रमशः नष्ट हो गये, किंतु हे राजेश्वर! उनकी निर्मल कीर्ति, इस भूमि पर क्रम से आज भी स्थिर रह गयी है। १४ [व.] शंतनु का अनुज (भाई) देवापि और इक्ष्वाकु-वंशज मरुत् [ये दोनों] योगयुक्त हो, कलापग्राम मे रहते हुए, कलियुग के अंत में, वासुदेव से प्रेरित होकर, प्रजा को उनके आश्रम [विहित] आचा[illegible]र अचूक चलाते हुए, नित्य नारायण-स्म[illegible]रा

कैवल्य पदप्राप्तुलगुदुरु। इव्विधंबुन नालुगु युगंबुल राजुलुनु, ने नॆरिंगिचिन पूर्वराजन्युलुनु, वीरंदरुनु समस्त वस्तु संदोहंबुल यंदुनु ममतं बॊंदि, युत्साहवंतुलै युंडि पिदप, नीभूतलंबु वदलि, निधनंबुनॊंदुदुरु। कावुन गालंबु जाड यॆव्वरिकिं गानराडु। (कीर्ति सुकृत दुष्कृतंबुलु वॆंटनंटं गलयवि।) इदियुनुं गाक मत्पूर्वुलु हरिध्यान परवशुलै, दयासत्य शौच शम दमादिक प्रशस्तगुणंबुलंबसिद्धुलै नडचिरि। अट्लु गावुन ॥ 15 ॥

कं. धर्ममु सत्यमु गीर्तियु
निर्मलदय विष्णुभक्ति निरुपम घन स-
त्कर्म महिंसाव्रतमु-
न्नर्मिलि गलवारॆ पुण्युलवनीनाथा ! ॥ 16 ॥

ते. ई जगंबेलु तॊल्लिटि राजवरुलु
कालवशमुन नायुवुल् गोलुपोयि
नाममात्रावशिष्टुलैनारु कान
सलुपवलुवदु ममत नॆच्चट नृपाल ! ॥ 17 ॥

कैवल्यपद प्राप्त करेंगे। इस प्रकार चारों युगों के राजा लोग तथा जिन पूर्व-राजन्यों का कथन किया, वे लोग —ये सभी समस्त समुदाय पर ममता रखकर उत्साहपूर्वक जीवन विताकर, अनंत भूतल छोड़ मर जायेंगे। अत: काल का मार्ग (विधान) किसी गोचर नहीं होता। [केवल] कीर्ति, सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (ही साथ देंगे। इतना ही नहीं, हमारे पूर्वज हरिध्यानपरवश हो, सत्य, शौच, शम, दम आदि प्रशस्त गुणयुक्त हो प्रसिद्धि पा अत: १५ [क.] हे अवनीनाथ (भूपति) ! जो लोग धर्म, सत्य, निर्मल-दया, विष्णु-भक्ति, निरुपम सत्कर्म, अहिंसाव्रत में अपेक्षा र चलते हैं, वे ही पुण्यवान् है। १६ [ते.] हे नृपाल (राजा) ! इस का पालन (शासन) करनेवाले पूर्व के राजश्रेष्ठ, कालवश आयु र चल बसे, केवल उनका नाम ही बाक़ी रह गया, इसलिए कहीं पर (विषय पर) ममता न रखनी चाहिए। १७

अध्यायमु—३

व. गर्वांधुलैन नरपतुलं जूचि, भूदेवि हास्यंबु सेयु, शत्रुक्षयंबु चेसि यॆव्वरिकि-नीक, तामॆ येलुचुंडॆदमनियॆडि मोहबुनं बितृ पुत्र भ्रातलकु भ्रांति गलिपचि, यन्योन्य वैरानुबंधंबुलं गलहंबु चेसि, रणरंगंबुलं, तृणप्रायंबुलुगा देहाडुलु वर्जिचि, निर्जरलोक प्राप्तुलयिन पृथु ययाति गाधि नहुष भरतार्जुन मांधातृ सगर राम खट्वांग दुंदुमार रघु तृणबिंदु पुरूरवश्शंतनु गय भगीरथ कुवलयाश्व ककुत्स्थ निषधादुलगु राजुलुनु, हिरण्यकशिपु वृत्र रावण नमुचि शंबर भौम हिरण्याक्ष तारकादुलयिन दैत्युलुनु, धरणि ममत्वंबुनं चेसिकदा कालवशंबुन नाशंबुनॊंदिरि। इदि यंतयु मिथ्य गान सर्वंबुनु वरित्यजिंचि, जनार्दन वैकुंठ वासुदेव नृसिंहादि हरि-नामामृतपानंबु निरंतरंबु चेसि, जरारोग विकृतुलं बासि, हरि पदंबु नॊंदुमु। अनि चॆप्पि ॥ 18 ॥

**ते. उत्तमश्लोकुडन नॆव्वडुन्नवाडु
सन्नुतुंडगु नॆव्वडु सकलदिशल
नट्टि परमेश्वरुनि जित्तमंदु निलिपि
तद्गुणंबुलु वर्णिपु धरणिनाथ ! ॥ 19 ॥**

अध्याय—३

[व.] गर्वांध नरपतियों को देख भूदेवी [उनकी] हँसी उड़ाती है; शत्रुक्षय करके दूसरे को भाग न देकर, स्वयं ही राज भोगते रहने के मोह में पड़कर ये लोग अपने पितृ, पुत्र, भ्राताओं को भी भ्रांति में डालकर, अन्योन्य वैरानुबंधन और कलहों से रणरंग मे अपनी-अपनी देह को तृणप्राय समझ छोड़कर देवलोक पहुँच गये। पृथु ययाति, गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, दुंदुमार, रघु, तृणबिंदु, पुरूरव, शंतनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, निषध आदि राजा लोग तथा हिरण्यकश्यप, वृत्र, रावण, नमुचि, शंबर, भौम, हिरण्याक्ष, तारक आदि दैत्य लोग धरणी पर की ममता के कारण ही कालवश हो विनष्ट हो गये थे। यह सब [जग] मिथ्या है, अतः तुम सर्व का परित्याग कर जनार्दन, वैकुंठ, वासुदेव, नृसिंह आदि हरिनाम का अमृत निरंतर पान करके, जरारोग आदि विकार से मुक्त होकर, हरिपद प्राप्त करो। १८ [ते.] हे धरणिनाथ ! जो उत्तमश्लोक कहलाते हुए सन्नुत (स्तुत्य) हो, सकल दिशाओं में [व्याप्त] रहता है, उस परमेश्वर को चित्त में स्थिर करके, उसके गुणों का वर्णन करते रहो।" १९

युगधर्म प्राकृतादि प्रळयचतुष्टय विवेचनमु

व. अनिन, शुकयोगींद्रुनकु राजेंद्रुंडिट्लनियें। कलियुगंबतिपाप सम्मिळितंबु गान दुरितंबुलेलागुन नरुलोंदकुंडदरु। कालंबे क्रमंबुन नडचु। कालस्वरूपकुंडयिन हरिप्रभावंबेलागुनं गानंबडु। ईजगज्जालं बॆव्विधंबुन निलुचु। अनियडिगिन, राजुनकु शुकयोगींद्रुंडिट्लनियें। कृत त्रेता द्वापर कलियुगंबुलनु युगचतुष्टयंबुनु, क्रममुगा प्रवर्तिचु। धर्मंबुनकु सत्य दया तपोदानंबुलु नालुगु पादंबुलै नडचु। शांति दांति वर्णाश्रमाचारंबुलु मॊदलयिनवि कलिगि, धर्मंबु मॊदटियुगंबुन नालुगु पादंबुलं बरिपूर्णंबै प्रवर्तिल्लु। शांति दांति कर्माचरणादि रूपंबगु धर्मंबु मूडु पादंबुल रॆंडव युगंबुनं प्रवर्तिल्लु। विप्रार्चनाहिंसा व्रत जपानुष्ठानादि लक्षणंबुलु गलिगि धर्मंबु रॆंडु पादंबुल मूडवयुगंबुनं देजरिल्लु। मरियु, जनुलु कलियुगंबुन धर्मरहितुलुनु, अन्यायकारुलुनु, क्रोध मात्सर्य लोभ मोहादि दुर्गुण विशिष्टुलुनु, वर्णाश्रमाचार रहितुलुनु, दुराचारुलुनु, दुरन्न भक्षकुलुनु, शूद्रसेवारतुलुनु, निर्दयुलुनु, निष्कारण वैरुलुनु, दया सत्य शौचादि विहीनुलुनु, अनृतवादुलुनु, मायोपायुलुनु, धनविहीनुलुनु, दोषैक दृक्कुलुनुनै, पापचरितुलगु राजुल सेविचि, जननी-

युगधर्म, प्राकृत आदि प्रलयचतुष्टय का विवेचन

[व.] शुकयोगींद्र के यों कहने पर राजेंद्र (परीक्षित) ने [पूछा], "कलियुग अति पापसंकलित होगा, अतः नर किस तरह पापों से बचे रह सकेंगे? काल किस रीति से बीतेगा? कालस्वरूप हरि का प्रभाव कैसे दिखाई देगा? यह जगज्जाल क्योंकर बना रहेगा?" इस प्रश्न पर शुकयोगींद्र ने यों कहा— "कृत, त्रेता, द्वापर, कलि —इन नामों से चार युग क्रम से [एक के बाद एक] प्रवर्तित होंगे। सत्य, दया, तप और दान से युक्त धर्म चार पादों से चलेगा। शांति, दांति और वर्णाश्रमाचार आदि के साथ यह धर्म प्रथमयुग में चार पादों में परिपूर्ण रूप से चलेगा। दूसरे युग में शांति, दांति, कर्माचरण रूपी धर्म तीन पादों में चलेगा। तीसरे युग में, विप्रार्चना (ब्राह्मण-पूजा), अहिंसा, व्रत, जप, अनुष्ठान आदि लक्षणों के साथ धर्म दो पादों में चमकता रहेगा। कलियुग में लोग धर्मरहित, अन्यायकारी, क्रोध, मात्सर्य, लोभ-मोह आदि दुर्गुणयुक्त, वर्णाश्रमाचार-रहित, दुराचारी, दुरान्न-भक्षक, शूद्रसेवानिरत, निर्दयी, निष्कारण-वैरी बने रहेंगे। [इतना ही नहीं] वे लोग दया, सत्य, शौचविहीन हो, अनृतवादी और मायोपायी रहेंगे; और धनविहीन रहकर दोषैकदृक् (छिद्रान्वेषी) होंगे; पापकर्मी राजाओं की सेवा मे रहकर अपनी जननी, जनक, सुत,

जनक सुत सोदर बंधु दायाद सुहृज्जनुलं बरित्यजिंचि, सुरतापेक्षुलै, कुलंबुलं जंरुपुचुंडेदरु। मरियु क्षामडामरंबुलं ब्रजाक्षयंबगु। ब्राह्मणुलु दुष्प्रतिग्रह विहारुलै यज्ञादिकर्मंबुलु बरार्थपरुलै चेयुचु, हीनुलै नशिंचेदरु। अट्लु गान, नी कलियुगंबुन नोक्क मूहूर्तमात्रंबयिन नारायण स्मरण परायणुलै, मनंबुन श्रीनृसिंह वासुदेव संकर्षणादि नामंबुल नचंचल भक्ति दलंचेडु वारलकु ग्रतुशत फलंबु गलुगु, अट्लु गावुन राजशेखरा! नी मदि ननवरतंबु हरि दलंपुमु। कलि यनेक दुरितालयंबु गान, नोक्क निमिषमात्रंबु ध्यानंबु चेसिनं, बरम पावनत्वंबु नोंदि, कृतार्थुडवगुदुवु। अनि पलिकि, मरियुनु ॥ 20 ॥

कं. मूडव युगमुन नैतयु
वेडुक हरिकीर्तनंबु वलयग लॅस्सन्
बाडुचु गृष्णा! यनुचुं
ग्रीडितुरु कलिनि दलचि कृतमतुलगुचुन् ॥ 21 ॥

अध्यायमु—४

व. अंत गल्प प्रळय प्रकारंबेट्लनिन, नतंडिट्लनियें। चतुर्युग सहस्रंबुलु चनिन, नदि ब्रह्मकु नोक्क पगलगुनु। अदे क्रमंबुन रात्रियु वर्तिल्लुनु।

सोदर (सहोदर) बंधु, दायाद, सुहृज्जनों का परित्याग कर, सुरतापेक्षा (संभोगेच्छा) से कुलों को भ्रष्ट करते रहेंगे। क्षाम (अकाल) और लूट-मार से प्रजा का क्षय होता रहेगा। ब्राह्मण लोग दुष्प्रतिग्रह (दुष्टों से दान ग्रहण) करते हुए, यज्ञ आदि कर्म दूसरों के लिए करते हुए हीन हो नष्ट होंगे। अतः इस कलियुग में एक मुहूर्त मात्र भी नारायणस्मरण-परायण होकर, मन में श्रीनृसिंह, वासुदेव, संकर्षण आदि नामों का अचंचल भक्ति से उच्चारण करनेवालों को क्रतुशत (सौ यज्ञों) का फल प्राप्त होगा। इसलिए, हे राजशेखर! अपने मन में अनवरत (निरंतर) हरि का ध्यान करो; कलि [युग] अनेक दुरितों (पापो) का आलय (घर) है; अतः एक निमिष मात्र ध्यान करने पर भी परम-पावन बनकर कृतार्थ होओगे। २० [कं.] तृतीय युग में लोग उत्साह के साथ हरि का कीर्तन करेंगे, वे लोग [आनेवाले] कलि का विचार करके बुद्धिमत्ता से "हे कृष्ण", "हे कृष्ण" कहकर गाते और नाचते रहेंगे।" २१

अध्याय—४

[व.] [अनंतर शुकयोगींद्र] कल्पांत में होनेवाले प्रलय के प्रकार यों सुनाने लगे— "एक हजार चतुर्युगों के बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन

अंत ब्रह्मकु नॊक्क दिनंबगुट वलन, नदि नैमित्तिक प्रळयं बनंबडुनु। अंदु विधात समस्त लोकंबुलंदन यात्मयंदु निलिपि शयॆंपं, प्रकृति विनष्टंबयिन, नदि प्राकृत प्रळयंबनि चॆप्पंबडुनु। आ प्रळयप्रकारंबु विनुमु। इट्लु पगलु नैमित्तिक प्रळयंबुनु, रात्रि प्राकृतप्रळयंबुनु, नगुट गलिगिन नजुनकु नदि दिन प्रमाणंबु। अट्टि दिन प्रमाणंबुन मुन्नूट यरुवदि दिनंबु लयिन, नलुवकु नॊक्क संवत्सरंबु परिपूर्णंबगुनु। तद्वत्सरंबुलु शतपरिमितंबुलयिन ॥ 22 ॥

सी. अंत लोकेशुन कवसानकालंबु वच्चिन नूर्ऍड्लु वसुधलोन
वर्षंबुलुडिगिन वडि दप्पि मानवुल् दप्पि नाकट जिक्कि नॊप्पि नॊदि
यन्योन्य भक्षुलै या कालवशमुन नाश मॊंदॆदरंत नलिनसखुडु
सामुद्र भौतिक क्ष्माजात रसमुल जातुरि गिरणालिचेत गाल्प

ते. नंत गालाग्नि सकर्षणाख्यमगुचु
मिन्नु गलयग नदि याक्रमिंचु नट्टि
यॆडनु शतवर्षमुलु दडबडक गूडि
वीक तोडुत वायुवुल् वीचु नपुडु ॥ 23 ॥

व. इट्लु वर्षशतंबु वर्षशून्यं बगुनु। अंत शतवर्षंबुलु द्वादशभास्कर प्रचंडकिरण तांडवंबगुनु। पिदप शतवर्षंबुलु प्रळयाग्नि दंदह्यमानं

(बारह घंटे का समय) होगा, उसी हिसाब से रात भी होगी। ब्रह्मा का जब दिन का समय पूरा होता है, तब उसे नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। तब विधाता समस्त लोकों को अपनी आत्मा में रखकर सो जाता है, प्रकृति विनष्ट हो जाती है, उसे प्राकृत-प्रलय कहा जाता है। इन प्रलयों का प्रकार [बताता हूँ] सुनो : दिन का नैमित्तिक प्रलय और रात का प्राकृत प्रलय जब संपन्न होते हैं, तब ब्रह्मा का एक [पूर्ण] दिन समाप्त होता है। वैसे दिन तीन सौ साठ जब बीतते हैं, तब ब्रह्मा का एक वर्ष परिपूर्ण होता है; और जब वैसे वर्ष एक सौ बीतते हैं तब २२ [सी.] लोकेश का अवसान-काल (अंत समय) आ पहुँचता है; तब वसुधा (भूलोक) में वर्षा (पानी बरसना) बंद होगी, मानव तेज खोकर भूख और प्यास के मारे अन्योन्य (एक-दूसरे) को खा जाते, और कालवश विनष्ट हो जाते हैं। [ते.] तब नलिनसखा (सूर्य) समुद्रों का और भूमि पर का रस (जल) अपनी किरणों से सुखा देता है, तब संकर्षण नामक कालाग्नि अंतरिक्ष में व्याप्त होती है और सौ वर्ष तक लगातार वायु प्रबलता से बहता रहता है। २३ [व.] यों शत वर्ष वर्षा से शून्य बीतेंगे, अनंतर सौ साल तक द्वादश भास्करों (सूर्यों) की प्रचंड किरणों का तांडव होगा। बाद के शत-वर्ष प्रलयाग्नि से दंदह्यमान होंगे। बाद का [समय] सप्त मारुतों के

बगुनु। पिम्मट सप्तमारुत झंझानिल वेगताडितंबगुनु। अंदु मीद शतहायनंबुलु नवधाराधरंबुलु महाघोषंबुललोडं गरिकरोपमानंबुलयिन नीरधारल निखिल जगंबुनु शंबरमयंबु चेसिन, ब्रह्मांडंबेल्ल जलमयंबगुटं जेसि, भूमि हृत गंधगुणंबै कबंधंबुन लीनंबगुनु। अन्नीरंबुनु जीर्ण रसगुणंबै तेजंबुन नणंगुनु। आ तेजंबु वायुवंदु नष्टरूपंबै कलयुनु। आ पवनंडु गत स्पर्शगुणुंडयि नभंबुन संक्रमिंचुनु। आ याकाशंबु विगतशब्दंबयि, भूतादि प्रकृतियंदु नणंगुनु। आ प्रकृतियु ननादियै, वाङ्मानस गोचरंबु गाक सत्वरजस्तमोगुणरहितंबै, महदादि सन्निवेशंबु लेक, स्वप्नाद्यवस्थारहितंबै, यप्रतर्क्यंबगु नात्मयंदु लयंबगु। अदियें सर्वाधारभूतंबयिन पदंबनि चेप्पंबडु। काल विपर्ययंबयि पुरुषाव्यक्तुलु लीनंबगुनु। अदि प्राकृत प्रळयंबनं बरगु। अनि चेप्पि, मरियु नोक्क विशेषंबु विनुमु। बुद्धींद्रियार्थ रूपंबुलचे ज्ञानंबु तदाश्रयंबयि वेलुंगु। दृश्यत्वाव्यतिरेकंबुलचे नदि याद्यंतमुलु गलदै-युंडु। तेजंबु दीपचक्षुस्स्वरूपंबुलकु वेरुगनियट्लु, बुद्धींद्रियार्थंबुलु परमार्थमूर्तिकि नन्यंबुलु गानु। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थलु बुद्धि धर्मंबु-लगु। प्रत्यगात्मयंदु नानाप्रकारंबुलं दोचु, नी दृश्यप्रपंचंबंतयु मिथ्ययनि

झंझानिल के वेग से ताडित रहेगा। उसके बाद के सौ वर्ष तक नव-मेघ महाघोष के साथ हाथी की सूंड़ के समान मोटी जलधाराएँ बरसा कर, निखिल जगत को जलमय कर देंगे। सारे ब्रह्मांड के जलमय होने पर भूमि का गंध-गुण सोख जाकर, जल में लीन होगा; उस जल का रस-गुण सूखकर अग्नि में मिल जायगा; वह तेज (अग्नि) वायु में मिलकर अपना रूप नष्ट कर लेगा; वह पवन स्पर्शगुण खोकर आकाश मे विलीन हो जायगा; वह आकाश अपना शब्द गुण छोड़कर भूत आदि प्रकृति में समा जायगा। वह प्रकृति अनादि बनकर, वाङ्मानस को गोचर न होकर, सत्त्व, रज और तमोगुणरहित हो, महदादि से अलग हो, स्वप्न आदि अवस्थाओं से शून्य हो जायगी और अप्रतर्क्य आत्मा में लय होगी। वही सर्वाधारभूत पद कहलाता है। काल-विपर्यय होता है और पुरुष तथा अव्यक्त लीन हो जाते हैं। वही प्राकृत-प्रलय कहा जाता है। और एक विशेषता सुनो। बुद्धि और इंद्रियार्थ रूपों से ज्ञान उन्हीं का आश्रय लेकर चमकेगा। दृश्यत्व से व्यतिरेक न होने के कारण उस [ज्ञान] में आदि और अंत रहेंगे। जिस प्रकार तेज (प्रकाश) दीप से और चक्षुस्वरूप से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार बुद्धि और इंद्रियार्थ (विषय) परार्थमूर्ति से अन्य (भिन्न) नहीं है। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाएँ बुद्धि के ही धर्म हैं। प्रत्यगात्मा में दिखाई देनेवाले इस सारे प्रपंच को मिथ्या समझो।

तॆलियुमु। ऒक्क तेजंबु बहुरंध्रंबुल गानंबडु तॆरंगुन, नॊक्क यात्म पॆक्कगु देहंबुल दोचबडु। हाटकंबु पॆक्कु रूपंबुलु गलदै यनेकंबयिन तॆरंगुन, परमात्म विविध चेतनाचेतन शरीरमुलयंदु वॆक्कु विधंबुलन् गनबडिनन्नेकंबुगा भाविपवलयु। नेत्रंबुलकु मेघावरणंबु दलंगिनप्पुडु भास्करमंडलंबु गनुपिचु तॆरंगुन बंधहेतुवैन यहंकारंबात्मज्ञानंबुन दिरस्कृतंबयिन यप्पुडे परमात्म निर्मलंबयि तोचु। आ परमात्मनु निरंतरंबुनु दलंचुचु, योगुलु तदेकायत्तचित्तुलै युंडुरु। कालंबुनु वेगंबुनन् सर्वप्रपंचमुनकु नवस्थांतरंबुलं गल्पिचुचुंडु। परमेश्वर-मूर्तियैन कालंबु, नभंबुनं गलुगु तारकंबुलु गानरानिकरणि गानबडक, कल्पावस्थलं जरिचु। नित्य नैमित्तिक :प्राकृतिकात्यंतिकंबुलनु प्रळयंबुलु चतुर्विधंबुलयि परगु। अंदु गल नारायणु लीलावतारंबुल गमलभव भवादुलयिननु वर्णिपलेरु। ने नॆरिंगिनंतयुं जॆप्पिति। संसार सागरंबु दाट हरिकथ यनेडि नावयॆ सहायंबु गानि, वेरॊकटि लेदनि चॆप्पि ॥ 24 ॥

जैसे एक ही प्रकाश अनेक रंध्रों द्वारा [भिन्न] दिखाई देता है, वैसे ही एक ही आत्मा अनेक देहों में दिखाई पड़ती है। हाटक (सुवर्ण) अनेक रूप लेकर [भिन्न] दिखाई देता है, उसी तरह परमात्मा विविध चेतन और अचेतन शरीरों में अनेक प्रकारों से दिखाई देता है, फिर भी उसे एक ही समझना चाहिए। मेघ का आवरण हट जाने पर ही नेत्रों को भास्कर-मंडल (सूर्य) दिखाई पड़ता है, उसी रीति से अहंकार, जो बंधन का हेतु है, जब तिरस्कृत होता है तभी आत्मज्ञान में परमात्मा निर्मल होकर भासित होता है। परमात्मा का ध्यान निरंतर करते हुए योगी जन तदेकायत्तचित्त रहते हैं। काल भी वेग के साथ समस्त प्रपच (लोक) में अवस्थांतरों (अनेक अवस्थाओं) को कल्पित करता रहता है। नभ में नक्षत्र [दिन में] अदृश्य रहकर भी [चमकते] रहते है, उसी प्रकार परमेश्वर की मूर्ति बना हुआ काल, अदृश्य रहकर भी कल्पावस्थाओं को बनाता रहता है। नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यंतिक नामों से प्रलय चतुर्विध चलते रहते हैं। उनमें होनेवाले नारायण के लीलावतारों का वर्णन ब्रह्मा और रुद्र भी नही कर सकते। जितना मैं जानता हूँ, मैंने कह दिया है। संसार का सागर पार करने के लिए हरिकथा रूपी नाव ही एक मात्र सहायक है, अन्य कुछ भी नही है। २४

अध्यायमु—५

उ. एनु मृतुंडनौदु ननि यित भयंबु मनंबुलोपलन्
मानुमु संभवंबु गल मानवकोट्लकु जावु नित्यमौ
गान हरि दलंपुमिक गल्गदु जन्ममु नीकु धात्रिपै
मानवनाथ ! पौंदेदवु माधवलोक निवास सौख्यमुल् ॥ 25 ॥

परीक्षित्तु तक्षकुनिचे दष्टुंडै मृति नौंद नतनि पुत्रुंडु सर्पयागमु चेयुट

व. जरामरण हेतुकंबयिन शरीरंबुन नुंडु जीवुंडु, घटंबुललो गनबडु नाकाशंबु घटनाशंबयिन महाकाशंबुनं जेरु चंदंबुन, नीश्वरुं गलयु। तैलनाशन पर्यंतंबु वर्ति तेजंबुतोड वेलुंगुकरणि, देहकृतंबगु भवंबु रजस्सत्वतमोगुणंबुलचेत ब्रवर्तिचु। आत्म नभंबु माड्कि ध्रुवंबै, यनंतंबै, व्यक्ताव्यक्तंबुलकु बरंबै युंडु। इट्लात्मस्वरूपिनिगा हरिनि निरंतरंबु भाविचुचुंडुट विशेषंबु। निन्नु दक्षकुंडु गरचुननु भयंबु नौंदवलदु। धन गृह दारापत्य क्षेत्र पशु प्रकरंबुल वर्जिंचि, समस्तंबुनु हरि दलंपुमु।

अध्याय—५

[उ.] हे मानवनाथ ! तुम मन में यह भय छोड़ दो कि मैं मर जाऊँगा, [क्योंकि] जन्म लेनेवाले मानवसंघ के लिए मृत्यु नित्य (अनिवार्य) है; इसलिए हरि का ध्यान करो, इस धात्री पर तुम्हें फिर से जन्म लेना न पड़ेगा, माधव-लोक के नित्यनिवास का सुख प्राप्त करोगे। २५

तक्षक द्वारा दष्ट होकर परीक्षित के मृत होने पर उसके पुत्र का सर्पयाग करना

[व.] घट में दीखनेवाला आकाश, घट के फूट जाने पर जिस प्रकार महाकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार जरा, मरण हेतुक बने हुए इस शरीर में स्थित जीव [अंत में] ईश्वर में मिल जाता है। तैलनाशन पर्यंत बत्ती जैसे तेज से जलती रहती है, वैसे ही देह के द्वारा कल्पित भव [बंधन] सत्त्व-रजस्तमोगुणों द्वारा चलायमान रहता है। आत्मा आकाश के सदृश ध्रुव (स्थिर), अनंत, व्यक्त-अव्यक्तों से परे रहती है। यों आत्मस्वरूपी हरि की निरंतर भावना करना [मनुष्य के लिए] विशेष बात होगी। तुम यह भय मत करो कि तक्षक तुम्हें काटनेवाला है। हरि का मनन करो। धन, गृह, दारा, अपत्य (संतान), क्षेत्र, पशु-प्रकरों (समूहों) को त्यागकर समस्त का नारायण को अर्पण करके, विगतशोक

नारायणार्पणंबु चेसि, विगत शोकुंडवै, नित्यंबुनु हरिध्यानंबु सेयुमु।
अनि विनिर्पिचिन, राजेंद्रुंडुनु, गुशासनासीनुंडै, जनार्दनुं जिंतिपुचुंडेनु।
अंत शुकुंडुनु यथेच्छाविहारुंडै चनियें।

अध्यायमु—६

व. इट क्रुद्धुंडयिन ब्राह्मणोत्तमुनिचे प्रेरितुंडयिन तक्षकुंडु, द्विजरूपंबु दाल्चि परीक्षिद्वधार्थंबुगा नेतेंचुचुंडि, मध्यमार्गंबुन गाश्यपुंडनु सर्पविष हरण समर्थुंडगु वेरॊक विप्रुनिगनि, यतनि नपरिमित धन प्रदानंबुन दृप्तुं गाविंचि, परीक्षिन्निकटंबुनकु राकुंडुनट्लु नीनर्चि, यंतट परीक्षिन्महाराजु चेंतकुंजनि, कामरूपुंडगुट जेसि, युरगंबै राजुं गऱचिन, नतंडु नाक्षणंब विषाग्निचे भस्मीभूतुंडय्यें। अट्टि यवसरंबुन भूम्यंतरिक्षंबुल नुंडु निखिल प्राणुलाश्चर्यकवंबगु तन्मरणंबु गनि, हाहारवंबुलु सेसिरि। अत, नो यर्थंबु नतनि तनयुंडेन जनमेजयुंडु विनि, क्रोधावेशंबुन सर्प-प्रळयंबगु नट्लु यज्ञंबु सेयुचुंड, सहस्र संख्यलंगल सर्पंबुलु हतंबुलय्यें। आ समयंबुन दक्षकुंडु राकुंडुट नेरिंगि "सहेंद्र तक्षकायानुब्रूहि" अनु प्रेषवाक्यमु नोडुव, नंत तक्षक सहितुंडयि विमानमुतो निंद्रुंडु स्थान

हो नित्य हरि का ध्यान करते रहो।" —इस प्रकार सुनाने पर राजेंद्र (परीक्षित) कुशासीन होकर, जनार्दन का चिंतन करता रहा। तब शुक यथेच्छाविहार के लिए चला गया।

अध्याय—६

[व.]इधर क्रुद्ध ब्राह्मणोत्तम से प्रेरित तक्षक ने द्विज का रूप धर परीक्षित के वध के निमित्त आते हुए, मार्ग मध्य में काश्यप नामक एक दूसरे ब्राह्मण को देखा जो सर्पविष-हरण में समर्थ था। उसे अपरिमित धन प्रदान द्वारा तृप्त करके परीक्षित के निकट जाने से वरज दिया; अनंतर परीक्षित राजा के समीप पहुँचकर, कामरूप होने के कारण उरग (सर्प) बनकर उसे काटा! राजा उसी क्षण विष की अग्नि से जलकर भस्मीभूत हुआ। उस अवसर पर भूमि और अंतरिक्ष में स्थित समस्त प्राणियों ने राजा की आश्चर्यकारी मृत्यु देखकर हाहाकार किया। तब इस अनर्थ को सुनकर उसका पुत्र जनमेजय क्रोधावेश में आकर सर्पों के लिए प्रलयंकर यज्ञ रचने लगा। उसमें सहस्रों की सख्या में सर्प हत हुए। किंतु तक्षक का न आना जानकर, "सहेंद्र तक्षकायानुब्रूहि" कहकर प्रेषवाक्य का उच्चारण करते

भ्रंशंबु नोंदि पडुचुंड, नत्तरि बृहस्पति येतेंचि परीक्षित्तनयुनि गीतिप वॉणगॆ ॥ 26 ॥

च. मृतियुनु जीवनंबुनिवि मेदिनिलोपल जीवकोटिकिन्
सततमु संभविचु सहजंबिदि चोर हुताश सर्प सं-
हतुलनु दप्पि याकटनु बंचेंत नॊंदॆडुनट्टि जीवुडुन्
वॆतलनु बूर्वकर्मभव वेदनलोंदुचु गंदुनॆप्पुडुन् ॥ 27 ॥

व. अट्लु गावुन, नसंख्यंबुलयिन दंदशूकंबुलु हतंबुलय्यॆ। शांत मानसुंड वै, क्रोधंबु वर्जिचुमु। अन गुरूपदिष्ट प्रकारंबुन सर्पयागंबु मानियुंडं। अंत देवतलु कुसुमवृष्टि गुरियिंचिरि। आ राजन्युंडुनु मंत्रिसमेतुंडै, नगर-प्रवेशंबु सेसॆ। बाध्य बाधक लक्षणंबुलु गल विष्णु माया गुणव्यापारंबुल नात्म मोहिपंबडु गावुन, नट्टि माया विकारंबुलं बरित्यजिंचि, निर्मलमानसुंडै वर्तिचुवाडुनु, बरनिंद सेयक, वैरंबु वर्जिचि, भगवत् पदांभोजभक्ति संयुक्तुंडै तिरुगु नतंडुनु, हरिपदंबु जेरु। अनि चॆप्पि मरियु सूतुंडु परमहर्षसमेतुंडै, शौनकुनकिट्लनियॆ ॥ 28 ॥

ी इंद्र अपने स्थान से भ्रष्ट होकर, तक्षक-सहित विमान पर आरूढ़ ो आकर, अग्नि में गिरने ही वाला था कि इतने में बृहस्पति आकर ारीक्षित-पुत्र की कीर्ति गाने लगा। २६ [चं.] "मरना और जीना इस ेदिनी पर समस्त जीवकोटि के साथ सर्वदा लगा ही रहता है; यह तहज है; जीवों की मृत्यु, भूख, प्यास, चोट, अग्नि, सर्प आदि से होती ी है, उसे अपने पूर्वकर्म के कारण मिलनेवाले कष्टों से दु:ख उठाना ी पड़ता है, यह टलता नही। २७ [व.] अत: अब तक [तुम्हारे रचे ाज्ञ में] असंख्य दंदशूक (सर्प) विनष्ट हुए हैं। अब तो शांतमानस ोकर क्रोध छोड़ दो।" —इतना कहने पर गुरु के उपदेशानुसार राजा े यज्ञ बंद कर दिया; देवताओं ने कुसुमवृष्टि की, राजा ने भी मंत्री तमेत नगर को प्रस्थान किया! बाध्य-बाधक लक्षणों वाली विष्णुमाया े गुणव्यापार से आत्मा विमोहित होती है। अत: उस मायाविकार ो त्यागकर निर्मलमानस हो वर्तन करनेवाला, परनिंदा छोड़, वैर ूलकर, भगवत्पदांभोजभक्ति से युक्त हो संचार करनेवाला [मनुष्य] ्रिपद (मोक्ष) प्राप्त करता है। यों कहकर सूत ने परम हर्ष के ाथ शौनक से यों कहा। २८

व्यासुडु वेदमुलं बुराणमुलनु लोकमंदु ब्रवर्तिप जेयुट

कं. धारुणि बाराशर्युन, कार्युलु पैलुडु सुमंतु जैमिनि मुनुलुन्
धीरुडु वैशंपायनु, -डारय नलुवुरुनु शिष्युलै युंडिरिलन् ॥ 29 ॥

व. वारलु ऋग्यजुस्सामाथर्वणंबुलनियेंडु नालुगु वेदंबुलुनु, व्यासोपदिष्ट क्रमंबुन लोकंबुलं ब्रवर्तिप जेसिरि अनि चॆप्पिन, नाक्रमंबॆट्लनि शौनकुं-डडिगिन, सूतुंडु सॆप्पं दॊणंगॆ । आदि यंदु चतुर्मुखुनि हृदयंबुन नॊकनादं-बुद्भविंचॆ । अदि वृत्तिनिरोधंबुवलन मूर्तीभविंचि व्यक्तंबुगा गनबडॆ । अट्टि नादोपासनवलन योगिजनंबुलु निष्पापुलै मुक्ति नॊंदुदुरु । अंदुन नोंकारंबु जनियिंचॆ । अदियॆ सर्वमंत्रोपनिषन्मूलभूतयगु वेदमातयनि चॆप्पबडु । आ योंकारंबु त्रिगुणात्मकंबै, अकार उकार मकारंबुलनॆडु त्रिवर्णरूपंबयि प्रकाशिपुचुंडॆ । अंत भगवंतुंडगु नजुंडा प्रणवंबुवलन स्वर स्पर्शांतस्थोष्मादि लक्षणलक्षितंबगु नक्षर समाम्नायंबु गल्पिंचि, तत्सहायंबुनने तन वदनचतुष्टयंबुवलन वेदचतुष्टयंबु गलुग जेसॆ । अंत नतनि पुत्रुलगु ब्रह्मवादुला वेदंबुलं ददुपदिष्ट प्रकारंबुगा नभ्यसिंचि, या क्रमंबुन दामुनु दम शिष्यपरंपरलकु नुपदेशिंचिरि । इट्लु वेदंबुलु समग्रंबुलुगा ब्रतियुगंबुननु महर्षुलचे नभ्यसिपंबडुनु । अट्टि वेदंबुल

व्यास का वेदों और पुराणों को लोक में प्रवर्तित करना

[कं.] इस भूतल पर पाराशर्य (व्यास) के, पैल, सुमंत, जैमिनी, वैशंपायन नामक चार आर्य और धीर शिष्य थे। २९

[व.] उन्होंने ऋक्, यजुस्, साम, अथर्वण नामक चार वेदों को व्यास के उपदिष्ट क्रम से लोक में प्रवर्तित किया ! शौनक ने जब पूछा कि वह क्रम कौन सा है, तब सूत कहने लगा : आदि में चतुर्मुख (ब्रह्मा) के हृदय में एक नाद उत्पन्न हुआ, वह वृत्तिनिरोध के कारण मूर्तिमान होकर व्यक्त दिखायी दिया । उस नाद की उपासना से योगीजन निष्पाप हो मुक्त हो जायेंगे। यों ॐकार उत्पन्न हुआ; वही सर्व मंत्रों और उपनिषदो की मूलभूत वेदमाता कहलाता है। वह ॐकार त्रिगुणात्मक हो, अकार, उकार और मकार नामक त्रिवर्णों के रूप में प्रकाशमान रहा। तब भगवान् अज (ब्रह्मा) ने प्रणव में से, स्वर, स्पर्श, अंतस्थ, ऊष्म आदि लक्षण-लक्षित अक्षर समाम्नाय कल्पित कर, उसकी सहायता से अपने वदनचतुष्टय (चारों मुखों) द्वारा वेदचतुष्टय निकाला। तब उसके ब्रह्मवादी पुत्रों ने उन वेदों का ब्रह्मोपदिष्ट क्रम से अभ्यास किया और उसी क्रम से स्वयं अपने शिष्यो को उपदेश दिया। इस प्रकार प्रत्येक युग से महर्षि लोगों द्वारा समग्ररूप से वेदों का अभ्यास किया

समग्रंबुग बठियिप नशक्तुलगुवारलकु सहायंबु सेयुटकै द्वापरयुगादियंदु भगवंतुंडु सत्यवती देवियंदु बराशर महर्षिकि सुतुडुगा नवतरिंचि, या वेदराशि ग्रममुन, ऋक्कु यजुस्सु सामम‌ु अथर्वणमु अनु नालुगु विधंबुलुग बिभजिंचि पैल वैशंपायन जैमिनि सुमंतुलनियेडु शिष्यवरुलकु ग्रमंबुग ना ऋगादिवेदंबुल नुपदेशिंचें। अंदु बैलमहर्षि चेकोन्न ऋग्वेदंबनंतंबु-लगु ऋक्कुलतो जेरियुंडुट जेसि, बह्वृचशाखयनि चेप्पंबडु। अंत ना पैलुंडु इंद्रप्रमितिकि बाष्कलुनकु नुपदेशिंचें। अतंडा संहितं जतुर्विधंबुलु गाविंचि, बोध्युडु याज्ञवल्क्युडु पराशरुडु अग्निमित्रुडु ननुवारिकि-नुपदेशिंचें। इंद्रप्रमिति तन संहित मांडूकेयुनकुपदेशिंचें। मांडूकेयुडु देवमित्रुंडनु वानिकि जेप्पें। अतनिकि सौभर्यादि शिष्युलनेकुलै प्रवर्तिल्लिरि। अंदु सौभरिसुतुंडगु शाकल्युडु ता नभ्यसिंचिन शाख-नैदुतेरगुलुग विभजिंचि, वात्स्युडु मौद्गल्युडु शालीयुडु गोमुखुडु शिशिरुडु-ननेडु शिष्युलकुपदेशिंचें। अंत जातुकर्णियनु वानिकि वा रुपदेशिंप, नतडु बलाकुडु पैंगुडु वैताळुंडु विरजुंडु ननुवारि कुपदेशिंचें। इदियुनुं गाक मुंदु चेप्पिन बाष्कलुनि कुमारुडयिन बाष्कलि वालखिल्याख्य संहितं बालायनि, गार्ग्युडु, कासरुंडनु वारलकुं जेप्पें। इत्तेरंगुन बह्वृच

जाता है। उन समग्र वेदों को [आद्यंत] पढ़ने में जो अशक्त रहते हैं, उनकी सहायता के लिए द्वापर युग के आदि में भगवान ने सत्यवती देवी में पराशर महर्षि का पुत्र होकर अवतार लिया, और उस वेदराशि को ऋक्, यजुस्, साम और अथर्वण के नाम से चार भागों में विभाजित किया। उसने पैल, वैशंपायन, जैमिनि और सुमंत नामक अपने शिष्यवरों को क्रम से ऋगादि वेदों का उपदेश दिया। उनमें पैल महर्षि से स्वीकृत ऋग्वेद की अनंत ऋचाओं से समन्वित होने के कारण, बहबृच-शाखा कहलाता है। पैल ने उसे इंद्रप्रमिति और बाष्कल को सिखाया। बाष्कल ने उस सहिता के चार विभाग किये। और उन्हें बोध्य, याज्ञवल्कय, पराशर, अग्निमित्र नामकों को सिखाया। इंद्रप्रमिति ने अपनी संहिता का मांडुकेय को उपदेश दिया, मांडुकेय ने उसे देवमित्र को सिखाया। उसके सौभरि आदि शिष्य अनेक थे, उनमें से सौभरि का शिष्य शाकल्य ने अपनी शाखा को पाँच विभागों में विभाजित किया और उन्हें वात्स्य, मौद्गल्य, शालीय, गोमुख और शिशिर को सिखाया। उन्होंने जातुकर्णी को उसका उपदेश दिया तो उसने बलाक, पैंग, वैताल, विरज नामक शिष्यों को सिखाया। इसके अतिरिक्त पूर्वकथित बाष्कल का पुत्र बाष्कली ने वालखिल्य नामक संहिता बालायानी गार्ग्य, कासार कहे जानेवालों को सिखा दी। इस प्रकार बह्वृच-सहिता

संहित लनेक प्रकारंबुलं बूर्वोक्त ब्रह्मर्षुलचे धरियिंपबडे। अंत यजुर्वेदधरुंडगु वैशपायनुनि शिष्यसंघंबु निखिल क्रतुवुल नाध्वर्यवकृत्यंबुचे देजरिल्लिरि। मरियु नतनि शिष्युंडगु याज्ञवल्क्युडु गुर्वपराधंबु चेसिन, ना गुरुवु कुपितुंडै, यधीत वेदंबुल मरलं दन किच्चिवॉम्मनिन, नतंडु वानु जदिविन यजुर्गणंबुनु, ददुक्त क्रमंबुन ग्रक्क, नवि रुधिराक्तंबगु रूपंबु दाल्चिन, ना यजुर्गणाधिष्ठित शाखाधिदेवतलु तित्तिरिपक्षुलयि वाटिनि भुजियिंचिरि। दानंजेसि या शाखलु तैत्तिरीयंबुलय्ये। अंत निर्वेदियगु ना याज्ञवल्क्युडपरिमित निर्वेदंबु नोंदि, युग्रतपंबुन सूर्युनि संतुष्टुं गाविंप, नतंडु संतसिल्लि, हयरूपंबु दाल्चि, यजुर्गणंबु नतनि-कुपदेशिंचे। कान नवि वाजसनेयशाख यनि चॅप्पंबडे। अंत ना यजुर्गणंबु काण्व माध्यंदिनादुलचे नभ्यसिंपबडे। इट्लु यजुर्वेदंबु लोकंबुनं ब्रवर्तिल्ले। सामवेदाध्येत यगु जैमिनि महर्षि तन सुतुंडगु सुमंतुनिकुपदेशिंचे। अतंडुनु सुकर्मुंडनु तन कुमारुनिकि दॅलिपे। अतंडा वेदमुनु सहस्रशाखलुगा विभजिंचि, कोसलुनि कुमारुडयिन हिरण्यनाभुनिकि दन कुमारुंडगु पौष्पिजियनु वानिकि नुपदेशिंचे। अंतट वारिरुवुरुनु ब्रह्मवेत्तलगु नावंत्युलु, नुदीच्युलु ननु नेनूर्गुरिकि

अनेक विभागों में पूर्वोक्त ब्रह्मर्षियों द्वारा स्वीकृत हुई थी। यजुर्वेद को धारण करनेवाले वैशपायन का शिष्यसंघ समस्त क्रतुओं (यज्ञों) में अध्वर्य कर्म करके प्रसिद्ध हुआ। उसका शिष्य याज्ञवल्क्य ने जब गुरु के प्रति अपराध किया तो गुरु ने कुपित होकर, उसके द्वारा अधीत वेद लौटा देने की आज्ञा दी। तब उसने अपने अधीत यजुर्गण को उसी क्रम से उगल दिया। वैसे उगले यजुर्गण रुधिराक्त होने के कारण उस शाखा के अधिष्ठित देवता तित्तिरि पक्षी बनकर उसे खा गये। इस कारण से तैत्तिरीय शाखाएँ कही गई। तब बिना वेद के रह जाने से याज्ञवल्क्य ने अत्यंत निर्वेद पाकर उग्र तप से सूर्य को संतुष्ट किया तो उसने सतुष्ट होकर हय (घोड़े) का रूप धर उसे यजुर्गण का उपदेश दिया। इस कारण से वह वेदभाग वाजसनेय शाखा कहा गया। तब कण्व और माध्यंदिन आदियों से वह यजुर्गण अभ्यस्त हुआ। इस प्रकार से यजुर्वेद लोक में प्रचलित हो गया। सामवेद के अध्येता जैमिनी महर्षि ने उसे अपने पुत्र सुमत को सिखाया। उसने अपने पुत्र सुकर्म को सिखाया तो उसने उसे एक हज़ार शाखाओं में विभाजित किया और अपने पुत्र पौष्पुंजी को तथा कोसल के कुमार हिरण्यनाभ को सिखाया। तब उन दोनों ने आवंत्य और उदीच्य कहलानेवाले पांच सौ ब्रह्मवेत्ताओं को

नुपदेशिंचि, वारिनि सामवेदपारगुलुगा जेसिरि। इट्लु सामवेदंबु लोकंबुन बिनुतिनोंदे।

अध्यायमु—७

मरियु नथर्ववेत्तयगु सुमंतु महर्षि दानिन् दन शिष्युन कुपदेशिप नतंडु पथ्युडु वेददर्शुडु ननु शिष्युलकुपदेशिंचे। अंदु वेद दर्शुडनुवाडु शौल्कायनि ब्रह्मबलि निर्दोषुंडु पिप्पलायनुंडु अनुवारलकुनु, बथ्युंडनुवाडु कुमुदुडु शुनकुडु जाबालि बभ्रुवु अंगिरसुडु सैंधवायनुडु अनुवारलकुनु नुपदेशिचि, प्रकाशंबुनोंदिचिरि। इत्तेरंगुन नथर्ववेदंबु वृद्धि नोंदे। इट्लखिलवेदंबुल युत्पत्ति प्रचारक्रमं बेरिंगिचिति। इंक बुराणक्रमं बेट्टु-लनिन, विनिपितुननि चेप्प दोणंगे। लोकंबुन बुराण प्रवर्तकुलनं ब्रसिद्धुलगु त्रय्यारुणि, कश्यपुडु, सार्वणि, अकृतव्रणुडु, वेशंपायनुडु, हारीतुडननु नार्गुरु मज्जनकुंडुनु व्यास शिष्युंडु नगु रोमहर्षणुनि वलन ग्रहिंचिरि। अट्टि पुराणंबु सर्गादि दशलक्षण लक्षितंबुगा नुंडु। मरियु, गोंदरा पुराणंबु पंचलक्षण लक्षितंबनियु नोडुवुदुरु। अट्टि पुराण नामानुक्रमंबु बुराणविदु लगुऋषुलु सेप्पेडु तेरंगुन ने नेरिंगितु विनुमु। ब्राह्ममु पाद्ममु वैष्णवमु शैवमु भागवतमु भविष्योत्तरमु नारदीयमु

उपदेश दिया, जो सामवेद के पारंगत बन गये। इस तरह से सामवेद लोक में प्रसिद्ध (प्रचलित) हुआ।

अध्याय—७

[व.]अथर्व वेद के वेत्ता सुमंत महर्षि ने उसे अपने शिष्य को सिखाया; उसने पथ्यु तथा वेददर्शी नामक शिष्यों को बताया। उनमें वेददर्शी ने उसका उपदेश शौलकायनी, ब्रह्मबली, निर्दोष, पिप्पलायन कहलानेवालों को दिया। पथ्यु ने कुमुद, शुनक, जाबाली, बभ्रु, अंगिरस और सैंधवायनों को वह वेद सिखाया। यों अथर्ववेद लोक में प्रचार पा गया। इस प्रकार मैंने समस्त वेदों की उत्पत्ति और प्रचार का क्रम स्पष्ट किया, अब पुराणों का क्रम सुनाऊँगा। सुनो। लोक में पुराणप्रवर्तक कहकर प्रसिद्धि-प्राप्त त्रय्यारुणि, कश्यप, सार्वणि, अकृतव्रणु, वैशंपायन, हारीत नामक इनके ऋषियों ने मेरे जनक और व्यास-शिष्य-रोमहर्ष से पुराणक्रम ग्रहण किया। यह पुराण विधान सर्ग आदि दस लक्षणों से लक्षित रहता है। कुछ लोग उसे पंचलक्षणों वाला बताते हैं। पुराणों का नामानुक्रम, जिसे पुराणविद् ऋषि बखानते हैं, मैं सुनाऊँगा। सुनो। ब्राह्म, पाद्म

मार्कंडेयमु आग्नेयमु ब्रह्मवैवर्तमु लैंगमु वाराहमु स्कांदमु वामनमु कौर्ममु मात्स्यमु ब्रह्मांडमु गारुडमु अनु पदुनॆनिमिदियु महापुराणंबुलु। मट्रियु नुपपुराणंबुलुं गलवु। वीटिनि लिखियिंचिनं, जदिविन, विनिन दुरितंबु -लणंगु। अनि सूतुंडु शौनकादुलकुं जॆप्पिन, वारुनु नारायण गुणवर्णनंबुनु, दत्कथलुनु जॆप्पितिवि; इंक दोषकारुलुनु, पापरतुलुनु भवाब्धि दरितुरा क्रमंबु चॆप्पवे। अनि यडिगिन, नॆट्रिंगिपं दलंचि, यिट्लनियॆ ॥ 30 ॥

कं. तॊल्लिटि युगमुन दपमुल
वल्लिदुलगु ऋषुलु महिम भाविपग रं-
जिल्लॆडु मार्कंडेयुं-
डुल्लंबुन हरिनि निलिपि युडुगक ब्रतिकॆन् ॥ 31 ॥

अध्यायमु—८

मार्कंडेयोपाख्यानमु

व. लोकंबुलु कल्पांत समयंबुनं, गवंधमयंबुलै, यंधकारबंधुरंबुलै, युन्नयॆड, नेकाकियै चरिपुचुं, बालार्ककोटि तेजुंडयिन बालुनि हृदयंबुनं बवेशिंचि,

---

वैष्णव, शैव, भागवत, भविष्योत्तर, नारदीय, मार्कंडेय, आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त, लैंग, वाराह, स्कांद, वामन, कौर्म, मात्स्य, ब्रह्मांड, गारुड —ये अठारह महापुराण हैं। इनके अतिरिक्त उपपुराण भी हैं। इन्हें लिखने, पढ़ने, सुनने पर दुरित (पाप) दूर हो जाते हैं। इस प्रकार शौनकादियों से सूत के कहने पर उन्होंने कहा— "तुमने नारायण के गुणों तथा कथाओं का वर्णन किया ही था, अब वह क्रम बता दो, जिससे दोषकारी और पापरत मनुष्य किस प्रकार भवसागर तर जायेंगे।" यों पूछने पर सूत ने कहा : ३०

[कं.] "पिछले युग में मार्कण्डेय अपने हृदय में हरि को स्थापित कर, बिना क्षीण हुए जीवित रहा जिसकी महिमा श्रेष्ठ तपस्वी और ऋषि गाया करते है। ३१

अध्याय—८

मार्कण्डेयोपाख्यान

[व.] कल्पांत के समय जब लोक सब जलमय हो, अंधकार-बंधुर हुए, तब इस [ऋषि] ने एक ही हो विचरते हुए कोटि (करोड़) बालार्क-तेज से विलसित एक बालक को देख, उसके हृदय में प्रवेश किया।

यनेक सहस्र वर्षंबुलु तिरिगि, वटपत्रशायि ययिन यव्वालुनि ग्रम्मर्ं गनियें। अनि चॅप्पिन, शौनकादुलु सूतुनि सन्नुतिंचि, या मुनींद्रुनकु नी प्रभावं बॅट्लु गलिगॅ ? अनि यडिगिन, नतंडिट्लनियॅ ॥ 32 ॥

कं. भूविनुत ब्रह्मचर्यमु,
वेवदलक निष्ठ चेत विशदमु गागन्
भाविंचि हरि दलंपुचु
गोविदनुतुडै मृकंडु गुणमुल वॅलसॅन् ॥ 33 ॥

व. इट्लु तपंबु सेयु नतनिकि, हरिहरुलु प्रत्यक्षंबै, वरंबडुगुमनिन, गुणगणाढ्युं-डयिन कुमारुनडिगिन, नट्लकाकयनि, यतंडु कोरिन वरंबिच्चि, यंतर्धानंबुनॉंदिरि। अनंतरंब यम्मुनिकि मार्कंडेयुंडुदयिंचि, नियम निष्ठागरिष्ठुंडै युंड, मृत्युवु वानि बाशबद्धुं जेसिन नॅदिरिंचि, यम्मित्तिनि धिक्करिंचि, पदिवेल हायनंबुलु तपंबु सलुप, निंद्रुंडु भयपडि, यम्मुनिवरुनि युग्रतपंबु भंगपरचुटकु देवतांगनलं बंप, वारेतुंचुनॅड बुष्प फल भरितंबुनु, मत्त मधुकर शुकपिकादि शकुंतारव निरंतर दिगंतरंबुनु, जाति वैर रहित मृग पक्षिकुल संकुलंबुनु, सारस चक्रवाक बक क्रौंच कारंडव कोयष्टिकादि जलविहंगमाकुलित सरोवर सहस्र संदर्शनीयंबुनगु ना तपोवनंबुन

उसमें वह अनेक सहस्र वर्ष संचार करता रहा। फिर उसने उसी बालक को वटपत्र पर सोते हुए पाया।" यों कहने पर शौनक आदियों ने सूत की सन्नुति (स्तुति) करके पूछा कि उस मुनींद्र को ऐसा प्रभाव कैसे प्राप्त हुआ ? तब उत्तर में मुनि ने यों कहा : ३२ [कं.] "हे भूविनुत (लोकस्तुत्य) ! ब्रह्मचर्य छोड़े बिना, निष्ठापूर्वक हरि की भावना और ध्यान करते हुए, कोविदों से प्रशंसा पाकर, मृकंड सद्गुणों से विलसित रहा। ३३ [व.] यों तप करते रहे मृकड के सामने प्रत्यक्ष होकर हरिहरों ने उससे वर माँग लेने को कहा। जब उसने गुणगणाढ्य कुमार माँगा तो 'तथास्तु' कहकर वे उसे मुँह माँगा वर देकर अंतर्धान हुए। अनंतर उस मुनि के मार्कंडेय उत्पन्न हो, नियम-निष्ठा-गरिष्ठ हो रहा। जब मृत्यु ने उसे पाशवद्ध किया तो उसने उसका विरोध करके उसे धिक्कारा। फिर उसने दस हज़ार वर्ष तक उग्र तपस्या की तो इंद्र ने भयभीत हो उस मुनिवर का तपोभंग करने के लिए देवांगनाओं को भेजा। तब वे उस तपोवन में पहुँचीं जो फल-पुष्प-भरित था; जहाँ मत्तमधुकरों तथा शुक-पिकादि पक्षियों के रवों (शब्दों) से दिशाएँ निरंतर गूंज रही थीं; जाति-वैर-रहित मृग-पक्षिकुलों से जो संकुल था; सारस, चक्रवाक, बक, क्रौंच, करंडव, कोयष्टिक आदि जलविहंगों से जहाँ के सहस्रों सरोवर दर्शनीय थे, [ऐसे उपवन में] पहुँचकर उन्होने उस मुनि को

जटावल्कल-धारियै हव्यवाहनुंडुनु बोलि, तपंबु सेयु नम्मुनींद्रुनि गनि, यंगनलु वीणावेणु-विनोदगानंबुल नलर्परिप, मॆच्चक धीरोदात्तुंडगु नम्मुनींद्रुनि गॆल्वनोपक, यिंद्रुनिकडकुं जनिरि।

अध्यायमु—९

व. अंत हरि यतनि तपंबुनकुं ब्रसन्नुंडै याविर्भविंचिनं गनुंगॊनि, दैवा ! नी दिव्यनाम स्मरणंबुनं जेसि यी शरीरंबुतोडन यनेक युगंबुलु ब्रतुकुनट्लुगा जेयवे, अनिनं, गरुणिंचि यिच्चुटयुनु ॥ 34 ॥

ते. जगमु रक्षिप जीवुल जंप मनुप
गर्तवयि सर्वमयुडवै कानुपितु-
वॆंचट नी माय दॆलियंग नॆव्वडोपु
विश्वसन्नुत ! विश्वेश ! वेदरूप ! ॥ 35 ॥

म. वलभिन्मुख्य दिशाधिनाथ वरुलुन् फालाक्ष ब्रह्मादुलुन्
जलजाताक्ष पुरंदरादि सुरुलुन् जर्चिचि नी मायलन्
दॆलियन् लेरट ना वशंबॆ तॆलियन् दीनार्ति-निर्मूल ! यु-
ज्ज्वल तेजोविभवाति सन्नुत ! गदा चक्रांबुजद्यंकिता ! ॥ 36 ॥

देखा जो जटावल्कलधारी हो, हव्यवाहन (अग्निदेव) के समान [तेजस्वी हो] तपस्या में मग्न था। उन अंगनाओं के उसे वीणा-वेणु-गान-विनोदों से प्रसन्न करने पर, [वह] प्रसन्न न हुआ; उस धीरोदात्त मुनींद्र को जीतने में अशक्त होकर वे इंद्र के पास लौटकर चली गयीं।

अध्याय—९

[व.] तब हरि उसके तप से प्रसन्न होकर सामने प्रत्यक्ष हुआ तो देखकर उसने यों विनती की, "हे देव ! मुझे यह वर दो कि मैं तुम्हारा दिव्यनाम स्मरण करता हुआ इसी शरीर से अनेक युग जीवित रहूं।" हरि के करुणापूर्वक वैसा ही वर प्रदान करने पर [मुनि हरि की यों स्तुति करने लगा] ३४ [ते.] "हे विश्वेश ! हे विश्वसन्नुत ! हे वेदरूप ! समस्त जीवों को उत्पन्न करने, रक्षित करने तथा विनष्ट करने में केवल तुम्ही समर्थ हो, सर्वत्र सबमें रहकर तुम दिखाई देते हो, तुम्हारी माया कोई समझ नही सकता। ३५ [म.] हे तेजोविभासित ! गदा-शंख-चक्रादि से विभूषित, हे सन्नुत हरि ! इंद्र आदि दिक्पालक, फालाक्ष (शिव), ब्रह्मा, विष्णु, पुरंदर आदि देवता लोग भी चर्चा करके तुम्हारी माया समझने में अशक्त रह गये। हे दीन-दुख-निर्मूलक देव ! वैसी तुम्हारी

व. अनि बिनुतिचि, देवा ! नी मायं जेसि जगंबु भ्रांतंबै युन्नयदि। अदि तेलिय नानतीय वलयु, अनि यडिगिन, नतंडु नेरिंगिचि चनियें। मुनियुनु शिवपूज सेयुचु, हरि स्मरणंबु सेय मरचि, शतवर्षंबुलु धाराधरंबुलु धारावर्षंबुचे धरातलंबु निप जलमयंबै, येकार्णवंबै, यंधकार बंधुरंबयिन, नंत मार्कंडेयुंडु, ना तिमिरंबुनं गानक भयपडि युन्नयेड, ना जलमध्यंबुन नोक वटपत्रंबुनं बद्मराग किरण पुंजंबुल रंजिल्लु पादपद्मंबुलु गल बालुनि गनि, म्रोक्कि, यतनि शरीरंबु प्रवेशिचि, यनेक कालं बनंतंबगु जठरांतरंबुनं दिरिगि, यतनि चरणारविंद संस्मरणंबनं जेसि वलुवडि, कौगिलिपंबोयिन, माय गैकोनि, यंतर्धानंबु नोंद, मुनियु नेप्पटियट्ल स्वाश्रमंबु चेरि, तपबु सेयुचुन्न समयंबुन ।। 37 ।।

अध्यायमु—१०

च. निलिचिन शंकरु गनियु नित्यसुखंबुल निच्चु गौरि यि-
म्मुल हर ! भूतिभूषण ! समुज्ज्वल गात्रुनि गंटे यैतयुन्

माया को समझना मेरे वश की बात है ? (नहीं है।) ३६ [व.] हे देव ! तुम्हारे मायावश हो सारा जग भ्रांत दशा में है, उसे जानने का बोध मुझे प्रदान करो।" यों प्रार्थना करने पर हरि उसे वैसा ज्ञान देकर वापस हुआ। अनंतर मुनि शिवपूजा करता हुआ, हरिस्मरण भूल गया। सौ वर्ष तक धाराधरों (मेघों) के वर्षाधाराओं से धरातल को जलमग्न करने पर, [सारा भूमंडल] एक अर्णव (समुद्र) बन, अंधकार-बंधुर हुआ। तब मार्कंडेय उस तिमिर में कुछ भी न देख सका। जब वह अत्यंत भयभीत हुआ तो एकायक जलमध्य में स्थित वटपत्र पर एक बालक पद्मराग के किरणपुंजों से अनुरंजित पादपद्म के साथ दिखाई दिया। उसे देख प्रणाम करके मुनि उसके शरीर में पैठ गया, और उसके असीम जठर में कितने ही समय तक घूमता रहा। अंत में, उस बालक के चरणारविंदों के स्मरण के प्रभाव से बाहर निकलकर उसका आलिंगन करने चला तो हठात् मायामय हो वह बालक अंतर्धान (अदृश्य) हुआ, और मुनि ने अपने को निज आश्रम में पूर्ववत् ही तपोमग्न पाया। उस समय···३७

अध्याय—१०

[चं.] शंकर को देखकर, नित्यसुख देनेवाली गौरी (पार्वती) ने यों कहा: "हे मनोज्ञ देव ! हे भूति-भूषण ! उस उज्ज्वल गात्र (शरीर) वाले मुनि को टुक देखो; उससे एक अनुकूल वचन कहना मैं उचित

वलनुग ञानितोड नीक वाटपु माटनु वलकगा दगुन्
सललितमैन यी तपसिजाड विनं गड वेड्कयय्येडिन् ।। 38 ।।

व. अनिन, शंकरुंडुनु, शांकरितो गूड, नभंबुननुंडि धरणीतलंबुनकु नेतेंचि, निर्गुण ब्रह्मात्मैक्यानुसंधानंबु चेसि, शुद्ध चैतन्य स्वरूपुंडै, यितरंबु गानक येकाग्रत्तुंचित्तुंडगु नम्मुनि गनि, तन दिव्य योग माया प्रभावंबुचे नतनि हृदयंबु प्रवेशिंचि, चतुर्बाहुंडुनु, विभूति रुद्राक्षमालिका-धरुंडुनु, त्रिशूल डमरुकादि दिव्यसाधन समेतुंडुनु, वृषभवाहनारूढुंडुनु, नुमासमेतुंडुनै, तन स्वरूपंबु गनपरिचिन, विस्मयंबु नोंदि, यम्मुनि या परमेश्वरुनि ननेक प्रकारंबुल स्तुतियिंचिन, नप्पुडम्मुनि तपःप्रभावंबुनकु मेच्चि, महात्मा! परमशैवुंडवनि परमेश्वरुंडानतिच्चिन, मार्कंडेयुंडुनु शंकरु निरीक्षिंचि, देवा! हरिमाया प्रभावंबु दुर्लभंबु। भवत्संदर्शनंबुनं गंटि। इंतिय चालु। ऐन नीवक वरंबु गोरेद। नारायण चरणांबुज ध्यानंबुनु, मृत्युजयंबुनुं गलुगुनट्लुगा गृपसेयवे। अनि प्रार्थिंचि, गृपासमुद्रुंडै, यट्ल काकयनि, जरा रोग विकृतुलु लेक कल्पकोटि पर्यंतंबु नायुवुं, बुरुषोत्तमुनि यनुग्रहमुं गलुगु ननि, यानतिच्चि, यम्महादेवुंडंतर्धानंबु नोंदे। अनि चेप्पि, यी मार्कंडेयोपाख्यानंबु व्रासिन, विनं, जदिविननु, मृत्युवु दोलंगु

समझती हूँ; उस सललित नपस्वी का हाल सुनने की मुझमें उत्कंठा हो रही है।" ३८ [व.] कहने पर, शंकर शांकरी समेत नभ (आकाश) से धरणी-तल पर उतर आया, और उस मुनि को देखा जो निर्गुण ब्रह्म से आत्मैक्य का अनुसंधान करके, शुद्ध चैतन्यस्वरूप में अन्यभाव छोड़, एकाग्रचित्त हो बैठा हुआ था। तब अपनी दिव्य योगमाया के प्रभाव से उस मुनि के हृदय में प्रवेश करके शिव ने उसे अपना वह स्वरूप व्यक्त किया जो चतुर्बाहु, विभूति-रुद्राक्षमाला, त्रिशूल डमरुकादि दिव्य साधन समेत था और उमा-सहित हो वृषभ-वाहनारूढ़ था। उसे देख वह मुनि विस्मित हुआ और परमेश्वर की स्तुति अनेक प्रकार से की। मुनि के तपःप्रभाव से संतुष्ट होकर परमेश्वर ने उसे— "तुम परम शैव हो" —कहकर सराहना की। तब मार्कंडेय ने शंकर से यों विनती की: "हे देव! हरि की माया समझना अत्यंत दुर्लभ है, तुम्हारे संदर्शन से मैंने उसे जाना। इतना पर्याप्त है। फिर भी मैं एक वर माँग रहा हूँ, नारायण का चरणांबुज-ध्यान तथा मृत्यंजयता प्राप्त हो —ऐसी कृपा करो।" उस प्रार्थना पर महादेव ने, जो कृपासमुद्र था, 'तथास्तु' कहा, "कल्पकोटि पर्यंत जरा-मृत्यु विकार-रहित-दीर्घायु तथा पुरुषोत्तम का अनुग्रह तुम्हें प्राप्त हो" —यों आज्ञा करके वह महादेव अंतर्धान हुआ। यों सुनाकर [सूत ने] कहा— "इस मार्कण्डेय का उपाख्यान लिखने, पढ़ने

ननि, मरियु, हरिपरायणुंडगु भागवतुंडु देवतांतर मंत्रांतर साधनांतरंबुलु वर्जिचि, दुर्जनुलं गूडक, निरंतरंबु नारायण गोविंदादि नामस्मरणंबु सेयुचुंडनेनि, नट्टि पुण्यपुरुषुंडु वैकुंठंबुन वसिचु। मरियु, हरि विश्वरूपंबुनु, जतुर्विध व्यूहभेदंबुलुनु, जतुर्मूर्तुलुनु, लीलावतारंबुलुनुं जॅप्प नगोचरंबुलु। अन मुनुलिट्लनिरि ॥ 39 ॥

अध्यायमु—११

कं. हरि कथलु हरि चरित्रमु
हरि लीलावर्तनमुलु नंचित रीतिन्
बरुवडि नॅरिगिति नंतयु
सुरनुत ! यनुमानमोकटि चॅप्पवॅडि मदिन् ॥ 40 ॥

चैत्रादि मासंबुल संचरिचॅडु द्वादशादित्युल क्रममुनु दलुपुट

व. अदि यॅय्यदि यनिन, लोकचक्षुवु चैत्रमासंबु मॊदलुगा नेये मासंबुन नेये नामंबुन ब्रवर्तिचु। चॅप्पवे, अनियडिगिन, जैत्रमु मॊदलगु द्वादश मासंबुल सौरगण सप्तकंबोश्वर नियुक्तंबै, नाना प्रकारंबुल संचरिचॅडु क्रममु

और सुननेवाले को मृत्यु का भय न होगा, और हरिपरायण भागवत यदि इतर देवता, मंत्र तथा साधन छोड़कर, दुर्जनों से दूर रहकर, 'नारायण' 'गोविंद' आदि नामों का निरंतर स्मरण करता रहे तो वह पुण्यपुरुष वैकुंठ में वास करेगा। हरि का विश्वरूप, चतुर्विध व्यूह-भेद, चतुर्मूर्तियाँ और उनके लीलावतारों का वर्णन नही हो सकता, वे अगोचर है।" —यह सुन मुनियों ने फिर यों कहा। ३९

अध्याय—११

[कं.] "हरि की कथाएँ, हरि का चरित्र, हरि के लीलावर्तन सब कुछ क्रमानुसार तुमसे हमने जान लिया। हे सुरनुत ! फिर भी एक बात हमारे मन में रह गयी। ४०

चैत्र आदि मासों में संचार करनेवाले द्वादश आदित्यों का क्रम बतलाना

[व.] वह संदेह यों है : लोकचक्षु-सूर्य चैत्र मास से लेकर किस मास में कौन से नाम से प्रवर्तित रहता है ? कृपया बताओ।" इस पर सूत ने कहा : चैत्र आदि द्वादश मासों में सौरगण-सप्तक ईश्वर से नियुक्त

तॊलिल शुकुंडु विष्णुरातुनिकि दॆलिपिन चंदंबुन जॆप्पॆद। अनि सूतुं-डिट्लनियॆ। श्रीमन्नारायण स्वरूपुंडगु मार्तांडुंडेकस्वरूपुंडैन, नतनि गाल देश क्रियादि भेदंबुलं बट्टि ऋषुलनेक क्रमंबुल नभिवर्णिचि भाविपु-चुन्नारु। आ प्रकारं बॆट्लनिन, चैत्रंबुन सूर्युंडु धातयनु नामंबु दाल्चि, कृतस्थलि हेति, वासुकि रथकृत्तु पुलस्त्युडु तुंबुरुडु अनॆडु परिजनुलतो जेरिकॊनि संचरिंपुचुंडु। वैशाखंबुन अर्यमुंडनु पेरु वहिंचि, पुलहुडु ओजुडु प्रहेति पुंजिकस्थलि नारदुंडु कंजनीरुंडनु ननुचर सहितुंडै, कालंबु गडुपुचुंडु। ज्येष्ठंबुन मित्रुंडनु नभिधेय धरुंडै, अत्रि पौरुषेयुडु तक्षकुंडु मेनक हाहा रथस्वनुडु अनॆडु वारितो जेरि कालयापनमु सेयुचुनुंडुव। आषाढंबुन वरुणुंडनु नाह्वयंबु नॊंदि, वसिष्ठुंडु रंभ सहजन्युंडु हूहुवु, शुक्रुंडु, चित्रस्वनुंडु अनु सहचर सहितुंडै, कालक्षेपणमु सेयुचुंडुनु। श्रावणंबुन इंद्रुंडनु नाममुचे व्यवहृतुडै, विश्वावसुवु श्रोत येलापुत्रुंडु अंगिरस्सु प्रम्लोच राक्षसुडु चर्युंडु अनु सभिकुलतो जेरि कालंबु नडुपुचुंडु। भाद्रपदंबुन विवस्वंतुंडनु नामंबु दाल्चि उडुसेनुंडु व्याघ्रुंडु असारणुंडु भृगुवु अनुम्लोच शंखपालुंडु अनु परिजनावृतुंडै कालयापनंबु सेयुचुंडु ॥ 41 ॥

कं. धरलो द्वष्ट्राह्वयमुनु
बिरुदुग धरियिंचि यॆपुडु वॆपु दलिर्पन्

हो, नाना प्रकार से संचार करता है, उसका क्रम पूर्व में शुक ने विष्णुरात को समझाया था, वही अब मैं तुम्हें बताऊंगा। मार्तांड (सूर्य) श्रीमन्नारायण का स्वरूप है, वह एकरूपी ही है, फिर भी काल, देश और क्रिया आदि भेदों के अनुसार ऋषि लोग उसे अनेक प्रकार से संभावित कर रहे हैं। वह प्रकार यों है : चैत्र में सूर्य धाता का नाम लेकर, कृतस्थली, हेती, वासुकी, रथकृत, पुलस्त्य और तुंबुर नामक परिजनों के साथ संचार करता है। वैशाख में अर्यम के नाम से पुलह, ओज, प्रहेति, पुंजिकस्थली, नारद और कंजनीर कहलानेवाले अनुचरों के संग समय बिताता है। ज्येष्ठ में मित्र नाम लेकर, अत्रि, पौरुषेय, तक्षक, मेनक, हाहा, और रथस्व नामकों के साथ काल-यापन करता रहता है। आषाढ़ में वरुण नाम धारण करता है और वशिष्ठ, रंभा, सहजन्य, हूहू, शुक्र और चित्रस्वन नामधारी सहचरों-सहित कालक्षेप करता है। श्रावण में, इंद्र के नाम से व्यवहृत होते हुए, विश्वावसु, श्रोत, येलापुत्र, अंगीरस, प्रम्लोच राक्षस, और चर्या नामक सभिकों (सभासदों) के साथ दिन बिताता है। भाद्रपद में विवस्त का नाम लेकर, उग्रसेन, व्याघ्र, असारण, भृगु, अनुम्लोच और शंखपाल नामक परिजनों से आवृत हो कालयापन करता है। ४१ [कं.] भूमि पर त्वष्ट्रा नामक बिरुद धर कर,

जरियिंचु नभमंदुनु
सरसिजहितुडाश्वयुजमु चय्यन गडपुन् ॥ 42 ॥

व. ई मासंबुन, ऋचीक तनयुंडु कंबळाश्वुंडु तिलोत्तम ब्रह्मोपेतुंडु शतजित्तु धृतराष्ट्रुंडु इषंभरुडु अनु सभ्युलतो जेरिकोनि, कालंबु नडुपुचुंडु। कार्तिक मासंबुनंदु विष्णुवनि व्यवहरिपबडि, अश्वतरुडु रंभ सूर्यवर्चस्सु सत्यजित्तु विश्वामित्रुंडु मघापेतुडु अनु परिजन वर्गमुतो गूडि कालंबु नडुपुचुंडु। मार्गशिरंबुनंदु अर्यम नाम व्यवहृतुडै, कश्यपुंडु तार्क्ष्युंडु ऋतसेनुंडु ऊर्वशि विद्युच्छत्रुंडु महाशंखुंडु अनेडु ननुचरुलं गूडि चरियुचुनुंडु। पुष्यमासंबुन भगुंडनु नामंबु दालिच, स्फूर्जुंडु अरिष्टनेमि ऊर्णुडु आयुवु कर्कोटकुंडु पूर्वचित्ति अनेडु सभ्यजन परिवृतुंडै कालक्षेपणमु सेयुचुंडु। माघमासंबुनंदु पूषाह्वयमु वहिंचि धनंजयुंडु वातुंडु सुषेणुंडु सुरुचि घृताचि गौतमुंडु अनु परिजन परिवृतुंडै चरियिपुचुंडु ॥ 43 ॥

कं. ऋतुनामंबु धरिंचियु, जतुरत वालिपुचुंडु जातुर्यकळा-
रतुडै सहस्रकिरणुडु, मतियुतुलौ नन दपस्यमासमु लीलन् ॥ 44 ॥

व. अंदु वर्चसुंडु भरद्वाजुंडु पर्जन्युडु सेनजित्तु विश्ववेदेवतलु ऐरावतुंडु अनु वारलतो जेरुकोनि, कालयापनंबु सेयुचुंडु। इट्लु द्वादश मासंबुल

नभ में अभ्युदय के साथ, सरसिजहित सूर्य आश्वयुज मास विताता है। ४२ [व.] इस (आश्वयुज) मास में वह (सूर्य) ऋचीकतनय, कंबलाश्व, तिलोत्तमा, ब्रह्मोपेत, शतजित, धृतराष्ट्र और इषंभर कहलानेवाले सदस्यों के साथ समय विताता है। कार्तिक मास में विष्णु कहकर व्यवहृत होते हुए सूर्य, अश्वतर, रंभा, सूयवर्चस्, सत्यजित्, विश्वामित्र और मघापेत नामक परिजनवर्ग के संग समय व्यतीत करता है। मार्गशिर में अर्यम कहलाकर, कश्यप, तक्ष्य, ऋतसेन, ऊर्वशी, विद्युच्छत्र, और महाशंख नामक अनुचरों के साथ चलता रहता है। पुष्यमास में भग् के नाम से स्फूर्ज, अरिष्टनेमि, ऊर्ण, आयु, कर्कोटक और पूर्वचित् नामक सभ्यजनो से परिवृत होकर कालक्षेप करता है। माघ के मास में पूषा का नाम लेकर, धनंजय, वात्, सुषेण, सुरुचि, घृताची और गौतम नामक परिजनपरिवृत होकर चलता है। ४३ [कं.] तपस्य (फाल्गुण) मास में सहस्र किरण-सूर्य ऋतु नाम धरकर चतुर-कला से मतिमानों (वुद्धिमानों) की प्रशंसा पाते हुए [जग का] पालन करता है। ४४ [व.] [इस मास में] वह अपने साथ वर्चस, भरद्वाज, पर्जन्य, सेनजित, विश्वेदेव और ऐरावत नामक सगियों को लेकर कालयापन करता रहता है। इस प्रकार सूर्य वारह मासों में अपरिमेय विभूतियों

नपरिमेय विभूतुलचे देजरिल्लुचु, नुभय सध्यल नुपासिचु जनुल पापसंघंबुल नुन्मूलंबु सेयुचु, ब्रतिमासंबुनु बूर्वोक्त परिजन षट्कंबु वेंटनंट, नुभयलोक निवासुलगु जनंबुल कैहिकामुष्मिक फलंबुल नोसंगुचु, ऋग्यजुस्सामाथर्व मंत्रंबुल वठियिंपुचु ऋषिसंघंबुलु स्तुतियिंप, बुरोभागंबुन नप्सरसलाड, गंधर्वुलु पाड, ब्रह्मवेत्तलगु नरुवदिवेल वालखिल्य महर्षु-ल्नभिमुखुलै स्तुतियिंपुचु नरुग, नधिक बलवेग राजमानंबुलगु नागराजंबुलु रथोन्नयनंबुलु सलुप, बाहाबल प्रतिष्ठा गरिष्ठुलगु नैरुतश्रेष्ठुलु रथ पृष्ठभागंबु मोचि त्रोयुचुंड, ननादि निधनुंडगु नादित्युंडु प्रतिकल्पंबुन निट्लु कालयापनंबु सेयुचु देजरिल्लुचुंडु। अट्लु गावुन निवि यन्नियु वासुदेव मयंबुलुगा देलियुमु। अनि पौराणिकोत्तमुंडगु सूतुंडु, शुकयोगींद्रुंडु प्रायोपविष्टुंडगु परीक्षिन्नरपालुनकुपदेशिंचिन तॆरंगुन, नैमिशारण्यवासुलगु शौनकादि ऋषिश्रेष्ठुलकु देलिपि, मरियु निट्टिपुराण रत्नंबगु भागवतंबु विनुवारुनु, वठियिंचुवारुनु, लिखियिंचुवारुनु, नायुरारोग्यैश्वर्यंबुलु गलिगि, विष्णु सायुज्यंबु नोंदुदुरु। अदियुनु गाक ॥ 45 ॥

ते. पुष्करंबंदु द्वारका पुरमुनंदु
मथुरयंदुनु रविदिनमंदु नंवडु

से प्रकाशमान होते हुए दोनों संध्याओं में (प्रातः-सायं) उपासना करने वालों का पापसंघ उन्मूलित करता रहता है। पूर्वोक्त परिजन-षट्क (छः छः परिजन) प्रतिमास साथ चलता है। वह उभयलोकनिवासी जनों को ऐहिक और आमुष्मिक फल प्रदान करता है; ऋषि-संघ ऋग्यजुसामाथर्व मंत्र पढ़कर उसकी स्तुति करता रहता है; पुरोभाग में अप्सराएँ नाचती, गंधर्व गाते रहते। साठ हज़ार ब्रह्मवेत्ता वालखिल्य महर्षि लोग स्तुति करते हुए उसके सामने चलते रहते हैं। अधिक बलवेगयुक्त नागराज (हाथी) उसका रथ चलाते रहते, बाहाबल और प्रतिष्ठा में गरिष्ठ (श्रेष्ठ) दिक्पालक पीछे रहकर उसके रथ का भार ढोते और ढकेलते रहते है। इस प्रकार अनादिनिधन (आद्यंत-रहित) आदित्य सूर्य प्रत्येक कल्प में कालयापन करते हुए प्रकाशमान रहता है। अतः यह सब उस वासुदेवमय जान लो।" शुकयोगींद्र ने प्रायोपविष्ट परीक्षिन्नरपाल को जो उपदेश दिया, वही सब सूत ने नैमिशारण्यवासी शौनक आदि ऋषिश्रेष्ठों को दुहराकर कह सुनाया। ऐसा पुराणरत्न भागवत को पढ़नेवाले, लिखनेवाले, और सुननेवाले आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य पाकर विष्णु सायुज्य प्राप्त करेंगे। और··· ४५ [ते.] पुष्कर (क्षेत्र) में, द्वारकापुर में, मथुरा (नगर) में जो मनुष्य रविवार के दिन लगन से

पठनसेयुनु रमणतो भागवतमु
वाडु दरियिंचु संसार वार्धि नपुड ॥ 46 ॥

कं. श्रीरमणी रमणकथा
पारायण चित्तुनकुनु बतिकि बरीक्षि-
द्भूरमणुन कॅरिगिचॅनु
सारमतिन् शुकुड्डु द्वादश स्कंधमुलन् ॥ 47 ॥

[४८ मॊदलु ५१ वरकुगल गद्यपद्यमुलु मूलमुनंदलि १२, १३ अध्याय-मुलंदलि विषयमुनु दॆलुपुचुन्नवि ।]

व. मरियु, नष्टादशपुराणंबु लंदलि ग्रंथ संख्यलॆट्लनिन ब्राह्मपुराणंबु दशसहस्र ग्रंथंबु । पाद्मं बेबदि यैदुवेलु । विष्णु पुराणं बिरुवदि मूडु सहस्रंबुलु । शैवंबु चतुर्विंशति सहस्रंबुलु । श्रीभागवतं बष्टादश सहस्रंबुलु । नारदंबु पंचविंशति सहस्रंबुलु । मार्कंडेयंबु नव सहस्रंबुलु । आग्नेयंबु पदियेनुवेल नन्नूरु । भविष्योत्तरंबु पंचशताधिक चतुर्दश सहस्रंबुलु । ब्रह्मवैवर्तंबष्टादश सहस्रंबुलु । लैंगं बेकादश सहस्रंबुलु । वाराहंबु चतुर्विंशति सहस्रंबुलु । स्कांदंबनुबदिवेल नूरु । वामनंबु दश-सहस्रंबुलु । कौर्मंबु दशसहस्रंबुलु । मात्स्यंबु चतुर्दश सहस्रंबुलु । गारुडंबु

भागवत का पाठ करेगा वह संसार का समुद्र अवश्य पार कर जायगा । ४६
[कं.] श्रीरमणी-रमण (लक्ष्मी-पति) विष्णु की कथा के पारायण में दत्त-चित्त परीक्षित राजा को शुक ने बुद्धिमता के साथ द्वादश स्कंधों का भागवत समझा दिया । ४७

[सूचना— इसके बाद आनेवाला सं० ४८ से ५१ तक का गद्य-पद्यात्मक अंश मूल भागवत के १२ तथा १३ अध्यायों से संबंधित है :]

[व.] अष्टादश पुराणों में विद्यमान ग्रंथ-संख्या का विवरण यों है— (३२ अक्षरों के एक अनुष्टुप् छंद को एकग्रंथ माना जाता है ।) ब्रह्मपुराण में दस हज़ार ग्रंथ; पद्मपुराण में पचपन हज़ार ग्रंथ; विष्णुपुराण में तेईस हज़ार ग्रंथ; शैवपुराण में चौबीस हजार ग्रंथ; श्री भागवत में अठारह हज़ार ग्रंथ; नारदीय पुराण में पचीस हज़ार ग्रंथ; मार्कंडेय में नौ हज़ार ग्रंथ; आग्नेय में पंद्रह हजार चार सौ ग्रंथ; भविष्योत्तर में चौदह हज़ार पाँच सौ ग्रंथ; ब्रह्मवैवर्त में अठारह हज़ार ग्रंथ; लिंग पुराण में ग्यारह हजार ग्रंथ; वाराह में चौबीस हज़ार ग्रंथ; स्कन्दपुराण में अस्सी हज़ार एक सौ ग्रंथ; वामन में दस हज़ार ग्रंथ; कूर्म-पुराण में दस हज़ार ग्रंथ; मत्स्यपुराण में चौदह हज़ार ग्रंथ; गरुड़पुराण में

पंदोम्मिदि सहस्रंबुलु। ब्रह्मांडंबु द्वादश सहस्रंबुलु। इट्लु पुराण
संख्या प्रमाणंबुलु प्रवर्तिल्लु। ई पदुनेनिमिदि पुराणंबुल मध
(नदुलयंदु भागीरथि विधंबुन, वेवतलयंदु पद्मगर्भुनि माड्कि, तार
गळानिधि गरिम, सागरंबुलंदु दुग्धार्णवंबु चंदंबुन, नगंबुलनु हेम
भाति, ग्रहंबुल विभावसुकरणि दैत्युलंदु प्रह्लादुनि भंगि, मणु
पद्मरागंबु रेख, वृक्षंबुलंदु हरिचंदन तरुवु रीति ऋषुलंदु नारदुमा
धेनुवुलंदु गामधेनुवु पोल्कि, सूक्ष्मंबुलंदु जीवुनि तेरंगुन दुर्जयंबुलंदु
चोप्पुन, वसुवुलंदु हव्यवाहनुनि पोडिमि, नादित्युलंदु विष्णुवु
रुद्रुलयंदु नीललोहितुनि रीतिनि, ब्रह्मलयंदु भृगुवु सोबगुन, सिद्ध
गपिलुनि लील, नश्वंबलंदु नुच्चैश्रवंबु लागुन, दर्वीकरंबुलंदु वासुकि
मृगमुलंदु गेसरि चेलुवुन, नाश्रमंबुलंदु गृहस्थाश्रमंबु क्रिय, वर्णं
नोंकारंबु निरवुन, नायुधंबुल गार्मुकंबु सोयगंबुन, यज्ञंबुललो जप
चाड्पुन, व्रतंबुलं दहिंस करणि, योगंबुलं दात्मयोगंबु रमण, नोषधु
यवल सोंबगुन, भाषणंबुलंदु सत्यंबु ठेव, ऋतुवुलंबु वसंतंबु
मासंबुलंदु मार्गशीर्षंबु महिम, युगंबुलंदु गृतयुगंबु नोज) बेजरि
इट्टि भागवत पुराणंबु पठियिंचि विष्णु सायुज्यंबु जेंदुदुरु। अनि म
निट्लनियें ॥ 48 ॥

कं. सकलागमार्थपारगु, -डकलंक गुणाभिरामुडंचित बृंदा-
रक वंद्य पादयुगुडगु, शुकयोगिकि वंदनंबु सोरिदि नोनर्तुन् ॥ 4

उन्नीस हज़ार ग्रंथ; ब्रह्मांडपुराण में बारह हजार ग्रंथ; समाविष्ट
इन अष्टादश पुराणों के मध्य में भागवतपुराण उस प्रकार शोभायम
जैसा नदियों में भागीरथी (गंगा); देवों में पद्मगर्भ विष्णु; तारका
(नक्षत्रों) में कलानिधि (चंद्र); सागरो में क्षीरसागर; नगों (पर्वत
मे मेरु; ग्रहों में सूर्य; दैत्यों मे प्रह्लाद; मणियों में पद्मराग; वृक्षों
हरिचंदन; ऋषियों में नारद; धेनुओं में कामधेनु; सूक्ष्मों में जीव; दुर्जय
में मन; वसुओं में हव्यवाहन (अग्नि); आदित्यों में विष्णु; रुद्र
में नीललोहित; ब्रह्माओं में भृगु; सिद्धों में कपिल; अश्वों में उच्चैश्रव
दर्वीकरों (सर्पों) में वासुकी; मृगो में केसरी (सिंह); आश्रमों
गृहस्थाश्रम; वर्णों में ओंकार; आयुधों में कार्मुक (धनुष); यज्ञों
जपयज्ञ; व्रतों में अहिंसा; योगों में आत्मयोग; औषधों में यव; भाषण
में सत्यभाषण; ऋतुओं में वसंत; मासों मे मार्गशीर्ष तथा युगों में कृतयुग
शोभायमान रहता है। ऐसे इस भागवत को पढ़नेवाले विष्णुसायुज्य को
पहुँचेंगे।" यों कहकर फिर बोले… ४८ [कं.] मैं उस शुकयोगी की
विधिपूर्वक वंदना करता हूँ जो समस्त आगमार्थ में पारंगत है, अकलंक

सकल गुणातीतु सर्वज्ञु सर्वेशु नखिल लोकाधारु नादि देवु
बरमदयारसोद्भासितु त्रिदशाभिवंदित पादाब्जु वनधिशयनु
नाश्रित मंदारु नाद्यंत शून्युनि वेदांत वेद्युनि विश्वमयुनि
गौस्तुभ श्रीवत्स कमनीय वक्षुनि शंखचक्र गदासि शाङ्र्गधरुनि

शोभनाकारु पीतांबराभिरामु
रत्नराजित मकुट विभ्राजमानु
बुंडरीकाक्षु महनीय पुण्यदेहु
दलतु नुतियिंतु देवकी तनयु नेपुडु ॥ 50 ॥

अनि योरीति नुतिंचि भागवत मा द्यंतंबु सूतुंडु सें-
ध्पिन संतुष्ट मनस्कुलै विनि मुनुल् प्रेमंबुनं बद्मना-
भुनि जित्तंमुन निल्पि तद्गुणमुलन् भूषिंचुचुन् धन्यु लै
चनि रात्मीय निकेतनंबुलकु नुत्साहंबु वर्धिल्लगन् ॥ 51 ॥

जनकसुता हृच्चोरा !
जनक वचः पालनात्त शैलविहारा !
जनकामित मंदारा !
जननादिक नित्यदुःखचय संहारा ! ॥ 52 ॥

मालिनि. जगदवन विहारी ! शत्रुलोक प्रहारी !
सुगुणवन विहारी ! सुंदरी मानहारी !

अभिराम है, पूज्य है, और बृंदारक-वंदित-चरण-युगल है। ४९ [सी.] मैं देवकी-तनय (पुत्र) कृष्ण का स्मरण कर स्तुति करता हूँ जो सकल-गुणातीत है, सर्वज्ञ और सर्वेश है, अखिल लोकाधार है, आदिदेव है, परम दया से उद्भासित है, त्रिदशाभिवदित-पादाब्ज है, सागरशयन है, आश्रितमंदार है, आद्यंत शून्य है, वेदांतवेद्य है, विश्वमय है, कौस्तुभ-श्रीवत्स-कमनीय-वक्ष है, शंख-चक्र-गदा-असि-शाङ्र्गधर है। [ते.] शोभनाकार है, पीतांबराभिराम है, रत्नराजित-मुकुट-विभ्राजमान है, पुंडरीकाक्ष है, और महनीय पुण्यदेहवाला है। ५० [म.] इस प्रकार नुति (स्तुति) करनेवाले सूत ने जब भागवत का कथन आद्यंत पूरा किया तो मुनि लोग संतुष्ट-मनस्क हुए; प्रेमपूर्वक पद्मनाभ को चित्त में स्थिर करके, उसका गुणगान करके धन्य बन, उमड़ते उत्साह के साथ वे लोग अपने-अपने निकेतनों को लौट गये। ५१ [कं.] हे जनकसुता-हृच्चोरा (सीता-हृदय-हारी) ! पितृवाक्य-पालनार्थ वन-पर्वतों में संचार करनेवाले ! जनों का अभीष्ट पूरा करनेवाले कल्पवृक्ष ! जन्म-मरण रूपी नित्य दुखों को दूर करनेवाले [रघुराम !] ५२ [मा.] हे जगत् के रक्षक ! शत्रुओं के संहारक ! सुगुणों के वन में विहार करनेवाले ! सुंदरीमानहारी !

विगत कलुषपोषी ! वरीवर्याभिलाषी !
स्वगुरु हृदयपोषी ! सर्वदा सत्यभाषी ॥ 53 ॥

गद्य इदि श्रीपरमेश्वर करुणाकलित कविताचित्र, केसन मंत्रिपुत्र, सहज पांडित्य, पोतनामात्य प्रियशिष्य, वॆलिगंदल नारायणाख्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबुनंदु राजुल युत्पत्तियु, वासुदेव लीलावतार प्रकारंबुनु, गलियुग धर्मप्रकारंबुनु, ब्रह्म प्रळय प्रकारंबुनु, प्रळय विशेषंबुलुनु, दलकुनिचे दष्टुंडै परीक्षिन्महाराजु मृतिनॊंदुटयु, सर्पयागंबुनु, वेदविभाग क्रमंबुनु, बुराणानुक्रमणिकयु, मार्कंडेयोपाख्यानंबुनु, सूर्युंडु प्रतिमासंबुनु वेव्वेरु नामंबुल वेव्वेरु परिजनुलतो जेरुकॊनि संचरिंचु क्रमंबुनु, तत्तत्पुराणग्रंथ संख्यलुनु ननु कथलु गल द्वादश स्कंधमु संपूर्णमु ॥ 54 ॥

॥ दशम से द्वादश स्कन्ध सम्पूर्ण ॥
॥ श्रीमदांध्रमहाभागवत सम्पूर्ण ॥

कलुष (पाप) रहित-जनों के पोषक ! वीरवरों के प्रिय ! अपने गुरु को हार्दिक संतोष देनेवाले ! सर्वदा सत्यभाषी (रामचन्द्र) ! [तुम्हें नमस्कार है।] ५३ [गद्य] यह श्री परमेश्वर करुणाकलित-कविता-विचित्र, केसन मंत्री-पुत्र, सहज-पांडित्ययुक्त पोतनामात्य का प्रिय शिष्य- वॆलिगंदल नारायणाख्य-प्रणीत श्रीमहाभागवत महापुराण में राजाओं की उत्पत्ति; वासुदेव लीलावतार-प्रकार; कलियुग-धर्म-प्रकार; ब्रह्मप्रलय-प्रकार; प्रलय-विशेष; तक्षक-दष्ट परीक्षित की मृत्यु; सर्पयाग; वेद-विभाग-क्रम; पुराणानुक्रमणिका; मार्कण्डेयोपाख्यान; बारह मासों में सूर्य का अलग अलग नाम और परिजनसहित संचार का क्रम पुराणग्रंथ-संख्या —इन कथाओं से समन्वित द्वादश स्कंध संपूर्ण हुआ। ५४

॥ दशम से द्वादश स्कन्ध सम्पूर्ण ॥
॥ श्रीमदांध्रमहाभागवत सम्पूर्ण ॥

॥ ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ॥

भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-२०

प्रतिष्ठाता – पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी

' प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।। '

आज एकजुट एकमञ्च पर जगे विश्व के ग्रंथ अनन्त ।
सुख-समृद्धि-सत्कर्म जगाने को जम गये भारती सन्त ।।

भुवन वाणी ट्रस्ट
विश्वभाषा सेतु संस्थान

विविध भाषाई सानुवाद लिप्यन्तरण ग्रन्थ

मूलपाठ नागरी लिपि में, हिन्दी अनुवाद सहित :—

	भाषा	ग्रन्थ	पृष्ठसंख्या	मूल्य
१	तेलुगु	रंगनाथ रामायण (१३वीं शती)	१३३५	१२०·००
२	,,	मौल्ल रामायण (१४वीं शती)	३०८	४०·००
३	,,	पोतन्नकृत महाभागवतमु (१३वीं शती) प्रथमखण्ड (स्कंध–१-४)	८५६	८०·००
४	,,	,, ,, द्वितीयख० (स्कंध–५-९)	८२८	८०·००
५	,,	,, ,, तृतीयख० (स्कंध–१०-१२)	९२०	१००·००
६	कन्नड	रामचन्द्र चरित पुराणम् (अभिनव पम्प-विरचित) जन सम्प्रदाय (११वीं शती)	६९०	६०·००
७	,,	तोरवे रामायण नरहरि कुमार वाल्मीकिकृत (१६वीं शती)	१४००	१२०·००
८	,,	वत्तलेश्वर (कौशिक) रामायण (कार्याधीन)		
९	,,	महाभारत कुमार व्यास कृत ,,		
१०	मलयालम	महाभारत (एळुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती	१२१६	१२०·००
११	,,	अध्यात्म रामायण, उत्तर रामायण (एळुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती	७५२	७०·००
१२	,,	तुळ्ळल् कथकळ् लोकनृत्य-काव्य का नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद प्रथम खण्ड	९७२	१२०·००
१३	,,	,, ,, ,, द्वितीय खण्ड		१२०·००
१४	बंगला	कृत्तिवास रामायण आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुंदरकांड (१५वीं शती) सानुवाद नागरी लिप्य०	९२४	५०·००
१५	,,	,, ,, लंकाकांड ,,	४८८	४०·००
१६	,,	,, ,, उत्तरकांड ,,	३२४	३०·००
१७	कश्मीरी	रामावतार चरित (प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत) १८वीं शती ,,	४८९	५०·००
१८	,,	ललद्यद १४वीं शती (आदि कवयित्री ललद्यद के वाक्य) नागरी लिप्य० हिन्दी गद्य, संस्कृत पद्यानुवाद	१२०	२०·००

			पृष्ठ	मूल्य
१९	तमिळ	कम्ब रामायण (९वीं शती) बालकांड लेखन तथा उच्चारण दोनों पद्धतियों पर तमिळ पाठ का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद	६५२	६०·००
२०	"	" " अयोध्या-अरण्यकांड (")	१०२४	१००·००
२१	"	" " किष्किंधा-सुन्दरका० (")	१०१६	१००·००
२२	"	" " युद्धकांड-पूर्वार्ध (")	१०१६	१००·००
२३	"	" " युद्धकांड-उत्तरार्ध (")	८४०	८०·००
२४	"	तिरुक्कुरळ् तिरुवळ्ळुवर (२०००वर्ष प्राचीन) लिप्य० एवं गद्य-पद्यानुवाद	३५२	४०·००
२५	"	सुब्रह्मण्य भारती (भारदियार कविदैहळ्) तमिळनाडु के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के संपूर्ण पद्य-साहित्य का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी गद्य-पद्य अनुवाद	११०८	१२०·००
२६	फ़ारसी	सिर्रे अक्बर (शाहज़ाद: दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य प्रथम खण्ड) ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर	२८०	४०·००
२७	"	सिर्रे अक्बर (५० उपनिषदों की दाराशिकोह कृत व्याख्या हिन्दी अनुवाद) खण्ड–२,३ (कार्याधीन)		
२८	"	मुल्ला मसीही रामायण (जहांगीर-काल) (विचाराधीन)		
२९	"	मस्नवी मानवी मौलाना रूम छ: जिल्दों में नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद (विचाराधीन)		
३०	उर्दू	गुज़श्त: लखनऊ (मौ० अब्दुल हलीम शरर कृत) नवाबी काल का अवध का साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक इतिहास	३१६	३५·००
३१	"	शरीफ़ज़ाद: (डॉ० रुस्वा कृत)	१३६	१५·००
३२	"	मर्सिया मीर अनीस (कार्याधीन)		
३३	उर्दू-नागरी	विश्वनागरी उर्दू-हिन्दी कोश (परिवर्द्धित नागरी लिपि में छप रहा है)		

			पृष्ठ	मूल्य
३४	गुरमुखी	श्री गुरूग्रन्थ साहिब गुरुवाणी मूलपाठ नागरी लिपि में तथा सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद (पहली सैंची)	६६८	५०·००
३५	"	" " (दूसरी सैंची)	६६२	५०·००
३६	"	" " (तीसरी सैंची)	६६४	५०·००
३७	"	" " (चौथी सैंची)	८००	५०·००
३८	"	श्री दशम गुरूग्रन्थ साहिब गुरुगोविन्दसिंह प्रणीत नागरी लिप्य० हिन्दी अनुवाद सहित (प्रथम सैंची)	८२०	५०·००
३६	"	" " " " (द्वितीय सैंची)	७०४	५०·००
४०	"	" " " " (तृतीय सैंची)	७३६	५०·००
४१	"	" " " " (चतुर्थ सैंची)	७५२	५०·००
४२	"	श्रीजपुजी सुखमनी साहिब—मूलपाठ एवं ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत अनुवाद (नागरी में)	१६४	१५·००
४३	"	श्री सुखमनी साहिब (मूल गुटका) पाठ के लिए	२४०	४·००
४४	"	भाई गुरुदास जी के वारॉ ज्ञान रतनावली नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद	७०४	६०·००
४५	"	" " के कवित्त-सवैये " (छप रही है)		
४६	मराठी	श्रीराम-विजय (श्रीधर कृत) १७वीं शती राम-कथा	१२२८	१२०·००
४७	"	श्रीहरि-विजय (") १७वीं शती कृष्ण-कथा	१००४	१००·००
४८	"	भावार्थ रामायण—सन्त एकनाथ कृत (१६वीं शती) प्रथम खण्ड (छप रही है)		
४६	"	" " द्वितीय खण्ड "		

			पृष्ठ	मूल्य
५०	नेपाली	भानुभक्त रामायण मूल एवं हिन्दी अनुवाद	३४४	३०·००
५१	राजस्थानी	रुकमणी मंगळ (पदम भगत विरचित) १६वीं शती	२५२	३०·००
५२	सिन्धी	सिन्ध की त्रिवेणी (सामी, शेख, सचल की वाणी)	४१५	३०·००
५३	गुजराती	गिरधर रामायण (१९वीं शती)	१४६०	१२०·००
५४	"	प्रेमानन्द रसामृत (ओखाहरण, नल-दमयंती, सुदामा-चरित आख्यान)	५०४	५०·००
५५	असमिया	माधव कंदली रामायण (१४वीं शती)	८४३	१००·००
५६	"	श्री शंकरदेव कीर्त्तन घोषा	३४८	५०·००
५७	ओड़िआ	रामचरितमानस (मूलपाठ ओड़िआ लिपि में तथा ओड़िआ गद्य-पद्य अनुवाद)	१४६४	८०·००
५८	"	वैदेहीश विळास (उपेन्द्रभंज कृत) राम पर अद्वितीय अलंकारिक ग्रन्थ १८वीं शती	१०००	१२०·००
५९	"	विलंका रामायण सिद्धेश्वर परिडा (सारळादास) कृत १७वीं शती	६५२	७०·००
६०	"	विचित्र रामायण	६८८	७०·००
६१	"	जगमोहन (दण्डी) रामायण बलरामदास कृत (१६वीं शती) (कार्याधीन)		
६२	"	महाभारत सारळादास कृत	"	
६३	मैथिली	चन्द्रा रामायण हिन्दी अनु० सहित मूलपाठ	६००	७०·००

				पृष्ठ	मूल्य
६४	संस्कृत	मानस-भारती (तुलसी रामचरितमानस मूलपाठ तथा पंक्ति-अनुपंक्ति संस्कृत पद्यानुवाद)		७४४	५०·००
६५	,,	अब्भुत रामायण	सहस्त्रकण्ठ रावण का जानकी द्वारा वध हिन्दी अनुवाद सहित	२४४	३०·००
६६	,,	वाल्मीकि रामायण	मूल तथा हिन्दी पद्यानुवाद माहात्म्य, बाल०, अयोध्याकाण्ड	१००८	१२०·००
६७	,,	,,	अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरकाण्ड (छप रही है)		
६८	,,	,,	लंका, उत्तरकाण्ड ,,		
६९	,,	श्रीमद्भगवद्गीता	मूल पाठ एवं हिन्दी गद्यानुवाद तथा छवाला दिलमुहम्मद, लाहौर (गोल्ड मेडिलिस्ट) का उर्दू पद्यानुवाद नागरी लिपि में, (कार्याधीन)		
७०	,,	महाभारत (आदिपर्व)	मूल तथा हिन्दी पद्यानुवाद (छप रहा है)		
७१	वैदिक	ऋग्वेद	मूल मंत्र, अन्वय, पदच्छेद, हिन्दी शब्दानुवाद, पद्यानुवाद, गद्य टिप्पणी, व्याख्या आदि (छप रहा है)		
७२	,,	यजुर्वेद	,, ,, ,,		
७३	,,	सामवेद	,, ,, ,,		
७४	,,	अथर्ववेद	,, ,, ,,		
७५	प्राकृत	पउम चरियं (विमलसूरि कृत)	प्राकृत मूल पाठ, हिन्दी पद्यानुवाद सहित (कार्याधीन)		
७६	पारसी	जरथुस्त्र गाथा	(कार्याधीन)		
७७	कोंकणी	ख्रीस्त पुराण	(मूल तथा हिन्दी अनुवाद) (विचाराधीन)		

				पृष्ठ	मूल्य
७८	अरबी	क़ुर्आन शरीफ़	अरबी, नागरी दोनों लिपियों में मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी सहित (ल.कि.ध.)	१०२४	६०·००
७९	,,	,, ,,	(केवल मुअर्रा-मूलपाठ नागरी-अरबी लिपियों में) (ल.कि.ध.)	५२०	३०·००
८०	,,	,, ,,	(केवल हिन्दी अनु० सटिप्पण)	५३०	३०·००
८१	,,	तफ़्सीर माजिदी	क़ुर्आन शरीफ़ का मौलाना अब्दुल् माजिद दर्याबादी कृत भाष्य पहली जिल्द (पारः १-५)	५१२	६०·००
८२	,,	क़ौरानिक कोश	(पठनक्रम से) (ल.कि.ध.)	१६२	२०·००
८३	,,	क़ौरानिक कोश	(वर्णानुक्रम) (छप रहा है)		
८४	,,	सहीह् बुखारी शरीफ़	हिन्दी अनुवाद पहली जिल्द (पारः १-५)	५८०	६०·००
८५	,,	,, ,,	(पारः ६-१०)	५६२	६०·००
८६	,,	,, ,,	(पारः ११-३०) छप रही है		
८७	,,	ज़ादॅ सफ़र	(प्रामाणिक हदीस प्र० खण्ड)	३३६	३५·००
८८	हिब्रू	द होली बाइबिल् प्रथम खण्ड १ उत्पत्ति २ निर्गमन	(ओल्ड् टॅस्टमॅण्ट्) मूलपाठ हिब्रू तथा नागरी लिपि में, अंग्रेज़ी अनु० का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक टिप्पणी। (छप रही है)		
८९	ग्रीक	द होली बाइबिल् प्रथम खण्ड १ मत्ती के अनुसार २ मरकुस	(निउ टॅस्ट्मॅण्ट्) मूलपाठ ग्रीक तथा नागरी लिपि में, अंग्रेज़ी अनुवाद का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक टिप्पणी। (छप रही है)		
९०	,,	इलियड् (होमर् कृत)	नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद (कार्याधीन)		
९१	,,	ऑडॅसी (,, ,,)	नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद (कार्याधीन)		
९२	वाणी सरोवर	—बहुभाषाई त्रैमासिक पत्र	(वार्षिक शुल्क)		१५·००